इक्कीसवीं सदी : नारी सदी

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक :
अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी माँ शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही हैं। उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानीगणों के वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देखा सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबोकर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता, मन को व विचारों को बदलता चला जाता है। लाखों-करोड़ों के मनों के अंतःस्थल को छूकर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्लमार्क्स के साम्यवाद की क्रान्ति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट् गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े करते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाये, कैसे छन्दबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर, १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आप-पास के, दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंतःकरण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुतः अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला

की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवा कर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा। उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किंतु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजास्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में सम्पन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषिसत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष्य के चौबीस महापुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रान्ति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, *हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।*

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि- ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरुसत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गईं- संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद

पैदल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अँग्रेज़ी सीखकर लौटे। आसनसोल जेल में वे श्री जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन को साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जनआक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रान्तिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था। नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं। बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये। जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्तजी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्रीगोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधीजी के समक्ष पेश किये गये। बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए। कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया। उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधानमंत्री राहत फण्ड के नाम समर्पित कर दीं। वैरागी जीवन का सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्रीकृष्णदत्तपालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रहकर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया। प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ। स्थान बदला, आगरा से मथुरा आग गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे। पुस्तकों

का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंतःस्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही। साथ देने आ गयीं परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुःखी था- पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रान्ति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि-विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परमवंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५७ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देशभर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनने महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूलथाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञानसम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप-पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों के द्वारा विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों को विशेष कार्य-भार सौंप परमवंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया-पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्तन, संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के

अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक, साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य, प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी-बूटी, यज्ञ विज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना, मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञानसम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का, एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युगशिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता व आस्तिकता संवर्धन एवं जन-जाग्रति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञासंस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञामण्डल, स्वाध्याय-मण्डल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया-कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तपसाधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया-कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून, १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी के दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट-आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नवनिर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरुसत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युग संधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नवनिर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रान्ति ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर, १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद, दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु सम्पन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९४ में कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी गई। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो एक सौ आठ खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हुआ। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जाएँगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़-चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

□□□

भूमिका

इक्कीसवीं सदी महापरिवर्तनों की वेला है । इन दिनों हम सब संक्रमणकाल से गुजर रहे हैं एवं सूक्ष्म जगत में नियन्ता वह विधि-व्यवस्था बनाने में जुटा है, जिसमें सारी धरित्री का भाग्य नये सिरे से लिखा जा रहा है । महाकाल का लक्ष्य है-सतयुग की वापसी । इस सतयुग में नारी का खोया वर्चस्व उसे नये सिरे से प्राप्त होगा, वह स्वयं उठेगी-अवांछनीयताओं के बंधनों से मुक्त होगी एवं ऐसा कुछ कर गुजरने में समर्थ होगी, जिसमें उसके अपने समुदाय, जन-समाज एवं समस्त संसार को न्याय मिलने की सम्भावना बनेगी तथा उज्ज्वल भविष्य की गतिविधियों को समुचित प्रोत्साहन मिलेगा, ऐसा परमपूज्य गुरुदेव का मत है । इस खण्ड में नारी शक्ति का विगत में पराभव कैसे हुआ, कैसे पुनः उसका जागरण हो धरती पर देवत्व के पुनः विस्तरित होने की व्यवस्था बनेगी, महिला जागरण अभियान क्या है व कैसे यह विराट मत्स्यावतार का रूप लेने जा रहा है-इस पर विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।

ऋषियुग्म परमपूज्य गुरुदेव एवं माता भगवती देवी दोनों ने अपने जीवन से जो शिक्षण दिया है, उसकी एक झाँकी इस खण्ड में पायी जा सकती है । नारी के साथ 'देवी' क्यों लिखा जाता है, इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए पूज्यवर लिखते हैं, कि हिन्दू विचारधारा में नारी को देव श्रेणी की सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है । नारी शक्ति ने इसके लिए चिरकाल तक गहन तपश्चर्या कर यह प्रतिष्ठा प्राप्त की है । लोककल्याण की विधायिका, पथ प्रदर्शिका और संरक्षिका शक्ति का ही नाम देवी है । इसकी तेजस्विता आज धूमिल पड़ गयी है किन्तु, यदि नर व नारी दोनों द्वारा यदि प्रयास सम्भव हो तो मल-आवरण के इन विक्षेपों को हटाया जा सकता है एवं नारी को पुनः उसका गौरव वापस लौटाया जा सकता है ।

नारी शक्ति माता के रूप में, बहिन के रूप में, पुत्री के रूप में तथा सहधर्मिणी के रूप में-इन चार रूपों में न केवल परिवार संस्था को सशक्त बनाने का वरन् सारे समाज की प्रगति का पथ प्रशस्त करने में एक महती भूमिका निभाती रही है किन्तु मध्यकाल में जिसे अंधकार युग कहा जाता है, नर को वरिष्ठ व नारी को कनिष्ठ की मान्यता देकर उसे, निर्बल प्रमाणित कर शोषित करने का प्रयास किया गया, जिसका परिणाम हमें एक लम्बे समय तक हर स्तर पर परतंत्रता के रूप में भुगतना पड़ा है । वस्तुतः नारी पुरुष की पूरक सत्ता है । वह मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति है । नारी ही मनुष्य को पूर्ण बनाती है । पुरुष के कर्तव्य शुष्क जीवन की वह सरसता तथा उजड़ी जिन्दगी की हरियाली मानी गयी है । अपने विभिन्न रूपों में वह सदैव मानव जाति के लिए त्याग, बलिदान, स्नेह, श्रद्धा, धैर्य, सहिष्णुता का प्रतीक मानी जाती रही है । नारी की गरिमा गिराने में मनुष्य का ही नहीं, सारे समाज का घाटा ही घाटा है, यह परमपूज्य गुरुदेव ने तर्कपूर्ण प्रतिपादनों के साथ इस पूरे खण्ड में लिखा है । नारी की अवमानना का अर्थ है-अपनी उद्गम शक्ति की गरिमा को गिराना । अविकसित माँ, असंस्कृत बहिन, उपेक्षित बेटी और अपरिष्कृत मनोभूमि की पत्नी के साथ रहकर यदि मनुष्य श्रेष्ठता का दंभ रख डींग हाँकता है, तो उस पर दया भी आती है, हँसने का भी मन करता है । इसलिए पूज्यवर लिखते हैं कि, नारी के विकास में ही उसका हित सन्निहित है एवं वही उसे अब प्रायश्चित्य के रूप में करना चाहिए ताकि इक्कीसवीं सदी जो संवेदना की सदी के रूप में जानी जाएगी, में वह सब सम्पन्न हो सके जो नियन्ता चाहता है ।

परमपूज्य गुरुदेव का अंतःकरण नारी की पीड़ा को समझता है एवं वे ही पीडा से सराबोर शब्द उनकी लेखनी से वाङ्मय के इस खण्ड में प्रकट हुए हैं । वे लिखते हैं कि, मध्यकालीन सामन्तवादी अंधकार युग में कुछ ऐसा अनर्थ उपजा कि, सब कुछ उलट-पुलट हो गया । नारी की मूलसत्ता और आत्मा को एक प्रकार से भुला ही दिया गया । उसे अबला समझा गया और कामिनी, रमणी, भोग्या, क्रीतदासी जैसी घिनौनी स्थिति में रहने योग्य ठहराया गया । तिरस्कृत और शोषित, संत्रस्त, पददलित स्थिति में रखे जाने पर हर विभूति को दुर्दशाग्रस्त होना पड़ता है, वही नारी के संदर्भ में भी हुआ है । पूज्यभाव कुदृष्टि के रूप में बदल गया और उसे वासना की आग में झोंक कर कल्पवृक्ष को काला कोयला बनाकर रख दिया गया ।

पूज्यवर लिखते हैं कि, अंधकार युग से उबर कर अनेक सत्प्रवृत्तियों की तरह नारी भी अब नये सिरे से अपने वर्चस्व का परिचय देने के लिए ऊपर आ रही है । इसे कल्पना या सम्भावना नहीं वरन् एक सुनिश्चित भवितव्यता ही समझना चाहिए । विदेश से आरम्भ हुआ यह क्रम अब विगत एक शताब्दी में भारत की देहरी तक आ पहुँचा है । अनेक प्रतिभावान देशी-विदेशी नारियों के उदाहरणों के माध्यम से अब नारी शक्ति अपने वर्चस्व का प्रमाण दे रही है ।

पूज्यवर का मत है कि अगले दिनों नारी स्वाभाविक रूप से अधिक समर्थ, कुशल और सुसंस्कृत बनने जा रही है । यह उसके नवजीवन का स्वर्णिम काल है । इसी के निमित्त नारी जाग्रति अभियान का शंखनाद युग निर्माण योजना-शांतिकुंज की दैवी चेतन सत्ता द्वारा किया गया है । नारी को शिक्षा संवर्धन के अतिरिक्त आर्थिक सुरक्षा व स्वावलम्बन प्रदान करने के बहुविध प्रयास किये गये हैं । नारी पौरोहित्य के क्षेत्र में वेदकाल में भी आगे थी एवं उसे पहली बार गायत्री मंत्र जप से लेकर यज्ञोपवीत धारण तथा यज्ञ के माध्यम से लोकशिक्षण तथा अब ब्रह्मवादिनी का पद देने का प्रयास मात्र पूज्यवर द्वारा किया गया है । इक्कीसवीं सदी-नारी सदी मात्र एक यूटोपिया नहीं, वास्तविकता है एवं इसे साकार रूप देने का पुरुषार्थ परमपूज्य गुरुदेव एवं शक्तिस्वरूपा माताजी ने जिस प्रकार किया है-इसकी झलक-झाँकी वाङ्मय के इस खण्ड में देखी जा सकती है ।

-ब्रह्मवर्चस

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ

0000

नारी को पददलित बनाकर मनुष्य ने क्या पाया?

नारी क्या सदा पददलित ही बनी रहेगी ?

अशिक्षा, घर की चहारदिवारी का कारावास, पर्दा-प्रथा, बहुप्रजनन, कामिनी और रमणी के रूप में साहित्य तथा कला में चित्रण आदि कितने ही कुचक्र हैं जो नारी को छलने के लिए सदियों से चले आ रहे हैं और नित नये ढंग के निकलते जा रहे हैं। इन कुचक्रों के कारण दिनोदिन नारियों की होती जा रही दुर्दशा को देखकर यही विचार आता है कि पुरुष कहीं उसकी अपार क्षमता और असंदिग्ध योग्यता को देखकर खौफ तो नहीं खा गया है और उसकी क्षमताओं तथा योग्यताओं को विकसित न होने देने के लिए तरह-तरह के षड्यन्त्र रचने में अपनी बुद्धि का प्रयोग करने लगा है ?

नाना विधि बन्धनों और प्रतिबन्धों के कारण यह कहना पड़ रहा है कि पुरुष का व्यवहार नारी के प्रति एक शत्रु जैसा रहा है और वह उसे मोहक षड्यन्त्रों में फँसा कर अबोध तथा अबला बनाये रखने में सफल हुआ हो। अच्छा तो यह है कि उसे इन कुचक्रों में न फँसाया जाय और उसकी क्षमताओं तथा योग्यताओं को विकसित होने देकर समाज की गाड़ी को प्रगति के पथ पर दौड़ाया जाय, पर जहाँ झूठे अहं का सवाल है, वहाँ समाज को कितनी हानि उठानी पड़ रही है, यह विचार करने का समय किसके पास है ?

उँगलियों पर गिने जाने योग्य है, उन महिलाओं की संख्या, जिन्होंने अपनी क्षमताओं की पहचान और उत्पन्न की गयी बाधाओं की परवाह किये बिना आगे बढ़ीं, पर अधिकांश ९९ प्रतिशत कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी कि महिलाएँ दीन-हीन अवस्था में हैं, अबला हैं, आश्रिता हैं, दासी हैं और एक विचारक के तीक्ष्ण शब्दों में 'सुरक्षित वेश्या' हैं।

नारी की क्षमता को अवरुद्ध रखने में सबसे बड़ा प्रतिबन्ध है-शिक्षा का। अशिक्षा नारी के लिए एक षड्यन्त्र ही है और वह षड्यन्त्र इतने सुन्दर ढंग से रचा गया है, उसके पीछे इतने बढ़िया तर्क दिये गये हैं कि पुरुष की नीयत पर सन्देह करना ही पड़ता है । उदाहरण के लिए कहा जाता है- "नारियों के लिए पढ़ने की क्या जरूरत, उन्हें कोई नौकरी-चाकरी तो करनी नहीं, न किसी घर की मालकिन बनना है। उसके लिए तो घर 'गृहस्थी' का काम सीख लेना ही पर्याप्त है।"

अहा! कितना सुन्दर तर्क है, पर क्या शिक्षा प्राप्ति का एकमात्र उद्देश्य नौकरी करना ही है। लोग जानते हैं कि आजकल पढ़े-लिखे लोगों की संख्या इतनी अधिक है कि आज जो बच्चे पढ़ रहे हैं और जब पढ़कर बड़े हो जायेंगे, तब उनके लिए नौकरी मिल जाएगी इसकी दस प्रतिशत भी उम्मीद नहीं है। पढ़-लिख कर नौकरी करने का प्रचलन तो ब्रिटिश काल में हुआ, उससे पहले क्या सभी लोग अशिक्षित थे? बल्कि उस समय की शिक्षा ने जितना ज्ञान और जितना साहित्य दिया, उतना प्रगल्भ तथा उच्चस्तर आज के शिक्षा स्तर में कहीं दिखाई ही नहीं देता। प्राचीनकाल में कौन-सी नौकरियाँ थीं, कौन से विभाग थे? कौन से पद थे? जिन्हें प्राप्त करने के लिए लड़के और लड़कियों की शिक्षा पर समान रूप से ध्यान दिया जाता था।

"*किसी घर की मालकिन नहीं बनना है।*" तर्क भी निराधार है। एक तो प्रत्येक कन्या को विवाह के बाद गृहिणी बनना पड़ता है और गृहिणी घर की मालकिन ही तो होती है। घर का संचालन, घरेलू कामकाजों को निबटाने में ही उतनी योग्यता और चतुरता की आवश्यकता पड़ती है, जितनी कि किसी व्यवसाय के प्रबन्ध में। अशिक्षित नारी की गृह-व्यवस्था और शिक्षित नारी की गृह-व्यवस्था में जमीन आसमान का अन्तर देखा जा सकता है और यह कहना भी अनुपयुक्त होगा कि घर का काम-काज सीख लेना ही पर्याप्त है, क्योंकि घरेलू काम-काज निबटाने में 'मुश्किल' से चार-छह घण्टे लगते हैं। इसके बाद स्त्रियाँ फालतू हो जाती हैं। यदि वे पढ़ी-लिखी हों तो अपने फालतू समय का उपयोग ज्ञानवर्द्धन में कर सकती हैं अन्यथा खाली बैठी दो- चार स्त्रियाँ गपशप और दूसरों की भलाई-बुराई में ही अपना समय नष्ट कर डालती हैं। यदि कन्या-शिक्षा नारी-शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जाय तो उसका लाभ केवल स्त्री को ही नहीं पूरे परिवार को मिलेगा। वह बच्चों का ढंग से पालन-पोषण कर सकती हैं, उनके व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए अच्छे संस्कार डाल सकती हैं, घरेलू मामलों में अपनी बुद्धि से सही परामर्श दे सकती हैं।

स्त्रियों के लिए शिक्षा को अनावश्यक बताते हुए यह भी कहा जाता है कि- "लड़कियाँ पढ-लिखकर जब तक होशियार होती हैं, वे विवाह करने लायक हो जाती हैं और विवाह के बाद पराये घर चली जाती हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा में लगाये गये समय, श्रम और धन का लाभ हमें तो मिलता नहीं, फिर पढ़ाने से क्या लाभ ?"

यह नितान्त संकीर्ण और ओछा दृष्टिकोण है, कहना चाहिए कि अनुत्तरदायी स्वार्थी माता-पिता का तर्क है। सन्तान का पालन-पोषण क्या इसी उद्देश्य से किया जाना

चाहिए कि भविष्य में हम उनसे लाभ उठायें? ये कमा कर लायें और हम चैन की वंशी बजाते हुए मौज उड़ायें? यह उद्देश्य सामने रखकर समाज को योग्य और असमर्थ बनाने के प्रयास, उद्देश्य प्राप्ति में असफल ही हो रहे हैं । बच्चे की ब्याह-शादी होने के बाद अधिकांश लड़कों का दृष्टिकोण बदलते देखा गया है और वह अपनी पत्नी तथा बच्चों की परवरिश को प्रधानता तथा माता-पिता के प्रति दायित्वों को गौण महत्त्व देने लगता है। लड़के ही आज-कल नौकरी पर लग कर कौन से माँ-बाप की सेवा कर रहे हैं जो इस कारण लड़कियों को न पढ़ाया जाय ?

स्वाभाविक है कि अशिक्षित होने के कारण स्त्रियों में दुनियादारी की समझ का अभाव रहता है और इस कारण उन्हें घर से बाहर निकलना बन्द करना पड़ता है। घर की चहारदीवारी में कैद की गई स्त्रियों को उसी अवस्था में रखने के लिए बड़े मनमोहक तर्क दिये जाते हैं और विवाहितों के लिए भी शिक्षा की उपेक्षा की जाती है। कहा जाता है कि नववधू घर की शोभा है और कुल की लाज होती है । किसी भी कारण उसका बाहर निकलने का सस्तापन उसके गौरव को घटाता है। घर का काम-काज छोड़कर पढ़ने जाना पड़ेगा और बाद में आकर घर का काम निपटाना होगा, जिससे दूना परिश्रम पड़ जाएगा और जिसका उसके स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा और यदि दो-एक बच्चे हुए तो जब वह स्कूल में रहेगी तब वे बेचारे माँ-माँ कर बिलखते रहेंगे।

इस तरह के कितने ही तर्क दिये जा सकते हैं पर जो समय की गति और समाज की वर्तमान स्थिति की परख कर पाने में समर्थ हैं उन्हें इन तर्कों का कच्चापन अपने आप ही अनुभव हो जाएगा। बहू घर की इज्जत है तो पुरुष क्या फालतू प्राणी है, जिसके बाहर रहने से घर की इज्जत नहीं घटती? घर का काम निपटाना और स्कूल की पढ़ाई करना दोहरा श्रम है तो क्या पुरुष के लिए उपार्जन के साथ-साथ शिक्षा प्राप्त करना दोहरा श्रम नहीं है ? यह वह निर्जीव यन्त्र है, जिससे चाहे जितना ही काम लिया जाय। तर्कों का उत्तर तर्क से ही दिया जा सकता है और उनका प्रत्युत्तर भी तर्क द्वारा दिया जा सकता है पर बहसबाजी में कोई फायदा नहीं। तर्कों द्वारा तो दिन को रात और जिन्दगी को मौत भी सिद्ध किया जा सकता है । पर इससे वास्तविकता पर पर्दा नहीं डाला जा सकता। तर्कों के कितने ही बादल हों, उनके छँटते ही सूर्य का चमकना निश्चित है और बादल का छँटना भी निश्चित है।

वास्तविकता तो यह है कि पुरुष नारी को अशिक्षित और अविकसित रखकर उसके अधिकार और अस्तित्व का बोध नहीं होने देना चाहता, क्योंकि उसे अपना वर्चस्व घटने का भुतहा भय है– जिसमें सच्चाई का अंश मात्र नहीं है। शिक्षा नारी के मुख में जबान, हृदय में भावना, बुद्धि में विचार और आत्मा में जागरण लायेगी और इन उपलब्धियों के होते हुए उसका शोषण न हो सकेगा, पुरुष की मनमानी न चल सकेगी। अवांछनीय दुराचार तो पुरुष न कर सकेगा, पर इतनी गारण्टी के साथ कहा जा सकता है कि अशिक्षित हो जाने पर उसका साथ, सहयोग और सम्बल देने वाली शक्ति बन जाएगी।

लेकिन इतनी श्रेष्ठ उपलब्धियाँ पुरुष को अपनी अहंता की कीमत चुकाकर प्राप्त करना स्वीकार नहीं है। अशिक्षित रखने के साथ-साथ पुरुष ने नारी को बच्चा पैदा करने की मशीन बना रखा है। प्राय: बड़ी-बड़ी स्त्रियों को यह कहते सुना गया है कि– "यह कितनी भाग्यवान औरत है, उसकी आठ सन्तानें हैं । भगवान् सबको ऐसा बनायें। घर में छह बहुएँ और दो जमाई आयेंगे। जल्दी ही उसका घर पोते-नातियों से भर जाएगा। कमाई उठाये धरते न बनेगी। एक बहू रोटी बनायेगी तो दूसरी पाँव दाबेगी। बच्चे सब पल जाएँगे। मेहनत तो करनी पड़ेगी, पर आज की हुई मेहनत कल काम आयेगी और सुख देगी। मरेगी तो नाती-पोतों के कन्धों पर जायेगी। ऐसी फली-फूली फुलवारी छोड़कर जाने वाली के लिए तो स्वर्ग से लेने के लिए विमान आते हैं।"

इस तरह के बुढ़िया-पुराण को मानने वालों को कौन समझाये कि अधिक सन्तान आज के समय में सामाजिक अपराध है। सामाजिक अपराध तो है ही, पर बार-बार प्रजनन से कमजोर और अकाल वृद्धावस्था, ढलती देह और जर्जर स्वास्थ्य तथा रुग्ण स्थिति वाली बहुजनिता को मरते वक्त स्वर्ग से लेने के लिए विमान आये या न आये, जीते जी तो नरक जैसी यन्त्रणाएँ ही भोगनी पड़ती हैं। जिन लड़कों को बड़ी आशा और उत्साह से पाल-पोस कर बड़ा किया, वे विवाह के बाद अपनी पत्नी को लेकर अलग हो गये। न भी हुए तो देवरानी-जेठानी में छोटी-छोटी बातों को लेकर आपस में चलने वाला महाभारत घर को अच्छा-खासा युद्ध क्षेत्र बना देता है। बेटियाँ जब भी आती हैं, आशा करती हैं कि माँ-बाप के घर से कुछ मिल जाये, भाई उसके लिए और उसके बच्चों के लिए भेंट दे, जमाई के तरह-तरह के नाज-नखरे उठायें। सारी कमाई को, जिसके सम्बन्ध में सोचा गया था कि उठाये धरते न बनेगी, किधर उड़ा देती हैं ? कुछ पता नहीं चल पाता।

अच्छा हो नारी को बहु-प्रजनन के दुर्भाग्य चक्र में पिसने न दिया जाय और उसका स्वास्थ्य, सौन्दर्य, शरीर, असमय ही बर्बाद न होने दिया जाय। बहु-सन्तान की सौभाग्यशीलता के षड्यन्त्र से जिस दिन नारी को मुक्ति मिल जाएगी उस दिन वह स्वास्थ्यपूर्ण सुन्दर जीवन जीने योग्य स्थिति में आ जाएगी और भी बहुत से षड्यन्त्र हैं, जिनका विस्तार भय से उल्लेख नहीं किया जा रहा है, पर इन दो मुख्य षड्यन्त्रों को विनिष्ट कर दिया जाय तो मृत नारी पुनर्जीवित हो उठेगी और इसके लिए अधिक कुछ करना भी आवश्यक नहीं है, सिवा इसके कि पुरुष अपनी भूल को समझे और अहंतापूर्ण दुराग्रह का रवैया त्याग दे।

कला-मंच नारी-कुत्सा न उभारे

नर और नारी के बीच पाये जाने वाले प्राण और रयि, अग्नि और सोम, स्वाहा और स्वधा तत्वों का महत्त्व सामान्य नहीं, असामान्य है। सृजन और उद्‌भव की, उत्कर्ष और आह्लाद की असीम सम्भावनाएँ उसमें भरी पड़ी हैं, प्रजा उत्पादन तो उस मिलन का बहुत ही सूक्ष्म-सा स्थूल और अति तुच्छ परिणाम है। इस सृष्टि के मूल कारण और चेतना के आदि स्रोत इन द्विधा संस्करण और संचरण का ठीक तरह मूल्यांकन किया जाना चाहिए और इस तथ्य पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि इनका सदुपयोग किस प्रकार विश्व-कल्याण की सर्वतोमुखी प्रगति में सहायक हो सकता है और उनका दुरुपयोग मानव जाति के शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य को किस प्रकार क्षीण विकृत करके विनाश के गर्त में धकेलने के लिए दुर्दान्त दैत्य की तरह सर्वग्रासी संकट उत्पन्न कर सकता है, कर रहा है।

पिछले दिनों सामन्तवादी युग में नारी का बहुत ही दुःखद और दुर्भाग्यपूर्ण चित्रण कर दिया गया। उसे स्वर्ग की देवी के उच्च स्थान से घसीट कर वेश्या जैसे नारकीय स्तर का चित्रित किया गया। कामिनी और रमणी मात्र उसे रहने दिया गया। कला के नाम पर केवल घृणित वासना की प्रतिमूर्ति नारी को सँजोया गया। गीत, काव्य, चित्र, मूर्ति, अभिनय, नृत्य, साहित्य आदि कला के जितने भी स्वर थे सबने मिलकर नारी को यौन लिप्सा की पूर्ति में प्रयुक्त होने वाली भोग सामग्री के रूप में प्रतिपादित किया। मस्तिष्क उसी साँचे में में ढलते चले गये और नारी का स्वाभाविक वेश-विन्यास ऐसा अभ्यस्त करा दिया गया, जिससे वासना भड़काना ही उसका एकमात्र लक्ष्य दीखने लगे। नारी की जिस कुरुचिपूर्ण साज-सज्जा में अलंकृत आज सर्वत्र देखा जाता है उसके पीछे सामन्तवादी युग की बनी दुरभिसंधि काम कर रही है। यों तत्वतः नारी का यह घोर अपमान है कि वह नर की वासना भड़काने वाली साज-सज्जा को स्वीकार कर ले। कोई दिन ऐसा जरूर आवेगा जब वह अपने ऊपर चढ़ाये गये इन आवरणों के प्रति विद्रोह करेगी और नर-नारी की समान वेश-भूषा का, साज-सज्जा का प्रचलन होगा। जब नर, नारी को प्रलोभित करने की दृष्टि से सज-धज नहीं, बनाव, शृंगार साधन नहीं जुटाता तो नारी ही भड़कीली सज्जा अपनाकर अपनी हीनता का परिचय क्यों दे ? भोग्या होने का प्रदर्शन वह क्यों न अपने व्यक्तित्व का अपमान समझे ? एक दिन यह भाव जागेंगे ही और या तो नर स्वयं समझेगा या फिर जाग्रत नारी उन समस्त बौद्धिक दुरभिसंधियों को कला के नाम पर बुने गये मकड़ी के जाले को तोड़ कर रख देगी जो उसे हेय, हीन, घृणित, भोग्या, रमणी, कामिनी जैसे लांछनों से तिरस्कृत करते हैं।

नारी का जो स्वाभाविक स्थान है- वह उसे मिलना ही चाहिए। समाज में उसे पुरुष का पूरक बनकर रहना चाहिए, नारी की अछूत, अस्पर्श की स्थिति जो इन दिनों बनी हुई है उसका एकमात्र कारण वह रुग्ण मनोवृत्ति है जिसके अनुसार नारी का अस्तित्व काम-सेवन भर मान लिया गया है। यदि उसे बहिन, बेटी, माँ, सखा और पूरक मान लिया जाय तो जिस प्रकार दो पुरुषों के सान्निध्य से काम-प्रवृत्ति भड़कने का कोई डर नहीं रहता, उसी प्रकार नर-नारी के बीच भी अकारण कलुष-कषाय उत्पन्न न हो। वासना या विकार के लिए न नर का अस्तित्व दोषी है न नारी का। केवल मनोवृत्ति दोषी है जो अवांछनीय तत्वों में मौजूद भ्रम-जंजाल के रूप में कागज के रावण की तरह बनाकर खड़ी कर दी गई है।

मनोवृत्ति ओछी क्यों ?

आज अपने समाज में नारी को नर से सर्वथा दूर रखा जाता है। दोनों कभी कहीं मिल रहे हों, बात कर रहे हों, हँस रहे हों तो उसे मात्र व्यभिचार का प्रयोजन सोचा जाएगा, चाहे प्रसंग कितना ही पवित्र क्यों न चल रहा हो। यह हमारी तुच्छता का घृणितम स्वरूप है। नारी बिना हेय प्रयोजन के नर से अन्य किसी प्रसंग पर बात ही नहीं कर सकती, उसके मन में कुत्सा के अतिरिक्त और कुछ रहता ही नहीं, यह सोच कर पर्दे जैसे कठोर प्रतिबन्ध की जंजीरों में कसना निस्संदेह अति घृणित और अति ओछी मनोवृत्ति का परिचय देना है। हम इसी दुर्बुद्धि में फँस गये हैं। भारतीय समाज में पर्दा प्रथा का अभी तक बना रहना अपने चारित्रिक पिछड़ेपन को ही प्रदर्शित करता है। इससे लाभ रत्ती भर नहीं, हानि अपार है। नारी में हीनता की भावना जम गई, उसका साहस चला गया, परावलम्बी बन गई, पग-पग पर झिझक सवार है, प्रगति की दिशा में साहस नहीं कर पाती, स्वावलम्बन की बात सोचते डरती है। इस स्थिति ने उसके व्यक्तित्व को इतना दुर्बल बना दिया कि पग-पग पर पददलित होती है । उच्च वर्ण के हिन्दू लड़की का विवाह तब करते हैं, जब लड़की के साथ मोटी रकम भी दहेज में दी जाय। बिना मूल्य नारी की उपलब्धि नर का असामान्य-सौभाग्य है । इस सौभाग्य का कुछ भी मूल्य न समझा जाय और उसे अति तुच्छ समझ कर दहेज मिलने पर ही स्वीकार किया जाय, यह नारी का दयनीय और हृदय विदारक दुर्दशा का दुर्भाग्यपूर्ण चित्र है । इसका दोष उस मनोवृत्ति को है जिसने नारी को भोग्या समझा और अन्य भोग सामग्रियों की तरह अपने लिए संग्रह करने की दृष्टि से प्रतिबंधित किया। इस बन्धन ने नारी को इतनी दुर्बल बना दिया कि वह समाज के लिए, परिवार के लिए, अपने लिए केवल भारभूत बनकर रह रही है।

इस स्थिति का अन्त किया जाना चाहिए और सर्वसाधारण को यह समझाया जाना चाहिए कि नारी न

भोग्या है, न रमणी, न कामिनी। यह भी मनुष्य ही है, अगणित विभूतियों की धनी है। नर की पूरक है। दोनों हिल-मिल कर सहयोगी-सहचर की तरह रहें, यही स्वाभाविक, उचित और न्यायसंगत है। प्रतिबन्धों के पीछे जिस व्यभिचार पर नियंत्रण की बात सोची जाती है, वह सर्वथा निरर्थक है। व्यभिचार मात्र क्रिया नहीं है, वस्तुत: वह दूषित दृष्टि ही है, जिसमें दृष्टि दोष भरा पड़ा है। वह अविवाहित भी व्यभिचार का दण्ड भुगतेगा और जिसकी भावनाएँ पवित्र हैं, वह विवाहित रहते हुए भी ब्रह्मचारी है। हमें इसी प्रवृत्ति का विकास करना चाहिए और रमणी, कामिनी की भाषा में सोचना बन्द कर देना चाहिए। कला के नाम पर जिन दुष्ट-दुरात्माओं ने नारी को वेश्या का स्थान देने की ठान-ठानी है, उन्हें अपराधियों की पंक्ति में खड़ा करना चाहिए। नारी भी नर की भाँति मात्र मनुष्य है और मनुष्य को मनुष्य से सहयोग सम्पर्क रखने की छूट होनी ही चाहिए। यह मानवीय और सामाजिक न्याय की माँग है जिसे अधिक दिन तक बेरहमी के साथ दबाया नहीं जाना चाहिए। परस्पर पूरक रहकर सहयोग और सद्भाव की, स्नेह और सौजन्य की- भावनाओं का विकास करते हुए ही हम वांछनीय एवं स्वाभाविक स्थिति का समाज विनिर्मित कर सकते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से तो यह नितान्त आवश्यक है। प्राण और रयि की समीपता बिना आन्तरिक उल्लास के उद्भव ही न हो सकेगा। माना कि बिना पत्नी के सरसता, बहिन के बिना सौहार्द, पुत्री के बिना स्नेह की धाराएँ सूखी ही पड़ी रहेंगी और नारी को अछूत मानने वाला नर मरघट में रहने वाले प्रेत-पिशाच की तरह एकाकीपन की आग में जलता रहेगा। इसी प्रकार प्रतिबंधित नारी भी मणि-विहीन सर्प की तरह खोई-खोई भूली-भटकी-सी अशांत, उद्विग्न और अविकसित बनी रहेगी। इस अवांछनीय स्थिति को जिस गर्हित काम विज्ञान ने उत्पन्न किया है, उसे बहिष्कृत, तिरस्कृत करना ही होगा अन्यथा ब्रह्म भी प्रकृति के सान्निध्य की तरह नर-नारी का स्नेह सद्भाव बढ़ने से सृष्टि का- मानव-समाज का-सौन्दर्य और प्रकाश बढ़ेगा ही घटेगा नहीं।

यौन सम्पर्क एक विशेष प्रक्रिया है। उसके पीछे अग्नि और सोम के मिलन से उत्पन्न एक विद्युत संचार की विशेष प्रक्रिया सन्निहित है, इसलिए इसकी उपयुक्तता और पवित्रता पर अधिकतम ध्यान रखा जा सकता है, पर वह प्रयोजन अनावश्यक प्रतिबन्धों से न हो सकेगा। यह प्रतिबन्ध तो उस दुष्ट मान्यता को ही बल देंगे, जिसके अनुसार व्यभिचार के अतिरिक्त और किसी प्रयोजन के लिए नर-नारी चर्चा ही नहीं कर सकते। वर्तमान प्रतिबन्धों की अवांछनीयता समझी जानी चाहिए और उन्हें इस दृष्टि से शिथिल एवं समाप्त किया जाना चाहिए कि नर और नारी स्वेच्छा से सद्भाव की महत्ता स्वीकार कर सकें और अधिकतम पवित्रता के साथ सहयोग और सौजन्य के साथ रह सकें और प्रगति की दिशा में एक-दूसरे के पूरक बनकर साहसपूर्ण कदम बढ़ा सकें।

दो पहिए बिना गाड़ी नहीं चल सकती। नर और नारी के घनिष्ठ सहयोग बिना सृष्टि का व्यवस्थाक्रम नहीं चल सकता। दोनों का मिलन काम-तृप्ति एवं प्रजनन जैसे पशु प्रयोजन के लिए नहीं होता वरन् घर बसाने से लेकर व्यक्तित्वों के विकास और सामाजिक प्रगति तक समस्त सत्प्रवृत्तियों का ढाँचा दोनों के सहयोग से ही सभव होता है। यह घनिष्ठता जितनी प्रगाढ़ होगी, विकास और उल्लास की प्रक्रिया उतनी ही सघन होती चली जाएगी।

कलाकार कुचेष्टा भड़काने से परहेज करें

कुछ समय से नर-नारी के सान्निध्य का प्रश्न अतिवाद के दो अन्तिम सिरों के साथ जोड़ दिया गया है। एक ओर तो नारी को इतनी आकर्षित चित्रित किया गया कि उसकी माँसलता को ही सृष्टि की सबसे बड़ी विभूति सिद्ध कर दिया गया। कला ने नारी के अंग-प्रत्यंग की सुडौलता को इतना सराहा कि सामान्य भावुक व्यक्ति यह सोचने के लिए विवश हो गया कि ऐसी सुन्दरता को काम-तृप्ति के लिए प्राप्त कर लेना जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। गीत, काव्य, संगीत, नृत्य, अभिनय, चित्र, मूर्ति आदि कला के समस्त अंग जब नारी की माँसलता और कामुकता को ही आकाश तक पहुँचाने में जुट जायें तो बेचारी लोक-वृत्ति को उधर मुड़ना ही पड़ेगा। इस कुचेष्टा का घातक दुष्परिणाम सामने आया। यौन प्रवृत्तियाँ भड़कीं, नर-नारी के बीच का सौजन्य चला गया और एक-दूसरे के लिए अहितकर बन गये। यौन रोगों की बाढ़ आई, शरीर और मन जर्जर हो गया, पीढ़ियाँ दुर्बल से दुर्बलतर होती चली गईं, मन:स्थिति उस कुचेष्टा के चिन्तन में तल्लीन होने के कारण कुछ महत्त्वपूर्ण चिन्तन कर सकने में असमर्थ हो गयी। तेज, ओज, व्यक्तित्व, प्रतिभा, मेधा, शौर्य और वर्चस्व जो कुछ महान् था ,वह सब कुछ इसी कुचेष्टा की वेदी पर बलि हो गया । दुर्बल काया और मन:स्थिति को लेकर मनुष्य दीन-हीन और पतित, पापी ही बन सकता था सो बनता चला गया। नारी को रमणी सिद्ध करके तुच्छ-सा मनोरंजन भले पाया हो, पर उससे जो हानि हुई उसकी कल्पना कर सकना भी कठिन है । जितने भी मानवीय प्रवृत्तियों को इस पतनोन्मुख दिशा में मोड़ने के लिए प्रयत्न किया है, वस्तुत: एक दिन वे मानवीय विवेक और ईश्वरीय न्याय की अदालत में अपराधियों की तरह खड़े किए जाएँगे।

जिन लोगों ने फ्रायड जैसे मनोवैज्ञानिकों का नाम लेकर इस कुत्सा को भड़काने के लिए आज कला प्रयोजनों को पूरी तरह स्वच्छन्दता के पैरों में डाल दिया है, वे भले ही कहने को बुद्धिजीवी और विचारशील क्यों

न हों, उन्हें मानवीय सभ्यता पर कलंक लगाने वाला ही कहा जाएगा। न तो मनोविज्ञान की दृष्टि से और न ही विज्ञान की दृष्टि से काम-वासना के लिए नितान्त आवश्यक नहीं है। उसकी अति तो सर्वथा संकट भरा परिणाम ही प्रस्तुत कर सकती है, कर रही है । इस आत्म-प्रवंचना से बचा जाना चाहिए।

काम-वासना आवश्यक नहीं

लन्दन के एक अन्य मनोविज्ञानशास्त्री ने तो इस सिद्धान्त को नींव ही हिला कर रख दी । लिसेस्टर विश्व विद्यालय के मनोविज्ञान के प्राध्यापक श्री डेविड राइट ने अनेक बन्दी-शिविरों, फौजी संस्थानों, खेल-कूद और पर्वतारोहण जैसी सामाजिक, सामुदायिक और राष्ट्रीय सन्धि के कार्यों में भाग लेने वालों के जीवन का विस्तृत अध्ययन करने के बाद पाया कि उनमें से अधिकांश सामान्य परिस्थितियों में ही सम्भोग का आनंद लेते रहे । उन्हें अपने अभियान अथवा उसके बाद विषय-भोग की कभी भी इच्छा नहीं होती जब तक कि वे या तो स्वयं भूतकालीन सम्भोग का स्मरण नहीं करते या उनके सामने इस तरह की चर्चा के विषय नहीं आते। यदि वे इच्छा न करें अथवा उनके सामने कामुकता भड़काने वाली प्रवृत्तियाँ न आयें तो वे काम-वासना के लिए कभी परेशान नहीं होंगे वरन् उनमें मनोविनोद आह्लाद के स्वभाव का विकास हो होने लगता है।

श्री डेविड राइट ने द्वितीय महायुद्ध के दौरान बन्दी बनाये गये जापानियों, साइबेरिया शिविर में बन्दी लोगों तथा अस्पतालों के उन लोगों से जाकर भेंट की जो लम्बे समय से किसी बीमारी से आक्रान्त पड़े थे। उनसे बात-चीत करते समय उन्होंने पाया कि उनमें कामवासना की कोई इच्छा नहीं रह गई थी तो भी वे न तो अशान्त थे न उद्विग्न वरन् उनके अन्त:करण से एक प्रकार की शान्ति और आत्म-विश्वास की झलक देखने को मिलती थी। यह आत्म-विश्वास अच्छे अर्थों में था कि यदि इन परिस्थितियों से मुक्ति मिले तो अमुक-अमुक अच्छे काम करें।

श्री डेविड राइट के इस कथन की और भी पुष्टि वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा मिल जाती है और इस तरह के सिद्धान्त का लगभग अन्त ही हो जाता है । आने वाले समय में लोग फ्रायड के सिद्धान्त को तूल देकर अपना न तो मस्तिष्क खराब करेंगे और न शरीर की शक्तियाँ बरबाद करेंगे, वरन् शक्तियों के संचय से जीवन की अनेक ऐसी धाराओं का विकास करने में समर्थ होंगे, जिनका सम्बन्ध आध्यात्मिक तत्वों से है और जो यथार्थ में मनुष्य के लक्ष्य हैं। ईश्वर, आत्मा, परलोक, पुनर्जन्म जैसे आध्यात्मिक सत्यों की शोध में ब्रह्मचर्य सबसे अधिक सहायक है। आगे की पीढ़ी का ध्यान ब्रह्मचर्य द्वारा शक्ति संयम और उससे जीवन की प्रसन्नता के लिये नई-नई विधाओं की खोज की ओर कहीं अधिक होगा।

मेरीलैण्ड (अमेरिका) के 'नेशनल इन्स्टीटयूट ऑफ चाइल्ड हैल्थ एण्ड ह्यूमन डेवलपमेन्ट' (अमेरिका की एक राष्ट्रीय संस्था-जो बच्चों के स्वास्थ्य और मानव-विकास की आवश्यकताओं की शोध और शिक्षण करती है) ने एक खोज में बताया कि मनुष्य शरीर की कोशिकाओं में गुणसूत्रों (क्रोमोसोम्स अर्थात् व्यक्ति के शरीर स्वभाव आदि का निर्धारण करने वाले तत्व) के तेईस जोड़े रहते हैं। प्रत्येक जोड़े में एक गुणसूत्र पिता का, एक माता का होता है। २२ जोड़े ऐसे होते हैं जिनका कामवासना सम्बन्धी गुणों व विकास से कोई सम्बन्ध नहीं होता। अधिकतम १ ही जोड़ा काम-वासना का रहता है इसी से काम-वासना की प्रवृत्ति का व्यक्ति में निर्धारण होता है, किन्तु कुछ मामलों में यह भी देखा गया कि उस एक जोड़े में भी एक गुण-सूत्र या तो माता की ओर का या पिता की ओर का था ही नहीं, सारे २३ समूहों में केवल एक ही गुण-सूत्र था ऐसे व्यक्तियों मे सैक्स अंगों का विकास तो असामान्य होता है, किन्तु उनके स्वभाव में काम-वासना सम्बन्धी कोई विशेष रुचि नहीं होती वरन् कई बातों में वे असाधारण प्रतिभा वाले सिद्ध हुए। बेशक ! कुछ एक ऐसे भी उदाहरण आये, जबकि बाईस जोड़े अलिंगी गुणसूत्रों (आटोसपल क्रोमोसोम) की जगह २१ जोड़े ही रह गये शेष दो में से १ तो पूरा ही जोड़ा काम-सम्बन्धी गुणसूत्र का था, जबकि दूसरे में भी एक गुणसूत्र काम-वासना वाला था । वैज्ञानिकों ने पाया कि इस अतिरिक्त काम-वासना के गुणसूत्र वाले सभी व्यक्ति लम्पट, क्रोधी, असामाजिक और खूंख्वार थे। तात्पर्य यह कि काम-वासना पर नियन्त्रण न होना व्यक्ति के लिए सुविधा का नहीं, पतन का ही कारण हो सकता है।

नारी शक्ति प्रतिबंधित न रहे

अतिवाद का एक सिरा यह है कि कामिनी, रमणी, वेश्या आदि बनाकर उसे आकर्षण का केन्द्र बनाया गया। अतिवाद का दूसरा सिरा यह है कि उसे पर्दे, घूँघट की कठोर जंजीरों में जकड़ कर अपंग सदृश बना दिया गया। उस पर इतने प्रतिबन्ध लगाये गये जितने बन्दी और पशु भी सहन नहीं कर सकते । जेल के कैदियों को थोड़ी घूमने-फिरने की, हँसने-बोलने की आजादी रहती है, पर घर की छोटी-सी कोठरी में कैद नववधू के लिए परिवार के छोटी आयु वालों के सामने ही बोलने की छूट है। बड़ी आयु वालों से तो उसे पर्दा ही करना चाहिए। न उसके सामने मुँह खोला जा सकता है और न उनसे बात की जा सकती है। पर्दा सो पर्दा, प्रथा सो प्रथा, प्रतिबन्ध सो प्रतिबन्ध इससे न्याय औचित्य और विवेक के लिए क्यों गुंजायश छोड़ी जाय ? पशु को मुँह पर नकाब लगाकर नहीं रहना पड़ता। वे दूसरों के चेहरे देख सकते हैं और अपने दिखा सकते हैं। जब मर्जी हो चाहे जिसके सामने अपनी टूटी-फूटी वाणी बोल सकते हैं, पर नारी अधिकार से भी वंचित कर दिया गया।

इस अमानवीय प्रतिबन्ध की प्रतिक्रिया बुरी हुई। नारी शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत पिछड़ गई। भारत में नर की अपेक्षा नारी की मृत्यु दर बहुत अधिक है। मानसिक दृष्टि से वह आत्महीनता की ग्रन्थियों में जकड़ी पड़ी है। सहमी, झिझकी, डरी, घबराई , दीन-हीन अपराधिन की तरह वह यहाँ-वहाँ लुकती-छिपती देखी जा सकती है। अन्याय, अत्याचार और अपमान पग-पग पर सहते-सहते क्रमशः अपनी सभी मौलिक विशेषताएँ खोती चली गई। आज औसत नारी उस नीबू की तरह है जिसका रस निचोड़ कर उसे कूड़े में फेंक दिया जाता है। नव- यौवन के दो चार वर्ष ही उनकी उपयोगिता प्रेमी पतिदेव की आँखों में रहती है। अनाचार की वेदी पर जैसे ही उस सौन्दर्य की बलि चढ़ी कि वह दासी मात्र शेष रह जाती है। आकर्षण की तलाश में भौंरे फिर नये-नये फूलों की खोज में निकलते और इधर-उधर मँडराते दीखते हैं जीवन की लाश का भार ढोती हुई, गोदी के बच्चों के लिए वह किसी प्रकार मौत के दिन पूरे करती है। जो था वह दो-चार वर्ष में लुट गया, अब बेचारी को कठोर परिश्रम के बदले पेट भरने के लिए रोटी और पहनने को कपड़े भर पाने का अधिकार है। बन्दिनी का अन्तःकरण इस स्थिति के विरुद्ध भीतर ही भीतर कितना ही विद्रोही बना बैठा रहे, प्रत्यक्षः वह कुछ न कर सकने की परिस्थितियों में ही जकड़ी होती है सो गम खाने और आँसू पीने के अतिरिक्त उसके पास कुछ चारा नहीं रह जाता।

ऐसी विषम स्थिति में पड़ी हुई नारी का व्यक्तित्व उसके अपने लिए, परिवार के लिए, बच्चों के लिए कुछ अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता। जो खुद ही मर रहा है, वह दूसरों को जीवन क्या देगा ? समाज की कैसी विडम्बना है कि एक ओर जहाँ नारी को आकर्षण केन्द्र मानकर उसके गुणानुवाद गाने में सारी भावुकता जुटा दी। दूसरी ओर उसे इतना पददलित, पीड़ित, प्रतिबन्धित करने की नृशंसता अपनाई। यह दोनों अतिवादी सिरे ऐसे हैं जिनका समन्वय कर सकना कठिन है।

धर्म-मंच का अनर्गल आलाप

तीसरा एक और अतिवाद पनपा । अध्यात्म के मंच से एक और बेसुरा राग अलापा गया कि नारी ही दोष-दुर्गुणों की, पाप-पतन की जड़ है इसलिए उससे सर्वथा दूर रहकर ही स्वर्ग, मुक्ति और सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। इस सनक के प्रतिपादन में न जाने क्या-क्या गढंत गढकर खड़ी कर दी गईं। लोग घर छोड़कर भागने में, स्त्री, बच्चों को बिलखता छोड़कर भीख माँगने और दर-दर भटकने के लिए निकल पड़े। समझा गया इसी तरह योग साधना होती होगी, इसी तरह स्वर्ग, मुक्ति और सिद्धि मिलती होगी, पर देखा ठीक उलटा गया। आन्तरिक अतृप्ति ने उनकी मनोभूमि को सर्वथा विकृत कर दिया और वे तथाकथित संत-महात्मा सामान्य नागरिकों की अपेक्षा भी गई-गुजरी मनःस्थिति के दलदल में फँस गये। विरक्ति का जितना ही ढोंग उन्होंने बनाया, अनुरक्ति की प्रतिक्रिया उतनी ही उग्र होती चली गई। उनका अन्तरंग यदि कोई पढ़ सकता हो तो प्रतीत होगा कि मनोविकारों ने उन्हें कितना जर्जर कर रखा है। स्वाभाविक की उपेक्षा करके अस्वाभाविक के जाल-जंजाल में बुरी तरह जकड़ गये हैं। ऐसे कम ही विरक्त मिलेंगे जिन्होंने बाह्य जीवन में जैसे नारी के प्रति घृणा व्यक्त की है वैसी ही अन्तरंग में भी उसे विस्मृत करने में सफल हो पाये हों। सच्चाई यह है कि विरक्ति का दम्भ अनुरक्ति को हजार गुना बढ़ा देता है। 'बन्दर का चिन्तन न करेंगे।' ऐसी प्रतिज्ञा करते ही बरबस बन्दर स्मृति पटल पर आकर उछल-कूद मचाने लगता है। यों स्वाभाविक रूप में बन्दर के बारे में कुछ न सोचा जाता तो शायद वर्षों उसका स्मरण न आता, पर अब जब कि बन्दर का स्मरण ही नरक में गिराने वाला बता दिया गया तो उसका स्मरण करने से मन को रोक पाना असम्भव है। इस तथाकथित वैराग्य में नारी को पतन का कारण बताकर कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं किया गया। पर्दे के पीछे जो होता रहता है, वह दयनीय है। अतिवाद कभी भी उपयोगी नहीं रहा। काम तो मध्यम मार्ग से चलता है, उसी को अपनाकर कोई श्रेयाधिकारी बन सकता है।

आध्यात्मिक काम विज्ञान का प्रतिपादन यह है कि अतिवाद की भारी दीवारें गिरा दी जाएँ और नारी को नर की ही भाँति सामान्य और स्वाभाविक स्थिति भर रहने दिया जाय। इससे एक बड़ी अनीति का अन्त हो जाएगा। अतिवाद के दोनों ही पक्ष नारी के वर्चस्व पर भारी चोट पहुँचाते हैं और उसे दुर्बल-जर्जर एवं अनुपयोगी बनाते हैं। इसलिए इन जाल-जंजालों से उसे मुक्त करने के लिए उग्र और समर्थ प्रयत्न किये जाएँ।

एक विनम्र निवेदन

प्रयत्न होना चाहिए कि नारी की माँसलता की अवांछनीय अभिव्यक्तियाँ उभारने वालों से अनुरोध किया जाए कि वे अपने विष बुझे तीर कृपाकर तरकस में बन्द कर लें। फिल्म वाले इस दिशा में बहुत आगे बढ़ गये हैं। उन्होंने बन्दर के हाथ तलवार लगने पर जैसी कुचेष्टा की आशंका की, वैसी ही करतूतें आरम्भ कर दी हैं। आग लगा देना सरल है, बुझाना कठिन। मनुष्य की पशु प्रवृत्तियों को, यौन उद्वेग और काम विकारों को भड़का देना सरल है पर उस उभार से जो सर्वनाश हो सकता है उससे बचाव की तरकीब ढूँढ़ना कठिन है। ना-समझ लड़के-लड़कियों पर आज का सिनेमा क्या प्रभाव डाल रहा है और उनकी मनोदिशा को किधर घसीटे लिए जा रहा है, इस पर बारीकी से दृष्टि डालने वाला दुःखी हुए बिना न रहेगा। कला के अन्य क्षेत्रों में काम करने वाले विभूतिवानों से करबद्ध प्रार्थना की जाय कि वे नारी को पददलित करने के पाप पूर्ण अभियान में जितना कुछ कर चुके उतना ही पर्याप्त मान लें, आगे की ओर निशाने न

साधें। कवि लोग ऐसे गीत न लिखें जिनसे विकारोत्तेजक प्रवृत्तियाँ भड़कें। साहित्यकार, उपन्यासकार कलम से नारी के गोपनीय सन्दर्भों पर भड़काने वाली चर्चा छोड़कर सरस्वती की साधना को अगणित धाराओं में प्रयुक्त कर अपनी प्रतिभा का परिचय दें। गायक विकारोत्तेजना और शृंगार रस को कुछ दिन तक विश्राम कर लेने दें। सामन्तवादी अन्धकार युग के दिनों उसे ही तो एकछत्र राज्य मिला है। गायन का अर्थ ही पिछले दिनों कामेन्द्रिय रहा है। राज्य दरबारों से लेकर मनचले आवारा हिप्पियों तक उसी को माँगा जाता रहा है। अब कुछ दिन से गान विश्राम ले लें और दूसरे रसों को भी जीवित रहने का अवसर मिल जाय तो क्या हर्ज है ? कुछ दिन तक घुँघरू न बजें, पायल न खनकें तो भी कला जीवित रहेगी। चित्रकार नवयौवना की शालीनता पर पर्दा पड़ा रहने दें, पतित दुःशासन द्वारा द्रौपदी को नंगी करने की कुचेष्टा न करें तो भी उनकी चित्रकारिता सराही जा सकती है। चित्रकला के दूसरे पक्ष भी हैं। क्यों न कुशल चित्रकार सुरुचि उत्पन्न करने वाले चित्र बनायें। मूर्तिकार क्यों न मानवीय अन्तर्वेदना को उभारने वाली प्रतिमाएँ बनायें। इन महारथी कलाकारों से कहा जाय कि सौजन्य का बालक अभिमन्यु इस बुरी तरह न मारा जाय। महाभारत का वह कुकृत्य महारथियों के माथे पर कलंक का टीका ही लगा गया। अब पुनः कलाकार महारथियों के चक्रव्यूह में फँसा शालीनता का अभिमन्यु उसी तरह फिर मारा गया तो यह भारत- महाभारत, समस्त संसार की दृष्टि में आदर्शवादिता और आध्यात्मिकता का ढिंढोरा पीटने वाला दम्भी ही माना जायेगा । जिस देश के कलाकार तक अपना उत्तरदायित्व न समझें, न निवाहें उस देश के सामान्य नागरिकों से कोई क्या आशा करेगा ? यदि उनके विष बुझे तीर इसी क्रम से चलते रहे, तो संसार भर में भारत से जिस नवयुग निर्माण के प्रकाश की आशा की जाती है, उसका दीपक बुझ ही जाएगा। कलाकारों को कहा जाना चाहिए कि वे कृपाकर अपने कदम पीछे हटालें। उनके इस अनुग्रह के बिना नारी की शालीनता, पवित्रता, उत्कृष्टता और समर्थता को बचाया न जा सकेगा।

नारी को पिछड़ी रखकर हम पाते कम और खोते अधिक हैं

नारी के पिछड़ेपन का सारा लाभ नर ने उठाया है । इसी तथ्य का दूसरा पक्ष यह है कि सबसे अधिक हानि भी उसी को उठानी पड़ी है।

पालतू पशुओं के जीवित रहने का सारा लाभ उनके मालिकों को मिलता है। वे तो बेचारे किसी प्रकार जीवित भर रह लेते हैं। बैल, घोड़े, गधे अपने मालिकों के लिए श्रम करते हैं। गाय, भैंस, बकरी को उन्हीं के लिए दूध देना पड़ता है । वे जो बच्चे जनती हैं, उन पर अधिकार उनका नहीं, पालने वाले मालिकों का होता है। भेड़ों की ऊन का लाभ गड़रिये को मिलता है । कुत्ते मालिक की रखवाली करते हैं। इस प्रकार उनकी जीवन सम्पदा से पूरी तरह पालने वाले ही लाभान्वित होते हैं। चूँकि यह लाभ पाने के लिए उन्हें जीवित रखना आवश्यक है, इसलिए चारे-भूसे का, निवास-आच्छादन का प्रबन्ध तो करना ही पड़ेगा। यह उदारतावश या न्याय बुद्धि से नहीं, वरन् इस विवशता के कारण करना पड़ता है कि इतना भी न करने पर वे जीवित न रहेंगे और लाभ देने वाले स्रोत बन्द हो जाएँगे। इतना प्रबन्ध तो मुर्गी, मछली पालने वाले भी करते हैं।

नारी के जीवित रहने का लाभ उसे कितना मिला और उसके मालिकों ने कितना लाभ उठाया? इस पर निष्पक्ष और न्याय-दृष्टि से विचार करने पर असंदिग्ध रूप से यह स्वीकार करना पड़ता है कि उसकी स्थिति कुल मिलाकर पालतू-पशुओं से अधिक अच्छी नहीं है। यह तुलना यदि अखरती हो तो सामन्तवादी युग से चल रही दास-दासी प्रथा के समतुल्य इस स्थिति को कहा जा सकता है। दास-दासी हाट-बाजारों में खरीदे-बेचे जाते थे। मालिकों का उनके शरीर पर पूरा अधिकार होता था। दासों को उचित-अनुचित की समीक्षा करने का अधिकार न था, उनके लिए आज्ञापालन ही एक मात्र विकल्प था। इस दास-धर्म का पालन किए बिना उनके लिए और कोई मार्ग न था। जीवित न रहना हो तो ही वे अवज्ञा कर सकते थे, अन्यथा प्राण-मोह के रहते, मालिकों की आज्ञा पालने में ही उनकी गति थी। उनके श्रम का लाभ उन्हें भी मिलना चाहिए अथवा उनकी इच्छा एवं आवश्यकता को भी महत्त्व मिलना चाहिए। ऐसा सोच सकना उन दिनों न दास-दासियों के लिए सम्भव था और न उनके मालिक ही वैसी आवश्यकता अनुभव करते थे।

कहने-सुनने में बात बड़ी अटपटी और कड़ई लग सकती है कि आज भी औसतन नारी की स्थिति पालतू पशुओं अथवा दास-दासी स्तर से कुछ अधिक अच्छी नहीं है। उसे अपने पालने वालों के लिए श्रम करना पड़ता है, उनकी इच्छानुरूप ढलना पड़ता है, हर घड़ी ध्यान रखना पड़ता है कि पालने वाले कहीं नाराज न हो जाएँ इसमें कितना उचित, कितना अनुचित है, उसे सोचने की कहीं गुंजायश नहीं दीखती।

नर को रोटी-कपड़े के मूल्य पर रसोईदारिन, चौकीदारिन, धोबिन आदि की आवश्यकता पूरी करने वाली चौबीस घण्टे की नौकरानी मिलती है। क्रीड़ा-विनोद का लाभ भी बिना मूल्य मिलता है। अहंकार प्रदर्शित करने के लिए अन्यत्र कहीं अवसर न मिले तो न सही, पर नारी तो उसके लिए ऐसी उपयुक्त माध्यम है ही, जिससे प्रतिरोध की भी सम्भावना नहीं है। पितृ-गृह से भी वह विवाह के दिन से लेकर मरने तक कुछ न कुछ लाती-लाती जमा करती ही रहती है। यह सारे लाभ नर के पक्ष में जाते हैं नारी तो गृह-प्रवेश से लेकर दम तोड़ने तक अपना शरीर व स्वास्थ्य जलाती ही रहती है। मन घुटते-घुटते टूटता और बैठता ही चला जाता है । शिक्षा जो बचपन में

मिली थी, वह विस्मृति के गर्त में चली जाती है। पिंजड़े की कैद में अनुभव बढ़ाने के अवसर ही कहाँ है ? काम का दबाव ही अहिर्निश छाया रहता है, फिर मनोरंजन की इच्छा उठे भी तो उसका क्या महत्त्व ? अवसर न मिलने से वह उमंग भी असमय में ही मर जाती है। नीरसता स्वभाव का अंग बन जाती है। न उत्साह, न उमंग, ढर्रे का मशीनी जीवन किसी प्रकार लाश की तरह ढोना और उतने में ही सन्तोष करना, यही है उसका भाग्य-विधान, जिस पर इच्छा अथवा अनिच्छा से उसे गुजर करनी पड़ती है।

उपर्युक्त कथन में अत्युक्ति नहीं है। औसत भारतीय नारी को इसी में गुजारा करना पड़ता है। इसे उसकी विशेषता कहकर सराहा भी जा सकता है और विवशता कहकर आँसू भी बहाया जा सकता है। यह स्थिति स्वाभाविक नहीं है। प्रकृति ने नर और नारी को हर दृष्टि से समान बनाया है। गाड़ी के दो पहियों की तरह दोनों की उपयोगिता भी एक जैसी है। क्षमता में न कोई किसी से आगे है और न पीछे। शरीर में दो हाथ, दो पैर, दो आँखें, दो कान, दो नथुने, दो होठ होते हैं। दोनों में से न कोई वरिष्ठ होता है और न कनिष्ठ। परस्पर सहयोग से वे एक-दूसरे के पूरक रहते हैं और मिल-जुलकर अपनी उपयोगिता सिद्ध करते हैं। नर-नारी की स्वाभाविक स्थिति यही है। इसी में औचित्य, न्याय और ईश्वरीय व्यवस्था का परिपालन है। नारी को नर की सम्पत्ति बनकर रहना पड़े, उसी के लाभ के लिए जीवित रहना पड़े, तो इसमें अनीति ही अनीति है। भले ही उसने प्रथा-परम्परा का रूप धारण कर लिया है।

नर और नारी के बीच सम्बन्धों का यह वह पक्ष है, जिसमें नर को लाभान्वित होते देखा जा सकता है। अब तस्वीर का दूसरा पहलू देखा जाय। इस पर गम्भीरतापूर्वक दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि अनीति के इस कुचक्र में नारी को जितनी क्षति उठानी पड़ी है, नर की हानि उससे कम नहीं, वरन् अधिक ही हुई है। तात्कालिक लाभ के लोभ से उसने जो पाया है, उसकी तुलना में खोया अधिक है। हर रोज सोने का एक अण्डा देने वाली मुर्गी का पेट चीरकर सारे अण्डे एक ही दिन में निकाल लेने वाले लालची मालिक ने जो घाटा उठाया था, उससे भी अधिक हानि नारी को शोषण का शिकार बनाने के प्रलोभन में नर को उठानी पड़ी है। इस दुरभिसन्धि में उसने पाया कम और खोया अधिक है।

असक्त पक्ष समर्थ पक्ष के लिए भार बनकर रहता है। एक पैर लंगड़ा हो तो उसके बदले का दबाव दूसरे पर पड़ता है। एक हाथ को लकवा मार जाय तो दूसरे हाथ को ही उसके बदले का भी काम करना पड़ेगा। एक पहिया टूट जाय तो दूसरे पहिये पर ही उसका वजन आवेगा । इस दबाव से स्वस्थ अंग भी जल्दी जराजीर्ण होता है और अपनी सामर्थ्य गँवा बैठता है। नारी यदि शिक्षित, सुयोग्य, समर्थ हो तो अपने बुद्धि, बल, कौशल, अनुभव से पूरे परिवार को लाभान्वित कर सकती कठिन समय में कुछ उपार्जन भी कर सकती है और की आर्थिक स्थिति सुधारने में अपनी उपयोगिता सिद्ध क सकती है। अविकसित नारी तो अपंग की तरह है। उसक किसी महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने में, किसी जटिल समस्या के सुलझाने में कोई योगदान नहीं हो सकता। उल्टे कठिन समय में रोने-धोने, घबराने, हैरान होने और परेशान करने की बात ही उससे बन पड़ती है । वयस्क होते हुए भी बालकों जैसी मनःस्थिति में रहने वाली नारी न स्वयं जीवन का लाभ ले पाती है और न उससे परिवार का कोई विशेष हित-साधन हो पाता है, जबकि उसके सुविकसित होने पर उसके परिवार की प्रगति में चार चाँद लग सकते थे।

नर को प्रायः १२-१४ घण्टे घर में रहना पड़ता है। विश्राम, नित्यकर्म आदि सब कार्य वहीं सम्पन्न होते हैं। यदि घर का वातावरण स्नेहपूर्ण, शालीन, सुव्यवस्थित, उत्साहवर्द्धक, आनन्दयुक्त रहे तो फिर उस छोटे दायरे में रहकर स्वर्ग जैसे सुख-सन्तोष की अनुभूति हो सकती है। यदि वहाँ द्वेष, मनोमालिन्य, कटुता, अव्यवस्था, फूहड़पन की कुरूपता छाई होगी तो उसकी प्रतिक्रिया उद्विग्नता ही उत्पन्न करेगी। सुविधा-साधन रहते हुए उस घर के निवासी खिन्न, उद्विग्न और उदास दिखाई पड़ेंगे। इस अवसाद का परिणाम हर किसी की प्रगति पर पड़ता है। कहना न होगा कि परिवार का वातावरण बनाने में नारी की ही सबसे बड़ी भूमिका होती है। इसी से उसे गृह-लक्ष्मी कहा जाता है। एक घर में गृह-लक्ष्मी स्तर की नारी हो और दूसरे में अनगढ़ स्त्री, तो उन दोनों के वातावरण में रहने वाले अन्तर से यह सहज ही जाना जा सकता है कि व्यक्तित्वों का ऊँचा और घटिया होना कितना महत्त्व रखता है।

बच्चे प्रधानतया माता के सस्कारों से ही सम्पन्न होते हैं। नौ माँस वे माता के गर्भ में रहते हैं और उसी के रक्त-माँस से उनका शरीर बनता-बढ़ता है। साथ ही वे माता के स्वभाव-संस्कार को भी साथ लेकर जन्मते हैं। जन्म के बाद माता के दूध पर पलते हैं, उसी के साथ सोते-खेलते हैं। इसका प्रभाव निश्चित रूप से संतान पर पड़ता है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि बच्चा अपने बाल्यकाल का अधिकांश भाग पाँच वर्ष की आयु तक पूरा कर लेता है। यह अवधि उसे अधिकतर माता के सम्पर्क मे ही गुजारनी पड़ती है। उसे इस पाठशाला में जिस स्तर के अनुदान मिलते हैं, बच्चे का भाग्य और भविष्य उसी ढाँचे मे ढलता चला जाता है। बच्चों को हम प्यार करते हों, उनका भविष्य उज्ज्वल देखना चाहते हों, उन्हें समुन्नत देखने की लालसा रखते हों तो उनकी आधारशिला जननी का समुन्नत स्तर ही हो सकता है। नारी को पिछड़ेपन में ग्रसित रखना, बच्चों का स्तर बिगाड़ने के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? यह अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना है। जिनके हाथों उत्तराधिकार सौंपने की बात सोची जाती है, यदि उनका व्यक्तित्व ऊँचा उठाने के लिए उनकी माता

पर ध्यान न दिया गया तो फिर निश्चित क्रम से वे घटिया ही बने रहेंगे। शरीर से पुष्ट और बुद्धि से सुशिक्षित बना देने पर भी उनका स्तर हेय और गया-गुजरा ही बना रहेगा। वे कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकने के योग्य न बन सकेंगे।

औसत व्यक्ति गुजारे भर के लिए ही कमा पाता है। उसे रोज कुआँ खोदना और रोज पानी पीना पड़ता है। मरने के बाद अपने परिवार के स्थिर गुजारे जैसी सम्पत्ति कोई विरला ही जमा कर पाता है। दुर्भाग्यवश यदि कमाने वाले की मृत्यु हो जाय और अपने पीछे कई बच्चे छोड़ मरे तो पीछे उस परिवार की कितनी दुर्गति होती है, इसे देखने से छाती फटती है। सगे-सम्बन्धी कहलाने वाले बचे-खुचे साधनों को हड़पने का कुचक्र रचते हैं। उन बिना कमाने वालों का खर्च अपने ऊपर आया देखकर उनसे पीछा छुड़ाने का प्रयत्न करते हैं। पग-पग पर तिरस्कृत तो होना ही पड़ता है। इस स्थिति से तभी बचा जा सकता था, जब जननी को सर्वप्रथम स्वावलम्बी बन सकने के योग्य बनाया गया होता। जो ऐसी आशंका करते हैं कि स्वावलम्बन में समर्थ नारी पंख कटे कबूतर की तरह उनके पूर्ण आश्रित रहने से आनाकानी करेगी वे उस पर तरह-तरह के बन्धन लगाते हैं और पूर्णतया पराश्रित बना देते हैं। ऐसे लोगों की संकीर्णता का दंड विपत्ति के समय सभी आश्रितों को भुगतना पड़ता है। मरने की ही बात नहीं, कोई भयंकर रोग हो जाने के कारण उत्पन्न असमर्थता अथवा आकस्मिक विपत्ति भी ऐसी स्थिति पैदा कर सकती है जिसमें अर्थ उपार्जन में नारी की समर्थता काम आ सके। अपंग बनाकर रखने में शान समझने वाले लोग यदि ऐसी विपत्तियों की कल्पना कर सकें तो वे पायेंगे कि प्रतिबन्धित एवं पिछड़ी स्थिति में डाले रखने की नीति कितनी अनुपयुक्त है।

देश, धर्म, समाज, संस्कृति एवं विश्व मानवता के प्रति हमारे कुछ कर्तव्य हैं। उनके पूरा करने में प्रथम चरण यह होना चाहिए कि आधी जनता को पिछड़ी स्थिति में डाले रहने वाले प्रतिबन्धों का समर्थन न करें। पददलित वर्ग को समर्थ बनने में सहायता करें। ऐसा करने से जो हार्दिक शक्ति जगेगी उसका लाभ समस्त समाज को मिलेगा। विकसित नारी देश की अर्थ-व्यवस्था में, समाज संतुलन में, शिक्षा-शालीनता में, प्रगति-समृद्धि में, कला-संस्कृति में उत्साहवर्द्धक योगदान दे सकती हैं। उसे पिछड़ी रख कर हम मानवी सुख-शान्ति और प्रगति का मार्ग अवरुद्ध ही करते हैं। विश्व का एक घटक दुर्बल एवं विकृत रहेगा तो उसका प्रभाव प्रकारान्तर से समस्त संसार पर पड़ेगा। फिर आधी जनसंख्या को यदि अपंग, असमर्थ मौलिक मानवी अधिकारों से वंचित रखा जाएगा तो उसकी प्रतिक्रिया व्यापक रूप से अहितकर ही होगी। नारी के सम्बन्ध में संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाकर हम न केवल अपना— अपने परिवार का वरन् समस्त संसार का अहित ही करते हैं।

हमें हजार बार विचार करना होगा कि नारी के प्रति बरती जाने वाली अपनी नीति कहाँ तक उचित और कहाँ तक अनुचित है ? उससे हम क्या पाते और क्या खोते हैं? यदि ऐसी विवेचना की जा सके तो प्रतीत होगा कि जो पाया है, इससे खोया अधिक है। ऐसे अहितकर, अनीतियुक्त दृष्टिकोण एवं व्यवहार का परित्याग करने में ही कल्याण है।

इस स्थिति को बदले बिना राह नहीं

यह सन्तोष की बात है कि पश्चिमी देशों की अपेक्षा भारत में नारी को अधिक श्रद्धा और अधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है । भारतवर्ष में लम्बे समय तक रह कर यहाँ के समाज में नारियों की स्थिति का अध्ययन करने वाली प्रसिद्ध अँग्रेजी लेखिका फ्लोरा एनी स्टीन ने लिखा है— "पश्चिमी देशों में स्त्री के भोग-विलास के लिए, मनोविनोद के लिए उनके पति प्रायः बहुत खर्च करते और कष्ट उठाते हैं। यह भी समझा जाता है कि इससे स्त्रियाँ प्रसन्न होती हैं। इसी कारण हम यह मिथ्याभिमान करते हैं कि हमारे देश में स्त्रियों का बहुत सम्मान है, पर वस्तुस्थिति ऐसी है नहीं, क्योंकि यह सम्मान चापलूसी के स्तर का है। पाश्चात्य नागरिक जहाँ स्त्रियों को प्रसन्न रखने के लिए इतना सब कुछ करते हैं वहीं उनसे ऊब जाने पर किसी पुराने और जीर्ण कपड़े को फेंक देने की तरह तुरन्त उपेक्षित भी कर देते हैं, परन्तु भारत में नारियों को गृह-लक्ष्मी माना जाता है और उसे जीवनसंगिनी के रूप में जन्म-जन्मान्तरों की साथी समझा जाता है। यह स्थान बाहरी सम्मान की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान है।"

मनुस्मृति में भी कहा गया है— "पूजार्हा गृहदीप्तयः। स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ।। (९। २६) गृहस्वामिनी स्त्री पूजा के योग्य है। इनमें और लक्ष्मी में कुछ भी भेद नहीं है। यह तो हुआ समाज में नारी के स्थान का एक उज्ज्वल पक्ष। इस पक्ष में यह भी जोड़ा जा सकता है – भारतीय संविधान में लिंग भेद को समाप्त कर नारी को समानता की अधिकारिणी घोषित किया गया है, जबकि कितने ही पश्चिमी देशों में उसे मत देने का अधिकार भी नहीं है। पुरुषों को समान अधिकार और सुविधाओं का उपयोग करने की बात तो दूर।

इस उज्ज्वल पक्ष के बावजूद भारतीय नारियों की दुर्दशा और हीन अवस्था के जाने-अनजाने ऐसे पहलू हैं जिन्हें देखकर विष के घूँट पीकर रह जाना पड़ता है। पश्चिमी देशों में प्रतिबन्धित होने के बावजूद नारियाँ जिस प्रकार सामाजिक और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्यों में भाग लेती हैं तथा पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करती हैं, उसके दर्शन अपने देश में कहीं नहीं होते।

उलटे यहाँ तो नारी पुरुष के कन्धों पर भार बनी हुई समाज के प्रगति प्रयासों में अवरोध ही उपस्थित करती है।

बेशक देश में शिक्षा का प्रसार हुआ है और उसका लाभ महिलाओं को भी मिला है। शिक्षा का प्रचार पहले की अपेक्षा महिलाओं में कुछ अधिक बढ़ा भी है, परन्तु वह कोई विशेष आशा नहीं बँधाता। महानगरों, शहरों तथा कस्बों में उच्च तथा मध्य वर्ग के परिवारों की स्त्रियाँ शिक्षित कहलाने योग्य बन सकी हैं; परन्तु उनका प्रतिशत इतना थोड़ा है कि उस आधार पर राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के क्षेत्र में उनकी भूमिका अनुल्लेखनीय ही कही जा सकती है। भारत की अधिकांश आबादी गाँवों में रहती है। तदनुसार अधिकांश स्त्रियाँ भी ग्रामीण ही हैं। उनमें तो शिक्षा का प्रचार नाममात्र को भी नहीं है और वही स्थिति शहर, कस्बों को, निम्न मध्य वर्ग की महिलाओं की है। कुल मिलाकर आँकड़े यदि फैलाये जाएँ तो शिक्षित और साक्षर महिलाओं की संख्या कुल महिलाओं की संख्या की ३ प्रतिशत बैठती है।

शिक्षा ही नहीं, अन्य कारणों से भी भारतीय समाज में नारियाँ इतना निष्क्रिय और लुंज-पुंज जीवन जीती हैं कि उस स्थिति के रहते भारतीय समाज की प्रगति की सम्भावना स्वप्न ही लगती है। ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को ही लें। लम्बे घूँघट में ढका उनका जीवन मृत्यु के बाद ही घर से निकल पाता है । यद्यपि बाल-विवाह के विरुद्ध कानून बने हैं, परन्तु उसका कहाँ तक कितना पालन होता है इसका कोई प्रमाण नहीं है। स्थिति यह है कि कानून से वर्जित होते हुए भी बेखटके बाल-विवाह होते हैं और लड़कियाँ पूर्ण स्त्री बनने से पहले ही वृद्धा हो जाती हैं। इस सन्दर्भ में प्रख्यात समाजवादी विचारक डाक्टर राममनोहर लोहिया का यह कथन उल्लेखनीय है– ''हिन्दुस्तान में स्त्रियाँ जवान होने से पहले ही बूढ़ी हो जाती हैं। पूर्ण यौवन की अवस्था पैंतीस वर्ष बतायी गई है। इस वर्ष में पहुँचने पर शरीर की बाढ़ पूरी होती है। कहना चाहिए युवावस्था आरम्भ होती है, परन्तु हमारे देश में तो इस उमर में पहुचने तक स्त्रियाँ सास बनने लगती हैं।''

ग्राम्य नारी की हीन दुर्दशा का विवेचन किया जाय तो उस पर एक बड़ा ग्रन्थ बन सकता है। उसकी विस्तृत चर्चा यहाँ अप्रासांगिक होगी। ग्राम्याओं की भाँति ही शहर और कस्बों में निम्न मध्य वर्ग की नारी भी कम उपेक्षित नहीं होती उनमें से किसी-किसी को प्रारम्भिक शिक्षा मिल जाती है, परन्तु अधिकांश महिलाएँ अशिक्षित ही होती हैं। अशिक्षा के साथ-साथ अनकानेक पूर्वाग्रहों और कुसंस्कारों से ग्रस्त भी, जिन्हें नारीगत दायित्वों का कोई ज्ञान ही नहीं रहता। आश्चर्य का विषय तो यह है कि ऐसी स्थिति में उनसे गृहिणी के उत्तरदायित्वों को भी भली प्रकार निभाने की आशा नहीं की जानी चाहिए फिर भी वे गृह- व्यवस्था सम्भालती है। कहना चाहिए, उन्हें सम्हालना पड़ता है। अयोग्य और फूहड़ ढंग से किए गए कार्यों के जो परिणाम होते हैं वही परिणाम समुचित योग्यता के अभाव में सम्हाले जाने वाले दायित्वों के होते हैं। इसीलिए कहा गया है कि भारतीय समाज में गृहस्थी की गाड़ी चलती नहीं घिसटती है।

कुछ महिलाएँ उच्च शिक्षा भी प्राप्त करती हैं, परन्तु उनकी स्थिति भी सामाजिक उत्कर्ष में कोई योगदान देने योग्य नहीं रहती। कारण कि इस प्रकार या तो वे स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होने का प्रयास करती हैं अथवा फैशन के बतौर। फैशन के लिए कारण देखने पढ़ने में कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिए। वस्तुतः इस वर्ग में वही महिलाएँ आती हैं जिनको सुविधाओं की माँग बढ़ी-चढ़ी होती है और वे प्रतिष्ठा प्राप्त करने के थोथे प्रयासों में सफलता पाने के लिए अर्थ-व्यवस्था जुटाने हेतु ही उस क्षेत्र में प्रवेश करती हैं।

भारतीय समाज में नारियों के स्थान व इनकी भूमिका का निश्चित चित्रण नहीं किया जा सकता है। चित्रण का प्रयास किया भी जाय तो वह बहुत ही दयनीय और दुर्दशा ग्रस्त स्थिति के रूप में ही उभरकर सामने आता है। ग्राम-नारी का वह स्वरूप जिसमें वह घर की चहारदीवारी में ही कैद रहती हो। नारी समस्या का अध्ययन करने वाली एक समाजशास्त्री विदुषी ने लिखा है कि ग्राम्य नारी का कोई अस्तित्व है ही नहीं। उक्त विदुषी ने अपनी पुस्तक में लिखा है– ''बूढ़ी दादी नानी के कठोर अनुशासन किंवा दमनपूर्ण नियन्त्रण में रहने के बाद ग्राम्य किशोरी को गृहस्थ जीवन में भी विवश और आश्रित जीवन ही जीना पड़ता है। यहाँ तक कि पुरुषों की फौजदारी का मूल्य भी प्रायः उन्हें ही चुकाना पड़ता है। जैसे दो परिवारों में झगड़ा होने पर दूसरे पक्ष की स्त्री, जवान लड़की को अपमानित, लज्जित और शील भंग होने जैसे उत्पीड़न भी सहने होते हैं। परिवार में लट्ठ बजते हैं, मुकदमेबाजी चलती है, दुश्मनी निभाई जाती है और ग्राम्याएँ निरीह देखती रहती हैं।''

निरीह, असहाय, पराश्रित और विवश नारियाँ समाज निर्माण की भूमिका में क्या योगदान दे सकती हैं? इसका कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। कहा जा चुका है कि भारतीय संस्कृति में नारी को पूज्या, सम्माननीया और वन्दनीया माना गया है। यह सच है, परन्तु यह भी उतना ही सच है कि इस मान्यता की कसौटी पर आज की भारतीय नारी कहीं भी सही साबित नहीं होती। दोष चाहे जिस किसी का भी हो, परन्तु इस स्थिति को बदले बिना त्राण नहीं है।

नारियों को भी जब तक राष्ट्र-निर्माण, समाज-विकास में सक्रिय योगदान देने योग्य नहीं बनाया जाता, तब तक सामाजिक विकास का लक्ष्य कल्पना मात्र ही रहेगा। दूसरे देशों की स्थिति पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो प्रतीत होगा कि वहाँ की महिलाएँ रचनात्मक निर्माण कार्यक्रमों में कितना खुलकर योगदान दे रही हैं। पड़ोसी देश रूस परिसंघ को ही लें। वहाँ महिलाओं की कुल संख्या करीब १३ करोड़ ४६ लाख है। कुल आबादी में महिलाओं की

संख्या ५३ प्रतिशत है और राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में जितनी महिलाएँ लगी हुई हैं उनका प्रतिशत मजदूरों और कर्मचारियों की संख्या का ५१ है।

पिछले तीस वर्षों में श्रमजीवी महिलाओं की संख्या बढ़कर तिगुनी अर्थात् ५ करोड़ १२ लाख हो गई है। इस समय काम करने लायक ९६.५ प्रतिशत महिलाएँ या तो काम करती हैं अथवा अध्ययन में संलग्न हैं। महिलाओं में शिक्षा के प्रति भी अगाध अनुराग है। इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि पुरुषों और स्त्रियों में उच्च अथवा माध्यमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त करने वाले पुरुषों और महिलाओं की संख्या प्राय समान है।राष्ट्रीय निर्माण और अर्थतंत्र की विविध शाखाओं में काम करने वाली प्रति एक हजार महिलाओं में से उच्च अथवा माध्यमिक शिक्षा प्राप्त नारियों की संख्या यहाँ ७३९ है, वहीं पुरुषों की संख्या ७३७ है। कालेज के विद्यार्थियों में छात्रों की संख्या ५३ प्रतिशत और व्यावसायिक स्कूलों में उनकी संख्या ५१ प्रतिशत है। तकनीकी कालेजों और तकनीकी विभागों में भी उनकी संख्या ३८ प्रतिशत है।

इस तरह के आँकड़े एकत्रित किए जाएँ और उनकी तुलना भारतीय नारी की स्थिति से की जाय तो जमीन-आसमान का अन्तर आभासित होगा। इस स्थिति में राष्ट्रीय और सामाजिक पुनर्निर्माण में महिलाओं से योगदान की आशा किसी भी तरह नहीं की जा सकती। कहाँ तो राष्ट्रीय और सामाजिक दायित्वों के निर्वाह में बढ़-चढ़कर भाग लेने वाली रूस परिसंघ अथवा अन्य देशों की नारी और कहाँ साग-सब्जी बाजार से मँगाने के लिए भी पुरुष सदस्यों पर निर्भर रहने वाली भारतीय स्त्री।

भारतीय समाज में नारियों की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए किसी पश्चिमी पत्रकार ने कहा था- "भारत की स्त्रियाँ घर-परिवार में उसी तरह स्थिर रहती है, जैसे किसी स्थान पर साज-सजावट का सामान सजा रहता है और सुन्दर वस्तुओं के शोपीस रखे रहते हैं।" बात कुछ चुभती हुई जरूर है, पर सचाई से परे नहीं है। वस्तुत: भारतीय गृहिणी को सम्मान्य, पूज्य और श्रद्धेय मानते हुए भी उसे किसी सुन्दर, किन्तु निश्चल प्रतिमा की तरह जड़ मान लिया गया है। प्राण होते हुए भी उसकी चेतना छीन ली गई है और मानव होते हुए भी उसे पशु की तरह रहने के लिए विवश कर दिया गया है।

अनाज-पानी, साग-सब्जी और ईंधन जैसी छोटी-मोटी वस्तुओं को बाजार से खरीद कर लाने की भी जिसे स्वतन्त्रता नहीं है, वह भारतीय नारी किसी महत्त्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य की प्राप्ति में क्या योगदान दे सकती है? भारतीय नारी को इस दिशा में ला पटकने के लिए जिम्मेदार हैं- सामाजिक रूढ़ियाँ, उन पर अविश्वास के कारण लगाये गये प्रतिबन्ध और उनका सारा श्रम, सारी प्रतिभा तथा सारी सामर्थ्य का एकाधिकार पूर्ण शोषण करने की आम प्रवृत्ति।

आवश्यकता इस बात की है कि इन तमाम अनुचित वर्जनाओं और अवांछनीय प्रतिबन्धों से उसे मुक्त किया जाय तथा उसके विकास हेतु समुचित प्रयास किए जाएँ। इस आवश्यकता की उपेक्षा के कारण ही विवाह के सम्बन्ध में कही गई किसी महापुरुष की यह उक्ति चरितार्थ होती है कि स्त्री अंगुली पकड़ कर विवाह करती है और विवाह के बाद पुरुष के कन्धों पर लदकर अपना समूचा बोझ उसी पर डाल देती है। उक्ति से भले ही यह लगे कि नारी अधिक से अधिक ही पुरुष पर निर्भर है,परन्तु दोष उसी का नहीं है। दोषी है हमारी वर्तमान समाज व्यवस्था; जो लम्बे समय से चली आ रही विकृतियों के कारण इन दिनों बुरी तरह सड़-गल चुकी है तथा उसमें परिवर्तन करना आवश्यक ही नहीं, समय की माँग भी है। नारियों को अपनी योग्यता और प्रतिभा का विकास करने का समुचित अवसर मिल सके तो कहना नहीं होगा कि भारतीय गृहिणी जो पुरुष के कन्धों पर बोझ बनी हुई है उसी की सहचरी, सहधर्मिणी बनकर, परिवार तथा समाज के विकास में अवरोध पैदा करने की जगह सहचर्य ही प्रस्तुत करेगी।

यह अदूरदर्शिता मनुष्य जाति को ले डूबेगी

जिस वस्तु, व्यक्ति या समुदाय की उपेक्षा, अवज्ञा अवहेलना होती है, वह सहज ही घटता, मिटता चला जाता है। भारत का पशु धन और वन क्षेत्र इसीलिए सिकुड़ता जा रहा है कि उनकी उपस्थिति की तुलना में समाप्त होने की बात अत्यधिक लाभदायक समझी जाती है। वन कट गये तो क्या ? उनसे खाली हुई जमीन खेती के, मकान, कारखाने बनाने के काम आयेगी। पशु समाप्त हो चले तो क्या ? उनके लिए घिरने वाला स्थान और खपने वाला चारा दूसरे काम आयेगा। यह तर्क तात्कालिक लाभ के प्रति अत्यधिक आतुरता प्रदर्शित करता है। यह भुला दिया जाता है कि बाद के परिणाम क्या होंगे ? वन न रहने पर लकड़ी की जो कमी पड़ेगी, वायु प्रदूषण अवशोषित न हो सकेगा, भूक्षरण होगा, बाढ़ आयेगी, रेगिस्तान बढ़ेगा, बादल बरसने में हलकेंगे आदि हानियों को नजरअंदाज करके लोग चोरी या सीनाजोरी से पेड़ काट डालने, नफा कमा लेने जैसा कुछ खोजते हैं। पशुओं को कसाई के हाथ सौंपकर रुपये गिनते हैं, पर यह नहीं देखते कि उनके घटने पर दूध, श्रम, गोबर आदि की जो कमी पड़ेगी उसकी क्षतिपूर्ति कैसे सम्भव होगी। अदूरदर्शिता मानवी समझ पर छाया हुआ एक कलंक है। जिसके कारण उसे हर क्षेत्र में न पूरी हो सकने वाली हानि उठानी पड़ती है। खेत में बोये जाने वाले बीज को

भूनकर चबैने की तरह स्वाद लेते हुए चबाया जा सकता है, पर इसके बाद खेत खाली पड़ा रहने पर फसल के दिनों खाली हाथ रहना पड़ेगा, इसको भुला दिया जाता है। पाठ्य-पुस्तकें बेचकर सिनेमा देखने वाले विद्यार्थी शिक्षा लाभ से वंचित रहते हैं और जीवन भर गई-गुजरी स्थिति में दिन काटते हैं।

ऐसी ही एक अदूरदर्शिता जनसमुदाय पर यह छाई हुई है कि लड़की पराया घर बसाती है। अपने घर नहीं रहती। कमाई तो लड़का खिलाता है और इसलिए दूसरे के घर जाने वाले कचरे को पालने-पोसने में क्यों खर्च किया जाय? उसकी साज-सम्हाल में ध्यान देने का क्यों कष्ट किया जाय? जब विवाह में खर्च करना ही पड़ेगा तो उसे पढ़ाने-लिखाने में क्यों खर्च किया जाय? उसकी स्वास्थ्य रक्षा पर भी उतना ध्यान नहीं दिया जाता, क्योंकि मर जाने में नफा जो प्रतीत होता है। पालन-पोषण का, शिक्षा का, शादी का सारा खर्च जो बचता है, उसके लिए ध्यान देने का झंझट भी नहीं रहता। यही है वह अदूरदर्शिता जिसके कारण नारी की उपेक्षा-अवमानना होती रहती है। कन्याएँ तो आमतौर से इस अवहेलना की शिकार होती हैं।

अपने देश में लड़का जन्मने की खुशी मनाई जाती है। प्रीतिभोज होते और ढोल-तमासे बजते हैं, किन्तु लड़की जन्मने पर लुट जाने जैसा सन्नाटा छा जाता है। उसकी जन्मदात्री तक को ताने-उलाहने सहने पड़ते हैं। उपेक्षा न केवल बालिका पर वरन् उसकी माता पर भी बरसती है। बड़े होने पर लड़की-लड़के के बीच हर बात में भेदभाव किया जाता है। भोजन, वस्त्र, शिक्षा, विनोद आदि सभी में यह अन्तर प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है। बालक भी भावनाओं के अन्तर को समझने लगते हैं। विशेषतया उपेक्षित पक्ष को अपनी स्थिति पर मन ही मन अन्तर्व्यथा सताने लगती है। उसके मन में आत्महीनता की ग्रन्थि बन जाती है, जिसके कारण सदा अपने आप को दुर्भाग्यग्रस्त, पददलित पक्ष का एक घटक अनुभव करती है। यह मान्यता आजीवन बनी रहती है और प्रतिभा निखारने की, कोई महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ करने का साहस उससे बन ही नहीं पड़ता। वह अपने लिए न परिवार के लिए और न समाज के लिए उतनी उपयोगी नहीं हो पाती, जितनी कि समता और दुलार के वातावरण में पलकर हो सकती थी।

बात बढ़ते-बढ़ते बहुत आगे तक चली गई है। सामन्तवादी युग में कन्या अपहरण का, उसी कारण लुटेरे के आक्रमण होने का अंदेशा निरन्तर बना रहता था। यदि वैसा न हुआ तो विवाह में सामर्थ्य से बाहर खर्च करना पड़ता था। इन सब झझटों से बचने के लिए यह उपाय अपनाया जाने लगा कि कन्या को जन्म लेते ही मार दिया जाय। यह कार्य सरल था। प्रसव कराने वाली दाइयाँ इस कला में प्रवीण होती हैं। परिवार के दबाव पर उन्हें गला घोट देने जैसा कृत्य करने में हिचक नहीं होती थी। इस निमित्त कुछ अतिरिक्त उपहार जो मिल जाता था । इस प्रयोजन के लिए अनेक क्षेत्रों में अनेक प्रकार के तरीके अपनाये जाते थे। दूध के साथ अफीम घोलकर पिलाने भी यही काम बन जाता था। जन्मते ही मरने पर किसी व पता भी नहीं चलता था और चर्चा का विषय भी नहीं बनता था।

यह प्रचलन देखा-देखी सभी बिरादरियों में चल पड़ा। आरम्भ में यह लड़ाकू उच्चवर्णों से चला था, पर पीछे सभी सोचने लगे कि कमाऊ लड़कों को ही बचाकर रखा जाय और लड़कियों का झंझट हटा दिया जाय। अँग्रेजी सरकार के जमाने में कन्या शिशुओं का वध एक आम बात हो गई थी। इस रोकने के लिए समाज सुधारकों ने प्रयत्न किया शासकों ने सहयोग दिया। "फलस्वरूप दुख्तरकुशी निरोधक कानून" बना तो भी छुपे-छुपे यह प्रसंग चलता ही रहा और जहाँ-तहाँ अब भी उसे निष्ठुर वर्गों में अपनाया जाता है।

सोचने योग्य बात यह है कि इस प्रचलन से किसने क्या पाया ? अपने घर-परिवार में वधुएँ आती हैं और घर गृह-व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व अपने कंधों पर उठाती हैं। पति के लिए वे अर्द्धांगिनी बनती हैं। गृह-लक्ष्मी की भूमिका निभाती हैं । नई पीढ़ी को जन्म देती और उन्हें समुन्नत बनाती हैं। यदि दूसरे परिवार अपनी लड़कियों को नष्ट करके या उपेक्षित रखें तो अपने घर में सुयोग्य गृह-लक्ष्मियाँ कहाँ से आयें ? जो पक्ष घटता जाएगा उसका अकाल पड़ेगा और उस उपलब्धि के लाभ से लाभान्वित हो सकना सम्भव होगा।

नर की तुलना में नारी का संख्या अनुपात तेजी से घटता जा रहा है। इस तथ्य की जानकारी कुछ दिनों की गणना पर दृष्टिपात करने भर से सहज प्रकट हो जाती है। सन १९०१ मे एक हजार लड़कों के पीछे ९७२ लड़कियाँ थीं। १९११ की जनगणना मे अनुपात और गिरा वे हजार पीछे ९६४ हो गईं। १९२१ में वे हजार पीछे ९५५ ही रह गईं। १९३१ में ९५०, १९४१ में ९४५, १९५१ में ९४६, १९६१ में ९४१, १९७१ में ९३०, १९८१ में ९३१। उत्तर भारत में यह असतुलन और भी अधिक बढ़ा-चढा है। पंजाब में ११७० लड़कों के पीछे १००० लड़कियाँ हैं। तमिलनाडु में लड़को की तुलना में ७०-८० लडकियाँ कम हैं।

आवश्यकता अधिक और उत्पादन कम होने पर महँगाई और प्राप्त करने वालों की आपा-धापी बढ़ती है। वह दिन दूर नही जब इसी प्रकार उपेक्षित पक्ष की कमी होते जाने पर लड़के वालों को घर बसाने के लिए लडकी वालों के सामने पल्ला पसारने ,और नाक रगड़ने की आवश्यकता पड़ेगी। हो सकता है कि उन्हे खाड़ी देशों की तरह लड़कियाँ प्राप्त करने के लिए उतनी ही बड़ी लम्बी रकम देनी पड़े जैसी कि इन दिनों भारत में लड़के वाले कन्या पक्ष से बड़े नाज-नखरे ,और रौंद-दौब के साथ वसूल करते है। जो उतनी भरपाई नहीं कर सकेंगे, जो रूप-रंग, कमाई की दृष्टि से हल्के पड़ते होंगे, उन्हें तो कुँवारे रहने के अतिरिक्त और कोई चारा

प्रकृति क्रम के अनुसार हर प्राणि वर्ग में नर की तुलना में मादा की उत्पत्ति अधिक होती है, क्योंकि उस प्रजनन का दबाव सहने के कारण नए की तुलना में अधिक शक्ति खर्चनी पड़ती है। इस कारण उसकी मृत्यु भी अधिक होती है। आयु भी कम रहती है। इस संकट का सामना करने के लिए यह प्रबन्ध अनिवार्य हो गया कि मादा की उत्पत्ति नर की संख्या से अधिक हो और समानता का संतुलन बना रहे?

पर यह उपक्रम अब मनुष्य जाति में क्रमशः उलटा होता चला जा रहा है। नर बढ़ रहे हैं और नारियाँ घट रही हैं। इसका कुप्रभाव परिवार व्यवस्था, दाम्पत्य जीवन, वंश परम्परा आदि सभी क्षेत्रों में प्रतिकूल पड़ेगा। यह संकट नर ने जानबूझ कर खड़ा किया है।. नारी के साथ उपेक्षा, अवज्ञा बरत कर उनको मनोदशा की इस स्थिति में पहुँचाया है कि वे निराश रहें। जीवन का महत्व न देखें। यह मनोदशा विकास पथ में अवरोध उत्पन्न करती है। दुःखी प्राणियों को त्रास से उबारने के लिए प्रकृति उनका अस्तित्व घटाना आरम्भ कर देती है। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव आँखों के सामने प्रस्तुत देखा जा सकता है। नारी की संख्या क्रमशः घटती चली जा रही है। विक्षुब्ध रहने की स्थिति बनी रहने पर वह और भी अधिक तेजी से घटने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं।

कोढ़ में खाज की तरह नारी के अस्तित्व को इन्हीं वर्षों में एक नया संकट पैदा हुआ है । गर्भ काल में भ्रूण के लिंग का निर्धारण बना देने वाले उपकरणों का चिकित्सा क्षेत्र में आविर्भाव हुआ है। इस 'एम्नियोसेण्टेसिस' द्वारा गर्भकाल में ही यह पता लगाया जा सकता है कि भ्रूण लकड़ी है या लड़का। मध्यकालीन मान्यता अभी भी सर्वसाधारण के मन पर जमी हुई है कि लड़के का जन्म सौभाग्य है और लड़की का होना दुर्भाग्य। दुर्भाग्य से छुटकारा हर कोई चाहता है। कोई विरले ही अभिभावक चाहते है कि उनके घर लड़की जन्मे, लाभ रहित बोझा सिर पर लादे। दूसरा बचाव भी अब कानूनी गर्भपात के रूप में निकल आया है। अनिच्छित भ्रूण को गर्भपात द्वारा हटाया जा सकता है। इसके लिए कितने ही चिकित्सा संस्थान काम करते हैं। उपलब्ध जानकारियों के अनुसार अभिभावकों में से बहुसंख्यक कन्या भ्रूण का गर्भपात करा देते हैं। परीक्षण और गर्भपात में जो थोड़ा-सा धन लगता है, उसकी तुलना में कन्या जन्मने और उसके भरण-पोषण, शिक्षा, शादी आदि के झंझट से छुटकारा पाने जैसी बात सोची जाती है। इस प्रकार इन दिनों इस नये आधार पर कन्या से भ्रूण काल में ही छुटकारा पा लेना अधिक सरल हो गया है।

बम्बई में एक सर्वेक्षण के अनुसार ७००० भ्रूण जो नष्ट किये गये उनमें मात्र एक लड़का था। एक अन्य आकलन के अनुसार सन १९७८ से १९८५ तक अपने देश में ७८००० कन्या भ्रूण नष्ट किए गए। यह एक नया अभिशाप है परिवार नियोजन एक अलग बात है और चुन-चुन कर लड़कियों का ही सफाया किये जाने की बात सर्वथा दूसरी।

तात्कालिक लाभ सोचने और भविष्य की परिस्थितियों को आँख से अलग कर देने की अदूरदर्शिता का ही यह परिणाम है जो नर मादा के मध्यवर्ती संतुलन को बिगाड़ता चल रहा है। यदि दृष्टिकोण बदला न गया तो प्रत्यक्ष कन्या वध के स्थान पर दूसरे बुरे तरीके पनपते रहेंगे। उपेक्षित कन्याएँ समुचित आहार और चिकित्सा की उपयुक्त सुविधा प्राप्त न कर सकेंगी। फलतः उन्हें कुपोषण का शिकार होकर बीमारियों से ग्रसित होकर अकाल में ही मृत्यु का ग्रास बनना पड़ेगा। जल्दी बला टालने की धुन मे होने वाले बाल-विवाह भी नारी जीवन के लिए कम घातक नहीं हैं । वे किशोरावस्था में ही खोखली हो जाती हैं। बच्चे जनने के कारण बेमौत मरती है। जहाँ पिता अपनी बला छुड़ाता है, वहाँ ससुराल वाले भी मनौती मनाने और उस हेतु प्रोत्साहन देते देखे गये हैं। यह सभी प्रचलन दृष्टिकोण ऐसे हैं जो नारी वर्ग पर कुठाराघात करते हैं। कहना न होगा कि नारी का संख्यावत घटना उसका अशक्त रुग्ण स्थिति में रहना नर के लिए भी कम त्रासदायक नहीं है। अच्छा हो, समय रहते स्थिति पर विचार किया जाये और अनौचित्य को अविलम्ब हटाया जाय।

नारी को उठाये बिना समाज भी नहीं उठेगा

भारत जिन दिनों पराधीन था, उन दिनों की दुर्दशा का कारण लिखते हुए भावुक मैथिलीशरण गुप्त कह उठे थे–

भागें न क्यों, हमसे भला फिर, दूर सारी सिद्धियाँ।
पाती स्त्रियाँ आदर जहाँ, रहती वहीं सब सिद्धियाँ।।

इन पंक्तियों को कवि मन की कल्पना की उड़ान नहीं कहा जा सकता। परिवार और राष्ट्र के समग्र विकास में नारी का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। समाज का आधा भाग जब समाज के विकास में कोई योगदान नहीं दे पाता, शेष आधा भाग भी अपनी आधी शक्ति को उस निष्क्रिय भाग के भारवहन में लगा देता है तो समाज के लिए क्या बच पाता है। जब पूरी शक्ति स्वयं और परिवार की उन्नति में लगती है तो उसके और ही परिणाम होते हैं तथा उसका तीन चौथाई भाग निष्क्रिय हो जाता है तो परिणाम में अभाव आ जाना स्पष्ट ही है।

नारियों की शक्ति को कुण्ठित करने के कारण हैं वे प्रतिबन्ध, जो उस पर परिवार और समाज में लगे रहते हैं। उन प्रतिबन्धों के कारण नारी का कार्यक्षेत्र और योग्यता के उपयोग की सम्भावनाएँ सीमित हो जाती हैं। प्राचीनकाल में जब हमारा समाज सभी क्षेत्रों में उन्नति की चरम सीमा पर था, जब स्त्रियों की प्रतिभा अभिव्यक्ति के क्षेत्र भी खुले पड़े थे। वे हर क्षेत्र में निर्बाध प्रवेश कर अपनी योग्यता

का प्रदर्शन करती थीं। उदाहरण के लिए, आजकल स्त्रियों का खेलना-कूदना एक शर्म की बात समझा जाता है। लड़की बाल्यावस्था को पार कर किशोरावस्था में जैसे ही प्रवेश करती है उसके लिए यह न करो, वह न करो की विधि निषेधपरक आज्ञाएँ जारी हो जाती हैं।

पुराने जमाने में ऐसा नहीं था। प्राचीनकाल में धनाढ्य व सम्पन्न परिवारों की युवतियाँ भी खेल-कूद में बड़ी रुचि रखती थीं। महाकवि कालिदास रचित कुमारसम्भव में पार्वती द्वारा गेंद खेलने का उल्लेख मिलता है। मेघदूत में उल्लेख मिलता है, अल्कापुरी की कन्याएँ सुवर्ण सिकता में गुप्त मणि से खेलती हैं । ये नृत्यकला सीखती थीं और अस्त्र-शस्त्र चलाना भी जानती थीं। महाभारत में भी शान्ता और कुन्ती द्वारा खेलने का विवरण आता है। रामायण में युवतियाँ उद्यानों में जाकर खेलती थीं।

प्राचीनकाल में ही नहीं, मध्यकाल में भी जबकि स्त्रियों पर प्रतिबन्ध लगना आरम्भ हुआ, राज-घरानों और साधारण क्षत्रिय परिवारों की कन्याओं द्वारा सैनिक अभ्यास का उल्लेख आता है। 'पोजिशन ऑफ वुमेन इन इण्डिया' के लेखक ने लिखा है कि चालुक्य वंश में स्त्रियों को प्रशासकीय क्षेत्रों में बराबर स्थान दिया जाता था। राजा यदि पुरुष होता था तो भी राजकार्यों में स्त्रियाँ समान रूप से योगदान देती थीं। एक और पश्चिमी लेखक ने लिखा है कि-''यदि हिन्दू शासन में नैपुण्य, मितव्ययता, अनुशासन, प्रचुर उपज और जनता में कहीं खुशहाली थी तो ऐसे चार राज्यों में से तीन राज्यो में स्त्रियों का प्रशासन और राज-व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान था।''

नारी को प्रगति और विकास के यदि अवसर मिलें तो यह अपनी योग्यता और शासन क्षमता द्वारा समाज को न जाने कहाँ से कहाँ पहुँचा सकती हैं। पश्चिमी देशों की इतनी प्रगति और चहुमुखी विकास का यह कारण नहीं है कि वहाँ प्राकृतिक सम्पदा और साधन प्रचुर मात्रा में हैं बल्कि मूल कारण तो यह है कि वहाँ की नारी हमारे यहाँ के समान पुरुषों के अधीन और उनकी दासी नहीं है। वहाँ की स्त्रियाँ विकास और प्रगति के क्षेत्र में अपनी योग्यता और प्रतिभा का पूर्ण उपयोग करती हैं।

हमारे देश में जिन कारणों से नारी को आगे बढ़ने का अवसर नहीं मिलता उनमें एक है- उसका गिरा हुआ दर्जा। नारी को हमेशा दूसरे दर्जे का सदस्य समझा जाता है। इसीलिए जन्म के साथ ही उसकी उपेक्षा होने लगती है। माता-पिता पुत्री से प्रेम नहीं करते हों, यह बात नहीं है, वरन् समाज में जैसी परिस्थितियाँ हैं, उन्हें देखते हुए पुत्री की उपेक्षा जैसे आवश्यक-सी हो जाती है। हमारे समाज के रीति-रिवाज ऐसे साँचे में ढले हैं कि उसमें पुत्री का जन्म अभिशाप ही सिद्ध होता है। पैदा होते ही माँ-बाप को उसके विवाह का भूत सताने लगता है। लोग समझते हैं कि लडका यदि कुँवारा भी रह जाय तो हर्ज नहीं है पर लड़की के लिए वैसी स्थिति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। लड़की की शादी ऐसा बोझिल उत्तदायित्व बना रहता है कि माता-पिता इस कार्य को सम्पन्न कर गंगा नहाने से हलकेपन की अनुभूति करते हैं। वस्तुतः लड़की के लिए उपयुक्त वर तलाश करने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यदि कभी धोखे से अनुपयुक्त वर के साथ शादी हो जाती है तो सारी जिन्दगी का कलेश खड़ा हो जाता है। वैसे भी लड़की का विवाह इतना महँगा होता है कि उसे करने में परिवार की आर्थिक रीढ़ ही टूट जाती है।

इतने महँगे व्यवसाय को सम्पन्न करने की तैयारियों में लगने वाली मेहनत को देखकर उसे पढ़ाना-लिखाना और भी महँगा साबित होता है। जाहिर है कि पढ़ी-लिखी लड़की के लिए उससे अधिक पढ़ा-लिखा वर खोजना पड़ेगा और वर जितना अधिक शिक्षित होगा उतना ही ज्यादा उसे दामाद बनाने में खर्च करना पड़ेगा; अर्थात् उसके दान-दहेज में भी उतना ही ज्यादा धन देना पड़ेगा। इसलिए लोग लड़की को अच्छी शिक्षा देने के स्थान पर उसे घरेलू काम-काजों में दक्ष कर देना ही पर्याप्त समझते हैं। उसे योग्य और प्रतिभा सम्पन्न नारी बनाने की अपेक्षा दक्ष गृहिणी बनाने की ओर ही लोगों का अधिक झुकाव रहता है।

लड़कों को लड़की से अधिक महत्त्व इसलिए दिया जाता है कि एक तो वह भावनात्मक रूप से माँ-बाप के साथ जुड़ा रहता है। हालांकि अब यह एक भ्रम ही है, फिर भी लोग समझते हैं कि लड़का बुढ़ापे का सहारा होगा और लड़की को कितना ही पढ़ा-लिखा कर योग्य बना दिया जाय वह पराये घर चली जाएगी और अपनी सारी योग्यता एवं अर्जित गुणों का लाभ ससुराल वालों को देगी। उस पर परिश्रम करना, समय और धन व्यय करना गड्ढे में डालने जैसा समझा जाता है जिसका कोई मूल्य नहीं समझा जाता।

पुत्र और पुत्री के भेद करने का कुल इतना कारण है कि पुत्री पराया धन समझी जाती है और पुत्र बुढ़ापे की लाठी माना जाता है, इस कारण कन्या और पुत्र में भेद करने वालों को फटकारते हुए महाकवि कालिदास ने कुमार सम्भव में लिखा है – ''केवल मूर्ख ही कन्या और पुत्र में भेद में करते हैं। समझदार व्यक्ति तो दोनों का समान आदर करते हैं तथा कन्या व पुत्र का बराबर स्नेह से लालन-पालन करते हैं। दूर दृष्टि रखने वाले लोग जानते हैं कि हम अपनी बेटी को न पढ़ा कर क्षुद्र लाभ भले ही प्राप्त कर लें, पर उससे समाज को हानि ही होती है और समाज की हानि कहीं न कहीं हमें भी हानि पहुँचाती है। जैसे अनपढ़ और अशिक्षित लड़की ब्याही गयी तो वह अपनी सन्तानों का पालन और उनकी शिक्षा दीक्षा इतनी कुशलता से नहीं कर पाती जितना कि पढ़ी- लिखी होने पर कर सकती है। उसकी सन्तान यदि असाधारण प्रतिभाशाली न रही तो शिक्षित अभिभावकों के बच्चों की अपेक्षा पिछड़ी ही रहेगी। ऐसी अनेक माताओं की अयोग्यता का दुष्परिणाम पूरे

समाज में प्रगति तथा विकास की सम्भावना कहाँ रह जाएगी।''

पुत्र को पढ़ा-लिखा कर उससे बुढ़ापे में सहारे की आशा रखना भी मृगतृष्णा है। आजकल के समय में ऐसी परिस्थितियाँ हैं भी नहीं कि कोई पुत्र अपना निर्वाह चलाते हुए माता-पिता के भरण-पोषण की भावना भी रखे। इस सम्बन्ध में अधिकांश अभिभावकों के बड़े कटु अनुभव हैं और कदाचित् कोई पुत्र वृद्धावस्था में अपने माता-पिता के भरण-पोषण का दायित्व निभाता भी हो तो उससे अभिभावक अपने आत्मगौरव को बनाये नहीं रख पाते। उस पर अनिवार्य रूप से आँच भी आती है।

वृद्धावस्था में पुत्र के आश्रय की चर्चा यहाँ अभीष्ट नहीं है। कहा इतना ही जा रहा है कि पुत्री यदि माता-पिता के लिए असहायक रहती है तो पुत्र से भी उस प्रयोजन की पूर्ति नहीं होती। फिर इस आधार पर भेद-भाव बरतना अनुचित ही है। जन्म के साथ-साथ ही यदि पुत्री चिन्ता का कारण बनती है तो इसके लिए वह दोषी नहीं है। दोषी हो तो उसको अविकसित रखकर, प्रगति के अवसरों की उपेक्षा कर उसे दण्डित भी किया जाय, पर वह तो सर्वथा निर्दोष है। दोषी हैं वे सामाजिक कुरीतियाँ जिन्होंने लड़की के अस्तित्व को ही माता-पिता के लिए भारी बना दिया । उन कुरीतियों को नष्ट कर वास्तविक कारणों को दूर किया जाना चाहिए।

दोषों को दूर न कर निर्दोष बेटी की उपेक्षा उसके प्रति अन्याय ही है, जिसका किसी भी आधार पर समर्थन नहीं किया जा सकता। उन स्थितियों के प्रति अनाक्रोश रखते हुए लड़की के व्यक्तित्व को पंगु कर देने से भी कौन-सा फायदा होता है। विवाह की चिन्ता करने, उसके लिए उपयुक्त वर की देखभाल करने तथा दान-दहेज का सरंजाम जुटाने से लेकर शादी के बाद भी उसके सुख-दुःख का ख्याल रखने तक का ध्यान तो फिर भी रखना पड़ता है । वह भी उस स्थिति से ज्यादा ही है जो कि उसके शिक्षित और योग्य होने पर रखना पड़ता है। कदाचित् लड़की की पढ़ाई-लिखाई की उपेक्षा कर उसे अविकसित ही रहने देकर कोई फायदा हुआ होता या इस तरह के बोझ हलके हो जाते तो भी सन्तोष किया जा सकता था।

बचपन से शुरू हुई उपेक्षा के बाद गृहिणी के रूप में होने वाली अवमानना भी स्त्रियों की हीनता का एक कारण है । बचपन में उसे माँ-बाप से प्रेम भी मिलता है, पालन-पोषण होता है, पर वह हमेशा अपने को भाई से नीचा समझती रहती है और विवाह हो जाने के बाद उसे पति के सामने बौना बनना पड़ता है। पति प्रायः पत्नी के प्रति आवश्यक सद्भावनाओं से शून्य होकर उसे वासना पूर्ति का साधन, बच्चे पैदा करने की मशीन और घर-गृहस्थी सम्भालने वाली दासी ही समझता रहता है। इस स्थिति को अपने तक भले ही कोई स्वीकार न करे, पर पूछा जाय कि आप अपने कामकाजी जीवन के सम्बन्ध में पत्नी से कितना परामर्श लेते हैं? उसकी राय को कितना महत्त्व देते हैं ? उसके सुख-दुःख और सुविधा-असुविधा का कितना ख्याल रखते हैं? तो मिलने वाले उत्तर, बरते गये दृष्टिकोण को और अच्छी तरह स्पष्ट करेंगे।

अधिकांश लोगों की मान्यता है कि पत्नी को क्या चाहिए? भरपेट भोजन, अच्छे कपड़े और सुन्दर मकान बस इसके अतिरिक्त उसे अन्य बातों की न आशा करनी चाहिए और न अपेक्षा। तो सोचकर हैरानी होती है कि ये लोग किस आधार पर पत्नी को गृह-लक्ष्मी मानते हैं। प्रत्येक मनुष्य की भावनाएँ होती हैं। हृदय होता है मानसिक और बौद्धिक क्षुधा होती है तो उसकी पूर्ति होनी चाहिए, पर कुछ बाहरी जरूरतों को पूरा कर ही उसके प्रति अपने दायित्वों को पूरा हुआ मान लेना कहाँ की मानवता है?

मनुष्य परिस्थितियों और अवसरों से भी ज्यादा अपने संगी-साथियों के व्यवहार से निराश होता है अथवा प्रोत्साहित। स्त्रियाँ भी इस नियम की अपवाद नहीं हैं और. वे भी सामाजिक स्थिति, मर्यादाओं, कुरीतियों तथा दुःस्थितियों की उतनी शिकार नहीं हैं, जितनी कि अपने निकटवर्ती जनों की। ऐसी दशा में बचपन के समय पिता को तो विवाहित अवस्था में पति को उसके साथ सौहार्द्रपूर्ण और उत्साहवर्द्धक व्यवहार करना चाहिए। इसके अभाव में लाख सुविधाएँ मिलने पर भी नारी आगे नहीं बढ़ सकेगी और न ही उसकी क्षमता का विकास होगा। यह भी स्पष्ट है कि जब तक नारियों को प्रगति के अवसर नहीं मिलेंगे, तब तक समाज भी जहाँ का तहाँ गयी-गुजरीहालत में ही पड़ा रहेगा। नारी मनुष्य की माँ है और जब माँ ही रुग्ण, दीनहीन होगी तो उसकी सन्तान स्वस्थ और समर्थ कहाँ से हो सकेगी? अतः निकटवर्ती जनों को अपना कर्त्तव्य समझकर नारी को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए, उसकी सहायता करनी चाहिए।

बहुत खो चुके और न खोयें

प्रस्तुत अवगति के कारणों पर विचार करते हैं तो उनमें सबसे अधिक भयावह भूल यह प्रतीत होती है कि अपनी ही कुल्हाड़ी से अपना ही आधा अंग क्षत्-विक्षत् करके रख दिया। आधी शक्ति नर की और आधी नारी की है। आधी शक्ति को असमर्थ बना दिया जाय तो शेष आधी शक्ति को ही शेष सारा भार वहन करना पड़ेगा। सक्षम होने पर आधी शक्ति जो काम कर सकती थी उससे वंचित रहना पड़ेगा। समुन्नत नारी कंधे से कंधा मिलाकर काम करती, पैर से पैर मिलाकर चलती तो प्रगति की मंजिल कितनी आसान रहती?

मोटी आँखों से देखने पर लगता है कि नारी के साथ कोई अनीति नहीं हुई, वरन् उसे अधिक सुविधा दी गई। मर्द कमाता है औरत बैठी-बैठी खाती है। मर्द को कठोर श्रम करना पड़ता है, अक्ल लड़ानी पड़ती है, अनेक तरह की जिम्मेदारियाँ निभानी पड़ती हैं और मुसीबतों का

सामना करना पड़ता है, जबकि स्त्रियाँ घर में निश्चिन्त बैठी रहती हैं। उन्हें हलका-फुलका काम करना पड़ता है और किन्हीं कठिनाइयों में नहीं उलझना पड़ता। इसलिए वे अधिक सुखी हैं। पर्दे के कारण वे सुरक्षा भी अनुभव करती हैं। आदि-आदि कितनी ही बातें कही जा सकती हैं जिनके आधार पर मर्द कह सकता है कि वह नारी पर बहुत बड़ा अहसान कर रहा है।

पर तनिक गहराई तक प्रवेश करने के उपरांत सहज ही इस आत्म-प्रवंचना की कलई खुल जाती है और दर्प का मुलम्मा उतर जाता है। यह दलीलें पुरानी और बहुत घिसी-पिटी हैं। उन्हें अनेक लोग अनेक उदाहरणों के साथ अनेक प्रकार से अनेक अवसरों पर कहते रहे हैं, पर उनकी वाक्‌चातुरी पर किसी ने भी कभी विश्वास नहीं किया। अंग्रेज जब से अपने देश में आये और जिस दिन गये तब तक एक ही बात कहते रहे हमने भारत को पराधीन बना कर उसके ऊपर बहुत बड़ा अहसान किया है। विदेशी आक्रमणों से सुरक्षा की जिम्मेदारी अपने कन्धों पर उठाई है और सुविधा-साधन बढ़ाने के लिए अनेक उपाय किये हैं, इसलिए भारत को हमारा कृतज्ञ होना चाहिए। दास-प्रथा जब जोरों पर थी और मनुष्य पकड़े तथा खरीदे बेचे जाते थे, तब भी यही ढोल जोरों से पीटा जाता था कि इन लोगों को अनिश्चित स्थिति में से निकाल कर निश्चिन्तता की परिस्थिति में ला दिया गया है।

तर्क की दृष्टि से यह प्रतिपादन एक बार तो सही भी लगते हैं और सद्भाव पूर्ण भी। बुद्धि बड़ी चमत्कारी है, वह गलत और सही किसी का भी प्रभावी समर्थन कर सकती है। वकीलों की बुद्धि का चमत्कार देखकर दंग रह जाना पड़ता है। वे पक्ष को सही सिद्ध करने के लिए ऐसी-ऐसी दलीलें और नजीरें पेश करते हैं कि एक बार दर्शक तो क्या, न्यायाधीश भी चक्कर में फँस सकता है। बात की यथार्थता तब खुलती है, जब दूसरा पक्ष भी सामने आता है। एक पक्ष की बात 'गुड़ जैसी मीठी' होने की कहावत है।

शोषकों की ओर से अति प्राचीनकाल से यही दलीलें अपने पक्ष मे समर्थन में दी जाती रही हैं, उन्हें भी अनसुनी नहीं किया जा सकता। इसके विरोध में दलीलों से मकड़ी का जाला भले ही बुना जाता रहे, कालचक्र की गति को उससे रोका जाना सम्भव न हो सकेगा। अच्छा हो हम यथार्थता को समझें और मनुष्य की आत्मा का, उसकी मौलिक स्वतन्त्रता का सम्मान करना सीखें। उससे टकराना छोड़कर अपने चिन्तन को औचित्य की दिशा में मोड़ें।

हमारी भूलों में यह सबसे अग्रिणी, सबसे भारी और सब से दुखदायी है कि नारी को ऐसे बन्धनों में बाँधने की कुचेष्टा की गई। जो मनुष्य के मौलिक अधिकारों का अपहरण और हनन करते हैं, अपने साथ अनीति बरतना प्रकारान्तर से आत्महत्या ही है। नारी और नर दो वर्ग, दो पक्ष नहीं हैं एक ही चेतना के, एक ही सत्ता के दो अविच्छिन्न पहलू हैं। दोनों को समान रूप से विकसित होने देना ही श्रेयस्कर है– न मालिकी श्रेयस्कर है, न गुलामी हितकर है। यह सहकारिता का युग है। उससे सहयोग की गरिमा एक स्वर से स्वीकार कर ली गई और यह समझ लिया गया है कि सहयोग स्वेच्छा से ही हो सकता है और वह स्वेच्छा तभी जाग्रत होती है, जब उसे बाधित न किया गया हो।

समुन्नत देशों में जहाँ भी नारी को मनुष्योचित अधिकार मिले हैं, वहाँ पुरुष के कन्धे से कन्धा मिला कर काम कर रही है, किन्तु भारत में नारी समाज आज की नितान्त पिछड़ी हुई स्थिति में पड़ी है। पिछड़ी हुई नारी नर के लिए किसी भी क्षेत्र में सहायक न हो सकेगी। भारत में यह प्रयोग एक वर्ष तक हो चुका और वह सर्वथा हानिकारक सिद्ध हुआ। अब इस प्रचलन को बनाये रखने में कोई बुद्धिमानी नहीं है।

यूगोस्लाविया की महिलाएँ उस देश की पूरी कृषि व्यवस्था सँभालती हैं। पुरुष फौज, पुलिस, दफ्तर कारखाने सँभालते है और कृषि पशुपालन में उन्हें कोई श्रम का हस्तक्षेप नहीं करना पड़ता। चीन, रूस आदि श्रमनिष्ठ देशों में जाकर देखा जाय तो पता चलेगा कि पारिवारिक और राष्ट्रीय सम्पदा, सुरक्षा और सुख-सुविधा बढ़ाने में वे कितना बड़ा योगदान दे रही हैं। रूस की शिक्षा व्यवस्था का अधिकांश उत्तरदायित्व महिलाएँ ही वहन करती हैं। शिक्षा संस्थाओं में पुरुषों की संख्या बहुत ही कम दिखाई पड़ेगी। अस्पतालों एवं स्वास्थ्य संस्थाओं का उत्तरदायित्व भी प्रायः उन्हीं का है। डाक्टर, कम्पाउण्डर, नर्स आदि का कार्य करती हुई महिलाएँ ही देखी जाएँगी पुरुष तो जहाँ-तहाँ ही दृष्टिगोचर होंगे।

जापान की महिलाएँ-उद्योग धन्धों के विकास मे पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करती हैं। घर-घर में लगे छोटे कुटीर उद्योगों में संलग्न रहकर वे अपने समय का उपयोग घर-परिवार के और समूचे राष्ट्र को सम्पन्न बनाने में करती हैं। जर्मनी मे कल-कारखानों को सँभालने में महिलाएँ पुरुष इन्जीनियरों, कारीगरों एवं व्यवस्थापकों से घटिया नहीं, बढ़िया ही सिद्ध होती हैं। इंग्लैण्ड, फ्रांस, कनाडा, अमेरिका में दुकानें चलाने में महिलाओं की प्रमुखता है, वे व्यापार कुशलता मे पुरुषों से आगे हैं। शिशुपालन, गृह व्यवस्था तो उनके लिए तनिक भी बाधक सिद्ध नहीं होती।

यह सब इसीलिए सम्भव हुआ कि उन देशों के निवासियों ने यह नहीं सोचा कि नारी को कैद में जकड़ देने से उनके शील-सदाचार की रक्षा हो जाएगी और मर्दों की इज्जत बढ़ेगी। भारत की तरह नारी को रुग्णता और दुर्बलता की दयनीय स्थिति में धकेल देने का दुर्भाग्य उन्हें वहन नहीं करना पड़ा। जब पाप ही नहीं किया तो दंड किस बात का ?

भारत में पुरुष अनीति बरतता है और नारी उसे मानसिक अशक्तता के कारण डरी-सहमी सहन करती है। अनीति करने वाले की तरह ही अनीति सहने वाला भी पापी माना गया है। रिश्वत लेने वाला ही नहीं, देने वाला भी अपराधी गिना जाता है। अपराध सिद्ध होने पर दोनों को ही सजा मिलती है। अपने देश में नारी कितनी कोमल है, दूसरे शब्दों में *कितनी दुर्बल है– यह सहज ही सर्वत्र* देखा जा सकता है। पिछड़ा हुआ कहा जाने वाला श्रमिक वर्ग इस क्षेत्र में तथाकथित कुलीन और बड़े आदमियों की अपेक्षा कहीं अधिक सुखी है। गरीबी के कारण ही सही, उनकी स्त्रियाँ कैदखाने से बाहर भी भागती-दौड़ती हैं और अभावग्रस्त परिस्थितियों में भी अपना स्वास्थ्य बचाये रहती हैं।

शारीरिक दृष्टि से नारी स्वभावतः तनिक भी अक्षम नहीं है। खेल-कूदों की जो रिपोर्टें अखबारों में छपती रहती हैं, उनसे प्रतीत होता है कि वे किसी भी स्वास्थ्य प्रतियोगिता में कमजोर नहीं पड़ती। स्वास्थ्य के अतिरिक्त प्रकृति ने उन्हें सुन्दरता का दुहरा उपहार दिया है। सरकसों मे नारी की स्फूर्ति, कुशलता एवं स्वस्थता देखते ही बनती है। संगीत, साहित्य और कला पर उनका विशेष अधिकार है। भावना क्षेत्र में उनकी प्रकृति प्रदत्त प्रधानता है। इसी आधार पर तो अपने परिवार के लिए बढ़-चढ़कर अनुदान दे पाती हैं और समर्पित जीवन को विना खोजे जी लेती हैं। इसी विशेषता को साहित्य, संगीत, कला के क्षेत्र में प्रस्फुटित होने का अवसर मिलता है तो प्रगति क्रम सहज ही द्रुतगामी हो जाता है। नारी के मधुर स्वर कण्ठ और भाव स्पन्दन समस्त संसार को गुदगुदा रहा है । गायन में नर नहीं, नारी आगे हैं। नाट्य, अभिनय, चलचित्र क्षेत्रों में उन्हीं का वर्चस्व है। अवसर न मिले तो बात दूसरी है *अन्यथा* साहित्य सृजन में उनकी सहज क्षमता को पुरुष चुनौती नहीं दे सकता।

कवि और चित्रकार जब भी उन्हें बनने दिया गया है, उन्होंने अपनी वरिष्ठता ही सिद्ध की है। मूर्तिकार तो अद्वितीय हैं। पत्थर की ही नहीं, वे प्राणवान् प्रतिमाएँ अपने शरीर की प्रयोगशाला में बनाकर प्रस्तुत करती हैं। उनके समान मूर्तिकार, चित्रकार, कलाकार कौन हो सकता है? उनसे अधिक आकर्षक, सुन्दर, कलात्मक, कोमल कलाकृति इस संसार में दूसरी नहीं है। परमेश्वर ने अपना सारा दृश्यमान और चेतनात्मक सौन्दर्य उसी में उड़ेल दिया है। कठोरता प्रधान पुरुष पक्ष यदि नारी की कोमलता का स्पर्श न कर सका होता तो वह पशु-प्रवृत्ति की ओर न जाने कितना गिरता चला जाता।

देवी और दैवी दोनों ही शब्द उसके लिए सार्थक ही प्रयुक्त होते हैं। उसकी सत्ता और चेतना लोकोत्तर है। देवत्व की अगणित विशेषताएँ उसके नख से लेकर शिख तक भरी पड़ी हैं। आवश्यकता केवल इसी बात की है कि उन विशेषताओं को विकसित होने का, फलने-फूलने का अवसर मिल सके। प्राचीन भारत में उनकी आध्यात्मिक भावनात्मक विशेषताओं को प्रस्फुटित होने का अवसर मिला था तो उन्होंने मदालसा बनकर इस भूमि पर ब्रह्म-वेत्ताओं, तपस्वियों, ज्ञानियों, प्रतिभावानों, वक्ताओं और महामानवों के उद्यान खड़े कर दिये। उनके अनुदानों से समस्त विश्व कृतकृत्य होता रहा। आज के भौतिकवादी उसकी भौतिक विशिष्टता का उपयोग कर रहे हैं।

अवांछनीयता अपनाकर हमने क्या खोया क्या पाया ? इस प्रश्न पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाना चाहिए। प्रकृति प्रदत्त सुविधाओं का उपयोग करने का अवसर यदि नारी को मिला हो तो वह पुरुष की तुलना में शरीर की दृष्टि से किसी भी प्रकार दुर्बल नहीं होती। मेवाड़ के गाड़िया लुहार दूर-दूर तक अपनी आजीविका कमाने के लिए भ्रमणशील जीवनयापन करते हैं। उनकी स्त्रियाँ भारी घन चलाती हैं और मर्द गरम लोहे को उलट-पुलट करते हैं । स्त्रियाँ मर्दों से शारीरिक बल में कम नहीं, अधिक ही बैठती हैं। खाने के लिए उन्हें बहुमूल्य भोजन कहाँ मिलता है ? सर्दी-गर्मी से बचने का भी प्रबन्ध नहीं होता, गाड़ी की छाया में ही गुजर कर लेती हैं। फिर भी उनके शरीर उस लोहे के समान ही मजबूत होते हैं जिसे कि वे जन्म से लेकर मरणपर्यन्त पीटती हैं। बच्चे जनती रहती हैं। प्रसूति की छुट्टी दस पाँच दिन की ही लेती हैं और फिर वही कठोर श्रम करने लगती हैं। स्वास्थ्य की यह सुरक्षा उन्हें स्वच्छ हवा में साँस लेने, खुली सूर्य किरणों के सम्पर्क में रहने और समुचित श्रम करने की सुविधा मिलने से ही सम्भव होती है। यदि उन्हें भी एक छोटे पिंजड़े में कैद कर दिया जाय और मुँह पर डाकुओं जैसा नकाब लटका दिया जाय तो कुछ ही दिनों में वे अपनी स्वास्थ्य सम्पदा खो बैठेंगी।

नारी की उपयोगिता स्वीकार की जानी चाहिए। उसे *भोग्या भर न मान लिया जाय।* मध्यकाल में उसकी उपासना अघोरी कापालिकों के रूप में की गई। फलतः वह सर्वनाशी कृत्या बनकर विघातक ताण्डव करने पर उतारू हो गई। स्वयं तो जली पर उसकी आग में सारा देश, सारा समाज बेतरह जल झुलस गया। एक हजार वर्ष तक नारी की जिस अघोर उपासना में अपना समाज संलग्न रहा उसका प्रतिफल भोग लिया, अब दिशा बदलने की आवश्यकता है।

नारी को विश्वस्त मित्र और सम्मानास्पद स्वजन का स्थान मिलना चाहिए। उसे प्रताड़ित, पददलित करने में नहीं सधन सहयोगी बनाने में लाभ समझा जाना चाहिए। उदारता के बीज बोकर नारी की सत्ता धरती माता के प्रतिदानों की अपेक्षा कम नहीं, कुछ अधिक ही पाने की आशा की जानी चाहिए। यही नीति श्रेयस्कर है। लाखों वर्षों तक इसी नीति पर चलकर भारत ने बहुत कुछ पाया था।

राजनैतिक स्वतन्त्रता इस शताब्दी की हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि है। हजार वर्ष की शासन परतन्त्रता का

दुसह दुःख सिर पर से उतर गया। अब बनाने-बिगाड़ने की हमें पूरी स्वतन्त्रता है। दूसरी उपलब्धि इसी युग की यह होनी चाहिए कि भारत में नारी उत्पीड़न का कलंक भी अपने मुख से धो डालें, यह अवसर पाया कि वह अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा का विकास कर सके, स्वाधीनता की स्वच्छ वायु में साँस ले सके। उदीयमान आलोक में बैठकर अपनी जकड़ी-अकड़ी नस-नाड़ियों को गरम करके फैला- फुला सके। उसका दोहन छोड़ा जाय और स्वेच्छा सहयोग पाया जाय। यह कितनी सुखद स्थिति होगी इसकी कल्पना करने मात्र से हृदय हुलसने लगता है। देश को राजनैतिक पराधीनता से मुक्त कराने वालों ने स्वतन्त्र भारत के सुनहरे स्वप्न देखे थे और उन चित्रों में रंग भरने के लिए अपना भावभरा उत्सर्ग प्रस्तुत किया था। स्वतन्त्रता का उत्तरार्द्ध उससे कम नहीं अधिक महत्व का है। उसके लिए अपनी पीढ़ी को ऐसे ही स्वप्न सँजोने चाहिए और उत्सर्ग के वैसे ही ठाठ रोपने चाहिए जैसे कि बलिदानी वीरों ने सँजोये थे। पिछली पीढ़ी अपनी परीक्षा में सफल हो गई और श्रेयाधिकारी बनकर यशस्वी भूमिका निभा गई। अब अपनी पीढ़ी का काम है कि लड़ाई के उत्तरार्द्ध को पूरा करे। नारी मुक्ति के स्वतन्त्रता संग्राम में, महिला जागरण अभियान में अपनी ऐतिहासिक भूमिका प्रस्तुत करे।

पराधीनता के निविड़ बन्धनों से मुक्ति पाते ही नारी अपने खोये हुए स्वास्थ्य, ज्ञान, मनोबल, अनुभव, व्यक्तित्व, वर्चस्व आदि को कुछ ही समय में पुनः उपलब्ध उपार्जित कर लेगी। पिछड़ापन उसके ऊपर थोपा गया है। वस्तुतः वह वैसी प्रकृतितः नहीं है, जैसी कि बना दी गई है। अवसर मिलने भर की कठिनाई है। तनिक-सी सुविधा मिले तो वह संसार भर की प्रगतिशील नारियों की तुलना में अधिक आगे की पंक्ति में खड़ी दिखाई देगी। विकसित भारतीय नारी अपने श्रम, सहयोग और अनुदान से अपने समाज और राष्ट्र को कितनी ऊँची, कितनी सुख-शान्ति भरी स्थिति तक पहुँचा सकती है। इसके कल्पना चित्र जब आँखों के आगे से गुजरते हैं तो उज्ज्वल भविष्य की झाँकी अन्तःकरण को पुलकित कर देती है। ईश्वर करे वह दिन परसों नहीं, कल ही आ जाय और उसका शुभारम्भ आज ही हो जाय।

इस असह्य स्थिति का अन्त होना चाहिए

नारी की आज जो स्थिति है, उसे किसी भी प्रकार न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। मनुष्य के कुछ जन्म सिद्ध अधिकार हैं। प्रत्येक मानव प्राणी को अपनी मर्जी का नैतिक जीवन जी सकने की स्वतन्त्रता रही है और रहनी चाहिए। मैत्री के आधार पर कोई किसी के लिए कुछ भी त्याग कर सकता है, पर कैदी के अतिरिक्त अन्य किसी को बलात् बन्धन में बाँधने का, उसको बलात् उपयोग करने का अधिकार नहीं है, पर नारी इस मूलभूत मानवी अधिकार से भी वंचित है। कन्या को उसके अभिभावक कहीं भी, किसी के साथ भी ब्याह कर सकते हैं या बेच सकते हैं। पति उसे बलपूर्वक अपने अधिकार में रख सकता है और अनिच्छा होते हुए भी जो चाहे सो अपनी मर्जी के अनुसार करा सकता है। उसके साथ चाहे जैसा व्यवहार कर सकता है, पशुओं जैसी मारपीट कर सकता है, लुक-छिपकर जान भी ले सकता है, यह स्थिति मनुष्य के मूल अधिकारों के विपरीत है। स्वेच्छा जीवन जीने पर इतने कड़े प्रतिबन्धों का होना किसी भी दृष्टि से न्यायोचित नहीं है। पर्दा-प्रथा के अनुसार जिस स्थिति में नारी को रहना पड़ता है, उसे मानवोचित नहीं कहा जा सकता, किन्तु शताब्दियों से चल रही अवांछनीय परम्पराओं ने इन्हीं विडम्बनाओं को 'मर्यादा' के रूप में मान्यता दे दी है। अब लोग इन बातों को अन्याय तक नहीं मानते वरन् उचित आवश्यक तक कहते हैं और उन्हीं तर्कों का, धर्म प्रचलनों का सहारा लेकर उन प्रतिबन्धों का समर्थन करते हैं।

इस स्थिति में चिरकाल से रहती चली आ रही नारी धीरे-धीरे अपनी मानवी उपलब्धियों से वंचित होती चली गई और आज की दुखद स्थिति में आ पहुँची। घर के छोटे से पिंजड़े में आजीवन कैद रहने के कारण उसका स्वास्थ्य चौपट हो गया। खुली हवा, खुली धूप, हाथ-पाँव हिलाने की स्थिति न मिलने पर स्वास्थ्य का सर्वनाश होता ही है। छोटी आयु में विवाह हो जाने पर किशोरावस्था और नवयौवन के दिनों होने वाले शारीरिक विकास की जड़ें ही कट जाती हैं । शरीर शास्त्र का स्पष्ट निष्कर्ष है कि बीस वर्ष से कम आयु में कामोपभोग और पच्चीस वर्ष की कम आयु में सन्तानोत्पादन नारी के स्वास्थ्य को मटियामेट कर रख देता है। उसे छोटी-बड़ी अनेक बीमारियाँ आरम्भ से ही घेर लेती हैं और मरते दम तक साथ रहती हैं। पेट का दर्द, कमर का दर्द, पेट दुखना, मासिक धर्म की अनियमितता, श्वेत-प्रदर, पेशाब में जलन जैसे रोग स्पष्टतः शक्ति से अधिक मात्रा में जननेन्द्रिय का दुरुपयोग किये जाने के ही दुष्परिणाम हैं। छोटी आयु से ही कच्चे अंग-अवयवों पर जब दाम्पत्य हलचलों का अमर्यादित भार पड़ेगा तो उससे स्वास्थ्य की जड़ें खोखली होनी ही है। स्त्रियों में से अधिकांश को अपच, सिरदर्द, अनिद्रा, हाथ-पैरों में भड़कन, आँखों में जलन, मुँह में छाले, थकान, सुस्ती, बेचैनी, उदासी जैसी शिकायतें बनी रहती हैं। इसका कारण उनकी जीवनी-शक्ति का क्षीण हो जाना ही होता है। जिन लड़कियों का अपना शरीर ही सुविकसित नहीं हो पाया उनके ऊपर समय से पहले बच्चे पैदा करने का भार पड़ेगा तो यह शक्ति जो अपना शरीर पुष्ट कर सकती है, सहज ही समाप्त हो जाएगी। बच्चे का शरीर आखिर माता का शरीर काटकर ही तो बनता है।

उसका रक्त, माँस, हड्डी आदि जो कुछ है वह स्पष्टतः माता के पास जो शरीर सम्पत्ति थी उसी का एक टुकड़ा अलग से टूटकर खड़ा हो गया है। जो दूध बच्चा पीता है वह माता के रस-रक्त के अतिरिक्त और क्या है ? उसे बच्चा पीता रहेगा तो माता के शरीर में उसकी कमी पड़ेगी ही। जो रक्त-माँस लड़कियों के अपने स्वास्थ्य संवर्द्धन के लिए आवश्यक था; वही यदि सन्तान में निकलता चला जाय तो स्पष्ट है कि इस कारण उस स्वास्थ्य की दृष्टि से दुर्बल, रुग्ण और गई-गुजरी स्थिति में रहना पड़ेगा। दुर्बल के पास न रूप बचता है, न यौवन, न सौन्दर्य, न उत्साह, न स्फूर्ति, न ताजगी, न मुसकान। लड़कियों को छोटी आयु से ही दाम्पत्य-जीवन के दबाव में जिस प्रकार पिसना पड़ता है, यह उनकी अकाल मृत्यु का बहुत बड़ा कारण है। प्रसव पीड़ा से लाखों महिलाएँ हर साल बेमौत मरती हैं, इसका कारण उनके प्रजनन अंगों की दुर्बल स्थिति होते हुए भी असह्य दबाव पड़ना ही एकमात्र कारण है। प्रसव काल में जितना रक्त जाता है, जितना कष्ट होता है, उसे परिपुष्ट माता का स्वास्थ्य ही सहन कर सकता है। कमजोर शरीर वाली लड़कियों के लिए तो यह बेमौत मारे जाने जैसा अभिशाप है। स्वास्थ्य की दृष्टि से अविवाहिताएँ तथा विधवाएँ सुहागिनों की तुलना में कहीं अच्छी पाई जाती हैं, इसका कारण यही है कि उन्हें दाम्पत्य कर्म का बोझ नहीं सहना पड़ा।

यहाँ यह नहीं कहा जा रहा है कि विवाह नहीं करना चाहिए। दाम्पत्य जीवन अनावश्यक है और बच्चे उत्पन्न नहीं करने चाहिए। यह सब बातें सहज स्वाभाविक रीति से होनी चाहिए। स्त्री का स्वास्थ्य जितना सहन कर सके, उस पर उतना ही दबाव पड़ना चाहिए। किन्तु इस क्षेत्र में नारी सर्वथा असहाय है, वह इस सन्दर्भ में मुँह नहीं खोल सकती। पति की इच्छापूर्ति के लिए उसे विवश रहना पड़ता है। सन्तानोत्पादन के लिए शरीर में गुंजायश न होने पर भी उसे यह भार बलात् उठाना पड़ता है। अपना स्वास्थ्य नष्ट होने—दुर्बलता, रुग्णता और अधिक बढ़ने, अस्वस्थ सन्तानें जनने, गर्भपात आदि होते रहने, असह्य प्रसव पीड़ा न सह सकने, अकाल मृत्यु को गले न बाँधने जैसे विचार उसके मन में उठते रह सकते हैं, पर वह कह कुछ नहीं सकती, कर कुछ नहीं सकती। पराधीन की स्वेच्छा क्या ? उसकी अपनी मर्जी कहाँ ? बन्दी को मालिकों की मर्जी पर ही चलना पड़ता है। उसे अपने स्वास्थ्य की बात सोचने का अधिकार ही किसने दिया है।

सोने -उठने का कोई समय नहीं। मर्द रात को १२ बजे आवें तो उसी समय चूल्हा फूँकना चाहिए। सब लोग खा जाएँ उसके पीछे खाना चाहिए। सबसे पीछे सोना और सबसे जल्दी उठना चाहिए। विश्राम के लिए समय की माँग न करनी चाहिए। रुग्ण रहते हुए दिन-रात पिसना चाहिए। यही आज की नारी का धर्म कर्त्तव्य बताया गया है। इससे कम में कोई 'अच्छी बहू' नहीं कहला सकती। यह सब धकापेल चलता रहे, चले, पर प्रकृति किसी को बख्शती नहीं। उसे अपने नियमों से काम। दुरात्मा हो या पुण्यात्मा बिजली के खुले तार जो भी छूएगा वही मरेगा। स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन निरन्तर करते रहने पर प्रकृति दंड देगी ही। दुर्बलता, रुग्णता, अकाल मृत्यु के चक्र में उसे पिसना ही पड़ेगा। नारी ने यह व्यतिक्रम स्वेच्छा से किया या उसे विवशता में करना पड़ा, यह सोचने की प्रकृति को फुरसत नहीं है। नारी नर की तुलना में शारीरिक दृष्टि से कितनी दीन, दुर्बल बनकर रह रही है यह सहज स्वाभाविक स्थिति नहीं है। सभ्य देशों की महिलाएँ– हर क्षेत्र में, स्वास्थ्य में भी पुरुष के समतुल्य हैं। यह अभागा भारत ही है जिसने नारी को मानवोचित् अधिकारों से वंचित किया। फलस्वरूप जो परिस्थिति उत्पन्न हुई, उसने नारी के स्वास्थ्य को खा लिया। इसे भाग्य का, भगवान का दोष कहकर मन समझाया जा सकता है, पर वस्तुतः यह हमारे ही अनाचार, अत्याचार का दुष्परिणाम है , जिसे रोते-कराहते नारी तो भुगतती है, पर इस स्थिति में नर भी कुछ अधिक प्रसन्न नहीं रह सकता है। इसमें उसे भी कुछ लाभ उठाने का अवसर नहीं है। शोषित तो मिटता ही है, शोषक को भी विधि का विधान सुख की साँस नहीं लेने देता। नारी को अस्वस्थ बनाकर उसके मालिक पालने हारे भी इस स्थिति में क्या सुख-सन्तोष अनुभव कर रहे हैं। रोते-कराहते स्वर आखिर उन्हें भी कुछ तो कष्ट देंगे ही। सहानुभूति समाप्त हो गई हो तो भी खीज और झुंझलाहट तो सताती ही रहेगी, उनसे तो पीछा नहीं ही छूटेगा।

शारीरिक स्वास्थ्य की तरह मानसिक स्वास्थ्य से भी नारी को वंचित रहना पड़ रहा है। जिसकी अपनी कोई इच्छा, महत्वाकांक्षा, मर्जी, पसन्दगी न हो, जिसे जन्म से मरण तक बिना उचित-अनुचित का अन्तर किए केवल आज्ञापालन ही करना है, उसके लिए अपना भविष्य निर्माण करने की बात सोचना ही निरर्थक है। प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के विकास में स्वतन्त्र चिन्तन का, महत्वाकांक्षाओं का, कुछ कर सकने का, परिस्थिति का प्रधान योगदान होता है। यह न मिले तो खाद, पानी न मिलने वाले पौधे की तरह ज्वलंत सम्भावनाएँ भी नष्ट हो जाती हैं। ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा कितनी ही क्यों न हों, पालने वालों की मर्जी के बिना उसका उपयोग कर सकने का नारी के लिए कोई अवसर नहीं। इच्छा तो आखिर किसी की कुछ न कुछ होती ही है। उन्हें फलवती करने का जब अधिकार ही नहीं तो आकांक्षाओं की चिंता और राख मनः क्षेत्र में घुटन की दुर्गन्ध ही भरे रहेगी।

पग-पग पर प्रतिबन्ध, क्षण-क्षण में तिरस्कार जिसके भाग्य में लिखा हो, वह दुर्भाग्य के आँसू ही बहाता रह सकता है। नारी निष्प्राण मशीन रही होती तो अच्छा था, पर जानदार प्राणी होने के कारण उसका अपना निज का मन भी है और निज की कुछ इच्छाएँ भी। स्वभावतः वे

फैलने, फूटने का, फूलने-फलने का अवसर चाहती हैं, पर इसके लिए अधिकार रहित नारी के लिए गुंजायश कहाँ? चौबीसों घण्टे उसे मन को मारना पड़ता है और उस दुष्ट को देखो जो मरता तो है नहीं, उलटे विद्रोही बनकर नाना प्रकार के उपद्रव खड़े करता है। इन्हें तरह-तरह के मनोरोगों के, मनोविकारों के रूप में देखा जा सकता है। मृगी-हिस्टीरिया से ग्रसित रोगियों में तीन चौथाई नारी और एक चौथाई मर्द होते हैं। तरह-तरह की सनकें, चिड़चिड़ापन, लड़-झगड़, अनुदारता, दुराव, असन्तोष, आशंका, दोषारोपण जैसी मानसिक विकृतियाँ उन्हें घेरे रहती हैं। सनकी, जिद्दी, अव्यवस्थित, नासमझ, बेवकूफ, स्वार्थी आदि न जाने कितने दोष उन पर लगाये जाते रहते हैं। जो किसी कदर ठीक भी होते हैं। निराशा, चिन्ता, भय-भीरुता, आशंका, अविश्वास से ग्रसित उनमें से बहुतों को देखा जाता है। सन्तोषजनक मुसकान किसी के चेहरे पर हर घड़ी खेलती देखी जाएगी। यह आदत जिनमें बचपन से भी थी बस गृहस्थ की चक्की में पिसने के कुछ ही दिन बाद समाप्त हो जाती है। असन्तोष और क्षोभ से उद्विग्न और खिन्न मुख मुद्रा में ही प्रायः उन्हें देखा जाता है। मन कैसा छलिया है। उसे जहाँ उद्विग्न करता है, वह खिलौने देकर पुचकारता भी है। शृंगार, सजधज, फैशन की भौंड़ी तरकीब बताकर कहता है- कुछ न सही तो इस खिलौनों से ही मन बहलाओ, अपना जी हलका करो। प्रायः विकृत मन वाली महिलाएँ ही शृंगार-प्रसाधन अपनाकर अपना खोया सम्मान इस बनावट के सहारे किसी हद तक प्राप्त कर लेने की बात सोचती हैं और उस तरह के आडम्बर बनाती हैं। इसमें उन्हें मिलता कुछ नहीं। पैसा और समय तो गँवाती ही हैं मूर्ख, उपहासास्पद और छछोरी भी बनती हैं। प्रशंसा पाने चली थीं , पर उपहास लेकर लौटती हैं। व्यंग्य रूप में ही कोई मसखरा उनके मुँह पर उस सजधज की शायद प्रशंसा भी कर देता होगा। यह विडम्बनाएँ वे स्वेच्छा से नहीं, छलिया मन के विचित्र बहकावे में फँसकर रचती हैं। असन्तोष को सन्तोष में परिणत करने का कुछ भी औंधा-सीधी मार्ग वे खोजती हैं। इन्हीं में से एक शृंगारिक सजधज भी है अन्यथा शालीन नारी का व्यक्तित्व तो स्वच्छ, सभ्य और सज्जनोचित सरलता के, सादगी के साथ ही जुड़ा रहता है। विवेक और उद्धत शृंगार का प्रत्यक्ष बैर है जहाँ एक रहेगा, वहाँ से दूसरे को पलायन करना ही पड़ेगा।

स्मरण शक्ति की कमी, आवेश ग्रस्तता, जिद्दीपन, शंकालु, अनुदारता, अदूरदर्शिता, मन्दबुद्धि आदि मानसिक त्रुटियाँ स्त्रियों में बहुधा अधिक होने की बात कही जाती है। यदि यह सच है तो इतना ही कहा जा सकता है कि यह उनकी आन्तरिक घुटन की प्रतिक्रिया है अन्यथा मानसिक बनावट और प्रखरता में वे नर से पीछे नहीं, आगे ही रहती हैं। स्कूल, कालेजों के परीक्षाफल इसके प्रमाण में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। लड़के अधिक और लड़कियाँ कम फेल होती हैं। अच्छे डिवीजन लड़कियों के हिस्से में आते हैं। वे छुरे, चाकू, हाकी लेकर नकल के बल पर पास होने की उद्दंडता भी नहीं बरततीं, अपनी सहज प्रतिभा और स्वाभाविक श्रमशीलता के आधार पर अच्छे नम्बरों से पास होती रहती हैं। अन्य क्षेत्रों में भी नारी को जब भी, जितना भी अवसर मिला है सदा उसने अपनी बौद्धिक प्रखरता का ही परिचय दिया है। न वे शरीर की दृष्टि से दुर्बल हैं और न मानसिक दृष्टि से पिछड़ी हुई हैं, परिस्थितियों ने ही उन्हें दुर्दशाग्रस्त बना दिया है। आज तो वे दुर्बल और रुग्ण ही नहीं, मन्दबुद्धि और मानसिक रोगों की व्यथा भी बेतरह सहन कर रही हैं।

इस शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता ग्रसित स्थिति से नारी को उबारा जाना चाहिए अन्यथा वह अपने लिए परिवार के लिए, समाज के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकना तो दूर पिछड़ेपन के कारण भारभूत ही बनी रहेंगी। रुग्ण व्यक्ति अपनी बेकारी, पीड़ा, परिचर्या, चिकित्सा आदि के कारण स्वयं दुःखी रहता है और अपने सम्बन्धियों को दुःखी करता है। नारी की शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता हर दृष्टि से, हर क्षेत्र के लिए दुखद दुष्परिणाम ही प्रस्तुत कर रही है।

राजनैतिक दृष्टि से पराधीन रहने वाला देश आर्थिक दृष्टि से ही शोषित नहीं होता, वरन् सांस्कृतिक, मानसिक, चारित्रिक और बौद्धिक दृष्टि से भी अपंग हो जाता है, ठीक इसी प्रकार सामाजिक दृष्टि से पराधीन बनाई गई नारी भी अपनी प्रखरता और उपयोगिता खो बैठी है। त[illegible] को समझा जाना चाहिए और विष वृक्ष के पत्ते तोड़ने क[illegible] अपेक्षा उसकी जड़ काटी जानी चाहिए। नारी को हर क्षे[illegible] में विकास का अवसर मिलना चाहिए और उसके पिछड़ेपन को मिटाने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिए। अपहरणकर्त्ता के रूप में पुरुष का दोष अधिक है, इसलिए प्रायश्चित, परिमार्जन, प्रतिकार की दृष्टि से उसी को आगे आना चाहिए। आघात पहुँचाने वाले को उसका हर्जाना भी देना चाहिए और क्षतिपूर्ति के लिए प्रबल प्रयास करके कलंक-कालिमा को धो डालने के लिए तत्पर होना चाहिए।

कुएँ से निकाल कर खंदक में न धकेलें

नारी समाज को समय की प्रगति के, सामाजिक क्रूर बन्धनों से धीरे-धीरे छुटकारा मिलता जा रहा है। बहुत पिछड़े, अशिक्षित, अहंकारी और संकीर्ण अनुदार लोगों में ही अब घूँघट, पर्दा प्रथा की कठोरता शेष रह गई है। बाकी समझदार लोग अब अपनी बच्चियों को भी शिक्षा दे रहे हैं और उन्हें घर से बाहर काम करने के लिए जाने देने के प्रतिबन्ध भी उठा रहे हैं। महिलाओं का उत्साह और रुझान भी इसी दिशा में है। औचित्य और न्याय का तकाजा भी यही है। प्रगतिशील विचारधारा का प्रतिपादन भी इसी दिशा में है। स्वतन्त्रता और समानता के

सम्मान एवं औचित्य का जो व्यापक समर्थन हो रहा है उसने भी नारी के ऊपर लदे हुए पिछले सामन्ती बन्धनों को निरस्त करने में सहायता ही की है। इन अनेक कारणों के मिल जाने से नारी की स्वतन्त्रता का एक नया युग आरम्भ हुआ है। अन्धे मानव समाज को सामाजिक पराधीनता के अवांछनीय बन्धनों से इस प्रकार मुक्ति पाते देखकर सर्वत्र प्रसन्नता और संतोष की ही अभिव्यक्ति होनी चाहिए।

पर दुर्भाग्य की करामात तो देखिए वह पिछली खिड़की से छद्मवेश बनाकर फिर घुसपैठ करने में लग गया है और वह नारी पराधीनता के लिए नये किस्म के जाल बन्धन बुनकर फिर ले आया है। पहले लोहे की जंजीरों से कैदी बाँधे जाते थे, अब सोने की जंजीरों से या रेशमी रस्सों से उन्हें बाँधा जाने लगे तो इसे कोई प्रगति भले ही कहता रहे वस्तुतः यह बन्धन उतने ही दुःखद रहेंगे जितने कि लोहे वाले समय में थे।

नारी को नर के समान ही अपने व्यक्तित्व के विकास और लोकनिर्माण में अपनी प्रतिभा का समर्थ योगदान कर सकने का योगदान मिले तभी उनकी स्वाधीनता सच्ची और सार्थक कही जा सकती है। यदि उपलब्ध नारी स्वातन्त्र्य को यही दिशा मिली होती तो सचमुच मानव-जाति का यह एक बहुत बड़ा सौभाग्य होता और उससे उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाएँ देखकर सन्तोष व्यक्त किया जा सकता था, पर हुआ ठीक इससे उलटा है।

पत्रकार, कलाकार, साहित्यकार, चित्रकार, कवि, अभिनेता, गायक, वादक सब मिलकर पुरुष की पशु-प्रवृत्ति को भडकाने और उसे तृप्त करने का वातावरण बनाने में लग गये हैं, नारी का चित्रण साहित्य, चित्र, गीत, काव्य, मंच आदि पर जहाँ भी आज हो रहा है, वहाँ उसे रमणी और कामिनी ही चित्रित किया जाता है। माता, भगिनी और पुत्री के रूप में उसे उभारने वाली रचनाएँ, कृतियाँ, अभिव्यक्तियाँ ढूँढ़ने पर भी कहीं न मिलेंगी। जब फूहड़ चित्रण में निम्नवर्ग की निकृष्टता और सम्पन्न वर्ग की कुत्सा भड़काने के निमित्त बनकर इस तथाकथित कलाकारों को प्रचुर धन कमाने और बहती गंगा में हाथ धोने का अवसर मिलता है तो वे उसे छोड़ें भी क्यों ?

जहाँ नारी फैशनपरस्त, भड़कीली और निर्लज्ज होती दिखाई पड़े वहाँ वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए उसे दोष नहीं दिया जा सकता। यह उसकी विवशता है। यह उसके भोलेपन का शोषण है। जब हर मासिक पत्रिका में सजी-धजी नटनियो की कुत्सित भाव-भंगिमा में सभी तस्वीरें छपती हैं और वैसे ही चित्र, कलेण्डर हर दीवार पर टँगे मिलते हैं, तो उसे देखकर एक भोली नारी यही मान्यता बना सकती है कि उसके अस्तित्व की सार्थकता इसी ढाँचे में ढल जाने में हो सकती है।

सज-धज की प्रतिक्रिया क्या होती है? इस सन्दर्भ में एक छोटा-सा, किन्तु बहुत ही महत्त्वपूर्ण संस्मरण यह है कि एक बार लाहौर की एक लड़की ने महात्मा गाँधी को पत्र लिखा कि "जब वह कालिज जाती है तब शोख लड़के उसे छेड़ते हैं क्या करूँ ?" गाँधीजी ने उसे उत्तर दिया- "तुम अपने सिर के बाल मुड़ा डालो, फिर कोई लड़का तुम्हारी ओर नजर उठाकर भी न देखेगा।" बात आई गई हो गई पर तथ्य जहाँ का तहाँ खड़ा है। यदि नारी की शालीनता को अक्षुण्ण रहना है और उसके व्यक्तित्व का समग्र विकास सम्भव किया जाना है तो शृंगारिकता के वातावरण से उसे निकालना ही पड़ेगा।

यह दयनीय दुर्दशा कब तक?

जिस वर्ग में आशा, उत्साह और साहस का उभार होता है, वह हर क्षेत्र में आगे बढ़ता है और सुसम्पन्न बनता है। जिनमें भोगजन्य शिथिलता बढ़ती है, उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में पिछड़ना पड़ता है। इस तथ्य को अमेरिका के नर और नारी वर्ग की स्थिति का विश्लेषण करते हुए सहज ही समझा जा सकता है।

अमेरिकी जनगणना विभाग द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार उस देश में महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक है। ये शारीरिक दृष्टि से भी पुरुषों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ और सबल हैं और औसत अमेरिकी महिला, वहाँ के पुरुषों की तुलना में ७ वर्ष अधिक जीवित रहती हैं।

जनगणना के अनुसार अमेरिका की जनसंख्या २१ करोड़ है। इनमें प्रतिशत के हिसाब से पुरुष ९५ और स्त्रियाँ १०० हैं। पाँच प्रतिशत स्त्रियाँ अधिक हैं। वे पुरुषों की तुलना में लगभग १ करोड़ अधिक हैं।

उस सुसम्पन्न देश में स्वास्थ्य, सबलता, दीर्घजीवन और संख्या की दृष्टि से महिलाएँ पुरुषों से क्यों आगे बढ़ती चली जा रही हैं और पुरुष क्रमशः क्यों पिछड़ते जा रहे हैं, इसका कारण विचारकों ने यह बताया है कि अमेरिकी पुरुष सम्पन्नता के बाहुल्य का उपयोग विलासिता की वृद्धि में करता चला जा रहा है, उसकी आकांक्षा मात्र यह है कि किस प्रकार वासना और विलासिता के साधन जुटाने और उनके उपभोग में निरत रहने का अधिक से अधिक अवसर प्राप्त करे। इसी घुड़दौड़ में पुरुष समाज का ध्यान केन्द्रित है। शिक्षा, आजीविका, सुशासन, सुविधा के प्रचुर साधन होने के कारण अब उन्हें जीवन के किसी क्षेत्र में बड़ा संघर्ष नहीं करना पड़ता। निश्चिन्तता, निष्क्रियता उत्पन्न करती है और कोई बड़ा लक्ष्य सामने न रहने पर मनुष्य व्यसन और व्यभिचार में अधिकाधिक निमग्न होता चला जाता है। उस देश के पुरुषों की मनःस्थिति और क्रिया-पद्धति का ढलान अब इसी दिशा में बढ़ता चला जा रहा है।

प्रकृति का अकाट्य नियम सदा से यही रहता है कि पुरुषार्थी और संघर्षशील प्रगति करते हैं और विलासी गलते गिरते चले जाते हैं। इसी नियम के आधार पर उस देश के पुरुष क्रमशः अपना स्वास्थ्य , सौन्दर्य, दीर्घजीवन बल, पुरुषार्थ खोते चले जा रहे हैं। नारी को सन्तुष्ट करने

योग्य कामशक्ति में भी ह्रास होने का रहस्योद्घाटन वहाँ की स्वास्थ्य अन्वेषी संस्थाओं ने किया है। उनका कहना है –''मन:स्थिति पुरुषों की अधिक विचलित रहती है। जहाँ तक काम पुरुषार्थ का प्रश्न है, नारी की तुलना में नर की स्थिति क्रमश: दयनीय होती चली जा रही है।''

संसार के सभी क्षेत्रों में नारी पीड़ित और पददलित रही है। योरोप-एवं अमेरिका भी इसके अपवाद नहीं हैं। शिक्षा और प्रगतिशीलता की बढ़ोत्तरी ने नारी को नर की समानता का अवसर दिया है। उसका पूरा लाभ वहाँ की महिलाएँ उठा रही हैं। वे अधिक सुयोग्य, अधिक समर्थ बनने पर अपना ध्यान केन्द्रित किए हुए हैं। पुरुष के सहयोग का वे लाभ तो उठाती हैं, पर उनकी गुलाम बनने से सर्वथा वे इन्कार करती हैं। पुरुष का लक्ष्य भले ही विलासिता बन गया हो, पर वहाँ की नारी ने प्रगतिशीलता पर ही अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ केन्द्रित की हैं और उसी आधार पर अपनी रीति-नीति निर्धारित की है। यही कारण है कि उनके दृष्टिकोण के अनुरूप प्रकृति उनकी सहायता कर रही है और वे क्रमश: हर क्षेत्र में अग्रणी बनती चली जा रही हैं। शिक्षा, शिल्प, विज्ञान, स्वास्थ्य, साहस, प्रगति हर क्षेत्र में वे पुरुषों की तुलना में अधिक सफलता प्राप्त कर रही हैं। प्रतियोगिता के हर अवसर पर पुरुष की तुलना में उस देश की नारी की सफलता का प्रतिशत क्रमश: बढ़ता ही चला जा रहा है।

जिन देशों में नारी को प्रगति के अवसर नहीं मिल रहे हैं और वह बड़े प्रतिबन्धों के बीच बाधित जीवन जी रही हैं वहाँ स्वभावत: पुरुषों की स्थिति अच्छी और नारियों की गई-गुजरी है। मध्य पूर्व के इस्लाम धर्मानुयायी अपनी स्त्रियों पर पर्दा, बुर्का आदि तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाते रहते हैं। एक-एक पुरुष की बहुत-सी स्त्रियाँ हरम में रखना और उनकी आकांक्षाओं पर प्रतिबन्ध लगाये रहना उस क्षेत्र की परम्परा जैसी बन गई है। यही कारण है कि उन देशों में स्त्रियों का स्वास्थ्य अपेक्षाकृत गिरा हुआ है। मृत्यु दर उन्हीं की बढ़ी-चढ़ी है। साथ ही महिलाओं की संख्या घटती और पुरुषों की बढ़ती जाती है। हर पुरुष को विवाह करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है और गृहस्थी बसाने के लिए भारी जोड़-तोड़ मिलाने पड़ते हैं।

भारत में महिलाओं की मृत्यु संख्या पुरुषों की तुलना में अधिक है। वे ही अधिक कमजोर पाई जाती हैं और बीमार भी अधिक पड़ती हैं। उसका कारण नारी को बाधित और प्रतियन्त्रित करने वाली सामाजिक कुरीतियाँ ही प्रमुख हैं। वे जब तक इसी रूप में बनी रहेंगी– स्वभावत: नारी को दयनीय स्थिति में ही पड़ा रहना पड़ेगा।

अमेरिका का उदाहरण यह सिद्ध करता है कि प्रगतिशीलता ही सफलताओं की जननी है। प्रकृति उन्हीं को आगे बढ़ाती है जिन्हें उत्साह, साहस और पुरुषार्थ का उभार उठता है और महत्वांकाक्षाएँ बढ़ी-चढ़ी रहती हैं। अमेरिकी नारी ने अपने को इस कसौटी पर यहाँ के पुरुषों की तुलना में अधिक अग्रगामी सिद्ध किया है। फलस्वरूप उन्हें प्रकृति ने मुक्त हस्त से सहायता दी है और वे क्रमश: आगे को बढ़ती चली जाती हैं।

अगले दिनों नारी द्वारा विश्व का नेतृत्व किए जाने की सम्भावना इसीलिए अधिक है कि पद दलित वर्ग को अगले दिनों अनीतिमूलक प्रतिबन्धों से छुटकारा पाने का अवसर मिलने ही वाला है। ऐसी दशा में वे अपने को सुविकसित एवं सुयोग्यवर बनाने का प्रयत्न करेंगी, फलस्वरूप प्रकृति का पूर्ण सहयोग भी उन्हें मिलेगा और विश्व के नव-निर्माण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पादित करेंगी।

पुरुष के हाथ में चिरकाल से सर्वतोमुखी शक्ति रही है। नारी का स्वतन्त्र अपहरण करके भी उसी ने अपनी मुट्ठी में रखा है, पर उसका सदुपयोग नहीं किया, वरन् अनीतिमूलक रीति-नीति ही अपनायी है। युद्ध, शोषण और उत्पीड़न में ही प्राय: इसका पुरुषार्थ नियोजित होता रहा है। प्रकृति को यह सहन नहीं। यह उसके हाथ से उतने समय के लिए सत्ता छीनने वाली है, जब तक कि उसे वर्चस्व के सदुपयोग करने की बात समझ में न आ जाय।

विश्व सन्तुलन नारी के पक्ष में जा रहा है। अमेरिका में बढ़ता हुआ नारी वर्चस्व, उस प्रभात-कालीन सूर्योदय के समान है जिसका प्रकाश क्रमश: अधिक प्रखर और अधिक व्यापक ही होने वाला है, हम देखेंगे कि समस्त विश्व में नारी किस प्रकार पिछड़ेपन से अपना पीछा छुड़ाकर प्रगतिशील बनती है और अपनी स्वाभाविक महानता को विकसित करके किस प्रकार विश्व में प्रेम और न्याय का शासन स्थापित करने में योगदान करती है। पुरुष के लिए यह उदाहरण आत्मचिन्तन करने और आत्मसुधार करने का अच्छा अवसर होगा।

नर-नारी का संतुलित समन्वय ही मानव जाति का भविष्य उज्ज्वल करेगा। असुन्तलन दूर होना ही चाहिए। इसे प्रकृति किस प्रकार व्यवस्थित करने जा रही है इसका उभार हमें अमेरिका में देखना चाहिए। विश्व में उसी क्रम के विस्तार की आशा करनी चाहिए। पिछड़ता पुरुष भी आज नहीं तो कल आत्म-ग्लानि अनुभव करेगा और कुमार्गगामिता छोड़कर वह रीति-नीति अपनायेगा, जिसके आधार पर नर-नारी दोनों ही भगवान् के दायीं-बायीं भुजा के रूप में पारस्परिक सहयोग और सद्भाव का परिचय देते हुए सुखी समाज का सृजन कर सकें।

नारी प्रगति के लिए यह भी करना होगा

अनीति करने वालों के लिए 'न्यायतुला' कड़ी प्रताड़ना की व्यवस्था करती है, पर यदि भटका व्यक्ति

समय से पहले चेते और प्रायश्चित के लिए उद्यत हो तो, प्रकृति भी करुणा दिखाती है। सद्भावना बदले में अपनी ही छाया को बुला लेती है। इससे हलके भुगतान से काम चल जाता है और अपयश का माहौल बनने से बच जाता है।

अनीति बरतने वाले शासकों के विरुद्ध राज्य क्रांतियाँ होती रही हैं। सामाजिक अनाचारों के विरुद्ध भी आन्दोलन उभरे हैं। आर्थिक क्षेत्र के शोषक बहिष्कार के भाजन बने हैं और अन्ततः घोर घाटे में रहे हैं। इस सुनियोजित तथ्य को हम में से किसी को भी भुला नहीं देना चाहिए।

नारी की उदार सेवा-साधना नर की अपेक्षा तुलनात्मक दृष्टि से कहीं अधिक है। अपना परिवार छोड़कर दूसरे के घर आजीवन रोटी-कपड़े के मूल्य पर चाकरी करने जाना पड़ता है। बँधुआ मजदूर की जिन्दगी मरते दम तक निभानी पड़ती है। प्रजनन और शिशु पोषण में यौवन की उमंगें उत्सर्जित करनी पड़ती हैं। यह स्थिति लगभग पालतू पशुओं जैसी हो जाती है। मानवाधिकार इसे स्वीकार नहीं करता। इसके लिए निर्धारित मानदण्ड यही है कि- "दूसरे के साथ वह न करें जो अपने लिए पसन्द नहीं।" इसके विपरीत किया गया बरताव कुछ समय तक तो चल सकता है, पर उसका अस्तित्व सदा-सर्वदा बना नहीं रह सकता।

मध्यकाल के अन्धकार युग की लम्बी अवधि बीत गई जिसमें नारी को लगभग क्रीतदासी स्तर का समय गुजारना पड़ा है। पतिव्रत धर्म पालन के नाम पर उसे किसी अनीति के विरुद्ध मुँह खोलने का भी अधिकार नहीं मिला। इतने पर भी ईश्वरीय विधान का अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ है। उसने नारी को पुनरुत्थान का अवसर देने का निश्चय कर लिया है। अगली शताब्दी नारी वर्चस्व की प्रधानता वाली है। पुरुष की अभ्यस्त उद्दण्डता संसार में शांति का वातावरण सहज ही न बनने देगी। इसके लिए नारी की करुणा, ममता और उदारता को भी सन्तुलन बिठाने की भूमिका निभानी होगी। नारी मुक्ति आन्दोलन विद्रोह बन कर तो नहीं फूट सका, पर सुधार-परिष्कार के दूसरे साधन अपने ढंग से बन रहे हैं। शिक्षा संवर्द्धन में नारी को उपेक्षित नहीं रहने दिया जाएगा। अन्य क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण पदों का दायित्व सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जाता देखा जा सकेगा। दृष्टि दोष का उपचार होगा। दासी और अधिपति की परिभाषाएँ बदलेंगी और उसका स्थान एकता, समता ग्रहण करेगी। विश्व के समस्त देशों में नारी ने बहुत हद तक अपने अधिकार प्राप्त कर लिए हैं। पिछड़े देशों को भी उदीयमान समय के साथ चलना होगा। उपेक्षा या विरोध के अवरोध टिक नहीं सकेंगे। एक शताब्दी में कुछ अपवादों को छोड़कर नारी का वर्चस्व न सही, समानता का स्तर तो हर कहीं दृष्टिगोचर होने लगेगा। भवितव्यता के अनुकूल ढल जाने में ही बुद्धिमत्ता है। उचित यही है कि नर इस बहती गंगा में हाथ धो लें। उदीयमान उत्कर्ष में हाथ बँटाकर चलें और अब शोषण का प्रायश्चित कर लें।

बच्चा समयानुसार अपने पैरों पर चलना स्वयं ही सीख लेता है, पर अभिभावकों की भलमनसाहत इसमें है कि उसे खड़े होने, पैरों से चलने में यथासम्भव योगदान प्रदान करें। नारी को अनगढ़ स्थिति में पहुँचाने का दोष जब पूरी तरह नर के अहंकार और औद्धत्य पर जाता है तो न्याय के दिन उसके लिए उचित यही है कि भूल को स्वीकार कर ले और क्षति पूर्ति के प्रायश्चित को स्वेच्छा पूर्वक स्वीकार करे।

छोटे पिंजड़े में कूप मंडूक की तरह रहते हुए उसकी प्रतिभा कुण्ठित हो गई है। उचित यह है कि उसको समाज सम्पर्क में आने और अपनी प्रतिभा से कुछ कहने योग्य पुरुषार्थ करने का अवसर दिया जाय। घर की सीमा में प्रतिबन्धित न नारी रहे, न नर, दोनों को ही बाहर के कामों में हाथ बँटाने का अवसर मिले।

शिक्षा समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। कन्याएँ स्कूल जाएँ, पर प्रौढ़ों के लिए तो उतना समय निकालना कठिन पड़ेगा। उन्हें परिवार के लोग ही पढ़ाकर अपने समान शिक्षित बनाएँ अन्यथा प्रौढ़ शिक्षा की व्यापक व्यवस्था की जाय। हर शिक्षित के लिए दो अशिक्षितों के पढ़ाने की जिम्मेदारी सौंपी जाएँ। आनाकानी करने पर उस पर ऐसे प्रतिबन्ध लगाए जायें जिसमें उन्हें कर्त्तव्यच्युत लोगों की श्रेणी में गिना जाय और हेय दृष्टि से देखा जाय। एक तिहाई शिक्षित यदि दो तिहाई अशिक्षितों को साक्षर बनाने का व्रत लेते हैं तो इसमें प्रायश्चित भी होता है, सेवा-साधना भी बन पड़ती और युगधर्म के निर्वाह का श्रेय भी मिलता है। यह कार्य व्यक्तिगत या सामूहिक संगठित रूप से किया ही जाना चाहिए, जिसमें प्रौढ़ वर्ग के नर-नारियों में से किसी को भी अशिक्षित रहने का अवसर न रहे।

साक्षरता के साथ ही अनिवार्य रूप से जुड़ती है, विचार क्रान्ति। सड़ी-गली विचारधारा के अभ्यासियों को युग के अनुरूप प्रगतिशीलता का वरण करना होगा। इसलिए उपयुक्त मार्गदर्शन मिलना चाहिए। यह कार्य इसी प्रयोजन के लिए बने परिवर्तन पुस्तकालयों द्वारा सम्भव हो सकता है। चल पुस्तकालय इसका सीधा और सही तरीका है। पुस्तकालयों को विद्यालयों का अविच्छिन्न एवं पूरक अंग समझा जाय और उन्हें जहाँ भी स्थापित किया जाय वहाँ प्रबन्ध यह भी किया जाय कि घर-घर हर शिक्षित तक युग साहित्य नियमित रूप से पहुँचाने और वापिस लेने का प्रबन्ध किया जाय। इस क्रम को अपनाये बिना

बहुमुखी विचार क्रान्ति का हर पक्ष प्रकाश में लाया न जा सकेगा। शिक्षा की समग्रता एवं साक्षरता के अतिरिक्त विचार क्रान्ति साहित्य के संयोग से ही सम्भव हो सकती है। नारियों के लिए यह प्रबन्ध विशेष रूप से किया जाय, क्योंकि उनके ऊपर पुरुषों की तुलना में अधिक गर्भधारण, शिशुपालन गृह प्रबन्ध और परिवारों को नर रत्नों की खदान बनाने जैसे कितने ही अतिरिक्त उत्तरदायित्व भी हैं।

इन दिनों नारी का उठने से लेकर सोने तक का पूरा समय गृह कार्यों की व्यस्तता में ही लग जाता है। ऐसी दशा में वे व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण के क्षेत्र में अतिरिक्त दायित्वों का निर्वाह कैसे कर सकें ? तरीका एक ही है गृह कार्यों के लिए नियत, सीमित समय लगे और शेष समय को अन्त महत्त्वपूर्ण कार्यों में लगाने का अवसर दिया जाय। इसके लिए भले ही एक समय भोजन बनाने और दूसरे समय के लिए तैयार की हुई सामग्री रखे रहकर ही क्रम क्यों न चलाया जाय। दूसरा तरीका यह हो सकता है कि घर के सभी सदस्य मिलजुल कर गृह कार्यों को हिलमिल कर हँसी-खेल की तरह निबटा लिया करें। इसमें भी यह सुझाव दिया जा सकता है कि नारी को निरन्तर कोल्हू का बैल बनकर पिसते न रहना पड़े।

अभ्यस्त ढर्रे ने नारी की महत्वाकांक्षाओं को एक प्रकार से सीमित कर दिया है। वे ढर्रे में पिसते रहने के अतिरिक्त अपनी और कोई प्रगति देखना तो दूर सोचती तक नहीं। युग के सचेतकों को उनकी आकांक्षा और सक्रियता को कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करने में लगाना चाहिए। अच्छा हो विवाह की आयु बढ़ाई जाय ताकि वे शारीरिक एवम् मानसिक दृष्टि से अधिक सुयोग्य बनने का अवसर प्राप्त करें। विवाह के उपरान्त दाम्पत्य जीवन की इस प्रकार सुव्यवस्था की जाय, जिससे प्रायः पाँच वर्ष प्रजनन का नया भार न पड़े। इस अवधि में वे अपनी योग्यता बढ़ाने, पति के कार्यों में हाथ बँटाने के साथ समाज सेवा के क्षेत्र में बहुत कुछ काम कर सकती हैं। विवाह होते ही यदि प्रजनन का भार लद पड़े तो समझना चाहिए कि महिला का अनेकानेक दिशाओं में प्रगति कर सकने का अवसर प्रायः सदा सर्वदा के लिए समाप्त हो गया।

वातावरण ऐसा बनना चाहिए जिसमें विवाह और प्रजनन को सम्बद्ध न किया जाय। विवाह करने के उपरान्त भी कुछ वर्ष प्रगति के लिए सुरक्षित रखे जा सकते हैं और उन दिनों प्रजनन से विरत रहा जा सकता है।

सार्वजनिक लोकसेवा के कार्यों में प्रायः पुरुष ही अग्रगामी रहते हैं। महिलाओं को न तो उसके लिए उत्साह होता है, न अवसर। परिवर्तन की इस वेला में ऐसा उपाय भी निकाला जाना चाहिए जिसमें पुरुषों की तरह महिलाएँ भी सार्वजनिक सेवा के महत्त्वपूर्ण कार्यों में लग सकें और उसके लिए उपयुक्त योग्यता अर्जित कर सकें।

पिछले दिनों ग्राम पंचायत चुनाव क्षेत्र में महिलाओं ३० प्रतिशत आरक्षण मिला है। नौकरियों, विधान सभाओं, लोक सभाओं में भी उन्हें ऐसा अवसर मिल सकता है, पर इसके लिए अपनी योग्यता तो बढ़ाने ही पड़ेगी, अन्यथा सौंपे हुए दायित्वों को समझना और उन्हें पूरा कर सकना उनसे बन ही नहीं पड़ेगा।

युगोस्लोवाकिया, हंगरी, बुल्गारिया, इजरायल, रूस जैसे देशों में महिलाएँ गृह-व्यवस्था के अतिरिक्त कृषि और पशुपालन के कामों को भी अच्छी तरह निभाती रहती हैं। मर्द दफ्तरों और कारखानों में काम करते हैं। व्यवस्था, शिक्षा क्षेत्र को दोनों वर्ग मिलजुल कर सम्भालते हैं। क्या ऐसा अपने देश में नहीं हो सकता?

पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, पुत्र और पुत्री के बीच बरता जाने वाला भेद-भाव, दहेज, जेवर वाली, धूम-धाम की खर्चीली शादियाँ, ऐसी कुप्रथाएँ जिनके कारण नारी का पिछड़ापन हटता-घटता नहीं, वरन् और भी अधिक बढ़ता जाता है। इन कुरीतियों के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन की आवश्यकता है। इसमें मात्र नर ही सब कुछ न करता रहे, वरन् महिलाओं को भी तनकर खड़ा होना होगा और उन्हें उन मान्यताओं से पीछा छुड़ाना होगा, जिन्होंने नारी को इन दिनों अपंग, अभावग्रस्त स्थिति में लाकर रख दिया है।

नारी को उपेक्षित न रखा जाए

नारी की उदारता, सहनशीलता उसकी गरिमा को भले ही बढ़ाती हो, पर उसे शारीरिक दृष्टि से असाधारण घाटे में रखती है। नारी को नर की तुलना में अनुपयोगी एवं उपेक्षित माना जाता है। फलतः उसके स्वास्थ्य पर भी कम से कम ही ध्यान दिया जाता है। संकोचशील स्वभाव होने के कारण वे अपनी कठिनाई दूसरों के सामने व्यक्त भी नहीं करतीं और जो भुगतना पड़ता है, उसे मन मानकर सहती रहती हैं।

खुली हवा और धूप का लाभ उन्हें कम से कम मिलता है। जिन घरों में उन्हें रहना पड़ता है वे छोटे होते हैं और रसोई से लेकर स्टोर, सामान, बर्तन, खाद्य-पदार्थ, नालियाँ, शौचालय आदि सब कुछ थोड़ी ही जगह में ठुसा रहता है। हर सामान से अपनी-अपनी तरह की गंध निकलती है और उस सबका मिला-जुला सम्मिश्रण ऐसा होता है जिसमें निरन्तर निवास करने पर स्वास्थ्य रक्षा कठिन हो जाती है।

स्त्रियों के हिस्से में बचा-खुचा भोजन आता है। पुरुषों और बच्चों से बचा हुआ ही उनके हिस्से में आता है। इस महँगाई में गुजारा करते हुए बचे भोजन को फेंकते नहीं बन पड़ता। बासी कुसा होने पर घर की महिलाएँ ही खाती रहती हैं। इस प्रकार आहार और निवास की दृष्टि से उन्हें घाटे में रहना पड़ता है।

इन दिनों महिलाओं के स्वास्थ्य परीक्षण करने पर जो निष्कर्ष निकले हैं उनमें प्रायः आधी 'रक्ताल्पता' से पीड़ित पाई गई हैं। इसका बड़ा कारण है शरीर में अन्न, जल और वायु के माध्यम से समुचित मात्रा में पोषण

तत्व का न पहुँचना। जाँच करने पर ४९ प्रतिशत महिलाएँ कुपोषण की, रक्ताल्पता की शिकार पाई गई हैं। इसमें निर्धन वर्ग की ही नहीं, सम्पन्न परिवारों की महिलाएँ भी सम्मिलित हैं।

इसका एक कारण यह भी है कि उन्हें मासिक स्राव के रूप में हर महीने लोहा, कैल्सियम जैसे तत्वों से हाथ धोना पड़ता है। गर्भवती होने पर शिशु शरीर का निर्माण माता के शरीर के बहुमूल्य तत्वों से ही होता है। प्रसव के समय जो कठिनाई पड़ती है, उसका भी किसी बड़े आपरेशन से कम दबाव नहीं पड़ता। उन दिनों जो रक्त स्राव होता है और घाव पुरते हैं उसमें भी जीवनी-शक्ति का एक बड़ा अंश निकल जाता है।

होना यह चाहिए कि इस क्षतिपूर्ति के लिए उन्हें समुचित विश्राम मिले और ऐसे सुपाच्य आहार की व्यवस्था हो जो पेट पर अनावश्यक भार डाले बिना सरलता पूर्वक हजम होता रहे। यदि इस संदर्भ में उपेक्षा बरती गई तो समझना चाहिए कि नारी के द्वारा मिलने वाले बहुमुखी लाभों से समूचे परिवार को वंचित रहना पड़ेगा, जिसमें वे शिशु भी सम्मिलित हैं, जो पूरी तरह माता के ऊपर ही खुराक और देखभाल के लिए निर्भर रहते हैं।

नारी पराये घर से आई सेविका मात्र है, इसलिए उस पर जितना कम खर्च पड़े उतना ही लाभ है, यह सोचना मूर्खतापूर्ण है। गाय के चारे, दाने में कटौती करके किसान घाटे में रहता है। न उससे अच्छे बछड़े मिलते हैं और न पर्याप्त मात्रा में दूध। ऐसी दशा में उस कटौती को नासमझी ही माना जा सकता है।

नारी की संकोचशीलता भी इस दृष्टि से हानिकारक है कि आहार-विहार में व्यतिक्रम होने पर उस अकेली को ही नहीं परिवार के हर सदस्य को घाटा उठाना पड़ता है। दुर्बल, अशक्त, उदास और कुपोषण ग्रस्त नारी अपनी स्वस्थ्यता, स्फूर्ति, कार्य-शक्ति, सुन्दरता और प्रसन्नता जैसी सभी विशेषताओं से रहित, अनाकर्षक बनती जाती है। फलतः वह परिवार की वैसी सेवा नहीं कर सकती, जैसी उससे आशा-अपेक्षा की जाती है।

समूचे परिवार का कर्त्तव्य है कि नारी को उस पोषण से वंचित न रहने दें जिसका कि लाभ घर में सभी लोगों को अपने-अपने ढंग से मिलता है।

नारी को गिरी स्थिति में न रहने दिया जाए

जिस घर, समाज या देश में नारियों ने सम्मान पाया है वहाँ देवताओं ने वास किया और वही उन्नति के पथ में अग्रसर रहे हैं। प्राचीनकाल में नारियाँ योग्य एवं कर्त्तव्यशील होती थीं। जो देश की सेवा के लिए समझदार, स्वस्थ और साहसी बच्चे जन्म देती थीं, आज उन्हीं का यश देश में गूँज रहा है। धन्य हैं, वे माताएँ, जिनके वीर सपूतों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सीनों पर गोलियाँ खाईं, बलिदान हुए और हँसते-हँसते प्राण दिए और रणक्षेत्र में कभी पीठ नहीं दिखाई। यह श्रेय उनकी वीर एवं विदुषी माताओं को ही है।

वैदिक और उपनिषद काल में यहाँ की नारियाँ विद्या, कला, अध्यात्म, शूरवीरता आदि गुणों में बढ़ी-चढ़ी थी, और उनके प्रभाव से उनकी सन्तान भी संसार में महान कार्य भी करके दिखलाने में समर्थ होती थीं, जिनके ज्वलन्त उदाहरण राम, कृष्ण, परशुराम, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि हैं।

मध्यकाल में उनको ऐसे बन्धनों से जकड़ा कि वे योग्यता शून्य हों, केवल घरेलू काम-काज तथा सन्तानोत्पादन तक ही सीमित रह गईं। परिणामस्वरूप सारी कुरीतियों का कारण यही युग कहा गया। बाल- विवाह, पढ़ना-लिखना अनावश्यक और पर्दा प्रथा का चलन प्रारम्भ हो गया, जो आज तक बने हैं। परिणाम स्वरूप अवनति और पतन ही होता रहा।

आधुनिक काल में कुछ शिक्षित लोगों ने स्त्रियों को सुशिक्षित, शारीरिक और मानसिक दृष्टि से योग्य बनाना, सार्वजनिक क्षेत्र में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकने का अवसर देना आवश्यक माना है। यदि कोई स्त्री अपनी लगन और परिश्रम से उन्नति करके बड़े कामों में भाग लेने लग जावे; तो उसे अच्छी निगाह से नहीं देखते और दोष ढूँढ़ने की चेष्टा में रहते हैं। यह मनोवृत्ति देश और समाज की प्रगति के लिए घातक है, किन्तु हमें भारतीय संस्कृति के अनुकूल नारी सुलभ गुणों की रक्षा करते हुए उनको ज्ञान-विज्ञान, कला आदि गुणों से विभूषित करने का प्रयास अनिवार्य है, ताकि वे आवश्यकता पड़ने पर सामाजिक व्यवस्था के कार्यों को ठीक ढंग से चला सकें।

कर्त्तव्य और अधिकार की दृष्टि से स्त्री-पुरुष की साझीदारी है। प्राचीनकाल में यह नियम था कि कोई भी यज्ञ, हवन या धार्मिक काम बिना पत्नी के सहयोग के नहीं किया जा सकता था। अनेक स्त्रियाँ तो ज्ञान और भक्ति की दृष्टि से आगे बढ़कर पुरुषों का मार्गदर्शन करती थीं। बड़े-बड़े पंडितों तथा ऋषियों से शास्त्रार्थ भी करती थीं। आवश्यकता पड़ने पर वे देश-रक्षा और समाज संचालन के कार्यों में नेतृत्व भी करती थीं। अर्द्धांगिनी को सहधर्मिणी कह सम्बोधित किया जाता है, इस प्रकार नारी और पुरुष मिलकर एक इकाई बनते हैं, क्योंकि दोनों आधे-आधे हैं। सहधर्मिणी के रूप में नारी का यह कर्त्तव्य एवम् अधिकार आवश्यक हो जाता है कि धर्म-मर्यादा का पालन स्वयं करें और पुरुषों से भी करायें।

वर्तमान युग में विवाह प्रथा में इतने दोष आ गये हैं, कि जिसका दुष्परिणाम स्त्रियों को भोगना पड़ रहा है, जो प्राचीनकाल में नहीं था। बाल-विवाह नहीं थे। अनमेल विवाह नहीं होते थे। कन्याओं को विवाह के समय अपने

पति के चुनाव के सम्बन्ध में स्वयं अधिकार था, जो आजकल की तरह निन्दनीय नहीं माना जाता था। स्वयंवर होते थे। क्षत्रियों में गन्धर्व-विवाह की प्रथा भी थी। यही कारण था कि उस समय भारतीय समाज सब तरह शक्तिशाली और सब जातियों का अगुवा बना हुआ था और उसकी आन्तरिक तथा बाह्य स्थिति सब प्रकार से सुदृढ़ थी।

रामायण और महाभारत के समय तक स्त्रियों की स्थिति समाज में काफी उच्च थी। राजा जनक के दरबार में होने वाले याज्ञवल्क्य और गार्गी के शास्त्रार्थ का वर्णन पढ़कर ऐसा जान पड़ता है कि यह स्त्रियों की उन्नति का सुवर्ण-काल था, जबकि गार्गी की विद्वत्ता का यह एक सुदृढ़ प्रमाण है कि उसने दो प्रश्नों द्वारा याज्ञवलक्य का मुकाबला किया और बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों और ऋषियों से कह दिया कि- "यदि याज्ञवल्क्य मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सके तो फिर तुम में से कोई इन्हें न हरा सकेगा।" परिणाम यह हुआ कि उसके पश्चात् किसी ने याज्ञवल्क्य के सामने आने का साहस नहीं किया।

महाभारत के पश्चात् देश पर विदेशी आक्रमण होने लगे। सामाजिक नियम बदल गये और कुरीतियाँ बढ़ चलीं। स्त्रियाँ शिक्षा, विद्या, सामाजिक अधिकारों से वंचित रखी जाने लगीं। वे पुरुषों के आश्रित पूर्ण रूप से हो गईं। इस समय मुसलमानी शासनकाल था, जिसमें पर्दा की एक नई बुराई और पैदा हो गई, जिससे स्त्रियाँ घर के अन्दर लुंज-पुंज प्राणी की तरह दिन काटने लगीं।

उन दिनों बाल-विवाहों का आरम्भ शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों की हीनावस्था ही है। लड़कों की शिक्षा की अपेक्षा लड़कियों की शिक्षा में संरक्षक उतनी रुचि नहीं रखते, और कुछ व्यक्ति ध्यान देते भी तो जितनी उच्च शिक्षा दी जाएगी उतनी ही उसके विवाह की समस्या कठिन होती जाएगी। अब यदि लड़की बी० ए० पास है तो लड़का एम० ए० पास तलाश करना होगा, यही दहेज का अभिशाप पीछे पड़ा है। भारतवर्ष के इतिहास से प्रकट होता है कि इस विकास का क्षेत्र यहाँ के नर-नारियों के सम्मिलित उद्योग पर ही निर्भर था। उन्होंने विश्व के अन्य देशों के सामने भी ऐसा आदर्श उपस्थित किया जिस पर चलकर वे उन्नति कर सकें और सब प्रकार की दुष्ट प्रवृत्तियों से बच सकें।

प्राचीनकाल में देवताओं का वर्णन करते हुए उनकी देवियों को उनके समान ही शक्तिशाली वर्णन किया है। यथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश के साथ लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा आदि देवियों को भी शक्ति का वास्तविक स्रोत बतलाया गया है। अवतारों में राम-कृष्ण का नाम लेने के पहले उनकी पत्नी का नाम जोड़ते हैं, यथा सीताराम, राधेश्याम आदि।

पर खेद है कि अब उपर्युक्त परिस्थिति में बहुत अन्तर आ गया है। स्त्री का स्थान पुरुष से पिछड़ा माना जाने लगा है। उसका व्यक्तित्व नष्ट हो गया और अब पुरुषों की छाया मात्र रह गई है। यों पिछले वर्षों में इस स्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ है और अनेक स्त्रियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर ऊँचे-ऊँचे पदों पर कार्यरत हैं, पर इनकी संख्या अंगुलियों पर गिनने लायक ही है, शेष का मुख्य कार्य परिवार के लिए रसोई करना और सन्तानोत्पादन ही रह गया है। ऐसी स्त्रियाँ दासता से छुटकारा नहीं पातीं और उन्हें अनेक अन्याय और अत्याचार सहन करने पड़ते हैं।

इन बुराइयों का दुःष्परिणाम केवल नारी को ही नहीं, वरन् सारे परिवार और समाज को भी भोगना पड़ता है। ज्ञान से वह शून्य रहती है उसे कदम-कदम पर ठगे जाने या विपत्ति आ जाने की शंका रहती है। पर्दा-प्रथा रखी जाने से उसकी स्वतन्त्रता में बाधा आती है और बाहर कहीं जाने को उसके साथ पहरे की आवश्यकता पड़ती है। उस पर से विश्वास हट जाता है, पर यह एक अनैतिकता है। झूठा, चोर या दुष्कर्मी प्रायः दूसरों को इसी प्रकार समझता है। नारियों को इस प्रकार हीनावस्था में पहुँचाने का परिणाम बड़ा दूरगामी हुआ है। इससे हमारा आधा राष्ट्र अकर्मण्य और कर्तव्यशून्य बन गया जिससे राष्ट्र को बड़ा धक्का पहुँचा है।

भारत वर्ष ही एक ऐसा देश है जो पतिव्रत पर विशेष जोर देता है। यदि स्त्रियों का आदर्श पतिव्रत धर्म है, तो यह देखना भी आवश्यक है कि पुरुष पत्नीव्रती है या नहीं ? यह एक-दूसरे के पूरक हैं। एकांगी आत्म-समर्पण संयम नहीं। राम के पत्नीव्रत के प्रभाव से सीता भी पतिव्रत पर ऐसी अटल-अचल रहीं कि आज तक सतीत्व की रक्षा के लिए उनका उदाहरण दिया जाता है।

सैकड़ों वर्षों की काली रात के पश्चात् अब हमारे देश में नवप्रभात का प्रकाश बिखरा और यह प्रस्ताव हो रहे हैं कि शासन व्यवस्था अब स्त्रियों के हाथ सौंपी जावे, वहीं शान्ति स्थापित का कार्य करने में समर्थ हो सकती हैं। महात्मा गाँधी का वचन है कि- "स्त्री साक्षात् त्याग मूर्ति है। वह अबला नहीं, सबला है। जिस समय पाशविक शक्ति के अन्धयुग का अन्त होगा और मनुष्य अपने आध्यात्मिक स्वरूप को अनुभव करके न्याय-नीति के आधार पर नये संसार का निर्माण करेगा, तब निश्चय नारी का प्रमुख स्थान रहेगा।"

नारी को इतना न छला जाए

दिन-दिन गिरती हुई नारियों की दशा देखकर जब उस पर विचार किया जाता है तो यही पता चलता है कि यह स्वार्थी पुरुषों द्वारा जाने-अनजाने एक लम्बे समय से छली जा रही है। नारी के प्रति बहुत से व्यवहार उसके विकास के विरुद्ध एक प्रकार के मोहक षड्यन्त्र जैसे लगते हैं जिसमें बेचारी अबोध अबला फँसती, पिसती चली आ रही है और आज भी मुक्त नहीं हो पा रही है। कितना अच्छा हो कि पुरुष अपने स्वार्थ के लिए

षड्यन्त्र करना बन्द कर दे जिससे कि समाज का यह अर्द्धांग भी विकसित एवं उन्नत हो सके।

अकाल वृद्धा, बुझे रूप, ढले शरीर, जर्जर स्वास्थ्य, रुग्ण नारियाँ जो देखने में आती हैं, वे सब अधिक प्रजनन की मारी हुई होती हैं। हाथ में शीशी, शिथिल चाल, सूखे ओंठ, वधू के योग्य वस्त्र जिस श्वेत केशिनी को देखें समझ लें कि यह वह तरुणी है जो बहुसन्तान की सौभाग्यवादिता के षड्यन्त्र में फँसी पुरुष की वासना की मारी अकाल वृद्धा है जो अशिक्षा, अज्ञान और अंधविश्वास के कारण अपने अस्तित्व को भूले हुए अपने को इसी योग्य समझती है।

कितना जरूरी है कि नारी को बहुसन्तान की सौभाग्यशीलता के षड्यन्त्र से मुक्त कर स्वास्थ्यपूर्ण, सुन्दर जिन्दगी जीने दी जाये जिससे वह अपने स्वाभाविक सौन्दर्य एवं शारीरिक सौष्ठव को सुरक्षित रख सके और आदि से अन्त तक अकाल कंकाल के बजाय मानवी मालूम हो सके। परिवार नियोजन के पुण्य से उसे पवित्र किया जाये जिससे वह केवल एक दो संतानों को रुचि से पाल सके और अपने वात्सल्य को बिन्दु-बिन्दु बाँटने के बजाय एक स्थान पर केन्द्रित कर उसका सुख ले सके और स्वस्थ सुयोग्य सन्तान की जननी होने का गौरव पा सके, इसी में परिवार, समाज तथा राष्ट्र की भलाई है।

साहित्यकार और कलाकार उसमें भी विशेषकर कवि, कहानीकार तथा चित्रकार तो नारी पर कृपा करें ही। उनकी लेखिनी और तूलिका नारी के जिस उद्दीपक रूप का चित्रण करने में संलग्न है, वह राष्ट्र की जननी के प्रति इतना भीषण षड्यन्त्र है जो समग्र राष्ट्र के आमूल पतन का कारण बनता जा रहा है। यह स्पष्टोक्ति अतिशयोक्ति नहीं कही जा सकती कि नारी को विलासिनी और पुरुष को कामुक बनने के लिए बढ़ावा देने में इन लेखों तथा लेखकों का बहुत बड़ा हाथ है। शृंगारिक कविताएँ, प्रेम-परक कथाएँ और उद्दीपक चित्रों ने तो नारी के पवित्र तप को ही छिपा डाला है। कवियों की उपमाओं रूपकों तथा अलंकारों, शशिमुखी, लवंगलता, पिकबैनी, गजगामिनी, सुकुमारी, लाजवती, सुन्दरी, सुनमनी, प्रेयसि, प्रयणमती, प्राणप्रिया आदि के ठगोरे सम्बोधनों ने तो नारी की अकल ही काट दी है। उसे सुनहरे और जादू जैसे स्वप्नों में खोकर आत्म-विस्मृत ही कर दिया है, जिससे वह पुरुष की वासना के अधिकाधिक अनुकूल बनकर उपयोगी सर्वस्व को निरुपयोगी बनाती चली जा रही है। कथाकारों ने तो उसे प्रेम की उस मरुमरीचिका में भुलाया है जहाँ जाकर उसका फिर सुरक्षित लौटना सम्भव नहीं। वह पुरुष के उस भ्रामक तथा अव्यावहारिक प्रेम को पाने के लिए अपना कितना और क्या कुछ गँवाकर कैसी बनती जाय, इसका विचार हृदय कँपा देता है।

कहना न होगा कि नारी के विरुद्ध जितनी जल्दी इन सौन्दर्य एवं सहानुभूतिमूलक षड्यन्त्रों को खत्म कर दिया जायेगा, उतना शीघ्र ही समाज एवं राष्ट्र का कल्याण होगा।

नारी इस स्थिति में अब रहेगी नहीं

अब से एक सौ वर्ष पहले कानून के क्षेत्र में नारी को नर की बराबरी का दर्जा मिला हुआ नहीं था। विवाहिता होते हुए भी उसकी वास्तविक स्थिति ऐसी थी मानो वह किसी पराये घर में रोटी-कपड़े के मूल्य पर अपना शरीर और मन बेचने के लिए बाधित हो और जब कभी संकट की घड़ी सामने हो तो उसका कोई साथी न हो। न ससुराल पक्ष, न पिता पक्ष और न न्यायालय। उसे आश्रयहीन और अधिकारहीन समझा जाता था।

तलाक के लिए कोई लम्बे-चौड़े सबूत नहीं जुटाने पड़ते थे। पति का इतना कह देना ही पर्याप्त था कि वह मुझे पसन्द नहीं, मेरा कहना नहीं मानती या दुराचारिणी है। इन बातों के अकाट्य प्रमाण तो कोई विरला ही जुटा पाता था। पति के कथन को ही समाज या अदालत स्वीकार कर लेते थे। साथ ही पति को इस बात के लिए बाधित नहीं करते थे कि वह उसके लिए उतने गुजारे का प्रबन्ध करे जिसके सहारे वह शेष जीवन जी सके। यह प्रथा अनेक देशों में थी और अब भी है।

इस स्थिति से होकर जिन्हें गुजरना पड़ता है, उन पर क्या बीतती है, इसे भुक्तभोगी ही जानते हैं। ससुराल वाले इसलिए सहायता नहीं करते कि जब पति को ही उसकी आवश्यकता नहीं रही तो हम क्यों उसका भार उठायें। पिता और घर के लोग इससे पहले ही बाल-बच्चे वाले हो चुके होते हैं और उनके लिए अपना घर चलाना ही मुश्किल पड़ता है । फिर मनुष्य का स्वभाव है कि जिससे प्रत्यक्ष लाभ नहीं होता, जिसे रखने में पैसों का नुकसान उठाना पड़ता है, उसे क्यों सहारा दें?

लड़कियों को बचपन से ही हेय समझा जाता है। इस व्यवहार का अन्तर वे पग-पग पर देखती हैं कि लड़के कितना मान पाते हैं और लड़कियाँ किस प्रकार दुत्कारी जाती हैं। इस स्थिति में उनका मनोबल एक प्रकार से टूटा ही रहता है। न वे अनीति का विरोध करने के लिए साहस जुटा पाती हैं और न स्वावलम्बन के लिए कोई कारगर प्रयास। ऐसी दशा में वे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष जीवन में घुटन भरा जीवन जीने के लिए बाधित रहती हैं सुहागिनें होने पर भी। विधवा होने पर तो उन पर कैसा वज्र टूटता है, इसे इतिहास के पन्नों पर, आज के वातावरण पर दृष्टि डालने से सहज ही समझा जा सकता है।

विभिन्न देशों की रिवाजें, प्रथाएँ पृथक्-पृथक् हैं, पर कहीं भी ऐसी स्थिति नहीं है जिसे देखकर यह कहा जा सके कि स्थिति वैसी ही है जैसी कि भगवान् ने बनाई। दोनों में कुछ प्रजनन अंगों की बनावट के अतिरिक्त ऐसा कोई भेद नहीं किया है जिसके कारणयह कहा जा सके कि इनमें कोई श्रेष्ठ है या निकृष्ट। फिर भी प्रचलन तो प्रचलन ही ठहरा।

इन दिनों प्रगतिशील देशों में योरोप को अनन्य औचित्य समर्थक माना जाता है, पर वहाँ भी अब से प्रायः सौ वर्ष पहले ऐसी स्थिति थी कि चुनावों में उन्हें मत देने का अधिकार नहीं था। समझा जाता था कि उनमें समझ नहीं होती इसलिए वे यह निर्णय कैसे कर सकेंगी कि शासन व्यवस्था में प्रतिनिधित्व करने लायक कौन हैं कौन नहीं? इस माँग को लेकर समानता की बात उठाई गई। विभिन्न देशों में प्रबल आन्दोलन हुए और पूछा गया कि महिलाओं में क्या कमी है, जिसके कारण उन्हें देश के शासन के प्रति भला-बुरा सोचने से रोका गया है। एक-एक करके अनेक देशों ने उस माँग का औचित्य स्वीकारा और अब वही स्थिति आई है जिससे वे वोट देने वालों में सम्मिलित हो सकें। यह सब अचानक नहीं हो गया। इसके लिए मेरी वाल्टोन क्राफ्ट को लगातार सारा जीवन संघर्ष करना पड़ा। इस संदर्भ में उन्होंने 'थाट ऑफ द एजूकेशन ऑफ आर्ट्स', 'राइट्स ऑफ वीमेन' आदि किताबें लिखीं और आन्दोलन को संगठित करने, व्यापक बनाने की दृष्टि से विश्व के प्रायः समस्त देशों में घूमीं और वहाँ की प्रतिभाशाली महिलाओं से मिलीं। उसका प्रतिपादन था कि नारी-पुरुष की दासी नहीं वरन् सहयोगिनी मात्र है। वे मरीं तब अपनी बेटी को कह गयी कि व्यक्तिगत सुविधा को ध्यान में रखते हुए विवाह करने की अपेक्षा यह अच्छा है कि जब तक जीवित रहे संघर्ष और आन्दोलन करती रहे।

उन दिनों सन्तान पर पिता का ही पूरा अधिकार था। दुधमुँहे बच्चों को भी पिता छीन लेते थे और उन्हें इस प्रकार सताते थे कि उसकी माँ से पूरा-पूरा प्रतिशोध लिया जा सके। यह कानून भी उसी संघर्ष के फलस्वरूप सुधरा और माताओं को अपने बच्चों को साथ रखने का अधिकार मिला।

इन दिनों संसार में लड़कियों की शिक्षा नहीं के बराबर थी। मात्र सम्पन्न लोग ही अपने घर पर उन्हें पढ़ाने का प्रयत्न कर पाते थे। आन्दोलन ने तेजी पकड़ी तो लड़कियों को स्कूलों में भर्ती होने का ही नहीं, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें लड़कों के साथ पढ़ने का अवसर मिला। उन दिनो लड़कियाँ पशुओं की तरह बिकती थीं और किसी भी आयु के धनी लोग उन्हें खरीदकर ले जाते थे। कानूनी सुधार के सिलसिले में आयु के बीच का अन्तर भी तय हुआ और विवाह में लड़की की सहमति भी आवश्यक मानी गयी।

सुधार योरोप अमेरिका से आरम्भ हुआ, पर उसका प्रभाव एशिया, अफ्रीका पर भी किसी न किसी रूप में पड़ा। अतः इन क्षेत्रों में भी स्त्री शिक्षा बढ़ रही है और विवाह के सम्बन्ध में भी इस प्रकार बाधित नहीं किया जाता, जैसा कि उन दिनों किया जाता था। तलाक की स्थिति में नारी अपना शरीर लेकर ही निकल जाती थी, न उसे जीवनभर की कमाई में कोई अंश मिलता और न बच्चों को ही वह साथ रख सकती थी। इन प्रतिबन्धों में अब धीरे-धीरे कमी हो रही है और रूढ़िवादी लोग भी यह विचारने के लिए विवश हो रहे हैं कि नारी भी आखिर मनुष्य है और उसे भी मनुष्योचित अधिकार मिलने चाहिए।

एक समय था जब कोई बड़ा आदमी मरता था, तो उसकी बीवियाँ, रखैलें सभी जीवित स्थिति में लाश के साथ कब्र में गाड़ दी जाती थीं। भारत में भी कुछ समय के लिए मुर्दों के साथ उनकी पत्नियों के जलाये जाने का रिवाज चला। अब यह प्रथाएँ समय के प्रभाव में अपने आप बन्द होती जा रही हैं। प्रतिबन्धक कानून भी बन रहे हैं। फिर भी उनका सामान्य मूल्य यह नहीं है, जो पुरुष की तरह आजादी से कोई व्यवसाय या नौकरी कर सके। स्वास्थ्य, अनुभव एवं शिक्षा के अलावा भी वे जहाँ भी गुजारा करती हैं किसी प्रकार अपनी जिन्दगी के दिन ही गुजारती हैं।

समस्या आधी मनुष्य जाति की है। वे सामाजिक, शारीरिक और बौद्धिक दृष्टि से पिछड़ी रहेंगी तो अपने जीवन की नाव तक ठीक तरह से न खींच सकेंगी। फिर क्या तो परिवार के लिए सहायक सिद्ध हो सकेंगी और कैसे बच्चों को सुयोग्य बना सकेंगी?

संसार के सामने अनेक समस्याएँ हैं । उन्हें हल करने के लिए प्रयत्न भी अनेक दृष्टिकोणों से किये जा रहे हैं, पर नारी की स्थिति को नर के समान लाने के लिए जितने गम्भीर प्रयत्न होने चाहिए उस दिशा में अभी प्रयत्न आरम्भ नहीं है। जहाँ प्रतिबन्ध ढीले हैं, वहाँ तो भी नारी ने अपने बलबूते प्रगति के कुछ प्रयत्न किये हैं, किन्तु जहाँ पुरुषों की प्रतिगामिता बढ़ी-चढ़ी है, वहाँ उनके प्रयत्नों में पग-पग पर अड़ंगे अटकाये जाते हैं।

जो हो संसार भर में न्याय की आवाज उठी है और समता का नारा हर क्षेत्र मे बुलन्द हुआ है। आर्थिक विषमताएँ अभी चल रही हैं, पर वह बहुत समय तक जीवित न रहेगी। इसी प्रकार विश्वास करना चाहिए कि लोकमत नारी को कहीं भी उस स्थिति में न रहने देगा जिसमें कि आज वह है।

नारी का यह उत्पीड़न कब तक चलता रहेगा ?

आज न जाने कितनी शताब्दियो से भारतीय नारी अन्याय एवं अत्याचार सहती चली आ रही है। समय बहुत कुछ बदल जाने पर भी नारी पर किये जाने वाले अत्याचारो की अब भी इतिश्री नहीं हो रही है । नारी

को पुरुष से नीचा स्थान देना तो मानो एक शाश्वत् सत्य बन गया है। सरकार ने यद्यपि नारी पुरुष की समानता घोषित करने वाले कतिपय नियम बनाये अवश्य हैं, किन्तु व्यवहार रूप में उनका पालन कितना किया जाता है ?

नर-नारी के बीच इस लिंग भेद के साथ बाल-विवाह, अनमेल विवाहों की कुप्रथाएँ आज भी समाज से दूर नहीं हो पाई हैं। आये दिन आठ-आठ, दस-दस साल की अबोध बालिकाओं को पत्नी बना दिया जाता है। जहाँ उन्हें पहनना, ओढ़ना भी ठीक से नहीं आ पाता, उन्हें अपने नारीत्व का बोध भी ठीक से नहीं हो पाता, वहाँ उन पर गृहस्थी का भार डाल दिया जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि कलिका खिलने से पहले ही मुरझा जाती है। उनका मानसिक तथा बौद्धिक विकास तो दूर, शारीरिक विकास भी ठीक से नहीं हो पाता कि पत्नीत्व का भार वहन करना पड़ जाता है। बाल-विवाह की यह कुप्रथा बालिकाओं के भयानक रोगों, रोगी तथा अधूरे प्रजनन और अकाल मृत्यु के रूप में विष-फल उत्पन्न करती है।

यह बात ठीक है कि बाल-विवाह के दुष्परिणाम से लड़के भी अछूते नहीं रह पाते, उन्हें भी अनेक प्रकार के रोगों तथा विकृतियों को सहन करना पड़ता है, किन्तु अधिक प्रभाव लड़कियों पर ही पड़ता है। एक तो वह अबोध कच्ची उम्र में ही परायों के बीच पहुँच जाती हैं, जहाँ जल्दी अपरिचित परिस्थितियों से सामंजस्य नहीं कर पाती। अपरिपक्वता के कारण कदम-कदम पर भूलें और त्रुटियाँ होती हैं जिससे सास, श्वसुर तथा नन्द, जेठानी का कोपभाजन बनना पड़ता है। नासमझ होने से सब लोग उसे दबाये रहते हैं और वह बेचारी मृगछौने की भाँति सब कुछ सहती रहती हैं। ऐसी दशा में उसके मानसिक कष्टों की कल्पना नहीं की जा सकती।

यह बाल-विवाह की जल्दी लड़के वालों की तरफ से नहीं होती। लड़की वाले की ओर से ही हुआ करती है। न जाने ऐसी कौन-सी मुसीबत हो जाती है कि लोग जल्दी से जल्दी लड़की को घर से खदेड़ने के लिए व्यग्र हो उठते हैं। कुछ शताब्दियों पूर्व आक्रान्ताओं के भय से लोग लड़कियों की शादी जल्दी कर दिया करते होंगे। किन्तु आज तो वह परिस्थिति नहीं है, तब न जाने उस आपद-लीक को आज भी लोग क्यों पीटते चले आ रहे हैं। यह और कुछ नहीं, केवल मूढ़ता है और है लड़की का अवमूल्यन। यदि लड़कियों का भी ठीक-ठीक मूल्यांकन किया जाये और उनके दुःख-सुख को भी लड़कों की तरह ही अनुभव किया जाये तो लोग ऐसा करने में सोच-विचार से काम लें, किन्तु जिस समाज में नारी का कोई मूल्य ही न समझा जाये, उन्हें पालित पशुओं से अधिक महत्त्व ही न दिया जाये, उसमें नारी के साथ जो भी अन्याय एवम् अत्याचार होता रहे, वह कम ही है।

अनमेल विवाह तो नारी जाति पर अमानवीय आघात ही है । ऐसा आघात जो लोग किसी उपद्रवी पशु पर भी करते संकोच करेंगे। बूढ़े के साथ किसी अबोध बालिका को पत्नी के रूप में बाँध देना कितना भयंकर तथा निर्दय व्यवहार है । कैसे होते हैं वे पिता और कैसी होती हैं वह माता जो अपनी संतान के साथ ऐसा अत्याचार करते नहीं सकुचाते। किसी पिता की स्नेह, शील, लज्जा और मानवता उस समय कहाँ चली जाती है, जब वह लगभग अपनी आयु के किसी व्यक्ति के हाथ में अपनी बेटी का हाथ देता है और कहाँ चली जाती है माँ की प्रसिद्ध ममता और अपने वर्ग के प्रति सहानुभूति, जब वह पति की आयु के किसी व्यक्ति को अपना जामाता बनाती है। वास्तव में कितना भयानक प्रसंग है। असंगत विवाहों को संगत मानने वाले अभिभावक कितने अभागे होते हैं कि वे अपनी बेटी के निश्चित भविष्य को नहीं देख पाते। उन्हें यह समझ क्यों नहीं आती कि जब तक उनकी बेटी ठीक से घर-बार भी नहीं सम्भाल पायेगी कि उनका बूढ़ा जामाता उसे विधवा करके अपनी राह लग जायेगा और तब उस विधवा उस तरुण विधवा के लिए समाज में कोई ऐसी व्यवस्था भी नहीं है जिसके बल पर वह अपना शेष जीवन आसानी से व्यतीत कर सके, किन्तु क्या हो ? अपने भारतीय समाज में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिसके डर से लोग अनमेल, असंगत अथवा वृद्ध विवाहों को करते समय सोचें, बल्कि यहाँ तो उल्टी ही रीति चल रही है। जो कोई बेचारा अपनी लड़की को पढ़ाने और योग्य बनाने के लिए जल्दी ही उसको विवाह बन्धन में नहीं बाँधते तो उन पर उँगली उठाई जाती है, लांछन लगाये जाते हैं।

समाज में फैली दहेज प्रथा ने तो और भी नारी जाति की दुर्गति कर रखी है। यदि कोई साहसी लड़की को पढ़ा-लिखाकर सुयोग्य बनाने का प्रयत्न भी करता है तो उसके अनुरूप वर पाने में भी उसे अपनी ऐड़ी-चोटी का पसीना ही एक नहीं करना पड़ता, बल्कि अपनी आन-औकात तक बेच देनी पड़ती है। तब भला कैसे तो कोई लड़की पढ़ाये-लिखाये और कैसे उसके योग्य वर पा सके? लाचार होकर लोगों को या तो अपनी बेटियों को अनपढ़ रखना पड़ता या उन्हें बूढ़े-टेढ़े विधुरों के साथ बाँधना पड़ता है। इस प्रकार समाज ने कुछ इस प्रकार का चक्र चला रखा है कि बेचारी विवश नारी उसमें पिसी जा रही है।

विधवा के रूप में तो नारी एक जीवित अभिशाप ही समझी जाती है। वह गोघातक से भी अधिक अपवित्र एवं अशुभ समझी जाती है। मंगल कार्यों में उसकी उपस्थिति अपशकुन से कम नहीं मानी जाती है। उत्सवों तथा शुभ कार्यों में उसे आने नहीं दिया जाता है। हँसने-बोलने, पहनने-ओढ़ने, खाने-पीने आदि जीवन के साधारण कार्यक्रमों तक पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है। दिन-रात उसे घर वालों के तिरस्कार, लांछना तथा व्यंग्य बाणों का लक्ष्य बनना पड़ता है। घर की नीच टहल करना और बचा-कुचा खाना खाने के बाद भी चैन न मिलना उसका

भाग्य बन जाता है। घर के बाहर कदम निकालना और तीज-त्योहारों पर प्रसन्न होना उसके लिए घोर कलंक माना जाता है। इस प्रकार बेचारी विधवा तो हर समय त्रस्त तथा तिरस्कृत होकर मौत की तरह जिन्दगी के दिन बिताया करती है, किन्तु समाज तो दूर, परिवार भी उसके साथ सहानुभूति नहीं दिखलाता।

निःसन्देह यह कितना भयानक विपर्य है कि जिस नारी को नियति ने छल लिया है, उसका सुहाग छीन लिया है। उसे बेसहारा बना दिया है और जो अपने दुर्भाग्य की मारी आप ही दीन-दुःखी है, उसे सान्त्वना, धीरज और सहानुभूति देने के बजाय लोग उल्टा उसे त्रास देते हैं, दुःखी करते हैं। समाज की इस क्रूरता को भला क्या कहा जाये ? नारियों के प्रति यह भयानक आततायीपन समाज को न जाने कहाँ ले डूबेगा?

समाज के न जाने कितने विधुर, वृद्ध रोज ही दूसरी, तीसरी और चौथी शादियाँ करते रहते हैं, किन्तु कोई भी इन विधवाओ के उद्धार के लिए उनसे शादी करने को नहीं बढ़ता। जिसे देखो वह कहीं न कहीं से, किसी न किसी प्रकार दहेज का त्याग करके, रुपया देकर अथवा कुलीनता दिखलाकर, अपनी आयु, अवस्था अथवा परिणाम सोचे बिना क्वारी लड़कियों को ही बाँध लेता है। इस प्रकार किसी विधवा का उद्धार करने के स्थान पर एक और विधवा बढ़ा जाने की ही परिस्थिति पैदा कर देता है।

किन्तु अब वह समय आ गया है, जब समाज को आँख खोलनी होगी। अपना सुधार करना ही होगा। यदि आज भी युग प्रकाश में भी यह समाज तमीचरों की तरह आँख बन्द किये रहा तो इसे उससे भी अधिक दण्ड भोगने होंगे, जो इसने अब तक भोगे हैं। पारिवारिक सुख-शान्ति, सामाजिक सुव्यवस्था तथा राष्ट्रीय पुनरुत्थान के लिए तरसते और तड़पते रहना पड़ेगा। नारियों में भी जागरण प्रारम्भ हो गया है, अब धीरे-धीरे वह भी अपना स्वरूप पहचानने लगी है। कितना अच्छा हो कि समाज समय रहते उसके अधिकार दे दे और उसके विकास की व्यवस्था करके अपने पूर्व कृत्यों और वर्तमान अन्याय का प्रायश्चित करे नहीं तो समय की शक्ति तो उपचार कर ही देगी। आया हुआ नवयुग मनुष्यों को अनुरूप बना ही लेता है। जो नवयुग की उषा-देवी को स्वयं नतमस्तक हो जाते हैं वे बुद्धिमान कहे जाते हैं और जो हठात् उसका सम्मान नहीं करते उन अहंकारियों के मस्तक बलात् झुका दिये जाते हैं।

नारी को इस दुर्दशा में पड़ा न रहने दिया जाय

नारी का क्या महत्त्व है ? इस प्रश्न का उत्तर एक इस शब्द में ही निहित है कि वह 'जननी' है। यदि जननी न होती तो कहाँ से सृष्टि का सम्पादन हो और किस प्रकार समाज का सृजन ? जननी का अभाव सृष्टि की शून्यता और उसका सभाव ही संकलन है। इस प्रकार नारी सृष्टि का मूलाधार है। जो सृष्टि का मूल है, उद्गम है, संसार में इसका क्या महत्व है? इसके उत्तर में वितर्क करना हीनता का द्योतक होगा।

नारी केवल सन्तान सम्पादिका ही नहीं, पालिका तथा संचालिका भी है । संसार का प्रत्येक प्राणी माँ के गर्भ से जन्म लेता है, उसकी गोद में पलता और उसका ही स्वभाव-संस्कार लेकर बढ़ता है। समाज का प्रत्येक सदस्य माँ के दिए मूल संस्कारों को विकसित करता हुआ व्यवहार किया करता है और माँ अपने वही संस्कार तो सन्तान को दे सकती है जो उसके पास होंगे। शुभ संस्कारों वाली माँ शुभ और अशुभ संस्कारों वाली माँ अशुभ संस्कार ही तो दे सकेगी। यह बात उसके वश की नहीं कि स्वयं असंस्कृत हो और अपनी संतानों को सुसंस्कृत बना सके।

जननी के इस महत्त्व के साथ, पत्नी के रूप में भी उसका बहुत महत्त्व है । नारी पुरुष की अर्द्धांगिनी कही गई है । जिस प्रकार पुरुष के बिना नारी अपूर्ण है उसी प्रकार नारी के बिना पुरुष भी अपूर्ण है। नारी और पुरुष मिलकर ही 'एक मानव जीवन' की पूर्ति करते हैं। इस दार्शनिक तथा भावनात्मक आधार पर ही नहीं, भौतिकता के ठोस धरातल तथा वास्तविकता की यथार्थ भूमि पर भी नारी पुरुष की अर्द्धांगिनी है। वह संसार की कठिनाइयों और पारिवारिक सुख-सुविधा में पुरुष की समान साझीदार है। परिवार बसाने और वंश परम्परा का प्रतिपादन करने में नारी पुरुष की अनिवार्य भार्या और समान सहचरी है। उसके अभाव में यह दोनों स्थितियाँ असम्भाव्य हैं।

पुरुष एक उद्योगी तथा उच्छृंखल इकाई है। परिवार बसाकर रहना उसका सहज स्वभाव नही है। यह नारी की ही कोमल कुशलता है जो उसे पारिवारिक बनाकर प्रसन्नता की परिधि में परिभ्रमण करने के लिए लालायित बनाये रखती है। नारी ही पुरुष की उद्योग उपलब्धियों को व्यवस्था एवं उपयोगिता प्रदान करती है। पुरुष नारी के कारण ही पुत्रवान् है, पारिवारिक है और प्रसन्नचेता है। पत्नी के रूप में नारी का महत्व असीम है, अनुपम है।

परिवारिकता ही नहीं, सामाजिकता में भी नारी का महत्त्व महान् है। समाज केवल पुरुष वर्ग से ही नहीं बना, वह स्त्री पुरुष दोनों से ही बनता है। आज समाज से यदि नारी अपने आपको दूर करले अथवा अपने को निकाल ले तो क्या समाज का रथ केवल पुरुष रूपी एक पहिये पर एक दिन भी चल सकता है। नारी समाज की आधी जनसंख्या है। समाज के बहुत से ऐसे काम हैं जो नारी द्वारा ही किये जाते हैं और किये जा सकते हैं। सदस्य, जिनसे मिलकर समाज बनता है– नारी ही जनती

है और वही उनका लालन-पालन करती है। नारी समाज की आधी शक्ति है। एकोहं बहुस्यामि के सिद्धान्त पर समाज की जनसंख्या का सृजन नारी ही करती है। नारी ही अपनी योग्यता, दक्षता एवं कुशलता के अनुसार समाज को अच्छे-बुरे सदस्य और राष्ट्र को नागरिक देती है। अपने गुण एवं स्वभाव के अनुसार अपनी सन्तानों को ढाल-ढाल कर देश व राष्ट्र को देना नारी का काम है। देश के निवासी शूर-वीर, त्यागी, बलिदानी अथवा कायर, कुटिल और आचरण हीन बनते हैं यह जननी की ही गौरव-गरिमा पर निर्भर है। सारांश यह कि जिस प्रकार की राष्ट्र की जननी नारी होगी, राष्ट्र भी उसी प्रकार का बनेगा। सामाजिकता अथवा राष्ट्रीयता के रूप में नारी का यह महत्त्व सर्वमान्य ही मानना पड़ेगा।

धार्मिक क्षेत्र में भी नारी का महत्त्व अप्रतिम है । विद्या, वैभव और वीरता की अधिष्ठात्री देवियाँ शारदा, श्री और शक्ति नारी की प्रतीक हैं। सृष्टिकर्ता परमात्मा की स्फुरण-शक्ति, माया भी नारी मानी गई है । इसके अतिरिक्त यज्ञादिक जितने भी धार्मिक अनुष्ठान पुरुष द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं, वे नारी को साथ लेकर पूर्ण किए जाते हैं। यह बात सही है कि आज यद्यपि उनमें रूढ़िता, अन्ध-विश्वास तथा अज्ञान का दोष अवश्य आ गया है तथापि नारियाँ पुरुषों की अपेक्षा धर्म को अधिक दृढ़ता के साथ पकड़े हुए हैं । यही नहीं, अनेक बार अंधकार युगों में जब कि आक्रांत अथवा संक्रान्त समय में पुरुष वर्ग धर्म अथवा आस्तिकता से विचलित होने लगे हैं। नारियों ने धर्म भावना की रक्षा की है और घरों में चोरी छिपे, सही गलत, उलटे सीधे धार्मिक कृत्य, व्रत, उपवास और पूजा के रूप में करती रही है । समय-समय पर उन्होंने धर्म रक्षा में अपने प्राण तक दिये हैं और आज के इस विकृतकाल में भी नारियाँ धर्म-धारण में पुरुषों से आगे ही हैं। पुरुष के नास्तिक हो जाने अथवा धर्म के प्रति अविश्वासी हो जाने पर भी नारियाँ बहुधा घरों में आस्तिकता तथा श्रद्धा-विश्वास का वातावरण बनाये रखती हैं। आज भी कुप्रगतिशीलता की लहर से अप्रभावित रह कर करोड़ों नारियाँ एक प्रकार से बहुत अंशों तक भारतीय धर्म तथा सभ्यता एवं संस्कृत की संरक्षिका बनी हुई हैं। धार्मिक क्षेत्र में यह कुछ कम महत्त्व की बात नहीं है।

इस प्रकार सभी क्षेत्र में नारी का इतना महत्त्व होते हुए भी आज हमारे समाज ने उसे इस दयनीय दुर्दशा में पहुँचा दिया कि देख-सुन और सोच-समझ कर न केवल दुःख ही होता है, बल्कि शर्म से गर्दन झुक जाती है। विचार आता है कि क्या वास्तव में हम इतने आततायी हैं कि राष्ट्र की जननी और पुरुष की सहयोगिनी, सहचरी और अनुवर्ती को पैर की जूती और पशुओं से भी बदतर बना दिया है। स्वार्थी पुरुष वर्ग ने उसके शैक्षणिक एवं सामाजिक अधिकार तथा शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक विकास के सारे अवसर एवं सम्भावनाएँ अजगर की तरह निगल ली हैं।

आज हमारे समाज में अशिक्षा का अभिशाप नारी वर्ग को सर्प की तरह डसे हुए है । शिक्षा के अभाव में भारतीय नारी असभ्य, अदक्ष, अयोग्य एवं अप्रगतिशील बनी हुई चेतन होते हुए भी जड़ की तरह जीवन बिता रही है । समाज एवं राष्ट्र के लिए उसकी सारी उपादेयता नष्ट होती जा रही है । आज वह आत्मबोध से वंचित आजीवन बंदिनी की तरह घर में बंद रहती हुई चूल्हे-चौके और पौर तक सीमित पुरुषों की संकीर्णता का दण्ड भोगती हुई मिटती चली जा रही है । उसे समाज एवं राष्ट्र की गतिविधि में हाथ बँटाना तो दूर उसके ज्ञान का भी अवसर नहीं मिलता ।

अशिक्षा तथा अज्ञान ने उन्हें कायर और कलहनी बना दिया है । घर में अकेले रहते अथवा मार्ग में चलते हुए इस प्रकार दबी-दबी और भयत्रस्त चला करती हैं, मानों उन पर अभी ही कोई आपत्ति आने वाली है, जिससे वे अपनी रक्षा न कर पायेंगी और वास्तव में जब कोई आपत्ति अथवा आशंका आ जाती है, तब प्रतिकार करने के स्थान पर किंकर्तव्यविमूढ़ होकर काँपने, रोने और अपना अहित होते सहने के अतिरिक्त उनके पास कोई उपाय ही नहीं होता । अप्रियताओं, प्रतिकूलताओं अथवा आपदाओं का प्रतिकार करने का न तो उनमें साहस ही होता है और न बुद्धि ।

गृहिणी होते हुए भी अशिक्षा के कारण नारी ठीक मायने में गृहिणी सिद्ध नहीं हो पा रही । बच्चों के लालन-पालन से लेकर घर की साज-सम्भाल तक किसी काम में भी कुशल न होने से उस सुख-सुविधा को जन्म नहीं दे पाती, घर में जिसकी अपेक्षा की जाती है, घर को सजा-सम्भार कर रखना तो दूर उसकी अदक्षता उसे और भी अस्त-व्यस्त बनाये रहती है । शिक्षा के अभाव में कोमलावृति नारी कर्कशा एवं कलहनी होती जा रही है। हर समय कोप करना, बात-बात पर बच्चों को मारना पीटना, अकारण में कारण निकाल कर लड़ना-झगड़ना और खटपाट ले लेना, उनके स्वभाव का अंग बन गया है। वह परावलम्बिनी और परमुखापेक्षिणी बनी हुई है। विकास से वंचित, शिक्षा से रहित गूढ़-मूढ़ और मूक जीवन बिताती हुई अनागरिक पशु की भाँति परिवार ढोये जा रही हैं । पुरुष उसे स्वतंत्रता दे और समाज सुविधायें, फिर देखो आज की यह फूहड़ नारी कुशल शिल्पी की भाँति सन्तान, घर और समाज को रच देती है या नहीं ?

नारी उत्पीड़न अब और न होने पाए

मध्यकाल के सामन्तवादी अन्धकार युग में दो ही वर्ग शेष रह गये थे - एक शोषक दूसरा शोषित । पूरा मनुष्य समाज इन्हीं दो वर्गों में विभाजित हो गया था । समर्थों का

चिन्तन और पराक्रम इस एक ही केन्द्र पर केन्द्रित था कि दुर्बलों का किस प्रकार शोषण कितना बढ़ाया जाय । दर्प किस प्रकार आतंकवादी स्तर तक प्रदर्शित कर दिखाया जाय ।

दुर्बल, असंगठित भी थे और साहसविहीन भी । जो कुछ चल रहा था उसे भाग्य विधान समझकर किसी प्रकार मन समझाते थे । अनीति का प्रतिशोध करने का न तो उत्साह ही जगता था और न उसके लिए कोई कारगर उपाय ही सूझता था। शोषण की परम्परा एक मात्र प्रचलन बन गई थी । जो शताब्दियों, सहस्राब्दियों तक निर्बाध रूप से चलती रही । उसे धर्म परम्परा जैसी मान्यता मिल गयी थी । लोकमानस भी उसी ढाँचे में ढल गया । जो कुछ कार्यान्वित होते निरन्तर देखा जाता है, जिस प्रकार का घटनाक्रम सर्वत्र चलता है, वह क्रमशः अभ्यास में भी उतरता जाता है । उसे उचित-अनुचित की कसौटी पर कसे जाने की आवश्यकता भी नहीं समझी जाती है । स्वभाव और अभ्यास भी एक तथ्य है जो अपने ढर्रे पर घूमने लगता है तो नियति बन जाता है । अनुचित होने और उसे हटाने की सूझ सूझती भी नहीं । फिर परिवर्तन की चेष्टा तो होगी ही कहाँ से ? यों विचारशीलों का सर्वथा अभाव तो कभी भी नहीं हुआ । पर परिस्थितियों, को देखते हुए उनमें से भी ऐसे होते हैं जो कुछ बन पड़ने की बात बनते न देख कर चुप बैठे रहते हैं । "समय आवेगा तो सुधार होगा। भगवान् की इच्छा होगी तभी बदलाव होगा ।" इसी प्रकार की आत्म-प्रवंचना करके मन में खिन्न तो रहते हैं, पर ऐसा कुछ कर नहीं पाते जिससे अनीति का प्रचलन रोका या घटाया जा सके । ऐसी ही निराशा की लत विवेकशीलों को भी कुछ करने नहीं देती ।

दास-दासी लूटने, खरीदने का व्यवसाय मुद्दतों तक चलता रहा । सवर्णों और अछूतों का विभेद भी लम्बे समय तक बेरोक-टोक चला । पशुओं की दुर्बलता ने उन्हें मनुष्यों का पराधीन बना दिया और उसी के हाथ मरने-जीने पर संतोष कर लिया । गरीब-अमीर के बीच दिखने वाली खाई भी इसी आधार पर आरम्भ हुई और क्रमशः अधिक गहरी चौड़ी होती चली गई । यह है इतिहास का काला पक्ष जिसमें अनीति को विजयी और न्याय को परास्त होते देखा जा सकता है । यों मानवी गरिमा की लम्बी अवधि में यह ग्रहण काल छोटा ही रहा है । फिर भी उसने न्याय और औचित्य पर आधारित मानवी गरिमा पर एक काले धब्बे जैसा प्रश्न चिन्ह तो लगा ही दिया ।

इस संदर्भ में गम्भीर विचार करने पर एक और तथ्य भी सामने आता है, उस पर जितना गम्भीर विचार किया जाय उतनी ही अधिक तिलमिलाहट उभरती है, वह है नारी पर नर का ऐसा आधिपत्य जैसा कि पशुपालक अपने जानवरों पर दिखाते और उनकी नियति का अधिपति पूरी तरह अपने आपको समझते हैं ।

यों विवेक-चिन्तन एक ही निष्कर्ष निकालता है कि मनुष्य जाति के दो अविच्छिन्न परस्पर पूरक दो अंग हैं- नर और नारी । उनमें दोनों के कार्य-क्षेत्र अलग हो सकते हैं । पर जहाँ तक मानवी अधिकारों और कर्त्तव्यों का प्रश्न है दोनों का स्तर एक जैसा है । मिल-जुलकर रहने की परिपाटी उत्तम है, पर इसका तात्पर्य मात्र सघन सहकारिता और उदार आत्मीयता से है । इस आधार पर अधिक समर्थ कम समर्थों को अपने अनुदानों से लादता है। उन्हें ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने में परिपूर्ण प्रयत्न करता है । इसी आधार पर पारिवारिकता बनती है और आत्मीयता की कसौटी पर खरी सिद्ध होती है । शिष्टता, सद्भावना और संस्कृति को इन्हीं अर्थों में चरितार्थ होते हुए देखा जाता है, किन्तु जहाँ इसके सर्वथा विपरीत प्रवाह बह रहा हो वहाँ तो यही कहा जा सकता है कि सामन्तवादी अंधकार युग प्रत्यक्ष रूप से भले ही चला गया हो, पर उसकी परोक्ष परम्परा व्यवहार में अभी भी जहाँ की तहाँ विद्यमान है ।"

नारी दूसरे दर्जे की नागरिक बनकर रह रही है, उसे पुरुष के समतुल्य न तो सम्मान प्राप्त है, न अधिकार, न अवसर । उसे इन तीनों से ही वंचित रहना पड़ रहा है । अभ्यस्त लोगों को इसमें कुछ भी अनुचित भले ही न दीख पड़ता हो, पर तथ्यान्वेषी विवेक-बुद्धि से यही निष्कर्ष निकलता है कि नर-नारी के बीच जो असाधारण भेदभाव इन दिनों चल रहा है उसमें मत्स्य न्याय के अतिरिक्त और कोई आधार नहीं है । यदि न्याय और औचित्य का प्रश्न मिले तो उन सभी प्रचलनों को निरस्त होना पड़ेगा जो एक ही शरीर से जुड़े दो हाथों में एक का दर्जा ऊँचा और दूसरे का नीचा ठहराते हैं । अवयव समान अवसर प्राप्त करते हैं । दो पैर, दो आँख, दो कान, अलग-अलग होते हुए भी अपनी उपयोगिता और स्थिति में समानता सँजोये रहते हैं । यही स्थिति आज नर और नारी के बीच भी देखी जा सकती है । परस्पर सघन सहयोग की बात समझ में आती है, पर इसमें सरासर अन्याय ही दिखता है कि समर्थ पक्ष दुर्बल को पैरों की जूती बनाकर रखने के ऐसे शिकंजे कसे रहता है जिसे मनुष्य का मनुष्य के प्रति किया गया अन्याय ही समझा जा सकता है । प्रमाण प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं । हर कार्यक्षेत्र इसका साक्षी है। घरों-परिवारों में यह विषमता एक मान्य कानून की तरह चरितार्थ होती है । नजर पसारकर जिधर भी देखा जाय उधर एक ही तथ्य उभरा हुआ दीख पड़ता है कि नारी को पराधीनों की तरह किसी प्रकार समय काटना पड़ता है । उसे प्रगति के लिए अवसर दे सकने वाले द्वार बन्द हैं । समानता पर आधारित न उसे सम्मान प्राप्त है और न उस प्रकार की स्थिति उत्पन्न करने के लिए कहीं से कोई प्रबल प्रयत्न चलते हैं। संविधान में नर-नारी को समान अधिकार प्राप्त है । सतयुग काल के धर्मशास्त्री वैसा ही प्रतिपादन करते हैं, लेखों और भाष्यों में भी वैसी ही चर्चा होती और दुहाई दी जाती है, पर व्यवहार पक्ष की स्थिति को

देखते हुए एक शब्द में यही कहना पड़ता है कि आधी जनसंख्या अभी भी पराधीनता के बंधनों में जकड़ी हुई है। भले ही उसे मुल्क का नागरिक माना जाता है, भले ही उसे चुनावों में मताधिकार पुरुषों जैसा ही प्राप्त हो। परिवार में उसकी स्थिति पालतू पशुओं से अधिक नहीं है। उसे रसोईदारिन, चौकीदारिन से अधिक कुछ कर सकने का अवसर है ही नहीं। नर की वासना पूर्ति के लिए रमणी, कामिनी, भोग्या के रूप में अपने को विवश, बाधित मानना पड़ता है। वह जर्जर होने पर भी अधिकाधिक बच्चे जनने का भार उठाने से इन्कार नहीं कर सकती। पराधीन को आखिरकार अपनी इच्छा रखने और मन की बात कहने का अधिकार ही कहाँ होता है ?

मध्यमवर्गीय सम्पन्न परिवारों की महिलाएँ, लड़कियाँ पढ़ने-लिखने की सुविधाएँ प्राप्त कर लेती हैं। उन्हें नौकरी आदि के माध्यम से कुछ कमा लेने का अवसर भी मिल जाता है, पर ऐसे प्रसंगों को अपवाद ही कहा जा सकता है। फिर उस सीमित जनसंख्या को भी पुरातन प्रचलनों के दबाव में पिछड़े वर्गों से मिलती-जुलती हालत में ही रहना पड़ता है। भले ही उन्हें अपेक्षाकृत अधिक सुविधा-साधन प्राप्त हों। बात जहाँ तक अधिकांश नारी समुदाय की है उसे पिछड़ी स्थिति में ही पड़े रहने के लिए बाधित होना पड़ता है। नर और नारी की समानता जैसी बात सोचना उसकी कल्पना से ही बाहर है। रूढ़िवादी मान्यताएँ उसमें समुन्नत बनने की आकांक्षा जाग्रत ही नहीं होने देती और न उस प्रकार के अवसर प्राप्त होने जैसी सम्भावना ही किसी ओर से दृष्टिगोचर होती है।

प्रायः आधी जनसंख्या नर की है और आधी नारी की। नारी का पराधीन, पिछड़ी, दीन-दुर्बल स्थिति में पड़े रहना प्रकारान्तर से आधे जनसमुदाय का पराधीनता के निबिड़ बन्धनों में जकड़े रहने जैसा ही है। ऐसी स्थिति में दोनों में से किसी को किसी प्रकार का लाभ नहीं मिल सकता। कैदी जेल में रहते हैं यों वे छुटपुट काम भी करते रहते हैं पर जेल प्रबन्धकों को उनके लिए अधिक घाटा उठाना और अधिक प्रबन्ध करना पड़ता है। आधी जनसंख्या कैदी की और आधी जेलरों की स्थिति में रह रही हो तो असमर्थ गले का पत्थर बने रहेंगे और अपने पालकों को अधिक अच्छी स्थिति में देखकर अधिक मात्रा में भार वहन करने के लिए बाधित करते रहेंगे, पक्षाघात पीड़ितों के पीड़ित अवयव दूसरे समर्थ अवयवों पर भार बनकर ही रहते हैं। एक पहिया टूटने पर गाड़ी का चलना रुक जाता है।

नारी पशु नहीं है। उससे श्रम कराया जाना उसके समय-सौन्दर्य और स्वभाव का मात्र शोषण ही किया जाता रहे, बदले में उसका शरीर भर जीवित रखने के लिए उसे निर्वाह साधन देकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेना, क्या यही अनुदान का प्रतिदान है ? क्या इतने भर से उन ऋणों से उऋण हुआ जा सकता है जो नारी अनेक रूपों में नर को निरन्तर प्रदान करती रहती है? क्या कृतज्ञता का पोषण इतने मात्र से हो जाता है ?

समझदारों ने नारी की गरिमा को समझा है। उसके भीतर विद्यमान असाधारण मात्रा में समाविष्ट मानवी गरिमा का अनुमान लगाया है। वस्तुस्थिति समझने वालों ने अपने सम्पर्क मे आने वाली नारियों को जाग्रत, जीवन्त, प्रतिभावान एवं सुसंस्कृत बनाने की दृष्टि से बहुत कुछ किया है। इस प्रकार की सेवा-सहायता से प्रयत्नशीलों की सृजन शक्ति का परिचय मिलता है। समुन्नत नारी से समुचित स्तर का अनुदान मिलता है। परिवार नर-रत्नों की खदानों के रूप में विकसित होते हैं। समूचे समाज का, संसार का हित साधन भी इसी में है।

विषमताओं से घिरी–भारतीय नारी

भारतीय महिलाओं का एक विराट् रूप है। वह अपने आप में चाहे पूरी हो, पर उसके अन्दर अनेक विषमताएँ भरी हुई हैं। इस देश में जो कुछ एक महिला को सुलभ है, उसकी झलक दूसरे वर्ग की महिला को सुलभ भी नहीं होती।

महिलाओं का एक बड़ा वर्ग सड़क पर मेहनत-मजदूरी कर अपना जीवन गुजार लेता है। उनके बच्चे किसी वृक्ष की छाया में धरती माँ की गोद में बड़े होते हैं। वे सुबह से शाम तक जीविकोपार्जन करने में लगी रहती हैं। गरीबी से घिरा उनका जीवन उनके बच्चों का विकास होने को रोक देता है। भारत के वे फूल खिलने से पूर्व ही मुरझा जाते हैं। उन्हें कहाँ फुर्सत कि वे उनके स्वास्थ्य पर ध्यान दे सकें। स्वास्थ्य के नियमों का जानना तो दूर रहा, वे यह भी नहीं जानतीं कि मक्खी व मच्छरों से उनको क्या हानि होती है।

उनकी तुम्हारी दुनिया से कोई मतलब नहीं, चाहे आबादी इससे चौगुनी हो जाये, एक बार एक महिला से पूछा गया कि कि आपके कितने बच्चे हैं ? उसने कहा– 9 बच्चे हैं और १०वाँ होने वाला है। उस पढ़ी-लिखी महिला ने उसके सामने आबादी बढ़ने तथा भारत की गरीबी का चित्र खींचा। उसको परिवार-नियोजन केन्द्रों द्वारा बच्चे बन्द करने के उपाय भी समझाये गये। लेकिन उसे यह सब सुनकर आश्चर्य हुआ। इन सबसे वे पूर्ण अनभिज्ञ पायी गयीं। उन्होंने कहा-हमारा हर बच्चा काम करता है, हमें तो हाथों की आवश्यकता है। उनका कर्त्तव्य केवल बच्चों को जन्म देने तक ही सीमित होकर रह गया है।

इस प्रकार उनका जीवन स्वाभाविक ढंग से बीत जाता है। उन्हें शायद कभी कोई तकलीफ ही महसूस नहीं होती और न शायद यह अहसास होता है कि उनके जीवन में आधुनिक-जीवन के साधनों का कितना अभाव है ?

दूसरी तरफ गाँवों में कुछ सम्पन्न घर की महिलाएँ भी होती हैं, जो पढ़ी-लिखी तो नहीं होती, लेकिन पहनने-ओढ़ने के ढंग से आप अनुमान लगा सकते हैं कि वे आधुनिक-बहिरंग रूप से परिचित हो चुकी हैं। यदि उनके गाँव में कभी कोई पढ़ी-लिखी महिला सभा आदि का आयोजन करें तो ये अच्छे कपड़े पहनकर, पाउडर आदि लगाकर ही पहुँचेंगी। यह जागरूकता बहुत ही कम है और वह भी सन्तोषप्रद नहीं।

यह तो हुआ ग्रामीण दृश्य, शहरों में हमें दूसरी तरह की झाँकी देखने को मिलती है। शहर के सम्पन्न परिवारों के अतिरिक्त मध्यम वर्ग या निम्न मध्यवर्ग के परिवारों में जाग्रति अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में दिखलायी देती है। ये अपने बच्चों को पाठशाला तथा पति को कार्य पर भेजने के बाद शीघ्रता से घर के काम-काज समेट कर मुस्तैदी से बाहर के काम कर अपने पति को मदद देती हैं।

इसके अतिरिक्त युवा-पीढ़ी की जागरूकता शिक्षा के विकास के साथ-साथ बढ़ रही है। हजारों की संख्या में कालेज जाने वाली छात्राओं को यह अहसास तो अवश्य होता है कि दुनिया कैसी है, देश कैसा है, क्या बन रहा है और क्या बनेगा? लेकिन उसके बनाने में यह युवा-पीढ़ी कितना योगदान कर सकती है, इससे वे अनभिज्ञ हैं। वे आधुनिकता का नकली मुखौटा पहने हुए हैं। स्वाधीन-भारत की सच्ची नारी के रूप से वे कोसों दूर हैं। इनका अन्तरंग, उन दैवी-गुणों से, जिसे हम शालीनता, शिष्टता, नम्रता, कर्तव्य-निष्ठा के नाम से पुकारते हैं, बिल्कुल ही रिक्त है। इनकी शिक्षा केवल अक्षर-ज्ञान पर टिकी हुई है। अतः ये कर्तव्यों से शून्य जीवन जीने की आदी होती जा रही हैं। उनका दृष्टिकोण व्यक्तिवादी ही बनता जा रहा है। उनकी दुनिया परिवार तक ही सीमित रहकर छोटी होती जा रही है। यह देश के लिए घातक सिद्ध हो सकती है।

अब अन्य उच्च पदों पर कार्य करने वाली महिलाओं पर भी दृष्टि डालें। एक विशिष्ट व्यक्तित्व की महिला इस प्रजातन्त्र देश की प्रधानमन्त्री रहीं। श्रीमती भण्डारनायके के बाद विश्व के प्रजातान्त्रिक इतिहास में श्रीमती इन्दिरा गाँधी दूसरी महिला थीं, जिन्हें प्रधानमन्त्री का पद प्राप्त हुआ। कई महिलाएँ संसद के वरिष्ठ पदों पर हैं, कई हाइकोर्ट की जज, बड़ी-बड़ी वकील-बैरिस्टर महिलाएँ राजदूत आदि हैं। लेकिन भारत जैसे विशाल देश में ऐसी महिलाएँ नगण्य के बराबर ही हैं।

इसका अर्थ यह हुआ कि देश स्वतन्त्र हुआ। स्वतन्त्रता की ज्योति का प्रकाश भी बिखरा, पर उस प्रकाश ने सबको बराबर रोशनी नहीं दी।

अन्त में भारत की उन महिलाओं का वर्ग भी आता है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी के संस्कारों में जकड़ी हुई हैं। वे आधुनिक युग से बहुत दूर हैं। वे अपनी रूढ़िवादिताओं को छोड़ने को किसी मूल्य पर भी तैयार नहीं। इसीलिए जो बच्चे आधुनिक-शिक्षा पा रहे हैं, उनके बीच और उनकी पहले की पीढ़ी में बड़ा अन्तर, होता जा रहा है। माँ और बेटी में अन्दर ही अन्दर अलगाव बढ़ता जा रहा है। बेटी अपनी माँ के साथ उसी तरह का सम्बन्ध चाह कर भी स्थापित नहीं कर पाती, जिसमें एकत्व हो। इसका मुख्य कारण यह है कि एक ओर जहाँ लड़कियों को शिक्षा दी जा रही है, उनके माता-पिता को शिक्षित बनाने का इन्तजाम नहीं किया जा रहा है।

इतनी विषमताएँ अन्य देशों की नारियों में नहीं पायी जाती हैं। लेकिन भारत में यह परिवर्तन का चक्र घूम रहा है। इन विषमताओं के मिटाने का आधार सही शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार ही हो सकता है। इसलिए हमें शिक्षा का रूप बदलना पड़ेगा। शिक्षा ऐसी हो, जो भारतीय-नारी के अन्तरंग को आलोकित कर सके, उसमें उसके दैवी-गुणों को विकसित कर सके। ये अपने ज्ञान के प्रकाश को केवल भारतीय नारियों में ही नहीं, विश्व की नारियों में बिखेर दें।

इससे भारत में ही नहीं, विश्व में भी सुख व शान्ति का साम्राज्य फैल जाएगा।

यह उत्पीड़न कब तक चलेगा?

संख्या की दृष्टि से समाज में आधे नर होते हैं, आधी नारियाँ। इन्हीं दो पहियों पर मनुष्य जाति की गाड़ी प्रगति या अवगति की दिशा में लुढ़कती है। नर पक्ष तो विकसित रहे किन्तु नारी पक्ष दुर्बल पिछड़ा रहे तो आधे अंग को लकवा मार जाने की स्थिति बन जाएगी और शेष स्वस्थ पक्ष भी बेकार हो जाएगा। अपने देश की यही स्थिति है। पिछले अन्धकार युग का सबसे अधिक अभिशाप भारतीय नारी को भुगतना पड़ा है। विदेशी आक्रमणकारियों से शील रक्षा करने के लिए अथवा सामन्तवादी दर्प, अहंकार की पूर्ति के लिए नारी को बाधित बनाया गया। उस पर ऐसे प्रतिबन्ध लगाये गये जिनमें उसकी स्थिति आजीवन क्रीतदासी बनी रहने जैसी बन गयी। उसके नागरिक अधिकार एक प्रकार से छीन ही लिए गये। भोग सामग्री के रूप में ही उसकी आवश्यकता रह गयी। सो भी उससे उस पिछड़ी हुई रुग्ण, अशक्त, अविकसित स्थिति में कुछ बन नहीं पड़ा।

भारत में नर के अतिरिक्त विशेषाधिकार हैं और नारी की दासों और बन्दियों जैसी आचार संहिता अलग है। मनुष्य जाति के दो समानान्तर पक्ष है और दोनों के कर्तव्य अधिकार समान है, इस तथ्य को अपने देश में पिछले दिनों प्रायः भुला ही दिया गया है। पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा, विधवा-विवाह निषेध, कन्या जन्म को दुर्भाग्यपूर्ण माना जाना, लम्बे दहेज की माँग पूरी करने पर ही वधू को स्वीकार करना, उत्तराधिकार में उसे अँगूठा दिखाया जाना,

शिक्षा एवं स्वावलम्बन के आधारों से वंचित रखा जाना, आजीवन दूसरों के नियन्त्रण में बाधित रहना जैसे कितने ही प्रचलन अब रूढ़ियाँ, कुरीतियाँ नहीं माने जाते वरन् उन्हें परम्परा कहा जाता है और कई बार तो इन लज्जाजनक अन्यायों को शास्त्र वचन तक कहने एवं उसका समर्थन करने तक की धृष्टता की जाती है । पशुओं को उनका मालिक तिरस्कृत करने, पीटने या मार डालने को स्वतन्त्र है, उसके शोषण, उत्पीड़न की खुली छूट है । कोई दूसरा उस अनीति में हस्तक्षेप नहीं कर सकता, इसी प्रकार सुसराल वाले किसी वधू के साथ कुछ भी व्यवहार कर सकते हैं। दूसरों को, यहाँ तक उसके माता-पिता को भी इसे रोकने का अधिकार नहीं है । बात बढ़ा-चढ़ा कर नहीं कही जा रही है । अशिक्षा, पिछड़ेपन और कुरीतियों से दबे, घिरे भारत में तीन चौथाई नारियों को यही सब कुछ आज भी सहना पड़ा रहा है । वे कितनी दुःखी और असन्तुष्ट हैं, कितनी पिछड़ी, कितनी दुर्बल और कितनी पीड़ित, बाधित और कितनी असहाय हैं उसे कोई भी सहृदय व्यक्ति कहीं भी नारी समाज की मन की बातें जानकर, पूछ-सुन कर सहज ही पता लगा सकता है ।

पति या सास-सुसर की दृष्टि रखकर तो उन अभागिनों के साथ सहानुभूति नहीं उपजेगी, पर यदि किसी के पास पिता का हृदय हो और अपनी आँखों की पुतली का तेल इस प्रकार कोल्हू में पिलकर निकलता हुआ आँखों के सामने आये तो कहीं उसकी छाती फटे । किसी के पास तोतली बोली बोलने वाले बालक का हृदय हो और वह अपनी मम्मी को जल्लादी हन्टर खाकर सुबक-सुबक कर किसी कोने में बैठी, रोती हुई देखे तो उसे इस प्रकार अवाक् स्तब्ध रहने की अनुभूति हो मानो यह संसार मात्र कसाइयों और क्रूरकर्माओं के लिए ही बना है, उन्हीं से पटा पड़ा है । करुणा और ममता नाम के तत्व इस धरती पर शायद रचे ही नहीं गये हैं ।

मन की प्रसन्नता, प्रफुल्लता क्या होती है, हँसना-हँसाना कैसा होता है, आमोद-प्रमोद किसे कहते हैं? इसकी अनुभूति कदाचित् ही किसी भाग्यवान नारी को होती है शेष को तो कोल्हू के बैल की तरह ही अनवरत श्रम और अनन्त तिरस्कार का भाजन बनकर ही मौत के दिन पूरे करने पड़ते हैं । अशिक्षा ने उनके मानसिक विकास को एक प्रकार से अवरुद्ध हो कर रखा है । परित्याग एवं विधवा बनने का संकट जब सामने आता है तो उन्हें सूझता नहीं कि अपना, अपने बच्चों का निर्वाह कहाँ और कैसे करें ? स्वावलम्बी अर्थोपार्जन की क्षमता प्राप्त करने से तो उन्हें आरम्भ से ही रोका गया है । जब परकटे पक्षी की तरह ही रखा जाना है तो उड़ने की योग्यता क्यों विकसित होने दी जाय ? निरीह और निर्बल को ही तो बन्धन में जकड़कर रखा जा सकता है, उनके लिए इसी स्थिति की पूर्व योजना बनाकर रखी गयी है जिसमें कि आज संयोगवश नहीं, योजनाबद्ध रूप में जकड़ी पड़ी है । इन प्रतिबन्धों ने उन्हें बौद्धिक पिछड़ेपन का शिकार बना दिया है । अन्धविश्वास, मूढ़ मान्यताएँ, निकम्मी प्रथा-परम्पराएँ, संकीर्ण चिन्तन, संकीर्णता और खोज यही सब उनके पल्ले बँधा है । शारीरिक रुग्णता से भी दो कदम आगे उन्हें मानसिक रुग्णता घेरे हुए है।

नयी पीढ़ियाँ माता के पेट से ही पैदा होती हैं, घर-परिवार का वातावरण महिलाएँ ही बनाती हैं, संस्कार, स्वभाव और चरित्र का प्रशिक्षण घर की पाठशाला में ही होता है। परिवार का स्नेह, सौजन्य पूरी तरह स्त्रियों के हाथ में रहता है। यदि नारी की स्थिति सुसंस्कृत, सुविकसित स्तर की हो तो निस्सन्देह हमारे घर-परिवार स्वर्गीय वातावरण से भरे-पूरे रह सकते हैं, उनमें रहने वाले लोग कल्पवृक्ष जैसी शीतल छाया का रसास्वादन कर सकते हैं। हीरे जैसे बहुमूल्य रत्न किन्हीं विशेष खदानों से निकलते हैं पर यदि परिवार का वातावरण परिष्कृत हो तो उसमें से एक से एक बहुमूल्य नररत्न निकलते रह सकते हैं और उस सम्पदा से कोई देश, समाज समुन्नत स्थिति में बना रह सकता है । देश की आधी जनसंख्या नारी है, यदि वह पक्ष दुर्बल और भारभूत बनकर रहेगा तो नर के रूप में शेष आधी आबादी की अपनी भारी शक्ति उस अशक्त पक्ष का भार ढोने में ही नष्ट होती रहेगी । प्रगति तो तभी सम्भव थी जब गाड़ी के दोनों पहिये साथ-साथ आगे की ओर लुढ़कते । एक पहिया पीछे की ओर खिंचे दूसरा आगे की ओर बढ़े तो उससे खींचतानी भर होती रहेगी हाथ कुछ नहीं लगेगा । प्रगतिशील देशों में नारी भी नर के कन्धे से कन्धा मिलाकर आगे बढ़ने की, अपने देश को आगे बढ़ाने की सुविकसित स्थिति में रहती है । फलस्वरूप वे बहुत कुछ कर गुजरती हैं पर हमारी प्रतिगामी परिस्थितियाँ तो वैसा कुछ बन पड़ने का अवसर ही नहीं आने देतीं, जब तक यह स्थिति बनी रहेगी, मात्र पुरुषों को विकसित बनाने वाले सारे प्रयास अधूरे और असफल ही सिद्ध होते रहेंगे । यदि हमें सचमुच ही प्रगति की दिशा में आगे बढ़ना हो तो नारी को साथ लेकर ही चलना होगा । एकांगी प्रयास कभी भी सफल न हो सकेंगे।

नारी जागरण भारत की सबसे प्रथम और सबसे प्रमुख आवश्यकता है। इसकी पूर्ति के लिए विशालकाय और दूरगामी कार्यक्रम बनाने पड़ेंगे । सरकारी स्कूलों में कन्या शिक्षा का प्रयास चल रहा है, महिला-कल्याण के लिए भी सरकारी और गैरसरकारी प्रयत्न हो रहे हैं आँसू पोंछने की दृष्टि और आशा का दीपक सँजोये रहने की दृष्टि से उनका भी कुछ न कुछ उपयोग ही है पर बात उतने भर से बनेगी नहीं, हमें नारी जागरण का, समग्र राष्ट्र को प्रभावित करने वाला रचनात्मक कदम बढ़ाना पड़ेगा अन्यथा आधे राष्ट्र की सर्वतोमुखी प्रगति का अत्यन्त जटिल, अतीव विस्तृत और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न हजार वर्षों में भी हल न हो सकेगा । इसके लिए गैरसरकारी प्रयत्न ही प्रधान भूमिका सम्पन्न कर सकते हैं ।

महिला जागरण की प्रवृत्ति कितनी उपयोगी, कितनी आवश्यक और कितनी महत्त्वपूर्ण है इस तथ्य पर जब विचार करते हैं तो लगता है कि इससे बढ़कर भारत जैसे देश में प्रमुखता देने योग्य और दूसरा कोई कार्य नहीं है। नयी पीढ़ियों का स्तर सुयोग्य महिलाएँ ही बना सकती हैं। परिवारों का वातावरण सुख-शान्तिमय बनाना उन्हीं के हाथ में है। राष्ट्र की आधी पददलित शक्ति को यदि उभार दिया जाय तो देखते-देखते देश की समर्थता सहज ही दूनी हो सकती है। हमारे मुँह पर लगा हुआ नारी उत्पीड़न का कलंक सहज ही धुल सकता है। हर विचारशील व्यक्ति को इस सन्दर्भ में कुछ करने की बात सोचनी ही चाहिए और जो उससे बन पड़े उसके लिए साहसिक कदम बढ़ाना ही चाहिए।

विज्ञापन और प्रचार या मातृशक्ति पर प्रहार

प्रथम जर्मन युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ने वाले योद्धाओं में रोनाल्ड निक्सन का नाम अग्रगण्य है। वे वायु सेना में एक उच्च अधिकारी थे। युद्ध में भीषण नरसंहार, मारकाट, आगजनी और श्मशान के दृश्य तो जगह-जगह बनते ही हैं और उन सबके बीच रहना पड़ता है। अपनी उन्मादपूर्ण मनोदशा के कारण सैनिकों और सेनाधिकारियों पर उस समय तो कोई प्रभाव नहीं पड़ता पर जब वह उन्माद उतर जाता है तो युद्ध की वीभत्सता स्मृतियों में कौंध-कौंध कर व्यक्ति को विचलित किये डालती है और बहुत रातों तक वह चैन से नहीं सो पाता। अब तक लड़े गये युद्धों में विश्वयुद्ध सबसे अधिक संहार लीला का केन्द्र रहा है और रोनाल्ड कुछ भावुक किस्म के भी थे। युद्ध का उन्माद जब उतर गया तो रोनाल्ड की चैन और शक्ति खो गयी। बिस्तर पर लेटते ही वे दृश्य घूम-घूम कर आने लगे और उनको दहलाने लगे। दो चार दिन तो वैसे ही बीत गये पर जब अधिक समय होने लगा और मनोदशा सुधरने की अपेक्षा बिगड़ने लगी तो रोनाल्ड पर एक और चिन्ता सवार हुई।

क्या करें, क्या न करें? इसी मानसिक उद्विग्न स्थिति में वे एक बार कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय गये। वहाँ उन्हें भगवान बुद्ध की शान्त, सौम्य, करुणा और प्रेम से आपूरित मुद्रा में प्रतिमा दिखाई दी। मूर्ति की ओर वे आकृष्ट हुए और एकटक उसे ही देखने लगे। देखते-देखते उन्हें ऐसा लगा मानो उस मूर्ति से शक्ति और करुणा की धाराएँ निकल-निकल कर मन तथा हृदय को शीतलता प्रदान कर रही हो। उस मूर्ति को देखते-देखते उनके हृदय की अशान्ति छिन्न होने लगी।

मूर्ति का कहें या आकृति का एक तो यह प्रभाव है। इसी प्रभाव के सम्बन्ध में बताते हुए अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक डेल कार्नेगी ने लिखा है–"जब-जब मानसिक चिन्ताएँ तथा कठिनाइयाँ मुझे घेर लेती हैं और मैं परेशान हो उठता हूँ तब-तब मैं महामानव लिंकन के शान्त चित्र पर अपना ध्यान केन्द्रित कर देता हूँ। लिंकन की इस मुद्रा के चित्र को देखते-देखते मुझे नया उत्साह, नयी प्रेरणाएँ और नया साहस मिलने लगता है और मैं सन्तुलित होकर पुनः कर्तव्य पथ पर अग्रसर हो उठता हूँ।"

चित्रों का प्रभाव मनुष्य मन पर अनिवार्य रूप से पड़ता है और यह असाधारण भी होता है। ध्यान से देखने पर प्रभाव और भी गहन होता है। अच्छे और प्रेरणादायक चित्र ध्यानपूर्वक देखने से अपना इतना प्रभाव उत्पन्न करते हैं तो निम्नकोटि के चित्र अपना प्रभाव छोड़ने से नहीं चूकते होंगे। पत्र-पत्रिकाओं और सार्वजनिक स्थानों में विज्ञापन चित्र लगाये जाते हैं। अधिकांश चित्रों में विज्ञापित वस्तु के साथ लड़कियों-युवतियों के चित्र भी विचित्र मुद्रा में छपे या बने होते हैं। अशोभनीय और अश्लील रूप में चित्रित स्त्री-आकृतियों का क्या प्रभाव देखने वालों पर पड़ता होगा, कुछ कहना मुश्किल है। और आश्चर्य की बात तो यह कि जिस विषय में माता-पिता अपने बच्चे के सामने अधिक चर्चा करना भी पसन्द नहीं करते, जब ऐसे चित्रों को अपने बच्चों के साथ देखते होंगे और बच्चे उस चित्र के सम्बन्ध में अपने माता-पिता से पूछते होंगे तो माता-पिता कैसे उत्तर देते होंगे? और क्या उत्तर देते होंगे?

युवक और वृद्ध व्यक्तियों पर अशोभनीय चित्रों का उतना बुरा प्रभाव नहीं होता जितना कि बच्चों पर किसी भी वस्तु का प्रभाव तुरन्त पड़ता है। कारण कि वे सुकुमार होने के साथ-साथ जिज्ञासु और असावधान भी होते हैं। यह बात नहीं है कि युवकों और वृद्धों में बच्चों की सी जिज्ञासा न होने के कारण वे कोई प्रभाव नहीं लेते। वस्तुतः तो मनुष्य का मन सहज अधोगामी भी होता है पर बच्चों के मन-मस्तिष्क के साथ वे विशेष परिस्थितियाँ भी जुड़ी होती हैं। फलस्वरूप उनके संस्कार, चरित्र, दिशाएँ विशेष रूप से प्रभावित होती हैं। सरेआम सार्वजनिक स्थानों के साथ-साथ जब ऐसे विज्ञापन कैलेण्डर और रंगीन चित्रों के रूप में घरों में भी प्रवेश कर जाते हैं फिर तो चौबीसों घण्टे पड़ने वाली उनकी छाया और घर के सदस्यों के चारित्रिक संस्कारों पर अपना प्रभाव न छोड़े यह कैसे हो सकता है।

ऐसे विज्ञापित चित्रों को विषयाशक्ति की निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा बताते हुए सन्त-विनोबा ने कहा है– "मैंने शहरों की दीवारों पर ऐसे भद्दे, घृणित और वीभत्स चित्र देखे हैं जिन्हें स्मरण आते ही आँखों में आँसू आ जाते हैं। माता-पिता इन चित्रों को कैसे सहन करते हैं– ये पोस्टर रास्ते में होते हैं और हर एक की आँखों पर आक्रमण करते है। शहरों में नागरिकों, बहनों को शर्मिन्दा होना पड़ता होगा, निगाहें नीचे कर लेनी होती होंगी। आम रास्ते पर चलने वाले नागरिक की आँखों पर हमला करने

का किसी को क्या हक है ?'' विनोबाजी का यह प्रश्न अपने आप में एक सच्चाई है । अधिकांश लोग न तो इस प्रश्न की आवश्यकता अनुभव करते हैं और न ही इस सन्दर्भ में सोचना आवश्यक समझते हैं ।

चित्रों की उपयोगिता और महत्व के सम्बन्ध में यह भी स्मरणीय है कि छोटे बच्चों को अक्षर ज्ञान कराने के लिए चित्रों वाली पुस्तकों का उपयोग कराया जाता है । उन्हें पढ़ाने के लिए भी चित्रों का प्रयोग किया जाता है । महापुरुषों के जीवन कृतित्व का ज्ञान कराने के लिए उल्लेखनीय घटनाओं को चित्रांकित भी किया जाता है । कहने का अर्थ यह कि अक्षरों और शब्दों की अपेक्षा चित्र मनुष्य के चित्त तक अधिक सरलता से पहुँचे हैं । मनोरंजन में भी साहित्य और कथानक की अपेक्षा सिनेमा और नाटक पसन्द करने वालों की संख्या अधिक है । विज्ञापनों और अशोभनीय चित्रों के माध्यम से जो बातें जितनी जनता में अधिक व्यापक रूप से पहुँचती हैं, उससे कहीं कम ही साहित्य द्वारा पहुँचती हैं । अर्थात् एक ओर उपयोगी साहित्य रखा जाय तथा दूसरी ओर चित्र तो साहित्य की अपेक्षा चित्र ही ज्यादा प्रभावोत्पादक होंगे और जब विज्ञापन चित्रों द्वारा वस्तुओं को लोकप्रिय बनाने की व्यवस्था जुटाई जाती है और यदि अशोभनीय चित्रों का प्रयोग किया गया है तो सुधारवाद और चरित्र-निर्माण परक साहित्यिक प्रयासों की प्रभाव क्षमता बड़ी सीमा तक अवरुद्ध हो जाती है।

अशोभनीय और अश्लील चित्र किन्हें कहा जाय ? इन्दौर में एक बार जागरूक महिलाओं ने अश्लील पोस्टरों का प्रतिरोध किया तो पूछा गया कि अशोभनीय पोस्टर किन्हें कहा जाय ? तो उत्तर था – जिन पोस्टरों को माता पिता अपने बच्चों के साथ नहीं देख सकते ।

यह व्याख्या एक सीमा तक ठीक है पर विकारों को भड़काने वाले प्रत्येक चित्र को इसी कोटि में रखना होगा । अश्लील पोस्टरों के सम्बन्ध में, विज्ञापन चित्रों के माध्यम से मिलने वाली कुत्सित प्रेरणाओं और होने वाली हानियों के सम्बन्ध में बताते हुए सन्त विनोबा ने कहा है–''भारत में स्त्रियों को महिला कहा जाता है । इतना उन्नत शब्द संसार की किसी भी भाषा में नहीं मिलता । परन्तु स्त्री का इतना गौरव होते हुए भी आज लोग स्त्री की तरफ कामिनी भाव से देखते हैं । अशोभनीय चित्रों, विज्ञापनों में स्त्रियों की भद्दी मुद्राओं का उपयोग, गन्दे सिनेमा आदि प्रचार के साधनों द्वारा स्वार्थी तत्व मातृशक्ति पर खुलेआम प्रहार करता है और हम सब उसे सहन करते हैं । मैं नहीं मानता कि इससे प्रगति की कोई राह खुलेगी । वस्तुतः जब शील ऊँचा उठता है तो देश आगे बढ़ता है अतः हमें शील और मातृत्व पर होने वाले इस आक्रमण को रोकने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए ।

अश्लील पोस्टर और गन्दे चित्र जहाँ भी दिखाई दें उन्हें हटाना और घर में ऐसे चित्रों को कोई स्थान न देना मातृशक्ति की पुनर्प्रतिष्ठा की दिशा में एक प्रशंसनीय और प्रभावशाली प्रयास हो सकता है । ऐसे चित्रों की जब उपेक्षा की जाने लगेगी तो उन्हें प्रसारित करने वाले लोग भी स्वतः ही निरुत्साहित हो जाएँगे । अश्लील चित्रों और पोस्टरों को स्वयं के अस्तित्व पर, परिवार पर और समाज पर लगा कालिख मानकर उसे साफ करने के लिए हर उचित प्रयास किया ही जाना चाहिए ।

नारी को हेय स्थिति में न रहने दें

मूढ़-मान्यताओं में एक प्रचलन यह भी है कि नारी को हीन दृष्टि से देखा जाय और नर को वरिष्ठ समझा जाय। कन्या का जन्म सुनकर उदासी आती है और पुत्र को रत्न मानकर बधाये बँटते हैं, इसके बाद प्रत्येक व्यवहार में लड़के और लड़की के बीच भेदभाव की प्रक्रिया चल पड़ती है । प्यार-सम्मान की दृष्टि से लड़कियों को सस्ता लड़कों को महँगा खरीदा जाता है । खिलौने लड़कों को अनेकानेक दिए जाते हैं और लड़कियों को एकाध से ही बहकाया जाता है ।

शिक्षा की दृष्टि से लड़कों पर काफी खर्च किया जाता है। उन्हें कालेज की पढ़ाई पूरी कराई जाती है और लड़कियों को चिट्ठी-पत्री पढ़ने लायक बनाने के बाद कहा जाने लगता है कि इन्हें कोई नौकरी थोड़े ही करनी है । रामायण, प्रेमसागर पढ़ सकें। यही बात हारी-बीमारी का इलाज कराने एवं स्वास्थ्य सम्वर्द्धन के उपाय-उपचार बरतने के सम्बन्ध में देखी जाती है । कई निष्ठुर अभिभावक सोचते हैं कि विवाह से पहले ही मर जाय तो उसे खर्च से छुटकारा मिले । लड़के के बारे में सोचा जाता है कि उससे वंश चलेगा । घर में आमदनी बढ़ेगी । बुढ़ापे में सहारा मिलेगा आदि-आदि । इस दृष्टिकोण में अनौचित्य भरा पड़ा है । नारी की विशेषताओं पर दृष्टि डाली जाय तो अनेक तथ्य ऐसे हैं जिनके आधार पर लड़कियाँ लड़कों से वरिष्ठ बैठती हैं । उनकी गरिमा पर विचार किया जा सके तो प्रतीत होगा कि वे लड़कों की तुलना में किसी भी प्रकार घटिया सिद्ध नहीं होतीं ।

सोचा जाता है कि पुरुष कमाता है । स्त्रियाँ कमाई नहीं करतीं । पर यह भुला दिया जाता है कि धन मात्र पैसे के रूप में ही नहीं होता, श्रम भी धन है । उपार्जन नहीं बचत भी सम्पदा का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है । स्त्रियाँ घर की चौकीदारी करती हैं । दिन-रात का चौकीदार नौकर रखा जाय तो उसके लिए ढेरों पैसा मासिक वेतन के रूप में देना पड़ेगा । यदि वैसी व्यवस्था न की जाय तो चोरी होने का पूरा खतरा रहेगा। जो कमाया है, जो आवश्यक साज-समान जमा किया है वह चोरों के घर चला जाएगा।

स्त्रियाँ घर में रहकर बेकार नहीं बैठी रहतीं वरन् भोजन, वस्त्र, सफाई, साज-सम्हाल, आतिथ्य सत्कार जैसे

कामों का पूरा उत्तरदायित्व निवाहती हैं । यह सभी काम ऐसे हैं कि जिन्हें मजदूरों से कराया जाय वे इतने महँगे पड़ेंगे कि पुरुष जो कमाता है सबका सब उसी में खप जाय। घर के सभी सदस्यों के लिए भोजन होटल से मँगाया जाय तो उसकी लागत घर पर पकाने की अपेक्षा कई गुनी अधिक पड़ेगी । कपड़े फैक्टरी में धुलवाये जाएँ तो उनका दैनिक खर्च इतना पड़ेगा कि कमाई का अधिकांश भाग उसी में चला जाय, धोबी कई दिन में कपड़े देता है । तब तक काम चलाने के लिए कई जोड़े कपड़े चाहिए । जबकि घर में रोज ही कपड़े धुल जाते हैं और एक दो जोड़ी से काम चल जाता है । साबुन आदि में खर्च इतना स्वल्प पड़ता है कि लाउण्ड्री से धुलवाने में उसकी कोई समानता नहीं हो सकती । झाड़ू, बुहारी, सफाई, बर्तन-माँजना, चौका समेटना आदि के घरेलू कामों के लिए बड़े आदमियों को एक-दो पूरे समय के नौकर रखने पड़ते हैं । घर में एक गृहिणी यह सारे काम चला लेती हैं । एक-एक करके इन सभी कामों का बाजारू मूल्य जोड़ा जाय तो वह इतना अधिक हो जाता है कि उसे सहज बचा देने वाली महिला को आर्थिक दृष्टि से कम उत्पादक नहीं माना जा सकता । अतिथि सत्कार भी बिना गृहिणी के बन पड़ना कठिन है । बाजार से जलपान, पान, सुपाड़ी मँगाया जाय तो उसकी महँगी कीमत के साथ ही बाजार जाकर उन वस्तुओं को खरीदकर लाने वाले का समय भी कम महँगा न पड़ेगा । फिर आगन्तुक को इसकी प्रतीक्षा में बहुत देर बैठा रहना पड़ेगा ।

स्नेह, सहयोग, विनोद, मनोरंजन, विश्वास, आत्मीयता, परिचर्या आदि के भावनात्मक लाभ नारी के बिना किसी को भी नहीं मिल सकते । बाहरी व्यक्ति इनकी चिह्न पूजा कर सकते हैं पर घनिष्ठ आत्मीयता के अभाव में यह सब उस स्तर का बन ही नहीं पड़ता, जिससे आन्तरिक परितृप्ति हो सके और जीवन पर छाया हुआ एकाकीपन, रूखापन दूर हो सके । नर और नारी एक-दूसरे के पूरक माने गये हैं । दोनों हाथों, दोनों पैरों और गाड़ी के दो पहिये की तरह । एकाकीपन भावनात्मक दृष्टि से निरन्तर खलता रहता है । यही कारण है कि विधुर या विधवाओं की आयु विवाहितों की तुलना में कम रहती है। उन्हें पारस्परिक स्नेह-सहयोग की कमी सदा अखरती और खटकती रहती है । इस अभाव की पूर्ति कितना ही सा खर्च कर देने पर भी नहीं हो सकती । माता की मता, पत्नी की घनिष्ठता बाजार से यदि कोई खरीदना हे तो उसे असफलता ही मिलेगी ।

नारी के द्वारा ही बच्चे जने जाते हैं, वे जीते-जागते, ते-बोलते खिलौने हैं । हरकत करते देखने में सुहावने ते छोटे-छोटे खिलौने ढेरों पैसों में खरीदे जाते हैं । वे ही समय में टूट फूट जाते हैं । फिर उनमें बोलने, ने और भावनाओं से भरे रहने जैसी विशेषताएँ तो ी ही नहीं । ऐसे बच्चों से घर-आँगन कता-फुदकता रखे रहने का श्रेय नारी को ही है । ईसा से किसी ने पूछा कि यदि भगवान को आपने देखा हो तो हमें भी दिखा दीजिये । उन्होंने एक बच्चे को गोद में लेकर उपस्थित जनों को दिखाया कि दृष्टिगोचर होने वाला भगवान यही है, क्योंकि इसका अन्तःकरण दोष-दुर्गुणों से बचा और शुद्ध ,पवित्र है । ऐसे भगवान स्वरूप बच्चों को जो जननी पालती हैं, उन्हें कौशल्या, यशोदा के समान ही भाग्यवान माना जा सकता है । अगली पीढ़ियों का भला-बुरा निर्माण पूरी तरह आज की महिलाओं के ही हाथ है । यदि वे सुयोग्य और गुणवती हैं तो निश्चय ही सन्तति का स्तर और मस्तिष्क ऐसा बना सकती हैं कि उनका परिवार समाज को समुन्नत बनाने में सहायक सिद्ध हो। पिता तो बच्चों की बाह्य व्यवस्था ही कर सकता है । उनके व्यक्तित्व के स्तर को शालीनता और प्रतिभा से भरा-पूरा बनाना तो माता का ही दायित्व है । इस प्रयास में घर की अन्य महिलाएँ भी हाथ बँटाती हैं ।

स्त्रियों का बुद्धि बल पुरुषों की अपेक्षा तीक्ष्ण होता है। इसका प्रमाण यह है कि परीक्षाओं में लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होती हैं । यदि उन्हें अन्य क्षेत्रों में भी समुचित अवसर मिले तो अपनी बढ़ी-चढ़ी प्रतिभा का भली प्रकार प्रदर्शन कर सकती हैं। बुद्धिवादी क्रिया-कलापों में अपेक्षाकृत अधिक आगे आ सकती हैं और अधिक सफलता प्राप्त कर सकती हैं ।

स्त्रियों को पिछड़ी स्थिति में रहने के कारणों में प्रधान है उनके प्रति बरती जाने वाली उपेक्षा । इसे पूरी तरह दूर किया जाना चाहिए और लड़की तथा लड़कों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं समझा जाना चाहिए ।

इसके लिए कुछ सामाजिक परिवर्तन आवश्यक हैं। धूम-धाम की खर्चीली तथा दहेज प्रदर्शन वाली शादियों का प्रचलन पूरी तरह बन्द होना चाहिए । पारिवारिक त्योहारों के स्तर पर नितान्त सादगी के साथ विवाह हुआ करें । फालतू बारातियों का जमघट इधर से उधर न खदेड़ा जाय । मात्र परिवार के सगे कुछ प्रमुख सदस्य उस अवसर पर उपस्थित रहें । अधिक से अधिक कुछ सगे-सम्बन्धी उस अवसर पर रह सकते हैं । न दहेज दिखावा चले, न जेवर । न ऐसे कीमती कपड़े जिनका उपयोग दैनिक जीवन में आमतौर से नहीं होता। कुछ खर्च करना हो तो दोनों पक्षों से सामर्थ्यानुसार राशि ली धन के रूप में बैंक में लम्बी अवधि के लिए जमा करादी जाय जो ब्याज समेत बढ़ती रहे और किसी बड़ी आवश्यकता के समय काम में आ सके ।

उपजातियों का जंजाल तो पूरी तरह समाप्त होना चाहिए । क्रमशः जाति बिरादरी का दायरा भी सिकोड़ा जाय । ताकि दायरा बढ़ने पर उपयुक्त वर वधू की ढूँढ-खोज कठिन न रहे । जाति-पाँति का शिकंजा जितना कड़ा होगा, जितना कसा रहेगा उतनी ही अधिक कठिनाई उपयुक्त सम्बन्ध खोजने मे खड़ी रहेगी । प्राचीन काल में वर्ण-व्यवस्था, व्यवसाय एवं रहन-सहन के आधार चलती थी । उसका वंश परम्परा से कोई सम्बन्ध

न था । अब भी समान स्तर खोजा जा सकता है पर जाति-पाँति के बन्धन इतने महत्त्वपूर्ण नहीं माने जाने चाहिए कि अच्छे सम्बन्ध ढूँढ़ने में भारी अड़चन खड़ी हो जाय ।

लड़की से लड़के की आयु या शिक्षा अधिक ही हो यह आवश्यक नहीं । इन दोनों ही प्रसंगों में यदि लड़की बड़ी रहे और लड़के की स्थिति कम हो तो भी कोई हर्ज नहीं । वयस्क हो जाने के उपरान्त यह देखने की जरूरत नहीं लड़का बड़ा है या लड़की । सच तो यह है कि लड़की यदि अपेक्षाकृत बड़ी है तो वह अपने पक्ष का दायित्व अधिक अच्छी तरह निर्वाह कर सकेगी । अपनी बढ़ी हुई योग्यता के आधार पर समूचे परिवार की साज-सम्हाल अधिक अच्छी तरह कर सकेगी । यही बात शिक्षा के सम्बन्ध में भी है । जो पक्ष अधिक सुयोग्य होगा वही अधिक उपयोगी सिद्ध होगा ।

महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों में शारीरिक बल अधिक पाया जाता है । इसका कारण एक ही है कि स्त्रियों को बच्चे जनने होते हैं । उसी कारण वे दुर्बल रहती हैं । घर में बच्चों की देख-रेख करने के कारण वे बाहर के कामों में संलग्न नहीं हो पातीं । व्यवस्था आमतौर से घर से बाहर के क्षेत्र में ही होती है । उपार्जन के लिए भी बाहर जाना पड़ता है । महिलाएँ बच्चों के कारण उस स्थिति में जा नहीं पातीं । इसलिए वे शरीर से दुर्बल भी रहती हैं और घर से बाहर जा भी नहीं पातीं। यही उनकी दो विवशताएँ हैं, जिनके कारण पिछड़ी स्थिति में रहना पड़ता है । पुरुष इन कठिनाइयों से बचे रहने के कारण समर्थ रहते हैं । इन दोहरे भारों को यदि महिलाओं पर न लादा जाय तो वे पुरुषों से किसी भी क्षेत्र में पीछे न रहें । आवश्यकता इस बात की है कि पुरुष इन भारों को इनके कंधों पर से यथासम्भव हलका करें और स्वतन्त्र रूप से विकसित होने का अवसर प्रदान करें । अच्छा हो गृह कार्य को नर नारी दोनों मिलकर सम्हालें । बाहर के सामाजिक कार्यों में स्त्रियों को भी समान रूप से भाग लेने दें । पर्दे, घूँघट के बंधनों में न बाँधें। यदि वे साधन बन पड़े तो उन सभी कारणों का समापन हो जाय जिनके कारण महिलाओं को हेय स्थिति में रहना पड़ता है और उस हानि से समूची मानव जाति को क्षति-ग्रस्त रहना पड़ता है ।

इस चुनौती को स्वीकार करें

नारी के सम्बंध में विभिन्न दृष्टिकोणों से विभिन्न तरह के विचार व्यक्त किये जाते हैं । इनमें से अधिकांश विचारों और धारणाओं का निर्माण पुरुष ने स्वयं ही किया । उसने अपने अहं के वशीभूत होकर स्वयं को नारी से श्रेष्ठ देखा और तदनुसार व्याख्या कर डाली । किसी ने उसे दैवीय गुणों की प्रतिभा माना तो किसी ने उसको मात्र मोहिनी, माया, विचित्र रहस्य और संबला कहकर पुकारा। कुछ लोगों ने तो उसके चरित्र को इस स्थिति में संदिग्ध और अविश्वसनीय बताते हुए कहा, "पुरुषस्य भाग्यैः त्रियाचरित्रस्य देवो न जानाति कुतो मनुष्यः" जयशंकर प्रसाद ने नारी की श्रद्धा और विश्वास के रूप में देखा तो शेक्सपियर ने उसे एक कमजोरी बताया और कहा, "फ्रैजाइलनिस दाई नेम इज वुमन" अर्थात् दुर्बलता तेरा ही नाम स्त्री है ।

इस तरह के सारे प्रतिपादन नारी के माता, मन्त्री और मोहिनी के संतुलन को ध्यान में न रख वास्तविकता से कोसों दूर रहते हुए ताने-बाने बुनकर किये गये हैं और उसी के अनुरूप उनकी व्याख्या भी की गयी है । सच्चाई यह है कि समाज और जीवन को सन्तुलित ढंग से चलाने के लिए सम्पूर्ण मानव समाज की गाड़ी में स्त्री और पुरुष का समान महत्त्व है अथवा यों कहा जा सकता है कि वे दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । सृष्टि क्रम के संचालन, अभिवर्द्धन और विकास की दृष्टि से प्रकृति ने नर और नारी में यौन विभाजन का अंतर मात्र श्रम विभाजन के उद्देश्य से किया है। कई कार्य ऐसे हैं जिन्हें केवल पुरुष ही पूरा कर सकते हैं और कई कार्य ऐसे हैं जिन्हें पुरुष नहीं केवल नारी ही पूरा कर सकती है । इस दृष्टि से नारी के नारीत्व एवं पुरुष के पुरुषत्व में कोई भी अन्तर नहीं आता ।

यदि सृजन, पालन और सम्वर्द्धन की दृष्टि से देखा जाय तो इस क्षेत्र में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । वस्तुतः मानव समाज के उत्कर्ष में नारी का जो योगदान या महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है वह लिखने-पढ़ने का नहीं वरन् अनुभूति करने का विषय है । नारी के हृदय में दैवी गुणों के विकास की सम्भावना मूल प्रेरणा के रूप में विद्यमान है । प्राचीनकाल में मनीषियों, विचारकों और महर्षि, मुनियों ने इस सत्य को देखा और समझा भी । लेकिन कालांतर में वह अंधकार युग आया जिसमें पुरुष के अहं ने नारी की इस गरिमा को ईर्ष्या की दृष्टि से देखा और उसे दबाने, कुचलने का क्रूर तथा निष्ठुर प्रयास किया। सहिष्णुता की साक्षात् देवी ने इस क्रूरता को भी सहन किया है ।

जीवन सार्थकता की दृष्टि से विचार किया जाय तो भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन का सन्तुलन बनाये रहना ही मानव शरीर को सार्थक बनाता है । भौतिकता और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में अब तक जितनी भी महान उपलब्धियाँ प्रगति के रूप में दिखाई देती हैं उन सभी के मूल में नारी का महान और सहज प्रेम छिपा हुआ है । छोटे से भ्रूण को महामानव बनाने में नारी का उदात्त प्रेम ही एकमात्र प्रेरक आधार रहा है । राम, कृष्ण और बुद्ध जैसे अवतारी महामानव, कालिदास जैसी प्रतिभाएँ, नैपोलियन जैसे विजेता, माइकेल फैरेड एवं जगदीश बसु जैसे वैज्ञानिक आदि अनेकानेक ऐतिहासि— पौराणिक महापुरुषों की सफलताओं के मेल में

निश्चल प्रेम ही आधार रहा है । ऋषि, मनीषी जिन्होंने संसार को अपार वैभव देकर अथवा विरक्ति देकर मानव समाज पर जो उपकार किया उसके लिए भी मूलतः नारी का ही आभार मानना पड़ेगा । लेकिन नारी की वर्तमान दुर्दशा ने जैसे समाज की भूमि को बंजर ही बना दिया है । यह पुरुष और नारी दोनों के लिए चुनौतीपूर्ण स्थिति है । आवश्यक है कि नारी को वर्तमान दुःस्थिति से उबारा जाय और इसे अपना महान उत्तरदायित्व सफलतापूर्वक पूरा करने दिया जाय ।

नारी दुर्गति पर नये दृष्टिकोण से सोचा जाय

नर और नारी के बीच बरती जाने वाली असमानता की विडम्बना सवर्णों की अपेक्षा असवर्णों को कम त्रास देती है । उस वर्ग की महिला को सुविधा साधन उपलब्ध न हों, पर सामाजिक न्याय की दृष्टि से वे सवर्णों की तुलना में अधिक अच्छी स्थिति में हैं ।

वे पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर खेती, मजदूरी आदि का काम करती हैं । आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदने और निजी उत्पाद को हाट-बाजार में बेचने के लिए वे अपेक्षाकृत स्वतन्त्र हैं । उन्हें घर से बाहर न निकलने और घूँघट काढ़कर चोरों की तरह घर में छिपा नहीं रहना पड़ता । यह श्रमशीलता उनके लिए कम से कम स्वास्थ्य की दृष्टि से तो कहीं अधिक अच्छी रहती है और परिवार चलाने में योगदान की न्यूनाधिकता के कारण उन्हें अपने आपको पुरुषों से गया-गुजरा अनुभव नहीं करना पड़ता । दोनों की संयुक्त कमाई से अन्न-वस्त्र जैसी आवश्यकता का जो कुछ भी प्रबन्ध हो सकता है, वे करते भी हैं और समानताजन्य स्नेह-सौजन्य का आनन्द लेते हैं ।

अमीरों और सवर्णों की अपेक्षा वे इस दृष्टि से भाग्यवान हैं कि वे अपनी श्रमशीलता और दक्षता का उपयोग करके आत्म-गौरव की अनुभूति प्राप्त करने का अवसर पाती हैं । जबकि तथाकथित सम्पन्न घरों की महिलाएँ कोई उपयोगी काम न कर सकने के कारण आत्महीनता से ग्रसित रहती हैं । इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वे सजधज और शृंगार प्रसाधनों के सहारे अधिक सुन्दर और आकर्षक दीखने के लिए ही ताने-बाने बुनती रहती हैं। मानसिक विवेचना की दृष्टि से यह स्वाभाविक ही है क्योंकि जो दक्षता की दृष्टि से अपने को समर्थ सिद्ध नहीं कर सकेगा, निठल्ला बैठा रहेगा उसका अन्तराल अपनी व्यर्थता अनुभव करता रहेगा और दूसरे पक्ष को अनुकूल बनाये रहने के लिए अधिक आकर्षक बनने की विडम्बना रचेगा । भले ही शरीर को समुचित पोषण न मिलने के कारण स्वास्थ्य सम्बन्धी क्षति क्यों न सहन करनी पड़े ।

तथाकथित पिछड़े वर्ग की जातियों में पुनर्विवाह का प्रचलन है इसलिए उस वर्ग की महिलाओं को सारी जिन्दगी वैधव्य का रोना रोते-रोते नहीं बितानी पड़ती । इसी प्रकार तलाक का प्रचलन रहने से एक अतिरिक्त मार्ग भी खुला रहता है । पति के मर जाने पर वे मेहनत-मजदूरी करके बच्चों का पेट पाल सकती हैं । जबकि सवर्ण वर्ग का कोई व्यक्ति कई बच्चे तो छोड़ मरा है, पर उनके निर्वाह के लिए स्थिर सम्पत्ति संचय का प्रबन्ध नहीं कर सका है तो विधवा की तथा उसके बच्चों की जो दुर्दशा होती है उसे हृदय विदारक ही कहा जा सकता है । ससुराल वाले तथा पिता पक्ष वाले अपनी आवश्यकता तथा स्वार्थपरता को पूरी करने में ही लगे रहते हैं । फिर सभी सम्पन्न या उदार भी तो नहीं होते । ऐसी दशा में वह विधवा किस प्रकार अपने बच्चों का गुजारा करे, जबकि पर्दा प्रथा के कारण उसे घर से बाहर जाने की भी छूट नहीं है । इसमें सम्बन्धियों को हेठी भी लगती है, भले ही वे उसकी कोई सहायता न करते हों । सच तो यह है कि विधवा के पास कोई सम्पदा है भी तो उसे हड़पने में ससुराल वाले तथा मैके के लोग गिद्ध दृष्टि लगाये रहते हैं जब तक कि उसे पूरी तरह पूँछ नहीं कर देते । यह कठिनाई असवर्ण लोगों में नहीं हैं । समर्थ और बेधड़क महिला जैसा भी कुछ बन पड़ता है, अपने बलबूते गुजारा कर लेती हैं ।

अपनी दक्षता प्रकट करने और पुरुषार्थ करके आगे बढ़ने की इच्छा ऐसी है जिसे मानवी संरचना का एक अविच्छिन्न अंग कह सकते हैं । इस प्रकार का प्रतिबन्ध लगाना व्यक्तित्व का, अन्तःकरण का हनन ही कहा जा सकता है । सामन्तशाही मनोवृत्ति विवाह के उपरान्त स्वतन्त्र विकास की छूट नहीं देती । उपार्जन, अध्ययन, सेवा-सम्पर्क आदि के लिए उन्हें अवसर नहीं लेने दिया जाता । उन्हें कहा जाता है कि वे रसोईदारिन, चौकीदारिन या बच्चे पैदा करने की मशीन भर हैं । उन्हें दासी की तरह अपना श्रम, समय और उत्साह पूरी तरह पुरुषों के निमित्त ही उत्सर्ग करना पड़ता है । ऐसी दशा में प्रतिबन्धित के मन में घुटन होना स्वाभाविक है । पिता का घर छोड़ने से पूर्व ससुराल के सम्बन्ध में उसकी जो रंगीन कल्पनाएँ थीं, वे सभी धूल में मिल जाती हैं और वह अपने आपको एक अपंग या विवश, बन्दी के अतिरिक्त और कुछ अनुभव नहीं करती । पग-पग पर तिरस्कार होता रहता है । ऐसा करने के लिए ससुराल का छोटे से लेकर बड़े तक हर सदस्य अपने को अधिकारी भी मानता है । नारी को रोते रहने के अतिरिक्त मन हलका करने का और कोई मार्ग नहीं है । यह अपने ऊपर लगाये गये लांछनों के सम्बन्ध में मुँह खोलकर सफाई भी प्रस्तुत नहीं कर सकती । ऐसा करे तो उसे 'मुँहजोर' होने की एक

और धारा के अपराध में नये सिरे से दण्डित होना पड़ता है।

क्या नारी की संरचना इसीलिए हुई है कि पितृगह में उसे पराये घर का कूड़ा-करकट समझकर महत्त्वहीन माना जाता रहे और ससुराल पहुँचते ही उसे भिखारिन की तरह पूरे परिवार की कृपा पर आश्रित रहना पड़े। क्या उसे पूरी तरह से अपने आश्रयदाताओं की मर्जी के लिए समर्पित होना चाहिए ? अपने स्वाभिमान की झलक तक नहीं मिलने देनी चाहिए और स्वावलम्बन तथा प्रगति पथ पर कुछ कदम आगे बढ़ने की बात नहीं सोची जानी चाहिए। सोची भी जाय तो धोबिन से लेकर मेहरी तक के काम इतने अधिक हो जाते हैं जिनका बाजारू मूल्य भले ही राई-रत्ती जितना हो, पर पूरा समय तो उसी में खप जाता है।

बच्चे जब तक समर्थ न हों तब तक सारे दिन कुछ न कुछ आवश्यकताएँ प्रस्तुत करते ही रहते हैं और ये काम इतने अधिक होते हैं कि यदि ईमानदारी से किया जाय तो एक व्यक्ति का पूरा समय, श्रम और मनोयोग उसके लिए खपता है, पर यदि जल्दी-जल्दी कई छोटे-छोटे बच्चे गोदी में आ जाएँ तो घर के काम समेटते हुए उनका परिपोषण भी एक बड़ा काम हो जाता है। इतने भार से लदे हुए व्यक्ति का मन अपने आप में भर जाता है। विशेषतया तब जबकि उसे उन कार्यों के बदले में प्रशंसा सुनने या श्रेय मिलने जैसा कुछ हस्तगत न हो।

गर्भिणी होना, प्रसव कष्ट भोगना, शरीर का रस दूध में परिवर्तित करना, बच्चों की देखभाल और हारी-बीमारी में रात-रात भर जागते रहना इतना भारी कष्टकर और जीवनी-शक्ति को निचोड़ डालने वाला काम है जिसका निर्वाह करते हुए नारी ऐसा कुछ करने की स्थिति में नहीं रहती जिसमें अपनी दक्षता का कोई मूल्यवान प्रदर्शन कर सके, भावी प्रगति के लिए कोई महत्त्वपूर्ण कदम उठा सके, कम से कम उस स्थिति में रह सके जिसमें पेड़ पर रहने वाले पक्षी घोंसले से बाहर भी जा सकते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन कर सकते हैं और अपने ढंग की स्वावलम्बी जिन्दगी जी सकते हैं। यह है नारी की, विशेषतया मध्यवर्ती पुरातन-पंथी परिवारों में पलने वाली नारी की दुर्दशा, जिसे बदला जा सके तो आधी जनसंख्या की खुशहाली, सुख-शान्ति लौटायी जा सकती है।

विज्ञापनों में घसीटना मातृ सत्ता का अपमान

अधर में लटके हुये ग्रह-नक्षत्रों में चुम्बकीय गुरुत्वाकर्षण काम नहीं कर रहा होता तो सृष्टि न जाने कब परस्पर टकराकर नष्ट-भ्रष्ट हो गयी होती। ठीक वैसा ही चुम्बकत्व नारी के सौन्दर्य में होता है, जो मनुष्य की कोमल भावनाओं को क्रियाशील रखता है। सामाजिक जीवन में जो कुछ भी व्यवस्था स्थिर है वह उसी सम्वेदना का परिणाम है, इस सौन्दर्य ने ही मानवीय सत्ता को कर्तव्य बोध कराया, उसे करुणा प्रदान की जो सृष्टि के किसी अन्य प्राणी को प्राप्त नहीं।

अपने इस रूप में सौन्दर्य उपासना की वस्तु है, उपेक्षा और अवज्ञा की नहीं। यह जीवन का ईश्वरीय तत्व है उसके प्रति पवित्र दृष्टि की निष्कलुष आचरण की अपेक्षा रहती है, अनादर और अपमान की नहीं। भगवान की मूर्ति सुसज्जित उपासना गृह में पूजित और प्रतिष्ठित रखी जाती है। उसे दर-दर, गली-गली मारा-मारा फिरने दिया जाये तो इससे उस सत्ता का तो अनिष्ट क्या होगा ? अपनी श्रद्धा और कोमलता का ही सर्वनाश होगा। उसका प्रतिफल प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को कलुषित, कलंकित और कुरूप बनायेगा।

आज के सामाजिक जीवन में जो अवांछनीयताएँ, चरित्रहीनता, सन्देह दृष्टि और सद्व्यवहार का अभाव मनुष्य जाति को बुरी तरह से पीड़ित किये हुए हैं उसका एक बड़ा कारण सौन्दर्य-बोधा नारी के प्रति उपर्युक्त उपेक्षा और कुदृष्टि का ही परिणाम है। जिस नारी को भारतीय संस्कृति ने शक्ति, सरस्वती और लक्ष्मी के समान सम्मानित सुपूजित रूप में प्रतिष्ठित किया जिसे माँ और गृह-लक्ष्मी कहकर सम्बोधित किया आज उसे ही नंगा कर चौराहों पर खड़ा किया जा रहा है। इससे बढ़कर लज्जाजनक बात और क्या हो सकती है ? जिसने नहला-धुलाकर अपने सम्वेदनशील संस्कारों से अभिसिंचित कर, अपने रस, रक्त और प्राणों से पोषण प्रदान कर मनुष्य को मनुष्य कहलाने योग्य बनाया उसी माँ को पुरुष निर्वसन करे तो यह उसके लिए धिक्कार की बात है।

सौन्दर्य को स्तरहीन आकर्षण का आधार बनाकर आज नारी को जिस तरह विज्ञापनों में घसीट लिया गया है उसे देखकर मानवीय कुत्सा तक सकुचा रही है। जो अवयव सृष्टि के आधार हैं, जो प्रकृति ने मानवीय सत्ता के पोषण के लिए विनिर्मित किये हैं जिन्हें मातृसत्ता ढककर रखती आयी है; उन्हें आवरणविहीन करने से मनुष्य के हाथ विषैले सर्प ही आ सकते हैं। यह घिनौना कृत्य भी वे कर रहे हैं जो अपने आपको सरस्वती पुत्र और कलाकार कहते हैं। धन के लालच में लज्जा को विज्ञापित करने की इस कला से तो अच्छा था मनुष्य कलाहीन बना रहता। किसान की तरह मोटा-झोटा खा-पीकर, मोटे कपड़े पहन कर साधारण जिन्दगी सन्तोषपूर्वक बिता लेने की सरलता और सादगी सराहनीय है; पर प्रगति और कलाकारिता के नाम पर देव-तत्व को पतित करने की प्रवृत्ति तो जितनी धिक्कारी जाये कम है।

आधुनिकता के नाम पर क्या नारी और उसका सौन्दर्य ही विज्ञापनों की वस्तु रह गया है, जो सिनेमा के विज्ञापनों से लेकर कलैण्डर, साबुन, दन्तमंजन और बीड़ी माचिसों तक में नारी को ही चित्रित किया जाता है । लाटरी के विज्ञापनों से लेकर शराब की बोतलों तक में उसी की छबि प्रदर्शित की जाती है । बाजार की हर वस्तु की बिक्री का ठेका, मानो नारी के सौन्दर्य ने ही ले लिया है अथवा नारी का सौन्दर्य इतना हेय है कि उसे सार्वजनिक शौचालयों तक में चिपकाने में किसी को कोई आपत्ति नहीं । सार्वभौम छवि न लगाकर किसी विज्ञापन में व्यक्ति विशेष की सहधर्मिणी का चित्र लगा दिया जाता और तब उससे पूछा जाता कि तुम्हें कैसा लगता है तो सम्भवतः यह व्यक्ति लज्जा से सिर ऊपर न उठा पाता; किन्तु यह मनुष्य कितना अविवेकी है कि इतना भी नहीं सोचता कि प्रश्न यह नहीं कि छवि किस स्त्री की है । मुख्य बात दर्शन और दृष्टिकोण में दूषण की है, यदि सार्वजनिक जीवन में यह दृष्टि दोष आता है तो उससे अपनी धर्मपत्नी, बहिन, बेटी कोई भी अपवित्र हुए बिना न रहेगी। पर मनुष्य लगता है इस दूरदर्शिता के पीछे लट्ठ लेकर पिल पड़ा है तभी तो वह अपनी आँखों नारी की यह गन्दी विज्ञापनबाजी देखता रहता है, किन्तु उसमें असहयोग और विद्रोह की आग तक न भड़कती । यदि हम संघर्ष नहीं कर सकते, विज्ञापनों में नारी को चित्रित करने, उसकी भाव-भंगिमाएँ दर्शाने से निर्माताओं को रोक नहीं सकते, लड़ नहीं सकते तो इस कुकृत्य के प्रति सार्वजनिक आक्रोश व्यक्त करने के लिए उनकी होली तो जला ही सकते हैं । लोगों में इस दूषित दर्शन के प्रति घृणा तो उत्पन्न कर ही सकते हैं। इतना भी नहीं कर सकते तो जिन वस्तुओं में नारी को विज्ञापन में घसीटा गया हो उनका बहिष्कार तो कर ही सकते हैं । यह भी संघर्ष ही है और किसी हद तक अधिक प्रभावकारी भी । यदि उन वस्तुओं का उपभोग लोग इस नैतिक चेतना के फलस्वरूप बन्द कर दें कि नारी जाति का नग्न प्रदर्शन सहन नहीं किया जाएगा, तो ऐसे धन के लोभी स्वयं ही उस कुत्सित आचरण का परित्याग कर दें । ऐसे लोगों की संख्या बहुत थोड़ी है । जो साबुनों, पेयों, कलैण्डरों, पुस्तकों तथा अन्यान्य वस्तुओं पर विज्ञापनों में नारी का प्रदर्शन करते हैं, पर वही समाज पर इस तरह छाये हुए हैं । मानो उपभोक्ता वर्ग अल्पसंख्यक हो और वे बहुसंख्यक । बात केवल सहयोग की है । असहयोग से ब्रिटिश शासन जैसी सत्ता को बोरिया-बिस्तर बाँधना पड़ सकता है तो यदि गन्दे विज्ञापनों वाली वस्तुओं का क्रय-विक्रय बन्द करने का लोग संकल्प लेने लगें तो इन तथाकथित प्रगतिशील और बुद्धिवादियों की कुछ ही समय में आँख खोली जा सकती हैं ।

अपनी सामाजिक समस्याओं में अनैतिक आचरण का विस्तार एक ऐसी बुराई है जिससे हमारी सृजनात्मक शक्तियाँ ही नष्ट होती जा रही हैं । सामाजिक जीवन से बढ़ते-बढ़ते अविश्वास का विष अब घर-घर भरता जा रहा है । उसका अन्त क्या होगा, उसकी इस देश के परिप्रेक्ष्य में कल्पना भी लज्जाजनक है, पर यह होकर रहेगा । यदि समय रहते हम सावधान नहीं होते तथा मातृ-सत्ता के प्रति कलुषित दृष्टिकोण के निवारण के प्रयास नहीं करते ।

अकेली स्त्री इस दिशा में कुछ नहीं कर सकती । इस सामाजिक बुराई ने व्यापक रूप धारण कर लिया है और अब फिल्म, चित्रकला आदि में भी बुरी तरह फैलता जा रहा है । आवश्यकता समय रहते आग के बगूलों को जहाँ के तहाँ रोक देने की है अन्यथा उस लपट से सारा समाज ही जलकर खाक हो सकता है ।

भारतीय नारी वर्तमान स्थिति में न पड़ी रहे

स्त्री-पुरुष एक ही सत्ता के दो रूप हैं । उनमें से किसी एक का अपना अलग एवं पूरा व्यक्तित्व नहीं है । स्त्री, पुरुष का और पुरुष स्त्री का पूरक अंश है । जब यह अंश अलग-अलग होकर अपनी भिन्न सत्ता बनाने की भूल करते हैं तभी समाज में विघटन तथा विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं । समाज का सम्यक् विकास करने के लिए नारी का विकास बहुत आवश्यक है । शरीर का आधा अंग ठीक बना रहे और आधे अंग पर पक्षाघात का प्रभाव रहे तो भला ऐसा शरीर किसी के क्या काम आ सकता है। समाज रूपी पुरुष का एक अंग नर जो बढ़ता और चढ़ता चला जाये और दूसरा अंग नारी गिरी पड़ी रहे तो कौन कह सकता है कि अपंग दशा में भी समाज का उत्थान सम्भव हो सकता है। समाज का सम्यक् विकास तो तभी सम्भव है जब स्त्री-पुरुष दोनों का विकास एक साथ हो ।

जिस राष्ट्र अथवा समाज की आधी शक्ति जनसंख्या नारी वर्ग दीनता, हीनता, मूढ़ता तथा जड़ता से ग्रसित बनी रहे उसके सुधार तथा विकास का प्रयत्न न किया जाता हो उसके निर्माण सम्बन्धी सारे कार्यक्रम निष्फल ही सिद्ध होंगे । जिस गाड़ी के पहिये ऊँचे-नीचे, दृढ़-कमजोर और असमान हों वह गाड़ी किस प्रकार चल सकती है और यदि उसे उलटा-सीधा, टेढ़ा-मेढ़ा चलाया भी जाएगा तो कुछ दूर चलकर ही उसका एक पहिया टूट जाएगा और गाड़ी जमीन पर गिर जाएगी ।

घर तथा परिवार की मूलाधार नारी और परिवारों को समाज का आधार माना गया है । जिस देश के परिवार सुशिक्षित, सुयोग्य, स्वस्थ तथा समर्थ होंगे, उस देश का समाज निश्चित रूप से शक्तिशाली तथा उन्नतशील होगा । परिवारों का सुन्दर तथा सुयोग्य होना बहुत कुछ नारी पर निर्भर होता है । इसलिए नारी को सदैव योग्य एवं

कर्तव्यशील बनाने का प्रयत्न चलता ही रहना चाहिए। इतिहास इस सत्य का साक्षी है कि जब-जब जिस देश की नारियाँ उन्नतशील, कर्तव्य-परायण, विदुषी तथा चेतना सम्पन्न रहीं तब-तब उस देश ने उल्लेखनीय कार्य कर दिखाये हैं। यह नारी की योग्यता एवं कुशलता पर ही निर्भर है कि वह समाज को शिष्ट, शालीन, वीर, धैर्यवान एवं कर्तव्यनिष्ठ नागरिक देती है अथवा भीरू और चोर-उच्चकों को अपनी गोद में खेलने वाले मानव शिशु को, यदि माता चाहे तो महापुरुष बना सकती है और न चाहे तो वह माँस पिंड बड़ा होकर भी लुंज-पुंज बना रह सकता है। शारीरिक विकास हो जाने पर भी वह किसी योग्य न हो सकेगा।

किन्तु यह केवल कामना करने मात्र से ही नहीं हो सकता। इसके लिए माता को गुणवती तथा सुयोग्य धात्री बनकर अपना कर्तव्य पालन करना होगा। माताएँ जब कौशल्या के गुण पैदा करेंगी तभी उनकी सन्तान राम बनेगी। जब सुभद्रा की विशेषता विकसित कर पायेगी तभी अभिमन्यु जैसे पुत्र की माता होने का गौरव प्राप्त कर सकेंगी। माता के गुणों के अनुसार ही सन्तानों का निर्माण होता है।

आज हमने नारी वर्ग का मूल्य एवं महत्व बहुत गिरा दिया है। उसे केवल भोग्या, प्रजननी तथा गृह-परिचारिका भर ही समझ लिया है और बहुत कुछ उसे उसी स्थिति में एक लम्बे समय से रखते चले आ रहे हैं। आज हमारी इस उपेक्षा से उसका शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक पतन खेदजनक स्थिति तक पहुँच गया है।

नारी के अवमूल्यन का अन्दाज इसी से लगाया जा सकता है कि जब किसी घर में लड़की पैदा हो जाती है तो वहाँ का वातावरण एकदम नीरस एवं विपण्ण हो जाता है। ऐसा मालूम होता है कि कन्या रूप में मानो उनके ऊपर कोई भारी तथा बेकार का बोझ आ पड़ा है। आज अपने समाज में सौ व्यक्तियों में से एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं मिल सकता जो लड़की के जन्म पर उतनी ही प्रसन्नता व्यक्त करता हो जितनी कि पुत्र जन्म के अवसर पर। अधिकांश व्यक्ति तो कन्या-जन्म को अभाग्य ही मान बैठते हैं यद्यपि अपने को शिक्षित तथा सभ्य मानने वाले लोग अपना यह असन्तोष स्पष्ट प्रकट नहीं करते, तब भी उनका यह कथन कि क्या किया जाये। भगवान ने जो कुछ दिया सब ठीक है, उसकी मर्जी से किसी का क्या वश, उनके मनोभाव को व्यक्त ही कर देता है, इस प्रकार देख सकते हैं कि क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित सभी लोग नारी का मूल्य कम करके आँकते हैं। नारी जाति का यह अवमूल्यन क्या परिवार और क्या समाज अथवा राष्ट्र, सभी के लिए अहितकर है।

यह विषमता केवल जन्मोत्सव के समय ही नहीं दिखाई देती बल्कि पालन-पोषण, खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने तथा शिक्षा-दीक्षा सभी बातों में दिखाई देती है। इन सब बातों में जो विशेषता लड़कों को दी जाती है उसका चतुर्थांश भी लड़कियों को नहीं दी जाती। ब्याह-शादियों के नाम पर लड़के का विवाह तो बड़े उत्साह और हँसी-खुशी के साथ किया जाता है पर बेटी के विवाह की कल्पना से ही लोगों की नाक-भौंहें सिमट जाती हैं। लड़का कितना ही सयाना और आवारा होकर क्यों न फिरता रहे न कोई बुरा मानता है और न उसके आचरण पर शंका की जाती है, किन्तु बेचारी कन्या के किशोर होते ही उस पर प्रतिबन्ध तथा रखवाली की बेड़ियाँ डाल दी जाती हैं।

कहने को भारतीय नारी जीवित जरूर है, किन्तु वह बुरी तरह से मनोमृत हो चुकी है। जिसमें अपने अस्तित्व की चेतना न हो, अपने व्यक्तित्व का बोध और अपने अधिकार एवं कर्तव्य का ज्ञान न हो उसे तो मृत ही माना जाएगा। नारीत्व तथा मातृत्व की महिमा को भूलकर वह प्रजनन यन्त्र भर बनकर रह गई है। अब यदि ऐसी हीन नारी से कोई समाज अथवा राष्ट्र नर-रत्नों की आशा करे तो यह उसकी भूल ही कही जाएगी।

समाज का सर्वतोमुखी पतन हो चुका है और इस पतन का अपरिमित मूल्य भी चुकाया जा चुका है। निश्चय ही अब समय आ चुका है जब मोह निद्रा से जग उठना ही चाहिए। मूढ़ताओं, अन्ध-विश्वासों, भ्रान्तियों तथा कुरीतियों के साथ अन्य धारणाओं एवं सड़ी-गली मान्यताओं को उखाड़ फैंकना चाहिए। नारी के प्रति अब तक की चली आ रही अपावन परम्पराओं को समाधि दे दी जानी चाहिए और उसकी शिक्षा, स्वतन्त्रता तथा महत्त्व का ठीक-ठीक मूल्यांकन किया जाना चाहिए। नारी समाज की आधी शक्ति, आधी जनसंख्या और व्यक्ति की जननी तथा धात्री है। उसका निर्माण करने वाली है। उसे अवसर एवं साधन दिये जाने चाहिए जिससे कि वह अपना स्वरूप पहचाने, अपने पूर्वकालिक पद का स्मरण करे, अपना दायित्व समझे और अपनी मंगलमयी गोद में पाल-पाल कर नर-रत्नों का उपहार राष्ट्र व समाज को दे सकने में समर्थ हो सके। नारी को कौशल्या, सुमित्रा देवकी, कुन्ती, सुभद्रा बनने का अवसर दीजिये और उससे राम, लक्ष्मण, कृष्ण, भीम, अर्जुन तथा अभिमन्यु जैसे सपूत ले लीजिये।

नारी के महत्व और उसके स्थान के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण को परिमार्जित कर लेने की आवश्यकता को अब अधिक देर तक टाला नहीं जा सकता। उसकी प्रगति तथा विकास को उसी अनुपात से प्रतिपादन करने की आवश्यकता है जितनी कि अब तक उसकी उपेक्षा की गयी है। हमें यह धारणा अपने मस्तिष्क से निकाल कर फैंक ही देनी चाहिए कि नारी को इसी प्रकार उपेक्षित रखकर राष्ट्र को योग्य-समर्थ तथा सशक्त बनाया जा सकता है। नारी विश्व की सुन्दरता, चेतना, माया तथा ममता है। पुरुष की पूरक और पुराण पुरुष का अर्द्धांग है। उसे पैर की जूती बनाकर रखे रहना घोर अन्याय है। उसे शान्ति के समय गृहलक्ष्मी, क्रान्ति के समय शक्ति, दात्री के रूप

दुर्गा तथा निराशा के समय प्रकाश देने के लिए साक्षात् सरस्वती माना गया है । वह जननी, धात्री, विधात्री तथा अन्नपूर्णा है। उसको इस महान स्वरूप को समझना और उसका उचित स्थान दिया जाना अपेक्षित ही नहीं, युग की आवश्यकता तथा मनुष्य की पुकार है जिसे पूरा किया ही जाना चाहिए।

नारी समस्या संसार की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या

नव-जागरण की इस पुनीत वेला में अपने युग की अति महत्त्वपूर्ण माँग यह है कि नारी उत्कर्ष को समय की सबसे बड़ी आवश्यकता माना जाय और उसके लिए प्रबल प्रयत्न किया जाय । लोक-मंगल की अनेकानेक प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं। परमार्थ-परायण व्यक्ति उन्हें अग्रगामी बनाने के लिए बहुत कुछ करते भी रहते हैं पर इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि नारी समस्या को सुलझाने की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता, जितना कि आवश्यक है । आदत में सम्मिलित हो जाने पर कितनी ही अवांछनीय दुष्प्रवृत्तियाँ भी सह्य हो जाती हैं । सह्य ही नहीं, प्रिय भी लगने लगती हैं। कालान्तर में वे सामान्य व्यवहार जैसी लगने लगती हैं और परम्परा के रूप में उन्हें मान्यता मिल जाती है। नशेबाजी इसी स्तर की आदत है। अगणित कुरीतियाँ, मूढ़ताएँ, अन्ध-मान्यताएँ इसी आधार पर प्रचलित हैं । विवेक और तथ्यों के आधार पर उनका पर्यवेक्षण किया जाय, तो प्रतीत होगा कि वे दुष्प्रवृत्तियाँ कितनी अधिक हानिकारक हैं । फिर भी लोग न केवल उन्हें सहन करते हैं वरन् उनके पक्ष समर्थन के लिए भी कटिबद्ध रहते हैं । नारी समस्या के सम्बन्ध में प्रायः यही हुआ है ।

अवांछनीय प्रचलनों का भी मनुष्य अभ्यस्त और समर्थक बन जाता है । हर व्यक्ति को अपने दोष-दुर्गुण सहन ही नहीं होते, प्रिय भी लगते हैं । कोई दूसरा उनकी हानि बताता है और छोड़ने के लिए कहता है तो बुरा भी लगता है और आत्म-सुधार की अपेक्षा उस बताने वाले को ही निन्दक, विद्वेषी ठहरा कर शत्रुवत् व्यवहार किया जाता है ।

कुछ ऐसा-ही विचित्र घटनाक्रम नारी के सम्बन्ध में भी हुआ है । अन्धकार युग में दुर्बलों का समर्थों द्वारा शोषण करने का जंगली कानून चला तो उसकी चपेट में बेचारी नारी भी आ गई । शोषितों और शोषकों को अपना-अपना भाग्य, ईश्वर की इच्छा, विधि का विधान आदि कहकर यथास्थिति अपनाये रहने के लिए रजामन्द किया गया। इस सामन्ती शोषण का समर्थन करने में ही पुरोहितों का लाभ था, अस्तु उन्होंने भी उसी प्रचलन पर अपनी मुहर लगा दी । श्लोक गढ़ने में उन्हें कितनी देर लगती थी ? तब से लेकर अब तक नारी चरण दासी बनी हुई है और नर कम से कम नारी के लिए तो सर्वशक्तिमान-कर्ता, भर्ता, हर्ता, पति परमेश्वर बना चला आ रहा है ।

स्नेह-सौजन्य के, मैत्री सद्भाव के आधार पर लोग एक-दूसरे के लिए सब कुछ निछावर करते और प्राण देते हैं । इसमें घनिष्ट आत्मीयता के सघन सद्भाव भरे होते हैं। ऐसी प्रगाढ़ मैत्री नर-नर में, नारी-नारी में और नर-नारी में हो सकती है, पर उसमें बाधित विवशता के लिए गुंजायश नहीं है, जैसी कि आज नर और नारी के बीच चल रही है । सौजन्य एकांगी नहीं हो सकता । एकपक्षीय प्रतिबन्धों के आधार पर मार-कूट कर भक्ति करायी जाय तो वह विवशता भरी विडम्बना बनकर ही रह जाएगी । उसमें न भक्ति करने वाले को सन्तोष होगा, न इष्टदेव को। नर-नारी के बीच अटूट आत्मीयता का स्वर्गीय आनन्द उभयपक्षीय श्रद्धा-समर्पण के आधार पर ही उपलब्ध हो सकता है । प्रत्येक दाम्पत्य जीवन में यही अभीष्ट है ।

ढर्रा चल रहा है तो उसे ऐसे ही क्यों न चलने दिया जाय ? पुरुष को लाभ प्रतीत होता है और नारी भी उसकी अभ्यस्त हो गई है, तो इस प्रसंग में क्यों छेड़छाड़ की जाय? ऐसे विचार पुरातन पन्थी अक्सर प्रकट करते रहते हैं । यथास्थिति बने रहने में उथल-पुथल के झंझट से तो बचा जा सकता है पर अवांछनीयता गले से लिपटी रहने के कारण जो हानि हो रही है, उससे नहीं बचा जा सकता। उज्वल भविष्य की सम्भावनाओं का सृजन करने के लिए जिन आधारों की स्थापना आवश्यक है, वे भी यथास्थिति बनाये रखने से बन नहीं पड़ेंगे । लकड़ी में लगा घुन अपना काम करता रहे, क्षय के कीटाणु शरीर को गलाते ही रहें, यदि यही अभीष्ट हो तो ही, फेर-बदल करने के झंझट से बचा जा सकता है ।

फोड़े पर, ऊपर से खुरण्ट जमा हो और भीतर मवाद सड़ रहा हो तो यह देखकर चुप बैठ रहना ठीक नहीं कि वहाँ भाव या स्राव दिखाई नहीं पड़ता । यदि आदत के अनुसार जो सुना गया है उसी को मान्यता दे दी जाय तो फिर नशेबाजी के विरुद्ध भी यह तर्क दिये जाएँगे कि पीने और पिलाने वाले दोनों ही प्रसन्न हैं । तस्कर, षड्यन्त्रकारी और रिश्वत देने और लेने वाले भी परस्पर मिलीभगत बनाये रहते हैं । इन्हें परस्पर किसी से कोई शिकायत नहीं होती । दहेज लेने-देने वाले दोनों ही किसी बाहर वाले का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते । सटोरिये, जुआरी, व्यभिचारी अपने ग्राहकों के साथ इस प्रकार की पटरी बिठाते हैं, जिससे पंच फैसले की, सरकार दरबार की आवश्यकता न पड़े । कोई झगड़ा, झंझट खड़ा नहीं हो रहा है इसलिए इन दुरभिसन्धियों को रोकने की, उनके बारे में चिन्तन करने की आवश्यकता नहीं है, यह कोई तर्क नहीं है । इसका अर्थ तो यह हुआ कि जब कभी कोई विग्रह, उपद्रव खड़ा हो, तभी उसे समस्या समझा जाय

और तभी उसके विषय में कुछ सोच-विचार किया जाय, यह अनुचित है ।

यह बहुत ही ओछी दृष्टि है कि विग्रह को ही समस्या माना जाय। बाढ़, तूफान, भूकम्प आदि के कारण उत्पन्न हुई विशृंखलता सम्भालने के लिए तो भाग-दौड़ की जाय पर विशाल भू-भाग को घेरे हुए रेगिस्तान को हरा-भरा बनाने की बात सोचने से इस आधार पर इनकार कर दिया जाय कि इस क्षेत्र में कोई अशान्ति फैली दिखाई नहीं पड़ती ।

उर्वरकता न होना भी उतना ही कष्टकारक है जितना निरन्तर ओले बरसने या टिड्डी दल के आक्रमण से हरी-भरी फसल का चौपट हो जाना । महामारी के कारण कोई पूरा क्षेत्र जनशून्य हो जाय और जीवन साधन न रहने के कारण लोग किसी क्षेत्र को छोड़ दें तो उपद्रव होने या न होने पर भी परिणाम तो एक ही रहा । किसी बड़े इलाके का शून्य हो जाना और उसका निरुपयोगी हो जाना उतना ही कष्टकारक है जितना कि भयंकर अग्नि- काण्ड होने का कारण वहाँ सब कुछ स्वाहा हो जाना। अग्नि-काण्ड और महामारी उपद्रव के रूप में दृष्टिगोचर होती है इसलिए मोटी बुद्धि उसे विपत्ति मानती है और उसके निवारण का उपाय सोचती है । सूक्ष्म दृष्टि अनुत्पादक रिक्तता को एक कठिनाई मानती है और नदी पर पुल बन जाने से यातायात की सुविधा बनाने को भी एक बड़ा काम मानती है । नदी तट पर ही कोई झंझट खड़ा न होने के कारण यह नहीं मान लेना चाहिए कि उस अवरोध के कारण कोई हानि नहीं होती । विचारशील मस्तिष्कों ने अनुत्पादक ऊबड़-खाबड़ जमीनों को हरी-भरी बनाया है । गहरे समुद्र के ऊपर चलने वाले जलयानों और आकाश में उड़ने वाले वायुयानों की संरचना की गयी है । दूरदर्शी लोगों को ही यह सूझ-बूझ थी, जिसने समुद्र और आकाश को यातायात का साधन बनाने में सफलता प्राप्त की। ऐसे ही विचारशील मस्तिष्कों का कर्तव्य है कि वे नारी का स्तर गिरने के कारण हो रही भौतिक एवं आत्मिक अवनति पर विचार करें, उसकी विभीषिका समझें और अवांछनीयता के निराकरण की प्रभावशाली योजना बनायें ।

यों नारी के सन्मुख प्रस्तुत प्रतिबन्ध-जन्य कठिनाइयों का समाधान भी कम महत्त्वपूर्ण नहो है, पर उससे भी अधिक महत्त्व की बात यह है कि अविकसित स्थिति में पड़ी हुई नारी को पुरुषों के समतुल्य ही सुयोग्य बनाकर उसकी प्रतिभा से वह लाभ उठाया जा सकता है, जिसके बिना समूची मानवजाति की प्रगति अवरुद्ध पड़ी है । सम्पत्ति उपार्जन के आधार पर, कल-कारखाने, कृषि फार्म, व्यवसाय संस्थान, यातायात साधन आदि हो सकते हैं । पर संस्कारवान् और सुविकसित मानव समाज का निर्माण भी यदि आवश्यक समझा जाय तो यह मान कर चलना होगा, आत्मिक प्रगति का, व्यक्तित्व की प्रखरता का, यदि कोई मूल्य समझा जाय तो स्वीकार करना होगा यह किसी एकाकी नर के बूते की बात नहीं है ।

उपद्रव रहित स्थिति देखकर नारी जागरण की समस्या को समस्या न मानने वाले लोग यदि गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो उन्हें लगेगा कि यही सबसे प्रमुख समस्या है और अपना समाधान आज ही माँगने का आग्रह कर रही है ।

नारी ही नारी की शत्रु न बने

एक बन्दर को छेड़ने पर दूसरे बन्दर मिल-जुल कर सामना करने आते हैं । जंगल में चरने के लिए गायों का झुण्ड जाता है, तब किसी आक्रमणकारी जीव चीते आदि का सामना करना पड़े तो वे सभी गोल कुण्ड बाँधकर सामना करने के लिए उद्यत हो जाती हैं । अण्डे-बच्चों के लिए खतरा देखकर चिड़ियाँ शोर मचाने लगती हैं और अपने समूचे समुदाय को इकट्ठा कर लेती हैं । मधुमक्खियों तक में यह बात देखी जाती है कि छत्ते में हाथ डालने पर वे इकट्ठा होकर हमला बोलती हैं और हस्तक्षेप करने वाले को मजा चखा देती हैं । पीड़ित वर्ग में आपसी संगठन होना ही चाहिए । उन्हें अनीति का मिल-जुलकर सामना करना चाहिए ।

कहा नारी वर्ग के सम्बन्ध में जा रहा है । उसे अपने देश की पिछड़ी स्थिति में पीड़ित या शोषित वर्ग ही कहा जा सकता है । जिस प्रकार पालतू पशुओं को अपने मालिकों की मर्जी पर जीना पड़ता है, प्रायः वैसी ही स्थिति नारी की नर के आधिपत्य के सम्बन्ध में भी है । सभी जानते हैं कि उन्हें किस उपेक्षा और तिरस्कार भरी स्थिति में रहना पड़ता है । पिता के घर से दहेज कम लाने पर भी उसकी दुर्दशा होती है । आरोपों का उत्तर देने की भी उसे छूट नहीं है । उत्पीड़न के अवसरों पर उसे आँसू भर बहाने की छूट है । अपनी कठिनाई व्यक्त करने या सफाई देने का भी अधिकार नहीं है । ऐसा करना एक नया अपराध बन जाता है और उसका अतिरिक्त दण्ड मिलता है ।

यह बात एक-दो के बारे में नहीं है । कुछ अपवादों में ही समानता और सम्मान का सुयोग देखा जाता है अन्यथा अधिकांश को ऐसे ही कुटते-पिटते, अनावश्यक बच्चों के कष्टसाध्य कोल्हू में पिलते अपनी जिन्दगी काटनी पड़ती है ।

पुरुष चाहे स्वयं गई-गुजरी, सामाजिक, आर्थिक स्थिति में रह रहा हो, पर घर में पत्नी के सामने पहुँचने पर तो वह भी बाघ हो जाता है और अहंकार का प्रदर्शन करने के लिए नारी को ही त्रास देता है। ऐसा न होता तो उन्हें स्वास्थ्य शिक्षा और स्वावलम्बन में सर्वथा वंचित न रहना पड़ता ।

इस स्थिति के रहते कम से कम इतना तो होना ही चाहिए था कि परिवार की महिलाएँ मिल-जुल कर अन्याय बरतने वाले से निपटें, समझाएँ और जरूरत पड़ने पर विरोध, असहयोग भी करें । अनीति तब बढ़ती है, जब उसकी रोक का कोई अवरोध नहीं होता ।

परिवार की नारियाँ भले ही कुछ समय पहले आयी हों, बड़ी-बूढ़ी कहलाने लगी हों पर उनकी भी स्थिति आरम्भिक दिनों में वैसी ही रही होगी जिसे असहाय स्तर की कहा जा सके । उन दिनों की याद उन्हें भूल नहीं जानी चाहिए । अब भी उन पर जो बीतती रहती है, उसका विस्मरण नहीं कर देना चाहिए । विशेषतया तब जब किसी नयी वधू का घर में प्रवेश हो ।

आशा यह की जानी चाहिए कि पीड़ित वर्ग अपने समुदाय के अन्य सदस्यों को उस विपत्ति से बचाने का प्रयत्न करेगा जो आमतौर से अजनबी और अनुभवहीन होने के कारण उस पर बीतती है ।

नववधू के आने पर घर की अन्य औरतें–सास, ननद, जिठानी आदि उसे अपने अधिकार क्षेत्र में हिस्सा बँटाने के लिए आयी प्रतिद्वन्द्वी मानती हैं और इस प्रकार के कुचक्र रचती हैं जिससे उसे सहानुभूति के स्थान पर प्रतिद्वन्द्विता में फँसना पड़े ।

आज की नव-वधू कल तक किसी घर की लाड़ली बेटी थी । वह बालक होने के कारण स्नेह-दुलार पाती रही । स्कूल में पढ़ती रही । विवाह के दिन आने पर भी अभिभावकों का विछोह अखरने लगा और उस पर घर-गृहस्थी का काम कराने का दबाव भी नहीं दिया गया। ऐसी स्थिति में उसकी शिक्षा या आयु कितनी ही बड़ी क्यों न हो, परिवार के अनेकानेक कार्यों में दिनभर जुटी रहने और हर काम को सही तरीके से करती रहने की तत्काल आशा नहीं की जा सकती । कुछ न कुछ कमियाँ-गलतियाँ रहेंगी ही। इस विषय में उसे प्रशिक्षित कर देने के लिए धैर्य और दुलार का उपयोग करने से ही काम बनता है न कि ताने देने, खरी-खोटी सुनाने से । जिस प्रकार अपने बच्चों को प्यार के वातावरण में उपयोगी काम करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है, वैसा ही नव-वधू को भी समझा जाना चाहिए । यह नहीं सोचा जाना चाहिए कि कल तक जो अपने घर की दुलारी लड़की रही है, वह तुर्त-फुर्त नये प्रथा-प्रचलनों से परिचित हो जाएगी और अभ्यस्तों की तरह नये दायित्वों को सम्भालने लगेगी । यह घर की पुरानी महिलाओं का काम है कि उसे यह अनुभव न होने दें कि अजनबी और नीरस लोगों के बीच उसे फँसना पड़ा । आरम्भ में वह भले ही इस उपेक्षा-अवहेलना को सहती रहे, पर समय आने पर वह उनसे अलग होने का ही विचार करेगी । तब उन्हें और भी अधिक खीजना पड़ेगा ।

दैन-दहेज की कमी के सम्बन्ध में, रंग-रूप की नुक्ता-चीनी में घर की महिलाएँ ही सबसे आगे रहती हैं। वे ही घर-पड़ौस में इन कमियों के विरुद्ध बवेला मचाती हैं । फलतः जो बात आयी-गयी हो सकती थी वह उभरकर ऊपर आ जाती है ।

लड़की के रंग-रूप में कमी होने या व्यवहा कुशलता में अनाड़ीपन रहने की बात को बढ़ा-चढ़ा क कहने में लड़के का दिमाग खराब होता है, वह प्यार के स्थान पर उसे अपमानित करने लगता है । इस खोदी हुई खाई का अन्त कहाँ है, कुछ कहा नहीं जा सकता । इसके ऐसे दुष्परिणाम भी हो सकते हैं कि आरम्भ में ही दिल टूट जाएँ और फिर कभी एक न हो सकें और मनोमालिन्य, अनुपयुक्त व्यवहार का क्रम सदा ही चलता रहे । यह विष बीज बोकर न जाने ये इसमें अपना क्या बड़प्पन मानती हैं ।

कहते हैं कि बच्चे स्कूल में मास्टरों से पिटते रहते हैं। वे ही बड़े होने पर मास्टर हो जाते हैं तो नये छात्रों को पीटते हैं, समर्थ होने पर अपने पिटने का बदला असमर्थों से चुकाते हैं । ठीक वैसा ही ये महिलाएँ भी बरतती हैं । जिन्होंने आरम्भिक दिनों में अपनी सास-ननदों की असहानुभूति के कारण मर्दों की दृष्टि में बुरा बनना और त्रास सहना पड़ा । उस समय तो वे कुछ प्रतिवाद कर नहीं सकीं, पर अब उसी मन में भरी हुई कुण्ठा को नवागन्तुक वधू पर उड़ेलती हैं। जिन कुप्रचलनों से उन्हें स्वयं दुःखी होना पड़ा, उनकी विरोधी न रहकर समर्थक बन जाती हैं तो आश्चर्य होता है ।

अतः यह एक उक्ति-सी बन गयी है कि नारी ही नारी की शत्रु है । पति की या घर के बड़ों की दृष्टि में नव-वधू को जलील करने और उसके भावुक मन को चोट पहुँचाने में बड़ा भाग उन्हीं का होता है । यदि वे यह सोचें कि उनकी बेटी जब पराये घर जाएगी तब उन्हें किस व्यवहार की अपेक्षा रहेगी । तो वे स्वयं ही नये सिरे से सोचें और नव-वधू को अपनी बेटी या सहेली बनाकर घर में एक नया उत्साह भरा वातावरण पैदा करें ।

नारी के गले में पराधीनता की नयी फाँसी

पराधीनता को पाश कहा गया है । जीव की प्रकृति बंधन में बँधने की नहीं है । बलात् जकड़े हुए बन्धन तो बन्दीगृह की तरह नितान्त कष्टदायक ही होते हैं और उस प्रकार का बाधित एक-एक क्षण वर्ष के समान भारी पड़ता है । जेलखानों में बहुत करके सुविधा और निश्चिन्तता ही रहती है, कइयों को तो घर की अपेक्षा भोजन, वस्त्र घर से भी अच्छे मिलते हैं तो भी कोई जेल जाना पसन्द नहीं करता । उन्मुक्त विचरण करने वाले पशु-पक्षियों में पिंजड़े अथवा रस्से से जकड़े रहने वालों की अपेक्षा कितनी चेतनता होती है, उसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । भव-बन्धनों से मुक्त होने को परम पुरुषार्थ माना गया है । जीव मुक्ति के लिए लालायित रहता है

क्योंकि समस्त दुःखों का कारण बन्धन और समस्त सुखों का केन्दबिन्दु स्वातन्त्र्य है । राजनैतिक स्वाधीनता के विश्वव्यापी संघर्ष के इतिहास के देखने से यही पता चलता है कि देशों, समाज और जातियों ने अपनी खोयी स्वतन्त्रता प्राप्त करने एवं उपलब्ध को अक्षुण्ण बनाये रहने के लिए बड़े से बड़े कष्ट सहे और त्याग, बलिदान प्रस्तुत किये हैं । दास और दासी प्रथा का अब लगभग अन्त होने को है । जहाँ इस प्रकार के बन्धन है वहाँ संघर्ष हो रहे हैं और सम्भावना पराधीनता के बन्धन दिन-दिन शिथिल होते चले जाएँगे और एक समय आयेगा कि वे पूर्णतया टूटकर रहेंगे ।

बन्धन एक ही सह्य हो सकता है और वही प्रिय लग सकता है—वह है प्रेम का बन्धन । परस्पर स्नेह-सौहार्द्र में बँधे हुए एक-दूसरे की सद्भावना और सज्जनता से प्रभावित व्यक्ति स्वेच्छा पूर्वक मैत्री बन्धनों में बँध जाते हैं और एक दूसरे की कमियों और भूलों को सहिष्णुता एवं उदारता के साथ निवाहते हुए लम्बा जीवन निकाल देते हैं। क्षति, असुविधा और कठिनाई सहकर भी यह क्रम चलता रहता है । परस्पर सेवा-सहायता करते हुए जिस पक्ष को हानि उठानी पड़ती है वह सन्तोष एवं गर्व अनुभव करता है और जो लाभ में रहता है, उसकी आँखें नीची बनी रहती हैं । यह सब प्रेम का चमत्कार है । प्राणियों को इस प्रेम बन्धन के अतिरिक्त और सभी बन्धन अखरते हैं, कष्ट पहुँचाते हैं और गिरावट के गर्त में धकेलते हैं । इसलिए बन्धनों के विरोध और स्वातन्त्र्य के समर्थन की धारा जो अनादि काल से चली आ रही है, उसे सनातन शाश्वत ही समझा जाना चाहिए और उसे समर्थन, प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए ।

जहाँ प्रत्यक्ष पराधीनता के प्रति घृणा, विरोध और विद्रोह की प्रवृत्ति तीव्र हो रही है वहाँ दुर्भाग्य से मानसिक दासता के एक नये किस्म के जाल और बन्धन इस चतुरता के साथ बुने-बाँधे जा रहे है कि बँधने वाले को पता भी नहीं चलता किन्तु वह जकड़ इस बुरी तरह जाता है कि उसकी समस्त प्रतिभा और उज्वल भविष्य की सम्भावना पूर्णतया नष्ट हो जाती है और यह किसी प्रकार जीवित रह सकने की स्थिति में पड़ा रहकर जिन्दगी के दिन पूरे करता है । देवी-देवताओं, भूत-पलीतो, सन्त-महन्तों, शास्त्रों, रूढ़ियों, अन्ध- परम्पराओ, सम्प्रदायों, मान्यताओ, पूर्वाग्रहों, दुराग्रहों के देश जाति, भाषा आदि के बन्धनों में करोड़ों लोग बुरी तरह जकड़े पड़े हैं और अपना धन, समय, वर्चस्व, विवेक, उल्लास एवं भविष्य बुरी तरह नष्ट करते रहते हैं । काश, यह बर्बादी बचायी जा सकी होती और उसे किसी युक्ति युक्त प्रयोजन के लिए लगाया जा सका होता तो व्यक्ति और समाज की न जाने अब तक कितनी प्रगति हो गयी होती और सुख-शान्ति का वातावरण इस संसार में दिखाई दे रहा होता ।

विवेक के आधार पर संयम और मर्यादाओं के बन्धन भी प्रेम की तरह ही औचित्य के आधार पर व्यक्ति स्वयं बनाता है । सब निर्धारित दिनचर्या लोग प्रसन्नतापूर्वक निभाते हैं, इसी प्रकार संयम ओर नियम की आचार संहिता तो आदर्शवादिता एवं लोक-मंगल पर निर्धारित ही प्रिय लगती है और सन्तोषप्रद तथा सराहनीय भी, किन्तु यदि प्रवंचनापूर्वक किसी भोले को बहकाकर जाल-जंजाल में बाँध दिया जाय और उसकी प्रतिभा का विकास अवरुद्ध कर दिया जाय तो कबूतर के पर 'कैंच' कर देने की तरह प्रत्यक्ष रूप से कुछ पता न चलने पर भी वस्तुतः यह एक अन्याय ही होगा और ऐसे बन्धन बाधिता भी निन्दनीय ही माना जाना चाहिए।

पिछले दिनों से यह छद्म प्रयास होते रहे हैं कि नारी को पशुओं की तरह बन्धनों में ही आबद्ध रखा जाय और उसकी परिधि घर की चहारदीवारी तक सीमित कर दी जाय तथा उसकी समस्त प्रतिभा का उपयोग भोजन पकाने तथा बच्चे पैदा करने से आगे न बढ़ने दिया जाय । पिछले सामन्ती युग में यह बन्धन बहुत ही जघन्य थे । चप्पलों, बनियानो की तरह बहुत-सी औरते भी लोग रखते थे । पटरानी, रानी, रखैल, दासी, वेश्या आदि उनकी अनेक श्रेणियाँ होती थीं । आर्थिक, शारीरिक और सेवात्मक सुविधा के अनुसार इस प्रकार का उपयोग कोई कितने ही बड़े परिमाण में कर सकता था और अपने जाल में फँसी हुई नारियों के साथ नृशंसतम व्यवहार कर सकता था । सामन्त युग की इन उत्पीड़न भरी करुण कथाओं का रोमांचकारी इतिहास है। समर्थ सामन्तों का प्रभाव साधारण जनता पर भी पड़ा । वे बहुविवाह करने में तो समर्थ न थे पर पर्दा, घूँघट की कठोरता को अपनाने और घर की बहू-बेटियों को बाधित करने में उन्होंने भी कोई कसर नहीं रखी । शिक्षा और स्वावलम्बन के लिए प्रगति और व्यक्तित्व निर्माण के लिए उन्हें किसी भी द्वार से आगे बढ़ने की गुंजायश नहीं छोड़ी गयी । यह क्रम अब तक चला आ रहा है । जहाँ जितना ज्यादा पिछड़ापन है वहाँ नारी के प्रति उतने ही अनुदार बन्धन कड़े हैं । इस सन्दर्भ में शिक्षित और अशिक्षितों में कहने भर का अन्तर है । तथाकथित सभ्य लोगों की स्त्रियों को घूँघट के विकास के लिए कुछ कदम आगे बढ़ाने की बात आती है, वहाँ अधिकतर रूढ़िवादी लोग शिक्षित-अशिक्षित का अन्तर मिटाकर एक ही स्तर पर खड़े दीखते हैं । उदारता, समानता और मानवीय स्वतन्त्रता का सम्मान जिन परिवारों में मिल सके, ऐसे कम से कम अपने देश में तो बहुत ही स्वल्प मात्रा में मिलेंगे । नारी के हाथ-पैरों मे रस्से, जंजीर बाँधकर न सही- घुमा-फिरा कर लगभग रखा उसी स्थिति में जा रहा है । शील की रक्षा का उपहासास्पद आवरण डालकर इस परिपाटी का समर्थन करना कितना उपहासास्पद है। उसकी पोल इतने मात्र तर्क से खुल जाती है कि यदि बन्धन ही शील रक्षा का उपाय है तो उसे पुरुषों पर भी लागू क्यों न किया जाय ? जबकि संसारभर में यौन दुराचार के सम्बन्ध में तीन-चौथाई पुरुष का ही माना जाता है । बहाने सब थोथे हैं

संकीर्णता और अनुदारता भर की है, जो हमें सामन्ती परम्परा की विरासत के रूप में मिली है'। जो हो, उस तरह न सही, इस तरह सही नारी को तो यह बन्धन उत्पीड़न अभी भी सहना पड़ रहा है।

हँसी तब आती है जब तथाकथित स्वतन्त्रता के साथ-साथ नये किस्म के बन्धन भी गढ़े और जकड़े जाने की प्रक्रिया कितनी खूबी और खूबसूरती के साथ सामने आती है। पाश्चात्य देशों में नारी पर से सामाजिक बन्धन लगभग उठ से गये हैं। उसे नर की बराबर ही नागरिक अधिकार प्राप्त हैं। भारत जैसी बाधित स्थिति में उन्हें वहाँ रहना पड़ता। वह लहर भारत में भी जहाँ आयी है, नारी पर से सामन्ती बन्धन हट गये हैं और वह घूँघट निकालने, घर से बाहर न निकलने, किसी से बात न करने के लिये बाधित नहीं की जाती। इस स्वतन्त्रता से सहज ही यह आशा बँधती थी कि अब नारी को अपनी प्रतिभा को, अपने व्यक्तित्व की सर्वांगीण सम्भावनाओं को विकसित करने का अवसर मिलेगा और वह समाज के लिए पुरुषों की तरह ही योगदान कर सकने में समर्थ होगी। पर कितने खेद की बात है कि अंकुर उगते ही खेत पर पाला पड़ने वाली कहावत चरितार्थ हो रही है।

जिस तरह जंगल में हाथियों को पकड़ने के लिए बड़ा-सा घेरा डाला जाता है और उन्हें चारों तरफ से हँका कर एक बाड़े में धकेल कर कैद कर दिया जाता है वैसा ही प्रयत्न नारी के बारे में हो रहा है। सर्वत्र ऐसा वातावरण बनाया जा रहा है कि नारी को अपने सम्बन्ध में यही एक अनुभूति शेष रह जाय कि–''मात्र पुरुष की विलास वृत्ति तृप्त करने वाली उपभोग सामग्री मात्र है। उसके व्यक्तित्व की सार्थकता मात्र इसमें है कि वह पुरुष को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हो सके।''

तथाकथित सभ्य समाज की नारी अब इसी जाल जंजाल में जकड़ती चली जा रही है। उसे पता भी नहीं चल पा रहा है कि हाथी को पकड़ने वाले चतुर शिकारी अब सामन्ती अनाचार बन्द हो जाने पर उसे जकड़ने के लिए मनोवैज्ञानिक जाल ऐसे बुन रहे हैं जो पिछले वालो को भी मात दे सकें। सामन्त युग में नारी को बाधित किया जाता था और वह उस बन्धन से खिन्न होती थी, विचारशील लोग भी उस प्रथा को अमानवीय बताते थे। अब नये जाल मजबूत और आकर्षक पहले वालों से अधिक सफल सिद्ध हो रहे है। बन्धन बाँधे भी नहीं गए निन्दा-विरोध की आशंका भी नहीं रही और प्रयोजन पहले से भी अच्छा सिद्ध हो गया। भोली नारी उस बहकावे में आटे की गोली देखकर ललचाने वाली मछली की तरह अपनी प्रतिभा नष्ट करने के लिए स्वयं ही बढ़ती चली आई। इसे कहते हैं–मनोवैज्ञानिक कमाल।

पत्र-पत्रिकाएँ, तस्वीरें, सिनेमा, उपन्यास, विज्ञापन आदि सभी ओर से ऐसा मनोवैज्ञानिक वातावरण बनाया जा रहा है जिससे नारी अपने व्यक्तित्व की सार्थकता अधिक आकर्षक, सुसज्जित, माँसल एवं मुखर होने में समझें। इसका वेष विन्यास, शृंगार, सज-धज, हाव-भाव जितने अधिक आकर्षक उच्छृंखल होंगे उतनी ही वह सराही जाएगी, यह बात अब उसके मन में प्रस्तुत वातावरण ने गहराई तक बिठा दी है और हर सभ्य नारी यह प्रयत्न कर रही है कि वह कितनी अधिक सज-धज बना सकती है और कितनी आकर्षक लग सकती है उसमें दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा करे और इसके लिये कितने भी आवरण ओढ़ने पड़ें, कितनी ही कृत्रिमताएँ बनानी पड़ें, कितना ही खर्च करना पड़े, कितना ही समय लगे पर यह सब किया जाना इतना अधिक चाहिए जितना कि सम्भव हो सके।

अपने देश में तो अभी शृंगार, फैशन, सज-धज, वेष विन्यास की ही दौड़ चल रही है। पश्चिमी देश इससे बहुत आगे निकल गये। वहाँ आकर्षक बनने की परिभाषा उस सीमा तक चली गयी है जिसमें नर-नारी का स्वच्छन्द मिलन, अश्लील हाव-भाव एवं संकोच की सारी मर्यादाएँ हटाकर होने वाला हास-परिहास भी शामिल है। वहाँ अब यह नारी का एक आवश्यक गुण माना जाने लगा है। इस अश्लीलता की विधिवत शिक्षा देने के लिए कितने ही शिक्षण केन्द्र चलते हैं। पहाड़ जितना साहित्य छपता है। माता-पिता स्वयं यह प्रयत्न करते हैं कि उनकी सयानी लड़कियाँ उस प्रशिक्षण में पारंगत हो सकें अन्यथा वे आकर्षक न रह जाएँगी और उन्हें दाम्पत्य सुख न मिल सकेगा। आर्थिक सुविधा न मिलेगी और 'सामाजिक' न कहला सकेंगी। नर को आकर्षित करना ही इस सारी साज-सज्जा, शृंगारिकता और निर्लज्जता का एकमात्र कारण है अन्यथा नारी पर ही ऐसी क्या मुसीबत आयी है जो इस तरह सज-धज बनाने में अपने मूल्यवान समय, धन और कौशल की बर्बादी करे। कोई आकर्षित न हो तो यह सज-धज व्यर्थ है। वह काम-कौतुक निरर्थक है जिन्हे चरितार्थ करने पर वे सामाजिक कहला सकती हैं।

यह प्रक्रिया प्रकारान्तर से व्यभिचार की पूर्व भूमिका है। जान या अनजान मे जहाँ भी ऐसा प्रयास चल रहा हो समझना चाहिए इसमें देर-सवेर में शील संकट पैदा होकर रहेगा। साड़ी और सौम्य वेष-भूषा मे नारी का व्यक्तित्व दबता नहीं, निखरता है। उसकी शालीनता अपना प्रभाव बढ़ाती ही है और सबसे बड़ी बात यह है वह उस प्रदर्शन के साथ जुड़ी हुई बर्बादी से अपनी शक्तियों को सुरक्षित रखकर उन कामों मे लगा सकती है, जिनसे उसकी शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक प्रगति मे सहायता मिले और शील-सदाचार का संरक्षण अधिक सुनिश्चित रह सके। आकर्षक वेष विन्यास उन लोगो को अनायास ही आकर्षित करता है जिनका सम्पर्क भावुक प्रकृति की नारियों के लिए खतरे से खाली नहीं समझा जाना चाहिए।

भोली नारी इस फूहड़ सजधज, बचकानी वेष-भूषा और निर्लज्ज भाव-भंगिमा के जाल में फँसकर बेमौत मरने के लिए स्वयं तैयार नहीं हो रही है । उसने अपनी शालीनता को स्वेच्छापूर्वक बहिष्कृत करने की बात स्वीकार नहीं की है । यह उससे कराया गया है । मनोवैज्ञानिक वातावरण ऐसा ही बनाया जा रहा है जिसके जाल में फँसने के अतिरिक्त इस भोली हिरनी के पास और कोई रास्ता ही न रह जाय । बधिकों की एक पूरी बिरादरी संगठित हो गयी है । वह रंग-बिरंगे पिंजड़े बुनने और तरह-तरह के चारे-दाने डालने में अपने कला-कौशल का अन्त कर रही है । एक आदर्श नारी वही हो सकती है जो आकर्षक हो । इस तथ्य को आप सिनेमा के हर पर्दे पर, बाजार में बिकने वाली हर तस्वीर पर, हर कथा पुस्तक और पत्रिका पर अंकित देख सकते हैं । माँसलता का उभार, आकर्षक विन्यास, अश्लील अभिव्यंजना का जहाँ जितना गहरा पुट होगा वहाँ लोगों की आँखें गढ़ेंगी और आँख गढ़ने की बात जहाँ पूरी हो गयी तो समझना चाहिए नारीत्व सार्थक हो गया । सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में छिपा कर रखे जाने वाले अंगों का प्रदर्शन और इसी आधार पर मिलने वाली ख्याति निस्संदेह नारी के गौरव को गिराती है और उसे अपनी गरिमा खोकर बधिकों के इशारे पर नाचने वाली कठपुतली मात्र बनने को विवश करती है । जिस नारी ने अपनी सार्थकता इस प्रकार के फुहड़पन के साथ जोड़ ली उसका मस्तिष्क उसी दायरे में घूमता रहेगा और व्यक्तित्व के विकास की बात सोच तक न सकेगी । उसकी खर्चीली आवश्यकताएँ उसे गरीबी, फिसलन या असन्तोष में से किसी न किसी एक आग में जरूर झोंक देंगी ।

नारी स्वातन्त्र्य के उगते हुए प्रभात में मानवता ने बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँधी थीं और यह सोचा गया था कि सभ्यता के प्रकाश में आधी दुनिया को निविड़ बन्धनों से छुटकारा मिलेगा और यह आधी जनसंख्या अपने व्यक्तित्वों का, सद्‌गुणों का, प्रतिभा का उपयोग सृजनात्मक दिशा में करके इस स्वतन्त्रता की सार्थकता सिद्ध करेगी, पर हो उलटा रहा है । जहाँ नर के कन्धे से कन्धा मिलाकर लगभग वैसी ही सादा वेष-भूषा में, नारी को कर्तव्य क्षेत्र में उतरना था, अपनी प्रतिभा का समाज को बढ़-चढ़कर अनुदान देना था और यह सिद्ध करना था कि लिंग भिन्नता से मनुष्य के स्तर में कोई खास अन्तर नहीं आता । मातृत्व के उत्तरदायित्वों को वहन करते हुए भी, परिवार व्यवस्था में विशेष योगदान देते हुए भी नारी अन्ततः मनुष्य ही है और उसमें ऐसी कोई हीनता या दीनता नहीं है जिसके कारण उसे नर को आकर्षित करने की आवश्यकता पड़े । वह अपना वर्चस्व अपनी विकासमान प्रतिभा के आधार पर स्थिर रख सकती है, तो शृंगारी बनकर प्रकारान्तर से नर के आगे गिड़गिड़ाने और अपने को भोग सामग्री सिद्ध करने की निकृष्टता क्यों सिद्ध करे । यह उसके लिए स्वाभिमान बेचकर प्रकारान्तर से दीन-हीन बनने जैसी बात हो रही है, जिसने नारी स्वातन्त्र्य के साथ जुड़ी हुई सारी आशाओं पर पानी-सा फेर दिया है । मनोवैज्ञानिक गुलामी स्वीकार करके नारी फिर उसी पिंजड़े में फँसती जा रही है, जिससे उसे चिर प्रतीक्षा के बाद निकलने का थोड़ा अवसर मिला है । यदि फँसने और फँसाने का वर्तमान क्रम चालू रहा तो निकट भविष्य में नारी उससे भी अधिक दयनीय स्थिति में उलझ जाएगी जैसी कि सामन्ती युग में वह बुरी तरह जकड़ी हुई थी ।

नारी की स्वेच्छापूर्वक उपभोग्या बनने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति में जहाँ अन्धकार की गहरी कालिमा बढ़ती आ रही है, वहाँ आशा भरी प्रकाश की एक किरण भी इस रूप में उदय हो रही है कि प्रबुद्ध नारी इस खतरे को समझने लगी है और उसने अपने वर्ग को इस गर्त में गिरकर मरने के लिए आगे कदम बढ़ाते जाने से रोका है । अमेरिका में इसी प्रकार का एक 'नारी मुक्ति आन्दोलन' जोर पकड़ रहा है जिसके अनुसार हर नारी को यह समझाया जा रहा है कि वह आकर्षक बनने के लिए लालायित होकर कामुकों के हाथ की कठपुतली न बनें और अपने स्वाभिमान को न बेचें । इस आन्दोलन से प्रभावित नारियाँ सीधी-सादी लगभग पुरुषों के जैसी ही पोषाक पहनती हैं और उस सजधज से दूर रहती हैं जो उन्हें कठपुतली, गुड़िया या कामिनी, रमणी के स्तर पर जा खड़ा करती हैं । स्वतन्त्रता आन्दोलन के दिनों में भारत में जिस तरह विदेशी कपड़ों की होली जलाई जाती थी उसी तरह इस आन्दोलन के नेतृत्व में भड़कीली पोशाकों तथा टीपटाप की शृंगार-सामग्रियों की होली जलाई जाती है । वे नारियाँ बालों को भी पुरुषों जितना ही बड़ा रखती हैं और उनकी साज-संभाल रखने के झंझट से अपना समय बचाकर अपनी, अपने परिवार तथा देश की प्रगति के लिए ठोस काम करने की बात सोचती और उसी में संलग्न होती हैं । इस आन्दोलन की संचालिका है–श्रीमती वेट्टी प्राइडन। उनकी विद्वता भरी शोधपूर्ण पुस्तक 'दी फेमीनिन मिस्टीक' ने न केवल सारे अमेरिकी देशों में वरन् योरोप में भी तहलका मचा दिया है और प्रगतिशील नारी ने शृंगारिकता के नये पाश बन्धनों से छुटकारा पाने के लिए– अपनी भूल सुधारने के लिए नये साहस के साथ, नये ढंग से सोचना और नये कदम उठाना आरम्भ कर दिया है ।

भारत में भी इस आन्दोलन को अग्रसर किया जा सकता तो कितना अच्छा होता ।

हम सब कब तक सहन करेंगे

नारी को शोषित प्रतिबन्धित करके हमने पाया कुछ नहीं, खोया इतना है जिसे अपार या असीम से कम नहीं कहा जा सकता ।

कुछ अत्यन्त पिछड़े हुए लोगों को छोड़ कर संसार भर में मानवी विवेक ने असंदिग्ध रूप से नर और नारी दोनों पक्षों को समान सहयोगी, समान कर्तव्य एवं समान

अधिकार का भागीदार स्वीकार किया है । दोनों की स्थिति एक जैसी मानी है । दोनों के लिए सरकारी कानून और सामाजिक सम्मान पूर्णतया एक समान हैं । भेद-भाव का औचित्य यदि है भी तो नारी को अधिक सुविधा एवं अधिक सम्मान देने के पक्ष में है । प्रजनन का अति महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व अकेली नारी के कन्धों पर पड़ता है और पुरुष उस कष्टसाध्य प्रक्रिया से सहज ही बच जाता है । इस असन्तुलन का पलड़ा बराबर करने के लिए नारी को अधिक सुविधाएँ दी गयी हैं, जैसे नौकरियों में प्रजनन काल की अतिरिक्त छुट्टियाँ, बच्चों की संख्या के अनुपात से अतिरिक्त बोनस आदि । सभ्य देशों का सामान्य शिष्टाचार है– 'नारी प्रथम' रेल, बस आदि में स्थान की कमी पड़ती हो तो पुरुष खड़े होंगे और नारी को बैठने के लिए जगह देंगे ।

गाँधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में गोरे और काले रंग वालों के बीच बरते जाने वाले भेदभाव के विरुद्ध जब आन्दोलन किया था तो उन्हें यह कहकर चिढ़ाया जाता था कि, ''पहले अपने देश में अछूतों और स्त्रियों के साथ बरते जाने वाले भेद-भाव को दूर कराइये, तब गोरे और काले का अन्तर मिटाने का प्रयास करना ।'' वस्तुतः हम जब भी, जहाँ भी मनुष्य के साथ बरती जाने वाली अनीति के विरुद्ध आवाज उठाते हैं तो विपक्षी लोग तत्काल गाल पर करारा तमाचा जड़ देते हैं और कहते हैं– ''निर्लज्ज लोगो, अपने घर को सुधारो, अछूतों और स्त्रियों के साथ तुम लोग क्या कर रहे हो उसे देखो और समानता के सिद्धान्त की दुहाई देते हुए शर्म करो ।'' वस्तुतः हम इस योग्य हैं नहीं कि मनुष्य द्वारा मनुष्य के साथ बरती जाने वाली अनीति का साहसपूर्वक विरोध कर सकें । आदर्श और व्यवहार में इतना अन्तर बरतने वाले लोग ढोंगी ही कहे जा सकते हैं । दुनिया हमें इसी दृष्टि से देखती है और अपने द्वारा उठाई गयी न्याय की माँग सर्वथा उपहासास्पद बन जाती है । इस स्थिति को सुधारे बिना हम मानवी न्याय का समर्थन करने में, उसे प्राप्त करने के लिए कुछ योगदान दे सकने में असमर्थ ही रहेंगे ।

जनसंख्या में आधे नर होते हैं, आधी नारी । भारत की आबादी ९० करोड़ के लगभग है। इनमें ४५ करोड़ नारियाँ हैं । उन्हें शिक्षा एवं स्वावलम्बन के अभाव ने पर्दा प्रथा, अनुभव हीनता एवं सामाजिक कुरीतियों ने बेतरह जकड़ रखा है । वे घर के कैदखानों में बन्दी रहकर रोटी बनाने, चौकीदारी करने एवं बच्चे जनने का काम कर रही हैं । ये काम भी वे अपने पिछड़ेपन के कारण ठीक तरह कर नहीं पाती । स्वास्थ्य और आहार का सन्तुलन मिल सकना, व्यवस्था बुद्धि के अभाव में गृह व्यवस्था, सज्जा एवं सुरक्षा की दृष्टि से भी आधा-अधूरा ही काम कर पाती हैं । आवश्यक जानकारी एवं शारीरिक, मानसिक स्थिति की दुर्बलता के कारण उनके लिए स्वस्थ, समुन्नत एवं सुसंस्कारी सन्तानें प्रस्तुत कर सकना भी कठिन है । पिछड़ापन किसी को भी कुछ करने नहीं देता फिर भारतीय नारी भी यदि अपने थोड़े से उत्तरदायित्वों को भी ठीक तरह न निभा सके तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ।

पिछड़ा वर्ग समर्थ वर्ग के लिए सदा गले का पत्थर बना रहेगा। एक पिछड़ेपन से कराह रहा होगा और दूसरे की कमर उसका भार वहन करने से टूट रही होगी । पिछड़ी नारी न घर-परिवार के लिए उत्पादक होती है, न किसी अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य में हाथ बँटा पाती है । जल्दी-जल्दी बच्चे जनकर अर्थ व्यवस्था को नष्ट करती रहती है । छोटे घरों में पर्दे के अन्दर कैद रहने में अपना स्वास्थ्य गँवा बैठती है– आये दिन बीमार पड़ी रहती है । स्वास्थ्य रक्षा एवं प्रजनन में बरती जाने वाली सतर्कता के अभाव में आरोग्य का नष्ट होना स्वाभाविक है । आज आधी महिलाएँ अपना स्वास्थ्य यौवन की देहरी पर पैर रखने से पूर्व ही गँवा बैठती हैं । शेष को भी रोते-कराहते अकाल मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है । इस स्थिति में पड़ी हुई नारी शारीरिक श्रम कर नहीं पाती, मानसिक क्षमता उसमें है नहीं, बीमारी का खर्च तथा खीज, असन्तोष का वातावरण बढ़ता है । ऐसी दशा में नारी अपने समाज के लिए भार ही बनी रहेगी । उसे पालने वाले नफे में नहीं, घाटे में ही रहेंगे । पिछड़ापन बनाये रहने की कुचेष्टा अन्ततः उन्हीं के लिए अभिशाप बनकर रहेगी ।

पर्दा विवेक पूर्ण नहीं किन्तु उस समय तो अविवेक की पराकाष्ठा हो जाती है जब वह अपने ही पितृतुल्य अभिभावकों से किया जाता हो । सुसर पति का पिता, वधू के लिए अपने निज के पिता से भी अधिक पूजा योग्य है । आयु और सहज वात्सल्य की दृष्टि से सुसर और पुत्रवधू के बीच सगे बाप-बेटी से भी अधिक पवित्र सम्बन्ध होने चाहिए । पति के बड़े भाई जेठ आदि के सम्बन्ध भी इसी स्तर के होते हैं, सास से पर्दा तो और भी विचित्र है । नारी को नारी से पर्दा किस लिये करना चाहिए ? माँ-बेटी के बीच पर्दा कैसा ? इससे तो उनके बीच स्नेह-सौजन्य का, आदान-प्रदान का, मन की बात कहने-सुनने का, व्यवहार ही नहीं बनेगा । दोनों के बीच संकोच की ऊँची दीवार ही खड़ी रहेगी, जो खुलकर कुछ न कह सकने की स्थिति में वे एक घर में रहते हुए भी दूरवर्ती ही बनी रहेंगी ।

मनुष्य द्वारा मनुष्य की प्रताड़ना–नितान्त पाशविक है । सभ्य देशों की अदालतों से कोड़े मारने का दण्ड उठा दिया गया है । छोटे बच्चों को मारना अध्यापकों के लिए अपराध है । पशुओं की प्रताड़ना भी अब दण्डनीय अपराध की धाराओं में गिन ली गयी है । पशु वध अपराध नहीं है पर उनके साथ क्रूरता का व्यवहार करना कानून का उल्लंघन है । किसी जमाने में बड़े-बूढ़े लोग वयस्क लड़कों को भी मारपीट लिया करते थे, अब अन्यान्य वृद्धियों के साथ स्वाभिमान भी बढ़ा है । जवान लड़के यह पसन्द नहीं करते कि बड़े-बूढ़े उनके साथ गाली-गलौज या मारपीट करें जहाँ ऐसे प्रसंग आते हैं वहाँ विद्रोह खड़ा हो जाता है और अवांछनीय घटनाएँ घटित हो जाती हैं ।

मानवी स्वाभिमान एक तथ्य है, उसे सुरक्षित रखा ही जाना चाहिए।

मानसिक स्वास्थ्य सुशिक्षा से, सुसंस्कारी वातावरण से और ज्ञान अनुभव संचय करने की परिस्थितियों से बनता है, वैसी परिस्थितियाँ कहाँ हैं। जन्म से मरणपर्यन्त एक छोटे से पिंजड़े में घुटते रहना पड़े और शिक्षा की प्रकाश-किरण समीप तक न पहुँचे तो समाज संसार से पूरी तरह कटी हुई नारी का बौद्धिक विकास कैसे होगा ? भावना पर खराद चढ़ाने वाली संगीत, साहित्य कला का जिसे दर्शन तक नहीं होता उससे उदात्त और परिष्कृत भावनाओं की आशा करना व्यर्थ है। जन्मजात रूप से मनुष्य एक अविकसित पशु मात्र है। उसका विकास तो प्रगति की परिस्थितियाँ करती हैं। वह स्रोत सूख जाय तो यह किसी प्रकार सम्भव नहीं कि कोई अपने व्यक्तित्व का प्रखर निर्माण कर सके। यह स्वीकार करते हुए मर्मान्तक पीड़ा होती है कि भारतीय नारी शारीरिक और मानसिक दोनों ही दृष्टि से स्वस्थ और जर्जर हो चली है।

इस पीड़ित नारी से नर को क्या लाभ मिला ? उसे असहाय बनाकर किसने क्या पाया ? घर-परिवार के लोगों की इससे क्या सुविधा बढ़ी ? पति को उससे क्या सहयोग मिला? बच्चे क्या अनुदान पा सके ? देश की अर्थ-व्यवस्था और प्रगति में पिछड़ी नारी ने क्या योगदान दिया ? समाज को समुन्नत बनाने में वह क्या योगदान दे सकी ? स्वयं नारी, जीवन का क्या सौभाग्य पा सकी ? इन प्रश्नों पर विचार करने से लगता है नारी को पीड़ित, पद-दलित, प्रतिबन्धित, उपेक्षित रखा जाना किसी प्रकार उचित नहीं हुआ। समय पूछता है कि अनुचित को कब तक सहन किया जाएगा और कब तक उसे इसी तरह चलने दिया जाएगा ?

सिंहासन से उठाकर उसे खाई में यों फेंका गया

प्राचीनकाल में नारी की गौरव-गरिमा-तेजस्विता और समूची मानवता को ऊँची उठाने में संलग्न प्रतिभा की तुलना आज की अपनी गयी-गुजरी स्थिति के साथ करने पर लगता है कि मीनार पर चढ़े हुए व्यक्ति को गहरी खाई में धकेल दिया गया हो। यह अप्रत्याशित और अवांछनीय परिवर्तन आखिर हो कैसे गया ? गंगा की उल्टी धारा बहने कैसी लगी ? सूर्य पश्चिम से उदय और पूर्व में अस्त कैसे हो रहा है ? इस पहेली को बुझाने के लिए हमें पिछले एक हजार वर्ष के मध्यकालीन अन्धकार युग का लेखा-जोखा लेने से उन कारणों का पता चल जाता है जिनके कारण यह विपन्नता आ खड़ी हुई है। शायद उन दिनों की क्षुद्र बुद्धि ने सोचा होगा कि जंगल का कानून अधिक लाभदायक है, मत्स्य न्याय अधिक स्वाभाविक है। जब बड़ा पेड़ छोटे की खुराक खा जाता है और बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है तो शक्तिशाली मनुष्य भी वैसा ही क्यों न करे ? यही विचार-विकृति भारत के पतन का कारण बनी। बुद्धिमान और शक्तिशाली दोनों ही वर्ग इस संकीर्ण स्वार्थ साधनों की दुरभिसन्धि में सम्मिलित हो गये। एक के बाद एक अनाचारी कदम उठाये जाने लगे। इससे समर्थ वर्ग तो लाभान्वित हुआ; पर सामान्य वर्ग बुरी तरह पिस गया। जिन दिनों इस अनाचार का बोल-बाला रहा है; उसे हम अज्ञानान्धकार काल अथवा मध्यकालीन सामन्तवादी युग कह सकते हैं। इस अवधि में प्रायः सभी प्राचीन आदर्श उलट गये और ऐसे प्रचलन गतिवान हुए, जिन्हें भारतीय संस्कृति पर कलंक के नाम से पुकारा जा सकता है।

सामन्ती लूटपाट धन-सम्पत्ति तक ही सीमित नहीं रही। पीछे तरुण पुरुष और तरुणी स्त्रियाँ भी लूट के माल में सम्मिलित कर ली गयीं। जिस क्षेत्र में संगठित डाकू हमला बोलते, वहाँ के शासक को समाप्त करने से पहले प्रजा का कचूमर निकाल देते थे। धन-सम्पत्ति लूट ली जाती, कोई सिर न उठा सके इसलिए कत्लेआम मचा दिये जाते और तरुणों को दास एवं तरुणियों को दासी के रूप में पकड़ लिया जाता था। उन्हें बन्दी पशु मान कर उसके शरीरों का जो भी उपयोग हो सके, किया जाता था। दास-दासी पशुओं की तरह हाट-बाजारों में बिकते थे। जो खरीदता वह पूरी तरह उनका मालिक होता और मनचाहा उपभोग करता।

बड़े आदमी के पास बड़ा महल, बड़ा खजाना, बड़ा ठाठ-बाठ ही नहीं, बड़ा 'हरम' भी होना चाहिए। जिसके अन्तःपुर में जितनी पत्नियाँ, उप-पत्नियाँ, दासियाँ होतीं, वह उसी अनुपात से बड़ा आदमी कहा जाता था। एक व्यक्ति के पास इतनी अधिक पत्नियाँ होने से वे स्वभावतः असन्तुष्ट रहेंगी विग्रह उत्पन्न करेंगी-भागने या प्रतिशोध का ताना-बाना बुनेंगी। इस विद्रोह से बचने के लिए आवश्यक हो गया कि उन पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाये जायें। पर्दे में मुँह छिपाये रहना, किसी से बातचीत न करना, घर की देहरी से बाहर पैर न रखना, बाहर जाना हो तो निरीक्षक का कठोर नियन्त्रण रहना आदि बन्धन इसी कारण लगे कि 'हम'-अन्तःपुर विद्रोह के अग्निकुण्ड बनकर विलासी असुरता को भस्मसात न कर दें।

अन्तःपुर पर कड़े प्रतिबन्धों को उचित ठहराने के कितने ही तर्क गढ़े गये, उन्हें आवश्यक और उचित सिद्ध किया गया। देवताओं, ऋषियों और अवतारों को अनेक पत्नियाँ रखने वाला सिद्ध करने के लिए अर्थलोलुप संस्कृतज्ञ भी तत्पर हो गये। उन्होंने पुराण के पुराण लिख दिये और भगवान श्रीकृष्ण तक को घसीट कर

पंक्ति में खड़ा कर दिया । पतिव्रत धर्म के लम्बे-चौड़े माहात्म्य, सती प्रथा का प्रचलन, विधवा का तिरस्कार इसी दृष्टि से था कि कोई नारी अपने मालिक से विरुद्ध मन में भी विद्रोह के भाव न ला सके, उसे यथास्थिति में ही लाभ अनुभव हो और उसी में सन्तुष्ट रहे । सत्ताधारी और विद्या-व्यसनी वर्ग मिलकर ऐसा वातावरण बनाने में सफल हो गये, जिसमें नारी पर लगे प्रतिबन्ध उचित ही नहीं धर्मसम्मत भी सिद्ध किये जा सकें । धीरे-धीरे वातावरण वैसा ही बन गया जिससे अनुचित को उचित स्वीकार कर लिया गया ।

मध्यकालीन अज्ञानान्धकार युग में इस नारी प्रतिबन्ध प्रथा में एक सामयिक लाभ भी समझा गया कि उन दिनों देशी और विदेशी शासक सुन्दर युवतियों को छीन ले जाने के लिए घात लगाये रहते थे, उनके गुप्तचर इसी की टोह लगाते रहते थे । सर्वसाधारण ने सोचा पर्दा प्रथा अपना लेने से अपने घरों की बहू-बेटियों की स्थिति का बाहर लोगों को पता न चलेगा और उनकी सुरक्षा बनी रहेगी । स्त्रियाँ भी इस आपत्ति धर्म को अपनाने के लिए सहमत हो गईं और वह प्रतिबन्ध परम्परा सरलतापूर्वक व्यापक रूप से सर्वमान्य होती चली गयी । बाल-विवाह भी उसी युग की देन है । लड़कियाँ वयस्क होने से पहले ही बधू बन जाएँ-सन्तान वाली बन जाएँ इसमें उनकी अधिक सुरक्षा समझी गयी । विवाह के बाद जल्दी ही सन्तान होने की आकांक्षा भी इसी दृष्टि से बलवती होती गयी कि इस ढाल के नीचे नव-बधू की आततायियों से सुरक्षा हो सकेगी ।

आगे चल कर नारी का स्वभाव आलसी होने लगा होगा । उसने पर्दे में रहकर कमाने-धमाने, भाग-दौड़ करने और उत्तरदायित्वों को वहन करने के झंझट से छुटकारा अनुभव किया होगा और चैन की रोटी खाने की बात सोची होगी और उस स्थिति को सहन करके अपने स्वभाव का अंग बना लिया होगा ।

बहुपत्नी प्रथा, पर्दा प्रचलन, घरों में कड़ाई से कैद रखा जाना, शिक्षा और स्वावलम्बन की सुविधा से वंचित करके उन्हें पंख कटा पक्षी बने देना, सती प्रथा, विधवा तिरस्कार जैसे सामाजिक अनाचार उसी सामन्ती काल की देन हैं, जिसे असुर युग भी कह सकते हैं । उन प्रचलनों का प्राचीन भारतीय संस्कृति के साथ कोई ताल-मेल नहीं खाता । स्वर्ग और नरक में, आकाश-पाताल में जितना अन्तर है उतना ही नारी के प्रति प्राचीनकाल में उच्चस्तरीय श्रद्धा रखे जाने और सुविधा दिये जाने की स्थिति में और इस हेय प्रतिबन्धन की स्थिति में समझा जा सकता है ।

भारतीय धर्म ने नर-नारी को सदा से समान माना है। दोनों के लिए समान नियम, बन्धन तथा आदर्श निर्धारित किये हैं यदि बहुपत्नी प्रथा उचित होती तो, बहुपति प्रथा का निश्चित रूप से रिवाज रहा होता ।

यदि नारी की शील रक्षा के लिए पर्दा उचित होता त[ो] पुरुषों को पर्दा ओढ़ कर अपना शील बचाने के लिये निर्देश दिया जाता । पुरुष भी बन्दी बना कर रखे गये होते । घर से बाहर निकलने पर घर की नारियाँ कड़ाई के साथ उनकी चौकीदार रहती। मृत पत्नी के साथ सती होकर पति को भी स्वर्ग का आनन्द लूटने के लिये कहा जाता । विधुर पुरुषों का मुँह देखना अशुभ माना जाता। पुनर्विवाह के लिए विधुरों पर भी विधवाओं जैसी रोक होती । उदार और समदर्शी भारतीय धर्म नर-नारी के बीच भेद-भाव कर ही नहीं सकता । न्याय की तराजू में पक्षपात करने की नीति अपनाकर भारतीय दर्शन अपने को कलंकित कर ही नहीं सकता, विश्व के विचारशील लोगों की दृष्टि में अपने को निन्दनीय ठहराये जाने वाले अवांछनीय प्रचलनों का समर्थन कर ही नहीं सकता ।

प्राचीनकाल में कारण जो भी रहे हों- आज की स्थिति में ये नितान्त अनुचित एवं अवांछनीय ही कहे जाएँगे । इससे मनुष्य के जन्मजात अधिकारों का हनन होता है । नारी का स्वेच्छा या समर्पण ही पर्याप्त है वह सहज ही अपने पति के लिए, परिवार के लिए, बच्चों के लिए सब कुछ न्यौछावर किये रहती है । उसका वही भावनात्मक अनुदान इतना अधिक है कि मानव मात्र को सदा सर्वदा कृतज्ञतापूर्वक उनके चरणों में मस्तक झुकाये रहना पड़े ।

नारी को नरक से निकाला जाय

नर-नारी दोनों का ही जन्म एक सी ही जैविक प्रक्रिया से होता है, जन्म के समय दोनों में ही समान क्षमताएँ, योग्यताएँ होती हैं । तथापि परिवार में लड़के के जन्म को अधिक महत्ता दी जाती है । लड़का पैदा होने पर खुशी मनायी जाती है और लड़की होने पर मुँह लटका लिया जाता है ।

समाज में युग-युग से नारी की स्थिति दयनीय बनी हुई है । पुरुष समाज ने एक ओर तो देवी, गृह-लक्ष्मी, ममतामयी, अर्द्धांगिनी जैसे मधुर सम्बोधनों से उसे विभूषित किया और दूसरी ओर पुरुष निर्मित धर्मग्रन्थों में एवं वास्तविक व्यवहार-भूमि में उसे ताड़ना की अधिकारिणी, ओछी, स्वार्थी और दूसरे दर्जे की प्राणी माना गया । परिणाम यह हुआ कि नारी पुरुष की दासी मात्र बनकर रह गयी । युग-युग से उसके मस्तिष्क में यही बात बैठा दी गयी है ।

कोमलमना नन्हीं बालिका जब परिवार में आयी और पिता को विशेष आदर पाते, विशेष सुविधाएँ पाते देखती है तो जाने-अनजाने उसके मन में उनका प्रभुत्व समा जाता है । परिवार में बचपन से ही उसके सम्मुख एक ही बात

कही जाती है कि, "यह पराये घर की सम्पत्ति है ।" कहानियों, लोकगीतों में भी उसे यही सुनने को मिलता है कि उसे दूसरे के घर जाना है, पुरुष का वरण कर उसकी सेवा करनी है । फलतः उसके मन में बचपन में ही जाने-अनजाने यह बात दृढ़ हो जाती है कि पिता का घर उसका अपना घर नहीं है, स्वयं उसका अपने पर अधिकार नहीं है, यह किसी पुरुष की सम्पत्ति है, उसकी भोग्या है ।

गृहिणी के रूप में, माता के रूप में, नारी अकेली ही अनगिनत कष्ट-कठिनाइयों को सहती है । पुरुष एक प्याला चाय स्वयं बनाकर पीने में, स्वयं पका-पकाया खाना परसने में भी अपना अपमान समझता है । स्त्री प्रातः से रात्रिपर्यन्त दासी की भाँति कार्य करती रहती है परन्तु इसमें उसका कोई अपमान नहीं समझा जाता । पुरुष शुक्र की दो बूँद देकर निश्चिन्त हो जाता है, अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेता है । गर्भधारण की परेशानी, प्रसव की असह्य पीड़ा से लेकर शिशु के लालन-पालन तक की सारी जिम्मेदारी नारी ही वहन करती है ।

ऐसी बात नहीं है कि नारी में अपनी इस स्थिति के प्रति कभी विद्रोह न होता हो । समाज की इस दोमुही नीति से, धर्म के नाम पर बनाये गये कठोर प्रतिबन्धों से उसमें विद्रोह पनपना स्वाभाविक है । परन्तु खेद का विषय है कि यह विद्रोह मूक रहता है– बहुत हुआ तो रुदन के रूप में निकल जाता है । नारी अपनी शक्तियों को, योग्यताओं और क्षमताओं को विस्मृत कर बैठी है । सक्रिय विद्रोह में वह प्रवृत्त नहीं होता । अधिकांश नारियाँ तो पुरुषों के अत्याचारों से कुण्ठित, क्षुब्ध और शारीरिक मानसिक रूप से रुग्ण हो जाया करती हैं । प्रायः उनकी धर्मभीरुता पति को परमेश्वर मानने की रूढ़िवादिता भी अपने प्रति हुए अत्याचारों का विरोध करने में बाधक सिद्ध होती है ।

पारिवारिक जीवन में चक्की-चूल्हे और प्रजनन में पिसती है, वह विवाह के योग्य होते ही जब बाप उसके लिए सम्बन्ध तलाशने में परेशान होता है तो वह भी समाज के प्रति, विकृत परम्पराओं के प्रति, विद्रोह के स्थान पर उसे ही कोसता है । वैधव्य तो मानो नारी जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है । इस देव कहलाने वाले भारतीय समाज में ही यदि सबसे अधिक दुर्दशा किसी की है तो वह विधवा की । इस तरह उसे पग-पग पर जिस तरह अपमान के घूँट पीने पड़ते हैं, इस कारण वह अर्द्धमृत प्रायः मूर्छित और आत्महीनता के ही गर्त में जा गिरी है ।

मातृसत्ता का अपमान-राष्ट्रीय कलंक

जब मनुष्य के भीतर प्रसुप्त राक्षसी क्रूरता जाग्रत होती है तो वह पशुओं को ही नहीं, दैत्यों को भी पीछे छोड़ देती है। नर-पिशाच किस सीमा तक पतित हो सकते हैं, इसके उदाहरण दिल दहला देने वाले होते हैं ।

बम्बई की एक शोध संस्था 'रिसर्च एण्ड डाक्युमेण्टेशन सेन्टर इन सोशल वेलफेयर एण्ड डेवलपमेण्ट' ने ऐसी एक पैशाचिक प्रवृत्ति का पर्दाफाश किया है । इसकी खोजों से यह तथ्य सामने आया है कि भारत में स्त्रियों का अपहरण कर उन्हें विदेशों को भेजने वाला एक घृणित गिरोह संगठित रूप में विद्यमान है, जो निरन्तर यह दुष्कर्म करता रहता है ।

पता यह चला है कि यह गिरोह एक बड़े अन्तर्राष्ट्रीय गिरोह का अंग है, जो भारत, नेपाल, बंगला-देश, लंका, बर्मा आदि से १३ से २० वर्ष की वय की युवतियों का अपहरण कराता है । भारत में देश के कोने-कोने से लायी गयी ये अपहृता विवश युवतियाँ बम्बई के एक अड्डे में पहुँचाई जाती हैं । वहाँ उनकी छँटनी होती है । जो अधिक सुन्दर होती हैं वे अरब देशों को भेज दी जाती हैं, जहाँ वे तेल-कुबेरों के हरमों में रहती हैं जो कम सुन्दर होती हैं, वे देश को भीतर वेश्यालयों में पहुँचा दी जाती हैं।

अपहृता युवतियों में से अधिकांश तो ऐसी होती हैं, जिन्हें स्कूल-कालेज से लौटते समय अनेक गुण्डों द्वारा आकस्मिक रूप से दबोच कर पास ही तैयार खड़ी गाड़ी में बिठाकर ले जाया जाता है । तो कई ऐसी भी होती हैं जिन्हें विवाह का प्रलोभन देकर घर से भगाया जाता है और बाद में बरबाद कर छोड़ दिया जाता है ।

इस दुःस्थिति के सभी पहलुओं पर विचार किया जाना चाहिए । सबसे पहली आवश्यकता तो सामाजिक जागरूकता की है । देखा यह जाता है कि जिन लोगों के बारे में चर्चा रहती है कि वे ऐसे धंधों से धन कमाते हैं, उन्हें भी समाज में आदर प्रदान किया जाता है । दूसरे जिन लोगों की आँखों के सामने ऐसी घटनाएँ घटती हैं वे भयग्रस्त भाव से चुपचाप देखते रहते हैं । यदि वे साहसपूर्वक प्रतिरोध करें तो अपराधी या तो भाग जाएँ या वहीं उलझ जाएँ और तब तक एकत्रित भीड़ द्वारा पकड़ लिये जाएं । इसी सन्दर्भ में, समाज में ऐसे सामूहिक अभ्यास केन्द्रों की भी आवश्यकता स्पष्ट होती है, जहाँ लोगों को निहत्थे ही किसी शस्त्रधारी से निपटना सिखाया जाय । जूडो-कराटे जैसे व्यायामों तथा पुराने भारतीय दाँवों का अभ्यास कराने वाले केन्द्रों की स्थापना आवश्यक है । खुद लड़कियाँ भी इसमें दक्ष रहें, तो वे भी ऐसी घटनाओं का प्रतिरोध जान पर खेलकर भी करें । इसके साथ ही अभिभावकों को यथासम्भव लड़कियों के आने-जाने की सामूहिक व्यवस्था बनाना और एकान्त रास्तों से वे असमय न गुजरें, इसकी सतर्कता भी बरतने का प्रयास करना चाहिए ।

जो युवतियाँ विवाह के प्रलोभन में फँसती हैं, वे भी अज्ञानता के कारण । अतः वयःसन्धि पर पहुँची लड़कियों की माताएँ आवश्यक यौन-जानकारी दें, मन से उन दिनों

उठने वाले तूफानों के बारे में उन्हें वस्तुस्थिति समझाएँ और ऐसी दुःखद घटनाओं के भी उदाहरण देकर तथा किस्से बताकर उन्हें सतर्क कर दिया जाय।

समाज में पनप रही ऐसी घृणित प्रवृत्तियों के विरुद्ध जागरूकता उत्पन्न होने चाहिए तथा चौतरफा सुरक्षात्मक उपाय अवश्य अपनाये जाने चाहिए। मातृसत्ता का अपमान किसी भी देश के लिये कलंक ही हो सकता है उससे बचने का हर सम्भव उपाय किया जाना आवश्यक है।

नारी समस्या का विश्लेषण ही नहीं समाधान भी

स्वस्थ-सामाजिक जीवन के लिए रचनात्मक एवं प्रतिकारात्मक, दोनों ही कदम आवश्यक होते हैं। समाज की विकृतियों का यदि विरोध एवं विनाश न किया जाय, तो वे सम्पूर्ण सामाजिक प्राणरस को सोख लेती हैं और सामाजिक ढाँचे को खोखला बना डालती हैं। इसीलिए समाज की श्रेयस्कर परम्पराओं को जहाँ पोषित किया जाना चाहिए, वहीं घातक परम्पराओं का उन्मूलन भी करना ही चाहिए। कुप्रथाओं के विरोध से कतराने वाले लोगों द्वारा किये जाने वाले सुप्रथावर्द्धक प्रयास उसी प्रकार निष्फल रहते हैं, जिस प्रकार किसी छेद वाले पात्र में जल या दूध भरने के प्रयत्न। दहेज इन्हीं कुप्रथाओं में से एक है।

समाज में उतनी क्षति बाह्य आक्रमणकारियों, आततायियों एवम् चोर-डाकुओं से नहीं हुई, जितनी इन कुप्रथाओं द्वारा हुई है। विवाह पर होने वाले अपव्यय से लेकर अनेक घृणित रीति-रिवाजों ने समाज को खोखला बना दिया है। फिर भी जन-विवेक सोया पड़ा हुआ है? न जाने कितने परिवार दहेज रूपी दावानल में जल गये, न जाने कितनों की हरी-भरी गृहस्थी तहस-नहस हो गयी और इससे भी भयंकर बात तो यह है कि जाने कितनी युवतियों को इस दहेज की वेदी पर बलि होना पड़ा और उन्होंने एक सरल रास्ता अपना लिया आत्म-हत्या का। फिर भी समाज अन्धा और गूँगा बना हुआ है जैसे उसे काठ मार गया हो। इन सभी कुप्रथाओं का मूल पोषक तत्व है अज्ञान और लोभ। कुरीतियों के इस दानव ने मनुष्य को पशु बना दिया है। लालच ने उसे इतना अंधा बना दिया है कि पैसे के समक्ष मानवता एवं बहू का कोई मूल्य व इज्जत नहीं रह गयी और इससे समाज की सुख-शान्ति का हरण भी होता है। समाज की इस दुष्प्रवृत्ति का परिणाम सर्वाधिक रूप से नारी को ही झेलना पड़ता है। अतः यह जरूरी है कि महिलाएँ इसके विरोध में आगे आयें। यदि आत्म-बल सम्पन्न नारियाँ एक बार सामूहिक रूप से अपनी संकल्प शक्ति के साथ इस दानव के विरोध में खड़ी हो जाएँ तो चारों ओर से उन्हें जन-सहयोग व समर्थन अवश्य प्राप्त होगा।

परन्तु भारतीय, ग्राम्य समाज में नारियाँ बड़ा निष्क्रिय और घिसा-पिटा, लुंज-पुंज जीवन जीने को बाध्य होती हैं। उनमें विरोध करने का साहस भी नहीं होता। हालांकि वे भली प्रकार समझती हैं कि यह बुरा है हानिकारक है। पर पता नहीं कौन-सा भय उन्हें बरबस घेरे रहता है कि वे इन दुष्प्रवृत्तियों, कुरीतियों की शिकार होती चली जा रही हैं? लम्बे घूँघट में ढका उनका जीवन मृत्यु के बाद ही घर से बाहर निकल पाता है। यद्यपि बाल-विवाह के कानून बने हैं। पर वे कानून देखने भर के लिए ही हैं। शायद ही उनका कहीं पालन होता हो और आज भी प्रायः रोज बाल-विवाह होते जा रहे हैं। प्रख्यात समाजवादी विचारक डॉक्टर राममनोहर लोहिया का यह कथन उल्लेखनीय है कि हिन्दुस्तान में स्त्रियाँ जवान होने से पहले ही बूढ़ी हो जाती हैं। पूर्ण यौवन की अवस्था पैंतीस वर्ष बताई गयी है। इस वर्ष में पहुँचने पर शरीर की बाढ़ पूरी होती है परन्तु हमारे देश में तो इस उमर तक पहुँचने तक स्त्रियाँ सास बनने लगती हैं। बाल-विवाह की भयंकर प्रथा तथा नारी-जीवन की चरम सार्थकता पत्नीत्व में देखने की घृणित संकीर्णता से प्रेरित प्रचलनों ने आज भारतीय नारी को जल्दी से जल्दी बुढ़ापे की ओर धकेलने का सिलसिला छेड़ रखा है। यद्यपि श्रम तथा कार्य-कौशल में वे पुरुषों से रंचमात्र न्यून नहीं होतीं।

ग्राम्याओं की तरह ही शहर और कस्बों में निम्न मध्य वर्ग की नारी भी कम उपेक्षित नहीं होती। उनमें से कोई-कोई ही शिक्षित होती है, जो नहीं के बराबर ही शिक्षित कही जाएँगी। अशिक्षित महिलाओं की ही संख्या ज्यादा होती है। भयंकर अशिक्षा की शिकार ये महिलाएँ अनेकानेक पूर्वाग्रहों और कुसंस्कारो से ग्रस्त रहती हैं और नारी के अधिकारों का उन्हें जरा भी ज्ञान नहीं होता। इसीलिए भारतीय समाज में गाड़ी चलती नहीं वरन् घिसटती रहती है और जो कुछ उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाएँ हैं उन्हें अपने से ही फुरसत नहीं मिलती। भला वे समाज का क्या उत्कर्ष करेंगी।

निरीह, असहाय, पराश्रित और विवश नारियाँ समाज निर्माण की भूमिका में शायद ही सहयोग कर सकें। किसी विदुषी ने लिखा है— "बूढ़ी दादी, नानी के कठोर अनुशासन एवं दमनपूर्ण नियन्त्रण में रहने के बाद ग्राम्य किशोरी को गृहस्थ जीवन में भी विवश और आश्रित जीवन ही जीना पड़ता है। पुरुषों की फौजदारी का मूल्य भी प्रायः उन्हें ही चुकाना पड़ता है। जैसे दो परिवार में झगड़ा हुआ नहीं कि आपस में बड़े ही भद्दे ढंग से गाली-गलौज करते हैं। परिवार में लट्ठ चलते हैं। मुकदमेबाजी होती है तथा आपस में ही दुश्मनी निभाई जाती है और इसकी शिकार महिलाएँ असहाय देखती भर रहती हैं।"

जो नारियाँ अपेक्षाकृत सुविधा-सम्पन्न मानी जाती हैं, उन्हें भी बस एक ही सुविधा प्राप्त है, श्रम कम करने की या न करने की सुविधा। इसे सुविधा कहा जाय या प्रतिबन्ध यह भी विवाद का विषय है। श्रम करना प्रतिबन्ध कर दिये जाने से व्यक्तित्व का विकास नहीं, विघटन ही होता है। निष्क्रिय शरीर-मन आखिर ऐसे ही रास्ते ढूँढ़ लेगा, जहाँ वह बैठे-ठाले व्यस्त रहे । यही कारण है कि कथित सुविधा सम्पन्न वर्ग की नारियों के जीवन का बहुलांश सजने-धजने और साज-सज्जा की चिन्ता करने में बीतता है ।

भारतीय समाज में ऐसी नारियों की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए किसी विदेशी पत्रकार ने कहा था, "भारत की स्त्रियाँ घर परिवार में उसी तरह स्थिर रहती हैं जैसे किसी स्थान पर साज-सजावट का सामान सजा रहता है और सुन्दर वस्तुओं के शोपीस रखे रहते हैं । बात कुछ चुभती हुई जरूर है, पर सच्चाई से परे नहीं है । वस्तुतः भारतीय गृहिणी को सम्मान, पूजा और श्रद्धेय मानते हुए भी उसे किसी सुन्दर, निश्छल प्रतिमा की तरह जड़ मान लिया गया है । प्राण होते हुए भी उसकी चेतना छीन ली गयी है और मानव होते हुए भी उसे पशु की तरह रहने के लिए विवश कर दिया गया है । यह दुर्दशा, वर्णन और विश्लेषण से बदलने की नहीं । यह भी एक विडम्बना ही कही जाएगी कि स्वाधीनता के बाद जो ढर्रा चला है, उसमें एक ऐसा वर्ग विकसित हो गया है, जो जोशीले वर्णनों एवं विश्लेषणों में निष्णात है और इसी को अपना धन्धा बना चुका है । परिस्थिति में परिवर्तन के लिए स्वयं कुछ करने को वह आगे आने को तैयार नहीं। व्यापारिक-संस्कृति ने आज समस्या विश्लेषण को भी व्यापार बना डाला है । आवश्यकता ऐसे लोगों की है, जो स्वयं के आचरण द्वारा परिवर्तन को गति दें ।"

प्रभावशाली एवं संवेदनशील नारियों को इन कुरीतियों के उन्मूलन के लिए स्वयं आगे आना होगा । उस सन्दर्भ में अपना एक लक्ष्य निर्धारित कर समूची लगन के साथ उसी दशा में जुटना होगा । ऐसा करने वालों को ही सफलता मिलती रही है । अमरीका में 'वीमेन लिब' आन्दोलन ऐसा ही संकल्पशीला नारियों ने बढ़ाया फैलाया। आज आवश्यकता ऐसी ही समर्पित प्रतिभाओं की है ।

समाज शरीर में संव्याप्त विकृत विषाणुओं, भ्रष्ट मान्यताओं और घृणित गतिविधियों को सहन करना अपराध है। जो लोग इन गतिविधियों को अनुचित मानते हों, वे इनके विरोध के लिए अग्रसर न होंगे, तो उनकी अन्तरात्मा उन्हें कचोटेगी । अतः ये जागृति की अगुआई करें और प्रचण्ड लोक-चेतना को सुगठित तथा सुनियोजित करने के कार्य में स्वयं को समर्पित करें । करुणा और उत्सर्ग की जीवन्त प्रतिमा-नारियों के लिए युग का यही आह्वान है ।

नारी का नहीं– सांस्कृतिक आदर्शों का आत्मघात

शास्त्रकार का कथन है–
योषाः यौतेः मिश्रणार्थस्य सा हि ।
मिश्र यति आत्मानं पुरुषेण साकम् ।।

–निरुक्त ३।५१।१

अर्थात्– धर्म, समाज और संस्कृति सहित जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में तुमने पुरुषों को गौरव प्रदान किया है । इसलिए हे नारी ! हम तुम्हें 'योषा' नाम से सम्बोधित करते हैं ।

सम्बोधन मात्र से जिस नारी के उपकारों का स्मरण रखने की परम्परा जिस जाति, देश और समाज में रही हो, उसी समाज की स्त्रियों पर इतने लांछन, इतना बोझ, इतने अत्याचार किये जाते हों कि वह जीवन जैसी निधि से भी घृणा करने लगे यह बात धिक्कार के योग्य है । इस देश में प्रति वर्ष आत्मघात करने वाली स्त्रियों की संख्या ऐसी वीभत्स है जिसे देख-सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं । मनुष्यता करबद्ध विनीत वाणी से पूछती है– मनुष्यो ! मानवी के उपकार का क्या यही प्रतिफल है ? जन्मदात्री के ऋण क्या इस तरह चुकाये जाते हैं ? देश गौ हत्या के पाप से एक बार मुक्त हो सकता है किन्तु अपनी प्रथाओं, परम्पराओं और मान्यताओं के त्रिशूल से आये दिन आत्म-हत्या कर लेने वाली नारियों के पापों से वह तब तक मुक्त नहीं हो पायेगा जब तक उसे बन्धनों से मुक्त कर, सम्मानास्पद जीवन प्रदान नहीं किया जाता ।

देशभर में प्रतिवर्ष कितनी महिलाएँ आत्महत्या करती हैं, यह भी इस ज्वलंत समस्या से आँखें मूँद लेने के समान है, इसका कोई विस्तृत विवरण तो नहीं मिलता, पर कुछ राज्यों ने जो सर्वेक्षण कराये हैं आँखों में आँसू नहीं, रक्त ला देने के लिए वही पर्याप्त हैं । सम्पूर्ण विवरण पढ़कर तो भावनाशील अन्तःकरणों की हृदयगति ही रुक सकती है ।

'स्टेट्स आफ वूमैन एण्ड स्यूसाइड' पुस्तक के पृष्ठ ३९ में डॉ० ज्योत्सना एच. शाह गुजरात राज्य की 'आत्म-हत्या जाँच समिति' द्वारा १९६१ से ६३ वर्ष तक के अध्ययन के निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं जिनमें बताया गया है कि इन वर्षों में गुजरात में क्रमशः १०३०, ९४४, १७५४ आत्म-हत्याएँ हुईं, जिनमें स्त्रियों की संख्या क्रमशः ५१६, ५१३ तथा ११९२ थी । इनमें वह संख्या सम्मिलित नहीं है जो पुरुषों की सावधानी के कारण प्रकाश में ही नहीं आयी या जिनके लिए पर्याप्त साक्ष्य ही उपलब्ध नहीं हो सके । स्पष्ट है कि पुरुषों की अपेक्षा इस देश में स्त्रियाँ अधिक आत्म-हत्या करती हैं ।

१९६६ से १९६९ के मध्य महाराष्ट्र इनसे भी अधिक अर्थात् क्रमशः ११२३, १५५२, २१०७ तथा २८७६ आत्म हत्याएँ हुईं तो इसी अवधि में बंगाल में हुई आत्म-हत्याओं

की संख्या उसे भी आगे जा पहुँचती हैं १२२५, १६३२, २६१८ तथा २९९१ । एक ओर यह संख्या ही सोचनीय है तो दूसरी ओर सर्वेक्षणों में यह पाया गया कि आत्म-हत्या की सबसे अधिक घटनाएँ १५ से ३४ वर्ष की आयु की अधिकांश गृहस्थ महिलाओं द्वारा घटित हुईं ।

इतनी बड़ी संख्या और सम्वेदनशील नव-युवतियों का आत्मघात, आत्मालोचन के लिए विवश करता है । इनके कारणों की जो समीक्षा की गयी है वह यह बताती है कि आर्थिक कारणों से हुई आत्म-हत्याओं की संख्या बहुत कम थी। इन मामलों में अपनी वह प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराएँ जो अब जीर्ण-शीर्ण हो चुकी हैं, पर मान्यताओं की अन्ध श्रद्धा के कारण अब तक थोपी हुई हैं तथा सामाजिक कारण प्रमुख हैं। एक समय था जब विधवाओं के लिए सहमरण का अनिवार्य नियम बना दिया गया था । जो विलाप तब अपनी क्रूर परम्पराओं के कारण नारी को करना पड़ता था, वही आज प्रकारान्तर से इन अन्ध परम्पराओं के कारण करना पड़ रहा है ।

दहेज प्रथा इनमें से प्रमुख है। अपने निर्धन माता-पिता को धन के अभावों में दर-दर भटकते देखकर भावनाशील कन्याओं के हृदय टूट जाते हैं। एक सीमा तक सहन के बाद यदि कोई काना, कुबड़ा मिल भी गया तो उस तरह भी और भला घर मिला तो पीछे दहेज के लिए प्रताड़ित किये जाने और भीषण यन्त्रणाएँ भुगतने के कारण वे अपने आपको असहाय, अनाश्रित अनुभव करने लगती हैं । जिस घर को वे छोड़कर आयीं वहाँ पहले ही छोटी बहनों के लिए आर्थिक घुटन है, कन्या जिस परिवार में बहू बनकर आई, उसमें सास-सुसर, ननद, देवरों तथा अनेक बार तो दहेज के भूखे भेड़िये पति तक भी उसका तिरस्कार करते और कष्ट देते हैं, ऐसी स्थिति में उस स्त्री के सामने घोर अन्धकार छा जाता है, सम्भवतः वे इसी कारण इस कुकृत्य के लिए बाध्य होती हैं ।

हमारे देश में सामूहिकता और सहजीवन की जहाँ एक ओर आदर्श प्रणाली चली आ रही है वहीं सासुओं द्वारा बहुओं पर शासन करने की अन्ध-मान्यता ने भी न जाने कब से स्थान ग्रहण कर लिया है । नव-वधू की अपनी इच्छाएँ, लालसाएँ और अधिकार होते हैं। सासु की भेद दृष्टि अपना एकाधिकार समाप्त करना नहीं चाहती या यों कहिए कि उसे विरासत में जो अवगुण मिले उन्हें ही यहाँ भी थोपना चाहती है। इस संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण दोनों में टकराव होता है, जिसमें जीत प्रायः माता की होती है और बधू घुटन अनुभव करते-करते एक दिन उस स्थिति में जा पहुँचती है जहाँ फिर और बर्दाश्त की हिम्मत नहीं रहती ।

बहू का यह दमन अधिकांश अशिक्षित संयुक्त परिवारों में होता है, जहाँ बेटी और बहू दो भिन्न सत्ताएँ मानी जाती हैं । अपनी संस्कृति में बहू को बेटी से भी बड़ा दर्जा दिया गया है उसे साम्राज्ञी तक कहकर उसके अधिकार असीमित कर दिये गये हैं वास्तव में भारतीय समाज के रचनाकार की यह पैनी दृष्टि थी कि कोमल भावनाओं की प्यार से लबालब, समर्पण की देवी जिन गुणों से आविर्भूत होगी उन्हीं का व्यवहार व बर्ताव में भी संचार करेगी। सो था भी ऐसा ही, जब तक यह पद्धति आदर्श रूप में रही, भारतीय परिवार स्वर्ग से बढ़कर रहे । यहाँ जो भी अतिथि आया वह सब कुछ खोकर गया । हमारे परिवार सहयोग, सम्वेदना, स्नेह और ममत्व के मूर्तिमान आगार रहे हैं । किन्तु वहीं अब विद्वेष झलकता है, क्रूरता नग्न नृत्य करती है। अधिकारों की स्पर्द्धा में बूढ़ों का तो कुछ नहीं बिगड़ता, बेचारी वधुएँ आत्मघात की शिकार होती हैं । यह आत्मघात नारी का नहीं, सांस्कृतिक आदर्शों का होता है ।

आंकड़े भी यह बताते हैं कि ६१.९ प्रतिशत आत्महत्याएँ अशिक्षित घरों और कम पढ़ी-लिखी स्त्रियों द्वारा हुईं । तलाक की सुविधा और योग्यता के कारण शिक्षित महिलाएँ भले ही घुटती रहें, पर जीवन के नवीन आश्रय खोज ही लेती हैं, पर अशिक्षितों में इतना मनोबल और साहस नहीं होता जिससे वे घुटन भरे वातावरण का परित्याग कर स्वावलम्बी जीवन जी सकें, ससुराल वालों का निरन्तर दमन उन्हें कमजोर बना देता है, इसी कारण वे टूटने को विवश होती पायी गयीं।

यह सब कारण सामाजिक हैं और नारी जाति को समुचित प्रतिष्ठा, मनोबल, स्वाभिमान न प्रदान करने के कारण हैं । जो नारी स्वयं में घुट रही हो उसका घर, उसके बालक-बच्चे, उसका पति किस तरह सुखी रह सकते हैं। इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है, अतएव इसके अतिरिक्त और कोई उपाय रह नहीं जाता कि नारी की आकांक्षाओं को समझा जाये और उन्हें संरक्षण प्रदान किया जाये ।

नारी के शील-सम्मान की बढ़ती हुई असुरक्षा

पिछले दिनों दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्राओं ने दिल्ली नगर में बढ़ती हुई छेड़छाड़ की घटनाओं के विरोध में प्रदर्शन किया । यह केवल दिल्ली की बात नहीं है और न केवल दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्राओं की ही समस्या है । वरन् सभी क्षेत्रों में महिलाओ और लड़कियों के साथ छेड़छाड़ की घटनाओं में जिस गति से वृद्धि हुई है, उसे देखते हुए यह एक सामाजिक समस्या बनती जा रही है ।

पिछले पचास वर्षों में जो कुछ परिवर्तन हुए हैं उनमें नारी जाति की समानता के लिए बढ़ते हुए कदम प्रमुख हैं । अब वह घर की चहारदीवारी में बन्द रहने वाली गृहस्वामिनी ही नहीं, समाज के सक्रिय अर्द्धांग के रूप में विकसित होती जा रही है । पुरुषों से उनका सम्पर्क पहले की अपेक्षा अधिक होता है और यह सम्पर्क होना

कोई बुरी बात नहीं है । स्त्री और पुरुष के बीच कोई विशेष असमानता नहीं होती फिर क्यों एक वर्ग घर में ही कैद बैठा रहे । किन्तु लगता है नारी की प्रगति के समान ही समाज भी प्रगति नहीं कर सका है । छेड़खानी उसी पिछड़ेपन, असभ्यता और हीनता की निशानी है ।

बदलते युग में महिलाएँ पुरुषों से उत्तरोत्तर आगे निकलती जा रही हैं, किन्तु उनके शील-सम्मान भी सुरक्षा भी उतनी ही कम होती जा रही है । छेड़छाड़ की घटनाएँ उसी असुरक्षा की द्योतक है । उनका यह कथन नगरों के सन्दर्भ में तो पूरी तरह सत्य उतरता है। दिल्ली नगर की वर्तमान स्थिति इसका सच्चा उदाहरण है । महानगरों की काम-काजी महिलाएँ का अपना शील-सम्मान लगभग असुरक्षित ही लगता है । किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति उससे भिन्न है ।

नगरों में अपराधी तत्व भरे बाजार में किसी सम्भ्रान्त व्यक्ति की पगड़ी उछाल दें या किसी महिला के साथ अभद्र व्यवहार करें, तो उसका प्रतिकार करने के लिए बहुत कम लोग आगे आते हैं, क्योंकि वहाँ का जन-जीवन ही कुछ ऐसा उदासीन और आत्मकेन्द्रित हो गया है कि हर व्यक्ति अपनी ही दाढ़ी बुझाने में लगा रहता है । पिछले दिनों आजमगढ़ जिले के करीमुद्दीनपुर गाँव में छेड़खानी की घटना पर जो प्रतिक्रिया हुई, वह उतनी ही जुगुप्सापूर्ण और वीभत्स थी जितनी कि छेड़खानी की क्रिया । एक विवाहित ग्रामीण युवती अपने छोटे भाई के साथ ससुराल जा रही थी । मार्ग में स्थानीय कालेज के दो छात्रों ने उससे छेड़खानी की, यह नहीं शीलहरण करने का प्रयास भी किया । इन कामान्ध युवकों का प्रतिरोध उसका नन्हा भाई नहीं कर सका । भयभीत युवती के मुँह से त्रासपूर्ण आर्तनाद फूट पड़ा । बधिक के हाथों पड़ी गो का सा विवशता भरा यह स्वर सुनकर कुछ ग्रामीण व्यक्ति वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने उन युवकों को पकड़ लिया ।

अच्छी बात का ढिंढोरा पीटने पर भी वह फैलती नहीं । किन्तु बुरी बात तो हवा के घोड़े पर बैठकर उड़ती है। यह समाचार बिजली की तरह गाँव में फैल गया और काफी भीड़ एकत्रित हो गयी । शिक्षित युवकों के इस कुकर्म करने के दुस्साहस पूर्ण प्रयास पर लोग रोष से जल उठे । दिन दहाड़े नारी की लाज लूटते देखकर भला कौन संयम रख सकता और फिर भीड़ भरे उत्तेजित माहौल में तो यह और भी कठिन हो जाता है । क्रिया की प्रतिक्रिया आरम्भ हो गयी । पहले तो उनकी जीभर कर पिटाई हुई । जिसके हाथ जो लगा उसी से उन्हें पीटा गया। अन्त में उन्हें जीवित जला दिया गया । यह दण्ड विधान निश्चय ही अमानुषिक, जंगली व घृणास्पद कहा जा सकता है, किन्तु आरम्भ के सन्दर्भ में अन्त कुछ विशेष असंगत भी नहीं लगता ।

नारी को कुदृष्टि से देखने की जो प्रकृति इन दिनों बढ़ रही है । उसके मूल में कोई एक कारण अधनंगा फैशन, नहीं है । पाश्चात्य भोगवाद का प्रभाव, नैतिक शिक्षा का अभाव, अधूरी एकांगी शिक्षा, धार्मिक आदर्शों की उपेक्षा, बढ़ती हुई अनैतिकता, अश्लील व कुत्सित सिनेमा, गन्दा बाजारू साहित्य, गन्दे कामुकता भड़काने वाले चित्र, भारतीय सभ्यता-संस्कृति की अपेक्षा, आहार-विहार का असंयम आदि अनेकानेक ऐसे ही कारण हैं ।

आये दिन समाचार-पत्रों के पृष्ठ नगरों में बढ़ती हुई नारी अपमान व असुरता के सम्बन्ध में रंगे रहते हैं । ऐसे-ऐसे लज्जाजनक काण्ड सामने आते हैं कि शर्म से हमारी गर्दन झुक जाती है । यह वह धरती है जहाँ नारी को देवी मानकर पूजा की जाती थी, वहीं यह सब घटित हो रहा है । नगरों में कहीं-कहीं तो स्थिति यह हो गयी है कि महिलाओं का देर-सबेर बाहर निकलना खतरे से खाली नहीं होता । लड़कियों व महिलाओं के छेड़ने की घटनाएँ आम होने लगी हैं, लुटने का भय अब जन शून्य प्रदेशों व गाँवों की अपेक्षा नगरों में अधिक हो गया है । यह लज्जा का ही विषय कहा जाएगा ।

उर्दू के प्रसिद्ध कवि अकबर ने भी अपने एक शेर में छेड़खानी करने की उच्छृंखलता को भड़काने वाले वेश-विन्यास पर व्यंग्य कसा था– "मुझको सभी कहते हैं रख नीची नजर अपनी ; कोई उनको नहीं कहता कि निकलो न यूँ अयां (नग्न) होकर ।" आज की फैशनपरस्ती, चुस्त परिधान पहनने और अपने आपको आकर्षक दिखाने की होड़ करते समय आधुनिकाएँ यह क्यों भूल जाती हैं कि उनका यह आकर्षक बनना उन्हीं के जी का जंजाल बन जाएगा ।

यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य ने पिछले वर्षों में प्रगति की है पर उसकी यह प्रगति लंगड़ी है, एकांगी है । हमारे देश में शिक्षा का प्रसार तो हुआ है । लोगों की भौतिक प्रगति तो हुई है किन्तु शिक्षा के साथ सद्बुद्धि–सद्ज्ञान का प्रसार नहीं हुआ । भौतिक प्रगति तो हुई है पर आत्मिक प्रगति में मनुष्य पिछड़ा हुआ ही रहा । आधुनिकता का अर्थ भारतवासियों ने मात्र पश्चिमी देशों की नकल करना भर समझ लिया है । क्या पुरुष क्या नारी दोनों ही यह भूल करने में एक-दूसरे से पीछे नहीं रहे हैं । हमारी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और परम्पराओं में वे तत्व हैं जो मनुष्य को मनुष्य से देवता बनाने में समर्थ हैं । वे रूढ़ियों के रूप में ही सही पर हमें मनुष्यता की परिधि में बाँधे हुए थे ।

हमारे यहाँ अपनी आयु से बड़ी महिलाओं को माता और अपने से छोटी को बहिन मानने की मर्यादाएँ थीं । नारी को देवी माना जाता था । स्वामी रामकृष्ण परम हंस ने अपने उपदेशों में कहा है कि नारी चाहे भी हो उसे माता त्रिगुणमयी के रूप में

नारी के साथ इन भावनाओं को जोड़ने के कारण वहाँ आकर्षण नहीं श्रद्धा के भाव ही उमड़ते थे। उन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए प्राचीन मनीषियों ने नारी को देवी की संज्ञा दी थी। पर दारेषु मातृवत का आदर्श रखने का भारतीय आदर्श नारी के शील-सम्मान का रक्षा कवच बना हुआ था। कोई व्यक्ति अपनी माता और बहिन को कुदृष्टि से देखने की धृष्टता स्वप्न में भी नहीं कर सकता। इन मर्यादाओं में बँधा रहकर पुरुष वर्ग नारी के प्रति सम्मानजनक दृष्टिकोण ही अपनाता था।

पिछले दिनों मुद्रण, प्रकाशन, सिनेमा, चित्र, प्रकाशन, विज्ञापन आदि में प्रायः नारी के उसी स्वरूप को सामने रखा गया जो पुरुष की पशु प्रवृत्तियों को, कामवासना को भड़काये। साहित्य और कला की शक्तियों को भी इसी विनाश के पथ में प्रयुक्त किया गया। क्योंकि हमारे सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्शों को भुलाकर हम पाश्चात्य सभ्यता की अन्धाधुन्ध नकल करने में लग गये।

अमेरिका भौतिक प्रगति में ही सब देशों से बड़ा-चढ़ा नहीं। हत्या, लूटपाट, अपराध, शीलभंग, छेड़छाड़, अपहरण आदि में भी वह सबसे आगे है। वहाँ की महिलाएँ पुरुषों से त्रस्त हो चली हैं। शारीरिक आकर्षण को ही प्रमुखता देने और उन्मुक्त भोग में विश्वास करने का कुपरिणाम भोगने के पश्चात् वहाँ की समझदार महिलाओं ने अपने आपको सजाने-सँवारने की अपेक्षा शालीन बनाने के लिए अभियान चलाया है। विज्ञापन आदि के माध्यम से लोगों से नारी का जितना शोषण किया है, उसके विरुद्ध भी अमेरिकी महिलाओं ने आन्दोलन छेड़ा है। वहाँ की खाओ-पियो और मौज करो के जीवन दर्शन ने उन्हें इस स्थिति तक पहुँचाया है।

मनुष्य में पशु का भी निवास होता है और देवता का भी। सांस्कृतिक मर्यादाओं का पालन करता हुआ वह निरन्तर देवत्व की ओर अग्रसर होता जाता है। हमारी संस्कृति देव संस्कृति इसीलिए कहलाती है कि यह मनुष्य को देवता बनाती है। महिलाओं को कुदृष्टि से देखना, उनसे छेड़छाड़ करना पशुता से भी गया-गुजरा काम है। यह सांस्कृतिक मर्यादाओं का उल्लंघन है। इन घटनाओं को रोकने का सबसे बड़ा उपाय यही हो सकता है। हम अपनी नैतिक व सांस्कृतिक मर्यादाओं की पुनः प्रतिष्ठा करें। प्राचीन परम्पराएँ यदि विकृत हो गयी हैं तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वे निरर्थक हैं। वे शोधन, समयानुरूप परिवर्तन चाहती हैं। पाश्चात्य अन्धानुकरण से कोई लाभ नहीं है।

यह प्रवृत्ति पतन की ही द्योतक है जिस समाज में नारी का शील-सम्मान दिन में भी असुरक्षित हो उस समाज की दशा क्षय रोग से ग्रस्त रोगी के सदृश्य है, जिसे कभी भी काल का ग्रास बनना पड़ सकता है। हमें अपनी नैतिक मर्यादाओं की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए प्राणपण से प्रयास करना चाहिए, नहीं तो सर्वनाश तथा ऐसे अमानुषिक दण्ड भोगने के लिये भी तैयार हो जाना चाहि

वह कोई सम्पत्ति या जायदा नहीं है

पति-पत्नी को परिवार-शरीर के दायें-बायें अं समझा जाता है। गृहस्थी को उनके साझे की व्यवस्था से चलने वाली इकाई कहा जाता है और उनकी तुलना गाड़ी के दो पहियों से की जाती है। परिवार के सम्बन्ध में इस तरह का दृष्टिकोण तभी बना लेना चाहिए; जब युवक-युवती विवाह सूत्र में आबद्ध होते हैं और गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते हैं। सभ्य संसार में दम्पति इतने उच्च आदर्शों को अपने जीवन व्यवहार में भले ही न उतार पाते हों, किन्तु वे एक-दूसरे के प्रति समान अधिकारों वाले मित्र की आदर भावना तो रखते ही हैं किन्तु अपने देश में स्थिति सर्वथा भिन्न है। यहाँ न केवल पति को पत्नी से ऊँचा समझा जाता है, बल्कि उसे स्वामी, शासक और अधिनायक के अपरिमित अधिकार हैं; जबकि पत्नी के लिए पति की इच्छा ही परमेश्वर की आज्ञा, उसके निर्देश ही लक्ष्मण रेखा और पति को उसकी इच्छानुसार सन्तुष्ट रखना ही एकमात्र कर्तव्य बताया जाता है।

एक-दूसरे के प्रति निष्ठा भाव रखते हुए यदि इन आशा-अपेक्षाओं को पूरा किया जाता रहे तो उसमें आपत्तिजनक कुछ भी नहीं है, वरन् इस तरह के निष्ठा भाव से परस्पर प्रेम और सद्भावनाओं का ही विकास होता है। किन्तु यह स्थिति अनुचित और अवांछनीय तब हो उठती है, जब इसे एकतरफा कर्त्तव्य ही समझा जाये। हमारे परिवारों में प्रायः यही होता है। पति पत्नी की सेवा-निष्ठा को अपना अधिकार समझता है और उससे हर स्थिति में सेवा-सुविधा प्राप्त करने की अपेक्षा करता है। परम्परागत और अशिक्षित भारतीय परिवारों का इस दृष्टि से विवेचन किया जाय तो प्रतीत होगा कि स्थिति स्वामी, दास, मालिक गुलाम की सी ही है। कहीं-कहीं तो पति-पत्नी में आदमी और जानवर का-सा सम्बन्ध स्तर बना होता है। वहाँ पुरुष मनमाने अत्याचार करता है और इच्छानुकूल अधिकारों को घटाता-बढ़ाता रहता है। परिणामस्वरूप स्त्रियों को आत्म-हत्या, मृत्यु और जीवित मृत्यु का वरण करने के लिए विवश हो जाना पड़ता है। कुछ सोदाहरण तथ्य प्रस्तुत हैं।

गत वर्ष सितम्बर मास की घटना है। नई दिल्ली के पास रघुबीरपुरा बस्ती की ३० वर्षीया एक स्त्री ने यमुना पुल से कूद कर आत्म-हत्या करने का प्रयास किया। वहाँ पहरा दे रहे पुलिस अधिकारियों ने मुस्तैदी दिखाकर उसे बचा लिया। जब उसके इस प्रयास का कारण पता लगाया गया तो मालूम हुआ कि वह स्त्री अपने पति के बर्बर व्यवहार से तंग आकर आत्म-हत्या कर रही थी। उसका पति न केवल उसके साथ दुर्व्यवहार करता था, वरन् पहली पत्नी के जिन्दा रहते एक और स्त्री ले आया था

और उसे दूसरी पत्नी बनाकर घर में रखे हुआ था। उक्त स्त्री की सौत भी उससे दुर्व्यवहार करती; जिससे परेशान होकर उसने आत्म-हत्या कर लेना ही अच्छा समझा।

पारिवारिक कलह के कारण-पति द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों के कारण स्त्री अन्दर ही अन्दर कितना टूट चुकी होती है, इसके उदाहरण तो तभी सामने आते हैं, जबकि कोई ऐसी वीभत्स घटना प्रकाश में आती हो, अन्यथा स्त्री बेचारी अन्दर ही अन्दर घुटती रहती है। कई अवसरों पर तो पतियों द्वारा बड़े विचित्र कारणों से पत्नी की ही हत्या कर दी गयी। उन कारणों से परिचित होते हैं तो पता लगता है कि पत्नी को परिवार में कितना निरीह स्थान प्राप्त है और पति कितना क्रूर तथा स्वार्थी प्राणी है।

फैजाबाद के रामनगर मुहल्ले में रहने वाले सम्मन दास नामक व्यक्ति ने केवल इस कारण अपनी पत्नी का गला घोंट दिया कि वह साँवले रंग की थी। अदालत में अपना अपराध स्वीकार करते हुए उक्त युवक ने कहा–मेरी पत्नी साँवली थी और मेरे मित्रों ने वायदा किया था कि यदि उसकी मृत्यु हो जाय तो वे उसकी दूसरी शादी एक अच्छी सुन्दर लड़की से करा देंगे।

बाँदा की एक घटना है, वहाँ के एक युवक ने अपनी पत्नी की बच्चा न होने के कारण हत्या कर दी। रामसिंह नाम के उक्त युवक का छह वर्ष पूर्व विवाह हुआ था। छह वर्ष से उसे कोई बच्चा नहीं हुआ था और रामसिंह दूसरा विवाह करना चाहता था जिसमें उसकी पत्नी बाधक थी।

पारिवारिक कारणों से नई दिल्ली अलीगंज क्षेत्र के निवासी बाबूलाल ने अपनी पत्नी की हत्या कर दी। कारण यह बताया गया कि कुछ समय से दोनों में मनमुटाव चल रहा था। एक दिन किसी मामले में बाबूलाल इतना उग्र हो उठा कि उसने अपनी पत्नी के हाथ पीछे की ओर बाँध दिये और उसके गले में फन्दा डालकर चारपाई से कस दिया तथा मकान में ताला लगाकर भाग गया।

नई दिल्ली में ही पिछले दिनों चौकपाड़ा टोंटी पर स्कूटर स्टैण्ड के पास एक व्यक्ति ने क्रोध में आकर अपनी पत्नी का खून कर दिया। हत्या का कारण भी बड़ा अजीब बताया गया। उसकी शादी ५-६ साल पहले हुई थी, पर किन्हीं कारणों से वह अलग रहती थी। बाजार में उसे खुले मुँह घूमते देखकर पति ने उससे पर्दा करने के लिए कहा। स्त्री ने मना कर दिया तो उसका पति इतना क्रुद्ध हो उठा कि उसके तत्काल बाजार में से एक छुरी खरीदी और पत्नी पर वार कर दिया। जिससे घायल होकर स्त्री ने अस्पताल में दम तोड़ दिया।

ऊपर दी गयी घटनाओं में हत्या के कारण बहुत सामान्य से हैं, पर वे कारण भारतीय पुरुषों के पत्नी के प्रति आम दृष्टिकोण के प्रतीक हैं। उदाहरण के लिए स्त्री को वासना पूर्ति का साधन समझा जाता है, बच्चा पैदा करने का यन्त्र माना जाता है और यदि इन कसौटियों पर वह खरी नहीं उतरती तो उसे बेकार बाँझ पशु की तरह व्यर्थ समझा जाता है। विवाह के समय शायद ही किसी युवक के मन में सुयोग्य साथी पाने का उल्लास रहता है'। शादी के लिए लड़की देखते समय उसके गुण, योग्यताओं पर नहीं उसके रूप और माता-पिता की आर्थिक स्थिति को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है कि वह अपने साथ कितना दहेज लेकर आती है। जिस प्रकार बाजार में पशु खरीदते समय उसमें मिलने वाले लाभ को अधिक महत्त्व दिया जाता है, उसी प्रकार लड़की को पसन्द करते समय युवक उसमें रूप-यौवन का आकर्षण खोजता है तो माँ-बाप उससे मिलने वाले दहेज को महत्त्व देते हैं।

सन्तान न होने पर भारतीय परिवारों में आमतौर से उपेक्षा, तिरस्कार और अपमान सहना पड़ता है। यदि परिवार सम्पन्न हुआ तो पुरुष की दूसरी शादी के लिए विचार किया जाने लगता है, अन्यथा घर में क्लेश का वातावरण तो बनता ही है। लगता है कि यहाँ आकर परिवार के अगुआ पुरुष पालतू जानवर और स्त्री में कोई अन्तर नहीं करते। पालतू जानवर यदि बाँझ हो तो उसे बेकार समझकर बचा-खुचा चारा-दाना दिया जाता रहता है। स्त्री के लिए तो उससे भी बुरी स्थिति बनती है–क्योंकि वह मानवीय हृदय भी रखती है, जिसमें सम्वेदनाएँ जीवित रहती हैं और उस सम्वेदनशील हृदय से वह पाशविक व्यवहार को सहती है।

तमाम प्रतिबन्ध, मर्यादाएँ, नियम और व्रत इस तरह स्त्रियों पर लादे जाते हैं या उन पर लागू किये जाते हैं, जैसे उनके पास कोई मानवी व्यक्तित्व नहीं हो, वे सम्पत्ति का अंग हो। परिवार और समाज के लिए उसकी क्षमताओं का भली-भाँति उपयोग तभी सम्भव है, जबकि उसे सहधर्मिणी, जीवनसंगिनी के रूप में प्रतिष्ठित किया जाय। इससे पूर्व उन मान्यताओं को बदलना आवश्यक है जिनके कारण उसके गौरव को नष्ट करने वाली परिस्थितियाँ बनती हैं।

मानवी की यह दारुण दुर्दशा

प्रसिद्ध दार्शनिक और विचारक लेखक बर्ट्रेण्ड रसेल से एक बार किसी ने पूछा– "किसी भी समाज की उन्नति व अवनति के लिए क्या कसौटियाँ हो सकती हैं। आप किसी समाज को सभ्य या असभ्य किस आधार पर बतायेंगे।" इसके उत्तर में रसेल ने कहा था कि, "मुझे

नारी के साथ इन भावनाओं को जोड़ने के कारण वहाँ आकर्षण नहीं श्रद्धा के भाव ही उमड़ते थे। उन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए प्राचीन मनीषियों ने नारी को देवी की संज्ञा दी थी। पर दारेषु मातृवत का आदर्श रखने का भारतीय आदर्श नारी के शील-सम्मान का रक्षा कवच बना हुआ था। कोई व्यक्ति अपनी माता और बहिन को कुदृष्टि से देखने की धृष्टता स्वप्न में भी नहीं कर सकता। इन मर्यादाओं में बँधा रहकर पुरुष वर्ग नारी के प्रति सम्मानजनक दृष्टिकोण ही अपनाता था।

पिछले दिनों मुद्रण, प्रकाशन, सिनेमा, चित्र, प्रकाशन, विज्ञापन आदि में प्रायः नारी के उसी स्वरूप को सामने रखा गया जो पुरुष की पशु प्रवृत्तियों को, कामवासना को भड़काये। साहित्य और कला की शक्तियों को भी इसी विनाश के पथ में प्रयुक्त किया गया। क्योंकि हमारे सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्शों को भुलाकर हम पाश्चात्य सभ्यता की अन्धाधुन्ध नकल करने में लग गये।

अमेरिका भौतिक प्रगति में ही सब देशों से बड़ा-चढ़ा नहीं। हत्या, लूटपाट, अपराध, शीलभंग, छेड़छाड़, अपहरण आदि में भी वह सबसे आगे है। वहाँ की महिलाएँ पुरुषों से त्रस्त हो चली हैं। शारीरिक आकर्षण को ही प्रमुखता देने और उन्मुक्त भोग में विश्वास करने का कुपरिणाम भोगने के पश्चात् वहाँ की समझदार महिलाओं ने अपने आपको सजाने-सँवारने की अपेक्षा शालीन बनाने के लिए अभियान चलाया है। विज्ञापन आदि के माध्यम से लोगों से नारी का जितना शोषण किया है, उसके विरुद्ध भी अमेरिकी महिलाओं ने आन्दोलन छेड़ा है। वहाँ की खाओ-पियो और मौज करो के जीवन दर्शन ने उन्हें इस स्थिति तक पहुँचाया है।

मनुष्य में पशु का भी निवास होता है और देवता का भी। सांस्कृतिक मर्यादाओं का पालन करता हुआ वह निरन्तर देवत्व की ओर अग्रसर होता जाता है। हमारी संस्कृति देव संस्कृति इसीलिए कहलाती है कि यह मनुष्य को देवता बनाती है। महिलाओं को कुदृष्टि से देखना, उनसे छेड़छाड़ करना पशुता से भी गया-गुजरा काम है। यह सांस्कृतिक मर्यादाओं का उल्लंघन है। इन घटनाओं को रोकने का सबसे बड़ा उपाय यही हो सकता है। हम अपनी नैतिक व सांस्कृतिक मर्यादाओं की पुनः प्रतिष्ठा करें। प्राचीन परम्पराएँ यदि विकृत हो गयी हैं तो इसका यह अर्थ नहीं है कि ये निरर्थक हैं। वे शोधन, समयानुरूप परिवर्तन चाहती हैं। पाश्चात्य अन्धानुकरण से कोई लाभ नहीं है।

यह प्रवृत्ति पतन की ही द्योतक है जिस समाज में नारी का शील-सम्मान दिन में भी असुरक्षित हो उस समाज की दशा क्षय रोग से ग्रस्त रोगी के सदृश्य है, जिसे कभी भी काल का ग्रास बनना पड़ सकता है। हमें अपनी नैतिक मर्यादाओं की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए प्राणपण से प्रयास करना चाहिए, नहीं तो सर्वनाश तथा ऐसे अमानुषिक दण्ड भोगने के लिये भी तैयार हो जाना चाहिए।

वह कोई सम्पत्ति या जायदाद नहीं है

पति-पत्नी को परिवार-शरीर के दायें-बायें अंग समझा जाता है। गृहस्थी को उनके साझे की व्यवस्था से चलने वाली इकाई कहा जाता है और उनकी तुलना गाड़ी के दो पहियों से की जाती है। परिवार के सम्बन्ध में इस तरह का दृष्टिकोण तभी बना लेना चाहिए; जब युवक-युवती विवाह सूत्र में आबद्ध होते हैं और गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते हैं। सभ्य संसार में दम्पत्ति इतने उच्च आदर्शों को अपने जीवन व्यवहार में भले ही न उतार पाते हों, किन्तु वे एक-दूसरे के प्रति समान अधिकारों वाले मित्र की आदर भावना तो रखते ही हैं किन्तु अपने देश में स्थिति सर्वथा भिन्न है। यहाँ न केवल पति को पत्नी से ऊँचा समझा जाता है, बल्कि उसे स्वामी, शासक और अधिनायक के अपरिमित अधिकार हैं; जबकि पत्नी के लिए पति की इच्छा ही परमेश्वर की आज्ञा, उसके निर्देश ही लक्ष्मण रेखा और पति को उसकी इच्छानुसार सन्तुष्ट रखना ही एकमात्र कर्तव्य बताया जाता है।

एक-दूसरे के प्रति निष्ठा भाव रखते हुए यदि इन आशा-अपेक्षाओं को पूरा किया जाता रहे तो उसमें आपत्तिजनक कुछ भी नहीं है, वरन् इस तरह के निष्ठा भाव से परस्पर प्रेम और सद्भावनाओं का ही विकास होता है। किन्तु यह स्थिति अनुचित और अवांछनीय तब हो उठती है, जब इसे एकतरफा कर्त्तव्य ही समझा जाये। हमारे परिवारों में प्रायः यही होता है। पति पत्नी की सेवा-निष्ठा को अपना अधिकार समझता है और उससे हर स्थिति में सेवा-सुविधा प्राप्त करने की अपेक्षा करता है। परम्परागत और अशिक्षित भारतीय परिवारों का इस दृष्टि से विवेचन किया जाय तो प्रतीत होगा कि स्थिति स्वामी, दास, मालिक गुलाम की सी ही है। कहीं-कहीं तो पति-पत्नी में आदमी और जानवर का-सा सम्बन्ध स्था बना होता है। वहाँ पुरुष मनमाने अत्याचार करता है और इच्छानुकूल अधिकारों को घटाता-बढ़ाता रहता है। परिणामस्वरूप स्त्रियों को आत्म-हत्या, मृत्यु और जीवित मृत्यु का वरण करने के लिए विवश हो जाना पड़ता है। कुछ सोदाहरण तथ्य प्रस्तुत हैं।

गत वर्ष सितम्बर मास की घटना है। नई दिल्ली के पास रघुबीरपुरा बस्ती की ३० वर्षीया एक स्त्री ने यमुना पुल से कूद कर आत्म-हत्या करने का प्रयास किया। वहाँ पहरा दे रहे पुलिस अधिकारियों ने मुस्तैदी दिखाकर उसे बचा लिया। जब उसके इस प्रयास का कारण पता लगाया गया तो मालूम हुआ कि वह स्त्री अपने पति के बर्बर व्यवहार से तंग आकर आत्म-हत्या कर रही थी। उसका पति न केवल उसके साथ दुर्व्यवहार करता था, वरन् पहली पत्नी के जिन्दा रहते एक और स्त्री से आया था

और उसे दूसरी पत्नी बनाकर घर में रखे हुआ था। उक्त स्त्री की सौत भी उससे दुर्व्यवहार करती; जिससे परेशान होकर उसने आत्म-हत्या कर लेना ही अच्छा समझा।

पारिवारिक कलह के कारण-पति द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों के कारण स्त्री अन्दर ही अन्दर कितना टूट चुकी होती है, इसके उदाहरण तो तभी सामने आते हैं, जबकि कोई ऐसी वीभत्स घटना प्रकाश में आती हो, अन्यथा स्त्री बेचारी अन्दर ही अन्दर घुटती रहती है। कई अवसरों पर तो पतियों द्वारा बड़े विचित्र कारणों से पत्नी की ही हत्या कर दी गयी। उन कारणों से परिचित होते हैं तो पता लगता है कि पत्नी को परिवार में कितना निरीह स्थान प्राप्त है और पति कितना क्रूर तथा स्वार्थी प्राणी है।

फैजाबाद के रामनगर मुहल्ले में रहने वाले सम्पन दास नामक व्यक्ति ने केवल इस कारण अपनी पत्नी का गला घोंट दिया कि वह साँवले रंग की थी। अदालत में अपना अपराध स्वीकार करते हुए उक्त युवक ने कहा–मेरी पत्नी साँवली थी और मेरे मित्रों ने वायदा किया था कि यदि उसकी मृत्यु हो जाय तो वे उसकी दूसरी शादी एक अच्छी सुन्दर लड़की से करा देंगे।

बाँदा की एक घटना है, यहाँ के एक युवक ने अपनी पत्नी की बच्चा न होने के कारण हत्या कर दी। रामसिंह नाम के उक्त युवक का छह वर्ष पूर्व विवाह हुआ था। छह वर्ष से उसे कोई बच्चा नहीं हुआ था और रामसिंह दूसरा विवाह करना चाहता था जिसमें उसकी पत्नी बाधक थी।

पारिवारिक कारणों से नई दिल्ली अलीगंज क्षेत्र के निवासी बाबूलाल ने अपनी पत्नी की हत्या कर दी। कारण यह बताया गया कि कुछ समय से दोनों में मनमुटाव चल रहा था। एक दिन किसी मामले में बाबूलाल इतना उग्र हो उठा कि उसने अपनी पत्नी के हाथ पीछे की ओर बाँध दिये और उसके गले में फन्दा डालकर चारपाई से कस दिया तथा मकान में ताला लगाकर भाग गया।

नई दिल्ली में ही पिछले दिनों चौकपाड़ा टोंटी पर स्कूटर स्टैण्ड के पास एक व्यक्ति ने क्रोध में आकर अपनी पत्नी का खून कर दिया। हत्या का कारण भी बड़ा अजीब बताया गया। उसकी शादी ५-६ साल पहले हुई थी, पर किन्हीं कारणों से वह अलग रहती थी। बाजार में उसे खुले मुँह घूमते देखकर पति ने उससे पर्दा करने के लिए कहा। स्त्री ने मना कर दिया तो उसका पति इतना क्रुद्ध हो उठा कि उसके तत्काल बाजार में से एक छुरी खरीदी और पत्नी पर वार कर दिया। जिससे घायल होकर स्त्री ने अस्पताल में दम तोड़ दिया।

ऊपर दी गयी घटनाओं में हत्या के कारण बहुत सामान्य से हैं, पर ये कारण भारतीय पुरुषों के पत्नी के प्रति आम दृष्टिकोण के प्रतीक हैं। उदाहरण के लिए स्त्री को वासना पूर्ति का साधन समझा जाता है, बच्चा पैदा करने का यन्त्र माना जाता है और यदि इन कसौटियों पर वह खरी नहीं उतरती तो उसे बेकार बाँझ पशु की तरह व्यर्थ समझा जाता है। विवाह के समय शायद ही किसी युवक के मन में सुयोग्य साथी पाने का उल्लास रहता है। शादी के लिए लड़की देखते समय उसके गुण, योग्यताओं पर नहीं उसके रूप और माता-पिता की आर्थिक स्थिति को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है कि वह अपने साथ कितना दहेज लेकर आती है। जिस प्रकार बाजार में पशु खरीदते समय उसमें मिलने वाले लाभ को अधिक महत्त्व दिया जाता है, उसी प्रकार लड़की को पसन्द करते समय युवक उसमें रूप-यौवन का आकर्षण खोजता है तो माँ-बाप उससे मिलने वाले दहेज को महत्त्व देते हैं।

सन्तान न होने पर भारतीय परिवारों में आमतौर से उपेक्षा, तिरस्कार और अपमान सहना पड़ता है। यदि परिवार सम्पन्न हुआ तो पुरुष की दूसरी शादी के लिए विचार किया जाने लगता है, अन्यथा घर में क्लेश का वातावरण तो बनता ही है। लगता है कि यहाँ आकर परिवार के अगुआ पुरुष पालतू जानवर और स्त्री में कोई अन्तर नहीं करते। पालतू जानवर यदि बाँझ हो तो उसे बेकार समझकर बचा-खुचा चारा-दाना दिया जाता रहता है। स्त्री के लिए तो उससे भी बुरी स्थिति बनती है–क्योंकि वह मानवीय हृदय भी रखती है, जिसमें सम्वेदनाएँ जीवित रहती हैं और उस सम्वेदनशील हृदय से वह पाशविक व्यवहार को सहती है।

तमाम प्रतिबन्ध, मर्यादाएँ, नियम और व्रत इस तरह स्त्रियों पर लादे जाते हैं या उन पर लागू किये जाते हैं, जैसे उनके पास कोई मानवी व्यक्तित्व नहीं हो, वे सम्पत्ति का अंग हो। परिवार और समाज के लिए उसकी क्षमताओं का भली-भाँति उपयोग तभी सम्भव है, जबकि उसे सहधर्मिणी, जीवनसंगिनी के रूप में प्रतिष्ठित किया जाय। इससे पूर्व उन मान्यताओं को बदलना आवश्यक है जिनके कारण उसके गौरव को नष्ट करने वाली परिस्थितियाँ बनती हैं।

मानवी की यह दारुण दुर्दशा

प्रसिद्ध दार्शनिक और विचारक लेखक बर्ट्रेण्ड रसेल से एक बार किसी ने पूछा– ''किसी भी समाज की उन्नति व अवनति के लिए क्या कसौटियाँ हो सकती हैं। आप किसी समाज को सभ्य या असभ्य किस आधार पर बतायेंगे।'' इसके उत्तर में रसेल ने कहा था कि, ''मुझे

केवल एक बात की जानकारी भर प्राप्त करनी होगी कि उस समाज में महिलाओं की क्या स्थिति है जिस समाज में महिलाओं की जैसी स्थिति होगी। उसे इसी आधार पर सभ्य अथवा असभ्य कहा जाना चाहिए ।

रसेल के इस उत्तर में काफी वजन है और यह कसौटी किसी भी समाज के उन्नत, सभ्य होने अथवा न होने का विश्लेषण करने में खरी सिद्ध होती है । कोई भी समाज पुरुष व स्त्रियों से मिलकर बनता है । परन्तु नारी जननी है, इसलिए दोनों में प्रथम कौन ? प्रश्न उठे तो उत्तर नारी के पक्ष में ही जाएगा । नारी माता है- वह न केवल बच्चों को जन्म देती है वरन् उनका निर्माण भी करती है । बच्चे का व्यक्तित्व, उसकी क्षमताएँ, योग्यताएँ और विशेषताएँ माँ की छत्रछाया में अंकुरित, प्रस्फुटित और पल्लवित होती हैं । यह सर्वविदित है । जितना सत्य यह है कि नारी माँ है- उतना ही सत्य यह भी है कि वह निर्माता भी है और उसकी छत्रछाया में उससे श्रेष्ठ व्यक्तित्वों का निर्माण नहीं हो सकता ।

इस दृष्टि से समाज में नारी को समुचित प्रतिष्ठा और सम्मान दिया जाना चाहिए । वह न केवल पुरुष से श्रेष्ठ है, वरन् पुरुष के लिए वन्दनीय भी है, परन्तु अपने समाज में स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है । सम्पूर्ण समाज की स्रष्टा, नियन्ता होते हुए भी उसका स्थान दूसरे स्तर का जैसा है । पालतू जानवर की तरह कोई लाभ होने तक भले ही उसे अपने पास रखा जाये परन्तु जिसे निरुपयोगी होने पर कसाई के हाथों बेचने या मार डालने तक में भी संकोच नहीं किया जाता ।

समाचारपत्रों में आये दिन छपने वाले ऐसे समाचारों पर एक निगाह दौड़ाई जाय जिनमें छोटे-छोटे कारणों को लेकर नारी का उत्पीड़न किया गया तो पता चलेगा कि उसकी हमारे समाज में क्या स्थिति है । स्थिति का अच्छा या बुरा होना तो दूर रहा उसे हर घड़ी सन्देह तथा अविश्वास की दृष्टि से देखा जाता है, । वातावरण और संसर्ग दोष से कितने ही व्यक्ति पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं । यह भी एक तथ्य है कि नारी की अपेक्षा पुरुष ही अधिक पथ- भ्रष्ट होते हैं और दाम्पत्य जीवन की एकनिष्ठ मर्यादा को तोड़कर उच्छृंखल स्वतन्त्र आचरण करते हैं । पुरुषों में जितनी कामुकता और लम्पटता देखने को मिलती है उसका तो एक अंश भी नारी में शायद ही कहीं देखने को मिले। फिर भी नारी को सदैव शंका और अविश्वास की दृष्टि से देखा जाता है ।

पर्दा प्रथा, घर तक ही सीमित रहने के प्रतिबन्ध और लोक-लाज की तथाकथित मर्यादाएँ नारी के लिए ही बनीं। इसका एक कारण यह भी है कि उस पर अविश्वास किया जाता रहा । बेचारी नारी ने इन प्रतिबन्धों को मर्यादा मानकर सहज रूप से स्वीकार भी कर लिया, फिर भी उस पर सन्देह रखना बन्द नहीं किया गया । आये दिनों समाचार-पत्रों में ऐसी घटनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं, जिनमें आनुमानिक सन्देह के कारण ही किसी को घर से बाहर निकाल दिया गया अथवा उसका बुरी तरह उत्पीड़न किया गया । यहाँ तक कि उसे जान तक से मार डालने के समाचार भी प्रकाश में आते रहते हैं ।

अभी कुछ महीनों पूर्व नवभारत टाइम्स में छपे एक समाचार के अनुसार अपनी पत्नी के चाल-चलन पर सन्देह करने के कारण सीलमपुर (नई दिल्ली) रघुवीर नामक युवक ने उसे विष देकर मार डाला । रघुवीर ने अपनी पत्नी सन्तोष को दरियागंज ले जाकर वहाँ विष पान कराया । विष उसे धोखे से खिलाया गया था और जब सन्तोष के प्राण-पखेरू उड़ गये तो उसके शव को स्कूटर पर लाद कर रघुवीर निजामुद्दीन इलाके के रिंगरोड पर लाया और सड़क के किनारे मिट्टी में दबा दिया । पत्नी की हत्या और उसका शव दबा देने के बाद उसकी आत्मा कचोटने लगी और वह विक्षिप्त-सा होकर निरुद्देश्य ही सड़क पर घूमने लगा । पुलिस के एक सिपाही को शक हुआ तो उसने टोका । इस पर रघुवीर हड़बड़ा उठा । पुलिस सिपाही को सन्देह हुआ तो उसने जोर देकर पूछा अन्ततः रघुवीर ने अपना अपराध उगल दिया और कहा कि उसे सन्तोष के चाल-चलन पर सन्देह था ।

चरित्र पर सन्देह को लेकर पत्नी का उत्पीड़न करने, उसे यातनाएँ देने की घटनाएँ तो इतनी हैं कि लगता है पुरुष चारित्रिक सन्देह का तो केवल बहाना भर बनाते हैं अन्यथा स्त्री को प्रताड़ित करना, उसे यातनाएँ देना, कष्ट पहुँचाना जैसे उसके स्वभाव के ही अंग हैं, अन्यथा परिवारों में छोटी-छोटी बातों को लेकर कलहपूर्ण वातावरण नहीं बना रहता ।

बाहर से कोई अपने पारिवारिक जीवन में कितना ही सुखी-सन्तुष्ट क्यों न दिखाई दे, परन्तु औसत परिवारों में जिस प्रकार का वातावरण रहता है, उससे असन्तोष ही झलकता है । यदि ऐसे न रहा होता तो परिवारों में स्वर्ग का-सा वातावरण सुख-सन्तोष छाया रहता । पारिवारिक वातावरण में क्लेश-कलह का विष घोलने के लिए भी अधिकांशतः पुरुष ही जिम्मेदार हैं । सब्जी में नमक कम है, दाल कच्ची रह गयी है, कुर्ते के बटन टूटे हुए हैं, बच्चे धूलमिट्टी में खेल रहे हैं, जैसी छोटी-छोटी बातों को लेकर पति अपनी पत्नी पर जिस तरह बरस पड़ता है, उससे लगता है कि पत्नी- पुरुष की जीवनसंगिनी-अभिन्न सहचरी नहीं उसकी खरीदी हुई दासी और गुलाम है ।

कई बार तो स्थिति ऐसी बन जाती है कि स्वभाव से सम्वेदनशील महिलाएँ उन्हें सहन नहीं कर पातीं और अन्दर ही अन्दर टूट जाती हैं । परिवार के सभी सदस्यों को सन्तुष्ट रखने का गम्भीर दायित्व और फिर ऊपर से ताने उलाहने भरा पति का व्यवहार उसके व्यक्तित्व को ही खोखला कर देता है । इन सब बोझों से लदी असामान्य रूप से थकी हुई चिड़चिड़ी, उदास और निराश स्त्रियों की एक बड़ी संख्या है । इन असह्य परिस्थितियों में कई बार तो स्त्रियाँ आत्म-हत्या तक कर लेती हैं ।

थाना बारहदरी (बरेली) के हजियापुर क्षेत्र के श्री नत्थूलाल की पत्नी श्रीमती जमुना ने रात के समय जबकि घर के सब लोग सो रहे थे तब अपने शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़क लिया और कपड़ों में आग लगाकर आत्म-हत्या करली । जमुना ने आत्म-हत्या क्यों की, इसका तो कुछ पता नहीं चल सका है पर यह बताया जाता है कि कुछ दिनों से पति-पत्नी में काफी झगड़ा होता रहता था और पति उसके साथ मारपीट भी कर बैठता था ।

गृह-कलह और मन-मुटाव के कारण भी स्त्रियों की हत्या कर दी जाती है । कुछ समय पूर्व मथुरा के जिला एवं सत्र न्यायाधीश श्री विक्रम सिंह ने मोहल्ला कठौती कुँआ के कारे नामक व्यक्ति को उसकी पत्नी रामश्री की हत्या के आरोप में आजन्म कठिन कारावास के दण्ड का आदेश दिया था । अभियोग के अनुसार कारे ने २२-२३ अक्टूबर सन् ७२ की रात को लगभग सवा बारह बजे अपनी पत्नी को एक कोठरी में बन्द कर ईंटों से मार-मार कर हत्या कर दी थी । यह बेचारी चीखती रही और तड़पती रही । लोगों ने दरवाजा खुलवा कर रामश्री को बचाने के भरसक प्रयास किये किन्तु कारे ने रामश्री को प्राणहत कर ही दम लिया, फिर भी उसने दरवाजा नहीं खोला । अन्ततः कोतवाली पुलिस ने कोठरी के जंगले तोड़कर कारे को रंगे हाथों गिरफ्तार कर लिया ।

छोटी-छोटी बातों को लेकर नारी पर कितने नृशंस अत्याचार किये जा सकते हैं, इसकी छोटी-सी झाँकी ऊपर की पंक्तियों में दिखाई देती है । किसी विचारक ने भारत में नारियों की स्थिति का विश्लेषण करते हुए बड़े ही मार्मिक स्वरों में पूछा था, ''क्या कारण है कि रसोईघर में होने वाली दुर्घटनाएँ हो, अथवा घर से बाहर होने वाली हत्या या आत्म-हत्याओं में स्त्रियाँ ही इनका शिकार क्यों होती हैं ?''

उत्तर एक ही है कि नारियों पर जरा-जरा सी बातों के लिए झूठे और नृशंस जुल्म ढाये जाते हैं, उन्हें सताया जाता है । अपने देश में प्रचलित विवाह परम्पराओं को ही लें । किसी ने ठीक ही कहा है कि भारत में लड़कियों के साथ नहीं, लड़कियों के माता-पिता से मिलने वाले उपहार, दहेज से ही विवाह किया जाता है । भारतीय पुरुष अपनी जीवनसंगिनी से भी अधिक उसके द्वारा लाये जाने वाले उपहारों को अधिक महत्त्व देते हैं । तभी तो अधिक दहेज न मिलने के कारण, कम दहेज लाने के कारण भारतीय गृहिणियों को बुरी तरह सताया जाता है । कुछ दिनों पूर्व की ही घटना है जब मुजफ्फरनगर की एक विवाहिता लड़की की दिल्ली में सन्देहास्पद स्थिति में मृत्यु हुई । इस लड़की का विवाह एक वर्ष पूर्व दिल्ली के ही एक इन्जीनियरिंग कॉलेज के प्राध्यापक से हुआ था ।

अपनी बेटी की आकस्मिक मृत्यु की सूचना पाकर लड़की के पिता ने पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करायी और यह आरोप लगाया कि उसकी धेवती का जन्म होने के पश्चात् ससुराल वालों ने लड़की पर इस कारण अत्याचार किया कि उसके पिता ने कन्या का जन्म होने पर अधिक सामान क्यों नहीं भेजा था। लड़की के पिता ने यह भी आरोप लगाया कि उसकी लड़की को इस कारण काफी सताया गया और उसके कपड़ों पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा दी गयी तथा उसे जल जाने के बाद अस्पताल भेजा गया, जहाँ तड़प-तड़प कर उसने दम तोड़ दिया । लड़की के पिता को इसकी कोई सूचना नहीं दी गयी ।

अपनी पुत्री की इस प्रकार हुई मृत्यु से दुःखी पिता ने यह भी आरोप लगाया कि उसका दामाद सौ पचास रुपयों के लिए भी उसे सताता रहता था जबकि उसकी लड़की एम. ए. पास थी और बहुत सुन्दर तथा सुशील थी तथा उसने अपनी बेटी के विवाह में लगभग ३५ हजार रुपया खर्च किया था । कहा जाता है कि इस लड़की के पति ने कई बार उसे मार डालने की भी धमकी दी थी । इस आशय के पत्र पुलिस उप-अधीक्षक को दिखलाये गये हैं । उक्त प्राध्यापक के बड़े भाई के बारे में भी ऐसा ही समाचार मिला है कि उसने भी अपनी पहली पत्नी को छोड़ कर जिसके दो बच्चे हो गये थे, दूसरा विवाह कर लिया है। कहा जाता है कि यह प्राध्यापक भी पुनः विवाह कर ४०-५० हजार रुपये प्राप्त करने का इच्छुक था।

कितनी शोचनीय स्थिति है कि दहेज में कम रकम लाने के कारण पत्नी को अपने जीवन से ही हाथ धोना पड़ा । यही नहीं, निम्नलिखित समाचार यह तथ्य भी उद्घाटित करता है कि भारतीय पति अपनी धर्मपत्नी को कितना महत्त्व देते हैं । बम्बई के एक साप्ताहिक में छपा था कि फरवरी ७६ में जबलपुर के जवाहरलाल साहू के साथ ब्याही गयी शिवकुमारी भी मिट्टी का तेल छिड़क कर जला दी गयी । इसे पुलिस ने आत्मदाह का मामला बताया परन्तु पत्रकारों और परिवार के निकट रहने वाले पड़ोसियो ने इसे आत्महत्या का नहीं, हत्या का मामला बताया । कहा जाता है कि मृतका शिवकुमारी और उसके पति जवाहर लाल साहू के बीच जेवरों को लेकर झगड़ा हुआ। शिवकुमारी जानती थी कि उसका पति कुसंगति में पड़कर कई दुर्व्यसनों और दुष्प्रवृत्तियों का गुलाम बन चुका है क्योंकि उसने वे सभी जेवर जो शिवकुमारी के पिता ने शादी के समय दिये थे पन्द्रह दिनों के भीतर ही बेच डाले थे । शिवकुमारी अपने पति के स्वभाव से परिचित थी इसलिए उसने अबकी बार जेवर देने से इन्कार कर दिया। इसी से क्रुद्ध होकर जवाहर साहू ने शिवकुमारी के शरीर पर मिट्टी का तेल उँडेलकर आग लगा दी, बताते हैं ।

यह घटना इस बात की साक्षी है कि अहंवादी पुरुष अपनी उच्छृंखल प्रवृत्तियों और बुरी आदतों में पत्नी का जरा भी दखल देना पसन्द नहीं करता । दखल देना तो दूर रहा उसके द्वारा सहयोग न दिये जाने पर भी उसे मारता-पीटता तथा प्रताड़ित करता है । ये सब भारत में नारी जीवन का कारुणिक चित्र खींचती

इन्हें सामने रखकर किस आधार पर कहा जा सकता है कि सभ्य हैं, हम एक महान संस्कृति के अनुयायी हैं और हम नये विश्व का नेतृत्व करने में समर्थ हैं।

नारी क्या इसी प्रकार सतायी जाती रहेगी?

हमारा सामाजिक जीवन दाम्पत्य जीवन से आरम्भ होता है। पति-पत्नी के बीच जितना प्रेम-सौजन्य, आत्मभाव, आत्म-समर्पण एवं वफादारी के भाव रहेंगे उतना ही गृहस्थ जीवन आनन्दमय होगा और उसी अनुपात से श्री, समृद्धि एवं सुख-शान्ति बढ़ेगी। धर्म की आरम्भिक शिक्षाओं में नारी को पूज्य, पवित्र, श्रेष्ठ एवं सम्मानास्पद माना गया है और कहा गया है कि जहाँ नारी की पूजा होगी वहाँ लक्ष्मी का निवास होगा। सभी दृष्टियों से विचार करने पर नारी को प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखना पुरुष का परम पवित्र कर्तव्य माना गया है। नारी को गो के समान अवध्य माना गया है। उस पर हाथ उठाने वाले को कापुरुष एवं नारकीय कीट बताया गया है। कोई भूल भी उससे होती हो तो उसे उदारतापूर्वक क्षमा करने एवं प्रेम के साथ सुधारने की ही भारतीय परम्परा रही है। बड़ी आयु की हो जाने पर भी नारी को भोली कन्या, ममतामयी माता एवं स्नेहसिक्त भगिनी के रूप में ही देखना उचित माना गया है। धर्मपत्नी के रूप में तो वह साक्षात् लक्ष्मी का रूप धारण करके ही घर में विराजती है।

खेद है कि आज उसका दर्जा पशुओं सरीखा हो रहा है। जरा-जरा-सी बात पर लोग उसे सताते एवं तिरस्कृत करते हैं। इतना ही नहीं, कितने ही नर-पिशाच तो उसका रक्तपान करके ही अपनी दानवी दुष्टता को शान्त करते हैं। विवाहिता वधुओं का सुसराल के लिए आत्म-त्याग करना एक अलौकिक कार्य है। इसका बदला चुकाने के लिए सुसराल वाले उसके प्रति जितनी भी कृतज्ञता प्रकट करें, जितना भी सम्मान एवं स्नेह करें उतना ही कम है। पर आज वह सौजन्य जहाँ-तहाँ ही देखने को मिलता है। बहू के आत्म-समर्पण, सेवा, उदारता एवं कोमल भावनाओं का पहाड़ न देखकर लोग उसकी छोटी-मोटी भूलों को ही बढ़ा-चढ़ाकर देखने लगते हैं और उसे तुच्छ पशु से भी अधिक तिरस्कृत करने में ही नहीं, कई बार उसका खून पीने तक में नहीं हिचकते। ऐसी नृशंसता भरे समाचार आये दिन अखबारों में छपते रहते हैं।

अहंकार और अत्याचार

विजय राघवगढ़ थाने के परसवारा गाँव का समाचार है कि वहाँ एक व्यक्ति अपनी पत्नी को लेने ससुराल में आया और तुरन्त साथ चलने को कहा। पत्नी ने अपने पिता-माता के लौट जाने तक रुकने के लिए कहा क्योंकि वे दोनों बाहर गये हुए थे। पत्नी की यह सलाह पति को सहन न हुई। इतनी सी बात पर उसने पत्नी की कुदाली से हत्या कर दी। जबलपुर के गंगा सागर मुहल्ले के रमेश नामक व्यक्ति की उसे घर से बाहर बुलाकर छुरे से हत्या कर दी गयी। कहा जाता है कि मृतक ने कुछ दिन पूर्व एक परित्यक्ता स्त्री कलावती से विवाह किया था। परित्यक्ता का पूर्वपति इसे सहन न कर सका और उसने इस नये पति को ही मार डाला। दिल्ली झण्डेवालान मुहल्ले के ओमप्रकाश को प्रेमवती नामक लड़की को मार डालने के अपराध में आजीवन कारावास की सजा दी है। अभियुक्त लड़की से विवाह करना चाहता था, पर उसका पिता रजामंद न था। पिता का क्रोध उसने लड़की पर निकाला और उसी का कत्ल कर दिया।

लुधियाना के पास बरेवाल गाँव का सुखासिंह अपनी पत्नी की हत्या के अपराध में पकड़ा गया है। बताया जाता है कि उसकी पत्नी खाना लेकर देर में खेत पहुँची। इस पर अभियुक्त आग-बबूला हो गया और उसने अपनी पत्नी को भाले से मार डाला। मेरठ के जज ने परमात्मा शरण नामक व्यक्ति को फाँसी की सजा सुनायी। अभियुक्त अपनी विवाहिता पत्नी से पिण्ड छुड़ाकर एक ईसाई नर्स से विवाह करना चाहता था। उसने सोती हुई पत्नी पर तेल छिड़क कर आग लगा दी। इलाहाबाद जिले के भरवारी गाँव में रात को पति-पत्नी में कहा-सुनी हो जाने पर पति ने पत्नी की नाक और वक्षस्थल काट लिए। फगवाड़ा की २५ वर्षीय युवती कैलाश रानी ने अपने मृत्यु बयान में मजिस्ट्रेट के सामने देते हुए कहा, मेरी सास ने मेरे शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दी और द्वार बन्द कर दिया। बचने का और कोई उपाय न देखकर मैंने पिछवाड़े के मकान के पीछे छलाँग लगायी। अस्पताल में पाँच घंटे उपचार के बाद भी युवती बच न सकी। जलाने का कारण इतना भर बताया जाता है कि वह अपने पति से सास और देवर की शिकायत किया करती थी।

क्रूरता और विश्वासघात

दिल्ली की सदर बाजार पुलिस ने गली बरना के कँवर पाल नामक दर्जी को अपनी २१ वर्षीय पत्नी शकुन्तला की हत्या के अपराध में खून भरी कैंची के साथ गिरफ्तार किया है। बताया जाता है कि शादी को दस वर्ष बीत जाने पर भी उसके कोई बच्चा नहीं हुआ था। इसी बात पर कँवरपाल उससे चिढ़ा रहता था। उस दिन उसने कैंची से उसका गला ही काट डाला। इटावा का समाचार है कि कानपुर से एक युवक के साथ भाग कर आई हुई युवती ने यमुना में कूदकर आत्म-हत्या करने का असफल प्रयत्न किया। उसका कथित प्रेमी उसे छोड़कर भाग गया था, जिस पर ग्लानि और दुःख के कारण घर वापस न लौटकर उसने आत्म-हत्या का प्रयास किया, परन्तु घाट पर खड़े लोगों ने उसे बचा लिया। आगरा जिले के अएला

गाँव में एक व्यक्ति ने साधारण-सी तकरार पर क्रुद्ध होकर तलवार से अपनी गर्भवती पत्नी को काट डाला। पटियाला जिले के नियामतपुर गाँव मे खंडोबाई नामक महिला की हत्या के सिलसिले में उसका सिनेमा शौकीन पति सिनेमा के लिए पैसे न देने पर दिन में उसने पत्नी को मारा तब तो उसके पिता ने बीच-बचाव कर दिया पर रात को उसने सोती हुई स्त्री पर कुल्हाड़ी से वार करके उसे काट ही डाला।

बन्धन और उत्पीड़न की अति

गोरखपुर के दौरा जज ने अलगू, प्यारे और सौतेली माँ तिलका को क्रमश: ६-६ व ४ साल की सजा सुना दी। अभियुक्तों ने अलगू की पत्नी दुखिनी को किसी छोटी-सी बात पर नाराज होकर नंगी करके खाट पर पन्द्रह दिनों तक जंजीरों से बाँधे रखा, भूखा रखा और गुप्तांग, कपोल, ललाट और नितम्बों को खुरपी गर्म करके जलाने का भी अभियोग था। बताया जाता है कि छपरा में एक स्त्री बिना आज्ञा लिए अपनी बहन के यहाँ चली गयी इस पर उसके पति और सास ने उसको बाँधकर, लोहे की गर्म सलाखों, हसियों से उसके स्तनों, दोनों गाल, कानों को दाग दिया। जब भी वह दर्द से चिल्लाती तो पति लाठियों से प्रहार करता। विदित हुआ है कि हिसार जिले के चाम्बल गाँव में एक लड़की का एक युवक से प्रेम था। विवाह की सम्भावना न देखकर दोनों प्रेमी घर से निकल भागे। लड़की के भाई ने दोनों का पीछा किया और गाँव से कुछ ही दूर उन्हें घेर कर दोनों का कत्ल कर दिया। पुलिस ने हत्यारे को गिरफ्तार कर लिया। दिल्ली के रामलाल नामक व्यक्ति को अपनी पन्द्रह वर्षीय बहिन की हत्या करने के अपराध में पकड़ा गया है। कहते हैं कि लड़की अपने इच्छित युवक से शादी करना चाहती थी पर भाई को यह बात मंजूर न थी। क्रुद्ध भाई ने अपनी बहिन को ही मार डाला। खुरजा के निकट महासू गाँव का समाचार है कि एक कुम्हार युवती लड़की किसी पड़ोसी के युवक से प्रेम करने लगी। वह गर्भवती हो गई तो अपने प्रेमी के साथ गाँव छोड़कर अन्यत्र जाने लगी। घर वाले उसे पकड़ लाये और रात को उसके माँ-बाप ने ही उसका कत्ल कर दिया और खुद कुएँ में कूद पड़े। कुम्हारिन तो मर गयी पर कुम्हार जीवित बच गया।

दहेज की बलिवेदी पर

कन्या जैसे अमूल्य रत्न को प्राप्त करने में जहाँ सुसराल वालों को अपना सौभाग्य मानना चाहिए वहाँ वे उलटे यह मानते हैं कि हमने किसी की बेटी को अपने घर में लेकर उसके साथ बड़ा उपकार किया है। इस उपकार के बदले में वे आये दिन बेटी वालों पर अपनी ऐंठ दिखाते रहते हैं और दहेज के रूप में बढ़ी-चढ़ी रिश्वत माँगते हैं। माँगते ही नहीं, न मिलने पर अपने घर में आई हुयी उस निरपराध बालिका को तरह-तरह से सताते हैं और कई बार तो उसकी जान के ग्राहक ही बन जाते हैं। कोटला मुबारकपुर निवासी बेनीप्रसाद और उसकी माता उमरावती को दिल्ली सैशन जज ने आजन्म कारावास की सजा दी है। इस्तगासे के अनुसार नव-विवाहिता बहू कमला पर उसकी सास उमरावती ने मिट्टी का तेल छिड़का और पति बेनीप्रसाद ने आग लगा दी। अभियुक्त लड़की के पिता से रुपया ऐंठना चाहते थे वह न दे सका तो लड़की को ही इस प्रकार जला डाला। इटावा के कंचौसी गाँव के एक सेठ के पुत्र ने अपनी पत्नी को घर में बन्द करके निर्दयतापूर्वक पीटते-पीटते कई हड्डियाँ तोड़ दीं। कहा जाता है कि उस स्त्री का पति व श्वसुर इस बात पर सदा जोर देते रहते थे कि वह अपनी धनी माता के पास से लाकर उन्हें धन दे। उसने लाकर दिया भी। पर जब माँ के पास कुछ न रहा तो उसे उस प्रकार सताया जाने लगा। कानपुर का हरीराम नामक व्यक्ति अपनी पत्नी के ऊपर तेल डालकर आग लगा, उसकी हत्या कर देने के अपराध में सैशन सुपुर्द किया गया है। कहा जाता है कि अपराधी ने अपनी नव-विवाहिता पत्नी से कहा कि वह अपने पिता से कहे कि शादी के समय जो मकान उन्होंने मुझे देने को कहा था, वह मुझे दें। पत्नी के मुँह से जैसे ही यह निकला कि मैं क्यों कहूँ, आप ही कहिए, बस अभियुक्त का पारा गरम हो गया उसने कमरे में बन्द करके लड़की को आग लगा दी।

लड़कियाँ धन भी साथ लायें?

पटियाला में एक नव-विवाहिता लड़की मायादेवी की हत्या का समाचार पाकर पुलिस ने चिता पर से उसका शव अपने काबू में कर लिया। कहा जाता है कि लड़की की हत्या सुसराल में इसलिए कर दी गई कि करवाचौथ के बाद वह अपने माता-पिता के यहाँ से जो सामान लायी थी वह परिवार की आशा के अनुकूल न था। चिड़ावा गाँव में सास, सुसर के द्वारा एक बहू को इसलिए जीवित जलाकर मार डालने का समाचार है कि वे बहू को अशुभ घड़ी में आई मानते थे और समझते थे कि जब तक यह रहेगी, कोई न कोई दुःखी ही बना रहेगा। रसूलपुर (गाजियाबाद) के निवासी ओमप्रकाश को अपनी पुत्रबधू को जंगल के एक कुएँ में ढकेल कर मारने का प्रयत्न करने के अभियोग में ५ वर्ष की सख्त कैद का दण्ड दिया गया है। कारण यह बतलाया गया कि पुत्र-वधू के विवाह में दहेज कम दिया गया जिससे ओमप्रकाश असन्तुष्ट था। बारनौल में एक चक्की वाले की पुत्रवधू कपड़ों में आग लगने से जल मरी। कहा जाता है कि विवाह में दहेज कम मिलने के कारण वह व्यक्ति और उसका पुत्र, बधू को बहुत कष्ट देते रहते थे। आग लगने पर भी सब लोग उसे देखते रहे पर किसी ने

उसे बचाने की कोशिश न की । वह जल जाने पर एक मास तक अस्पताल में रहकर मर गई ।

बेचारी कुसुमकुमारियाँ

कानपुर में कुसुम कुमारी नामक एक अग्रवाल लड़की की मृत्यु संदिग्ध अवस्था में हुई । पुलिस ने सुसराल वालों पर हत्या का मुकदमा चलाया । कहा जाता है कि विवाह के बाद वर-पक्ष वालों ने कन्या पक्ष वालों से ६ हजार रुपये की माँग की थी, जिसे वे न दे सके । इस पर अभियुक्तों ने लड़की को मारने, पीटने, भोजन न देने की यंत्रणाएँ देनी आरम्भ कर दीं । अन्ततः उसकी मृत्यु हो गई । समाचार है कि गाजियाबाद में तिवारी परिवार की नव-विवाहिता लड़की की संदिग्ध मृत्यु की जाँच पुलिस बड़ी मुस्तैदी से कर रही है । कहते हैं कि लड़की अपनी सुसराल वालों के दबाव के कारण अपने भाई और माँ से छह सौ रुपये माँगने गयी थी। उसने अपनी माँ से कहा था कि- "आज मैं अपने प्राणों की भीख माँगने आयी हूँ, मुझे किसी भी प्रकार छह सौ रुपये दे दो ।" रुपये का प्रबन्ध न हो सकने पर वह निराश लौट गयी, दूसरे ही दिन दोपहर तक उसकी मृत्यु का समाचार आ गया । मुहल्लेवालों का कहना है कि अर्थी भी बन्द कमरे में बनायी गयी थी और चुपचाप उसे चार-पाँच घर के व्यक्ति ही जला आये ।

यदि दहेज न दे सकें तो

दहेज न दे सकने के कारण कितने ही पिता-माता अपनी कन्याओं का विवाह नहीं कर पाते । ऐसे लोग कई बार अधीर होकर अपनी आत्म-हत्या तक कर बैठते हैं । कई को अपनी कन्याएँ कुपात्रों के हाथ सौंपने पर उनका जीवन दुःखमय बनाने के लिए विवश होना पड़ता है । इटावा जिले के जगदम्बा प्रसाद नामक व्यक्ति ने अपनी पत्नी की हत्या करके दो पुत्रियों को कुएँ में पटक दिया और स्वयं रेल के नीचे कट गया । बताया जाता है कि मृत व्यक्ति की दोनों पुत्रियाँ युवा हो गई थीं, उसकी आर्थिक स्थिति शोचनीय थी, दहेज का कोई प्रबन्ध न हो सका तो निराश होकर यह दर्दनाक काण्ड कर बैठा । प्रयाग के अहिल्यापुर मुहल्ले में हनुमान प्रसाद नामक ३६ वर्षीय व्यक्ति ने अपने घर की धन्नी में रस्सी बाँधकर फाँसी लगा ली । कहा जाता है कि अपनी दो पुत्रियों के विवाह की विफलता से निराश होकर उसने ऐसा किया । मृतक बहुत गरीब था, एक पण्डा की नौकरी करता था । पुत्रियों के विवाह के लिए सब जगह दहेज की माँग की जाती थी जिसकी सामर्थ्य उसमें नहीं थी । इसी प्रकार सीतापुर के एक ४० वर्षीय दुकानदार ने रेल के नीचे कटकर अपने जीवन का अन्त कर लिया । उसकी लड़की युवा हो गयी थीं पर बेचारा दहेज का प्रबन्ध न कर सका ।

कुछ समय पूर्व कलकत्ता की स्नेहलता नामक एक लड़की ने स्वयं आत्म-हत्या की थी । उसके पास जो पत्र प्राप्त हुआ था, उसमें उसने लिखा था कि मेरे माता-पिता दहेज न जुटा सकने के कारण निरन्तर चिन्ता ग्रस्त रहते हैं। उनका दुःख मुझसे देखा नहीं जाता । जिस समाज में कन्याओं का यह मूल्य है कि उसे बिना दहेज लिए कोई स्वीकार नहीं कर सकता । ऐसे पतित लोगों के बीच जीवित रहने की भी मेरी इच्छा नहीं है, इसलिए मैं स्वेच्छा से आत्मघात करती हूँ ।

एक दूसरा रास्ता

कलकत्ता से १२ मील दूर शेवड़ा फुली नामक स्थान में एक व्यक्ति अपनी कन्या का विवाह ४५ वर्ष के व्यक्ति के साथ करने जा रहा था। नवयुवकों ने उसे रोका और समान आयु का, सुधरे विचार का लड़का ढूँढ़ देने का आश्वासन दिया। लड़की के पिता का कथन है कि वह दहेज देने की असमर्थता के कारण ही ऐसा अनमेल विवाह करने को मजबूर हो रहा था। जावरा क्षेत्र के ग्राम पीपलिया में एक लड़की का विवाह ६५ वर्ष के बूढ़े के साथ हुआ है। कन्या का बाप मजबूरी के साथ-साथ लालच का भी शिकार हो गया ।

नारी के प्रति हमारा जो अनुदार, संकीर्ण, अहंकार भरा दृष्टिकोण है उसे जितना तुच्छ, हीन और उत्पीड़न के योग्य हम समझते हैं उसमें कितनी मानवता है? यह प्रश्न हमारे मन को यदि झकझोरता नहीं है तो यही मानना होगा कि हमारी अन्तरात्मा मर गई और हम मनुष्यता के साथ रहने वली आवश्यक भलमनसाहत को छोड़ बैठे । नारी ने नर के आगे आत्म-त्याग का जो अनुपम आदर्श रखा है उसका यह अर्थ नहीं होना चाहिए कि उसका मूल्य कुछ भी न समझा जाय, उसे मनमाने ढंग से सताया जाय और इतना बंधन में बाँधा जाय कि वह हिलडुल ही न सके।

पराधीनताओं के बंधन सब दिशाओं में टूट रहे हैं। नारी की आत्मा भी पूछती है कि उसे मानवोचित सम्मान और स्वातन्त्र्य कब मिलेगा? नागरिक अधिकारों से कब तक उसे वंचित रहना पड़ेगा ? और कब उसे यह अवसर प्राप्त होगा कि पिंजड़े में बन्द पक्षी एवं खूँटे से बँधे पशु से उसे कुछ अधिक समझा जाय ? यह केवल उपभोग की ही मशीन न समझी जाय वरन् उसे उन्नति एवं प्रगति का भी अवसर मिले। इस स्थिति को लाने के लिए हमें अपने सड़े-गले, क्रूर एवं रूढ़िवादी विचार बदलने पड़ेंगे और वह नैतिक दृष्टि अपनानी होगी जिसके आधार पर पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति प्रेम, विश्वास, आदर, त्याग, सेवा, क्षमा, एवं उदारता एवं समानता का व्यवहार करते हुए सच्चे दाम्पत्य जीवन की सुदृढ़ आधारशिला रख सकें।

नारी को विकसित बनाया जाय

मनुष्य जाति दो पहियों से चलने वाली गाड़ी के समान है। यदि दोनों पहियों में समानता हो तो गाड़ी ठीक प्रकार चलती है। इन पहियों में थोड़ा अन्तर हो तो किसी प्रकार काम भी चल सकता है, पर वह अन्तर यदि बहुत ज्यादा हो, एक पहिया बहुत बड़ा और दूसरा बहुत छोटा हो तो गाड़ी ठीक प्रकार न चल सकेगी। किसी प्रकार कुछ घिसट भी सकी तो उसे गाड़ी की सफलता एवं सार्थकता न कहा जाएगा।

स्त्री और पुरुष दोनों के सुविकसित होने से गृहस्थ की गाड़ी ठीक प्रकार चलती है। पर आज नारी की उपेक्षा करके पुरुष की ही सफलता को पर्याप्त मान लिया गया है। नारी के जिम्मे जो काम छोड़े गये हैं वे धन की प्रधानता वाले इस समाज में तुच्छ माने जाते हैं और यह अनुभव किया जाता है कि इनके लिए नारी का सुशिक्षित या सुसंस्कृत होना आवश्यक नहीं है। कामसेवन, सन्तानोत्पादन, शिशुपालन, भोजन बनाना, गृह-व्यवस्था यह मोटे-मोटे चार काम उसके जिम्मे दिखाई पड़ते हैं। पर सबसे बड़ा कार्य किसी की दृष्टि में ही नहीं है कि वह परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के बालक से लेकर वृद्ध तक के, मन को उल्लास एवं आनन्द से भरे रह सकती है और उनके अन्तराल को छूकर मानवता के सभी आवश्यक गुणों को विकसित कर सकती है। नारी की महानता का वास्तविक पहलू यही है।

यदि उपर्युक्त चार कामों पर भी दृष्टिपात किया जाय तो भी वे ऐसे तुच्छ या उपेक्षणीय नहीं हैं कि उनके लिए घटिया मानसिक स्तर की नारी को ही पर्याप्त मान लिया जाय। सन्तानोत्पादन में नारी का दायित्व अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, वह अपने शरीर में से बालक का शरीर और अपने स्वभाव में से बालक का स्वभाव बनाती है। यदि उसका शरीर नीरोग न हो, यदि उसका मस्तिष्क विकसित न हो यदि उसका स्वभाव सुसंस्कृत न हो तो निम्न स्तर की, गिरे स्वास्थ्य वाली, दुर्गुणी, मूर्खा, फूहड़ नारी लगभग उसी स्तर के बालक उत्पन्न करेगी। यों कहने को वह सन्तान उत्पन्न करती रहेगी पर उस प्रजनन से परिवार की न तो शोभा बढ़ेगी, न कीर्ति, न समृद्धि। वरन् पूर्वजों की संचित कीर्ति और सम्पत्ति में पलीता लगाने वाली ही सिद्ध होगी।

कामसेवन जैसे तुच्छ विषय को ही लीजिए। उसकी सार्थकता भी केवल रूप-यौवन पर निर्भर नहीं है वरन् अन्तःकरणों की एकता एवं सच्ची आत्मीयता पर ही निर्भर है और यह दोनों बातें उन्हीं नर-नारियों में सम्भव हैं-जिनकी मनोभूमि का समुचित विकास हुआ अन्यथा केवल वह सब इन्द्रिय विकार का एक भौंडा अभिनय मात्र रहेगा। पशु-पक्षियों में भी कामसेवन होता है उसमें आनन्द केवल इन्द्रिय द्वारों तक ही सीमित रहता है। परस्पर प्रेमभाव बढ़ाने या एक-दूसरे को अन्तः आदान-प्रदान करने से उस क्रिया का उनके लिए कुछ भी महत्त्व नहीं होता। काम सेवन के बाद ही वे दोनों साधारण-सी बात पर लड़ने-कटने को तैयार हो जाते हैं। यदि मनुष्य की मनोभूमि भी वैसी ही निम्न कोटि की हो तो उस कामसेवन प्रक्रिया में उन कुछ क्षणों तक एक पाशविक सुखानुभूति इन्द्रिय द्वारों तक रहेगी। इतने मात्र से मानव अन्तःकरण कदापि सन्तुष्ट नहीं हो सकता। इन्द्रिय विकार की उत्तेजना में आत्मिक तन्मयता एवं एकता की जो अनुभूति है वही कामसेवन की सफलता है। इस सुख की आवश्यकता अनुभव करने और उसके योग्य मनोभूमि बनाने का कार्य विकसित अन्तःकरणों का है- कामी एवं विषयी लोगों का नहीं। इस दृष्टि से भी अविकसित नारी पर्याप्त नहीं। काम-वासना में यदि कुछ आनन्द है तो उसकी अनुभूति विकसित अन्तःकरण वाले नर-नारी ही कर सकते हैं। नारी को अविकसित, असंस्कृत रखकर जो काम-वासना का रसास्वादन करना चाहते हैं, वे गलती पर ही हैं।

शिशु-पालन साधारण कार्य नहीं है। नन्हें से बालक का शरीर अत्यन्त कोमल होता है, उसे ठीक तरह बढ़ने देने के लिए सन्तुलित दिनचर्या, आहार एवं नियमों का पालन आवश्यक है। इसे सुशिक्षित नारी ही समझ सकती है। गर्भावस्था के दिनों से ही शिशु-पालन शुरू हो जाता है। बालक को क्या खिलाना और कैसी मनःस्थिति से रखना इसका समुचित ज्ञान होने के लिए शरीरशास्त्र, आरोग्यशास्त्र, आहारशास्त्र एवं मनोविज्ञान शास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक है, ताकि उसी आधार पर जननी अपने आहार-विहार को व्यवस्थित करके गर्भस्थ बालक का निर्माण और पोषण आरम्भ करे। यह कार्य फूहड़ स्त्रियाँ नहीं कर सकतीं। उन्हें इन विषयों का ज्ञान ही नहीं है तो कैसे जान पावेंगी कि उसकी किन शारीरिक और किन मानसिक क्रियाओं का बालक पर क्या असर पड़ेगा?

जन्म होने के पश्चात् कई वर्ष तक बालक की पूरी-पूरी सावधानी रखनी होती है। इसी सावधानी के आधार पर बालक की शारीरिक और मानसिक प्रगति सम्भव है। इस सम्बन्ध में क्या करना, क्या न करना इसका ज्ञान न हो तो बेचारी जननी क्या करे? उल्टा-सीधा जो उसकी समझ में आता है करती रहती है, फलस्वरूप उनकी अज्ञानता बालक को रोगग्रस्त कर देने या मृत्यु के मुख तक पहुँचा देने का भी कारण होती है। पाश्चात्य देशों के बालक हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर होते हैं, न रोते हैं, न बीमार पड़ते हैं वरन् कमल के फूल की तरह उठते और खिलते चले आते हैं। दूसरी ओर भारतवर्ष है जहाँ बालक जन्म से ही रोगी रहने का अभिशाप लेकर आते हैं। उनका ठीक प्रकार पोषण गर्भावस्था में न हुआ तो नींव वहीं से कमजोर होकर आती है। फिर जन्म के बाद अज्ञानतापूर्ण पालन-पोषण के कारण उन्हें दस्त, नाक बहना, ज्वर

जिगर, तिल्ली, सूखा, अफरा, आँखें दुखना, रोना, चेचक पड़ना आदि न जाने कितने रोग लग जाते हैं। उपचार ज्ञान न होने से स्त्रियाँ भूतपलीत, दई-देवता और भी न जाने क्या-क्या टंट-घंट करती रहती हैं। फलस्वरूप बच्चे मृत्यु के मुख में सरकते रहते हैं। भारत की बाल मृत्यु संख्या संसार में सबसे अधिक है। इसका एकमात्र कारण हमारी नारी की अविद्या ही है। पाश्चात्य देशों में जहाँ नारी सुविकसित है। बच्चों के रोगी रहने की, बाल मृत्यु की समस्या नाम मात्र को दिखाई देती है।

भोजन की उपयोगिता लोग भूख बुझाने और जायका चखने के लिए समझते हैं। इसी दृष्टि से भोजन की किस्में चुनी और पसन्द की जाती हैं। पर वस्तुतः भोजन मनुष्य के जीवन-मरण का प्रश्न है। उसका रक्त, माँस, वीर्य, मस्तिष्क, आरोग्य, आयुष्य सभी कुछ भोजन पर निर्भर है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य को हाथ में लेने वाले व्यक्ति को आहार विज्ञान की विस्तृत जानकारी होनी चाहिए, ताकि वह केवल उपयोगी पदार्थों का आरोग्य की दृष्टि से ही चुनाव करे और स्वाद लगने वाली, किन्तु हानिकारक वस्तुओं का रसोई में से बहिष्कार कर सके। इस ज्ञान के अभाव में अंट-संट चीजें केवल स्वाद की दृष्टि से हमारी रसोई में स्थान पाती हैं। खर्च भी बढ़ता है, पेट भी खराब होता है और रोगों का भी शिकार बनना पड़ता है। इसी प्रकार पकाने की विद्या भी एक विशेष विद्या है। इसकी जानकारी के बिना बहुमूल्य लाभदायक वस्तुएँ जल-भुनकर कोयला मात्र, लाभरहित बना दी जाती है। रबड़ी या खोया, दूध का कोयला मात्र है, दूध में जो पोषक जीवन-तत्व थे वे सभी जलाने-भुनाने पर नष्ट हो जाते हैं केवल कोयला बचता है उसे ही लोग स्वादिष्ट मान कर चाव से खाते हैं। इसी प्रकार तेल, घी में तली-भुनी चीजें अपने स्वाभाविक जीवन तत्वों से वंचित हो जाती हैं। पैसा भी लगा और उपयोगिता भी हाथ से गयी, यह दुहरी हानि पाक-विद्या का शास्त्रीय ज्ञान न होने से ही होती है। गृहिणी यदि पाक-विद्या का वैज्ञानिक पहलू जानती हो तो स्वाद की अधिक चिन्ता बिना भोजन को अमृतरूप बना सकती है और उससे घर के सभी लोगों को नीरोग, हृष्ट-पुष्ट एवं दीर्घजीवी बनाने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योग दे सकती है। पर यह सम्भव तभी है जब नारी सुविकसित हो। अविद्या के अन्धकार में भटकने वाली बेचारी बेबस नारी जिसे दीन-दुनिया का कुछ पता नहीं है केवल ढर्रे पर चलती रह सकती है, फिर उसका परिणाम जो भी हो सो होता रहे।

गृह-व्यवस्था का कार्य भी छोटा नहीं है। उसके भी उतने ही विभाग हैं, जितने किसी राज्य सरकार के होते हैं। प्रत्येक विभाग पर समुचित ध्यान देने लायक जिनके मस्तिष्क हैं वे ही राज्य सरकार को, कारखाने को, व्यवसाय को, संस्था को चला सके हैं और उन्हीं के सुप्रबन्ध में गृहस्थ की व्यवस्था भी चल सकती है। काम छोटा हो या बड़ा हो, दोनों को ठीक तरह पूरा करने के लिये सुविकसित मस्तिष्क चाहिए। इसके बिना अविकसित मस्तिष्क जहाँ भी रह रहे होंगे, वहाँ व्यवस्था फैल रही होगी। गृहिणी का मानसिक स्तर यदि विकसित न हो तो वह घर के प्रबन्ध में बात-बात में भूल करेगी और हर कार्य में संभाल की अपेक्षा बिगाड़ ही होगा। गृह-व्यवस्था के अनेक विभाग होते हैं। प्रत्येक में यदि थोड़ा-थोड़ा भी नुकसान हो तो सब मिलाकर काफी नुकसान हो जाता है। महीने या साल की गिनती की जाय कि कुल कितना नुकसान हुआ, इसका अन्दाज लगाया जाय और यह देखा जाय कि दूसरी सुयोग्य गृहिणी ने अपनी कुशलता से कितनी सम्भाल एवं किफायत की, तो पता चलेगा कि दोनों की मानसिक स्थिति के अन्तर ने घर की आर्थिक स्थिति तथा अन्य परिस्थितियों को बनाने व बिगाड़ने में काफी योग दिया है।

भारतीय नारी की वर्तमान दुरवस्था प्रत्येक दृष्टि से अवांछनीय है। उससे हमारी पारिवारिक एवं वैयक्तिक परिस्थितियों में ही विपन्नता नहीं आती वरन् सामाजिक जीवन पर भारी दुष्प्रभाव पड़ता है जितनी संख्या पुरुषों की है उतनी ही स्त्रियों की भी है। जैसे- हाथ, पाँव, आँख, कान, नाक, मन और मस्तिष्क पुरुषों के हैं वैसे ही स्त्रियों के भी हैं। जब पुरुष अपने पुरुषार्थ से इतना उपार्जन, निर्माण, प्रबन्ध एवं संघर्ष कर सकता है तो नारी भी कुछ न कुछ कर ही सकती है। गृह-व्यवस्था को सँभालने के बाद भी उसके पास कुछ न कुछ क्षमता बचती ही है और उसका कुछ न कुछ उपयोग हो ही सकता है। इसके द्वारा राष्ट्र की सामर्थ्य और सम्पत्ति बढ़ ही सकती है। वे गृह उद्योगों में अपने बचे हुए समय को लगाकर या परिवार के अर्थतन्त्र में किसी न किसी प्रकार का योग देकर परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने एवं राष्ट्र की सम्पत्ति को बढ़ाने में सहायता कर सकती हैं। करोड़ों नारियाँ जो अपना आधे से अधिक समय बेकार गँवाती हैं यदि उसका सदुपयोग कर सकें तो अरबों रुपयों की समृद्धि बढ़ सकती है।

जिस अविकसित स्थिति में नारी आज पड़ी है उसमें सुधार आरम्भ कर दिया जाय तो वह थोड़े दिनों में कुछ से कुछ बन सकती है। जबकि वे कैदी की तरह बन्द रहने और महत्त्वपूर्ण कार्यों की क्षमता से वंचित रहने के लिए विवश हैं तो उनसे कुछ आशा नहीं की जा सकती पर यदि उन्हें अवसर मिले तो पुरुषों की भाँति अगणित नारियाँ भी ऐसी निकलेंगी जो अपनी स्वाभाविक प्रतिभा से संसार को आश्चर्यचकित कर दें। अभी पिछले ही दिनों लंका की प्रधानमन्त्री श्रीमती भण्डार नायक बनी हैं। यह प्रतिभा करोड़ों नारियों में मौजूद है पर उसे विकसित न होने देकर हम अपना उनका और सबका केवल अहित ही करते हैं।

यदि नारी को घर की चहारदीवारी से बाहर जाकर संसार और समाज को समझाने एवं आवश्यक अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिले तो वह प्रत्येक क्षेत्र में अपनी कुशलता का परिचय दे सकती है। यदि उसे समुचित शिक्षा

मिले तो वह अपनी बौद्धिक क्षमता से परिवार के लिए एक श्रेष्ठ मन्त्री का काम कर सकती है। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का वह बहुत काम स्वयं कर सकती है। यदि उसे आवश्यक शिक्षा और वातावरण प्राप्त है तो हमारी सामाजिक प्रगति जो रुकी पड़ी है, उसको वह आसानी से आगे बढ़ा सकती है।

संसार के अन्याय देशों में जहाँ नारी को अवसर मिला है उसने शिक्षा, साहित्य, उद्योग, शासन, विज्ञान, समाज सेवा आदि विभिन्न क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है और जिन चार कार्यों को नारी के लिए भारतवर्ष में पर्याप्त माना जाता है, उन्हें करते हुए भी अपनी व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं राष्ट्रीय सुख-शान्ति को बहुत बड़ी मात्रा में बढ़ाया है। संसार के जिन देशों ने नारी उत्थान के द्वार खोले, उन्हें पुरुषों के समान ही शिक्षा-दीक्षा एवं मनुष्य के स्वाभाविक अधिकारों को प्राप्त करने का अवसर दिया। उन्होंने इस बुद्धिमत्ता का परिचय देकर कुछ खोया नहीं वरन् पाया ही है।

भारत का प्राचीन आदर्श नारी के प्रति अतीव श्रद्धा और सम्मान का रहा है। वे हर क्षेत्र में पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिला कर साथ-साथ बढ़ती और बढ़ाती रही हैं। मध्य काल के अज्ञानान्धकार युग में जहाँ अनेक अव्यवस्थाएँ हमारे देश में फैली वहाँ नारी की प्रगति में अवरोध भी एक संकट के रूप से पनपा। अब समय आ गया है कि हम अपनी उस भूल को सुधारें नारी के विकास की आवश्यकता को अनुभव करें और इसके लिए सच्चे मन से प्रयत्नशील बनें।

भारतीय नारी की यह दुर्गति कब तक?

फतेहगढ़ जिला सैशन जज की अदालत में उस दिन सन्नाटा था। केवल न्यायाधीश की गम्भीर वाणी गूँज रही थी। सारा समुदाय विद्वान जज श्री जगदीशचन्द्र जी शर्मा का निर्णय तथा उस निर्णय के साथ जनता की मार्मिक अपील भारी हृदय से, आँखों में पानी भरे सुन रहा था। लोगों की दृष्टि न्यायाधीश एवं अभियुक्त कटघरे में खड़े 'बाप-बेटे' की ओर बारी-बारी से घूम रही थी।

अभियुक्तों का नाम बाबूराम (पिता) एवं दिनेशचन्द्र (पुत्र) था। उन्हें हत्या के अभियोग में मृत्यु दण्ड दिया गया था। उन्होंने हत्या किसकी तथा किस कारण की, यह सुनकर लोगों के मन में प्रश्न उठता था कि यह मनुष्य है या पिशाच? ऐसा सोचना ठीक भी है। अपने आश्रित एक निरीह अबला की जो अपना सर्वस्व देकर भी दया तथा स्नेह की भीख माँगती हो, वह भी गर्भिणी अवस्था में नृशंस हत्या करने वाले को क्या कहा जावे? सम्भवतः 'पिशाच' शब्द भी हल्का ही पड़ता है ऐसे व्यक्तियों के लिए।

मृत महिला का नाम श्रीमती शारदा देवी था। वह फर्रुखाबाद के श्री महावीर प्रसाद की पुत्री थी एवं अभियुक्त दिनेश से उसका विवाह हुआ था। विवाह के पूर्व वर पक्ष ने हर प्रकार से अपना सन्तोष कर लिया था। श्री महावीर प्रसाद तथा अभियुक्त बाबूराम के बीच ठहराव हुआ था कि विवाह में ५००० रुपया श्री महावीर प्रसाद व्यय करेंगे। किन्तु लोभ अपनी सीमा नहीं देखता। पैसा देखकर लोभ और भी बढ़ जाता है। विवाह में ही वर-पक्ष और अधिक मुँह फैलाने लगा। दिनेश ने दूल्हे के रूप में मोटरसाइकिल की माँग रख दी। अपनी स्थिति चीज को सम्भालने की हो या न हो। सामने वाला उसकी व्यवस्था करने की स्थिति में है या नहीं, इस पर विचार किये बिना ही माँग बैठना, बल्कि माँग पर अड़ जाना एक मानसिक रोग ही दूल्हों में पैदा हो गया है। माँग पूरी न हो सकने पर दूल्हा दिनेश बुरी तरह भड़क उठा। उसके पिता बाबूराम ने उसे शान्त करके, समझाकर अपनी उदारता का परिचय दिया और काम आगे बढ़ा।

किन्तु उसकी उदारता का स्वरूप थोड़े ही समय बाद स्पष्ट हो गया। यह उदारता नहीं, मछली फँसाने के लिए चुग्गा था जिसमें काँटा छिपा था। उसने लड़की के पिता को एकान्त में समझाया कि लड़के को रुष्ट रखना उचित नहीं है। मोटरसाइकिल नहीं दी तो कोई बात नहीं किन्तु उसकी नाराजगी मिटाने के लिए अपनी सम्पत्ति दिनेश के नाम कर दें। 'चतुर' वर के पिता को इसमें कोई हानि नहीं दिखती थी। उसने लड़की के पिता से कहा- इससे बच्चों का मन रह जावेगा तथा धन कहीं जावेगा नहीं। बाद में काम आवेगा तो तुम्हारी लड़की के ही। यदि कहने वाले की बुद्धि स्वार्थ के डिब्बे में बन्द न होती तो उसे सहज ही समझ में आ जाता कि ऐसी विवेकहीन बात न उसे कहते शोभा देती थी और न ही कोई भी व्यक्ति उसकी चतुराई को स्वीकार कर सकता था।

लड़की के पिता ने अनुनय-विनय के साथ अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए असमर्थता प्रकट की। अपने वायदे के अनुसार ५००० व्यय के आँकड़े दिए, किन्तु पिता-पुत्र का रोष उससे शान्त न हो सका। चतुराई से तो उनकी स्वार्थपूर्ति न हो सकी थी। अब उन्होंने दूसरा मार्ग पकड़ने की ठानी। धन जिस सुख और व्यवस्था के लिए प्राप्त किया जाता है- उन्होने उसी पारिवारिक सुख-शान्ति को धन के लिए बलिदान करने की ठान ली। ऐसा मूर्खतापूर्ण निर्णय लेना भले ही विचित्र लगता हो, किन्तु जिसका मुँह स्वार्थ की ओर है, वह यथार्थ की ओर देख ही नहीं पाता है फिर भले-बुरे का निर्णय कैसे करे?

लोभान्ध पिता-पुत्र ने निरीह बहू को अपना लक्ष्य बनाया। उसे तरह-तरह के त्रास देना प्रारम्भ किये। अपनी निर्दोषता तथा निरीहता की दुहाई देती रहती,

शारीरिक श्रम से, व्यवहार से हर प्रकार उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए आश्वासन देती, शक्ति भर उनके लिए प्रयास करती, किन्तु इसका प्रभाव तो मनुष्यों पर पड़ता है। सामने वाले अब मनुष्य कहाँ थे– उन पर तो शैतान का उन्माद आ चुका था। उस बेचारी को अपनी वासना तृप्ति का साधन भी बनाया गया तथा लोभ की पूर्ति हेतु मार्मिक कष्ट भी दिये जाते रहे। काश उनका विवेक बहू की स्थिति में अपनी लड़की या बहिन की कल्पना उन्हें करा सकता। व्यक्तिगत विचारशीलता अथवा मित्रों के नेक परामर्श के द्वारा यह सम्भव था किन्तु आज समाज में सबसे अधिक कमी इन्हीं की है। दिमाग की बहक के सामने विचारशीलता न जाने कहाँ चली गयी है। इसी प्रकार परामर्श देने वाले रास्ते चलते मिल जाते हैं किन्तु नेक परामर्श आज दुर्लभ है। इनके अभाव से समाज की क्या हानि हो रही है, यह किसी समझदार से छिपा नहीं है।

अविवेकी अधीर भी होता है। पिता पुत्र की मुफ्त का धन पाने की लालसा तीव्रतर होती गयी। उन्होंने सोचा कि इससे नहीं मिला तो दूसरी शादी की जावे। किन्तु एक पत्नी होते दूसरा विवाह करने में लोगों ने कानूनी कठिनाई बतलायी। बस रास्ते के काँटे के रूप में बेचारी अबला को सदा के लिए निकाल फेंकने की कल्पना उनके मन में उठ खड़ी हुई। २१-२२ मई १९६७ की रात्रि को मारपीट से बेहोश हो जाने पर उसे अफीम पिला दी गयी। उनकी कल्पना थी कि स्वाभाविक मृत्यु कहकर शव जला देंगे। फिर कोई गाँठ का पूरा आँख का अन्धा अपनी सुन्दर लड़की और कुबेर की सम्पत्ति उन्हें दे देगा। किन्तु वह यह भूल गये थे कि दुनिया में बहुत कुछ ऐसा भी है जिसे स्वार्थी देख नहीं पाता। इसी भ्रान्ति ने उन्हें उपहास और फाँसी का अधिकारी बना दिया।

न्यायाधीश श्री शर्मा ने तथ्यों के प्रमाण देते हुए स्पष्ट किया कि इन पिता-पुत्र ने जान-बूझकर मानवता को कलंकित करने वाला कार्य किया। पुलिस द्वारा शव के पोस्टमार्टम से गर्भिणी महिला की हत्या के तथ्य पुष्ट हो गये। दण्ड तो अभियुक्तों को मिला है पर सीख समाज को लेनी चाहिए। हमारे अन्तःकरण के दुर्विचार हमें कहाँ ले जा सकते हैं, "समाज में व्याप्त भ्रान्त धारणाएँ क्या-क्या संकट उत्पन्न कर सकती हैं...... इसका विचार यदि न किया गया तो कोई भी परिवार तथा कोई भी व्यक्ति सुखी नहीं रह सकेगा।"

न्यायाधीश ने नियमानुसार सबसे बड़ा दण्ड मृत्युदण्ड अभियुक्तों को दे दिया, किन्तु लगता तो यह है कि ऐसे जघन्य कृत्यों के लिए मृत्यु दण्ड भी कम है। अभियुक्त बापूराव की पत्नी श्रीमती शान्ति देवी को सन्देह का लाभ देकर मुक्त कर दिया गया। किन्तु प्रकृति अपनी मूक सहमति से ऐसे कुकृत्य को बढ़ावा देने वाले समाज को भी दण्डित किए बिना नहीं रहेगी। जिस टहनी ने पत्तियों को रस नहीं पहुँचाया, पत्तियाँ गिरने के बाद भी वह टहनी भी सूखे बिना नहीं रह सकती। सारे समाज को ऐसे कुकृत्यों के प्रायश्चित के लिए तैयार होना ही पड़ेगा, भूल सुधार करनी ही होगी अन्यथा ऐसे कुकृत्य करने वाले व्यक्ति ही नहीं उनके साथ सारा समाज भी नष्ट होगा।

अवांछित मातृत्व की समस्याओं का शक्ति भर समाधान

माटुंगा– बम्बई में अवस्थित श्रद्धानन्द महिलाश्रम आज से कोई पचास वर्ष पहले स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रेरणा और आशीर्वाद से महाराष्ट्र के एक समाजसेवी सज्जन जयकर जी द्वारा स्थापित किया गया था। इस आश्रम का उद्देश्य अवांछित बच्चों, निराश्रित महिलाओं को आश्रय देने का था। आश्रम आरम्भ में छोटा था अब समस्या के साथ-साथ इसके कलेवर में वृद्धि होती जा रही है।

इस समय आश्रम में ३५० के लगभग महिलाएँ व बालक हैं। इसके आवास, निवास व भोजनादि का भार आश्रम उठाता है। प्रतिवर्ष ढाई लाख के करीब व्यय इसकी व्यवस्था पर होता है जो म्युनिसिपल कारपोरेशन और उदार हृदय दानियों से मिलता है।

आश्रम के अवैतनिक व्यवस्थापक श्री टाटके ने अपने अनुभवों के आधार पर जो तथ्य बताये वे इस प्रकार हैं- हमारे देश में अवांछित शिशुओं की समस्या के कारण बदल चुके हैं। पहले यहाँ जो बच्चे लाये जाते थे उनमें अधिकांश विधवा के लिए दूसरा विवाह वर्जित होने के कारण उत्पन्न विकृतियों से जनित थे, किन्तु अब इसका कारण युवावस्था का असंयम हो गया है।

वे बताते हैं कि अब स्थिति यह है कि १६ से २० वर्ष की आयु में माँ बनने वाली अविवाहित लड़कियों में ६० प्रतिशत शिक्षित लड़कियाँ होती हैं और शेष अशिक्षित और श्रमिक परिवारों की। अवांछित मातृत्व की समस्या दिनोंदिन बढ़ रही है। श्रद्धानन्द महिलाश्रम के पास ही प्रति माह ५०-६० बालकों को रखने का अनुरोध पुलिस की ओर से आ जाता है जो इसकी सामर्थ्य से परे है। फिर भी आश्रम शक्ति भर प्रयास करता है। अधिकाधिक बालकों को संरक्षण देने के लिए। यहाँ रखे जाने वाले चार शिशुओं पर एक सेविका रखी जाती है। सेविका अन्ततः सेविका होती है, वह माँ तो बन नहीं सकती फिर भी प्रयास पूरा किया जाता है कि बच्चों को माता-पिता का सा स्नेह-संरक्षण मिले।

श्री टाटके द्वारा अनावृत किये गये ये तथ्य अत्यन्त शोचनीय हैं। शिक्षा प्रसार के साथ चरित्र का संस्खलन

होने और सभ्यता के नाम पर संयम के महत्त्व को नकारने का यह क्रम चलता ही रहा तो जाने ऐसे कितने ही महिलाश्रम और खोलने आवश्यक हो जाएँगे। यही नहीं कुँवारे मातृत्व के द्वारा इसके शिकार युवक-युवतियों में जो हीनता, अपराध भाव और मानसिक ग्रन्थियाँ बन जाती हैं, उनका उनके भावी जीवन और सामाजिक स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः आवश्यकता संयम और चरित्र बल के अभिवर्द्धन की है। शिक्षा में इसका अनिवार्य रूप से प्रावधान होना चाहिए।

आश्रम ने पिछले ४५ वर्षों में ३००० निराश्रित बच्चों को आश्रय दिया है। उन्हें सम्मानपूर्वक जीने की स्थिति प्रदान की है । यहाँ जो बच्चे भर्ती किये जाते हैं उनमें अधिकांश के माता-पिता दोनों का पता नहीं होता, जो अनाथ, अवैध और अवांछित होते हैं। पाँच वर्ष की आयु तक बालक-बालिकाओं को यहाँ साथ-साथ ही रखा जाता है। उसके पश्चात-बालकों को दूसरी संस्था में भेज दिया जाता है और यहाँ केवल बालिकाएँ ही रह जाती हैं।

प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था आश्रम में ही है। उसके पश्चात् आगे पढ़ने के लिए कन्याओं को दूसरी शिक्षण संस्थाओं में जाना पड़ता है। सोलह वर्ष की हो जाने के पश्चात् जीवन साथी ढूँढ़ने का कार्य भी आश्रम ही करता है। अब तक आश्रम ने ६०० निराश्रित लड़कियों को सौभाग्यवती बनाया है। निराश्रित को आश्रय प्रदान करने वाले इस संस्थान की समाज की विकृतियों से जूझने में महत्त्वपूर्ण सर्जनात्मक भूमिका रही है।

यहाँ पति, परित्यक्ता और पारिवारिक परिस्थितियों से संत्रस्त महिलाओं, अविवाहित माताओं, बाल विधवाओं के अतिरिक्त न्यायालय से दण्डित महिलाओं को भी सुधार के लिए रखा जाता है। बालकों ये कन्याओं के लिये खेलकूद व मनोरंजन का समुचित प्रबन्ध भी आश्रम में है।

पिछले दो-तीन वर्षों से यहाँ पर रहने वाले बालकों को विदेशियों द्वारा गोद लेने का क्रम भी चल पड़ा है। अब तक ६० बच्चे यहाँ से विदेश जा चुके हैं। इन बच्चों को गोद लेने वाले निस्संतान दम्पत्ति स्वीडन, नार्वे, डेन्मार्क, बेल्जियम, फ्रांस आदि देशों के हैं। प्रायः दो वर्ष से कम आयु के शिशु ही गोद लिये जाते हैं। यहाँ की कुछ समाज सेवी संस्थाएँ बच्चों के लिऐ माता-पिता खोजने का कार्य करती हैं।

इन लोगों को जो कि भारत में बालक गोद लेने की आवश्यकता क्यों पड़ती है? क्या स्वदेश में उन्हें बच्चे नहीं मिलते? इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि वहाँ जनाधिक्य की समस्या नहीं है। दूसरे बच्चों की कमी है। अतिशय यौन-स्वच्छन्दता व कृत्रिम निरोधक उपकरणों के प्रयोग से वहाँ के स्त्री-पुरुषों की जनन शक्ति में बहुत ह्रास हो गया है। चाहते हुए भी वे सन्तानोत्पादन में असमर्थ रहते हैं।

महिलाश्रम के कार्यकर्त्ता यहाँ रहने वाली कन्याओं, महिलाओं तथा आने-जाने वाले युवक-युवतियों को काम विषयक संयम की महत्ता बताते हैं। उन्हें संयमित जीवन जीने की सीख देते हैं। इस आश्रम की तुलना रुग्ण शरीर को स्वस्थ करने के लिए की जाने वाली सामयिक चिकित्सा जैसा ही है। एक औषधालय की तरह ही उसकी अपनी उपयोगिता है फिर भी यही समस्या का समाधान नहीं है। अस्पताल और चिकित्सा व्यवस्था का होना एक बात है और स्वस्थ रहना दूसरी बात। स्वस्थ व्यक्ति को कभी चिकित्सालय की शरण नहीं जाना पड़ता। सामाजिक स्वास्थ्य के लिए भी यहाँ होना चाहिए कि औषधालय की शरण जाना ही न पड़े । युवक-युवतियों में काम-संयम चारित्रिक बल और नैतिक साहस का जगाना ही समस्या का स्थायी हल हो सकता है। उसके लिए शिक्षा पद्धति में आवश्यक सुधार तथा नैतिक, चारित्रिक पुनरुत्थान के सामूहिक, संगठित अभियान चलाने की आवश्यकता है। युग-निर्माण योजना स्वस्थ समाज की संरचना का एक ऐसा ही अभियान है।

ग्रामीण महिलाओं की दुर्दशा कब तक?

प्रबुद्ध महिलाओं समेत समस्त प्रबुद्ध नागरिकों को न केवल अपने परिवार के बारे में, उसके सभी सदस्यों की स्थिति, आवश्यकता एवं सम्भावना के बारे में जानना चाहिए, अपितु उन्हें समाज के सदस्यों की स्थिति की भी जानकारी होनी चाहिए। तभी वे अपना सामाजिक कर्तव्य और जिस समाज में वे रह रहे हैं, उसमें अपनी वास्तविक स्थिति जान सकते हैं। यों तो नारी मात्र को पुरुषों की तुलना में अधिक हीन स्थिति में डालकर रखा गया है, किन्तु शहरी मध्यवर्ग की नारियों की स्थिति की तुलना में ग्रामीण महिलाओं और उनमें भी विशेषकर खेतिहर मजदूरिनों की हालत तो भयंकर है। शोषण, उत्पीड़न, विषमता, अन्याय और अत्याचार उनके दिनोंदिन जीवन का सामान्य अनुभव बन चुका है।

पिछले दिनों रोम में विश्व के १५० (डेढ़ सौ) देशों के किसानों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन सम्पन्न हुआ जिसमें विश्वभर की ग्रामीण महिलाओं और विशेषकर खेतिहर मजदूरी में जुटी महिलाओं की दुर्दशा के आँकड़े तथा तथ्य प्रस्तुत किये गये । दुनिया में लगभग १ अरब ग्रामीण महिला श्रमिक हैं और यह एक अरब की विशाल जनसंख्या जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं से भी वंचित है। कठोर श्रम से उसका शरीर प्रतिदिन टूटता चला जाता है। न्यूनतम पोषण भी उसके लिए एक स्वप्न है। ऊपर से दिनभर खेत-खलिहानों, बागानों, मैदानों में जी तोड़कर

मेहनत करने के बाद भी घर लौटकर उसे शाम को चूल्हा चौके में जुटना पड़ता है। बच्चों की साज-सम्भाल करनी पड़ती है तथा पति की धौंसबाजी एवं परिवार वालों की दुर्व्यवहार भरी धमकियाँ सहनी पड़ती हैं।

रोम के इस सम्मेलन में बताया गया है कि अमरीका जैसे विकसित देश में भी ग्रामीण महिलाएँ मकई के खेतों में दिनभर मेहनत करने के बाद भी पुरुषों से कम ही मजदूरी की अधिकारिणी मानी जाती हैं। लैटिन अमरीकी देशों तथा एशिया के अनेक देशों में चाय और काफी के बागानों में उन्हें बहुत सस्ती दरों पर अपना धन बेचना पड़ता है। अफ्रीका में भी खेतों में दिन भर तथा देर रात तक खटने वाली महिला श्रमिकों के साथ भयानक असमानता बरती जाती है। भारत जैसे एशियाई देशों में नारी तड़के से ही पुरुषों के जगने के पहले से काम में जुट जाती हैं और देर रात तक, थक कर चूर-चूर होने के बाद भी घिसटती काम करती रहती हैं।

इसीलिए रोम के विश्व सम्मेलन में ग्रामीण किसानों और किसान महिलाओं की प्रतिनिधियों में निर्णय लिया कि विश्वव्यापी अभियान छेड़ा जाय, जिसमें माँग की जाय कि स्त्रियों को रसोईघर के काम से कुछ अवकाश दिलाया जाय, वहाँ का बोझ कुछ हल्का किया जाय, उसमें पुरुष भी मदद करें ताकि महिलाएँ खेती के तथा अन्य बाहरी कामों में अधिक मेहनत कर सकें। इसके साथ ही स्वामित्व में उनका भी हिस्सा स्पष्ट रहे। आज जो यह प्रथा है कि खेतों के पट्टे मात्र पुरुषों के नाम होते हैं उसका दुनिया भर में विरोध किया जायगा स्त्री को भी भूस्वामिनी के अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष छेड़ा जाएगा। समान काम के लिए समान वेतन तथा समान मजदूरी की माँग की जाएगी और चल-अचल सम्पत्ति तथा उत्तराधिकार के मामले पर भी नारी का समान वर्चस्व स्वीकार कराया जाएगा। खेती के बारे में हर तरह से निर्णय लेने, फसलों से प्राप्त अनाज बेचने, कृषि सम्बन्धी प्रशिक्षण प्राप्त करने आदि में नारी को भी अधिकार दिये जाने की माँग की जाएगी। इस प्रकार खेतिहर तथा किसान महिला श्रमिकों की दुर्दशा के विरुद्ध अब विश्व जनमत तैयार हो रहा है और उसके दबाव से समाज-व्यवस्था में विद्यमान विषमता के विरुद्ध दबाव तेज हो रहा है।

आत्मीयों से अनावश्यक संकोच न करें

शरीर-स्वास्थ्य के प्रति सजगता की महत्ता से तो सब परिचित हैं, पर इस परिचय का लाभ कुछ ही लोग उठाते हैं। फिर सजगता बरतने पर भी, कई बार ऐसे कारण उपस्थित हो सकते हैं, जिन्हें टाला न जा सके और वे स्वास्थ्य को क्षति पहुँचा दें। अनेक बार ऐसा भी होता है कि रोग दबोच लेता है, पर चूक कहाँ हो गयी, यह अनुमान तक नहीं हो पाता। जो भी स्थिति हो, उसके प्रति उचित प्रतिक्रिया एक ही है कि रोग की जाँच के लिए योग्य चिकित्सक के पास जाएँ और निदान कराये तथा दवा लें। किन्तु अपने देश में पुरुष तक इसमें कतराते और विलम्ब करते हैं। फिर महिलाओं का तो कहना ही क्या ? उन्हें शील के बारे में, जो सीख दी गयी है, वह इस भ्रान्त रूप में घर कर चुकी है कि वह लिहाज अब गोपनीयता, भय तथा अनुचित झिझक का रूप ले चुका है। इससे मात्र शारीरिक व मानसिक क्लेश में ही निरन्तर वृद्धि होती है।

इस सन्दर्भ में यह समझना और समझाया जाना जरूरी है कि शील को नारी का शृंगार और आभूषण माना गया है, कंटक नहीं। ऐसे कर्ण-कुण्डल या बाली जिससे कान फटने लगें, या ऐसा अंजन जिससे आँख खराब होने लगें, कभी भी आभूषण या शृंगार नहीं कहे जाते। शील भी गुण है, दोष नहीं, इसलिए शील वही है, जो लाभकारी भी हो। हर तरह से हानिकर प्रवृत्ति शील नहीं, कुशील ही हो सकती है।

इसीलिए शील-कल्पना नारियों को सौ बार समझाना चाहिए तथा उन्हें यह समझाया जाना चाहिए कि शीलवती होने का अर्थ आत्मदमन नहीं है। शीलसम्पन्नता होने के साथ ही वे स्पष्टवादिनी हो सकती हैं और आत्मीयों से तो उन्हें अनावश्यक संकोच नहीं ही करना चाहिए। आत्मीय से कैसा संकोच? अतः कोई भी रोग होने पर उसे लज्जास्पद, अपराध या पाप मानकर छिपाने और अन्दर ही अन्दर कुढ़ने के स्थान पर, अपने आत्मीय परिजनों को रोग की आरम्भिक स्थिति में ही पूरी जानकारी साफ-साफ दें। विशेषकर ऐसे रोग जिन्हें वे भ्रान्तिवश गोपनीय मानती हैं, तुरन्त ही बतलाये जाने चाहिए।

भारत में कुपोषण, अस्वच्छता अथवा मानसिक तनाव की व्यापकता को देखते हुए, इन तीनों में से किसी भी अथवा सभी कारणों से होने वाला प्रदर रोग बहुत महिलाओं में पाया जाता है। इसको लेकर भ्रान्तियाँ भी इतनी अधिक हैं कि इन्फेक्शन की सामान्य स्थिति को भी प्रायः महिलाएँ प्रदर रोग मान बैठती हैं। जबकि इन्फेक्शन एक अति सामान्य घटना है।

यही बात अन्य रोगों विकारों के सम्बन्ध में भी सही हो सकती है। दुराव-छिपाव से भ्रान्तियाँ बनी रहेंगी और बढ़ेंगी। उस स्थिति में किसी सामान्य-सा तात्कालिक विकार को गम्भीर रोग समझ बैठने की गलती हो सकती है और हिम्मत हार बैठने की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। साथ ही किसी गम्भीर रोग की उपेक्षा भी हो सकती है, जिससे कि वह बहुत गम्भीर स्वरूप ले ले और डॉक्टर तक बात तब पहुँचे, जब स्थिति नियन्त्रण से बाहर हो जाए।

इसीलिए महिलाओं को आत्मीयों से अनावश्यक संकोच कदापि न करना चाहिए। जहाँ एक ओर निर्लज्जता की स्थिति तक पहुँची हुई अति वाचालता त्याज्य है वहाँ

संकोच के कारण अपनी समस्या अपने आत्मीयजनों को भी न बताना अपने शरीर के प्रति भी अपराध है और उन आत्मीय परिजनों के स्नेह की भी अवलेहना है। प्रबुद्ध महिलाओं को ऐसा अनुचित संकोच न करना चाहिए। सभ्य, सुसंस्कृत पुरुषों का भी दायित्व है कि वे घर-परिवार में ऐसा वातावरण बनाएँ, जिसमें नारियाँ अपने नजदीकी लोगों को अपने शरीर सम्बन्धी जानकारियाँ देने में हिचक का अनुभव न किया करें। प्रायः घर की जिम्मेदार महिलाओं को, परिवार की सभी महिलाओं की परेशानियों की जानकारी रहती है, पर वे इसे पुरुषों तक नहीं पहुँचातीं। इससे अन्ततः अनिष्ट ही होता है। अघटनीय घटता है और अन्ततः बात खुलती तो है ही, पर तब जब पानी सिर से ऊपर पहुँच चुका होता है।

इस दुःस्थिति को समाप्त करने के प्रयास आवश्यक हैं। घर के पुरुषों को ऐसे वातावरण बनाने का प्रयास करना चाहिए जिससे कि घर की महिलाओं को अपना रोग बताने में किसी प्रकार का शील-संकोच न हो तथा उनकी समस्त तकलीफों का पता घर के प्रत्येक सदस्य को रहे तभी हमारा पारिवारिक ढाँचा स्वस्थ तथा टिकाऊ रहेगा। एक तो घर के पुरुष सदस्यों को ऐसा वातावरण बनाने की जिम्मेदारी समझनी चाहिए, जिसमें कि महिलाएँ शील-संकोच से होने वाली हानियों को ध्यान में रखें तथा उससे बचें।

दूसरे, महिलाओं का अनौपचारिक शिक्षण भी हर घर में होना चाहिए। उन्हें आवश्यक जानकारियाँ तो दी जानी चाहिए। इसमें शरीर सम्बन्धी जानकारियाँ भी सम्मिलित हैं और अन्तःकरण में जड़ जमाए बैठी भ्रान्त धारणाओं की विवेचनापरक जानकारियाँ भी । भ्रान्त धारणाएँ ही घर की वयोवृद्ध महिलाओं तक को यह प्रेरणा देती हैं कि वे अपने परिजन-पुरुषों से छिपाकर गण्डा-तावीज वालों, नीम-हकीमों, ठगों, चालाकों के फेर में पड़ती रहती हैं। अन्धविश्वास अनुचित लज्जा और अज्ञानता-तीनों सगी बहिनें हैं और इनकी तिकड़ी महिलाओं को भरमाये रहती हैं। इनके जाल में फँसकर वह अपना समय और पैसा दोनों बर्बाद करती हैं। वे उस सरल-सुगम मार्ग को नहीं अपनातीं, जो उनके स्वास्थ्य लाभ का सर्वोत्तम उपाय है। वह यह कि जिस प्रकार सर्दी-खाँसी या दस्त की बात छिपाई नहीं जाती उसी प्रकार शरीर के गोपनीय अंगों से सम्बन्धित पीड़ा-परेशानियों को भी छिपाने की नहीं, उचित जाँच और उपचार कराने की जरूरत रहती है। जाँच और उपचार का क्रम, बात आगे बढ़ जाने पर तो शुरू होगा ही, उसे समय रहते ही क्यों न शुरू कर दिया जाय। ऐसा प्रशिक्षण प्रत्येक महिला को दिया जाना चाहिए तथा हर घर का वातावरण ऐसा बनाया जाना चाहिए जिसमें अपनों से अनावश्यक संकोच को अवांछनीय माना जाय।

अनुचित संकोच को शील का पर्याय नहीं, सच्ची आत्मीयता के अभाव का परिचायक समझा जाना चाहिए। जहाँ भी ऐसा संकोच दिखाई पड़े, वहाँ घर के जिम्मेदार लोगों को सजग निरीक्षण करना चाहिए कि परिवार में व्यवहार की जो व्यवस्था, मर्यादा तथा परम्परा है, उसमें कहीं कोई भारी खोट है। या तो विनय का भ्रान्तिपूर्ण अर्थ प्रचलित है अथवा नारी के आदर्श या तितीक्षा की गलत धारणा रूढ़ है या फिर दम्भपूर्ण दुराव ने निश्छल भावात्मक सम्प्रेषण के द्वार अवरुद्ध कर दिए हैं। साथ ही, परिवार के हित की अवधारणा भी परिवार के सदस्यों में स्पष्ट नहीं है क्योंकि इस तरह के संकोच के पीछे यदि यह भाव है कि मैं खुद कष्ट सह लूँ, परिवार वालों को क्यों कष्ट में डालूँ तो यह भी भ्रान्त मनःस्थिति ही है। सही समय पर रोग की सूचना दे देने से कम खर्च और कम झंझट में ही उपचार हो जाता है, देर करने पर खर्च भी अधिक लगेगा, घर वालों का समय भी और यदि संवेदना के तन्तु सचमुच जीवन्त हैं, तो एक सदस्य के रोग की गम्भीरता से घर के दूसरे लोगों में भी गहरी व्यथा अवश्य होगी। प्रारम्भ में ही स्थिति बता दी जाने पर इन सब से बचा जा सकता है। घर के नियमों की व्यवस्था का निर्देशन करने वाले लोगों को घर के सभी सदस्यों में यह जानकारी भरने की जिम्मेदारी निभानी चाहिए और अनावश्यक संकोच के वातावरण को अपने इस दायित्व निर्वाह में चूक समझकर उसे समाप्त करने की पहल करनी चाहिए। जागरूक महिलाओं को तो आगे बढ़कर ऐसे हानिकर संकोच को समाप्त करना चाहिए।

नारी को समुन्नत किया जाय

पुरुष विष्णु है, स्त्री लक्ष्मी, पुरुष विचार है, स्त्री भाषा, पुरुष धर्म है, स्त्री बुद्धि पुरुष तर्क है स्त्री रचना, पुरुष धैर्य है स्त्री शान्ति, पुरुष प्रयत्न है स्त्री इच्छा, पुरुष दया है स्त्री दान, पुरुष मन्त्र है स्त्री उच्चारण, पुरुष अग्नि है स्त्री ईंधन, पुरुष समुद्र है स्त्री किनारा, पुरुष धनी है स्त्री धन, पुरुष युद्ध है स्त्री शान्ति, पुरुष दीपक है स्त्री प्रकाश, पुरुष दिन है स्त्री रात्रि, पुरुष वृक्ष है स्त्री फल, पुरुष संगीत है स्त्री स्वर, पुरुष न्याय है स्त्री सत्य, पुरुष सागर है स्त्री नदी, पुरुष दण्ड है स्त्री पताका, पुरुष शक्ति है स्त्री सौन्दर्य, पुरुष आत्मा है स्त्री शरीर।

उक्त भावों के साथ विष्णु पुराण में बताया है कि पुरुष और स्त्री की अपने-अपने स्थान पर महत्ता, एक से दूसरे के अस्तित्व की स्थिति, एक से दूसरे की शोभा आदि सम्भव है। एक के अभाव में दूसरा कोई महत्त्व नहीं रखता। स्त्री-पुरुष की समान भूमिका का दर्शन वैदिक काल में बड़े ही व्यवस्थित रूप में था। पुरुषों की तरह ही स्त्रियाँ भी स्वतन्त्र थीं, साथ ही जीवन के सभी क्षेत्रों में भाग लेती थीं। राजनीति, समाज, धर्म सभी में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान था । कोई भी कार्य नारी के अभाव में पूर्ण नहीं माना जाता था। शिक्षा, संस्कृति में उनका समान अधिकार था। स्त्रियाँ यज्ञोपवीत धारण करती थीं, यज्ञ,

वेदाध्ययन आदि में पूरा-पूरा भाग लेती थीं। इसी समय लोपा, मुद्रा, धोषा, गार्गी मैत्रेयी आदि वेदों की मन्त्रदृष्टा, ब्रह्मवादिनी हुईं।

इतना ही नहीं स्त्रियों को विशेष आदर सम्मान का अधिकार देते हुए मनु भगवान ने लिखा है, "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।" जहाँ नारियों का सम्मान नहीं होता उन्हें पूज्य भाव से नहीं देखा जाता वहाँ सारे फल, क्रियाएँ नष्ट हो जाती हैं। "यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलाः क्रिया।"

दुर्व्यवहार की कुचेष्टा

परिस्थितियों के बदलने के साथ ही नारी जीवन की दुर्दशा शुरू हो गयी और कालान्तर में इसकी स्वतन्त्रता, समानता, आदर के अधिकार छीन कर उसे घर की चहारदीवारी, पर्दों की ओट मे बन्द कर दिया गया। यवन आक्रमणों के काल से भारतीय नारी जीवन की भारी दुर्दशा हुई और नारी जीवन की भारी दुर्दशा हुई और नारी का गौरव, सम्मान, अधिकार सब छीन लिए गये। नारी एक निर्जीव गुलाम की तरह पीड़ित की जाने लगी। उसका दमन होने लगा।

नारी का परिवार में जो गृह-लक्ष्मी, गृहिणी का स्थान था वहाँ उसे सास, ससुर, पति, देवर, नन्द, जिठानी के अत्याचारों का सामना करना पड़ा। पति के मर जाने पर उसे राक्षसी, कुलटा, दुराचारिणी कहा जाने लगा अथवा जीवित ही ज्वाला में झोंक दिया गया, सती के नाम पर। समाज में किसी व्यक्ति का देख लेना, बातचीत कर लेना उसके चरित्र का कलंक समझा जाने लगा। पुरुष ने साम, दाम, दण्ड, भेद से मनचाहा नारी पर शासन किया; अत्याचार किये उस पर।

फलतः मानव जीवन का अर्द्धांग बेकार, हीन, अयोग्य बन गया। आधे शरीर में लकवा दौड़ जाने पर सारे शरीर का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। ठीक यही बात हमारे जीवन के साथ हुई। हमारे सामाजिक पतन का मुख्य कारण स्त्रियों की यह दुरवस्था भी रही है।

नारी का विकास आवश्यक

राष्ट्र को विकास और स्वतन्त्रता की नई प्रेरणा देने वाले महापुरुषों ने इस कमी को अनुभव किया और समाज को सशक्त, सबल बनाने के लिए स्त्रियों के अधिकारों की नई परिभाषा करनी पड़ी। उनकी दुरवस्था, शोषण, उत्पीड़न को बन्द करके पुरुष के समान अधिकार देने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के विरुद्ध आवाज उठायी। महर्षि दयानन्द ने नारी के अधिकारो का व्यापक आन्दोलन ही चलाया। स्वामी विवेकानन्द ने समाज को चेतावनी दी कि जिस देश, राष्ट्र में नारी की पूजा, उसका सम्मान नहीं होगा वह राष्ट्र, समाज कभी भी उन्नत और महान नहीं हो सकता है।

लाला लाजपत राय ने कहा "स्त्रियों का प्रश्न पुरुषों प्रश्न है। दोनों का ही एक-दूसरे के जीवन में महत्त्व स्थान है। पुरुषों की उन्नति के लिए सदैव ही स्त्री के सहयोग की आवश्यकता है।" महामना मदनमोहन मालवीय ने विधिवत् विद्वानों का सम्मेलन करके स्त्रियों के लिए यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन, यज्ञ आदि सामाजिक कृत्यों में पूर्ण अधिकारों की घोषणा की। शारदा एक्ट, मैरेज एक्ट आदि बने। विवाह आदि की मर्यादाएँ निश्चित की गईं। भारतीय संविधान में लड़की को भी उत्तराधिकार, आर्थिक क्षेत्र में तथा अत्याचार के विरुद्ध बोलने का अधिकार देकर नारी जाति की स्वतन्त्रता, सुरक्षा, विकास उसकी समानता का प्रयत्न किया गया।

लक्ष्य से बहुत पीछे

इन सब प्रयत्नों के बावजूद अभी भारतीय नारी अप लक्ष्य से बहुत पीछे है। पर्दा प्रथा, दहेज, लड़के-लड़की में असमानता का भाव आदि कुछ कम अभिशाप नहीं हैं नारी के लिए। अब भी भारतीय स्त्रियों की बहुत बड़ी संख्या घर की चहारदीवारी के भीतर कैद है। उन्हें सदाचार-शील आदि का बहाना लेकर पर्दे, बुर्का आदि में बन्द कर रखा है। जिस पौधे को पर्याप्त प्रकाश, हवा न मिलती वह मुरझा जाता है। अधिकांश स्त्रियों में भी पीले चेहरे, बीमारियाँ, रोग, कुछ कम नहीं फैल रहे हैं। अब भी स्त्री को वासना तृप्ति का साधन समझा जाता है। एक स्त्री के मरने पर ही नहीं, उसके जीवित रहते दूसरे ब्याह, दूसरी स्त्रियों से सम्पर्क किये जाते हैं। बड़े-बड़े नगरों, शहरों मे वेश्याओं के केन्द्र नारी जीवन की दुर्गति और समाज के कलंक के रूप में अब भी प्रकट अथवा अप्रकट रूप स्थित हैं।

हमारे पारिवारिक जीवन में नारी पर घर वालो के द्वारा होने वाले अत्याचार अब भी बने हुए हैं। उन्हें सताया जाता है, ताड़ना दी जाती है, गुलामों की तरह रहने को बाध्य किया जाता है। अन्य लोगों को खाने को अच्छा मिलता है जबकि सारा काम करने वाली बहू रूखा-सूखा खाकर पेट भरती है। यह उन चन्द शहरी या शिक्षित घरानों की बात नहीं वरन् भारत के अस्सी प्रतिश परिवारों की कहानी है जो गाँवों मे बसे हैं। दहेज क्या नारी का अपमान नहीं है।

प्राचीन सम्मान पुनः मिले

सुधार के विभिन्न प्रयत्नों के बावजूद भी यथार्थ की धरती पर भारतीय नारी का जीवन अभी बहुत बडे क्षेत्र में अविकसित पड़ा है। यह हमारे सामाजिक जीवन, पुरुष के अर्द्धांग की विकृति है जिसने सारी प्रगति को ही अवरुद्ध कर रखा है। अन्धपरम्परा, अन्धविश्वास, रूढ़िवाद, संकीर्णता व्यर्थ के अभिमान को त्याग कर नारी को उसके उपयुक्त स्थान पर प्रतिष्ठित करना आवश्यक है। इसी मे पुरुष और समाज तथा राष्ट्र की उन्नति निहित है। नारी का

उत्थान पुरुष का उत्थान है। नारी की प्रगति है। दोनों का जीवन परस्पर आश्रित है।

सौन्दर्य स्रोत तो भीतर है

भारतीय जीवन में नारी-आदर्श की शानदार परम्परा रही है। पुरुषों की अपेक्षा सद्गुणशीलता और सच्चरित्रता में स्त्रियाँ अग्रणी रही हैं। यही कारण था कि उन्हें 'देवी' नाम से सम्बोधित करने की परम्परा डाली गयी थी जो अब तक उसी तरह से चल रही है। भारतवर्ष में धर्म, संस्कृति और नैतिकता की सर्वोपरिता का अधिकांश श्रेय हमारी माताओं, बहिनों तथा बेटियों को प्राप्त है। समाज निर्माण में उनका सहयोग पुरुषों से कम न था। भौतिक विकास में वे पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर चलती थीं। स्त्री-पुरुषों की पारस्परिक अभिन्नता के कारण ही यह देश समृद्धि की चरम सीमा तक पहुँचा हुआ था। नारियाँ सदैव से ही पुरुषों के लिए प्रेरणा और प्रकाश रही हैं। यही कारण है कि शक्ति की उपासना का प्रतीक भी नारी को ही माना गया है।

हमारी जीवन-पद्धति में बुराइयाँ बढ़ने लगी तो नारी जीवन भी उससे अछूता न रह सका और वे अन्ततः पुरुषों की दासी, भोग-विलास की सामग्री और न जाने कैसी हेय वस्तु-सी बन कर रह गयीं। अशिक्षा, पर्दा, अन्धविश्वास, आलस्य, विलासिता, फैशनपरस्ती आदि अनेक बुराइयाँ उनमें बढ़ीं। इन सबसे बड़ी बुराई रही उनकी आभूषण प्रियता, जिसने न केवल हमारे आर्थिक-सन्तुलन को बिगाड़ा वरन् उससे अनेक सामाजिक बुराइयों का प्रचलन हुआ। स्त्रियों की कार्य-क्षमता घटी और मानसिक कमजोरियाँ बढ़ने लगीं। यह बहुत बड़े दुःख की बात है कि हमारी बहू-बेटियाँ अब गुणों से दूर होती जा रही हैं और नित्य नये शृंगार आभूषणों की माँग कर राष्ट्रीय ढाँचे को असन्तुलित बनाने में लगी हैं।

भारतीय सम्पति का इतना बड़ा भाग जेवरों के रूप में बँधा पड़ा है कि यदि उसे खोल दिया जाय तो राष्ट्र की आर्थिक समस्या का हल सुविधापूर्वक हो जाय। दुःख की बात है कि यह क्रम अब भी इसी तरह चल रहा है। अशिक्षितों की बात दूसरी थी पर अब तो पढ़े-लिखे और विचारवान व्यक्ति भी सिद्धान्त रूप में भले ही विरोध करते हों किन्तु व्यवहार में सब इस गन्दी प्रथा को अपनाये हुए हैं और हमारी आय का आधा भाग केवल स्त्रियों के गहने बनाने में चला जाता है। यह बात नारी और राष्ट्र दोनों ही के लिए नितान्त दुर्भाग्यपूर्ण है।

धन के अभाव में लोग कोई उत्तम उद्योग नहीं कर पाते, बालकों को शिक्षित नहीं बना पाते, पौष्टिक आहार प्राप्त नहीं कर पाते, जीवन स्तर ऊँचा नहीं कर पाते। पर यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो हमारे पास ऐसा कोई अभाव है नहीं। हमने जान-बूझ कर ही यह समस्या खड़ी की है। हिन्दुस्तान में शायद ही ऐसा कोई अभागा घर हो जिसमें इतना जेवर न हो जिससे सामान्यतः एक परिवार के उदरपोषण के उपयुक्त आर्थिक धन्धा चलाया जा सके; पर स्त्रियों के असहयोग के कारण यह आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती। वे बुरी तरह से इन मिट्टी के ढेलों को छाती से चिपकाये हुए अपने बच्चों को, पतियों को आर्थिक विषमता की चक्की में पिसता हुआ देखती रहती हैं किन्तु इस हानिकारक कुप्रथा को छोड़ने के लिए तैयार नहीं।

आभूषणों से सौन्दर्य बढ़ता हो, सम्मान मिलता हो ऐसी कोई बात तो समझ में आती नहीं। उल्टे शरीर के अंग दुःखते हैं। चोरों का भय बना रहता है। आपस में ईर्ष्या, द्वेष और पारिवारिक कलह ही बढ़ता है । परिवार के पालन करने लायक आय से, बच्चों का पेट काटकर इस मूढ़ता में फँसा दिया जाय बुद्धिसंगत बात नहीं। यह हमारी बेटियों के अविवेक का ही लक्षण है।

आभूषण से स्त्रियाँ नहीं सजतीं, यदि ऐसा रहा होता और इससे कुछ लाभ रहे होते तो हमारे पूर्व पुरुषों में भी इस प्रथा का प्रचलन रहा होता, साधारण मंगल आभूषणों के अतिरिक्त भारी सोने, चाँदी के जेवरों का प्रचलन हमारी अपनी संस्कृति से नहीं वरन् यवनों ने यह विकृति भारतीय जीवन में पैदा की है। वैदिक साहित्य में इस तरह के गहने का कहीं दर्शन नहीं है। स्त्रियाँ सरल, स्वाभाविक शृंगार फूल और पत्तों से कर लेती थीं, उनमें वासना को बढ़ाने वाला कोई दोष नहीं होता था और न उनसे सामाजिक तथा राष्ट्रीय व्यवस्था में किसी तरह की गड़बड़ी पैदा होती थी। स्त्रियाँ अपने गुणों से सजती हैं। मन की निर्मलता और स्वभाव की पवित्रता से ही उनका सच्चा शृंगार होता है।

सच पूछा जाय तो नारी का सतीत्व ही वह आभूषण है जिसके द्वारा वे अपने पतियों को अपने आज्ञानुवर्ती बनाये रख सकती हैं। इससे वे समाज की भावी पीढ़ी अपने बालकों का निर्माण अधिक पवित्रता, एकाग्रता एवं निपुणता के साथ कर सकती हैं। इस तरह वे अपने व्यक्तिगत कर्तव्यों का यथाविधि पालन करती रह सकती हैं।

पुरुष वर्ग यदि आभूषणों की चिन्ता से मुक्त किया जा सके तो उनकी कार्य क्षमता बढ़ सकती है और रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठ सकता है।

लज्जा और विनय भारत की देवियों के आभूषण कहे गये हैं। यह उनके गुण विकास की दृष्टि से ही कहा जाता है। कोई भी गुणशील स्त्री अपनी गृहस्थी को अधिक संयत और सुखी कर सकती है। वेद-नियंता का आदेश है—

अघोर चक्षुरपतिघ्नी स्योनाशग्मा सुशेवासुयमा गृहेभ्यः ।
वीर सूर्देवृकामा स त्वयैधिषीमहि सुमनस्य माना ॥

"हे वधू ! तू प्रियदर्शिनी होकर शुद्ध अन्तःकरण से परिवारीजनों का हित कर। इससे घर में सुख और सम्पत्ति की वृद्धि होगी।"

हमारी सन्तानें ज्ञानवान्, धर्मवान, धनवान और शक्ति सम्पन्न बनें, इसके लिए स्त्रियों का जीवन विलासिता की सामग्री से नहीं, गुण और कष्ट सहिष्णुता से ओत-प्रोत

होना चाहिए। स्त्रियाँ शिक्षित हों, विचारवान् हों तभी उनसे राष्ट्र-निर्माण के कार्यक्रमों में सहयोग की आशा की जा सकती है। इसके लिए सर्वप्रमुख आवश्यकता तो यही है कि वे ऐसी संकीर्ण विचारधाराओं से उन्मुक्त हों और कर्तव्य-पालन की ओर उनका ध्यान अधिक से अधिक रहे। कर्तव्य में वह सारे उत्तरदायित्व आ जाते हैं जिनका पारिवारिक सुव्यवस्था से सम्बन्ध है । पर आभूषणों से अधिक लगाव होना यह एक ऐसी समस्या है जिससे शेष सभी क्षेत्रों पर कुप्रभाव पड़ता है। अर्थ-व्यवस्था में ही नहीं, मनुष्य का नैतिक जीवन भी इस कुरीति के कारण विकृत हुए बिना नहीं रहता। समाज और राष्ट्र की व्यवस्था में भी इससे गड़बड़ी ही उत्पन्न होती है।

नारी जाति स्नेह और सौजन्य की देवी है, वह पुरुष की निर्मात्री है। किसी भी राष्ट्र का उदय नारी जाति के उत्थान से ही होता है इसलिए अब इस कुरीति का उन्मूलन कर उन्हें निर्माण क्षेत्र मे आगे बढ़ाने की बड़ी तीव्र आवश्यकता अनुभव की जा रही है। पर इसमें कोई बाह्य हस्तक्षेप कारगर नहीं हो सकता। इस कुरीति को कोई दूसरा दूर नहीं कर सकता । जेवर और गहनों के प्रति अरुचि उनमें समझ उत्पन्न करने से ही हो सकती है। विचारवान् स्त्रियों को स्वयं ही इस दिशा में कुछ करने के लिए प्रोत्साहन मिलना चाहिए। जिनकी समझ में आभूषणों की निरर्थकता की बात आ जाय उन्हें इस शिक्षा का प्रसार तेजी से करना चाहिए।

यह युग हमारे विकास का युग है। राजनैतिक स्वाधीनता मिले हुए हमें काफी दिन हो गये पर परम्परागत कुरीतियाँ अभी ज्यों की त्यों हैं। इन्हें दूर करने से ही अपनी सर्वांगीण उन्नति का द्वार खुल सकता है। यह उन शिक्षित नारियों के लिए आह्वान है कि वे भारतवर्ष के आर्थिक तथा नैतिक स्तर के विकास मे अपना सहयोग दें। इस पुण्य कार्य के लिए सुवर्ण या रजत के आभूषणों की आवश्यकता नहीं, वरन् उन्हें गुणों से अलंकृत होना होगा। गुण ही नारी का सच्चा आभूषण है। शीलवान होना किसी भी अलंकार से बढ़कर है। अब उन्हें ऐसे ही गहने ग्रहण करने चाहिए।

कामुकता की कुचाल न चलने दें

नारी का स्थान भारतीय संस्कृति में बहुत ही पवित्र और ऊँचा है। उसे देवी की संज्ञा दी गई है। स्त्रियों के नाम के आगे देवी शब्द लगाया भी जाता है, बहुधा शकुन्तला देवी, सावित्री देवी, कल्याणी देवी, रमा देवी, सरस्वती देवी आदि। 'देवी' शब्द समन्वित नाम लड़कियों के रखे जाते हैं, इससे स्पष्ट है कि हिन्दू जाति सदा से नारी को देवी के रूप में पूज्य एवं पवित्र मानी जाती रही है। कन्या, बहिन और माता के रूप में उन्हें वन्दनीय एवं पूज्यनीय माना जाता रहा है। कन्यादान के समय माता-पिता तक अपनी पुत्रियों के और भाई अपनी छोटी बहिनों के चरण स्पर्श करते हैं, माता और बड़ी बहिन तो चरण स्पर्श की अधिकारिणी मानी ही जाती है। देवी उपासना में कन्या भोजन का महत्व ब्राह्मण भोजन से बढ़कर माना गया है। गायत्री अनुष्ठानों के, यज्ञों के अन्त में सर्वत्र कन्या भोजन होता है।

देवताओं के नामों में उनकी धर्मपत्नियों का नाम समन्वित है। लक्ष्मीनारायण, गौरीशंकर, सीताराम, राधेश्याम, शचीपुरन्दर आदि नामों में न केवल उनकी पत्नियों के नाम उनके नामों के साथ जोड़े गये हैं वरन् उन्हें प्राथमिक भी दी गयी है। रामसीता न कहकर- उन्हें सीताराम इसलिए कहा जाता है कि आदर और पवित्रता की दृष्टि से सीता का स्थान राम से अधिक ऊँचा है। यही बात गौरीशंकर, राधेश्याम, लक्ष्मीनारायण आदि के नामों के सम्बन्धों में भी है। नारी मात्र को पूज्य और पवित्र भाव से देखना, उनके प्रति कामुकता की पाप दृष्टि न रखना हिन्दू संस्कृति की एक बहुत भारी विशेषता रही है।

शिवाजी ने मुसलमान राजा की युवती राजकन्या को प्रार्थना करने पर भी पत्नी रूप में स्वीकार न किया और उसे सम्मानपूर्वक उसके पिता के पास भेज दिया । स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी ने अर्जुन के सामने काम प्रस्ताव रखा तो उसने उसे अस्वीकार कर दिया और उर्वशी को अपनी माता घोषित किया। जब दूसरी ओर से प्रस्ताव आने पर भी पुरुष उसे स्वीकार न करते थे तब अपनी ओर से कोई कुचेष्टा करने या पाप दृष्टि से देखने का कोई प्रश्न ही न था। लक्ष्मण ने वनवास काल में सीता के आभूषण रास्ते में पड़े मिलने पर केवल चरणों में पहने जाने वाले नूपुर ही पहचाने, क्योंकि उन्होंने चरणों से ऊपर निगाह उठाकर अपनी युवा भावी को कभी भी नहीं देखा था। यही यहाँ की संस्कृति और यहाँ की परम्परा थी।

यहाँ नारियाँ पतिव्रत धर्म को अपने जीवन का प्रधान धर्म कर्तव्य समझती थीं। वे पर पुरुष का सम्पर्क तो दूर, स्वप्न में भी उनका चिन्तन न करती थीं। रामायण में जिन चार प्रकार की पतिव्रताओं का वर्णन है उनमें से बहुसंख्यक नारियाँ इस देश में ऐसी ही होती थीं जो पर पुरुष का गलत दृष्टिकोण से भी कभी चिन्तन न करती थीं, प्रत्येक पुरुष को उसकी आयु के हिसाब से पिता, भाई या पुत्र मानती थीं। पतिव्रता नारियों के उज्ज्वल चरित्र से भारतीय इतिहास का पन्ना-पन्ना उज्ज्वल हो रहा है। उस पर कभी जरा-सी आँच आती दिखाई दी है तो उन्होंने उसके बदले में खुशी-खुशी प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। चित्तौड़ की रानियों का ऐसा ही इतिहास है। ऐसे चरित्रों के बाहुल्य से हिन्दू जाति का मस्तक सदा से ऊँचा रहा है। यह बात केवल स्त्रियों तक ही सीमित न थी, पुरुष भी पत्नीव्रत धर्म को उतना ही पवित्र और अक्षुण्ण मानते थे जितना स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म को मानती हैं। वे भी पर नारी का कभी चिन्तन न करते थे। व्यभिचार के प्रायश्चित में बड़े कठोर विधान शास्त्रों में लिखे हुए हैं उनमें से एक

यह भी है कि- "व्यभिचारी मनुष्य अपने पाप के प्रायश्चित के लिए अपने आपको लोहे के गर्म खम्भे से चिपकाकर अपना प्राणान्त कर ले।"

व्यक्तिगत जीवन में विवाहित केवल सन्तान उत्पन्न करने की आवश्यकता अनुभव करने पर काम सम्बन्ध केवल एक सामाजिक कर्तव्य के रूप में करते थे, वह भी गुरुजनों और देवताओं की आज्ञा लेकर गर्भाधान संस्कार का शास्त्रीय विधान है, उस धर्म प्रक्रिया के साथ ही विवाहित नर-नारी भी यौन सम्बन्ध करते थे। उसके अतिरिक्त उनका साधारण जीवन विषय-विकारों से सर्वथा दूर रहता था । यही यह विशेषता थी कि जिसके कारण हमारे पूर्वजों का शारीरिक स्वास्थ्य, मनोबल, नैतिक स्तर और आदर्श इतना ऊँचा रह सका। ये संसार भर के मनुष्यों के सामने अपने दिव्यों गुणों और दिव्य आदर्शों के कारण महामानव, देवपुरुष सिद्ध होकर, जगद्गुरु और चक्रवर्ती शासक का सम्मान प्राप्त कर सके। उनके अलौकिक चरित्रों और पराक्रमों के मूल में नारी के प्रति पवित्र भावना ही प्रधान रूप से शक्ति स्रोत थी।

ब्रह्मचर्य की महत्ता किसी से छिपी नहीं है। हनुमान, भीष्म, शंकराचार्य, दयानन्द आदि महामानवों के पीछे उनकी ब्रह्मचर्य साधना का भारी महत्त्व था। यों साधारण गृहस्थ भी उस जमाने में थोड़े अपवाद के साथ ब्रह्मचारी ही था। फलस्वरूप इस जीवन रस ब्रह्मचर्य की रक्षा के कारण उनके शरीरों के लिए न केवल सैकड़ों वर्षों का दीर्घ जीवन एवम् प्रबल पराक्रम सम्भव हो सका वरन् वे इतना मनोबल और आत्मबल भी सम्पादित कर सके कि उनके चरित्र में हर ओर महानता परिलक्षित होती थी। ब्रह्मचर्य केवल शरीर की वीर्य रक्षा को ही नहीं कहते वरन् सच्चा ब्रह्मचर्य वह मानसिक दृष्टिकोण है, जिसमें नारी मात्र के प्रति पवित्र पूज्य एवं उच्च भावों की स्थापना है। काम दृष्टि से उनका चिन्तन तक न किया जाय। उन्हें पवित्रता की, शुद्धता की साक्षात् प्रतिमा माना जाय।

शरीर विज्ञान और मनःशास्त्र के ज्ञाता जानते हैं कि मानव देह में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विद्युत शक्ति रहती है जिसे प्राण तेज या ओजस् कहते हैं। यही मनुष्य का मूल जीवन स्रोत है। यदि इसे सुरक्षित रखा जा सके तो न केवल शरीर स्वस्थ, नीरोग, दीर्घजीवी रह सकता है वरन् मानसिक शक्तियाँ भी अपना पूर्ण विकास कर सकती हैं। साहस, धैर्य, उत्साह, पुरुषार्थ, प्रतिज्ञा पालन, दृढ़ता आदि मानसिक गुण जिनके बिना जीव एक प्रकार से निर्जीव ही रहता है, इस ओजस्-शक्ति के ही चमत्कार हैं। यही प्राण जब परिपक्व होकर अध्यात्म भूमिका को प्रभावित करता है तो मनुष्य अत्यन्त उच्चकोटि का दृष्टिकोण अपना सकता है और जीवनक्रम में उन कार्यक्रमों को सम्मिलित कर सकता है। जिनके कारण वह तुच्छ प्राणी न रहकर अपने को सृष्टि का मुकटमणि सच्चे अर्थों में सिद्ध कर सकता है। ब्रह्मचर्य की महिमा शारीरिक क्षेत्र तक सीमित नहीं, उसका सच्चा लाभ तो मानसिक एवम् अध्यात्म भूमिका के विकास का ही है।

कोई व्यक्ति शरीर से ब्रह्मचारी रहे और मन से काम चिन्तन करता रहे तो उसे ब्रह्मचर्य का लाभ नाममात्र को ही होगा। वास्तविक लाभ तो मन से उस विकार का सर्वथा त्याग करने में ही है। विलासिता और कामुकता की विचारधारा जिसके मस्तिष्क में हर घड़ी घूमती रहती है वह निश्चित रूप से उस ओजस् चुम्बक तत्व से दिन दिन खोखला होता जाएगा जो पुरुष में हर प्रकार के पुरुषार्थ का सृजन करता है । कामुक व्यक्ति शरीर से सुन्दर और दिमाग से तेज भले ही किसी प्रकार बने रहे पर उनके मानसिक और आध्यात्मिक सभी सद्गुण धीरे-धीरे मूर्च्छित हो जाते हैं। ऐसे आदमी न तो किसी बात पर दृढ़ रह सकते हैं और न कठिनाई के समय साहस बटोर कर उसका हँसते हुए मुकाबला कर सकते हैं। छोटी-छोटी समस्या को लेकर उन्हें घबराया हुआ, परेशान देखा जा सकता है। चिन्ता, खिन्नता, निराशा, घबराहट उन्हें घेरे रहती है, दूसरों को वे केवल आशंका और अविश्वास की दृष्टि से ही देख सकते हैं। सच्चे मन से किसी के साथ भी प्रेम कर सकना उनके लिए सम्भव नहीं होता।

आज कामुकता की दुष्प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। यह मानव जीवन की श्रेष्ठताओं और विशेषताओं को बर्बाद करने वाली एक सत्यानाशी डायन है। कहते हैं कि डायन बच्चों का भीतर ही भीतर कलेजा खा जाती है और वह सूख-सूखकर कुछ ही दिनों में मर जाता है। कामुकता की डायन मानव जाति के होनहार आशा कुसुमों के भीतरी कलेजे इस बुरी तरह चबाये जा रही है कि बेचारे किसी प्रकार जीवित कहलाने वाले, चलते-फिरते साँस लेते दीखने वाले पुतले मात्र कहे जाते हैं। उनके हौंसले हर दिशा में पस्त दीखते हैं। अपने पूर्वजों को शारीरिक और मानसिक तुलना में हम आज कहाँ जा पहुँचे । इस अधःपतन का नंगा दृश्य जब आँखों के सामने आता है तो आँसू बरसने लगते हैं।

आज सभ्यता की उन्मत्त हथिनी ने उन मर्यादाओं को चकनाचूर करने का बीड़ा उठाया है। जिधर देखिए कामुकता का विष बिखरा पड़ा नजर आता है। वह वातावरण पैदा किये जा रहे हैं जिनके प्रवाह में साधारण जनता के कच्चे मस्तिष्क आसानी से कुमार्गगामी हो सकें। कामुकता मनुष्य की आन्तरिक दुर्बलता है। मानव प्राणी को शक्ति से वंचित कर देने की यह शैतानी साजिश है। यदि बन्धन उठा लिये जायँ, प्रतिबन्ध और निषेध न रहे तो सारी मनुष्य जाति का उसी प्रकार अन्त हो सकता है जिस प्रकार विलासी मुसलमान बादशाह अपनी मौत आप मर गये । जरा से धक्के ने उन्हें चारों खाने चित्त पछाड़ दिया; यह दुर्गति कामुकता की दुष्प्रवृत्तियाँ हर मनुष्य की, हर समाज की कर सकती हैं। आज इसी सत्यानाश के राजमार्ग का उद्घाटन तुमुल जयघोषों के साथ हो रहा है।

कामुकता पूर्ण साहित्य की बाढ़ आई हुई है। गन्दी कहानियों की पत्रिकाएँ बरसात की मेंढ़कियों की तरह उपज पड़ी हैं और अपनी सफलता पर टर्र-टर्र करती उछलती-कूदती फूली नहीं-समातीं। किसी बुकसेलर की दुकान पर जाइये, आधी से अधिक दुकान गन्दे ऐयाशी के साहित्य से भरी होंगी। जिस दुकान या मकान में प्रवेश कीजिए वहाँ किसी नौजवान औरत का तीखे हाव-भाव वाला अधनंगा चित्र जरूर टँगा होगा। सिनेमा तो विश्वविजयी रावण की तरह दसों मुखों से ठहाका मारकर अट्टहास कर रहा है। उसके लिए एक-एक शहर में लाखों रुपयों की इन्द्रसभा जैसी इमारतें बनी हैं, जिसमें अप्सराओं की आत्मा नाचती हैं। इस इन्द्र अखाड़े को देखने के लिए बाल-वृद्ध, नर-नारी उसी प्रकार दौड़ते हैं, जैसे देवी वरदानों की लूट का समाचार सुनकर भिखमंगे दौड़ते हैं। लोगों को लगता है, इन्द्रसभा स्वर्ग से उतार कर इस मृत्युलोक में सिनेमा के रूप में आई है। इसे देखने में ही सच्चा लाभ है। गरीब मजदूर अपना पेट काटकर, विद्यार्थी अपने जर्जर शरीर पिता की हड्डियों में से निचुड़ी हुई कमाई को फीस और कापी के बहाने प्राप्त कर इसे सिनेमा देवता पर श्रद्धापूर्वक अर्पित करता है। दिवाली जैसी चमचमाती हुई रोशनी से लोगों की आँखों में चकाचौंध पैदा करता हुआ सिनेमा खूब फल-फूल रहा है।

कभी आपने विचार किया कि इन्हीं गन्दी किताबों, गन्दी तस्वीरों, गन्दे गाने भरे रिकार्डों से जन-साधारण के मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ता है। निश्चित रूप से उनकी पशुता भड़कती है। कामुकता से अश्लील आकांक्षाएँ जागती हैं और वासना की आग भड़कती है। इसका परिणाम केवल एक ही हो सकता है– हमारे ओजस् प्राण चुम्बकत्व का वह क्षरण, जिसके अभाव में हम भीतरी दृष्टि से खोखले, निष्प्राण, प्रतिभाविहीन, आलसी, अनैतिक और कुमार्गगामी ही हो सकते हैं।

इस सर्वनाश के संगठित आसुरी षड्यन्त्र को हमें आँख बन्द करके देखते ही रहना नहीं है वरन् इस आग में अपने बच्चों को जलने से बचाने के लिए कुछ करना भी है। यों इसके रोकने में राजसत्ता के सहयोग की भारी आवश्यकता है, पर जब तक यह कानूनी पेचीदगियों का बहाना बनाकर इस ओर उपेक्षा करती है तब तक हम स्वल्प साधन सम्पन्न नागरिक भी हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने की अपेक्षा कुछ तो कर ही सकते हैं।

हमें अपना, अपने बच्चों का, अपने समाज का पौरुष नष्ट होने से बचाना अभीष्ट हो तो कामुकता की प्रवृत्तियों से बचाव करना भी आवश्यक है। इनके द्वारा जो हानि हमारी हो सकती है, उस पर बार-बार विचार करें उसके खतरे से जन-साधारण को सचेत करें और यह प्रतिज्ञा करें कि हम अपने व्यक्तिगत जीवन में कामुक प्रवृत्तियों से दूर रहकर नारी मात्र के प्रति परम-पवित्र भावनाएँ रखेंगे। इसी प्रकार नारियाँ पुरुषों के प्रति अपना दृष्टिकोण बना सकती हैं। अश्लीलता के नरक से बचकर संयमशीलता के स्वर्ग की ओर कदम बढ़ाना इस युग निर्माण की पुनीत वेला में हम सब के लिए नितान्त आवश्यक है।

कामुक उच्छृंखलता के दूरगामी दुष्परिणाम

सुप्रजनन की दृष्टि से संयमी लोग ही सफल एवं सक्षम होते हैं। कामुकों में रति-कौशल हो सकता है, किन्तु वे बीज निर्माण के क्षेत्र में सर्वथा पिछड़े हुए पाये जाते हैं। ऐसे लोगों द्वारा व्यक्तित्व सम्पन्न सन्तान की आशा नहीं की जा सकती। बलिष्ठ और सुन्दर लोग अपनी अनुकृति को जन्म दे सकते हैं। इसी प्रकार प्रज्ञा, प्रतिभा और सुसंस्कारिता के क्षेत्र में भी उसी स्तर के सृजनकर्त्ताओं की आवश्यकता पड़ती है। इस सन्दर्भ में संयम, सदाचार को जितना महत्त्व दिया जा सके, देना चाहिए।

प्रजनन विशेषज्ञ जॉन मैक्लाइड की गणना के अनुसार स्वस्थ मनुष्य के एक मिलीमीटर वीर्य में १ करोड़ ७० लाख शुक्राणु होने चाहिए, पर इन दिनों औसत अमेरिका में वे घटकर साठ-सत्तर लाख से अधिक नहीं पाये जाते हैं। किसी-किसी वर्ग या क्षेत्र में तो उनकी संख्या और भी कम होकर ४० लाख से भी कम रह गई। इसका प्रभाव न केवल प्रजनन पर पड़ता है, वरन् रति कर्म में शारीरिक अक्षमता के रूप में भी देखा जाता है। मानसिक कामुकता चिन्तन एक बात है, उसे तो वृद्धजन भी करते रहते हैं, किन्तु शारीरिक क्षमता विशुद्ध रूप से उस क्षेत्र के स्नायुविक, रक्त-प्रवाह एवं ऊर्जा प्रदान करने वाले उन तत्त्वों पर निर्भर है, जो शुक्राणुओं में पाये जाते हैं।

इन दिनों कामुकता निस्सन्देह बढ़ रही है। उसे अश्लील साहित्य तथा फिल्म-चित्रों ने विशेष रूप से भटकाया है। ऐसे क्लब और चकले भी आग में घी का काम करते हैं और मानसिक प्रवाह को घसीट कर कहीं से कहीं ले जाते हैं। इतने पर भी यह देखने योग्य है कि क्या इस चिन्तन में निरन्तर निरत रहने वाले शारीरिक दृष्टि से भी रति कर्म के लिए उपयुक्त क्षमता बनाये हुए हैं। उसकी जाँच-पड़ताल से स्थिति क्रमशः निराशाजनक बनती जा रही है, इससे मनुष्य नपुंसकता की ओर बढ़ रहे हैं। यह तथ्य न केवल पुरुषों पर लागू होता है, वरन् नारियों पर भी यही छाया घिरी हुई है। इसी कमी के कारण प्रजनन की उपलब्धियाँ भी शिथिल स्तर की होती हैं। सन्तानें दुर्बल, निस्तेज और आलसी होती जाती हैं। जवानी में बुढ़ापा घिर जाने का यह स्वाभाविक परिणाम है।

अब तक बढ़ती हुई नपुंसकता का कारण मनोवैज्ञानिक समझा जाता था और अनुमान लगाया जाता था कि यह लज्जा, भय, संकोच एवं आत्महीनताजन्य है। कई प्रसंगों में असफल रहने वालों की मान्यता बन जाती है कि वे अपना पौरुष गँवा बैठे। बस इतने भर से वैसा मन ढल जाता है और सचमुच ही नपुंसकता आ घेरती है। ऐसे लोगों का उपचार मनोबल बढ़ाने, उत्साह प्रदान करने एवं सफलता की अनुभूति कराने वाले उपायों के द्वारा किया जा सकता है, किन्तु जब चूल्हे में ईंधन कम पड़े, भण्डार चुकने लगे, तो उन उपचारों से भी क्या बनेगा। वृद्धता आने पर, शारीरिक शिथिलता बढ़ जाने पर उत्तेजना देने वाले अवसर प्रस्तुत रहने पर भी कुछ प्रत्यक्ष पुरुषार्थ बन नहीं पड़ता।

घटते हुए पौरुष का न केवल दम्पत्ति सन्तोष पर, वरन् सन्तानोत्पादन की अक्षमता के रूप में भी देखा जाता है। इतना ही नहीं, उससे मनुष्य की कर्मशीलता, स्फूर्ति, तत्परता, क्षमता, दक्षता पर भी प्रभाव पड़ता है। बूढ़ों की तरह पौरुषहीन भी अपनी घटी हुई क्षमता के कारण इच्छा रहते भी कहने लायक पराक्रम किसी भी क्षेत्र में नहीं कर पाते। यह प्रकारान्तर से समर्थता का अवमूल्यन है।

शुक्राणु की घटती हुई संख्या के साथ घटते हुए पौरुष का संकट क्यों बढ़ता जा रहा है, इसके कई कारण बताये जाते है। फसलों पर विषैले रसायनों का छिड़काव घूम-फिर कर आहार द्वारा रक्त में मिलता और कीटाणुओं की तरह शुक्राणुओं को भी मारता है, यह एक अनुमान है। इसके अतिरिक्त स्वाद प्रेरित व्यंजनों में पोषण तत्त्व की न्यूनता रहना भी इसका कारण है। चिन्ता, आशंका अनिश्चितता, निराशा, खीज, असफलता जैसे कारणों से भी उद्वेग रहने पर बढ़ा हुआ मानसिक तनाव शरीर की हर क्षमता को घटाता है। उसी घटोत्तरी में शुक्राणुओं की कमी एवं शिथिलता भी एक कारण हो सकता है। ऐसे-ऐसे और भी कई कारण सोचे जा रहे हैं, उनके कारण के परामर्श दिये जा रहे है, ताकि बढ़ती हुई सर्वतोमुखी अक्षमता की रोकथाम सम्भव हो सके।

सर्दी-गर्मी से सर्वथा बचे रहने वाले, एयर कण्डीशन घरों में रहने वाले लोग भी प्रकृति प्रदत्त ऋतु उत्तेजनाओं से वंचित रह जाते हैं। सुविधा बढ़ने पर भी दक्षता में कमी आती है। इस दृष्टि से वन प्रदेश के वनवासी भाग्यवान हैं, जो सर्दी-गर्मी सहने के अभ्यस्त रहने से अपनी स्वास्थ्य-सम्पदा अक्षुण्ण बनाये रहते हैं।

साधारणतया एक बार का खाली किया गया वीर्य भण्डार भरने में प्रायः ४८ घण्टे लगते हैं। जो भण्डार भरे रहने की आवश्यकता नहीं समझते और उत्पादन की तुलना में खर्च अधिक बढ़ा देते हैं, ब्रह्मचर्य का अनुबन्ध नहीं पालते, उन्हे भी अपनी भूल का जल्दी ही पता चल जाता है और वे क्रमशः क्षमता गँवाते चले जाते हैं।

शुक्राणुओं की संख्या ही नहीं, उनकी सजीवता, संरचना, स्फूर्ति भी पौरुष को अक्षुण्ण रखने के लिए आवश्यक होती है। संख्या घटना ही नहीं, उनमें प्रखरता घटना भी पौरुष घटने का एक बड़ा कारण है। यह कमी क्यों पड़ती है? इसका कारण क्षेत्रीय नहीं, समूचे शरीर की समर्थता पर निर्भर है। शरीर बलिष्ठ, परिपुष्ट हो तो उनके शुक्राणुओं समेत अन्यान्य घटक समर्थ पाये जाएँगे। रोगी और दुर्बल काया का हर घटक इसी स्थिति में देखा जाता है, उसकी दक्षता में उसी अनुपात से कमी पड़ती है। इस दृष्टि से मात्र शुक्राणुओं की शिथिलता, न्यूनता दूर करने का काम स्थानीय उपचार कारगार नहीं हो सकता। इसलिए पौरुष बढ़ाने वाली दवाओं की ढूँढ़-खोज करने की अपेक्षा यही उत्तम है कि स्वास्थ्य सम्वर्द्धन की समूची समस्या पर विचार किया जाय और उसमें जिन कारणों से भी व्यवधान पड़ता हो, उन सभी का निराकरण किया जाय।

परिस्थितियों का मनुष्य के स्वभाव पर प्रभाव पड़ता है– यह बात आंशिक रूप से ही सत्य है। कितने ही विलक्षण व्यक्ति संसार में ऐसे हुए हैं जिन्होंने परिवार या सम्पर्क क्षेत्र के प्रचलनों का उल्लंघन करके अपनी परिस्थितियों में पले हुए व्यक्ति सामान्य स्तर के ही बने रहे।

कहा जाता है कि व्यक्तित्व का निर्माण कच्ची उम्र में होता है। स्वभाव का बहुत बड़ा भाग बचपन में ही बन चुका होता है। जो कमी रहती है वह किशोरावस्था में पूरी हो जाती है। इसके बाद पच्चीस की आयु तक पहुँचते-पहुँचते ऐसी मनःस्थिति बन जाती है, जिसमें किसी बड़े परिवर्तन की आशा बहुत ही कम रह जाती है। यह मान्यता अधिकांश लोगों पर तो लागू होती है, पर उन प्रसंगों को भी झुठलाया नहीं जा सकता जिसमें अनेक ने परिपक्व आयु में भी ऐसे पलटा खाया जिसकी पिछली लम्बी अवधि से चले आ रहे ढर्रे के साथ कोई संगति नहीं बैठती। यदि उपदेश-परामर्श मिलने की बात को इसका कारण बताया जाय तो भी वह गले नहीं उतरती, क्योंकि इस प्रकार के उपदेश उसने पहले भी अनेक बार सुने होते है। ऐसे अप्रत्याशित परिवर्तनों में किसी देवता या सिद्धपुरुष का कोई बड़ा हाथ नहीं रहा होता, वरन् तथ्यतः वे उभार भीतर से ही उमंगे होते हैं। भले ही श्रेय देने के लिए उन्हें किसी व्यक्ति विशेष का अनुदान-परामर्श कहकर मन समझा लिया जाय।

एक ही माता-पिता से जन्मे, एक ही वातावरण में पले, एक जैसे घटनाक्रमों से होकर गुजरे बच्चों के स्वभाव में क्यों अन्तर पाया जाता है? उनमें से किसी का व्यक्तित्व प्रखर और किसी का मन्दमति, कुसंस्कारियों जैसा पिछड़ा क्यों होता है? इसका उत्तर सामान्य बुद्धि के लिए दे सकना कठिन है। अटकलें लगाने पर भी वे समाधानकारक नहीं होतीं। फिर इसे भाग्य विधान, विधाता के लेख

आदि कहकर मन समझाया जाय? बात इससे भी नहीं बनती, क्योंकि दूसरे ही क्षण यह प्रश्न उठता है कि विधाता ऐसा पक्षपात क्यों करता है? किसी का भाग्य औंधा, किसी का सीधा लिखने में उसे क्या मजा आता है? ग्रह-नक्षत्र अकारण किसी पर प्रसन्न और किसी पर अप्रसन्न ही क्यों होते हैं? किसी को उठाने, किसी को गिराने में उन्हें क्यों अपना समय लगाने और झंझट उठाने का शौक चर्राता है।

वर्कले यूनिवर्सिटी के जीवविज्ञानी जैक लॉक ने सैकड़ों व्यक्तियों के बचपन से लेकर बुढ़ापे तक के उतार-चढ़ावों का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है। वे कहते हैं कि परिस्थितियों के साथ-साथ मनुष्य का दृष्टिकोण और व्यवहार तो बदलता है, पर मूल प्रकृति में नगण्य-सा ही अन्तर हो पाता है। बचपन के हँसोड़ जीवन के अन्त तक प्रायः वैसे ही बने रहे। इसी प्रकार एकान्तप्रिय के झेंपू, शर्मीले लोगों की वह आदत गयी ही नहीं। झगड़ालू आदत भी ऐसे ही है जो व्यक्तित्व के साथ इस प्रकार गुँथी रहती है, मानो वह जन्म के समय में ही साथ आयी हों।

स्वभाव के परिवर्तन में कोई बड़े आघात तो कभी-कभी अपना प्रभाव दिखाते भी हैं, पर सामान्यतया उसमें कोई बड़ा अन्तर नहीं आता। किसी घनिष्ट की मृत्यु, भारी हानि-लाभ, मानापमान, भयंकर रोग, दुर्घटना स्थान या व्यवसाय में भारी हेर-फेर जैसे बड़े कारणों में कई बार जीवन की दिशा बदलती देखी गई है और साथ ही प्रकृति में भी परिवर्तन होते पाया गया है। किन्तु वैसी घटनाओं को अवसाद ही कहा जा सकता है। साधारणतया तो स्थिति ऐसी ही रहती है मानो व्यक्ति जन्म से ही किसी ढाँचे मे ढला हुआ आया हो। धातुएँ खदान से अपनी विशेषताएँ साथ लाती हैं। बाद में तो उन्हें गलाने, पीटने में आकृतियाँ ही बदलती रहती हैं। प्रकृति में अन्तर नहीं हो पाता।

फ्रान्सिस गाल्टन ने सन् १८९६ में अपनी विश्वविख्यात पुस्तक 'हेरीडिटी जीनियस' प्रकाशित करायी थी। उनका दावा था कि बुद्धिमान और व्यक्तित्व सम्पन्न माता-पिता ही अपने जैसी विशेषताओं वाली सन्तान को जन्म दे सकते है। ग्रन्थ प्रकाशित होने के कुछ समय बाद ही उस प्रतिपादन को संदिग्ध बताने वाले अन्य वैज्ञानिक सामने आये और उन्होंने ऐसे अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये जिनसे मूर्धन्य लोगों की सन्तानें गई-गुजरी निकली और पिछड़े लोगों के घरों में प्रतिभावान जन्मे।

वंश विज्ञान के अनुसंधानी एफ. ए. बुड्स ने बीज की महत्ता बताते हुए कहा है कि, "प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति प्रायः राजघरानों में ही जन्मे हैं और वैज्ञानिकों का उद्भव व्यवसायी परिवारों में हुआ है।" कार्लपियर्सन ने वातावरण का महत्त्व तो माना है पर साथ ही यह भी कहा है कि वातावरण की तुलना में वंश बीज का प्रभाव प्रायः सात गुना अधिक होता है।

सन्तान को श्रेष्ठता का जो उपहार सामान्य दम्पत्ति दे सकते हैं, वह यह है कि वे अपने व्यक्तित्व को निरन्तर इस महान प्रयोजन का उत्तरदायित्व वहन कर सकने को साधना में लगाये रहें। प्रकारान्तर से यह मनःक्षेत्र में सुसंस्कारिता परिपक्व करने की प्रक्रिया है। इसमें कामुकता, अश्लील चिन्तन एवं अवांछनीय क्षरण ; बचाव करने का ध्यान तो रखना ही होगा। साधना उच्च-स्तरीय व्यक्तित्वों का सान्निध्य, तीर्थसेवन, वातावरण सम्पर्क इसी निमित्त किये जाते रहे हैं। स्वाध्याय की महत्ता भी इसीलिए मानी गयी है। गर्भाधान की अवधि में माता को श्रेष्ठता का ही वातावरण मिले, उसके लिये आवश्यक है कि अमर्यादित प्रजनन तो रुकें ही, साथ ही ऐसा वातावरण भी बने जिससे कामुकता को प्रश्रय न मिलकर सत्प्रवृत्ति सम्बर्द्धन श्रेष्ठता को महत्त्व मिले। दायित्व न केवल व्यक्ति एवं परिवार का है वरन् सारे समाज का है यह मात्र आस्तिकता एवं आध्यात्मिकता का वातावरण बनने पर ही सम्भव है। सत्साहित्य का प्रचार, विस्तार एवं लोकरंजन के श्रेष्ठ माध्यम भी कामुकता विरोधी वातावरण बना सकते हैं। तभी श्रेष्ठ व्यक्तियों का विकास हो सकता है।

प्रजनन पर रोक लगे

नर और नारी, जितना भारी दायित्व यौनाचार में निरत होकर वहन करते हैं, वह सामान्य नहीं, असामान्य है। नारी अपना स्वास्थ्य और अवकाश पूरी तरह गवाँ बैठती है। नर को इस दुष्प्रवृत्ति के लिए प्रायः बीस वर्ष की सजा झेलनी पड़ती है। इतने दिनों उसे मात्र बढ़े हुए परिवार की अनेकानेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपना समस्त कौशल विसर्जित करना पड़ता है। इसी तथ्य को ध्यान मे रखते हुए, जिन्हें जीवन में कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य कर वे नए उत्पादन से बचते हैं और विश्व परिवार के वर्त सदस्यों को ही अपना समझ कर उनके अभ्युदय ठीक वैसे ही प्रयत्न निष्ठापूर्वक करते रहते हैं, जितना विरासत छोड़कर अपने प्रजनन की जिम्मेदारी निभाने खटना पड़ता है।

इन दिनों यह आवश्यकता कई कारणों से कई गुनी बढ़ गई है। एक तो इसलिए कि बीसवीं सदी के अन्तकाल में सूक्ष्म जगत सृजन और समापन के सन्दर्भ में अत्यन्त उलझा रहेगा। उसके दुष्प्रभाव इन दिनों की उत्पत्ति पर पड़े बिना रह नहीं सकते। उसके कारण अनेक त्रास सहने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि इक्कीसवीं सदी के अन्त तक प्रजनन रोका जाय और इक्कीसवीं सदी में अवतरित होने वाली दिव्य आत्माओं से अपनी वंश परम्परा को धन्य होने का लाभ उसी प्रकार प्राप्त किया जाय, जैसा कि तपस्वी अपनी संयम साधना का प्रतिफल सिद्धियों के, विभूतियों के रूप में प्राप्त करते रहे हैं।

दूसरा कारण यह है कि इन दिनों हर नर-नारी के लिए महाकाल का आमन्त्रण और युग धर्म का निमन्त्रण यह है कि नारी पुनरुत्थान के लिए सर्वतोभावेन समर्पित

हों। पीढ़ियों से चलते आ रहे अनाचार का प्रायश्चित करते हुए पूर्वजों की भूलों का परिमार्जन करें। देश, समाज को ऊँचा उठाने के लिए कोई समय ऐसा भी आता है, जिसकी कीमत सामान्य दिनों की तुलना में अनेक गुनी अधिक होती है। युद्धकाल में कई बार देश के हर समर्थ को सेना में अनिवार्यतः भरती किया जाता है। समझा जाना चाहिए कि ईश्वर के तत्त्वावधान में हर समर्थ को, आधी जनसंख्या को प्राण दिए जाने, उसके प्राचीन परम्परा में पुनः सुसज्जित करने की ठीक वेला यही है। इसमें लोभ-मोह को, विशेषतया काम-कौतुक की उपेक्षा की जा सके, तो हर किसी को अपने-अपने ढंग से थोड़ा-बहुत कुछ करने का ऐसा आधार बन सकता है, जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की जा सके और अपना समाज फिर विश्व का सर्वतोमुखी नेतृत्व कर सके। यह बुद्धकाल में उभरे परिव्राजकों, परिव्राजिकाओं के निकल पड़ने जैसा समय है। इसी आधार पर आधी दुनिया के कल्याण की श्रेय-साधना बन पड़ सकती है।

तीसरी बात यह है कि संसार पर अणु युद्ध, प्रदूषण, स्वार्थ संघर्ष की ही तरह जनसंख्या वृद्धि की विभीषिका भी सर्वनाशी घटनाओं की तरह छाई हुई है। यह संकट न टला तो समझना चाहिए कि विभिन्न क्षेत्रों में चल रहे प्रगति उपायों में से एक भी सफल न हो सकेगा और विनाशकारी सम्भावनाओं का दौर दिन-प्रतिदिन अधिक भयावह होता चला जाएगा। कम से कम युग संधि के इन दिनों में तो इस सन्दर्भ में विराम लग सके, तो संसार भर की संस्कृति को साँस लेने का अवसर मिल सकता है।

उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त एक और भी चौथी बड़ी बात है कि इन दिनों नारी-कल्याण जिसे दूसरे शब्दों में विश्व-कल्याण कहा जा सकता है, उसके लिए अभीष्ट अवकाश मिल सकता है। यदि उठती आयु का उल्लास देश रक्षा की सैन्य सेवा में लगाने की तरह नियोजित किया जा सके, तो समझना चाहिए कि नवसृजन की बहुमुखी सम्भावनाओं का द्वार खुल ही गया है ।

हिमालय से भारत की प्रमुख नदियाँ निकलती और देश भर की जल आवश्यकता की अधिकांश पूर्ति करती हैं। समझना चाहिए कि चेतना क्षेत्र का हिमालय इन दिनों सारे विश्व में, शान्तिकुंज से अपने ढंग की बहुमुखी प्रक्रियाओं का सूत्रसंचालन कर रहा है। उन्हीं में एक महान प्रयोजन है, नारी जागरण। इसके लिए प्रचार-प्रसार की, महान परिवर्तन प्रस्तुत करने वाली प्रक्रिया तो चल ही रही है; व्यावहारिक मार्गदर्शन के लिए एक-एक महीने के, नौ-नौ दिन के प्रशिक्षण सत्र भी चलते हैं। इनमें प्रवेश पाने वाले नये स्तर पर चेतना-प्रेरणा शक्ति लेकर लौटते हैं। साथ ही यह मार्गदर्शन भी प्राप्त करते रहते हैं, जिसके अनुसार अपनी स्थिति से तालमेल बिठाते हुए वह परमार्थ पथ अपनया जा सके, जो स्वार्थ दृष्टि से भी उतना ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है।

जिनके अन्तरतम में इन दिनों नारी उत्थान की सेवा-साधना, तपश्चर्या करने का मन हो वे अपनी उपयुक्त दिशा पाने के लिए शान्तिकुंज हरिद्वार से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं और निरन्तर चलने वाले सत्रों में से किसी में प्रवेश पाने के लिए आवेदन कर सकते हैं।

जिन्हें इसी युग सन्धि अवधि में विवाह बन्धन में बँधना आवश्यक हो गया हो, वे कम से कम इतना तो करें ही कि दहेज-जेवर और धूम-धाम से सर्वथा रहित सम्बन्ध करें। ऐसा सुयोग अपने यहाँ न बन पा रहा हो तो उसके लिए शान्तिकुंज आकर वह विवाह कर लें। बिना किसी प्रकार का खर्च किए विवाह सम्पन्न करा लें। जिनके बच्चे हैं उनसे यह प्रतिज्ञाएँ करायी जाएँ कि वे कम से कम अपने लड़कों की तो खर्चीली शादियाँ करेंगे ही नहीं। नारी उत्कर्ष के लिए यह आन्दोलन भी अनिवार्य रूप से आवश्यक है। युग की आवश्यकता, कार्य की महत्ता समझते हुए हर भावनाशील प्रतिभावान को नारी जागरण की दिशा में कुछ न कुछ ठोस प्रयास करने ही चाहिए।

दृष्टि, वासना और रसना का नियन्त्रण

प्रकृति के हर कण में उपयोगिता भरी पड़ी है। उसमें विद्यमान क्षमताएँ प्रत्यक्ष तो नहीं दीख पड़तीं, पर उनका बारीकी से पर्यवेक्षण किया जाय तो अनेकानेक क्षमताएँ ऐसे दीख पड़ती हैं, जो अद्भुत और असाधारण प्रतीत होती हैं। भौतिक विज्ञान ने उन्हीं को खोजा और करतलगत किया है। इस आधार पर मनुष्य को प्रकृति शक्तियों का अधिष्ठाता बनने का अवसर मिला है। जितनी समर्थ प्रकृति है उतने ही सम्पन्न भी हो गया है। यह बात दूसरी है कि इन क्षमताओं का सही प्रयोजन के लिए सही रीति-नीति से उपयोग न बन पड़ा अन्यथा प्रकृति पुत्र अब तक उन शक्तियों का स्वामी बन गया होता जिन्हें देवोपम कह सकते थे ।

प्रकृति की दूसरी विशिष्टता है, उसकी सुन्दरता। नेत्रों का प्रत्यक्ष दर्शन और मनःसंस्थान का भाव-संवेदन मिलकर उस सर्वत्र बिखरे पड़े सौन्दर्य को मनोरम रूप में निखारते हैं। जमीन पर घास का बिछा हरा मखमली फर्श, वृक्षों की शोभा शृंखला, पुष्प-उद्यानों का सौरभ, मेघ-मालाएँ, प्रातःसायं की स्वर्णिम दिशाएँ, निर्झर, सरोवर आदि एक से एक बढ़कर अपनी सुन्दरता का [illegible] कराते हैं। मन का सौन्दर्य-बोध इस प्रकृति-सम्पदा

सौन्दर्य से भर देता है और जिधर भी देखा जाय उधर ही गुदगुदाने वाली छटा का बिखराव दीख पड़ता है। नेत्र इसमें सहायक होते हैं। यों उनके बिना भी कल्पना के सहारे बहुत कुछ काम चल जाता है। सूरदास जैसे अन्धे कवि विश्व में बिखरे सौन्दर्य को इतनी गहराई से देख लेते हैं जितना कि कोई आँखों वाला मन्दमति अनुभव न कर सके।

सौन्दर्य में आकर्षण होता है। उसे पास रखने या उसके पास रहने को मन करता है। बच्चे चन्दामामा के पास जाना चाहते हैं या उसे अपने पास बुलाना चाहते हैं। प्रभातकालीन उषा, मेघमाला का घटाटोप, जल प्रवाह, हरीतिमा आदि के भी निकट रहने को मन चलता है अथवा उन्हें अपने घर, उद्यान, पार्क में किसी प्रकार उपस्थित करके मन बहलाने का तरीका खोज निकाला जाता है। प्रकृति सौन्दर्य की समीपता लुभाती और लालायित करती है। देखकर आनन्द उठाने में तो कोई हर्ज नहीं पर खोट यहाँ से पैदा होता है, जहाँ उन्हें बटोरने और अधिकार में रखने की चेष्टा आरम्भ होती है।

लोग तोता, मैना आदि सुन्दर पक्षियों को उन्मुक्त आकाश में विचरण करते हुए देखने की अपेक्षा यह चाहते हैं कि उन्हें पिंजड़े में बन्द करके पास रखें । उनसे चाहे जो कहलवायें। चाहे जिस मुद्रा में रहने करने के लिए विवश करें। यही सौन्दर्य का दुरुपयोग है । बगीचे में खिले हुए फूलों को तोड़कर टोकरी में भर लेना, गुलदस्ता या हार पहन लेना, इसी दुष्प्रवृत्ति का द्योतक है कि सौन्दर्य को अपने स्थान पर रहकर सभी को प्रसन्नता प्रदान कराते रहने की स्थिति में रहने दिया जाय। उसे अपने अधिकार बन्धन में बाँध लिया जाय उसका परिणाम यह होता है कि उद्यान की शोभा चली जाती है है और फूल असमय ही कुम्हला जाते हैं। यह प्रकृति के साथ अनाचार है जिसमें आँखें लोलुप और मन चोर बनकर भ्रष्टता की संरचना रचते हैं।

मानवीय काया भी सौन्दय की प्रतीक है। उसे सौन्दर्य बोध वाले और कला-पारखी मन से आत्मीयता से देखा जाय तो कोई भी शरीर सुन्दर लग सकता है । विशेषतया पुरुष को नारी का और नारी को पुरुष का। दोनों की अपनी अपनी विशेषताएँ हैं और अपनी-अपनी कमियाँ। उस अपूर्णता को पूरा करने के लिए दोनों पक्ष निकटता की अपेक्षा करते हैं। स्वाभाविक रूप से यह सहज स्वभाव भी है। माता और बच्चा दोनों विपरीत लिंग के होते हैं पर दोनों के बीच पटरी खूब बैठती है। बहिन-भाई स्कूल साथ-साथ पढ़ने जाते हैं और हँसते-बोलते भी जाते हैं। घर में चाची, भाई, बुआ, अपने-ढंग से घर के छोटे-बड़ों से व्यवहार वार्तालाप करती रहती हैं। देवर-भावज की नोंक-झोंक चलती रहती है। इस पर नारी की विभिन्नता का सम्पर्क-सान्निध्य रहने से घर का वातावरण शोभा-सुषमा से भर जाता है। यह प्रकृति का सौम्य अनुसरण है।

इसमें विकृति भरा अनौचित्य तब घुलता है जब कामुकता की दृष्टि से सौन्दर्य को निहारना आरम्भ किया जाता है। इस आधार पर तो किसी भी पवित्रतम रिश्ते के उत्तेजक अंगों को लुक-छिप कर देखा जा सकता है या उनकी कल्पना की जा सकती है। इतने भर से प्रदूषण आरम्भ हो जाता है और भोली-भाली सौम्य सरल महिला कामिनी, रमणी, नागिन, डायिन बन जाती है। अनैतिक कल्पनाएँ उछाल मारने लगती हैं। इसके अनेक प्रकार के दुष्परिणाम होते हैं, कुदृष्टि मनोरोग है। उसके कारण प्रत्यक्ष या परोक्ष व्यभिचार की योजना बनने लगी है। ऊर्ध्वगामी बुद्धितन्त्र, द्रवित होकर जननेन्द्रिय मार्ग से जाग्रति अथवा स्वप्न-सुषुप्ति में गलित होने लगता है। मानवी गरिमा को अक्षुण्ण रखने वाली वर्जनाओं का निर्धारण जब टूटता है तो नहर के किनारे टूट जाने पर अमर्यादित रूप से खेतों में पानी बिखर जाने जैसी स्थिति बन जाती है। सौन्दर्य अपने आप में आनन्द, उत्साह, पुलकन का आधार है पर उनके प्रति अनुपयुक्त दृष्टिकोण बना लेने का परिणाम ऐसा होता है जिसे दुःखदायक ही कह सकते हैं।

चर्चा इन्द्रिय निग्रह प्रसंग में नेत्रों की कुमार्गगामिता पर हो रही है। दूसरों की वस्तुओं को हथिया लेने के लिए ईर्ष्या इसी आधार पर उपजती है। चोरी करने का, अपहरण करने का मन इसी आधार पर चलता है। असीम मात्रा में सुन्दर वस्तुएँ भी कोई जमा नहीं सकता । उनका उपयोग सम्भव नहीं। ऐसी दशा में वह अनुचित संग्रह अपने आप में एक भार बनता है। कितने ही लोग सुन्दर वस्तुएँ जमा करने के लिए घर का बड़ा भाग घेर लेते हैं। नयी भूमि पर कब्जा करते हैं। नये मकान बनाते हैं। सामन्त अनेक पत्नियाँ, उपपत्नियाँ अन्तःपुरों में कैद करते थे। इसका परिणाम उन कुकृत्यों से सम्बन्धित सभी पक्षों को आक्रोश से भरते थे और निरन्तर विद्वेष की ऐसी आग सुलगती थी जो कभी-कभी भयानक दुर्घटनाएँ देर-सबेर में घटित कर देती थी। अब भी वेश्यालयों से सम्बन्ध रखने वाले भडुए या दलाल चैन से नहीं बैठ पाते। इसी कुमार्ग पर चलते हुए उन्हें अनेक दुर्व्यसन घेर लेते हैं। वे कुमार्गगामी आँखें भी जलती रहती हैं और समय से पहले ही अपनी ज्योति एवं सूक्ष्म दर्शन विशेषता गँवा बैठती हैं। शरीर तो निर्बल हो ही जाते हैं अनेक को यौन रोगों का शिकार बनना पड़ता है। बदनामी फैलने से प्रामाणिकता चली जाती है। मन डाँवाडोल रहने से हाथ के काम सही तरीके से बन नहीं पड़ते । इस जाल-जंजाल में साज-सज्जा, उपहार आदि में पैसा भी ढेरों ही खर्च होता है।

आँखों के सौन्दर्य-बोध का दुरुपयोग होने की तरह दूसरी प्रबल इन्द्रिय रसना की बारी आती है । भोजन में अनेक प्रकार के स्वादों के समावेश की आकांक्षा विविध-विधि व्यंजन उपलब्ध करने के लिए ललकती है। इसे जुटाने में ढेरों समय, पैसा खर्च होता है। चटोरी जीभ पेट का सत्यानाश कर देती है और अनेकानेक बीमारियाँ

को जन्म देती है। व्यंजनों की अभिलाषा ललक-लोलुपता उत्पन्न करती है। ऐसी दशा में यह लोलुपता साथियों की दृष्टि में मान मारती है। खर्च बढ़ाती है और कुछ न कुछ नया ढूँढ़ती है। हर समय मुँह चलाते रहने के लिए विवश करती है। जिह्वा को दो इन्द्रिय माना गया है, एक खाने वाली, दूसरी बोलने वाली। वाणी ही किसी को मित्र बनाती है और किसी को शत्रु। उसी से व्यक्ति की शालीनता, सज्जनता, मान्यता, भावना स्तर और प्रतिभा का पता चलता है। इसलिए जीभ को जहाँ चटोरी बनने से रोकना है वहाँ उसे इतनी सुसंस्कृत भी बनाना है कि वार्तालाप में दूसरों पर उत्कृष्टता भरा प्रभाव छोड़ सके। इन्द्रिय संयम में जननेन्द्रिय और जिह्वा को नियन्त्रण में रखना, उन्हें सुसंस्कृत-विनिर्मित करना है।

संयम की सरल साधना तपश्चर्या

ऋषि-मुनियों, साधकों, विरक्तों की तपश्चर्या कष्ट-साध्य होती है। उसमें कितनी ही तितीक्षाएँ करनी पड़ती हैं। एकान्त रहने, विरक्त बनने, मन मारने, ब्रह्मचर्य साधने, शरीर को अनेक प्रकार के कष्ट देने जैसे कृत्यों में एकनिष्ठ भाव से दीर्घकाल तक संलग्न रहना पड़ता है। लम्बे व्रत उपवास करने, इच्छाओं का दमन करने के लिए कष्टसाध्य क्रिया-कलाप अपनाने पड़ते हैं, जो किन्हीं विरलों के लिए ही सम्भव हैं। साथ ही एक कठिनाई और भी है कि यदि व्रत खण्डित हो चले तो उल्टे हानिकारक परिणाम भी हो सकते हैं। लेने के देने भी पड़ सकते हैं। लम्बी छलांग लगाने वाले कभी चूक जाते हैं, तो टाँग टूटने जैसे कष्ट साध्य जोखिम भी उठाने पड़ते हैं।

सरल मार्ग तलाश करना सदा सुविधाजनक रहता है। धीमी चाल चलने में समय तो अधिक लग जाता है,पर साथ ही यह सुविधा भी है कि दौड़ने वालों की तरह बेचैनी का, उतावली का सामना भी नहीं करना पड़ता और पिछड़ जाने पर उपहास का पात्र भी नहीं बनना पड़ता। मनोबल भी नहीं टूटता। भविष्य में चलते रहने की हिम्मत भी बनी रहती है और गतिशीलता छोड़ बैठने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती।

तप का सर्वसुलभ रूप है- संयम। छुट्टल मन की निर्बाध रूप से किसी भी दिशा में दौड़ चलने की आदत अधिकतर उच्छृंखलता बरतती देखी जाती है। मर्यादाओं और वर्जनाओं को तोड़ते रहने की कुटेब जब परिपक्व हो जाती है, तो फिर नशेबाजी की तरह उससे पीछा छुड़ाना कठिन पड़ता है। विषबेल को फैलने से पहले ही उसे दबोच लेने में उन कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता, जो गहरी जड़ जमा लेने पर निर्मूल करने में कठोर प्रयास करना होता है। असंयम एक प्रकार की अनुशासन-हीनता है, जिसे आरम्भ में ही नियन्त्रित किया जाना चाहिए। गीली लकड़ी को झुकाया जा सका है, पक जाने पर तो वह टूटने लगती है। गीली मिट्टी के बर्तन बनते हैं, सूख जाने पर तो उसकी कठोरता बेकाबू हो जाती है। तब उसे किसी साँचे में ढालना सम्भव नहीं रहता।

जिन्हें सरल-स्वाभाविक जीवन-यापन करते हुए तपसाधना के लाभों से लाभान्वित होना है, उन्हें सर्वतोमुखी संयम-साधना अपनाने के लिए तत्पर होना चाहिए। उस पर संकल्पपूर्वक निष्ठा जमानी चाहिए।

इन्द्रिय निग्रह में व्रत और उपवास का दर्जा ऊँचा है। उपवास का अर्थ किसी दिन साधारण भोजन का क्रम भर बदल देना नहीं है, वरन् यह भी कि पेट का अपना उलझा हुआ काम सुलझा लेने के लिए एक दिन की छुट्टी देना। अच्छा हो यह दिन केवल जल लेकर बिताया जाय। न बन पड़े तो दूध, छाछ, रसा, रस जैसी प्रवाही वस्तुएँ सीमित मात्रा में लेकर २४ घण्टे का उपवास पूरा किया जाय। जिह्वा की लोलुपता और जल्दबाजी मिलकर निगलने में जल्दबाजी दिखाती है। उस कार्य को बेगार समझकर जैसे-तैसे निपटाने की कोशिश करती हैं। यह नहीं होना चाहिए। समझा जाना चाहिए कि आधा भोजन पेट में पचना चाहिए और आधा मुँह के लार-स्रावों से, इसलिए ग्रास को मुँह में देर तक रखना जाना चाहिए। दाँतों का काम चक्की की तरह पीस कर बारीक करना है। साथ ही आहार के स्वाद का आनन्द लेना भी। भोजन सात्विक, हरा, सजीव और शाकाहार वर्ग का होना चाहिए। उसमें मिर्च-मसाले, शक्कर, चिकनाई की भरमार न हो। इस प्रकार भूख से कम मात्रा में नियत समय पर किया गया आहार जीवनदाता कहा जाता है। इन मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए आहार नियमन का व्रत पाला जाता रहे, तो शरीर स्वस्थ और दीर्घजीवी बना रह सकता है। साथ ही उसकी अधिक मात्रा खर्चने-बनाने में ढेरों समय खराब करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। 'जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन' की उक्ति शत-प्रतिशत सही है। यदि आहार में नशों का, मिष्ठान्न-पकवानों का, अचार-मुरब्बों का समावेश रहेगा, तो उससे न केवल शरीर पर, वरन् मन पर भी प्रभाव पड़ेगा। अखाद्य खाने वालों की मानसिक चंचलता बढ़ी-चढ़ी रहती है। वे किसी महत्त्वपूर्ण कार्य पर मन टिका नहीं पाते। बेसिर-पैर की रंगीली उड़ानें उड़ाते रहने में बहुमूल्य मानसिक शक्तियों का अपव्यय ही होता है। उस चेतन ऊर्जा का सदुपयोग बन पड़ने पर जो प्रयोजन सिद्ध हो सकते हैं, उनका सदुपयोग ही नहीं बनता। शरीरगत क्रिया-कलापों की नियमित दिनचर्या होनी चाहिए। समय विभाजन करने और फिर उसके निर्वाह पर पूरा ध्यान देना जीवन सम्पदा की सुव्यवस्था है। जो उसे स्वभाव का अंग बनाये रहते हैं, वे अधिक उपयोगी कार्य अधिक मात्र में कर पाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जो खाया गया है उसका आधा चौथाई ही शरीर में लग पाता



है शेष बाकी सब निरर्थक चला जाता है। उल्टा कब्ज उत्पन्न करके अंग-प्रत्यगों में विषाक्तता बढ़ाता है।

अन्न की तरह पानी भी जीवन की महती आवश्यकता है। भोजन के समय को बचाकर शेष हल्के पेट वाले को समय से प्रतिदिन आठ-दस गिलास पानी चूस-चूस कर पीते रहने की आदत डालनी चाहिए। इससे पेट की सफाई होती रहती है और शरीर को जितने जलांश की आवश्यकता है, उसकी पूर्ति भी होती है। अन्न-जल की भाँति स्वच्छता भी जीवन का अंग है। स्नान, वस्त्रों को धोना-सुखाना, खाद्य पदार्थों को ढकते-सुखाते रहना, मकान की सीलन और घुटन से बचना, यह बातें साधारण होते हुए भी विशेष महत्त्व की हैं और उनका तात्कालिक लाभ नीरोगता के रूप में उपलब्ध होता है।

आहार संयम की तरह ब्रह्मचर्य भी इन्द्रिय संयम का एक बड़ा पक्ष माना गया है। शारीरिक उत्तेजना तो गर्भधारण की आवश्यकता के लिए ही यदाकदा उभरती है। खाली दिमाग पर शैतान छाया रहता है, यह कहावत प्रधानतया कामुक विचारों के सम्बन्ध में ही लागू होती है। देखा जाता है कि अश्लील चित्रण एवं क्रिया-कलाप खाली बैठने वालों के सिर पर चढ़ा रहता है और उसका आकर्षण, चिन्तन को किन्हीं महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों में लगाने से रोके रहता है। वैज्ञानिक, विद्वान, मनीषी, बुद्धिजीवी, कलाकार, साहित्यकार अपने मन को साधने की कुशलता में निष्णात होते हैं। वे मस्तिष्क में बन्दर जैसी उछल-कूद नहीं मचने देते। जिस कार्य को उपयोगी एवं आवश्यक मानते हैं, उसी में संकल्पभाव से तन्मयता स्थापित करते हैं। उथले मन से तथा सरसरी नजर से जिन भी कामों को देखा निपटाया जाता है, वे कभी सर्वाङ्ग पूर्ण नहीं होते। बिखराव का एकीकरण करना कितना चमत्कारी है, इसे सभी जानते हैं। तिनकों से रस्से बटे जाते हैं और धागे मिलकर कपड़ा बनते हैं। भव्य भवन बिखरी ईंटों को एकत्रित करके बनाये जाते हैं। विचारों के सम्बन्ध में भी यही बात है। जो विद्यार्थी एकाग्रभाव से रुचिपूर्वक पढ़ते हैं, वे अच्छी डिवीजन से उत्तीर्ण होते हैं। प्रतिस्पर्द्धाओं में इसी प्रकार की मनोभूमि सफल होती है। आर्कीटैक्ट, इन्जीनियर, साहित्यकार, वैज्ञानिक आदि की सफलताओं का श्रेय उनकी एकाग्रता पर ही निर्भर रहता है। बया पक्षी इसी आधार पर सुन्दर घोंसला बनाता है। इन्द्रिय संयम की ही तरह विचार संयम भी एक प्रकार की तपश्चर्या है, जिसे साधारण मनुष्य जागरूकता अपनाकर अपने अभ्यास में उतार सकता है और अभीष्ट दिशा में उत्साहवर्द्धक सफलता प्राप्त कर सकता है। मन की एकाग्रता उन्हीं से सधती है, जो अपने समय को साध लेते हैं, अर्थात् दिनचर्या बनाकर समय के श्रेष्ठतम विभाजन की योजना बनाते हैं। समय का एक क्षण भी बर्बाद नहीं होने देते। आलस्य-प्रमाद से बचते और जागरूकतापूर्वक समय जीवन-सम्पदा को बहुमूल्य समझ कर उस छोटे-से-छोटे घटक को भी सुव्यवस्थित रूप से प्रयोग लाते रहते हैं।

इन्हीं सतर्कताओं में ईमानदारी का श्रमसिक उपार्जन भी सम्मिलित है और उसके उपयोग में औसत नागरिक के निर्वाह के स्तर के साथ तुलना करते रहना भी। जो कमाया जाय वह असीम हो, यह आवश्यक नहीं। श्रमपूर्वक ईमानदारी से थोड़ा ही कमाया जा सकता है। उतने में ही सन्तोष करना हो और प्रसन्न रहना हो, तो उसका एक ही उपाय है कि खर्च करते समय इस बात का ध्यान रखा जाय कि उसमें कहीं अपव्यय को स्थान तो नहीं मिल रहा है। आम-तौर से लोग अपना बड़प्पन जताने के लिए कपड़ों का, जेवरों का, शृंगार प्रसाधनों का तथा ठाठ-बाट का प्रदर्शन करते हैं, जिसमें ढेरों पैसा और समय खर्च करना पड़ता है। सोचा यह जाता है कि इस आधार पर अमीरी की छाप छोड़ी जा सकेगी और बड़प्पन प्रकट किया जा सकेगा, किन्तु होता ठीक उल्टा है। अपने और दूसरों की आँखों में बचकाना, ओछा, मनचला और घटिया समझे जाने का ही उपहार मिलता है।

स्त्री की हीनता समस्त समाज को हीन बनाती है

भारतीय स्त्रियों की स्थिति वर्तमान समय में बड़ी डाँवाडोल हो रही है। देश के नव-निर्माण के कार्य में भाग लेने को उनका आह्वान किया जाता है, राष्ट्र की रक्षा और उद्धार के कार्य में अग्रसर होने की उनको प्रेरणा दी जाती है। समाज की भावी पीढ़ी का सुधार करके आदर्श नागरिकों का निर्माण उनका कर्तव्य बतलाया जाता है। पर उनकी स्थिति, शक्ति, अधिकार, योग्यता व साधन कैसे और कितने हैं, इस पर कोई ध्यान नहीं देता। हम उनकी नौकरी करने को निकृष्ट कहते हैं, घर की सम्पत्ति पर भी उनका अधिकार नहीं मानते पर समाजोद्धार और राष्ट्रोत्थान के सब कामों में उनसे सहायता पाने की आशा रखते हैं। हम उनके शारीरिक विकास और सुदृढ़ स्वास्थ्य की कोई व्यवस्था नहीं करते और न सन्तान पालन की उचित शिक्षा देते हैं, पर उनसे सुमाता बनने की माँग करते हैं। हम उनको कालेजों में भेजकर लड़कों के साथ ही बाह्य प्रदर्शन को प्रधानता देने वाली निकम्मी शिक्षा दिलाते हैं और चाहते हैं वे सीता, सावित्री जैसी प्राचीन देवियों का उदाहरण उपस्थित करें। इस प्रकार की विपरीत बातें कैसे हो सकती हैं? नीम और बबूल बोकर आम के फलों की अभिलाषा किस प्रकार पूरी हो सकती है?

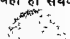
जब हम अपनी स्त्रियों की स्थिति पर दृष्टिपात करते हैं तो विदित होता है कि हम मुँह से चाहे जो कुछ कहते हों और हमारे शास्त्रों में भी चाहे स्त्रियों के विषय में कैसी भी उच्च बातें लिखी हों, पर व्यवहार में हम उनको वास्तव में हीन समझते हैं और यह हीनता की भावना कन्या का जन्म होते ही प्रकट होने लग जाती है। आज हिन्दू समाज में सौ में से एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं मिल सकता जो पुत्री का जन्म होने पर भी वैसी ही प्रसन्नता का अनुभव करे जैसे पुत्र के जन्म पर करता है। अधिकांश व्यक्ति तो उनके जन्म को महा अभाग्यजनक समझते हैं। उनके मित्र और सम्बन्धी भी कन्या उत्पन्न होने का समाचार सुनकर रोने लगते हैं ,"लो तुम्हारे लिये तो एक बड़ी डिग्री आ गई।"अन्य जो अधिक समझदार होते हैं, अपने असन्तोष को इस प्रकार प्रकट नहीं होने देते और कहते हैं कि "भगवान ने जो कुछ दिया वह ठीक ही है।" यद्यपि वे मुँह से ऐसा कहते हैं पर उत्साहरहित वाणी और नेत्रों के भाव से स्पष्ट दिखाई देता है कि ये पुत्र के मुकाबले में पुत्री के जन्म को कुछ भी प्रसन्नता का विषय नहीं समझते।

जैसे-जैसे लड़की बड़ी होती है यह भेदभाव दिन पर दिन अधिक प्रत्यक्ष होता जाता है। लड़के-लड़की के पालन-पोषण, खेलने-कूदने, शिक्षा-दीक्षा में सर्वत्र लड़के को ही प्रधानता दी जाती है। यद्यपि बड़े और आधुनिक सभ्यता से थोड़ा बहुत प्रभावित घरों में यह अन्तर बहुत अधिक दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि वहाँ इतने साधन होते हैं कि वे सब बच्चों के लिए आवश्यकतानुसार व्यवस्था कर सकते हैं। पर मध्यवर्गीय और निम्न श्रेणी के घरों में पहले लड़के के आराम और आवश्यकता का ध्यान रखा जाता है और लड़की को बचे-खुचे पर ही सन्तोष करना पड़ता है। पुराने विचार के घरों की स्त्रियाँ तो छोटेपन से लड़की को तरह-तरह से ताने और कुवाक्य कहकर यह जतलाया करती हैं, वह परिवार पर भारस्वरूप है और जितना शीघ्र उसका 'मुँह काला' हो जाय उतना ही अच्छा है ! साधारण बातचीत में भी लड़की को 'राँड' 'पत्थर' आदि कहा जाता है और आमोद-प्रमोद के अवसर पर भी उसके मरने-गिरने की बात मुँह से निकाल दी जाती है।

इस परिस्थिति के कुछ कारण भी हैं। हमारे कुसंस्कार और अन्ध परम्पराएँ तो इसमें प्रमुख हैं ही, पर साथ ही वर्तमान समाज में अनेक हानिकारक सामाजिक प्रथाएँ इस बुराई को बढ़ा रही हैं। इस सम्बन्ध में हमारे विचार करने का तरीका बहुत ही गलत बन गया है। हम सोचते हैं कि- "कन्या पर खर्च ही खर्च है जबकि लड़कों से आमदनी ही आमदनी है। लड़का वंश की परम्परा चलाता है, आशा की जाती है कि वह बड़ा होने पर कमायेगा माँ-बाप का भरण-पोषण करेगा। फिर अन्त तक वह उसी कुटुम्ब का अंग रहेगा। इस प्रकार पुत्र में निजत्व की, अपनेपन की भावना अधिक होती है, जबकि लड़की को शुरू से ही 'पराई' समझने का भाव रहता है।"

पर जब हम समाज हित की दृष्टि से विचार करते हैं तो उपर्युक्त विचारधारा अत्यन्त घातक और पतनकारी सिद्ध होती है। कौन नहीं जानता कि समाज का आधार पुरुष की अपेक्षा स्त्री पर ही अधिक होता है। जिस लड़की को आज हम उपेक्षा की दृष्टि से देख अविकसित, अशिक्षित और अयोग्य रखने में अपनी कोई हानि नहीं समझते वही थोड़े समय बाद पत्नी, गृहिणी और माता बनती है और समाज की भावी पीढ़ी का सन्तोषजनक रीति से पालन और विकास करने में सर्वथा असमर्थ होती है। वह अपनी सन्तान में भी उन्हीं दुर्गुणों और दुर्बलताओं को प्रविष्ट कराती है जो पितृगृह में उसे प्राप्त हुए थे। इस प्रकार कन्याओं की उपेक्षा का प्रतिफल समस्त समाज को बहुत हानिकारक रूप में सहन करना पड़ता है और लोग अपने स्वार्थ और अदूरदर्शिता के कारण अपने पैरों में आप ही कुल्हाड़ी मारते हैं।

इसलिए माता-पिता का यह परम कर्तव्य है कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियों के निर्माण और विकास पर ज्यादा ध्यान दें । इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि बहुत अधिक धन खर्च किया जाय या माण्टेसरी स्कूलों में सौ-पचास रुपया फीस देकर ही शिक्षा दिलायी जाय। बिल्कुल गरीब घरों में भी लड़कियों को ऐसी शिक्षा दी जा सकती है कि वे जिस घर में जायें उसे अपने सहृदयतायुक्त व्यवहार, शिष्टता और परिश्रमशीलता के कारण स्वर्ग बना दें। इसके विपरीत अधिक धनवान् घरों की लड़कियाँ ही प्रायः उच्छृंखलता का व्यवहार करने वाली, अभिमान और उपेक्षा का व्यवहार करके सगे-सम्बन्धियों में मनमुटाव उत्पन्न करने वाली और गृह कार्यों के प्रति उदासीनता रखकर निठल्लेपन में समय व्यतीत करने वाली सिद्ध होती हैं। अतः लड़की को 'पराई' समझकर उपेक्षा का व्यवहार करने के बजाय यह समझना चाहिए कि लड़के-लड़की में से जो भी अयोग्य और खराब स्वभाव का निकल जाएगा वही परिवार और समाज के लिये अभिशाप स्वरूप होगा। इन दोनों में भी लड़की का अयोग्य होना इस दृष्टि से अधिक शोचनीय है कि वह भावी पीढ़ी को जन्म देने वाली और उसकी निर्मात्री होती है। लड़का अगर खराब भी निकल जाय तो वह समाज का उतना अहित नहीं कर सकता जितना कि लड़की के खराब निकल जाने से हो सकता है। एक लड़की कई कुटुम्बों से सम्बन्धित होती है और अगर उसे आरम्भ से सद्गुणी, सद्व्यवहार करने वाली और कर्तव्यों का पालन करने वाली बनाया जाय तो बहुसंख्यक लोगों की उन्नति और कल्याण का केन्द्रस्वरूप हो सकती है। वह जिस घर में जाएगी उसे अपनी श्रेष्ठता और श्रम से स्वर्ग समान बना देगी, जिसका प्रभाव आस-पास के भी अन्य लोगों पर अच्छा पड़ेगा। इसके विपरीत स्वभाव वाली जहाँ जायगी वहाँ ही संघर्ष



कलह और नरक का वातावरण उत्पन्न करने वाली होगी और अपने पति-गृह की ही अवनति नहीं करेगी वरन् अपने माता-पिता की बदनामी और अपमान का कारण भी होगी।

समाज के कर्णधारों का कर्तव्य है कि समाज और राष्ट्र की प्रगति में बाधा डालने वाली इस परिस्थिति में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करें। यह समस्या एकदेशीय नहीं वरन् समस्त विश्व से सम्बन्धित है। संसार भर का नारी समाज अभी तक किसी न किसी प्रकार की त्रुटियों से ग्रस्त है और इससे मानव सभ्यता की प्रगति में उचित सहयोग नहीं दे सकता। इस महान-अभियान की पूर्ति में यदि भारत अपना भाग उचित रूप में पूरा कर सके और यहाँ की स्त्रियाँ परिवार और समज में अपना उचित स्थान ग्रहण करके अपने जीवन-कर्तव्य का पालन करने लगें तो यह मानव-समाज के कल्याण की दृष्टि से कम महत्व की बात न होगी। इस कार्य का आरम्भ बाल्यावस्था से ही किया जा सकता है, क्योंकि जो स्त्रियाँ घर-गृहस्थी में पड़कर अपने दोषों की अभ्यस्त हो गई हैं, उनका शीघ्र बदल सकना तो कठिन है।

आज की नारी को कल ही शिक्षित एवं जाग्रत बनाना है

भारतीय नारी को अपनी दयनीय स्थिति समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसे विश्व की भूतकालीन तथा आधुनिक प्रगतिशील महिलाओं के साथ अपनी तुलना करने का अवसर मिले। समुन्नत नारी अपने लिए, अपने परिवार के लिए, अपनी सन्तान के लिए, अपने समाज और अपने संसार के लिए, कितनी श्रेयस्कर हो सकती है, इसका ज्ञान उसे अपने कूप-मण्डूक जैसे छोटे से घेरे से बाहर की स्थिति को देखने-समझने से ही सम्भव हो सकता है। यह प्रयोजन शिक्षित हुए बिना और किसी भी तरह सम्भव नहीं हो सकता।

यदि नारी जीवन के प्रत्येक पक्ष पर समुचित प्रकाश डालने वाला और मार्ग-दर्शन करने वाला साहित्य पढ़ाया जाय तो कोई कारण नहीं कि नारी आत्म-निर्माण की, परिवार-निर्माण की, समाज-निर्माण की महती आवश्यकताओं मे आशातीत योगदान न कर सके।

सरकारी शिक्षा पद्धति बदलती है या नहीं, अपने को इससे कुछ अधिक लेना-देना नहीं है क्योंकि जब जनस्तर पर ही इस समस्या को हल किया जाता है तो पाठ्यक्रम पर भी अपना ही नियन्त्रण होगा। उसमें आज की नारी को अपने क्षेत्र में अत्यधिक सफल बनने के लिए जो नितान्त आवश्यक है उसे ही पढ़ा जाएगा। उसकी पाठ्य पुस्तकें बन तो जायेंगी और उन्हें ही नव-स्थापित प्रौढ़ महिला विद्यालयों में पढ़ाया जाएगा। इससे दुहरा लाभ होगा। साक्षरता की प्राथमिक आवश्यकता पूरी करने से उसके ज्ञान नेत्र खुलेंगे, साथ ही वर्तमान विडंबन को पूरी तरह [illegible] फेंकने के लिए सुझाव, परामर्श, प्रकाश एवं मार्ग दर्शन की भी प्रचुर सामग्री उपलब्ध होगी। अपनी प्रौढ़ शिक्षा योजना, साक्षरता प्रसार और नारी उत्कर्ष की समस्त सम्भावनाओं का पथ-प्रशस्त करेगी। वह दुहरा प्रयोजन पूरा करने के कारण मात्र शिक्षा न रहकर 'विद्[illegible] कहलाने की अधिकारिणी बनेगी।

अपनी योजना के अन्तर्गत घर, गली, मुहल्ले औ[र] गाँव में प्रौढ़ पाठशालाओं की स्थापना होनी है। महिलाओं को अपने बाल-बच्चे, घर-गृहस्थी और चौका-चूल्हा भी सम्भालना पड़ता है, इसलिए उनके पास शिक्षा प्राप्त करने के लिए घर से बाहर जाना स्वल्प समय के लिए ही सम्भव हो सकता है। आमतौर से यह समय मध्याह्नोत्तर [illegible] से पाँच बजे का, लगभग तीन घण्टे का ही होता है। [illegible] ही उन्हें अवकाश मिल सकता है। इतने में ही उन[की] शिक्षा व्यवस्था चलनी है। यदि विद्यालय बहुत दूर हो[ं] तो आने-जाने में ही सारा समय नष्ट हो जाएगा। [illegible] सुरक्षा, किराया-भाड़ा आदि की समस्याएँ सामने आ सकती हैं। इसलिए समीपवर्ती स्थान ही उपयुक्त हो सकते हैं।

महिला जागरण शाखाएँ भी किसी पूरे नगर- कस्बे को नहीं बनायी गयी है। गली, मुहल्ले, गाँव की छोटी परिधि में ही शाखा संगठन खड़े किये गये हैं। बड़े नगरों में कई-कई शाखाएँ बना दी गई हैं, ताकि मिलना-जुलना आसानी से सम्भव हो सके। बड़े उत्सव-आयोजनों में ही नगर की बड़ी शाखा में छोटी शाखाएँ सम्मिलित होती हैं। साधारणतया उनके कार्यक्रम अपने-अपने मुहल्ले में ही चलते रहते हैं। यही क्रम प्रौढ़ पाठशालाओं का भी चलेगा। किसी बड़े कस्बे या नगर की एक ही पाठशाला हो, ऐसा सोचना निरर्थक है। व्यावहारिक यही है कि प्रत्येक छोटे क्षेत्र की महिलाएँ अपनी-अपनी छोटी शाखा बनावें और छोटी प्रौढ़ पाठशाला चलायें। ऊँची शिक्षा की जब आवश्यकता पड़ेगी तब तो अधिक बड़े क्षेत्र की आवश्यकता पूरी कर सकने वाला बड़ा विद्यालय ही बनेगा, पर आरम्भिक ढाँचे छोटे-छोटे क्षेत्रों में बाँट कर ही खड़े किये जा सकते हैं। इन पाठशालों के खुलने का समय भी तीसरे पहर के तीन घण्टे ही हो सकते हैं। दो से पाँच अथवा मौसम के अनुसार समय कुछ बदल कर रखा जा सकता है।

पाठशाला चलाने के लिए कई कदम उठाने पड़ें[गे]। यथा—(१) शिक्षार्थिनियाँ जुटाना (२) स्थान का प्रबन्[ध] (३) अध्यापिकाओ की व्यवस्था (४) पाठ्य पद्धति का निर्धारण (५) शिक्षा उपकरणों का एकत्रीकरण आदि। इससे सबसे पहले हर किसी के मन में प्रौढ महिलाओ के शिक्षण की उपयोगिता और आवश्यकता बिठाने के लिए अत्यन्त प्रभावशाली ऐसे प्रचार करने की आवश्यकता पड़ेगी, जो तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण आदि पर आधारित हो और हर किसी को वस्तुस्थिति समझने,

स्वीकार करने के लिए बाध्य कर सकें। इसके लिए पर्चे, पोस्टर, विज्ञप्तियाँ आदि के छपे पत्रक बाँटने, बेचने, चिपकाने, पढ़ाने की आवश्यकता पड़ेगी। साथ ही प्रभावशाली नर-नारियों की ऐसी प्रचार टोलियाँ गठित करनी पड़ेंगी जो अभीष्ट प्रयोजन के लिए आवश्यक वातावरण बनाने में सफल हो सकें। उन्हें अपना कुछ समय नियमित रूप से जन-सम्पर्क के लिए देना होगा।

इस जन-सम्पर्क कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रचार टोलियाँ अपने क्षेत्र में घर-घर जाकर नारी शिक्षा का महत्व समझायेंगी और ऐसे वातावरण विनिर्मित करेंगी, जिसमें पढ़ने योग्य महिलाएँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए तैयार हो सकें। आज की स्थिति में सबसे बड़ी और सबसे पहली कठिनाई यही है कि शिक्षा का महत्व ही भुला दिया गया है। न स्त्रियाँ पढ़ने को तैयार होती हैं और न उनके घर वाले इसके लिए इजाजत देते हैं। इसे व्यर्थ का काम माना जाता है। प्रचार टोलियों को पहला सिर दर्द यही ओढ़ना होगा कि वे घर के पुरुषों को, बूढ़ी महिलाओं को इजाजत देने के लिए और प्रौढ़ महिलाओं को पढ़ने के लिए तैयार कर सकें। पहिया लुढ़कने लगे तो एक की देखा-देखी दूसरी भी तैयार हो सकती हैं और फिर शिक्षार्थिनियों की कमी नहीं रह सकती । पर आरम्भ में तो यह प्रथम सफलता प्राप्त करना ही कठिन पड़ेगा। इतना कर लिया गया तो समझना चाहए कि आधी मंजिल पार हो गयी।

उपयुक्त स्थान तलाश करना दूसरा काम है। इसके लिए आरम्भ में ही अपनी निज की इमारत बनाना या किराये का मकान लेना कठिन है। इसके लिए किसी का माँगा हुआ घर, कमरा, आँगन ही ढूँढ़ना पड़ेगा। दिन में लोग १० से ६ बजे तक दफ्तर एवं दुकानों पर चले जाते हैं और उनके कमरे खाली रहते हैं। अपने प्रौढ़ विद्यालय दो से पाँच बजे तक ही चलते हैं। उस बीच खाली कमरे का फर्नीचर आदि एक ओर खिसकाकर जगह बनायी जा सकती है और उतने में पाठशाला चल सकती है। पढ़ाई समाप्त होते ही उस कमरे की झाड़ू लगाकर चीजें यथास्थान जमाई जा सकती हैं और किसी को पता भी नहीं चल सकता कि यहाँ पीछे दूसरा काम भी किया गया है। मन्दिर, धर्मशाला, पुस्तकालय आदि सार्वजनिक स्थानों की खाली जगह भी इस प्रयोजन के काम आ सकती है। स्थान की सुविधा ऐसे ही बिना खर्च की जगह तलाश करके जुटानी पड़ेगी।

अध्यापिकाएँ भी वैतनिक रख सकना कठिन है। इसके लिए शिक्षित महिलाओं में सेवा भाव जगाना पड़ेगा और नियमित रूप से इस पुनीत कार्य के लिए कुछ समय देते रहने के लिए उन्हें तैयार करना पड़ेगा। स्कूली अध्यापिकाएँ अपना फालतू समय इसके लिए दे सकती हैं। घरों में पढ़ी-लिखी महिलाएँ होती ही हैं। दो से पाँच तक का समय उनके पास भी अवकाश का रहता है, उनसे समयदान की याचना करनी चाहिए। उनके घर वालों को इसके लिए आग्रह करना चाहिए। बूढ़े रिटायर पुरुष भी काम दे सकते हैं। शिक्षकों की व्यवस्था भी इसी प्रकार जुटानी पड़ेगी। यों शिक्षार्थिनियों से फीस और उदार व्यक्तियों से दान लेकर शिक्षिकाओं को कुछ जेब खर्च भी दिया जा सकता है पर अच्छा यही है कि लोगों में सेवा बुद्धि जागे और सार्वजनिक कार्यों के लिए अभीष्ट मात्रा में श्रम दान उपलब्ध हो सके। नव-निर्माण की व्यापक योजनाओं की सफलताओं का आधार यह स्वेच्छा, सहयोग, श्रमदान ही हो सकता है।

पाठ्यक्रम के दो भाग हैं। एक साक्षरता वर्ग जिसमें स्कूली शिक्षा के अनुसार प्राथमिक शिक्षा, पाँचवें दर्जे जितनी हो। यह उनके लिए है जिन्हें निरक्षर या स्वल्प शिक्षित करना चाहिए। यह अनिवार्य वर्ग है । इसके लिए वही पाठ्यक्रम पर्याप्त है जो पाँचवें दर्जे तक स्थानीय स्कूल में बालकों को पढ़ाया जाता है।

इससे आगे का विशेष वर्ग है, जिसमें साहित्य और व्याकरण का समुचित ज्ञान कराने के लिए भूगोल, इतिहास, गणित, नागरिकशास्त्र, समाजशास्त्र आदि सामान्य विषयों का समावेश करना पड़ेगा। जीवन जीने की कला, शिशुपालन, परिवार में भावनात्मक सद्भावनाएँ रहने वाला दृष्टिकोण, कुरीतियों एवं अन्ध-विश्वासों से होने वाली हानियाँ, व्यक्ति का समग्र निर्माण, शिष्टाचार, स्वास्थ्य शिक्षा, परिचर्या एवं चिकित्सा, सुसज्जा, अर्थसन्तुलन, टूट-फूट की मरम्मत, घरेलू शाक-वाटिका, बहीखाता, बैंक बीमा, रेल, डाकखाना आदि के नियम, सेल टैक्स, इनकम टैक्स के लिए दाखिल करने योग्य बहीखाता, सामान्य कानूनी ज्ञान जैसे दैनिक जीवन में काम आने योग्य प्रायः सभी विषयों का समावेश करना होगा। इसे लगभग जूनियर हाईस्कूल, आठवीं कक्षा के समतुल्य कहा जा सकता है। इस पाठ्यक्रम की प्रायः सभी पुस्तकें नये दृष्टिकोण से शान्तिकुंज में लिखी और छापी जा रही हैं।

अभी इतना लक्ष्य लेकर चलना पर्याप्त होगा कि आठवीं कक्षा का उपर्युक्त पाठ्यक्रम पढ़ाना ही प्रौढ़ शिक्षा योजना का लक्ष्य है। जहाँ अधिक पढ़ने का उत्साह हो, वहाँ प्रयाग महिला विद्यापीठ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, राष्ट्रभाषा प्रचार समति आदि के पाठ्यक्रमों को अपनाकर उच्च शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है।

प्रस्तुत शिक्षा में संगीत और गृह उद्योगों का समावेश अनिवार्य रूप से होना है। सिलाई, बुनाई, खिलौना उद्योग, डबल रोटी, बिस्कुट, साबुन, मोमबत्ती जैसे अनेक गृह-शिल्प स्थानीय सुविधा और आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए चलाये जा सकते हैं। सिलाई को इन सबमें प्रथम एवं अनिवार्य स्थान मिलना चाहिए। टूट-फूट की मरम्मत और घरेलू शाक-वाटिका लगाना भी अनिवार्य शिक्षा में ही सम्मिलित रखा जाय। संगीत के द्वारा भावनात्मक वातावरण बनता है, मनोरंजन होता है और प्रगतिशील विचारधारा को व्यापक बनाने में भारी योगदान मिलता है। हारमोनियम, ढोलक, ढपली, मजीरा, घुँघरू आदि बाजों

पर काम-चलाऊ सुगम संगीत की शिक्षा कुछ ही महीनों के अभ्यास से प्राप्त की जा सकती है। विचार व्यक्त करने का, भाषण का अभ्यास भी साथ-साथ चलता रहे ताकि परिवार में तथा समाज में बिना झिझक के उपयुक्त अवसर पर आवश्यक विचार व्यक्त कर सकने की क्षमता प्रत्येक नारी को उपलब्ध हो सके।

शिक्षा आरम्भ में निःशुल्क ही रखी जाना चाहिए। किन्तु खर्च की जरूरत तो पड़ेगी ही। इसकी पूर्ति के लिए उदार व्यक्तियों से अर्थ सहायता ली जानी चाहिए। मासिक एवं विशेष सहायता देने वाले भावनाशील व्यक्तियों का द्वार खटखटाया जाना चाहिए। इसके लिए ज्ञानघटों की स्थापना की जा सकती है, जिनमें नित्य कुछ पैसे या अन्न डाला जा सके और उसे संग्रह करके खर्च चलाया जा सके। दूसरे अन्य साधन भी जो सम्भव हों उन्हें ढूँढ़ा जाना चाहिए ताकि आर्थिक आधार सुदृढ़ होने पर आवश्यक शिक्षा उपकरण जुटाये जा सकें। सिलाई की मशीनें, संगीत के लिए वाद्य यन्त्र, पुस्तकें, नक्शे, ब्लैक बोर्ड, बैठने की चटाइयाँ, घड़ी, फर्स्ट एड उपकरण, शाक-वाटिका साधन, आदि जितने ही उपकरण अनिवार्य रूप से आवश्यक होंगे। इन्हें आरम्भ में ही जुटाने की बात भी इस योजना को हाथ में लेते समय ही ध्यान में रखी जानी चाहिए।

यह उत्तरदायित्व पुरुष वर्ग को वहन करना पड़ेगा। महिलाएँ घरों में कैद रहती हैं। वे जनसम्पर्क बनाने और आवश्यक साधन जुटाने की मनःस्थिति एवं परिस्थितियों में आज हैं नहीं। उनका सहयोग तो लेना ही पड़ेगा, आगे उन्हें ही रखना पड़ेगा, पर पर्दे के पीछे यह भूमिका पुरुषों को ही निभानी है। वे यदि ढील देंगे और महिलाओं के कन्धे पर सारा भार डालकर मात्र दर्शक बने रहेंगे तो सफलता संदिग्ध ही रहेगी। इस महान प्रयास में विचारशील नर और नारी दोनों वर्गों को ही कन्धे से कन्धे मिलाकर प्रबल प्रयत्न करने चाहिए।

नारी समस्या का समाधान आवश्यक

यूरोप के जिन देशों ने भी आर्थिक, वैज्ञानिक और सामाजिक क्षेत्र में प्रगति की है, उसका कारण यह नहीं है कि परमात्मा ने उन देशों और अन्य देशों के साथ पक्षपात किया है तथा उन्हें अधिक सुविधाएँ दी हैं। यह तो स्पष्ट है ही कि व्यक्ति हो या समाज जो भी अपनी क्षमताओं के लिए अधिक प्रयत्न करेगा और अधिक समय देगा उसे अभीष्ट सफलता मिलेगी। वहाँ के लोग इस दिशा में अधिक ध्यान दे पाते हैं सो इसलिए कि उनके पारिवारिक दायित्व इतने अधिक बोझिल नहीं होते कि उनको निभाना ही कठिन पड़ जाय।

परिवार संस्था की दो इकाई हैं— स्त्री और पुरुष। उसे मजबूत तथा सम्पन्न बनाने के लिए आवश्यक है कि पति और पत्नी दोनों ही मेहनत करें। यह नहीं हो कि एक दूसरे के कन्धे पर सवार होकर दूसरे साथी का बोझ बढ़ायें। पश्चिम में परिवार संस्था टूटती जा रही है, पर उसके कारण और हैं। जहाँ तक समाज के विकसित होने का प्रश्न है यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि स्त्री और पुरुष दोनों ही इसके लिए प्रयत्न करें। पश्चिम की प्रगति का यही रहस्य है कि वहाँ की स्त्रियाँ पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर सहयोग करती हैं और हर क्षेत्र में प्रगति के लिए प्रयत्नशील रहती हैं।

उदाहरण के लिए एक छोटे से उन्नत देश रूमानिया को ही लें। वहाँ का जनवादी विधान महिलाओं को भी पुरुषों की बराबरी का अधिकार देता है। राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में महिलाओं को भी दायित्वपूर्ण उच्च पदों पर बेरोक-टोक नियुक्त किया जाता है। लगभग २०० की संख्या वाले उच्च राजनैतिक पदों में से ७१ पर महिलाएँ नियुक्त हैं। छोटे क्षेत्रीय संगठनों में ३९७९५ महिलाएँ काम करती हैं। २८ प्रतिशत महिलाएँ अपने परिवार का खर्च स्वयं चलाती हैं। उद्योग धन्धों के क्षेत्र में जो पुरुषों के ही बस का समझा जाता है, में ३ लाख ८० हजार महिलाएँ कार्यरत हैं। ६० लाख से भी अधिक महिलाएँ व्यापार प्रबन्ध सम्भालती हैं। लगभग ६० हजार महिलाएँ उच्च प्रशिक्षण प्राप्त कर रही हैं तथा महिलाओं की कुल संख्या की ४.१ प्रतिशत स्त्रियाँ इन्जीनियरी और तकनीकी कार्यों में लगी हुई हैं और १३ प्रतिशत कार्यालयों में काम करती हैं। इसके अतिरिक्त ४ हजार महिलाएँ उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्यापन कार्य करती हैं। ६५ प्रतिशत स्त्रियाँ स्वास्थ्य और सामाजिक क्षेत्रों में कार्यरत हैं।

अपने देश में नारी को वैधानिक दृष्टि से तो पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त हैं, पर अभी वैसी स्थिति नहीं है कि वह उन अधिकारों का उपयोग कर सके और उनसे लाभ उठा सकें। वह राजनैतिक क्षेत्र में निर्बाध प्रवेश प्राप्त कर सकती हैं, उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए उनके मार्ग में कोई रुकावट नहीं हैं। महत्वपूर्ण प्रशासकीय पदों पर महिलाएँ नियुक्त की जाती हैं। परन्तु इन अवसरों से लाभ उठाने वाली महिलाओं की संख्या सीमित ही है। अधिकांशतः महिलाएँ तो वही, परम्परागत जीवन जी रही हैं। दूसरे देशों में जागरूक महिलाओं ने पुरुषों के समान अधिकार संघर्ष कर और आन्दोलन चला कर प्राप्त किये हैं। जबकि अपने देश में ये

अधिकार स्वतः ही प्राप्त हो गये हैं। फिर भी उनसे लाभ उठाने की स्थिति अभी नहीं बन पायी है।

इसका कारण है अभी भी सामन्त-युग का वही दृष्टिकोण अपनी जड़ें जमाये हुए है जिसके अनुसार नारी को पुरुषों की आश्रिता और संरक्षिता ही समझा जाता था। एक समय ऐसा भी था जब नारी को समाज में कम महत्त्व का व्यक्ति समझा जाता था। यहाँ तक कि एक वर्ग तो उसमें आत्मा के अस्तित्व को भी नहीं मानता था।

अब स्थिति बदली है। फिर भी परोक्ष दुर्व्यवहार में अभी भी अन्तर नहीं आया है। ऐसे व्यवहार आये दिन दृष्टिगोचर होते रहते हैं और वे स्वभाव के अंग भी बन गये हैं। अधिक प्रजनन के कारण अपना शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य चौपट कर बैठीं- हजारों-लाखों स्त्रियाँ बार-बार गर्भ धारण करने और अशक्त-असमर्थ रहने पर भी सन्तान का पालन-पोषण करने का गम्भीर उत्तरदायित्व उठाते रहने से अनेक युवतियाँ २०-२० वर्ष की उम्र में ही अधेड़ वृद्धा-सी लगने लगती हैं।

यह एक तथ्य है कि नारी की समर्पण भावना का अनुचित लाभ उठाकर पुरुष आरम्भ से अब तक स्वयं को उसका स्वामी और अधिकारी समझता आ रहा है। आदमी रुपये-पैसों का मालिक हो सकता है, जमीन-जायदाद का मालिक हो सकता है, धन-सम्पदा का मालिक हो सकता है पर किसी दूसरे मनुष्य पर तो अपनी मालकियत नहीं रख सकता। हाँ, दूसरा व्यक्ति उसके प्रेम का गुलाम जरूर बन सकता है; पर ऐसी स्थिति में कोई भी दूसरे के प्रति मालिकी का भाव नहीं रखता । पति स्वयं को पत्नी का मालिक समझता है और उस पर उसी तरह अपना शासन चलाता है। यही इस बात का प्रतीक है कि स्त्री पर अब भी जमीन-जायदाद की तरह मालकियत का अधिकार समझा जाता है। इस विकृत दृष्टिकोण के कारण पुरुष-स्त्री के साथ वैसा ही व्यवहार करता है, जैसे कोई गड़रिया अपनी भेड़-बकरियों के साथ। महात्मा गाँधी ने पुरुष की इस बर्बरता के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए एक स्थान पर कहा है–"औरतों का अधिकांश समय पुरुषों की सेवा में तथा सहज उनके मनोरंजन और वासनापूर्ति का साधन बनने में ही व्यतीत हो जाता है। यह दासता नहीं तो और क्या है । मैं तो इसे पुरुष की बर्बरता, क्रूर निशानी कहूँगा।"

अभी पिछले दिनों तक स्त्रियों की चोरी तक की जाती रही है। पिछड़े क्षेत्रों में आज भी यह प्रचलित है। असामाजिक तत्व भोली-भाली स्त्रियों को बहला-फुसला कर उनका अपहरण कर लेते हैं और उन्हें दूसरी जगह ले जाकर बेच देते हैं। एक बार इस बिडम्बना की शिकार हुई स्त्री के लिए फिर समाज के सभी द्वार बन्द हो जाते हैं।

नारी के प्रति यह वासनात्मक दृष्टिकोण ही पुरुष को वैसी परिस्थितियाँ पैदा करने के लिए मजबूर करता है, जिससे वह अपनी गयी-गुजरी हालत से ऊपर न उठ सके। खेद का विषय है कि इसी कारण अभी तक लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने की आवश्यकता उतनी नहीं समझी जाती है जितनी कि समझी जानी चाहिए और न स्त्रियाँ समझदार होने पर स्वयं सुसंस्कृत बनने का प्रयास करती हैं। दोष उनका नहीं है, कारण उत्पन्न की गयी वे परिस्थितियाँ हैं, जिनमें स्त्रियाँ अपने स्वरूप को ही पहचान नहीं पातीं। सर्वतोमुखी प्रगति के लिए प्रोत्साहन मिलने के स्थान पर तथाकथित शुभचिन्तकों एवं सम्बन्धियों द्वारा उन्हें निरुत्साहित ही किया जाता है। विपन्न परिस्थितियों से संघर्ष करने के लिए कोई स्त्री जीविका उपार्जन के लिए घर से बाहर कदम भी उठाती है तो उसके चरित्र पर तरह-तरह के आक्षेप किये जाते हैं। इन संकुचित धारणाओं के कारण परम्परागत वातावरण में पली स्त्रियाँ आगे बढ़ने का साहस तक नहीं कर पाती हैं।

नारी के प्रति पुरुष वर्ग की मान्यताएँ गिरी हुई हैं। नारी दुर्दशा का कारण यही है और इस कारण वह आजीवन पुरुष के कन्धों पर एक अस्वाभाविक बोझ बनकर रहती है। आश्रय रहित स्त्रियों की समस्याओं का अध्ययन करना हो तो उन स्त्रियों का जीवन सामने है, जिनके पति की असमय में मृत्यु हो गई है और चल रहे रोजगार, व्यापार-व्यवसाय तथा जमीन-जायदाद को जान-बूझकर दूसरों के भरोसे छोड़ना पड़ जाता है। उन्हें विवश होकर किसी पास के या दूर के पुरुष सम्बन्धी का सहारा लेना पड़ता है। जो प्रायः उसे लूट कर अपना घर भरने लगता है। बेचारी विवश नारी जानते-बूझते भी यह सब देखने और सहन करने के लिए मजबूर रहती है। इसके अतिरिक्त सधवा महिलाओं को भी अपने परिवार की व्यवस्था के लिए पति पर निर्भर रहना पड़ता है।

समाज के उत्थान और देश को शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए यह आवश्यक है कि नारी का सहयोग भी प्राप्त किया जाय और उसे इस योग्य बनाया जाय कि वह निर्माण यज्ञ में अपनी भी समुचित भूमिका निभा सके। इसके लिए हमें अपने दृष्टिकोण में आमूल-चूल परिवर्तन करना होगा, जो हम सदियों से विरासत में प्राप्त करते आ रहे हैं, वह यह है कि नारी पुरुष की पिछलग्गू और आश्रित मात्र है। उसका न कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व है तथा न ही अलग से कोई अस्तित्व । वह एक मानव इकाई नहीं बल्कि पुरुष के मन बहलाव और विविध-विधि सेवा प्रयोजन पूरे करने का साधन भर है।

किन्तु बुद्धिवादी इस युग में वह भ्रान्त मान्यताएँ अधिक दिनों तक टिकने वाली नहीं हैं। खोजों के आधार पर जो निष्कर्ष सामने आये हैं उन्होंने उस मान्यता को पूरी तरह झुठला दिया है कि स्त्री अबला है, अयोग्य तथा असमर्थ है तथा पुरुष सबल और समर्थ । निष्कर्षों से बात सिद्ध हो चुकी है कि वह मानसिक, बौद्धिक एवं भावनात्मक धरातल पर भी पुरुष से अधिक समर्थ और सबल है। यदि उसकी क्षमता को कुण्ठित न किया जाय, विश्वास को न तोड़ा जाय तो वह जीवन-पर्यन्त अपनी समर्थता अक्षुण्ण बनाये रख सकती है तथा उसके सहारे

पुरुष से दो कदम आगे बढ़कर अपनी विशिष्टता का परिचय दे सकती है।

'दी नेचुरल सुपीरियारिटी ऑफ वूमेन' पुस्तक के लेखक मानवविज्ञानी एशले मानटेग ने ऐसे अनेक उदाहरण, प्रमाण एवं तर्क प्रस्तुत किये हैं जिनके आधार पर स्त्री की जैविक विशेषता मालूम पड़ती है तथा पुरुष से उसकी वरिष्ठता सिद्ध होती है। अपने अध्ययन निष्कर्ष में उन्होंने पाया कि अबोध कन्या शिशुओं में मृत्यु दर लड़कों की अपेक्षा कम पायी जाती है। जन्म सम्बन्धी त्रुटियाँ, रोगों का संक्रमण भी बालिकाओं में कम होता है। हार्ट अटैक, हृदय रोगों के विरुद्ध उनमें प्रकृति प्रदत्त प्रतिरोधक क्षमता पायी जाती है। रोगों एवं आघातों से लड़ने की जीवनीशक्ति लड़कियों में अधिक होती है। वे दीर्घायुष्य होती हैं।

न्यूयार्क के प्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा लेख पॉलड्रैनोव ने अपने सर्वेक्षण रिपोर्ट में कहा है कि अनुमानतः विश्व में महिलाओं एवं पुरुषों का अनुपात १४० तथा १०० का है। जन्म के समय यह अनुपात १०६ और १०० का होता है। पर लड़के लड़कियों की तुलना में अधिक मरते हैं। फलस्वरूप उनका अनुपात आगे चलकर और भी कम हो जाता है। यह भी देखा गया है कि जन्म लेने के आरम्भिक महीनों में लड़के लड़कियों की अपेक्षा अधिक मरते हैं। लड़कों में मृत्यु दर १५ प्रति हजार है जबकि लड़कियों में यह ११ प्रति हजार है। जन्म सम्बन्धी शारीरिक, मानसिक गड़बड़ियाँ, जिनकी संख्या ड्रैनोव ने १९० बतायी है, ७१ प्रतिशत पुरुषों में तथा २५ प्रतिशत महिलाओं में पायी जाती है। अधिक रक्तचाप तथा हृदय रोग की सम्भावनाएँ होते हुए भी नारियों में उन रोगों के कारण मृत्यु दर पुरुषों की तुलना में कम पायी जाती है। कई जीवाणुओं के संक्रमण से अप्रभावित रहने की क्षमता महिलाओं में अधिक देखी गयी है। रोग प्रतिरोधक क्षमता का महत्त्वपूर्ण घटक इम्यून ग्लोब्यूलिन 'एम' स्त्रियों में अत्यधिक होता है। महिलाओं में पाया जाने वाला सेक्स हारमोन– एस्ट्रोजन इम्यून ग्लोब्यूलिन की मात्रा में वृद्धि करता है। अनेक प्रयोग-परीक्षणों में इस तथ्य का रहस्योद्घाटन हुआ है।

[illegible] ...यों आगे [illegible] 'एक्स' [illegible] रेक्स वाई गुणसूत्र भी पाये जाते हैं। इस वाई गुणसूत्र के आधार पर ही पुरुष का अस्तित्व प्रकट होता है। अर्थात् पुरुष को जन्म देने में भी बायोलोजिकल भूमिका अधिक नारी की महत्त्वपूर्ण होती है। यह भी देखा गया है कि निषेचन क्रिया के उपरान्त तैयार नर-भ्रूण की तुलना में नारीभ्रूण अधिक शक्तिशाली होता है। नर-भ्रूण नारी की तुलना में अकाल मृत्यु को प्राप्त करते देखे गए हैं अर्थात् नारी का एक्स गुण पुरुष के एक्स गुण सूत्र से मिलकर एक्स-वाई की अपेक्षा कहीं अधिक समर्थ भ्रूण को जन्म देता है। यह भी देखा गया है कि एक्स गुण सूत्रों में से एक भी त्रुटिग्रस्त हो और जीवन-नाशक व्यवहार करने लगा हो तो दूसरा स्वस्थ इस असामान्य व्यवहार पर नियन्त्रण करता तथा उसकी गति विधि में अवरोध उत्पन्न कर देता है। एक्स वाई गुणसूत्रों के संयोग में यह प्रक्रिया नहीं सम्भव हो पाती। इसी कारण नर-शिशु में जन्म सम्बन्धी त्रुटियाँ अधिक पायी जाती हैं। सम्बन्ध विषय के शोध में लगे विशेषज्ञों ने एक चौंकाने वाला निष्कर्ष प्रकाशित किया है कि इन आनुवंशिक कारणों से ही संसार में पुरुष अपंगों व अपाहिजों का अनुपात स्त्रियों की तुलना में अत्यधिक है।

सेक्स सम्बन्धित आनुवंशिक रोग-हेमोफिलिया, मादा के शरीर से नर शिशु में तो गमन करता है पर मादा शिशु में नहीं। प्रयोगों में यह भी पाया गया कि पुरुष का सेक्स अन्तःस्राव जीवन विरोधी प्रवाह उत्पन्न करता है। यह पुरुषों में हृदय रोग को बढ़ावा देता है। पुरुष का सेक्स अन्तःस्राव टेस्टोस्टोरोन, क्रोनरी नाड़ियों में अवरोध उत्पन्न करता है जो हार्टअटैक को रोकता है जबकि पुरुषों में इसके विपरीत स्थिति पायी जाती है। फलतः वे हृदय रोगों के अधिक शिकार होते हैं।

डाउन स्टेट मेडीकल सेन्टर के डॉ० लुईस एम०हेलमन के अनुसार बीसवीं सदी में आयु वृद्धि के साथ-साथ पुरुषों व नारियों की आयु सीमा का अन्तर भी बढ़ा है। आरम्भ में नारी पुरुष से दो वर्ष औसतन अधिक जीवित रहती थी अब यह अन्तर बढ़कर ८ वर्ष तक पहुँच गया है।

शारीरिक विशेषता-वरिष्ठता का एक स्थूल और छोटा पक्ष है। मानसिक समस्वरता, सन्तुलन, सामंजस्य की प्रवृत्ति जैसी अगणित मानसिक तथा दया, करुणा, सेवा, त्याग जैसी भावनात्मक विशेषताओं के पक्ष शरीर की तुलना में कहीं अधिक महत्वपूर्ण और महान हैं। इन क्षेत्रों में नारी पुरुष को मीलों पीछे छोड़ देती है।

अधिक अच्छा तो यह है कि पुरुष नारी को भी अपने समकक्ष माने, उसे समान दर्जा दे। समाज का एक अभिन्न घटक मानने एवं उसे विकास का सुअवसर देने से ही वह उसकी अनेक प्रकार की विशेषताओं का समुचित लाभ उठा सकता है अन्यथा अबला, असमर्थ कहते रहने से तो वह नारी को सचमुच ही पंगु बनाता रहेगा और प्रकृति प्रदत्त समर्थता होते हुए भी उसका लाभ नहीं उठा सकता।

विशिष्ट समस्या का विशिष्ट समाधान

विश्व के समस्त लोकतान्त्रिक देशों की तरह भारतवर्ष में भी सभी नागरिकों को सामाजिक सुव्यवस्था, आर्थिक प्रगति, राजनैतिक स्वतन्त्रता, विचार अभिव्यक्ति, न्याय, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता तथा समता के अधिकार प्रदान किये गये हैं। नागरिकों में अकेले पुरुष ही नहीं आते स्त्रियाँ भी आती हैं इसलिए आर्थिक और

सामाजिक दृष्टि से स्त्रियों के लिए कुछ असामान्य बातों के अतिरिक्त कोई अलग से नियम-कानून बनाने की अन्य देशों को आवश्यकता नहीं पड़ी।

किन्तु भारतीय संविधान निर्माताओं के सम्मुख प्रारम्भ से ही हरिजन-कल्याण की तरह ही महिलाओं के उत्थान की भी समस्या थी। विचारक यह अनुभव करते थे कि पुरुषों और स्त्रियों के जीवन में अभी कड़ी भेद रेखा-सामाजिक असमानता की दीवार खड़ी हुई है। स्त्री-पुरुष की अपेक्षा कोसों पिछड़ी चल रही है जब तक इस असमानता को अतिरिक्त अधिकार और सुविधाएँ प्रदान कर पाटा नहीं जाता, स्त्री को पुरुषों के समकक्ष नहीं लाया जाता तब तक उनके लिए संविधान प्रदत्त अधिकारों का कोई उपयोग ही नहीं रहेगा। जब तक वे निम्नतर परिस्थितियों से उबरती नहीं तब तक अपनी सामाजिक उन्नति भी सम्भव नहीं। इसलिए उनके लिये अलग से विकास की सुविधाएँ प्रदान की गयीं तथा कानूनी व्यवस्था रखी गयीं । २२ सितम्बर, १९८१ को उनकी शिक्षा और सामाजिक दशा सुधारने के लिए एक समिति का गठन भी किया गया और उसे यह अधिकार दिये गये कि वह महिलाओं की वर्तमान स्थिति की सर्वांगीण समीक्षा करे तथा उसे अधिक रोजगार के अवसर प्रदान करने की परिस्थितियों का अध्ययन कर सुझाव दे कि उन्हें किस तरह शिक्षित व स्वावलम्बी बनाया जा सकता है। इस समिति को नारी की स्वास्थ्य समस्याओं, सामाजिक कुरीतियों, जैसे- दहेज, बालविवाह आदि की भी विशद् व्याख्या करने को भी कहा गया। उक्त समिति ने उनकी पारिवारिक स्थिति, शिक्षा, स्वावलम्बन, पर्दा प्रथाओं, परम्पराओं, विवाह के नियमों, राजनीति में योगदान की परिस्थितियों का अध्ययन विस्तार से किया और कुछ मार्ग निर्देशक सिद्धान्त भी तय किये । व्यापक जन-सम्पर्क द्वारा उनकी समस्याएँ परखी गयीं और विचार गोष्ठियों द्वारा महिला-मंगल के लिए उपयोगी विचारों का आदान-प्रदान सम्भव हुआ। विद्वानों तथा विशेषज्ञों से परामर्श संग्रहीत, किये गये। भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद, आर्थिक विकास संस्थान, प्रौद्योगिकी संस्थान, विश्व विद्यालय अनुदान आयोग, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान आदि की सहायताएँ ली गयीं जिसके फलस्वरूप नारी जीवन की समस्याओं, आवश्यकताओं आदि का स्पष्ट चित्र बनाना सम्भव हो सका।

किन्तु इन समस्याओं के समाधान का अध्ययन अत्यन्त जटिल रूप में सामने आया । समिति ने स्वीकार किया कि सामाजिक व्यवहार तथा प्रवृत्तियों का अध्ययन कर लेना एक बात है; पर जिन तत्वों, आदर्शों, सिद्धान्तों, मर्यादाओं पर भारतीय समाज की रचना हुई है, वह इतने यथार्थ हैं कि छोड़े भी नहीं जा सकते, पर उनका स्वरूप इतना विकृत होकर सामाजिक संस्कार के रूप में इतना व्यापक हो गया है कि उनमें सुधार लाये बिना काम भी नहीं चल सकता । यह कार्य सरकार चलाये तो समाज का प्रतिगामी पक्ष चलने नहीं देगा। प्रतिक्रियावादी पक्ष चलाये तो प्रगतिशीलता आ नहीं पायेगी। इस तरह दोनों ही तरह के प्रयास कठिन हो जाएँगे और उनका कोई ठोस परिणाम न मिल सकेगा।

फिर प्रश्न केवल अपने समाज का ही नहीं है। लगभग विश्व के सभी समाज अपनी-अपनी तरह से इस समस्या से पीड़ित और परेशान हैं। अतएव समस्त नारी जीवन के लिए एक समान आचार संहिता की आवश्यकता पड़ती है जिसमें उसकी नैसर्गिक प्रकृति, उसकी सम्वेदनशीलता, उसका मनोविज्ञान, उसकी रचना के अनुरूप संरक्षण, प्रतिष्ठा और दायित्व यह सभी विचारणीय तत्त्व आ जाते हैं। इसके लिए गहन चिन्तन की आवश्यकता तो है ही अनवरत संघर्ष को न बुझने वाली जीवन-ज्योति की आवश्यकता अनुभव की गयी और माना गया कि उसके अतिरिक्त समस्या का अन्यत्र समाधान सम्भव नहीं है।

महामना बापू की भी मान्यता थी कि नारी जीवन की समस्याओं का हल एकमात्र धार्मिक समस्याओं के हल से ही सम्भव है जब तक ऐसा नहीं होता तब तक शासकीय और सामाजिक प्रयत्नों की दाल गल पायेगी यह सन्देहास्पद ही रहेगा। आज की परिस्थितियाँ स्वयं स्पष्ट कर रही हैं, नारी को उन्मुक्त वातावरण में शैक्षणिक सांस्कृतिक,.आर्थिक प्रगति के लिए जितना अग्रसर किया जाता है उतनी ही नित्य नयी समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। नारी की अपनी विशिष्ट भावनापरक रचना है, उसे न समझने की जहाँ भी भूल की जाएगी, सतही प्रयत्न, समस्याएँ और भी जटिल बनायेंगे। आज के अविवाहित मातृत्व, पुरुषों से संघर्ष, अपहरण और बलात्कार, विवाहों में माता-पिता की परेशानियाँ तथा तलाक के बढ़ते आँकड़े उसी की ओर संकेत करते और यह बताते हैं कि रोग की जड़ें तह में हैं सतह में नहीं। जब तक उतने गहरे पैठ कर प्राचीन मान्यताओं के अध्ययन, उनके नवीनीकरण नारी मनोविज्ञान के विश्लेषण और सामंजस्य को भी इन कार्यक्रमों में जोड़ा नहीं जाता तब तक कोई भी प्रयास शायद ही सफल हो, शायद ही नारी जीवन को भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में प्रगतिशील बना सकें। प्रयत्नों की असफलता कहें या अपेक्षित प्रगति का न होना बात एक ही है। जब तक इस देश के संस्कारगत स्वरूप और नारी की भूमिका को ध्यान में नहीं रखा जाता तब तक भारतीय नारी सच्चे अर्थों में विकास कर सकेगी, यह सोचना भी कठिन ही रहेगा।

युगान्तर चेतना का महिला जागरण अभियान को विद्वान, प्रेक्षकों और विचारकों ने स्पष्टतः परिस्थिति और युग के अनुरूप सटीक माना है। इस मिशन महिला जागरण अभियान ने अपनी ढाई वर्ष की नवजात अवस्था में ही उल्लेखनीय प्रगति की, सामाजिक अन्धविश्वास, जराजीर्ण परम्पराओं को झकझोरा तथा महिला जागरण का संदेश लाखों लोगों तक पहुँचा दिया। यह मिशन के सही

दृष्टिकोण का परिचायक है। हजारों, लाखों महिलाओं ने आध्यात्मिक, धार्मिक, बौद्धिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में मार्ग-दर्शन और प्रकाश ग्रहण किया, अपने जीवन बदले हैं, इससे हमारे चिन्तन और विनियोजन की सार्थकता सिद्ध हो गयी है।

किन्तु यह किसी एक व्यक्ति का नहीं, जन आन्दोलन है। अपना देश विशाल देश है। समाज की प्रत्येक शिरा में मैला रक्त बह रहा है, बुराइयों की जड़ें इंच-इंच में जमी पड़ी हैं। उन्हें उखाड़ने के लिए हजारों-लाखों हाथों का प्रयत्न, विभूतियों का योगदान तथा प्रतिभाओं का समय चाहिए जो इस अभियान के प्रति उतनी श्रद्धाभावना से काम करें मानो वह अपनी जन्मदात्री जननी को ही बन्धनों से मुक्त करने के समान हो।

काम निःसन्देह कठिन है, उन्हें आध्यात्मिक धार्मिक वातावरण प्रदान करने में प्रतिक्रियावादियों का विद्रोह उन्हें पारिवारिक बन्धनों से मुक्ति दिलाने में दकियानूसों की आलोचनाएँ, अपने ही लोगों का विरोध, उसकी अपनी व्यक्तिगत आत्महीनताएँ इन सबके परिमार्जन के लिए गम्भीर प्रयत्न आवश्यक हैं। सो उसके लिए हर भावनाशील परिजन को सजग और सक्रिय होना चाहिए। यह वर्तमान का नहीं, पीढ़ियों का प्रश्न है। समस्याएँ सतह से तह में उतर गयी हैं। उतनी ही गहरी पैठ करनी पड़ेगी उससे कम में इस गम्भीर चुनौती का समाधान सम्भव नहीं होगा।

नारी समस्या का आध्यात्मिक हल

आज नारी के उत्थान, उसके विकास, समानाधिकार, उत्कर्ष की चारों ओर से आवाज उठायी जा रही है। धन में, पद में, शिक्षा-दीक्षा में, समाज के मंच पर, घर में, बाजार में, सब जगह नारी को पुरुषों के समान हक मिलने चाहिए। ऐसा सभी विचारक, सुधारक, जन-नेता कहते हैं और वस्तुतः यह एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। इस ओर प्रयत्न होंगे, होने ही चाहिए।

लेकिन क्या इससे ही मूल समस्या का समाधान हो जाएगा? क्या इन तथ्यों से ही नारी और पुरुष के जीवन में एकता आ जाएगी? इन प्रयत्नों का उत्तर यदि हम इस सम्बन्ध में अब तक प्राप्त की गयी सफलताओं में से ढूँढ़ें तो मालूम होता है कि मूल प्रश्न ज्यों का त्यों ही पड़ा हुआ है। आजकल हमारे यहाँ तथा संसार में बहुत जगह नारी को पुरुषों के साथ समानता के वैधानिक अधिकार मिल गये हैं और वे व्यवहार में भी आने लगे हैं लेकिन मूल रूप से नारी पुरुष से उतनी ही दूर है जितनी मध्य युग में थी। अभी नारी हमारे सार्वजनिक जीवन का सहज अंग नहीं बन पायी है। नारी शब्द के साथ ही हमारे मन में एक विशेष भेदपूर्ण पदार्थ की कल्पना काम करने लगती है। पुरुष शब्द के उच्चारण पर हम कोई महत्त्व नहीं देते। उसे अपने समाज की सामान्य-सी बात समझकर सहज और गौण रूप में स्वीकार कर लेते हैं। लेकिन नारी के विषय में ऐसा नहीं है। हम उसे एक विजातीय तत्त्व समझ कर उसके आगे-पीछे, ऊपर नीचे, आकार-प्रकार के बारे में दिमाग दौड़ाने लगते हैं। उसकी ओर आकर्षित होते हैं। उसे अपने से भिन्न पदार्थ समझकर उसकी समीक्षा करने लगते हैं।

बाह्य जीवन में समानता के अनेक अधिकार मिल जाने पर भी पुरुष और नारी के बीच भेद की स्थिति आज मूल रूप से बनी हुई है। हम इस सम्बन्ध में एकता अभी नहीं कर पाये। बाजार में नित्य ही अनेक पुरुष हमारी आँख के सामने होकर निकलते हैं लेकिन उसका हमारे मन-मस्तिष्क पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, लेकिन एक नारी को देखकर हम कौतूहल की तरह उसकी ओर घूर-घूरकर देखने लगते हैं। अच्छी-बुरी भावना कुछ भी हो सकती है लेकिन एक विजातीय पदार्थ की तरह नारी और पुरुष के बीच आज भी असमानता की एक महत्त्वपूर्ण खाई बनी हुई है। जिसे हमारा संवैधानिक एवं सामाजिक व्यवस्था भी पार नहीं कर पायी है।

यह समस्या सामाजिक अथवा राजनैतिक ढाँचे से परे है। इसका आधार आध्यात्मिक है, आन्तरिक है, बाहरी नहीं। यही कारण है कि नारी की समानता के अनेक बाहरी प्रयत्न होते हुए भी नारी पुरुष से दूर ही है, एक विजातीय पदार्थ के रूप में। इसलिए नारी और पुरुष की समानता के लिए बाह्य प्रयत्नों के साथ-साथ हमें आध्यात्मिक प्रयत्न भी करने होंगे, जिनके ऊपर ही नारी पुरुष की विभेदता का मूलाधार अवलम्बित है।

जब तक हम शरीर-भेद, लिंग-भेद द्वारा नारी और पुरुष का परिचय प्राप्त करते रहेंगे तब तक यह विभेदता कभी दूर नहीं हो सकती। पुरुष नारी को नारी समझेगा और नारी पुरुष को पुरुष। फिर समानता का आधार ही क्या रह जाता है? समानता का आधार आत्मा है जो स्त्री पुरुष दोनों में एक समान है। नारी और पुरुष ही नहीं, यदि पुरुष-पुरुष के बीच भी शारीरिक आधार पर परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न होगा तो वहाँ भी अनेक भेदभाव, विकार जन्म ले लेंगे। इसलिए नारी और पुरुष में समानता पैदा करनी होगी तो हमें मानसिक आधार पर परिचय प्राप्त करना होगा। आत्मा के आधार पर मानना व समझना पड़ेगा। यदि हम किसी नारी को आत्मा की दृष्टि से देखेंगे तो हमारे उसके बीच भेद का कोई आधार ही नहीं मिलेगा। अपनी तरह उसकी भी आत्मा को समझकर उसे विश्वात्मा का सहज अंग जानकर शान्त रहेंगे।

यदि शारीरिक परिचय भी हो तो केवल सेवा, सहयोग, सद्भाव एवं स्नेह के लिए ही हो सकता है। वासना की दृष्टि से शरीर परिचय निकृष्ट है। शरीर से शरीर का सम्बन्ध सेवा, स्नेह एवं सहयोग के लिए होना

चाहिए। लेकिन आत्मिक दृष्टिकोण विचलित न हो अन्यथा शरीर सम्पर्क के साथ ही शरीर भेद की दृष्टि उत्पन्न होगी और उससे विकार पैदा होगा।

स्त्री-पुरुष का मूल भेद शरीर आकृति के आधार पर है, आत्मा के आधार पर नहीं, इसलिए शरीर-प्रधान दृष्टिकोण न रखकर हमें आत्मा का दृष्टिकोण बनाना पड़ेगा। यह जितना व्यापक बनेगा उतना ही नारी पुरुष के बीच की असमानता दूर होगी। जब तक हमारे समाज में शरीर परायणता को महत्त्व मिलता रहेगा तब तक नारी और पुरुष का भेद समाप्त नहीं होगा । नारी और पुरुष के बीच परिचय का आधार आत्मा ही हो तो समस्या मूल रूप से हल हो जाती है।

फिर भी जो लोग यह दृष्टिकोण बनाने में असमर्थ हैं जो आत्म-दृष्टि प्राप्त करने की स्थिति में नहीं हैं उनके लिए ऋषियों ने- मनीषियों ने एक दूसरा सरल मार्ग बताया है। यदि नारी को आत्मा-रूप में नहीं जान सकते तो उसे मातृशक्ति के रूप में, पूजा-उपासना की प्रतिमा के रूप में देखें। यह मातृशक्ति सर्वत्र व्याप्त है, नारी तो केवल उसकी मूर्तिमान प्रतिमा ही है। हमारे यहाँ इसी मातृशक्ति की पूजा के रूप में अनेक देवियों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, काली, षोड्श मातृकाएँ, राधा, सीता, गौरी कितने ही रूपों में आज भी नारी के मातृ रूप की पूजा हम कर रहे हैं।

इसलिए आत्मा की दृष्टि के सिवा नारी को देखने, समझने व परिचय प्राप्त करने का यदि कोई दूसरा मार्ग है तो वह है, उसका पूजनीय मातृ-स्वरूप।

सीता के फेंके गये आभूषणों के बारे में पूछने पर लक्ष्मण राम से कहते हैं-

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभि जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ।।

"हे भगवन ! केयूर, कुण्डल आदि मैं नहीं जानता हूँ। यदि कुछ जानता हूँ तो पैरों के उन नुपुरों को जिन्हें मैं माता की पद-वन्दना के समय देखा करता था ।"

कितना उत्कृष्ट उदाहरण है, नारी के प्रति पुरुष के दृष्टिकोण का। लक्ष्मण ने कभी सीता के जेवर, शरीर सौन्दर्य के रूप में देखा ही नहीं। सीता उनके लिए मातृशक्ति की साकार मूर्ति थीं जिनकी चरण वन्दना में ही वे लीन रहते थे।

जहाँ पुरुषों को अपना दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता है, अपनी भावनाओं में परिवर्तन करने की जरूरत है वहाँ नारी जाति को भी अपनी धारणाओं, अपने विश्वासों में परिवर्तन करने की आवश्यकता है। नारी स्वयं अपने आपको पुरुषों से अलग एक भिन्न तत्त्व समझती है और शारीरिक आधार पर ही अपना परिचय प्राप्त करती है। जब तक नारी वस्त्रों में, बनाव-शृंगार में, फैशन में जेवर आभूषणों में अपना व्यक्तित्व देखती रहेगी पुरुषों के लिए कामिनी बनकर उनकी वासनाओं की तृप्ति के लिए ही अपना जीवन समझती रहेगी या खा-पीकर घर की चहार दीवारी में पड़े रहना ही अपना आदर्श समझेगी तब तक कोई भी शक्ति, नियम, कानून उसका उद्धार नहीं कर सकेंगे।

अपने उद्धार के लिए नारी को स्वयं भी जागरूक होना पड़ेगा। अपने आपको आत्मा, वह आत्मा जो पुरुषों में भी है, समझना होगा। मातृत्व के महान पद की प्रतिष्ठा को पुनर्जीवित रखने के लिए उसे सीता, गौरी, मदालसा, देवी, दुर्गा-काली की सी शक्ति, क्षमता और कर्तव्य का उत्तरदायित्व ग्रहण करना होगा। कामिनी-विलास की सामिग्री न बनकर, अपने आपको आदर्श पूजनीय गुणों का आधार बनाना होगा तभी वह गिरी हुई अवस्था से उठ सकती है। समाज में अपना अधिकार पूर्ण स्थान प्राप्त कर सकती है।

पुरुष और नारी में समानता पैदा करने के लिए नारी के पुनरुत्थान के लिए हमें इन आध्यात्मिक प्रश्नों को आध्यात्मिक आधार पर हल करना होगा तभी हमारा उद्देश्य सफल हो सकता है।

❋❋❋❋

नारी की गरिमा गिराने में घाटा—ही घाटा

नारी की गरिमा समझें और उसे सम्मान दें

भारतीय संस्कृति में स्त्रियों के नाम के साथ 'देवी' लिखने और सम्बोधित करने की परम्परा आदिकाल से चली आ रही है । यह इस बात का प्रतीक है कि हिन्दू विचारधारा में नारी को देव-श्रेणी की सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है ।

ऐसा अनायास ही नहीं हुआ । इस प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए नारियों ने चिरकाल से गहन तपश्चर्या की है । 'पुण्य कापि पुरन्ध्री' 'नारि कुलैक शिखामणिः' अर्थात् उसने अपनी सम्पूर्ण शक्तियों के चरम विकास द्वारा ही यह गौरव प्राप्त किया है ।

लोककल्याण की विधायिका, पथ-प्रदर्शिका और संरक्षिका शक्ति का नाम ही देवी है । अपने इस रूप में भारतीय नारी आज भी उन प्राचीन गुणों को धारण किए हुए है, जिनके द्वारा अतीत काल में उसने समाज के समग्र विकास में योगदान दिया था । यद्यपि वह तेजस्विता आज धूमिल पड़ गई है, तथापि यदि उस पर पड़े मल-आवरण के विक्षेप को हटा दिया जाये, तो नारी सत्ता अपनी पूर्ण महत्ता को फिर से ज्यों की त्यों चरितार्थ कर सकती है ।

ब्रह्म पुराण में व्यास-जाबालि संवाद के रूप में एक आख्यायिका आती है । व्यास जी जाबालि को बताते हैं- ''पितुरप्यधिका माता गर्भधारण पोषणात् । अतोहि त्रिषु लोकेषु नास्ति मातृ समो गुरुः ।'' हे जाबालि ! पुत्र के लिये माता का स्थान पिता से बढ़कर है, क्योंकि वही उसे गर्भ में धारण करती है, अपने रस, रक्त और शरीर से ही नहीं भावनाओं और संस्कारों से भी पालन-पोषण करती है । इसलिए वह सर्वोपरि मार्गदर्शक और कल्याणकारक गुरु के रूप में प्रतिष्ठा की पात्र है । ''नास्ति पुत्र सम प्रिय ।'' उसे पुत्र से बढ़कर और कोई प्रिय नहीं । अतएव मनुष्य मात्र का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह परम आध्यात्मिक शक्ति के रूप में 'माँ' को प्रतिष्ठा प्रदान करें, प्रत्येक नारी में भाव वत्सला नारी का रूप देखें ।

''नास्ति भार्या सम मित्र''-माँ के बाद दूसरा रूप 'पत्नी' का 'सहधर्मिणी' का है । इस रूप में उसे सबसे बड़े विश्वासपात्र मित्र की संज्ञा दी गई है । जीवन की कठिन परिस्थितियों में जब संसार के अन्य सभी लोग साथ छोड़ जाते हैं, धन-सम्पत्ति का विनाश हो जाता है, शरीर रोगी और निर्बल हो जाता है, उस स्थिति में भी सहनशील पत्नी ही पुरुष का साथ देती है और उसकी हर कठिनाई में और कोई योगदान भले ही न बन पड़े, किन्तु पुरुष के मनोबल, उसकी आशा और संवेदनशीलता को बल प्रदान करती रहती है ।

''नास्ति भगिनी समा मान्या'' बहिन के समान सम्मान देने वाला और कोई नहीं । इस रूप में नारी ने पुरुष को जो स्नेह प्रदान किया है, उससे हमारे सामाजिक सम्बन्ध और जातीय बन्धन सुदृढ़ हुए हैं । भारतीय वीरों को बुराइयों से लड़ने की प्रेरणा देने वाली, उनके गौरवपूर्ण मस्तक का तिलक करने वाली बहिन का सम्बन्ध आज भी कितना मधुर है इस बात को रक्षाबन्धन पर्व पर हर भारतीय अनुभव किया करता है ।

''गृहेषु तनया भूषा''-अर्थात् कन्या के रूप में नारी घर की शोभा है । वह अपने आमोद-प्रमोद से गृहस्थ जीवन में जो सरसता लाती है, वह अपेक्षाकृत पुत्र नहीं ला पाते । कन्या पुत्र की अपेक्षा कहीं अधिक भावनाशील होती है, अतएव उससे मिलने वाली स्नेहधारा का मूल्य और महत्व बहुत अधिक है ।

अपने इन चारों रूपों में अतीतकालीन भारतीय नारी ने पुरुष वर्ग के साथ जो उपकार किये है, उनकी तुलना किसी भी दैवी सत्ता के साथ सहर्ष की जा सकती है । उसमें उसका पलड़ा भारी ही बैठेगा । अतएव उसका 'देवी' कहलाना प्रत्येक दृष्टि से उचित और न्यायपूर्ण है । उसकी इस गरिमा को हमें पूरी-पूरी प्रतिष्ठा भी देनी चाहिए ।

नारी तब भी महान थी, आज भी महान है

स्वेच्छामयः स्वेच्छया च द्विधारूपो बभूव ह ।
स्त्री रूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान्स्मृतः ॥

-ब्रह्मवैवर्त पु०

परमात्मा ने सृष्टि सृजन की इच्छा की, उसने अपनी सत्ता को दक्षिण व वाम दो भागों में विभक्त कर दिया । दक्षिण भाग पुरुष है, वाम भाग नारी । हिन्दू दर्शन इस आख्यान के साथ प्रारम्भ से ही नारी को परमेश्वरी मान कर चलता है । इतनी उत्कृष्ट श्रद्धा नारी के प्रति शायद ही किसी देश, जाति और संस्कृति ने व्यक्त की है ।

यहाँ नारी विहीन जीवन की कल्पना जंगली पशुओं से भरे भयंकर जंगल से की गई है -

न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते ।
गृहं तु गृहिणीहीनं कांतारादति रिच्यते ॥

अर्थात्-परिवार में जीवन और प्रसन्नता का स्रोत एकमात्र गृहिणी है । उसके बिना घर भयंकर जंगल के समान होता है ।

ऋग्वेद का कथन है–वृषभश्चधेनुः अर्थात् परमात्मा नर भी है नारी भी है । इसी तथ्य को अपनी काव्यधारा में उतारते हुए कवि कालिदास ने लिखा है कि यदि पुरुष 'वाक' है तो नारी 'अर्थ' दोनों एक दूसरे में समाहित एक सत्ता है । अतएव एक पक्ष को न तो कभी श्रेष्ठ ठहराया जा सकता है न दूसरे को हेय, दोनों की समान समुन्नति ही सामाजिक सुव्यवस्था का आधार हो सकती है । एलोरा की गुफाओं में चित्रित अर्ध-नारीश्वर के चित्र दोनों की सम्मिलित परिपूर्णता की अभिव्यक्ति करते हैं ।

भारतीय संस्कृति में इस दर्शन के अनुरूप ही स्त्रियों के प्रति सामाजिक व्यवहार की क्रिया-पद्धति निश्चित की गई । ऋग्वेद के सप्तम् मण्डल में सूक्त ३१ के तीसरे मन्त्र में पति-पत्नी दोनों से कहा गया है-"पूर्ण मनोयोग से सोमरस निकालकर उसमें दूध मिलाओ और देवताओं को समर्पित करो ।"-यह कथन आध्यात्मिक क्षेत्र में स्त्री-पुरुष की समानता का प्रतिपादक है । तैत्तिरीय ब्राह्मण ने तो पत्नी-विहीन पति को यज्ञाधिकार तक से वंचित कर यह तक स्पष्ट कर दिया कि नारी के बिना पुरुष आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त ही नहीं कर सकता ।

यम स्मृति के महर्षि यमाचार्य ने स्त्रियों के लिए यज्ञोपवीत संस्कार, गायत्री आराधना और वेदाध्ययन के स्पष्ट आदेश दिये हैं और कहा है कि विदुषी महिलाओं को अपने ज्ञान और पाण्डित्य से समाज का भी मार्ग-दर्शन करना व पौरोहित्य करना चाहिए ।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने इन परिस्थितियों को और भी स्पष्ट करते हुए कहा है कि संसार में जन्म लेने वाले प्रत्येक जीव का लक्ष्य है, अपनी जीव-जन्य तुच्छता को समेट कर संसार में रहते हुए आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करना । इस लक्ष्य की प्राप्ति में लिंग का कोई बन्धन नहीं है, अर्थात् अपना पारमार्थिक प्रयोजन पूर्ण करने में नारी को समानाधिकार उपलब्ध हैं ।

आत्मिक प्रगति-शिक्षा-दीक्षा के साथ उसे अपने हितों में भी पूर्ण अभिव्यक्ति का अधिकार दिया गया है । ऋग्वेद १०-१२-७२ में एक कथानक आता है, जिसमें बताया गया है कि सूर्य की पुत्री सूर्या अपने समय की महान् विदुषी और साधिका नारी थीं । राजा सोम उनसे विवाह करना चाहते थे । यद्यपि नरेश स्वस्थ सम्पन्न और प्रतिष्ठा में कम नहीं थे तथापि सूर्या ने सांसारिक गुणों की तुलना में अधिक गुणी और आध्यात्मिक क्षमता सम्पन्न आश्विन के प्रति अपनी पसन्दगी व्यक्त की । पिता, माता और कुटुम्बियों के सम्मुख जब यह प्रश्न आया तो सभी ने सूर्या की इच्छा का ही अनुमोदन किया । इस प्रकार की कुमारियों को 'पतिवरा' अर्थात् स्वयं पति चुनने वाली कहा गया है । जो कन्याएँ आदिकाल से ही अपने लिए पति का चुनाव स्वयं करती रही हैं, वे यदि आज भी इसके लिए अपना मत व्यक्त करना चाहें तो इसे किसी भी स्थिति में न तो अधार्मिक कहा जाना चाहिए, न स्वेच्छाचारिता । यह ठीक है कि माता-पिता कन्याओं के शुभचिन्तक होते हैं पर यदि इस हितचिन्तन में उनका अपना भी योगदान बना रहे तो दहेज जैसी माता-पिता की अनेक विवशताओं का स्वतः अन्त हो सकता है ।

आर्थिक दृष्टि से तब नारी को समानाधिकार थे । अविवाहित कन्या को तो उसके भाइयों के समान ही पिता की सम्पत्ति में अधिकार होता ही था, विवाह होने के बाद भी आवश्यक होने पर वे इस अधिकार को बनाये रह सकती थीं । ऋग्वेद में ऐसा ही वर्णन मिलता है । जब ऊषा की तमाम सम्पत्ति नष्ट हो गई और परिस्थितियाँ इस तरह हो गईं कि स्वयं सुलझाव सम्भव न रहा, तो उन्होंने अपने पिता से अपनी सम्पत्ति के अधिग्रहण की चर्चा की । पिता ने अपनी पुत्री को सम्बोधित करते हुए कहा-पुत्रे ! मेरी सम्पत्ति में भाइयों के समान ही तुम्हारा समान भाग है । तुम इसे ग्रहण करो और संसार में सुखपूर्वक निवास करो ।

नारी का भावनात्मक योगदान स्नेही, सखा, सहयोगी के रूप में प्राप्त करते हुए भी हमारे पुरखों ने उन पर मनमानी करने का कभी भी समर्थन नहीं किया । मनुस्मृति के भाष्यकार, 'मेधातिथि' ने लिखा है-"पत्नी परमात्मा से प्राप्त होती है, वह पशु और स्वर्ण की तरह बाजार में नहीं मिलती, इसलिए पत्नी पर पति का कोई स्वामित्व नहीं हो सकता ।" इसी बात को आगे बढ़ाते और नारी को समान न्याय का प्रतिपादन करते हुए वे लिखते हैं-"पत्नी को त्यागने का अधिकार राजा तक को नहीं है, यदि वह ऐसा करे, तो उसकी भर्त्सना की जाये" । उन्होंने स्मृतिकार मनु की उस दुर्बलता की भी आलोचना की है जो उन्होंने श्रीराम द्वारा सीताजी के परित्याग का औचित्य सिद्ध करने में प्रदर्शित की थी ।

लड़के लड़कियों के साथ आज घरों में लालन-पालन में भेद-भाव बरता जाता है, पर तब दोनों को समान श्रेणी में रखा गया था । दोनों को 'शिशु' या 'अपत्य' एक ही नाम से सम्बोधित किया जाता था ।

हिन्दू दर्शन के आलोचक मुख्य रूप से मनु को सामने लाते और उनके प्रतिबन्धात्मक निर्देशों को दिखा कर यह भ्रमित करने का प्रयास करते हैं कि हिन्दू धर्म नारी के प्रति उदार नहीं रहा । सम्भव है मनु ने पुरुषों को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया हो, पर ऐसा हुआ है तो यह देखकर ही कि उन्हें किसी सीमा से अधिक कष्ट, संघर्ष और कठोर परिश्रम का जीवन जीना पड़ता है । स्त्रियाँ प्रकृति से कोमल होती हैं । अतएव वे इस बोझ को उठा नहीं सकतीं, जो आजीविका, सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए पुरुष को उठाना पड़ता है । बस उतना ही महत्त्व उन्होंने पुरुषों को दिया । इस सबके बावजूद उन्होंने नारी के अधिकार नहीं छीने । मनु स्वयं लिखते हैं-"जो पिता, भाई, पति बहनोई अपना कल्याण चाहते हैं, उन्हें स्त्रियों का आदर करना चाहिए । जहाँ स्त्रियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं । जहाँ उनका सम्मान नहीं है वहाँ उच्च संस्कार और योग्यताएँ भी फल नहीं देतीं ।

परिवारों में स्त्रियाँ कष्ट पाती हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। जहाँ उन्हें सम्मान मिलता है वे परिवार समृद्ध होते हैं।'' इस कथन में उन्होंने नारी के आत्म-सम्मान को बढ़ाया ही है, उसे कहीं चोट पहुँचाने का प्रयास नहीं किया।

पिछले दिनों की प्रत्येक शास्त्रीय मान्यता को अब कानूनी समर्थन भी प्राप्त हो गया है। कोई भी व्यक्ति अवयस्क कन्या से विवाह नहीं कर सकता। वयस्क कन्या स्वेच्छा से पति चुन सकती है। अन्तर्जातीय विवाह के अधिकार, पिता की सम्पत्ति में समानाधिकार, पति से तलाक तथा गर्भपात तक कानूनी संरक्षण में आ गये हैं, इस स्थिति मे मुख्य आवश्यकता उनके विचारों को नई दिशा देने और बौद्धिक दृष्टि से समर्थ बनाने की है, जिससे वे सामाजिक प्रगति में समान योगदान दे सकें।

मातृ-शक्ति ही उद्धार करेगी

सृष्टि का आदिक्रम चला था, तब देव और दानवों से भी प्रबल शक्ति मनुष्य की मानी जाती थी। मानव हर क्षेत्र में इनसे बढ़कर था। विद्या, बल, बुद्धि, वैभव सब में अग्रणी मनुष्य ही था। वह जब भी इच्छा करता था दानवों को दबोच लेता था और देवों को परास्त कर डालता था। मानव-शक्ति से उन दिनों सभी भयभीत रहते थे।

एक दिन देव-दानवों ने सृष्टा ब्रह्मा से शिकायत की—''आपने मनुष्य को इतना सशक्त बनाया है कि वह सबको भयभीत रखता है। उसकी शक्ति के आगे किसी की नहीं चलती। समस्त धरती का वैभव उसके हाथ में है। हम लोग केवल उसके आश्रित रह गये हैं। हमें भी वह अधिकार दीजिये, जिससे स्ववश जी सकें, मनुष्य से डरने की बात का अन्त आप ही कर सकते हैं।''

ब्रह्माजी ने विचार किया और उत्तर दिया—'' जब तक मनुष्य को मानवीय 'नारी' की शक्ति मिलती रहेगी वह अजेय है, अजेय रहेगा, हम उसके लिए कुछ नही कर सकते।'' देव-दानव चले आये, पर वह यह रहस्य जान गये कि मनुष्य को कैसे परास्त किया जा सकता है ? इसके बाद जब भी कभी मनुष्य से लड़ने का अवसर मिला उन्होंने सर्वप्रथम नारी-शक्ति का हनन किया, तब मनुष्य निःशक्त होता गया और देव तथा दानव प्रबल होते गये।

एक बार ऐसा ही एक प्रसंग भगवान राम के समक्ष आया था। मेघनाद ने इतना भयंकर युद्ध किया कि रीछ और बन्दरों की सेना व्यथित और व्याकुल हो उठी। राम ने विभीषण से मंत्रणा की। विभीषण ने बताया–भगवन् ! मेघनाद अपनी पवित्रता और साध्वी पत्नी सुलोचना की शक्ति के कारण अजेय है। जब तक उसे वह शक्ति मिलती रहेगी, तब तक मेघनाद कदापि जीता नहीं जा सकता।

ऐसे और भी सैकड़ों अलंकारपूर्ण पौराणिक कथानक हैं, उन सब का रहस्य यही है कि मातृ-शक्ति से बढ़कर मनुष्य के पास दूसरी शक्ति नहीं है। नारी का स्नेह, नारी का समर्पण, नारी का वात्सल्य, नारी का सौहार्द, नारी का विश्वास, नारी की सेवा ऐसी शक्तियाँ हैं, जिन्हें पाकर मनुष्य अमोघ और अक्षय शक्ति वाला बन जाता है। जिसकी पीठ पर माँ का, स्त्री का हाथ होता है, वह अविजित ही संसार में सफलता प्राप्त करता है और आगे बढ़ता है।

किसी भी समाज का सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक स्तर समाज में नारियों की स्थिति से निर्धारित होता है। इतिहास, पुराण के व्यापक परिप्रेक्ष्य देखने से पता चलता है कि नारी के अन्तस की, मातृत्व निर्माण एवं नेतृत्व की शक्तियाँ ही पुरुष का शारीरिक, मानसिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास करती रही हैं, मनुष्य को जीवन-पथ पर आगे बढ़ाती रही है।

स्त्री शांति स्वरूपा और पूज्यनीया है। वह परिवार की शोभा है, देवी है, ज्योति है। उसकी ज्योति से सम्पूर्ण परिवार प्रकाशित होता रहता है, उसके अभाव में घर सुनसान लगता है। वह घर की प्राण है। प्राणि मात्र के दुःख-दर्द को समझने, स्वार्थ को परमार्थ में ढालने की विराट् चिन्तन वृति पुरुष को नारी ने ही दी है।

सामाजिक संगठन, समुन्नति की प्रेरक भी वही है। राष्ट्र का यश, सौभाग्य और लक्ष्मी भी वही है। जिस देश और जाति में नारी का पूज्य स्थान होता है, वही देश और जातियाँ गौरव प्राप्त करती हैं, सिर ऊँचा उठा कर स्वाभिमान के साथ अमर रहती हैं।

अथर्ववेद कहता है—

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्व ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वत: ।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके विराज ॥

—अथर्व १४।१।६४

हे मनुष्यो ! पत्नी के पीछे ब्रह्म (उच्चता, महानता) हो, आगे ब्रह्म हो और अन्त तक ब्रह्म हो। इस प्रकार ब्रह्म से सर्वत्र घिरी हुई वह पति हृदय में राज्य करे।''

आगे, पीछे और मध्य में ब्रह्म होने का अर्थ उसे चतुर्दिक उच्चता, महानता के वातावरण में रखना है। कन्या के रूप में सर्वाधिक स्नेह और उत्तराधिकार भी उसे चाहिए। शिक्षा, स्वास्थ्य संवर्द्धन और सामाजिक व्यवहार का उपयुक्त और पूर्ण वातावरण उसे मिलना चाहिए। मध्य अर्थात् जब वह पति-गृह में आवासिनी बने तब वह घर की साम्राज्ञी, रानी, सत्तारूढ़ बनकर रहे। घर की सम्पूर्ण स्थिति का संचालन उसकी आज्ञा से हो। सहचरत्व की उपेक्षा न की जाये। उसकी अनुमति के बिना पति भी कोई कार्य न करे। अन्य ही नहीं पुरुष स्वयं भी पत्नी के अनुशासन में रहे।

और जब वह माँ बने तो बच्चा उसकी आज्ञा का पालन कर उसकी उच्चता सिद्ध करे। सेवा, सुश्रूषा द्वारा सम्मानित की गई माँ का स्नेह और वात्सल्य इतनी बड़ी

शक्ति है कि वह परमात्मा भी नहीं दे सकता। भारत में परमेश्वर की पिता के समान ही नहीं, किन्तु माता के समान पूजा होती है। माता का शब्द यहाँ सबसे प्यारा और सबसे समीप का सम्बन्ध माना गया है। कोई कष्ट होता है, तो बड़ा दुःख सिर पर आता है, तब उस समय हम परमात्मा की भी उतनी याद नहीं करते जितना हृदय तल से माँ की याद करते हैं। हमें उस समय मालूम होता है कि माँ से बढ़कर संवेदनशील, करुणामय, दयार्द्रचित्त और सहायक और दूसरा कोई नहीं हो सकता। ऐसी शक्ति तो सचमुच सम्माननीय ही नहीं पूज्यनीय है।

'समाज में नारी एक बहुत बड़ी शक्ति है। घर का सारा व्यवहार उसी के हाथ में आज तक रहा, आगे भी रहेगा। बच्चों का प्रजनन और पालन ही नहीं, पोषण भी उसी के हाथ है। बच्चों में जो संस्कार बचपन में माता की तरफ से होते हैं, उससे अधिक सम्पर्क दूसरा कोई संस्कार जीवन भर में नहीं उभार पाता। मित्रों, पड़ोसियों और कुटुम्बियों का भी असर होता है, लेकिन बिल्कुल बचपन में अगर माता भक्तिमान, श्रद्धावान हो तो उसके द्वारा जो संस्कार बच्चों को मिलता है, वह सबसे ज्यादा बलवान होता है। जीवन में उत्थान के पहियों को तेजी से ऐसे ही संस्कार खींच पाते हैं।

अपने देश में भगवती दुर्गा की महिमा बहुत गाई जाती है। दुर्गा शक्ति की प्रतीक है। नारी में शक्ति की इतनी सुन्दर कल्पना अन्यत्र कहीं नहीं हुई। उसमें भी पुरुषों के सदृश चैतन्य-तत्त्व भरा पड़ा है, उसे जगाने की आवश्यकता है। हमारा गौरव नारियों के शरीर सजाने में, रूप-परायण अथवा भोग-परायण बनाने में नहीं, वरन् उन्हें शक्ति, सरस्वती और साध्वी बनाने में है। नारी में उन निष्ठाओं का विकास होना ही चाहिए जिनकी प्रतिच्छाया हम भावी सन्तति और समाज में देखना चाहते हैं।

स्त्री के गुण लज्जा, भय या संकोच नहीं, विनय, आत्म-श्रद्धा, निर्भयता, शुचिता, आत्म-सौन्दर्य का भाव हमारी माताओं में जगाया जाय, ताकि वे इन गुणों को पकाकर भावी सन्तानों को स्तन-पान कराये और उनमें भी वैसे ही तेजस्विता, मनस्विता, वीरता, समर्थता, मेधा के भाव भरते हुए चले जाएँ और अतीतकालीन गौरव एक बार फिर से स्पष्ट हो पड़े।

मानवीय शक्ति का जागरण ही विश्व परिवर्तन का आधार है। नारी विधेयात्मक शक्ति है। जो काम पुरुष शक्ति-तांडव द्वारा करता है, नारी उसे सहज स्नेह, सरलता और सौम्यतापूर्वक सम्पन्न कर लेती है। युग परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण प्रयोजन पूर्ण करने के लिए सर्वतोभावेन-उसी को जगाना चाहिए। उसी को बढ़ाना चाहिए और विश्व-शान्ति के उपयुक्त वातावरण बनाने की उसी से याचना करनी चाहिए। नारी-तत्त्व को प्रतिष्ठित पूजित किए बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता।

वैदिक युग की आदर्श नारियाँ

'सखे सप्तपदी भव' विवाह विधि का यह छोटा-सा मंत्र हमें आर्य नर और नारी के समस्त जीवनव्यापी सम्बन्ध के बारे में अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। वैदिक आर्य जीवन के किसी भी अंश की सबल कल्पना नारी को विलग रखकर नहीं की जा सकती। इहलोक में तो वह गृहिणी है ही, परलोक की कल्पना भी नारी के बिना नहीं हो सकती। प्रत्येक देवता के साथ यदि उसे यज्ञभाग लेना है, तो उसकी सहचरी का आना आवश्यक है। यह अपवाद नहीं, नियम है। बिना पत्नी के वह यज्ञ नहीं कर सकते। (और उस समय के आर्य के लिए यज्ञ के बिना एक पग भी चलना असम्भव था) न देवता ही पत्नियों के यज्ञ में भाग ग्रहण कर सकते थे। यह थी पारलौकिक विषय की बात। जहाँ तक लौकिकता का सम्बन्ध है, वैदिक कवि नारी से मधुर और दूसरी कल्पना नहीं जानता। गृहस्थ जीवन यापन करने वाले दम्पति के लिए उपस्थित गुरुजनों एवं पुरोहित के पास इससे बड़ा कोई आशीर्वाद नहीं कि तुम दोनों एक दूसरे का हृदय विजित कर आज से एक हो जाओ। वास्तव में उस दिन से पत्नी सह-धर्मचारिणी ही होती थी। वह सुख-दुःख में गृहस्वामी का आश्रयस्थल थी।

वेदों में हमें नारी के कन्या, पत्नी, माता और ऋषि रूप में दर्शन होते हैं। कन्या, जो बाद में आर्य परिवार के लिए अभिशाप बना दी गयी, वैदिक परिवार के स्नेह का धन थी। परिवार के कल्याण और सौख्य की अधिष्ठात्री, पिता के दोनों लोकों की आशा, जननी की सहज अनुगता, सहचरी; भाई के पौरुष की मर्यादा, बहिनों की प्रिय सखी और परिवार की ज्योति थी। उसकी शिक्षा-दीक्षा युग के ही समान थी। कन्या और पुत्र दोनों का ही आचार्य प्रधानतः पिता था। उपनयन के बाद भाई-बहिन दोनों गार्हपत्य अग्नि के पावन वातावरण में वेद और वेदांगों की, शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा पाते थे, किन्तु कन्याओं के विषय में कुछ समय बाद एक प्रकार का विभाजन अवश्य हो जाता था-सद्योवधू (जो जल्दी विवाह करना चाहती हो) और ब्रह्मवादिनी (जो ऋषि बनने की कामना रखती हो) सद्योवधू कुछ काल के बाद माता के साथ गृह-कार्य की शिक्षा ग्रहण करने लगती और मनोनुकूल प्रणयी मिलने पर विवाह कर लेती थी। वेदों में हमें बाल-विवाह का कहीं कोई संकेत नहीं मिलता, बल्कि विरोधी प्रमाणों का बाहुल्य है। ब्रह्मवादिनी कन्याओं की शिक्षा काफी लम्बे समय तक चलती रहती थी, यद्यपि बाद में इनके विवाह में भी कोई बाधा नहीं थी। ऋग्वैदिक ऋषि घोषा को हम काफी बड़ी अवस्था में विवाह करते पाते हैं। शिक्षा और विवाह के बीच के दिनों में कन्या के कर्त्तव्य बहुमुखी थे। वह माँ की अभिन्न सहचरी होकर घर के संचालन में हाथ बँटाती थी। इतना ही नहीं कुछ कार्य तो उसी के थे। जैसे-गायों का दोहन, लालन-पालन, दही,

मक्खन और घी तैयार करना । इसके सिवा कपास-ऊन और रेशम से वस्त्र तैयार करना, उनकी सिलाई-रँगाई और उसके बाद न टूट सकने वाली सुइयों से उन पर सोने, चाँदी और रेशम के तारों से कढ़ाई, चटाइयाँ तैयार करना, पानी भरना, अरणियों से आग जलाना, देवताओं को अर्पित करने के लिए सोमरस प्रस्तुत करना आदि उसके अगणित कार्यों में से कुछ हैं । यह तो रही कर्त्तव्यों की बात, किन्तु केवल कर्त्तव्य ही उसके हिस्से में नहीं था । विवाह के समय पैतृक सम्पत्ति का एक उपयुक्त अंश उसे दिया जाता था जिसकी एकमात्र स्वामिनी वही होती थी या उसका पति । अन्य कोई व्यक्ति उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके एक कण का भी उपयोग नहीं कर सकता था । उसका उपयोग या दान उसकी इच्छा पर निर्भर था । अगर दुर्भाग्य से भाई न हो तो परिवार की सम्पत्ति की एकमात्र उत्तराधिकारिणी वह होती थी । भाई होते हुए भी यदि वह अविवाहित रहने का निरचय करती तो परिवार से भरण-पोषण प्राप्त करने का उसे अधिकार था ।

विवाह

विवाह और पति का चुनाव उसकी अपनी इच्छा पर था । समनोत्सवों में परिचित हुआ प्रणयी ही बाद में जीवन सहचर बन सकने की आशा कर सकता था । इस समनोत्सवों में विवाह योग्य अलंकृता कन्याएँ और अध्ययन से निवृत्त, जीवन के उल्लास से पूर्ण युवक भाग लेते थे । माता-पिता और अन्य गुरुजन दर्शक मात्र होते थे । अश्वों से खींचे जाने वाले रथों के घोष से समनस्थली गूँज उठती । युवक अपनी-अपनी हृदयेश्वरियों को विजित करने के लिए प्राणों की बाजी लगा देते थे । दौड़ के बाद ही शस्त्रों के प्रयोग-कौशल और भुजाओं के शौर्य का प्रदर्शन होता था । सुस्वादु भोज्य और पेय बीच-बीच में उन्हें ताजगी देते रहते थे । दूसरे प्रहर में समनस्थली एक बार फिर गूँज उठती, पर भिन्न तरह से । इस बार नृत्य, गीत और कविताओं के बोल वनप्रान्त को मुखरित कर देते थे । उत्सव मशालों और उत्सवाग्नियों के प्रकाश में रात-रात भर चलता रहता और संध्या नहीं, बल्कि भुवनमोहिनी उषा अपने सारथी अरुण के साथ आकर उन्हें अपने उत्सव से अलस नेत्रों को विश्राम देने के लिए घर लौटाती थी । इस बीच बहुतों के भाग्य रात्रि की मशालों के नीचे जीवनभर के लिए बँध चुके होते थे यद्यपि कुछ के स्वप्न, स्वप्न ही रह जाते थे । विवाह के लिए माता-पिता की स्वीकृति और आशीष अनिवार्य था । परिणय एक सामाजिक संस्कार था जिसके लिए माता-पिता और समाज की अनुमति महत्त्वपूर्ण थी, विशेषतः माता की । इस बारे में श्यावाश्व और शशीयसी के प्रणय का रोचक उदाहरण ऋग्वेद में मिलता है । श्यावाश्व महाराज रथवीति के कुल पुरोहित के पुत्र थे और शशीयसी थी राजकन्या । दोनों ही सुन्दर थे और समान रूप से एक दूसरे के प्रति आकृष्ट । आशा कम होते हुए भी हृदय से विवश श्यावाश्व ने राजा के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा । राजा को कोई विरोध न था, पर राजमहिषी ने, जिनकी अपनी पुत्री के लिए पति की कल्पना एक कवि, योद्धा और समृद्धिवान युवक की थी, इसका घोर विरोध किया और इसकी बात जानकर सबको, शशीयसी और प्रणयी श्यावाश्व को भी, उनकी इच्छा के आगे सिर झुका देना पड़ा ।

यदि अनुमति मिल गयी तो प्रणय के बाद परिणय का नम्बर आता । विवाहोत्सव विवाह से लगभग एक मास पूर्व प्रारम्भ हो जाता और उसकी चरम परिणति सप्तपदी के साथ होती जब वर कन्या से कहता–"आज से तुम मेरी सहचरी हुई । मैं तुम से विलग होकर नहीं रह सकता । तुम मुझसे विलग होकर न रहना । सुख-दुःख में समान भागी होते हुए हम सदैव साथ रहें ।" इन मन्त्रों का अर्थ समझकर तदनुकूल आचरण कर सकने वाली पत्नी समशिक्षा, समसंस्कार, समबुद्धि और समज्ञान वाली नारी ही हो सकती थी । विवाह का प्रारम्भ प्रणय से होता, किन्तु मात्र प्रणय ही उसका लक्ष्य नहीं था । सार्वभौमिक उन्नति के लिए यह एक प्रकार की नर-नारी की साझेदारी थी । अकेला पुरुष उस समाज की दृष्टि में अपूर्ण था । नारी ही उसको पूर्ण कर सकती थी । शिव अकेला शव है, शक्ति से ही वे शिव हो जाते हैं । इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि शिव को पार्वती के बिना, नल को दमयन्ती के बिना, सत्यवान को सावित्री के बिना और राम को सीता के बिना भारतीय परम्परा कभी नहीं स्मरण करती ।

पतिगृह में प्रथम बार प्रवेश करती हुई वधू को कुलपुरोहित आशीर्वाद देता था । गौरवमयी उदारहृदया, सबके सुख-दुःख की समान उत्तरदायी है । पति के माता-पिता उसके माता-पिता थे, अतएव अपने पुत्र के समान ही वह भी उनकी नयी पुत्री थी जिसको परिवार का भार दे कर वे निश्चिन्त हो सकते थे । सास बहू की सहज वैमनस्यता का एक भी संकेत हमें वेदों में नहीं मिलता ।

वधू पतिगृह में प्रवेश करने के बाद घर में संचालन का दायित्व अपने ऊपर लेकर गुरुजनों को निश्चिन्त कर देती थी और कार्यों के अतिरिक्त वधू के विशेष कार्य थे- गार्हपत्य अग्नि को निरन्तर प्रज्वलित रखना और यज्ञ कार्यों में पति की सहायता और सहयोग के लिए निरन्तर उपस्थित रहना । वास्तव में कर्त्तव्य की आड़ में यह बहुत बड़े अधिकार थे जिनके हाथ से निकल जाने पर उसकी गणना समाज के निम्न वर्ग के साथ होने लगी ।

मातृत्व

पत्नीत्व की चरम सार्थकता मातृत्व में ही थी । जननी से बढ़कर, आशा, विश्वास, क्षमा और औदार्य का दूसरा केन्द्र वैदिक आर्य के जीवन में नहीं है । पिता को छोड़कर जो उसका समभागी है उसका स्थान उसके लिए सबसे ऊपर है, पर कभी-कभी मातृत्व उसका भी अतिक्रमण कर जाता है । विश्व-जननी की प्रतीक अदिति की वंदना में

अपेक्षाकृत हमें सबसे अधिक सूक्त मिलते हैं । बड़े से बड़े अपराध के बाद भी आर्य उसके आँचल के नीचे स्थान पा सकने की आशा करता है । हर समय युद्ध के लिए सन्नद्ध रहने की अनिवार्य आवश्यकता के कारण पुत्रों का महत्त्व यद्यपि बहुत था फिर भी भावी माँ बनने के लिए कन्या भी वांछनीय थी । आज के समय की तरह उनका उत्पन्न होना किसी प्रकार भी दुर्भाग्य की बात नहीं थी । यह बात अवश्य है कि अनिवार्य सामर्थ्य से अधिक दहेज की डरावनी छाया भी उनके साथ ही परिवार पर न छाती थी । उनका पालन-पोषण भी ठीक उसी तरह होता जैसा पुत्रों का, क्योंकि आगे चलकर उनसे बराबर के ही योगदान की आशा की जा सकती थी । जहाँ वीणा, मुरज, मृदंग की शिक्षा चलती, वहीं शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा भी अनिवार्य थी । उनसे वीर कन्या, वीर पत्नी और वीर प्रसू होने की आशा पूर्ण करने का एकमात्र उपाय था उनका स्वयं भी वीर होना । इसी का परिणाम था कि जो हाथ प्रधानतः रस वर्षा करते थे वे ही आवश्यकता पड़ने पर प्रचंड शर वर्षा करने लगते, यद्यपि यह साधारणतः नहीं होता । इस सम्बन्ध में विश्पला का एक रोचक उदाहरण ऋग्वेद में मिलता है । महाराज खेल की राजपत्नी विश्पला को हम पौराणिक काल की महारानी कैकेयी की ही भाँति पति के साथ युद्ध क्षेत्र में पाते हैं, पर-मात्र सहायक नहीं योद्धा के रूप में, जिसमें उन्हें पैर में कड़ी चोट आती है ।

एक पत्नी व्रत ही वैदिक काल का साधारण नियम था । बहु-विवाह भी होते थे, किन्तु वे अपवाद स्वरूप थे । अरब या यहूदियों की तरह बहुपत्नीत्व यहाँ की साधारण-परम्परा कभी नहीं रही, पत्नी कभी भी पति की सम्पत्ति नहीं समझी गयी । उसका स्थान लगभग पति के बराबर का था ।

उस समय में विधवाओं की कोई समस्या नहीं थी । वेदों में हमें सहमरण का कोई उल्लेख नहीं मिलता । अगर दुर्भाग्य से कोई नारी विधवा हो जाती तो प्रायः बहुत जल्दी ही दुबारा उसका विवाह हो जाता । यदि परिवार में ही उक्त वर सुलभ हो तो अच्छा, नहीं तो अन्यत्र विवाह हो जाता था । पुनर्भू पत्नी का समाज में किसी तरह भी कम मान नहीं था ।

अवरोध प्रथा या पर्दे का भी कोई उल्लेख वेदों में नहीं है । मर्यादा के भीतर स्त्रियाँ घूमने-फिरने के लिए स्वतन्त्र थीं । अपने जीवन का लक्ष्य उन्हें चुनने का अधिकार था । यदि उन्हें साधारण कर्त्तव्यों के प्रति रुचि नहीं होती तो वे आचार्य, दार्शनिक या ऋषि बन सकती थीं । घोषा, अपाला, मैत्रेयी, गार्गी उस युग की कुछ थोड़ी सी विदुषियों के नाम हैं ।

सभ्यता के उस उषाकाल में जिस गौरवमयी आर्य नारी के दर्शन हुए थे, शताब्दियों के बाद आज हमें फिर उसी रूप के कुछ-कुछ दर्शन हो रहे हैं । इतने दिनों की प्रताड़णा उसके अंतस् का तेज कम नहीं कर सकी है । स्वाधीनता-संग्राम के वीरों की अमर सहचरी भारतीय नारी आज सर्वतोमुखी जाग्रति और उन्नति के लिए कटिबद्ध है ।

भारतीय संस्कृति में नारी की गरिमा

यही सही है कि मध्य-युग में अपने देश में पतनशील प्रवृत्तियों के विकास क्रम में सामाजिक संरचना हर प्रकार से दूषित होती गई और सुविधा प्राप्त शक्तिशाली वर्ग ने अपनी अन्ध-मान्यताएँ शेष वर्ग पर थोपने के लिए हर सम्भव हथकण्डे अपनाये । एक ओर जहाँ धन-सम्पदा थोड़े से लोगों के हाथों में केन्द्रित कर शेष को उनका मुँह जोहते रहने वाला बना डाला गया, वहीं धर्मशास्त्रों में भी पुरोहितों द्वारा मनचाहे अंश जुड़वाये गये ।

लेकिन प्राचीन ग्रन्थों में नारी के लिए प्रयुक्त सभी शब्दों की व्युत्पत्ति पर ही यदि विचार करें तो भी स्पष्ट हो जाएगा कि मध्यकालीन अन्धकार युग से पहले अपने यहाँ महिलाओं के प्रति समाज-शास्त्रियों का मनोभाव क्या था ?

सबसे पहले 'महिला' शब्द को ही लें–मह+इलच्+आ-महिला । मह का अर्थ श्रेष्ठ या पूजा है । पूज्य, श्रेष्ठ जो है, वही महिला ।

लौकिक संस्कृत में आदर देने के लिए स्त्रियों के लिए 'मान्या' शब्द का प्रयोग किया जाता है । यह वस्तुतः वैदिक संस्कृत के 'मेना' शब्द से बना है । ऋग्वेद में 'मेना' शब्द नारी अर्थ का वाचक है और यास्क कृत निरुक्त (३।२१।२) में इसकी व्युत्पत्ति दी गई है मानयन्ति एनाः (पुरुषाः) अर्थात् पुरुष इनका आदर करते हैं, इसलिए इन्हें 'मेना' कहते हैं ।

इसी प्रकार स्त्री-अर्थ का बोधक 'ग्ना' शब्द भी ऋग्वेद में आया है, जो देव पत्नियों के लिए प्रयुक्त है । किन्तु ब्राह्मण-ग्रन्थों में यही शब्द 'मानवीन्ति' के लिए प्रयुक्त है, जिसकी यास्क ने व्याख्या की है–' ग्ना गच्छन्ति एनाः'। पुरुष ही उनके पास जाते हैं, सम्मानपूर्वक बात करते हैं, उसे पुरुष से अनुनय की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

स्त्री शब्द तो सर्वाधिक प्रचलित है । महर्षि पतंजलि के अनुसार–'स्त्यास्यति अस्यां गर्भ इति स्त्री'–उसके भीतर गर्भ की स्थिति होने से उसे स्त्री कहा गया है ।

जहाँ तक 'नारी' शब्द का प्रश्न है वह नर की ही तरह 'नृ' से बनी है और इसका सामान्य अर्थ है–क्रियाशील रहने वाला 'नर' हुआ और जो क्रियाशील रहने के कारण हीं 'नारी' हुई । जो गति करे, हल-चल करे, वह नर एवं नारी । किन्तु ऋग्वेद में 'नृ' का प्रयोग नेतृत्व करने, दान देने और वीरता करने के अर्थ में किया गया है, उस दृष्टि से नर और नारी में यही तीनों विशेषताएँ होनी चाहिए ।

'सुन्दरी ' शब्द ऋग्वेद में 'सूनरी' का विकसित रूप है । सूनरी ऊषा को कहा गया है अर्थात् सोभावाली ।

'ललना' और 'मानिनी' शब्द तो स्पष्ट ही हैं । जिसकी इच्छाशक्ति प्रबल हो वह ललना और जिसमें स्वाभिमान हो, वह मानिनी ।

ये तो हुए शब्द । अब यदि प्राचीन ग्रन्थों में नारी के प्रति व्यक्त उद्‌गार देखें, तो स्पष्ट हो जाता है कि नारी के व्यक्तित्व के प्रति सम्मान का भाव उनमें है और उसे सदैव एक स्वतन्त्र चेतन सत्ता के रूप में ही स्मरण किया गया है, मध्ययुग की तरह किसी पदार्थवत् नहीं ।

जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। ऐसा कहने वाली मनुस्मृति में यह भी कहा गया है कि–स्त्री की प्रसन्नता से ही घर-भर में उल्लास मुखरित होता है, यदि वह विषण्ण, उदास रही तो चतुर्दिक अवसाद घिर आता है । पद्मपुराण में कहा गया है–

नास्ति भार्या समो तीर्थं, नास्ति भार्या समं सुखम् ।
नास्ति भार्या समो पुण्यं, तारणाय, हिताय च ॥

अर्थात्– पत्नी के समान हितकारी और दुःखों से उबारने वाला न तो कोई पुण्य है, न तीर्थ है और न ही सुख ।

शतपथ ब्राह्मण में कहा है–'गृहाः वै पत्न्ये प्रतिष्ठाः' पत्नी से ही घर की प्रतिष्ठा है ।

वृहत्संहिता में कहा गया है–'पुरुषाणां सहस्रं च सती स्त्री समुद्धरेत्' अर्थात् सती स्त्री अपने पति का ही नहीं, अपने उत्कृष्ट आचरण की प्रत्यक्ष प्रेरणा से सहस्रों पुरुषों का उद्धार यानी श्रेष्ठता की दिशा का मार्ग-दर्शन करती है ।

वृहदारण्यक उपनिषद् में उपाख्यान है कि जब परम सत्ता को अकेले अच्छा नहीं लगा तो उसने अपने को दो भागों में विभक्त किया । यही दो भाग पति-पत्नी बने–

स इममेवात्मानं द्वेधा पातयत्ततः ।
पतिश्च पत्नी चाभवताम् ॥

व्यास संहिता में कहा है कि पत्नी के प्राप्त होने के पूर्व तक पुरुष अधूरा है–'यावन्न विदन्ते जायां, तावदर्धो भवेत् पुमान् ।

–व्यास संहिता २।१४

तन्त्रशास्त्र में अर्द्धनारीश्वर का ध्यान-विधान है । मनुस्मृति में तो यहाँ तक कहा है कि स्त्री और श्री में कोई भेद नहीं है ।

'स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन (कश्चन)

–मनु ९।२६

वृहदारण्यक उपनिषद् में पंडिता पुत्री की कामना की गई है और उसकी विधि कथित है– **अथ य इच्छेद्दुहिता मे पण्डिता जायेत् सर्वमायुरियादिति ।**

–वृह० ६।४।१७

श्रीमद्‌भागवत के अनुसार वैवस्वत मनु की धर्मपत्नी ने पुत्रेष्टि यज्ञ के समय कन्या उत्पन्न होने की याचना की ।

तत्र श्रद्धा मनोः पत्नीहोतारं समयाचत् ।
दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥

–श्री मद्‌भागवत ९।१।१४

इसी यज्ञ से इला की उत्पत्ति हुई ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नारी के प्रति अपने प्राचीन पूर्वजों के मन में सम्मान और समता की भावना थी । उसके प्रति हीन-भाव रखने का कोई प्रश्न ही नहीं । यों तो व्यावहारिक यथार्थ यह है कि जिसके पास सामाजिक प्रभुता होती है, उसी का सब सम्मान करते हैं । इसलिए नारी की उपेक्षित स्थिति के लिए शास्त्रों आदि को दोष देने और अर्थहीन विवाद खड़े करते रहने तथा ठोस कार्य कुछ न करने के स्थान पर आवश्यकता इस बात की है कि नारी को पुनः सक्षम-समर्थ बनाया जाय ।

प्राचीन भारत की प्रगति का मर्म

आजकल भले ही नारी का कार्य-क्षेत्र घर-गृहस्थी तक ही सीमित कर दिया गया हो और उसे वहीं अपनी योग्यता दर्शाने में सार्थकता अनुभव की जाती हो, पर प्राचीनकाल में वैसा नहीं था । एक पाश्चात्य इतिहासकार के शब्दों में–"आज के उन्नत और विकसित सभ्य कहे जाने वाले देशों के लोग जिस समय नदियों और तालाबों, झरनों में घुटने के बल झुककर जानवरों की तरह पानी पीते थे तब भारतवासियों ने भूगोल, खगोल विज्ञान, चिकित्सा, यंत्र-विद्या के साथ गुप्त विद्याओं का भी असाधारण विकास कर लिया था । आज का मानव चन्द्रमा पर पहुँचने में विज्ञान के बल पर अब समर्थ हुआ है, लेकिन भारत के प्राचीन महर्षि अपने योगबल से लोक-लोकान्तरों का भ्रमण कर आते थे ।" प्रश्न उठता है इतिहास में तो इसका विवरण मिलता नहीं । इसका उत्तर उक्त इतिहासकार ने इस प्रकार दिया–भारतीय महर्षियों ने इतिहास लेखन को कभी महत्व नहीं दिया, क्योंकि उनकी दृष्टि में भौतिक घटनाओं से भी अधिक मूल्यवान दूसरी उपलब्धियाँ थीं और उन उपलब्धियों के बल पर ही हजारों वर्ष पूर्व भारत ने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में असाधारण प्रगति कर दिखाई ।

क्या यह प्रगति अकेले पुरुष ने की ? नारी ने इसमें कोई योगदान नहीं दिया ? यदि ऐसा होता तो फिर प्रगति की चाल कछुए के समान रही होती और आज की तरह ही हम सब कदम से कदम मिलाकर चलने में असमर्थ होते । प्राचीनकाल में नारियों ने पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर सहयोग किया और ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में विकास के साथ-साथ समाज, राजनीति, धर्म, कानून, संगठन आदि सर्वांगीण उन्नति में पुरुष की सच्ची सहचरी बनकर रही । उसे प्रेरणा देती रही, बल प्रदान करती रही ।

क्यों ? इसलिए कि उसकी प्रतिभा, क्षमता और योग्यता पुरुष की प्रतिभा, क्षमता तथा योग्यता से मिल कर अनन्त गुना प्रभावशाली हो जाती है । वेदानुशासन में जब चला जाता था, तब महिलाओं ने ऐसे-ऐसे महान् कार्य करके दिखाये भी हैं कि उनकी भूमिका को हटा दें, तो इतिहास का स्वरूप ही बदल जाता है और 'छूँछ मात्र' रह जाता है । रामायण में से सीता के चरित्र को निकाल दिया जाय तो रामायण में बाकी कुछ नहीं रहता । द्रौपदी, कुन्ती, गान्धारी आदि का चरित्र निकाल देने पर महाभारत की महत्ता ही क्या रह जाएगी । पाण्डवों का सारा जीवन-संग्राम ही अधूरा रह जाएगा । इसी प्रकार भागवत में से देवकी, यशोदा और गोपियों का चरित्र हटा दिया जाय तो कृष्ण एक साधारण पुरुष बनकर रह जाएँगे । शिवजी के साथ पार्वती, राम के साथ सीता, विष्णु के साथ लक्ष्मी का नाम हटा दिया जाय तो इनके चरित्र आधे अधूरे रह जाएँगे ।

यों कहने को नारी को अबला कहा जाता है, पर आसुरी उत्पातों के कारण देवतागण जब घबड़ा उठे तो असुरों का संहार करने में मातृ-शक्ति दुर्गा ही समर्थ हुई थी । यह तो हुई शक्ति-संगठन सम्बन्धी बात, पर समाज के अन्य क्षेत्रों में भी नारी ने महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निबाही हैं । जब पृथ्वी पर भागवत शक्ति के अवतरण की आवश्यकता हुई तो मनु तप करने लगे । उनका अकेले का तप सफल नहीं हुआ तो मनु-पत्नी शतरूपा भी तपश्चर्या में लगीं । फलतः तप सफल हुआ और शतरूपा ने कौशल्या के रूप में राम को अपनी गोदी में खिलाया ।

इसी प्रकार से भगवान के अवतरण हेतु द्वापर में पुनः आवश्यकता अनुभव हुई । प्राचीन उदाहरणों से सीख ग्रहण कर महर्षि कश्यप ने अपनी धर्मपत्नी अदिति के साथ तप किया । अदिति यशोदा बनीं और उन्हें पूर्ण कला के अवतार कृष्ण को जन्म देने का श्रेय मिला । राम और कृष्ण भगवान हैं । अवतार सिद्धान्त के विरोधी भी उन्हें महापुरुष मानते हैं, पर जिनकी कोख से उन्होंने जन्म लिया और जिनकी गोदी में पैर पसारे, जिनका दूध पिया और जिनका संरक्षण व दुलार पाया, उन माताओं का गौरव राम और कृष्ण से बढ़कर ही है, कम नहीं ।

भगीरथ द्वारा गंगावतरण के लिए तपश्चर्या की कथा सर्वविदित है । पर बहुत थोड़े लोग जानते हैं कि सूखे विन्ध्याचल को हरा-भरा बनाने के लिए अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया ने तपश्चर्या की और चित्रकूट से मन्दाकिनी नदी को बहने के लिये विवश किया । इस उपाख्यान का उल्लेख रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड में भगवान् राम के चित्रकूट निवास प्रसंग में मिलता है ।

सन्तति निर्माण में माता की भूमिका पिता से हजार गुना अधिक है । देवी अशिज ने अपने पुत्र कांक्षिवान को अपने ही संरक्षण में रखकर शिक्षा दी थी और उसे विद्वान बनाने के साथ-साथ योग विद्या में निष्णात भी बनाया । योग-शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान और मर्मज्ञ ऋषि पंच-शिख जिन्होंने इस विषय पर कई ग्रन्थ लिखे हैं–ने स्वयं स्वीकार किया है कि यह ज्ञान उन्होंने अपनी माता से ग्रहण किया ।

भरत, जिसके नाम पर आगे चलकर इस देश का नाम ही भारतवर्ष पड़ा; का पालन-पोषण अकेले शकुन्तला ने ही किया था और वह इतना पराक्रमी था कि बचपन में ही शेर के बच्चों के साथ खेलता था ।

लवकुश का पालन-पोषण वाल्मीकि के आश्रम में अभावग्रस्त स्थिति में सीता ने ही किया और उन्हें इस योग्य बनाया कि अजेय हनुमान तथा लक्ष्मण को भी पराजित कर छोड़ा ।

विद्वता और शिक्षा के क्षेत्र में भी भारतीय नारी प्राचीन काल में पिछड़ी नहीं रही है । गार्गी और याज्ञवल्क्य का, जनक और सुलभा का तथा शंकराचार्य और देवी भारती का शास्त्रार्थ सर्वविदित है । इन विदुषियों के समतुल्य ही विदग्धा, उद्यालिका, बीचावली, अनुसूया और गौतमी की भी गणना की जाती है ।

ज्ञान और विद्वता के क्षेत्र में ही क्यों शौर्य, साहस और पराक्रम में भी भारतीय नारी इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि उसे अबला कहना हास्यास्पद लगता है । शिव धनुष, जो राजा जनक के महल में रखा था और अच्छे-अच्छे बलवीर उसे उठा नहीं पाते थे, सीता ने उसे उठा कर दिखाया । तभी जनक को सीता स्वयंवर में यह शर्त रखनी पड़ी कि जो इस धनुष को तोड़ देगा उसके साथ ही सीता का विवाह होगा ।

एक बार श्रीकृष्ण ने चित्रसेन गन्धर्व को उसके छोटे से अपराध का बड़ा भारी दण्ड दे दिया । चित्रसेन अर्जुन की शरण आया । शरणागत की रक्षा का प्रण निभाने के लिए अर्जुन ने श्रीकृष्ण का सामना किया । उस समय अर्जुन के रथ के घोड़ों की लगाम द्रौपदी ने बड़ी कुशलता के साथ सम्हाली थी । 'कृष्णार्जुन युद्ध' ग्रन्थ में यह कथा बड़े विस्तार के साथ आती है ।

शौर्य और पराक्रम ही क्यों ? धर्म और समाज-संस्कृति की सेवा के लिए भी नारियों ने बढ़-चढ़ कर बलिदान प्रस्तुत किये हैं । आचार्य बृहस्पति की पुत्री देवहुति और भावभव्य की कन्या रोमशा अपने पिता तथा पति से आज्ञा लेकर विभिन्न क्षेत्रों में धर्म प्रचार के लिए गयी थीं । अभ्रण ऋषि की कन्या ने तो एक गुरुकुल भी खोल रखा था जिसमें छात्र-छात्राओं को समान रूप से प्रवेशाधिकार थे ।

नेतृत्व का जहाँ तक प्रश्न है महिलाएँ उसमें भी पीछे नहीं रही हैं । इन्द्र को दिशा-निर्देश तो इन्द्राणी ही देती थी । धृतराष्ट्र तो राज्य-संचालन में असमर्थ थे । यह कार्य उनकी पत्नी गान्धारी ही करती थी । इतिहास की बात को ही लो राज्यश्री, रजिया बेगम, नूरजहाँ, चाँदबीबी, रानी पद्मावती, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई होल्कर

जैसे अगणित उदाहरण हैं । उदाहरणों का अन्त नहीं है । इन सबका सारांश यह है कि उसे किसी भी श्रेष्ठ दिशा में आगे बढ़ने से रोकना अपनी व्यक्तिगत हानि तो है ही, पर समय और आज की माँग को दृष्टिगत रख कर सोचा जाय तो सामाजिक अपराध भी कहना पड़ेगा ।

आज हमारी दुर्दशा के लिए कुछ शताब्दियों की दासता जिम्मेदार नहीं है, जिम्मेदार है नारी पर अब भी परम्परागत ढंग से लगे हुए प्रतिबन्ध । हमें स्वतन्त्र हुए ४८ वर्ष हो गये । किसी राष्ट्र को अपनी स्थिति सुधारने के लिए इतना समय कम नहीं है । आशय यह नहीं है कि स्थिति ज्यों की त्यों है, पर विकास जिस गति से होना चाहिए था, नहीं हो पाया । कारण कि आधी जन-शक्ति तो आज भी अपंग और बोझ बनी हुई है । शेष आधी जनशक्ति उसका दुर्वह भार ढोने में ही अपना समय और अपनी क्षमताओं का अधिकांश भाग लगा रही है ।

मूढ़ताओं, अन्ध-विश्वासों, भ्रांतियों और कुरीतियों को पोषण देते बहुत समय हो गया । उसका महँगा मूल्य भी चींटी की चाल से चलते हुए चुकाया जाता रहा है, पर अब वह क्रम भी अधिक नहीं चलने दिया जाना चाहिए ।

कहा जाता है कि तिजोरी में बन्द कर रखी लक्ष्मी न बढ़ती है न कोई काम आती, वरन् इस मायने में घाटा ही देती है, कि उसकी रक्षा, चौकीदारी के लिए न जाने क्या-क्या सरंजाम जुटाने पड़ते हैं । देवलोक की लक्ष्मी के सम्बन्ध में की जाने वाली आकर्षक कल्पनाएँ कितनी सत्य हैं और कितनी मिथ्या यह तो नहीं मालूम, पर धरा की चारदीवारी-बड़ी सी तिजोरी में बन्द गृह-लक्ष्मी के सम्बन्ध में यह तथ्य पूरी तरह लागू होता है ।

सभी चाहते हैं कि अतीत का गौरव वापस लौटे, देश में घी-दूध की नदियाँ बहें, सुख-शान्ति बढ़े और राष्ट्र की प्रगति हो । लेकिन इन आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए अतीत काल की तरह मातृशक्ति को पुनः प्रतिष्ठित करना पड़ेगा । इसके अलावा कोई मार्ग नहीं है ।

भारतीय धर्मशास्त्रों में नारी की गरिमा

नारी में देवत्व की मात्रा स्वभावतः अधिक होने के कारण उसे पूज्य एवं पवित्र माना जाता है । माता, पुत्री और भगिनी के रूप में वह प्रत्यक्ष देवसत्ता है । इन स्वरूपों में उसे सदा नमन, अभिनन्दन किया जाता है । धर्म पत्नी के रूप में भी वह धर्मस्वरूप है । सहचरी होने पर भी उसकी वरिष्ठता अपने स्थान पर यथावत् रहती है । सेवा-समर्पण में उसका योगदान अधिक रहने से वह छोटी नहीं मानी जाती, वरन् उसकी गरिमा बढ़ती ही है । गौ माता अपने पालकों के प्रति अजस्र अनुदान ही बरसाती रहती है । इससे उसका गौरव घटता नहीं, वरन् बढ़ता ही है । नारी की सेवा-साधना नर के प्रति अधिक मात्रा में रहे तो इसका गौरव घटेगा नहीं, बढ़ेगा ही । नारी में नर की अपेक्षा देवत्व का अधिक अंश होने से उसकी वरिष्ठता का प्रतिपादन शास्त्रकारों ने सर्वत्र किया है ।

मध्यकालीन प्रतिगामिता के प्रतीक ऐसे अभिवचन भी जहाँ-तहाँ धर्मशास्त्रों में ठूँसे हुए मिलते हैं जिनमें स्त्रियों और शूद्रों को वेदाध्ययन का निषेध किया गया है । इसमें पुरुषों और कुलीनों की श्रेष्ठता और स्त्रियों तथा शूद्रों की निकृष्टता सिद्ध करने का भाव रहा होगा । गायत्री मन्त्र भी वेद मन्त्र है । इसलिए जब वेदाधिकार छिपा तो गायत्री मन्त्र की उपासना करने का भी उनके लिए निषेध हो गया । उन दिनों उस प्रकार के निषेध जिन लोगों ने चलाये वे भूल गये कि वेद मन्त्रों की दृष्टा एवं सृष्टा जब स्वयं महिलाएँ रही हैं तो फिर उन्हीं के लिए उनका निषेध कैसे हो सकेगा ? यज्ञोपवीत तो यज्ञ और गायत्री का सम्मिलित प्रतीक है । उसका धारण करना पुरुषों और स्त्रियों के लिए समान कर्त्तव्य है । इसे प्रमाणित करने वाले अनेकों शास्त्र वचन उपलब्ध होते हैं–

शुद्धाः पूतायोषितो यज्ञिया इमाः ।

-ऋ० १।१।११५

ये शुद्ध और पवित्र स्त्रियाँ यज्ञ की अधिकारिणी हैं ।

या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः ।
देवासो नित्ययाशिरा ॥

-ऋ० ८।३१

स्त्री पुरुष को इकट्ठे प्रसन्नतापूर्वक नित्य यज्ञ करना चाहिए ।

भविष्य पुराण, उत्तर त० ६९ के ८२, ८३, ८४ ८५ श्लोकों में औदान विधान का वर्णन है । उसमें उसके संकल्प में गौ स्तुति के वेद मन्त्र का चारों वर्णों द्वारा समान रूप से प्रयोग करने का विधान है । उसमें कहा गया है–

हे पाण्डव ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्रियाँ गौ की पूजा, गन्ध, पुष्प, जल, अक्षत, कुंकुम आदि से करें और 'ॐ माता रुद्राणी' इस वेद मन्त्र से गौ की अभ्यर्थना करें ।

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥

-मनु० २।६६

स्त्रियों के ये सम्पूर्ण संस्कार जो ऊपर पुरुषों के वर्णन किये हैं बिना विचारे ही कर देने चाहिए । यथा काल, यथा क्रम शरीर के संस्कार के लिए अवश्य कर देने चाहिए ।

ब्रह्म वैवर्त पुराण में राजा कुशध्वज की पत्नी मालावती के उदर से उत्पन्न हुई, वेदवती नामक कन्या का वर्णन है जो बचपन से ही वेदोच्चारण करने में प्रवीण थी ।

वेदध्वनिं सा चकार जात मात्रेण कन्यका:।
तस्मात् तां वेदवती प्रवदन्ति, मनीषिणः ॥

सततं मूर्तिमन्तश्च वेदाश्च चत्वार एव च।
सन्ति यस्यांश्च जिह्वाग्रे सा चावेदवती स्मृता ॥

–ब्रह्म० वैवर्त० प्रकृति० अ० १४

वह कन्या पैदा होते ही वेद की ध्वनि करने लगी। इस कारण से वे बुद्धिमान लोग उसको वेदवती कहने लगे।

निश्चय ही चारों वेद मूर्तिमान होकर सदा उसकी जिह्वा के अग्र भाग में रहते थे। इसलिए उसका नाम वेदवती था।

ततः संज्ञाय तुरंगग विधिवद्याजरकारतदा।
उपसंवेशयन सर्जस्ततस्तौ द्रुपदात्मजाम् ॥
कलाभिस्तिसृभीराजन् यथा विधि मनस्विनीम् ॥

– महा० अश्व अ० ५१

मनस्वी द्रौपदी ने विधिपूर्वक याज्ञिकों की सहायता से यज्ञ कर्म पूरा किया।

पाटितोऽयं द्विजाः पूर्वमेकदेहः स्वयम्भुवा।
पतयोऽर्द्धेन चार्द्धेन पत्न्योऽभूवन्निति श्रुतिः ॥
यावन्न विन्दते जायां मावदर्द्धो भवेत् पुमान्।

–व्यास स्मृति

भगवान ने पहले मनुष्य को एक बनाया। उसमें आधा शरीर नर का था आधा नारी का। ऐसा श्रुति वचन है। जब तक दोनों मिलते नहीं तब तक अधूरे ही रहते हैं।

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्य परा परोक्ति ॥

–दुर्गा सप्तशती

हे देवी! समस्त संसार की सब विद्याएँ तुम्हीं से निकली हैं और सब स्त्रियाँ तुम्हारी ही स्वरूप हैं, समस्त विश्व एक तुमसे ही पूरित है। अतः तुम्हारी स्तुति किस प्रकार की जाय।

सर्वं स्त्रीनिलया।
जगदम्बामयं पश्य स्त्रीमात्र मविशेषतः ॥

नारी मात्र को जगदम्बा स्वरूप मानना चाहिए।

नास्ति वेदात्परं शास्त्र नास्ति मातुः समो गुरुः ॥

–अत्रिस्मृति

वेद से बड़ा कोई शास्त्र नहीं, माता के समान कोई गुरु नहीं है। रामायण के अयोध्या काण्ड की एक पंक्ति यहाँ उद्धरित करने योग्य हैं, जिसमें कहा गया है—

जिय बिनु देह नदी बिनु नारी।
तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी ॥

केवल सुसंस्कृत महिला ही श्रेष्ठ सन्तान पैदा कर सकती है।

गृहस्थ एव यजते, गृहस्थस्तप्येत तपः।
चतुर्णामाश्रमाणान्तु गृहस्थस्तु विशिष्यते।

–स्कन्द पुराण

गृहस्थ निर्वाह यज्ञ है। गृहस्थ तप साधना है। नारी—आश्रमों में गृहस्थ श्रेष्ठ है।

यूयं हि देवीऋतयुग्भिरश्वैः
परिप्रयाथ भुवनानि सद्य।
प्रबोधयन्ती रूपसः ससन्तं
द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम्।

–ऋग्वेद ४।५१।५

वे पुरुष धन्य हैं जिन्हें गुणवती, विदुषी और सुयोग्य सहचरी प्राप्त हो सकी। परिवार को सुविकसित नारी ही बना सकती है। वंश-परम्परा की स्थापना नारी ही करती है।

न गृहेण गृहस्थः स्याद्भार्यया कथ्यते गृही।
यत्र भार्या गृहं तत्र भार्याहीनं गृहं वनम्।

–नीति समुच्चय

घर बनाकर कोई गृहस्थ नहीं बनता। सुगृहिणी ही घर है। नारी को ही घर कहते हैं और जो नारी सहित रहता है, वही गृहस्थ है।

सूयवसाद्‌गवती हि भूया
अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्व दानी
पिब शुद्ध मुदकमाचरन्ती।

–ऋग्वेद १।१६४।४०

यदि श्रेष्ठ सन्तान की इच्छा हो तो नारी को ज्ञानवान बनाओ। उन्हीं से संसार का गौरव बढ़ता है। उनका अनुदान कामधेनु गौ के समान महान है।

गंगेव निर्मला नारी पूजनीया सदा सदा।
यतो हि सैव लोकेऽस्मिन् साक्षात्लक्ष्मी मता बुधैः।

–स्कन्द पुराण

नारी गंगा के समान पवित्र है। वह पूजनीय है। इस लोक की वही साक्षात् लक्ष्मी है।

यस्यां भूते समभवद्यस्यां विश्वमिदं जगत्।
तामद्य गाथा गास्यामि या स्त्रीणमुत्तमं यशः।

–महाभारत

हम उस दिव्य शक्तिशाली नारी की यशोगाथा गाते हैं, जो गत-आगत की जननी है और सर्वत्र यश की पात्री है।

उपाध्यायान्दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता।
सहस्त्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।'

–मनु

दस उपाध्यायों से एक आचार्य बढ़कर हैं, सौ आचार्यों से एक पिता उत्तम है और हजार पिताओं से एक माता की गरिमा अधिक है।

प्रदानमपिकन्यायाः पशुवत् कोऽनुमन्यते।
विक्रियं चाप्य पत्यस्य कः कुर्यात् पुरुषोभुवि ॥४॥

–महा० आदि० अ० २१

कन्या का दान पशुओं की भाँति कौन मान सकता है और कौन पुरुष पृथ्वी में अपनी सन्तान को बेच सकता है।

यो धर्म एकपत्नीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम् ॥१२॥

–मनु० ५।१२

पुरुषों के लिए एकपत्नी व्रत ही उत्तम है।

२.११ इक्कीसवीं सदी—नारी सदी

स्त्रीषु प्रीतिर्विशेषण स्त्रीष्वपत्यं प्रतिष्ठिम् ।
धर्मार्थो स्त्रीषु लक्ष्मीश्च स्त्रीषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥

–चरक चि० स्थान अ २

स्त्रियों में स्नेह की मात्रा विशेष रूप से अधिक रहती है, धर्म की मात्रा उनमें अधिक रहती है । इसलिए उन्हें धर्मपत्नी का पद दिया जाता है । उनमें अर्थ तत्व भी है इसलिए उन्हें गृहलक्ष्मी कहते हैं । काम रूप होने से संतान को जन्म देती है । शक्ति रूप से लोक में प्रतिष्ठित होकर मोक्ष देती है ।

तारः पतिः श्रुतिर्नारी क्षमा सा स स्वयं तपः ।
फलम्पतिः सत्क्रिया सा धन्यो तो दम्पती शिवे ॥

–शिव पुराण

यदि पति ओंकार है तो स्त्री वेदश्रुति है । यदि स्त्री क्षमारूपिणी है तो पुरुष तपोरूप है । यदि पति फल है तो स्त्री सत्क्रिया है । हे पार्वती ! जो ऐसे हैं, वे दोनों ही स्त्री-पुरुष महाधन्य हैं ।

योषितामवमानेन प्रकृतेश्च पराभवः ।

–देवी भागवत

नारी का अपमान उस पराशक्ति का अपमान है । इससे मनुष्य का पतन-पराभव होता है ।

जननी जन्म काले च स्नेह काले च कन्यका ।
भार्या भोगाय सम्पृक्ता अन्तकाले च कालिका ।
एकैव कालिका देवी विहरन्ती जगत्त्रये ॥

–महाभारत

वही महाशक्ति जननी के रूप में जन्म देती है, पुत्री के रूप में स्नेह पात्र बनती है । पत्नी के रूप में भोग प्रदान करती है । अन्त में कालिका चिंता के रूप में अपनी गोदी में चिरनिद्रा में सुला देती है । वही तीनों लोकों में संव्याप्त है ।

या काचिदङ्गना लोके सा मातृ कुलसम्भवा ।
कुप्यन्ति कुलयोगिन्यो वनितानां व्यतिक्रमात् ॥
स्त्रियं शतापराधाञ्चेत पुष्पेणापि न ताड़येत् ।
दोषान्न गणयेत् स्त्रीणां गुणानैव प्रकाशयेत् ॥

–स्कन्द पुराण

संसार की समस्त नारियाँ माता तुल्य हैं । उनका तिरस्कार होने से कुल देवी रुष्ट हो जाती है । स्त्रियों से सौ अपराध होने पर भी भूल से भी ताड़ना न करें । उनके दोषों पर ध्यान न दें । गुणों का ही बखान करें ।

मोहादनादिगहनादनन्तगहन दपि ।
पतितं व्यवसायिन्यस्तारयन्ति कुलस्त्रियः ॥
शास्त्रार्थगुरुमंत्रादि तथा नोत्तारणक्षमम् ।
यथैतः स्नेहशालिन्यो भर्तृणां कुलयोषितः ॥
सखा भ्राता सुहृद भृत्यो गुरुर्मित्रं धर्म सुखम् ।
शास्त्रमायतनं दासः सर्वं भर्तुः कुलाङ्गना ॥
सर्वदा सर्व यत्नेन पूजनीयाः कुलाङ्गनाः ॥
लोक द्वय सुख सम्यक् सर्वं योतु प्रतिष्ठिताः ॥
समग्रानन्दवृन्दानामेतदेवो परिस्थितम् ।
यत्समानमनोवृत्तिसंङ्गमास्वादने सुखम् ॥

–योग वशिष्ठ

कुलशील वाली उद्योगी स्त्रियाँ उस अनन्त सागर पड़े हुए अपने पतियों को भी तार देती हैं जिससे उबारने शास्त्र, गुरु मंत्र आदि साधन भी समर्थ नहीं हैं । सद्गुण स्त्रियाँ अपने पतियों के लिए सखा, बन्धु, सुहृद सेवक, गुरु मित्र, लक्ष्मी, सुख-शान्ति, शास्त्र, घर एवं सेवक आदि सभी कुछ होती हैं । इसलिए सब प्रकार सदा उनकी पूजा की जानी चाहिए । पुरुष का लोक और परलोक इन्हीं के ऊपर निर्भर है ।

संसार में सब सुखों से बड़ा सुख समान गुण स्वभाव के पति-पत्नी को एक-दूसरे के साथ रहने में प्राप्त होता है ।

पूजनीयाः महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः ।
स्त्रियःश्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः ॥

–विदुरनीति १।८।

स्त्रियाँ घर की लक्ष्मी हैं, ये सौभाग्य रूप हैं । ये पू के योग्य पवित्र हैं तथा घर की शोभा हैं । इनका रक्षा पोषण विशेष रूप से करना चाहिए ।

यद् गृहे रमते नारी, लक्ष्मीस्तद् गृह वासिनी ।
देवता कोटिशो वत्स न त्यजन्ति गृहं हितत् ॥

–स्कन्द पुराण

जिस घर में सद्गृहिणी होती है वहाँ लक्ष्मी निवास करती है । उस घर में करोड़ों देवता निवास करते हैं और वे उस स्थान को छोड़कर नहीं जाते ।

माता यस्य गृहे नास्ति भार्या च प्रियवादिनी ।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ।

जिसके घर में न तो माता है और न पत्नी है उसके लिए घर और वन बराबर हैं ।

पत्नी मूलं गृहं पुंसां यदिच्छन्दानुवर्तिनी ।
तथा धर्मार्थ कामानां त्रिवर्ग फलमश्नुते ।

–विष्णु पुराण

गृहस्थाश्रम का मूल पत्नी है । उसका निर्माण ही इसके लिए हुआ है । धर्म, अर्थ, काम इन तीनों की प्राप्ति पत्नी द्वारा होती है ।

पुमानर्द्ध पुमांस्तावद्यावद्भार्यां न विन्दति ।

पुरुष तब तक आधा ही है जब तक कि उसके साथ पत्नी नहीं है ।

एक चक्रोरथो यद्वदेक पक्षो यथा खगः ।
अभार्योऽपि नरस्तद्वदयोग्यः सर्व कर्मसु ॥

जैसे एक पहिये का रथ, एक पंख का पक्षी अपूर्ण है, उसी प्रकार बिना पत्नी का पुरुष भी सब कार्यों में अयोग्य ही है ।

अदुष्टापतितां भार्य्यां यौवने यः परित्यजेत् ।
सप्तजन्म भवेत् स्त्रीत्व वैधव्यञ्च पुनः पुनः ॥

–पराशर स्मृति

जो निर्दोष पत्नी को युवावस्था में त्याग देता है । वह उस पाप से सात जन्मों तक स्त्री जन्म लेकर बार-बार विधवा होता है ।

मातृवत् परदारश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यन्ति स पंडित ॥

—आपस्तम्ब स्मृति

जो पराई स्त्रियों को माता के समान, पराया धन धूलि समान और सब प्राणियों को अपने समान मानता है, वही सच्चा पण्डित है ।

अनुकूलकलत्रोय स्तस्य स्वर्ग इहैव हि ।
प्रतिकूलकलत्रस्य नरको नात्र संशय ॥
स्वर्गेऽपि दुर्लभं ह्येतदनुरागः परस्परम् ।

—दक्ष स्मृति

जहाँ पति-पत्नी प्रेमपूर्वक रहते हों, वहाँ स्वर्ग ही है । जहाँ प्रतिकूलता रहती हो वहाँ प्रत्यक्ष नरक ही है । सच्चा प्यार तो स्वर्ग में भी दुर्लभ है ।

नारियों की गरिमा बढ़ाने वाले और भी उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तात्वा स मिथुनमुत्पादयते । रयिं च प्राण चेत्येतो मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ।

—प्रश्न १।४

जब प्रजापति ने प्रजा उत्पन्न करने की कामना की तो उसने सबसे पहले युग्म बनाया । एक का नाम रयि था और दूसरे का प्राण । बस इसी रयि और प्राण से ही सारा संसार निर्मित हुआ । और भी कहा है—

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा ......।

—प्रश्न १।५

अर्थात्—आदित्य प्राण स्वरूप है और रयि चन्द्रमा स्वरूप ।

इसलिए ऋषि-महर्षियों ने परिवार के सभी व्यक्तियों को निर्देश दिया है कि वे नारी का सम्मान तथा आदर करें । गृहिणी का निरादर तथा अवमानना करने की भर्त्सना भी की गयी है और उसके दुष्परिणाम इस प्रकार बताये गये हैं—

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यंति समन्ततः ॥
तस्मादेताना सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैनित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥

—मनु० ३।५८-५९

"अपमानित होकर या उत्पीड़ित किये जाने पर स्त्रियाँ जिन घरों को शाप देती हैं, वे घर कृत्या (अभिचार कर्मों द्वारा किये गये तान्त्रिक प्रयोगों से) से नष्ट हुए के समान बिल्कुल ही नष्ट हो जाते हैं । इसलिए चाहिए पर्व, त्योहारों और उत्सवों के अतिरिक्त, सामान्य दिनों में भी स्त्री को हर प्रकार से सन्तुष्ट रखें ।"

गृह-व्यवस्था का सूत्र-संचालन जिन हाथों में केन्द्रित है; उसका सन्तुलन बिगड़ जाने पर ऐसा होना अस्वाभाविक भी नहीं है । इसके साथ ही शास्त्रकार ने नारी के कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों का विवेचन भी इस प्रकार किया है —

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्त हस्तया ॥

—मनु० ५।१५०

स्त्री को चाहिए कि सदा प्रसन्नमुख रहे । गृह कार्यों को दक्षतापूर्वक निबटाये तथा परिवार के प्रत्येक सदस्य को सुसंस्कारी बनाने के लिए यत्न करे । गृह सम्पदा का, परिवार की आर्थिक स्थिति का जहाँ अनावश्यक अपव्यय होता हो उसे दृढ़तापूर्वक रोके ।

शास्त्रकारों ने गृहिणी के साथ कदम-कदम पर सहयोग और सम्मान करने का निर्देश दिया है तथा उसी आधार पर परिवार में सुख-शान्ति व सुव्यवस्था की स्थापना को सम्भव बताया है—

यदि कुलोन्नयने सरसं मनो,
यदि विलास कलासु कुतूहलम् ।
यदि निजत्व भीप्सितमेकदा,
कुरु सतां श्रुतशीलवती तदा ॥

यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे कुल की उन्नति हो ।' यदि तुम्हें ललित कलाओं में रुचि है, यदि तुम अपना और अपनी सन्तान का कल्याण करना चाहते हो तो अपनी कन्या को विद्या, धर्म और शील से युक्त करो ।

इन सब उदाहरणों के आधार पर भारतीय संस्कृति में नारी के स्थान को आसानी से समझा जा सकता है । लेकिन इन आधारों पर आधारित मान्यताएँ वर्तमान समाज में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होतीं । इस स्थिति को अविलम्ब बदला जाना चाहिए ।

नारी—ब्रह्मवर्चस की समान अधिकारिणी

मात्र लौकिक और भौतिक जगत ही नहीं, धर्मोपदेश के, योगाभ्यास के क्षेत्र में भी स्त्रियाँ पुरुष ऋषियों के समतुल्य ही अपना कार्य करती रही हैं तथा अनेकों ऋषिकाएँ-धर्मोपदेशिकाएँ प्राचीनकाल में होती रही हैं । उन्होंने इस उत्तरदायित्व का भली प्रकार निर्वाह किया है । इसके कितने ही उदाहरण पुराण-शास्त्रों में मिलते हैं । महाभारत शान्ति पर्व अध्याय ३२० में विदुषी योग पारंगत सुलभा का एक संस्मरण इस प्रकार है—

सा प्राप्य मिथिलांरम्यां प्रभूत जन संकुलाम् ।
भैक्ष्यचर्यापदेशेन ददर्श मिथिलेश्वरम् ॥
ततोऽस्याः स्वागतम् कृत्वा व्यादिश्य च वरासभम् ।
पूजितां पादशैचेन वरान्नेआप्यत्तर्पयन् ॥

वह योगिनी संन्यासिनी सुलभा जन-समूह से पूर्ण मिथिला में भिक्षा के उद्देश्य से राजा जनक के पास गई । तब राजा ने उसका स्वागत करके श्रेष्ठ आसन दिया । पाँवों को धोकर उसकी पूजा की तथा श्रेष्ठ अन्न से उसको तृप्त किया ।

अथ भुक्तवता प्रात्या राजानां मन्त्रिभिर्वृत्तम् ।
सर्व भाष्यविदां मध्येयादेयामास भिक्षुकी ॥
सुलभात्वस्य धर्मेषु मुक्तो नेति ससंशया ।
सत्वं सत्त्वेन योगज्ञा प्रविवेश महीपते ॥

प्रेम से भोजन करके मन्त्रियों से युक्त राजा को सब जानने वालों के मध्य में उस संन्यासिनी ने प्रेरणा की ।

सुलभा को संशय हुआ कि यह राजा धर्मों में मुक्त है या नहीं । योग के जानने वाली अपने सत्व से राजा के सत्व में प्रवेश कर गई ।

नेत्राभ्यां नेत्रयोरस्य रश्मीन् संयम्यरश्मिभिः ।
सास्म संचोदयिष्यंति योग बधैर्बबन्धह ॥
जनकोऽप्युत्स्यन्नाज्ञा भावमस्या विशेषयन् ।
प्रति जग्राह भावेन भावमस्या नृपोत्तम् ॥

तब उस सुलभा ने अपने नेत्रों की ज्योति से राजा के नेत्रों की ज्योति को काबू करके योग के बन्धनों से राजा को बाँधकर प्रेरणा की ।

राजा जनक भी मुस्कराता हुआ उसके भाव को अधिक जानकर अपने भाव से उसके भाव को ग्रहण कर गया ।

गायत्री मन्त्र और वेदाधिकार से स्त्रियों को वंचित करने वाले तनिक विचार करें कि जिनने वेद मन्त्रों का सृजन किया वे ही उनके पठन-पाठन से वंचित कैसे रखी जा सकती हैं ।

वेद मन्त्रों के विनियोगों में उनके देवताओं, छन्दों तथा ऋषियों का उल्लेख है । देव ऋचाओं में ढेरों ऐसी हैं जिनकी दृष्टा-सृष्टा ऋषिकाएँ-महिलाएँ हैं । यह उन वेद मन्त्रों के विनियोगों को देखने से स्पष्ट विदित होता है । यहाँ कुछ थोड़े से उदाहरण प्रस्तुत हैं जिनसे यह जाना जा सकता है कि किस मन्त्र की कौन ऋषिकाएँ हैं । नीचे के उल्लेख में ऋषिकाएँ-वेद सन्दर्भ और मन्त्र के प्रथम अक्षर दिये जा रहे हैं–

(१) सार्प राज्ञी कद्रू–यजु० ३।६–आयङ्गौः (२) लोपा मुद्रा–यजु० १७।११–नमस्ते हरसे (३) सरस्वती–यजु० २८। २४–होता यक्षत् (४) गायत्री–साम० पू० १।१। १–यजु०–अग्ने ओजिष्ठ (५) वाजिनां स्तुति–साम० पू० ५। ५।१–आविर्म्या (६) शश्वत्याङ्गिरस्यासङ्गस्य पत्नी–ऋ० ८। १।३४ पन्वस्य (७) अपाला के षी–ऋ० ८।९१। १–कन्यावा (८) सिकता निवावरी–ऋ० ८।८६। ११–अभिक्रन्दन् (९) यमी वैवस्वती–ऋ० १०।१०। १–ओचित् (१०) अदितिर्वा दाक्षायणी–१०।७२। १–देवानांनु (११)वागाम्भरणी–ऋ० १०।१२५।१–अहं रुद्रेभिः (१२) रात्रिर्वा भारद्वाजी–ऋ० १०।१२७।१। १–रात्रीव्यखद् (१३)इन्द्राणी–ऋ० १०।१४५।१–इमां खनामि (१४) श्रद्धा कामायनी–ऋ० १०।१५०।१ श्रद्धयामि ।

अत्रसिद्धाः शिवानामब्राह्मणावेदपारगाः ।
अधीत्यसकलान्वेदॉंल्लेभिरेमोक्षमक्षयम् ॥

–महा० उद्योग० अ० १०८ श्लो १८-१९

यहाँ पर शिवा नामवाली सिद्धा ब्राह्मणी, वेदों को प[ारंगत] करने वाली सब वेदों को पढ़कर अक्षय विश्वास को प्र[ाप्त] हुई ।

वाल्मीकि रामायण में ऐसे कितने ही प्रसंग आते [हैं] जिनमें स्त्रियों का यज्ञोपवीत धारण, अग्निहोत्र एवं संध्[या] करने का उल्लेख है । स्पष्ट है कि यह दोनों ही धर्म कृत्[य] वेद मन्त्रों के द्वारा सम्पन्न होते हैं । संध्योपासना में गायत्री मन्त्र का प्रयोग अनिवार्य है । अग्निहोत्र क्रिया भी वेद मन्त्रों के बिना नहीं हो सकती । इससे सिद्ध है कि स्त्रियों को सदा से वेद मन्त्रों के उच्चारण का, गायत्री उपासना का एवं यज्ञ कार्यों का पुरुषों के समान ही अधिकार कहा है ।

होताऽध्वर्युस्तथोद्गाता हयेन् समयोजयन् ।
महिष्या परिवृत्त्याथ वावातामपरां तथा ॥

–वाल्मी० बाल० स० १४

होता, अध्वर्य उदगाता आदि याज्ञिकों की सहायता से कौशिल्या यज्ञ कार्य में प्रवृत्त हुई ।

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा ।
अग्नि जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमङ्गला ॥

–वाल्मी० अयोध्या० स० २०

धर्मनित्या यथाकालमग्नयगारपराभव ।
देवि देवस्य पादौ च देववत्परिपालय ॥

–वाल्मी० अयोध्या० स० ५८

अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम् ।
अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य परस्यास्ये येन राघवः ॥

–वाल्मी० अयोध्या स० ७५

जब राम कैकई के महलों से कौशिल्या के महलों में पहुँचे तब वह कौशिल्या सूक्ष्म वस्त्र पहिने प्रसन्नचित व्रत परायण होकर मंगलार्थ वेद मन्त्रों से अग्निहोत्र कर रही थी। राम ने वन से सारथी के हाथ कौशिल्या को सन्देश दिया। हे देवि ! नित्य धर्म का पालन करते हुए समयानुसार अग्निहोत्र का पालन करना और देव दशरथ के चरणों को ईश्वर की भाँति पूजना ।

जब भरत मामा के घर से आये तब कौशिल्या ने कहा–''मैं स्वयं ही समिधा को साथ लेकर सुखपूर्वक अग्निहोत्र को आगे करके वहाँ चली जाऊँगी जहाँ राम हैं।''

सन्ध्या कालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वर वर्णिनी ॥

–वाल्मी० सुन्दर स० १४

हनुमान सीता को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब अशोक वाटिका में पहुँचे तब प्रातः अनुमान किया–सन्ध्या काल हो जाने से सन्ध्या करने के लिए वह श्यामा संध्या सुन्दरी सीता इस शुद्ध जल वाली नदी पर अवश्य आवेगी ।

वैदेही शोक संतप्ता हुताशनमुपागतम् ॥२५॥

–वाल्मी० सुन्दर स०

जब हनुमान जी के पकड़े जाने का समाचार सीता को मिला तो सीता शोक से दुःखित होकर अग्निहोत्र करने चली गईं ।

काञ्चनी मम पत्नी च दीक्षायां यज्ञांश कर्मणि ॥

—वाल्मी० उत्तर० स० ९१।२५

सीता के अभाव में राम ने यज्ञ कार्य के लिए सोने की सीता बनाने की व्यवस्था करते हुए कहा—

यज्ञ कर्म की दीक्षा में सीता के स्थान पर मेरी सोने की पत्नी बनाओ ।

यज्ञोपवीत मार्गेणछिन्ना तेन तपस्विनी ।
सा पृथिव्यां पृथुश्रोणी पपात प्रियदर्शना ॥

—वाल्मीकि रामायण

रावण ने छलपूर्वक सीता का यज्ञोपवीत तोड़ डाला। इस पर दुखी होकर सीता पृथ्वी पर गिर पड़ी ।

गते पुरोहिते रामः स्नातो नियतमानसः ।
सह पत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत् ॥
प्रगृह्य शिरसा पात्री हविषो विधिवत्ततः ।
महते दैवतायाज्यं जुहाव ज्वलितानिले ॥

—वा० अयो० स० ६

पुरोहित ने अभिषेक का समाचार सुनाया तो पुरोहित के चले जाने पर राम ने स्नान किया और मन को एकाग्र करके अपनी सुन्दर नेत्रों वाली पत्नी के साथ प्रथम संध्या की ।

फिर प्रतिष्ठापूर्वक सामग्री के पात्र को लेकर विधि अनुसार परमात्मा की आज्ञापालन के लिये अग्नि में घृत का हवन किया ।

यह उदाहरण पढ़-सुनकर भी यदि कोई नारी जाति को अपावन और ब्रह्मचर्य साधनाओं के अयोग्य ठहराता है तो उसे विधर्मी से कम की संज्ञा नहीं दी जानी चाहिए । यह मानना पड़ेगा कि उनकी दृष्टि मध्यकाल के इतिहास तक है वैदिक संस्कृति से वे कोरे व छूँछ ही समझे जाने चाहिए ।

श्वेत चम्पक वर्णाभा रत्न भूषण भूषिताम् ।
ब्राह्मि शुद्धा शाकाधानां नाग यज्ञोपवीतिनीम् ॥

—ब्रह्म वैवर्त

सफेद चमेली के रंग के शोभायमान रत्नाभूषणों वाली उस सुन्दरी को नाग के समान सुन्दर यज्ञोपवीत पहने देखा ।

यजमानः सपत्नीकः पुत्र पौत्र समन्वितः ।
पश्चिमं द्वारमासाद्य प्रविशेद् याग मण्डपम् ॥

—भविष्य मध्यम० भाग २ अ २०

यजमान अपनी पत्नी पुत्र पौत्र सहित पश्चिम द्वार को प्राप्त होकर यज्ञमण्डप में प्रवेश करे ।

प्रावृत्तां यज्ञोपवीतनीमभ्युदानयञ्जपेत ।
सोमोऽददत् गन्धर्वा येति ॥

—गोभिल २।१।१९

तब कन्या को कपड़े से ढककर जनेऊ पहिनाकर पति अपने सामने निकट लाकर सोमोऽददत् मन्त्र पढ़े ।

ऋग्वेद १०।८५ के सम्पूर्ण मंत्रों की ऋषिका सूर्या सावित्री है । ऋषि का अर्थ निरुक्त में इस प्रकार किया है. "ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान ददर्शेति ॥ ऋषियो मंत्र द्रष्टारः।" अर्थात् मंत्रों का द्रष्टा उनके रहस्य को समझ कर प्रचार करने वाला ऋषि होता है ।

ऋग्वेद की ऋषिकाओं की सूची ब्रह्म देवता के २४ अध्याय में इस प्रकार है :—

घोषा गोधा विश्व वारा, अपालोपनिषन्निषत्
ब्रह्म जाया जुहूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादिति ॥ ८४॥
इन्द्राणी चेन्द्र माता च सरमा रोमशोर्वशी ।
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शाश्वती ॥ ८५ ॥
श्री लक्ष्मीः सार्प राज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा
रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्म वादिन्य ईरिताः ॥८६॥

अर्थात्—घोषा, गोधा, विश्व वारा, अपाला, उपनिषद्, निषत्, जुहू, अदिति, इन्द्राणी, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, यमी, शाश्वती, सूर्या, सावित्री आदि ब्रह्म वादिनी है ।

ऋग्वेद के ५-२८, ८-९१, १०-३९, १०-४०, १०-९५, १०-१०७, १०-१०९, १०-१३४, १०-१५४, १०-१५९, १०-१८९ आदि सूक्तों की मन्त्रदृष्टा यही ऋषिकाएँ हैं ।

ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह यज्ञ करती और कराती थीं । वे यज्ञ विद्या और ब्रह्म विद्या में पारंगत थीं । कई नारियाँ तो इस सम्बन्ध में अपने पिता तथा पति तक का मार्गदर्शन करती थीं ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में सोम द्वारा 'सीता सावित्री' नामक ऋषिका को तीन वेद देने का वर्णन विस्तारपूर्वक आता है ।

तं त्रयो वेदा अन्वसृज्यन्त अथह सीतां सावित्री सोमं राजानं चकमे तस्या उहत्रीन्वेदान प्रददौ ।

—तैत्तिरीय० २।३।१०

इस मन्त्र में बताया गया है कि किस प्रकार सोम ने सीता सावित्री को तीनों वेद दिये ।

मनु की पुत्री 'इड़ा' का वर्णन करते हुए तैत्तिरीय १।१। ४ में उन्हें 'यज्ञानुकाशिनी' बताया है । यज्ञानुकाशिनी का अर्थ सायणाचार्य ने 'यज्ञ तत्व प्रकाशन समर्था' किया है । इड़ा ने अपने पिता को यज्ञ सम्बन्धी सलाह देते हुए कहा—

साऽब्रवीदिड़ा मनुम् । तथा वाऽहं तवाग्नि माधास्यामि यथा प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जनिष्यसे । प्रत्यस्मिंलोकेस्थास्यसि । अभि सुवर्गं लोकं जेयसीति ।

—तैत्तिरीय ब्रा० १।४

इड़ा ने मनु से कहा—मैं तुम्हारी अग्नि का ऐसा अवधान करूँगी जिससे तुम्हें पशु, भोग, प्रतिष्ठा और स्वर्ग प्राप्त हो ।

प्राचीन समय में स्त्रियाँ गृहस्थाश्रम चलाने वाली भी थीं और ब्रह्मपरायण भी । वे दोनों ही अपने-अपने कार्य क्षेत्र में कार्य कराती थीं । जो गृहस्थ संचालन करती थीं उन्हें 'सद्योवधू' कहते थे जो वेदाध्ययन, ब्रह्म उपासना आदि के पारमार्थिक कार्यों में प्रवृत्त रहती थीं उन्हें 'ब्रह्म वादिनी' कहते थे । ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू के कार्यक्रम तो अलग-अलग थे पर उनके मौलिक धर्माधिकारों में कोई अन्तर न था । देखिए—

२.१५ क्कीसवीं सदी–नारी सदी

द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्म वादिन्या सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनी नामुपनयनम् । अग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षाचर्या च । सद्योवधूनां तूपस्थिते विवाहे काले कथं विदुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः ।

–हरीत धर्मसूत्र २१।२०।२४

ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू ये दो प्रकार की स्त्रियाँ होती हैं। इसमें से ब्रह्मवादिनी यज्ञोपवीत, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन तथा स्वगृह में भिक्षा करती हैं । सद्योवधुओं का भी यज्ञोपवीत आवश्यक है । वह विवाह काल उपस्थित होने पर करा देते हैं ।

शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य ऋषि की धर्मपत्नी मैत्रेयी को ब्रह्म-वादिनी कहा है ।

तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्म वादिनी बभूवः ।

अर्थात्– मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी । ब्रह्मवादिनी का अर्थ वृहदारण्यक उपनिषद का भाष्य करते हुए श्री शंकराचार्य जी ने 'ब्रह्म वादन शीला' किया है । ब्रह्म का अर्थ है–वेद। ब्रह्म वादन शीला अर्थात् वेद का प्रवचन करने वाली ।

यदि ब्रह्म का अर्थ ईश्वर लिया जाय तो भी ब्रह्म प्राप्ति बिना वेद ज्ञान के नहीं हो सकती । इसलिए ब्रह्म को वही जान सकता है जो वेद पढ़ता हो । देखिए–

ना वेद विन्मनुते तं वृहन्तम् ।

तैत्तिरीय०

एतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशके नैतमेव विदित्वा मुनिर्भवति ।

वृहदारण्यक ४।४।२२

जिस प्रकार पुरुष ब्रह्मचारी रहकर तप, स्वाध्याय, योग आदि द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करते थे वैसे ही कितनी ही स्त्रियाँ ब्रह्मचारिणी रहकर आत्मनिर्माण एवं परमार्थ का संपादन करती थीं ।

पूर्वकाल में अनेक सुप्रसिद्ध ब्रह्मचारिणी हुई हैं । जिनकी प्रतिभा और विद्वत्ता की चारों ओर कीर्ति फैली हुई थी । महाभारत में ऐसी अनेक ब्रह्मचारिणियों का वर्णन आता है ।

पाण्डव पत्नी द्रौपदी की विद्वत्ता का वर्णन करते हुए श्री आचार्य आनन्द तीर्थ (माध्वाचार्य) जी ने 'महाभारत निर्णय' में लिखा है–

वेदाश्चयुत्तम स्त्रीभिः कृष्णाद्यभिरिहा खिलः ।

अर्थात्– उत्तम स्त्रियों को कृष्णा (द्रौपदी) की तरह सब वेद पढ़ने चाहिए ।

तेभ्योदधार कन्ये द्वे, वपुनां धारिणी स्वधा ।
उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ, ज्ञान विज्ञान पारगे ।

–भागवत ४।१४

'स्वधा' की दो पुत्रियाँ हुईं, जिनके नाम व्रयुनां और धारिणी थे । ये दोनों ही ज्ञान और विज्ञान में पूर्ण पारंगत तथा ब्रह्मवादिनी थीं ।

विष्णु पुराण १।१० और १८-१९ में तथा मार्कण्डेय पुराण अ० ५२ में भी इस प्रकार ब्रह्मवादिनी (वेद और ब्रह्म का उपदेश करने वाली) महिलाओं का वर्णन है ।

सततं मूर्ति मन्तश्च वेदाश्चत्वार एव च ।
सन्ति यस्या जिह्वाग्रे साच वेदवतीस्मृता ।।

–ब्रह्म वैवर्तपुराण प्रकृति खण्ड १४।

उसे चारों वेद कंठाग्र थे । इसलिए उसे वेदवती क[हा] जाता था ।

इस प्रकार की नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी और ब्रह्मवादिनी नारियाँ अगणित थीं । इनके अतिरिक्त गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाली कन्याएँ भी दीर्घकाल तक ब्रह्मचारिणी रहकर वेद शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त तब विवाह करती थीं । तभी उनकी सन्तानें संसार में उज्ज्वल नक्षत्रों की तरह यशस्वी, पुरुषार्थी और गरिमावान होती थीं । धर्म ग्रन्थों का स्पष्ट आदेश है कि कन्या ब्रह्मचारिणी रहने के उपरान्त विवाह करे ।

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।

–अथर्व ११।५।१८

अर्थात्–कन्या ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करती हुई उसके द्वारा उपयुक्त पति को प्राप्त करती है ।

कात्यायनी मैत्रेयी, गार्गी, मदालसा, वाचक्नवी जैसी ब्रह्मवादिनी नारियों के होने के प्रमाण से यह भी स्पष्ट होता है कि सर्वश्रेष्ठ विद्या के क्षेत्र में भी तत्कालीन नारियाँ अग्रणी थीं और उन्हें नारियों के बीच अपवाद नहीं, आदर्श माना जाता था । शास्त्रकारों का आदेश होता था–

कात्यायनी च मैत्रेयी गार्गी, वाचक्नवी तथा ।
एवमाद्या विदुर्ब्रह्म तस्मात् स्त्री स्त्रीग्रविद भवेत् ।।

अर्थात् जैसे कात्यायनी, मैत्रेयी, गार्गी, वाचक्नवी आदि ब्रह्मवादिनी थीं, उसी प्रकार प्रत्येक स्त्री को ब्रह्मविद् होना चाहिए ।

यम-स्मृति में कहा गया है–

यथाधिकारः श्रौतेषु योषितां कर्मसुश्रुतः ।
एवमेवानुमन्यस्व ब्रह्मणि ब्रह्मवादिताम् ।।

अर्थात् जिस प्रकार श्रुति प्रतिपादित कर्म में स्त्रियों का अधिकार है, वैसे ही ब्रह्म विद्या की प्राप्ति का भी उन्हें अधिकार है ।

वाल्मीकि रामायण को विश्व का आदि महाकाव्य कहा जाता है । उसमें भी ऐसे विवरण हैं, जिनमें कि स्त्रियों द्वारा वेदमन्त्रों का उच्चारण करने, हवन-यज्ञ, सन्ध्योपासना, अग्निहोत्र आदि करने का उल्लेख है । यथा–

"ततः स्वस्त्ययन कृत्वा मन्त्रविद् विजयैषिणी ।"

तब मन्त्रों की ज्ञाता (तारा) ने अपने पति (बालि) की विजय के लिए स्वस्तिवाचक मन्त्रों का पाठ किया ।

कैकयी के लिए भी 'मन्त्रज्ञा' शब्द का प्रयोग वाल्मीकि रामायण में है–"तदा सुमन्त्रं मन्त्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच ।" अर्थात् तब मन्त्रज्ञा कैकयी ने सुमन्त्र से कहा ।"

'यमस्मृति' में स्त्रियों के लिए प्राचीनकाल में मौञ्जी-बन्धन, वेदाध्ययन तथा गायत्री उपासना के प्रावधान की बात कही गयी है–

पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते ।
अध्यापनं च वेदानां सावित्री वाचनं तथा ।।

'वशिष्ठ स्मृति' में भी स्त्रियों द्वारा गायत्री मन्त्र जपे जाने का विधान किया गया है ।

प्राचीन आर्ष साहित्य को देखने पर ऐसा ज्ञात होता है कि जब अपना समाज उन्नत श्रेष्ठ स्थिति में था, तब तो नारी को पूर्णतः समान स्तर एवं अवसर प्राप्त था । कालान्तर में, सामाजिक व्यवस्था में विकृति तथा पक्षपात एकांगिता की स्थितियाँ उत्पन्न होती गईं, तब नारी पर भी प्रतिबन्ध लगने लगे । साथ ही समाज के प्रबुद्ध वर्ग द्वारा ऐसे अन्यायपूर्ण प्रतिबन्धों का खण्डन भी होने लगा । इस अवधि में नारी के अधिकारों का उल्लेख धर्मशास्त्रों में मिलता है, जिसका अर्थ है कि इन अधिकारों की चर्चा आवश्यक हो गई है । ऐसा तब ही हो सकता है, जबकि उन अधिकारों को सीमित किया जा रहा हो अथवा उन पर प्रश्नचिन्ह लगाये जा रहे हों । जबकि इससे पहले की अवधि में नारी की हर स्तर पर सहभागिता की स्वाभाविक अभिव्यक्ति धर्मग्रन्थों में देखी जाती है । तब उसके अलग से उल्लेख की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती थी; क्योंकि नर और नारी के बीच विषमता की उस समाज में कोई बात ही नहीं सोची जाती थी ।

वैदिक युग में ऐसे ही स्वाभाविक, सामाजिक सम्बन्धों के प्रमाण मिलते हैं । वेदों में ऐसे कितने ही मन्त्र हैं, जिनमें स्त्रीलिंग की क्रियाएँ हैं । इससे यही स्पष्ट होता है कि ये मन्त्र महिलाओं द्वारा प्रयोग के लिये ही हैं । जैसे यजुर्वेद में कुमारी कन्याएँ प्रभु-स्मरण करती हुई श्रेष्ठ पति की कामना से यज्ञ करती हुई कहती हैं–

त्र्यम्बकं यजामहे , सुगन्धिं पति वेदनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ।।

–यजु० ६.६०

अर्थात् हम कुमारियाँ परमात्मा का स्मरण करती हुई यज्ञ करती हैं । हमें उत्तम पति प्राप्त हो । पितृकुल से तो हमारा वियोग होगा, किन्तु पतिकुल से ऐसा वियोग कभी न हो ।

ऐसी ही प्रार्थनाएँ चारों वेदों में हैं । ऋग्वेद में एक मन्त्र है जो स्पष्टतः स्त्रियों द्वारा उच्चारण किया जाने वाला है–

उदसा सूर्यो अगाद् उदयं मामकोभगः अह,
तद्वद वला पतिमन्य साक्षि विषा सहि ।
अहं केतुरहैमूर्धाहमुग्रा विवाचनी,
अमेदनु कृतुं पतिः सेहा नाया उपाचरेत् ।।
मम पुत्रा शत्रुहणेऽथे मे दुहिता विराट् ।
उताहमास्मि सं जया पत्यौ मे श्लोक उत्तम ।।

–ऋग्वेद १०/१५९/३१

अर्थात्–सूर्य के ही साथ मेरा सौभाग्य भी उदित हो । उनकी साक्षी में मैं पति को प्राप्त करूँ । मैं यशस्विनी, ज्ञान सम्पन्न, प्रभावशाली वक्ता बनूँ । पतिदेव मेरी इच्छा, ज्ञान एवं कर्म के अनुकूल ही व्यवहार करें ।

मेरे पुत्र शत्रुहन्ता हो । मेरी पुत्री विराट् व्यक्तित्व वाली हो और मैं स्वयं अपने पति के यश को बढ़ाने वाले कार्य करूँ । इसी प्रकार काठक संहिता में प्रार्थना है–

घृतवन्तं कुलायिनं रायस्पोषं सहस्त्रिणम् ।
वेदो वाजं ददातु मे वेदो वीरं ददातु मे ।।

–काठक संहिता ५/ २३

अर्थात् वेद मुझे तेजस्वी कुल को सार्थक बनाने वाला समृद्धिवर्द्धक ज्ञान दें । वेद मुझे वीर सन्तति दें ।

वैदिक युग में नारी के ऐसे प्रमाण जैसे इच्छाएँ, क्रियाशीलताएँ तथा ज्ञान के ऐसे प्रमाण वैदिक साहित्य में भरे पड़े हैं । विवाह के समय वर-वधू जो परस्पर संकल्प करते हैं, वे भी उन दोनों की मानसिक तथा सामाजिक समानता के अनुरूप हैं । ऋग्वेद, अथर्ववेद में दोनों के द्वारा संयुक्त रूप से उच्चारित किये जाने वाले मन्त्र हैं, जिनमें परस्पर घुल-मिल जाने, प्रेमपूर्ण होने, एक व्यक्तित्व के स्वामी बनने, एक दूसरे के प्रति समर्पित, निष्ठावान् रहने के संकल्प अभिव्यक्त हैं । साथ ही वर और वधू द्वारा अलग-अलग कहे जाने वाले मन्त्र भी हैं । एक मन्त्र में वधू कहती है–

आशासाना सौमनसं सौभाग्यं रयिम् ।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृतायकम् ।।

–अथर्व० १४/१/४२

अर्थात्–मैं यज्ञादि शुभ अनुष्ठान हेतु शुभ वस्त्र धारण करती हूँ । शान्ति, आनन्द, सन्तति, सौभाग्य और समृद्धि की कामना करती हुई मैं सदा प्रसन्न रहूँगी ।

शतपथ ब्राह्मण, तैत्तरीय संहिता आदि में स्त्रियों द्वारा उच्चारित होने वाले मन्त्रों का निर्देश है ।

ताण्ड्य ब्राह्मण में निर्देश है कि यज्ञ में स्त्रियाँ वीणा लेकर सामवेद का गान करें । श्रद्धात्मायन श्रौत सूत्र में ऐसे स्पष्ट निर्देश हैं कि अमुक वेदमन्त्रों का उच्चारण नारी करे । लाटयान श्रौत-सूत्र में विधान है कि पत्नी सामवेद के मन्त्र सस्वर गाये ।

यज्ञ में पति-पत्नी दोनों का सम्मिलित रहना आवश्यक होता है और यज्ञ वेदमन्त्रों के बिना होता नहीं । श्रीरामचन्द्र जी को जब सीताजी की अनुपस्थिति में यज्ञ करना पड़ा, तो उन्हें उनकी सोने की बनी प्रतिमा रखनी पड़ी । तैत्तिरीय संहिता में यह स्पष्ट कहा गया है कि–

"अथो अर्धोवाएव आत्मनः यत पत्नी ।"

अर्थात् पत्नी पति की अर्द्धाङ्गिनी है । अतः उसके बिना यह यज्ञ अपूर्ण है ।

यह वैदिक युग की स्थिति थी । उस समय स्त्री-पुरुष की समानता नितान्त स्वाभाविक मानी जाती थी । उनके बीच भेद-विभाजन की तब कल्पना भी नहीं की जाती थी ।

बाद में जब स्त्रियों पर प्रतिबन्ध लगने शुरू हुए, तब उनके द्वारा वेदाध्ययन तथा ब्रह्मविद्या प्राप्ति के अधिकार भी सीमित करने की बात उठी । उस समय नारियों के इन अधिकारों के पक्ष में तर्क दिये जाने लगे । ऐसे तर्कपूर्ण प्रतिपादन वैदिक काल के पश्चात्वर्ती धर्मग्रन्थों में पाये जाते हैं–

आहुरप्युत्तम स्त्रीणाम् अधिकारं तु वैदिके ।
यथोर्वशी यमी चैव शच्याद्यश्च तथाऽपरा: ॥

–ऋग्वेद संहिता

अर्थात्–श्रेष्ठ स्त्रियों को वेद के अध्ययन एवं वैदिक कर्मकाण्ड का उसी प्रकार अधिकार है, जैसे उर्वशी, यमी, शची आदि ऋषिकाओं को प्राप्त था ।

भविष्य पुराण उत्तर पर्व ४।१३।६२-६३ में कहा गया है –

या स्त्री भर्त्ता वियुक्तापि स्वाचारे संयता शुभ ।
सा च मन्त्रान् प्रगृह्णातु स भर्त्री तदनुज्ञया ॥

अर्थात्–उत्तम आचरण वाली विधवा स्त्री वेद मन्त्रों को ग्रहण करे । सधवा नारी अपने पति की अनुमति से वेद मन्त्रों का पठन-पाठन करे ।

ऐसे स्पष्ट प्रतिपादन यही तथ्य सामने रखते हैं कि प्राचीन समय में नारी का नर की ही तरह ज्ञान, तप, तेजस तथा ब्रह्मवर्चस् में अग्रणी होना सामान्य एवं स्वाभाविक बात थी । उसे पददलित बनाने के प्रयास तो स्वयं पुराणों के भी पतनकाल में ही प्रारम्भ हुए। किसी भी उन्नत समाज में दोनों को ही समान प्रगति अनिवार्य मानी जानी स्वाभाविक ही है ।

नारी आत्म-कल्याण की समान अधिकारिणी

यह एक विलक्षण बात है कि एक आत्मा के दो अंश-एक को आत्म-कल्याण के लिए शिक्षा, साधना, जप, तप, वैराग्य और योगाभ्यास का अधिकार प्राप्त हो और दूसरे को इससे वंचित रखा गया हो । नर और नारी दोनों की तात्विक विवेचना करें तो यह स्पष्ट दिखाई दे जाता है कि विधाता की सर्वोत्तम रचना होने पर भी पुरुष में कई ऐसी अपूर्णताएँ रह गईं, जिनकी पूर्ति नारी से तथा सृजन की आधारशिला होने पर भी नारी की अपूर्णताएँ पुरुष से पूर्ण होती हैं । स्पष्टत: एक का विकास और दूसरे की अधोगति उस अपूर्णता को पाटने की अपेक्षा बढ़ानी ही है । आत्म-कल्याण की दृष्टि से इसीलिए संस्कृति के अध्येताओं ने नारी के साथ किसी तरह का भेद-भाव नहीं किया ।

प्राचीनकाल में किशोरों और युवकों की तरह कुमारिकाएँ भी बड़ी आयु तक विद्याध्ययन करती थीं । विवाह उनके लिए अनिवार्य नहीं था । जिनकी रुचि होती वे ही गृहस्थ में प्रवेश करती थीं । जिन्हें उस ओर आकर्षण नहीं था, वे आत्म-कल्याण एवं लोकहित के कार्यों में बिना किसी अड़चन के लगी रहती थीं । इसमें उनके अभिभावक किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करते थे, वरन् अपनी बालिकाओं के इस उदात्त दृष्टिकोण एवं आदर्श प्रस्तुत करने पर प्रसन्न ही होते थे । अनेक बार उन्हें न केवल प्रोत्साहित किया गया, अपितु उनकी प्रसुप्त आध्यात्मिक क्षमताओं के जागरण में मनीषियों ने भाव भरा योगदान भी दिया था । उदाहरणार्थ–

अत्रैव ब्राह्मणीसिद्धा कौमारब्रह्मचारिणी ।
योग युक्तादिवं यातातप: सिद्धातपस्विनी ॥

–महा० शल्य० ५।

उस समय की कन्याओं ने भी कुमारी रहकर आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर विद्वानों से सत्कृत होकर मो
लाभ प्राप्त किया था ।

बभूव श्रीमती राजन् शांडिल्यस्य महात्मन: ।
सुता धृतवता साध्वी नियता ब्रह्मचारिणी ॥
सा सातुतस्यातपा तपो घोरं दुश्चरं स्त्रीजनेन ह ।
गता स्वर्गं महाभागा देव–ब्राह्मणपूजिता ॥

–महा० शल्य० अ० ५५।४

इसी स्थान पर शांडिल्य ऋषि की कन्या धृतवती ने आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर और विद्वानों से सत्कृत होकर मोक्ष लाभ किया था ।

भारद्वाजस्य दुहिता रूपेणाप्रतिभा भुवि ।
श्रुतावती नाम विभो कुमारी ब्रह्मचारिणी ॥
साहं तस्मिन् कुले जाता भर्तर्यसती मद्विधे ।
विनीता मोक्ष धर्मेषु चराम्येका मुनिव्रतम् ॥

भारद्वाज की पुत्री श्रुतावती ने भी आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया था । इतना ही नहीं, प्रत्युत याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी ने विवाह करके भी कभी भी सन्तान उत्पन्न नहीं की ।

यह उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि स्त्रियों को सामान्य गायत्री उपासना से लेकर उच्चस्तरीय योग साधनाओं तक का पूर्ण अधिकार है । यदि वे पारिवारिक बन्धनों में न पड़कर आत्म-कल्याण की बात सोचें तो निषेधात्मक दृष्टि से नहीं अपितु आत्म-गरिमा के उज्ज्वल पृष्ठ के रूप में ही देखना चाहिए ।

नारी की गरिमा अक्षुण्ण रखें

भारतीय संस्कृति पग-पग पर नारी जाति की वरिष्ठता और तेजस्विता स्वीकार करती है । हमारी आचार संहिता में जहाँ उसे अपनी गरिमा-अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए बार-बार सावधान किया गया है, वहाँ पुरुषों पर भी समान रूप से यह उत्तरदायित्व डाला गया है कि वे स्वयं भी पवित्रता का आचरण बनाये रखें । पुरुष जाति का पतन ही नारी को गर्त में धकेलता है । अतएव उनकी अपेक्षाकृत जिम्मेदारी अधिक है ।

तेजश्च सर्व देवानां मुनीनां च सतीषु च ।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सति परिषु तान्यपि ॥

–वसिष्ठ स्मृ

सती साध्वी-नारी में समस्त देवताओं का तेज रहता है। उसके चरणों में समस्त तीर्थ मस्तक झुकाते हैं।

महाभारत काल में सेना में सैनिकों की तथा शासन में पदाधिकारियों की नियुक्ति करते समय उनका एक पत्नीव्रत पालन करना आवश्यक माना जाता था। नियुक्ति करने वाला अधिकारी शासन में प्रवेश पाने वालों से कहता है–

एक पत्नीव्रतं यदि ते विद्यतेऽनघ।
ततस्त्वां धारयिस्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥
न शौर्यं न कुलीनत्वं न च क्वपि पराक्रमः।
स्वदार चित्त वीरं विष्णुभक्ति समान्वितम्॥

–महाभारत

एक पत्नीव्रत का पालन करने वाला निष्पाप, आस्तिक व्यक्ति ही यहाँ प्रवेश पा सकेगा। मात्र वीरता या उच्च कुल में उत्पन्न होने के कारण किसी की नियुक्ति न हो सकेगी।

न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः।
यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी कांचनी भवत्॥

–वाल्मी० उत्तर० स० १८

सीता के पश्चात् राम ने दूसरी पत्नी स्वीकार नहीं की। प्रत्येक यज्ञ में पत्नी के स्थान पर सोने की सीता रखी जाती थी।

रामायण में पत्नीव्रत धर्म की महत्ता के कितने ही प्रसंग आते हैं। यथा–

मोहि अतिशय प्रतीति मन केरी।
जेहि सपनेहु परनारि न हेरी॥
जननी सम जानहिं परनारी।
रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ।
मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥

पत्नी का परित्याग करने वाले, उसे त्रास देने वाले भारतीय धर्मानुसार निन्दित ठहराये गये हैं। उनकी भर्त्सना की गई है और दंडनीय बताया गया है–

यः स्वनारी परित्यज्य निर्दोषां कुलसम्भवाम्।
परदाररतो ही स्यादन्यां वा कुरुते स्त्रीयाम्॥
सोन्य जन्मनि देवेशि स्त्री भूत्वा विधवा भवेत्।

–स्कन्दपुराण

जो निर्दोष कुलाङ्गना धर्मपत्नी का त्याग करके पर-स्त्री में आसक्त होता है, वह भी दूसरे जन्म में स्त्री-योनि में जन्म लेकर विधवा होता है।

अदुष्टा पतितां भार्यां यौवने यः परित्यजेत्।
स जीवनान्ते स्त्रीत्वं च बन्ध्या त्वं च समाप्नुयात्॥

–दक्षस्मृति

जो पुरुष अपनी सुशील स्त्री को छोड़ देता है, वह मृत्यु के पश्चात् बन्ध्या स्त्री होता है।

छिन्नशिरः शिरस्तस्य द्वेषं पश्मेद्भिदा तपेत्।
प्रार्थनामपि कुर्वाणो न लभेदन्नमुष्टिकाम्॥
नारी त्रैलोक्य जननी नारी त्रैलोक्य रूपिणी।
अहं हि जगतां धात्री जननी जन्म कारणात्॥

–शक्तिसंगम तन्त्र

अर्थात्– जो नारी से द्वेष करते हैं, उसे अपमानित करते हैं, उनका सिर कट जाता है। प्रार्थना करने पर भी उसको एक मुट्ठी अन्न नहीं मिलता, क्योंकि नारी ही तीनों लोकों की जननी है, वह त्रैलोक्यरूपिणी है। वही समस्त जगत की जननी, धात्री और उत्पन्न करने वाली है।

भारतीय नारी का सर्वोत्तम गुण

सत्राजित-दुहिता तथा भगवान् श्रीकृष्ण की अर्द्धाङ्गिनी सत्यभामा ने द्रौपदी से प्रश्न किया– "हे द्रौपदी! कैसे तुम अति बलशाली पाण्डु-पुत्रों पर शासन करती हो? वे कैसे तुम्हारे आज्ञाकारी हैं तथा तुमसे कभी कुपित नहीं होते? तुम्हारी इच्छाओं के पालन हेतु सदैव प्रस्तुत रहते हैं। मुझे इसका कारण बतलाओ।"

द्रौपदी ने उत्तर दिया–"हे सत्यभामा! पाण्डु-पुत्रों के प्रति मेरे व्यवहार को सुनो–मैं अपनी इच्छा, वासना तथा अहंकार को वश में कर अति श्रद्धा एवं भक्ति से उनकी सेवा करती हूँ। मैं किसी अहंकार-भावना से उनके साथ व्यवहार नहीं करती।

मैं बुरा और असत्य भाषण नहीं करती। मेरा हृदय कभी किसी सुन्दर युवक, धनवान या आकर्षण पर मोहित नहीं होता। मैं कभी नहीं स्नान करती, खाती अथवा सोती, जब तक पति नहीं स्नान कर लेते, खा लेते अथवा सो जाते एवं तब तक जब तक कि हमारे समस्त सेवक तथा अनुगामी नहीं स्नान कर लेते, खा लेते या सो जाते। जब कभी भी मेरे पति क्षेत्र से वन अथवा नगर से लौटते हैं तो मैं उसी समय उठ जाती हूँ, उनका स्वागत करती तथा उनको जलपान कराती हूँ।

मैं घर के सामान तथा भोजन को सदैव स्वच्छ एवं क्रम से रखती हूँ। सावधानी से भोजन बनाती तथा ठीक समय पर परोसती हूँ। मैं कभी भी कठोर शब्द नहीं बोलती। कभी भी अनुलाओं (बुरी स्त्रियों) का अनुसरण नहीं करती।

मैं वही करती हूँ जो उनको रुचिकर तथा सुखकर लगता है। कभी भी आलस्य तथा सुस्ती नहीं दिखाती, बिना विनोदावसर के नहीं हँसती। मैं द्वार पर बैठकर व्यर्थ समय नष्ट नहीं करती। मैं क्रीड़ा-उद्यान में व्यर्थ नहीं ठहरती, जबकि मुझे अन्य काम करने होते हैं।

जोर-जोर से हँसना, भावुकता तथा अन्य इसी प्रकार अप्रिय लगने वाली वस्तुओं से अपने को बचाती एवं सदैव पति सेवा में रत रहती हूँ।

पति-बिछोह मुझे कभी नहीं सुहाता। जब कभी मेरे पति मुझे छोड़ कर बाहर जाते हैं, तो मैं सुगन्धित पुष्पों तथा अंगराग का प्रयोग न कर जीवन कठोर तपस्या में बिताती हूँ। मेरी रुचि-अरुचि, मेरे पति की रुचि-अरुचि

कई देशों में रहने वाले आदिवासी कबीलों में मातृ-मूलक समाज व्यवस्था का प्रचलन है ।

मूर्धन्य विचारशील व्यक्तियों के अनुसार मानव-समाज का इतिहास वस्तुतः नारी का ही इतिहास है । पुरुष को पशुता से मनुष्यता की ओर ले जाने वाली मातृ-शक्ति का इतिहास ही मानवीय सभ्यता और संस्कृति का इतिहास है । वस्तुतः देखा जाय तो समाज का सारा ताना-बाना मातृत्व के आस-पास ही बुना गया है । कल्पना कीजिए कि मनुष्य ने जब सबसे पहले सोचना-समझना सीखा होगा, तो उसके मन में सर्वप्रथम यही प्रश्न उठा होगा कि मैं कहाँ से आया हूँ ? कहना न होगा कि इसके उत्तर में उसने अपनी जन्मदात्री माँ की ओर निहारा होगा और समझा होगा कि वह इसी के माध्यम से संसार में उत्पन्न हुआ है ।

स्नेह, पोषण, लालन-पालन और संरक्षण के कारण निश्छल मानव हृदय में मातृसत्ता के प्रति श्रद्धाभाव सहज ही उपजा होगा और उसने माँ को दैवी के रूप में मानकर पूजना आरम्भ कर दिया । मनुष्य की विचारशक्ति और बौद्धिक क्षमता जैसे-जैसे विकसित होती गई, उसने अपने आस-पास के सृष्टि रहस्यों को अलौकिकता की दृष्टि से देखना आरम्भ किया । इस अलौकिक शक्ति को भी उसने माँ के रूप में देखा । यह मनुष्य पर माँ के शक्ति और स्नेह अनुदानों का प्रभाव ही था कि उसके विचार अलौकिक सत्ता को प्रतीक रूप से माँ के रूप में देखने लगे । प्रागैतिहासिक काल से ही विश्व में मनुष्य ने जिन विविध-कलाओं और संस्कृतियों का विकास किया उसका केन्द्र-बिन्दु मातृ-शक्ति ही रही । नारी को विकास और सृजन के सभी क्षेत्रों में मूर्तिकला, चित्रकला, स्थापत्य, संस्कृति, काव्य सभी का विषय बनाया । संस्कृति का निर्माण और विकास भले ही पुरुष ने किया हो, पर उसका लक्ष्य नारी ही रही, उसमें भी विशेषतया नारी का मातृत्व वाला स्वरूप ।

अब तक विश्व के जिन किन्हीं भी क्षेत्रों में पुरातात्त्विक अनुसंधान हुए हैं और जो उत्खनन कार्य हुआ है उसमें मातृदेवियों की अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं । अनादिकाल से मनुष्य ने जिस धर्म और संस्कृति का विकास किया उसमें नारी के मातृत्व वाले स्वरूप को किसी न किसी रूप में प्रतिष्ठा दी गई है ।

मेक्सिको में हुई खोजों के अनुसार यह पता चला है कि प्राचीनकाल में वहाँ नारी के मातृ-शक्ति के स्वरूप को एसिस के रूप में जाना गया था । इटली में फारचूना, रोम में साइबेले, ग्रीक में हेरा, मिश्र में आईसिस, मध्यपूर्व के देशों में भाँट, उत्तरी अफ्रीका में सियामत और मिलिता आदि के रूप में मातृ-शक्ति की ही पूजा-प्रतिष्ठा की गई । भारत में तो महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी तथा सरस्वती के रूप में मातृशक्ति की अर्चना, आराधना सनातन काल से की ही जाती रही है । सीरिया में अस्टीटें, मोआब में आख्तर और अबीसीनिया में आसार, यूनान में अनोन्का के नाम से मातृ-शक्ति की ही पूजा-अर्चना की जाती रही है । विद्वानों का अभिमत है कि यह नाम ईश्वर के ही अन्य नाम थे जिनका स्वरूप मातृ-शक्ति परक माना गया था । इन देवियों को दया, न्याय और प्रसन्नता प्रदान करने वाली तथा स्वर्ग और धरती की स्वामिनी माना गया है ।

बेबोलियन में ईश्वर को लाया, मिश्र मे आइसिस को ईश्वर का नारी स्वरूप ही माना गया था । ईसा से १८०० वर्ष पूर्व मिश्र में आइसिस को उसी प्रकार मान्यता और प्रतिष्ठा मिली हुई थी, जिस प्रकार भारत में गायत्री को आराध्य माना जाता था । बेबोलियन में ईश्वर देवी आदर्श, पतिव्रत, मातृत्व, न्याय और सुरक्षा के लिए संहार की प्रतीक मानी जाने वाली यह देवी कालान्तर में रोम, ग्रीक संस्कृतियों की भी प्रमुख देवी बन गई । चौथी शताब्दी में ईसाई धर्म का विस्तार होने के कारण आईसिस देवी की पूजा का प्रचलन भले ही कम हो गया पर उसका देवी रूप कुमारी मेरी रूप में रूपान्तरित होने लगा ।

ईसाई धर्म में कुमारी मेरी को इस धर्म के प्रवर्तक ईसा से भी अधिक महत्त्व दिया गया और उसे दया तथा प्रेम की अधिष्ठात्री समझा जाने लगा । यह ईसाई धर्म पर कुमारी मेरी का ही प्रभाव है कि कैथोलिक धर्म आगे चलकर दया तथा प्रेम के रूप में परिणत हो गया । भारतीय धर्म में विभिन्न शक्तियों की अधिष्ठात्री देवियों की बहुत बड़ी संख्या है । नवदुर्गा, त्रिदैविक, चौबीस गायत्री आदि कितने ही रूपों में मातृ-शक्ति की प्रतिष्ठा है । भारत की ही तरह विश्व की अनेक संस्कृतियों में भी देवी शक्तियों को प्रतिष्ठा दी गई है । कुछ धर्मों में प्राणिमात्र को धारण करने वाली पृथ्वी को निललिलु, जल की देवी डायकिना, स्वर्ग की अधिष्ठात्री अनातु, सत्य की देवी भाँट, वर्षा की देवी भाँट आदि को उसी प्रकार पूजा और अर्चित किया गया है जिस प्रकार भारतीय धर्म में भी समृद्धि की देवी लक्ष्मी, ज्ञान और विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती, शक्ति की अधिष्ठात्री दुर्गा, संहार और असुरता के विनाश की अधिष्ठात्री महाकाली को माना गया है ।

यूनानी सभ्यता और संस्कृति में तो मातृ-शक्ति की अनन्य आराधना की गई है और एक प्रकार से उसे ही सर्वोच्च शक्ति माना गया है । उदाहरण के लिए, यूनानी सभ्यता में वीनस को सौन्दर्य की देवी, हेरा को परिणय की अधिष्ठात्री, हेन्ना को पृथ्वी की स्वामिनी और अनोल्का को विश्व व्यवस्था का संचालन और नियमन करने वाली देवी माना गया है । वैदिक साहित्य में दिति, अदिति, इला, सरस्वती, मही, भारती, शमी, यमी, रुद्राणी, पौलित्री, सावित्री, महामाया आदि अनेक देवियों का मातृशक्ति के रूप में उल्लेख मिलता है । इसके बाद पार्वती, उमा, सीता, राधा, रुक्मिणी आदि की उपासना का उल्लेख मिलता है । शक्ति-पूजा की यह परम्परा वाममार्गी और दक्षिणमार्गी दोनों ही तरह के साधना विधानों में प्रचलित है । आदिशक्ति, महामाया, काली, तारा, षोड्सी, भैरवी, मातंगी, कमला,

धूमावली, छिन्नमस्ता, बंगला, भुवनेश्वरी आदि रूपों में आज भी विभिन्न रूपों में शक्ति-पूजा का प्रचलन है ।

यह सब अकारण नहीं है अपितु मनुष्य चेतना पर जन्म से ही माता के संसर्ग, संरक्षण का अमिट प्रभाव है । जन्म लेते ही मनुष्य माँ की गोद में आता है । उसके रक्त से बना दूध पीकर अपना उदर पोषण करता है । माँ के लाड़ और प्यार में पलता-पोसता और बड़ा होता है । आगे चलकर मनुष्य चाहे जितनी भी शिक्षा ग्रहण कर ले, किन्तु प्रथम शिक्षा और संस्कार वह माँ से ही ग्रहण करता है । इसलिए उसके हृदय में मातृचेतना का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था । कहा जा चुका है कि यही कारण है जिसकी वजह से आरम्भ में परिवारों का विकास मातृ-प्रधान संस्था के रूप में हुआ । आज भी कई क्षेत्रों में मातृ-सत्तात्मक परिवार तथा समाज व्यवस्था प्रचलित है । आगे चलकर समर्पण की मूर्तिमान प्रतिमा नारी ने भले ही नेतृत्व और वर्चस्व का क्षेत्र पुरुष के लिए स्वयमेव छोड़ दिया हो, पर इससे मातृत्व की महान गरिमा कम नहीं होती । समाज उसके महान् गौरव और शीर्ष स्थान को पा न सका और नारी की मातृत्व भूमिका सदैव पूजनीय-वंदनीय चली आती रही है ।

नारी ने अपने सहज समर्पण भाव से वर्चस्व और नेतृत्व का क्षेत्र पुरुषों के लिए छोड़ दिया तो उसके अनन्त और अजस्र अनुदानों से उपकृत-अनुगृहीत पुरुष को बुद्धि विपर्यय वश यह भ्रम होने लगा कि नारी सम्भवतया कनिष्ठ सिद्ध हुई है । उसने नेतृत्व और संचालन-व्यवस्था में स्वयं को अक्षम पाकर ही शायद पुरुष को अपना कार्य-भार सौंपा है । इसे पुरुष का दंभ ही कहा जाना चाहिए कि उसने नारी को योग्यता और क्षमता के क्षेत्र में कनिष्ठ समझा । कई लोगों ने स्वार्थवश भी नारी को विष की खान, नरक का द्वार और एक पहेली बताया । सम्भव है ऐसे व्यक्ति किन्हीं समस्याओं के मूल कारण को न समझ पाने के कारण दिग्भ्रमित हो गये हों तथा उन्होंने नारी का गलत मूल्यांकन कर लिया हो । पर इसके बावजूद भी नारी को नरक का द्वार बताने वाले, उसके कटु आलोचक भी उसकी मातृत्व गरिमा के सम्मुख नतमस्तक हुए बिना न रह सके । आज नारी की चाहे जितनी आलोचना की जाती रहे, लेकिन उसकी मातृत्व गरिमा को नकारा नहीं जा सकता ।

इतिहास साक्षी है कि मानवीय सभ्यता और संस्कृति को तथा मनुष्य समाज को जिन महापुरुषों ने अपने महत्त्वपूर्ण अनुदान दिये हैं उनके निर्माण में माँ की ममता आधारभूत कारण रही है । मनोवैज्ञानिक तथा समाज शास्त्री भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि प्रायः महापुरुषों ने श्रेष्ठता के गुण अपनी माता से ही पाये और सीखे हैं । माँ बचपन में जो संस्कार अपने बच्चों को देती है, वे मनुष्य के जीवन पर अमिट छाप बनकर छाये रहते हैं ।

महान् विजेता नेपोलियन ने भी अपनी समस्त सफलताओं का श्रेय अपनी माँ को देते हुए कहा था कि राष्ट्र के उत्थान के लिए अच्छे नागरिकों का विकास करना और कोई नहीं यहाँ की माताएँ ही कर सकती हैं । चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस का भी कथन था कि समाज को सुधारना है तो परिवारों को सुधारो और परिवारों का सुधार तथा सुसंस्कृत परिवारों का निर्माण अच्छी माताएँ ही कर सकती हैं । विश्व के सभी धर्म प्रवर्तकों, श्रेष्ठ चिंतकों, समाज-सेवियों तथा मानवता के शुभचिंतकों ने माँ की ममता और मातृ-शक्ति की गरिमा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । इसमें भारतीय मनीषियों ने मातृ-शक्ति को जो महत्त्व प्रदान किया है वह तो अनुपम और अद्वितीय ही है । सन्त कवि गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में सीताजी की अभ्यर्थना सद्बुद्धि प्रदायिनी मातृ-शक्ति के रूप में ही की है—

जनक सुता जग जननि जानकी ।
अतिसय प्रिय करुणा निधान की ॥
ताके जुग पद कमल मनावऊँ ।
जासु कृपा निर्मल मति पावऊँ ॥

नारी के प्रति यह पूज्यभाव उसे अतिरञ्जित महत्त्व प्रदान करना भी नहीं है । यह तथ्य स्पष्टतया समझना चाहिए कि सुविधा-साधन बढ़ाने से जीवनयापन में भी सरलता और सुविधा हो सकती है, पर इतने मात्र से जीवन नहीं बनता । जीवन खाने-सोने की प्रक्रिया तक ही सीमित नहीं है । उसकी गरिमा और सार्थकता स्तर पर निर्भर है । उच्चस्तरीय व्यक्तित्व ही वह आधार है जिसके सहारे अभावग्रस्त परिस्थितियों में भी स्वर्गीय सम्भावनाओं मूर्तिमान बनाया जा सके । इस कमी के रहते यदि सुविधा साधन बढ़ने भी लगें तो उनके दुरुपयोग से संकट ही बढ़ेंगे । यहाँ साधन उपार्जन को महत्वहीन नहीं बताया जा रहा है, वरन् कहा यहाँ यह जा रहा है कि उत्कृष्ट व्यक्तित्व की गरिमा सर्वोपरि है । उसकी उपेक्षा की गई तो प्रगति का रथ दलदल में फँसे का फँसा रह जाएगा । अस्तु, नवयुग के उज्ज्वल भविष्य की आशा करते हुए यह विचार ही किया जाना चाहिए कि समुन्नत एवं सुसंस्कृत समाज के घटक बन सकने योग्य सुयोग्य एवं आदर्शवादी उत्कृष्ट नागरिकों का कैसे विकास किया जाय ? इस संदर्भ में जितना भी विचार किया जाता है उतना ही यह तथ्य प्रमाणित होता चलता है । इस आवश्यकता की पूर्ति सुसंस्कृत नारी के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता ।

इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए ही प्राचीनकाल में नारी को मातृत्व गरिमा को प्रतिष्ठित और संपूजित किया गया । यही कारण है कि समाराध्य, संपूजित और विकसित मनःस्थिति वाली सुयोग्य नारी प्राचीनकाल में एक से एक महान् नर उत्पन्न करती रही और समाज सर्वतोमुखी प्रगति करता रहा । आज यदि समाज में बुराइयों और असंगतियों का बोलबाला है तो इसका एक बहुत बड़ा कारण नारी की, मातृसत्ता की अधःपतित अवस्था ही है । यदि नारी क्रुद्ध, विरोधी, असंतुष्ट है तो समाज में पतन, अकर्मण्यता,

अशान्ति और दु:ख का राज्य व्याप्त होना जरा भी अस्वाभाविक नहीं है । एक तरह से यह अनिवार्य परिणति है । यदि समाज को सर्वतोमुखी प्रगति की दिशा में अग्रसर करना हो तो यह नितांत आवश्यक है कि नारी के मातृत्व की गरिमा और महिमा को समझा जाय तथा उसे समुचित स्थान दिया जाय ।

माँ के आशीष से बड़ी कोई शक्ति नहीं

व्यक्ति और समाज को ऊँचा उठाने में अनेकों घटकों का योगदान होता है । शिक्षाशास्त्री, समाजशास्त्री, अर्थ-शास्त्री सुख-सुविधाओं के संवर्द्धन तथा समाज की सुव्यवस्था एवं शालीनता बनाए रखने के लिए हर सम्भव प्रयास करते हैं । भौतिक विकास में इन सबका सहयोग आवश्यक है और महत्त्वपूर्ण भी-पर व्यक्ति एवं समाज में उदारता एवं उदात्तता, शालीनता एवं सदाशयता का बीजारोपण मातृ-शक्ति द्वारा ही होता है । यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में मातृ-शक्ति का सर्वोपरि स्थान रहा है । माँ के प्रति अगाध एवं अनन्य श्रद्धा के भाव ने कभी इस देश को महानता के उच्चतम शिखर पर पहुँचाया था । प्रगति और समुन्नति की, सुख और शान्ति की भूतकालीन स्वर्गीय परिस्थितियों के कारणों पर दृष्टिपात करते हैं तो एक ही तथ्य हाथ लगता है–भारतीय जनमानस के अन्तः-करण में विद्यमान माँ के प्रति अगाध श्रद्धाभाव ।

देवी-देवताओं में माँ को एक सर्वोत्तम सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है । अनेकों प्रकार की देवियों की प्रतिष्ठापना, पूजा, आराधना के पीछे भी एक ही दर्शन काम करता है–मातृसत्ता के प्रति असीम श्रद्धा-भाव का विकास करना । यह जिस भी समाज में जितना अधिक होगा, वह उतना ही शालीन एवं श्रेष्ठ होगा । सर्वांगीण प्रगति के लिए ऋषियों ने मनुष्य को सर्वप्रथम जो शिक्षा दी है वह है–माँ के प्रति अनन्य निष्ठा का विकास करना । शिशु को आरम्भिक शिक्षा देते हुए भारतीय संस्कृति कहती है–मातृमान् पितृमान्, आचार्यवान् पुरुषो वेद । अर्थात् माता-पिता और आचार्य ही मनुष्य जीवन को ढालने में सबसे बड़ी भूमिका निभाते हैं । इन तीनों में माँ का स्थान प्रथम और सर्वोपरि है ।

नीतिशास्त्र में एक प्रश्न किया गया है–पृथ्वी से भी बड़ा कौन है ? उसका उत्तर देते हुए ऋषि कहते हैं–'प्रथिव्या माता गरीयसी' माता-पृथ्वी से भी बड़ी है । माँ के त्याग, बलिदान एवं महानता के कारण ही श्रेष्ठता से अभिपूरित, त्याग का उदाहरण प्रस्तुत करने वाली वस्तुओं को भी माँ के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है । पृथ्वी माता का सम्बोधन यों ही नहीं है । मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए क्या-क्या नहीं करता है । पृथ्वी के सीने को चीरता है, उसे जर्जर बनाता है । गन्दगी फैलाता है । पर यह पृथ्वी का मातृ हृदय ही है जो सब कुछ सहन करती है । मनुष्य के कुकृत्यों पर थोड़ा भी ध्यान नहीं देती है । उल्टे अपने अनुदानों की वर्षा सदा करती रहती है । उसकी इस उदारता के कारण ही माँ का पद प्रदान किया गया है । पशुओं में गाय को भी माँ का पद दिया गया है । यह उसके अमृत तुल्य अनुदानों के कारण ही है ।

विश्व के मूर्धन्य तत्वविदों ने इस तथ्य को एकमत से स्वीकार किया है कि न केवल व्यक्ति वरन् समाज और राष्ट्र का समग्र विकास मातृ-शक्ति की गरिमा की प्रतिष्ठा द्वारा ही सम्भव है । फारसी के एक कवि ने बड़े मार्मिक ढंग से कहा है–

'जेरे कदमें वाल्दा, फिरदौसे बरी' अर्थात्-माँ के चरणों के नीचे स्वर्ग है । प्रकारान्तर में स्वर्गीय परिस्थितियों के सृजन के मूलभूत रहस्य का उद्घाटन इन पंक्तियों में किया गया है । वह है–मातृ शक्ति के प्रति असीम श्रद्धा । एक यहूदी कहावत है–"ईश्वर हर जगह मौजूद नहीं हो सकता, इसलिए माताओं को भेज देता है।" यह मातृ-श्रद्धा की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है ।

महानता से अभिपूरित उदारता, उदात्तता का, त्याग और बलिदान का प्रशिक्षण मनुष्य के लिए उसी दिन से आरम्भ हो जाता है जिस दिन माँ गर्भ धारण करती है । अपने शरीर से रक्त, माँस का हिस्सा काटकर शिशु के शरीर का निर्माण करती है । नौ माह तक असीम वेदना सहन करते हुए भी गर्भ में पल रहे शिशु को पोषण देती है । वह कभी किसी प्रकार के प्रतिदान की अपेक्षा नहीं करती । पुत्र चाहे कुपुत्र निकल जाय, पर वह अपने कर्तव्यों से च्युत नहीं होती । उसका स्नेह-प्यार बच्चे को सदा मिलता रहता है ।

विश्व के रंगमंच के उच्चतम पदों पर पहुँचे और महानता के उच्च शिखर पर जा चढ़े व्यक्तियों के जीवन इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो उपर्युक्त तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है । उनके विकास में सामाजिक परिस्थितियों, शिक्षा एवं साधनों आदि का सीमित योगदान रहा है । माँ के प्रति अनन्य श्रद्धा भाव ने ही उन्हें सफलता के शिखर तक पहुँचाया है । यह भाव न केवल उनके जीवन के आरम्भिक काल में बना रहा, वरन् अन्तिम समय तक प्रेरणा देता रहा है । अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति जनरल ग्रान्ट के जीवन की एक मार्मिक घटना इस प्रकार है–"ग्राण्ट रविवार को अपने परिवार के सदस्यों के साथ गिरजाघर में जाकर प्रार्थना किया करते थे । एक बार परिवार के सदस्यों सहित सामूहिक प्रार्थना में सम्मिलित थे । ग्राण्ट का छोटा पुत्र शोर मचाने लगा । इससे ग्राण्ट साहब का ध्यान भंग हो गया । उन्होंने बच्चे को चुप रहने का संकेत दिया, पर उसकी उछल-कूद जारी रही । क्रोधित होकर ग्राण्ट ने बच्चे को दो-तीन थप्पड़ जड़ दिए । इतने में ग्राण्ट की वयोवृद्ध माता उठी और बच्चे को सहलाते हुए हृदय से लगा लिया और उसे चुप कराया ।

बालक के चुप होते ही ग्राण्ट की ओर मुड़ी और तीन-चार थप्पड़ लगा दिये । उपस्थित लोगों में खलबली मच गई । आवाक् हुए सभी इस घटना को देखते रहे । तभी ग्राण्ट अपनी माँ के चरणों में बैठते हुए बोले-'' माँ मेरा ऐसा कौन-सा गम्भीर अपराध था जिसका दण्ड तुमने मुझे दिया ?'' माँ का हृदय भर आया । उन्होंने बेटे को सीने में लगाते हुए कहा कि-''जिस अपराध के कारण तुमने बच्चे को दण्ड दिया है, वही तुम्हारे द्वारा भी किया गया है । बच्चा तो शोर मचा रहा था पर तेरा ध्यान कहाँ था । तुम्हारा मन तो स्वयं चंचलमान था । इस प्रार्थना से क्या लाभ ?'' ग्राण्ट ने अपनी त्रुटि स्वीकार की और भाव- विभोर होकर बोले-''सचमुच माँ तेरे कारण ही हम राष्ट्रपति पद तक पहुँच सके हैं ।''

राष्ट्रपति आइजन होवर कहा करते थे कि-''अब तक मैं जो कुछ भी बन सका हूँ वह माँ की स्नेह अभिपूरित प्रेरणा एवं प्रशिक्षण का ही प्रतिफल है ।''

जान कैनेडी ने एक प्रेस इन्टरव्यू में अपने आकर्षक व्यक्तित्व एवं सफलताओं का रहस्योद्घाटन करते हुए कहा था कि मेरी माँ सिद्धान्तों एवं आदर्शों की दृष्टि से भी अधिक कठोर और संवेदनाओं की दृष्टि से मोम से अधिक मुलायम थी । उसके अगाध स्नेह ने ही मुझे वर्तमान स्थिति तक पहुँचाया है ।

अब्राहम लिंकन जब अमेरिका के राष्ट्रपति बने तो अपनी सफलता के विषय में कहा-''मैं जो कुछ बन पाया हूँ या आगे आशा करता हूँ उसका सारा श्रेय और गर्व मेरी माता को है ।''

सिकन्दर कहा करता था-''अपनी माँ के आँखों के एक आँसू को मैं सम्पूर्ण साम्राज्य से भी बढ़कर मानता हूँ ।''

शिवाजी, राणाप्रताप से लेकर स्वतन्त्रता संग्राम के क्रान्तिकारियों ने भगतसिंह आजाद तक सभी ने माँ के अंचल में बैठकर ही शासन, पराक्रम एवं चरित्रनिष्ठा का पाठ पढ़ा था । मातृ-भूमि के प्रति त्याग-बलिदान का बीजारोपण बचपन में ही हुआ था । महात्मा गाँधी और बिनोवा को महामानव की श्रेणी में पहुँचाने में उनकी माताओं का असामान्य योगदान रहा है । जिन दिनों गाँधी जी विलायत अध्ययन के लिए जा रहे थे, उनकी माँ ने उनसे सदाचार और सत्य की प्रतिज्ञा की थी, जिसका निर्वाह वे जीवनपर्यन्त करते रहे । माँ के प्रति अनन्य भक्ति उनका पथ प्रदर्शन करती रही । गाँधी जी कहा करते थे कि-''सदाचार एवं सत्यनिष्ठा का जो पाठ हमारी माँ ने पढ़ाया वह मेरे जीवन का मूल मन्त्र बन गया ।'' बचपन में त्याग और बलिदान के संस्कारों को अपनी ममता के साथ पिलाने वाली माँ के उदार हृदय की यह घटना कितनी प्रेरणाप्रद है । बाल्यकाल में बिनोवा के साथ एक मातृ-पितृ विहीन बालक रहता है जिसके पालन-पोषण का दायित्व भी बिनोवा की माँ ने ले रखा था । वे प्रति उस अनाथ बच्चे को रोटियों में घी चुपड़कर देती । जबकि बिनोवा को सामान्य रोटियाँ ही मिलती थीं । ए दिन बिनोवा ने इस पक्षपात का कारण पूछा । माँ ने भाव विह्वल होकर कहा कि, ''इस बच्चे के माता-पिता नहीं हैं । उसे अतिरिक्त स्नेह की आवश्यकता है । तुम्हारी माँ होने के कारण यह तुम्हें सहज ही उपलब्ध है ।'' माँ के विशाल हृदय में उमड़ने वाली स्नेह की पवित्र धारा ने उदारता का, महानता का जो पाठ पढ़ाया उसने बिन की जीवन-धारा मोड़ दी ।

मातृ हृदय त्याग-बलिदान का, उदारता-महानता व स्रोत है । श्रेष्ठता का, शालीनता एवं महानता का पाठ पढ़ने एवं उस पर चल पड़ने वाले प्रत्येक महापुरुष ने मातृ-हृदय में रहने वाली स्नेह की पवित्र धारा में डुबकी लगाई । उसके अजस्र अनुदानों के कारण ही भारतीय संस्कृति मातृ-शक्ति प्रधान रही है । प्रत्येक महामानव ने उसके अंचल में बैठकर स्नेह, आत्मीयता के अमृत का पान किया है ।

मातृ छत्रछाया में बैठकर पढ़ा हुआ आत्मीयता का पाठ जीवन लक्ष्य प्राप्ति का प्रेरणा स्रोत बनता है । जिस आत्मीयता, करुणा एवं दया भाव के विकास के लिए कठोर साधनाएँ की जाती हैं, वह मातृ हृदय में सहज ही उपलब्ध होती है । आत्मीयता का पढ़ा हुआ पाठ आत्म विकास, आत्म-विस्तार का साधन बनता है । 'मातृवत परदारेषु, आत्मवत सर्वभूतेषु' की भावना का विकास आध्यात्मिक प्रगति का चिन्ह माना गया है । वह माँ के प्रति अनन्य श्रद्धा से सहज ही प्राप्त होता है ।

अवांछनीयता के दावानल में जल रही मानव जाति को भारतीय संस्कृति की उन विशेषताओं का अवलम्बन लेना होगा जिसको अपनाकर वह श्रेष्ठ और शालीन बनती थी प्यार महानता का पथ अपनाती थी । मातृ-शक्ति के प्रति उदात्त श्रद्धा भाव ने भूतकाल में इस देश को प्रगति के उच्चतम शिखर पर पहुँचाया था । कालान्तर में इसमें कमी हुई । श्रद्धा में ह्रास हुआ । मध्यकाल के काले युग ने तो सदियों से चली आ रही गरिमामय श्रद्धा को बुरी तरह रौंदा। उसे कलुषित किया । महाशक्ति को कामिनी के रूप प्रतिष्ठापित कर समूचे नैतिक आधारों को डगमगा दिया ।

इन दिनों आयी अनैतिकता की बाढ़ का एक प्रधान कारण है-मातृ-शक्ति की अवमानना । प्रतिक्रिया सामने है-माँ के हृदय से मिलने वाले उदात्त अनुदानों से वंचित बने रहने के कारण जो उपहार महामानवों के रूप में मिलता था, बन्द हो गया । समाज को श्रेष्ठ एवं शालीन बनाने के लिए पुनः मातृ-शक्ति को गरिमामय पद प्रतिष्ठित करना होगा । उसके प्रति असीम श्रद्धा का भाव विकसित करना होगा । समाज में

का बीजारोपण इसी प्रकार सम्भव होगा । सर्वांगीण सामाजिक प्रगति का आधार मातृ-शक्ति के प्रति अगाध श्रद्धा भाव को विकसित करने से ही सम्भव होगा ।

मानवता की शान्ति माँ के चरणों पर

सूफी संत बायजीद को संसार से विरक्ति हो गई, उन्होंने गृह परित्याग कर दिया और ब्रह्म आराधना में लीन हो गये । अपने बेटे की याद में रोते-रोते बायजीद की माँ ने आँखें खो दीं । बायजिद ने यह सुना तो अत्यन्त दुःखी हुए । उन्होंने कहा-"मनुष्य जीवन की शान्ति माँ के चरणों पर रखी है । मेरा कितना दुर्भाग्य था कि मैं उसे खोजने बाहर निकला ।" बायजीद घर लौट पड़े और अपना शेष जीवन माँ की सेवा, मातृत्व के उद्धार में लगाया ।

संसार में आया हर प्राणी माँ से अधिक और किसी का ऋणी नहीं । दूसरे अपेक्षा करते हैं, पर वह उत्सर्ग करती है । उसकी करुणा, स्नेह, ममता और वात्सल्य का रस पीकर ही मनुष्य, मनुष्य कहलाने का अधिकारी बनता है । अयोध्या के सिंहासन पर राम आसीन हो चुके थे । राज्य की प्रजा को किसी तरह की कोई पीड़ा या कष्ट तो नहीं है । यह जानने के लिए उनके गुप्तचर परिभ्रमण किया करते थे और प्रतिदिन सायंकाल राम को सारी जानकारियाँ दिया करते । एक दिन एक गुप्तचर ने भगवान् राम को एक ऐसी घटना बताई जिससे मातृत्व की यथार्थ महिमा झलकती है । एक माँ अपने बेटे को स्तनपान करा रही थी । बालक का मन क्रीड़ा में लगा था सो वह बार-बार स्तन से मुख हटा लेता था, माँ हर बार स्तन मुँह में डालती और बालक हर बार वही अरुचि व्यक्त करता । भाव-विभोर माँ ने तब बच्चे को सम्बोधित कर कहा-"मेरे लाल ! हम तुम दोनों रामराज्य में जन्मे हैं । जहाँ हर व्यक्ति अज्ञान, अभाव, अशक्ति से मुक्त है, इस राज्य में किसी का पुनर्जन्म नहीं होता । यहाँ का हर प्राणी संसार चक्र के आवागमन से मुक्त हो जाता है, फिर न मुझे माँ के रूप में जन्म लेना है न तुझे बेटे के रूप में । तुझे जी भर दूध पिलाने की मेरी आकांक्षा अधूरी न रह जाये तात ! सो तू मेरा मीठा दूध छक कर पी ।"

गुप्तचर यह संवाद देते-देते भाव विह्वल हो जाता है, स्वयं राम के नेत्रों से करुणा झरने लगती है । माँ की ममता के यह उपाख्यान कठोर से कठोर हृदय को भी पिघलाने में समर्थ हैं ।

माँ सर्वव्यापीसत्ता की प्रतिकृति है । देश-जाति की संकीर्णताएँ उसकी ममता को कभी विक्षिप्त नहीं कर पाईं । उसी की भाव संजीवनी ने पौरुष को महानता प्रदान की । उसी ने क्षुद्र मानव को मानवीय गरिमा प्रदान की है । राम, कृष्ण, गौतम, महाराणाप्रताप, शिवाजी, वीर हम्मीर, सुकरात, अरस्तू आदि सभी महापुरुषों के जीवन में छलकने वाली संवेदना, प्राण और प्रकाश उनके जीवन में उनकी माँ के स्तनों से होकर आया है ।

इस महान् महिमामयी 'माँ' की प्रतिष्ठा ही मानवता की सच्ची प्रतिष्ठा है । नारी के विविध रूपों में 'माँ' के ही संस्कार सर्वत्र बिखरे पड़े हैं । उनकी पवित्रता की रक्षा, मातृत्व का सम्मान और उसके उपकारों का मूल्य चुकाने का हमारा कर्तृत्व सो नहीं जाना चाहिए । माँ के ऋण आज से ही चुकाये जाएँ तो भी वह मरने तक शायद ही चुक पायें; वे इतने असीम हैं, इतने अनन्त हैं ।

आधुनिक सभ्यता के अनेक अभिशापों में एक यह भी है कि इतने कष्ट, इतनी पीड़ाएँ झेलकर जिस माँ ने जन्म दिया उसी की अब उपेक्षा होने लगी है, उसका अनादर बढ़ रहा है । विलासिता के प्रति जन-आकर्षण ने ही नारी के माँ रूप की अवहेलना और उसके रमणी तथा कामिनी स्वरूप की उपासना शुरू कर दी है । इसे यों भी कह सकते हैं कि आज का मानव शान्ति-शीतलता दायिनी निर्झरिणी से दूर मरुस्थल की मृग-मारीचिका में भटक गया है ।

निराशा, अशान्ति, असन्तोष, कलह, कटुता में खीझते हुए दम्पति सामाजिक जीवन में भी यही बुराइयाँ फैलाते हैं । यह एक कटु सत्य है-जो माँ के प्रति कृतज्ञ नहीं हो सकता, वह समाज को भी कभी अपना नहीं मानता । ऐसे स्वार्थ व संकीर्णता की प्रवृत्ति वाला व्यक्ति किसी के भी साथ छल कर सकता है, धोखा दे सकता है । मूल प्रश्न व्यवहार का नहीं, दर्शन का है । यदि लोग उल्टी मान्यता बनाने लगें तो हानि की सम्भावनाएँ बहुत अधिक बढ़ जाती हैं । यही कुछ आज दृष्टिगोचर होता है । कृतज्ञता का अभाव तो केवल बर्बर और खूँख्वार जानवरों में ही होता है, इसे सामाजिक जीवन का एक ऐसा पाप मानते हैं जो जीवन को जंगली बना देता है । माँ के प्रति बरती गई कृतघ्नता किसी भी रूप में हितकारक नहीं, चाहे वह व्यक्ति हो या समाज उससे मातृत्व का तो कुछ न बिगड़ेगा; अपनी भावनाओं से तो वह भाव-विभोर रहने का आनन्द लेगी ही । मनुष्य अपने पैरों आप ही कुल्हाड़ी मारता है ।

माँ के प्रति कोमलता और पवित्रता के विचार प्रत्येक जाति, हर संस्कृति में अभिव्यक्त हुए हैं । रोमन कैथोलिक धर्म में मेडाना और पुत्र के रूप में यीशु के चित्र की पूजा की जाती है । इसे पुत्र और माँ की सघन आत्मीयता की अभिवन्दना कहा जाना चाहिए । लीविया में मातृत्व को कानूनी रूप से इतना सम्मान प्राप्त है कि उसी से उसकी महत्ता अभिव्यक्त होती है । क्रूर से क्रूर व्यक्ति भी माँ के पास आकर कुछ क्षणों के लिए जलते हुए विद्वेषी जीवन की शान्ति अनुभव करते हैं ।

नारी को भाव-प्रवणता का पर्याय कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । यह उसका जन्मजात संस्कार है, इसी कारण वह बाल्यावस्था से ही स्नेह और श्रद्धा की

पात्र बनी रहती है । यदि उसे यह आत्म-सम्मान मिलता रहे तो वह अपनी तपश्चर्या से सारे समाज को गौरवान्वित कर सकती है । बाल्यकाल में वह पिता, बड़े भाइयों का स्नेह-दुलार पाकर घर भर के काम करती घूमती है तो गृहस्थ जीवन में तो वह त्याग के सिंहासन पर आरूढ़ होती है । घर भर की सेवा-साधना, पति का स्नेह अभिसिंचन जैसा वह करती है, सृष्टि का कोई अन्य प्राणी शायद ही करता है । माँ के रूप में वह भावनाओं की साकार प्रतिमा ही है । इतना त्याग ईश्वरीय सत्ता के अतिरिक्त कोई और नहीं कर सकता । उसके इस अनुग्रह का आभार व्यक्त करने के लिए ही भारतीय संस्कृति ने उसे परमेश्वरी का स्थान दिया और परमात्मा के नारी-रूप माता गायत्री की उपासना प्रचलित की । यह सर्वव्यापक और राष्ट्रीय-उपासना के रूप में सम्मानित हुई । उसी से मातृ-सत्ता की महत्ता प्रतिपादित होती है ।

माँ का आशीर्वाद रहते तक यह देश सर्व-शक्ति सम्पन्न राष्ट्र रहा, पर उसके पतन ने सारे देश को अन्धकार के गर्त में जा धकेला । जब, जब-कि हम प्रगति के लिए उठ खड़े हुए हैं मानवी का आशीर्वाद लेना अत्यावश्यक है, उसके बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते, बढ़े भी तो प्रगति स्थिर रख सकेंगे ; यह सन्देहजनक ही रहेगा ।

गरिमामय भारत की माता

भारत का इतिहास महापुरुषों, सन्तों, विद्वानों और वीरों से भरा पड़ा है । यहाँ पुत्र ने अपने पिता से भी अधिक उन्नति की, यहाँ तक कायर और दब्बू पिता की सन्तान भी वीर और विद्वान निकली । इसका एकमात्र कारण है यहाँ की नारियों का जागरूक और संतति निर्माण में दक्ष होना ।

यह सच है कि कोई व्यक्ति जन्मजात महान् नहीं होता । यद्यपि पूर्व जन्म के संस्कार उसे ऊँचा उठाने में सहयोग अवश्य करते हैं, परन्तु वह भी तब जब कि उन्हें व्यक्त और प्रकट होने का अवसर मिले । भारत की नारी उन संस्कारों को सँवारने में ही नहीं, नये संस्कार डाल कर इसी जीवन में ऊँचा उठाने में भी कुशल रही है ।

अभिमन्यु, बुद्ध, महावीर आदि महापुरुषों का निर्माण तो गर्भकाल में ही हो गया था । उस समय के विचार संकल्प मनःसंस्थान को अनिवार्य रूप से प्रभावित करते हैं ।

बुद्ध की माता यद्यपि बच्चे को जन्म देकर ही चल बसी थी । फिर भी उससे पूर्व उनकी आध्यात्मिक आत्म-साधना का प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर तो पड़ा ही । ऋषि-मुनियों के आश्रमों में निवास, वहाँ के पवित्र वातावरण में रहने का प्रभाव पाकर ही जन्म लेने वाला बालक आगे चलकर संसार का कल्याण करने वाला मसीहा बन गया ।

लिच्छवी वंश की क्षात्र परम्परा में महावीर जैसे अहिंसा के अनुयायी और उपदेष्टा का जन्म सचमुच ही आश्चर्यजनक लगता है, परन्तु इसका श्रेय भी उनकी माता को ही जाता है । मांस भक्षण से विरत, सौम्य और सात्विक जीवन से लगाव आदि प्रवृत्तियों का प्रभाव परिणाम ही उनके पुत्र को महावीर बना गया ।

शिशु जन्म के बाद उनके पालन-पोषण में आदर्श और अध्यात्म सिद्धान्त के प्रति दृढ़निष्ठा ने बच्चों को महानता के वरण की प्रेरणा दी । चन्द्रगुप्त मौर्य, राणा साँगा, महाराणाप्रताप, वीर शिवाजी, महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस, राजर्षि टण्डन, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, महामना मालवीय, विनोबा भावे, महर्षि कर्वे, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द और जवाहर लाल नेहरू जैसी सैकड़ों विभूतियाँ मातृ-शक्ति का ही वरदान थीं । यदि इनकी माताएँ अपने पुत्रों को राष्ट्रसेवा और समाज निर्माण की दिशा में अग्रसर न करतीं तो शायद ये महामानव भी अन्य लोगों की तरह पेट और प्रजनन के सामान्य स्तर का जीवन जीते रहते ।

मेवाड़ के राजपूत इतिहास में राणा साँगा का नाम विशेष उल्लेखनीय है । भगवान् कृष्ण की भक्ति में तन्मय रहने वाली मीरा उनके पूर्वजों में से थी । राजा कुम्भ के उत्तराधिकारियों में महाराणा संग्राम सिंह ही तेजस्वी और प्रभावशाली सर्वाधिक वीर पुरुष माने जाते हैं । राणा साँगा की माता ने राजस्थान की तत्कालीन दुर्दशा को अच्छी तरह देखा-समझा था । संग्रामसिंह के गर्भ में आने के बाद उन्होंने निश्चय किया कि ऐसी सन्तान को जन्म देना है जो इस तिरोभूत अन्धकार के वातावरण में प्रकाश का काम दे सके । सात्विक योजना, वीरोचित वेशभूषा और साहसी विचारों की मन में बारम्बार प्रतिष्ठा कर उन्होंने सचमुच ही ऐसी तेजस्वी सन्तान को जन्म दिया ।

बाद में भी संग्राम सिंह को ऐतिहासिक घटनाएँ और कथा-कहानियाँ सुना-सुनाकर निर्धारित दिशा में प्रेरित किया जाता रहा । इसी प्रेरणा के फलस्वरूप राणा साँगा आगे चलकर भारत के इतिहास में स्वतन्त्रता के अमर पुजारी सिद्ध हुए ।

उन्हीं के वंश में उत्पन्न हुए महाराणाप्रताप मर्यादा-अभिमानी और स्वतन्त्रता के उपासक बने । राणाप्रताप के पिता अपनी कुल-परम्परा के अनुसार वीर और साहसी नहीं थे । चित्तौड़ का किला हारकर उन्हें अरावली की पहाड़ियों में चले जाना पड़ा था । यहीं पर उनकी पत्नी ने प्रताप सिंह को जन्म दिया । प्रयत्नपूर्वक अपने पुत्र को उन्होने ऐसा वातावरण दिया जिसमें साहस, शौर्य, स्वाभिमान और देशभक्ति की भावनाएँ पनप सकें । इसका उन्होंने बड़ा ध्यान रखा और अपने पुत्र के सामने, कभी किसी के सामने नहीं झुकीं, ताकि कहीं प्रताप सिंह को झुकने और समझौता करने की आदत न पड़ जाय ।

इतने सावधान पालन-पोषण का ही परिणाम था कि महाराणा प्रताप ने घास की रोटियाँ और पत्तलों पर खाकर भी अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की ।

शौर्य और धर्मनिष्ठा के प्रतीक छत्रपति वीर शिवाजी के पिता आदिल शाह के मनसबदार थे । उनकी माता ने अपने बेटे को इसी कारण पिता के पास नहीं भेजा कि कहीं पुत्र पर गुलामी के संस्कार न पड़ जायें । वे स्वभाव से वीर और हृदय से धर्मनिष्ठ महिला थीं । अपने पुत्र से भी उन्हें यही अपेक्षा थी कि वह वीर, साहसी और धर्मनिष्ठ बने । इसलिए लोरियों में वीर रस के गीत और कहानियों में इतिहास-पुराणों की कथाएँ सुनाना आरम्भ कर दिया । शिवाजी को हिन्दू राज्य का स्वप्न उन्होंने ही दिया और उसे साकार करने के लिए सामाजिक समुचित शिक्षा-दीक्षा दी । इसी कारण जीजाबाई जैसी विदुषी और धर्म-परायण सन्नारी का पुत्र भी धीर, वीर और धर्मरक्षक बन गया । शिवाजी के निर्विकार मनोभूमि में बोये गये बीज जीवन भर पल्लवित-पुष्पित होते रहे ।

महापुरुषों के उद्‍भव और विकास में माताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका भारत की शाश्वत परम्परा रही है । अन्य परम्पराओं में भले ही सुधार और क्षीणता आती रही हो, परन्तु यह कभी नहीं टूटी ।

आधुनिक काल में भी भारत की नारी ने सैकड़ों विभूतियाँ देकर देश और समाज का मस्तक ऊँचा किया है । काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक धर्म प्राण महामना मदन मोहन मालवीय को शिक्षा का महत्त्व तब समझ में आया था, जबकि उनकी माँ उन्हें पढ़ाने के लिए अपने जेवरों और कपड़ों को गिरवी रख दिया करती थीं । धर्म प्रचार की प्रेरणा भी मालवीय जी को अपनी माता से ही प्राप्त हुई थी ।

राजर्षि टण्डन को राष्ट्र-प्रेम और तदनुकूल क्रिया-कलाप तथा निर्वाह की शिक्षा का श्रेय भी उनकी माँ को ही जाता है । अँग्रेज लड़कों द्वारा उनसे छेड़छाड़ करने पर बुरी तरह पिटाई करने वाले दस वर्ष के टण्डन की पीठ उनकी माँ ने ही थपथपाई थी । माँ की प्रेरणा और प्रोत्साहन पाकर टण्डन आजीवन निर्भीकता के उपासक बन गये । आध्यात्मिकता की ओर झुककर संन्यास ग्रहण करने के लिए कृत संकल्प सुभाषचन्द्र बोस को उनकी माता ने ही देश-भक्ति और समाज सेवा की दीक्षा दी थी ।

महात्मा गाँधी के निर्माण में उनकी माँ का योगदान भी उल्लेखनीय रहा है । बचपन से ही धर्म, पुराण और उपनिषद् की कथाएँ सुनाकर उन्होंने अपने लाड़ले मोहन को धार्मिक आस्थाओं को परिपक्व कर दिया था । विदेश में माँस न खाने, मद्यपान और व्यभिचार से बचने की प्रतिज्ञा करवाकर गाँधीजी के व्यक्तित्व का गठन उनकी माँ के सिवा और किसने किया ? स्वयं उन्होंने भी कई स्थलों पर अपनी माँ से प्रभावित होने का उल्लेख किया है ।

धर्म-परायण माता रुक्मिणी बाई ने तो देश को एक नहीं तीन-तीन रत्न दिये । विनोबा, बाल्कोवा और उनके छोटे भाई समाज सेवा के क्षेत्र में सदा अग्रणी हैं । अपनी माँ की धार्मिक शिक्षा ने बचपन में ही विनोबा के मुख से यह कहलवाया कि-'डोम, महार और चमार नीच नहीं हैं ।' भगवान् को सर्वव्यापी मानकर पूजा करने वाली माता रुक्मिणी ने विनोबा भावे को 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' का उपासक बना दिया ।

आदिकाल से अद्य काल तक भारत की नारियों ने देश को अमूल्य रत्न दिये हैं । हमारी संस्कृति में मातृ-शक्ति को इतना महत्त्वपूर्ण स्थान शायद इसीलिए दिया है कि वही हमारे गौरव का आधार रही है ।

मातृ-शक्ति की गरिमा को जब तक अक्षुण्ण बनाये रखा जाएगा, तब तक यह संस्कृति और यहाँ की भूमि वीर विभूतियों को जन्म देती रहेगी ।

भारतीय नारी महान है

ईश्वर की रचनाओं में मानव सृष्टि एक अत्यन्त रहस्यात्मक कल्पना है । उसको समझने का अब तक अनेक प्रकार से प्रयत्न किया गया, किन्तु कोई निश्चित तथ्य न मिला । किसी ने उसकी परिधि के बाहर ही अपने को पूर्ण मान लिया, किसी ने उसका एक कोना छूकर 'अहं ब्रह्मास्मि' कहकर अपने को पारंगत समझ लिया और किसी ने 'नेति-नेति' कहकर अपनी जान छुड़ायी । अब तक उसके रहस्य की खोज का यही क्रम रहा है ।

सृष्टि प्रकृति-स्वरूपा होने के कारण रहस्यात्मक थी ही, उसको गम्भीरतम् बनाने में नर-नारी का मिथुन-स्वरूप और भी सहायक हुआ । नर अपने शौर्य, तेज, ओज और पौरुष के कारण एक भिन्न वर्ग में आ गया और उसी प्रकार नारी भी अपनी दया, त्याग, उदारता, सहनशीलता, सुकुमारता और धैर्य के कारण एक अलग वर्ग में समझी जाने लगी । एक में चुम्बक की तरह दूसरों को आकृष्ट करने की शक्ति आ गयी और दूसरे में धातु की तरह उसकी ओर आकृष्ट होने की । यह आकर्षण-शक्ति सृष्टि में इतनी व्याप्त है कि कोई वस्तु ऐसी नहीं जिस पर वह अपना प्रभाव न रखती हो । अग-जग का एक-एक कण उसके प्रभाव से अछूता नहीं ।

सृष्टि का वैधानिक क्रम

यद्यपि उक्त आकर्षण के लिए नर-नारी दोनों वर्गों की आवश्यकता होती है, किन्तु यदि इन वर्गों में से किसी एक वर्ग का अभाव हो जाय तो दूसरे वर्ग में ही अनुपस्थित वर्ग की भी शक्ति आ जाती है और धीरे-धीरे सजातीय वर्ग ही विजातीय की तरह आपस में आकृष्ट होने लगते हैं, यहाँ तक कि यदि कोई विजातीय वर्ग अनेक न होकर एक ही रह जाय तब भी उसी अकेले में मन्थन के द्वारा दूसरा तत्त्व हो जाता है और वह अपनी आकर्षण-क्रियाओं में लग जाता है । यह सृष्टि का वैधानिक क्रम है और इसी द्वन्द्वात्मकता के नाते हमारा सारा जीवन-क्रम भी चल रहा है ।

उपर्युक्त दोनों तत्व नर-नारी में बचपन से ही अपने स्वरूप अलग कर लेते हैं । उनकी आकृति, इन्द्रिय आदि में जन्मतः अन्तर हो जाता है और वे ज्यों-ज्यों बढ़ते

हैं उनमें अन्तर और भी बढ़ता जाता है । किशोरी होते-होते नारी में स्फुट यौवना होने के लक्षण प्रकट हो जाते हैं । बच्चे को दूध पिलाने के लिए गर्भ की कल्पना में नारी का स्तन बड़ा हो जाता है और बहादुरी की आवश्यकता के लिए पुरुष पौरुष सम्पन्न बन जाता है । नारी गर्भाधान के लिए रजोधर्म के द्वारा विशुद्ध होकर सरस हो जाती है और पुरुष बीज-वपन के लिए स्थिर-वीर्य होकर सुदृढ़ । दोनों की ये क्रियाएँ सृष्टि में प्रसरित आकर्षण शक्ति को संयमित और उर्वर बनाने के लिए ही होती हैं, यह उनके वृद्धि-क्रम से स्पष्ट हो जाते हैं ।

यौवन में दोनों में ही वासना पूर्ति की प्रधानता रहती है । वे अपनी इस तुष्टि के लिए संसार का महान् से महान् त्याग कर सकते हैं । समाज की निन्दा, परिवार की उपेक्षा, परिजन का सम्बन्ध-विच्छेद एक भी उन्हें टस से मस नहीं कर सकता । वे कभी-कभी अपने आपसी वायदे पर चलकर सारे संसार को अँगूठा दिखा सकते हैं । माँ-बाप, भाई-बहिन, सगे-सम्बन्धी कोई भी उस मार्ग में रोड़ा नहीं बन सकते । यदि नासमझी से उन्होंने रोड़ा बनने का प्रयास किया तो यह एकदम निश्चित है कि वे अपने काबू से बाहर हो जाएँगे । बिना किसी परवाह के वे दोनों ही संसार की सभी शक्तियों को चुनौती देने में कभी हिचक नहीं सकते । उस समय संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं, जो उन्हें तनिक भी झुका सके । वे प्रस्तर की भित्ति की तरह अचल होकर सारी कठिनाइयों और आपदाओं को आसानी से झेल जाएँगे, पर अपने निर्णय के विरुद्ध किसी प्रकार का मीन-मेख उन्हें सहन नहीं हो सकता । उनकी एक अलग बुद्धि होती है और एक-अलग संसार । दूसरी वस्तुओं से उनका कोई मतलब नहीं ।

नारी का त्याग

बचपन से ही नारी में भोलापन होता है । उसमें सहनशीलता, सुकुमारता, लज्जा, उदारता आदि गुण स्वाभाविक होते हैं और साथ ही होती है आत्म-समर्पण की प्रबल साधना । यह जिसे आत्म-समर्पण करती है उसके दोषों को नीलकण्ठ की तरह जीवन भर बूँद-बूँद करके पी जाने में सतत् प्रयत्नशील रहा करती है और उसे मानती है अपना वास्तविक देवता । वह उसे अपने हृदय से कभी विलग नहीं करना चाहती । साथ-ही-साथ आत्म-समर्पण के बाद वह अपने जीवन धन के प्रत्येक कार्य की जानकारी चाहती है–केवल घर के कार्यों से ही सब नहीं, वह तो अपने पतिदेव से सम्बद्ध सभी बाहरी कार्यों का भी लेखा चाहती है । यह सब क्यों ? इसीलिए कि वह अपना सब कुछ उसे समर्पित करके उसकी अर्धाङ्गिनी बन गयी है और अपने दूसरे अंग के विषय में चिन्ता करना उसका स्वाभाविक अधिकार है । इसके औचित्य को न मानना पुरुषों की नासमझी होगी ।

इस प्रकार नारी प्रारम्भ से ही अपने जीवन को उत्सर्ग के मार्ग पर ले जाती है, उसका आदान भी अवसर आने पर उत्सर्ग के लिए हो जाता है । संसार में अपने लिए उसका कुछ नहीं । उसके पास जो कुछ है, वह सब दूसरों के लिए–पति, परिवार और देश के लिए ।

आदान के विषय में, वह गर्भ धारणा करती है, यह सबसे बड़ा उदाहरण दिया जाता है, परन्तु यदि गम्भीरता से सोचा जाय तो उससे आपको अपने लिए क्या मिलता है, तो हो जाती है देश और समाज के लिए महान देन ।

बच्चा पैदा होता है और वह उस समय का काल गाल से निकले हुए पीत शरीर को लेकर सप्ताहों चार[illegible] पर पड़ी रहती है । कराहती है, छटपटाती है और अ[illegible] को असमर्थ देखकर चुपचाप शय्या पर लेटी रहती है । [illegible] व्यापार में गर्भ धारण करना आदान कैसे कहा जाय ? [illegible] तो जगत को एक महान् दान देने का बहाना है । अतः गर्भाधान एक उदाहरण हो सकता है–महान् उत्सर्ग का, [illegible] कि आदान का ।

और आगे सोचिए तो नारी की महत्ता और भी निख[illegible] उठती है । बच्चे बड़े होते हैं और वह उन्हें प्रसन्न रखने के लिए भैया, लाला, बाबू कहकर पुचकारती हुई खाना-पीना भूल जाती है । यदि उसका परिवार गरीब हुआ अथवा किसी कारणवश उसके भोजनालय में भोजन की कमी रही तो वह सारे परिवार को खिला-पिला कर स्वयं निराहार हो जाएगी, किसी से उसके विषय में कुछ कहना या शिकायत करना उसके स्वभाव की बात नहीं । दूसरे दिन संयोग से यदि पर्याप्त भोजन न हुआ तो वह सबको खिला-पिलाकर पुनः भूखी रह सकती है यह क्यों ? क्या उसे भूख नहीं सताती ?

भूख उसे भी सताती है, उसी तरह जैसे सारे मानव प्राणी को । फिर वह वैसा क्यों करती है ? इसीलिए कि वह दूसरों के लिए अपना उत्सर्ग करना बालपन से सीख चुकी है और यह गुण उसमें स्वाभाविक हो गया है ।

यदि कभी पतिदेव किसी कारणवश घर से नाराज होकर कहीं चले गये तो कौन रात-रात भर बैठी हुई उनके लिए रोती रह जाती है ? आपसी कलह के समय पति की गलती रहने पर भी उनसे कौन स्वयं क्षमा माँगती, रूठने पर मनाती और पग-पग पर बलैया लेती फिरती है ? कौन अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए चीमूर की स्त्रियों की तरह कुएँ और नदी में कूद कर जान दे देती है ? किसे अपने अस्तित्व को खोकर जीवन भर दूसरे के वश में रहना खुशी से अंगीकार है ? कौन बारह-एक बजे रात में अतिथि के आ जाने पर शय्या और आलस्य त्याग कर उन्निद्र रहने पर भी उसके अशन-वसन के सम्बन्ध में जुटा रह सकता है ?

मानव धर्मों का पालन

उक्त सभी प्रश्नों का एक स्वर से उत्तर मिलेगा–भारतीय नारी । धर्म और संस्कृति की प्रतीक स्वरूप भारतीय नारी किसका हल नहीं रखती ? वह दानव को भी मानव, हत्यारे को भी धर्मात्मा और निर्दय को भी सदय बना सकती है ।

उसके आँसुओं में धर्म है, क्रिया में संस्कृति और हास्य में सुख का राज्य । मानव धर्मों का सच्चे अर्थ में केवल वही पालन भी कर सकती है ।

मनु ने धर्म के दस लक्षण गिनाये हैं–

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

इनमें से प्रत्येक को नारी किस तरह निभाती है, इस पर संक्षेप में दृष्टि डालना अधिक समीचीन होगा ।

संसार का कोई भी मानव दस लक्षण सम्पन्न धर्म का पूर्णरूपेण शायद ही पालन कर पाता हो, यदि कोई करता भी होगा तो उसे ऐसा करने में असीम साधना करनी पड़ती होगी । नारी के जीवन में उक्त दसों बातें स्वभाव बन गयी हैं । उनके बिना उसे चैन ही नहीं पड़ता । वह इन बातों का कठोरता से पालन करके सारे संसार की पथ-प्रदर्शिका बन गयी है ।

कठिन से कठिन परिस्थितियों में आपदाओं से घिरी रहने पर भी वह धैर्य के साथ पति की अनुगामिनी बनी रहती है । पति उसके साथ घोर से घोर अत्याचार कर डालता है, उसको पशु की तरह डण्डों से पीट लेता है, वेश्यागमन और शराबखोरी से उसका जीवन दूभर बना देता है, उसके जेवर बेचकर जुआ खेल लेता है, पर ज्यों ही उसे विपन्नावस्था में घर आया देखती है वह सब कुछ भूल कर सहानुभूति के साथ उसकी सहायता मे तत्पर हो जाती है । अपनी बीती पीड़ाओं के बदले में एक भी शब्द पति के विरुद्ध कहना उसके बूते का नहीं । वह अपने हृदय और स्वभाव से मजबूर है । कोमलता छोड़कर कठोर बनना उसे भाता ही नहीं । उसका शील हृदय क्षमा के अतिरिक्त और कुछ जानना नहीं चाहता । वह अपने में ही पूर्ण है ।

दम के विषय में उसकी तितीक्षा–इच्छा रहते हुए भी अच्छी वस्तुओं और आहार स्वयं न खाकर परिवार वालों को खिला देना, अपनी पीड़ा भूल कर दूसरे की पीड़ा में संवेदना प्रकट करना, क्रोध न करके सदैव सरस बना रहना ही पर्याप्त है ।

शौच और इन्द्रिय निग्रह के लिए उसका प्रतिदिन आचरण अनुकरणीय है । कुटुम्ब, साधु और पति की सेवा करने, उदार हृदय से पीड़ितों और दुखियों को सहारा देने और अपने सुख-दुःख की बिना परवाह किये रात-दिन गृहकार्यों में निरत रह कर 'गृहिणी' पद की जिम्मेदारी निभाने से बढ़कर शौच और इन्द्रिय निग्रह होगा ही क्या ?

बुद्धि से काम लेना, सत्य बोलना और क्रोध न करना तो नारी सुलभ गुणों में एकदम स्वाभाविक गुण है । उनके बिना नारी अपना जीवन सुखमय बना ही कैसे सकती है ? यदि वह उक्त गुणों को न प्राप्त कर सके तो उसके परिवार में नित्य नये कलह शुरू हो जाएँगे ।

अतएव यह निर्विवाद हो जाता है कि मनु के बताये हुए दस लक्षण–सम्पन्न धर्म का पालन नारी की तरह पुरुष नहीं कर पाता ।

संस्कृति के प्रति निष्ठा

अब रही संस्कृति की बात । कोई भारतीय पुरुष आसानी से यूरोपीय पत्नी ला सकता है, परन्तु भारतीय नारी अपनी संस्कृति और मर्यादा को त्याग कर सम्पन्न से सम्पन्न अँग्रेज की पत्नी होना स्वीकार नहीं करती । वह अपनी संस्कृति के विरुद्ध जाना अब भी, जबकि सारा भारतीय समाज यूरोपीय रंग में रँगता जा रहा है, बड़ा भारी पातक समझती है ।

कोई माँसभक्षी, जुआरी या शराबी उसे छल से या जबर्दस्ती अपनी पत्नी बनाना चाहता है, तो पहले जी-जान से यह उसका विरोध करती है, परन्तु किसी कारणवश यदि उसने पत्नीत्व स्वीकार कर लिया तो वह उसे अपना इष्टदेव मानकर उसकी अनुगामिनी बनी रहने में ही अपना कल्याण समझती है, उसके आगे समर्पण कर देने में ही वह अपना श्रेय मान लेती है । यह है भारतीय नारी ।

वह साड़ी को फेंककर पायजामे में आने के लिए आसानी से तैयार नहीं होती । इस पर यदि कोई जबर्दस्ती करना चाहता है तो वह अपनी संस्कृति और मर्यादा की रक्षा में प्राण तक आसानी से दे सकती है ।

कहीं कोई स्त्री पति के अत्याचारों से ऊब कर आत्महत्या कर रही है, कहीं रेल की पटरी के नीचे कट जाती है, कहीं विष खाती हुई पकड़ ली जाती और कहीं घर से लापता हो जाती है । यह क्यों ? यह सब नारी की मर्यादा और संस्कृति के विरुद्ध किये जाने वाले अत्याचारों का ही परिणाम है ।

उपर्युक्त विवेचन के अपवाद भी भारतीय समाज में मिलेंगे, पर नगण्य । अतएव अपवादस्वरूप कुछ नारियों के बल पर भारतीय नारियों की महत्ता और गुणों की अमान्यता उचित नहीं । यह कहना भी उचित नहीं कि आज की नारियाँ बहुत दिनों से पुरुषों की दासी रहने के कारण इतनी सहनशील बन गयी हैं, क्योंकि नारी की यह शीलवृत्ति और उसके साथ होने वाले अत्याचार सर्वदा जारी रहे हैं । अतएव मनु को भी 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते' कह कर नारी की महत्ता का गुणगान करना पड़ा ।

इस प्रकार नारी मानव सृष्टि की वह धारा है जो सर्वदा शीतल होकर बहती है और गर्म होना जानती ही नहीं । मानव जीवन की दुर्बलताओं को पी जाने में ही उसकी महत्ता है । वह सृष्टि की कल्याणकारी देवी है । यदि उसके स्वाभाविक गुणों का पुरुष मात्र सतांश भी अनुकरण कर ले तो यह दुःखमयी वसुधा स्वर्ग हो जाए पर हमारी महत्त्वाकांक्षा ऐसा कहाँ करने देती है ।

माता से बड़ा और कोई देवता नहीं

माता ही संसार में अधिक पूज्या है । 'न मातुः परदैवतम्' । इस भौतिक शरीर को जन्म देने वाली प्राकृत शरीरधारिणी माता उन्हीं परम माता का एक स्वरूप है । माता और पिता लौकिक दृष्टि में एक दूसरे से भिन्न होते हैं, परन्तु अलौकिक दृष्टि सम्पन्न आप्त यह बतलाते हैं कि परम माता और परम पिता एक ही हैं । एक ही में ये एक साथ दो रूप हैं । इसलिए एक से दूसरे का ध्यान भी हो जाता है । शिशु को गोद में उठा लेने की जो उत्सुकता है, संक्षेप में जो वात्सल्यता वह पितृ रूप में एक विलक्षण गम्भीरता के भीतर छिपा हुआ है । उसे व्यक्त करने वाली माता ही है, 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव' इत्यादि मन्त्रों में माता का ही सबसे पहला स्थान दिया गया है । इसका भी यही कारण है कि माता ही आदि गुरु है और उसी की दया, अनुग्रह के ऊपर बच्चों का ऐहिक, पारलौकिक और पारमार्थिक कल्याण निर्भर रहता है ।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः ।

—अथर्व वेद ३।३०।२

इस लेख का शीर्षक समस्त पद है, जिसका अर्थ है 'उदर में गर्भ या शरीर को धारण करने वाली पूजनीय माता की महत्ता' जैसा कि इसके निर्वचन से सिद्ध है । माता शब्द अत्यन्त प्रिय और बहुव्यापक है एवं जननी, जनित्री, जनयित्री, प्रसू–ये माता के पर्याय हैं । माता की महिमा के विषय में श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहास में एवं नीति ग्रन्थों में बहुत कुछ लिखा मिलता है । भगवती श्रुति उपदेश देती है–मातृ देवो भव । (तैत्तिरीय १।११) अर्थात–हे मनुष्य ! इष्टदेव समझ कर माता की सेवा कर ।

गर्भ धारणपोषाभ्यां ततो माता गरीयसी ।

माता के विरुद्ध आचरण सन्तान को किसी भी दशा में नहीं करना चाहिए । पुत्रों के लिए माता परम पूजनीय है । माता के होते हुए उनको किसी दूसरे देवता की पूजा की आवश्यकता नहीं है । जैसा कि शास्त्र का अनुशासन है–

मातृतोऽन्यो न देवोऽस्ति तस्मात्पूज्या सदा सतैः ।

इस वचन से इन्द्रादि देवताओं की सत्ता का खण्डन अभिप्रेत नहीं है । माता में देववत् पूज्य बुद्धि रखना ही पुत्र का कर्तव्य है और इसी को शास्त्र सिखाता है । धर्मशास्त्रियों का कथन है–

मतिश्च यद्धितं किंचित्कुरुते भक्तितः पुमान् ।
तद्धर्मंहि विजनीयादेव धर्म विदो विदुः ॥

अर्थात् माता की प्रसन्नता के लिए मनुष्य भक्तिपूर्वक जो कार्य करता है, वही उसके लिए धर्म है । गृहस्थ व्यक्ति की बड़ी तपस्या इसी में है कि वह माता की सेवा, उसको जगन्माता आद्यशक्ति समझकर और पिता की शुश्रूषा परात्पर ब्रह्म मान कर करें, क्योंकि माता–पिता की प्रसन्नता ही सब धर्मों का मूल है ।

त्वमाद्ये जगतां माता पिता ब्रह्म परात्परम् ।
युवीयोः प्रीणनं यस्मात्तस्मात्किं गृहिणां तपः ॥

नीतिकारों का मत है–

मातृष्वसा मातुलानी पितृव्यस्त्री पितृष्वसा ।
श्वश्रूः पूर्वज पत्नी च मातृतुल्याः प्रकीर्तिताः ॥

अर्थात्–मौसी, मामी, चाची, ताई, बुआ, सास भाभी ये सब माता के समान हैं । महर्षि मनु का उ है–

पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वस्रवपि ।
मातृवद्वृत्ति मातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ॥

अर्थात्–पुरुष को चाहिए कि वह बुआ, मौसी बड़ी बहिन के साथ माता का सा व्यवहार करें और अ सगी माता तो इनसे भी बड़ी है ही । ब्रह्म वैवर्त पुराण अन्य पन्द्रह महिलाओं को माता की पंक्ति में बैठाया है वेदशास्त्र विहित उन सोलह प्रकार की माताओं का उल्लेख इस प्रकार है–

स्तन्यदात्री गर्भधात्री भक्ष्य-दात्री गुरुप्रिया ।
अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी [illegible] कन्यका ॥
सगर्भजा च या भगिनी स्वामिपत्नी प्रियाप्रसुः ।
मातुर्माता पितुर्माता सेदरस्य प्रिय तथा ॥
मातुः पितृश्च भगिनी मातुलानि तथैव च ।
जनानां वेदविहितां मातरं षोडश स्मृताः ॥

अर्थात्–दूध पिलाने वाली (धाय), गर्भधारण करने वाली, भोजन देने वाली, गुरु पत्नी, इष्टदेव की पत्नी, सौतेली माँ, सौतेली माँ की पुत्री, सगी बड़ी बहिन, स्वामी की पत्नी, सास, नानी, दादी, सगे बड़े भाई की पत्नी, मौसी, बुआ और मामी ये सब मिलाकर सोलह माताएँ हैं ।

माता के समान शरीर का और कोई पोषक नहीं है–

माता समं नास्ति शरीर पोषणम् ।

इसका कारण यही है कि अहैतुक स्नेह करने वाली माता ही एक ऐसी है, जिसका प्रेम सन्तान पर जन्म से लेकर शैशव, बाल्य, यौवन एवं प्रौढ़ावस्था तक एक-सा बना रहता है । माता का यह प्रेम केवल मनुष्य योनि तक ही सीमित नहीं है, वह तो पशु, पक्षी, जलचर, स्थलचर आदि अन्य योनियों में भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है । चिड़िया और कुक्कुटी अण्डे रखकर कुछ दिन उनको सेती हैं और बच्चे निकल आने पर दाना चुगा-चुगा कर तब तक उनका पालन-पोषण करती हैं, जब तक पर निकल आने से उनमें स्वयं उड़ने और दाना चुगने की शक्ति नहीं आ जाती । कच्छपी दूर रह कर भी अपने अण्डों को भगवत्प्रदत्त अपनी अनुस्मरण शक्ति से ही बच्चे निकलने तक सेती है एवं गाय, भैंस, बकरी, कुतिया, बिल्ली आदि भी बच्चे जनकर बाहरी आपत्तियों से तब तक उनकी रक्षा करती हैं, जब तक वे माता का दूध छोड़ कर घास, फूल आदि खाद्य पदार्थ खाकर आत्मनिर्भर नहीं हो जावें ।

बानरी तो स्नेह-पाश में इतनी बद्ध रहती है कि मृत शावक को भी कई दिनों तक छाती से लगाये फिरती है । स्नेह की प्रबलता में माता असमर्थ होने पर भी अपनी सन्तान को विपत्ति से बचाने के लिए जान-जोखिम में डालकर आक्रमणकारी पर प्रत्याक्रमण करने का शक्ति भर प्रयास करती है, चाहे इसमें वह सफल हो या विफल । सृष्टि के प्रारम्भ से आज तक मातृ मण्डल की महत्ता लोक और वेद में जागरूक है । स्नेहमयी माता को सबसे बड़ी अभिलाषा यही रहती है कि मेरा पुत्र चिरायु हो और इसके साथ ही नीरोग, विद्वान, बलवान्, धनी, धार्मिक एवं सर्वगुण सम्पन्न बने ।

माता कुन्ती ने पाण्डवों को धर्म पर दृढ़ रखते हुए क्षात्र धर्म और प्रजा पालन करने का उपदेश और आशीर्वाद दिया था । धर्म प्राण गान्धारी ने अपने दुराग्रही पुत्र दुर्योधन को असन्मार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर लाने के लिए समादान द्वारा राजनीति और धर्मनीति के उत्तमोत्तम उपदेश दिये थे । माता कौशल्या को मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम की जननी कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । माता कैकयी और सुमित्रा ने क्रमशः भरत और लक्ष्मण, शत्रुघ्न जैसे पुत्रों को जन्म दिया, जिन्होंने धीरता, वीरता, भ्रातृ-प्रेम और भगवद्भक्ति का जीता-जागता आदर्श समर्पित कर संसार का महान् उपकार किया है । प्रातः स्मरणीया माता देवकी ने षोडश कलावतार उन भगवान् श्रीकृष्ण को जन्म दिया था जिन्होंने भगवद्गीता के सदुपदेश एवं पावन चरित्रों से भक्त को भवसागर से पार उतारने का मार्ग दिखाया । इस प्रकार अन्यान्य अनेक स्नेहमयी योग्य माताओं के नाम दिये जा सकते हैं । धन्य हैं वे सज्जन, जो अहैतुक स्नेह करने वाली परम सुहृदय माता की सेवा कर महर्षि सुमन्तु के वचनानुसार इस लोक और परलोक में सुख के भागी होते हैं ।

आयुः पुमान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुण्यं बलं श्रियम् ।
पशुं सुखं धन धान्यं प्राप्नुयान्मातृ वन्दनात् ॥

अर्थात्–'माता की सेवा करने वाला सत्पुरुष दीर्घायु, यश, स्वर्ग, कीर्ति, पुण्य, बल, लक्ष्मी, पशु, सुख, धन-धान्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है । इसके विपरीत हत भाग्य हैं वे लोग, जो सर्व सुख सम्पदायित्रि हितैषिणी माता के विरुद्ध रहते हैं । ऐसों के लिए शास्त्र की यह भर्त्सना है–

धिगस्तुजन्म तेषां वै कृतघ्नानां च पापिनाम् ।
ये सर्वसौख्यदा देवीं स्वोपास्यां न भजन्ति वै ॥

अर्थात्–धिक्कार है, उन कृतघ्न गुनमेटे, पापी दुर्जनों को, जो सर्वसौख्यदा माता की सेवा-सुश्रूषा नहीं करते । जगती तल में उनका जन्म लेना वृथा है ।

जियतु मातु सों दंगम दंगा ।
मरी मातु पहुँचावें गंगा ॥

भारतवर्ष सदा से मातृ वर्ग का सेवक रहा है । जाति, व्यक्ति, समाज और देश का सौभाग्य सच्ची हितैषिणी माता के ही ऊपर निर्भर है । उपर्युक्त पंक्तियों से यही निष्कर्ष निकलता है कि माता पद सब से ऊँचा है । इसलिए सभी स्त्री पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे परम धर्म समझ कर माता की सेवा-सुश्रूषा अवश्य करें, करावें जिससे इस लोक से यश और परलोक में सुख प्राप्त हो । माता का स्थान वस्तुतः स्वर्ग से भी ऊँचा है ।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी ।

माँ के उपदेशों पर ध्यान दो उनके सारे उपदेश तुम्हारी भलाई के लिए ही हैं । माँ की सेवा करो, श्रद्धा शक्ति बढ़ाओ, झूठे तर्क न करो । तर्कों से कभी भगवान् की प्राप्ति नहीं हो सकती । माता-पिता के लिए तर्क करना उनका अपमान करना है । अतएव तर्क छोड़ कर माँ के भक्तों की वाणी पर विश्वास करो और श्रद्धापूर्वक माँ की सेवा में लगे रहो । क्योंकि जीव मात्र को माता सब से अधिक प्रिय और श्रद्धेय होती है । माता जैसा कोमल दयालु हृदय किसी का भी लोक में दृष्टिगोचर नहीं होता । सन्तान कैसी भी दुष्ट से दुष्ट, स्वेच्छाचारी, मातृ सेवा से विमुख क्यों न हो फिर भी माँ अपनी ऐसी सन्तान की भी सदैव हितैषिणी रहती है और स्वयं सन्तान की सेवा करके प्रसन्न रहती है । अपनी संतान का वह कभी त्याग नहीं करती है । माँ शब्द में कितना प्रेमामृत भरा हुआ है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता है । पुत्र जब अपनी माँ को माँ-माँ कहकर पुकारता है, तब माता का हृदय प्रेम से भर आता है ।

माता एक ही ऐसी वस्तु है जिसे कोई बदल नहीं सकता । माता चाहे जैसी हो वह माता ही रहेगी, चाहे सन्तान उससे घृणा करे या उस पर गर्व, माता को बदल देना उसकी शक्ति के परे है । विलासी आदमी पत्नियों को बदल सकते हैं, भाई-भाई से चिढ़ कर उसे त्याग सकता है, पर माता तो माता ही रहेगी चाहे वह गौरवशालिनी हो अथवा अपमानिता हो । विश्व माता को माँ के भीतर देखा जा सकता है । प्रार्थना करने पर माँ कृपा करती है, रोने से माँ सुनती है ।

नास्ति मातृ समो गुरुः

भारतीय संस्कृति की गरिमामयी परम्परा में एक तथ्य यह भी है कि माता को 'दैव तुल्य' गौरव प्रदान किया जाता रहा है । माता को सन्तति-निर्माण से लेकर घर-परिवार की साज-सँभाल तक, जितना कुछ त्याग-बलिदान करना पड़ता है, उसके अनुरूप वह सम्मानास्पद उपाधि सर्वथा औचित्यपूर्ण ही है । कोई व्यक्ति यदि इन कार्यों को किसी प्रतिदान की आशा से करता, तब तो सराहनीय गौरव शायद ही उपयुक्त होता, लेकिन माता तो इस परिधि से सर्वथा ऊपर ही होती है । इतना होते हुए भी, विश्व के परदे पर शायद ही कहीं इसे इतना आदर्श रूप प्रदान किया गया हो, जितना भारतीय मान्यताओं में । भारतीयों ने इसके बदले में ये महामानव भी प्राप्त किये हैं जो अद्यावधि पर्यन्त भारत के भाल को ऊँचा किये हुए हैं ।

वैदिक काल के ऋषियों ने 'मातृ देवो भव' (माता को देवतुल्य समझो) कहकर अपने हृदयगत भाव माता के प्रति

व्यक्त किये हैं, जिसकी छाप आज तक किसी न किसी रूप में परिलक्षित ही होती है । क्योंकि यह शब्द मान्+तच् के योग से बनता है जिसका अर्थ 'सम्मान-योग्य' होता है । इस सम्मान के पीछे माता के अनुदान ही जुड़े हुए हैं ये ही विवश करके ऐसे भाव प्रकट ही करा देते हैं ।

माता का ही समानार्थी 'जननी' शब्द भी श्रेष्ठ व्यक्तित्व-सम्पन्न-महामानवों के 'जनन' (पैदा करने निर्माण करने) से सिद्ध होता है । पुराणों में इस जननी की महत्ता को स्वर्ग से भी कहीं अधिक श्रेष्ठ माना गया है—

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी अधिक गरीयमान है, श्रेष्ठ है ।

वास्तव में बालक के निर्माण में जितना हाथ माता का होता है, उतना पिता का नहीं, उसका तो आंशिक सहयोग होता है । माता के ही शरीर के एक अंश से बालक का शरीर विनिर्मित होता है । माँ नौ माह तक बच्चे को अपने पेट में रखती है, बाद में भी खून को दूध में बदल-बदल कर पिलाया करती है । इन्हीं सब कारणों से माता को अधिक श्रेय-सम्मान मिलता रहता है । कहा गया है कि—

मातरं पितरं चो भौ दृष्ट्वा पुत्रस्तु धर्मवित् ।
प्रणम्य मातरं पश्चात् प्रणमेत् पितरं गुरुम् ॥

अर्थात्—धर्मज्ञ पुत्र माता और पिता दोनों को एक साथ देखने पर पहले माता को प्रणाम करके पीछे पिता रूपी गुरु को प्रणाम करे । इस कथन का भी अभिप्राय अथवा माता को अधिक सम्मान देने का भाव पिता से अधिक भूमिका निभाने के कारण ही है । पिता का व्यवहार कभी-कभी कठोरतापूर्ण भी हो जाता है, लेकिन माता सदा-सर्वदा मृदुल, स्नेह वात्सल्य पूर्ण व्यवहार ही बच्चे के साथ करती है । माता के इसी रूप के कारण उसे सर्वथा नमन योग्य माना गया है ।

कभी-कभी यह देखा जाता रहा है कि बच्चों ने जाने-अनजाने ऐसे कुकृत्य कर दिये, जिससे माता को मर्मान्तक कष्ट उठाने पड़े, फिर भी माता का कोई भी प्रतिकृत्य प्रतिशोधपूर्ण नहीं हुआ । आजकल तो प्रायः ऐसे उदाहरण सामने आया करते हैं, कि जो माता रात-भर जगकर बच्चे की बीमारी की स्थिति में उसकी सेवा-सुश्रूषा करती रही, ठण्ड के दिनों में भी स्वयं गीले में सोकर बच्चे को सूखे में सुलाया, अपना सर्वस्व निछावर करके बच्चे को पढ़ाया, लिखाया, योग्य बनाया । विवाह शादी की—वही बच्चे माँ का तिरस्कार करते हैं यहाँ तक कि गालियाँ देने व मारने-पीटने में भी नहीं हिचकते, फिर भी माता का बच्चे के प्रति दुर्भावपूर्ण व्यवहार नहीं होता। माँ हमेशा बच्चे की शुभचिन्तक ही बनी रहती है, कभी भी उसका अनिष्ट नहीं देखना चाहती । यही माता की गौरव-गरिमा की गाथा है । पुत्र के कुपुत्र होने पर भी माता कभी कुमाता नहीं होती—

कुपुत्रो जायते क्वचिदपि माता कुमाता न भवति ।

माता का गौरवपूर्ण स्थान सदा-सर्वदा से अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाये रहा है और आगे भी अक्षुण्ण बनाये रहेगा, क्योंकि माता के हृदय की संरचना ही उन तत्वों से विधाता ने की है कि वह अपनी सहज सरलता, मृदुलता, सहनशीलता आदि सद्गुणों का परित्याग किसी भी दशा में नहीं कर सकती, परिस्थितियाँ कितनी ही विषमतापूर्ण क्यों न हो जाएँ । आज भी मातृ हृदय ने अपने उन सद्गुणों का पूर्ण परित्याग नहीं किया है, जिसके कारण उसे 'माता' का गरिमामय उच्च पद प्राप्त होता है। जबकि आज यह चारों तरफ से इस कदर मूढ़मान्यताओं, कुरीतियों, रूढ़िवाद विचारों से दबती-पिसती जा रही है कि कुछ कहना नहीं । आवश्यकता इस बात की है कि 'माता' के अनुदानों को विस्मृति के गर्त में न धकेल कर उसके प्रति सच्चे सम्मान, सत्कार का भाव रखकर कृतज्ञता ज्ञापित की जाय ।

माता की महिमा और गरिमा

प्रसिद्ध विचारक कारलाइल ने माता की महिमा के विषय में कहा—"यदि तुम प्रेम के साक्षात्-दर्शन करना चाहते हो तो माता के वात्सल्य भरे गद्गद् नेत्रों को देखो ।"

क्योंकि नारी की सृष्टि में ईश्वरीय प्रकाश समाया हुआ है । इसमें कोई संदेह नहीं कि नारी धरा पर स्वर्गीय ज्योति की साकार प्रतिमा है । माता की वाणी जीवन के लिए अमृत सरिता है । उसके नेत्रों में करुणा, सरलता और आनन्द के दर्शन होते हैं । उसकी मुस्कान में संसार की सारी निराशा और कड़ुआहट मिटाने की अपूर्व क्षमता है ।

नारी जन्मदात्री है, इसलिए भारतीय प्राचीन गौरव में नारी का माता के रूप में बहुत कुछ अंशदान रहा है । समाज का प्रत्येक भावी सदस्य उसकी गोद में ही पलकर संसार में खड़ा होता है, उसके स्तर का अमृत पीकर पुष्ट होता है, उसकी हँसी में हँसता, उसकी वाणी से बोलना सीखता है, उसकी कृपा से ही जीकर और उसके ही अच्छे-बुरे संस्कार लेकर अपने जीवन क्षेत्र में उतरता है । तात्पर्य यह है कि जैसी माँ होगी, वैसी ही उसकी सन्तान भी अधिकांशतः उसी प्रकार की होगी ।

माता एक ऐसी भावनाशील कलाकार है जो कि एक हाड़-माँस के पुतले में स्नेह-दुलार और संस्कारों के ऐसे सुन्दर श्रेष्ठ रंग भरकर उसे चरित्रवान् और महान् विभूति की प्रतिमा बना देती है ।

हजरत मोहम्मद ने कहा है—"मैं नारी को इसलिए सुन्दर नहीं कहता कि वह सुन्दर है और न मैं इसलिए उससे प्रेम करता हूँ कि वह प्रेम करने योग्य है बल्कि इसलिए पूज्य मानता हूँ कि मनुष्य का मनुष्यत्व केवल माता में ही मौजूद है।" इसलिए नारी को नर से वरिष्ठ का पद मिला है । नर को कनिष्ठ पद, नारी विश्व की चेतना शक्ति है । मानव जाति के मार्ग-दर्शन के लिए वह तपस्वी बनकर उन्हें सत्शिक्षा देती है । देशकाल व समाज को

जिस समय जैसे नागरिकों की आवश्यकता होती थी उसके अनुरूप सन्तान का निर्माण किया है । माताएँ युग की पुकार को अपना पावन कर्त्तव्य समझती थीं । यही कारण है कि जब-जब युग में सन्त, महात्मा, तपस्वी, त्यागी, दानी, योद्धा और वैज्ञानिक, ज्ञानी, बलिदानी पुत्रों की आवश्यकता पड़ी है, उसने अपनी गोद मे पाल-पाल कर दिये । इतिहास में मातृत्व पद की प्रतिष्ठा तीन माताओं को मुख्य रूप से मिली है–माता मदालसा, सुमित्रा, विदुला । माता मदालसा ने अपने चारों पुत्रों को ब्रह्मज्ञानी,संन्यासी बना दिया था, लेकिन जब पति ने देखा कि सभी पुत्र सन्यासी तपस्वी बन जाएँगे तो राज्य का उत्तराधिकारी कौन होगा ? तब मदालसा ने पाँचवें पुत्र को युवराज बनाया जो कि राज्य के भार को सँभालने वाला बना । माताओं के त्याग ने ही पुत्रों को कर्त्तव्य परायण और देशसेवक बनाया है ।

जहाँ पर जननी के रूप में नारी है, वहाँ पत्नी के रूप में भी उसका बहुत महत्त्व है । नारी पुरुष की अर्द्धांगिनी कही गई है । जिस प्रकार पुरुष के बिना नारी अपूर्ण है, उसी प्रकार नारी के बिना पुरुष भी अपूर्ण है । नारी और पुरुष ही मिलकर एक मानव-जीवन की पूर्ति करते हैं ।

. लेकिन आज हमारे समाज में नारी को एक लम्बे समय से उपेक्षा की दृष्टि से देखा जा रहा है ।

नारी का शोषण सामन्तवाद की देन है । उसे गुलाम बना कर रखा जिसके कारण समाज निर्मात्री के रूप में उसकी सारी योग्यताएँ समाप्त हो गई हैं । समाज-घर गृहस्थी तथा वैयक्तिक विकास और सुख-शांति के लिए नारी की इतनी आवश्यकता जानकर भी जो उसे अन्धकार में रखकर पैर की जूती बनाये रखने की सोचता है, वह देश समाज का ही नहीं, अपनी आत्मा का भी हितैषी नहीं कहा जा सकता ।

जहाँ वैदिक और उपनिषद् काल में यहाँ की स्त्रियाँ विद्या, अध्यात्म, शूरवीरता आदि गुणों में बढ़ी-चढ़ी थीं और उनके प्रभाव से उनकी सन्तान भी संसार में महान कार्य करके दिखलाने में समर्थ होती थीं, वही स्त्रियाँ आज की परिस्थिति में इतनी दयनीय और असहाय अवस्था में पड़ी हैं कि उन्हें देख-सुनकर न केवल दुःख होता है, बल्कि शर्म से गर्दन झुक जाती है ।

स्वार्थी पुरुष वर्ग ने उसके शैक्षणिक अधिकार एवं सामाजिक, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक विकास के सारे अवसर एवं सम्भावनाएँ अजगर की तरह निगल ली हैं । नारी को पुरुष ने अपने भोग-विलास की सामिग्री बनाकर कैद कर लिया है ।

उसे स्वतन्त्र खुले वातावरण में जीने का कोई हक नहीं रह गया है । पुरुषों की संकीर्णता का दंड भोगती हुई धूल में मिलती चली जा रही है । गृहिणी होते हुए भी अशिक्षा के कारण नारी ठीक तरह से गृहिणी सिद्ध नहीं हो पा रही है । बच्चों के लालन-पालन से लेकर घर की साज-सँभाल तक किसी में भी कुशल न होने से उस सुख-सुविधा को जन्म नहीं दे पाती, घर में जिसकी अपेक्षा की जाती है ।

परावलम्बी, असहाय, अशिक्षित, बेचारी निर्दोष नारी अपना मूक जीवन बिता रही है । जिन नारियों को हम माता, पत्नी, बहिन या पुत्री के रूप में प्यार करते हैं, जिन्हें सुखी बनाने की चिन्ता की जाती थी, आज वह परम्परा हम भुला बैठे और आज रूढ़िवादी मान्यताओं और अन्धविश्वास की बेड़ियों से उसका अपमान कर रहे हैं ।

इस दुर्दशाग्रस्त स्थिति में रखने से नारी को तो अपना सर्वस्व खोना पड़ा, लेकिन पुरुषों को भी उसका घातक परिणाम भुगतना पड़ा है । यदि किसी भी दृष्टिकोण से विचार किया जाये तो यह नितान्त आवश्यक है कि नारी को वर्तमान दुरावस्था में न पड़ी रहने देकर उसे ऊँचा उठाना होगा । उसे आगे बढ़ाना होगा । आज हम पुनः उस गौरव को जगाना चाहते हैं । जो नारी देव-भूमि की देवी के नाम से पूजनीय थी, आज कहाँ चली गई, यदि यह जरूरत समझी जाती है कि राम आज फिर हमारे घरों में आयें तो कौशल्या माता का तप चाहिए, कृष्ण चाहिए तो देवकी ही कृष्ण को जन्म दे सकती है । कर्ण, भीम, अर्जुन के लिए कुन्ती जैसी माता चाहिए ।

गाँधी, बुद्ध, शिवाजी, विवेकानन्द की आवश्यकता आज के युग को है, किन्तु हमारे समाज में माताओं की आज क्या स्थिति है ? इसे हम बाहर कहाँ ढूँढ़ने जायें ? हर घर में देखने को मिलेगी ।

परिवार केवल पुरुष वर्ग से ही नहीं बना, वह स्त्री पुरुष दोनों के युग्म से बना है । पुरुष को हर क्षेत्र में स्त्री की आवश्यकता अनुभव हुई है । हमारा व्यक्तिगत और राष्ट्रीय भविष्य इस बात पर टिका है कि भावी सुसंस्कृत सन्तान हो । माता के संस्कार बालक पर पड़ जाते हैं यह एक निर्विवाद सत्य है, इसलिए जिन्हें भी अपना घर और सुसंतति को सुखद और सुन्दर बनाना है तो माता को ज्ञानवान, अनुभवी और कुशलता पूर्ण बनाना होगा । बिना नारी को शिक्षित और स्वावलम्बी किये घरों में स्वर्गीय वातावरण की कल्पना असम्भव है । वह भले ही परिवार के उत्तरदायित्वों में बँधी हो, उसे सबसे पहले जीवनोपयोगी प्रशिक्षण प्राप्त करना होगा ।

क्योंकि परिवार में धन कमाने के अतिरिक्त बाकी सारी जिम्मेदारियाँ नारी की ही होती हैं । वह कब तक दूसरे के अधीन रहकर जियेगी ? गुलामी की जिन्दगी और इतना विस्तृत कर्त्तव्यों का दायरा नारी को सौंपा गया है तो इसके लिए यह भी आवश्यक है कि पुरुष वर्ग को उसे श्रेष्ठ योग्यताएँ और उचित अधिकार भी देना होगा । केवल भौतिक सम्पदाएँ और सुख-सुविधाएँ ही उसके बाध्य जीवन को सुखी व सुव्यवस्थित नहीं बना सकतीं ? उसके आन्तरिक सद्भाव ही उसके जीवन को निर्मल बनाते हैं । शिक्षा के अभाव में नारी अपंग रहेगी, क्योंकि बौद्धिक विकास के अभाव में हमारी माताएँ न तो ठीक प्रकार बच्चों का लालन-पालन कर पाती हैं, न पतियों को

में जहाँ उन्हें सम्पत्ति खर्च करने का, व्यवस्था का अधिकार दिया है, वहाँ उन्हें मृत्युपर्यन्त पुरुष के साथ-साथ धार्मिक कार्यों में परस्पर समानता का भी अधिकार दिया गया है।

मनुष्य शरीर की रचना परमात्मा की सर्वोत्तम कृति है। उसे ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, स्नेह-सहयोग, बुद्धि और आत्मा की जो क्षमताएँ उपलब्ध हैं; उनकी सार्थकता इसी में है कि वह संसार में गौरवपूर्ण जीवन जिए और जब इस देह का, इस संसार का परित्याग करे उससे पूर्व यह तैयारी कर ले जिससे मृत्यु के समय उसे किसी प्रकार का पश्चाताप न करना पड़े। पश्चाताप दोनों ही प्रकार से हो सकता है (१) सांसारिक कामनाएँ पूर्ण न होने के कारण विषयों में, इन्द्रिय सुखों में अथवा भौतिक उपलब्धियों में मन अटका रह सकता है (२) सारा जीवन पाप और प्रतारणा में बीत जाये और पारमार्थिक जीवन के विकास के लिए बिल्कुल प्रयत्नशील न हुआ जाये। इन दोनों अवस्थाओं का सामना केवल पुरुष को ही नहीं करना पड़ता, स्त्रियों को भी करना पड़ता है। यदि पुरुष इन प्रयोजनों के लिए बन्धन स्वीकार न करें तो नारी उसके लिये क्यों प्रतिबन्धित की जाये ? पुरुष उसे भोग्या और रमणी रूप में देखेगा तो वह न केवल अपना सर्वनाश करेगा अपितु अपने साथ उसे बेचारी नारी को भी ले डूबेगा। पत्नी को सखा, सहचर, मित्र के रूप में, सहधर्मिणी के रूप में ही देखा जाना चाहिए। ऐसा करने से उसकी बौद्धिक स्वाधीनता अक्षुण्ण बनी रहेगी और तभी वह अपना आत्मिक परिष्कार कर सकेगी।

प्रश्न मान्यता बदलने का है जिसमें किसी भी महिला को उसके आत्म-कल्याण के साधनों से रोका नहीं जाये। नारी को कोमलता, भावुकता, पवित्रता, संवेदनशीलता के गुण प्रकृति दत्त हैं, यह पुरुष में कम मात्रा में पाये जाते हैं। अतएव उसके लिये किन्हीं बड़े और कष्टसाध्य साधन अनुष्ठान भी अभीष्ट नहीं, पर उस पर गृहस्थी का, प्रजनन का, अशिक्षा और अज्ञान का, बन्धनों का इतना बोझ नहीं लादा जाना चाहिए जिससे वह अपनी नैसर्गिक योग्यताएँ खो बैठे। यह स्थिति व्यक्ति और समाज दोनों के लिए ही घातक है।

संतति निर्माण का और गृह-व्यवस्था के अधिकांश उत्तरदायित्व नारी पर आते हैं। हर व्यक्ति यह आशा करता है; कि उसकी संतान श्रेष्ठ और सद्‌गुणी हो, विनीत और मेधावी हो, यह सभी आध्यात्मिक सम्पदाएँ हैं। बच्चों में उनका तभी विकास सम्भव है, जब माँ स्वयं भी इन गुणों से परिपूर्ण हो। पिता एक बार प्रतिगामी हो तो भी आत्मिक प्रतिभा सम्पन्न माँ पुत्र को श्रेष्ठ बना सकती है, पर दुर्गुणी और अज्ञानग्रस्त माँ से कैसा भी तपस्वी पिता हो, बच्चे को आत्महीन होने से नहीं बचा सकता। हिरण्यकश्यपु के घर प्रहलाद जैसा भक्त होना नारी की उनकी धर्मप्राणा माता कयाधू की योग्यता का प्रमाण है। महाराज ऋतध्वज विलासी थे, पर उनकी धर्मपत्नी मदालसा ने अपनी आध्यात्मिक तेजस्विता के कारण अपने बच्चों को जब जैसा चाहा वैसा बनाया। हनुमान अंजनी के पुत्र थे। उन्हें इतना शक्तिशाली और भक्त बनाने का श्रेय उन्हें ही है। यह सम्पूर्ण उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि भावी पीढ़ी के विकास के लिए माता का, नारी का न केवल शिक्षित होना आवश्यक है, अपितु उसका आध्यात्मिक क्षमताओं से परिपूर्ण होना भी अनिवार्य है। इसके लिए उसे समान सुविधाएँ और अवसर उपलब्ध होने चाहिए। उन्हें धार्मिक क्रिया-कलापों से प्रतिबन्धित करना, अपनी भावी संतान के साथ अन्याय और जातीय वर्चस्व को ही प्रतिबन्धित करना है।

नारी की सनातन गरिमा और महिमा

नारी आज जिस स्थिति में रह रही है उसे अच्छा नहीं समझा जा सकता, यह बात सभी स्वीकार करते हैं। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नारी की स्थिति और स्तर बदलने की आवाज उठायी जा रही है और हर समझदार व्यक्ति इसका समर्थन कर रहा है। फिर भी कुछ परम्परावादी यह आग्रह करते हैं कि नारी की वर्तमान स्थिति को बदला न जाय। इस सम्बन्ध में उनका तर्क यह होता है कि हमारे पूर्व पुरुष अधिक समझदार थे। उन्होंने जो नियम तथा मर्यादाएँ बनायी हैं, उन्हें बदलना उनका अपमान करने जैसा है। कुछ की तो आस्था इस विषय में इतनी अधिक है कि इन रूढ़ियों को ही वे धर्म मर्यादाएँ मानते हैं और उनमें सुधार करना उन्हें धर्म विरुद्ध लगता है।

ऐसा कहने वाले व्यक्ति यदि सचमुच पूर्वजों के प्रति सम्मान तथा धर्म के प्रति आस्था रखकर ऐसा करते हैं, तो उनकी भावना का आदर किया जा सकता है, किन्तु उनसे एक विनम्र निवेदन करना उचित लगता है–वह यह कि वे सही अर्थों में अपने पूर्वजों के आदर्श तथा धर्म का स्वरूप समझने के लिए कुछ सौ वर्ष की परम्पराओं तक ही सीमित न रह जायें, भारत के उस गौरवमय अतीत का भी अध्ययन करें जब यह देश विश्व-गुरु का सम्मान पाये हुए था।

यहाँ एक बात और समझ लेनी चाहिए–यह है सिद्धान्तों–आदर्शों तथा प्रथाओं–परम्पराओं का अन्तर। नैतिक आदर्शों तथा श्रेष्ठ सिद्धान्तों को ही सनातन माना जाता है। आत्म-संयम, कर्त्तव्य-पालन, लोकहित की भावना जैसे उच्च आदर्शों को ही न बदले जाने योग्य धर्म सिद्धान्त कह सकते हैं। उन्हीं के पालन के लिए लोगों पर दबाव डालना उचित हो सकता है। खाने-पीने, उठने-बैठने जैसे मोटे नियम तो बराबर बदलते ही रहते हैं।

यदि अपने पूर्वकाल और आज की स्थिति के बीच हम इन स्थूल नियमों के आधार पर ही विचार करें तब तो

प्रसन्न रख सकती हैं । स्त्री-शिक्षा आज के युग की एक महती आवश्यकता है ।

इसके अतिरिक्त आज के समय में सामाजिक कुंठाएँ मुँह बाये खड़ी हैं जो कि नारी को प्रतिबन्धित करने में सबसे आगे हुई हैं । पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, बाल विवाह, अशिक्षा, विधवा-विवाह में ऐसे क्रूर अत्याचार हैं जिनके कारण नारी को कलंकित होकर अपमान और शोषण सहना पड़ रहा है ।

ऐसी घायल अवस्था से नारी को ऊँचा उठाने का एक मात्र सुझाव यही है कि जिस प्रकार से पुरुष को अपनी उन्नति का पूरा अधिकार है, उसके लिए प्रगति के हर दरवाजे खुले पड़े हैं, ठीक उसी प्रकार नारी को भी उसके मौलिक अधिकार हर हालत में मिलने चाहिए । पुरुष उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकता है, मनचाहे जब विवाह कर सकता है, मनमाना दहेज लेकर पत्नी के माता-पिता के जीवन को दुःसाध्य बना सकता है और यदि पहली पत्नी मर जाये तो दूसरा ब्याह कर सकता है लेकिन नारी होने के कारण लड़की ये सब कुछ नहीं कर सकती है ।

नारी के साथ यह सरासर अन्याय का प्रहार किया जा रहा है । इसके लिए पुरुष को अपने किए हुए अपराधों का अब प्रायश्चित करना ही पड़ेगा । नारी को पर्दे से बाहर निकाल कर उसके समुचित विकास और जीवन की व्यवस्था सम्बन्धी जिम्मेदारियों के लिए पुरुष को सहायक बनना पड़ेगा । घर से लेकर समाज राष्ट्र के विचारों से अवगत कराना होगा । जो अधिकार पुरुष को हैं वह नारी को भी मिलने चाहिए, तभी नारी स्वावलम्बी और स्वाभिमानी जीवन जी सकेगी ।

जब भी जिन समाजों में नारी का श्रेष्ठ स्थान रहा है उसके उच्च शिक्षित मानसिक, शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक विकास की उचित व्यवस्था रखी गई है, तभी ये समाज और देश समृद्ध और उन्नतिशील होकर आश्चर्यजनक प्रगति कर सके हैं ।

आज फिर से उस मातृत्व पद की पावन प्रतिष्ठा की स्थापना यदि हम कर सकें, तो आवश्यकता पड़ने पर नारी देश रक्षा और समाज संचालन के कार्यों के नेतृत्व भी कर सकती है और मानव समाज का गौरव ऊँचा उठा सकती है ।

नारी आध्यात्मिक विकास की समान अधिकारी

सीता महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में जीवनयापन कर रही थीं, तब की बात है । एक दिन महर्षि आश्रम में विश्ववारा नाम की ब्रह्मवादिनी तपस्विनी का पदार्पण हुआ । विश्ववारा अयोध्या का परिव्राजन कर लौटी थी सो आध्यात्मिक जिज्ञासाओं की अपेक्षा सीता की सहेलियों के मन में श्रीराम के वृत्तान्त जानने का कौतूहल जाग उठा । वे सब विदुषी विश्ववारा के समीप गईं औ पूछने लगीं–"अथ स रामचन्द्रः कियाचारः ?" भद्रे ! अब रामचन्द्र क्या करते हैं ?

"तेन राज्ञा राजक्रतुरश्वमेध प्रक्रान्तः" हे आर्य पुत्रियो ! वे इन दिनों अश्वमेध यज्ञ की तैयारी कर रहे हैं । विश्ववारा ने उनकी जिज्ञासा का समाधान करते हुए उत्तर दिया, किन्तु इस उत्तर से तो उनका कौतूहल और भी प्रखर हो उठा । वे पूछने लगीं–"हन्त ! परिणी-तमपि"–ओह ! तो उन्होंने दूसरा विवाह भी कर लिया ? क्योंकि यज्ञ तो बिना पत्नी के पूर्ण होता ही नहीं । आचार्या विश्व उनका सन्देह निवारण करते हुए बोलीं–'शान्त भव, नहि"–नहीं-नहीं ऐसा नहीं । "का तर्हि यज्ञे सह चारिणी" तो फिर उनके यज्ञ में उनकी सहधर्म चारि कौन है ? विश्ववारा ने तब बताया कि इस निमित्त सो की सीताजी की प्रतिमा बनाई गई है ।

इस आख्यान से यह स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में स्त्रियों को न केवल अपने आध्यात्मिक विकास का पूर्ण अधिकार था अपितु जिस आयोजन में पत्नी का, नारी का सहयोग नहीं होता था, वह अपूर्ण माना जाता था । जातीय वर्चस्व और सन्तति सर्वगुण सम्पन्नता के जो मौलिक आधार रहे हैं उनमें यह प्रमुख बात थी कि यहाँ की इस देश की नारी आध्यात्मिक क्षमताओं में पुरुष से रत्ती भर कम न थी । ऐसा तभी सम्भव हुआ, जब उसे अपनी क्षमताओं के विकास के लिए पूर्ण अवसर दिए गए, यथेष्ट स्वायत्तता प्रदान की गई ।

तात्विक दृष्टि से स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं है शारीरिक अवयवों में बहुत सामान्य अन्तर के अतिरिक्त चर्म, रस, रक्त, माँस, मज्जा, नाड़ियाँ आदि स्थूल धातुएँ तथा प्राण, वाक्, मन, तेजस् आदि सूक्ष्म तत्व दोनों में ही एक समान है । सम्मोहन तन्त्र में इस तथ्य को और स्पष्ट करते हुए कहा गया है–

"एकं ज्योतिरभूद द्वेधा राधा माधव नामकम्" अर्थात् स्त्री व पुरुष नाम से विख्यात दोनों ही प्राणी एक ही तेज की दो किरणें हैं ।

आध्यात्मिक विकास की कल्पना में इस 'प्राण ज्योति' अथवा 'आत्म-तत्व' की विकास की विधि व्यवस्था ही सन्निहित है । यदि पुरुषों को बार-बार इस बात की प्रेरणा दी जाती है कि वह अपनी चेष्टाएँ और कौशल मात्र नाशवान् शारीरिक सुख और भौतिक समुन्नति में नियोजित न करें अपितु अपनी पारलौकिक सत्ता को समझने, विभिन्न प्रकार के तप और योगाभ्यास द्वारा उसको विकसित करने की भी चेष्टा करें तो यही बात, यही प्रेरणा समान रूप से नारी को भी दी जानी चाहिए । उसे अपने इस परमार्थ प्रयोजन की तैयारी में बाधा उत्पन्न नहीं करनी चाहिए । जो लोग धार्मिक मान्यताओं की दुहाई देकर नारी को धार्मिक प्रयोजन के लिए निषिद्ध बताते हैं वे भूलते हैं कि भारतीय जीवन पद्धति के आदि व्याख्याकार महर्षि मनु ने क्रमशः [illegible]

में जहाँ उन्हें सम्पत्ति खर्च करने का, व्यवस्था का अधिकार दिया है, वहाँ उन्हें मृत्युपर्यन्त पुरुष के साथ-साथ धार्मिक कार्यों में परस्पर समानता का भी अधिकार दिया गया है।

मनुष्य शरीर की रचना परमात्मा की सर्वोत्तम कृति है। उसे ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, स्नेह-सहयोग, बुद्धि और आत्मा की जो क्षमताएँ उपलब्ध हैं; उनकी सार्थकता इसी में है कि वह संसार में गौरवपूर्ण जीवन जिए और जब इस देह का, इस संसार का परित्याग करे उससे पूर्व यह तैयारी कर ले जिससे मृत्यु के समय उसे किसी प्रकार का पश्चाताप न करना पड़े। पश्चाताप दोनों ही प्रकार से हो सकता है (१) सांसारिक कामनाएँ पूर्ण न होने के कारण विषयों में, इन्द्रिय सुखों में अथवा भौतिक उपलब्धियों में मन अटका रह सकता है (२) सारा जीवन पाप और प्रतारणा में बीत जाये और पारमार्थिक जीवन के विकास के लिए बिल्कुल प्रयत्नशील न हुआ जाये। इन दोनों अवस्थाओं का सामना केवल पुरुष को ही नहीं करना पड़ता, स्त्रियों को भी करना पड़ता है। यदि पुरुष इन प्रयोजनों के लिए बन्धन स्वीकार न करें तो नारी उसके लिये क्यों प्रतिबन्धित की जाये ? पुरुष उसे भोग्या और रमणी रूप में देखेगा तो वह न केवल अपना सर्वनाश करेगा अपितु अपने साथ उसे बेचारी नारी को भी ले डूबेगा। पत्नी को सखा, सहचर, मित्र के रूप में, सहधर्मिणी के रूप में ही देखा जाना चाहिए। ऐसा करने से उसकी बौद्धिक स्वाधीनता अक्षुण्ण बनी रहेगी और तभी वह अपना आत्मिक परिष्कार कर सकेगी।

प्रश्न मान्यता बदलने का है जिसमें किसी भी महिला को उसके आत्म-कल्याण के साधनों से रोका नहीं जाये। नारी को कोमलता, भावुकता, पवित्रता, संवेदनशीलता के गुण प्रकृति दत्त हैं, यह पुरुष में कम मात्रा में पाये जाते हैं। अतएव उसके लिये किन्हीं बड़े और कष्टसाध्य साधन अनुष्ठान भी अभीष्ट नहीं, पर उस पर गृहस्थी का, प्रजनन का, अशिक्षा और अज्ञान का, बन्धनों का इतना बोझ नहीं लादा जाना चाहिए जिससे वह अपनी नैसर्गिक योग्यताएँ खो बैठे। यह स्थिति व्यक्ति और समाज दोनों के लिए ही घातक है।

संतति निर्माण का और गृह-व्यवस्था के अधिकांश उत्तरदायित्व नारी पर आते हैं। हर व्यक्ति यह आशा करता है, कि उसकी संतान श्रेष्ठ और सद्‌गुणी हो, विनीत और मेधावी हो, यह सभी आध्यात्मिक सम्पदाएँ हैं। बच्चों में उनका तभी विकास सम्भव है, जब माँ स्वयं भी इन गुणों से परिपूर्ण हो। पिता एक बार प्रतिगामी हो तो भी आत्मिक प्रतिभा सम्पन्न माँ पुत्र को श्रेष्ठ बना सकती है, पर दुर्गुणी और अज्ञानग्रस्त माँ से कैसा भी तपस्वी पिता हो, बच्चे को आत्महीन होने से नहीं बचा सकता। हिरण्यकश्यपु के घर प्रह्लाद जैसा भक्त होना नारी की उनकी धर्मप्राणा माता कयाधू की योग्यता का प्रमाण है। महाराज ऋतध्वज विलासी थे, पर उनकी धर्मपत्नी मदालसा ने अपनी आध्यात्मिक तेजस्विता के कारण अपने बच्चों को जब जैसा चाहा वैसा बनाया। हनुमान अंजनी के पुत्र थे। उन्हें इतना शक्तिशाली और भक्त बनाने का श्रेय उन्हें ही है। यह सम्पूर्ण उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि भावी पीढ़ी के विकास के लिए माता का, नारी का न केवल शिक्षित होना आवश्यक है, अपितु उसका आध्यात्मिक क्षमताओं से परिपूर्ण होना भी अनिवार्य है। इसके लिए उसे समान सुविधाएँ और अवसर उपलब्ध होने चाहिए। उन्हें धार्मिक क्रिया-कलापों से प्रतिबन्धित करना, अपनी भावी संतान के साथ अन्याय और जातीय वर्चस्व को ही प्रतिबन्धित करना है।

नारी की सनातन गरिमा और महिमा

नारी आज जिस स्थिति में रह रही है उसे अच्छा नहीं समझा जा सकता, यह बात सभी स्वीकार करते हैं। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नारी की स्थिति और स्तर बदलने की आवाज उठायी जा रही है और हर समझदार व्यक्ति इसका समर्थन कर रहा है। फिर भी कुछ परम्परावादी यह आग्रह करते हैं कि नारी की वर्तमान स्थिति को बदला न जाय। इस सम्बन्ध में उनका तर्क यह होता है कि हमारे पूर्व पुरुष अधिक समझदार थे। उन्होंने जो नियम तथा मर्यादाएँ बनायी हैं, उन्हें बदलना उनका अपमान करने जैसा है। कुछ की तो आस्था इस विषय में इतनी अधिक है कि इन रूढ़ियों को ही वे धर्म मर्यादाएँ मानते हैं और उनमें सुधार करना उन्हें धर्म विरुद्ध लगता है।

ऐसा कहने वाले व्यक्ति यदि सचमुच पूर्वजों के प्रति सम्मान तथा धर्म के प्रति आस्था रखकर ऐसा करते हैं, तो उनकी भावना का आदर किया जा सकता है, किन्तु उनसे एक विनम्र निवेदन करना उचित लगता है–वह यह कि वे सही अर्थों में अपने पूर्वजों के आदर्श तथा धर्म का स्वरूप समझने के लिए कुछ सौ वर्ष की परम्पराओं तक ही सीमित न रह जायें, भारत के उस गौरवमय अतीत का भी अध्ययन करें जब यह देश विश्व-गुरु का सम्मान पाये हुए था।

यहाँ एक बात और समझ लेनी चाहिए–यह है सिद्धान्तों–आदर्शों तथा प्रथाओं–परम्पराओं का अन्तर। नैतिक आदर्शों तथा श्रेष्ठ सिद्धान्तों को ही सनातन माना जाता है। आत्म-संयम, कर्त्तव्य-पालन, लोकहित की भावना जैसे उच्च आदर्शों को ही न बदले जाने योग्य धर्म सिद्धान्त कह सकते हैं। उन्हीं के पालन के लिए लोगों पर दबाव डालना उचित हो सकता है। खाने-पीने, उठने-बैठने जैसे मोटे नियम तो बराबर बदलते ही रहते हैं।

यदि अपने पूर्वकाल और आज की स्थिति के बीच हम इन स्थूल नियमों के आधार पर ही विचार करें तब तो

उनमें जमीन-आसमान का अन्तर दिखाई देता है । उस समय के खान-पान, रहन-सहन, मकान और आने-जाने के साधनों में भारी अन्तर पड़ गया है । हजारों वर्ष पुरानी बात छोड़कर यदि कुछ सौ वर्ष पहले की स्थिति देखें, तो पता पड़ता है कि बिजली, रेल, मोटर, डाक, तार, घड़ी, चश्मा, फाउन्टेन पैन आदि का अता-पता भी नहीं था । उनके बिना ही सारा काम चलता था । जिन साधनों से पहले काम चलता था, अब वे प्रयोग में नहीं आते । नयी सुविधाजनक वस्तुओं का विरोध कोई इसलिए नहीं करता है कि उन्हें पूर्वज प्रयोग नहीं करते थे तो अब हम क्यों करें ? ठंडक के दिनों में भी कपड़े पहने जाते हैं उन्हें गर्मी के दिनों में कोई नहीं पहनता, इसी प्रकार गर्मी के हल्के कपड़े सर्दी में काम नहीं देते, इस परिवर्तन का कोई विरोध नहीं करता । सर्दी के दिनों मोटे कपड़े पहने जाते थे और बन्द घरों में सोया जाता था, इस प्रचलन को क्यों तोड़ें ? इसी प्रकार कोई गर्मी में भी ऊनी कपड़े पहनने और बंद घर में सोने का आग्रह नहीं करता । बच्चे जिन कपड़ों को पहनते हैं, बड़े होने पर उनसे काम नहीं चलता । बचपन के कपड़े उसी को ही आजीवन पहने रहने का आग्रह इस आधार पर नहीं किया जाता कि हमारे पूज्य पिताजी ने पोषाक सिलवाई थी, यह बड़ी आयु में भी काम देनी चाहिए ।

केवल पुरानी होने के आधार पर किसी चीज को अच्छा या बुरा नहीं कहा जा सकता । पुरानी रस भस्में अच्छी मानी जा सकती हैं, पर दस साल पुराना घी खाने के लिए कोई तैयार न होगा । पुराने कपड़े, पुराने जूते, पुराने मकान, नये की तुलना में घटिया माने जाते हैं । प्रश्न उपयोगिता का है, नये पुराने का नहीं । यदि पुरानापन ही श्रेष्ठता का चिह्न रहा होता तो कबाडियों की दुकान पर बिकने वाली पुरानी चीजें नई की तुलना में अधिक मूल्यवान ही होतीं । हमारा आग्रह नये पुराने का नहीं होना चाहिए, उपयोगिता को ही महत्त्व देना चाहिए । यह सही है कि बच्चे की तुलना में बूढ़े समझदार होते हैं, पर यह भी गलत नहीं है कि सरकारी भर्ती में नौजवान ही चुने जाते है और बूढ़े रिटायर कर कर दिए जाते हैं । आज की स्थिति में जो उपयोगी है हमें उसी बात का बुद्धिमता पूर्ण चुनाव करना चाहिए ।

फिर भी यदि परम्पराओं पर ही दृष्टि डालनी है तो यह कार्य भी समझदारी से किया जाय । पिछले हजार वर्षों में तो हमारे राष्ट्र का पतन ही हुआ है । वह अन्धकार युग था । उन दिनों की परम्पराएँ अनुकरण के योग्य नहीं कही जा सकतीं । अपने गौरवमय अतीत से बहुत कुछ सीखा-समझा जा सकता है । नारी के सम्बन्ध में भी ऐसा ही है । नारी के सम्बन्ध में उस समय की मान्यताओं को देखें-समझें, तो पता पड़ता है कि पुरुष की अपेक्षा नारी कम नहीं, अधिक सम्मान योग्य ही समझी जाती रही है । पुराने धर्मशास्त्रों को देखने से पता पड़ता है कि ऋषियों-तत्त्वदर्शियों ने उसे मूर्तिमान देवी की तरह पूज्य माना है । प्राणिमात्र जिसकी गोद में पलता है, उस मातृ शक्ति के आगे नमस्तस्यै:-नमस्तस्यै: कहते हुए बार-बा मस्तक झुकाता है ।

नारी और नर दोनों मनुष्य जाति के समान अंग होने के नाते समान अधिकार तथा समान सम्मान के अधिकारी हैं । किन्तु यदि यह मानकर चला जाय कि समाज के हर वर्ग में कुछ न कुछ अंतर तो होता ही है, तो वरिष्ठता नर की अपेक्षा नारी के पक्ष में ही जाती है । भारतीय संस्कृति में नारी को आदि शक्ति, परा प्रकृति का प्रतीक माना गया है । उसे मानवी नहीं देवी कहा जाता है । भगवान मनु का कहना है–'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' अर्थात्–जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवताओं के निवास में स्वर्ग जैसा वातावरण रहता है । पूजा का अर्थ यहाँ उसे श्रेष्ठ मानकर सम्मान देते रहने और सन्तुष्ट रखने से ही है ।

नारी मनुष्य को जन्म देती है । क्या पुरुष, क्या स्त्री मनुष्य जाति के दोनों ही पक्ष नारी के उदर से उत्पन्न हैं । उसी का दूध और स्नेह पान करके जीवित रहते हैं सुरक्षा, सुशिक्षा, स्नेह, दुलार माता से प्राप्त करने के साथ साथ ही बच्चे का जीवन प्रारम्भ होता है । माँ से, नारी से यह अनुदान न मिलें तो शरीर का जीवित रहना और मन का विकसित होना सम्भव नहीं । माता, पत्नी, बहिन और बेटी के दिव्य अनुदान पाकर मनुष्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक दृष्टि से सुविकसित एवं सुसंस्कृत बनता है । पाने वाले की अपेक्षा देने वाले का पद बड़ा है । उपहार पाकर कोई अपने सौभाग्य को सराह तो सकता है, पर उस दाता की बराबरी नहीं कर सकता, जिसने अपना स्नेह उँड़ेलकर, खून-पसीना एक करके हमें पाला-पोसा और सजाया-सँवारा है । माता हो या पत्नी दोनों स्वरूप में नारी आदि से अन्त तक अनुदानों से भरी है । बहिन और बेटी मनुष्य जीवन में पवित्र प्रेरणा का प्रवाह सदा से पैदा करती रही है । उनसे अधिक पवित्रता, स्नेह और ममता का बोध शायद ही कहीं और दीख पड़े । उनकी समीपता से, सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी कवि–कलाकार जैसी भावभरी मनोभूमि में पहुँच जाता है । गंगा और नर्मदा के दर्शन से लोगों के हृदय में श्रद्धा भावना उमड़ती होगी, किन्तु उससे अनेक गुनी अधिक भावना, अपनी बहिन बेटी की समीपता से सहज ही फूट पड़ती है । उनमे मनुष्य को फूल जैसी निश्चलता और बर्फ जैसी शीतलता मिलती है । कला और पवित्रता का ऐसा उच्चतम उद्गम देखना हो तो बहिन–बेटी को ही गंगोत्री–जमनोत्री के रूप में मानकर देखा जा सकता है ।

नारी के स्वभाव में ही, पाना कम और देना अधिक है । पसीने के रूप में श्रम और सेवा से लेकर, दूध और भाव अनुदान तक उसका देने तक का क्रम बराबर चलता रहता है, कोई उसको माने या न माने । स्वभाव से ही नारी में दया, करुणा, ममता, सेवा, सद्भावना, उदारता, आत्मीयता जैसी देववृत्तियाँ अधिक मात्रा में

रहती है। पाप, अपराध, स्वार्थ और क्रूर कर्मों में उसका हिस्सा नहीं के बराबर ही रहता है। निष्ठुर नृशंसता के कामों में तो नर ही आगे रहता है। नारी को दैवी वृत्ति, जन्म से ही दिव्य वरदान के रूप में मिली है, इसीलिए उसे देवी शब्द का सम्बोधन दिया जाना हर तरह से उचित है। पुष्पा देवी, सीता देवी, शान्ति देवी, कमला देवी आदि नामों में नारी के लिए देवी शब्द सार्थक ही प्रयुक्त होता रहा है।

कवीन्द्र रवीन्द्र की दृष्टि में नारी सृष्टा की सर्वोत्तम कृति है। सृष्टि में वात्सल्य, स्नेह, ममत्व, प्रेम आदि अनुदानों की अमृतधाराएँ उसी के अन्तःकरण से निकलकर इस संसार को जीवनदान दे रही हैं।

परम्पराएँ वे ही स्वीकार की जानी चाहिए जो अपने समय की परिस्थितियों से मेल खाती हों और औचित्य एवं उपयोगिता की कसौटी पर खरी उतरती हों।

परम्पराओं को ही देखना हो तो उस युग को देखना चाहिए जिनकी गौरव-गरिमा से आज भी हमारा मस्तक ऊँचा हो जाता है। जिन दिनों अपना देश देव-मानवों और नर रत्नों की खदान था। जिन दिनों अपना देश ज्ञानक्षेत्र में जगद्गुरु, शक्ति-क्षेत्र में चक्रवर्ती और अर्थ-क्षेत्र में सोने की चिड़िया कहा जाता था, उन दिनों उसकी परम्पराएँ भी महान् थीं। वे ऐसी थीं जिनका अनुकरण करके सारा संसार, समस्त मानव समाज धन्य बनता था। उन दिनों नारी पैर की जूती नहीं थी, वरन् प्रतिष्ठा के उच्च सिंहासन पर विराजमान थी। उसकी श्रेष्ठता के आगे सर्वत्र मस्तक झुकाया जाता था। यह उचित भी था। माता के चरणों में हर किसी की भाव भरी श्रद्धा अर्पित होनी ही चाहिए। पुत्री और बहिन के प्रति मनुष्य की तो पवित्र भावना ही उमड़ेगी। धर्म-पत्नी भी सहोदर भाई के समान होती है। दाम्पत्य जीवन राम भरत जैसी अगाध आत्मीयता से भरा पूरा होना चाहिए। नारी को बनाते समय उसमें उच्चस्तरीय भावना और आदर्शवादिता कूट-कूट कर भरी गयी है, इस तथ्य को और किसी ने समझा हो या न समझा हो, किन्तु भारत के ऋषि पुत्रों ने अवश्य समझा है। इसीलिए यहाँ नारी को हर स्तर पर श्रेष्ठतम सम्मान दिया जाता रहा है।

तीन प्रत्यक्ष देवताओं में माता-पिता और गुरु का उल्लेख होता है। उन्हें क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश माना गया है। सृजनकर्त्री माता, पोषण दाता पिता और अज्ञानहर्ता गुरु अपने लोक के ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। उनमें प्रथम माता को माना गया है।

नारी को प्रथम सम्मान और इतना महत्त्व अकारण नहीं दिया गया था। घर की देहरी से बाहर न निकल सकने वाली, घूँघट से मुँह न निकाल सकने वाली अशिक्षित, दीन, स्थिति में नारी को यह गौरवमय पद नहीं मिल सकता था। उन दिनों वह हर क्षेत्र में आगे रहती थी। वह न तो अयोग्य थी और न उस पर प्रतिबंध ही थे।

भगवान् को धरती पर अवतार लेने के लिए विवश करने वाली तपश्चर्या में पहली भूमिका सतरूपा की थी। पौराणिक उपाख्यानों के आधार पर शतरूपा के आग्रह से सहमत होकर मनु भी तपश्चर्या में पत्नी सहित संलग्न हुए थे। तप सफल हुआ। शतरूपा जी कौशल्या रानी और भगवान, राम रूप में उनकी गोदी में खेले। इसी प्रकार अदिति के आग्रह से महर्षि कश्यप ने भगवान् के अवतरण के लिए तप किया। अदिति यशोदा बनीं और उन्हें यह विश्व बनाने वाले भगवान् को जन्म देने का श्रेय मिला। राम और कृष्ण बड़े हैं। उनकी भगवान् के रूप में मान्यता भी है, पर जिनकी कोख में उन्होंने पैर पसारे, जिनका दूध पिया, जिनका संरक्षण और दुलार पाकर बड़े हुए उन माताओं का गौरव उनसे कुछ कम नहीं।

तपस्या के हर क्षेत्र में नारी को प्रवेश का अधिकार रहा है और उनकी उपलब्धियाँ भी किसी से कम नहीं रही हैं। भागीरथ द्वारा गंगा को पृथ्वी पर लाने की कथा सर्वविदित है, परन्तु यह उपाख्यान कम ही लोगों को मालूम है कि ठीक उसी प्रकार का तप करके अत्रि पत्नी अनुसूया ने चित्र-कूट के समीप बहने वाली मन्दाकिनी नदी को अवतरित किया था। रामायण में इस प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

नदी पुनीत पुराण बखानी।
अत्रि प्रिया निज तप बल आनी॥
सुरसरि धार नाम मन्दाकिनि।
जो सब पातक पोतक डाकिनि॥

इन्हीं तपस्विनी अनुसूया की गोद में ब्रह्मा, विष्णु महेश का बालक बनकर खेलना पुराण सहित्य की प्रसिद्ध कथा है।

आज इन सब तथ्यों को भुलाकर नारी को वेद मंत्रों के पाठ तक का अधिकारी नहीं माना जाता। कैसे दुःख और आश्चर्य की बात है कि रूढ़िवादिता के पक्षपाती व्यक्तियों की समझ मे यह छोटी सी बात भी नहीं आती कि जब नारियाँ वेदमन्त्रों की स्रष्टा हो सकती हैं, तो उन्हें पढ़ने का अनधिकारी कैसे कहा जा सकता है।

ज्ञान और अध्यात्म के क्षेत्र में तो नर-नारी का भेद करना किसी भी तरह उचित नहीं ठहराया जा सकता। परब्रह्म आदि सत्ता, नर-नारी के भेद से परे हैं। उसे उस अव्यक्त रूप में मनुष्य की बुद्धि समझ नहीं पाती। प्राणी उसे समझ सके इस दृष्टि से जब उसने स्वयं को व्यक्त किया तो दोनों ही रूपों में समान रूप से व्यक्त किया है। उसे परम पुरुष, परमात्मा कहा जाता है तो आदिशक्ति आदि चेतना भी कहा जाता है। पुरुष और प्रकृति के नामों से भी उसे जाना समझा जाता है। दोनों के पीछे तत्व एक ही है केवल नाम भेद है।

सृष्टि निर्माण की व्याख्या के साथ भी यही तथ्य जुड़ा हुआ है। ईश्वर की प्रकृति ने उसे 'एकोऽहं बहुस्यामि' के लिए एक से अनेक होने के लिए बाध्य कर दिया। ब्रह्म की इच्छा अथवा आदि चेतना में संकल्प उठने के प्रसंग से

सृष्टि निर्माण के पीछे नर और नारी दोनों ही रूपों की समान महत्ता बतलायी गयी है । पुराणों में लिखा है कि ब्रह्मा ने सृष्टि रचना के पहले महाशक्ति गायत्री की उपासना की थी । उससे प्राप्त शक्ति द्वारा ही उन्हें प्रजापति कहलाने का अवसर मिला । अन्य देव-शक्तियों–देवताओं के सन्दर्भ में भी यही बात सामने आती है । लक्ष्मीनारायण, उमामहेश्वर, सीताराम, राधेश्याम आदि में पहले नारी का, पीछे नर का नाम आता है ।

भारतीय धर्म संस्कृति का स्रोत गायत्री है । अगम और निगम का सारा ज्ञान–विज्ञान इसी से उत्पन्न हुआ है । अनादि काल से गुरु मन्त्र तथा प्रधान उपास्य गायत्री को ही माना जाता है । भारतीय धर्म के प्रतीक शिखा और सूत्र का प्राण यही है । बाद में अनेक उपासनाएँ चल पड़ने पर भी, यह मान्यता सभी की है कि बिना गायत्री के कोई भी उपासना सफल नहीं होती । आदि ज्ञान के प्रतीक चारों वेद भी गायत्री के चार चरणों की व्याख्या के रूप में बने । स्पष्ट है कि महाशक्ति गायत्री के रूप में नारी विग्रह को पूज्य घोषित किया गया है । गायत्री महाशक्ति की इस महिमा में भारतीय संस्कृति एवं तत्व ज्ञान की आत्मा की झलक है ।

किसी भी पक्ष से विचार करें, बात घूम-फिर कर वहीं आ जाती है जहाँ परब्रह्म को ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों रूपों में व्यक्त किया गया है, वहाँ आदि-शक्ति महा सरस्वती, महालक्ष्मी तथा महाकाली के रूपों में व्यक्त होती है । देवस्थलों की तुलना में शक्तिपीठ कम नहीं हैं । देव रूप में उपासना करने वालों की अपेक्षा देवी रूप को प्रधानता देने वाले अधिक ही होंगे । पुराणों में जहाँ कहीं भी देवासुर संग्राम का वर्णन आता है, वहाँ यही तथ्य मिलता है कि देवताओं के पराजित होने पर देवी शक्ति किसी न किसी रूप में सामने आकर उन्हें विजयी बनाती है ।

इन सब प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि नारी को किसी भी क्षेत्र में अनधिकारी ठहराना हमारी भूल ही है । यह गलत मान्यता हमारी प्रगति में रुकावट ही डालती रहेगी । जब हमारा देश हर दिशा में आदर्श माना जाता था उन दिनों नारी आगे बढ़ने के लिए स्वतन्त्र थी और उसने हर क्षेत्र में अपनी योग्यता और उपयोगिता की धाक जमा रखी थी । इसके ढेरों उदाहरण शास्त्रों में मिलते हैं ।

महर्षि पुलोमा की पुत्री शची महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में रह कर ज्ञान-विज्ञान में प्रवीण बनी । उसकी साधना तथा प्रतिभा से प्रभावित होकर देवराज इन्द्र उसे माँगने के लिए पुलोमा के द्वार पर पहुँचे । वही ऋषि कन्या शची आगे चलकर इन्द्राणी बनी ।

कुन्ती ने अपनी तपश्चर्या से देव शक्तियों को आकर्षित करके दिव्य विभूति सम्पन्न संतानें उत्पन्न की थीं । सूर्य की शक्ति से कर्ण, इन्द्र की शक्ति से अर्जुन और वायु की शक्ति से महाबली भीम जैसे देवमानवों का सृजन करना भारतीय ललनाओं के लिए कुछ कठिन न था । देवी अंजनी ने भी इसी प्रकार समुद्र लाँघने वाले पवन पुत्र हनुमान की जननी बनने का गौरव प्राप्त किया था ।

मनु को अपने वाजपेय यज्ञ के लिये उपयुक्त पुरोहित न मिला तो उन्हें उस काल की महान् मनीषी अपनी पुत्री इला को यज्ञाचार्य नियुक्त करके उस अनुष्ठान को सम्पन्न कराया था ।

ऋषि कांक्षीवान् की पुत्री घोषा ने दुर्भिक्ष को समाप्त करने के लिए तप किया था और पानी बरसाकर अकाल शान्त कर दिया था । कुरूप 'अपाला' को जब पति ने त्याग दिया, तो वे अपने पिता कण्व के आश्रम में लौट आईं और निरर्थक गृहस्थ जंजाल से मुक्ति पाने पर प्रसन्नता व्यक्त करती हुई ज्ञान साधना में लग गई । उन्होंने उच्चस्तरीय वैदिक सम्मेलन का सृजन कर दिखाया । देवी मयन्ता ने युवावस्था में वैधव्य के दुःख को सहन करते हुए पति का स्मारक विद्वान पुत्र के रूप में बनाया । ऋषि दीर्घतमा अपनी ममता मयन्ता द्वारा ही विद्याध्ययन करके महापंडित बने थे ।

राजा जनक के दरबार में महाविदुषी गार्गी और महर्षि याज्ञवल्क्य का शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है । उस विवाद में महर्षि सिटपिटाने लगे और क्रोध में आकर उन्हें शाप देने पर उतारू हो गये । उन दिनों गार्गी के समतुल्य विदग्धा, उद्यालिका, बीचावन्ती, अनुसूया, गौतमी, यमी, सूर्या आदि विदुषियाँ भी प्रख्यात थीं ।

ऋषि शाण्डिल्य की पुत्री श्रीवन्ती ने अत्यन्त कठोर तप करके सिद्धियाँ प्राप्त की थीं । महाभारत शान्तिपर्व में सुलभा नामक एक विदुषी का वर्णन है जिसने शास्त्रार्थ में राजा जनक जैसे ब्रह्मज्ञानी के दाँत खट्टे कर दिए थे । भागवत में स्वधा की पुत्री वयुना का, धारिणी का वर्णन है। ये ब्रह्मविद्या में अद्वितीय थीं ।

आद्य शंकराचार्य और मंडन मिश्र के शास्त्रार्थ में देवी भारती निर्णायक बनी थी । उनकी विद्वत्ता दोनों ही विद्वानों ने स्वीकार की थी ।

देवी उशिज ने अपने पुत्र कांक्षीवान् को अपने ही संरक्षण में न केवल विद्वान् वरन् योग विद्या में कुशल भी बनाया था । महर्षि पंचशिखा ने योग शास्त्र पर कई ग्रन्थ लिखे हैं उनमें उल्लेख है कि यह ज्ञान उन्होंने अपनी माता सुलभा से पाया था ।

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध ज्योतिष विद्वान भास्कराचार्य की लिखी 'सिद्धान्त शिरोमणि' पुस्तक के उत्तरार्द्ध की रचना उनकी पुत्री लीला द्वारा की गई है । यह सिद्धान्त आज भी अकाट्य सिद्ध होते हैं ।

नारी की यह गौरव गाथा माता एवं पुत्री अथवा अविवाहित साधिकाओं के रूप में ही नहीं, धर्मपत्नियों के रूप में भी मिलती है । आदर्शवादी नारियाँ भोग विलास सुविधा अथवा अपने संरक्षण के लिए विवाह नहीं करती थीं, उनका उद्देश्य अपने पतियों के महान् कार्यों में हाथ

बँटाना भी होता था। सुविधा को लात मारकर अपना जीवन आदर्शों के पूर्ति के लिए किन्हीं सुयोग्य विद्वानों, कलाकारों के हाथ में अपने को सौंप देने का त्याग-बलिदान भी उन्होंने समय-समय पर प्रस्तुत किया है।

महर्षि याज्ञवल्क्य की द्वितीय पत्नी मैत्रेयी सांसारिक सुख के लिए नहीं, विशुद्ध आत्मसाधना के लिए ही उनकी सहधर्मिणी बनी थीं। सांसारिक सुखेच्छा के बारे में महर्षि ने जब भी उनसे पूछा वे उनसे स्पष्ट इन्कार करती रहीं। राजकुमारी सुकन्या ने अन्धे और अतिवृद्ध च्यवन ऋषि से केवल इसीलिए विवाह किया था कि वे उनकी तपस्या के लिए आवश्यक साधन जुटाने में सहायता कर सकें। सावित्री राजा अश्वपति की प्राणप्रिय विदुषी एवं रूपवती पुत्री थी। उन्होंने वनवासी अति निर्धन सत्यवान से इसीलिए विवाह किया कि उसके वनौषधि शोधकार्य में सहायक होकर लोकमंगल के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकें।

विद्वान कैयट को अपने ग्रन्थ लेखन कार्य में लगे रहने देने के लिए उनकी पत्नी भामती मूँज की रस्सी बँटती थीं। उस श्रम से जो उपार्जन होता, उसी से वे अपना और पतिदेव के निर्वाह का साधन जुटाती थीं। साध्वी पत्नी की इस सेवा-साधना के प्रति कृतज्ञता स्वरूप कैयट ने अपनी संस्कृत टीकाओं का नाम भामती रख दिया।

पतियों को सुयोग्य बनाने और सन्मार्ग पर लाने की भूमिका निबाहने में नारी कभी पीछे नहीं रही। पत्नी का धर्म पति का हित साधन करना है। यदि पति सही मार्ग पर है, आदर्श पर चल रहा है, तो उसका समर्थन और सहयोग करने में ही दोनों का हित है, परन्तु यदि पति सही मार्ग पर बढ़ने में झिझकता है अथवा गलत मार्ग पर चलता है तो फिर बात दूसरी हो जाती है। फिर पत्नी का धर्म पति का समर्थन नहीं उसे सही दिशा देना हो जाता है। भारतीय नारी अपनी इस तेजस्विता का परिचय भी हमेशा देती आयी है।

विदुषी विद्योत्तमा का विवाह अशिक्षित कालिदास से हो गया। कालिदास अपनी योग्यता बढ़ाने का महत्त्व ही नहीं समझते थे। विद्योत्तमा ने पहले तो उन्हें उत्तेजित करके ज्ञान के प्रति उनमें लगन पैदा कर दी और फिर उनके अध्ययन की उच्चस्तरीय व्यवस्था बना दी। इसी का फल था कि निरक्षर कालिदास महाकवि कालिदास बन गये। इसी प्रकार रत्नावली ने अपने सुख-सुविधा को महत्त्व न देकर तुलसीदास जी की प्रतिभा को कामुकता की ओर से मोड़कर ईश्वर भक्ति की ओर कर दिया। यह रत्नावली का सत्साहस ही था जिसने समाज को तुलसी जैसा संत और रामचरितमानस जैसा ग्रन्थ उपलब्ध कराया।

पत्नी के रूप में नारी की तेजस्विता के अनेक पक्ष देखने को मिलते हैं। आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने कुमार्गगामी पतियों का डटकर विरोध भी किया है। मन्दोदरी का कहना रावण माना तो नहीं, पर वह निर्भीकतापूर्वक उसका विरोध आदि से अन्त तक करती रही। बालि की पत्नी तारा ने भी सुग्रीव के साथ बरती गई अनीति को चुपचाप नहीं सहा था, वरन् वे पति का सम्मान करते हुए भी नीतिपालन के लिए बराबर आग्रह करती रहीं। न मानने और तिरस्कृत होने का खतरा उठा कर भी उन्होंने कुमार्ग से अपने पति को हटाने में जो भी बन सकता था सब कुछ किया।

सुसन्तति निर्माण में नारी हमेशा बेजोड़ रही है। शकुन्तला के संरक्षण में बालक भरत का विकास हुआ था। बचपन में ही वह सिंहशावकों के साथ खेलता था और बड़े होने पर उसने विशृंखलित देश को एक झण्डे के नीचे संगठित किया। उसी के नाम पर इस देश को भारत कहा गया है।

सुभद्रा भी अर्जुन की तरह ही शास्त्र और शस्त्र कला में समान रूप से प्रवीण थी। उसी का प्रभाव था कि अभिमन्यु गर्भ से ही चक्रव्यूह भेदन जैसी युद्ध कला सीखकर पैदा हुआ। भर्तृहरि के भानजे गोपीचन्द को संसार सुख छोड़कर विश्व-कल्याण की तप-साधना में प्रवृत्त होने की प्रेरणा उनकी माता ने ही दी थी।

एक बार इन्द्र ने शम्बर नामक राक्षस के विरुद्ध युद्ध करने में राजा दशरथ से सहायता माँगी। उस युद्ध में कैकेयी भी साथ गई। युद्ध के बीच रथ के पहिये की कील निकलती देखकर कैकेयी ने अपनी उँगली उस जगह लगा दी थी। इस प्रकार रथ के गिरने पर प्राण संकट में फँस जाने से अपने पति को बचा लिया। राजा दशरथ ने अपनी पत्नी के शौर्य-साहस से प्रभावित होकर ही उन्हें वरदान देने का वचन दिया था।

'कौटिल्य अर्थशास्त्र' ग्रन्थ में धनुर्धारी महिलाओं का उल्लेख मिलता है और तत्कालीन समाज में लड़की-लड़कों की समान शिक्षा के प्रचलन की चर्चा है। भरहुत की खुदाई में ईसा से ७०० वर्ष पूर्व की बनी मूर्तियों में घोड़े पर सवार-सैनिक वेश में, हथियारों से सुसज्जित भारतीय नारियों की प्रतिमाएँ भी मिली हैं। उससे पता चलता है कि उस काल की महिलाएँ युद्धकला में भी निपुण थीं।

देश, धर्म, समाज और संस्कृति की सेवा में भी भारतीय नारियों का योगदान कम नहीं रहा है। धर्म-प्रचार से लेकर लोकसेवा के विभिन्न प्रयोजनों के लिए, घर-द्वार छोड़कर सुख-वैभव को लात मारकर, जन-जन के द्वार पर अलख जगाने के कठिन कार्य को भी वह प्रसन्नता पूर्वक अपने कंधों पर उठाती रही हैं।

आचार्य बृहस्पति की पुत्री देवहुति और आचार्य भावभव्य की पुत्री रोमशा अपने पिता और पति से आज्ञा लेकर देश-देशान्तरों में धर्म चेतना उत्पन्न करने के लिए परिव्राजक बनकर लम्बी यात्राओं पर गयी थीं। अभृण ऋषि की कन्या याकृती के आचार्यत्व में चलने वाला गंधमादन क्षेत्र का गुरुकुल छात्र और छात्राओं के लिए समान रूप से खुला था।

आम्रपाली बुद्धकाल की अद्वितीय रूपवती नर्तकी थी। उसे बहुत धन, वैभव और यश प्राप्त था। भगवान

सृष्टि निर्माण के पीछे नर और नारी दोनों ही रूपों की समान महत्ता बतलायी गयी है । पुराणों में लिखा है कि ब्रह्मा ने सृष्टि रचना के पहले महाशक्ति गायत्री की उपासना की थी । उससे प्राप्त शक्ति द्वारा ही उन्हें प्रजापति कहलाने का अवसर मिला । अन्य देव-शक्तियों-देवताओं के सन्दर्भ में भी यही बात सामने आती है । लक्ष्मीनारायण, उमामहेश्वर, सीताराम, राधेश्याम आदि में पहले नारी का, पीछे नर का नाम आता है ।

भारतीय धर्म संस्कृति का स्रोत गायत्री है । अगम और निगम का सारा ज्ञान-विज्ञान इसी से उत्पन्न हुआ है । अनादि काल से गुरु मन्त्र तथा प्रधान उपास्य गायत्री को ही माना जाता है । भारतीय धर्म के प्रतीक शिखा और सूत्र का प्राण यही है । बाद में अनेक उपासनाएँ चल पड़ने पर भी, यह मान्यता सभी की है कि बिना गायत्री के कोई भी उपासना सफल नहीं होती । आदि ज्ञान के प्रतीक चारों वेद भी गायत्री के चार चरणों की व्याख्या के रूप में बने । स्पष्ट है कि महाशक्ति गायत्री के रूप में नारी विग्रह को पूज्य घोषित किया गया है । गायत्री महाशक्ति की इस महिमा में भारतीय संस्कृति एवं तत्व ज्ञान की आत्मा की झलक है ।

किसी भी पक्ष से विचार करें, बात घूम-फिर कर वहीं आ जाती है जहाँ परब्रह्म को ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों रूपों में व्यक्त किया गया है, वहाँ आदि-शक्ति महा सरस्वती, महालक्ष्मी तथा महाकाली के रूपों में व्यक्त होती है । देवस्थलों की तुलना में शक्तिपीठ कम नहीं हैं । देव रूप में उपासना करने वालों की अपेक्षा देवी रूप को प्रधानता देने वाले अधिक ही होंगे । पुराणों में जहाँ कहीं भी देवासुर संग्राम का वर्णन आता है, वहाँ यही तथ्य मिलता है कि देवताओं के पराजित होने पर देवी शक्ति किसी न किसी रूप में सामने आकर उन्हें विजयी बनाती है ।

इन सब प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि नारी को किसी भी क्षेत्र में अनधिकारी ठहराना हमारी भूल ही है । यह गलत मान्यता हमारी प्रगति में रुकावट ही डालती रहेगी । जब हमारा देश हर दिशा में आदर्श माना जाता था उन दिनों नारी आगे बढ़ने के लिए स्वतन्त्र थी और उसने हर क्षेत्र में अपनी योग्यता और उपयोगिता को प्रकट करती रही थी । इसके ढेरों उदाहरण शास्त्रों में मिलते हैं ।

जा सकें प्रोत्साहन दिया जा सके तो समस्याओं के समाधान निकालने में यह महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

अतीत के महान् गौरव को वापस लौटाने के लिए विश्व विभीषिकाओं को निरस्त करने के लिए, खोये हुये मनस्वी मूल्यों को पुनर्जीवित करने के लिए, सर्वत्र छाये हुए विषाद को उल्लास में बदलने के लिए, पति को नई सहधर्मिणी, बच्चों की नई निर्मात्री और परिवार को नई गृह-लक्ष्मी दिलाने के लिए, राष्ट्र को समर्थ बनाने के लिए, भारतीय समाज को उस पर लगे अनीति के कलंक से छुटकारा दिलाने के लिए नारी को मनुष्य स्तर पर लाया ही जाना चाहिए। इससे कम में आज की सर्वभक्षी विभीषिकाओं की चुनौती का सामना किया ही नहीं जा सकता।

नारियों को वेदाध्ययन का अधिकार

भारतीय समाज में आदिकाल से नारियों को बड़ा गौरव प्राप्त रहा है। उन्हें दैवी तत्व सम्पन्न शब्दावली से सम्बोधित किया जाता रहा है, जो उनके प्रति आदर की अन्तर्भावना का सूचक है।

लेकिन समय ने करवट बदली और जन-साधारण की मान्यताएँ नारी समाज के लिए भी बदल गयीं और पुरुष ने सभ्यता और संस्कृति का सम्पुट लगा कर नारी को घर की चारदीवारी में कैद कर दिया, उसे केवल भोग-विलास की ही सामग्री माने जाने लगा। नारी ने भी अपने इस स्वरूप के विरुद्ध कोई विशेष आपत्ति नहीं उठाई। फलस्वरूप पुरुष अपनी इस प्रवृत्ति को जबरदस्ती थोपता गया। यहाँ तक कि उसने नारियों को सद्बुद्धिदात्री गायत्री का जप करने, वेद पढ़ने तथा पढ़ाने तक पर प्रतिबंध लगा दिया। उसने इस प्रकार नारी के विकास को रोकने का प्रयत्न किया। परिणामस्वरूप नारी युगों तक घरों के पिंजरे में बन्द रही, परन्तु अब जन-जाग्रति का युग है, इसलिए यह आवश्यक है कि नारी को स्वस्थ विकास के साधनों की ओर उन्मुख किया जाए।

उसे सद्बुद्धि की प्राप्ति के लिए गायत्री मंत्र जपने दीजिए, ज्ञान-विज्ञान से परिचय पाने के लिए वेदों का अध्ययन करने दिया जाए, यह आवश्यक है, परन्तु अनेक धर्म के ठेकेदार और दकियानूसी विचारधारा वाले लोग इसे अधर्म बतलाते हैं। अतः आइए शास्त्रीय दृष्टिकोण से नारी के वेदाध्ययन के अधिकार पर हम विचार करें।

ये मन्त्र-दृष्टा ऋषिकाएँ

अधिकार एवं अनधिकार के प्रश्न पर विचार करने से पूर्व हम वैदिक मन्त्र-दृष्टा ऋषि-पत्नियों की ओर देखते हैं। वेदों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदों के मन्त्र-दृष्टा जिस प्रकार से अनेक ऋषि हैं, इसी प्रकार से अनेक ऋषिकाएँ भी हैं। ईश्वरीय ज्ञान, वेद, महान् आत्मा वाले व्यक्तियों पर प्रकट हुआ है। इस प्रकार से जिन पर वेद प्रकट हुए उन मंत्र-दृष्टाओं को 'ऋषि' नाम से सम्बोधित किया गया है। ये ऋषि केवल पुरुष ही नहीं हुए हैं, वरन् स्त्रियाँ भी हुई हैं। परमपिता परमात्मा ने नारियों के अन्तःकरण में भी उसी प्रकार वेद ज्ञान प्रकाशित किया जैसे कि पुरुषों के अन्तःकरण में, क्योंकि उनकी निगाहों में उनकी सन्तानें एक समान हैं। सर्वत्र न्यायकारी परमपिता परमात्मा, निष्पक्ष प्रभु अपनी ही संतान में नर-नारी का पक्षपात करके अनुचित भेदभाव क्यों करते? यह भेद-भाव तो हमारी बुद्धि की देन है। जो मध्यकालीन सामन्तशाही वातावरण के कारण हममें हीनता की भावना के कारण उत्पन्न हुआ था।

ऋग्वेद १०। ८५ के सम्पूर्ण मंत्रों की ऋषिका 'सूर्या सावित्री' है। सूर्या-सावित्री के अतिरिक्त भी ऋग्वेद में अनेक ऋषिकाओं की सूची मिलती है। ब्रह्म देवता के २४ वें अध्याय के अनुसार यह सूची इस प्रकार है:-

"घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषद्, जुहू, शाश्वती, सूर्या, सावित्री आदि ब्रह्मवादिनी हैं।"

यहाँ सहज ही यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जिन वेदों की मन्त्र-दृष्टा नारियाँ भी हैं, उन्हीं वेदों का आज अध्ययन भी वे नहीं कर पातीं? हमारे समाज की इतनी गिरी हुई दशा है, जिसे देखते ही हँसी आती है। मन कह उठता है कि ये विधर्मी शासन काल के समय की देन है, जिसे अब समाप्त कर सही तथ्य को जनता के समक्ष उपस्थित करना आवश्यक है।

ब्रह्मवादिनी देवियाँ

वैदिक एवं तदनुगामी वाङ्मय में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह यज्ञ-विद्या में पारंगत पण्डिता थीं। कई नारियों ने तो इस सम्बन्ध में अपने पिता और पति तक का मार्ग-दर्शन किया था। यहाँ धर्मशास्त्रों से कुछ प्रमाण प्रस्तुत हैं, जो नारी समाज की यशोगाथाएँ गाने में सक्षम हैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में सोम द्वारा 'सीता-सावित्री' ऋषिका को तीन वेद देने का विस्तृत वर्णन है।

महर्षि मनु की पुत्री 'इड़ा' का वर्णन करते हुए तैत्तिरीय १-१-४ में उन्हें 'यज्ञानुकाशिनी' कहा गया है। प्रसिद्ध वेद भाष्याकार सायुणाचार्य ने 'यज्ञान काशिनी' का अर्थ 'यज्ञ तत्व प्रकाशन समर्था' किया है। 'इड़ा' ने अपने पिता को यज्ञ सम्बन्धी सलाह देते हुए कहा था-

मैं तुम्हारी अग्नि का ऐसा अवधान करूँगी जिससे तुम्हें पशु, भोग, प्रतिष्ठा और स्वर्ग हो।"

—तैत्तिरीय ब्रा० १४

बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर उसने अपनी जीवन धारा ही बदल दी । यह तपस्विनी बनकर ज्ञान साधना और धर्म प्रचार में संलग्न हुई और अपनी सारी सम्पत्ति बौद्ध विहारों के संचालन में समर्पित कर दी ।

सम्राट अशोक की पुत्री राजकुमारी संघमित्रा ने गृहस्थ सुख और राज सुख से सर्वथा इन्कार करके धर्म प्रचारिका बनना स्वीकार किया, आजीवन कुमारी रह कर देश-विदेश में धर्म प्रचार करती रही । उनकी प्रेरणा से असंख्य महिलाओं ने नवजीवन का प्रकाश प्राप्त किया । इसी प्रकार सम्राट् हर्षवर्द्धन की बहिन राजश्री भी अविवाहित रही और सारा जीवन परिव्राजक बनकर धर्म-प्रसार में लगा दिया ।

बुद्ध धर्म को सारे देश और विश्व के कोने-कोने में जिन आत्माओं की सेवाएँ मिलीं, उनमें स्त्रियों के नाम बड़ी संख्या में हैं । नन्दा, सुजाता, किसा, गौयती, भ्रदा, कपिला, मण्डपदायिका, ब्रहमदत्ता, सुप्रिया, मिगारमाता, विशाखा, पट्टाचारा, धर्मदिन्ना, उत्पलवर्णा तथा प्रज्ञावती खेमा के नाम उनमें से प्रमुख हैं । इन कन्याओं ने अपनी इस साधना में हर चुनौती का सामना किया और किसी भी प्रलोभन से विचलित नहीं हुईं ।

जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में भी महिलाओं का बड़ा योगदान रहा है । वैशाली के राजा चेटक की कन्या मृगावती, जिनदास की पुत्री सुभद्रा तथा वेन्नातट के एक धनाढ्य परिवार में जन्मी सुनंदा ने जैन धर्म के विस्तार में अपूर्व भूमिका निबाही थी ।

जैन धर्म की महाश्रमणी आर्य चन्दना ने ३६ हजार आर्याओं का श्रमणी संघ बनाया था । कल्प सूत्र में उनके क्रिया-कलाप का वर्णन है । उससे विदित होता है कि जैन-धर्म के महान उपदेष्टागणधर गौतम जहाँ केवल सात सौ श्रवणों को परम ज्ञान प्रदान कर सकने में समर्थ हुए, वहाँ आर्य चन्दना के नेतृत्व में साध्वी संघ की चौदह सौ श्रमणियों ने पारंगत सिद्धि प्राप्त की ।

राजकुमारी मधूलिका अपने समय में वेद ज्ञान के नष्ट होने और मनमाने मतों के फैल जाने से दुःखी होकर आँसू बहा रही थी । रास्ता निकलते कुमारिल भट्ट के हाथ पर राजकुमारी के आँसू गिरे । उन्होंने सिर उठाकर ऊपर देखा और रोने का कारण पूछा । मधूलिका ने कहा-"को वेदानुद्धरिश्यमि" अर्थात् वेदो का उद्धार कौन करेगा ? कुमारिल का ब्रह्मतेज जाग पड़ा, उन्होंने उत्तर दिया-"मा वियीद बकारोहे भट्टाचार्योऽसि भूतले" भद्रे, खिन्न मत होओ । इस कार्य को पूरा कर सकने की क्षमता सम्पन्न कुमारिल भट्ट अभी इस पृथ्वी पर जीवित है । इतना कहकर वे जिस कार्य से जा रहे थे, उसे स्थगित करके वहीं से वापिस लौट पड़े और परिव्राजक बनकर वेद धर्म की पुनः स्थापना के कार्य में जुट गये । इस उद्बोधन का श्रेय मधूलिका को ही था । चंदबरदाई द्वारा पृथ्वीराज को और भूषण द्वारा शिवाजी को उद्बोधन देने जैसी ही भूमिका राजकुमारी की भी रही ।

इस प्रकार के उदाहरणों का कोई अन्त नहीं । इस सबका सारांश यह है कि नारी को किसी भी श्रेष्ठ दिशा में बढ़ने से रोकना हमारी पुण्य परम्परा के अनुकूल नहीं है । और नारी में किसी भी उत्तरदायित्व का भार उठाने योग्य क्षमता भी है । आज समय की पुकार है कि नारी फिर से अपने उस शानदार स्वरूप में सामने आये । यह कठिन नहीं है । उसका तो जीवन ही स्नेह, करुणा, वात्सल्य, सेवा, समर्पण जैसे दिव्य तत्वों से मिलकर बना है । उसे बढ़ने, विकसित होने से रोका न जाय, थोड़ा सहयोग समर्थन भर दे दिया जाय तो वह अपनी विशेषताओं के लाभ से समाज को सम्पन्न बना सकती है । वह अपने अभिभावकों को, संतति को, साथी-सहचर को, परिवार को और अपने सम्पर्क के हर व्यक्ति को, समाज को वह कोमल संवेदनाएँ ,वह प्रखर प्रेरणाएँ दे सकती है जिसके द्वारा वे पशुता से मनुष्यता की ओर बढ़ सकें, मनुष्यता के स्तर पर दृढ़ रह सकें और ऊँचे उठते हुए देवत्व तक पहुँच सकें ।

देवलोक की लक्ष्मी के बारे में बहुत सी आकर्षक कल्पनाएं की जाती हैं । पता नहीं उनमें कितना सत्य है किन्तु नारी को गृह-लक्ष्मी के रूप में विकसित होने देकर उसके आश्चर्यजनक लाभ हर व्यक्ति पा सकता है । आदर्श-परायण, विकसित, संतुष्ट, प्रसन्न और उल्लसित नारी साक्षात् गृह-लक्ष्मी सिद्ध होती है । उसके अनुदान से सारा परिवार घर में ही स्वर्ग जैसी अनुभूति करता है । घर में सभी तरफ सजीवता की चमक और सुन्दरता की झलक मिलती है । कठिन और भयंकर लगने वाली परिस्थितियाँ भी हल्की-फुलकी और आसान बन जाती हैं। दम घोंटने वाली मनहूसी पर स्नेहजनित उल्लास छा जाता है और कठिनाइयों से भरे दिन हँसते-हँसाते बीत जाते हैं ।

आज मनुष्य जीवन हर तरफ से बुरी तरह उलझा हुआ है । व्यक्तिगत जीवन से शान्ति, सन्तोष न जाने कहाँ चला गया है । परिवार के सदस्यों में स्नेह, आत्मीयता न रहने से परिवार स्वयं में एक समस्या बनते जा रहे हैं । महँगाई और आर्थिक तंगी के कारण कठिनाइयाँ और भी बढ़ गयी हैं । जीवनयापन इतना भारी हो गया है कि अकेला घर का मुखिया उसे उठाने-खींचने में असमर्थ सिद्ध हो रहा है । उसकी कमर टूटी जा रही है, गर्दन झुकी जा रही है । उधर सहधर्मिणी कहलाने वाली नारी बेचारी लाचार-सी बनी हुई चुपचाप तमाशा देखने, दुःख में आँसू बहाने अथवा क्रोध से झल्ला पड़ने के अलावा कुछ भी करने की स्थिति में नहीं है । जिन गुणों और क्षमताओं के द्वारा वह भार उठा सकती है, हाथ बँटा सकती है, उन्हें कौन जगाये, कौने बढ़ाये ? वह स्वयं उन्हें भूल चुकी है और समाज उसके विकास को अधर्म एवं अनावश्यक माने बैठा है । यदि उस पर लगे प्रतिबंध हटाये

जा सकें प्रोत्साहन दिया जा सके तो समस्याओं के समाधान निकालने में यह महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है ।

अतीत के महान् गौरव को वापस लौटाने के लिए विश्व विभीषिकाओं को निरस्त करने के लिए, खोये हुये मनस्वी मूल्यों को पुनर्जीवित करने के लिए, सर्वत्र छाये हुए विषाद को उल्लास में बदलने के लिए, पति को नई सहधर्मिणी, बच्चों की नई निर्मात्री और परिवार को नई गृह-लक्ष्मी दिलाने के लिए, राष्ट्र को समर्थ बनाने के लिए, भारतीय समाज को उस पर लगे अनीति के कलंक से छुटकारा दिलाने के लिए नारी को मनुष्य स्तर पर लाया ही जाना चाहिए । इससे कम में आज की सर्वभक्षी विभीषिकाओं की चुनौती का सामना किया ही नहीं जा सकता ।

नारियों को वेदाध्ययन का अधिकार

भारतीय समाज में आदिकाल से नारियों को बड़ा गौरव प्राप्त रहा है । उन्हें दैवी तत्त्व सम्पन्न शब्दावली से सम्बोधित किया जाता रहा है, जो उनके प्रति आदर की अन्तर्भावना का सूचक है ।

लेकिन समय ने करवट बदली और जन-साधारण की मान्यताएँ नारी समाज के लिए भी बदल गयीं और पुरुष ने सभ्यता और संस्कृति का सम्पुट लगा कर नारी को घर की चारदीवारी में कैद कर दिया, उसे केवल भोग-विलास की ही सामग्री माने जाने लगा । नारी ने भी अपने इस स्वरूप के विरुद्ध कोई विशेष आपत्ति नहीं उठाई । फलस्वरूप पुरुष अपनी इस प्रवृत्ति को जबरदस्ती थोपता गया । यहाँ तक कि उसने नारियों को सद्बुद्धिदात्री गायत्री का जप करने, वेद पढ़ने तथा पढ़ाने तक पर प्रतिबंध लगा दिया । उसने इस प्रकार नारी के विकास को रोकने का प्रयत्न किया । परिणामस्वरूप नारी युगों तक घरों के पिंजरे में बन्द रही, परन्तु अब जन-जागृति का युग है, इसलिए यह आवश्यक है कि नारी को स्वस्थ विकास के साधनों की ओर उन्मुख किया जाए ।

उसे सद्बुद्धि की प्राप्ति के लिए गायत्री मंत्र जपने दीजिए, ज्ञान-विज्ञान से परिचय पाने के लिए वेदों का अध्ययन करने दिया जाए, यह आवश्यक है, परन्तु अनेक धर्म के ठेकेदार और दकियानूसी विचारधारा वाले लोग इसे अधर्म बतलाते हैं । अतः आइए शास्त्रीय दृष्टिकोण से नारी के वेदाध्ययन के अधिकार पर हम विचार करें ।

ये मन्त्र-दृष्टा ऋषिकाएँ

अधिकार एवं अनधिकार के प्रश्न पर विचार करने से पूर्व हम वैदिक मन्त्र-दृष्टा ऋषि-पत्नियों की ओर देखते हैं । वेदों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदों के मन्त्र-दृष्टा जिस प्रकार से अनेक ऋषि हैं, इसी प्रकार से अनेक ऋषिकाएँ भी हैं । ईश्वरीय ज्ञान, वेद, महान् आत्मा वाले व्यक्तियों पर प्रकट हुआ है । इस प्रकार से जिन पर वेद प्रकट हुए उन मंत्र-दृष्टाओं को 'ऋषि' नाम से सम्बोधित किया गया है । ये ऋषि केवल पुरुष ही नहीं हुए हैं, वरन् स्त्रियाँ भी हुई हैं । परमपिता परमात्मा ने नारियों के अन्तःकरण में भी उसी प्रकार वेद ज्ञान प्रकाशित किया जैसे कि पुरुषों के अन्तःकरण में, क्योंकि उनकी निगाहों में उनकी सन्तानें एक समान हैं । सर्वत्र न्यायकारी परमपिता परमात्मा, निष्पक्ष प्रभु अपनी ही संतान में नर-नारी का पक्षपात करके अनुचित भेदभाव क्यों करते? यह भेद-भाव तो हमारी बुद्धि की देन है । जो मध्यकालीन सामन्तशाही वातावरण के कारण हममें हीनता की भावना के कारण उत्पन्न हुआ था ।

ऋग्वेद १०। ८५ के सम्पूर्ण मंत्रों की ऋषिका 'सूर्या सावित्री' है । सूर्या-सावित्री के अतिरिक्त भी ऋग्वेद में अनेक ऋषिकाओं की सूची मिलती है । ब्रह्म देवता के २४ वें अध्याय के अनुसार यह सूची इस प्रकार है:-

"घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषद्, जुहू, शाश्वती, सूर्या, सावित्री आदि ब्रह्मवादिनी हैं ।"

यहाँ सहज ही यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जिन वेदों की मन्त्र-दृष्टा नारियाँ भी हैं, उन्हीं वेदों का आज अध्ययन भी वे नहीं कर पातीं ? हमारे समाज की इतनी गिरी हुई दशा है, जिसे देखते ही हँसी आती है । मन कह उठता है कि ये विधर्मी शासन काल के समय की देन है, जिसे अब समाप्त कर सही तथ्य को जनता के समक्ष उपस्थित करना आवश्यक है ।

ब्रह्मवादिनी देवियाँ

वैदिक एवं तदनुगामी वाङ्मय में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह यज्ञ-विद्या में पारंगत पण्डिता थीं । कई नारियों ने तो इस सम्बन्ध में अपने पिता और पति तक का मार्ग-दर्शन किया था । यहाँ धर्मशास्त्रों से कुछ प्रमाण प्रस्तुत हैं, जो नारी समाज की यशोगाथाएँ गाने में सक्षम हैं ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में सोम द्वारा 'सीता-सावित्री' ऋषिका को तीन वेद देने का विस्तृत वर्णन है ।

महर्षि मनु की पुत्री 'इड़ा' का वर्णन करते हुए तैत्तिरीय १-१-४ में उन्हें 'यज्ञानुकाशिनी' कहा गया है । प्रसिद्ध वेद भाष्याकार सायणाचार्य ने 'यज्ञान काशिनी' का अर्थ 'यज्ञ तत्व प्रकाशन समर्था' किया है । 'इड़ा' ने अपने पिता को यज्ञ सम्बन्धी सलाह देते हुए कहा था-

"मैं तुम्हारी अग्नि का ऐसा अवधान करूँगी जिससे तुम्हें पशु, भोग, प्रतिष्ठा और स्वर्ग हो ।"

–तैत्तिरीय ब्रा० १४

शतपथ ब्राह्मण में महर्षि याज्ञवल्क्य की धर्म-पत्नी 'मैत्रेयी को ब्रह्मवादिनी' का अर्थ श्री शंकराचार्य ने 'ब्रह्मवादन शीला' किया है । ब्रह्म याने वेद और वादन शीला प्रवचन करने वाली । यदि यहाँ पर ब्रह्म का अर्थ ईश्वर भी लिया जाय तो भी ब्रह्म प्राप्ति बिना वेद के नहीं हो सकती । इसलिए ब्रह्म को वही जान सकते हैं जो कि वेद का अध्ययन करता हो । इस प्रकरण में वृहदारण्य ४४।२२ का यह तथ्य विचारणीय है :–

"जिस प्रकार पुरुष ब्रह्मचारी रहकर तप, स्वाध्याय, योग द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करते थे । वैसे ही कितनी ही स्त्रियाँ ब्रह्मचारिणी रहकर आत्म-निर्माण एवं परमार्थ का सम्पादन करती थीं ।"

सच तो यह है कि हमारे राष्ट्र में प्राचीनकाल में अनेक सुप्रसिद्ध ब्रह्मचारिणियाँ हुई हैं, जिनकी प्रतिभा और विद्वत्ता की चारों ओर कीर्ति फैली हुई थी । 'पंचमवेद' कहे जाने वाले ग्रन्थ महाभारत में ऐसी अनेक ब्रह्मचारिणी तत्ववेत्ता नारियों की यशोगाथाओं का वर्णन मिलता है । कुछ इस प्रकार से हैं:–

(१) भारद्वाज की श्रुतावती नामक कन्या थी जो ब्रह्मचारिणी थी । कुमारी के साथ यहाँ ब्रह्मचारिणी लगाने का अर्थ यह है कि वह अविवाहित थी और वेदों का अध्ययन करने वाली थी ।

–महाभारत शल्यपर्व ४८।२

(२) योग सिद्धि को प्राप्त कुमार अवस्था से ही वेदाध्ययन करने वाली तपस्विनी सिद्धा नाम की ब्राह्मणी मुक्ति को प्राप्त हुई ।

–महाभारत शल्य पर्व ५४।६

(३) महात्मा शाण्डिल्य की पुत्री 'श्रीमती' थी । जिसने व्रतों को धारण किया । वेदाध्ययन में निरन्तर प्रवृत्त थी । अत्यन्त कठिन तप करके वह देव ब्राह्मणों से पूजित हुई स्वर्ग सिधारी ।

–महाभारत शल्य पर्व १०१।१८

(४) शिवा नामक ब्राह्मणी वेदों में पारंगत थी । उसने सब वेदों को पढ़कर मोक्ष पद प्राप्त किया ।

–महाभारत उद्योगपर्व १०९।१८

(५) महाभारत के शांति पर्व अध्याय ३२० में 'सुलभा' नामक एक ब्रह्मवादिनी संन्यासिनी का वर्णन मिलता है । जो शास्त्रार्थ में भी बहुत ही पारंगत थी, उसने विदेह राज जनक से भी शास्त्रार्थ किया था । वह इसी अध्याय (३२०) के श्लोक ८२ में अपना परिचय देती हुई कहती है:–

"मैं सुप्रसिद्ध क्षत्रिय कुल में उत्पन्न सुलभा हूँ । अपने अनुरूप पति से न मिलने से मैंने गुरुओं से शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करके संन्यास ग्रहण किया है ।"

–महाभारत शांति पर्व ३२।८२

इसी प्रकार विष्णु पुराण १–१० और १८-१९ में तथा मार्कण्डेय पुराण अध्याय ५२ में भी इस प्रकार ब्रह्मवादिनी (वेद और ब्रह्म का उपदेश करने वाली) महिलाओं का वर्णन मिलता है । भागवत ४।१।६४ के अनुसार स्वधा की दो पुत्रियाँ हुई, जिनके नाम वयुना और धारिणी थे । वे दोनों ही ज्ञान और विज्ञान में पूर्ण पारंगत तथा ब्रह्मवादिनी थीं ।

आचार्य आनन्द तीर्थ (माध्वाचार्य जी) ने 'महाभारत निर्णय' में लिखा है:–"उत्तम स्त्रियों को कृष्णा (द्रौपदी) की तरह वेद पढ़ने चाहिए ।"

उपर्युक्त प्रमाणों से स्वत: यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस देश की नारियाँ स्वत: वैदिक मंत्र-दृष्टा हों, ब्रह्मचारिणी और ब्रह्मवादिनी हों, उसी देश की नारियों के लिए यह कहना कि उन्हें वेद के अध्ययन का अधिकार नहीं है, भारी भूल है । अपनी अज्ञानता का ही परिचय देना है ।

ये पण्डिता नारियाँ

हमारे राष्ट्र की नारियाँ न केवल वैदिक मंत्र-दृष्टा और ब्रह्मवादिनियाँ ही रहीं, वरन् वे पण्डित भी थीं । उन्हीं को देखकर हमारे राष्ट्र कवि गुप्तजी ने उनकी गौरव गाथा यूँ लिखी है :–

"केवल पुरुष ही थे न वे जिनका जगत् को गर्व था,
गृह देवियाँ भी थीं हमारी, देवियाँ भी सर्वथा ।
था अत्री अनुसूया सदृश, गार्हस्थ्य दुर्लभ स्वर्ग में,
दाम्पत्य में वह सौख्य था, जो सौख्य था अपवर्ग में ॥"

हमारे यहाँ की नारियाँ गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से पूर्व दीर्घकाल तक ब्रह्मचारिणी रहकर वेद शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त वे विवाह किया करती थीं । तभी तो उनकी सन्तानें संसार में उज्ज्वल नक्षत्रों की तरह यशस्वी–दीर्घजीवी, पुरुषार्थी और कीर्तिमान होती थीं । हमारे आदि धर्मग्रन्थ वेद का स्पष्ट आदेश है:–"कन्या ब्रह्मचारिणी रहने के उपरान्त विवाह करे ।"

–अथर्ववेद ११।५

भारत के उस स्वर्णिम युग में विद्याध्ययन करने के लिए कन्याओं को पुरुषों की भाँति ही सुविधा प्राप्त थी । तभी इस देश की नारियाँ गार्गी, मैत्रेयी, भारती की तरह विदुषी पण्डिता हुआ करती थीं । वह युग था, नारी उन्नति के गौरव के लिए जबकि महर्षि याज्ञवल्क्य ने एक नारी से शास्त्रार्थ में हारकर विचलित होकर उसे धमकी देते हुए कह दिया था:– "भद्रे ! अब अधिक प्रश्न मत करो, अन्यथा तुम्हारा अकल्याण होगा !"

भारती देवी से शास्त्रार्थ करते हुए जगद्गुरु शंकराचार्य जी को आश्चर्यचकित हो जाना पड़ा । उनके प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाए और हारकर निरुत्तर हो एक मास की मोहलत उन्हें माँगनी पडी थी ।

सुर भारती की प्रतिभा पुत्रियाँ

केवल वैदिक वाङ्मय ही नहीं, संस्कृत के अमर साहित्य में भी कई प्रतिभा पुत्रियों की यश चन्द्रिका की चमक रही है। जो युगों तक दमकती रहेगी।

अधिकतम वरद पुत्रियों की स्निग्ध-कमनीय भाव किरणों से आज जन-साधारण वंचित सा रहा है, फिर करीब ४० ऐसी प्रतिभाशाली कवियित्रियों के नाम गिनाये जा सकते हैं, जिन्होंने अपने काव्य-कुसुमों से संस्कृत साहित्य को भरा है, अपने समकालीन पंडितों से टक्कर लेकर अपनी विद्वता का झण्डा रोपा है।

इन्हीं कवियत्रियों में से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं। यहाँ इनका अति सा संक्षिप्त परिचय देना ही सम्भव है।

(१) अवन्ति सुन्दरी—आप महाकवि राजेश्वर की धर्मपत्नी एवं संस्कृत तथा प्राकृत काव्य की कुशल ज्ञाता एवं पण्डिता थीं। 'देवी शब्दकोश' आपका प्रमुख शब्द शास्त्रीय ग्रंथ है। जो आपकी विद्वता का ज्वलन्त प्रमाण है।

(२) शीला भट्टारिका—कश्मीर की यह विदुषी महा कवियत्री अपने काव्य की मधुरता, शब्द सौष्ठव आदि के लिए प्रसिद्ध हैं। 'शार्ङ्गधर पद्धति' में आपका पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है।

(३) सुभद्रा—आचार्य वल्लभदेव द्वारा वन्दित इस कवियत्री का साहित्य अतीत के गर्भ में जा छिपा है। इसकी जितनी प्रशंसा की जाए थोड़ी है, क्योंकि इसने काफी समय तक काव्य रसिकों को कृतार्थ किया था।

(४) विज्ज्का—महाकवि राजशेखर द्वारा यह महाकवियत्री वैदर्भी शैली के लिए कालिदास के समान ही प्रशंसित है। यह महाराज पलुकेशी की विदुषी पुत्रवधू भी थी। कुछ प्रसिद्ध नाटक की रचियता भी इन्हीं को मानते रहते हैं। आचार्य प्रवर मय और सर्वश्री मुकुल भट्ट प्रभृति विद्वानों ने इनकी रचनाओं की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी।

(५) राम भद्राम्बा—तंजौर प्रदेश की इस महान् कवियत्री ने अपने आश्रयदाता श्री रघुनाथ नायक के यश-वर्णन हेतु 'रघुनाथा-भ्युदय' नामक एक विस्तृत किंतु सुरुचिपूर्ण प्रबन्ध काव्य लिखा था। इनका काल सोलहवीं शताब्दी माना जाता है।

(६) तिरुमलाम्बा—आप विजयनगर के प्रख्यात साहित्य प्रेमी महाराजाधिराज श्री अच्युत देवी की विदुषी पत्नी थीं। आप अपने प्रसिद्ध काव्य 'वरदावका परिणय' की सृजनशीलता के लिए प्रसिद्ध हैं।

यह प्रसिद्ध काव्य अर्थ-प्रौढ़ता, चमत्कारिता एवं कलात्मक श्रेष्ठता के लिए प्रसिद्ध होने के साथ ही साथ उस काल का इतिहास जानने के लिए भी उपयोगी है।

(७) मधुर वाणी— आपने 'आंध्र रामायण' के चौदह सर्गों का संस्कृत में ललित अनुवाद इकट्ठा किया था, जिसमें आपने अपनी काव्य माधुरी का अत्यन्त चमत्कार उपस्थित किया है।

(८) गंगादेवी—आप विजयनगर के संस्थापक महाराज बुक के पुत्र कल्मण की पत्नी थीं। आपने ऐतिहासिक महाकाव्य वीरकाव्य 'रामचरित' की रचना द्वारा संस्कृत काव्य जगत में अमरता प्राप्त कर ली है।

(९) देवकुमारिका—उदयपुर राजवंश के प्रसिद्ध महाराणा अमरसिंह जी की धर्मपत्नी ने वैद्यनाथ महादेव की स्तुति एवं अर्चना के लिए 'वैद्यनाथ प्रसाद प्रशस्ति' नामक १४२ पद्यों वाला स्त्रोत लिखा था।

जो काव्य एवं अलंकारिता के लिए भी उत्कृष्ट है।

(१०) जयन्ती देवी—आप बंगला के प्रसिद्ध महाकवि श्री कृष्णनाथ की विदुषी पत्नी हैं। आप की कथाएँ आज भी बंगला जगत में लोकप्रिय हैं। आप संस्कृत की श्रेष्ठतम पण्डित थीं।

(११) क्षमाराव— आप दक्षिण भारत की प्रमुख संस्कृति पण्डिता हैं। जिनके लिए आलोचकों ने कहा है:-"गद्ये बाणायते क्षमा" (गद्य में क्षमा बाण के समान है।)

इनके ग्रन्थों में 'सत्याग्रह गीता' 'कथा मुक्तावली' 'शिव राज विजय' आदि प्रमुख हैं।

इनके अतिरिक्त इन्द्रलेखा, कल्युहस्तिना, मोरिका, मारुला, विकटनितंबा, पद्मासधि आदि अनेक संस्कृत कवियत्रियों ने माँ शारदा की वन्दना काव्य सृजन के माध्यम से की है।

जिस जाति में ऐसी वैदिक मन्त्र-दृष्टा एवं संस्कृत की पंडिता देवियाँ जन्म लें, उस जाति की नारियों को वेदाध्ययन का अधिकार भी नहीं हो, यह सिवाय अपनी मूर्खता प्रकट करने के और क्या है?

पाठको! आज जैसी ऊटपटांग बातों में आकर उस समय भी यदि स्त्रियों के वेदाध्ययन करने पर रोग लगाई जाती तो आप स्वयं ही विचार कीजिए याज्ञवल्क्य और शंकराचार्य से टक्कर लेने वाली देवियाँ किस प्रकार उत्पन्न हो सकती थीं?

वेदाध्ययन के अधिकार का प्रश्न

वेदों का अध्ययन करने का अधिकार है या नहीं? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। हमारे यहाँ अलग से इस बात का निषेध नहीं है कि स्त्रियाँ वेदों का अध्ययन करें या न करें, परन्तु स्त्रियों को वेदाधिकारी न होने का प्रतिबन्ध वेदों में नहीं है। वेदों में यदि अच्छी तरह से देखा जाए तो ऐसे कितने ही मंत्र हैं जो स्त्रियों द्वारा ही उच्चरित होते हैं। उन वेद मन्त्रों की क्रियाएँ स्त्रीलिंग की ही क्रियाएँ हैं। जिससे स्पष्ट हो जाता है कि यह स्त्रियों द्वारा ही प्रयोग होने के लिए हैं।

ये मन्त्र एवं मंत्राश अधिकार वाली समस्या को स्वतः ही हल कर देते हैं । यहाँ कुछ ऐसे ही वेद मन्त्रों को उद्धृत किया जाता है । जो इस बात की साक्षी देंगे कि स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार है अथवा नहीं । क्योंकि ये स्त्रियों के लिए ही लिखे गए या कहे गये स्पष्ट प्रतीत होते हैं । देखिए :-

"सूर्योदय के साथ-साथ मेरा सौभाग्य बढ़े । मैं पतिदेव को प्राप्त करूँ । विरोधियों को पराजित करने वाली और सहनशील बनूँ । मैं वेद ज्ञान को सुनने वाली बनूँ । मैं तेजस्वी और प्रभावशाली बनूँ । पतिदेव मेरी इच्छा, ज्ञान या कर्म के अनुकूल कार्य करें । मेरे पुत्र भीतरी एवं बाहरी शत्रुओं को नष्ट करें । मेरी पुत्री अपने सद्गुणों के कारण प्रकाशवान हो । मैं अपने कार्यों से पतिदेव के उज्ज्वल यश को बढ़ाऊँ ।"

–ऋग्वेद १०।१५९।२-३

मैं कदापि शुभ अनुष्ठानों के लिए शुभ वस्त्र पहिनती हूँ । सदा सौभाग्य, आनन्द, धन तथा सन्तान की कामना करती हुई मैं सदा प्रसन्न रहूँगी ।"

–अथर्ववेद १४।२।४२

"हम कुमारियाँ उत्तम पतियों के प्राप्त कराने वाले परमात्मा को स्मरण करती हुई यज्ञ करती हैं, जो हमें इस पितृकुल से तो छुड़ा दें, किन्तु पतिकुल से कभी वियोग न करायें ।"

–यजुर्वेद ३।६०

इसी प्रकार काठक संहिता ५।४।२३ में वेद भगवान् से प्रार्थना करते हुए बड़ी प्रेरक वन्दना की गई है:-

"आप वेद हैं, सब श्रेष्ठ गुणों और ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले हैं । मैं ज्ञान लाभ के लिए आपको भली प्रकार प्राप्त करूँ । वेद मुझे तेजस्वी, कुल को उत्तम बनाने वाला ज्ञान दे । वेद मुझे वीर श्रेष्ठ सन्तान दे ।"

हमारे यहाँ संस्कारों तथा धार्मिक अनुष्ठानों के समय कई वेदमंत्र स्त्री-पुरुषों द्वारा पढ़े जाने का विधान है । यह इस बात का ठोस प्रामाणिक तथ्य है कि स्त्रियों को वेद पढ़ने का ईश्वरीय अधिकार प्राप्त है ।

अथर्ववेद २४।१।६४ में वधू को वेद परायण होने के लिए आदेश दिया गया है । जो इस बात को स्पष्ट कर देता है कि वेद अध्ययन का न केवल नारियों को अधिकार था, वरन् उन्हें वेद परायण रहने का निर्देश दिया जाता था ।

यजुर्वेद १४।२ में भी स्पष्ट निर्देश है:-

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि
सौभागायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥

"हे स्त्री ! तू कुलवती घृत आदि पौष्टिक पदार्थों का उचित उपयोग करने वाली, तेजस्विनी, बुद्धिमती, सत्कर्म करने वाली होकर सुखपूर्वक रह । तू ऐसी गुणवती और विदुषी बन कि रुद्र और वसु भी तेरी प्रशंसा करें । सौभाग्य की प्राप्ति के लिए इन वेद मंत्र के अमृत का बार-बार भली प्रकार पान कर । विद्वान तुझे शिक्षा देकर इस प्रकार की उच्च स्थिति पर प्रतिष्ठित करावें ।"

इस प्रकार उपर्युक्त वेद-मंत्रों द्वारा स्पष्ट रूप से यह आभास होता है कि स्त्रियों को वेदाध्ययन करते रहने का अधिकार पूर्णरूपेण प्राप्त था, परन्तु पौराणिक विचारधाराओं वाले इस तथ्य से असहमत हो तो अन्य धार्मिक शास्त्रों के कुछ प्रमाण प्रस्तुत करते हैं । जो इस आम अविश्वासजन्य भूल का पूर्णरूपेण निराकरण करने की क्षमता रखते हैं, हम स्त्रियों के वेदों के अध्ययन नहीं करने की बात करते हैं । परन्तु हमारे शास्त्रों में स्त्री मुख से वेद मंत्रों के उच्चारण के स्पष्ट आदेश हैं । जरा विचार कीजिए, जब वेद अध्ययन की ही अनुमति नहीं है, तो फिर वेद मन्त्रों के उच्चारण का प्रश्न ही नहीं उठता है । ये प्रमाण विशेष रूप से विचारणीय हैं:-

(१) शतपथ ब्राह्मण १४।१४।१६ में पत्नी द्वारा यजुर्वेद के २७।२६ मंत्र को उच्चरित करने का विधान है । इसी ग्रन्थ के १।९।२।२।१। तथा १।९।१।२२।२३ में स्त्रियों द्वारा यजुर्वेद के २३,२३,२५,२३,२९ मंत्रों के उच्चारण का आदेश है ।

(२)पारस्कर गुह्यसूत्र १।५।१,२ के अनुसार विवाह संस्कार के समय कन्या लाजा होम के मंत्रों का स्वयं पाठ करती है । इसी प्रकार से सूर्य दर्शन के समय यजुर्वेद के ३६।३४ मंत्र का भी वह स्वयं उच्चारण करती है ।

(३) काठक गुह्यसूत्र ३।१।३० एवं २७।३ में स्त्रियों के लिए वेदों के अध्ययन, मन्त्रोच्चारण एवं वैदिक कर्मकाण्ड करने का प्रतिपादन है ।

(४) ऐतरेय ब्राह्मण ५।५।२९ में कुमारी गन्धर्व गृहता का बड़ा ही प्रेरक उपाख्यान है, जिसमें कन्याओं के यज्ञ एवं वेदाध्ययन अधिकार का बड़ा ही सुन्दर स्पष्टीकरण है ।

(५) लाटयायन श्रौत सूत्र में पत्नी को सस्व सामवेद के मंत्रों के गायन का विधान है ।

(६) द्राह्यायान श्रौत सूत्र १।१।७ तथा ४।१।२२ तथा ५।१०।२३ तथा ६।५।३ तथा २६।९३ तथा २६।७।२८ तथा २३।७।१ तथा २०।६।१२ एवं १३ में ऐसे स्पष्ट आदेश हैं कि अमुक-अमुक वेद मंत्रों का उच्चारण स्त्री करे ।

(७) शांखायन श्रौतसूत्र के १/१२,१३ में तथा आश्वालयन श्रौत सूत्र १/१३/१/ में इसी प्रकार के स्पष्ट आदेश हैं । मंत्र ब्राह्मण के १/१२/२ में कन्या के द्वारा वेद मंत्रों के उच्चारण की आज्ञा है ।

(८) ताण्ड्य ब्राह्मण ५ ।·६ ।८ में यज्ञायोजन में स्त्रियों को वीणा लेकर सामवेद के मन्त्रों का गान करने का आदेश है तथा ५।६।१५ में स्त्रियों को कलश उठाकर वेद मंत्रों का गान करते हुए परिक्रमा करने का विधान बतलाया गया है ।

यहाँ एक बात और विचारणीय है कि यज्ञ एवं अन्य धार्मिक अनुष्ठान बिना वेद मन्त्र के नहीं हो पाते हैं । इसके साथ ही यह भी शास्त्रीय विधान है कि यज्ञ में पति-पत्नी दोनों का ही सम्मिलित रहना आवश्यक है । जगद् पितामह ब्रह्मा

ब्रह्माजी सावित्री देवी की अनुपस्थिति में द्वितीय पत्नी को वरण करना पड़ा था । क्योंकि शास्त्रीय मर्यादाओं के अनुसार यज्ञ की पूर्ति के लिए पत्नी की उपस्थिति आवश्यक है । जब स्त्रियाँ यज्ञ कर सकती हैं, इनकी अनुपस्थिति में यज्ञ आयोजित नहीं हो सकते, ऐसी परिस्थिति में उन्हें वेदाधिकार न होने की बात कहना अपनी मूर्खता का परिचय देना ही नहीं है तो क्या है ? कुछ धर्म ठेकेदारों का कहना यह भी है कि नारियों को गायत्री जपने, यज्ञ करने आदि का भी अधिकार नहीं है । ऐसे धर्म के ठेकेदारों से निवेदन है कि असंख्य शास्त्रीय प्रमाणों में से वे आँखें खोलकर इन प्रमाणों को देखने और उन पर ठण्डे दिमाग से विचार करें, तो उत्तम होगा और उनकी गलत धारणा भी समान हो सकेगी । यहाँ भारतीय वाङ्मय के कुछ स्पष्ट आदेश प्रस्तुत हैं । देखिए:–

हे विद्वानो ! जो पति-पत्नी एक मन होकर यज्ञ करते हैं और ईश्वर की उपासना करते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं ।

(१)"या स्त्री भर्ता वियुक्तापि संयुक्ता शुभा ।
साथ मंत्रान प्रगृह्णातु स भर्भी तदनुज्ञया ।।"

–भविष्य पुराण उत्तर पूर्व ५।१३।६२।६३

उत्तम आचरण वाली विधवा स्त्री वेद मंत्रों को ग्रहण करे और सधवा स्त्री अपने पति की अनुमति से मन्त्रों को ग्रहण करे ।

(२)"इ रप्युतमस्त्रीणाम अधिकारं तु वैदिके ।
यथोर्वशी यमी चैव शय्याद्याश्च तथाऽपराः ।"

श्रेष्ठ स्त्रियों को वेद का अध्ययन तथा वैदिक कर्मकाण्ड करने का वैसा ही अधिकार है जैसे कि उर्वशी, यमी, शची आदि ऋषिकाओं को प्राप्त था ।

(३)"सर्वाधिकारः श्रौतषु योषितां कर्म सुश्रतः ।
एवमेवानुमन्यस्व ब्रह्मणी ब्रह्म वादिताम् ।।"

–यमस्मृति

जिस प्रकार स्त्रियों को वेद के कर्मों में अधिकार है, वैसे ही ब्रह्म विद्या प्राप्त करने का भी उन्हें अधिकार है ।

(४)"अग्नि होत्रस्यक्ष शुश्र षा संध्योपासनान मेव ।
कार्यं पत्या प्रतिदिनं बलि कर्म च नैत्यिकम् ।।"

–स्मृतिरत्न

पत्नी प्रतिदिन अग्नि होम, संध्योपासन, बलिवैश्व देव आदि नित्य कर्म किया करें ।

(७) वाल्मीकि रामायण में भी वेद परायण स्त्रियों के अनेक उदाहरण स्पष्ट रूप से मिलते हैं । उक्त ग्रन्थों में कौशल्या, कैकेयी, सीता, तारा आदि कई नारियों द्वारा वेद मंत्रों के उच्चारण, अग्निहोत्र, संध्योपासना आदि का वर्णन मिलता है । कुछ उदाहरण देखिए:–

"तदा सुमन्त्र मन्त्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच"'

वेदमन्त्रों की ज्ञाता कैकेयी ने सुमन्त से कहा ।

"ततः स्वत्ययनं कृत्वा मंत्रविद् विजयैषिणी ।"

–वा० रा० २४।१६।१२

तब मंत्रों को जानने वाली तारा ने अपने पति बाली की विजय के लिए स्वस्तिवाचन के मंत्रों का पाठ करके अन्तःपुर में प्रवेश किया ।

उपर्युक्त उदाहरणों से नारी के यज्ञ करने का स्पष्ट समर्थन प्राप्त होता है । अतः जो नारी यज्ञ कर्म कर सकती है, उसके अधिकार आदि का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है, क्योंकि कोई भी यज्ञ कर्म बिना वेद मन्त्रों के पूर्ण हो ही नहीं सकता है ।

मालवीय जी द्वारा निर्णय

स्त्रियों को वेदमंत्रों के अध्ययन करने का अधिकार है, अथवा नहीं, इस प्रश्न को लेकर काशी तथा देश भर के अन्य विद्वानों में सनातन धर्म के प्राण प्रातः स्मरणीय पूज्य पं० श्री मदन मोहन मालवीय द्वारा जो निर्णय दिया गया, उसे सबने मान्य किया । परन्तु आज भी जो अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग बघार रहे हैं, उन्हें क्या कहा जाए ।

हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में कुमारी कल्याणी नामक छात्रा वेद कक्षा में प्रवेश पाना चाहती थी, परन्तु उस समय की प्रचलित मान्यताओं के आधार पर विश्वविद्यालय ने उसे वेद मंत्रों के अध्ययन करने का अधिकार नहीं दिया गया है, अतः उसे प्रवेश नहीं दिया गया ।

इस प्रकरण को लेकर पत्र-पत्रिकाओं तथा सामान्य अखबारों में भी बहुत समय तक वाद-विवाद चलता रहा । वेदाधिकार के सम्बन्ध में प्रसिद्ध आर्य पत्रिका 'सार्वदेशिका' ने कई लेख छापे और उसके विरोध में काशी के प्रसिद्ध मासिक पत्र 'सिद्धान्त' में भी लेख प्रकाशित हुए । अन्त में आर्य समाज की तरफ से एक डेपुटेशन (शिष्ट मण्डल) हिन्दू विश्व-विद्यालय के अधिकारियों से मिला । देश भर में इस प्रश्न को लेकर काफी चर्चाएँ चलती रहीं ।

अन्त में विश्वविद्यालय ने महामना मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता में इस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक समिति नियुक्त की जिसमें अनेक धार्मिक नेता और विद्वानों को सम्मिलित किया गया । समिति ने इस सम्बन्ध में शास्त्रों का गम्भीर विवेचन करके यह निष्कर्ष निकाला कि स्त्रियों को भी पुरुषों की भाँति वेदों का अध्ययन-मनन और चिन्तन करने का अधिकार है । इस निर्णय की घोषणा २२ अगस्त, १९४६ को सनातन धर्म के प्राण समझे जाने वाले महामना मालवीय जी महाराज ने समिति के अध्यक्ष की दृष्टि से की थी । इसके अनुसार कुमारी कल्याणी देवी को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की वेद कक्षा में प्रवेश दिया गया और शास्त्रीय आधार पर इस निर्णय की घोषणा की गई कि विश्वविद्यालय में अब स्त्रियों के वेदाध्ययन पर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं रहेगा । स्त्रियाँ भी अब पुरुषों की भाँति ही वेदों का अध्ययन कर सकेंगी ।

मालवीय जी तथा उनके सहयोगी अन्य विद्वानों पर कोई भी सनातन धर्म का विरोधी होने का सन्देह नहीं कर

सकता है, क्योंकि सनातन धर्म के प्रति उनकी आस्था प्रसिद्ध है ।

आश्चर्य तो इसी बात का होता है कि ऐसे धर्म प्राण विद्वानों द्वारा इस प्रश्न को सुलझा देने पर जो लोग गढ़े मुर्दे उखाड़ते हैं और अपनी अक्ल का बघार लगाकर कहते हैं कि स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार ही नहीं है, उन विशेष अक्ल के सरदारों को क्या कहा जाए ? ऐसे हठवादी लोगों के कथनों की परवाह करने का अब समय नहीं रहा है ।

विरोधी इन प्रश्नों का उत्तर दें

शास्त्रों में सैकड़ों प्रमाण वेदाध्ययन करने के समर्थन में मिलते हैं । वहीं कुछ ऐसे श्लोक भी मिलते हैं जो विरोध करते हैं । पण्डित समाज ने समर्थन वाली बातों पर कम ध्यान दिया और विरोध वालों को रट-रट कर अपना पाण्डित्य प्रदर्शन किया है परन्तु ये प्रतिबन्धकारक श्लोक मध्यकालीन सामन्तवादी काल के प्रतिनिधि ही हैं । मध्यकाल में विदेशियों एवं विधर्मियों के शासन काल में इस तरह के प्रतिबन्ध लग गए, ये ही श्लोक इन ग्रन्थों में मिला दिये गए जो कालांतर में विरोध के प्रमाण बन गए । सत्य सनातन वेदोक्त भारतीय धर्म की वास्तविक विचार-धारा स्त्रियों पर कोई भी बन्धन नहीं लगाती है । वह तो पुरुषों की भाँति ही ईश्वरोपासना एवं वेदशास्त्रों का आश्रय लेकर आत्म-लाभ करने की पूर्णरूपेण सुविधा सबको ही प्रदान करती है ।

विवेकवान् व्यक्ति का सिद्धान्त सदा से यह रहा है कि जो सत्य सो हमारा है । परन्तु अविवेकवान और घमण्डी तथा व्यर्थ पाण्डित्य प्रदर्शनकारी सदा "जो हमारा सो ही सत्य" का हिमायती रहता है । अतः उन्हें समझाना तो ब्रह्मा के वश की भी नहीं है, क्योंकि उनकी स्थिति 'फूले फले न बेंत' जैसी रहती है, परन्तु उन विरोधियों में जो जरा सा भी विवेक रखते हैं, उन सब से निवेदन है कि वे हमारे प्रश्नों का तर्क युक्त समाधान करके जवाब दें –

(१) यदि स्त्रियों को वेदों के अध्ययन करने का अधिकार प्राप्त नहीं है तो प्राचीनकाल में स्त्रियाँ वेदों की मंत्र दृष्टा ऋषिकाएँ क्यों हुई थीं ?

(२) यदि स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं था, तो ऋषिकाएँ भी नहीं हुई होंगी । ऐसी अवस्था में ऋग्वेद की ऋषिकाओं की सूची ब्रह्म देवता के २४वें अध्याय में मंत्र संख्या ८४।८५-८६ में है जो इस पुस्तक में पूर्व में उद्धृत है, क्या गलत है ?

(३) यदि ये वेदों के अध्ययन करने की अधिकारिणी नहीं थीं तो उन्हें यज्ञ आदि धार्मिक कृत्यों एवं षोडस् संस्कारों में सम्मिलित क्यों किया जाता रहा है और अब भी किया जाता है ? जबकि इन कर्मों में पूजा के मन्त्रों में वैदिक मंत्रों का बाहुल्य है ।

(४) विवाह आदि अवसरों पर स्त्रियों के मुख से वेद मंत्रों का उच्चारण क्यों कराया जाता है ? यदि यह शास्त्र विरुद्ध है तो अभी तक यह प्रक्रिया प्रचलित क्यों है ? इसका विरोध किया जाना भी आवश्यक ही था ।

(५) प्राचीनकाल से लेकर आज तक स्त्रियाँ संध्या और हवन आदि करती आई हैं ! तो बिना वेद मन्त्रों के नित्य संध्या एवं हवन किस प्रकार सम्पन्न करती रही होंगी ?

(६) यदि स्त्रियाँ वेदाध्ययन की अनधिकारिणी थीं तो फिर इस देश में अनुसूया, अहिल्या, अरुन्धती, गार्गी, मैत्रेयी, मदालसा, तारा आदि अगणित स्त्रियाँ वेदशास्त्रों में पारंगत कैसे थीं ?

(७) क्या 'शंकर दिग्विजय' ३१६ में कही गई यह बात गलत है ?

"सर्वाणि शास्त्राणि षडंग वेदान् ।
काव्यादि कान् वेत्ति पांच सर्वम् ।
तन्नास्ति नोवेत्ति यदत्र वाला,
तस्माद् भूच्चित्र पदं जानाम ॥"

भारती देवी सर्व शास्त्र तथा अंगों सहित सब वेदों और काव्यों को जानती थी । उससे बढ़कर श्रेष्ठ और विद्वान स्त्री कोई और नहीं थी ।

(८) क्या नारी को आध्यात्मिक दृष्टि से अयोग्य ठहराकर उनसे उत्पन्न होने वाली सन्तान धार्मिक होने की आप आशा रखते हैं ? क्या आपका यह गलत तर्क भारतीय संस्कृति को नष्ट प्रायः सिद्ध करने वाला नहीं बना है ?

(९) ज्ञान, धर्म उपासना के प्राकृतिक एवं स्वाभाविक अधिकारों से नारियों को वंचित करना क्या अन्याय एवं पक्षपात नहीं है ? जबकि भारतीय संस्कृति सबको सुखी देखने का स्पष्ट निर्देश करती है ।

(१०) जब आप स्त्री को, पुरुष की 'अर्धांगिनी' कहते हैं, तो आधा अंग अधिकारी और आधा अंग अनधिकारी किस प्रकार से रहा ?

(११) विरोध में आप जो शास्त्रीय प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, वे सही हैं, इसे आप किस तरह प्रमाणित करेंगे ?

विरोध करने वाले सज्जनों से निवेदन है कि वे विवेक पूर्वक इन प्रश्नों का समुचित तर्क युक्त समाधान करके तथ्य की वास्तविकता को तोलें । इन प्रश्नों पर विचार करते ही हर एक निष्पक्ष व्यक्ति की अन्तरात्मा यही निर्णय प्रदान करेगी कि स्त्रियों पर धार्मिक अयोग्यता का प्रतिबन्ध लगाना किसी प्रकार भी न्यायसंगत नहीं है । इस बात का गलत प्रचार करके हमने अपने समाज के एक विशिष्ट अंग को निर्बल किया है, जिसके परिणाम आज सामने आ रहे हैं ।

नारियाँ अधिकारिणी हैं

पिछले पृष्ठों पर शास्त्रीय मान्यताओं के आधार पर जो प्रमाण उपस्थित किये गए हैं, जो तर्क उपस्थित कर उनका संक्षिप्त विवेचन किया गया है, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है

कि हमारे शास्त्रों में ऐसा कोई भी प्रतिबन्ध नहीं था, जो कि धार्मिक अनुष्ठानों के लिए, सद्ज्ञान उपार्जन के लिए, वेद शास्त्रों का श्रवण-मनन करने के लिए रोकता हो, वरन् भारतीय वाङ्मय में तो सदैव ही सबकी उन्नति के समान अवसर प्रदान किए गए हैं ।

हिन्दू संस्कृति विशुद्ध वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित संस्कृति है । हिन्दू धर्म विश्व धर्म है, जिसकी सहिष्णु विचार-धारा ने अनेकता में एकता उत्पन्न की है । इस धर्म में ऐसी कोई भी विचारधारा पनपी ही नहीं है जो कि माताओं को, जो कि मानव की प्रारम्भिक गुरु और निर्मात्री हैं, को धर्म, ईश्वर, वेद, विद्या आदि जीवनोपयोगी उत्तम मार्गों पर जाने से रोककर उन्हें अवनत अवस्था में पड़े रहने के लिए विवश करता और शास्त्र मर्यादा की दिवाल खड़ी करता । आत्मकल्याण के मार्ग पर बढ़ने से रोकता ।

परन्तु जो व्यवधान उपस्थित हुआ उसमें मध्यकालीन विधर्मी शासकों की नीति का प्रभाव स्पष्ट नजर आता है । इसी काल में हमारी संस्कृति पर अनेक चोटें हुईं, जिनमें शास्त्रों में परिवर्तन भी एक प्रहार था, परन्तु हम अब एक स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक हैं, तो इन सारी संस्कृति विरोधी तत्वों का उन्मूलन करने का हमको अथाह प्रयास करना है । विवेक का आसरा लेकर सारे हिंदुत्व विरोधी तत्वों को बाहर निकाल फेंकना है ।

जरा विचार तो कीजिए प्रत्येक दिशा से शुभ विचार प्राप्त हों और विश्व सुखी बने, की उदार घोषणाएँ करने वाले हमारे मेधावी ऋषि-मुनि ऐसे निष्ठुर नहीं हो सकते थे जो ईश्वरीय ज्ञान वेद से स्त्रियों को वंचित रखने की मर्यादा निर्धारित करते और उन्हें आत्म-विकास और आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलने से रोकते । हिन्दू धर्म की उदारता जग प्रसिद्ध है । विशेपकर स्त्रियों के लिए तो बहुत ही आदर, श्रद्धा एवं स्थान है । ऐसी स्थिति में यह किस प्रकार सम्भव था कि वेदों के अध्ययन जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए उन्हें अयोग्य घोषित किया जाता ।

एक बार आत्म-निर्माण की दृष्टि से और भी हम सबके लिए विचारणीय है । आत्मा न तो स्त्री है, न पुरुष है । वह तो विशुद्धि ज्योति है, ब्रह्म ज्योति की चिनगारी है । आत्म-तत्व के ज्ञान और प्रकाश प्राप्त करने के लिए जैसे पुरुष को किसी गुरु अथवा पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता होती है, वैसे ही स्त्री को भी होती है । कहने का तात्पर्य इतना ही है कि साधना के क्षेत्र में पुरुष-स्त्री का भेद नहीं है । साधक आत्मा है । उन्हें अपने को पुरुष स्त्री न समझ कर केवल 'आत्मा' ही समझना चाहिए । साधना के क्षेत्र में, आत्म-विकास के क्षेत्र में सभी आत्माएँ समान हैं । लिंग भेद की दृष्टि से उन पर कोई भी अयोग्यता थोपी जानी व्यर्थ और उपहासजनक ही है ।

सामान्य जगत में भी देखा जाए तो पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में आत्म-कल्याण रत रहने की धार्मिक भावनाएँ अधिक मिलती हैं । घर पर उन्हें निरन्तर सेवा, आत्म-निग्रह तथा तरह-तरह की तितिक्षाएँ सहन करनी पड़ती हैं । वैसे भी सामान्यत: उन्हें पुरुषों से अधिक अवकाश मिलता है । अत: वे साधना-स्वाध्याय करके बच्चों पर शुभ संस्कार डालने योग्य वातावरण निर्मित कर सकती हैं । आज हिन्दू संस्कृति पर अनेक तरह से चोटें हो रही हैं, अत: हिन्दू संस्कृति को बचाने के लिए स्त्रियों को धार्मिक साधना के लिए अधिक उत्साहित करने की आवश्यकता है ? इसके विपरीत उन्हें नीच, अनधिकारिणी, शूद्रा आदि कहकर उन्हें आत्म-कल्याण के मार्ग में प्रवृत्त न होने देना, निरुत्साहित करना, अनिष्ट हो जाने का डर बतलाना किस प्रकार उचित है ? यह जरा भी समझ में नहीं आता है ।

हम खूब अच्छी तरह सोच, विचार-चिन्तन और शास्त्रीय आदेशों के अन्वेषण करके अब पूरी तरह आश्वस्त हैं कि नारियों को भी पुरुषों की तरह ही वेद ज्ञान प्राप्त करने, उसका स्वाध्याय करने, प्रचार, प्रसार और तदनुकूल आचरण करने की शास्त्रीय स्वतन्त्रता है । आज वैदिक धर्म की ओर वैसे ही प्रवृत्ति कम है । फिर किसी को सुविधा, उत्साह आदि हो तो उसे अनधिकारी घोषित करके ज्ञान और उपासना की राह बन्द कर देना किसी भी विवेकशील के लिए न्यायसंगत नहीं है ।

अत: अब नारी समाज को वैदिक नवनीत का पान करने दीजिए । जिसे पान करके भारत भूमि शस्य श्यामला, सुखदा वरदा देवभूमि हो गई थी । अब उसे अपने नैसर्गिक अधिकार से आप वंचित नहीं रख पाएँगे । वेद-सुधा का उसको भी पान करने का अधिकार है, क्या आप उसे यह अधिकार नहीं देंगे ? अब देना होगा, क्योंकि उनको जन्मजात वेदाध्ययन का अधिकार है ।

भारत में योगिनियाँ भी थीं और अब भी हैं

भारतवर्ष योगियों की भूमि है और पिछले हजारों वर्षों से यहाँ अनेक उल्लेखनीय योगियों का आविर्भाव हो चुका है । पर ये सभी योगी पुरुष ही हुए हैं, स्त्रियों में किसी उल्लेखनीय योगिनी का नाम बहुत कम सुनने में आया है । वैसे स्त्रियों में भी मीराबाई, सहजोबाई जैसी प्रसिद्ध आध्यात्मिक ज्ञान सम्पन्न महिलाएँ हुई हैं, पर वे प्राय: भक्ति मार्ग की अनुयायिनी थीं । पुरुषों के समान हठयोग, राजयोग के कठिन साधन करने वाली महिलाओं की संख्या अधिक नहीं है और जो ऐसी नारियाँ हुई भी हैं उनके सम्बन्ध में विशेष बातें जनता को ज्ञात नहीं, क्योंकि

साधन करने पर भी सामाजिक नियमों के कारण उनको अपने लिए जन-समुदाय से पृथक् ही रखना पड़ता है। दूसरा कारण यह भी है कि शास्त्रों में जगह-जगह यही आदेश दिया है कि स्त्रियों के लिये विशेष साधनाओं का कोई प्रयोजन नहीं, पतिव्रत ही उनके लिए सबसे बड़ा और प्रभावशाली साधन है। ऐसी दशा में स्त्रियाँ योग जैसे साधनों में तभी प्रवृत्त होती हैं जब या तो ये आजन्म ब्रह्मचारिणी रहें या फिर आरम्भिक जीवन में ही वैधव्य की अवस्था को प्राप्त हो जाएँ। नीचे एक ऐसी ही योगिनी का परिचय दिया जाता है जो हठयोग की समाधि अवस्था तक पहुँच गई थी और जिसने अध्यात्म-मार्ग में उल्लेखनीय प्रगति करके दिखाई थी। प्रस्तुत विवरण उन्हीं के परिवार के एक विद्वान पुरोहित के कथनों पर आधारित है।

जयपुर (राजस्थान) के महाराज के यहाँ श्रीमन्नालाल जी एक विद्वान और कर्मकाण्डी पुरोहित थे। उन्हीं के घर में 'योगिनी मोतीबाई' का जन्म संवत् १८९९ सन् १८४२ में हुआ। बाल्यावस्था में ही इनमें आध्यात्मिक प्रवृत्ति के लक्षण दिखलाई पड़ने लगे थे। ग्यारह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हो गया, पर थोड़े ही वर्ष बाद विधवा हो गईं। उस समय सती प्रथा तो बन्द हो गई थी, पर उन्होंने अन्य प्रकार से दो तीन बार देह त्यागने का प्रयत्न किया, पर मृत्यु समीप नहीं आई। इसी अवसर पर किसी अदृश्य वाणी ने इनसे कहा–"आत्महत्या महापाप है, अपने शरीर से अपना और पराया कुछ उपकार कर, जब अन्त आयेगा तो यह नश्वर काया अपने आप छूट जाएगी।" बस, वे भगवान् की आज्ञा को शिरोधार्य कर ईश्वर के भजन में लवलीन हो गईं। कुछ समय बाद एक वृद्ध योगी और फिर एक तपस्विनी योगिनी का सत्संग प्राप्त हुआ, जिनसे इन्होंने योग की साधनाएँ सीखीं और आसन, प्राणायाम, नेति, धौति, नौलि, वज्रोली ध्यान धारणा करते-करते समाधि तक का साधन विधिपूर्वक करने लगीं। इसके सिवाय उनको स्वरोदय का भी अच्छा अभ्यास हो गया। प्रारम्भिक अवस्था में लाख की बनी पाँच रंग की पाँच गोलियाँ अपने पास रखती थीं और उन पर पंचतत्व की धारणा किया करती थीं। फिर उनको छाया पुरुष की सिद्धि हो गई थी। वे सदैव नासिकाग्र पर दृष्टि रखती थीं, केवल ३-४ घंटे के करीब ही भूमि पर बिस्तर बिछा कर सोती थीं और २४ घंटे में एक बार अल्प भोजन करती थीं।

योगिनी मोतीबाई ने हठयोग, राजयोग, भक्तियोग का साधन करके ऊँचे दर्जे की आत्मिक शक्ति प्राप्त कर ली थी। वे योगशक्ति के प्रभाव से दूसरों के मन की बात जान लेती थीं और जब उचित जान पड़ता तो उनके होनहार की बात भी कह देती थीं। अनेक स्त्री-पुरुषों के सामने आते ही, उन्होंने स्वयं उनकी मनोकामना की बात बतला दी थी और उसके पूर्ण होने का मार्ग भी बतला दिया था, तो भी वे यथासम्भव इन चमत्कारी बातों से दूर रहती थीं। क्योंकि इस प्रकार के कार्यों से आत्म-शक्ति की हानि होती है और अहंकार उत्पन्न होने का भय रहता है।

अपनी मृत्यु का समय दस महीने पहले ही उन्होंने अपने छोटे भाई को बतला दिया था और यह भी समझा दिया था कि घर में किसी से कहना मत। पर एक बार कौतूहलवश उसके मुँह से यह बात माता के सामने निकल गई। इससे सब घर वालों को दुःख हुआ और वे कहने लगे कि इस प्रकार के विचार प्रकट करना ठीक नहीं है। इन्होंने भी व्यर्थ में उनको दुःख पहुँचाना बुरा समझकर बहाना बनाकर बात को टाल दिया। कुछ महीने बाद सबने जगन्नाथपुरी की यात्रा की तैयारी की। जयपुर से यात्रियों का एक बड़ा संघ चला। जगन्नाथजी के दर्शन करने के बाद सब लोग गंगासागर में श्री कपिलदेव के दर्शन और पूजन को गये। वहाँ पूजन करके मोतीबाई ने कपिल भगवान् के सम्मुख हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि "हे कपिल मुनिजी! आप सच्चे ज्ञान दाता हैं और आपने जैसे अपनी माता को मुक्ति दी थी, वैसे ही मेरी भी सद्‌गति शीघ्र ही दीजिये।" इस बात को सुनकर माता जी ने नेत्रों में आँसू भर कर कहा–"मोती यह क्या प्रार्थना तूने की, तूने कैसी बात कही?" पर मोतीबाई चुप रहीं। गंगासागर से जहाज में बैठकर सब चल दिये। कुछ ही समय बीता था कि जहाज में ही मोतीबाई की तबीयत सचमुच बिगड़ने लगी और उन्होंने अपनी माता की गोद में सहारा लेकर कमलासन लगाकर प्राण चढ़ा लिये। थोड़ी देर में स्तब्ध हो गईं। माताजी ने सिर पर हाथ रखा तो कपाल मानो उबल रहा है–ऐसा प्रतीत हुआ। कुछ ही क्षण में बाईजी के नेत्र खुले और फिर वे खुले के खुले ही रह गए। उनकी पवित्र आत्मा ने इस नश्वर शरीर को त्याग दिया। उस समय एक झन्नाटे की सी आवाज हुई, जिसको वहाँ उपस्थित सब यात्रियों ने सुनी। इससे उन लोगों ने यही अनुमान किया कि वे विमान पर चढ़कर परमधाम को चली गईं। यह घटना माघ सुदी ४ सम्वत् १९३२ की है।

योगिनी मोतीबाई का चरित्र हमको बतलाता है कि नारियाँ किसी भी दृष्टि से पुरुषों से कम नहीं हैं और अवसर तथा सुविधा प्राप्त हो तो वे सब प्रकार के कार्य योग्यतापूर्वक सम्पन्न करके अपना और दूसरों का कल्याण कर सकती हैं।

बौद्ध धर्म में स्त्रियों का स्थान

बुद्ध भगवान् ने यद्यपि स्त्रियों को अपने संघ में स्थान दिया था और पुरुषों की भाँति स्त्रियाँ भी भिक्षुणी बन सकती थीं, परन्तु बौद्ध सम्प्रदाय का मूल सिद्धान्त स्त्रियों को पुरुषों से दूर रखना ही था। क्योंकि बौद्ध धर्म में त्याग और वैराग्य का स्थान मुख्य है, भोग का नहीं। बुद्ध ने स्त्रियों की निन्दा तो नहीं की, परन्तु बराबर यह सलाह दी कि लोग स्त्रियों के खतरे से बचे रहें।

बुद्ध ने अपने साधारण अनुयाइयों और गृहस्थों के प्रति यह उपदेश किया था कि जहाँ तक हो सके, अपनी स्त्रियों को अपना मित्र समझो और उन पर विश्वास रखो । साधारण भक्तों को उन्होंने यह उपदेश दिया कि माता-पिता की सेवा, पत्नी और बच्चों के प्रति प्रेम तथा शांतिपूर्ण उद्योग ही सबसे बड़ा आशीर्वाद है ।

बौद्ध धर्म में जहाँ पति-पत्नी के सम्बन्ध और उनके व्यवहार के लिए नियमोपनियमों की चर्चा की गई है, वहाँ पत्नी के लिए पति की आज्ञापालन का कोई जिक्र नहीं है । पतियों के लिए जरूर आदेश है कि वे अपनी पत्नियों के विश्वासपात्र रहें, उनका आदर करें और उन्हें यथोचित् वस्त्र-आभूषण प्रदान करें । पत्नियों को पतिव्रत, धर्म-पालन और मितव्ययी बनने की शिक्षा दी है । स्त्रियों से यह भी कहा गया है कि वे अपने घरेलू कामों में बुद्धिमत्ता और परिश्रम से काम लें । यह सब होने पर भी बुद्ध ने अविवाहित जीवन को अधिक श्रेष्ठ माना है, क्योंकि उसमें मनुष्य शुद्ध आचार-विचार और परोपकार का पालन अधिक उत्तमता से कर सकता है, परन्तु गृहस्थियों के लिए भी उन्होंने ऐसे नियम बनाये हैं कि वे परस्पर एक दूसरे को अपना मित्र समझें, परस्पर एक दूसरे का आदर करें और परस्पर एक दूसरे का विश्वास करें ।

माता के प्रति बुद्ध भगवान् के भाव बहुत शुद्ध थे । बुद्ध ने अपनी माता और पत्नी के आग्रह से ही स्त्रियों को भी भिक्षुणी बनने का अधिकार दिया था । बौद्ध धर्म के अनुसार स्त्रियों को निर्वाण प्राप्त करने का उतना ही अधिकार है जितना कि पुरुषों को । कहा जाता है कि बुद्ध के जीवनकाल में ७३ स्त्रियों और १०७ पुरुषों ने निर्वाण प्राप्त करके मानव-जीवन के विकास की चरमसीमा तक पहुँचने का प्रयत्न किया था । जब बौद्ध धर्म का प्रचार किया जा रहा था, तब स्त्रियों ने ही सबसे अधिक आर्थिक सहायता की थी । बुद्ध ने विसाखा आदि स्त्रियों की बहुत प्रशंसा की है । एक स्त्री की प्रशंसा करते हुए बुद्ध ने कहा है-"यह महिला सांसारिक वातावरण में रहती है और राजरानियों की कृपापात्री है, तो भी इसका हृदय स्थिर और शांत है । उसकी अवस्था युवा है और यह धन तथा ऐश्वर्य से घिरी है, फिर भी वह कर्त्तव्य पथ में अविचल और विचारशील है । यह इस संसार में दुर्लभ चीज है ।"

जिस काल में बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार किया था, उस काल में स्त्री-जाति की स्थिति बहुत शोचनीय हो गई थी । यह बुद्ध का ही साहस था कि उसने कहा-"निर्वाण की प्राप्ति न केवल ब्राह्मण को ही होती है वरन् मनुष्य मात्र को हो सकती है और स्त्रियों को भी हो सकती है ।" यह वही समय था जब 'स्त्री शूद्रो नाधीयताम्' की आवाज सर्वत्र गूँज रही थी और स्त्रियों का समाज में कोई स्थान ही न था ।

मातृ-वन्दना

पितुरप्यधिका माता गर्भधारणपोषणात् ।
अतोहि त्रिषु लोके नास्ति मातृसमो गुरुः ॥ १॥
नास्ति गङ्गासमं तीर्थं, नास्ति विष्णुसमः प्रभु ।
नास्ति शम्भुसमः पूज्यो नास्ति मातृसमो गुरुः ॥ २॥
नास्ति चैकादशी तुल्यं व्रतं त्रैलोक्याविश्रुतम् ।
तपो नाशनात्तुल्यं नास्ति मातृसमो गुरुः ॥ ३॥
नास्ति भार्यासमं मित्रं नास्ति पुत्रसमः प्रियः ।
नास्ति भगिनी समा मान्या, नास्ति मातृसमो गुरुः ॥४।
न जामातृसमं पात्रं न दानं कन्यया समम् ।
न भ्रातृसदृशो बन्धुर्न, च मातृसमो गुरुः ॥५॥
देशो गंगान्तिकः श्रेष्ठो दलेषु तुलसीदलम् ।
वर्णेषु ब्राह्मण श्रेष्ठो गुरुर्माता गुरुष्वपि ॥६॥
मातरं पितरं चोचौ दृष्ट्वा पुत्रस्तु धर्मवित्तथ ।
प्रणम्य मातरं पश्चात् प्रणमेत पितरं गुरुम् ॥७॥
माता धरित्री जननी दयार्द्रहृदया शिवा ।
देवी त्रिभुवनश्रेष्ठा निर्दोषाः सर्वदुः खहा ॥८॥
आराधनीया परमा दया शान्तिः क्षमा धृतिः ।
स्वाहा स्वधा च, गौरी च, पद्मा च विजया जया ॥९॥
दुःखहन्त्रीति नामानि मातुरेवैकविंशतिम् ।
श्रृणुयाच्छ्रवयेन्मर्त्यः सर्वदुःखाद् विमुच्यते ॥१०॥
दुखैर्महद्भिर्दूनोऽपि दृष्ट्वा मातरोयीश्वरीम् ।
यमानन्द लभेन्मर्त्यः स किं वाचोपपद्यते ॥११॥
इति ते कथितं विप्र मातृस्त्रोत, महागुणम् ।
पराशरमुखात्पूर्वमश्रौषं मातृसंस्तवम् ॥ १२॥
सेवित्वा पितरौ कश्चिद् व्याधः परमधर्मवित् ।
लेभे सर्वज्ञतां या तु साध्यते न तपस्विभिः ॥ १३।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भक्तिः कार्या तुमातरि ।
पितर्यपीति चोक्तं वै पित्रा शक्तिसुतेनमे ॥ १४॥

अर्थ-पुत्र के लिए माता का स्थान पिता से भी बढ़कर है, क्योंकि वह उसे गर्भ में धारण कर चुकी है तथा माता के द्वारा ही उसका पालन-पोषण हुआ है । अतः तीनों लोकों में माता के समान दूसरा कोई गुरु नहीं है । ॥ १॥ गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं है, भगवान् विष्णु के समान कोई प्रभु नहीं है, शिव के समान कोई पूज्यनीय नहीं है तथा माता के समान कोई गुरु नहीं है । ॥ २॥ एकादशी के समान कोई त्रिभुवन विख्यात व्रत नहीं है, उपवास के समान कोई तपस्या नहीं है तथा माता के समान कोई गुरु नहीं है । ॥ ३॥ भार्या के समान कोई मित्र नहीं है, पुत्र के समान कोई प्रिय नहीं है, बहिन के समान मान्य कोई स्त्री नहीं है तथा माता के समान कोई गुरु नहीं है । ॥ ४॥ दामाद के समान कोई दान का सुयोग्य पात्र नहीं है; कन्यादान के समान कोई दान नहीं है, भाई के समान बन्धु और माता के समान कोई गुरु नहीं है । ॥ ५॥ देश वही श्रेष्ठ है जो गंगा के समीप हो, पत्तों में तुलसी का पत्ता श्रेष्ठ है, वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है तथा गुरुजनों में माता ही सबसे

श्रेष्ठ है । ॥६॥ धर्मज्ञ पुत्र, माता और पिता दोनों को एक साथ देखने पर पहले माता रूपी गुरु को प्रणाम करके पीछे पिता को प्रणाम करें ॥७॥ माता, धरित्री, जननी, दयार्द्र हृदया, शिवा, त्रिभुवनश्रेष्ठा देवी, निर्दोषा, सर्वदुःख, परम आराधनीया, दया, शान्ति, क्षमा, धृति, स्वाहा, स्वधा, गौरी, पद्मा, विजया, जया तथा दुःखहन्त्री ये माता के ही इक्कीस नाम हैं । जो मनुष्य इन नामों को सुनता और सुनाता है, वह सब दुःख से मुक्त हो जाता है । बड़े से बड़े दुःख से पीड़ित होने पर भी भगवती माता के दर्शन करके मनुष्य को जो आनन्द मिलता है, उसे क्या वाणी द्वारा व्यक्त किया जा सकता है ?

ब्रह्मन् ! यहाँ मैंने तुमसे परम गुणमय मातृ स्तोत्र का वर्णन किया है । यह मातृ स्तोत्र पूर्वकाल में मैंने अपने पिता श्री पराशर जी के मुख से सुना था । किसी परम धर्मज्ञ व्याध ने केवल माता-पिता की सेवा करके वह सर्वज्ञता प्राप्त कर ली, जो तपस्विनी को भी सुलभ नहीं है । इसलिए पूर्णदान करके माता और पिता के चरणों में भक्ति करनी चाहिए ।

नारी अर्थात् अबला नहीं, वीरा, पुरंधि और शक्ति

स्त्रियों के लिए सामान्यतः अबला शब्द का प्रयोग किया जाता है । अबला अर्थात् बल रहित, जिसमें कोई बल नहीं हो । निस्सन्देह आज की स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में देखें तो यह सम्बोधन अर्थ की दृष्टि से सही ही सिद्ध होता है, परन्तु यह कोई गुण नहीं है । स्त्री की विवशता तो है ही, समाज की एक बहुत बड़ी भूल और कमजोरी भी है जिसका दुष्परिणाम कदम-कदम पर समाज को भोगना पड़ता है । पुरुष ने न जाने किस दंभ में आकर महिलाओं पर ऐसे प्रतिबन्ध लगाये कि वह मानसिक दृष्टि से अविकसित और योग्यता की दृष्टि से अक्षम और शारीरिक दृष्टि से निर्बल होकर रह गयी ।

जिन शक्तियों का प्रयोग नहीं किया जाता वे निष्क्रिय होकर अंत में मंद पड़ती जातीं और उस अवस्था में जा पहुँचती हैं कि सो ही जाती हैं । ऐसा ही कुछ नारी जाति के सम्बन्ध में भी हुआ है । जब उसकी क्षमताओं, योग्यताओं और शक्तियों पर प्रतिबन्ध लगाया तो वे तंद्रित, प्रसुप्त और मूर्च्छित अवस्था में जा पहुँचीं ।

प्राचीनकाल में जब भारतीय समाज और संस्कृति अपनी उन्नति के चरम शिखर पर थी, तब स्त्रियों के लिए कहीं भी अबला शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता था । प्राचीनकाल के किसी भी ग्रंथ को उठाकर देख लें, उसमें कहीं भी स्त्रियों के लिए अबला या रक्षिता जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं आया है । इस सम्बन्ध में वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ और संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने लिखा है—"प्राचीनकाल में जिस प्रकार वीर पुरुषों के नाम सुनने में आते हैं, उसी प्रकार वीर स्त्रियों के नाम भी सुनने में आते हैं । काली, भवानी, अंबिका, एकवीरा आदि सैकड़ों देवियाँ अपनी शूरवीरता के कारण पूज्य हो गई हैं । पुरुष देहधारी सभी देवता प्रायः शस्त्रधारी हैं, लेकिन हिन्दुओं की देवियाँ तो पुरुषों से भी अधिक आयुध धारण किये हुए हैं । देवताओं के सामान्यतः दो हाथ चित्रित किये गये हैं, अधिक से अधिक चतुर्भुज या षड्भुज भी होते हैं और उन हाथों में उतने ही शस्त्र धारण किये गये मिलते हैं, लेकिन देवियों के तो अठारह-अठारह और बीस-बीस हाथ मिलते हैं । उन सभी हाथों में इतने ही शस्त्रास्त्र भी हैं । देवों की अपेक्षा देवियों के हाथ में अधिक संहारक आयुध मिलते हैं ।"

इस तरह के तथ्यों के आधार पर भी सातवलेकर ने प्रतिपादित किया है कि प्राचीनकाल में स्त्रियाँ न केवल आत्मरक्षा में समर्थ थीं वरन् राष्ट्र रक्षा में भी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिला कर और कई बार तो उनसे एक कदम आगे बढ़कर भूमिका निबाहती थीं एवं शौर्य प्रदर्शित करती थीं । अबला शब्द का सामान्य अर्थ शारीरिक दृष्टि से बलहीन ही समझा जाता है । यह स्थिति तो तब आई जब हर ओर से नारी को प्रतिबंधित तथा लांछित किया गया था, अन्यथा जिन दिनों समाज में उन्हें पुरुषों के समान ही स्थान दिया जाता था और वैसे ही अधिकार प्राप्त थे तब प्रकृति द्वारा प्रदत्त कमनीयता, कोमलता के उपरांत भी स्त्रियाँ शौर्य और वीरता के क्षेत्र में पुरुष से कदापि पीछे नहीं रहीं ।

विवरण मिलता है कि महादेव पुत्र गणेश ने स्त्रियों के सैन्यदल बनाये थे और उनके द्वारा राष्ट्र-रक्षा का कार्य भी करवाया था । अनेक बार स्त्रियों ने स्वयं आगे बढ़कर अपने सैन्यदल गठित किये तथा राष्ट्र-रक्षा में अग्रणी भूमिका निबाही । वैदिक साहित्य में राजकुमारी विशाला की कथा मिलती है । सम्राट् का नाम खेल बताया गया है, जब खेल के साम्राज्य पर शत्रु राजा ने अपने पूरे दल-बल के साथ आक्रमण किया । आक्रांत राष्ट्र की सेनाओं ने वीरतापूर्वक मुकाबला किया, लेकिन शत्रु सेनाएँ भारी पड़ीं और खेल की सेनाएँ पीछे हटने लगीं । ऐसी स्थिति में सम्राट् का चिंतित होना स्वाभाविक ही था । अपने पिता को चिन्तित देखकर विशाला ने स्वयं युद्ध में भाग लेने का प्रस्ताव किया । खेल का सेनापति युद्ध में मारा जा चुका था और सेनाएँ नेतृत्वविहीन हो गई थीं । इस पर विशाला ने सैनिक नेतृत्व सँभाला और बिखरी हुई सेनाओं को समेट कर ऐसी व्यूह रचना की कि आक्रमणकारियों को भागते ही बना ।

ऐसी घटनाएँ एकाध ही मिलती हों यह भी बात नहीं है । उन दिनों पुरुष सैनिकों के अलावा स्त्रियों के सैन्यदल भी तैयार किये जाते थे और कई बार ऐसे अवसर आये जब पुरुष सैन्यदल के पैर उखड़ गये तो स्त्रियों की सेनाओं ने आगे बढ़कर मोर्चा जीता । सुविदित है कि असुर

आक्रमण के समय जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश सहित सभी देवता हार जाते थे तो दुर्गा, काली, भवानी, चंडी, चामुण्डा आदि देवियाँ अपनी कुमुक लेकर असुर सेनाओं पर आक्रमण करती थीं और उन्हे परास्त करके ही रहती थीं।

सातवलेकर की मान्यता है कि किसी स्त्री के अठारह, बीस या अट्ठाईस हाथ होना युक्तिसंगत नहीं है, बल्कि युक्तिसंगत तो यही प्रतीत होता है कि उन्हें अट्ठाईस प्रकार के शस्त्रास्त्रों के प्रयोग का ज्ञान था। जो भी हो, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्राचीनकाल में स्त्रियों को अबला नहीं समझा जाता था। समझने का प्रश्न ही नहीं उठता, वह स्वभावतः अबला नहीं शक्तिरूपा है। इसी रूप में स्त्रियों को वैदिक साहित्य में उल्लेखित किया गया है। उन दिनों पुत्र को वीर और स्त्री को वीरा कहा जाता था तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा का ऐसा प्रबन्ध किया जाता था कि ये नाम सार्थक हो सकें।

संस्कृत भाषा में स्त्रियों के लिए एक शब्द 'पुरंधि' भी आता है, जिसका अर्थ है, पुरा को या नगर को धारण करने वाली, उसकी रक्षा करने वाली। संस्कृत साहित्य में मिलने वाले विवरणों से इतिहासकार इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्राचीनकाल में राष्ट्र को बाहरी शत्रुओं से सुरक्षित रखने का दायित्व पुरुष सँभालते थे तथा युद्ध के समय आंतरिक शत्रुओं से स्त्रियाँ निबटती थीं। उन दिनों नगर की रक्षा और सुव्यवस्था, अपराधों की रोकथाम, घुसपैठियों की धर-पकड़ का कार्य स्त्रियों के जिम्मे ही रहता था। यही कारण है कि उनके लिए पुरंधि शब्द का प्रयोग मिलता है।

राजपरिवारों में राजकुमारों की भाँति राजकुमारियों को भी शस्त्र विद्या का प्रशिक्षण दिया जाता था। कई घटनाएँ ऐसी मिलती हैं, जब स्त्रियाँ चुनौती देती थीं कि जो मुझे युद्ध में हरायेगा, वही मेरा पति होगा। विवाह में स्वयंवर प्रथा के समय प्रायः शर्तें रखी जाती थीं जिसमें वर की यह परीक्षा हो जाय कि वह योग्यता अथवा शक्ति की दृष्टि से कहीं वधू की तुलना में कम तो नहीं है। सीता स्वयंवर में धनुष तोड़ने की शर्त इसीलिए रखी गई थी कि इतने भारी धनुष को तोड़ना तो दूर रहा, बड़े-बड़े शक्तिशाली युवराजों के लिए उठा पाना भी असम्भव था। सीता उस धनुष को खेल-खेल में ही उठा दिया करती थीं। द्रौपदी इतनी बहुमुखी प्रतिभा और शक्तिसम्पन्न थी, धनुर्विद्या में इतनी निष्णात थी कि उसके लिए परछाई देखकर मत्स्य वेध की शर्त रखनी पड़ी।

भवानी के पास जब दुर्दान्त दानव महिषासुर ने पत्नी बनने का प्रस्ताव भेजा तो भवानी ने यही उत्तर दिया कि यदि वह युद्ध में मुझे हरा देगा तो मैं उसका वरण कर लूँगी। इस चुनौती को स्वीकार कर महिषासुर रण क्षेत्र में आया और सुविदित है कि भवानी के हाथों उसे न केवल परास्त होना पड़ा, वरन् उसे अपने प्राण भी गँवाने पड़े। इस तरह के प्रसंगों से भरे प्राचीन भारत के इतिहास में नारी को अबला कहना तथ्यों की उपेक्षा करना होगा।

भाषा-शास्त्री तो नारी शब्द का विश्लेषण इस प्रकार भी करते हैं कि नेतृत्व करने में समर्थ होने का कारण ही स्त्री का यह नाम पड़ा।

बचपन में 'वीरा', तरुणाई में 'पुरंधि' और उसके बाद 'शक्ति' नाम से सम्बोधित नारी को किसी भी प्रकार अबला नहीं कहा जा सकता। राष्ट्र और समाज का दुर्भाग्य यह है कि पुरुष ने अनेकानेक प्रतिबंध लगाकर उसे बलरहित बना दिया और स्वाभाविक भी है कि अबला स्त्री बलवान और शक्तिशाली वीर सन्तानों को कैसे जन्म दे सकती है?

यह उचित और आवश्यक है कि स्थिति को उलटा जाये तथा नारियों पर लगे अबला के कलंक को धोया जाये। उस दुःस्थिति को बदला जाय जिससे यह न केवल शरीर से सशक्त बने वरन् मानसिक और बौद्धिक दृष्टि से भी समर्थ तथा अपने नाम को सार्थक कर सके।

नारी की अभिनन्दनीय वरिष्ठता

नारी, मनुष्य की जन्मदात्री है। क्या पुरुष, क्या स्त्री मनुष्य जाति के दोनों ही पक्ष के उदर से उत्पन्न होते हैं। उसी का पयपान करके जीवित रहते हैं। सुरक्षा, सुविधा, स्नेह, दुलार माता से प्राप्त करने के साथ-साथ ही शिशु का जीवन प्रारम्भ होता है। उन उपलब्धियों के अभाव में शरीर का जीवित रहना और मन का विकसित बनना सम्भव न हो सकेगा।

नारी की तुलना में नर अधिक बलिष्ठ, परिपुष्ट पाया जाता है। पर क्या यह प्रकृति की देन है? क्या यह उसका अपना उपार्जन है? गहराई से देखने पर पता चलेगा कि यह बलिष्ठता उसे माता के, पत्नी के, भागिनी के, पुत्री के अजस्र अनुदानों से ही सम्भव हुई है। परिपुष्ट वृक्षों की समृद्धि वस्तुतः पवन का, भूमि का, जल का, बीज का अनुदान मात्र है। उन चारों सत्ताओं ने अपना स्नेहसिक्त सहयोग समर्पित न किया होता तो वृक्ष का अस्तित्व भी प्रकाश में न आता, उसका विस्तार-वैभव तो पीछे की बात थी। नारी के सहयोग के अभाव में नर की बलिष्ठता तो दूर उसकी सत्ता तक की सम्भावना दृष्टिगोचर नहीं होती।

नारी को वरिष्ठ और नर को कनिष्ठ ठहराने वाली अपनी सांस्कृतिक मान्यता हर दृष्टि से सही है। दानी बड़ा होता है और उपभोक्ता छोटा। नारी नर पर जो स्नेह-सौजन्य भरा अजस्र सहयोग बरसाती है उसी ने उसे बलिष्ठ बनाया है। नर बलिष्ठता का अहंकार कर सकता है, पर उसे वरिष्ठ नहीं माना जा सकता है। उपहार पाकर कोई अपने सौभाग्य को सराह सकता है। पर उस अनुदानी की समता नहीं कर सकता जिसने अपने स्वेद कणों और स्नेह बिन्दुओं के मणि-मुक्तकों से उस हार-उपहार को विनिर्मित किया और उदारतापूर्वक गले में धारण कराया। वह माता हो अथवा पत्नी दोनों

श्रेष्ठ है । ।। ६।। धर्मज्ञ पुत्र, माता और पिता दोनों को एक साथ देखने पर पहले माता रूपी गुरु को प्रणाम करके पीछे पिता को प्रणाम करें ।। ७।। माता, धरित्री, जननी, दयार्द्र हृदया, शिवा, त्रिभुवनश्रेष्ठा देवी, निर्दोषा, सर्वदुःख, परम आराधनीया, दया, शान्ति, क्षमा, धृति, स्वाहा, स्वधा, गौरी, पद्मा, विजया, जया तथा दुःखहन्त्री ये माता के ही इक्कीस नाम हैं । जो मनुष्य इन नामों को सुनता और सुनाता है, वह सब दुःख से मुक्त हो जाता है । बड़े से बड़े दुःख से पीड़ित होने पर भी भगवती माता के दर्श करके मनुष्य को जो आनन्द मिलता है, उसे क्या वाए द्वारा व्यक्त किया जा सकता है ?

ब्रह्मन् ! यहाँ मैंने तुमसे परम गुणमय मातृ स्त्रोत वर्णन किया है । यह मातृ स्त्रोत पूर्वकाल में मैंने अ पिता श्री पराशर जी के मुख से सुना था । किसी प धर्मज्ञ व्याध ने केवल माता-पिता की सेवा करके सर्वज्ञता प्राप्त कर ली, जो तपस्यिनी को भी सुलभ है । इसलिए पूर्णदान करके माता और पिता के चरणों भक्ति करनी चाहिए ।

नारी अर्थात् अबला नहीं, वीरा, पुरंधि और शक्ति

स्त्रियों के लिए सामान्यतः अबला शब्द का प्र किया जाता है । अबला अर्थात् बल रहित, जिसमें ब बल नहीं हो । निस्सन्देह आज की स्थितियों के परिप्रे में देखें तो यह सम्बोधन अर्थ की दृष्टि से सही ही सि होता है, परन्तु यह कोई गुण नहीं है । स्त्री की विवश तो है ही, समाज की एक बहुत बड़ी भूल और कमजो भी है जिसका दुष्परिणाम कदम-कदम पर समाज व भोगना पड़ता है । पुरुष ने न जाने किस दंभ में आक महिलाओं पर ऐसे प्रतिबन्ध लगाये कि वह मानसिक दृ से अविकसित और योग्यता की दृष्टि से अक्षम और शारीरिक दृष्टि से निर्बल होकर रह गयी ।

जिन शक्तियों का प्रयोग नहीं किया जाता वे निष्क्रिय होकर अंत में मंद पड़ती जातीं और उस अवस्था में जा पहुँचती हैं कि सो ही जाती हैं । ऐसा ही कुछ नारी जाति के सम्बन्ध में भी हुआ है । जब उसकी क्षमताओं, योग्यताओं और शक्तियों पर प्रतिबन्ध लगाया तो वे तंद्रित, प्रसुप्त और मूर्छित अवस्था में जा पहुँचीं ।

प्राचीनकाल में जब भारतीय समाज और संस्कृति अपनी उन्नति के चरम शिखर पर थी, तब स्त्रियों के लिए कहीं भी अबला शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता था । प्राचीनकाल के किसी भी ग्रंथ को उठाकर देख लें, उसमें कहीं भी स्त्रियों के लिए अबला या रक्षिता जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं आया है । इस सम्बन्ध में वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ और संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित श्रीपाद दामोदर

इस पर माता कौशिल्या कहती है कि आज्ञापालन के लिए तुम वन जा रहे हो तो यह भी जान लो कि पिता से माता बड़ी है। इसलिए उनकी आज्ञा का उल्लंघन करके भी तुम मेरी आज्ञा मान कर रुक सकते हो। यथा–'जो केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।' लोकमंगल की पूर्ति के लिए वन जाने की आवश्यकता और महत्त्व बताने के बाद ही माता कौशिल्या ने राम को वन जाने की अनुमति दी।

शास्त्रों के अनुसार भगवान् को इस धरती पर अवतार लेने के लिए विवश करने वाली तपश्चर्या में भी सतरूपा की भूमिका प्रथम प्रधान थी। पौराणिक उपाख्यानों के अनुसार मनु शतरूपा के आग्रह पर ही तपश्चर्या के लिए सहमत हुए थे और भगवान् को अवतार लेने के लिए विवश करने की प्रक्रिया में संलग्न हुए थे। तप सफल हुआ। अगले जन्म में शतरूपा कौशिल्या बनी और भगवान् राम के रूप में उनकी गोदी में खेले। इसी प्रकार देवमाता अदिति के आग्रह पर महर्षि कश्यप ने भगवान् को अवतार लेने के लिए प्रेरित करने या बाध्य करने हेतु तप किया। अदिति यशोदा बनी और उन्हें भगवान् को कृष्ण के रूप में गोद में, पालने-पोसने तथा बड़ा करने का श्रेय मिला। राम और कृष्ण बड़े हैं, उन्हें भगवान् के रूप में सर्वत्र माना और पूजा जाता है, पर जिनकी कोख से उन्होंने जन्म लिया, जिनकी गोद में पैर पसारे, जिनका दूध पिया, जिनका संरक्षण और दुलार पाकर ये बड़े हुए उन माताओं का गौरव, उन भगवानों से कुछ कम नहीं अधिक ही है।

देवी मयंता को जब युवावस्था में ही वैधव्य प्राप्त हुआ तो उन्होंने अपना सारा ध्यान अपने पुत्र को एक देव-मानव के रूप में विकसित करने के लिए केन्द्रित किया और उसे महान् विद्वान बनाया। ऋषि दधीचि भी अपनी माता भयन्ता द्वारा ही विद्याध्ययन करके महापण्डित बने थे।

सम्राट् शान्तनु की पत्नी गंगा ने अपने सभी पुत्रों को वसु ब्रह्मचारी बनाया था। विवाह से पूर्व ही गंगा ने शान्तनु से यह समझौता कर लिया था कि उनकी सभी सन्तान ज्ञान और तप, साधना के लिए गंगा तट पर ऋषि आश्रमों में भेज दी जाएँगी। ऐसा ही हुआ भी। भीष्म उनके अन्तिम पुत्र थे। शान्तनु के अनुरोध पर गंगा इस बात के लिए सहमत हो गई कि उन्हें राज्य संचालन के लिए वहीं रहने दिया जाय, किन्तु भीष्म पर माँ के व्यक्तित्व का इतना महान् प्रभाव था, उन पर माँ के ऐसे संस्कार पड़े थे कि साधारण-सी बात का आधार लेकर वे राज्याधिकार से दूर और ब्रह्मचारी ही बने रहे तथा राज्य के शासन चलाने वालों का मार्ग निर्देशन करते रहे।

प्राचीनकाल में माता का स्थान इन्हीं कारणों से सर्वोच्च समझा गया था कि उन्होंने देश को एक-से-एक बढ़े-चढ़े नर-रत्न, महामानव दिए। इसका मतलब यह नहीं है कि नारी की अवनति इस क्षमता के क्षीण हो जाने से हुई। वस्तुतः तो नारी आज भी उसी क्षमता को अपने भीतर सँजोए बैठी है। यह समाज की भूल और दुर्भाग्य ही है कि उस क्षमता को पहचान और विकसित नहीं किया जाता। यदि उसे जाना समझा भी जाता है, तो उसकी उपेक्षा की जाती है अन्यथा माँ के रूप में नारी आज भी अपने परिपूर्ण हृदय से संतान को जो भी दे सकती है, बेहिसाब देती है।

यह सच भी है। शिक्षा शास्त्र और मनोविज्ञान के शोध के निष्कर्ष भी इसी तथ्य का समर्थन करते हैं कि बच्चों को दो-ढाई साल में जितना ज्ञान मिलता है, उतना आगे चलकर पूरे जीवन में कभी नहीं मिलता। अस्तु, आज की परिस्थितियों में भी माता का व्यक्ति के स्वपन पर, परिवार पर और प्रकारान्तर से पूरे समाज पर अनूठा प्रभाव है। उस प्रभाव को न तो नकारा जा सकता है और न ही कम करके आँका जा सकता है। स्पष्ट शब्दों में कहना चाहें, तो कहा जा सकता है कि बच्चे पर प्रभाव की दृष्टि से माता पूरे समाज को प्रभावित करती है। इसलिए उसका स्थान और महत्त्व, प्रभाव और वर्चस्व सर्वोपरि है। इसे स्वीकार किया जाय अथवा नहीं, पर सच्चाई यही है कि संस्कारवान् माताएँ ही उन्नत समाज का निर्माण करती हैं। अतः समाज को ऊँचा उठाने के लिए मातृ-शक्ति को प्रतिष्ठा दी ही जानी चाहिए।

धरा पर स्वर्गीय ज्योति की प्रतिमा नारी

आज जिस नारी को हमने घर की बन्दिनी, परदे की प्रतिमा और पैर की जूती बनाकर रख छोड़ा है और जो मूक पशु की तरह सारा कष्ट, सारा क्लेश, विष घूँट की तरह पीकर स्नेह का अमृत ही देती है, उस नारी के सही स्वरूप तथा महत्त्व पर निष्पक्ष होकर विचार किया जाये तो अपनी ही आत्मा अपने को धिक्कारेगी कि अब और अधिक न सुनना चाहिए और मानवता के नाते, सहधर्मिणी होने के नाते, राष्ट्र व समाज की उन्नति के नाते उसे उसका उचित स्थान दिया ही जाना चाहिए। अधिक दिनों उसके अस्तित्व, व्यक्तित्व तथा अधिकारों का शोषण राष्ट्र को ऐसे गर्त में गिरा सकता है जिससे निकल सकना कठिन हो जाएगा। अतः कल्याण तथा बुद्धिमत्ता इसी में है कि समय रहते चेत उठा जाये और अपनी इस भूल को सुधार ही लिया जाये।

नारी का सबसे बड़ा महत्त्व उसके जननी पद में निहित है। यदि जननी न होती तो कहाँ से इस सृष्टि का सम्पादन होता और कहाँ से समाज तथा राष्ट्रों की रचना होती। यदि माँ न हो तो वह कौन-सी शक्ति होती जो संसार में अनीति एवं अत्याचार मिटाने के लिये शूरमाओं को धरती पर उतारती। यदि माता न होती तो बड़े-बड़े वैज्ञानिक, प्रकाण्ड पंडित, अप्रतिम साहित्यकार, दार्शनिक, मनीषी तथा महात्मा एवं महापुरुष किस की गोद में खेल-

ही रूपों में आदि से अन्त तक अनुदानों से भरी रही है। भगिनी और पुत्री मूर्तिवान कविताएँ हैं, उनसे अधिक पवित्र ममता और पवित्रता कदाचित् ही इस संसार में अन्यत्र कहीं दीख पड़े। गंगा और नर्मदा के दर्शन करके जो श्रद्धा उत्पन्न होती है, उससे सहस्र गुनी सुषमा भगिनी और पुत्री की समीपता सहज ही बिखेर देती है। वे पुष्प की तरह निश्छल और हिम की तरह शीतल होती हैं। कला का उच्चतम उद्गम कभी किसी को देखना हो तो वह इन्हीं गंगोत्री-यमुनोत्री उद्गमों से झरता दृष्टिगोचर होगा।'

गाड़ी के दो पहिए मिलकर गति उत्पन्न करते हैं। दो हाथों से ताली बजती है आदि उपमाओं में नर-नारी की समन्वित का मूल्यांकन किया जा सकता है। एक पंख का पक्षी तथा लँगड़े, काने, बूचे, अर्धांग पक्षाघातग्रस्त मनुष्य की जो उपहासास्पद स्थिति होती है, उससे भी दयनीय स्थिति एकांगी जीवन की होती है। आवश्यकतानुसार कोई अविवाहित रह सकता है, पर माता के अनुदान और पुत्री के सौजन्य को पाये बिना किसी के अन्तःकरण की कली नहीं खिल सकती। सगी माता और सगी पुत्री, भगिनी न हो, पर वह *अन्यत्र से उस अभाव की पूर्ति* करने के लिए व्याकुल रहता है।

यों नारी के लिए भी नर के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है, वह भी उसका प्रतिदान पाती है। अविवाहित रहना नारी के लिए भी कठिन नहीं है। असंख्यों नारी पति के बिना प्रसन्नता का जीवन जी सकती हैं, पर पिता के बिना किसी का गुजारा नहीं। सगा न सही, माना हुआ सही अन्यान्य लोगों के प्रति मातृत्व और पुत्रत्व की मान्यता स्थिर करके नारी को एक अभाव की पूर्ति अनुभव होती है। पति-पत्नी का रिश्ता मध्यवर्ती है और कारणवश उसमें विक्षेप की भी गुंजाइश है पर नर और नारी के बीच बँधे हुए। उपर्युक्त सूत्र ऐसे हैं जिनमें बिना विक्षेप के सघन सद्भाव सूत्र बँधे रह सकते हैं। इन पंक्तियों में चर्चा वरिष्ठता की हो रही है। कनिष्ठ-वरिष्ठ का प्रसंग कभी सामने आया तो सम्मानपूर्ण प्राथमिकता नारी को ही मिलेगी। मनु भगवान् ने उसे पूजनीय इसी दृष्टि से ठहराया है। वह मातृ-शक्ति के प्रत्यक्ष रूप में पूज्य है। माता की तरह पुत्री के चरण-स्पर्श को भी अपनी परम्परा है।

भारतीय महिलाओं के नाम के साथ देवी शब्द प्रयुक्त होता है। देवत्व देने की वृत्ति का संकेत करता है। देव वह, जिसका स्वभाव देने का हो। लेव वह, जो लेने भर में रुचि रखे। नारी जीवन में पाना कम और देना अधिक है। श्रम से लेकर भाव अनुदानों तक उसी का ऋण नर के ऊपर लदा रहता है। स्वभावतया नारी में दया, करुणा, ममता, सेवा, सद्भावना, उदारता, क्षमा जैसी *देव-वृत्तियों* का बाहुल्य रहता है। पाप, अपराध, स्वार्थ और क्रूर कर्मों में उसका भाग न्यूनतम ही रहता है। निष्ठुर नृशंसता के कुकृत्यों में नर ही आगे रहता है, नारी उनसे विरत ही रहती है और नर को भी अपनी सामर्थ्य भर अनाचार से रोकती रहती है। यह देव वृत्ति उसे जन्मजात रूप से ईश्वर प्रदत्त उपहार के रूप में मिली है। अस्तु, देवी शब्द से सम्बोधन हर दृष्टि से उचित ही है। नामकरणों में देवी शब्द की संलग्नता इस दृष्टि से सार्थक ही ठहरती है।

आध्यात्मिक उपासनाओं में प्रातः-सायं सन्ध्या कृत्य को अनिवार्य माना गया है और यह सन्ध्या गायत्री के जप के बिना हो ही नहीं सकती। वेद माता गायत्री को आदि शक्ति के रूप में माना गया है। ज्ञान-विज्ञान सब कुछ उसी में निस्सृत हुआ है। शिखा और सूत्र हिन्दू धर्म के दोनों ही प्रतीक गायत्री के विग्रह हैं। इसके उपरान्त सरस्वती, लक्ष्मी, काली की त्रिविधि देव सत्ता है। शक्ति साधना और शक्तिपीठों के रूप में *अन्यान्य उपासनाओं* का विस्तार हुआ है। देव उपासनाओं में भी उसकी शक्ति को ही सक्रिय-सक्षम माना गया है। प्रकारान्तर से पूरा ही अध्यात्म-विज्ञान शक्ति साधना के रूप में मूर्तिमान है। एकाकी शक्ति पीठ तो है, पर एकाकी देवता हनुमान और एक-दो ही दृष्टिगोचर होते हैं।

तीन प्रत्यक्ष देवताओं में माता, पिता और गुरु का उल्लेख हुआ है। इन तीनों में माता प्रथम है। यह स्थापना इसलिए है कि मनुष्य को अपने प्रथम उपकारकर्ता के प्रति कृतज्ञता-पूर्वक नमन करने का स्मरण सदा ही बना रहे।

नारी ब्रह्म विद्या है, श्रद्धा है, शक्ति है, पवित्रता है, कला है और यह सब कुछ है, जो इस संसार में सर्वश्रेष्ठ के रूप में दृष्टिगोचर होता है। नारी कामधेनु है, अन्नपूर्णा है, सिद्धि है, ऋद्धि है और वह सब कुछ है, जो मानव प्राणी के समस्त अभावों, कष्टों और संकटों का निवारण करने में समर्थ है। यदि उसे श्रद्धासिक्त सद्भावना से सींचा जाय, तो वह सोमलता विश्व के कण-कण को स्वर्गीय परिस्थितियों से ओत-प्रोत कर सकती है।

तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता

माता का स्थान सर्वोपरि है। शास्त्रकार ने 'मातृ देवो भव' का ही प्रथम उपदेश दिया है। इसके बाद स्नातक को पिता और गुरु को देवता मानने का उपदेश है। इस प्रसंग को रामकथा मे बड़े ही मार्मिक ढंग से उभारा गया है। जब भगवान् राम को कैकेई से वचनबद्ध होने के कारण दशरथ ने वनगमन की आज्ञा दी तो राम जाने को तैयार होने लगे। दशरथ हृदय से नहीं चाहते थे कि राम वन को जाएँ और वचनबद्ध होने के कारण दिये गये इस आदेश से उन्हें इतना आघात पहुँचा कि वे बेहोश हो गये। उनकी भावनाओं को ध्यान में रखते हुए राम को माता कौशिल्या वन जाने से रोकने लगी। कौशिल्या ने यह भी समझाया कि दशरथ हृदय से नहीं चाहते कि तुम वन जाओ वरन् यह परिस्थिति किसी विवशता के कारण ही उत्पन्न हुई है। इस पर राम का उत्तर था कि भले ही प्रेम या विवशता से, किसी भी कारण से हो, पिता की आज्ञा का पालन ही मेरे लिए मंगलमय है।

इस पर माता कौशिल्या कहती है कि आज्ञापालन के लिए तुम वन जा रहे हो तो यह भी जान लो कि पिता से माता बड़ी है । इसलिए उनकी आज्ञा का उल्लंघन करके भी तुम मेरी आज्ञा मान कर रुक सकते हो । यथा-'जो केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ।' लोकमंगल की पूर्ति के लिए वन जाने की आवश्यकता और महत्त्व बताने के बाद ही माता कौशिल्या ने राम को वन जाने की अनुमति दी ।

शास्त्रों के अनुसार भगवान् को इस धरती पर अवतार लेने के लिए विवश करने वाली तपश्चर्या में भी सतरूपा की भूमिका प्रथम प्रधान थी । पौराणिक उपाख्यानों के अनुसार मनु शतरूपा के आग्रह पर ही तपश्चर्या के लिए सहमत हुए थे और भगवान् को अवतार लेने के लिए विवश करने की प्रक्रिया में संलग्न हुए थे । तप सफल हुआ । अगले जन्म में शतरूपा कौशिल्या बनी और भगवान् राम के रूप में उनकी गोदी में खेले । इसी प्रकार देवमाता अदिति के आग्रह पर महर्षि कश्यप ने भगवान् को अवतार लेने के लिए प्रेरित करने या बाध्य करने हेतु तप किया । अदिति यशोदा बनी और उन्हें भगवान् को कृष्ण के रूप में गोद में, पालने-पोसने तथा बड़ा करने का श्रेय मिला । राम और कृष्ण बड़े हैं, उन्हें भगवान् के रूप में सर्वत्र माना और पूजा जाता है, पर जिनकी कोख से उन्होंने जन्म लिया, जिनकी गोद में पैर पसारे, जिनका दूध पिया, जिनका संरक्षण और दुलार पाकर वे बड़े हुए उन माताओं का गौरव, उन भगवानों से कुछ कम नहीं अधिक ही है ।

देवी मयंता को जब युवावस्था में ही वैधव्य प्राप्त हुआ तो उन्होंने अपना सारा ध्यान अपने पुत्र को एक देव-मानव के रूप में विकसित करने के लिए केन्द्रित किया और उसे महान् विद्वान बनाया । ऋषि दधीचि भी अपनी माता मयन्ता द्वारा ही विद्याध्ययन करके महापण्डित बने थे।

सम्राट् शान्तनु की पत्नी गंगा ने अपने सभी पुत्रों को वसु ब्रह्मचारी बनाया था । विवाह से पूर्व ही गंगा ने शान्तनु से यह समझौता कर लिया था कि उनकी सभी सन्तान ज्ञान और तप, साधना के लिए गंगा तट पर ऋषि आश्रमों में भेज दी जाएँगी । ऐसा ही हुआ भी । भीष्म उनके अन्तिम पुत्र थे । शान्तनु के अनुरोध पर गंगा इस बात के लिए सहमत हो गई कि उन्हें राज्य संचालन के लिए वहीं रहने दिया जाय, किन्तु भीष्म पर माँ के व्यक्तित्व का इतना महान् प्रभाव था, उन पर माँ के ऐसे संस्कार पड़े थे कि साधारण-सी बात का आधार लेकर वे राज्याधिकार से दूर और ब्रह्मचारी ही बने रहे तथा राज्य के शासन चलाने वालों का मार्ग निर्देशन करते रहे ।

प्राचीनकाल में माता का स्थान इन्हीं कारणों से सर्वोच्च समझा गया था कि उन्होने देश को एक-से-एक बढ़े-चढ़े नर-रत्न, महामानव दिए । इसका मतलब यह नहीं है कि नारी की अवनति इस क्षमता के क्षीण हो जाने से हुई । वस्तुतः तो नारी आज भी उसी क्षमता को अपने भीतर सँजोए बैठी है । यह समाज की भूल और दुर्भाग्य ही है कि उस क्षमता को पहचान और विकसित नहीं किया जाता । यदि उसे जाना समझा भी जाता है, तो उसकी उपेक्षा की जाती है अन्यथा माँ के रूप में नारी आज भी अपने परिपूर्ण हृदय से संतान को जो भी दे सकती है, बेहिसाब देती है ।

यह सच भी है । शिक्षा शास्त्र और मनोविज्ञान के शोध के निष्कर्ष भी इसी तथ्य का समर्थन करते हैं कि बच्चों को दो-ढाई साल में जितना ज्ञान मिलता है, उतना आगे चलकर पूरे जीवन में कभी नहीं मिलता । अस्तु, आज की परिस्थितियों में भी माता का व्यक्ति के-स्वपन पर, परिवार पर और प्रकारान्तर से पूरे समाज पर अनूठा प्रभाव है । उस प्रभाव को न तो नकारा जा सकता है और न ही कम करके आँका जा सकता है । स्पष्ट शब्दों में कहना चाहें, तो कहा जा सकता है कि बच्चे पर प्रभाव की दृष्टि से माता पूरे समाज को प्रभावित करती है । इसलिए उसका स्थान और महत्त्व, प्रभाव और वर्चस्व सर्वोपरि है । इसे स्वीकार किया जाय अथवा नहीं, पर सच्चाई यही है कि संस्कारवान् माताएँ ही उन्नत समाज का निर्माण करती हैं । अतः समाज को ऊँचा उठाने के लिए मातृ-शक्ति को प्रतिष्ठा दी ही जानी चाहिए ।

धरा पर स्वर्गीय ज्योति की प्रतिमा नारी

आज जिस नारी को हमने घर की बन्दिनी, परदे की प्रतिमा और पैर की जूती बनाकर रख छोड़ा है और जो मूक पशु की तरह सारा कष्ट, सारा क्लेश, विष घूँट की तरह पीकर स्नेह का अमृत ही देती है, उस नारी के सही स्वरूप तथा महत्त्व पर निष्पक्ष होकर विचार किया जाये तो अपनी ही आत्मा अपने को धिक्कारेगी कि अब और अधिक न सुनना चाहिए और मानवता के नाते, सहधर्मिणी होने के नाते, राष्ट्र व समाज की उन्नति के नाते उसे उसका उचित स्थान दिया ही जाना चाहिए । अधिक दिनों उसके अस्तित्व, व्यक्तित्व तथा अधिकारों का शोषण राष्ट्र को ऐसे गर्त में गिरा सकता है जिससे निकल सकना कठिन हो जाएगा । अतः कल्याण तथा बुद्धिमत्ता इसी में है कि समय रहते चेत उठा जाये और अपनी इस भूल को सुधार ही लिया जाये ।

नारी का सबसे बड़ा महत्त्व उसके जननी पद में निहित है । यदि जननी न होती तो कहाँ से इस सृष्टि का सम्पादन होता और कहाँ से समाज तथा राष्ट्रों की रचना होती । यदि माँ न हो तो वह कौन-सी शक्ति होती जो संसार में अनीति एवं अत्याचार मिटाने के लिये शूरमाओं को धरती पर उतारती । यदि माता न होती तो बड़े-बड़े वैज्ञानिक, प्रकाण्ड पंडित, अप्रतिम साहित्यकार, दार्शनिक, मनीषी तथा महात्मा एवं महापुरुष किस की गोद में खेल-

खेलकर धरती पर पदार्पण करते । नारी व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र की जननी ही नहीं, वह जगतजननी है । उसका समुचित सम्मान न करना अपराध है, पाप तथा अमनुष्यता है ।

नारी गर्भ धारण करती, उसे पालती, शिशु को जन्म देती और तब तक, जब तक कि वह अपने पैरों नहीं चल पाता और अपने हाथों नहीं खा पाता, उसे छाती से लगाये अपना जीवन रस पिलाती रहती है । अपने से अधिक सन्तान की रक्षा एवं सुख-सुविधा से निरत रहती है । खुद गीले में सोती और शिशु को सूखे में सुलाती है । उसका मल-मूत्र साफ करती है । उसको साफ-सुथरा रखने में अपनी सुध-बुध भूले रहती है । इस सम्बन्ध में हर मनुष्य किसी न किसी नारी का ऋणी है । ऐसी दयामयी नारी का उपकार यदि तिरस्कार तथा उपेक्षा से चुकाया जाता है तो इससे बड़ी शर्म की बात और क्या हो सकती है ।

पत्नी के रूप में उसका महत्त्व कुछ कम नहीं है । नारी पुरुष की अर्धांगिनी है । पत्नी के बिना पति का व्यक्तित्व पूरा नहीं होता । उसी की महिमा के कारण पुरुष गृहस्थ होने का गौरव पाता है और पत्नी ही वह माध्यम है जिसके द्वारा किसी की वंश परम्परा चलती है । यह पत्नी की ही तो उदारता है कि वह पुरुष के पशुत्व को पुत्र में बदलकर उसका सहारा निर्मित कर देती है । पुरुष के प्यार, स्नेह और उन्मुक्त आवेगों को अभिव्यक्त करने में पत्नी का कितना हाथ है इसे सभी जानते हैं । परेशानी, निराशा, आपत्ति अथवा जीवन के निविड़ अन्धकार में वह पत्नी के सिवाय कौन है जो अपनी मुस्कानों से उजाला कर अपने प्यार तथा स्नेह से हृदय में नव-जीवन जगाकर आश्वासन प्रदान करती रहे । पत्नी का सहयोग पुरुष के सुख में चार चाँद लगा देता और दुःख में वह उसकी साझीदार बनकर हाथ बँटाया करती है । दिन भर बाहर काम करके और तरह-तरह के संघर्षों से थककर आने पर भोजन, स्नान तथा आराम-विश्राम की व्यवस्था पत्नी के सिवाय और कौन करेगा ।

पुरुष एक उद्योगी तथा उच्छृंखल इकाई है । परिवार बसाकर रहना उसका सहज स्वभाव नहीं है । यह नारी की ही कोमल कुशलता है जो उसे पारिवारिक बनाकर प्रसन्नता की परिधि में परिभ्रमण करने के लिए लालायित बनाये रखती है । पत्नी ही पुरुष को उद्योग उपलब्धियों की व्यवस्था एवं उपयोगिता प्रदान करती है । पुरुष पत्नी के कारण ही गृहस्थ तथा प्रसन्नचेता बनकर सामाजिक भद्र जीवन बिताया करता है । पत्नी रहित पुरुष का समाज में अपेक्षाकृत कम आदर होता है । परिवारों में सामाजिकता के आदान-प्रदान उन्हीं के बीच होता है । पारिवारिकता तथा पत्नी की परिधि पुरुष को अनेक प्रकार की दुष्प्रवृत्तियों से बचाये रहती है । पत्नी के रूप में नारी का यह महत्त्व कुछ कम नहीं है । यदि आज संसार में नारी का सर्वथा अभाव हो जाये तो कल से ही पुरुष पशु हो उठे, सारी समाज व्यवस्था उच्छृंखल हो उठे और सृष्टि का यह व्यवस्थित स्वरूप अस्त-व्यस्त हो जाये ।

नारियों की धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय सेवाओं के लिए इतिहास साक्षी है जिससे पता चल सकता है कि नारी पुरुष से किसी क्षेत्र में पीछे नहीं है । अनुसूया, गार्गी, मैत्रेयी, शतरूपा, अहिल्या, मदालसा आदि धार्मिक सती, सावित्री, दमयन्ती तथा पद्मावती, वीरबाला, वीरांगनी, लक्ष्मीबाई व निवेदिता, कस्तूरबा प्रभृति नारियाँ राष्ट्रीय व सामाजिक क्षेत्र की प्रकाशवती तारिकाएँ हैं । वेद तथा इतिहास के ग्रन्थों का अनुशीलन करने से पता चलता है कि प्रारम्भिक समय में जब साधनों की कमी होने से पुरुषों को प्रायः जंगलों में आहार सामग्री प्राप्त करने तथा आत्म-रक्षा के कामों में अधिक ध्यान देना पड़ता, तब व्यवस्था, ज्ञान-विज्ञान तथा सभ्यता, संस्कृति सम्बन्धी विषयों में अधिकांश काम नारियाँ ही किया करती थीं । इसलिए अनेक तत्त्ववेत्ता, अन्वेषक मनुष्यों को आदिम सभ्यता की जन्मदात्री नारी को ही मानते हैं । ऐसी महत्त्वपूर्ण तथा जीवनदायिनी नारी की उपेक्षा करना कहाँ तक ठीक है यह विचारणीय विषय है ।

नारी संसार की सुन्दरता तथा शृंगार है । यदि नारी का मोहक रूप न होता तो बर्बर पुरुष बर्बर ही बना रहता । हिंसा, आखेट तथा युद्ध में ही लगा रहता । यह नारी का ही आकर्षण तथा परामर्श था जिसने उसे हिंसा से विरत कर, पशुपालन तथा खेती-बाड़ी के काम में लगाया । उसकी स्नेहमयी करुणा ने ही पुरुष की कठोरता जीतकर उसे सद्गृहस्थ में बदल दिया, पारिवारिक बना दिया । यदि नारी न हो तो पुरुष में न तो सरसता का जागरण होता और न कला-कौशल से प्रेम । रूप की प्यासी उसकी आँख संसार में अपना केन्द्र खोजते-खोजते थककर एक जातीं । आखेट खोज लाने के अतिरिक्त उसकी आँखों का यह मूल्य महत्त्व तथा उपयोग न रहता जिसके आधार पर उसे प्रकृति के सुन्दर दृश्य और आकाश के सुन्दर ढंग अनुभूत करने की चेतना मिल सकी है । नारी के प्रति स्नेह आकर्षण ने पुरुष हृदय से न केवल कला का ही स्फुरण किया अपितु काम को भी जन्म दिया । नारी के रूप में भी नारी का महत्त्व कुछ कम नहीं है ।

नारी अपने विभिन्न रूपों में सदैव मानव जाति के लिए त्याग, बलिदान, स्नेह, श्रद्धा, धैर्य, सहिष्णु का जीवन बिताती रही है । नारी धरा पर स्वर्गीय ज्योति की साकार प्रतिमा मानी गई है । उसकी वाणी जीवन के लिए अमृत स्रोत है । उसके नेत्रों में करुणा, सरलता और आनन्द के दर्शन होते हैं । उसके हास में संसार की समस्त निराशा और कटुता मिटाने की अपूर्व क्षमता है । नारी संतप्त हृदय के लिए शीतल छाया और स्नेह-सौजन्य की साकार प्रतिमा है । नारी पुरुष की पूरक सत्ता है । वह मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति है उसके बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण है । नारी ही उसे पूर्ण बनाती है । जब मनुष्य का जीवन अन्धकार युक्त हो जाता है तो नारी की संवेदना पूर्ण मुस्कान उसमें उजाला बिखेर देती है । पुरुष के कर्तव्य शुष्क जीवन की वह सरसता तथा उजड़ी जिन्दगी की

हरियाली मानी गई है । नारी के वास्तविक स्वरूप पर विचार करने से विदित होता है कि वह पुरुष के लिए पूरक सत्ता ही नहीं, वरन् उर्वरक भूमि के रूप में भी इसकी उन्नति, प्रगति तथा कल्याण का साधन बनती है । स्वयं प्रकृति ही नारी के रूप में सृष्टि के निर्माण, पालन-पोषण और सम्वर्द्धन का कार्य कर रही है । उसका महत्त्व प्रकट करते हुए श्रीमती महादेवी वर्मा ने एक स्थान पर लिखा है-

"नारी केवल माँस-पिंड की संज्ञा नहीं है । आदिम काल से आज तक विकास-पथ पर पुरुष का साथ देकर, उसकी यात्रा को सफल बनाकर, उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शांति भरकर मानवों में जिस व्यक्तित्व, चेतना और हृदय का विकास किया है, उसी का पर्याय नारी है ।"

कहना न होगा कि नारी का सहयोग तथा उसका महत्त्व मानव-जीवन में उन्नति एवं विकास के लिए सदा से अनिवार्य रहा है, आज भी है और आगे भी रहेगा । वह समाज, राष्ट्र, परिवार अथवा व्यक्ति उन्नति नहीं कर सकता, जो किसी भी रूप में नारी का आदर नहीं करता । जो समाज, परिवार अथवा राष्ट्र नारी का, जो कि उनका आधार तथा भक्ति का स्रोत है, अधिकार छीन लेता है, वह पंगु होकर पद-दलित अथवा पतित अवस्था में पड़ा रहता है । शायद इसी कारण शास्त्रकार ने कहा है-

कार्येषुमन्त्री, करणेषुदासी, भोज्येषुमाता, रमणेषु रम्भा ।
धर्मानुकूला, क्षमया, धरित्री ॥

कार्य में मन्त्री के समान सलाह देने वाली, सेवादि में दासी के समान काम करने वाली, भोजन कराने में माता के समान पथ्य देने वाली, आनन्दोपभोग के लिए रम्भा के समान सरस, धर्म और क्षमा को धारण करने में पृथ्वी के समान क्षमाशील ऐसे छह गुणों से युक्त स्त्री इस विश्व का एक दुर्लभ रत्न है ।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने नारी के हास में जीवन निर्झर का संगीत सुना है । जयशंकर प्रसाद ने कहा है-

नारी केवल तुम श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में ॥

माता के रूप मे नारी की महिमा गुणानुवाद करते हुए एक अन्य कवि ने समस्त देव-देवियों को एक ओर रखा है और उनकी तुलना में माता को अकेले एक ओर ।

माता न कुमाता हो सकती,
हो पुत्र कुपुत्र भले कठोर ।
सब देव-देवियाँ एक ओर,
ऐ माँ ! मेरी तू एक ओर ।

इस प्रकार संसार के सभी महापुरुषों ने नारी में उसके दिव्य स्वरूप के दर्शन किये हैं, जिससे वह पुरुष के लिए पूरक सत्ता के ही नहीं, वरन् उर्वरक भूमि के रूप में उसकी उन्नति, प्रगति एवं कल्याण का साधन बनती है । स्वयं प्रकृति ही नारी के रूप में सृष्टि के निर्माण, पालन-पोषण-संवर्द्धन का काम कर रही है । नारी के हाथ बनाने के लिए ही हैं, बिगाड़ने के लिए नहीं । परिस्थितिवश, स्वभाववश नारी कितनी ही कठोर बन जाय, किन्तु उसकी यह सहज कोमलता कभी ओझल नहीं हो सकती, जिसके पावन अंक में संसार को जीवन मिलता है । प्रेमचन्द्र के शब्दों में-"नारी पृथ्वी की भाँति धैर्यवान्, शान्त और सहिष्णु होती है ।"

तात्पर्य यह है कि जिस समाज, देश अथवा परिवार में नारी को उचित अधिकार देकर, उन्नति तथा विकास का अवसर देकर सहयोगिनी बना लिया जाता है, उस राष्ट्र, समाज तथा परिवार में सुख-शान्ति तथा वैभव, समृद्धि के रूप में स्वर्ग की ही स्थापना हो जाया करती है ।

माँ के रूप में नारी, अपनी सन्तान को सब प्रकार से संरक्षण-पोषण देती है । ठीक पृथ्वी की भाँति चपल-चंचल शिशुओं के तमाम उत्पातों को सहती है और उनकी सुख-सुविधाओं की चिन्ता करती है । पृथ्वी की सी उदारता, सहिष्णुता और स्वभाव सिद्ध विशिष्टताओं को नारी ने मातृ रूप में जिस प्रकार आत्मसात् किया है, उसकी तुलना का दूसरा कोई सूत्र अन्यत्र शायद ही मिले ।

पार्वती-शक्ति और वात्सल्य का समन्वित प्रतीक है । जगतजननी के रूप में पार्वती के ममत्व तथा वात्सल्य भरे शक्ति साहस के जितने प्रसंग पुराणों में आते हैं, उतने अन्य किसी भी देवी प्रतीक के नहीं हैं । सन्तान की रक्षा के लिए, उसकी हित कामना से, न केवल सन्तान वरन् पति, भाई तथा घर के अन्य परिजनों के लिए यह जिस धैर्य, साहस, सहिष्णुता या समर्थशीलता का परिचय देती है, पुरुष के लिए तो उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

महिला शब्द में आयी इला संज्ञा का अर्थ-सरस्वती, अर्थात्-विद्या, बुद्धि की देवी । कहना नहीं होगा कि बच्चे जन्म के बाद से कई वर्षों तक अपनी माँ की गोदी में ही बहुत कुछ सीखते हैं । उस समय का शिक्षण सारे जीवन की मेधा प्रतिभा का आधार स्तम्भ बनता है । संसार में जितने भी प्रतिभाशाली, मेधावी और मनुष्य सभ्यता के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान वाले महामानव हुए, उनके निर्माण में प्रायः उनकी माताओं का ही योगदान रहा है ।

पृथ्वी अर्थात्-सहिष्णु, पार्वती अर्थात्-शक्ति और सरस्वती अर्थात्-विद्या बुद्धि । इन तीन देवशक्तियों का जहाँ संगम समन्वय हुआ हो और तीनों के संगम से अनन्त वत्सलता की त्रिवेणी बह रही हो, उसे अबला कहना मनुष्य की अपने आपकी प्रवञ्चना ही होगी, क्योंकि अन्ततः मनुष्य ने जो कुछ भी अर्जित किया है या करता है, उसकी पूँजी वात्सल्य भरे अनुदान ही तो हैं ।

नारी का गौरव बनाम सृष्टि का सौरभ

नारी प्रकृति की बेटी है, सृष्टि की परम सौन्दर्यमयी सर्वश्रेष्ठ कृति है । उसकी आत्मा में प्रेम का प्रसून खिलता है और सेवा का सौरभ समग्र सृष्टि को सुरभित करता है । महर्षि रमण ने उसके इसी औदार्य एवं औदात्य का समाकलन करते हुए कहा है कि—"पति के लिए चरित्र, सन्तान के लिए ममता, समाज के लिए शील, विश्व के लिए दया तथा जीव मात्र के लिए करुणा सँजोने वाली महाप्रकृति का नाम ही नारी है ।"

नर और नारी एक ही आत्मा के दो रूप हैं । महाकवि जायसी के अनुसार तो "स्त्री और पुरुष विश्वरूपी अंकुर के दो पत्ते हैं ।" नारी प्रत्येक दृष्टि से संसार एवं सृष्टि की आराध्य देवी है । कुछ अत्यन्त पिछड़े अथवा असभ्य लोगों को छोड़कर संसार भर में मानवीय विवेक ने एक मत से नर और नारी के दोनों पक्षों को समान सहयोगी, समान कर्त्तव्य एवं समान अधिकार का भागीदार स्वीकार किया है । दोनों की एक जैसी स्थिति मानी है । सरकारी कानून और सामाजिक सम्मान पूर्णतया दोनों के लिए समान हैं । भेदभाव का तो प्रश्न ही नहीं उठता । यदि भेदभाव का औचित्य है भी तो नारी को अधिक सुविधा एवं अधिक आदर देने के पक्ष में है । जहाँ तक प्रजनन का अति महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है इस कष्टसाध्य प्रक्रिया से पुरुष सहज ही बच जाता है, अकेली नारी ही इसे धैर्य एवं निष्ठा के साथ वहन करती है । स्वाभाविक है कि सन्तुलन बनाये रखने के लिए नारी को अतिरिक्त सुविधाएँ इस संदर्भ में प्रदान की गई हैं । जैसे नौकरियों में प्रसव काल का अतिरिक्त अवकाश, बच्चों की संख्या के अनुपात से अतिरिक्त बोनस आदि ।

भारत नारी के प्रति समानता के अधिकार में बहुत आगे बढ़कर, उसके समक्ष श्रद्धावनत होकर उसे विशिष्ट सम्मान प्रदान करता रहा है । यहाँ मातृ-शक्ति को उपास्य, आराध्य माना जाता रहा है । उसके प्रति देव पूजन जैसा उदार व्यवहार बरता जाता रहा है । जननी, धर्मपत्नी, भगिनी एवं पुत्री के चारों रूपों में उसके प्रति भाव भरा सहज सम्मान अभिव्यक्त होता रहा है । अपने देश की महान् एवं दिव्य परम्पराओं के अनादिकाल से लेकर पिछले हजार वर्षों के असुर युग अथवा अन्धकार युग से पहले तक नारी को वरिष्ठ और नर को कनिष्ठ गिने जाने की मान्यता रही है बिहारी ने लिखा है कि—"नारी सब कुछ कर सकती है । राधा ने ही श्रीकृष्ण को, सीता ने भगवान् रामचन्द्र को शक्ति दी थी । शिव भी शक्ति के अभाव में 'शव' हो जाते हैं । यह शक्ति क्या है ? उत्तर मिलेगा नारी।" इसलिए राष्ट्रपिता गाँधी के शब्दों में नारी को 'अबला' कहना उसकी मानहानि करना है । भारतीय ऋषि-मनीषियों ने नारी को असीम श्रद्धा के भाव से देखा है ।

मनुष्य की अन्तरात्मा जिस तत्व के लिए प्यासी फिरती है, वह शरीर की संरचना अथवा उसकी हलचलों में सन्निहित नहीं है, वह तो विशुद्ध रूप से भावनात्मक है । आत्मा की एकमात्र प्यास भावना की है । उसी के लिए प्राणी प्यासा फिरता है । उसी की एक बूँद पाने के लिए तरसता है । पग-पग पर मरने वाला मर्त्य उसी सुधारस को पीकर अमर होता है । माता के, पत्नी के, बहिन के, पुत्री के चार थनों से नारी रूपी कामधेनु अपने बछड़े, मनुष्य को, इसी प्रेमामृत का पयपान कराती है और उसकी अतृप्ति को तृप्ति में बदल देती है ।

जिसकी मस्ती में आत्मा का अणु-अणु आनन्द-विभोर होकर धरती पर स्वर्गीय सुख की अनुभूति कर सके वह सोमरस नारी के अतिरिक्त और कहीं नहीं है ।

उसे कहीं भी उगाया और कहीं भी पाया जा सकता है । यह अनायास ही कहीं नहीं मिलता । इसकी कृषि करनी पड़ती है । विश्वास और सम्मान का खाद, पानी पाकर ही यह स्नेहमयी अमृतलता बढ़ती, पल्लवित, पुष्पित और फलित होती है । अवज्ञा-उपेक्षा से यह लाजवन्ती कुम्हला जाती है । शील ही उसकी शोभा है ।

पददलित, प्रताड़ित करने पर तो उस सुकुमारता का अन्त ही हो जाता है । वह सदासर्वदा स्नेह एवं सौजन्य की साक्षात् देवी एवं संतप्त हृदय की शीतल छाया है । वाल्टेयर के अनुसार—"पुरुष के सारे विचार नारी के एक भावुकता कण की समता नहीं रखते ।" क्योंकि पुरुषों में मात्र दृष्टि होती है और नारियों में अन्तर्दृष्टि । इसलिए जी० डब्ल्यू करटिस का कथन अत्यन्त समीचीन है कि "स्त्री के सम्मान से सभ्यता का परिचय मिलता है ।" वस्तुतः हम परमेश्वर के पश्चात् सर्वाधिक ऋणी किसी के हैं तो नारी के । क्योंकि प्रथम, परमात्मा तो मात्र जीवन देता है किन्तु द्वितीय, मातृ-शक्ति नारी हमें जीने के योग्य बनाती है। इस दिव्य चेतन शक्ति को प्रतिबन्धित एवं शोषित कर कुछ पाने की कल्पना करना निरर्थक है । वह जब क्रुद्ध होती है तो उसकी आँखों में बरसता हुआ अभिशाप दयमन्ती के रूप में कोप से जल मरने वाले व्याध का मूर्तिमान उदाहरण घर-घर में प्रस्तुत करती है । रणचण्डी दुर्गा बनकर महियासुर मर्दिनी की भूमिका का निर्वाह करती है, सीता के रूप में रावण वंश का समूल उन्मूलन तथा द्रौपदी के रूप में कौरवों के अवसान का कारण बनती है । उनका अपमान बर्बरता का प्रतीक है ।

नारी के आज के इस दयनीय स्वरूप को देखकर महर्षि कर्वे ने लिखा था कि—"नारी की उपेक्षा एवं दुर्गति असह्य है । नारी का पिछड़ापन मनुष्यता का अपराध है।" क्योंकि राष्ट्र का निर्माण समाजों से, समाज का निर्माण परिवारों से होता है और परिवार-निर्माण का उत्तरदायित्व नारी पर है । महान दार्शनिक अरस्तू ने नारी की गरिमा का बोध कराने के लिए कहा था—"नारी की उन्नति या अवनति पर ही राष्ट्र की उन्नति या अवनति निर्भर है ।"

नारी जो युग-युगान्तरों से मूकसाधिका के रूप में संसार को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ बनाती आई है, अनादिकाल से ही पुरुष समाज पर नारी का ऋण चला आ रहा है और चलता रहेगा । इस दृष्टि से पुरुष-समाज नारी का कृतज्ञ है; वह उसके ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता, किन्तु नारी की दुर्दशा देखकर आज ऐसा लगता है कि पुरुष आज उसके अनुदानों को भूल बैठा है, फलस्वरूप कृतघ्नता का परिचय दे रहा है । यही आज की सबसे बड़ी सभ्यता, सामाजिकता, नागरिकता एवं मानवता है कि पुरुष नारी के प्रति अपना संकीर्ण दृष्टिकोण बदले और उसके आध्यात्मिक तत्वों से साहस, नैतिकता, सहनशीलता, विवेक, चातुर्य, त्याग, बलिदान, समर्पण आदि से अपने आपको तथा राष्ट्र एवं समाज को सुखी एवं समुन्नत बनाये ।

युग परिवर्तन का भी महान् प्रयोजन पूर्ण करने के लिए सर्वतोभावेन उसी मातृ-शक्ति को जाग्रत करना चाहिए । उसी को बढ़ाना चाहिए और विश्व शान्ति के उपयुक्त वातावरण बनाने की उसी से याचना करनी चाहिए । इस दिव्य शक्ति को प्रतिष्ठित-पूजित किये बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता ।

मानवीय गुणों की साकार प्रतिमा नारी

सेवा धर्म का विवेचन करते हुए आचार्य विनोबा भावे ने एक स्थान पर कहा है- हमें सेवा करनी चाहिए पर निरभिमान होकर । यह भाव भी हमारे हृदय में नहीं आना चाहिए और न यह गुमान कि हम सेवा करते हैं । सेवा की आचार संहिता यदि हम किसी से सीख सकते हैं तो वह है भारतीय गृहिणी । भारत की स्त्री अपने बच्चों के लिए रात में कितनी बार अपनी मीठी नींद को तोड़ती है । बच्चा पेशाब करता है तो वह उसे गीले में से हटाकर सूखे में सुलाती है और जगह न हो तो वह खुद गीले में सोती है, अपने रक्त को दूध के रूप में बच्चे को पिलाती है । इतनी निष्काम सेवा का आदर्श कहाँ मिलेगा ?

इसी तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए साने गुरुजी ने लिखा है-"स्त्री मूर्त कर्मयोग है । उसकी अपनी स्वतन्त्र इच्छा मानो होती ही नहीं । पति और बच्चों की इच्छा ही उसकी इच्छा है । जो पति को अच्छी लगे वही सब्जी बनाओ, बच्चो को जो अच्छे लगें वे पकवान बनाओ । जिस दिन पति घर भोजन नहीं करता तो उस दिन पत्नी स्वयं सब्जी नहीं बनाती । उसे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए । पति को अच्छी लगने वाली साड़ी पहनना, पति को अच्छी लगने वाली पुस्तक पढ़ना, पति को अच्छी लगने वाले गीत गाना आदि-आदि ।

सेवा-भावना ही नहीं सहनशीलता, उदारता, प्रेम, त्याग, सन्तोष, क्षमा, धर्म-बुद्धि, स्नेह और कष्ट सहिष्णुता जितने मानवीय गुण हैं वे सब सामान्य से सामान्य भारतीय गृहिणी में विद्यमान रहते हैं । हालांकि कमजोरियाँ भी हैं और ये वातावरण के संसर्ग से ही आती हैं, लेकिन वे भी ऐसी नहीं है जिनका निराकरण न किया जा सके । यदि थोड़ा सा प्रयत्न किया जाय और स्त्रियों में अन्तर्दृष्टि उत्पन्न की जा सके तो स्त्री मानवता की श्रेष्ठ और सुन्दर ललित प्रतिमा के रूप में ही दिखाई देगी ।

उच्च सम्पन्न और तथाकथित आधुनिक परिवारों की बात छोड़ दें तो भारतीय नारी सहनशीलता में अपना कोई सानी नहीं रखती । बचपन में वह अपने समवय भाइयों को अधिक सुविधाएँ प्राप्त करती हैं और स्वयं कड़ा परिश्रम करने के लिए बात-बात में कड़ी हिदायतें सुनने के लिए विवश पाती है । परन्तु उसका बचपन ऐसे वातावरण में या ऐसी परिस्थितियों में गुजरा होता है कि वह अपना अधिकार माँगना भूल कर, बरता गया अनुचित भेदभाव भी भूल जाने को तैयार कर लेती है । ससुराल में नव-विवाहित जीवन कुछ पुराना हो जाने पर उसके लिए सुरक्षित रहता है-कड़ा परिश्रम और सबके ताने खाने के बाद बचा हुआ भोजन । इस पर भी सामान्य-सी गलती के लिए उसे सास, पति, जेठानी और ननद के उलाहने सुनने को मिलते हैं । वह चुपचाप ही सुन लेती है और कुढ़ती भी है तो इस तरह कि दूसरे को पता न चल पाये ।

इतना होने पर भी वह परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति उदार रहती है । जिनके विकास पर समुचित ध्यान न दिया गया हो वैसी अपवादस्वरूप स्त्रियों की बात और है अन्यथा सामान्य गृहिणी अपने लिए कड़ाई और कटौती तथा पति, बच्चों के लिए उदार रहती हैं । 'अजी अभी तो बहुत रखा हुआ है । मैं इतना नहीं खा सकूँगी । आप ही लीजिये न ।' कहने के साथ-साथ वह अपने हिस्से की चीज भी पति या बच्चों को देती है । सामान्यजन पत्नी के लिए इतना ही कुछ करना पर्याप्त समझते हैं कि यदि स्त्रियों के लिए खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने के लिए पर्याप्त सुविधाएँ जुटा दीं तो काफी हैं । उसे और कुछ नहीं चाहिए ।

यह भ्रान्ति है । अपने हिस्से की चीज भी दूसरे सदस्यों में बाँट देने वाली स्त्री खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने की भूखी नहीं रहती । वह प्रेम की भूखी है, उसे चाहिए स्वच्छ और निर्मल प्रेम । उसकी पात्रता भी वह स्वयं प्रेम का दान कर सिद्ध करती है । यही कारण है कि पति चाहे कितना ही दुराचारी और दुर्व्यसनी हो वह पत्नी की दृष्टि में सदैव अच्छा ही रहता है तथा वह हर स्थिति में अपने पति का निर्वाह कर लेती है । प्रसिद्ध है कि स्वामी श्रद्धानन्द अपने प्रारम्भिक जीवन में मद्यप और वेश्यागामी रहे थे । अन्त तक उनकी पत्नी मुंशीराम को निभाती रही और आज नहीं तो कल सही रास्ते पर आ जायेंगे, यह आशा करती रही । जिस दिन यकायक मुंशीराम की अन्तरात्मा ने उनके पशु को परास्त कर दिया, उस रात शराब पीकर बेहाल हुए पति के सिरहाने पत्नी आप्रभात बैठी रही थी । इतिहास में ऐसे कई प्रमाण मिलते हैं

जबकि स्त्री ने अपने दुराचारी पति को आखिर तक सहा तथा उन्हें गन्दगी के कीचड़ से निकाल कर उज्ज्वल धवलता की ओर अग्रसर किया ।

सुधार के लिए इतनी आशापूर्ण प्रतीक्षा और धीरज उदार आत्मा की अभिव्यक्ति है । पाश्चात्य इतिहास में भी इस गुण के अनेक प्रसंग हैं । प्रसिद्ध नाटककार इब्सन ने अपनी एक पुस्तक में पीरण्ट में एक ऐसे पति का चित्रण किया है जिसके आचरण और गुणों के कारण सब लोग उसकी निन्दा करते थे । यहाँ तक कि वह अपनी पत्नी को छोड़कर वर्षों तक भटकता रहा और जब भटक कर वापस लौटा तो पत्नी ने न कोई शिकवा किया, न शिकायत । उसके होठों पर यही शब्द 'आओ, आ गये तुम? मुझे ऐसा लग ही रहा था कि तुम आ जाओगे । तुम थक गये होंगे । मैं तुम्हें गोदी में सुलाती हूँ और गीत सुनाती हूँ ताकि तुम्हारी थकान दूर हो ।'

अपने सद्व्यवहार द्वारा दूसरे का हृदय परिवर्तन कर उसे सन्मार्गगामी बना देना, किसी पहुँचे हुए योगाभ्यासी और समर्थ सन्त के बस की ही बात है, लेकिन यह भी देखा गया है कि कई स्त्रियाँ अपने पति के आचरण और प्रवृत्तियों की ओर से उदासीन होती हैं । बहुत-सी स्त्रियाँ तो इस बात के लिए संकल्पशील होती हैं कि पति शराब पीता है तो मैं नहीं पीने दूँगी, पति सिगरेट पीता है तो मैं उन्हें रोकूँगी । आरम्भ में सभी स्त्रियाँ इन बातों पर ध्यान रखती हैं, परन्तु पुरुष उसके लचीलेपन का अनुचित लाभ उठाते हुए उन हाथों को रोक देता है जो उसे दुर्व्यसनों में फँसने से रोक देता है ।

दुर्व्यसनों से निकालने के साथ पति के स्वभाव में आये अवांछनीय दुर्गुणों को भी नष्ट करने का निर्देश देते हुए एक विचारक ने लिखा है–"भारतीय स्त्रियों का आदर्श दुर्बल नहीं होना चाहिए, उसे इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि मेरा पति कुछ बुरा-भला तो नहीं करता ? पति गहने पहना रहा है, मेरे लिए रेशमी साड़ी ला रहा है, लेकिन इस वैभव के लिए किसी को नंगा तो नहीं कर रहा है ।" व्यापारी, सरकारी नौकरी, दुकानदारी और ऐसे अन्य पेशों में लगे लोगों की गृहिणियाँ इन बातों का ध्यान रख सकती हैं । उन्हें रखना चाहिए, क्योंकि उनमें वह शक्ति है जो अपने पति को कुमार्ग से सन्मार्ग की ओर अग्रसर कर सकें ।

स्त्रियाँ चाहती तो सभी हैं कि उसका पति स्वस्थ, नीरोग और हृष्ट-पुष्ट रहे । इसके लिए वे अपने पति के खान-पान और आदतों पर निगाह रखती हैं । उसे मानवीय गुणों से सम्पन्न करने की सामर्थ्य भी उसी में है, जिसका उपयोग करना हर स्त्री को आना चाहिए । सामर्थ्य उसमें इसलिए है कि इस सफलता के लिए जो आवश्यक गुण हैं वे उसमें विद्यमान रहते हैं । एक अनजान और अपरिचित लड़की किसी चुम्बकीय आकर्षण से युवक को प्रभावित करती है तो उसके मूल में त्याग और बलिदान ही है । देह का छिछोरा आकर्षण भले है, परन्तु अन्तः-चेतना तो त्याग के सम्मुख ही नतमस्तक होती है अन्यथा तो दैहिक आकर्षण कई बार और कितने ही शरीरों के प्रति होता है, लेकिन जिसे प्रभावित होना कहा जा सके, वह नमनीयता नहीं होती ।

एक स्त्री अपने जीवन में जितना त्याग करती है, पुरुष उतना त्याग सौ जन्मों में भी नहीं कर सकता । अपना घर-बार छोड़कर भगवा पहनने वाले लोगों को हम स्वामीजी, महात्माजी और साधु-सन्त कहकर कितना सम्मान देते हैं । उसकी महानता को आँकने का हमारे पास यही तो मापदण्ड है कि वह घर-परिवार के मोटे बन्धनों को छोड़ सका । इसी मापदण्ड से एक स्त्री किसी महात्मा से कम पात्रा नहीं है । उसे अधिक ही सम्मान मिलना चाहिए । साधु बाबा तो घर छोड़ कर सभी दायित्वों से बरी हो जाते हैं, पर स्त्री अपने बचपन की सहेलियों को, माँ-बाप, भाई-बहिनों को छोड़कर एक नये मोड़ के निर्माण का दायित्व ग्रहण करती है । साधु-सन्तों को अपने त्याग का अभिमान रहता है और वे अपने अहं पर जरा भी चोट नहीं सह सकते, पर स्त्री को न तो कोई अभिमान होता है और न उसका कोई अहं । उसका अहं परिवार के साथ घुल-मिल जाता है तथा परिवार का हित ही उसका हित बन जाता है । अब पुरुष घर छोड़कर संन्यासी बनकर भी उसके त्याग को कहाँ पहुँचाया जा सकता है ?

पवित्रता के मामले में भी भारतीय स्त्रियों से ही पुरुष को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए । सफाई-स्वच्छता, सुलक्षण और सुरुचि केवल कहने-सुनने की ही नहीं, करने और रखने की अपेक्षा है । भारतीय परिवार का मुखिया साफ कपड़े पहनने के लिए अपनी पत्नी पर ही निर्भर रहता है । अपने कपड़े आप साफ करना उसके लिए लज्जा की बात है और ऐसे लोगों की संख्या भी अँगुलियों पर गिनी जा सकती है जो और बातें तो अलग रहीं कपड़े धोना भी ठीक जानते हों । विवाह से पहले माँ-कपड़े साफ करती है तो विवाह के बाद पत्नी । अधिकांश लोगों की यही दशा होती है । पत्नी यदि कुछ दिन मायके चली जाय तो मकान की सफाई करना और झाड़ू निकालना भी फालतू वक्त में किया जाने वाला काम लगता है ।

बाहरी स्वच्छता पवित्रता ही नहीं आन्तरिक स्वच्छता और शील-शुचिता का आदर्श भी स्त्रियों से ही सीखना चाहिए । वह पुरुष की तरह क्षण भर में किसी से घृणा-प्रेम करना नहीं जानती । उनके सम्बन्ध में यह सूक्ति आज भी चरितार्थ होती है कि स्त्री पिता के घर से डोली में बैठकर पति के घर जाती है तो वहाँ से अर्थी ही निकलती है । कहने का अर्थ यह है कि एकनिष्ठा के क्षेत्र में भारतीय स्त्री के पास कोई भी बराबरी से नहीं बैठ सकता, यहाँ तक कि स्वयं उसका ही पति भी ।

निष्ठा के माध्यम से भारतीय स्त्री ने ही संस्कृति को स्थिर रखा है । समय-समय पर स्थापित आदर्श और मान्य जीवन मूल्य उसी के सहारे जीवित रहते हैं । समाज ने जो भी नयी परम्पराएँ प्रचलित कीं, उन्हें स्त्री ने ही सुदृढ़

आधार दिया। घर में उसकी प्रतिष्ठा हुई तो स्त्री आज तक इस परम्पर को जीवनदान देती जा रही है। पवित्रता का महत्त्व दिया गया तो उसकी गरिमा को बढ़ाया। आहार शुद्धि पर जोर दिया गया तो स्त्री ने किसी दूसरे को चूल्हे पर हाथ नहीं रखने दिया। पतिव्रता का आदर्श बना तो पुरुष पत्नीव्रत में भले ही पिछड़ गया हो, पर इस आदर्श को नारी ने ही पराकाष्ठा पर पहुँचाया। दान, धर्म को महत्ता दी गयी तो घर आये अतिथि से लेकर भिखारी तक को बिना खाये और खाली हाथ न जाने देने के लिए वह आज भी दृढ़ प्रतिज्ञ है।

अन्यान्य मानवीय गुण भी उसमें व्यावहारिक रूप से प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। जो कुछ कमियाँ हैं उन्हें भी यदि परिष्कृत किया जा सके तो भारतीय नारी की क्रियाशीलता हमारे देश को ऊँचा और महान् बना सकती है, पर वर्तमान विशेषताओं से भी तो पुरुष को कुछ सीखना चाहिए या वह अन्य देशों की तुलना में भारतीय नारी को पिछड़ेपन की गालियाँ ही देता रहेगा

अर्द्ध नारी-नटेश्वर तत्वज्ञान

पुरातत्व विभाग ने ऐसी अनेकों प्रतिमाएँ शोध उत्खनन में प्राप्त की हैं जो ताण्डव नृत्य की तरह अर्द्धनारी-नटेश्वर के रूप में भी हैं। लगता है सर्वप्रथम शिव प्रतिमा पवित्र नदियों में पाये जाने वाले लिंग स्तर के पाषाणों से ही बनी थीं। वैष्णव सम्प्रदाय में जिन पाषाण खण्डों में चौड़ाई अधिक देखी, उन्हें शालिग्राम बना दिया। जिनमें लम्बाई का अनुपात ज्यादा था, उन्हें शिवलिंग की तरह प्रयोग किया गया।

मूर्तिकला का जब से विकास हुआ, तब से कला की दृष्टि से शिव अधिक पुरातन हैं और विष्णु उसके उपरान्त के। विष्णु की चतुर्भुजी प्रतिमाएँ बनीं। लक्ष्मी उनके साथ हैं। आयुध और वाहनों को देखते हुए विष्णु को भौतिक स्मृति का प्रतीक माना है और शिव को योग का, तप का प्रतीक। इन्हीं दोनों के मिलन को अध्यात्म कहते हैं। शिव का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संकेत इसी दिशा में है।

अध्यात्म का उद्‌गम मृत्यु चिन्तन से आरम्भ होता है। जिन्हें अपना जीवन लाखों-करोड़ों वर्ष जितना लगता है, उन्हीं को वासना, तृष्णा और अहन्ता दबोचती है। वे ही हर्ष से इतराते और लिप्साओं के साथ, गुड़ के साथ चींटे की तरह चिपकते हैं। पीछे भले ही उन्हें सिकन्दर की तरह पछताना और दौलत साथ जाने का कोई संयोग न बनते देखकर मृत शरीर के हाथ ताबूत से बाहर निकालने पड़ें।

शिव ताण्डव में प्रलय काल का पूर्वाभास है। उनका निवास मरघट में; विष कण्ठ में, सर्प भुजाओं में लिपटे रहने से मृत्यु की प्रधानता ही दर्शाई गई है। गले में मुण्ड माला, कटि प्रदेश में व्याघ्र चर्म, हाथ में त्रिशूल, भस्म लेपन; यह सारा सरंजाम ज्ञानवान् को एक ही बोध कराता है कि मृत्यु को कच्चे धागे से बँधी हुई सिर पर लटकती तलवार समझा जाये और मरण की पूर्व तैयारी करके इतना निश्चित रहा जाय कि शरीर बदलते और परिकर का परित्याग करते समय कुछ भी अप्रत्याशित न लगे। ब्रह्मा-सृजन के, विष्णु पालन के देवता हैं, पर शिव तो परिवर्तन मरण की ही व्यवस्था करते रहते हैं। इस तथ्य को जो ध्यान में रख सकेगा, वह भगवान की सर्वोत्तम अनुकम्पा के रूप में मिली काया का दुरुपयोग न करेगा। एक-एक साँस को हीरे-मोतियों से बढ़कर समझते हुए उसका श्रेष्ठतम सदुपयोग करेगा।

महान् जीवन की सम्भावनाओं का परित्याग करके मनुष्य क्यों हेय जीवन जीता है। इसकी गहराई में उतरने पर प्रतीत होता है कि समस्त भव-बन्धनों की जड़ कामुकता है। उसके साथ जुड़ी हुई सरसता के प्रति मनुष्य इतना अधिक आसक्त हो जाता है कि फिर आगे-पीछे का कोई विवेक उसके हाथ नहीं रहता। यौनाचार के साथ प्रजनन जुड़ा हुआ है और वह इतना बोझिल तथा इतना जटिल है कि उन्हें सुलझाने, सँभालने में मनुष्य का कचूमर निकल जाता है और ऐसा कुछ करने, धरने के लिए मन एवं अवकाश नहीं रहता जिसे महान् कहा जा सके। पेट और प्रजनन के दो चक्की के पाटों में गेहूँ के बीच फँसे हुए घुन की तरह लोग पिसते और बिलखते रहते हैं।

इस स्थिति से कैसे उबरा जाय? क्या नारी से सर्वथा पृथक् रहा जाय? वैरागी की तरह एकाकी भ्रमण किया जाय? काम दमन में अपनी शक्ति को जुटाया जाय? यह सभी काम अति कठिन हैं और प्रकृति-व्यवस्था के प्रतिकूल भी।

इस गुत्थी का समाधान करता है शिव का अर्द्ध नारी-नटेश्वर रूप। इस प्रकार की पुरातन प्रतिमाओं में आधा अंग नारी का और आधा नर का दिखाया गया है। इस कल्पना में कितने ही भाव छिपे हुए हैं।

एक यह कि नारी और नर एक ही मनुष्य जाति के दो अविच्छिन्न अंग हैं। उनके अधिकार और कर्त्तव्य समान हैं। दोनों को एक संयुक्त इकाई माना जाय। जिस प्रकार हाथ-पैर आदि अंग-अवयव मिलकर एक होते हैं उसी प्रकार नर और नारी की सत्ता पृथक्-पृथक् होते हुए भी उन्हें सम्मिलित इकाई माना जाय। उन्हें वैयक्तिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टि से एक करके माना जाय। किसी को किसी से छोटा-बड़ा न माना जाय, दोनों हिल-मिलकर एक रहें। इस प्रकार रहें जिसमें किसी को किसी से न्यूनाधिक न माना जाय। किसी को वरिष्ठ–कनिष्ठ न माना जाय। गाड़ी के दो पहिए जिस प्रकार समान होते हैं, उसी

प्रकार दोनों के बीच घनिष्टता एवं कर्तव्य उत्तरदायित्व की भावना में कहीं कोई न्यूनाधिकता न रहने पाये ।

दूसरा भाव आत्मीयता का है । एक परिवार के सदस्य एक इकाई बनकर रहते हैं । सब के बीच आत्मीयता इस सीमा की रहती है कि परायेपन में जो कामुकता उत्पन्न होती है, वह घर में प्रवेश नहीं कर पाती । सगी बहिन, सगी बेटी, सगी माता के प्रति कामुकता का उद्वेग नहीं होता, उसी प्रकार धर्मपत्नी के प्रति भी अपनापन रहे । दो पुरुष मित्रों या नारी मित्रों से साथ-साथ रहने पर कामुकता की कुदृष्टि नहीं उभरती, उसी प्रकार निजी धर्मपत्नी को अपने शरीर का ही एक अंग मानकर उसके प्रति भावनाएँ ऐसी ही उठें जैसे अपने निज के शरीर को देखकर उठती हैं । मल-मूत्र त्याग के समय अपनी जननेन्द्रिय पर दृष्टि पड़ती है, पर इतने भर से कोई उद्रेक नहीं उठता । फिर पत्नी को अपना ही अंश मानकर उसे स्वस्थ-सुविकसित करने का ही भाव मन में क्यों रहे ? उसका शरीर गलाने और अपनी जिम्मेदारियाँ बढ़ाने के लिए मन क्यों ललके ?

सामुदायिक रूप से भी ऐसी ही मान्यता रखी जा सकती है । एक ही सड़क पर एक ही रेल में अनेक नर नारी साथ-साथ चलते हैं, सभी आपस में हँसते-हँसते बात करते जाते हैं । पर उस समुदाय में कुदृष्टि से देखने का मन किसी का भी नहीं होता । ऐसी ही मनोदशा नर-नारी के बीच में भी रखी जाय, दोनों एक दूसरे को अपने ही वर्ग के समझें और भेद-बुद्धि न करें, यह पूर्णतया सम्भव है ।

नर और नारी एक दूसरे की अपूर्णता दूर करते हैं । मिलकर मनुष्य जीवन के अनेक पक्षों को पूरा करते हैं । उसकी इस योग्यता का सदुपयोग इसलिए नहीं हो पाता कि काम-कौतुक के वशीभूत होकर एक नया जाल-जंजाल बुन लेते हैं । अतएव नारी को घर की चारदीवारी में बच्चों की देखभाल के लिए आजीवन कैद रहना पड़ता है । न वह अपनी शारीरिक, मानसिक, आत्मिक प्रगति कर पाती है और न ही देश, धर्म, समाज-संस्कृति के लिए कुछ कहने लायक काम कर पाती है । नारी के लिए बच्चे बन्धन होते हैं और नर के लिए बच्चे ही नहीं, नारी भी बन्धन हो जाती है । वह चाहे कि कुछ युग-धर्म का निर्वाह करने के लिए, समाज को ऊँचा उठाने के लिए कुछ कहने लायक काम कर सकें तो इसके लिए उसके पास न समय बचता है, न मन, न साधन । ऐसी दशा में कामुक विवाह बन्धन रूप ही सिद्ध होते हैं और एक दूसरे की कोई कहने लायक सेवा-सहायता नहीं कर पाते ।

अर्द्ध नारी नटेश्वर की शिव प्रतिमा व्यक्ति और समाज को यही उच्चस्तरीय शिक्षण देती है कि कामक्रीड़ा की अपेक्षा आत्मीयता विकसित करें और एक-दूसरे की सत्ता के सम्मिश्रण से एक विशिष्ट शक्ति उत्पन्न करें ।

नारी की गरिमा नमन करने योग्य

अणु में एक मध्यवर्ती केन्द्र सत्ता होती है, जिसे नाभिक कहते हैं । उसके इर्द-गिर्द उसकी सहायक इकाइयाँ जुड़ी रहती हैं । शक्ति का स्रोत नाभिक में होता है । इस परिवार के सहारे नाभिक को अपनी क्षमता विस्तृत एवं प्रत्यक्ष करने का अवसर मिलता है । अणु परिवार के भीतर पाई जाने वाली प्रचण्ड सत्ता और क्षमता का यही स्वरूप है ।

मनुष्य को एक अणु कहा जा सकता है । नर उसका कलेवर और नारी उसका नाभिक है । उत्पादन की समस्त क्षमता उसी में है । परिपोषण, संरक्षण और अभिवर्द्धन भी उसी के माध्यम से होता है । यों पूर्ण मनुष्य नर और नारी के दो घटकों के मिलने से ही बनता है । फिर भी यदि दोनों का पृथक् विश्लेषण करना पड़े तो वरिष्ठता सहज ही नारी के हिस्से में चली जाएगी ।

मनुष्य जिसमें नर और नारी दोनों ही सम्मिलित हैं, जननी के उदर में से पैदा होता है । वहाँ से काय पिण्ड आवश्यक सामिग्री खींच-खसोटकर बढ़ता और जन्म लेने की स्थिति तक पहुँचता है । स्तनपान उसका प्रथम परिपोषण है । असहाय-अशक्त के लिए अपने बलबूते जीवित रह सकना कठिन है । जीवन देने का ही नहीं, उसके संरक्षण और अभिवर्द्धन का उत्तरदायित्व भी वही उठाती है । स्वभाव और संस्कारों के संचय में जितना प्राप्य समस्त संसार से समस्त जीवन में होता है उतना अकेली जननी ही भ्रूण धारण से लेकर पाँच वर्ष तक की आयु में ही पूरा कर देती है ।

बड़े बालकों के साथी-सहचर कई प्रकार की क्षमताएँ विकसित करने में सहायता करते हैं, किन्तु बहिन के सहचरत्व से उसे शालीनता, कोमलता, सज्जनता सीखने का अवसर मिलता है । माता के वात्सल्य में पर्वत जैसी ऊँचाई है; किन्तु बहिन समानता के स्तर की पवित्रता दे सकने में अनुपम है । भगिनी के माध्यम से भाई को शालीनता सम्बर्द्धन मे जो योगदान मिलता है, भले ही मूल्यांकन की कसौटी खोटी होने से उसका महत्त्व न समझा जा सके तो भी वस्तुतः है यह अद्‌भुत ही ।

पत्नी न तो कामिनी है और न दासी । न वह भोग्या है और न चल सम्पत्ति । अन्तस् की प्यास से लेकर घुटन तक के लदने वाले भारो को हलका करके वह कितनी राहत देती है, इसका पता तब चलता है, जब दुर्भाग्यवश उसका बिछोह हो जाय और एकान्तवासी जैसा जीवन जीना पड़े । दोनों पहिये ठीक चलने तक कुछ ध्यान नहीं जाता, पर एक पहिये के टूट जाने पर पता चलता है कि प्रगति का रथ अवरुद्ध होकर ही रह गया । भोजन, वस्त्र से लेकर सुविधा-विनोद के साधन तो बाजार में भी खरीदे जा सकते हैं, किन्तु अच्छे स्वरूप को प्रकट करना और

दुर्बलता पर सहानुभूति का मरहम लगाना, पत्नी के अतिरिक्त और किसी के लिए सम्भव नहीं हो सकता है । मित्रता की हर कसौटी पर सही उतरने का दावा पत्नी के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता ।

पुत्री, पुत्री क्या है ? कोमलता, सुषुमा, सरलता, सरसता के साथ परम पुनीत पवित्रता की मूर्तिमान, मन्दाकिनी । उसे स्वर्ग लोक से उतरने वाली सौम्य सात्विकता की देव-गंगा कहा जा सकता है । शास्त्र ने 'दश पुत्र समा कन्या' की उक्ति में इस महान् सत्य का उद्घाटन किया है कि पुत्र के लिए घर का दीपक, पिण्ड दाता वंशधर कहना अज्ञानमूलक है, जबकि कन्या से जिस मृदुल संवेदनाओं की उपलब्धि होती है, वह पुत्र की तुलना में दस गुनी ही नहीं, वरन् उससे कहीं अधिक है ।

नारी धरती है, नर उससे उत्पन्न होने वाले पौधे । नर बढ़ता है, किन्तु उसकी जड़ें सींचने में नारी का सरस समर्पण ही आदि में अंत तक भरा रहता है । धरती की गरिमा को नमन किया जाता है । नारी के लिए कण-कण में कृतज्ञता भरे रहना, वही नर के लिए उपयुक्त है ।

नारी की महत्ता को समझा जाय

मनुष्य का जीवन दो धाराओं का सम्मिलन है, यह दो धाराएँ नर और नारी कही जाती हैं । दिन और रात महाकाल के दो विभाग हैं । इन दोनों के सम्मिश्रित एवं संतुलित क्रम से ही सृष्टि व्यवस्था चलती है । यदि इनमें से एक ही रहे, दूसरा नष्ट या क्षीण हो जाय तो जीवों का जीवित रहना ही सम्भव न रहे । इसी प्रकार अन्न-जल, निद्रा-जागरण, जन्म-मरण के जोड़े भिन्न प्रकार के होते हुए भी मिलकर एक क्रम व्यवस्था का निर्माण करते हैं । दो धागे या तिनके मिलाकर बँटने से ही रस्सी बनती है । यदि वह दो नहीं केवल एक ही धागा या तिनका हो तो रस्सी न बन सकेगी । ऋण और धन-निगेटिव और पोजिटिव, दो विद्युत धाराएँ आपस में न मिलें तो बिजली की जो प्रचंड शक्ति विभिन्न क्षेत्रों में काम करती है अपने अस्तित्व तक का परिचय देने में समर्थ न हो ।

नर और नारी का भी जो जोड़ा इसी प्रकार का है । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । दोनों के संतुलित सहयोग से ही एक स्वस्थ मानव जीवन विनिर्मित होता है । इसी संतुलन के आधार पर गृहस्थ जीवन की ही नहीं, सारे सामाजिक जीवन की सुव्यवस्था भी निर्भर है । इन दोनों में एक विकसित दूसरा अविकसित रहे, एक उन्नत दूसरा अवनत रहे तो पंगे, लँगड़े, काने, टोटे, अर्धांग बात रोग से पीड़ित मनुष्य की तरह कुसमता और अपूर्णता ही दिखाई पड़ेगी । सृष्टि संचालन की महत्वपूर्ण प्रक्रिया नर-नारी के संयोग पर निर्भर है । प्रकृति ने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए इन दोनों को अलग-अलग बनाकर भी एक सुदृढ़, स्नेह एवं आकर्षण के धागे से सींच दिया है । इतना ही नहीं–दोनों में ऐसे अभाव भी रखे हैं, जिन्हें पूरा करने के लिए उनका पारस्परिक सहयोग आवश्यक हो गया है । जिस प्रकार नर-नारी का असहयोग रहने से सृष्टि क्रम आगे चलना बन्द हो सकता है, उसी प्रकार पारस्परिक प्रेम एवं सह-विकास के बिना गृहस्थ की गाड़ी भी टूटे पहिए के छकड़े की तरह चरमर कर गिर सकती है और लकड़ियों का एक ढेर मात्र रह सकती है ।

मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में नारी का सहयोग नितान्त आवश्यक है । यह सहयोग जितना ही हार्दिक, जितना ही वास्तविक, जितना ही सक्रिय और जितना ही संतुलित होगा, उतना ही जीवन की विभिन्न दिशाओं में प्रगति सम्भव रहेगी । ऐसा सोचा जाता है कि व्यवसाय क्षेत्र की सफलता पुरुष के अपने प्रयत्न पर निर्भर है, उसमें स्त्री का कुछ विशेष योग नहीं है । स्त्री तो गृह व्यवस्था में ही सहायक हो सकती है, पर यह बात भी आंशिक रूप से ही सत्य है । स्त्री की उपयोगिता के बारे में आमतौर से इतना ही सोचा जाता है कि वासना तृप्ति, शिशुपालन और गृह-प्रबन्ध के लिए उसकी आवश्यकता है, पर वस्तुतः उसका क्षेत्र इससे कहीं बड़ा है । नारी का सबसे बड़ा प्रभाव पुरुष के मनःक्षेत्र पर पड़ता है । आशा, उत्साह, प्रसन्नता, स्फूर्ति, सन्तोष आदि जीवन के बहुमूल्य तथ्यों को नारी के द्वारा दिए गए वरदान कहें तो अत्युक्ति न होगी । एक सुविकसित सच्ची जीवनसंगिनी नारी जिसे प्राप्त हुई हो उसे इन वरदानों की प्राप्ति होनी ही चाहिए ।

वासना तृप्ति, शिशु-पालन और गृह प्रबन्धों के लिए समाज में ऐसी अनेक सुविधाएँ मौजूद हैं जिसके द्वारा कुछ थोड़ा अधिक खर्च करके वह तीनों ही सुविधाएँ मिल सकती हैं । वेश्यावृत्ति मौजूद ही है, शिशुपालन और शिक्षण के लिए सुप्रबन्ध, सज्जित संस्थाएँ मौजूद हैं । अपने संतान न हो तो संसार में इतने गरीब और बहु-संतान से दुःखी व्यक्ति मौजूद हैं जो खुशी-खुशी अपने बच्चों को गोद रखने के लिए दे सकते हैं । होटलों में चाहे जैसा भोजन तैयार है, गृह प्रबंध तो बड़े घरों में आमतौर से नौकरों पर निर्भर रहता ही है । इन कार्यों के लिए धर्मपत्नी का होना अनिवार्य नहीं है, यह कार्य उसके बिना भी चल सकते हैं । यह बात अलग है कि पत्नी सस्ती पड़ती है और बाहर इन कार्यों के लिए कुछ अधिक खर्च करना पड़े । यदि उन्हीं बातों तक नारी की उपयोगिता सीमित होती तो केवल गरीब लोग ही सस्तेपन की दृष्टि से विवाह के झंझट को सिर पर ओढ़ते । अमीर लोग अपनी स्वच्छन्दता में नियंत्रण डालने वाले और अगणित उत्तरदायित्वों से लदे हुए विवाह बन्धन में बँधने के लिए तैयार न होते ।

नर और नारी दोनों की अन्तरात्मा का निर्माण कुछ ऐसे विचित्र ढंग से हुआ है कि उनके उल्लेख का प्रस्फुरण

एक दूसरे के अन्तःस्पर्श से ही होता है । इस संयोग के
बिना दोनों खोये-खोये से रहते हैं । दोनों को कोई अज्ञात
अभाव हर घड़ी खटकता रहता है । वयस्क
कुमार-कुमारी इस उल्लास की तलाश में तृषित नेत्रों से
इधर-उधर झाँकते देखे जाते हैं । विधुर और विधवाएँ
जिनका साथी बिछुड़ गया है एक दर्द, टीस, वेदना, पीड़ा
और कसक को अपने कलेजे में छिपाये फिरते हैं । समय-
कुसमय जब उनकी यह हूक प्रबल हो जाती है तो उनके
भीतर असह्य ऐंठन होती है, इसका वर्णन न तो शब्दों में
सम्भव है और न व्याख्या करके किसी को समझाया जा
सकता है । इसे तो केवल भुक्तभोगी ही जानते हैं ।

नर का रोम-रोम नारी की अनुकम्पा का मन्हा-सा
खिलौना मात्र है । पिता के एक बूँद पानी मात्र से लेकर
माता ने बच्चे को अनन्त दान दिया है । उसको अपने खून
में से खून, माँस में से माँस, प्राण में से प्राण का दान नौ
महीने तक अजस्र रूप से जारी रखा, तब उसका शरीर
इस योग्य बन पाया कि धरती पर पैर रखकर यहाँ की
परिस्थितियों को सहन कर सके । इसके बाद भी उसका
यह दान समाप्त नहीं होता । अपनी छाती के यह खारी
और लाल खून को बच्चे की प्रवृत्ति के अनुकूल न पाकर
वह उसे सफेद रंग में मीठे स्वाद में बदलती है और दूध
के रूप में पिलाती है । इतना ही नहीं उसने अपने आपको
उसकी आत्मीयता के के रंग से इतना रँग दिया कि यही
पता नहीं चलता कि बच्चे और वह एक है या दो । बच्चा
जब कपड़ों में टट्टी कर देता है, पेशाब कर देता है, तब
उसे उतना ही क्रोध नहीं आता जितना स्वयं बीमार हो
जाने पर, अपना मल-मूत्र कपड़ों में निकल जाने पर
आता । बच्चा बीमार हो जाता है तो वैसी ही बेचैनी
अनुभव करती है जैसी किसी को स्वयं अपने बीमार होने
पर हो सकती है । इस सृष्टि में माता की उदारता,
आत्मीयता और अनुकम्पा अद्वितीय कही जाती है ।

नारी दान की मूर्ति है । वह बालक को जो देती है
,वह प्रकट है, क्योंकि लोग जानते हैं कि उसे यहाँ देने
वाला और कोई नहीं है । पर वह पति को भी जो देती है
वह पुत्र से किसी भी प्रकार कम नहीं है । भूल उसके
मूल्यांकन में होती है । जो मानसिक वरदान नारी अपनी
अन्तरात्मा को निचोड़ कर पति को देती है, उसे लोग सोच
नहीं पाते, समझ नहीं पाते । बालक के प्रतिदान की भाँति
उनका प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है, इसलिए लोग समझते हैं कि
यह सब उन्होंने स्वयं उपार्जित किया है, पर तथ्य यह नहीं
है । वास्तविकता यह है कि माता से प्रति-दिन पाने के
बाद बालक में जो कमी रह गई थी उसकी पूर्ति वह पत्नी
से करता है, तब वह इस योग्य बनता है कि उसे एक
सुविकसित, सुसंस्कृत मनुष्य कहा जा सके ।

पौधा कोई भी क्यों न हो, उसे उपयुक्त भूमि की एवं
पानी की आवश्यकता होती ही है । उसके बिना उसका
विकास सम्भव नहीं । इसी प्रकार व्यक्ति के मानस संस्थान
का उचित विकास होने के लिए माता तथा नारी का
अभीष्ट सहयोग अपेक्षित है । इन पंक्तियों में अभीष्ट सहयोग
से मतलब माता के लाड़-चाव से, पालन-पोषण और पत्नी
के वासना तृप्ति करने से नहीं है । यह तो आमतौर से होता
ही होता रहता है । माता अपने आन्तरिक संस्कारों को
बालक के जन्म में पूर्ण पर्याप्त मात्रा में उसके मन,
मस्तिष्क, हृदय या नाड़ी संस्थान में भर देती है । बच्चे की
प्रकृति का आधे से अधिक भाग उसके जन्म से पूर्व बन
चुका होता है । शेष आधा ही सत्संग, स्वाध्याय,
वातावरण, अनुकरण आदि के आधार पर बनता है । यदि
माता ने बालक का निर्माण केवल शरीर तक ही सीमित
नहीं रखा है उसे अपने उच्च संस्कार भी प्रदान किये हैं तो
यह माना जाएगा कि निर्माण में उसने अभीष्ट सहयोग दिया
है । इसी प्रकार पत्नी ने वासना और व्यवस्था तक ही
सीमित न रहकर यदि पति की अन्तरात्मा को छुआ है,
उसकी प्रसुप्त मनोभूमि को सुविकसित करने में प्रसन्नता,
उत्साह, आशा, स्फूर्ति, धैर्य, साहस आदि गुणों को
प्रस्फुटित करने में योगदान दिया है तो इसे भी अभीष्ट
सहयोग कहा जाएगा । जिस व्यक्ति को सहृदय और
सुसंस्कृत माता एवं पत्नी प्राप्त हुई है उसे सब प्रकार
सौभाग्यशालिनी ही कहा जा सकता है और इन दोनों के
द्वारा उसका अंतस्तल इतना विकसित हो गया होता है कि
वह जीवन की किसी भी दिशा में आशाजनक प्रगति कर
सकता है और बड़ी से बड़ी कठिनाई के साथ हँसते-हँसते
टक्कर ले सकता है ।

उपार्जन, उन्नति और प्रसन्नता के अनेकों साधन
जुटाने के लिए हम दिन-रात जी जान से प्रयत्न करते हैं ।
फलस्वरूप बहुत कुछ उपकरण जुटा भी लेते हैं, परन्तु
उनका प्रभाव केवल बाहरी जीवन तथा इन्द्रियों की
प्रसन्नता तक ही सीमित रहता है । अन्तस्तल को छूने और
विकसित करने वाली वस्तु उसमें से कोई नहीं होती ।
मनुष्य की महानता उसकी साधन-सामिग्री पर नहीं, वरन
उसके आन्तरिक गुणों पर निर्भर करती है । अनेक
व्यक्तित्व के, आन्तरिक दुर्बलता और हीनता की भावना से
ग्रसित व्यक्ति कोई कहने लायक उन्नति नहीं कर सकते ।
ऐसे भाग्य से अनायास ही कोई लाभदायक अवसर प्राप्त हो
हो जाय तो वह स्थिति देर तक कायम नहीं रह सकती ।
व्यक्तित्व के दोषों के कारण अन्ततः दुःख-दुर्भाग्य ही
सामने आ खड़ा होगा । इसलिए बुद्धिमान लोग अपने में,
अपनी स्त्री-बच्चों और परिजनों में अच्छे स्वभाव, गुण
और स्थायी उन्नति केवल सुविकसित मनोभूमि पर ही
अवलम्बित है । दुर्बुद्धि मनुष्य किसी प्रकार कुछ उपार्जन
भी कर ले तो उससे उसके अहंकार एवं दुर्गुणों की वृद्धि
में ही सहायता मिलती है और पतन की घड़ी तेजी से
समीप आने के कारण बनने लगते हैं ।

सुसंस्कारों के संग्रह होने में और भी अनेकों कारण
हैं । सबसे बड़ा कारण माता द्वारा गर्भकाल में ही बालक
को अपनी अन्तःस्थिति का दान और बड़े होने पर पत्नी
द्वारा उसके अहम् का उद्बोधन, शोधन और अभिवर्द्धन

ही है । इन दोनों के द्वारा जितनी वास्तविकता के साथ यह व्यक्ति के अन्तःनिर्माण कार्य हो सकते हैं, उतना अनेकों विश्वविद्यालय मिलकर भी नहीं कर सकते । अपार सम्पत्ति का स्वामी होकर भी विपुल कीर्ति और सत्ता का अधिकारी होकर भी मनुष्य इतनी शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त नहीं कर सकता जितनी कि नारी अपनी अन्तरात्मा को निचोड़ कर नर को मिलाने की प्रक्रिया में प्रदान कर देती है । माता केवल दूध ही नहीं पिलाती, स्नेह भरा वात्सल्य भी पिलाती है साथ ही अगणित सुसंस्कार भी । इसी प्रकार पत्नी केवल वासना की तृप्ति ही नहीं करती, वरन् अंतर की अनेकों उत्तेजनाएँ, अशान्तियों और अव्यवस्थाओं का भी शमन कर देती है, वह माता की तरह भले ही दूध न पिलाती हो, पर अदृश्य रूप से जो कुछ पिलाती है, वह अंतःतृप्ति के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है । अतः उस शक्ति को प्रतिगामी नहीं, प्रगतिशील बनाने की आवश्यकता है ।

नारी को 'गृहलक्ष्मी' बताया गया है । मान्यता है कि जहाँ लक्ष्मी का पदार्पण होता है वहाँ सुख-सम्पदा की कमी नहीं रहती । नारी लक्ष्मी का साक्षात् जीता-जागता स्वरूप है । सुविकसित, सुशिक्षित, सुसंस्कृत नारी अपने पति के लिए, सन्तान के लिए, परिवार के लिए स्वयं अपने लिए एक वरदान है ।' शरीर का निर्माण बढ़िया आहार-विहार से हो सकता है, पर मनोभूमि का विकास जिस पर सर्वतोमुखी उन्नति अवलम्बित है, आदर्श नारी के समुचित सहयोग के बिना सम्भव नहीं । इस कार्य को अध्यापक और उपदेशक भी नहीं कर सकते, क्योंकि माता के गर्भ से ही जो बालक कुरुचिपूर्ण आदतें और दुर्गुण लेकर पैदा हुआ है इसमें एक सामान्य-सी सीमा तक ही बाह्य प्रयत्नों द्वारा सुधार सम्भव है ।

समाज को सुखी और सम्पन्न बनाने के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यवसाय और राजनैतिक प्रयत्न हो रहे हैं । यह उचित भी है और सराहनीय भी, पर यदि समाज का आधा भाग ही उससे लाभान्वित हो तो यही मानना पड़ेगा कि यह एक बाँह की कमीज, एक टाँग का पाजामा पहनने जैसा उपहासास्पद कार्य होगा । इसे सुव्यवस्थित और सच्चे अर्थों में समृद्ध बनाने के लिए नारी को उपेक्षा करने से काम नहीं चलेगा । उसकी भी मानसिक, सामाजिक, बौद्धिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के साधन उसी प्रकार जुटाने पड़ेंगे, जैसे पुरुष वर्ग की उन्नति के लिए जुटाये जा रहे हैं ।

सामाजिक और पारिवारिक जीवन की सुव्यवस्था विकसित नारी के ही द्वारा सम्भव है । इतना ही नहीं मनुष्य का मनःक्षेत्र जो समस्त प्रकार की प्रगति, समृद्धि एवं शक्ति का केन्द्र है । नारी के सहयोग पर ही प्रफुल्लित और प्रस्फुट हो सकेगा । अपने भाग्य निर्माण की, भविष्य निर्माण की इन मंगलमयी घड़ियों से हमें इधर भी ध्यान देना होगा । इस अनिवार्य आवश्यकता की उपेक्षा से जितनी जल्दी विमुख हो सकना सम्भव हो, उतना उत्तम है ।

नारी की गरिमा कलंकित न करें

हिन्दू धर्म और संस्कृति की अनेक विशेषताओं में 'मातृवत परदारेषु' के आदर्श ने उसे जितना शक्तिशाली, स्वाभिमानी, पवित्र और तेजस् सम्पन्न बनाया, उतना अन्य शायद ही किसी आदर्श ने । नारी को माँ के रूप में सम्मान का अद्वितीय उदाहरण अन्य किसी संस्कृति में देखने को नहीं आता ।

नारी के रूप में देवी पूजा नारी शक्ति के प्रति सम्मान का ही परिचायक है । लक्ष्मी पूजन, सरस्वती पूजन और दुर्गापूजन के रूप नारी की शक्ति सम्पन्न रूप को उजागर करता है ।

नवरात्रि में कन्या पूजन, विवाह में वधू-पूजन, गर्भाधान पर मातृत्व पूजन, पृथ्वी पूजन आदि के रूप में नारी के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति, हिन्दू संस्कृति की विशेषता रही है ।

सृष्टि की इस जन्मदात्री नारी की, देव, मनुष, दानव, नर, वानर सबकी निर्मात्री पंचभूतों की महाशक्ति सृष्टि की इस आधारभूत शक्ति की अवहेलना, प्रताड़ना नहीं होनी चाहिए । इसीलिए पूर्वजों ने, ऋषियों ने श्रुतियों, स्मृतियों में नारी पूजा का विधान रखा और उसकी गरिमा को बढ़ाया ।

यह परम्परा आज भी भारतीय इतिहास और चरित्र की प्रेरणा स्रोत बनी है । नारी जन्मदात्री, माँ, बहिन, भार्या सब कुछ है । वह उस वृक्ष की जड़ की तरह है, जिसका कहीं ओर-छोर नहीं होता । वह किसी भी रूप में हो अपने असीम मातृत्व के कारण हर रूप में माँ ही है । इसीलिए भारत के कई क्षेत्रों में नारी को चाहे वह किसी भी रूप में हो कन्या, युवती, प्रौढ़ा, माँ ही कहा जाता है ।

नारी ने ही अपने वैभव शक्ति से लक्ष्मी का रूप रचा ज्ञान शक्ति से सरस्वती और शौर्य शक्ति से दुर्गा का रूप धारण किया । प्राणी मात्र के अन्दर नारी का यह त्रिशक्ति रूप ही परिलक्षित होता है ।

नारी शक्ति के प्रति सम्मान की यह परम्परा आज भी भारतीय इतिहास और चरित्र की प्रेरणा स्रोत बनी हुई है । भारतीय इतिहास में ऐसे अनेकों उदाहरण भरे पड़े हैं । शिवाजी के दरबार में जब अहमद की सुन्दर पुत्र वधू को लाया गया तो उसे 'माँ' कहकर सम्मान दिया और आदर सहित उसके खेमे में पहुँचा दिया ।

अर्जुन से विवाह का प्रस्ताव रखकर जब उर्वशी ने अर्जुन जैसे पुत्र की कामना की तो अर्जुन ने नारी के प्रति मातृ-भाव-प्रकट करते हुए स्वयं उनके पुत्र रूप में प्रस्तुत कर दिया और कहा–"आप जैसी माता को पाकर मैं अपने को सौभाग्यशाली मानता हूँ ।"

भारतीय नारी ने अपने इस सम्मान का मूल्य करोड़ों गुना अधिक बढ़-चढ़ कर दिया । शकुन्तला ने अपने पुत्र को महलों का विलासी बनाने की अपेक्षा अकेले वनों में रहकर शेरों के साथ खेल-खिलाकर वीर बना दिया । उसी वीर भरत के नाम पर भारत इस देश का नाम रखा गया ।

भारतीय संस्कृति में नारी की पवित्रता और सतीत्व को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया । नारी के इसी तेज के आगे बड़ी-बड़ी शक्तियाँ भी नतमस्तक हुई हैं । सती शाण्डिली ने अपने पवित्र सतीत्व के बल से सूर्य को भी उदय होने से रोक दिया, सावित्री ने अपने पति को यमराज से छुड़ा लिया, सती अनुसूया के तेज के आगे भगवान् को बालक होकर गोद में खेलने पर मजबूर होना पड़ा ।

सीता रावण की लंका में अशोक वृक्ष के नीचे अकेली बैठी रहती थीं । रावण का राक्षसी बल भी उसके आगे भय खाता था, जब भी उनके सामने जाता था, वह मन ही मन प्रणाम करके जाता । सीता के पवित्र सतीत्व के आगे रावण जैसा राक्षस भी आँख उठाकर देखने का साहस भी नहीं जुटा पाता था । अपने इस पवित्र और सतीत्व के बल से बड़ी शक्तियों को इन्होंने अपने समक्ष झुकने पर विवश कर दिया ।

जब तक नारी इतने सशक्त रूप में थी, तब तक वह देश के लिए नर-रत्न पैदा करती रही और एक के बाद एक महापुरुष देती चली गई, किन्तु मध्य युग में जब विदेशियों के आक्रमण हुए और भारतीयों में स्वयं भी उस अनाचार से लड़ जाने की उपेक्षा नारी को ही बंधनों से जकड़ना प्रारम्भ किया, तब भी उसने अपनी लाज बचाने का भरसक प्रयत्न किया ।

विदेशियों ने अपने आक्रमणों के दौरान नारी के सतीत्व का हरण करना चाहा, तब भी उन्होंने उन पशुओं का सामना किया । उन्होंने उन पिशाचों के पंजों में जकड़े जाने की अपेक्षा 'जौहर' कर लेना अधिक उपयुक्त समझा । महारानी पद्मिनी और उनकी चौदह हजार राजपूतनियों के जौहर की गाथा आज भी चित्तौड़ गाता है ।

त्याग और उत्सर्ग में वह किसी से कम नहीं

लौकिक सुखों का हो या अपने स्वार्थों का, त्याग वही उत्कृष्ट माना गया है जो स्वाभाविक हो । स्वाभाविक त्याग का अर्थ है कि यह अनुभूति भी न हो और न ही अहंकार कि मैंने त्याग किया है । इस स्वाभाविक त्याग की व्याख्या करते हुए आचार्य विनोबा भावे ने कहा है-''मैंने स्त्री को त्याग की सर्वश्रेष्ठ मूर्ति के रूप में देखा है । वह जीवन भर त्याग करती है, पर उसे यह अहसास भी नहीं होता कि मैंने त्याग किया है । वह त्याग का दावा भी नहीं करती, जबकि अपने पिता, पति, घर के अन्य सदस्यों के लिए आजीवन त्याग करती है, लेकिन वह इसका कोई हिसाब नहीं रखती ।''

स्त्री त्याग और उत्सर्ग की ही प्रतिमूर्ति है । उसके जीवन में उत्सर्गों का अध्याय उसी समय खुल जाता है, जब उसकी डोली घर से उठती है । किसी अनजान, अपरिचित और अनदेखे व्यक्ति के साथ उसकी जीवन डोर बाँध दी जाती है, तब यह न आपत्ति करती है, न संकोच। लोग मित्र बनाते हैं तो सम्बन्ध स्थापित करने से पहले मित्र का पूरा परिचय प्राप्त करते हैं फिर भी सशंकित दृष्टि से ही उसकी ओर देखते हैं । जाने कब वह धोखा दे दे की धुक्-धुकी भी बनी रहती है । घर में या फैक्ट्रियों में किसी को नौकर रखा जाता है तो पहले उसके सम्बन्ध में सारी बातें जान लेते हैं । बड़े व्यक्ति अपने सहयोगी व्यक्ति को नियुक्त करने से पहले उसके निजी जीवन की सारी ब जान लेते हैं । यहाँ तक कि ईश्वर से नाता जोड़ने से प भक्त भी भगवान् की महिमा और सामर्थ्य शास्त्रों तथा गुरुवचनों से जानने का प्रयत्न करते हैं । पर डोली में बैठकर 'पति-गृह' जाने तक नवोढ़ा को अपने पति के निजी जीवन तो क्या, दिखाई देने वाले स्वरूप का परिचय प्राप्त नहीं होता हालांकि इस बात की चिन्ता उसके अभिभावक करते हैं, पर मनुष्य के शंकालु स्वभाव को देखते हुए यह जरा विचित्र ही लग सकता है कि हम अपने भाग्य विधाता को नियुक्त करने का अधिकार किसी और को दे दें ।

आत्मदान नारी की प्रकृति है । अपनी आवश्यकताओं, इच्छाओं, सुख-सुविधाओं तथा आकांक्षाओं को पति के पूरे परिवार के साथ सामंजस्य कर, वह उन्हें ही प्रधानता देती है और स्वयं गौण बन जाती है । नारी अपनी इस प्रकृति से विपरीत दिशा में जा ही नहीं सकती । जो परिवार के सदस्यों की अपेक्षा स्वयं को ही मुख्य मानती है, उसके अन्तरंग में एक अतृप्ति, असन्तोष, तृषा और पिपासा बनी ही रहती है । त्याग इससे अधिक क्या किसी के स्वभाव का अंग होगा कि यदि वह न किया जाय तो क्लेश और उद्विग्न हो जाना पड़ता है ।

इसी महानता को सम्मानित करते हुए शास्त्रकारों ने नारी को 'गृह-लक्ष्मी' और 'अन्नपूर्णा' के विशेषण से विभूषित किया है । एक विद्वान के अनुसार उसके लिए प्रयुक्त देवी शब्द का अर्थ इस प्रकार है-''देना उसका स्वभाव है । उसका दान कभी समाप्त नहीं होता, वह देती है और देती है । इस देने में ही उसकी सार्थकता है । इस देने में ही वह अपने को पाती है । यदि लेने वाले में अर्घ्य ग्रहण की क्षमता हो तो देवी के हृदय का रस-स्रोत कभी सूखता भी नहीं । तब यह सब कुछ देकर भी मानो सब कुछ पा जाती है । खोकर भी वह सब कुछ पा जाती है ।''

इस जगती में बिना दिए कुछ मिलता नहीं, लेकिन व्यवहार हो अथवा अध्यात्म की साधना,-सबमें पाने के

लिए निरन्तर देना पड़ता है, पर जिसे 'अन्नपूर्णा' और 'गृह-लक्ष्मी' कहा गया है वह इस सामान्य दृष्टिकोण से नहीं देती कि कुछ पाना है, इसलिए देना चाहिए। अपने बचपन को, जिनकी गोदी में वह खेली-बढ़ी हुई है उन वह ममतापूरित माता-पिता को, अपने भाई-बहिनों को छोड़कर स्वयं को रिक्त बनाकर आत्मदान करने वाली नारी कब उसका प्रतिदान माँगती है। उसको देने का एक ही प्रयोजन है कि देना है। गंगा के बहने का प्रयोजन एक ही है कि बहना है। सूरज जैसे इस नीति का निर्धारण कर नहीं चलता कि मैं प्रकाश दूँगा तो लोग मेरी पूजा करेंगे, जब उसकी पूजा की जाती है तो वह प्रकाश देता है और जब उसे कलंकित किया जाता है, उस पर दाग बताये जाते हैं तो भी वह देता है, क्योंकि देना ही उसके लिए धर्म है और नारी के लिए भी।

जहाँ आत्मदान की प्रवृत्ति होती है, वहाँ अनेकानेक विभूतियाँ आकर जुड़ने लगती हैं। जैसे कि नारी को अन्नपूर्णा और गृहलक्ष्मी कहा गया है। यह केवल सम्मान ही नहीं, उसकी विभूति का भी परिचय है। यदि स्त्री न होती तो सभ्यता का जो विकास हम आज हुआ देखते हैं, वह नहीं होता। मनुष्य आवारा जानवरों की तरह घूमता रहता। जब भूख लगती, तब खा लेता, जब प्यास लगती किसी झरने से पानी पी लेता। इसका कारण है स्त्री के स्वभाव में एक स्थिरता है, जबकि पुरुष चंचल है। यदि पत्नी न हो तो शायद ही किसी को घर बसाने का ख्याल आये। स्त्री ने ही पुरुष को एक जगह रहने के लिए प्रेरित किया और उसकी चंचलताओं को नियन्त्रित कर उद्यम की दिशा में अग्रसर किया।

'गृह-लक्ष्मी' के रूप का तब भी साक्षात् होता है, जब दिन भर के परिश्रम से हारा-थका पुरुष घर लौटता है तो अपने मधुर और प्रेमपूर्ण वचनों द्वारा वह उसकी क्लान्ति को हरती है। नारी ने सदैव ही पुरुष के विश्राम का ख्याल रखा है। जब वह बच्चा होता है तो माँ उसे सूखे में सुलाती है, उसे खिलाने-पिलाने का ध्यान रखती है। जब बड़ा होता है तो पत्नी रूप मे वही नारी पुरुष के हृदय की साम्राज्ञी बनकर उसे प्रेम और शीतलता प्रदान करती है। सभ्यता के वर्तमान विकास के साथ मनुष्य का जीवन भी जटिल हुआ है और उसे जीवन संघर्ष के एक लम्बे दौर से गुजरना पड़ता है। ऐसी स्थिति में हार थक कर बढ़े जाने के बाद नारी ही उसे बढ़ावा देती है, प्रोत्साहित करती है।

प्रेम और सम्मान मनुष्य की एक अद्भुत पिपासा है। जीवन का यही आकर्षण है जिसे प्राप्त करने के लिए प्रत्येक मनुष्य प्रयत्न करता है। यदि वह आकर्षण समाप्त हो जाय तो जीवन से लगाव भी मिट जाता है, लेकिन यह भी एक तथ्य है कि संसार की तीन अरब जनसंख्या में कौन किस को प्रेम और सम्मान दे। नारी बड़ी ही कुशलता से पुरुष को जीवन के प्रति आकर्षित करती है। जहाँ प्रेम का अजस्र स्रोत उसके अन्तस् में बहता है, वहीं वह पुरुष को यह अनुभव कराने में भी सफल हो जाती है कि चाहे और किसी के लिए हो या न हो उसके लिए तो वह सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। इस अनुभूति का ही परिणाम है कि संकुचित से संकुचित स्वार्थी व्यक्ति के लिए भी अपने पत्नी और बच्चे जीवन का आकर्षण बन जाते हैं। वह अपने लिए भी उतने प्रयास नहीं करता जितने कि पत्नी, बच्चों के लिए करता है।

पुरुष के लिए नारी इतनी महत्त्वपूर्ण अकारण नहीं है, न ही वासना और काम पिपासा शान्त करने की वस्तु होने के कारण वह महत्त्वपूर्ण बन सकी। उसकी महत्ता की आधारभूत नींव उसके उत्सर्ग में है, बलिदान में है जो वह पुरुष के लिए, जब वह बच्चा होता है तभी से करने लगती है और जन्म लेने से पूर्व भी। स्त्री जब माँ बनती है तो लगभग वर्ष भर पूर्व से उसे उत्सर्ग करना पड़ता है। उसे अपने सुखों की चिन्ता छोड़ कर भावी सन्तान के हित की करनी पड़ती है। खाने-पीने में परहेज, रुग्ण जैसी स्थिति और शरीर दशा। एक दिन के लिए भी रोग और प्रतिबन्धों का अहसास बुरी तरह सालने वाला बन जाता है तो स्त्री की क्या स्थिति होगी जो वर्ष भर तक यह सब खुशी-खुशी सहती रहती है और जन्म लेने के बाद उससे भी ज्यादा कष्ट सुविधापूर्ण स्थिति में रहने के लिए स्वयं को तैयार करती है। बचपन और युवावस्था तक ही नहीं, जीवन भर वह अपनी सन्तान के सुख-दुःख की चिन्ता करती है।

कहा जा चुका है कि संसार की जनसंख्या ६ अरब के करीब है। इतने बड़े विशाल मानव समुदाय में प्रत्येक व्यक्ति का अहं तुष्ट हो पाना सम्भव नहीं। महत्त्वाकांक्षा और दूसरों की सहानुभूति प्राप्त करने की लालसा, जिसे सम्मान और प्रेम कहा गया सभी की पूरी हो, यह भी कोई आवश्यक नहीं है। अतः जीवन संघर्ष में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने वाले व्यक्ति के लिए जीने का कोई आकर्षण नहीं रह जाता। वह 'चौबीसों' घण्टे भीड़ में रहता हुआ भी एकाकीपन अनुभव करता है। इस एकाकीपन की रिक्तता नारी ही भरती है, अपना समूचा अस्तित्व देकर और पुरुष यह मानकर जीवन क्षेत्र में उत्साहपूर्वक उतरता है कि कोई तो है ऐसा जिसे कि मैं अपना कह सकता हूँ। केवल अपना। किसी के लिए मैं ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हूँ, अन्य कोई और नहीं।

लेकिन प्रेम और सम्मान की इस उपलब्धि से उसका आहत अहंकार उद्धत भी हो उठता है। यही कारण है कि नारी के अजस्र अनुदानों पर दृष्टि ही न देकर पुरुष उसे अपनी दासी, सेविका और गुलाम मानने लगता है। यह बड़ी दुःखद स्थिति है, जिसने अपना सब कुछ देकर हमारे जीवन में रस घोला, उसे ही हम उपेक्षित और पद्दलित करें। जिसके सहारे इस संघर्ष पूर्ण संसार में खड़े हुए हैं, उसे ही नष्ट, जर्जर करने लगें। यह तो उसी तरह की मूढ़ता हुई कि जिस शाखा पर हम बैठें, उसे ही जड़ से काटने लगें।

पत्नी को समर्पण करते देख अधिकांश पुरुष यह सोचने लगते हैं कि उन्होंने इस स्त्री से शादी कर इसका उद्धार कर दिया है । उसके जीवन को सार्थक बना दिया है । इससे ज्यादा अहं की विकृत उद्धतता और क्या होगी कि हम अन्धेरे में बैठें और कोई दिया जलाने आये तो हम कहने लगें कि उसे दिया जलाने देकर हमने बहुत बड़ा उपकार कर दिया है । बड़े खेद की बात है कि लोग अन्न और धन की प्राप्ति के लिये संसार भर के चक्कर लगाया करते हैं, परन्तु उनकी अधिष्ठात्री देवी अन्नपूर्णा गृह-लक्ष्मी को ही तिरस्कृत, अपमानित और पददलित करते हैं । देव-शक्तियों का अपमान, उपेक्षा कर उनकी प्रसन्नता से लाभ नहीं उठाया जा सकता । इसका अर्थ यह नहीं है कि वे भी हमारी तरह संकीर्ण होकर अपने अनुदान वापस ले लेते हैं । सच्चाई तो यह है कि उनके अनुदानों का स्रोत तो तब भी बहता रहता है । उससे लाभ उठाने की सामर्थ्य हममें ही नहीं रह जाती । ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि सारी पृथ्वी पर अपनी किरणें बिखरने वाले सूर्य के प्रकाश से किसी कोठरी में बन्द व्यक्ति लाभ नहीं उठा सकता ।

अनन्त वत्सला नारी और उसकी महत्ता

नारी माँ के रूप में बच्चे की आदि गुरु है । जननी को विभिन्न विषयों में जो शिक्षा अनुभव प्राप्त होती है, वही बच्चे के जीवन में प्रभाव डालता है । जननी के उच्चारण, उसकी भाषा से ही वह भाषा ज्ञान प्राप्त करता है, जो जीवन-भर के भाषा-ज्ञान का मूलाधार होता है । इस तरह बच्चे की शिक्षा-दीक्षा, उसी नींव पर बालक के सम्पूर्ण जीवन की योग्यता, शिक्षा-ज्ञान का महल खड़ा होता है । माँ का कर्त्तव्य केवल स्तन-पान या स्नेह-दान तक ही नहीं है, अपितु इसके साथ ही वह बच्चे को जीवन में विकसित होने, उत्कर्ष की ओर बढ़ने के लिए एक तरह की सूक्ष्म शक्ति प्रेरणा भी देती है । माँ द्वारा कही गई उच्च आदर्श त्याग की कथाएँ, उपदेश, साधारण भाषा में दिया गया ज्ञान भी बालक के जीवन में ऐसा प्रभाव डालता है जो जीवन-भर बड़ी-बड़ी पुस्तकों को पढ़कर बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ प्राप्त करके भी नहीं मिलता । माँ द्वारा प्रदत्त प्रारम्भिक ज्ञान प्रेरणा को पाकर ही बालक आगे चलकर प्रकृतिवान का अधिकारी होता है ।

बच्चे के प्रति माता का स्नेह, उसकी ममता दयामय परमात्मा का प्रकाश है । शिशु के प्रति मातृ हृदय में उमड़ता हुआ स्नेह प्रकृति की ओर से जीवन रक्षा के लिए ईश्वरीय देन है । यह स्नेह, ममता, सहज ही जननी को बालक के पालन-पोषण के लिए प्रयत्नपूर्वक लगाती है ।

ऋषियों ने मातृ-हृदया नारी का 'नारी ऋण' मानव जाति पर सबसे बड़ा ऋण माना है । उन्होंने नारी को समाज में सम्माननीय, पूजनीय स्थान देकर उसका आदर सत्कार करके मातृ ऋण चुकाया और इसी तरह का आदेश अपनी भावी सन्तानों को भी दिया । नारी की प्रतिष्ठा गौरव को चिरंजीवित रखने के लिए सभी धर्म ग्रन्थों में स्थान है ।

मातुश्च यद्धितं किंचित्कुरुते भक्तिनः पुमान ।
तद्धर्मं हि विजानीया देवं धर्म विदो विदुः ॥

मातृ शक्ति की भलाई के लिए पुरुष भक्तिपूर्वक जो कुछ भी कर्म करता है वही उसका धर्म है । गृहस्थ व्यक्ति की बड़ी तपस्या इसी में है कि वह नारी जाति की सेवा उसमें दैवी शक्ति के दर्शन करके करे ।

भारतीय संस्कृति में नारी के प्रति यह केवल शाब्दिक प्रदर्शन मात्र नहीं है वरन् पद-पद पर इसमें व्यावहारिकता की छाप है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि नारी जाति के महान् उपकारों को स्वीकार कर भारतीय जन-समाज ने मातृ जाति की यथोचित् पूजा उसका सत्कार किया और समाज में उच्च स्थान दिया, जिसके फलस्वरूप नारी के हृदय से सहज स्नेह, वात्सल्य-ममत्व की त्रिवेणी भारत-भूमि में बह निकली, जिसका पान कर भारतीय जीवन अजर-अमर हो गया । भारतवासियों ने लौकिक और पारलौकिक जीवन में भारी प्रगति की, इतिहास इसका साक्षी है ।

पत्नी, पुत्री और भगिनी के रूप में मातृत्व हमारे चारों ओर बिखरा पड़ा है । यह श्रद्धा एवं पूजा के योग्य है । देवत्व की इस प्रत्यक्ष प्रतिमा की गौरवपूर्ण प्रतिष्ठा निरन्तर अभिनन्दनीय है । इस रहस्य को मनुष्य जब तक समझता रहा, अपने देवत्व को स्थिर रख सका । अब जबकि उसने नारी को वासना-कामुकता की तृप्ति का साधन बनाना आरम्भ किया, क्रीतदासी के समान अपने पाशविक बन्धनों में जकड़ कर निरीह बनाने, मनमाने अत्याचार करने और अपनी सम्पत्ति-मात्र मानने का दृष्टिकोण बदला है तो फिर पुरुष-पुरुष नहीं रहा । उसका तप तेज चला गया और एक क्षुद्र प्राणी के समान अपने गौरव से पतित होकर निम्न श्रेणी का जीवनयापन कर रहा है ।

इस पृथ्वी पर दैवी तत्व का एकमात्र प्रतीक मातृत्व है । उसके प्रति उच्चकोटि की श्रद्धा रखे बिना देवत्व की पूजा एवं साधना नहीं हो सकती और इसके अभाव में पुरुष को देवत्व से वंचित रहना पड़ेगा । नारी कामधेनु है । जब उसे हम मातृ बुद्धि से देखते हैं तो वह हमें देवत्व प्रदान करती है, पर जब उसे वासना, सम्पत्ति, दासी की दृष्टि से देखा जाता है तो वह हमारे लिए अभिशाप बन जाती है ।

न जाने हमारी दुर्बुद्धि कब टलेगी । न जाने कब हम नारी की दिव्य-शक्ति को पहचान कर उसके चरणों में श्रद्धा के आँसू चढ़ाना सीखेंगे ? न जाने इस अभाव के कारण हमें कब तक देवत्व से वंचित रह कर नारकीय स्थिति में पड़ा रहना पड़ेगा ।

भारतीय नारी का आदर्श अमर रहे

"मैंने पृथ्वी के दोनों गोलार्द्धों का पर्यटन किया है। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि जिस जाति ने सीता को उत्पन्न किया है–सम्भव है, यह कल्पना मात्र ही हो। उस जाति में स्त्री जाति के प्रति उतना अधिक सम्मान एवं श्रद्धा है, कि उसकी तुलना विश्व के अन्य किसी भाग में नहीं हो सकती है।" स्वामी विवेकानन्द के यह शब्द आज भी हमारे कानों की दीवारों से टकराकर यह ध्वनि दे रहे हैं कि भारतीय नारी तुम्हारा आदर्श महान् है, संसार के इतिहास के पन्ने-पन्ने को खोल डालो, ऐसा आदर्श मिलना असम्भव है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत व अन्य देशों के जीवनायापन करने की शैली में अन्तर है, उनके दृष्टिकोण में भिन्नता है। स्पष्ट रूप में यूँ कहा जा सकता है कि भारत व पाश्चात्य देशों का जीवन विज्ञान एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत है। एक का आधार सूक्ष्म ज्ञान है, दूसरे का स्थूल भौतिक विज्ञान। एक आध्यात्मिकता को महत्व देता है, दूसरा भौतिकता को। एक आत्मा के अनुकूल गुणों को अपनाने का आदेश देता है, दूसरा क्षणभंगुर शरीर के लिए सारा जीवन खपा देने की शिक्षा देता है। दोनों में पृथ्वी-आकाश का अन्तर है।

पाश्चात्य देशवासी केवल अपनी शारीरिक सुख-समृद्धि को बढ़ाने और विकसित करने के लिए ही प्रयत्नशील रहते हैं। उनका लक्ष्य केवल यही रहता है कि इस प्रकार के तरीके खोज निकालने चाहिए जिससे हमें अधिक से अधिक धन प्राप्त हो। उनके मस्तिष्क की सारी शक्तियाँ इसी ओर केन्द्रित हैं। वह जितने भी आविष्कार करते हैं उनका केवल मात्र एक ही लक्ष्य होता है–धनोपार्जन। इसके बाद उनकी विचारशक्ति शरीर को सजाने में लग जाती है, क्योंकि उनका उद्देश्य तो शरीर सुख ही है। वह शरीर के लिए ही जीते हैं, उसी के लिए मरते हैं। उनका दायरा बहुत ही सीमित है। इसी के आस-पास उनकी विचारधारा चक्कर लगाती रहती है। शरीर उपासना करने वाले लोग कब सभ्य माने जाते हैं।

भारतीय दृष्टिकोण ऐसी विचारधारा को पशु तुल्य मानता है, क्योंकि पशु का कार्य केवल खाना-पीना और वासना की तृप्ति करना है। यदि मनुष्य भी अपने आप को यहीं तक सीमित रखे तो मनुष्यत्व की कौन-सी विशेषता रही उसमें। भारतीय इतिहास तो केवल शरीर की ओर ध्यान देने वाले को चमार की संज्ञा देता है। महाभारत में राजा जनक और महर्षि अष्टावक्र के सम्बन्ध में बहुत ही महत्त्वपूर्ण कथा आती है कि एक बार ब्रह्मज्ञानी राजा जनक ने उच्चकोटि अध्यात्म ज्ञान रखने वाले पंडितों एवं विद्वानो की सभा बुलाई। महर्षि अष्टावक्र भी उसमें पधारे। जब वह सभा में प्रविष्ट हुए तो अधिकांश विद्वान सभा में आ चुके थे। अष्टावक्र का शरीर आठ स्थानों से टेढ़ा था, जिससे वह बहुत ही कुरूप दिखते थे। उनके अटपटे शरीर को देख कर, सभी लोग हँस दिये। अष्टवक्र वहीं खड़े हो गये और वह भी खूब खिलखिला कर हँसने लगे। इनको हँसते देखकर महाराज जनक इनके पास आये और नम्र भाव से बोले–"महर्षि! आप इस प्रकार क्यों हँसते हैं?" अष्टावक्र ने उत्तर दिया? सुना तो यह था कि महाराज जनक के यहाँ ज्ञानी विद्वानों की बैठक हो रही है, परन्तु यहाँ आकर देखा तो आश्चर्यचकित हो गया। यहाँ पर विद्वानों के स्थान पर चमार बैठे हैं।" जनक ने कहा "प्रभु! इन विद्वानों को आप चमार कहते हैं।" कुरूप और आठ स्थानों से टेढ़े-मेढ़े अष्टावक्र ने भारतीय आदर्श को उपस्थित करते हुए कहा–"जो केवल शरीर को ही देखता है वह चमार है। उन्होंने मेरे गुणों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। केवल मेरे शरीर को देखकर ही हँस पड़े। यह उत्तर सुन कर सारी सभा में सन्नाटा छा गया।

भारतीय ऋषि चाहते तो उनमें उतनी क्षमता थी कि वह भी बड़े से बड़े आविष्कार कर सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, क्योंकि वह भली प्रकार जानते थे कि इन्द्रिय सुखों की तृष्णा कभी भी मिटने वाली नहीं है, वह तो निरन्तर बढ़ती ही रहती है। इसलिए इसके गोरख-धन्धे में फँसकर हम दुःख-क्लेश ही पायेंगे। इसमें वास्तविक सुख का कहीं नाम व निशान नहीं है। उन्होंने सुख के दर्शन को समझा और शरीर को उतना ही महत्त्व दिया जितना कि देना चाहिए। यदि भारतीय नारियों का लक्ष्य भी केवल खाना-पीना, मौज उड़ाना और काम वासना की तृप्ति होता तो आज अपने इतिहास में सीता, सावित्री, दमयन्ती, गान्धारी और द्रौपदी कहीं भी दृष्टिगोचर न होतीं। जब हम भारतीय नारी के इतिहास को अपनी आँखों के सामने लाते हैं तो हमारा हृदय गद्गद हो जाता है और गर्व से फूल जाता है कि संसार का कोई भी देश सीता, सावित्री और गान्धारी उत्पन्न नहीं कर सका है। यदि हम सीता के जीवन चरित्र का अध्ययन करें तो हमें भारतीय आदर्श का पूर्ण ज्ञान हो जाता है, क्योंकि भारतीय नारी चरित्र का यह उज्ज्वलतर प्रमाण है। जब राम को चौदह वर्ष का वनवास होता है तो वह सभी भोग-ऐश्वर्यों को ठोकर मार कर पति के साथ वन में चलने के लिए तैयार हो जाती है। पाश्चात्य दृष्टिकोण रखने वाली कोई नारी होती तो वह पहिले अपनी बुद्धि से विचार करती कि पति जब राज छोड़ कर जा रहे हैं। खाने, पहिनने का कोई सामान साथ में नहीं ले जा रहे हैं। रहने के लिए कोई स्थान मिलेगा या पृथ्वी माता की गोद में ही आश्रय लेना पड़ेगा। वन में घूमने के लिए कोई गाड़ी तो मिलेगी नहीं पैदल चलना होगा। गर्मी के लिए पंखों का कोई प्रबन्ध न होगा, सर्दी में वस्त्रों के अभाव में कैसे गुजारा होगा? परन्तु धन्य हो सीता तेरी भोग में त्याग की वृत्ति। तूने संसार को स्वयं आचरण करके दिखा दिया कि जिस प्रकार से कमल का फूल पानी में रहते हुए भी उससे

अलग रहता है, उसी प्रकार से हमें भी संसार के सब भोग भोगने चाहिए, परन्तु उनमें त्याग भावना को नहीं छोड़ना चाहिए।

भगवती सीता को पग-पग पर कष्ट सहन करने पड़ते हैं, परन्तु उन्होंने राम को कभी नहीं कोसा कि तुमने मुझे कहाँ लाकर पटक दिया। यहाँ पर तो सिवाय विपत्तियों के और कुछ दिखाई ही नहीं देता, क्या यही दिन दिखाने के लिए ब्याह कर लाये थे। जब रावण उनको ले गया और वह लंका में रहीं तब तो विपत्तियों के पहाड़ उन पर टूट पड़े। वह कह सकती थी कि न वन में आती और न यह दिन देखना नसीब होता, परन्तु उन्होंने भगवान राम के प्रति कोई कठोर शब्द नहीं कहा। धैर्य और सहनशीलता की साक्षात् प्रतिमा भगवती सीता को आज संसार विशेष आदर की दृष्टि से देखता है।

भारत में सीता माता का नाम पवित्रता, साधुता और शुद्ध जीवन का प्रतीक है। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उसने रावण की ओर आँख उठा कर नहीं देखा। इन्हीं गुणों के कारण तो विज्ञजन स्त्रियों को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं "तुम सीता के समान बनो, तुम सीता का अनुकरण करो।"

पति को अभिन्न आत्मा मानने वाली सावित्री को भारतीय इतिहास में भुलाया नहीं जा सकता। उसने अपने तपोबल से मृत्यु पर विजय पाई और यमराज से अपने पति को छुड़ाकर लाई।

गान्धारी ने जब सुना कि मेरे पतिदेव नेत्रहीन हैं तो उसने भी अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली, क्योंकि जब मेरे पति संसार को स्थूल नेत्रों से देखने की सामर्थ्य नहीं रखते तो मेरा भी इसे निहारने का कोई अधिकार नहीं है। इस पवित्र भावना ने उसकी दृष्टि में इतनी शक्ति प्रदान कर दी थी कि दुर्योधन से उसने कहा था-"मेरे सामने से नग्न शरीर होकर चले आओ। जिस अंग पर मेरी दृष्टि जाएगी, उस पर किसी प्रकार के भी अस्त्र-शस्त्र के प्रहार का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।"

अपने पति को परमेश्वर रूप में मानने वाली अनुसूया ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को बालवत् बना दिया था। वह अपनी शक्ति द्वारा किसी को भी सीधा स्वर्ग भेज सकती थी।

परन्तु आज की स्थिति कहते हुए एक कवियत्री ने कहा है कि हम उन पूर्व आदर्शों को भूलती जा रही हैं। उनकी केवल कथाओं को सुनने तक ही सीमित कर दिया है। उनसे हमने गुण ग्राहकता नहीं सीखी, वरन् फैशन सीखा है। उनका अनुकरण न करके हम केवल शरीर की पुजारिन बनती जा रही हैं। यही कारण है कि नारी शिक्षा तो बढ़ती जा रही है, परन्तु पवित्रता की दृष्टि से अधःपतन की ओर ही जा रही है। याद रखो बहिनो! यह पाश्चात्य संस्कृति हमें भौतिकता की ओर लिये जा रही है, यह हमें सर्वनाश की ओर घसीटे लिये जा रही है। भौतिकता के स्वप्न में भी सुख-शान्ति नहीं है। पाश्चात्य नारी अपने पति की मृत्यु के दूसरे ही दिन दूसरे पति की तलाश में रहती है, कोई अनबन हो जाने पर तलाक दे देती है। इन्द्रिय सुख के लिए, अपने स्वार्थ के लिए वह सब कुछ कर सकती है। उनका अनु- करके हम क्षुद्रता की ओर ही जायेंगी, यह निश्चित है।

इसलिए हम पाश्चात्य जीवनयापन के दृष्टिकोण न अपनाकर अपने भारतीय आदर्शों की ओर पुनः [illegible] है। हमें सिनेमा की अर्द्धनग्न अभिनेत्रियों से प्रेरणा [illegible] उनके गीतों को नहीं गाना है, वरन् भारतीय नारी [illegible] आदर्शों की गूँज समस्त आकाश में फैला देनी है। [illegible] सावित्री, गान्धारी की आत्माएँ हमें यह पुकार-पुकार कर कह रही हैं कि तुम्हें शारीरिक सुन्दरता की मूर्ति [illegible] बनना है, तुम्हें तो पवित्रता, साधुता, सहनशीलता, त्याग के महान् गुणों को अपनाकर संसार को क्रियात्मक रूप में दिखा देना है कि हमारी कथाएँ कल्पना मात्र नहीं हैं, उनमें वास्तविकता है। हमें भी इसी पथ पर चलना है। भारतीय नारी का आदर्श [illegible] और रहेगा।

नारी ही संस्कृति की संरक्षिका है

अब तक का भारतीय इतिहास इस तथ्य को स्पष्ट [illegible] है कि समाज जब अँधियारे, कालिमापूर्ण दौर से गुजरा, [illegible] समय भी शील-सदाचार सम्पन्ना भारतीय नारी के [illegible] संस्कृति-संरक्षण का दायित्व उठाया और उसे पूरा किया।

वस्तुतः पशुवत् जीवन से ऊपर उठना ही [illegible] जीवन जीना है और इस दृष्टि से भारतीय नारी ने [illegible] संस्कृति के आधारभूत तत्वों का पोषण-अभिवर्द्धन किया। [illegible] अपने आध्यात्मिक व्यक्तित्व के सुमधुर जल से [illegible] सांस्कृतिक युग में उस जल को अत्यन्त छोटे [illegible] बाँधकर सड़ा डालने के अनेकों प्रयत्न किये गये।

नारी की प्राण-शक्ति प्रखर होती है, उसकी भाव- [illegible] ऊर्जा उसे निर्दिष्ट दिशा में निरन्तर आगे बढ़ते रहने [illegible] प्रेरणा देती है। जब-जब उसे जिन नैतिक मूल्यों [illegible] संरक्षण सिखाया-समझाया गया, उसने उस दिशा में अद्भुत शौर्य दिखाया। यह सही है कि छुआछूत, टोटके, कर्मकांडों की विकृतियों और अंधविश्वासों को [illegible] भी नारियाँ बड़ी संख्या में रही हैं, किन्तु ऐसा उन्होंने विकृति समझकर नहीं किया। अपितु उन्हें समझाया गया कि यही संस्कृति है, यही धर्म है, इसलिए उन्होंने उस विकृति का संरक्षण किया, पर किया संस्कृति समझ कर। जबकि अनेक पुरुष नशेबाजी, जुआ, व्यभिचार को [illegible] अनुचित, अनैतिक जानते और मानते हुए भी उसी में [illegible] रहना उनका पौरुष मानते रहे हैं। यह एक मूलभूत [illegible]

है । संगति, अन्तर्विरोध, अतृप्ति और अशान्ति पुरुष के व्यक्तित्व का ही मुख्य अंग रही हैं । नारियों में समस्वरता, सामञ्जस्य, आत्म-संगति की ही प्रधानता रही है । इन विशेषताओं को गलत दिशा दी गई और इस प्रकार इन महत्त्वपूर्ण क्षमताओं का सही उपयोग नहीं किया गया, यह भिन्न बात है ।

जब-जब समाज में नारी को विकसित हो सकने के अवसर दिये हैं, उसने अपनी सांस्कृतिक क्षमताएँ सही दिशा में ही विकसित की हैं । ज्ञान, शिक्षा और प्रगति के पर्याप्त अवसर पाने पर तथा समाज-व्यवस्था में समान भागीदारी निभाने का मौका मिलने पर उसने समाज को सदा दीप्तिमंद ही बनाया है ।

वाचस्पत्य शब्द कल्पद्रुम के अनुसार 'माता' शब्द का निर्माण ही निर्माणवाची धातु 'मा' से हुआ है । इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि सृजन के, निर्माण के तत्व मातृरूपा नारी में विशेष रूप से रहे । शील, सदाचार, धैर्य, क्षमा, उदारता एवं सहिष्णुता की जीवन्त प्रतिमा नारियाँ परिवार और समाज के निर्माण का दायित्व सदा से ही पूरा करती रही हैं ।

अँग्रेजी में एक कहावत प्रसिद्ध है-"द हैन्ड दैट रॉक्स, द क्रैडल, रूल्स द वर्ल्ड" अर्थात् पालने को झुलाने वाले हाथ दुनिया पर शासन करते हैं । यह नारी की निर्माण शक्ति की अभिव्यंजना है ।

मदालसा जैसी नारियों ने अपने पुत्रों को ब्रह्मज्ञानी बनाकर आध्यात्मिक जगत को प्रभावित किया तो सीता, द्रौपदी, अंजना जैसी माताओं ने राजनैतिक एवं राष्ट्रीय जीवन पर प्रभाव डाला ।

आत्म-साधना के क्षेत्र में भी नारियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक संख्या में और अधिक उत्साह से आगे बढ़ती रही हैं । महामानवों के मार्मिक आह्वान को सुनकर युग-सृजन के लिए निकल पड़ना भारतीय नारियों की परम्परा रही है । श्रीकृष्ण के आह्वान पर हमारी गोपिकाएँ, महाकाल के महारास की सक्रिय सदस्याएँ, सहयोगिनी सखियाँ बनने को आगे आईं । तथागत बुद्ध के आह्वान को हजारों नारी-अन्तः-करणों ने सुना और बौद्ध भिक्षुणी बनकर सांस्कृतिक चेतना का अलख जगाने निकल पड़ीं । आम्रपाली से आरम्भ यह शृंखला संघमित्रा के बाद तक, यानी शताब्दियों तक अविच्छिन्न रही । प्रबुद्ध स्त्रियाँ रमणी नहीं, श्रमणी-भिक्षुणी बनने में ही जीवन की सार्थकता समझ उस हेतु अपना यौवन, ऐश्वर्य, शक्ति-सामर्थ्य समर्पित करती रहीं । जैन-कल्पसूत्र में ऐसी ही एक महान् नारी 'पुष्पचूला' का उल्लेख है, जिनकी प्रेरणा से अड़तीस हजार नारियों ने आध्यात्मिक-साधना की दीक्षा ली और साध्वी पद को प्राप्त किया ।

संयमनिष्ठा तेजस्विनी नारियों ने अनेकों पथभ्रष्ट पुरुषों को भी दिशा दिखाई है । जैन-आगम में ऐसी ही एक महीयसी नारी राजीमति का उल्लेख है; जिन्होंने अपनी निर्भयता, प्रतिभा एवं विचारशक्ति से, पथभ्रष्ट रथनेमि को साधना-पथ में प्रवृत किया । प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की दो पुत्रियों-ब्राह्मी और सुन्दरी ने बाहुबली के अहंकार को अपने आत्मज्ञान, आत्मतेज से नष्ट कर दिया और अंतर को झकझोर दिया ।

शासन की प्रतिभा का परिचय भी भारतीय नारियाँ देती रही हैं । गार्गी, मैत्रेयी, भारती, विद्योतमा जैसी ब्रह्मवादिनी विदुषी तो हुई हीं, राजनीति में भी आगे रही हैं । लव-कुश या भरत जैसे अद्वितीय शूर-वीरों का निर्माण करने वाली सीता-शकुन्तला ने तो परोक्ष रूप में ही राजकार्य को प्रभावित किया तो कैकेयी, द्रौपदी सैन्य-मोर्चा तक सम्हालती रहीं ।

भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में दुर्गा भाभी, सुशीला दीदी, कल्पना दत्त, प्रीतिबाला समेत हजारों क्रांतिकारिणी ज्योति-बालाओं ने क्रांतिकारी आंदोलन में प्राण फूँके । गाँधीजी के आह्वान पर लाखों नारियों ने काँग्रेस-अधिवेशन में कार्य किया तथा प्रत्यक्ष-परोक्ष सहायता की ।

संस्कृति पर जब भी, जिस किसी रूप में संकट आया, भारतीय नारी ने उसके संरक्षण का मौन व्रत लिया और उसे पूरा किया । उसकी रचनात्मक क्षमता उसे निश्छल प्रेम और निरन्तर सृजन की अजस्र स्रोतस्विनी बनाती है । उसके कार्य, रूप और स्थितियाँ सीमित नहीं, विविध रही हैं । इसका प्रमाण उसके लिए प्रचलित वे विभिन्न नाम भी हैं, जो भिन्न-भिन्न अर्थों को द्योतित करते हैं । नर की सहज सहधर्मिणी के रूप में वह 'नारी' है । 'नारी' शब्द की एक व्याख्या 'न+अरि' के इस रूप में भी की गई है, अर्थात् जिसका कोई शत्रु नहीं, जो सृजन की ही साकार रूप है, विध्वंस से विलग है, इसलिए जिससे किसी का वैर नहीं, सभी के प्रति शुभ मैत्री भाव ही है जिसमें वह नारी है । पुरुषों का मान अर्जित करने के कारण वह 'मैना' है । घर-आँगन में और रणांगन में शौर्य प्रदर्शित करने के कारण तथा पुरुषों को अपने अनूठे योगदान में गौरवान्वित करने के कारण वह 'योषा' या 'योषिता' कहलाई । सौन्दर्य का विस्तार उनमें है, इसी से 'वामा' हुई । हृदय को द्रवित करने के कारण 'सुन्दरी' तथा चित्त में मुदिता वृत्ति का संचार करने के कारण 'प्रमदा' है । घर का शृंगार होने से वह '*भामिनी*' है, महीयसी-पूज्या है, इसलिये '*महिला*' है, ललित आकांक्षाओं की जीवन्त प्रतिमा 'ललना' है, गृह की सूत्र-संचालिका 'गृहिणी' है । अपनी भूमिकाओं के अनुरूप उसे 'देवी' साम्राज्ञी, अन्नपूर्णा, जननी, माता, जगन्माता जैसी उपयुक्त संज्ञाओं से सर्वथा उचित ही अभिहित किया जाता रहा है ।

यदि कोई यह कहे कि इतने सारे नाम, इतनी बहु अर्थगामी संज्ञाएँ अनायास ही या चाटुकारिता की वृत्ति से उत्पन्न हुईं, तो यह संकीर्णता एवं अल्पज्ञता ही है । आज की स्थिति को ही सनातन मान बैठना अनुचित है । आज

नारी के लिए सामान्यत: सीमित संज्ञाओं–महिला, नारी, माँ आदि का ही अधिक प्रयोग होता है । अत: यदि तर्कबुद्धि से काम लिया जाय, तो भी यही स्पष्ट होगा है कि जिन दिनों नारी के लिए इतने अधिक द्योतक शब्द प्रचलित थे, उन दिनों सामाजिक जीवन में उसकी भूमिका बहुमुखी–बहुआयामी रही होगी । वह आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक, कलात्मक, पारिवारिक सभी क्षेत्रों में समान रूप से अग्रणी थी । उसके जीवन–सौरभ को चारों ओर फैलने का भरपूर अवसर था । उसके विकास की उन्मुक्त सम्भावनाएँ विद्यमान थीं, तभी वह संस्कृति–संरक्षण का साधनामय सेवा कार्य करने में समर्थ रही है ।

यदि संस्कृति के उन्नयन–अभिवर्द्धन की सहभागनी, समाज–जीवन की सुरभि–वर्धिनी नारी को बनना है, तो उसके बहुमुखी विकास का वातावरण बनाना, सुविधाएँ देना तथा सहायता करना आवश्यक है ।

समर्पण की प्रतिमा, जीवन की ज्योति–नारी

नारी सदा से ही देव संस्कृति में शिल्पी, जननी, विधाता के रूप में सम्मान पाती रही है । उसने अवसर आने पर शौर्य–साहस का परिचय देकर दुर्गावती, झाँसी की रानी एवं अहिल्याबाई का स्वरूप भी बनाया तथा माता के रूप में मदालसा, जीजाबाई, विनोबा बन्धुओं को गढ़ने वाली माता का चोला पहना है । ऐसे कई उदाहरण हैं, जिसमें शिक्षा सौन्दर्य की दृष्टि से सामान्य होते हुए भी नारी–शक्ति ने पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाया व उसके पूरक सहयोगी के रूप में भूमिका निभायी है ।

कस्तूरबा एवं महात्मा गाँधी का उदाहरण प्रख्यात है । उम्र में बड़ी, रूप की दृष्टि से साधारण कस्तूरबा ने गाँधी की साउथ अफ्रीका से अपने जीवन के अन्त तक की यात्रा में जो भूमिका निबाही है, उसे स्वयं गाँधीजी ने अपने शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा था–"कस्तूरबा से मुझे अपने सत्यव्रत के पालन हेतु जो प्रेरणा एवं सहयोग मिला, उसके अभाव में मैं वह नहीं बन पाता जो आज हूँ । ३२ वर्ष की उम्र में विवाहित गृहस्थ की तरह रहकर भी ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का संकल्प उसकी प्रेरणा से ही मैंने लिया व निभाया ।"

लोकमान्य तिलक का विवाह बहुत ही छोटी उम्र में हो गया था । उनकी पत्नी दस वर्ष की निरक्षर अबोध बालिका थी । धीरे–धीरे उन्होंने अपनी पत्नी को साक्षर बनाया व उसमें जिम्मेदारी की भावना पैदा की । गुड्डे–गुड़िया का खेल समझने वाली सत्यभामा के अन्दर पति के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने का भाव जगा । यही नहीं, समाज–कार्य व पत्र–सम्पादन में स्वतन्त्रता संग्राम के विभिन्न आन्दोलनों में सतत् जेल जाते रहने वाले गंगाधर तिलक को सदैव अपनी पत्नी की ओर से, घर की ओर से निश्चिन्त रहने का आश्वासन मिलता रहा । एक बालिका के रूप में उन्होंने घर में प्रवेश किया था, लेकिन पति [illegible] साथ प्रेरणापुञ्ज के रूप में वे विकसित हो गयीं । [illegible] मधुमेह का शिकार होने पर भी उन्होंने पति को इस[illegible] सूचना तक न होने दी । लक्ष्मण की उर्मिला एवं सिद्ध[illegible] की यशोधरा की तरह उन्हें निर्वासित–सा जीवन [illegible] पड़ा, पर ये सतत् पति के मनोबल को बढ़ाती ही रही[illegible] पति से पहले उन्होंने देहत्याग किया, लेकिन पूरे सन्तोष[illegible] चेहरे पर मुस्कान के साथ ।

दाम्पत्य जीवन का ऐसा सरस तालमेल भारत–भूमि [illegible] अपनी ही विशेषता है । श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी [illegible] अपनी पत्नी की स्मृति में विनिर्मित एक सरस्वती मन्दि[illegible] सहज ही यह तथ्य उद्घाटित कर देता है कि पत्नी [illegible] समर्पण एवं स्नेह–सहकार ही पति की प्रगति का कार[illegible] बनता है ।

वस्तुत: नारी जीवन की ज्योति है, प्राणों का सम्बल[illegible] है । उसे वही सम्मान मिलना चाहिए जो युगों–युगों से दि[illegible] जाता रहा है । मानव जाति के अस्तित्व के मूल आधा[illegible] नारी शक्ति को देवी के रूप में स्थापना ही धरती पर स्व[illegible] के अवतरण का आधार बन सकती है ।

नारी भी नर का निर्माण करती है

मनुष्य जीवन भर सीखता है और उसका यह क्रम निरन्तर किसी न किसी रूप में चलता रहता है । प्रारम्भिक पाठशाला–परिवार है, इस पाठशाला में भावनात्मक–पा[illegible] पढ़ाये जाते है । यह प्रेरणाओं का स्रोत है, जो निरन्त[illegible] झरता रहता है । कभी माँ के रूप में, कभी बहिन के रू[illegible] में और कभी पत्नी के रूप में प्रेरणाएँ निरन्तर मिलती रहती हैं । यदि प्राकृतिक–व्यवस्था का क्रम इस प्रकार न होता तो जीवन में निराशा ही निराशा होती, एकाकी–जीवन से मनुष्य ऊब जाता और जीने का आधार भी [illegible] मिलता ।

पत्नी यदि अपने कर्त्तव्य और सद्व्यवहार का उपहार देकर अपने पति को सदा प्रसन्न रखे तो इसमें जरा भी संदेह नहीं कि वह कठिन से कठिन कार्य को भी सरलता से प्रसन्नतापूर्वक हल कर लेता है, क्योंकि वह पत्नी की इच्छा, आवश्यकताओं की पूर्ति को अपना कर्तव्य समझ[illegible] है । वह जानता है कि इसका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है । कल तक यह किसी की पुत्री थी, आज हमारे घर की बहू है । अनेकानेक भाव उसके प्रति उमड़ते हैं ।

नेपोलियन बोनापार्ट ने अपने उम्र से छ: साल बड़ी एक महिला से शादी की थी । नेपोलियन के मन में विश्व–विजय की आकांक्षा उसी नारी की प्रेरणा से जगी थी । संसार की सारी सम्पदा को उसके चरणों में समर्पित कर देने के लिए व यह विकट संघर्षों में कूद पड़ा । वह [illegible] रोज युद्ध–भूमि से अपनी पत्नी के नाम पत्र भेजता था, [illegible]

एक पत्नी के नाम पति की प्रेम की पाती ही नहीं, बल्कि पुरुष के हृदय में नारी की प्रेरणा की भावनात्मक अभिव्यक्ति भी थी।

मालवीय जी को 'महामना' बनाने का बहुत कुछ श्रेय उनकी पत्नी को है। मालवीय जी का जीवन आरम्भ में गरीबी में बीता था, लेकिन उनकी पत्नी ने सहयोग दिया। उसने उनके लिए जवानी के सुखों को त्यागा। मालवीय जी ने अपनी पत्नी के लिए लिखा है—"मेरी स्त्री आधा पेट खाकर सन्तोष कर लेती थी और फटी धोतियाँ साँकर पहन लेती थी, मैंने बहुत वर्षों बाद जब उससे पूछा कि तुमने अपनी सास से कभी खाने-पीने, पहनने आदि के कष्टों की शिकायत क्यों नहीं की ? स्त्री ने कहा-शिकायत करके क्या करती ? घर का कोना-कोना जितना वह जानती हैं, उतना मैं भी जानती हूँ। मेरा दुःख सुनकर वह रो देती और करतीं भी क्या ?"

थामस कार्लाइल अपने ४० वर्ष के वैवाहिक जीवन से अतीव प्रसन्न थे। इसलिए कार्लाइल को अपनी पत्नी जेनवेल्स के मरने के बाद बड़े मार्मिक स्वर में कहना पड़ा—"मेरा सर्वस्व लुट गया। जिस पतिव्रता ने अनेक कठिनाइयों के पर्वत मेरे साथ पार किये वह चली गई, उसके बिना आज मैं दर-दर का भिखारी हूँ।"

प्रसिद्ध दार्शनिक स्टुअर्ट मिल ने ५४ वर्ष की आयु में रिएटा नाम की सुन्दरी से शादी की। साढ़े सात वर्ष क अपनी पत्नी के साथ सुखमय-जीवन व्यतीत किया। न्हें 'लिबर्टी' नामक पुस्तक लिखने की प्रेरणा उन्हीं से मली। लेकिन हरिएटा के आकस्मिक निधन से उन्हें हरा सदमा पहुँचा। कई दिनों तक विक्षिप्तावस्था में पड़े है। पत्नी की स्मृति में आपने लिखा है—"पत्नी की ीति मेरे जीवन का वरदान है और उसकी स्मृति ही रा महान् ग्रन्थ है।"

स्वर्गीय नेहरू को काम करने की प्रेरणा उनकी त्नी कमला जी से मिली। नेहरू जी ने लिखा है—"ऐसी जीवन-संगिनी पाना मेरा सौभाग्य था। कठिनाई और काम के तनाव में इनके सहयोग ने मुझे शान्ति रक्षा प्रदान की है। सन् १९२० से उनके मृदुल व्यवहार के कारण मुझे जो शान्ति मिली है और उसके बदले उनके अधिकारों का मूल्य मैं न दे पाया, इसे सोचकर मैं शर्म से गढ़ जाता हूँ।"

एक समय कमला जी अस्पताल में थीं, उनकी हालत बड़ी खराब थी। नेहरूजी उन्हें देखने गये, उस समय उनके मुँह से आवाज भी मुश्किल से निकली थी। कमला जी ने नेहरू जी से कहा—"सरकार को आश्वासन देने की क्या बात है ? ऐसा हरगिज मत करना।" वह आश्वासन यह था कि नेहरू जी राजनीति में भाग लेना छोड़ दें तो उन्हें अपनी पत्नी के साहचर्य में रहने दिया जा सकता है। कमला जी की बात का नेहरू जी पर गहरा असर हुआ और इस कारण उन्होंने अपने अभीष्ट पथ से अपने को जोड़े रखा।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जब पहले-पहल साहित्य की ओर उन्मुख हुए तो उस समय उनकी इच्छा कामोत्तेजक साहित्य लिखने और प्रकाशित कराने की थी, लेकिन उनकी पत्नी उन्हें अच्छे साहित्यकार बनने की हमेशा प्रेरणा दिया करती थीं। फलतः वे अपना पहला इरादा छोड़कर उच्च-स्तरीय साहित्य के निर्माण में निरत हो गये।

गोस्वामी तुलसीदास जी को ही ले लीजिए—प्रारम्भ में आप पत्नी में कितने तल्लीन थे कि रस्सी और साँप का अन्तर ही न दीखा। नाव और मुर्दा को भी न समझ पाये। यही तुलसी—रतना की प्रेरणा से एक उच्चकोटि के साहित्यकार के साथ-साथ युग-सुधारक, युग-निर्माता भी बने।

हाड़ा रानी के त्याग की कहानी सबकी जबान पर है। उनके पति उनके मोह-पाश से छूट नहीं पाये थे और बार-बार युद्ध-भूमि से उनके पास सन्देश भेजा करते थे। जब रानी ने देखा कि पति का मन मेरी ओर अधिक है। युद्ध की ओर कम है तो उन्होंने सन्देश-वाहक दूत की हथेली पर अपना सिर काटकर रख दिया। पत्नी के इस त्याग को देखकर उनके पति ने ऐसा साहसिक-युद्ध किया, जो इतिहास में बेमिसाल है।

अपनी ही परिचित एक विदुषी-पत्नी ने अपने ग्रामसेवक पति को ऊँचा उठाने के लिए संकल्प लिया। उसने अपने पति की नौकरी छुड़ा दी और विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए प्रेरित किया। स्वयं ने सभी कष्ट-सहकर कठोर श्रम करके पति के लिए आवश्यक साधन जुटाये। पति ने एम० ए०, पी० एच० डी० कर लिया और एक विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं। उस पत्नी ने अपने साधारण से पति को अपनी प्रेरणा और त्याग एवं लगन से कितना ऊँचा उठा दिया।

नारी की महत्ता इसमें नहीं है कि कितने समृद्ध और कुशल पति की पत्नी है, बल्कि इस बात में है कि वह अपने साधारण-से पति को भी अपने कर्त्तव्य और सद्व्यवहार से कितना समृद्ध और सुखी बना देती है।

पति को प्रगतिशील बनाने का श्रेय नारी को है। वह सुख-दुःख, भूख-प्यास सभी सहकर उसका हाथ बँटाती है।

क्या नारी अक्षम और अयोग्य है ?

लिंग भेद के आधार पर व्यक्तित्व के गुणों, त्रुटियों और विशेषताओं, दुर्बलताओं की मान्यता का पोषण कर जनमानस में नारी के प्रति कितना अविश्वास, कितना सन्देह और कितनी भ्रान्तियाँ पैदा की गयी हैं, इसका कोई हिसाब नहीं लगाया जाता है। उसे हजार बार अबला कहा जाता है और सदियों से नारी के मन पर यह छाप

डाली जाती रही है कि यह दुर्बल है, दीन-हीन है, अशक्त है और अक्षम है तथा किसी का सहारा लिए बिना एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकती।

बार-बार यह दोहराये जाते रहने के कारण नारी मन पर उसका प्रभाव अमिट रूप से बन गया और परिणाम-स्वरूप यह अपने आपको दुर्बल, अबला और असहाय समझने लगी। अपने सम्बन्ध में जैसी मान्यता बन जाती है व्यक्तित्व की दिशा भी उसी ओर मुड़ जाती है। यही कारण है कि प्रकृति द्वारा समस्त विशेषताओं से विभूषित किये जाने पर भी नारी अपने आपको दीन-दुर्बल समझने लगी और आज घर की चारदीवारी को ही अपना कार्य-क्षेत्र समझकर उसे भी जैसे-तैसे अकुशलतापूर्वक सम्हाल रही है।

लेकिन सत्य और तथ्य अपने स्थान पर है। सदियों से पोषित इस तरह के संस्कारों के बावजूद नारियों को जब कभी अवसर मिला उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया और यह दर्शाया कि वह पुरुषों से किसी भी रूप में कम नहीं है, वरन् अवसर मिलने पर ऐसी मिसाल कायम कर सकती है, जिसको सानी दुनिया में अन्यत्र नहीं ढूँढ़ी जा सकती।

अभी पिछले कुछ समय पूर्व चोटी के कुछ राजनेताओं ने यह मत व्यक्त किया था कि नारियाँ प्रशासन के क्षेत्र में सदा ही अक्षम रही हैं और रहेंगी। पता नहीं यह प्रतिपादन किस सन्दर्भ में, किस आधार को लेकर किया गया, परन्तु जहाँ तक तथ्यों की बात है वे सदा ही इस प्रतिपादन को झुठलाते आये हैं। इतिहास में ऐसे ढेरों उदाहरण भरे पड़े हैं, जबकि नारियों ने दक्षतापूर्वक प्रशासन कार्य चलाया और कुशलतापूर्वक अपने दायित्वों का निर्वाह किया।

यों तो वैदिक और पौराणिक साहित्य में कई स्थानों पर नारी की अभूतपूर्व प्रशासन क्षमता और कुशल नेतृत्व के उदाहरण भरे पड़े हैं। उन सबका उल्लेख न किया जाय तो इतिहास में पहला उदाहरण सातवीं शताब्दी का मिलता है। चालुक्य वंश की साम्राज्ञी भट्टारिका का उल्लेख किये बिना भारतीय इतिहास का विवेचन अधूरा ही रहेगा। भट्टारिका ने अपने राज्य में जिस प्रकार सुशासन की स्थापना की और विरोधियों का उन्मूलन किया, उसकी तुलना की दूसरी पराक्रम और कुशल नेतृत्व की गाथा अन्यत्र शायद ही कहीं मिले।

दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में कश्मीर में सुगन्धि और दिद्दा ने किया। नारी चरित्र के अध्ययन की दृष्टि से दिद्दा की गाथा अद्वितीय है। प्रसिद्ध कवि कल्हण ने अपने काव्य ग्रन्थ 'राजतरंगिणी' में लिखा है कि रानी दिद्दा एक शक्तिशाली महिला थी और उसका शासन तन्त्र पर पूरा प्रभाव था। यद्यपि उनके पति क्षेमगुप्त राजा थे, फिर भी दिद्दा का इतना अधिक प्रभाव था कि राजा को भी दिद्दा क्षेमं कह कर पुकारा जाता था।

क्षेमगुप्त की मृत्यु के बाद युवराज अभिमन्यु को सिंहासनारूढ़ किया गया और दिद्दा उसकी संरक्षिका बनी

क्योंकि अभिमन्यु बालक था। दूसरे महत्वाकां
दरबारियों ने अभिमन्यु को सिंहासन च्युत कर स्वयं
बन जाना चाहा, पर दिद्दा ने उनके सारे प्रयासों को वि
कर दिया। दिद्दा ने अपने शासनकाल में हुए अने
विद्रोहों को भी कुचला और शासन व्यवस्था पर अ
वर्चस्व बनाये रखा।

मुगलकाल में भी रजिया सुल्तान एक विलक्षण
हुई। यह गुलाम वंश के सम्राट् इल्तुतमिश की बेटी
इल्तुतमिश का कोई पुत्र नहीं था इसलिए रजिया को
उसका उत्तराधिकारी बनना पड़ा और रजिया ने
वेश-भूषा त्यागकर राज-काज संभालना आरम्भ कि
इससे पूर्व तक रजिया को शाही वंश की स्त्रियों
परम्परा, मर्यादाओं का ध्यान रखना पड़ता था, बुर्के
रहना पड़ता था, परन्तु रजिया ने यह सब छोड़ दि
रजिया को एक अबला नारी समझकर कई सरदारों
उसके हाथ से सत्ता छीन लेना चाहा, पर रजिया उन
षड्यन्त्रों को बड़ी चातुरी से विफल करते हुए लम्बे
तक राजकाज सम्हालती रही।

जहाँगीर की बेगम नूरजहाँ का व्यक्तित्व
सुल्तान के समान तो उभर कर नहीं आया कि उसे
की तरह ही शासन प्रबन्ध देखना पड़ा हो, पर
इतिहासकारों का कहना है कि जहाँगीर तो नाम पर
सम्राट् था, उसे तो सुरा-सुन्दरी से ही फुरसत नहीं
असली राजकाज तो नूरजहाँ के हाथों में ही रहता था
दिल्ली के राजसिंहासन पर सीधा अधिकार न होने
बावजूद नूरजहाँ ने सारे देश की राजनीतिक बागडोर
हाथों में ले रखी थी और सारा प्रबन्ध, सारी व्यवस्था
कुशलता से चलाती थी।

१९वीं शताब्दी में पंजाब में रानी जिन्दा का
राजनीतिक क्षितिज पर उभर कर आया। वह मह
रणजीतसिंह की विधवा थी। जब तक रणजीतसिंह
रहे तब तक तो रानी जिन्दा का जीवन अन्तःपुर तक
सीमित रहा मगर रणजीतसिंह की मृत्यु होते ही
बाहरी क्षेत्र में आना पड़ा। क्योंकि रणजीतसिंह की
वयस्क सन्तान तो थी नहीं जो शासन प्रबन्ध सम्हाल सके
उनकी एकमात्र सन्तान थी—युवराज दिलीपसिंह। वह
अवयस्क। इसलिए रानी जिन्दा ही उसकी संरक्षिका
और परोक्ष रूप से पंजाब का राजकाज चलाने लगी।

ब्रिटेन में अभी तक राजसत्ता की सर्वेसर्वा साम्राज्ञी
है। यद्यपि वह पद अब भले ही नाम मात्र का रह गया
परन्तु किसी समय में साम्राज्ञी ही ब्रिटेन की सर्वोपरि श
समझी जाती थी। इस परम्परा की प्रवृत्ति का एलिजा
प्रथम बड़ी ही कुशलता से राजकाज चलाती रही।
इतनी चतुर थी कि जब भी कोई व्यक्ति उस पर अनु
दबाव डालता और अपने मन की करने की बात सोचता
वह उसे तुरन्त ही निरुत्साहित कर देती।

त्सूजी (१८३५-१९०८) भी चीन की एक योग्य साम्राज्ञी थी। वह सम्राट् सियेनफोंग की पत्नी तथा सम्राट् तुंगचिहा की माँ थी। १८६२ में सिवेनफोंग की मृत्यु के बाद जब वयस्क तुंगफिहे को सिंहासनारूढ़ किया गया तो त्सूजी उसकी संरक्षिका बनी और लम्बे समय तक चीन का शासन करती रही। संयोग से तुंग चिह की भी मृत्यु हो गयी, पर अदम्य संकल्प की धनी इस साम्राज्ञी ने तब भी हिम्मत नहीं हारी और प्रशासन में ढील नहीं आने दी। त्सूजी के शासनकाल में चीन पर विदेशी आक्रमण भी हुए, पर उसने इन आक्रमणों का डटकर मुकाबला किया।

शौर्य-पराक्रम के क्षेत्र में भी महिलाओं के एक से एक बढ़े-चढ़े उदाहरण देखने को मिलेंगे। झाँसी की रानी, किन्नूर की चेनम्मा, दुर्गावती आदि महिलाओं ने तो समरांगण में उतर कर शत्रु सेनाओं से दो-दो हाथ किये थे।

खोजने पर इस तरह के अनगिनत उदाहरण मिल सकते हैं, जब महिलाओं ने न केवल पुरुषों के स्थानापन्न का काम किया और उनके दायित्वों को पूरा करने में समर्थ सहयोग दिया, वरन् पुरुषों से भी अधिक दक्षता और कुशाग्रता दिखाई। न केवल प्रशासन के ही क्षेत्र में वरन् कला, साहित्य और सेवा के क्षेत्र में भी नारियों ने अपनी प्रतिभा का बढ़ा-चढ़ा परिचय दिया है। यदि नारियों को आज की स्थिति में पुरुष की तरह सभी क्षेत्रों में बढ़ने और अपनी प्रतिभा का परिचय देने का अवसर मिले तो कोई सन्देह नहीं कि वे आज भी अपनी प्रतिभा का वैसा ही लाभ समाज को दे सकें।

नारी की क्षमता पर, उसकी प्रतिभा पर यदि सन्देह न किया जाय तो समाज की यह आदि-शक्ति जो तरह-तरह के बन्धन-प्रतिबन्धों से जकड़ी हुई दयनीय दुर्दशा का ग्रास बनी हुई है—समाज उत्कर्ष में योगदान देने वाला महत्त्वपूर्ण अंश बन सकती है। आवश्यकता है इस बात की कि उसकी क्षमता पर विश्वास किया जाय और उसे भी आगे बढ़ने का, ऊँचा उठने का अवसर दिया जाय।

बालक के निर्माण में माता का हाथ

बालकों के निर्माण में सबसे बड़ा हाथ माता का है क्योंकि उसी के रक्त-माँस से बालक का शरीर बनता है। नौ महीने पेट में रखकर तथा अपने शरीर का रस-दूध पिलाकर उसका पोषण करती है। कई वर्ष का होने तक वह अधिकांश समय माता के सान्निध्य में रहता है और उसी के साथ सोता है। इसलिए स्वभावतः उसके ऊपर सबसे बड़ा प्रभाव माता का ही होता है। माता के जैसे विचार और संस्कार होते हैं, बालक प्रायः उसी ढाँचे में ढलते हैं।

यों पिता के बिन्दु का भी थोड़ा महत्त्व है और बड़े होने पर शिक्षक तथा बाह्य परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है, पर यह सब मिलकर भी उतना नहीं हो पाता जितना कि माता का प्रभाव पड़ता है। माता यदि विदुषी है, सुसंस्कार युक्त और उच्च अन्तःभूमि की है तो उसकी छाया सन्तान पर भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होगी। संसार में जितने महापुरुष हुए हैं उनके निर्माण में माता का बहुत बड़ा हाथ रहा है।

सुभद्रा ने बालक अभिमन्यु का निर्माण तब किया, जब वह गर्भ अवस्था में था। वह चाहती थी कि उसका पुत्र भी अपने पिता अर्जुन के समान ही पराक्रमी एवं धनुर्धर हो। शिक्षा का सबसे उत्तम काल वह है, जब बालक गर्भ में रहता है। उसे मालूम था कि आधी पढ़ाई बालक माता के गर्भ में पढ़ लेता है। फिर शेष जन्म भर में आधी शिक्षा पूरी कर पाता है। इसलिए सुभद्रा ने अर्जुन से कहा—"गर्भस्थ बालक पर वीरता के तथा शस्त्र प्रवीणता के संस्कार देने के लिए आप मुझे नित्य उन विषयों की शिक्षा दिया कीजिए। माता के शरीर में ही गर्भस्थ बालक का शरीर और माता के मन में ही उनका मन बनता है, सो आप इन दिनों मुझे जो उपदेश करेंगे, उन सबको बालक ग्रहण कर लेगा।"

अर्जुन को सुभद्रा की बात सर्वथा उचित लगी। वह नित्य वीरता एवं शस्त्र विद्या सम्बन्धी शिक्षा उसे देने लगा। बालक अभिमन्यु ने उस सारे ज्ञान को अपने अन्तःकरण में धारण किया। चक्रव्यूह भेदन की विद्या भी उसने उसी अवस्था में अपने पिता से सीखी। चक्रव्यूह से युद्ध में सात चक्र भेदने पड़ते हैं। अभिमन्यु ने छह चक्रों का वेधन सीख पाया था इसलिए महाभारत में उन्होंने छह चक्र तो आसानी से वेध दिये पर जब सातवें भेदने का समय आया तो उसकी जानकारी न होने से लड़खड़ा गये और यहीं मारे गये। सातवें चक्र वेधन की शिक्षा गर्भ में ही उन्हें कम मिली थी क्योंकि अर्जुन जब चक्रव्यूह वेधन का उपदेश कर रहे थे तब छह चक्रों तक का विवरण सुनने के बाद सुभद्रा को नींद आ गई। अर्जुन ने भी कहना बंद कर दिया। इसके बाद अर्जुन अन्य आवश्यक कार्यों में लग जाने के कारण सातवें चक्र का भेदन बताना भूल गये। सुभद्रा भी फिर न पूछ सकी। इस प्रकार वह प्रकरण अधूरा ही रह गया और उस जानकारी के अभाव में अभिमन्यु मारे गये।

राजा दुष्यन्त जब वन में घूम रहे थे तो उन्होंने देखा कि एक बालक सिंहनी के दो बच्चे अपनी दोनों बगलों में दबाये हुए है। जब सिंहनी अपने बच्चों को छुड़ाने के लिए बालक पर गुर्राती है तो वह एक छड़ी लेकर उस सिंहनी को कुतिया की तरह पीट देता है और वह विवश होकर पीछे हट जाती है। इस प्रकार सिंहनी को बार-बार अपने बच्चों को छुड़ाने के लिए आगे बढ़ना और

बालक का बार-बार उसे छड़ी से पीटकर उसे पीछे हटा देना एक मनोरंजक दृश्य था । दुष्यन्त को उस बालक का मनोबल देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई । पूछने पर मालूम हुआ कि यह शकुन्तला पुत्र भरत है । कण्व ऋषि के आश्रम में पालन होने से शकुन्तला ने अपने में आत्मबल एकत्रित किया और पति परित्यक्ता होने पर उसने पुनः कण्व आश्रम में ही निवास किया । उस वातावरण में रहने का प्रभाव माता पर पड़ा था । पुत्र ने माता और आश्रम का दुहरा लाभ उठाया । ऐसी दशा में यदि वह बालक सिंह-शावकों में खेलने वाला बना तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

चित्तौड़ के राजकुमार अरिसिंह एक बार शिकार खेलने गये तो एक जंगली सूअर के पीछे घोड़ा दौड़ाया । दौड़ते-दौड़ते शाम हो गई । घायल सूअर थककर एक झाड़ी में छुपा रहा । राजकुमार भी बहुत थके हुए थे, वे झाड़ी के पास पहुँचे और चाहते थे कि किसी प्रकार सूअर को बाहर निकाला जाय, पर घायल सूअर द्वारा आक्रमण करने का पूरा-पूरा खतरा था, इसलिए साथियों में से किसी की हिम्मत आगे बढ़ने की न पड़ रही थी ।

इस दृश्य को एक किसान लड़की अपने खेत की रखवाली करती हुई देख रही थी । वह आई उसने उन सब शिकारियों को एक ओर हटा दिया और एक लकड़ी हाथ में लेकर झाड़ी में घुस गई तथा सूअर को पीटती हुई बाहर निकाल लाई । राजकुमार इस कृषक लड़की के पराक्रम से बहुत प्रभावित हुए और उसकी प्रशंसा करते हुए घर लौट आये ।

कुछ दिन बाद राजकुमार फिर उधर से निकले । देखा तो वह लड़की सिर पर दो घड़े पानी रखे और दोनों हाथों में दो बड़े-बड़े बैलों के रस्से पकड़े जा रही है । राजकुमार को उससे कुछ छेड़खानी करने की सूझी । घोड़े को उससे सटाकर निकालने लगे ताकि उसके सिर पर रखी मटकी गिर जाय । कृषक लड़की राजकुमार की गुस्ताखी समझ गई । उसने बैल वाली एक रस्सी इस तरह फंदा बनाकर फेंकी कि घोड़े का पैर ही उसमें फँस गया और राजकुमार घोड़े समेत नीचे गिर पड़े । लड़की की वीरता पर मुग्ध होकर राजकुमार ने उसी से विवाह किया और उस लड़की के गर्भ से वीर हम्मीर का जन्म हुआ जिनकी गाथा इतिहास में प्रसिद्ध है ।

कुन्ती ने अपने पुत्रों को तप बल से उत्पन्न किया था, फलस्वरूप उनमें असाधारण दैवी शक्तियाँ मौजूद थीं । कर्ण को सूर्य की शक्ति से, अर्जुन को इन्द्र की शक्ति से, युधिष्ठिर को धर्म की शक्ति से और भीम को पवन देवता की शक्ति से उत्पन्न किया था । फलस्वरूप उनमें तप-तेज की कमी नहीं थी । शक्ति भले ही किसी देवता की रही हो, पर उसका आकर्षण एवं धारण कुन्ती द्वारा ही हो सका । यदि वे वैसी तपस्विनी न होती तो कदापि ऐसे बालक उत्पन्न न होते । वे देवता कुन्ती से पहले भी थे और अब भी हैं, पर वैसी धारणा-शक्ति की नारियाँ न होने से उस प्रकार के बालक भी उत्पन्न नहीं हो पा रहे हैं ।

देवी अंजना ने वायु देवता को अभिमंत्रित करके पवन पुत्र हनुमान को जन्म दिया था । उनका पराक्रम सभी को विदित है । कौशिल्या ने पिछले जन्म में तप करके अपने गर्भ से भगवान के जन्म लेने का वरदान प्राप्त किया था । उनके उस गुणों के कारण ही मर्यादा पुरुषोत्तम राम में वे गुण आये ।

इसी प्रकार के अगणित उदाहरण प्राचीनकाल के हैं । आधुनिक काल में भी ऐसे अनेक महापुरुष हुए हैं । जिनकी महानता का बहुत कुछ श्रेय उनकी माताओं को ही है ।

सन्त विनोबा अपनी आत्मिक प्रगति का कारण अपनी माता को मानते हैं । माता की चर्चा करते हुए उनने एक बार बताया था कि मेरी माँ कहती थी, मैं अगर पुरुष होती तो दिखाती कि वैराग्य कैसा होता है । उसके दिल में छटपटाहट थी, लेकिन उसकी दिक्कत यह थी कि वह स्त्री थी । वह यह महसूस करती थी फिर भी मैंने देखा कि वह भक्त थी । उसकी मुझ पर श्रद्धा थी । हर चीज में वह 'विन्या' शब्द का 'प्रामाण्य' मानती थी । मुझे महसूस होता है कि आज भी वह मेरे साथ चल रही है । अगर मुझे मुक्ति मिलेगी, तो उसे भी मुक्ति मिलेगी । अगर मैं वापस दुनिया में आऊँगा, तो वह भी मेरे साथ आयेगी । मैं जहाँ भी जाऊँगा, वह मेरे साथ आयेगी ।''

गाँधी जी की माता परम साध्वी और धर्मनिष्ठ महिला थीं । वे प्रतिदिन मन्दिर जातीं और बिना भजन-पूजा के जल तक ग्रहण न करती थीं । कठिन से कठिन व्रत रखती थीं । चातुर्मास व्रत तो उन्होंने आजन्म निबाहा । लोकमान्य तिलक की माता बड़ी तपस्विनी थीं । व्रत उपवासों से उन्होने अपना शरीर सुखा डाला था । जिन दिनों बालक तिलक गर्भ में थे उन दिनों उन्होंने बड़े कठिन अनुष्ठान किये थे । वे कहा करती थीं कि मैंने सूर्य देवता की साधना करके इस बालक को प्राप्त किया है ? यह सूर्य के समान ही तेजस्वी होगा । माता की बात सच निकली, लोकमान्य तिलक की प्रतिभा और महानता सचमुच सूर्य जैसी ही प्रकाशवान् थी ।

शौर्य एवं पराक्रम की अधिष्ठात्री-भारतीय नारी

युगों युगों से नारी अपने अदम्य साहस, त्याग और बलिदान का परिचय देती रही है । राष्ट्र हित में उत्क समर्पण समाज के सभी वर्गों को सदा से प्रेरित व उत् करता रहा है । सामान्यतया नारी को वीरांगना के रूप में नहीं, अबला के रूप में घोषित किया जाता रहा है, उत्पीड़न दिया जाता रहा है तथा उसके समक्ष प्रतिबन्ध की दीवार खड़ी की जाती रही है । वस्तुतः यह नर पशु का कृतघ्नता का व्यवहार ही तो है । इतिहास पर हम दृ

डालें तो पाते हैं कि सृष्टि के आदिकाल से नारी ने पराक्रम भरी भूमिका निभाई है । मात्र घूँघट पहने, घर में पड़े बन्द रहने वाली अबला की मोहर तो मध्यकाल में उस पर जबरन लगा दी गई थी ।

चन्द्रगुप्त की अंगरक्षक अमजेन महिलाओं की चर्चा मैगस्थनीज द्वारा किये गये वर्णन में की गई है । कौटिल्य द्वारा महिला धनुर्धरों का वर्णन किया गया है । वेदों में ऐसी नारियों का उल्लेख है जो युद्ध में टाँग कटने पर अश्विनी कुमारों से पुनः लोहे की टाँग लगवाकर युद्ध स्थल में कूद पड़ी थीं । हनुमान ने जब लंका के लिए प्रयाण किया था तो उनकी परीक्षा हेतु सुरसा नाम की महिला आगे आयी थी । स्पष्ट है कि वह इतनी समर्थ अवश्य रही होगी कि भगवान् के दूत की भी परीक्षा ले सके । रावण के दुर्गम किले की रखवाली कोई पुरुष नहीं वरन् एक नारी ही करती थी । दशरथ की प्राण रक्षा कैकेयी ने ही की थी । महाभारतकाल में सुभद्रा की गणना महारानियों में की जाती थी तथा उसने युद्ध में भी अपने शौर्य का परिचय दिया था । त्याग और बलिदान की प्रतिमूर्ति, वेदों की ऋषिकाएँ, धृतव्रता, श्रुतवती, सुलभा आदि हुई हैं जो आजीवन अविवाहित रहकर समाज कल्याण में संलग्न रहीं । बुद्ध काल में आम्रपाली का नाम उल्लेखनीय है जो अपना समस्त वैभव बुद्ध के समक्ष समर्पित करके स्वयं धर्म प्रचार में लग गई थी ।

आधुनिक समय में भी नारी की अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान मिलता है । सैकड़ों महिलाओ ने संग्राम के दौरान जो निर्भयता व समर्पण भाव प्रदर्शित किया, वह चिरस्मरणीय बना रहेगा । सच पूछा जाय तो नारी की निष्ठा, लगन व कठोर परिश्रम ने ही पुरुषों को भी राष्ट्र जागरण के उद्देश्य से बढ़ने हेतु प्रेरित किया । झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, मुगल खानदान की जीनत महल तथा अवध के नवाब की बेगम हाजरा महल कुछ ऐसी प्रतिभाएँ हैं जिसने नाना साहब पेशवा, ताँत्या टोपे, सम्राट् बहादुरशाह जफर आदि को न सिर्फ प्रेरित किया, वरन् उनके कंधे से कंधा मिलाकर संग्राम का नेतृत्व भी सँभाला । सन् १८५७ में गदर ने दिल्ली की क्रान्ति की मुख्य संचालिका बेगम जीनत महल ही तो थी ।

आक्रान्ताओं द्वारा किये जा रहे दमन की उस घड़ी में कोहराम-सा मचा हुआ था । सर्वत्र मानवीय अधिकार का गला घोंटा जा रहा था । त्राहि-त्राहि मची थी । इस स्थिति में सर्वप्रथम लक्ष्मीबाई अँग्रेजों के लिए साक्षात् दुर्गा के रूप में प्रकट हुई । उनके शौर्य, साहस व पराक्रम के समक्ष अँग्रेजों के दाँत खट्टे हो गये । रणभूमि पर लड़ते-लड़ते ही रानी लक्ष्मीबाई मारी गई, परन्तु क्रान्ति के बीज को बोने में वे सफल हुईं, जिसकी अन्तिम परिणति गाँधी के स्वतन्त्रता आन्दोलन के रूप में प्रकट हुई ।

क्रम यहीं पर नहीं टूटा, बल्कि शीघ्र ही श्रीमती एनी-बेसेण्ट का स्वतन्त्रता संग्राम में आविर्भाव हुआ । हालांकि इनका जन्म लन्दन के एक आयरिश परिवार में हुआ था, फिर भी दीनबन्धु एन्ड्रूज एवं भगिनी निवेदिता की तरह भारतीय संस्कृति के प्रति इनकी अगाध निष्ठा थी । इसी निष्ठा के कारण उन्होंने जीवन के अन्तिम कुछ वर्ष भारत में ही गुजारे, यहाँ रहकर उसने स्वतन्त्रता संग्राम में प्रमुख हिस्सा बँटाना शुरू किया । सर्वप्रथम उन्होंने 'कौमनवील' नामक एक साप्ताहिक तथा 'न्यू इंडिया' नाम से एक दैनिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया । यह लोगों में राष्ट्रीय भावना को जगाने का काम करता रहा । बाद में वे इण्डियन नेशनल कांग्रेस की अध्यक्षा भी नियुक्त की गईं । संग्राम में आपसी फूट को दूर करके 'ऑल इन्डिया होम रूल लीग' की स्थापना का श्रेय भी उन्हें प्राप्त हुआ । कई बार वे जेल भी गईं तथा अनेक कष्ट सहे । थियासाफी समाज के संस्थापकों में उनकी गणना की जाती है ।

गाँधीजी के स्वतन्त्रता संग्राम में प्रवेश करते ही नारियों का एक विशाल समुदाय आन्दोलन में कूद पड़ा । कस्तूरबा तो गाँधीजी का दाहिना हाथ बन चुकी थीं । स्वतन्त्रता संग्राम में वे अनवरत अपना योगदान प्रस्तुत करती रहीं तथा अन्ततः पूना में आगा खाँ महल में उन्होंने पति के कैदी रूप में होते हुए प्राण त्यागे ।

इसके पश्चात् एक लम्बी शृंखला श्रीमती सरोजनी नायडू, सुचेता कृपलानी, डा० सुशीला नैय्यर, अरुणा आसफ अली तथा कमला देवी चट्टोपाध्याय की आती है जिनका स्वतन्त्रता संग्राम में चिरस्मरणीय योगदान रहा । सरोजनी नायडू गाँधीजी की प्रमुख सहयोगिनी के रूप में कार्यरत रहीं । लन्दन के 'गोलैण्ड कांफ्रेंस' में उनका प्रमुख सहयोग रहा ।

पंजाब के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी भगवती चरण बोहरा की धर्मपत्नी दुर्गा देवी साक्षात् दुर्गा ही तो थीं । उन्हें प्रत्येक क्रान्तिकारी दुर्गा भाभी के नाम से पुकारा करता था । दुर्गा भाभी को चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह, राजगुरु, यशपाल आदि के साथ कार्य करने का, सहायता करने का अवसर मिला था ।

ऐसे एक नहीं, ढेरों उदाहरण हैं जिनमें शौर्य-पराक्रम के क्षेत्र में नारी समुदाय ने मुख्य भूमिका निभाई है । यह तो नर समुदाय का अहमन्यतापूर्ण दृष्टिकोण है कि उसकी गरिमा को भूलकर उस श्रेय से वंचित कर दिया गया है जो उसे मिलना चाहिए था । मनोवैज्ञानिकों के अनुसार धैर्य, सहिष्णुता, समस्वरता, साहस जैसे गुणों के आधार पर मूल्यांकन किया जाय तो नारी नर से श्रेष्ठ ही ठहरती है । स्त्री समुदाय की गौरव-गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखने का दायित्व दोनों पर समान रूप से आता है ।

नारी का शौर्य, साहस और पराक्रम भी कम नहीं

नारी के लिए प्रायः जिस विशेषण का सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है उनमें से एक है-अबला । जिसका अर्थ है जिसमें बल न हो या जिसकी अस्तित्व रक्षा के लिए पुरुष के संरक्षण की आवश्यकता हो । इस मान्यता का पोषण

करने वालों को फटकारते हुए आचार्य विनोबा भावे ने सावरमती के एक प्रवचन में कहा था-"कई लोगों को शंका है कि स्त्रियों में कोई शक्ति है अथवा नहीं ? बहुत से लोग कहते हैं कि स्त्री अबला है, रक्षण योग्य है, पर यह बात ध्यान में रखने जैसी है कि अपने यहाँ स्त्रियों को अबला तो बहुत बाद में कहा जाने लगा । उनका मूल नाम तो महिला है, जिसका अर्थ है महान् शक्तिशाली । इस बात का प्रमाण यह है कि अपने यहाँ शक्तिरूप में स्त्री-मूर्ति ही मान्य की गयी । महिषासुर को मारने का जब प्रसंग आया तो विष्णु सहित समस्त देवों ने जाकर शक्तिमाता से प्रार्थना की और शक्ति माता ने महिषासुर का संहार किया ।"

वस्तुतः इस मान्यता को अन्धकार युग की देन ही कहना चाहिए । जिसके अनुसार इसे अबला, बलहीन कहा जाने लगा अन्यथा यह सच है कि शौर्य, साहस और पराक्रम में स्त्रियाँ पुरुषों से कभी पीछे नहीं रही हैं । आदिकाल से महिलाओं की वीरता और शूरता के उदाहरण मिलते हैं । भारत ही नहीं, विश्व भर की इतिहास में महिलाओं ने अपना शक्ति-स्वरूप को पुरुष से अधिक सबल सिद्ध किया है ।

अन्याय और अवांछनीयता से जब-जब भी न्याय की आत्मा कराही है तब-तब मातृशक्ति का हृदय ही दहला है और उसने भी शस्त्रपाणि बनकर अवांछनीयताओं का दमन किया है । दुर्गा, काली, चण्डी आदि पौराणिक चरित्रों से लेकर रानी लक्ष्मीबाई, पद्मावती आदि अन्यान्य ऐतिहासिक चरित्रों तक मातृ-शक्ति की ऐसी शृंखला विनिर्मित हुई है, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि शक्ति और शौर्य में महिलाएँ पुरुषों से किसी भी रूप में पीछे नहीं हैं । रानी लक्ष्मीबाई का तो अभी ताजा ही उदाहरण है, इतिहास में उनके बलिदान-गाथा की स्याही भी अभी सूखी नहीं है । अपने पुत्र को पीठ से बाँध घोड़े पर सवार होकर उन्होंने जिस रणकुशलता का परिचय दिया, उससे उनका नाम स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में अमर हो गया ।

न केवल हमारे ही देश में वरन् विदेशों में भी अन्याय और उत्पीड़न के विरुद्ध महिलाओं के उठ खड़े होने की घटनाएँ अभी पिछली कुछ शताब्दियों में घटी हैं । १७९२ ई० में फ्रान्स की स्वतन्त्रता के लिए लेमेने और बलिदान हो जाने वाली मादाम रोला का नाम भुलाया नहीं जा सकता । फ्रान्स में प्रजातन्त्र की स्थापना और न्याय, नीति, सदाचार की कमान सँभाली और विरोधियों ने भी उनकी आवाज को दबाने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ी, पर अजेय आत्मबल की धनी महिला मादाम रोलां के सिंहनाद को कोई भी शक्ति रोक न सकी । अन्ततः उसे बलिदान हो जाना पड़ा और वह बलिदान ही ऐसा रंग लाया कि मरने के बाद उनके स्वप्न साकार होकर ही रहे ।

इससे पूर्व फ्रान्स में ही जोन ऑफ आर्क ने स्वाधीनता की दीप-शिखा प्रज्वलित की थी, जिसे जाज्वल्यमान रखने के अपराध में उन्हें एक वर्ष तक कारावास में रहना पड़ा और उसके बाद उन्नीसवें वसन्त में ही उन्हें जिन्दा जला दिया गया ।

महज तेरह वर्ष की अबीसिनियावासिनी लाइना को भी मातृ-भूमि के लिए बलिदान होने के कारण भुलाया नहीं जा सकता । सन् १९०४ में जब इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण किया तो अपने निश्चय पर दृढ़ रहने के अपराध में लाइना को सैनिकों की संगीनों का शिकार होना पड़ा था । लाइना भले ही न रही, पर उसके बलिदान के अबीसीनिया के नागरिकों का मनोबल इतना ऊँचा उठा दिया कि उनके आगे आक्रमणकारी सैनिक टुकड़ियाँ टिक न सकीं और उन्हें परास्त होकर भाग ही जाना पड़ा ।

अभी कुछ समय पहले भारतीय जनता द्वारा लड़े गये स्वाधीनता-संग्राम में महिलाओं द्वारा क्रान्ति में सक्रिय भाग लेने का आदर्श प्रस्तुत हुआ है । उन्होंने क्रान्ति में प्रत्यक्ष भी भाग लिया और अज्ञात रहकर भी काम किया, जिसके बदले में उन्हें अगणित कठिनाइयाँ, असहनीय कष्ट और कारावास तथा अमानुषी यातनाओं के साथ भयंकर यातनाओं का सामना करना पड़ा । कइयों की बलिदान कथाएँ तो लिखी भी न जा सकीं, क्योंकि उनके सम्बन्ध में जो घटा वह अन्धकार में ही रहा ।

क्रान्तिकारी आन्दोलनों में हर वय की, हर स्थिति की महिलाओं और युवतियों ने भाग लिया तथा अपनी सुख-सुविधाओं के साथ-साथ अपने भविष्य को भी दाँव पर लगा दिया । चटगाँव की छात्रा कुमारी प्रीतिलता ने तो अपनी तमाम सुविधाओं और परिवार की आशाओं को भी दाँव पर लगा कर क्रान्ति का मार्ग चुना था । उनके पिता एक सरकारी ऑफिस में थे, वेतन था कुल पचास रुपये माहवार और वेतन में ही उन्हें अपने पाँच बच्चों का भरण-पोषण करना पड़ता था । हैसियत थी नहीं कि प्रीतिलता को आगे पढ़ा सकें, पर उन्होंने अपनी क्षमता से भी अधिक साहस किया । बेटी को कॉलेज में भर्ती कर ऊँची शिक्षा दिलाने का एक ही ध्येय था कि प्रीतिलता पढ़- लिख कर घर के निर्वाह में कुछ सहायता करने योग्य बने । प्रीतिलता भी अपने पिता की इस आशा को समझती थी और अपने दायित्व की गम्भीरता को भी, पर उसने परिवार से अधिक देश को महत्त्व दिया तथा क्रान्तिकारियों के साथ जा मिली । क्रान्तिकारियों के संगठन में रहकर उसने शस्त्र विद्या का भी अभ्यास किया और २८ दिसम्बर, १९३० को एक मुठभेड़ में शहीद हो गयी ।

इसी प्रकार कॉलेज में पढ़ने वाली पड़ोसी छात्रा कल्पना दत्त ने भी विद्यार्थी जीवन में ही लाठी, तलवार और छुरा चलाने के साथ पिस्तौल चलाना भी सीख लिया और चटगाँव के क्रान्तिकारियों से जा मिली । एक रात वह पुरुष वेश में घूम रही थी कि अँग्रेज सैनिकों ने उसे गिरफ्तार कर लिया । उस समय तो रिहा हो गयी और पुलिस की निगरानी में रही, पर फिर किसी प्रकार पुलिस के पहरे में भी अपनी चातुरी से भाग निकली और जा मिली क्रान्तिकारियों से

साथ । दुबारा जब वह पकड़ी गयी तो उसे आजीवन कारावास का दण्ड मिला । उसे बड़ा दुःख हुआ अपने महिला होने पर, क्योंकि उसे इसी कारण कैद मे रहना पड़ा अन्यथा दूसरे क्रान्तिकारियों को तो फाँसी मिली थी । कल्पना को भी फाँसी का फन्दा चूमने की चाह थी ।

कुमिल्ला में दो छोटी-छोटी लड़कियाँ शांति और सुनीति ने सशस्त्र क्रान्ति का मार्ग अपनाया था और अत्याचारी जिला मजिस्ट्रेट स्टीवेन्स को गोलियों से भून डाला था । इस अपराध में दोनों स्कूली छात्राओं को आजीवन कारावास की सजा मिली । इसी प्रकार कलकत्ता की ही दूसरी छात्रा बीना भौमिक ने भी गर्वनर स्टेनले जैकसन को मौत के घाट उतारा था, जो अपने खूँखार भेड़ियेपन के कारण बड़ा आतंकवादी बना हुआ था । बीस वर्षीया उज्ज्वल को भी सशस्त्र क्रान्ति का मार्ग अपनाने के कारण आजीवन कालापानी का दण्ड भोगना पड़ा था । स्वतन्त्रता आन्दोलन में जिन महिलाओं ने भाग लेकर अपने सुखी संसार को अस्वीकार कर काँटों भरा मार्ग अपनाया, उनमें क्रान्तिकारिणी भीकाजी कामा का नाम सर्वाधिक सम्मान के साथ लिया जाता है । भीकाजी कामा ने किशोरावस्था से ही स्वाधीनता आन्दोलन में रुचि ली । उनके पिता एक पारसी व्यापारी थे और परिवार की आर्थिक स्थिति भी अच्छी थी, पर भीकाजी ने स्वतन्त्रता की लड़ाई में भाग लेना अपना धर्म-कर्त्तव्य समझा और इस रणांगण में कूद पड़ी । उनकी गतिविधियाँ इतनी तेज हो गयीं कि ब्रिटिश सरकार उन्हे खतरनाक समझने लगी और गिरफ्तारी की टोह में रहने लगी । उनके नाम वारण्ट भी जारी कर दिया गया, पर वे बड़ी चतुराई से ब्रिटिश चैनल पार कर फ्रान्स जा पहुँचीं और वहाँ एक छोटा-सा बोर्डिंग हाउस खोलकर अपना काम चलाने लगीं । वहीं रहते हुए उन्होंने 'वंदे मातरम्' अखबार भी निकाला। फ्रान्स सरकार पर दबाव डालकर भीकाजी को गिरफ्तार कराने का प्रयास किया गया तो वे वहाँ से भी फरार हो गयीं । फ्रान्स में रहते हुए भी उन्होंने कई भारतीय युवकों को बम बनाने की कला सिखाई और भारत मे इन युवकों द्वारा बमों के माध्यम से अँग्रेज सरकार की जड़े हिलाने का प्रयास किया । प्रथम महायुद्ध शुरू होने पर फ्रान्सीसी सरकार ने उन्हें ढूँढ़-तलाश कर गिरफ्तार किया और बरसों तक जेल में पड़ी नारकीय यातनाएँ सहती रहीं ।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी भगवती चरण बोहरा की धर्मपत्नी दुर्गादेवी जिन्हें क्रान्तिकारी और आज की भारतीय जनता दुर्गा भाभी के नाम से जानती है–भी अपने पति के समान ही क्रान्तिकारी अभियानों में साहसपूर्वक भाग लेती रहीं । भगवती चरण बोहरा रावी के तट पर जब बमों का परीक्षण करते समय घायल हो गये और भगतसिंह तथा अन्य क्रान्तिकारियों को फाँसी की सजा हुई तो क्रान्ति की कमान भी लम्बे समय तक दुर्गादेवी ही सँभाले रहीं ।

सन् ४२ के अहिंसक आन्दोलनों में तो कई स्त्रियों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा । तिहत्तर वर्षीया माता गिनी हजारा वृद्धा होते हुए भी जवान युवकों से कम नहीं थी । मेदिनीपुर में जब उन्होंने एक जुलूस का नेतृत्व किया और तिरंगा झंडा लेकर आगे-आगे चली तो उनके दोनों हाथों में गोलियाँ दागी गयीं । दोनों हाथों से घायल हो जाने पर भी माता गीनी ने तिरंगा झुकने न दिया, तीसरी गोली जब उनके सिर को वेधती हुई निकल गयी, तब कहीं शरीर ठण्डा हो जाने के बाद उनके हाथ से तिरंगा गिरा । इसी प्रकार बरंगा बाड़ी ग्राम में कलकलता ने एक जुलूस का नेतृत्व किया और समीप के थाने पर तिरंगा फहराने का प्रयास किया । इसी प्रयास में कलकलता को शहीद हो जाना पड़ा ।

नागारानी गिडालो अपने परिवार से ही क्रान्ति का पाठ सीख कर स्वतन्त्रता समर में कूदी थीं । जब वे सत्रह वर्ष की थीं तभी से अपने भाई के बाद अपने साथियों का नेतृत्व सम्हालना पड़ा । रानी गिडालो ने अपने साथियों को लेकर ऐसी धूम मचायी थी कि ब्रिटिश सरकार बौखला गयी । एक आमने-सामने की मुठभेड़ में वे गिरफ्तार हुईं और भारत की स्वतन्त्रता मिलने के बाद ही पुनः बाहर आ सकीं ।

इस प्रकार कितनी ही महिलाओं, युवतियों और उत्साही लड़किमों ने स्वतन्त्रता संग्राम में सशस्त्र क्रान्ति और अहिंसक आन्दोलन में भाग लिया । भीकाजी कामा, दुर्गा भाभी, रानी गिडाला, बीनादास, अरुणा गांगुली, कनकलता, प्रीतिलता, कल्पना, सरलादेवी, शांतिघोष और सुनीति चौधरी आदि कुछेक वीरांगनाओं को छोड़कर शेष कई एक अज्ञात हैं । कितनी ही माताओं, पत्नियों और बहिनों को अपने बेटों, पतियों और भाइयों के कारण पुलिस अत्याचारों का सामना करना पड़ा; पर उन्होंने उफ तक नहीं की और न ही देश के साथ गद्दारी की ।

भारतीय इतिहास की एक शताब्दी के वृत में ही इतनी अधिक वीरांगनाओं के नाम खोजे मिल सकते हैं कि उन्हें देखने के बाद नारी को अबला कहने से पूर्व ही जबान रुक जाएगी, तो समग्र भारतीय इतिहास और उसके बाद भी विश्व-इतिहास में शक्तिस्वरूप महान विशेषण को ही निरस्त कर देना पड़ेगा । बेशक महिलाएँ शरीर बल में पुरुषों से कमजोर हो सकती हैं पर शरीर बल ही शक्तिमत्ता नहीं है । शक्ति-मत्ता तो आत्मा के स्रोत से आती है और वह स्रोत महिलाओं का ही अधिक प्रवाहमान है । किसी विचारक ने कहा भी है– "भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में महिलाओं ने जो भूमिका निबाही, उसने यह सिद्ध कर दिखाया कि नारी आत्मबल में पुरुष से न केवल शक्तिशाली है, वरन् उसको आत्मबल का आहार भी वही देती है । स्वतन्त्रता आन्दोलन में जब पुरुषवर्ग थक रहा था, तो उसे आंतरिक बल देने के लिए महिलाएँ ही आगे आयी थीं । आत्म-बल अधिक होने के कारण उन्होंने अधिक कड़ाई,

तत्परता और अनुशासनपूर्वक स्वाधीनता संग्राम लड़ा ।"
इस प्रकार महिलाएँ गृह-व्यवस्था ही नहीं, समाज
व्यवस्था में भी निर्णायक भूमिका निभा सकती हैं ।

परतंत्रता से जूझने वाली एक नारी की गौरव-गाथा

देश की स्वतन्त्रता के लिए क्रान्ति का बीजारोपण
उन्नीसवीं सदी के मध्य में हो चुका था । देश-प्रेम की
लहर कितने ही नर-नारियों में उठ रही थी, उनके मन
अन्तःकरण को गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिए
आन्दोलित कर रही थी । वह एक सम्पन्न पारसी परिवार
में जन्मी एवं पली थी । अँग्रेजी परिवेश में शिक्षण प्राप्त
करने के बावजूद भी उनके रग-रग में भारतीयता का रक्त
प्रवाहित हो रहा था । अल्हड़ जीवन विलासी
महत्त्वाकांक्षाओं का नहीं, देश-भक्ति की उत्प्रेरणा
बना । जब कभी भी रानी लक्ष्मीबाई के अविस्मरणीय
बलिदान को वह याद करती तो शरीर रोमांचित हो
उठता । सामान्य से अलग कुछ विशेष करने की उमंग
सतत् मन में उठती ।

घर के अभिभावकों ने उसे समझाया कि दौलत,
शौहरत सब कुछ है, उसे आराम की जिन्दगी व्यतीत
करनी चाहिए । अँग्रेजी शासन से टक्कर लेने का जोखिम
आग में खेलने के तुल्य है, उसे इस झंझट में नहीं पड़ना
चाहिए, पर किशोर बालिका पर जरा भी प्रभाव न पड़ा ।
उसका निश्चय संकल्प में बदल चुका था । गुलामी
की जंजीरों को तोड़े बिना वह चैन की साँस नहीं लेगी,
मन ही मन वह संकल्प कर चुकी थी । धीरे-धीरे वह
काँग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेने लगी । क्रान्तिकारी
नेताओं से भी परिचय हुआ । उनसे प्रेरणा और दिशा दोनों
ही मिली ।

घर वालों की चिन्ता और भी बढ़ी । जवानी की
दहलीज पर पैर रखने वाली लड़की स्वतन्त्रता संग्राम का
अलख जगाने के लिए घंटों बाहर घूमती रहे, यह चिन्ता
उन्हें खाये जा रही थी । जिनका लड़की के ऊपर
भावनात्मक प्रभाव था उनकी मदद से घर के लोगों ने उसे
विवाह के लिए सहमत कर लिया । सोचा कि शादी के
बाद नये प्रकार की जिम्मेदारियाँ आ जाने से देश-भक्ति
की उमंगें स्वतः ठंडी पड़ जायेंगी ।

पर उनकी मनसा पूरी नहीं हो पायी । उनके संतोष के
लिए लड़की ने विवाह तो कर लिया, पर अपने संकल्प के
प्रति पहले की भाँति दृढ़ थी । शुरू-शुरू में पति का विरोध
मार्ग भी आड़े आया, पर जब उन्होंने देखा कि किसी की भी
वह मानने वाली नहीं है, उसके देश-भक्ति के आवेग को
रोक पाना सम्भव नहीं है तो चुप रहने में ही हित समझा ।
विरोध करने की अपेक्षा पति ने एक चाल चली उसे कुछ
समय के लिए इंग्लैण्ड भेज दिया यह सोचकर कि स्थान
परिवर्तन से उसकी गतिविधियों में परिवर्तन आ जाएगा, पर
उनका सोचना निरर्थक गया, ब्रिटेन में पहुँचकर उसकी
हलचलें और भी तीव्र हो गयीं । नर-नारियों का एक संगठन
बनाकर यह अँग्रेजी सरकार की नीतियों का खुलेआम
विरोध करने लगी । परेशान होकर अँग्रेजी हुकूमत ने उसे
'देश निकाला' का आदेश दे दिया ।

वह पेरिस पहुँची । वहाँ जाकर दूने उत्साह से भारत
की स्वतन्त्रता के लिए काम करने लगी । पेरिस में उसका
निवास स्थल क्रान्तिकारियों का आश्रयस्थल बन गया ।
वहीं से भावी रूपरेखा बनती तथा क्रियान्वित होती थी ।
क्रान्ति की चिनगारी को दावानल बनाने के लिए उसने
'वन्देमातरम्' पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया । लगातार कै
वर्षों तक यह पत्र जन-जाग्रति की भूमिका निभाता रहा । १८
अगस्त, १९०७ को जर्मनी में क्रान्तिकारियों के एक सम्मेलन
में भाषण देते समय देशभक्ति के आवेग में उसने अपनी साड़ी
का एक किनारा फाड़ कर हवा में लहरा दिया । इसे ही
बाद में स्वतन्त्र भारत का झंडा घोषित किया गया । वर्तमान
तिरंगे झंडे की उत्पत्ति इस घटना से ही हुई थी ।

जाति, धर्म एवं मजहब की दीवारों से दूर रहकर
मातृ-भूमि के लिए अपने दाम्पत्य जीवन के सुखों पर लात
मारकर समर्पित रहने वाली इस महिला 'मैडम कामा' को
आने वाली पीढ़ियाँ सदा याद करती रहेंगी ।

नारी कोमलांगी ही नहीं, कड़कती बिजली भी

स्नेहशीला, सहनशीला, नारी संघर्षशीला व शक्ति-
मती भी है । इस तथ्य के सत्य को पिछले वर्षों में
वियतनाम की नारी ने उजागर किया है । संघर्ष व शक्ति में
वह पुरुष से पीछे नहीं रही है ।

हमारे धर्मग्रन्थों में भी शक्ति की देवी दुर्गा को माना
गया है । महिषासुर वध के पौराणिक अख्यान के पीछे
यही सत्य है कि जब पुरुष वर्ग अन्याय, अत्याचार,
अविवेक, असुरता से संघर्ष करते-करते थक जाता है,
हतोत्साह हो जाता है तो उसकी जननी मातृ-शक्ति, नारी-
शक्ति ही उसको पराजय से परित्राण दिलाती है ।
वियतनामी नारी ने उसी भाव को साकार किया है ।

सच पूछा जाय तो नर और नारी को दो भिन्न सत्ता
मान लेना सर्वथा बेमानी और बचकाना है । वस्तुतः नारी
माँ है और नर उसकी कृति । वह सृष्टा है और नर
उसका सर्जन । वह शिल्पी है और नर उसका शिल्प । वह
कलाकार है और नर उसकी कलाकृति । दोनों एक दूसरे
के बिना अधूरे और निष्प्राण हैं ।

यह सही है कि अपना पुत्र होने के नाते उसने नर की
अपने लाड़ले को जाने कितनी अनुचित आदतों को क्षमा ।

यहाँ तक की उसका यह मोह स्वयं उसे पददलित तक कर गया। उस विगत रात्रि की बात न सोचकर नव-प्रभाव की ओर आँख उठाकर देखें तो यह स्पष्ट दृष्टि- गोचर होता है कि स्त्री जाति के बढ़ते हुए वर्चस्व के पीछे विश्व के भाग्योदय का सूक्ष्म संकेत छिपा है।

रही होगी नारी कभी अपने बल वर्चस्व से अनभिज्ञ। अपनी अत्यधिक सदाशयता के कारण वह उस सामर्थ्य को भूल बैठी हो, किन्तु हनुमान अपना पराक्रम भूले बैठे हों तो क्या समुद्र लाँघने की सामर्थ्य तो उनकी कहीं गयी नहीं थी। आज ऐसा लगता है नारी को वैसा ही आत्म-बोध होने लगा है।

सीधी-सादी वत्सला गौ, हिंसक जन्तुओं को देखते ही भाग खड़ी होती है, किन्तु वही अपने सद्यजात शावक की रक्षा सिंह जैसे दुर्दमनीय हिंसक जन्तु से भी कर लेती है। यही प्रकृति नारी की भी रही है। आक्रामक वह कभी नहीं रही, किन्तु संघर्ष से जूझने की शक्ति से भी वह रहित नहीं है।

द्वितीय महायुद्ध के दौरान आजाद हिन्द सेना की रानी झाँसी रेजीमेंट की महिला पलटन जब थाइलैण्ड की राजधानी बैंकाक के राजमार्ग पर परेड करती हुई निकली तो थाई देश के नागरिकों के मुँह से ये शब्द निकले थे-"अब भारत को कोई पराधीन नहीं रख सकता। जिस देश की नारी शक्ति जाग पड़ी हो, वह परतन्त्र नहीं रह सकता।" उनका यह कथन चन्द वर्षों में ही सत्य होकर रहा।

नारी को पूजा योग्य इसलिए माना जाता है कि उसके उत्थान के साथ ही देश का, समाज का उत्थान स्वयंमेव होने लगता है। नारी शक्ति को बाधित-प्रतिबन्धित रखने के कारण ही हमारे देश ने पिछली लम्बी दासताएँ भोगी हैं। जहाँ शिल्पी ही बन्दी है, दीन-हीन है तो वह शिल्प रचना क्या करेगी। स्रष्टा ही दीवारों में कैद है तो उसका सृजन क्या होगा?

किसी भी देश में नारी वर्ग प्रगति की कसौटी होती है। वह जितना जागरूक, कर्मशील और गतिवान होता है वह देश उतना ही प्रगति करता है। नारियों की यह प्रगति ही सभ्यता व संस्कृति की प्रगति है।

वियतनाम में हुए विगत भीषण नरसंहार व युद्ध में वहाँ की नारी-शक्ति ने अपने संघर्षशीला स्वरूप को सामने रखा है जिससे विश्वभर की महिलाओं का मस्तक गर्व से ऊँचा हो गया है। अन्याय, उत्पीड़न व शोषण के सामने वे बिल्कुल नहीं झुकीं। अन्ततः विजय उन्हीं को मिली। अमेरिकी सेना को वहाँ से हटना ही पड़ा।

वियतनामी महिलाओं ने नारी-शक्ति का संसार को पूरा-पूरा दर्शन करा दिया है। बड़ी यातनाएँ सहते हुए भी वे आक्रमणों से जूझती रही थीं। उनका कहना है-"अपने व्रत और संकल्प पर चलकर ही हम जीवन का लाभ करती हैं।" हम मृत्यु को इसलिए स्वीकारती हैं कि हमारा देश जीवित रहे।

वियतनामी महिलाओं की इस वीरता ने विश्व भर की महिलाओं की सहानुभूति भी अर्जित की। अमेरिकी महिलाएँ भी इस सहानुभूति प्रदर्शन में पीछे नहीं रही हैं। लास एन्जिलस की फिरासी नामक गायिका ने ह्वाइट हाउस में अपने संगीत के दौरान राष्ट्रपति निक्सन को भावावेश में कहा था-"हिन्द चीन में कत्लेआम बन्द करो।"

जर्मन आत्मघाती गणराज्य की एक महिला-जोनित्ज ने अपनी समूची जायदाद बेचकर ४४५०० मार्क की धन-राशि वियतनामी महिलाओं को समर्पित कर दी। फ्रेंच लेखिका मिशेल ने स्वयं वियतनाम में जाकर बन्दिनी बनी और उन बन्दी काल के अनुभवों को एक पुस्तक में लिपिबद्ध भी किया।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में महिलाओं का योगदान कम नहीं रहा। गाँधीजी द्वारा प्रणीत असहयोग-सत्याग्रह आन्दोलन हो या क्रान्ति की धधकती ज्वालाएँ सबमें भारतीय नारी ने अपनी जाग्रति का उदाहरण प्रस्तुत किया है। स्वतन्त्रता के संघर्ष की बात नहीं, इसके पूर्व भी नारी का यह स्वरूप समय-समय पर सामने आता रहा है। कोई काल इसका अपवाद नहीं रहा। घोर सामन्तवादी युग में भी ऐसे उदाहरणों का अभाव नहीं, जब वह रणचण्डी बनी थी।

नारी के पराभव पद दलन का काल लद गया। उसके लिए हर क्षेत्र में प्रगति करने के द्वार खुल गये हैं। भारतीय नारी भी इस सुअवसर से लाभ उठाने में पीछे नहीं है। यह समाज के भाग्योदय का चिह्न है। किन्तु हमारे भाग्योदय का आधार पाश्चात्य का अन्धानुकरण नहीं बन सकता। प्रायः ऐसा होता है कि लम्बे समय तक भूख काटने के बाद भोजन के दर्शन होते हैं तो परिमाण का ध्यान नहीं रहता। वर्षों के पद दलन सहने के बाद प्रगति का पथ खुला मिलने पर भी प्रायः भटक जाना असम्भव नहीं होता।

संघर्ष की समाप्ति तो अभी भी नहीं हुई है। वास्तविक स्वतन्त्रता का लक्ष्य अभी भी अधूरा ही है। अनीति, अनाचार, भ्रष्टाचार, पाखण्ड और सिद्धान्त हीनता के राहु समाज रूपी शशांक को लील लेने को तत्पर बैठे हैं। इनसे संघर्ष करना आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। नारी के संघर्ष की राह अब यही होनी चाहिए। यह नहीं कि वह उन्हीं भूलों को दोहराने लग जाय जो पाश्चात्य नारी ने की हैं।

पुरुष उपार्जन करता है इसलिए नारी भी उपार्जन करे, यह कोई बहुत बड़ी नहीं है। नारी को जो महत्त्वपूर्ण कार्य प्रकृति से मिला है वह अपने आप में उसे महत्त्वपूर्ण बना देता है। पुरुष की प्रतिद्वन्द्विता को संघर्ष मान लेना एक भ्रान्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। नारी भी उपार्जन करे, इसके स्थान पर यह दृष्टिकोण अधिक व्यापक है कि नारी का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व हो।

महिलाएँ परिवार में रहते हुए भी अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकती हैं। जहाँ व्यक्तित्व का वि[illegible]

गया, यहाँ समय पड़ने पर उपार्जन किया जा सकना भी असम्भव नहीं है । संगीत, साहित्य, कला, समाज सुधार, नव-निर्माण के अभिनव अभियान आदि ऐसी विधाएँ हैं जिन्हें अपनाकर नारी अपना पुरुष की जननी व प्रकारान्तर में समाज की स्रष्टा का रूप उजागर कर सकती है ।

नारी शक्ति की स्थिति आज भी एक सीमा तक अपने पौरुष से अनभिज्ञ हनुमान की सी ही है । उसे आत्म-बोध कराने में जामवन्त की भूमिका निश्चित ही पुरुष वर्ग की होनी चाहिए ।

जब भी अवसर मिला है, नारी प्रतिभावान सिद्ध हुई है

भारत में रानी लक्ष्मीबाई, चाँदबीबी जैसी अगणित नारियाँ हुई हैं जिन्होंने विपन्न परिस्थितियों में आगे बढ़कर लोहा लिया । विद्योत्तमा जैसी विदुषियों की प्रतिभा से इतिहास भरा पड़ा है । इंग्लैण्ड, इजराइल, श्रीलंका, भारत के प्रधानमंत्रियों के रूप में उनकी प्रतिभा का परिचय मिला है । विज्ञान के क्षेत्र में मैडम क्यूरी की तरह अनेकों की ख्याति है । अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों में समय-समय पर उनकी प्रतिभा का चमत्कार दृष्टिगोचर होता रहा है ।

समय की विडम्बना ही कहनी चाहिए जिसने नारी को विलास सामग्री और चरण दासी भर बने रहने के लिए बाधित किया । इतने पर भी जब कभी उन्हें थोड़ा अवसर मिलता रहा है न केवल पारिवारिक, सामाजिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है, वरन् उपयोगी आन्दोलनों में भी उन्होंने ऐसा कुछ कर दिखाया है जिससे नारी की अदक्षता की बात सहज ही खण्डित हो जाती है ।

विदेशी आक्रमणों से फ्रांस उन दिनों जर्जर हो रहा था । एक हमले से सँभलने का अवसर मिलने से पूर्व ही दूसरा हमला हो जाता । फलतः देश भर में निराशा और व्यथा का वातावरण छाने लगा । संत्रस्त प्रजाजन पड़ोसी देशों में त्राण पाने के लिए पलायन करने लगे ।

ऐसे निराशाजनक वातावरण में एक साहस की धनी युवती आगे आई । तत्कालीन राजा चार्ल्स के पास पहुँची और बोली–उसे समर्थन मिले तो आक्रमणकारियों को पीछे धकेलने का काम वह अकेले भी कर सकती है ।

राजा ने इसे अत्युत्साह समझा तो भी उसका मन रखने के लिए सैनिकों की एक टुकड़ी हवाले कर दी । इस लड़की का नाम था–जान ऑफ आर्क । वह घोड़े पर चढ़कर टुकड़ी के साथ गाँव-गाँव घूमी और जन-साधारण में जूझने का उत्साह जगाया । फलतः सहयोगियों की संख्या बढ़ती गई और आक्रमणकारियों के छक्के छुड़ाने का जन-स्तर पर एक बड़ा कार्यक्रम बन गया, जिसने आक्रान्ताओं के दाँत खट्टे कर दिये और हमले में लाभ कमाने के स्थान पर घाटे में रहने का उन्हें विश्वास करा दिया ।

और भी कितने ही महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए । जान ऑफ आर्क तो आक्रान्ताओं की पकड़ में किसी प्रकार आ गई और जीवित जला दी गई, पर उसका आन्दोलन रुका नहीं । फ्रान्स मजबूत हुआ और उस देश को बहुमुखी सफलता समर्थता उपलब्ध हुई ।

चिकित्सा क्षेत्र में महिलाओं ने यों प्रवेश तो छुटपुट रूप से कई शताब्दियों से करना आरम्भ कर दिया था, पर युद्ध क्षेत्र में जाना और सैनिकों की चिकित्सा करना अठाहरवीं शताब्दी तक भी निषिद्ध रहा है । समझा यह था कि सैनिकों की कुदृष्टि पड़ने से शील संकट खड़ा होने की आशंका है । यह भी समझा जाता था कि भावुक प्रकृति होने के कारण ये मर्माहत लोगों के चीत्कारों से सन्तुलन खो बैठेंगी और उस कठिन काम को सही अन्जाम न दे सकेंगी । पर इन तर्कों और आशंकाओं को एक वीर महिला ने अपना उदाहरण प्रस्तुत करके निरस्त सिद्ध कर दिया, साथ ही एक अवरुद्ध द्वार को इस प्रकार खोला जिसके द्वारा अगणित नारियाँ अन्यान्य क्षेत्रों की तरह इस प्रसंग में भी अपनी वरिष्ठता सिद्ध कर सकने में समर्थ हो सकीं ।

यूनाइटेड स्टेट्स के गृहयुद्ध में घायलों की सेवा करने के लिए सर्वप्रथम एक सुशिक्षित महिला मेरी ऐन विकेरडिक ने प्रवेश किया वे निश्चिन्त भाव से वैधव्य जीवन व्यतीत कर रही थीं और एक शरीर शास्त्री के रूप में विख्यात थीं । उन्होंने आहतों की सेवा के लिए युद्ध क्षेत्र में जाने की इच्छा प्रकट की । उन दिनों तक वैसा नियम नहीं था तो भी जनरल युलिसेज ने उसकी प्रतिभा और प्रामाणिकता से प्रभावित होकर व्यक्तिगत रूप से वैसा आदेश दे दिया और वे मोर्चे के अस्पताल में प्रवेश पा सकीं ।

सूझबूझ और ज्ञान का उन्होंने ऐसा परिचय दिया कि सैन्य क्षेत्र में उन्हें केवल विशेष सम्मान ही न मिला वरन् महिलाओं, डाक्टरों और नर्सों को भी पुरुषों के समान ही काम कर सकने का अधिकार मिला । विकेरडिक पूरे युद्ध काल में मोर्चे पर घायलों की सेवा करती रहीं । उनके संरक्षण में अमेरिका सरकार ने ३०० ऐसे चिकित्सालयों की स्थापना की जिनमें महिलाएँ भी पुरुषों के समान ही काम करती थीं । इसके बाद तो वह पुरातन प्रतिबन्ध एक प्रकार से समाप्त ही हो गया जिसके अनुसार नारी को युद्ध क्षेत्र से कोसों दूर रहना पड़ता था ।

१९ वीं सदी में परिचर्या में सुधार से सम्बन्धित एक आन्दोलन चलाया गया । आन्दोलन का नेतृत्व बुद्धि व नैतिकता सम्पन्न फ्लोरेंस नाइटिंगेल ने किया । आरम्भ में वह अनेक लोकोपकारी नेताओं से मिलीं और विभिन्न विषयों का गहन अध्यन किया । इनमें गणित, राजनीति अर्थनीति आदि प्रमुख थे । उन्होंने परिचर्या का विश्लेषण किया, क्योंकि उपचर्या उस वक्त अनेक देशों में अपनाई जा रही थी, फिर विश्लेषण के आधार पर अपने-अपने विचार प्रतिपादित किये और फिर इस पर विस्तार से लिखा ।

सन् १८५४ में युद्ध सम्बन्धी ब्रिटिश सेक्रेटरी द्वारा इन्हें मिया जाने को कहा गया । यहाँ पर गन्दे पानी की नास व्यवस्था, कपड़े धोने की सुविधा, जल आपूर्ति की वस्था नहीं होने एवं अच्छे खाद्यान्न, संगठित मेडिकल ा तथा परिचर्या के अभाव में ५० प्रतिशत घायल सैनिक जाते थे । उनकी स्वयं की तत्परता, सेवा एवं उनके ा भर्ती की गई नर्सों की लगन ने वहाँ के सैनिकों की यु-दर को काफी घटा दिया । इनकी सेवा प्राप्त होने के द मृत्यु-दर घटकर सिर्फ २.२ प्रतिशत रह गई । इस कार ब्रिटिश मिलिटरी मेडिकल सर्विस फिर से गठित या गया और इस प्रकार सैनिकों को पुनः अच्छी चर्या की सुविधा उपलब्ध हो पाई । उनकी सेवाओं की णी जनता ने उसे ४४ हजार पौण्ड दान में दिया । इस न-राशि को नाइटिंगेल ने सेंट टॉमस अस्पताल में सिंग-स्कूल में बनवाने में खर्च किया ।

नाइटिंगेल का विश्वास था कि परिचर्या को समर्थों र्व प्रशिक्षित महिलाओं द्वारा स्वतन्त्र जीवन-वृत्ति के रूप अपनाया जा सकता है और यह परिचर्या-सेवा विशेष प से तैयार की गई नर्सों के माध्यम से प्रयोग में लाया ाना चाहिए तथा फिजिशियनों एवं नर्सों का परिचर्या-कूल से सम्बन्ध पेशेवर रूप में होना चाहिए । फ्लोरेंस ाइटिंगेल का कहना था-नर्सिंग स्कूल अस्पतालों से वतन्त्र होना चाहिए तथा इनका संचालन वेतन भोगी नर्सों ौर फिजिशियनों द्वारा किया जाना चाहिए । ये स्कूल स्पताल के निकट होने चाहिए, ताकि इनके छात्रों को स्पताल से तत्सम्बन्धी प्रायोगिक अनुभव प्राप्त हो सके । नका विश्वास था कि अभी भी नर्सिंग के क्षेत्र में पूर्ण ानकारी नहीं हो पाई है । इस क्षेत्र में अभी भी भारी ज्ञान दक्षता प्राप्त करनी है । उनका कहना था कि ऐसी नर्सें यार की जानी चाहिए जो अस्पताल में मरीजों को पनी परिचर्या दे सकें एवं घर मे बीमारों की देखरेख र सकें और अपनी बहुमूल्य सेवा से उन्हें स्वस्थ बना कें तथा घर-परिवारों एवं मरीजों को यह बता सकें कि त्तम स्वास्थ्य के लिए कैसी जीवनचर्या उपयुक्त व पयोगी है ।

नाइटिंग नर्सिंग स्कूल के संस्थापन के २५ साल के अन्दर-अन्दर इंग्लैण्ड की प्राचीन पद्धति का परिचर्या तंत्र देखते-देखते पूर्णतः विलुप्त हो गया । यहाँ की प्राचीन पद्धति का परिचर्या तन्त्र अनगढ़ महिलाओं द्वारा चलाया जाता था । इस प्राचीन तन्त्र के उन्मूलन के बाद बीमार एवं रोगियों को प्रभावी नर्सिंग सेवाएँ प्राप्त होने लगीं । इस प्रकार की क्रांति प्रायः प्रत्येक विकसित देश में घटित हुई । कुछ नए देशों में स्वास्थ्य-क्षेत्र के इन प्रयासों की उपेक्षा करने की कोशिश की गई तथा नर्सिंग को स्वास्थ्य सम्बन्धी दूसरे पेशों के साथ जोड़ने का प्रयास किया गया ।

हॉलैण्ड में उन दिनों विकलांगों की संख्या बहुत हो गई थी । आजीविका उपार्जन वे यों कुछ न कुछ कर सकते थे, पर साधनों के अभाव में वैसा कुछ सुयोग बनता नहीं था और उन्हें मात्र भिक्षा पर अवलम्बित रहना पड़ता था । इस स्थिति को देखते रहने के सभी अभ्यस्त हो चले थे, पर एक विशिष्ट आत्मा ने नये सिरे से सोचा और अनुभव किया कि इस पीड़ित वर्ग को स्थाई सहायता के लिए कुछ होना चाहिए । उन्हें स्वावलम्बी बनाया जाना चाहिए । भिक्षा की अनिश्चितता और उपलब्धकर्त्ता की आत्महीनता की हानियों को समझते हुए उसका मन और भी अधिक मचला कि इस समुदाय के लिए कोई मार्ग निकलना चाहिए । इस कुमारिका का नाम था-कार्विल

कार्विल अनेकों योजनाएँ बनाती रही । कृत्रिम अंग, हाथ से चलने वाली गाड़ी, अपंगों द्वारा हो सकने वाले उद्योग, अर्थ सहायता के लिए फण्ड जैसी कितनी ही बातें उन्होंने सोचीं, पर उन्हें कार्यान्वित करने के लिए सहयोग और धन की दो कठिनाइयाँ सामने खड़ी थीं । एक भी साधन उपलब्ध न था ।

कार्विल के पिता ने अपने उत्तराधिकार में कुछ राशि जमा कर रखी थी कि विवाह के समय उसे हस्तान्तरित किया जाएगा । कार्विल ने विवाह न करने का निश्चय किया और उस राशि से काम शुरू करने की व्यवस्था बना ली । कुटुम्बियों, परिचितों और सहेलियों में से प्रत्येक के पास वह गई और कुछ-कुछ सहायता अर्जित कर ली । गाड़ी धीमी गति से चलने लगी । चर्चा हुई । देखने अनेकों आये, प्रभावित हुए और साथ-साथ किसी न किसी रूप से सहायता करने लगे ।

छोटा तिनके जैसा आरम्भ जन-साधारण की सद्भावना पाकर पहाड़ जैसा विशालकाय बन गया । धनी-मानी और विचारशीलों का ध्यान उस ओर गया । फलतः वह आन्दोलन इस सीमा तक बढ़ा कि हॉलैण्ड का एक भी अपंग उस योजना से लाभान्वित हुए बिना न रहा । हवा अन्यत्र भी फैली । कार्विल की विकलांग योजना न्यूनाधिक मात्रा में सभी देशों में अपनाई गई और उससे लाभ उठाने वाले लाखों-करोड़ों कृतकृत्य हुए ।

संसार भर में बिखरे पड़े नारी प्रतिभा के यह थोड़े से उदाहरण हैं । इनके पीछे एक ही रहस्य है कि उन्हें काम करने का अवसर मिला । उन्हें या तो प्रतिबंधित किया नहीं गया या फिर वे बन्धनों को तोड़कर पुरुषार्थ प्रगट करने के लिए आगे बढ़ती गईं । तथ्य यह उजागर करते हैं कि ईश्वर ने नर की ही तरह नारी को भी समान प्रतिभा प्रदान की है । होना यह भी चाहिए कि रूढ़िवादिता, मूढ़मान्यता और अनुदार अनीति के दबाव से राहत मिले । जिस दिन ऐसी न्यायनिष्ठा को मान्यता मिलेगी यह दिन संसार के लिए एक नये सौभाग्योदय का दिन होगा ।

नारी को समुचित सम्मान एवं उत्थान दीजिए

कोई भी समाज नारी-पुरुष के युग्म से बनता है, समाज ही क्यों सच्ची बात तो यह है कि सृष्टि के क्रम का मूलभूत कारण ही यह जोड़ा है । इसमें भी नारी का स्थान प्रमुख है । क्योंकि संसार एवं सृष्टि क्रम में पुरुष एक साधारण-सा हेतु है, बाकी सारा काम एकमात्र नारी को ही करना पड़ता है ।

सन्तान धारण करने के काम से लेकर उसको जन्म देने और पालन करने का सारा दायित्व एकमात्र नारी ही उठाया करती है । सन्तान का प्रजनन एवं पालन मात्र नारी की कृपा पर ही निर्भर है । घर बसाना, उसे चलाना और उसकी व्यवस्था रखना नारी के हाथ में ही है । यदि यह अपने इस दायित्व से विमुख हो जाये अथवा इसमें उपेक्षा बरतने लगे तो कुछ ही समय में यह व्यवस्थित दिखाई देने वाला समाज अस्त-व्यस्त और ऊबड़-खाबड़ दिखाई देने लगे । इस प्रकार यदि ध्यान से विचार किया जाये तो पता चलेगा, सृष्टि से लेकर समाज तक का संचालन क्रम मुख्यतः नारी पर निर्भर है । पुरुष तो इसमें एक सहायक हेतु है, तब ऐसी नारी निर्मात्री, धात्री और व्यवस्थापिका जैसी पूजा-पत्री का तिरस्कार, अपमान, उपेक्षा अथवा अवहेलना करना कहाँ तक उचित है ?

जो धारिका, धात्री और निर्मात्री है, यदि वह अपने तन-मन से प्रसन्न और प्रफुल्ल रहेगी तो उसकी सृष्टि भी उसी प्रकार की प्रसन्न एवं प्रफुल्ल होगी और यदि वह मलीन रहती है, तो उसका सृजन भी उतना ही मलीन और अयोग्य होगा । इसीलिए बुद्धिमान व्यक्ति नारी का, समुचित आदर करते हुए उसे प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते हैं ।

जब-जब जिन समाजों में नारी का समुचित स्थान रहा है, उसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक विकास की व्यवस्था रखी गई है, तब-तब वे समाज, संसार में समुन्नत होकर आगे बढ़े हैं और जब-जब इसके प्रतिकूल आचरण किया गया है, तब-तब समाजों का पतन हुआ है ।

नारी जन्मदात्री है । समाज का प्रत्येक भावी सदस्य उसकी गोद में पलकर संसार में खड़ा होता है । उसके स्तन का अमृत पीकर पुष्ट होता है । उसकी हँसी से हँसना और उसकी वाणी से बोलना सीखता है । उसकी कृपा से ही जीकर और उसके अच्छे-बुरे संस्कार लेकर अपने जीवन क्षेत्र में उतरता है । तात्पर्य यह है कि जैसी माँ होगी, सन्तान अधिकांशतः उसी प्रकार की होगी ।

भारत की अतीत-कालीन गौरव में नारियों का बहुत कुछ अंश-दान रहा है । उस समय सन्तान की अच्छाई-बुराई का सम्बन्ध माँ की मर्यादा के साथ जुड़ा था । वह अपनी मान-मर्यादा की प्रतिष्ठा के लिए सन्तान को बड़े उत्तरदायित्व ढंग से पालती थी । देश, काल और समाज की आवश्यकता के अनुरूप सन्तान देना अपना परम-पावन कर्तव्य समझती थी । यही कारण है कि जब-जब युगानुसार सन्त, महात्मा, त्यागी, दानी, योद्धा, वीर और बलिदानियों की आवश्यकता पड़ी, उसने अपनी गोद में पाल-पाल कर दिए ।

किन्तु वह अपने इस दायित्व को निभा तब ही सकती है, जब उसको स्वयं अपना विकास करने का अवसर दिया गया है । जिस माँ का स्वयं अपना विकास न हुआ हो, वह भला विकासशील संतान दे भी कैसे सकती है ? जिसको देशकाल की आवश्यकता, समाज की स्थिति और संसार की गतिविधि का ज्ञान ही न हो, वह उसके अनुरूप अपनी संतान को किस प्रकार बना सकती है ? अपने इस दायित्व को ठीक प्रकार से निभा सकने के लिए आवश्यक है कि नारी को सारे शैक्षणिक एवं सामाजिक अधिकार समुचित रूप से दिये जायें ।

प्राचीनकाल में भारत में नारी को यह सब अधिकार मिले हुए थे । उनके लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी, समाज में आने-जाने और उसकी गतिविधियों में भाग लेने की पूरी स्वतन्त्रता थी । वे पुरुषों के साथ वेद पढ़ती-पढ़ाती थीं, यज्ञ में होता, ऋत्विज तथा यज्ञा के रूप में बैठती थीं और धर्म-कर्मों में हाथ बँटाती हुई तत्व-दर्शन किया करती थीं । यही कारण है कि वे गुण, कर्म व स्वभाव में पुरुषों के समान ही उन्नत हुआ करती थीं और तभी समान एवं समकक्ष स्त्री-पुरुष की सम्मिलित सन्तान भी उन्हीं की तरह गुणवती होती थीं । जब तक समाज में इस प्रकार की मंगल परम्परा चलती रही, भारत का वह समय देव-युग के समय सुख-शान्ति और सम्पन्नतापूर्ण बना रहा, किन्तु ज्यों ही इस पुण्य-परम्परा में व्यवधान आया, नारी को उसके समुचित एवं आवश्यक अधिकारों से वंचित किया गया, भारतीय समाज का पतन होना प्रारम्भ हो गया और ज्यों नारी को दयनीय बनाया जाता रहा, समाज अधोगति को प्राप्त होता गया और अन्त में एक ऐसा अन्धकार-युग आया कि भारत का सारा गौरव और उसकी सारी सांस्कृतिक गरिमा मिट्टी में मिल गई ।

कहना न होगा कि जिस प्रकार शिक्षा सहित ही दीपक, दीपक है, उसी प्रकार सुयोग्य, सुशील और सुगृहिणी के रूप में ही पत्नी, पत्नी मानी जाएगी । अयोग्य विवाहिताएँ वास्तव में पुरुषरूपी शरीर में पक्षाघात के समान ही है । जीवनरूपी रथ में टूटे पहिए उन्नति अभियान में विखण्डित पक्ष की तरह ही बेकार हैं।

इस रूप में पुरुष की पूर्ति नारी तब ही कर सकती है, जब उन्हें इस कर्त्तव्य के योग्य विकसित होने का अवसर दिया जाये । जहाँ स्त्रियों को केवल बच्चा पैदा करने की मशीन, विषय-विष का समाधान और चूल्हे-चौके की दासी भर समझाकर रखा जाएगा, वहाँ उससे उपर्युक्त पत्नीत्व की उपेक्षा करना मूर्खता होगी ।

हमारे समाज में आज एक लम्बे युग से नारी की उपेक्षा होती चली आ रही है जिसके फलस्वरूप धर्मध्वज

के रूप में उसके सारे गुण और समाज निर्मात्री के रूप में सारी योग्यताएँ समाप्त हो गई हैं । उसे पैर की जूती बनाकर रखा जाने लगा, जिससे वास्तव में जूती से अधिक उसकी कोई उपयोगिता रह भी नहीं गई है । ऐसी निम्न कोटि में पहुँचाई गई नारी से यदि आज का स्वार्थी एवं अनुदान पुरुष यह आशा करे कि वह गृह-लक्ष्मी बनकर उसके घर को सुख-शान्तिपूर्ण स्वर्ग का एक कोना बना दे, उसकी सन्तानों की सुयोग्य, सुशील और सानुकूल नागरिक के रूप में रचना कर दे तो वह दिन में सपने देखता है, आकाश-कुसुम की कामना करता है ।

यदि मनुष्य सच्ची सुख-शान्ति चाहता है और चाहता है कि उसकी नारी अन्नपूर्णा बनकर उसकी कमाई में सहयोग करे, उसके मन को माधुर्य और प्राणों को प्रसन्नता दे, उसके परिश्रान्त जीवन में श्री बनकर हँसे और संसार-सागर में शक्ति बनकर साहस दे, तो उसे पैरों से उठाकर अर्धांग में सम्मान देना ही होगा अन्यथा टूटे पहिए की गाड़ी के समान उसकी जिन्दगी धक्के खाती हुई ही घिसटेगी । घरबार उसे बेकार का बोझ बनकर त्रस्त करता रहेगा । अयोग्य एवं अनाचारी बच्चों की भीड़ दुश्मन की तरह उसके पीछे पड़ी रहेगी ।

इस प्रकार देश, समाज, घर-गृहस्थी, वैयक्तिक विकास तथा सुख-शान्ति के लिए नारी की इतनी आवश्यकता जानकर भी जो उसे अधिकारहीन करके पैर की जूती बनाये रखने की सोचता है, वह देश, समाज का ही नहीं, अपनी आत्मा का भी हितैषी नहीं कहा जा सकता ।

अपने राष्ट्र का मंगल, समाज का कल्याण और अपना वैयक्तिक हित ध्यान में रखते हुए नारी को अज्ञान के अन्धकार से निकालकर प्रकाश में लाना होगा । चेतना देने के लिए उसे शिक्षित करना होगा । सामाजिक एवं नागरिक प्रबोध के लिए उसके प्रतिबन्ध हटाने होंगे और भारत की भावी सन्तान के लिए उसे ठीक-ठीक जननी को आदर देना ही होगा । समाज के सर्वांगीण विकास और राष्ट्र की समुन्नति के लिए यह एक सबसे सरल, सुलभ और समुचित उपाय है । जिसे घर-घर में प्रत्येक भारतवासी को काम में लाकर अपना कर्त्तव्य पूर्ण करना चाहिए । यही आज की सबसे बड़ी सभ्यता, सामाजिकता, नागरिकता और मानवता है । वैसे घर में नारी के प्रति संकीर्ण होकर यदि कोई बाहर समाज में उदारता और मानवता का प्रदर्शन करता है तो वह दम्भी है, आडम्बरी है और मिथ्याचारी है ।

आदर्शों की प्रेरणा में नारी का योगदान

समाज में इन दिनों चतुर्दिक प्रगति हुई दिखाई देती है । लोग बैलगाड़ी से हटकर जेट युग में पहुँच गये हैं । बाहरी सुख-सुविधाएँ तेजी से बढ़ी हैं । इन्हें संतोषजनक और मानवीय सभ्यता के विकास का सूचक कहा जा सकता है, लेकिन नैतिक मूल्यों में आई गिरावट और चारित्रिक आदर्शों की आम उपेक्षा का रोग जिस तरह फैल रहा है, उसे देखते हुए तमाम प्रगति पर पानी फिर गया लगता है । समाज में व्याप्त हो रहीं इन विकृतियों को दूर करने में या बाह्य प्रगति के साथ व्यक्ति का आन्तरिक स्तर ऊँचा उठाने में स्त्रियाँ अधिक सक्रिय भूमिका निभा सकती हैं ।

किसी भी व्यक्ति पर उसके परिवार का परिवेश अनिवार्य रूप से प्रभावशील होता है और परिवार का केन्द्र होती है स्त्री । परिवार के तकाजों से विवश होकर कोई व्यक्ति अनैतिक आचरण में प्रवृत्ति नहीं भी होती है, किन्तु परिवार का यदि उस पर दबाव पड़े तो उसे अनीति, अवांछनीयता से विमुख अवश्य किया जा सकता है । उदाहरण के लिए, पत्नी ही उससे असहयोग करने लगे, माँ उसका विरोध करने लगे तो सौ में से निन्यानवे अवसरों पर इस बात की सम्भावना रहती है कि अनैतिक आचरणों में प्रवृत्त हो रहा व्यक्ति अपने आचरण पर एक बार पुनः विचार करने के लिए विवश होता है ।

इन दिनों हमारे समाज में अनेकों विकृतियाँ और अवांछनीय प्रवृत्तियाँ पनप रही हैं । झूठ, बेईमानी, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, छल-छद्म जैसी अनेकानेक अवांछनीय आदतें-इन दिनों आम हो रही हैं और प्रेम, आत्मीयता, एकता के तत्व घट रहे हैं । स्वार्थपरता मुख्य होती जा रही है । मनुष्य के अन्तःकरण से प्रेम और संवेदना के भाव लुप्त हो रहे हैं । दूसरे की पीड़ा और पतन से हमें कोई मतलब नहीं । नेतृत्व, उद्योगपति और श्रमिक तो खैर दूर रहे, जिनके ऊपर नयी पीढ़ी के निर्माण का दायित्व है वे शिक्षक भी अपने दायित्वों को अनमने भाव से जैसे-तैसे निभा रहे हैं । अपने लक्ष्य से भटककर जीविकोपार्जन मात्र के लिए पढ़ाते हैं । न वे बालकों के चरित्र का निर्माण कर पाते हैं, न उनके सम्मुख कोई आदर्श प्रस्तुत कर पाते हैं । इसी प्रकार अन्य समस्याएँ भी विषधर सर्प की भाँति फुसकारते हुए खड़ी हैं ।

अपने उत्तरदायित्वों से भागने की इस महामारी के कारण ही विभिन्न विकृतियाँ उभर कर आती हैं । आन्तरिक स्तर में आयी गिरावट का ही यह परिणाम है कि बाहरी सुख-सुविधाओं में अभिवृद्धि होने के बावजूद भी मनुष्य को पहले से ज्यादा परेशान देखा जा सकता है । प्रकृति ने नारी को ऐसी विशेषताएँ प्रदान की हैं कि वह उन विशेषताओं के बल पर समाज में व्याप्त समस्याओं का सहज ही समाधान कर सकती हैं ।

आवश्यक यह है कि महिलाएँ प्रकृति प्रदत्त उन विशेषताओं का उपयोग करते हुए अवांछनीयताओं के कारण समाज में उत्पन्न हुई उन समस्याओं का सहज ही समाधान कर सकती हैं । नारी में असीम कार्यशक्ति है । आवश्यकता केवल उसके जगने भर की है । बच्चे का जीवन घर से, माँ की गोद से प्रारम्भ होता है । बालक को यह केवल अस्थि-मज्जा ही नहीं देती; अपितु अपने विचार, भावनाएँ और आस्थाएँ, मान्यताएँ भी संस्कार रूप में उसकी धमनियों में प्रवाहित करती हैं । जैसे माँ के विचार और संस्कार होंगे, बालक भी

वैसा ही बनेगा । परिवार का वातावरण अच्छा होगा तो
बालक भी सद्गुणी बनेगा । माता की शिक्षा के अनुरूप ही
बालक के चरित्र का निर्माण होगा ।

न केवल बालक पर अपितु परिवार के अन्य
सदस्यों पर, पति पर भी नारी की भावनाओं का तीव्र
प्रभाव पड़ता है । इतिहास साक्षी है कि विश्व के
महापुरुषों को ऊँचा उठाने में प्रायः उनकी माता या
पत्नी का ही योगदान रहा है ।

यदि तनिक बुद्धिमत्तापूर्वक कार्य किया जाय तो पति की
गलत आदतों को भी पत्नी सहज ही छुड़ा सकती है ।
उदाहरण के लिए रिश्वत को ही लिया जाये । रिश्वत लेना
कई व्यक्तियों के स्वभाव में सामान्य बात की तरह हो गया
है, परन्तु वे रिश्वत लेते किसके लिए हैं ? अपनी पत्नी और
बच्चों के लिए ही तो, घर के वैभव और ऐश आराम के
लिए ही तो । यदि पत्नी रिश्वत का पैसा छूने से इन्कार कर
दे, पति को ईमानदारी से धन कमाने को ही प्रेरित करे तो
अनेक व्यक्ति इस दुराचरण को त्याग दें ।

परिवार में यदि सदस्यों को भरपूर प्रेम, सम्मान और
स्नेह मिलता रहे तो उनमें बाहरी वातावरण से प्रभावित
होकर भटक जाने का खतरा समाप्त हो जाता है ।
परिवार–स्नेह और सद्भाव के कारण यदि स्वजनों के
आकर्षण का केन्द्र बने रहें तो परिजन बाहर के किसी भी
प्रलोभन या आकर्षण से प्रभावित नहीं हो सकते ।
आजकल की जाने वाली शोधों से भी यह तथ्य सामने आ
रहे हैं कि प्रेम और स्नेह के अभाव में ही प्रायः अपराधी
प्रवृत्ति भड़कती है । घर में यदि सभी सदस्यों में आपसी
स्नेह-सद्भाव बना रहे तो परिवार की सुगठित और सुदृढ़
संरचना का प्रभाव उसके सदस्यों पर भी पड़ता है और
बाहर वे सौम्य आचरण से समाज में भी सुखद वातावरण
की सृष्टि कर सकते हैं । परिवार में प्रेम और स्नेह-सौहार्द्र
का वातावरण बनाये रखने का कार्य भी महिलाएँ ही
अच्छी तरह कर सकती हैं । वे घर के सदस्यों में ऐसे
संस्कार पैदा कर सकती हैं कि सभी लोग मिलकर
प्रेमपूर्वक रहें । किसी को अकारण कटु वचन न कहें,
किसी की निन्दा, अवमानना न करें । अपने स्वाभाविक
गुण, प्रेम और सद्भावना का विकास करें ।

न केवल घर में अपितु घर के बाहर भी स्त्री समाज
निर्माण में योगदान दे सकती है । आज स्त्रियाँ डॉक्टर,
नर्स, इंजीनियर, शिक्षिका आदि अनेकों रूपों में सामाजिक
प्रगति में सहयोग दे रही हैं । महिला डॉक्टर एवं नर्स
आदि अधिक सेवा तथा कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित होकर
कार्य करें, धनलिप्सा में न पड़ें तो समाज का अधिक
विकास होगा ।

शिक्षिका के रूप में नारी राष्ट्र के चरित्र निर्माण में
बहुत अधिक सहयोग दे सकती है । बच्चों के कोमल मन
पर शिक्षक के चरित्र और आचार-व्यवहार की गहरी
छाप पड़ती है । अपनी सादगी, सज्जनता, सहनशीलता,
सत्यनिष्ठा, सद्व्यवहार आदि से वह बालक को उत्कृष्टता
की ओर, चरित्र निर्माण की ओर सतत् रूप से बढ़ने की
प्रेरणा दे सकती है ।

आज समाज का नैतिक मूल्यों पर से विश्वास हट गया
है परिणामतः सर्वत्र अशान्ति और अव्यवस्था छायी है ।
नारी का प्राथमिक कर्त्तव्य परिवार और समाज में नैतिक
मूल्यों पर श्रद्धा-आस्था उत्पन्न करना है जिससे समाज का
वातावरण श्रेष्ठ बनाया जा सके ।

नारी-गरिमा हमें समझनी ही होगी

वास्तविकता यह है और हमें यह मानकर चलना ही
चाहिए कि नारी का महत्त्व नर से किसी प्रकार भी कम
नहीं । गृहस्थ जीवन में नर को अधिक महत्त्व दिया जाना
क्या इसीलिए उपयुक्त और न्यायसंगत कहा जा सकता है
कि वह धन कमाता है और जीविकोपार्जन के साधन
जुटाता है ? नहीं–महत्ता का यह आधार, यह तर्क उचित
नहीं । यदि पुरुष बाहर जाकर परिश्रम करके धन कमाता
है, जीविकोपार्जन के साधन जुटाता है, तो नारी भी कम
महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं करती । वह उस धन और
जीविकोपार्जन के जुटे साधनों की उचित व्यवस्था करती
है । नर धन कमाकर लाकर नारी को सौंपकर निश्चिंत हो
जाता है, यह नारी ही है जो घर में उसके भोजन तथा
आराम का प्रबन्ध करती है, उसे अपनी ओर से नव-
जीवन, नव-स्फूर्ति तथा नवप्रेरणा प्रदान करती है ।

नारी का सहयोग यदि प्राप्त न हो, तो बाहर ये आठ-
दस घण्टे के परिश्रम से चूर नर या तो चूल्हा-चौके के
साथ-साथ माथापच्ची करे अथवा भूखा पड़ा रहे । उसे न
आराम मिले और न सुविधा । चार दिन में ही वह ऐसे
नीरस और कठोर जीवन से लड़खड़ा जाये और भाग खड़ा
होने की सोचने लगे । यह नारी ही है जो उसे लड़खड़ाने
और भाग खड़ा होने से रोकती है और गृहस्थी के प्रति
उसका आकर्षण बनाये रखती है । वही उसकी गृहस्थी
बनाती है, चलाती है और सजाती है और पुरुष को इस
ओर से निश्चिंत किये रहती है । परिणामस्वरूप गृहस्थी
के प्रति नर का आकर्षण बना रहता है, उसकी कटुताओं
और कठोरताओं का उसे आभास भी नहीं होता ।

यदि हम नारी के एक दूसरे स्वरूप की ओर विचार
करें तो हमें पता चलेगा कि नारी का यह स्वरूप तो पुरुष
की अपेक्षा कहीं अधिक महान, कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण
है । यह स्वरूप है 'माता' का । नारी सन्तानों को जन्म
देती है–यह संतान जो समाज, देश-राष्ट्र और विश्व के
निर्माण का । इस संतति में ही विश्व क्रान्ति और
जाग्रति निहित है रूप में कितना त्याग करती है,
मास कर उसे गर्भ में धारण
कर उसका
रही-सही

शक्ति उस नवीन संतति को दे देती है, यह है उसका असीम त्याग। पुरुष तो अपनी वासना शांत कर अलग हो जाता है, जिसका भार नारी नौ मास ही क्या, सारे जीवन ही ढोती रहती है। इससे स्पष्ट है कि सन्तान प्रजनन और उसकी रचना में जिसके आधार पर यह सृष्टि का क्रम चल रहा है, नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। नर का स्थान तो इस सम्बन्ध में गौण एवं नगण्य है।

यह नारी ही है जो संतति को केवल जन्म ही नहीं देती, वरन् उसका पालन-पोषण भी करती है। वह अपने रस रक्त का सार-दूध उसे पिलाती है और पालती है। वह उसे बोलना सिखाती है, चलना सिखाती है और न जाने क्या-क्या सिखाती है। वह स्वयं कष्ट सहन करती है, गीले में सोती है, रात-रात जागती है, भूखी रहती है, लेकिन वह अपनी नवोत्पन्न संतति को बढ़ते, फूलते-फलते देख इन सब दुःखों को भूल जाती है।

नारी ही सन्तानों का चारित्रिक निर्माण करती है। वह ही उन्हें इस योग्य बनाती है कि वे अपने पैरों खड़े हो सकें, नागरिक हो सकें, देशभक्त हो सकें। नर के लिए यह असम्भव एवं असाध्य है। वह प्रातः जीविकोपार्जन के चक्कर में दफ्तर, कारखाने या व्यवसाय पर चला जाता है और बच्चों से बात नहीं कर पाता। सायंकाल हारा-थका आता है तब-तक बच्चे सो जाते हैं अथवा उसकी स्वयं की मनःस्थिति ऐसी नहीं होती जो बच्चों को दिशा दे सके। यह माँ ही है जो बच्चों को विभिन्न प्रकार की शिक्षा देती है उनका चारित्रिक निर्माण भी करती है।

वस्तुतः नारी, नर का महत्त्वपूर्ण पूरक अंग है। बिना नारी के नर पंगु है, असहाय है और कुछ प्रगति नहीं कर सकता, न भौतिक क्षेत्र में और न आध्यात्मिक क्षेत्र में। शिवाजी और गाँधी की प्रगति के मूल बीज उनकी माँ के ही बोये हुए थे। नेहरू और शास्त्री के प्रेरणा केन्द्र और उनकी पूरक यात्रा उनकी धर्मपत्नियाँ ही थीं। स्वतन्त्रता संग्राम का संचालन कर पुरुषों का सहयोग देने वाली लक्ष्मीबाई जैसी विदुषियाँ ही थीं। नर तो क्या, देवता भी नारी अंग बिना अपूर्ण हैं। यदि वह नारियाँ इनके पूरकांग के रूप में न होतीं तो कदाचित् उनके व्यक्तित्व और स्वरूप का वह निखरा हुआ स्वरूप हमारे सम्मुख न होता जो आज है, उनकी शक्ति और तेज में वह प्रखरता न होती, जो आज है।

नारी पुरुष की शक्ति का प्रेरणा स्रोत है, वस्तुतः वह पुरुष की शक्ति है। नारी को दुर्बलता का प्रतीक मानना, व्यक्ति की दुर्बलता मानना उसका अपमान करना है। नारी का महत्त्व आदि काल से रहा है और अनन्तकाल तक रहेगा। देखा जाये तो वर्तमान युग में इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है। आज सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, आध्यात्मिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में नारी ही वह धुरी है जिस पर समस्त प्रगति निर्भर है।

यह धारणा सर्वथा भ्रममूलक है कि घर-गृहस्थी अथवा नारी आध्यात्मिक मार्ग में बाधा है। यह धारणा उन्हीं लोगों की है जिन्होंने नारी के सच्चे स्वरूप को नहीं पहचाना है, जिन्होंने उसे केवल मात्र वासना पूर्ति का साधन और बच्चे उत्पन्न करने वाली मशीन बनाकर अपना और उसका जीवन पशुतुल्य एवं नारकीय बना दिया है। वासना पूर्ति की प्रतीक नारी, बच्चे पैदा करने वाली मशीन के रूप में नारी, अश्लीलता और नग्नता की प्रतिमा नारी, निस्सन्देह आध्यात्मिक मार्ग की बाधा है। बाधा ही क्या, वह तो पतन की ओर ले जाने वाली शक्तिशाली सम्मोहिनी है। वास्तव में वह है नहीं, हमने उसे बना दिया है, हमारे दृष्टिकोण ने उसे बना दिया है। आज की स्थिति में नारी ने भी भूलवश उसी को अपना सच्चा स्वरूप समझ लिया है।

यदि यह धारणा सच रही होती कि नारी वास्तव में ही आध्यात्मिक मार्ग में बाधा है, तो प्राचीन ऋषि, मुनियों ने अपनाया न होता, वे सदा अविवाहित रहे होते और उन्होंने उसकी छाया को भी अपने पास फटकने न दिया होता, परन्तु उन्होंने ऐसा किया नहीं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वह आध्यात्मिक मार्ग में बाधक नहीं रही है। सच तो यह है कि आध्यात्मिक मार्ग प्रशस्त करने में सहयोगी ही रही है जिसके कारण वासना मुक्त महापुरुषों ने भी उसे अपनाया और सहयोगी के रूप में अंगीकार किया। लगभग सभी ऋषियों के पत्नियाँ रही हैं, जिन्होंने अपने पति के आध्यात्मिक मार्ग को प्रशस्त किया। बाल-बच्चे भी आध्यात्मिक मार्ग में बाधा नहीं हैं। अनेकों ऋषियों के बाल-बच्चे भी रहे हैं। सप्तऋषियों को हम प्रधान मानते हैं, उनके पत्नियाँ भी थीं और बच्चे भी। वशिष्ठ, अत्रि, याज्ञवल्क्य, स्वायम्भुव, गौतम आदि ऋषि-मुनियों की पत्नियाँ अरुन्धती, अनुसूया, मैत्रेयी, शतरूपा, अहिल्या आदि वनवास में उनके साथ रहीं, उन्हें सहयोग दिया और उनका मार्ग प्रशस्त किया। यदि वे साधना और तपस्या में बाधक होतीं तो यह ऋषि अपने साथ उन्हें क्यों रखते ? वे अपने योग में किस प्रकार कृतकृत्य और यशस्वी हो पाते।

वास्तव में नर और नारी एक दूसरे के पूरक, सहयोगी और आध्यात्मिक मार्ग के सहायक हैं। उनका शारीरिक और मानसिक गठन ही इस प्रकार हुआ है कि वे एक दूसरे की अपूर्णताओं को पूर्ण करें और पारस्परिक सहयोग से सर्वांगीण व्यक्तित्व का निर्माण करें। पत्नी यदि अर्द्धाङ्गिनी है, तो पति अर्द्धनारीश्वर। दोनों का सम्मिलित रूप ही एक पूर्ण इकाई बनता है। आवश्यकता इस बात की है कि दोनों में सामंजस्य हो। यदि सामंजस्य न हुआ तो यह जीवन रूपी गाड़ी दो असमान पहियों पर चलने वाली गाड़ी के समान होगी जो चलेगी तो अवश्य, परन्तु लड़खड़ाते हुए, आवाज करते हुए। उसमें वह सुचारुता और गतिशीलता न होगी जो समानता और सामंजस्य के सहयोग से होती है।

आज घर-घर में अशांति, अव्यवस्था, कलह, क्लेश का वातावरण फैला हुआ है। उसका मूल कारण यही है कि नर-नारी में सामंजस्य का अभाव है। नर-नारी एक दूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्यों का ठीक-ठीक पालन नहीं कर

पा रहे हैं । भारतीय नारी तो पूर्णरूपेण समर्पणशीला है, वह पतिव्रता बनी रहना चाहती है, वह पति से अतिरिक्त अपना अस्तित्व नहीं समझती, वह उसी की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता समझती है । परन्तु खेद का विषय है कि नर पक्ष की ओर से इसका उचित प्रत्योत्तर नहीं मिलता । नर उसके इस निश्छल आत्म-समर्पण को उसका त्याग नहीं, उसकी विवशता, उसका कर्तव्य और अपना अधिकार समझता है । यदि वह इस समर्पण को सही भावना से देखता और समझता तो कदाचित् वह उसे अपनी वासना पूर्ति का ही साधन समझकर, इतना अधिक शोषण कर उसे नर कंकाल न बना डालता । उसने इस आत्म-समर्पण, इस त्याग और बलिदान की भावना के मर्म को समझा ही कहाँ ? वह तो उच्छृंखल और अत्याचारी होकर अन्याय ही करता गया, खून ही चूसता गया, परन्तु यह स्थिति सदैव चलती नहीं रहेगी । अत्याचार, अन्याय और दुर्व्यवहार सहन करने की भी एक सीमा होती है, तिरस्कार भी एक सीमा तक सहन किया जा सकता है; उसके बाद प्रतिरोध, विस्फोट और संघर्ष स्वाभाविक है । समय रहते इस सुधार आवश्यक है । यदि नर प्रतिरोध, विस्फोट और स्वाभाविक संघर्ष से बचना चाहता है तो उसे अपना दृष्टिकोण बदलना ही पड़ेगा नारी के प्रति स्वेच्छाचारिता और अत्याचार बन्द करना ही पड़ेगा । पत्नी को यदि हम सीता देखना चाहते हैं तो पति को राम बनना ही होगा । इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं । हम रावण बने रहें और हमारी पत्नी सीता बन जाये, यह कामना कभी पूरी नहीं हो सकती ।



न पुरुष वरिष्ठ है, न स्त्री कनिष्ठ

क्या बड़प्पन के लिए पुरुष ही एकाधिकृत है ?,

परिवार में घर-गृहस्थी की आवश्यकताएँ पूरी करने और निर्वाहोपयोगी उपार्जन का कार्य पुरुष को सम्हालना पड़ता है । इस कारण उसका व्यक्तित्व और कार्यक्षेत्र घर-परिवार के साथ-साथ बाहर भी बँट जाता है । सम्भवतः यही एकमात्र कारण है कि पुरुष को परिवार में प्रमुख और मुखिया की प्रतिष्ठा मिली हो । लेकिन परिवार के सन्दर्भ में यह भी विचारणीय है कि उसका प्रमुख अंग मुखिया ही नहीं है-एक गृहिणी भी है; जो परिवार की आन्तरिक व्यवस्था को सम्हालती है, घर के सभी सदस्यों की आवश्यकताएँ देखती-भालती है । उसे भी समुचित प्रतिष्ठा और महत्त्व दिया जाना चाहिए ताकि गृहस्थ रूपी गाड़ी के दोनों पहिये एक धुरी पर समानान्तर रूप से टिके और चलते रहें । लेकिन ऐसा होता नहीं है । पिछली शताब्दियों में भारतीय परिवारों का ढाँचा कुछ इस प्रकार का बन गया है कि उसमें स्त्री को गौण और पुरुष को प्रधान माना जाने लगा ।

स्त्री-पुरुष की असमान प्रतिष्ठा के कारण गृहस्थी की गाड़ी किसी प्रकार चलती भले ही रहे, पर वह चलती कम घिसटती ही जाती है । प्रसिद्ध अँग्रेज लेखिका मार्गरेट ब्लेयर जान्सन का यह मत ऐसी परिस्थितियों में स्त्रियों को अपना दायित्व भली-भाँति निभाने में अक्षम होने लगने का कारण व्यक्त करता है कि "पुरुष का प्यार उसके जीवन का एक हिस्सा है पर यह स्त्री का पूरा जीवन ही है । "

पुरुष का कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी से बाहर ही अधिक रहता है, पर स्त्री के लिए जीवन और परिवार इस प्रकार एकाकार हो जाते हैं कि उसके लिए परिवार से पृथक् कुछ रह ही नहीं जाता । परिवार के सदस्यों की आवश्यकताओ से लेकर उनकी सुख-सुविधाओ का ध्यान रखने तक और बच्चों को जन्म देने, उनका पालन-पोषण करने तक की समस्त जिम्मेदारियाँ स्त्री पर ही अधिक रहती हैं । भारतीय मनीषियों ने इस तथ्य को भली-भाँति जाना है । इसीलिए स्त्री शब्द का पर्याय गृहिणी है, पर पुरुष के लिए वैसा कोई शब्द नहीं है । प्राचीन संस्कृत वांगमय में कन्या के लिए एक शब्द 'दुहिता' भी मिलता है । जिसका अर्थ होता है पशुओं का दूध दुहने वाली । स्पष्ट है भारतीय महिलाओं का जीवन ही परिवार के निर्माण और विकास का महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाने की आवश्यकता को ध्यान में रखकर सँवारा जाता था, जबकि पुरुष के लिए अन्य क्षेत्र सौंपे जाते थे । उस समय की स्थिति के अनुकूल भी था यह । पर परिवार में स्त्रियों के दायित्वों की गम्भीरता आज भी उसी प्रकार बनी हुई है । इसी कारण कहा जा सकता है कि जहाँ अन्य देशों में परिवार संस्था टूटने से लोगों का सामाजिक जीवन भी अस्त-व्यस्त होता रहा है पर भारतवर्ष में परिवार आज भी अपनी गौरव-गरिमा के अनुरूप सुदृढ़ स्थिति में हैं ।

इस स्थिति का श्रेय गृहिणियों को ही दिया जाना चाहिए । पर पुरुष के अहं ने यहाँ भी अपनी मान्यता का सिक्का स्त्री के अस्तित्व पर ही लगा दिया । जबकि पुरुष परिवार की एक ही आवश्यकता पूरी करता है और परम्परागत रूप से स्त्रियों पर एक ही दायित्व नहीं डाला गया है । हालांकि आज के समय में तो कई पढ़ी-लिखी महिलाएँ और मजदूर स्त्रियाँ भी परिवार की आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी करने में सक्रिय सहयोग देती हैं । लेकिन फिर भी पुरुष प्रधान समाज में अपने अहं को ही प्रमुखता देकर पुरुष ने सारा सम्मान, सारी प्रतिष्ठा स्वयं ही हथियाली और नारी के लिए छोड़ दिया दासी का-सेविका का स्थान । जिसके बदले में उसे कोई अधिकार देने के स्थान पर उसके मन में यह बात बिठा दी गयी कि पुरुष के बिना उसका जीवन तिलभर भी आगे नहीं बढ़ सकता और पुरुष के इस उपकार के लिए उसे कृतज्ञ होना चाहिए ।

बड़प्पन पर-प्रतिष्ठा पर अपना अधिकार जमाये रहने की बात इससे स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय परिवारों में पुरुष ने स्वयं को अन्तिम सत्ता और सर्वोच्च मान्यता के आधार पर अब भी प्रतिष्ठित कर रखा है । बाल्यकाल से ही भेदभाव का ही नहीं, दुराव-छलाव का यह कुचक्र चल पड़ता है । घर में एक पुत्र का जन्म होता है तो यह मान कर खुशियाँ मनायीं और मिठाई बाँटी जाने लगती हैं कि वंश का नाम चलाने वाला-कुल की शान बढ़ाने वाला एक दीपक जाग उठा है और कन्या जन्म लेती है तो कई लोग छाती पीट लेते हैं कि जन्म भर के लिए एक ऐसी समस्या खड़ी हो गयी है जिसके लिए मरने तक चिन्ता करनी पड़ेगी । उसकी योग्यता पढ़ाने-लिखाने और जीवन के लिए आवश्यक विषयों का ज्ञान प्राप्त कराने में नहीं, घरेलू काम-काजों में दक्ष बनाने के रूप में आँकी जाती है । कुछ अर्थों में इतना सब होता तो भी खास बात नहीं थी । प्रश्न तो तब और ज्वलन्त रूप से उठ खड़ा हो जाता है जब घरेलू काम-काजों का अर्थ केवल खाना बनाने, कपड़े साफ करने और बर्तन माँजने तक ही सीमित कर दिया जाता है ।

इस आधार पर भी कन्या-पुत्र के लिए सुविधाएँ देने और मूल्यांकन करने में भेदभाव बरता जाता है कि लड़की तो पराया धन है । उसे पढ़ाने-लिखाने की क्या आवश्यकता और उसे अच्छा खिलाने-पिलाने, पहनाने-

पा रहे हैं । भारतीय नारी तो पूर्णरूपेण समर्पणशीला है, वह पतिव्रता बनी रहना चाहती है, वह पति से अतिरिक्त अपना अस्तित्व नहीं समझती, वह उसी की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता समझती है । परन्तु खेद का विषय है कि नर पक्ष की और से इसका उचित प्रत्योत्तर नहीं मिलता । नर उसके इस निश्छल आत्म-समर्पण को उसका त्याग नहीं, उसकी विवशता, उसका कर्त्तव्य और अपना अधिकार समझता है । यदि वह इस समर्पण को सही भावना से देखता और समझता तो कदाचित् वह उसे अपनी वासना पूर्ति का ही साधन समझकर, इतना अधिक शोषण कर उसे नर कंकाल न बना डालता । उसने इस आत्म-समर्पण, इस त्याग और बलिदान की भावना के मर्म को समझा ही कहाँ ? वह तो उच्छृंखल और अत्याचारी होकर अन्याय ही

करता गया, खून ही चूसता गया, चलती नहीं रहेगी । अत्याचार, अन्याय करने की भी एक सीमा होती है, तक सहन किया जा सकता है; विस्फोट और संघर्ष स्वाभाविक सुधार आवश्यक है । यदि नर स्वाभाविक संघर्ष से बचना दृष्टिकोण बदलना ही पड़ेगा नारी और अत्याचार बन्द करना ही पड़े सीता देखना चाहते हैं तो पति इसके अतिरिक्त और कोई रहें और हमारी पत्नी सीता बन पूरी नहीं हो सकती ।

* * *

होने का निर्णय अकेले 'बहू' का ही तो नहीं होता, पुत्र भी समान रूप से सहमत हो तभी यह बात बनती है। अक्सर तो बहू विघटन के मामलों में तटस्थ ही रहती है। उन्मुक्त जीवन में पुत्र ही अड़चन अनुभव करते हैं तभी अलग होने की बात सोचते हैं और सारा दोष बहू के मत्थे आ जाता है।

पत्नी को इतना भी तो अधिकार नहीं है कि वह माँ बनने के लिए पहले से सहमत हो सके। प्रायः ही अधिक सन्तान पत्नियों के प्रति किये गये अत्याचार से जन्म लेती हैं। जबकि प्रसव वेदना सहने से लेकर उसे पालने-पोसने तक का काम उसी के सिर पर आता है। परिवार से सम्बन्धित प्रत्येक विषय में पत्नी को–स्त्री को कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है, जबकि महत्त्वपूर्ण भूमिका उसी की होती है और उसे सारे काम भले ही अनमनेपन से करने पड़ते हैं। यही कारण है परिवारों की शान्ति नष्ट होने और सुव्यवस्था बिगड़ने का। पुरुषों को इस सम्बन्ध में समझदारी से काम लेना चाहिए तथा पत्नी को भी अपने समान स्तर का उत्तरदायित्व सदस्य मान कर उसे समुचित प्रतिष्ठा देनी चाहिए। उसकी योग्यता का लाभ परिवार के चलाने में ही नहीं, उसके निर्माण करने में भी उठाना चाहिए। क्योंकि समाज का विकास स्त्री-पुरुषों को शोषित और शोषक सम्बन्धों पर नहीं, मित्र और साथी के सम्बन्धों पर ही निर्भर है।

क्या नारी मनुष्य भी है ?

सुप्रसिद्ध नृतत्त्व विज्ञानी डॉ० ईवान्स सभ्यता को मनुष्य की मूलभूत प्रगति नहीं मानते, वरन् परिस्थितियों के अनुसार हुए परिवर्तनों का एक क्रम मानते हैं। सभ्यता बनती और बिगड़ती रही है। घटती और बढ़ती भी।

बर्बरता युग तक पहुँची सभ्यता ने कबीलों के बीच लड़ाई और छीना-झपटी को सीमित लोगों के लिए सीमित लाभदायक तो माना, पर सन्तोषजनक नहीं। सबके लिए सब प्रकार लाभ की बात सोची जाने लगी। इस सन्दर्भ में अगला आक्रमण पशुओं पर हुआ। पशुओं का श्रम, माँस, दूध, चमड़ा, बाल सभी काम आ सकते थे, इसलिए अगली प्रगति पशुपालन की हुई। जो मनुष्य वशवर्ती रहने की प्रकृति के थे, उन्हें रस्सी, लगाम, नकेल, अंकुश, लाठी आदि के सहारे वशवर्ती बना लिया गया और जब तक उनसे जो काम लिया जा सकता था, लिया गया। बाद में उन्हें समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार मनुष्य जाति की सम्पन्नता अधिक बढ़ी। ढेरों पशु पाले जाने लगे, पर उनके लिए मनचाहे चारे की जरूरत पड़ी। इसके लिए निवास स्थान और उसके समीपवर्ती भूमि पर अधिकार करने की जरूरत पड़ी। यह कहीं समझौते से, कहीं लड़ाई से सुलझा लिया गया। चारे के लिए उगाई घासें बीज भी देने लगीं और मनुष्य ने उसे अपने लिए खाद्य पदार्थ के रूप में प्रयुक्त करना सीख लिया। अब पशुपालन ही नहीं, कृषि भी एक धन्धा बना। इसी धन्धे में कपास और ऊन हाथ लगी, जिसके सहारे कपड़े बुनने लगे। पर्वतों की गुफाएँ चिरकाल तक मनुष्य के निवास के काम में आती रहीं। बाद में झोंपड़े एवं मकान बनाने का प्रचलन बन पड़ा और निर्वाह की आवश्यकता अपेक्षाकृत बहुत सरल हो गयी।

प्रगति के इन बदलते चरणों में काम और बर्बरता की अभिवृद्धि से मनुष्य की प्रकृति काफी क्रूर हो गयी थी। इसे उसने परम्परा का नाम देकर या ईश्वर की इच्छा बताकर सन्तोष कर लिया। इस उपक्रम को अपनाने में उसे बहुत कठिनाई नहीं पड़ी। नीति-अनीति का प्रश्न भी नहीं उठा, क्योंकि प्रवाह धीमे-धीमे बहा और स्वभाव का अंग बनता चला गया। आदतें ही परम्परा बन जाती हैं।

ईवान्स ने लिखा है कि वस्तुओं के विनिमय की आर्थिक आवश्यकता ने मुद्रा विनिमय की एक प्रथा चलायी। इससे भारी वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने और बदले में दूसरी लेने का कष्टसाध्य झंझट सरल हो गया। सोने-चाँदी जैसी धातुओं की मुद्राएँ राजकीय आधिपत्य में बनने लगीं और उनके माध्यम से वस्तुओं के निर्धारण होने लगे। किन्तु प्रगति का इतना ही क्रम पर्याप्त नहीं था। पशुपालन, कृषि, धातु उत्खनन, वस्त्र निर्माण आदि अनेक दैनिक कार्यों के लिए मनुष्यों की आवश्यकता पड़ी। यह कार्य पशु बहुल संख्या में होते हुए भी बिना किसी नियन्त्रण, निर्देशन के स्वयं नहीं कर सकते थे। इसलिए मनुष्यों में से एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता पड़ी जो पशु और मनुष्यों का मध्यवर्ती बना रह सके। इसके लिए साधन सम्पन्नों ने असहायों पर नये हमले बोलने का क्रम चलाया। राजा और प्रजा के दो वर्ग बँट गये। राजाओं ने प्रजा को, उसकी भूमि तथा सम्पदा को अपनी घोषित कर दिया। प्रजा को यह विवश होकर स्वीकार करना पड़ा। वह न विरोध कर सकती थी, न संघर्ष। इसके लिए न उसके पास कौशल था, न संगठन, न साधन!

मनुष्य की नई उभरी महत्त्वाकांक्षाओं ने सामन्तों के बीच युद्ध शुरू करा दिए। उनमें से प्रत्येक अधिक भूमि, प्रजा और उसकी सम्पदा पर आधिपत्य चाहता था। ऐसे बँटवारे पंचायतों में नहीं होते। अन्याय को विजयी बनाने के लिए युद्ध ही एकमात्र उपाय है। जो जीते सो लूटे। इसी मत्स्य न्याय को सामन्तों ने अपनाया। एक-दूसरे पर चढ़ाई करते रहे। इन पराजयों में अधिनायक सामन्त ही नहीं लुटे, वरन् प्रजा के पास जो कुछ ले जाने योग्य था उसका भी अपहरण किया गया और बाद में उसे बाजार में बेच दिया गया।

तब तक पशु से मनुष्य की कीमत बढ़ चुकी थी। वह अपनी बुद्धि का भी चमत्कार दिखाने लगा था। उसे अधिक डराया जा सकता था और अधिक लुभाया जा सकता था। इसलिए उसकी उपयोगिता अधिक समझी गयी। आक्रमणकारियों में से जो विजेता हुआ वह

औढ़ाने का भी लाड़ क्यों किया जाय । आखिर उसे तो पराये घर ही जाना है । जबकि असली बात यह है कि न तो कन्या अन्तिम समय की साथी होती है और न पुत्र ही । आज के समय में बदलते सन्दर्भों के युग में वृद्ध अभिभावक अपने पुत्रों द्वारा की गयी उपेक्षा, अवहेलना के रूप में इस तथ्य को भली-भाँति देख-परख रहा है ।

पराये धन और दूसरे घर की शोभा के रूप में भी उसकी प्रतिष्ठा बन जाती या स्थान सुरक्षित हो जाता तो भी कुछ सन्तोष किया जा सकता था । लड़कियाँ बहू बन ससुराल जाती हैं तो घर के पुरुष सदस्यों से लेकर महिलाएँ तक स्वाभाविक आत्मीयता नहीं बरत पातीं । वे समझती हैं रोटी, कपड़े के बदले में एक सस्ती दासी मिल गयी है, जो जीवनभर उनकी या उनकी न सही उनके पुत्रों की चाकरी करेगी । परिवार के अन्य लोग तो अस्वाभाविक रूप से बहू के आगमन को लेते ही हैं, स्वयं पति भी उसे स्वाभाविक रूप से कहाँ ग्रहण कर पाता है । वह समझता है कि उसे सेवा के लिए एक चाकर के साथ-साथ अपनी काम-वासना की तृप्ति के लिए भी एक खिलौना मिल गया । बाहर से चाहे जो कुछ भी दिखायी देता हो, आन्तरिक और मार्मिक स्थिति कुछ और ही होती है । वर्चस् यहाँ भी पुरुष ही अपना बनाये रखते हैं ।

वर्तमान में जबकि महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन तीव्रता के साथ आवश्यक अनुभव किया जा रहा है तो सर्वप्रथम पुरुष को ही अपने कुण्ठित अहं से प्रेरित दुराग्रह पूर्ण रवैया बदलना होगा । पति विवाहित स्त्री का सर्वाधिक निकटतम और अन्तरंग पुरुष साथी है, अतएव उनके सम्बन्धों की सूक्ष्मताओं को भली-भाँति जान लेना चाहिए । उदाहरण के लिए "कई पति ऐसे होंगे जो यह मानते हैं कि घर में अवकाश का समय व्यतीत करने की आवश्यकता क्या है और पत्नी को दुःख है भी किस बात का । मैं अच्छे पैसे कमाता हूँ । सुविधाजनक मकान है । बच्चे हैं इनके अलावा उसे और क्या चाहिए । इन सबके रहते हुए हम छुट्टी का समय कहीं मौज-मस्ती में न उड़ा कर बच्चों की चिल्ल-पों सुनते रहें, इसकी क्या आवश्यकता ।" इसका अर्थ है, उपलब्ध सुविधा-साधन पत्नी के लिए ही है और उसे उनमें ही सन्तुष्ट रहना चाहिए क्योंकि इसके लिए काफी हैं ये सब । तो पत्नी के लिए वह सब तो पर्याप्त है पर चूँकि पति महोदय परिवार में विशिष्ट व्यक्ति हैं इसलिए उनके सन्तोष और आनन्द का केन्द्र आवश्यकताएँ तथा रुचियाँ भी परिवार के सामान्य सदस्यों-पत्नी से भिन्न होनी चाहिए ।

पुरुष की स्वमान्य विशिष्ट प्रतिष्ठा को सिद्ध करने के लिए उपर्युक्त कथन पर्याप्त है । जिसका आशय है पति की रुचि पत्नी से भिन्न होनी चाहिए तथा उसे पत्नी की भावनात्मक अपेक्षाओं को समझने की भी आवश्यकता नहीं है । दम्पत्ति की दो शरीर एक प्राण से उपमा दी जाती है । लेकिन अधिकांश दम्पत्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों में यह उपमा फलितार्थ नहीं होती । विवाह के कुछ दिनों याद तक तो पति-पत्नी की हर इच्छा को पूरी करने में उत्साह दर्शाता है, उसे सब प्रकार से खुश रखना चाहता है । लेकिन एक दो बच्चे होने पर वह सारा उत्साह और सारे प्रयत्न शिथिल हो जाते हैं । इसका कारण सम्बन्धों में कोई नयी बात का पैदा हो जाना नहीं है । वस्तुतः तो नव वधू के प्रति सारा ध्यान वासनात्मक आकर्षण और कामेच्छा तृप्ति का उत्कोच ही है । जो आगे चलकर मन्द पड़ जाने पर उदासीनता धारण कर लेता है अन्यथा नववधू से प्रेम और जन्म-जन्मान्तरों तक के सम्बन्ध की कसमें खाने वाला पति अपनी पत्नी को शैक्षणिक दृष्टि से योग्य बनाने का कितना प्रयत्न करता है ? उसकी क्षमताओं के विकास में कितनी रुचि लेता है ?

नव-दम्पत्तियों के आकर्षण और प्रारम्भिक सम्बन्धों की यह स्थिति है पर पुरुष मूल रूप से यहाँ भी अपने ... को ही महत्त्व देता है । नववधू के स्वास्थ्य, रुचि और क्षमता के प्रति निश्चिंत रह कर अपनी तुष्टि को ही प्रधानता दी जाती है और घर की बड़ी-बुजुर्ग औरतें भी सदा की परम्परा के अनुसार लम्पट और दुराचारी पति को भी देवता मानने की प्रेरणा दिया करती हैं । बाजार में या दोस्तों के साथ पति कितने ही गुलछर्रे उड़ा रहा हो पर पत्नी को भोजन तभी करना चाहिए जब पति खाना खाकर उठ जाये । भले ही वह दोपहर को बारह बजे खाना खाये या अपराह्न तीन बजे । अपने पहने हुए कपड़े धोने की इल्लत भी पुरुष ने पत्नी के गले मढ़ दी, बटन टाँकने, ... ठीक करने, कपड़ों पर स्त्री करने और जूतों को ... रखने की जिम्मेदारी के साथ पति दातौन के समय पानी का लोटा लाने का काम भी पत्नी पर छोड़ दिया करता है । स्त्री के जीवन में पति के घर पर भी क्या सुख और क्या सन्तोष । पिता के घर पर पराया धन बनकर जीयी तो पति के घर परायी बेटी बनकर रहने की विवशता । हर क्षेत्र में पुरुष ने उसका शोषण करने तथा अपने अहं को तुष्ट करने की धृष्टता की है ।

स्थिति के रूप में स्त्री परिवार मे दूसरे दर्जे का सदस्य बनकर रहती है तो अधिकार के क्षेत्र में भी उसकी यही बात है । परिवार में पुरुष सदस्य अपने या अन्य सदस्यों के लिए स्वतन्त्र निर्णय ले सकते हैं । परन्तु वह अधिकार स्त्री को नहीं है । चाहे जब उसकी आवाज को दबाया जा सकता है, उसकी आकांक्षा को कुचला जा सकता है, उसकी आवश्यकताओं की उपेक्षा की जा सकती है । पुरुष समाज की एक स्वतन्त्र इकाई हो सकता है तो स्त्री के सम्बन्ध में यही बात स्वीकार करने के लिए क्या अड़चन होनी चाहिए । उसे जिम्मेदार तो ठहराया जाता है पर अधिकार सम्पन्न नहीं माना जाता । विवाह के बाद स्वनिर्भर पुत्र अपनी पत्नी को लेकर अलग हो जाता है तो भी अपने बेटे को दूध का धुला और 'बहू' को सारे अनर्थों की खान निःसंकोच घोषित कर दिया जाता है । अपने बहू बेचारी अपने मन का खाना बनाने के लिए भी स्वतन्त्र नहीं है इसके लिए भी पति से पूछना पड़ेगा और अन्य

होने का निर्णय अकेले 'बहू' का ही तो नहीं होता, पुत्र भी समान रूप से सहमत हो तभी यह बात बनती है। अक्सर तो बहू विघटन के मामलों में तटस्थ ही रहती है। उन्मुक्त जीवन में पुत्र ही अड़चन अनुभव करते हैं तभी अलग होने की बात सोचते हैं और सारा दोष बहू के मत्थे आ जाता है।

पत्नी को इतना भी तो अधिकार नहीं है कि वह माँ बनने के लिए पहले से सहमत हो सके। प्रायः हो अधिक सन्तान पत्नियों के प्रति किये गये अत्याचार से जन्म रोती हैं। जबकि प्रसव वेदना सहने से लेकर उसे पालने-पोसने तक का काम उसी के सिर पर आता है। परिवार से सम्बन्धित प्रत्येक विषय में पत्नी को-स्त्री को कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है, जबकि महत्त्वपूर्ण भूमिका उसी की होती है और उसे सारे काम भले ही अनमनेपन से करने पड़ते हैं। यही कारण है परिवारों की शान्ति नष्ट होने और सुव्यवस्था बिगड़ने का। पुरुषों को इस सम्बन्ध में समझदारी से काम लेना चाहिए तथा पत्नी को भी अपने समान स्तर का उत्तरदायित्व सदस्य मान कर उसे समुचित प्रतिष्ठा देनी चाहिए। उसकी योग्यता का लाभ परिवार के बसाने में ही नहीं, उसके निर्माण करने में भी उठाना चाहिए। क्योंकि समाज का विकास स्त्री-पुरुषों को शोषित और शोषक सम्बन्धों पर नहीं, मित्र और साथी के सम्बन्धों पर ही निर्भर है।

क्या नारी मनुष्य भी है ?

सुप्रसिद्ध नृतत्व विज्ञानी डॉ० ईवान्स सभ्यता को मनुष्य की मूलभूत प्रगति नहीं मानते, वरन् परिस्थितियों के अनुसार हुए परिवर्तनों का एक क्रम मानते हैं। सभ्यता बनती और बिगड़ती रही है। घटती और बढ़ती भी।

बर्बरता युग तक पहुँची सभ्यता ने कबीलों के बीच लड़ाई और छीना-झपटी को सीमित लोगों के लिए सीमित लाभदायक तो माना, पर सन्तोषजनक नहीं। सबके लिए सब प्रकार लाभ की बात सोची जाने लगी। इस सन्दर्भ में अगला आक्रमण पशुओं पर हुआ। पशुओं का श्रम, माँस, दूध, चमड़ा, बाल सभी काम आ सकते थे, इसलिए अगली प्रगति पशुपालन की हुई। जो मनुष्य वशवर्ती रहने की प्रकृति के थे, उन्हें रस्सी, लगाम, नकेल, अंकुश, लाठी आदि के सहारे वशवर्ती बना लिया गया और जब तक उनसे जो काम लिया जा सकता था, लिया गया। बाद में उन्हें समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार मनुष्य जाति की सम्पन्नता अधिक बढ़ी। ढेरों पशु पाले जाने लगे, पर उनके लिए मनचाहे चारे की जरूरत पड़ी। इसके लिए निवास स्थान और उसके समीपवर्ती भूमि पर अधिकार करने की जरूरत पड़ी। यह कहीं समझौते से, कहीं लड़ाई से सुलझा लिया गया। चारे के लिए उगाई घासें बीज भी देने लगीं और मनुष्य ने उसे अपने लिए खाद्य पदार्थ के रूप में प्रयुक्त करना सीख लिया। अब पशुपालन ही नहीं, कृषि भी एक धन्धा बना। इसी धन्धे में कपास और ऊन हाथ लगी, जिसके सहारे कपड़े बुनने लगे। पर्वतों की गुफाएँ चिरकाल तक मनुष्य के निवास के काम में आती रहीं। बाद में झोंपड़े एवं मकान बनाने का प्रचलन बन पड़ा और निर्वाह की आवश्यकता अपेक्षाकृत बहुत सरल हो गयी।

प्रगति के इन बदलते चरणों में काम और बर्बरता की अभिवृद्धि से मनुष्य की प्रकृति काफी क्रूर हो गयी थी। इसे उसने परम्परा का नाम देकर या ईश्वर की इच्छा बताकर सन्तोष कर लिया। इस उपक्रम को अपनाने में उसे बहुत कठिनाई नहीं पड़ी। नीति-अनीति का प्रश्न भी नहीं उठा, क्योंकि प्रवाह धीमे-धीमे बहा और स्वभाव का अंग बनता चला गया। आदतें ही परम्परा बन जाती हैं।

ईवान्स ने लिखा है कि वस्तुओं के विनिमय की आर्थिक आवश्यकता ने मुद्रा विनिमय की एक प्रथा चलायी। इससे भारी वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने और बदले में दूसरी लेने का कष्टसाध्य झंझट सरल हो गया। सोने-चाँदी जैसी धातुओं की मुद्राएँ राजकीय आधिपत्य में बनने लगीं और उनके माध्यम से वस्तुओं के निर्धारण होने लगे। किन्तु प्रगति का इतना ही क्रम पर्याप्त नहीं था। पशुपालन, कृषि, धातु उत्खनन, वस्त्र निर्माण आदि अनेक दैनिक कार्यों के लिए मनुष्यों की आवश्यकता पड़ी। यह कार्य पशु बहुल संख्या में होते हुए भी बिना किसी नियन्त्रण, निर्देशन के स्वयं नहीं कर सकते थे। इसलिए मनुष्यों में से एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता पड़ी जो पशु और मनुष्यों का मध्यवर्ती बना रह सके। इसके लिए साधन सम्पन्नों ने असहायों पर नये हमले बोलने का क्रम चलाया। राजा और प्रजा के दो वर्ग बँट गये। राजाओं ने प्रजा को, उसकी भूमि तथा सम्पदा को अपनी घोषित कर दिया। प्रजा को यह विवश होकर स्वीकार करना पड़ा। वह न विरोध कर सकती थी, न संघर्ष। इसके लिए न उसके पास कौशल था, न संगठन, न साधन।

मनुष्य की नई उभरी महत्त्वाकांक्षाओं ने सामन्तों के बीच युद्ध शुरू करा दिए। उनमें से प्रत्येक अधिक भूमि, प्रजा और उसकी सम्पदा पर आधिपत्य चाहता था। ऐसे बँटवारे पंचायतों में नहीं होते। अन्याय को विजयी बनाने के लिए युद्ध ही एकमात्र उपाय है। जो जीते सो लूटे। इसी मत्स्य न्याय को सामन्तों ने अपनाया। एक-दूसरे पर चढ़ाई करते रहे। इन पराजयों में अधिनायक सामन्त ही नहीं लुटे, वरन् प्रजा के पास जो कुछ ले जाने योग्य था उसका भी अपहरण किया गया और बाद में उसे बाजार में बेच दिया गया।

तब तक पशु से मनुष्य की कीमत बढ़ चुकी थी। वह अपनी बुद्धि का भी चमत्कार दिखाने लगा था। उसे अधिक डराया जा सकता था और अधिक लुभाया जा सकता था। इसलिए उसकी उपयोगिता अधिक समझी गयी। आक्रमणकारियों में से जो विजेता हुआ वह

पराजित पक्ष के किले-महल ही नहीं, प्रजा की धन-सम्पदा लूटने का भी अधिकारी बना ।

इस बार की लूटपाट में नये साधन हाथ लगे-युवक और युवती । पकड़े जाने के उपरान्त उन्हें दास-दासी घोषित कर दिया गया और विजेता की सम्पदा भी । आनाकानी करने वाले के लिए निर्धारित दण्ड था, प्राण हरण । इतना बड़ा जोखिम उठाने, उनके भोजन-वस्त्र का तो प्रबन्ध किया गया पर अधिकार पशु स्तर के ही रहे । मालिक की आज्ञा न मानने से, आनाकानी करने पर उसे मार तक डाला जा सकता था । इसमें किसी न्यायाधीश की जरूरत नहीं थी । मालिक ही उसका भाग्य विधाता था । जो कुछ करने को कहा जाय उससे इन्कार करने का अधिकार नहीं था ।

उपर्युक्त परिवर्तन और निर्धारण इतने धीमे क्रम से हुए कि उन्हें परम्परा मान लिया गया । पुरोहितों की आजीविका राज्याश्रय पर ही निर्भर थी इसलिए उन्हें वही कहना या लिखना पड़ा जो सामन्तों ने चाहा । विरोध करने पर वे अपनी आजीविका और वरिष्ठता गँवाना नहीं चाहते थे इसलिए राजा और पुरोहित की मिलीभगत पीड़ित प्रजा पर दुहरा दबाव डालती रही । राजा का भय और पुरोहित का धर्म समर्थन निरीह प्रजाजनों के लिए ऐसा दुहरा बन्धन था, जिसका विरोध करना तो दूर वे ऐसा करके पाप के भागी भी नहीं बनना चाहते थे । प्रत्यक्ष उत्पीड़न और परलोक में नरक की वासना का दुहरा कष्ट कौन सहे ?

इस बार नया व्यवसाय उभरा, दास-दासियों का । गाजर-मूली की तरह हाट में बिकने वाले इस माल को जिसने जितना चाहा, खरीद लिया । जरूरत न रहने पर सस्ता, महँगा दूसरे के हाथ बेच दिया । दान दे दिया या किसी देवता को प्रसन्न करने के लिए उसकी प्रतिमा पर बलि चढ़ा दिया ।

परिवर्तनों का क्रम अब समय के साथ कुछ तेजी पकड़ने लगा है । स्त्रियाँ कानूनी रूप में दासी की स्थिति से दक्षिण अमरीका में भी निकल आयी हैं और उन्हें रस्सों से बाँधकर पानी के जहाजों द्वारा जिन्दा लाश की तरह ढोना भी बन्द हो गया है । सामन्तों के हरमों में सैकड़ों की संख्या में रखैलें रहने की घटनाएँ भी अब गिनी-चुनी रहने लगी हैं पर उसका दूसरा रूप नये सिरे से उभर कर आया है । सवर्णों में दहेज के नाम पर और असवर्णों में नेगाचार के नाम पर यह खरीद-फरोख्त होती है और चौराहों पर नहीं, चौपालों में यह बोली बोली जाती है । कानूनी और गैर-कानूनी वेश्याघरों की भरमार है । कितनी ही ऐसी मुसीबतों में फँसी हैं जिन्हें न डूबते बनता है न उबरते ।

बच्चे जनने के कारण स्त्री सूखी, निचुड़ी, दुर्बल और बीमार स्थिति में रहती है । इस विवशता में वह इस योग्य नहीं रहती कि कमा सके, बच्चों का भरण-पोषण एवं लोलुप पति को सन्तुष्ट कर सके । इस दयनीय स्थिति में उसे क्या-क्या सुनना-सहना पड़ता है, वही जानता है, जिस पर बीतती है ।

कानूनी अधिकार संसार के अधिकांश भागों में स्त्री को भी नर के समान मिल गया है, पर उसके कार्यक्षेत्र के क्षेत्र में कितने सिकुड़ गये हैं, सिकुड़ते जाते हैं, यह देखकर दुःख हुए बिना नहीं रहता ।

नारी का वर्चस्व पुरुष से बढ़कर

कौन वरिष्ठ और कौन कनिष्ठ ? यह प्रश्न तो प्रति-द्वन्द्वियों के बीच उठता है, नर-नारी के बीच नहीं । यदि यह द्वन्द्व परस्पर पूरक घटकों के बीच ही उठने लगे तो भारी असमंजस का सामना करना पड़ता है । इसे एक संयोग मात्र कहना चाहिए कि समाज एवं परिवार की आर्थिक व्यवस्था की बागडोर पुरुषों के हाथ रहती चली आ रही है । उचित तो यह था कि पुरुष इसे एक सुअवसर मानता तथा नारी को भी सहभागी मानकर परिवार एवं समाज के विकास में उसके भाव भरे योगदान के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता पर उस विडम्बना को क्या कहा जाय कि उसने प्रस्तुत अवसर का दुरुपयोग किया तथा अहं केन्द्रित वरिष्ठता का ऐसा लबादा ओढ़ लिया जो समानता के लिए उठायी जाने वाली आवाजों के बावजूद भी उतरे नहीं उतरता । नारी से वरिष्ठ होने का यह झूठा अहंकार भारत के कोने-कोने पर क्या शिक्षित, क्या अशिक्षित, क्या अमीर, क्या गरीब सभी वर्गों में देखा जा सकता है ।

वरिष्ठता का मापदण्ड क्या है ? इस प्रश्न का गहराई में चलकर उत्तर ढूँढ़े तो अधिकांश तथ्य, प्रमाण एवं तर्क नारियों के ही पक्ष में जाते तथा उनकी ही श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं । शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं सामाजिक हर पक्ष पर विचार करें तथा इन परिप्रेक्ष्यों में नर, नारी दोनों का अध्ययन करें तो पलड़ा नारी का ही भारी पड़ता है पुरुष का नहीं ।

सामान्यतया शरीर की दृष्टि से पुरुष को अधिक समर्थ और बलिष्ठ समझा जाता है । सम्भवतः इसी उथले आधार पर समर्थता का मूल्यांकन करने वाले किसी व्यक्ति ने नारियों को 'अबला' के सम्बोधन से सम्बोधित किया होगा । जबकि तथ्य यह है कि बाहरी ताकत की दृष्टि से पुरुष सबल भले ही दिखायी पड़े, आन्तरिक जीवनीशक्ति की दृष्टि से नारियाँ कहीं अधिक समर्थ होती हैं । मोटी दृष्टि शरीर बल को ही प्रधानता देती है जबकि स्वस्थ सामर्थ्य, सुस्वास्थ्य एवं आरोग्य का केन्द्र-बिन्दु भीतर विद्यमान जीवनीशक्ति है । शरीरशास्त्रियों ने सही अर्थों में शक्तिशाली उसे माना है जिसके अन्दर इस आन्तरिक शक्ति की प्रचुरता है । शरीर से बलिष्ठ होना एक बात है और जीवनीशक्ति सम्पन्न होना सर्वथा दूसरी बात है । यह आवश्यक नहीं है कि जो शरीर से ताकतवर हो वह जीवनीशक्ति का भी धनी हो । इसके विपरीत यह भी आवश्यक नहीं है कि जीवनीशक्ति सम्पन्न व्यक्ति शरीर

अधिक हृष्ट-पुष्ट हो । यह सच है कि जिस शरीर बल को प्रधानता दी जाती है, उस क्षेत्र में पुरुष का पलड़ा भारी पड़ता है पर जहाँ तक स्वास्थ्य, आरोग्य की मूलाधार जीवनीशक्ति का प्रश्न है, नारियाँ पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक समर्थ होती हैं ।

विस्कौंसिन विश्वविद्यालय के आयुर्विज्ञान विशेषज्ञ एरहार्ट ने लम्बे समय तक खोज-बीन के उपरान्त यह घोषणा की है कि नर की अपेक्षा नारियों में जीवनीशक्ति की मात्रा अधिक होती है । इसका सबसे बड़ा प्रमाण गर्भावस्था में मिलता है । स्वयं के पोषण के साथ-साथ भ्रूण के लिए अपने ही शरीर से परिपूर्ण पोषण देती है, कष्ट सहने की क्षमता उस समय स्त्रियों में देखते बनती है यह आन्तरिक जीवनीशक्ति का बाहुल्य ही है जो एक साथ दो जीवों नारी तथा भ्रूण की रक्षा करता है । नारी का यह अनुदान न मिले तो संसार में पुरुष का अस्तित्व ही दृष्टिगोचर न हो । कुछ समय पूर्व अलबर्ट आइन्सटीन कॉलेज के प्रो० हार्वेवालिस द्वारा की गयी इस खोज की पुष्टि डॉ० एरहार्ट ने भी की है कि गर्भावस्था में प्रत्येक भ्रूण में फिमेल हारमोन सिस्टम होता है । पुरुष हारमोन सिस्टम का विकास तो आगे चलकर होता है अर्थात् मूलतः समस्त मानव जाति आरम्भिक चरण में नारी होती है, उसके कुछ अंशों पर नर तत्वों का प्रत्यारोपण होने से पुरुष वर्ग का अस्तित्व सामने आता है ।

'वर्ल्ड हेल्थ आर्गनाइजेशन, की रिपोर्टानुसार सामान्यतः संसार में लड़कियों की अपेक्षा पैदा होने वाले लड़कों का अनुपात अधिक होता है पर कुछ ही दिनों में उनमें से कितने ही लड़के मर जाते हैं । मृत्यु का यह अनुपात लड़कों में लड़कियों की तुलना में अत्यधिक है । इसका कारण सम्बद्ध वैज्ञानिकों ने यह बताया है कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ कहीं अधिक स्वस्थ एवं नीरोग पैदा होती हैं । बाह्य वातावरण से वे शीघ्रातिशीघ्र समायोजन स्थापित कर लेती हैं जबकि लड़के ऐसा नहीं कर पाते । मेडिकल सेन्टर ऑफ जार्जटाउन यूनिवर्सिटी के प्रो० डॉ० पीटर का दीर्घकालीन शोध निष्कर्ष है कि पाचक रोगों की चपेट में पुरुष वर्ग अधिक आते हैं, नारियों का औसत पुरुष से कम होता है । इसका कारण डॉ० पीटर ने यह बताया है कि स्त्रियों में रोग-निरोधक क्षमता पुरुष से अधिक होती है ।

अधिक खोजबीन करने के बाद शरीरविज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुँच पाये हैं कि रक्त में पाया जाने वाला एक विशिष्ट प्रकार का प्रोटीन जिसे 'इम्यूनोग्लोबुलिन-एम' के नाम से जाना जाता है, स्त्रियों के शरीर में पुरुषों की अपेक्षा अधिक बनता है । शरीर रक्षा के लिए यह एक बड़ा ही शक्तिशाली घटक है । यही कारण है कि वे पुरुषों से कहीं अधिक स्वस्थ, सानन्द जीवनचर्या व्यतीत करती देखी जाती हैं ।

रुटजर्ज विश्वविद्यालय न्यूजर्सी के साइको एंडोक्राइनोलाजिस्ट डॉ० ट्राइनिश ने दीर्घकाल तक मस्तिष्क पर चोट खाये नर-नारियों का अध्ययन किया । उनके द्वारा निकाले गये निष्कर्ष सम्बन्धित विषयों पर और भी अधिक अच्छा प्रकाश डालते हैं । डॉ० राइनिश के अनुसार स्त्री तथा पुरुष के मस्तिष्क की क्रियाओं में भिन्नता होती है । पुरुष की कुछ क्रियाएँ मस्तिष्क के वाम गोलार्द्ध तथा कुछ दक्षिणी गोलार्द्ध से नियंत्रित होती हैं । दोनों के बीच परस्पर उतना समायोजन नहीं हो पाता जितना कि नारियों में । महिलाओं में क्रिया-नियन्त्रण व्यवस्था दोनों गोलार्द्धों में समान रूप से बँटी होती है । पुरुषों में इस असन्तुलन की चरम परिणति गम्भीर मस्तिष्कीय चोटों के समय दिखायी पड़ती है । अपने सहयोगियों के साथ डॉ० रायनिश ने अनेक केसों में देखा कि अधिकांश पुरुषों के वाम मस्तिष्क पर चोट लगने तथा क्षतिग्रस्त होने पर उनकी बोलने की क्षमता नष्ट हो जाती और यदि दाहिने भाग पर चोट पहुँचती है तो देखने की क्षमता नष्ट हो जाती है । जबकि ऐसा प्रायः महिलाओं में कम ही होता है, दोनों के बीच इस अन्तर का कारण उपर्युक्त वैज्ञानिकों ने मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों के सन्तुलन एवं असन्तुलन को बताया है ।

शारीरिक ही नहीं, मानसिक क्षमताओं की दृष्टि से भी नारियों की ही वरिष्ठता साबित होती है । मानसिक क्षमताओं में एक पक्ष बुद्धि का है, जिसकी प्रखरता सामान्यतः शिक्षण, प्रशिक्षण पर अवलम्बित है । यह तथ्य सर्वविदित है कि भेद-भाव की प्रवृत्ति के कारण नारियों को अपनी बौद्धिक प्रतिभा निखारने के लिए अवसर पुरुष की अपेक्षा कम मिला है । अतएव आज बुद्धि के क्षेत्र में जो वर्चस्व पुरुष का दिखायी पड़ रहा है नारियों का नहीं दिखायी पड़ता अन्यथा अवसर दिया जा सके तो नारियाँ इस क्षेत्र में भी पुरुषों को पीछे छोड़ सकती हैं । कितनी ही मेधावी प्रतिभाशाली नारियों के आये दिन ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं । जिन्हें अनुकूलताएँ मिली और उन्होंने उनका सदुपयोग करके अपनी प्रतिभा चमकायी । अस्तु, शिक्षण-प्रशिक्षण की समान सुविधाएँ पाकर स्त्रियाँ भी बुद्धि के क्षेत्र में पुरुष की बराबरी कर सकती हैं ।

पर बुद्धि के अतिरिक्त भी मानसिक क्षमताओं के महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं–मानसिक समस्वरता, मनःसन्तुलन, सहनशीलता आदि पक्ष ऐसे हैं जो बुद्धि की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण सफलता अर्जित करने तथा व्यक्तित्व को निखारने के लिए आवश्यक हैं । बुद्धिमान होते हुए भी कितने ही व्यक्ति उपर्युक्त मानसिक विशेषताओं के अभाव में विक्षिप्तों की भाँति जीवन जीते तथा मरघट के पिशाच की तरह चिन्ताग्नि में जलते रहते हैं । प्रकृति का अतिरिक्त अनुदान उपर्युक्त मानसिक उपहारों के रूप में नारियों को अधिक प्राप्त है । इस तथ्य की पुष्टि वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा भी हो चुकी है । अमेरिकी नेशनल इस्टीटयूट ऑफ हेल्थ के एक मनःचिकित्सक का कहना है कि नारियों में परिस्थितियों से समायोजन करने की क्षमता अधिक होती है । यह क्षमता लगभग पुरुष से पाँच गुनी ज्यादा

होती ह । महिलाओं में अन्तर्ज्ञानात्मक प्रतिभा भी अधिक पायी जाती है । समस्याओं का समाधान भी स्त्रियाँ पुरुष से अधिक शीघ्रता से ढूँढ़ लेती हैं । असन्तुलनजन्य मनः-विक्षेपण पुरुष को ही अधिक परेशान करते हैं । इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि विश्व में नारियों की तुलना में पुरुष मानसिक रोगियों का अनुपात चार गुना है ।

हृदय चूँकि व्यवहार क्षेत्र में नारी का विशाल होता है इसलिए हृदय के दौरे भी स्त्रियों को कम पड़ते हैं । पुरुष उदारता बरतने के सम्बन्ध में संकीर्ण होते हैं इसलिए उनका हृदय आकार और वजन में बड़ा होने पर भी दौरा पड़ने की बीमारी भी उसी के हिस्से में अधिक आती है । गतवर्ष के एक सर्वेक्षण के अनुसार मात्र भारत में ४ करोड़ २० लाख पुरुष हृदय रोगी पाये गये, जबकि स्त्रियों की संख्या इनसे आधी थी । तनावग्रस्त रहने, जल्दी उत्तेजित होने एवं घबराने में पुरुष ही अधिक फँसते हैं जबकि स्त्रियाँ हँसकर या रोकर अपने मन का भार उतार लेती हैं । उनमें प्राकृतिक हारमोन एस्ट्रोजन अधिक मात्रा में स्रवित होता है जो उत्तेजनाओं की परिस्थितियों में भी उन्हें सन्तुलित बनाये रखता है । वे रक्तचाप और तनाव से कम ग्रसित होती हैं । उनके हृदय संस्थान में ऐड्रिनेलिन पदार्थ अपेक्षाकृत कम स्रवित होने के कारण उत्तेजना की स्थिति बढ़ने नहीं देता और वे असन्तुलित अपेक्षाकृत कम ही होती हैं । यही कारण है कि उनमें तनावजन्य हृदय रोग पुरुषों की अपेक्षा कम देखा जाता है ।

मासिक धर्म के समय होने वाला रक्तस्राव तथा प्रजनन के सम्बन्ध में होने वाली क्षति में उन्हें ऐसा घाटा उठाना पड़ता है, जो पुरुषों के सामने नहीं आता । फिर भी प्रकृति इस क्षति की पूर्ति जल्दी-जल्दी करती रहती है और उनका स्वास्थ्य बेहिसाब गिरने नहीं पाता । वे रोगी भी कम पड़ती हैं और आयुष्य की दृष्टि से दीर्घजीवी भी होती हैं । सोने का अवसर उन्हें कम मिलता है । रात्रि को बच्चों की देखभाल के सम्बन्ध में उनकी नींद बार-बार टूटती रहती है फिर भी उस क्षति को वे सहज ही सहन करती रहती हैं । दिन में भी अपेक्षाकृत वे कम सो पाती हैं । इस क्षति की पूर्ति 'टेस्टोस्टेरोन' नामक रक्तस्राव की बढ़ी हुई मात्रा सहज ही पूरा करती रहती है । नर पूरी नींद कर लेने पर भी थकान से पूरी तरह मुक्त नहीं कर पाता ।

नृतत्वविज्ञानियों का कथन है कि नर या तो बुद्धिमान होगा या मूर्ख । दोनों ही अतिवाद की स्थितियाँ जोखिम भरी हैं । नारी मध्यवर्ती है, उसकी कल्पनाएँ और दूरदर्शिताएँ प्रत्येक प्रसंग से जुड़ी रहती हैं । व्यवहारशील होने के कारण वह अतिवाद से बची रहती है ।

इस प्रकार तर्क, तथ्य एवं प्रमाण हर प्रकार से नारी का ही वर्चस्व सिद्ध करते हैं तथा उसकी महानता का प्रतिपादन करते हैं । उपर्युक्त पंक्तियों में तर्क, तथ्य एवं प्रमाण इसलिए देने आवश्यक हो गये, ताकि वरिष्ठता एवं अहमन्यता का ओढ़ा गया झूठा लबादा पुरुष उतार फेंके तथा नारी को भी अपने ही समकक्ष माने । अच्छा तो यह होगा कि दोनों ही अपनी पूरक भूमिकाओं को समझें तथा स्वयं को एक समग्र इकाई मानें । इसी में दोनों का हित है तथा परिवार संस्था का कल्याण भी । समाज की प्रगति भी नारी को समानता के दर्जे पर लाने से ही सम्भव होगी ।

शरीर क्षेत्र में कनिष्ठ होते हुए भी, नारी भाव क्षेत्र में वरिष्ठ है

नर और नारी यों दोनों अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण हैं । दोनों का अपना महत्त्व और स्तर है । दोनों के परस्पर सम्मिश्रण सहयोग से ही अपूर्णता का पूर्णता में विकास होता है ।

पिछले दिनों यह मान्यता चली आ रही है कि नर वरिष्ठ और नारी कनिष्ठ है । यह बात कठोर शारीरिक श्रम की क्षमता के क्षेत्र में ही सही उतरती है । बाकी ९९ प्रतिशत क्षेत्रों में गलत है । नारी की प्रजनन गरिमा के कारण उसका शारीरिक दृष्टि से थोड़ा दुर्बल होना स्वाभाविक है । मासिक धर्म में उसे हर महीने अपने शरीर में से कुछ घटाना पड़ता है । गर्भ धारण और दूध पिलाने में भी उसका शरीर निचुड़ता है । पुरुष को इस प्रकार खर्च नहीं करना पड़ता, इसलिए वह शारीरिक दृष्टि से मजबूत बना रहता है । नारी अपने शरीर का एक अंश सृष्टि संचालन के लिए निरन्तर समर्पित करती रहती है उसके इस त्याग-बलिदान ने ही सृष्टि क्रम को जीवित रखा है । दानी अपेक्षाकृत निर्धन ही रहता है । ऋषि और सन्त-लेते कम और देते ज्यादा थे इसलिए उनके शरीर दुर्बल रहते थे । तपस्वियों की काया नहीं आत्मा बलिष्ठ होती है । नारी की गणना इसी वर्ग में आती है । उसकी शारीरिक दुर्बलता के पीछे जो महान कारण सन्निहित हैं, उन्हें देखते हुए उसकी पुरुष की तुलना में थोड़ी कमजोरी रहना वन्दनीय, प्रशंसनीय है । उस स्तर का त्याग करने का अवसर न मिलने से पुरुष धनी, सम्पन्न लोगों की तरह भले ही थोड़ा बलिष्ठ बना रहे, पर कारणों को देखते हुए श्रद्धाभिवन्दन नारी का ही किया जाएगा । पुरुष अपनी शारीरिक बलिष्ठता से कायिक-भौतिक लाभ उठाता रहे, इतना ही उसके लिए क्या कम है ।

स्त्री और पुरुष के शरीर की संरचना में प्रकृति ने थोड़ा अन्तर रखा है । भावना प्रधान होने के कारण सम्भवतः कठोर कार्य करने का भार उस पर न पड़े इस दृष्टि से यह प्रकृति का कोई पक्षपात या अन्याय नहीं है वरन् यह प्रयोजन है कि जिसका जो क्षेत्र है वह उसी अनुपात से आवश्यक सामिग्री प्राप्त करे । पुरुष को कठोर, शारीरिक परिश्रम करने के लिए प्रकृति ने उपयुक्त समझा है, इसलिए उसकी शरीर रचना में उसी प्रकार की विशेषताएँ भरी गयी हैं । पुरुष श्रम प्रधान-नारी भावना

प्रधान बनाकर प्रकृति ने दोनों के समन्वय से अपूर्णता को पूर्णता में बदलने का प्रयत्न किया है, पारस्परिक निर्भरता भी उसका एक कारण हो सकती है । दोनों अपने को अपूर्ण समझें और मिलकर पूर्णता प्राप्त करें अथवा दोनों अपने को एक अतिरिक्त सम्पदा का धनी मानकर एक दूसरे को कृपापूर्वक उससे लाभान्वित करने का गर्व-गौरव अनुभव करें । वैसे आवश्यकता इसकी भी नहीं है । न कोई अपने को अभावग्रस्त समझे, न गर्व करे । परस्पर आत्म-समर्पण का आनन्द लेने के लिए स्वेच्छा से, विवशता से अथवा प्रकृति से, प्रेरणा से दोनों समन्वयात्मक जीवन जिये । भिन्नता के सम्मिश्रण की एक अभिनव प्रक्रिया अपनाकर दोनों आनन्द उल्लास भरे सर्वांगपूर्ण जीवनक्रम अपनायें, यह भी इस भिन्नता का प्रयोजन हो सकता है ।

शरीर की दृष्टि से नारी नर की तुलना में कुछ हल्की पड़ती है पर भावना की दृष्टि से इतनी भारी है कि उसकी तोल में दस नरों की भाव सम्पदा मिलकर भी हल्की पड़ेगी ।

मृत शरीर के अस्थि पिंजर को देखकर नर-नारी की परख आसानी से की जा सकती है । क्योंकि उसकी बनावट में थोड़ा अन्तर प्रकृति ने ही रख छोड़ा है । नारी की हड्डियाँ पुरुष की अपेक्षा छोटी, चिकनी और सरल होती हैं । मस्तक की ऊँचाई कम, नीचे का जबड़ा हल्का, दाँत छोटे, ठोड़ी ऊँची, सीने की बीच की हड्डी (स्टरमम) छोटी तथा टेढ़ी, पतली रीढ़ की हड्डियों के गुटके गहरे, देखकर नारी का अस्थि पिंजर पहचाना जा सकता है । लम्बाई भी पुरुष की तुलना में कम होती है । माथे की हड्डियाँ अपेक्षाकृत कम मजबूत और कम कड़ी होती हैं । आँखों के गड्डे अण्डाकृति, गहराई कम, वक्षस्थल की अस्थि दीवार पुरुष की अपेक्षा कुछ अधिक फैली होती हैं । गले के नीचे वक्षस्थल में थोड़ा ऊपर दोनों पार्श्वों में दो 'क्लेविकल' हड्डियाँ होती हैं । वे भी अपेक्षाकृत चिकनी, पतली तथा टेढ़ी होती हैं ।

स्त्रियों के हाथ पुरुष की तुलना में छोटे होते हैं किन्तु तर्जनी लम्बी और अँगूठा छोटा होता है । सन्धियाँ छोटी होती हैं । मेरुदण्ड पुरुष का प्रायः २ फुट ४ इंच होता है जबकि औसत स्त्री का २ फुट ही पाया जाता है ।

स्त्रियों का वस्ति गह्वर ९०–१०० होता है जबकि पुरुषों का ७०–७५ ही पाया जाता है । उरु अस्थि पुरुष की ४७–३ और नारी की ४१–३ होती है । पैर की अस्थि (टीबिया) पुरुष की ७८–५ और नारी की ६७–८ होती है । पैर कुछ छोटे होते हैं । पैर की मध्यमा अँगुलि तो निश्चित रूप से छोटी और सीधी होती है । पेट का फैलाव इसलिए अधिक रहता है कि उसमें भ्रूण का निर्वाह ठीक तरह हो सके ।

नारी की माँसपेशियों में जल का अंश अधिक रहता है और ये कोमल होती हैं । मस्तिष्कीय पदार्थ पुरुष का ४९औंस और नारी का ४४ औंस पाया जाता है । छोटा मस्तिष्क पुरुष में १ औंस ८।। ड्राम और स्त्रियों का १ औंस ८। ड्राम होता है । हृदय पिण्ड पुरुष का १० से १२ औंस और स्त्रियों का ८ से १० औंस होता है । फेफड़ों का वजन पुरुष का १४०० ग्राम और स्त्रियों का १२६० ग्राम अनुपात में पाया गया है । गुर्दे पुरुष के ४।। से ६ औंस तक और नारी के ४ से ५।। औंस तक होते हैं । पुरुष की मूत्र नली ८–९ इंच लम्बी और स्त्रियों की १।। इंच भर होती है ।

आहार अपेक्षाकृत वे एक चौथाई कम करती हैं । शरीर का ताप पुरुष से अधिक होता है । ३० वर्षीय प्रौढ़ा नारी में १७ वर्ष के किशोर लड़के की बराबर बल होता है । नाड़ी स्पन्दन प्रति मिनट नर का ७० और नारी का ८० रहता है । श्वास नर के १५ और नारी के १७ चलते हैं । माँसपेशियों का वजन पुरुष में ४०० और स्त्रियों में ३५० होता है । स्वप्न भी वे ही अधिक देखती हैं । ऋतु प्रभाव वे कम सहन कर पाती हैं और मानसिक दबाव अधिक पड़ने पर हिस्टेरिया की शिकार हो जाती हैं, पुरुषों में यह रोग कम होता है ।

नारी के यौवन के उभार का अधिक प्रभाव उसकी थाइराइड ग्लेण्ड पर अधिक पड़ता है । उसके यौवन अंगों में तेजी से उभार आता है । इस ग्रन्थि के विकास पर 'नारीत्व' की प्रवृत्ति बहुत कुछ अवलम्बित रहती है । यह विकसित न हो तो उसे गृहस्थ की बात सुहाती ही नहीं ।

स्वस्थ पुरुष में रक्त का वजन १०६० और स्त्रियों में १०५० पाया जाता है । रक्त कणों का औसत पुरुषों में ५० लाख और स्त्रियों में ४५ लाख पाया गया है । स्वर यन्त्र पुरुषों का बड़ा और कड़ा होता है नारी का छोटा और कोमल ।

यह अन्तर इसलिए भी है कि दोनों का परस्पर घनिष्ट सहयोग रहते हुए भी कार्य क्षेत्र पृथक्-पृथक् बना रहे । नारी विश्व का-व्यक्ति का-भावनात्मक उत्कर्ष बनाये और बढ़ाये रहे । नर सम्पदा एवं सुविधा उपार्जन करता है । नारी की वरिष्ठता अध्यात्म क्षेत्र में है, यह भाव स्तर का नेतृत्व करती है पुरुष की कठोरता उसे भौतिक क्षेत्र सम्भालने की सुविधा देती है ।

वस्तुतः सन्त, ब्राह्मण, गुरु अध्यात्म क्षेत्र में और अन्य क्षेत्रों में भी दार्शनिक नेतृत्व का पद नारी को ही दिया जाना चाहिए क्योंकि जिसके पास भावनाओं का बाहुल्य हो, वही उन्हें दूसरों को प्रदान भी कर सकता है । जिसके पास जो पूँजी स्वतः ही स्वल्प है वह उसे देगा कहाँ से और कैसे ?

शारीरिक अन्तर की प्रकृति प्रदत्त व्यवस्था इसलिए भी है कि नारी कठोर श्रम के कार्यों में प्रवृत्त होकर अपनी विशेषताएँ खोने न लगे । पुरुष को युद्ध, कूटनीति, दण्ड-

दमन, उपार्जन जैसे संघर्षात्मक कार्य करने पड़ते हैं । फलतः वह शरीर की दृष्टि से नहीं, मन की दृष्टि से भी कठोर हो जाता है । यही अभिशाप नारी भी अपने कन्धों पर उठाने लगे तो उसकी अपनी गरिमा जो पुरुष के पौरुष या पौरुष्य से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है, घटने लगेगी और विश्व को एक अपूरणीय क्षति उठानी पड़ेगी । नर को अपनी कठोरता एवं शारीरिक बलिष्ठता के आधार पर अपने को हर क्षेत्र में वरिष्ठ कहलाने का अधिकार नहीं है । भावना क्षेत्र में तो उसी की गरिमा असंदिग्ध रूप से बढ़ी-चढ़ी है ।

नारी के अन्तःकरण में कोमलता, करुणा, ममता, सहृदयता एवं उदारता के पाँच देव प्रवृत्तियाँ सहज स्वाभाविक रूप से अधिक हैं । इसलिए उसे 'देवी' शब्द अलंकार से सम्मानित किया जाता है । कमला देवी, दुर्गा देवी, भगवती देवी नारी के भारतीय नामों में देवी अलंकार यथार्थ ही जुड़ा हुआ है । उसमें जन्म-जात रूप से यह देव तत्व पुरुष की तुलना में कहीं अधिक मात्रा में विद्यमान है । यदि यह बाहुल्य न होता तो वह पत्नी का समर्पण परक, माता को जान-जोखिम में डालने जैसी बलिदानी प्रक्रिया, बहिन और पुत्री की अन्तरात्मा को गुदगुदा देने वाली विशेषता कैसे सम्भव होती । उसके इन दैवी गुणों ने उसे इस प्रकार का परमार्थ परायण तपस्वी जीवन जी सकने की क्षमता प्रदान की है ।

भौतिक विशेषताएँ–नर में हो सकती हैं पर आत्मिक महानता की दिव्य सम्पदा में वह नारी से कहीं पीछे है । इसीलिए जब कभी भाव परिवर्तन की आवश्यकता व्यक्तिगत अथवा सामूहिक जीवन में अनुभव की जाती है तब सदा उसी को आगे किया जाता है, उसी का द्वार खटखटाया जाता है, उसका नेतृत्व स्वीकार किया जाता है । पौराणिक शक्ति गाथाओं में तथा कर्मकाण्डपरक शक्ति पूजा में, इस रहस्य में तथ्य कूट-कूट कर भरा हुआ है । हमें नारी की गरिमा समझनी ही नहीं, विकसित भी करनी चाहिए और कार्यान्वित भी ।

नारी की मौलिकता बनी ही रहनी चाहिए

महात्मा गाँधी से एक जिज्ञासु ने एक बार प्रश्न किया–"दो व्यक्तियों में से एक उग्र और दूसरा नम्र स्वभाव वाला हो, तो संतुलन-सामंजस्य क्या निभ सकेगा ?"

गाँधी जी ने जवाब दिया–"यों देखने में तो यही प्रतीत होगा कि संतुलन बना हुआ है, पर यथार्थ इससे भिन्न होगा । उग्र हमेशा नम्र पर हावी रहेगा । इस स्थिति में दोनों के एक जैसा बन जाने में ही पूर्ण तालमेल बैठ सकता है । दोनों यदि उग्र हो गये, तो भी विवाद और संघर्ष जैसी स्थिति बनी ही रहेगी । ऐसे में विकल्प एक ही शेष रह जाता है कि दोनों नम्र बन जाएँ ।"

समाज रूपी रथ के नर-नारी दो पहिए हैं । इनमें से एक नर्म तो दूसरा गर्म मनोभूमि वाला है । इसी विसंगति के कारण आज समाज की यह दुर्दशा हुई । इस दुरवस्था का अन्त तभी हो सकेगा, जब दूसरा भी शालीन बन जाए क्योंकि दो कठोर व्यवस्था को सदा बिगाड़ने वाले ही होते हैं । इतना सब जानते-मानते हुए भी इन दिनों नारियों में नर जैसा बन जाने की एक प्रकार से होड़ लगी हुई है । सर्वत्र उसकी नकल उतारी जा रही है । यों कहने वाले इसे आधुनिकता और प्रगतिशीलता का लक्षण कह कर सन्तोष कर लेते हैं पर इसके पीछे का मूल कारण वह एक पक्षीय श्रेष्ठता ही है, जिसे मध्यकाल से पुरुषों ने मात्र अपने लिए आरक्षित कर रखा है । यदि यह अनुकरण स्वस्थ आकर्षण का परिणाम होता, तो फिर प्रश्न उठता है कि यह एकपक्षीय क्यों है ? इसे उभयपक्षीय होना चाहिए था । पुरुषों में भी नारी नकल की वैसी ही ललक दिखाई पड़नी चाहिए थी, जैसी नारी समाज में आज देखी जा रही है । किसी पुरुष को महिलाओं जैसी साज-सज्जा और लिवास पहनते कहाँ देखा जाता है ? जबकि निःसंकोच होकर पुरुषों जैसे परिधान पहनना इन दिनों लड़कियों के लिए आम बात है । पुरुषों जैसा रहन-सहन, बात-विचार, कवायद, नौकरी सब कुछ में पूरी-पूरी नकल । अतः लुभाने और ललचाने वाली दलीलें यहाँ निरस्त हो जाती हैं और जो बात उभर कर सामने आती है, वह यह कि पुरुषों की घोषित एकपक्षीय श्रेष्ठता ने ही उन्हें इस तथाकथित उत्कृष्टता की दौड़ में शामिल होने के लिए बाधित किया । यह ठीक है कि दोनों के बीच इन दिनों विभेद की दीवार मिटनी चाहिए, पर साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि दोनों का स्वतन्त्र विकास अपने-अपने क्षेत्र में हो । पुरुष, पुरुष होने का बड़प्पन न पाले और स्त्री, नारी होने की कुण्ठा से मुक्त हो । यह समझा जाय कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और अपने-अपने वर्ग में महत्त्वपूर्ण हैं । न कोई बड़ा है, न छोटा वरन् उन भूमिकाओं में उनकी अपनी गरिमा है । इसी अवधारणा के कारण प्राचीन समय में दोनों ही पक्ष अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचे थे । आगे भी समाज का विकास इसी मान्यता के आधार पर हो सकेगा और इसी आधार पर पारस्परिक असमानता भी मिट सकेगी । यही वह आधारशिला है, जिसमें नारी के नर बनने की आकांक्षा समाप्त होने की आशा की जा सकती है । वस्तुतः इस इच्छा के पीछे एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक कारण है । जब किसी से यह कहा जाता है कि अमुक वस्तु को खोलना मत, देखना मत, तो उसकी जिज्ञासा उसे जान लेने के लिए प्रबल हो उठती है । जिस व्यक्ति के बारे में यह कहा जाता है, कि उससे दूर रहना, वह ठीक व्यक्ति नहीं, तो उसके सम्बन्ध में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए मन व्यग्र हो उठता है और आदमी उस व्यक्ति एवं वस्तु के प्रति अपेक्षाकृत अधिक सजग हो उठता है । यदि उनके बारे में ऐसी बातें नहीं बताई जातीं

सम्भव है, यह उनके प्रति सामान्य बना रहता और साधारण व्यक्ति व वस्तु की तरह ही उनके साथ भी बर्ताव करता, पर निषेध का बन्धन लगते ही वह उसे तोड़ने की कोशिश करने लगता है ।

पिछले दिनों नारियों के साथ य ी हुआ उसे जितना दबाया-दबोचा गया, पराधीन रखा गया, वह उतनी ही इन बन्धनों को तोड़ने के लिए अब छटपटा रही है। यह पुरुष मानसिकता मध्यकाल.में न अपनी होती, तो शायद आज पुरुष बन जाने की प्रवृत्ति नारियों में न देखी जाती । पुरुष जैसा खेल, कसरत, ट्रेनिंग सब कुछ तो आज नारियों को नर जैसे मिल रहे हैं, पर ऐसा करते समय हम एक बात को भूल जाते हैं कि व्यक्तित्व निर्माण सम्बन्धी सामग्री दोनों की एक ही प्रकार की नहीं हो सकती । प्राचीनकाल के हमारे ऋषि इतने विवेकी थे कि पुरुषों के लिए उन्होंने व्यायाम की उपयोगिता बतायी, तो स्त्रियों के लिए नृत्य खोजा । नृत्य में एक लयात्मकता है, जो उसकी शरीर प्रणाली को, रस-रक्त को एक भिन्न प्रकार की गतिमयता प्रदान करता है । कवायद का उद्देश्य इससे अलग है ।

शरीरशास्त्री जानते हैं कि दोनों के शरीरों की बनावट में कितना विशाल अन्तर है । न. की अपनी मौलिकता है और नारी की अपनी । नर बनने की कोशिश में उसकी यह मौलिकता भंग होती है, परिणाम यह होता है कि न तो वह पूर्णतः नारी रह पाती है, न विशुद्ध नर बन पाती है । एक बीच की स्थिति पैदा हो जाती । यही भयावह है । हारमोन सम्बन्धी गड़बड़ी के कारण अलग ही स्थिति बनने लगती है । यह ठीक है कि बाह्य लक्षणों की दृष्टि से वह न.. ही बनी रहती है, किन्तु पुरुष बनने की प्रक्रिया और प्रतिस्पर्द्धा में वह उन बुनियादी तत्वों को खोती चली जाती है, जो नारी को नारीत्व प्रदान करते हैं । यह खतरनाक स्थिति है । एक प्रकार का हाइब्रिडाइजेशन है-संकर बनने की प्रक्रिया है । यह प्रक्रिया यदि जारी रही, तो फिर इक्कीसवी सदी-नारी सदी न बनकर अर्द्धनारी सदी या यों कहना चाहिए कि अर्द्धपुरुष सदी बन कर रह जाएगी । फिर अब और तब के समाज में न्यूनाधिक अन्तर के अतिरिक्त कोई बहुत बड़ा फर्क होगा ऐसा नहीं कहा जा सकता । इसलिए उचित यही है कि नारी को विशुद्ध नारी रहने दिया जाय ।

सी० एम० जोड ने अपने संस्मरण में एक विलक्षण बात कही है । उन्होंने कहा है कि जब वह पैदा हुए थे-बालक थे, तो उनके देश में घर थे, पर अब जब बूढ़े होकर मर रहे हैं, तो घर की जगह मकान शेष रह गये हैं । वे कहते हैं कि घर और मकान में यदि कोई अन्तर है, तो वह अन्तर पूरी तरह नारी के ऊपर निर्भर है । नारी में यह सामर्थ्य है कि वह किसी मकान को घर में परिवर्तित कर दे, पर यदि स्त्री नर जैसी हो जाती है, तो घर में मात्र मकान बच जाता है, घर विनिर्मित ही नहीं हो पाता । साथ रहने वाले दो सदस्य होते हैं, पर वे पति-पत्नी नहीं होते । बच्चे जन्म लेते हैं, पर सम्बन्ध नारी और बच्चे का होता है । माँ-बेटे का तादात्म्य कभी पनप ही नहीं पाता । ऐसा इसलिए कि जो स्त्री माँ बन सकती थी, परिवार को स्नेह-सूत्र में बाँध सकती थी, वह तो विकसित हुई नहीं, उसकी जगह पुरुष प्रधान नारी बन गई । यहीं गड़बड़ी हुई ।

शायद यह प्रतिद्वन्द्विता अभी समाप्त हुई नहीं है । पोशाक को ही लें, तो देखेंगे कि उसमें भी अब यह होड़ चल रही है । लड़कियाँ पुरुषों जैसे चुस्त ड्रेस पहनने लगी हैं । यहाँ फिर एक बार गलती हो रही है । वास्तव में चुस्त कपड़े लड़ने की प्रवृत्ति पैदा करते हैं, जबकि ढीले वस्त्र शान्त रहने के लिए, शालीन बने रहने के लिए, मौन रहने के लिए प्रेरित करते हैं । इसलिए पौर्वात्य देशों में ढीले कपड़े पहनने का प्रचलन रहा है, जबकि पाश्चात्य लोग कसे वस्त्र पहनते रहे हैं । इतना ही नहीं संसार में धार्मिक लोगों के किसी भी पन्थ में अब तक चुस्त कपड़े नहीं पहने गये । यह अकारण नहीं था । ढीले लिबास व्यक्तित्व को एक शिथिलता और शान्ति प्रदान करते हैं, जबकि कसे कपड़े स्फूर्ति देते हैं । सैनिकों को इसलिए चुस्त कपड़े पहनाये जाते हैं, ताकि चुस्ती और मुस्तैदी पूर्वक शत्रुओं की हर चाल को असफल कर सकें ।

यहाँ किसी एकाधिकार की चर्चा नहीं की जा रही है । कहा मात्र इतना जा रहा है कि हम जो कुछ भी खाते-पीते, पहनते, ओढ़ते हैं, उनका शरीर, मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है । बाद में यही प्रभाव व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाता है । इसलिए इस सम्बन्ध में सदा सतर्क रहने की आवश्यकता है कि हम क्या कुछ कर रहे हैं एवं कैसा आचरण-आच्छादन शरीर के लिए अपना रहे हैं । यह सब कुछ मनुष्य को प्रभावित करते हैं । इस सन्दर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह है कि परिवार को विशृंखलित न होने देने में महिलाएँ यदि अग्रणी भूमिका निभा पाती हैं, तो इसका एकमात्र कारण उसकी विशिष्ट मानसिक संरचना ही है । पुरुषों में चूँकि इसका अभाव होता है, फलस्वरूप न तो वे बिखराव को रोक पाते हैं और न सद्भावनापूर्ण स्वर्गीय वातावरण बनाये रख सकने में ही सफल होते हैं । उसकी उस असफलता के लिए जिम्मेदार उसकी मानसिक बनावट ही है, जो महिलाओं की स्थिति में कुछ तो प्रकृति प्रदत्त होती है और शेष भाग का निर्माण उसकी दैनिक गतिविधियों और रहन-सहन पर निर्भर है । परिधान की भी उसमें अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका है । तथ्य के विपरीत यदि वे प्रकृति विरुद्ध क्रिया प्रणाली अपनाने लगें, तो सम्भव है, उक्त व्यवस्था में व्यापात पैदा हो जाय और संरचना के बदलने से शान्ति नष्ट होने लगे । पश्चिम में इसी कारण परिवार टूटते चले जा रहे हैं । भारत में टूटने की गति धीमी है । इसके पीछे आर्थिक कारण उतने ही नहीं, जितनी नकल की प्रवृत्ति और पुरुष मानसिकता में स्त्रियों का ढलते जाना है ।

इतना सब जान-समझ लेने के उपरान्त अब इस बात का आग्रह करने जैसा कुछ शेष रह नहीं जाता कि नारी

को पुरुष जैसा नहीं बन जाना चाहिए । काल-चक्र अब इसके विपरीत घूमने जा रहा है, जिसमें समाज को मातृसत्ता के नेतृत्व की आवश्यकता पड़ेगी । हमें इसी दिशा में सोचना और स्वयं को गढ़ना चाहिए, तभी 'इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य' का सपना साकार हो सकेगा ।

नर और नारी की अविच्छिन्न एकता

नर और नारी के दो भागों में विभक्त मनुष्य जाति वस्तुतः एक ही वृक्ष की दो शाखाएँ हैं । एक ही शरीर में दो हाथ, दो पैर, दो कान, दो नेत्र, दो फेफड़े, दो गुर्दे होते हैं । उनके स्तर में कोई अन्तर नहीं होता । दोनों परस्पर मिल-जुलकर काम करते हैं । परस्पर पूरक बनकर एक दूसरे की सहायता के बीच एकात्मकता का परिचय देते हैं । दोनों के मध्य अविच्छिन्न सहयोग पाया जाता है । यही बात नर और नारी के सम्बन्ध में भी है । दोनों के मध्य जब, जहाँ, जितना सहकार रहा है वहाँ उतनी ही सफलता, सुविधा और प्रगति का वातावरण बना है । विभिन्नता उत्पन्न होने पर तो दोनों ही पक्ष घाटे में रहते हैं ।

एकता-एकात्मकता के लिए उस मनःस्थिति की आवश्यकता है जिसमें सहयोग पनपता है । इसमें निमित्त कारण है सद्भाव सम्पन्न सहकारिता का । उसके लिए सर्वाधिक आवश्यकता है, एक-दूसरे द्वारा समान रूप से सहयोग और सम्मान प्रदर्शित किया जाना । इस दृष्टि से दोनों एक दूसरे से आगे रहने की सहज प्रतिद्वन्द्विता करें कि किसने अपने साथी के प्रति कितना अधिक सम्मान प्रदान किया है । इसके लिए आवश्यक है कि दोनों पक्ष अपने को छोटा और दूसरे को बड़ा समझें । अपने लिए कम रखने और दूसरे के लिए अधिक देने की बात सोचें । जहाँ इस निर्वाह में कटौती होती है, व्यतिरेक या व्यवधान पड़ता है, वहाँ वह स्नेह-सौजन्य निभ नहीं पाता, जिसके आधार पर घनिष्टता निभती और भावभरी आत्मीयता उमँगती है ।

गड़बड़ी वहाँ पड़ती है जहाँ अपने को बड़ा और दूसरे को छोटा समझने की अहमन्यता पनपती और उस आधार पर दूसरे का तिरस्कार करती है । यह भूल प्रायः पुरुष वर्ग की ओर से होती रही है । वह अपने को वरिष्ठ और नारी को कनिष्ठ समझता रहा है । कई बार तो उसे पालतू पशुओं अथवा सम्पत्ति की तरह उपभोग किया जाता है और उचित या अनुचित मर्जी पर चलाने के लिए बाधित, प्रताडित तक किया जाता है । इस अहमन्यता के पीछे एक कारण यह हो सकता है कि पुरुष कमाऊ होता है और नारी की शरीर संरचना उसे बच्चों की जिम्मेदारी सँभालने के लिए घर रहने को बाधित करती है । कमाऊ सो श्रेष्ठ, जो व्यवस्थारत सो निकृष्ट । जो शरीर से पुष्ट सो श्रेष्ठ, जो तनिक सा दुर्बल, सो निकृष्ट । यह मान्यता न तो तथ्यपूर्ण है, न नैतिक । स्त्री पतिव्रता और पुरुष स्वेच्छाचार बरते, इसका कोई औचित्य नहीं । इनके पीछे प्रकृति-संरचना या समाज-व्यवस्था की दुहाई देना व्यर्थ है ।

सतयुगी समाज में नर-नारी को समान ही नहीं वरन् नारी को अपेक्षाकृत अधिक सम्मानित किया और वरिष्ठता का स्तर प्रदान किया है । संसार में ऐसे अनेक क्षेत्र अभी भी हैं जहाँ मातृकुल की प्रधानता है और नारी को परिवार तथा अर्थव्यवस्था सँभालने की वरीयता है । पुरुषों को उनका सहयोगी बनकर रहना और अनुशासन में चलना पड़ता है । ऐसी दशा में इसे प्रचलन ही कहना चाहिए जिसमें कहीं नर की, कहीं नारी की प्रमुखता है । वस्तुतः दोनों के मध्य ऐसी कोई विभाजन रेखा नहीं है जिसमें किसी को वरिष्ठ और किसी को कनिष्ठ ठहराया जा सके ।

प्रकृति-संरचना की दृष्टि से भी ऐसी कोई बात नहीं । यदि नर में एक विशेषता अधिक है तो नारी में दूसरी । यह उनकी कार्यपद्धति के अनुरूप अनुदान मिलने की नियति व्यवस्था है । इसके पीछे छोटे या बड़े का, हलके या भारी होने जैसा कोई अन्तर नहीं है ।

साहस, बल, दृढ़ता, पराक्रम में यों पुरुषों को चिरकाल से आगे रहना पड़ा है इसलिए वे विशेषताएँ उनके स्वभाव का अंग बन गयी हैं । पर यह अकाट्य विभाजन नहीं है । अनेक बार नारियों में नर जैसा ही नहीं वरन् उससे भी अधिक साहस-पराक्रम पाया गया है । झाँसी वाली रानी, दुर्गावती, चाँदबीबी, जोन ऑफ आर्क आदि अनेक महिलाओं के ऐसे इतिहास हैं जिन्हें देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि नारी की संरचना में पुरुष की तुलना में दुर्बलता के अधिक अंश पाए जाते हैं । इन दिनों भी अगणित उदाहरण अपने इर्द-गिर्द ही ढूँढे जा सकते हैं जिनमें नारी का पौरुष अपनी प्रौढ़ता का परिचय दे रहा है ।

शरीर-संरचना की दृष्टि से नारी और नर मूलतः एक जैसी विशेषताओं से युक्त हैं । आगे बढ़ने पर ही विभाजन की दिशाधाराएँ कटती हैं । इसमें हेर-फेर भी होता रहता है और हो सकता है । लिंग-परिवर्तन की ऐसी घटनाएँ अब अस्पतालों द्वारा अधिक संख्या में सामने आती रहती हैं जिनमें एक ही शरीर में दोनों प्रकार की विशेषताएँ पायी गयीं । फलतः एक को समाप्त करके दूसरे को उभारा गया । जब इस प्रकार के ऑपरेशनों की सुविधा नहीं थी तब कितने ही व्यक्ति उभयलिंगी शरीर रचना के बीच रहकर ही अपना काम चलाते थे । अभी भी ऐसे प्रमाण जहाँ-तहाँ मिलते रहते हैं कि लिंग एक प्रकार का और स्वभाव दूसरे प्रकार का । कई बार तो ऐसी संरचना पायी जाती है जिसे अविच्छिन्न ही समझा जा सकता है और जिसे शल्य-क्रिया द्वारा भी बदल सकना सम्भव नहीं है ।

मूल रूप से हर मनुष्य के भीतर नर और नारी की दोनों ही विशेषताएँ पायी जाती हैं । इनमें से एक प्रबल होती

उठती है और दूसरी प्रसुप्त स्थिति में पड़ी रहती है । यदि मान्यता बदली जा सके तो एक लिंग दूसरे में मानसिक दृष्टि से सरलतापूर्वक और शारीरिक दृष्टि से थोड़ी अधिक प्रयत्नशीलता के साथ बदला जा सकता है । नर में नारी की या नारी में नर की विशेषताएँ उभर सकती हैं । एकाध जन्म के अनवरत प्रयत्न से तो अगले जन्मों में यह परिवर्तन निश्चित रूप से हो सकता है ।

उपलब्ध प्रमाणों में ऐसे अगणित हैं जो नर और नारी के बीच प्रचलित अन्तर को अवास्तविक सिद्ध करते हैं और उनमें परिवर्तन हो सकने की सम्भावना को स्पष्ट करते हैं ।

इस सन्दर्भ में कुछ उपलब्ध तथ्य सामने हैं जिन पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि नर-नारी के मध्य इन दिनों जो वरिष्ठता-कनिष्ठता की मान्यता है उसका कोई ठोस आधार या कारण नहीं है । तथ्यतः दोनों एक हैं । एक जैसी सम्भावनाओं से भरे-पूरे हैं । जो प्राकृतिक अन्तर है वह सृष्टिक्रम की प्रजनन-प्रक्रिया को ध्यान में रखकर ही स्रष्टा ने बनाया है, पर इसमें ऐसा कोई अन्तर नहीं है जिससे किसी को किसी से वरिष्ठ या निकृष्ट ठहराया जा सके ।

क्यूबा में जन्मी लाकेता जनेता थी तो महिला पर उनका मन सैनिक जीवनचर्या अपनाने के लिए उद्विग्न रहा । इसके लिए उन्होंने एक सैनिक से विवाह भी किया पर इस प्रयास से भी वे सैनिक न बन सकीं, वरन् मात्र गृहिणी बन गयीं । इस असन्तोष में उसने तलाक ले लिया और मर्दाना वेष बनाकर सेना में भर्ती हो गई । उसका युद्ध-कौशल निखरा । नकली मूँछ लगाकर वह पूरी जवान लगती और साथियों से हर प्रतिद्वन्द्विता में आगे रहती । एक बार उसका पति ही उसकी टोली को ट्रेनिंग देता रहा । इस बीच उसे भी पहचान न हो सकी कि रंगरूटों में एक उसकी पूर्वपत्नी भी है । मुद्दतों वह उसी कार्य में संलग्न रही । भेद तब खुला जब वह एक मोर्चे पर घायल होकर अस्पताल पहुँची और बेहोशी की हालत में उसका ऑपरेशन किया गया ।

सोने की खदानें खोदने वाली केलीफोर्निया की वेल्स फारगो कम्पनी अपने समय में बहुत प्रख्यात थी । अमेरिका भर में उसकी सम्पन्नता की चर्चा चलती रहती । खोदे हुए सोने तथा महत्त्वपूर्ण कार्यकर्त्ता और कागजात लेकर वह तेज घोड़े वाली गाड़ी खदान से दफ्तर तक का लम्बा रास्ता पार करती । सड़क ऊबड़-खाबड़, ढेरों पहाड़ी मोड, घात लगाकर बैठे रहने वाले डाकुओं की भरमार । इन कठिनाइयों के बीच गाड़ी को सरपट दौड़ाकर ले चलना बड़ा जोखिम भरा काम था । कई कोचवान डाकुओं द्वारा मारे गये, कई दुर्घटनाग्रस्त हुए, कई आकर्षक वेतन वाली उस नौकरी को छोड़कर भाग गये । अन्ततः एक कोचवान टिका । उसकी बहादुरी का सभी ने लोहा माना । यों सुरक्षा गार्ड तो गाड़ी में भी चलता था फिर भी दुस्साहसी डाकू गाड़ी को रोकने और पीछा करने से चूकते नहीं थे । नया कोचवान जहाँ गाड़ी को सरपट दौड़ाता जाता वहीं इर्द-गिर्द मँडराते डाकुओं की भी लम्बे हण्टर से चमड़ी उधेड़ देता । अवसर आने पर दूसरे हाथ से निशाना भी साधता और डाकुओं के हौसले पस्त कर देता । युवक कोचवान का नाम था-चार्ली । उसकी निर्भीकता, बहादुरी तथा खुशमिजाजी पर सभी मुग्ध थे । उसे सम्मान भी खूब मिला और वेतन भी भरपूर ।

चार्ली नौकरी पूरी करके रिटायर हुआ तो उसे बहुत पैसा मिला । इस धन से उसने एक बड़ा कृषि फार्म खरीदा और शेष जीवन वहीं रहकर शान्तिपूर्वक बिताया । मरने के उपरान्त अन्त्येष्टि के समय ही लोगों को यह पता चला कि चार्ली नाम से प्रख्यात वह योद्धा नर नहीं वस्तुतः नारी थी, जिसने आजीवन अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाए रखा ।

जेम्स रॉड थी तो महिला पर उसमें नारी सुलभ कोमलता का नाम भी नहीं था। वह मन से मर्द थी और मर्दानगी के साथ ही जीना चाहती थी । उसे नाविक का काम पसन्द आया । वह जोखिम भरा था । उसमें तगड़े और बहादुर प्रकृति के लोग ही भर्ती हो सकते थे । जेम्स रॉड ने अपने असली रूप को छिपाने का लगातार अभ्यास करके प्रवीणता प्राप्त कर ली । उसे प्रकृति ने कद भी ऐसा ही दिया था । पाँच फुट साढ़े नौ इन्च ऊँची तथा १८० पौण्ड भारी होने के कारण १६ वर्ष की उम्र में ही वह परिपक्व लगने लगी और प्रतिद्वन्द्विता मे कितने ही जवानों को हराकर जलयान चलाने वालों में भर्ती हो गई । मर्दानी आवाज, नकली मूँछ-किसी को सन्देह तक न होता था कि वह नारी है । एक बार तो वह कप्तान तक से झगड़ पड़ी और धक्का मारकर उसे औंधे मुँह गिरा दिया । तेज-तर्रार स्वभाव होने के कारण सभी उसका लोहा मानते थे । साथियों में वह अग्रणी गिनी जाती ।

किसी प्रकार भेद खुल गया और चर्चा होने लगी । उसने नौकरी छोड़ दी और नाम बदलकर दूसरे जहाज में नौकरी कर ली । बाद में उसका रहस्य वर्षों तक छुपा ही रहा । ब्रिटेन में इसी प्रकार वेष बदलकर नौसेना के लड़ाकू जहाज पर लम्बी अवधि तक नौकरी करने वाली एक अन्य महिला मैडम कोली हुई हैं । वे भी पूरी अवधि तक नौकरी करके निवृत्त हुईं और किसी को असली भेद का पता न चलने दिया । बात तब प्रकट हुई जब वृद्धावस्था में उसने नाविकों के लिए एक जलपान गृह खोला । तब भी वह अपने वस्त्र मर्दों जैसे ही पहनती रही ।

जर्मनी के प्रसव विशेषज्ञ डॉ० रुडोल्फ ग्रेइत्स ने जब देखा कि उन दिनों इस विषय की प्रवीण महिला डॉक्टर उपलब्ध नहीं है और इस कारण अनेक प्रसूताओं को अपनी जान गँवानी पड़ती है तो उन्होंने महिला डॉक्टर के रूप में एक अपरिचित स्थान में नौकरी कर ली । बहुत समय बाद भेद खुलने पर उसे वह नौकरी छोड़नी पड़ी । तब तक अन्य कुशल चिकित्साएँ तैयार हो चुकी थीं ।

प्राणी की आरम्भिक सत्ता नर या नारी के रूप में पूर्व निर्धारित नहीं होती । वह परिस्थितिवश इस विभाजन में से एक को अपनाती है । भ्रूणावस्था के आरम्भिक दिनों में प्राणी लिंग रहित होता है अथवा उसे उभयलिंगी भी कह सकते हैं । प्रगति के उपरान्त ही वे चिह्न उभरते हैं जिसके आधार पर उसकी अमुक वर्ग में गणना की जा सके । अविकसित प्राणियों में से अनेक उभयलिंगी होते हैं और आवश्यकतानुसार अपना रूप बदलते रहते हैं । किन्तु विकसित प्राणियों में भी यह स्थिति देखी गयी है ।

ऐसे व्यक्तियों में नर-नारी की भिन्नता करने वाले दोनों ही प्रकार के अवयव पाए जाते हैं । जब वे बड़े होने लगते हैं तो दोनों का ही विकास होता है । इनमें से एक प्रधान होता है, दूसरा गौण । पुरातन काल में तो इसमें हेर-फेर करने की गुंजाइश नहीं थी, पर अब यह सम्भव है कि विकसित पक्ष को बढ़ने देने के लिए अविकसित भाग को ऑपरेशन से हटा दिया जाय ।

उभयलिंगी अपवादों के कारण और विवरण प्रस्तुत करते हुए तद्विषयक अनुसन्धानी जेम्स कोलमैन ने एक ग्रन्थ लिखा है–'एबनार्मल सायकोलाजी एण्ड मॉडर्न लाइफ' इसमें जहाँ उदाहरणों का विवरण है वहाँ उनमें से प्रत्येक में पाई जाने वाली एक-दूसरे से भिन्नता का भी उल्लेख है । कोलमैन लिखते हैं कि ऐसे लिंगों में दोनों प्रकार की यौन-भावनाएँ पायी जाती हैं जो अवसर पाने पर इस या उस ओर लुढ़कती रहती हैं ।

फ्रेडरिक ड्रिमर ने उभयलिंगी अपवादों की विशेष विवेचना करते हुए एक पुस्तक लिखी है–'वेरी स्पेशल पीपुल' । उसमें भूतकालीन तथा अर्वाचीन ऐसे उदाहरणों की चर्चा है जिसमें यौन दृष्टि से पायी जाने वाली विलक्षणताओं पर प्रकाश डाला गया है । इस पुस्तक में 'बाकी कार्क' नामक एक व्यक्ति की विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है । उसका आधा शरीर नारी का और आधा पुरुष का था । दोनों ही लक्षण पूर्णतया स्पष्ट तथा सुदृढ़ थे । उसका नाम इसी आधार पर रखा गया था । बाकी (नारी)कार्क (नर) का संयुक्तीकरण होने की बात इस नाम से प्रकट होती है ।

यह व्यक्ति लन्दन के एक कार्निवाल का प्रमुख आकर्षण था । दर्शकों की भीड़ में से अधिकांश उसी को देखने के लिए आते थे । प्रकृति की इस अद्भुत ठिठोली को देखकर सभी आश्चर्यचकित होकर लौटते थे जिन्हें इसमें किसी जालसाजी की आशंका होती थी उनमें सन्देह निवारण के लिए अतिरिक्त फीस देने पर पीछे के कमरे में उसे वस्त्र रहित स्थिति में देखने, यहाँ तक कि छूकर वस्तुस्थिति समझने की भी सुविधा थी । अन्ततः इस सन्देह का निराकरण हो गया था और सभी यह विश्वास करने लगे थे कि वह पौराणिक अर्द्धनारी-नटेश्वर का जीवन्त उदाहरण है ।

न्यूयार्क के डॉक्टर लियोबल मैन ने अपने एक मरीज का आश्चर्यजनक उल्लेख किया है । मैट्रोपोलिटन क्षेत्र के एक ४० वर्षीय गृहस्थ को एक रोग विशेष के लिए स्त्रैण हारमोन इन्जेक्शन दिए गए । उससे रोगमुक्ति के अतिरिक्त एक विशेष परिणाम और देखा गया कि उस व्यक्ति के स्तन उभर आये और उनमें से दूध बहने लगा । इस पर उसने उस दूध को अपनी छोटी बच्ची को पिलाना आरम्भ कर दिया जो तीन मास तक पीती रही । यह हारमोन वह था जो दूध बढ़ाने के लिए प्रायः पशुओं को दिया जाता है ।

फ्रांस में अठाहरवीं सदी के अन्त में एक रेनी बोर्डे नामक महिला हुई है । उसके परिवार के ४२ व्यक्तियों को एक आक्रमणकारी दल द्वारा बेरहमी से कत्ल कर दिया गया । रेनी ने बदला लेने की ठानी । बन्दूक प्राप्त करने और निशाना साधने का अभ्यास करने के लिए पुरुष वेष बनाकर वह सेना में भर्ती हुई । युवावस्था से लेकर बुढ़ापे तक वह अपने को चतुरता के साथ छिपाए रही और किसी को यह पता न चलने दिया कि वह नर नहीं नारी है ।

ये उदाहरण, अनेकानेक वैज्ञानिक प्रमाण बार-बार इस तथ्य को सत्यापित करते हैं कि शरीर संरचना प्रधान नहीं । इस दृष्टि से नर-नारी में भेद किया भी नहीं जाना चाहिए । नारी की मूल थाती उसका स्नेह-सौजन्य से लबालब अन्तःकरण है । अपने को वरिष्ठ न मानकर, यदि परस्पर सहकार का स्वरूप बन पड़े तो समाज में दोनों शक्तियों का सहयोग मिलता रह सकता है ।

अर्द्धनारी-नटेश्वर बनाम उभयलिंगी व्यक्तित्व

एक ग्रीक मिथक है । हर्मेश नामक एक बलवान पुरुष था । उसकी शादी अत्यन्त रूपवती एफ्रोडाइट से हो गयी । कुछ वर्ष पश्चात् उनके एक पुत्र हुआ । जब वह बड़ा हुआ तो माता-पिता का जीता-जागता नमूना था । उसमें पिता के पौरुष और माता के सौन्दर्य का अद्भुत समन्वय हुआ था । चूँकि वह माता-पिता के गुणों को धारण किये हुए था, अतः नाम भी उन्हीं के आधार पर रखा गया । पिता 'हर्मेश' और माता 'एफ्रोडाइट' के एकीकरण से 'हर्माफ्रोडाइट' शब्द बना और इस प्रकार बेटा हर्माफ्रोडाइट के नाम से प्रसिद्ध हुआ । वह इतना आकर्षक था कि सेल्पासिस नामक एक जलपरी उस पर मोहित हो गई । सेल्पासिस ने उससे प्रणय-निवेदन किया, पर हर्माफ्रोडाइट ने उसे अस्वीकार कर दिया । इतने पर भी उसने हार न मानी । तपस्या आरम्भ कर दी । भगवान प्रसन्न हुए, तो वरदान माँगने को कहा । उसने अपनी चिरप्रतीक्षित अभिलाषा प्रकट की, कहा हर्माफ्रोडाइट का

शरीर उसकी देह के साथ संलग्न कर दिया जाय। ऐसा ही हुआ। एक बार जब वह नदी में तैरने के लिए गया, तो उसका शरीर वरदान के प्रभाव में आकर सेल्मासिस से जुड़ गया। इस प्रकार वास्तविक हर्माफ्रोडाइट-बाइसेक्सुअल या द्विलिंगी का जन्म हुआ।

कथा में कितनी सच्चाई है, यह तो नहीं कहा जा सकता, पर शरीरशास्त्री बताते हैं कि निम्न कोटि के जन्तुओं में उभयलिंगी अस्तित्व आम बात है, किन्तु मनुष्य जैसे विकसित प्राणी में यह कुछ अटपटी और आश्चर्यजनक अवश्य लगती है। यों आधुनिक अनुसंधान इस दावे को भी चुनौती देने और कहने लगे हैं कि इसमें असम्भव या असत्य जैसी कोई बात नहीं। इस सन्दर्भ में उन शोधशालाओं का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा, जिन्होंने हाल ही में इस आशय के मन्तव्य प्रकट किये हैं। इनमें से एक है-लंदन की 'ह्वाइट हैड इंस्टीट्यूट' और दूसरी वहीं की 'इम्पीरियल कैंसर रिसर्च फण्ड लेबोरेटरी'। इन संस्थाओं के वैज्ञानिकों में डाण्डेविड पेग तथा पीटर गुडफेलो एवं साथियों ने लम्बे शोध-अनुसंधान के उपरान्त अपने पृथक्-पृथक् शोध-निष्कर्षों के माध्यम से एक ही बात कही है। वे कहते हैं कि एक शरीर में दो भिन्न लिंगों का-उनके बाह्य लक्षणों का साथ-साथ विद्यमान होना शक्य है। इनमें से दोनों लक्षण अपना सन्तुलन-समीकरण बराबर भी रख सकते हैं अथवा ऐसा भी हो सकता है कि नर-नारी के दो गुणों में से एक प्रभावी हो एवं दूसरा अप्रभावी। किसी शरीर में नारी गुण अधिक अंशों में हो सकता है, तो किसी में पुरुषत्व की प्रधानता हो सकती है। यह जाति, समुदाय अथवा क्षेत्र विशेष के आधार पर बदलता रह सकता है। लम्बे अध्ययन के पश्चात् उन्होंने पाया कि अफ्रीका के नीग्रो लोगों में द्विलिंगी नारी प्रधान होते हैं, अर्थात् उनमें स्त्री सुलभ गुण अधिक स्पष्ट व अभिव्यक्त होते हैं, जबकि चीन, भारत, जापान और अमेरिका जैसे देशों में उभयलिंगी पुरुष प्रकृति को ज्यादा अंशों में धारण किये होते हैं, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनमें नारीत्व नहीं होता। उनके अनुसार यह होता तो है, पर अप्रकट अधिक बना रहता है। यही बात जननांगों के सम्बन्ध में भी है। नर-मादा में से जिसकी शरीर में प्रमुखता होती है, वह बाह्य जनन अंग भी अधिक विकसित होता है एवं विपरीत लिंग कम विकसित। प्रजनन सम्बन्ध अंतरांगों में भी यही सिद्धान्त लागू होता है। वृषण तथा अंडकोश एवं ओवरी व गर्भाशय, द्विलिंगियों में समान रूप से पाये जाते हैं। अन्तर इतना ही है कि स्वभाव की स्पष्टता-अस्पष्टता के आधार पर उनमें भी विकास सम्बन्धी व्यतिरेक होता है। शोधकर्मियों ने एक ही शरीर में दो लिंगों के साथ-साथ विकास के लिए जिम्मेदार 'जिंक्र फिंगर' नामक एक नये जीन की खोज भी की है और कहा है कि यह 'बाई' क्रोमोजोम में पाया जाता है।

प्रकट रूप में दो विपरीत लिंगों के एक साथ, एक शरीर में रहने पर भी वह क्या कारण है कि वह अपने को अधिक अभिव्यक्त कर लेता है, जबकि दूसरा गौण बना रहता है? इस विषय का विस्तृत अध्ययन मूर्धन्य मनःशास्त्री जेम्स सी. क्रालमैन ने अपनी चर्चित कृति 'एबनार्मल साइकालॉजी एण्ड मॉडर्न लाइफ'-में प्रस्तुत किया है। जिन कारणों को विज्ञान नहीं ढूँढ़ पाया, उसका जवाब देते हुए ये अपनी उक्त पुस्तक में लिखते हैं कि यह इस बात पर निर्भर करता है कि हर्माफ्रोडाइट का पालन-पोषण किस परिवेश में किन भावों के साथ किया गया है। उनके अनुसार आरम्भ में यदि द्विलिंगी को कन्या रूप में पाला गया, तो बाद में उसी की अभिव्यंजना स्त्रियोचित लक्षणों की प्रबलता के रूप में प्रकट होती है जबकि पुत्र भाव से पालित शिशु में पुरुषत्व ज्यादा अंशों में व्यक्त होता है।

इस प्रकार विज्ञान ने अपने अन्वेषणों के आधार पर यह तो सिद्ध कर दिया कि एक देह में दो परस्पर विरोधी लिंगों व भावों का आविर्भाव सम्भव है, किन्तु 'द्विलिंगी' की समुचित व्याख्या उसने कहीं भी नहीं की, उसकी विवेचना अभी तक अपरिभाषित बनी रही। क्या एक तन में दो विपरीत जननांगों का उदय ही उभयलिंगी अवस्था है? या दो भिन्न भावों के प्रकटीकरण को द्विलिंगी दशा कहते हैं? अथवा दो विरुद्ध सेक्स वाले शरीरों के एक साथ जुड़े हुए होने को? जन्तु विज्ञान की दृष्टि से विचार करें, तो प्रथम तो प्राणिमात्र में यह शब्द सर्वजनीन है नहीं। जन्तु समुदाय के कतिपय जीवधारियों के लिए ही यह प्रयुक्त होता है। दूसरे, वहाँ भी कदाचित् दो अलग मैथुन अंगों की उपस्थिति को ही द्विलिंगी अवस्था मान लिया गया है, किन्तु क्या सचमुच उभयलिंगी अवस्था यही है? नहीं यह अर्द्धसत्य है। विकास सम्बन्धी विकृति के कारण एक ही काया में दो जनन अंगों की विद्यमानता को 'बाइसेक्सुअलिटी' कहकर सम्बोधित किया तो जा सकता है, पर सही अर्थों में उसे ऐसा माना नहीं जा सकता। द्विलिंगी का तात्पर्य है-दो विपरीत लिंग वाले शरीरों का एक साथ पूर्ण विकास; पर उपर्युक्त सन्दर्भों में यह शब्द अपने उक्त भाव को अभिव्यक्त नहीं कर सका है। सच्चाई तो यह है कि सम्पूर्ण प्रकृति में ऐसा कोई जीव अब तक देखा नहीं गया है, जो अपने में दो विरोधी लिंगधारी पूर्ण विकसित शरीरों को धारण किये हुए हो फिर उन्हें उभयलिंगी कैसे माना जाय?

भारतीय दर्शन में अर्द्धनारी नटेश्वर की कल्पना इस रूप में की गयी है, जिसमें शरीर का आधा भाग पुरुष का और शेष हिस्सा पूर्ण विकसित स्त्री का चित्रित किया गया है। यदि इस पर शरीरशास्त्र की दृष्टि से विचार करें, तो हमें निराश ही होना पड़ेगा और शायद यह भी कहना पड़े कि कल्पना करने वाले ने कैसी बेतुकी कल्पना की है, तो आश्चर्य नहीं, क्योंकि निम्न श्रेणी के जीवों में भी ऐसे ही उदाहरण मिलते हैं, जिनमें दोनों जननांग

हों । नर-मादा की पृथक्-पृथक् काया का एक जगह एक शरीर में विकास का तो प्रश्न ही नहीं उठता । फिर जैसे-जैसे निम्न स्तर से उच्चस्तरीय प्राणियों की ओर हम बढ़ते हैं, ऐसे प्रतिमान क्रमशः कम होते जाते हैं और कशेरुकी (वर्टिब्रेट) तक आते-आते तो दोनों सेक्स दो अलग देह में अवस्थित हो जाते हैं । संरचनात्मक त्रुटि के कारण कई बार मनुष्यों में दो पुरुष कलेवर साथ-साथ जुड़े और सामान्य जिंदगी गुजारते तो पाये गये हैं, पर विपरीत सेक्सधारी शरीर आपस में संलग्न कदापि नहीं देखे गये ।

तो क्या अर्द्धनारी नटेश्वर की कल्पना किसी विकृत मस्तिष्क की उपज है ? नहीं, ऐसा मानना भी वस्तुतः उस सत्य को इन्कार करने के समान होगा, जो इसके पीछे तथ्य की तरह छिपा हुआ है । देखा जाय, तो यह दर्शन ही उभयलिंगी का आदि उद्‌गम है । विज्ञान जगत इसकी प्रतिमा में दर्शाये गये आधा नर, आधी नारी देह के अन्वेषण-अनुसंधान में ही उलझकर रह गया । वह इसके पीछे के भाव की उपेक्षा कर ऐसे किसी प्राणी की तलाश में जुटा रहा, जो सचमुच ही ऐसा हो, पर अब तक की गवेषणा में उसे हताश ही रहना पड़ा है, सिवाय दो लिंगों एवं भावों के अतिरिक्त उसे ऐसा कुछ भी हस्तगत नहीं हुआ, जिसे वैज्ञानिक दृष्टि में द्विलिंगी कहा जा सके । इसका एक कारण है । भारतीय धर्म-दर्शन वास्तव में प्रतीकात्मक और आलंकारिक पृष्ठभूमि पर आधारित है । इसमें स्थूल अभिव्यंजना नहीं, भावाभिव्यंजना प्रधान है । यहाँ व्यक्त प्रतीकों के माध्यम से अव्यक्त भावों की अभिव्यक्ति की परम्परा है । अर्द्धनारी नटेश्वर ऐसी ही भावभूमि पर अवलम्बित कल्पना है ।

यदि यहाँ इसका अर्थ ऐसे किसी व्यक्ति से लगाया गया, जो नर-नारी शरीरों के समन्वय से बना हो, तो अनेक विसंगतियाँ और समस्याएँ उठ खड़ी होंगी, जिनका सहज समाधान किसी प्रकार सम्भव न होगा । अतएव यह मानकर चलना ही बुद्धिमानी होगी कि यह किसी प्राणी विशेष का विग्रह नहीं अपितु भाव विशेष का प्रतीक है । वस्तुतः चित्रकार ने एक शरीर में आधा नर, आधी नारी काया बनाकर यह दर्शाने का प्रयास किया है कि व्यक्तित्व में नर-नारी दोनों गुणों के समन्वय से ही समग्र प्रगति सम्भव है । हममें पुरुषोचित साहस, श्रमशीलता, संघर्ष, क्षमता, जीवट जैसी विशिष्टताएँ भी हों और नारी-हृदय की संवदेनशीलता भ, दया, ममता, करुणा, उदारता, नम्रता भी । उपर्युक्त दृष्टि से उभयलिंगी व्यक्तित्व की यही सही तस्वीर हो सकती है, अन्यथा शरीर संरचना की दृष्टि से द्विलिंगी व्यक्ति कौतुकी ही साबित होगा, इसे शरीरशास्त्री भी स्वीकार करते हैं । समाज के हिजड़े और जनखे अपना अलग समुदाय बनाकर रहते हैं एवं शादी-विवाहों में, उत्सव-समारोहों में गाने-बजाने तक ही सीमित होते हैं । उनका इतना ही बड़ा संसार होता है । इससे आगे की बात न तो उनसे सोचते बनती है, न करते, क्योंकि अधिक की सामर्थ्य उनमें होती नहीं । इसके विपरीत यदि हम

अर्द्धनारी नटेश्वर के तत्वदर्शन को समझ सकें तो
वास्तविक अर्थों में हमारा जीवन सफल-समुन्नत हो
सकता है । व्यक्ति यदि "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि
कुसुमादपि" के अनुरूप स्वयं को ढाल सके, तभी
जाना चाहिए कि उसने इस तत्वदर्शन के मर्म को
आत्मसात् किया, अन्यथा नहीं । वृक्ष में कठोरता हो
है, पर उनमें झुकने का माद्दा भी होना चाहिए, नहीं
वह झंझावातों का सामना न कर सकेगा और उखड़
जाएगा । अर्द्धनारी नटेश्वर की मूर्ति इसी को प्रति
प्रतिनिधि है । उसका पुरुष भाग पौरुष अपनाने की प्रेरणा
देती है, जबकि स्त्री हिस्सा नारीत्व धारण करने के लिए
प्रोत्साहित करता है । यह दोनों गुण जिस अनुपात में
रहेंगे, उनका व्यक्तित्व उतना ही संतुलित और सुसंस्कृत
कहलायेगा । सच्चे सन्दर्भ में उभयलिंगी व्यक्तित्व
सकता है । ग्रीक कथा का चरित्रनायक भी इसी का
करता है । शोध-अनुसंधान इसी दिशा में होना चाहिए ।

नर और नारी में अपनी-अपनी विशेषताएँ

नर और नारी के मध्य कई अन्तर पाये जाते हैं ।
में से कहीं कोई पक्ष हल्का पड़ता है, कहीं कोई
इस आधार पर किसी की गरिमा न बढ़ती है न घटती
हर विशेषता अपने-अपने स्थान पर सराही जा सकती है
इसमें हल्केपन का अपना महत्व है और भारीपन
अपना ।

नारी का शरीर कितना ही दुबला क्यों न हो,
चर्बी का अनुपात पुरुष से अधिक होगा । नारी में
से ३५ पौण्ड माँसपेशियों में २८ पौण्ड तक चर्बी पायी
है । जबकि पुरुष की ४१ पौण्ड माँसपेशियों में चर्बी
१८ पौण्ड भर होती है ।

पुरुष का मस्तिष्क ४८ औंस भारी होता है और
का ४४ औंस । फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि
बुद्धिमत्ता की दृष्टि से हलकी पड़ती है । अनेकों नारियों
इस क्षेत्र में अपनी वरीयता ही सिद्ध की है ।

नारी की हड्डियाँ अपेक्षाकृत पतली होती हैं
हल्की भी । किन्तु पैरों के अँगूठे लम्बाई में बड़े होते
अंगुलियों के बीच फासला भी कम होता है ।
चलना तथा दौड़ना भी पुरुषों की तुलना में भिन्न प्रकार
होता है । कारण कि उनके पैरों के जोड़ नितम्बों के
कोणों पर जुड़े रहते हैं ।

पुरुषों की औसत ऊँचाई ५ फुट ८ इन्च होती
जबकि नारी की ५ फुट ५ इन्च । नारी की त्वचा
होती है । रक्त कण भी कम होते हैं । पुरुष के रक्त में
मिलीलीटर ५० लाख कण होते हैं जबकि नारी शरीर
४५ लाख का अनुपात रहता है । इतने पर भी उसकी
अपेक्षाकृत अधिक तेजी से धड़कती है । इसका अर्थ

है रक्त की गति अधिक होना । साँस भी अधिक बार चलती है । इसका अर्थ होता है, फेफड़ों का अधिक सक्रिय होना । यही कारण है कि नारी को अधिक ऑक्सीजन मिलने से उसमें सजीवता अधिक रहती है और फेफड़े अधिक मजबूत होते हैं । जीवनशक्ति उसमें अधिक पायी जाती है । फलत: यह बिना थके अधिक समय तक अपना काम करती रह सकती है ।

पुरुष के ज्ञान तन्तु शरीर के विभिन्न अंगों की अनुभूतियाँ मस्तिष्क तक पहुँचाने का कार्य ५२.५ मीटर प्रति सेकण्ड के हिसाब से करते हैं किन्तु नारी में यह क्षमता अधिक तेजी से सन्देश पहुँचाने की होती है। उसके ज्ञान तन्तुओं की दौड़ ५४.७ मीटर प्रति सेकण्ड है। यही कारण है नारी अधिक सम्वेदनशील होती है। इसे पीड़ा की अनुभूति जल्दी होती है और अधिक भी। इतने पर भी उसमें एक अतिरिक्त विशेषता पायी जाती है, सहन करने की । नारी बिना घबराये–असन्तुलित हुए लम्बे समय तक शारीरिक पीड़ा और मानसिक व्यथा सहन कर सकती है ।

लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा जल्दी बोलने लगती हैं । इसका अर्थ है उनकी मानसिक बनावट में अपने मनोभावों को व्यक्त करने की उत्सुकता और आतुरता अधिक होती है । यह गुण उनमें आदि से अन्त तक बना रहता है । बातूनी में वे सदा पुरुषों से आगे रहती हैं । उसमें प्रसन्न रहने का गुण भी है और स्नेह, सहानुभूति, सेवा का भी । पुरुष इस क्षेत्र में पीछे पाये जाते हैं उन्हें उद्विग्नता, उदासी, खीज के कुचक्र में अधिक समय तक फँसा पाया जाता है जबकि नारी सामान्य या गयी-बीती परिस्थितियों में भी हँसते-हँसाते दिन काट लेती हैं । सामाजिक परिस्थिति में उन्हें अधिक शिक्षा पाने या अधिक अनुभव एकत्रित करने के लिए वैसी सुविधा प्रदान नहीं की जैसी कि आम पुरुष की होती है । फिर भी उनकी व्यवहारकुशलता कहीं अधिक होती है । वे परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठा लेती हैं और वह सोचती और करती हैं जो वर्तमान में सम्भव है । अव्यावहारिक कल्पनाओं की उड़ानें उड़ते उनमें से बहुत कम ही देखी जाती है ।

नारी नर बनने जा रही है

मनुष्य आत्मा है । आत्मा न स्त्री है न पुरुष । वह इच्छा और अभ्यास के अनुरूप अपने कलेवर बदलता रहता है । अभ्यास से अपनी काया सुहाने लगती है । इसलिए स्त्रियाँ प्राय: अगले जन्म में भी स्त्रियाँ होती हैं और पुरुष-पुरुष ।

पर यह अनिवार्य नियम नहीं है । यदि कोई अपनी स्थिति से असन्तुष्ट हो और दूसरे पक्ष की काया में सुविधा समझता है या उसके प्रति अधिक अनुरक्त रहता हो तो भावना के अनुरूप उसका यौन परिवर्तन भी हो सकता है । ऐसा परिवर्तन प्राय: अगले जन्म में होता है पर यदि मन डावाँडोल रहे तो फिर परिवर्तन भी अधूरा रह जाता है और अगले जन्म में ऐसी स्थिति बनती है जिसे मध्यवर्ती या उभयलिंगी कहा जा सके ।

इनमें से कुछ जनखे, हिजड़े स्तर के होते हैं पर कुछ की दोनों प्रकार की जननेन्द्रियाँ होती हैं और वे दोनों पक्षों की क्रियाएँ सम्पन्न करते रह सकते हैं ।

कइयों को इस स्थिति में लज्जा अनुभव होती है और वे एक पक्ष में रहना चाहते हैं । इसका सीधा तरीका यह है कि इस जन्म में अपने प्रियपक्ष का अधिक चिन्तन करें । उसकी उपयोगिता स्वीकारें और रुझान उसी पक्ष में रखें । अगला जन्म आने पर वह अधूरी स्थिति पूर्ण हो जाएगी और इच्छित कलेवर मिल जाएगा ।

पर कई तत्काल की इच्छा उत्सुकता व्यक्त करते हैं और यौन परिवर्तन का ऑपरेशन करा लेते हैं । दोनों में से जो लिंग स्पष्ट या समर्थ हो, उसे रहने देते हैं और दूसरे को हटा देते हैं । पहले यह विषय गोपनीय माना जाता था पर अब वैसा प्रचलन नहीं रहा । अस्तु, लोग अपनी स्थिति स्पष्ट करने में झिझकते नहीं । कितने ही व्यक्ति जैसी भी कुछ अपनी स्थिति है उसे बनाये रहते हैं और प्रकृति का चमत्कार बताकर अपने को आकर्षण का केन्द्र बनाये रहते हैं । ऐसे दोनों पक्षों के चिह्न वाले अब बहुत दिखायी देने लगे हैं । पहले इस तथ्य को छिपाया जाता था । स्त्रियाँ दाढ़ी-मूँछ रोज बनाती रहती थीं और अविवाहित जीवन व्यतीत करती थीं पर अब वैसी जरूरत नहीं समझी जाती । इसलिए द्विलिंगी स्त्री-पुरुष अनेक दीख पड़ते हैं ।

भारत में शिवजी को भी अर्द्धनारी-नटेश्वर कहा जाता है उनका आधा शरीर पुरुष का और आधा स्त्री का है ।

उत्तरी केरोलिना में जन्मी लेड़ी ओल्गा एक रूसी यहूदी की लड़की थी । जन्म से ही उसके चेहरे पर दाढ़ी मूँछ के बाल थे । बड़ी होने पर उसकी दाढ़ी ३५ इंच की हो गई जो उसके पेट को ढक लेती थी उसकी बड़ी-बड़ी मूँछ भी थीं । १९३२ में उसमें एक अद्भुत फिल्म अभिनेत्री की तरह काम किया । इसके धनी होने के कारण एक पुरुष ने उससे विवाह भी कर लिया था । पर वह अधिक समय जीवित न रहा ।

डालकास्का-मिशिगन में सुनहरी दाढ़ी-मूँछों वाली ग्रेस गोलवट सन् १८८० में पैदा हुई । इसकी दाढ़ी ६ इन्च लम्बी थी । इसी क्षेत्र में महिला स्टेला ग्रेगर भी दाढ़ी-मूँछों वाली थी । उसने नर्स का काम किया । सेना में भर्ती हुई और अध्यापिका भी बनी ।

नीदरलैण्ड की शशिका मारग्रेट के भी दाढ़ी-मूँछ थीं । स्वीडन की एक ऐसी ही महिला चार्ल्स सप्तम के जमाने में सेना में थी । स्विट्ज़रलैण्ड की जोड़फिन के चेहरे पर ५ इंच की दाढ़ी थी । उसने कई देशों में अपनी इस प्रकृतिजन्य विशेषता का प्रदर्शन किया और धन कमाया ।

बर्जीनिया की एनीजोन्स १९६५ में जन्मी थी । विवाह उसने भी कर लिया था । शरीर से बहुत हट्ट-पुष्ट थी और तगड़े पुरुष जैसी लगती थी ।

इसी प्रकार यूरोप, अमेरिका के कई देशों में लम्बी दाढ़ी-मूँछों वाली महिलाएँ प्रख्यात हो चुकी हैं । इनमें उनकी गिनती नहीं है जो दिन निकलने से पूर्व अपनी हजामत बनाकर नारी जैसी लगने लगती हैं ।

जार्ज डब्ल्यू लुई के सरकस में एक द्विलिंगी नारी विली क्रिस्टीना थी । उसकी एक ओर की छाती उठी हुई, दूसरी ओर की सपाट थी । उसके दाढ़ी-मूँछ भी निकलती थीं पर वह रोजाना शेव करके अपना स्त्री प्रधान रूप बनाये रहती थी । उसके शरीर में नर और नारी की जननेन्द्रियाँ थीं । पर्दे के पीछे जाकर ५० सेन्ट देने वाला व्यक्ति उसे निवस्त्र करके देख सकता था । जो अतिरिक्त ५० सेन्ट दे वह उसकी इन्द्रियों को छू भी सकता था ।

हैरी लोस्टन के सरकस में काम करने वाली मोना हैरिस यों स्त्री के रूप में प्रख्यात थी । पर उनकी नारी जननेन्द्रिय के साथ पुरुष जननेन्द्रिय भी थी ।

ब्लैकपोल ब्रिटेन में जन्मी मोण्डू भी आधी नारी और आधा नर थी । उसकी दोनों ही जननेन्द्रियाँ सक्रिय थीं ।

अब तक जितने यौन परिवर्तन ऑपरेशन हुए हैं उनमें से अधिकांश ऐसे थे जो नारी से नर बनने जा रहे थे । प्रकृति का नियम है कि जो पक्ष सताया जाता है, असन्तुष्ट या दु:खी रहता है उसको मिटा या घटा देती है । पिछली जनगणनाएँ बताती हैं कि पुरुष बढ़ रहे हैं और स्त्रियाँ घट रही हैं । परिणाम यह होगा कि अगणित पुरुषों को अविवाहित रहना पड़ेगा । स्त्रियों की प्रवृत्ति पुरुष की दासता से मुक्ति पाने की ओर बढ़ रही है । नारी मुक्ति आन्दोलन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

चीन के निगयो स्थान में एक ऐसा प्राचीन मन्दिर है उसमें केवल वे स्त्रियाँ जाती हैं जो अगले जन्म में पुरुष बनना चाहती हैं । इस मन्दिर में महिलाओं की सबसे अधिक भीड़ रहती है ।

हवा का रुख बताता है कि लालच या उत्पीड़न के बन्धनों में बाँधकर नारी को जिस प्रकार सताया और गिराया जा रहा है उसकी प्रतिक्रिया होकर रहेगी । नारी दुर्लभ होती जाएगी । उसके अभाव में लोग उसे देखने तक के लिए तरसेंगे ।

नर और नारी के मध्यवर्ती अनुदान-प्रतिदान

स्त्री के व्यक्तित्व की बनावट ऐसी है कि अपने पति, बच्चे एवं परिवार के साथ घुल-मिल जाती है । पुरुष के लिए इसमें जितनी कठिनाई पड़ती है, स्त्री को उतनी नहीं । इसका अर्थ है, आत्मीयता का विस्तार । जिस घर में बचपन, किशोरावस्था पार कर यौवन की देहली पर पहुँचती है, जिन सहेलियों के साथ खेलती और जिन कुटुम्बियों के साथ इतनी आयु बिताती है, उसे छोड़कर सर्वथा नये परिवार में जा पहुँचना और सर्वथा अपरिचित लोगों को अपना बना लेना, सर्वथा अपने को उनमें घु[illegible] देना, असाधारण बात है । पति का एक दिन का परि[illegible] दूसरे दिन इतनी घनिष्टता में बदल जाना, मानो उन्हीं के साथ पालन-पोषण हुआ हो, वस्तुत: आश्चर्य की बात है । पुरुष को उस सीमा तक इतनी जल्दी जा पहुँचना कठि[illegible] की बात है । आत्मीयता के क्षेत्र में इतनी जल्दी इत[illegible] प्रगति करना पुरुष के लिए कठिन है ।

यदि परिचय न हो और पिछले दिनों से घनिष्ठता [illegible] चल रही हो, तो स्त्री के प्रति पुरुष के मन में कौतूहल, आश्चर्य, अजनबीपन और अविश्वास बना रहता है । [illegible] दूर करने में देर लगती है ।

नारी का निर्माण कुछ ऐसे तत्वों से हुआ है कि [illegible] समर्थ और सुयोग्य होते हुए भी समर्पण कर सकती है । यह समर्पण परावलम्बन नहीं है । बच्चों को वह प्राण[illegible] मानने लगती है । इसका अर्थ यह नहीं, कि वह उन [illegible] आश्रित है या उनसे कोई प्रतिदान प्राप्त करती है । [illegible] बात पति या समूचे परिवार के प्रति है । उसका [illegible] समर्पण इतना बहुमूल्य है कि उसका मूल्यांकन पैसों में नहीं किया जा सकता ।

पति-पत्नी के प्रति जो भोजन, वस्त्र के अनुदान प्रस्तु[illegible] करता है, उसका लेखा-जोखा मजूरी के हिसाब से नहीं लगाया जा सकता । दिन और रात शारीरिक औ[illegible] मानसिक ही नहीं, आत्मिक अनुदानों को प्राप्त कर सक[illegible] कितनी ही बड़ी राशि के बदले नहीं हो सकता । [illegible] कपड़ा तो पति ही देता है । बच्चे क्या देते हैं ? वे तो [illegible] से भी अधिक प्राप्त करते हैं । पूरा परिवार जो स्नेह-सम्मान प्राप्त करता है, उसका कौन आर्थिक मूल्य चुका पाता है । दर्द के समय इतनी कष्टसाध्य सेवा कर सकना किसी वेतनभोगी कर्मचारी से सम्भव नहीं । मान-अपमान का ख्याल न करते हुए एकरस आत्मीयता बनाये रख[illegible] देवता जैसे सौजन्य के लिए ही सम्भव है ।

परिवार से नारी भी कुछ प्राप्त करती है । इसकी आंशिक पूर्ति वह भी करती है । बच्चे उसकी गोदी में बैठकर आँचल की छाया में कलोल करते हुए माता को जो देते हैं, उसका मूल्यांकन धाय के वेतन की तरह नहीं चुकाया जा सकता । प्रणय-क्रीड़ा में पत्नी को जो मिलता है, पति उससे कहीं अधिक पाता है । दाम्पत्य-जीवन में यह विवेक राई-रत्ती के बराबर ही है । हर घड़ी एक अभिन्न साथी की भूमिका पत्नी ही निभा पाती है । ऐसी आशा किसी लाभदायक मित्र से भी नहीं की जा सकती ।

पति अपने स्नेहिल अनुदान जितने गहरे प्रदान करता है, उसकी तुलना में वह पाता कहीं अधिक है । पत्नी एक शोभायमान उद्यान है, जिसे पति सींचता भर है, पर उससे जो पत्र, पल्लव, पुष्प, फल, छाया और प्राणवायु प्र[illegible] करता है, उसकी नापतौल प्रतिपादन के रूप में नहीं की जा सकती ।

जहाँ पुरुष दुर्बल पड़ता है, वहाँ स्त्री की शक्ति प्रक[illegible] होती है । पुरुष बहुत कुछ प्राप्त कर सकता है, पर स[illegible]

सब कुछ दे सकती है । पुरुष के लिए अप्राप्य कुछ भी नहीं और स्त्री के लिए अदेय । पुरुष स्त्री को गिरा कर खड़ा रहता है और स्त्री गिरकर भी पुरुष की रक्षा करती है । यही है दोनों के मध्य सात्विक सहयोग अनुदानों का क्रम ।

न पुरुष वरिष्ठ है, न स्त्री कनिष्ठ

'सर्वखल्विदं ब्रह्म,' 'आत्मैव इदं सर्वं' और 'आत्मवत–सर्वभूतेषु' के उच्च दार्शनिक सिद्धान्तों का जिस देश में प्रणयन हुआ हो उसी देश में योग्यता, क्षमता और अधिकार की दृष्टि से पुरुष को वरिष्ठ तथा स्त्री को हेय समझा जाय, यह एक विचित्र विरोधाभास ही है । यह मान्यता किसी भी काल में जन्मी और किन्हीं कारणों से प्रचलन में आयी हो, न सच कही जा सकती है और न उचित ही । रूढ़िवादी विचारों के कुछ विद्वानों ने तो स्त्री को पुरुष का शत्रु बताते हुए यहाँ तक कह दिया है कि नारी आग है और पुरुष घी, दोनों का मेल-मिलाप या सान्निध्य पुरुष के लिए हानिकारक ही सिद्ध होता है ।

स्त्री से दूर रहने की, उससे बचने की प्रेरणा अध्यात्म क्षेत्र में सम्भवतः इसलिए दी जाती रही है कि पुरुष ब्रह्मचर्य का महत्त्व समझे और अपनी शक्तियों का क्षरण कामुकता की दिशा में न करते हुए उच्च आध्यात्मिक प्रयोजनों के लिए करे । लेकिन इस तथ्य को भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि कामुकता का सम्बन्ध मन से है । काम का नाम मनसिज भी कहा गया है । इसलिए मात्र स्त्री से दूर रहने पर ही वह प्रयोजन सिद्ध नहीं हो जाता । उससे दूर रहकर या दबाकर या त्याज्य समझ कर चाहे जितना ही बच कर रहा जाय, मन में कामुक विचार उठते रह सकते हैं ।

यह तो आध्यात्मिक क्षेत्र की बात हुई पर समाज में स्त्री को इस कारण दूसरे दर्जे का स्थान नहीं दिया। अहंवादी पुरुष ने स्त्री की शरीर आकृति और स्वभाव में प्रकृति अन्य कतिपय भिन्नताओं के कारण उसे पद-दलित किया । स्त्री और पुरुष की शरीर रचना में जो अन्तर है, उसे न तो समाप्त किया जा सकता है और न ही किसी प्रकार उसमें कोई परिवर्तन या हेर-फेर किया जा सकता है । क्योंकि प्रकृति ने यह अन्तर एक विशेष उद्देश्य से रखा है, उस उद्देश्य का नर और नारी में भेद करने से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

भारतीय मनीषियों की दृष्टि में नर और नारी दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं तथा अपने आप में अधूरे हैं । दोनों के मिलने से व्यक्तित्व की, समाज की एक पूर्ण इकाई बनती है । इसलिए दोनों में छोटे-बड़े का भेद करना उसी प्रकार अनुचित है, जिस प्रकार कि एक हाथ को बड़ा मानना और दूसरे को छोटा समझना । एक आँख, एक कान, एक पैर, आधा धड जिस प्रकार दूसरे पैर और दूसरे कान और शेष धड़ से किसी भी प्रकार छोटा नहीं है और नहीं बड़ा है, उसी प्रकार नर और नारी में भी कोई छोटा, बड़ा नहीं है । न समझना ही चाहिए । शरीर का आधा अंग यदि लकवाग्रस्त स्थिति में पड़ जाय, तो पूरा शरीर ही चलने-फिरने में अक्षम हो जाता है । एक पैर टूट जाय, एक हाथ कट जाय, एक आँख फूट जाय तो शरीर कितना कुरूप और भद्दा लगने लगता है यह कहने–बताने की आवश्यकता नहीं । इसके अलावा शरीर से सामान्य काम-काज भी ठीक ढंग से सम्पन्न नहीं किये जा सकेंगे । यही स्थिति परिवार या समाज की उस दशा में होती है जब नारी और नर में छोटे-बड़े का भेद किया जाय ।

स्रष्टा की इस सृष्टि में नर और नारी के लिए भेद जैसी कोई बात ही नहीं है । विश्व के प्राचीन दार्शनिकों से लेकर वैज्ञानिकों तक ने इस तथ्य को स्वीकार किया है । मनुस्मृति में कहा गया है कि–

> द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
> अर्धेन नारी तस्यां च विराजमसृजत्प्रभुः ॥१।३२

अर्थात् "विधाता ने अपनी देह को विभक्त करके उस के आधे अंश से पुरुष और आधे से स्त्री के शरीर का निर्माण किया ।"

प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक प्लेटो कहा करते थे कि "स्त्री और पुरुष आरम्भ में एक ही व्यक्तित्व में समाये हुए थे किन्तु देवताओं ने कुपित होकर, उन्हें अलग कर दिया । तब से ये दोनों एक-दूसरे के साथ रहने और परस्पर घुल मिलकर एक होने के लिए सदैव लालयित रहते हैं । "

भगवान शंकर का एक नाम अर्द्धनारीश्वर भी है । उनका आधा भाग उमा का और आधा महेश का माना जाता है । भगवान कृष्ण को भी आधे शरीर से राधा और आधे को कृष्ण का समन्वय बताया जाता है । इस प्रकार शास्त्रीय अथवा आध्यात्मिक प्रतिपादनों की दृष्टि से नर और नारी में किसी को भी छोटा या बड़ा नहीं बताया गया है, प्रत्युत दोनों को एक ही इकाई के आधे-आधे अंग समझा गया है ।

नर-नारी चूँकि एक-दूसरे के पूरक हैं । इसलिए दोनों का परस्पर सहयोग आवश्यक भी है और वांछनीय भी । इस आधार पर किसी की छोटाई-बड़ाई सिद्ध नहीं की जा सकती है लेकिन नारी को छोटा और कनिष्ठ सिद्ध करने के लिए जो तर्क दिये जाते हैं वे ओछे होने के साथ-साथ अयुक्तिसंगत भी हैं । उदाहरण के लिए कहा जाता है कि नारी को सन्तानोत्पादन करना पड़ता है, इसलिए वह बलिष्ठता की दृष्टि से स्वभावतः हल्की पड़ेगी । चूँकि पुरुष शारीरिक दृष्टि से अपेक्षाकृत परिपुष्ट होता है और धन उपार्जन करता है, इसलिए वह बड़ा है । उसे बाहरी काम सम्हालने पड़ते हैं, प्रतिस्पर्द्धा और संघर्ष उसके जीवन में कदम-कदम पर विद्यमान है । इसलिए उसका स्थान स्वाभाविक ही ऊँचा हो जाता है ।

काम विभाजन की दृष्टि से देखा जाय तो पुरुष के काम को गुरुतर समझना दम्भपूर्ण ही होगा । पुरुष को

यदि बाहरी क्षेत्र में काम करना पड़ता है तो नारी को गृह व्यवस्था का आन्तरिक क्षेत्र । दोनों ही काम गुरुता और दायित्व की दृष्टि से समान ही हैं । शिशुपालन एवं गृह-व्यवस्था के दोनों उत्तरदायित्व ही इतने बड़े हैं कि रात दिन उस काम में दत्तचित्त लगे रहने पर ही उन्हें ठीक तरह सम्हाला जा सकता है । आमतौर पर गृहिणियाँ इन कामों में २४ घंटे लगी रहती हैं, तभी पुरुष को बाह्य क्षेत्र में काम करने का समय व सुविधा मिल पाती है । इसके अतिरिक्त बारीकी से देखा जाय तो भावनात्मक कोमलता, सरसता, गृह-व्यवस्था और शिशु-निर्माण का कार्य इतना बड़ा है कि उपार्जन की क्षमता और बलिष्ठता को उस पर सौ-सौ बार न्यौछावर किया जा सकता है ।

'परमात्मा' ने नर और नारी को दो भिन्न इकाइयों में इसलिए उत्पन्न किया कि दोनों स्नेह, सहयोग और सामंजस्य के आधार पर एक-दूसरे के पूरक बन सकें । यह ढंग मनुष्य में ही नहीं, अन्य जीवों और सृष्टिगत पदार्थों में भी विद्यमान है । यहाँ प्रत्येक वस्तु में दोनों भाव पाये जाते हैं ।

सृष्टिजगत में कई प्राणी ऐसे भी होते हैं जिनमें आधी देह स्त्री के लक्षणों से युक्त होती है और आधी में पुरुष के लक्षण विद्यमान रहते हैं । केंचुए आदि निम्न जीव इसी श्रेणी के होते हैं, वे न नर होते हैं और न नारी । इससे भी नीचे श्रेणी में अमैथुनी प्रजनन का काम चलता है । अमीबा, बैक्टीरिया आदि इसी क्रम में आते हैं । वे अपने शरीर को विखंडित करके नई पीढ़ियाँ उत्पन्न करते रहते हैं । आरम्भ में सृष्टिक्रम अमैथुनी प्रजनन के रूप में ही आरम्भ हुआ । यह सिद्ध हो चुका है । तर्कशास्त्र की प्रसिद्ध पुस्तक 'न्याय कुसमाञ्जलि' में भी इस तथ्य का उल्लेख आता है ।

यह विवरण इसलिए दिये गये हैं कि नर और नारी का पारस्परिक सहयोग हर दृष्टि से उपयोगी है । किसी पर किसी का दबाव और आतंक के कारण बंधन बाँधना तथा भय और विवशता के कारण उसे स्वीकार करने का कोई कारण नहीं है । यह नहीं सोचना चाहिए कि किसी का काम किसी के बिना रुक जाएगा । तथ्य तो यह बताते हैं कि सन्तानोत्पादन की दृष्टि से नर और नारी कभी स्वावलम्बी थे । आधुनिक विज्ञान ने तो इस तथाकथित विवशता को छिन्नमूल ही कर दिया है । अस्तु किसी के भी छोटा या बड़ा बनने अथवा मानने का कोई औचित्य नहीं है ।

अध्यात्म तत्वदर्शन के अनुसार तो आत्मा एक समान ही अपने को नर या नारी के कलेवर में लपेटती है । यदि वह कामना करे तो अगले जन्म में अपना लिंग परिवर्तन कर सकती है । यह तथ्य बताते हैं कि प्रत्येक मनुष्य चाहे नर हो या नारी हर दृष्टि से स्वावलम्बी और परिपूर्ण है । इसलिए किसी को छोटा या बड़ा समझने अथवा पराश्रित या परावलम्बी मानने की दृष्टि ओछी और अमानवीय ही है । दोनों में से कोई छोटा बड़ा नहीं है, अपितु दोनों ही समान स्तर और समान स्थिति के अभिन्न साथी पूरक अंग बनकर ही स्वयं को उन्नत तथा समाज को शक्तिशाली बना सकते हैं ।

नारी को साथ लिए बिना प्रगति असम्भव

कोई भी स्थिति या अवस्था प्रत्यक्ष लाभदायक एवं उपयोगी सिद्ध होती हो और यह आसानी से बिना कुछ अधिक श्रम किये लायी जा सके, फिर भी उस ओर ध्यान न दिया जाता हो तो सबसे बड़ी मूर्खता होगी । उदाहरण के लिए घर में बने हुए शान्त और अच्छे वातावरण को केवल इस हठ के कारण नष्ट-भ्रष्ट किया जाय कि इससे घर वालों पर अपना रौब जमेगा तो यह अमृत में विष घोलने जैसी कुचेष्टा ही होगी । केवल रौब जमाने के लिए ठीक तरह से काम कर रहे घर के सदस्यों को तंग करना और वहाँ की शान्ति नष्ट करना–उद्दण्डता ही नहीं, व्यक्ति की विक्षिप्तता का भी परिचायक होगा । सब लोग इस तरह के विक्षिप्त न हों, पर नारी की जो स्थिति है, उसकी दयनीय और दुर्भाग्यपूर्ण दुर्दशा है, उसके कारणों पर विचार किया जाय तो उसका पुरुषों पर इस तरह की कलंक कालिमा पुती हुई है ।

नारी की वर्तमान स्थिति दयनीय और दुर्भाग्यपूर्ण है, इसमें कोई दोराय नहीं है । दयनीय तो इसलिए कि उसे मनुष्योचित अधिकारों से वंचित कर दिया गया है । पशुओं की तरह उसके गले में जंजीर, पाँवों में बेड़ियाँ और चार-दीवारी में कैद रहने के प्रतिबन्ध हैं और दुर्भाग्य इसलिए कि सब तरह से उस पर लगे प्रतिबन्धों का अनौचित्य सिद्ध होने के बाद भी उन्हें स्वाभाविक ही समझा जा रहा है । सब जानते हैं कि नारी–योग्यता, प्रतिभा क्षमता और सामर्थ्य से पुरुष से किसी भी तरह उन्नीस नहीं है, फिर भी उसे घर तक ही सीमित रहने, बच्चे पैदा करने और घर की रखवाली करने भर के लिए उपयोगी समझा जाता है । इतिहास, घटनाओं और विचारों से भी उसकी क्षमताओं का परिचय मिलने के बावजूद भी उसे न जाने क्यों विकसित नहीं होने दिया जाता ? प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता है कि नारी उसकी सहयोगी बनने के स्थान पर उसके लिए एक अनचाहा और उबाऊ बोझ ही सिद्ध होती है । पूछा जाना चाहिए कि सहयोगी को बोझ बना लेने के लिए जिम्मेदार कौन है ? प्रायः लोग रटा-रटाया उत्तर देते हैं कि यह हमेशा से चला आ रहा है ।

पहली बात तो यह कि इस तरह के उत्तर में अपनी कमजोरियों को ही ढोया जाता है अन्यथा प्राचीनकाल में यह स्थिति और परम्परा कदापि नहीं चली आ रही है । मान भी लें तो परम्परागत रूप में नारी का दर्शन इसी रूप में होता तो भी क्या हम प्राचीनकाल की सभी बातों को इसी कारण चलते रहने दे रहे हैं कि वे पुरानी हैं । समाज-आश्रम-धर्म, संस्कार, यज्ञ, कर्मकाण्ड दान, समाज-व्यवस्था आदि के प्राचीन रूप अब लुप्त होते जा रहे हैं और लोग इसी में प्रगति का गौरव मानते हैं । प्राचीन होने की बात यहाँ तो आड़े नहीं आती, फिर नारी के सम्बन्ध में ही उसकी दुहाई क्यों दी जाने लगती है ?

विवेक की दृष्टि से विचारपूर्वक देखा जाय तो असलियत कुछ और ही सामने आती है और सिद्ध होता है कि इस अति महत्त्वपूर्ण विषय को प्रत्येक वर्ग किसी न किसी स्वार्थ के कारण उपेक्षित किये हुए है । उनमें सबसे बड़ा अहंकार है–पुरुष का अहंकार । यह तो सभी मानते हैं कि विचारशीलता जहाँ भी उत्पन्न होगी और विकास के चरण जहाँ भी बढ़ेंगे, वहीं उचित को मानने और अनुचित को इन्कार करने की बात भी उत्पन्न होगी । नारी चूँकि अविकसित है, इसलिए वह पुरुष की हर उचित-अनुचित बात को मान लेती है और इससे पुरुष का अहं तुष्ट होता चलता है । नारी यदि विकसित हो तो पुरुष का अहंकार उसकी हर बात ज्यों की त्यों स्वीकार न करने के रूप में आहत हो सकता है और इस छोटी-सी बात के लिए पुरुष वर्ग नारी को अविकसित ही देखना अधिक पसन्द करता है ।

दीखने में यह बात भले ही छोटी-सी लगती हो, पर अहंकार की भावना इतनी प्रबल और दुष्ट है कि वह बड़ी से बड़ी हानि की भी परवाह नहीं करती । रावण और कंस जैसे दैत्यों से लेकर चंगेजखाँ, मुहम्मद गौरी और हिटलर तक इतिहास के कलंकित व्यक्तियों ने केवल अहंकार के वशीभूत होकर बड़े-बड़े अत्याचार किये और उत्पात मचाये । इनका अहंकार विवेक को पूरी तरह समाप्त कर चुका था, पर सामान्य-जन तो अहंकार की अपेक्षा लाभ और उपयोगिता के पक्ष को महत्त्व देते हैं । यदि विचार पूर्वक सोचें तो निश्चय ही उन्हें अपनी रीति-नीति में परिवर्तन करना पड़ेगा ।

व्यक्तियों से ही वर्ग और समाज बनता है । पर जब समूह की दृष्टि से देखा जाय तो वहाँ अहंकार के अतिरिक्त स्वार्थ भी कारण रूप में विद्यमान मिलेगा । उदाहरण के लिए कलाकार इस स्वार्थ के कारण स्थिति को यथावत् बनाये रखना चाहता है कि उसे नारी को अश्लील और भद्दे रूप में उभार कर व्यावसायिक लाभ कमाने की छूट मिले । लेखक, चित्रकार, मूर्ति-शिल्प, गायक और अभिनेता आदि सभी इस वर्ग में आ जाते हैं, जो नारी के शरीर को खिलौना बनाकर पेश करने में अपना लाभ देखते हैं और दोनों हाथों से धन बटोरने की सम्भावना भी । व्यापारियों को अपनी वस्तुओं के प्रचार का सस्ता उपाय मिल जाता है और अर्द्ध-नग्न देह के चित्रों सहित प्रचारित की जाने वाली वस्तुएँ लोगों का ध्यान भी आकर्षित करती है । समाज इसलिए चुप रहता है कि लोगों में असन्तोष की भावनाएँ वैसे ही बढ़ रही हैं, नारियों में जाग्रति आयी तो वे भी अपनी स्थिति से असन्तुष्ट हो उठेंगी । यहाँ तक कि स्वयं नारियाँ भी इसी स्थिति में अपना भला देखती हैं । वे समझती हैं पिंजड़े में बन्द ही सही, पर निश्चिन्त तो रहती हैं । सारी जिम्मेदारियाँ, सारे उत्तरदायित्व और सभी बाहरी कार्य पुरुष निबटा लेता है । स्वयं की शमशान शान्ति को क्यों भंग किया जाय और क्यों मुक्ति व जागरण की गुहार मचायी जाय ?

जो भी हो, समाज का हर वर्ग चाहे पुरुष हो, चाहे स्त्री, चाहे व्यापारी हो, चाहे नौकर-पेशा, चाहे लेखक हो, चाहे चित्रकार इस विडम्बना को यथावत् चलने देने में ही अपना स्वार्थ अनुभव करते हैं या अपने अहं की तुष्टि पाते हैं । और केवल 'अहं' को तुष्ट करने के लिए यह स्थिति बदली जानी चाहिए तथा नारी की क्षमता और शक्ति का उपयोग समाज को आगे बढ़ाने में करना चाहिए ।

कहा जाता है कि नारी का प्रधान कार्यक्षेत्र घर और पुरुष का बाहर है । पर यह कोई 'लक्ष्मण-रेखा' नहीं है । न ही इसमें नारी को बन्धनों से जकड़ने की गुंजाइश । सुविधा और व्यवस्था की दृष्टि से ही यह कार्यक्षेत्र का विभाजन किया गया है । आवश्यकता पड़ने पर पुरुष भी घर का काम कर सकते हैं और स्त्रियाँ भी आजीविका उपार्जन में लग सकती हैं लेकिन दोनों ही वर्गों के लिए एक-दूसरे के काम में हाथ बँटाना, अशोभनीय और लज्जा जनक सा समझा जाता है । घरेलू नौकर के रूप में भोजन बनाने, बर्तन साफ करने तथा बच्चों को खिलाने वाले पुरुषों की बात जाने भी दें तो भी सामान्य व्यक्ति पत्नी की हारी-बीमारी में घर का काम करना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं । बात यह नहीं है कि काम बुरा है, पर पुरुष के मन में नारी के प्रति हीन दृष्टिकोण जमा हुआ है, इसलिए उसके काम भी छोटे दिखायी देते हैं और इसी कारण कई असुविधाएँ होने के बावजूद भी पुरुष घरेलू काम करने से कतराते दिखायी देते हैं ।

इसी प्रकार आवश्यकता या अन्य कारणों से महिलाएँ जब घर से बाहर कदम निकालतीं और पुरुष के कार्यक्षेत्र में पदार्पण करती हैं, तो भी उन्हें उपहास की दृष्टि से देखा जाता है । लोग कहने लगते हैं–आज के जमाने में महिलाएँ पुरुषों की प्रतिद्वन्द्वी बन गई हैं और उन्हें पीछे खींचना चाहती हैं । जिन महिलाओं में वस्तुतः इस तरह की मनोवृत्ति हो–उनकी बात अलग है, पर विवशता या आवश्यकता की दृष्टि से जो स्त्रियाँ स्वावलम्बी बनने का प्रयत्न कर रही हों, उन्हें निरुत्साहित नहीं किया जाना चाहिए । न ही यह सोचना चाहिए कि ये कार्य केवल पुरुषों की ही जायदाद है और स्त्रियों में नाममात्र की भी प्रतिभा-योग्यता नहीं है । वे स्वावलम्बी हो ही नहीं सकतीं ।

दासगुण की इस मान्यता ने समाज को बड़ी हानि पहुँचायी है । जब नारी को अयोग्य, निर्बल, आश्रित और असमर्थ मान लिया गया हो अथवा बना दिया गया हो तो अवरोध न केवल नारी के आगे बढ़ने में उत्पन्न होगा, वरन् उसका असर समूचे समाज पर पड़ेगा । बोझ, भार से लगाकर पंगुता का अभिशाप केवल नारी को ही नहीं, पूरे समाज को–जिसमें पुरुष वर्ग भी आ जाता है–उसे भी भोगना पड़ेगा । एक छोटा-सा उदाहरण लिया जाय । बाजार से घरेलू उपयोग का–रोजमर्रा का सामान साग-सब्जियाँ, मसाले आदि स्त्रियाँ खरीद कर ला सकती हैं पर परम्परागत रूप से पर्दा रखने वाले परिवारों में यह काम

पुरुषों को ही करना पड़ता है । एक तो अधिक कोई काम न होने से महिलाएँ खाली रहती हैं, उनका भी समय नष्ट होता है–दूसरे पुरुष को उपार्जन के अतिरिक्त बाहर से आवश्यक सामान लाने में भी अपना समय खपाना पड़ता है । बर्बादी दोनों के ही समय की होती है और कारण इतना मात्र कि स्त्रियाँ घर से बाहर नहीं निकल सकतीं, चूँकि इसी में वहाँ कुलीनता सुरक्षित समझी जाती है ।

इसी प्रकार सुशिक्षित और योग्य महिलाएँ चाहें तो अपने बच्चों को स्वयं पढ़ा सकती हैं, उनकी ठीक प्रकार से देख-रेख कर सकती हैं । पर कन्या-शिक्षा को अनावश्यक समझने के कारण अधिकांश घरों में स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी नहीं रहतीं । घर का काम-काज और बच्चों की देखभाल तो वे कर लेती हैं, पर निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि उनके इन कार्यों में अभीष्ट दक्षता परिलक्षित होती होगी या बच्चों के पालन-पोषण के साथ-साथ उनके निर्माण की आवश्यकता भी पूरी हो जाती होगी ।

स्त्रियों में योग्यता का अभाव इन विडम्बनाओं का कारण नहीं है । स्त्रियाँ योग्य हैं और पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर वे समाज-निर्माण तथा राष्ट्र निर्माण के कार्य में भाग ले सकती हैं । तथ्यों पर दृष्टिपात किया जाय तो इतिहास में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं ने ही अधिक उल्लेखनीय कार्य किया । स्वतंत्र रूप से तो वे अपनी प्रतिभा तथा क्षमता का उपयोग करती ही रही हैं, युग की दिशा को मोड़ने वाले महापुरुषों के निर्माण का श्रेय भी उनकी माताओं को दिया जाता है और उन महामानवों की अपेक्षा–उनकी माताओं को ही अधिक प्रशंसा योग्य पाया जाता है ।

सामाजिक दृष्टि से भी देखें तो मालूम पड़ेगा कि जिन देशों में स्त्रियों को मनुष्योचित अधिकार मिले हुए हैं, वे वहाँ पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर राष्ट्र निर्माण के यज्ञ में लगी हुई हैं और जितने भी क्षेत्र स्वयं महिलाओं ने सँभाल कर पुरुषों को राष्ट्र के अन्य मोर्चों पर निश्चिन्तता पूर्वक काम करने जैसी परिस्थितियाँ बना दी हैं । यूगोस्लाविया की महिलाएँ उस देश की कृषि-व्यवस्था संभालती हैं और पुरुष–कारखाने, दफ्तर, फौज तथा पुलिस का काम देखते हैं, उन्हें खेती या पशुपालन जैसे काम देखने की जरा भी जरूरत नहीं पड़ती । इसी प्रकार रूस, चीन आदि देशों में महिलाएँ राष्ट्रीय-सम्पदा बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही हैं । रूस में शिक्षा-व्यवस्था अधिकांशतः महिलाओं द्वारा ही संचालित की जाती है । स्कूलों, अस्पतालों एवं स्वास्थ्य संस्थाओं में पुरुषों की संख्या बहुत कम रहती है । जापान की महिलाएँ घरेलू उद्योग-धन्धों का विकास करने में पुरुषों से एक कदम भी पीछे नहीं हैं । वे जापानी अर्थ-व्यवस्था की इस रीढ़ को मजबूत बनाने में पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर संलग्न हैं । जर्मनी में भी कल-कारखानों को सँभालने के लिए महिलाएँ-पुरुष इंजीनियरों, व्यवस्थापकों और कारीगरों के समान ही योग्य सिद्ध हो रही हैं । कनाडा, अमेरिकन, ब्रिटेन जैसे देशों में दुकानें चलाने और उत्पादन की विक्रय-व्यवस्था के लिए महिलाएँ-पुरुषों से कम योग्य सिद्ध नहीं हुई हैं ।

दूर क्यों ? अपने ही देश में उन प्रान्तों तथा क्षेत्रों में–जहाँ महिलाओं पर अपेक्षाकृत कम प्रतिबन्ध हैं, महिलाओं की योग्यता का लाभ पूरे परिवार ही नहीं, समाज को भी सम्पन्नता, समृद्धि और विकास के रूप में मिले हैं । कहने का अर्थ यह कि अहंकार या स्वार्थपरता के कारण नारी के विकास में रुकावटें डालना अनुपयुक्त है । अनुचित है । यह बात पूरे समाज को समझ लेनी चाहिए कि नारी को साथ लिए बिना नर रंच मात्र भी आगे नहीं बढ़ सकता, न समाज ही प्रगति कर सकेगा ।

नारी पर प्रकृति का अधिक दुलार

नर और नारी के कद और वजन को देखा जाये तो नर वरिष्ठ पड़ता है और नारी कनिष्ठ । लड़कियों का वजन भी कम होता है और कद भी । इतने पर भी उनमें सहन-शक्ति और जीवनी-शक्ति का बाहुल्य पाया जाता है । प्रसव पीड़ा उन्हें बार-बार सहनी पड़ती है । मासिक धर्म के कष्ट भी उनकी क्षमता घटाते मालूम पड़ते हैं । इतने पर भी वे इन कठिनाइयों को सहज सहन कर लेती हैं और जो क्षति होती है उसे प्रकृति जल्दी ही पूरी कर देती है ।

दीर्घजीवन की दृष्टि से महिलाएँ पुरुष की अपेक्षा अधिक दिन जीती हैं । कठिन रोगों की स्थिति में जहाँ पुरुष जल्दी मर जाते हैं, वहाँ स्त्रियाँ उन्हें सहन करते हुए अधिक दिनों तक अपना जीवन बनाये रहती हैं ।

किशोरावस्था उन्हें जल्दी आती है । लड़के जितनी आयु तक किशोर ही बने रहते हैं, उतनी आयु में लड़कियाँ युवती हो जाती हैं और प्रजनन में भी कम आयु में परिपक्वता अर्जित कर लेती हैं ।

स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक सम्वेदनशील होती हैं । प्रसन्नता और आयु समता के दौर जल्दी-जल्दी आते हैं पर वे उत्तेजनाएँ देर तक नहीं रहतीं । वे अपने को जल्दी ही सन्तुलित कर लेती हैं । भावुकता और निष्ठा में स्त्रियों को पुरुषों से आगे पाया गया है । प्रेम और शोक-वियोग के आँसू भी महिलाओं को अपेक्षाकृत अधिक आते हैं । इससे उन्हें मन हल्का करने में सहायता मिलती है ।

गर्भावस्था में महिलाओं के शरीर में रक्त की मात्रा ४० प्रतिशत बढ़ जाती है, जिससे प्रसव के समय होने वाली क्षति से सुरक्षा हो सके ।

औसतन पुरुष का वजन ५२ किलोग्राम और स्त्री का ४८.१ होता है । विभिन्न अवयवों का भार भी इसी अनुपात में होता है । मस्तिष्क एक पुरुष का १३८० ग्राम होता है जबकि महिलाओं का १२५० ग्राम । फिर भी वे कल्पनाशील और बुद्धिमान अधिक होती हैं । पुरु

के शुक्राणु २० वर्ष के बाद परिपक्व होना आरम्भ करते हैं जबकि नारी १८ वर्ष की आयु में प्रजनन योग्य बन जाती है ।

पुरुष हारमोन उनकी अस्थिओं को मजबूत बनाते और कद बढ़ाते हैं । जबकि स्त्रियों की माँसपेशियाँ भारी, कोमल और लचीली होती हैं । इन विशेषताओं के कारण ही वे प्रजनन का कष्टसाध्य कार्य बिना बहुत शारीरिक क्षति उठाये पूरा कर लेती हैं ।

स्त्रियों के प्रजनन हारमोन प्राय: ४५ वर्ष पर समाप्त हो जाते हैं और मासिक धर्म रुक जाता है जबकि पुरुष ५५-६० तक सन्तानोत्पादन योग्य बना रहता है । प्रकृति ने ये सारी व्यवस्थाएँ बहुत सोच-समझ कर बनाई हैं । जीवनक्रम उनका अपेक्षाकृत अधिक बोझिल होता है, विशेषतया प्रजनन एवं शिशु पोषण में होने वाली क्षति के कारण, फिर भी प्रकृति ने उनकी संरचना इस प्रकार बनायी है कि वे इस अतिरिक्त दबाव को सहन कर सकें और उन दिनों की क्षति को जल्दी ही पूरा कर सकें ।

नारी में कोमलता, करुणा एवं सद्भावना भी पुरुष की तुलना में कहीं अधिक है । यही कारण है कि निष्ठुरता जन्य अपराध नारी से ३ प्रतिशत ही बन पड़ते हैं जबकि पुरुषों से क्रूरकर्म ९७ प्रतिशत तक बन पड़ते हैं । प्रकृति ने स्वभावत: उसे वरिष्ठ बनाया है । यद्यपि कद और वजन की दृष्टि से वह अपेक्षाकृत हल्की पड़ती है । भारी परिश्रम के काम भी वह पुरुष की तुलना में कम ही कर पाती है । शोभा और सौन्दर्य की दृष्टि से तो वह सर्वथा आगे है ही ।

स्रष्टा की सर्वोपरि कृति का अपमान न हो

चित्रकार, मूर्तिकार अपनी-अपनी योग्यता का प्रमाण परिचय देने के लिए सुन्दर से सुन्दर कलाकृतियाँ बनाते हैं। ये सराही जाती हैं और सम्मानित करने हेतु प्रदर्शनियों में सजाकर रखी जाती हैं । उद्देश्य यह होता है कि उस सौन्दर्यमयी कलाकारिता का अवलोकन अधिकाधिक दर्शक कर सकें और उस दिव्य अनुभूति का रसास्वादन करते हुए पुलकित-प्रफुल्लित हो सकें । दर्शकों को देखने भर की छूट होती है । उन्हें छूने, खराब करने या चुरा कर ले जाने पर कड़ा प्रतिबन्ध होता है । यदि कोई इस निर्धारित अनुशासन का उल्लंघन करता है तो संरक्षकों द्वारा प्रताड़ित किया जाता है ।

पार्कों एवं उद्यानों में एक से एक बढ़कर रंग-रूप वाले फूल खिले होते हैं । इस सुसज्जा का आयोजन इसलिए किया जाता है कि उधर से गुजरने वाले उनकी शोभा, सुन्दरता एवं सुगन्ध से हर्षोल्लास प्राप्त करें । आँखों को तृप्त करें । उनकी समीपता से उच्चस्तरीय प्राणवायु प्राप्त करके अपने को अधिक प्रमुदित अनुभव करें । इन फूलों को छेड़ने, तोड़ने आदि की मनाही होती है । कोई उस सज्जा को अस्त-व्यस्त करने की कुचेष्टा करे तो उसे संरक्षकों द्वारा अप्रसन्नता व्यक्त करने से लेकर निकाल बाहर करने तक का दण्ड दिया जाता है ।

छोटे बच्चे मनुष्यों समेत सभी पशु-पक्षियों के बड़े सुन्दर होते हैं । उन्हें चावपूर्वक देखा और दुलारा जाता है । इतने भर से मन हुलसित हो जाता है । हिंसा प्रकृति के क्रूर-निष्ठुर ही उन बच्चों को चुराने या खा जाने की घात लगाते हैं । सामान्यजन तो रास्ता चलते हुए भी इन बालकों की कोमलता और भोलेपन को मुड़-मुड़कर देखते जाते हैं । बालकों की संरचना में उन्हें प्रकृति की उच्चस्तरीय कलाकारिता के अवलोकन भर से अन्तराल में पुलकन जैसी भावसम्वेदना हुलसती प्रतीत होती है, पर कोई भला मनुष्य उन्हें चोट पहुँचाने का, उनके कपड़े खोलने लगने की बात नहीं सोचता ।

वन-विहार के लिए निकलने वाले उस क्षेत्र की शोभा-सुषमा को देखकर दंग रह जाते हैं और प्रकृति की कलाकारिता का अवलोकन करके फूले नहीं समाते । आनन्द का समय काटकर खाली हाथों वापस लौट आते हैं। कोई यह नहीं सोचता कि जो सुन्दरता इस क्षेत्र में बिखरी पड़ी है, उस पर अपना एकाधिकार जमा लिया जाय और किसी प्रकार इसे उखाड़ कर अपने घर की बाड़ में बन्द कर लिया जाय ।

नारी स्रष्टा की सर्वोपरि कलाकृति है । उसके लिए सम्भवत: उसने अपना समूचा कौशल दाँव पर लगाया है । तभी वह इतनी सुन्दर, सलौनी, सहृदय और भावुक बन पड़ी है । उसका बहिरंग और अन्तरंग दोनों ही उसके अपने-अपने ढंग की शोभा-सज्जा से भरपूरे हैं । इन पर यदि भावभरी दृष्टि डाली जाय तो उनके रचयिता की अनन्त शोभा ही ध्यान में आ सकती है । यदि उस दिव्य दर्शन की प्रतिक्रिया उपजे तो वह अधिक समुन्नत एवं उत्कृष्ट बनने के रूप में आराधना-अभ्यर्थना की ही हो सकती है । कोई अभागा ही मनमोहक पुष्पों को पैरों तले कुचलते हुए चलने में अपना गर्व और पराक्रम प्रकट करने की बात सोच सकता है । प्रेम का बीजांकुर मात्र होने पर तो ऐसा कुछ न तो सोचते बन पड़ता है और न करते । प्रेम में एकपक्षीय सेवा-सहयोग प्रदान करने के चिह्न पाये जाते हैं । तोड़ने, मरोड़ने, बिगाड़ने, गिराने और पथ-भ्रष्ट करने जैसी कल्पना तक उस स्थिति में उठती ही नहीं । जहाँ उठती हो वहाँ समझना चाहिए कि चिड़ियों को जाल में फँसाने वाला बहेलिया ही प्रेमी बनकर अपना प्रपंच रच रहा है । हिरन को वंशी बजाकर लुभाने और उन्हें पकड़कर क्षत-विक्षत कर डालने वाले बधिक भी आरम्भ में मधुर गायन सुनाकर उस भोले प्राणी के प्रति सद्भावना प्रकट करते हुए ही देखे जाते हैं, पर उनकी दुरभिसन्धि के पीछे वैसा कुछ होता नहीं है । मछुआरे आटे की गोलियाँ मुफ्त में दान करते हुए परमार्थी ही दीख पड़ते हैं, पर उस मान्यता को बदलने के लिए तब विवश होना पड़ता है जब

भेद खुलता है कि आटे की गोलियाँ किसलिए फेंकी गईं और उन मछलियों को आकर्षित कर लेने के उपरान्त उनके साथ क्या व्यवहार किया गया ?

उठती आयु की खिलती कलियों को खिलने की स्थिति तक पहुँचते-पहुँचते उन्हें इसी प्रकार के वाग्जाल में फँसाने से लेकर आकर्षक सपने दिखाने तक की दुरभिसन्धि में उन्हें फँसाने और बर्बाद करने के लिए अपने-अपने ढंग के ताने-बाने बुनते देखा जाता है । प्रेम प्रस्तावों का सिलसिला चल पड़ता है और नजर उठाकर जिधर भी देखा जाय उन आवेदनों का ढेर लगा दीख पड़ता है । जिन्होंने सभ्यता का ककहरा पढ़ा है, वे अपने को उन पर निछावर होने का इजहार करते हैं और जो नितान्त उजड्ड एवं फूहड़ हैं वे आक्रमण-छेड़खानी करने तक में नहीं चूकते । मनुहार करने से लेकर दबाव डालने वाले आतंककारी भय दिखाने तक का प्रयत्न करते हैं जिन्हें अपनी समझ के अनुसार जो कुछ सूझता है, वह कर गुजरने के लिए कटिबद्ध जैसा दीख पड़ता है । यह प्रवंचना और विडम्बना ही वह विपत्ति है जो उभार के दिनों भावुक लड़कियों को बर्बाद करने के लिए चित्र-विचित्र रूप में रची जाती हुई परिलक्षित होती है ।

पापों और अपराधों की बहुत बड़ी शृंखला है पर उस सबसे घिनौने किस्म का आक्रमण है-विश्वासघात । इसे पतित स्तर के लोग सरल सफलता का 'शार्टकट' मानते हैं और जहाँ भी विश्वासी प्रकृति का कोई भोलापन शिकार दीख पड़ता है, वहाँ कुटिलता के पूरे दाँव-पेचों को समेटकर प्रहार करने, घात लगाने का अवसर चूकता नहीं है । छल कभी बहुत ही हेय स्तर के पतित लोगों का व्यवसाय माना जाता था, पर अब तो वह जालसाजी के व्यावसायिक वातावरण में प्रचलन जैसा बन गया है । जागरूक और शंकालु लोग तो छानबीन की गहराई में उतर कर, अनुभवों मे आयी या सुनी गयी इस स्तर की दुर्घटनाओं का स्मरण करके प्रपंचियों के चंगुल से बच निकलने में सफल ही हो जाते हैं, पर वे बेमौत मारे जाते हैं, जिन पर अनुभवहीनता के साथ-साथ भावुकता ही छायी रहती है ।

नारी प्रगति के मार्ग में आने वाली अनेकानेक बाधाओं में से अधिक भयावह अड़चन यह है कि वे जनसम्पर्क के क्षेत्र में आने पर बहेलियों का चक्रव्यूह भेदती हुई पार जाने में बहुधा लड़खड़ा भी जाती हैं और तनिक भी पैर टेढ़ा रहने पर ऐसी मोच आने का निमित्त बनता है जिसकी व्यथा उन्हें आजीवन सताती रहती है । प्रेम-प्रसंगों के संकेत आये दिन होने के बाद वे प्रायः बढ़ते ही जाते हैं और तब तक चलते रहते हैं, जब तक कि बाजी जीत लेने की आशा सम्भावना बनी रहे ।

यह प्रसंग ऐसा है जिसकी चर्चा भी अप्रासंगिक और अश्लील प्रतीत होती है और उचित लगता है कि मैले पर मिट्टी डालकर किसी प्रकार अपने को इस उखाड़-पछाड़ से विरत रखने से काम चला लिया जाय, पर प्रचलनों की व्यापकता और दुष्परिणामों की भयंकरता देखते हुए यह आवश्यक जैसा हो गया है कि प्रगतिशीलता का दायित्व निवाहने वाली नारी को इस खतरे से समय रहते [illegible] करा देना ही श्रेयस्कर होगा ।

नारी स्वभावतः भोली होती है । टेलीविजन या सिनेमा में जो प्रेम-प्रसंग दिखाये जाते हैं, वे वास्तविकता से कोसों दूर होते हैं । फिर प्रेम प्रदर्शन करने वाला कितना प्रामाणिक है, यह जानना भी सबके बस की बात नहीं । बस यहीं गलती हो जाती है । गाँवों-कस्बों से शहरी दुनिया की सुख-समृद्धि की कल्पना कर किसी छलिया के साथ भाग जाने वाली अधिकांश स्त्रियों की अंतिम [illegible] फिर कोठों-वेश्याओं के घरों में ही निकलती है । इनसे बचना व परिपक्व बुद्धि का आश्रय लेकर अपना सर्वांगपूर्ण विकास करते चलना ही नारी के लिए सबसे बड़ी जिम्मेदारी है । इसके लिए सही संगति, [illegible] के साथ-साथ स्वाध्याय वृत्ति व रचनात्मक चिन्तन जरूरी है ।

महिलाएँ पुरुष से पीछे न रहेंगी

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व अनेक महिलाएँ शिक्षा और समाज-सेवा के क्षेत्र में कार्य कर रही थीं । पर राष्ट्रीय जागरण की प्रवाहित होती हुई धारा को देखकर अपने आपको न रोक सकीं । उन्होंने स्त्रियों के लिए प्रत्येक क्षेत्र में समान अधिकारों की माँग की और पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर देश को स्वतन्त्र कराने के लिए अपनी सेवाएँ प्रदान कीं । जाति और वर्ग से परे स्त्री कार्यकर्ताओं ने स्वातन्त्र्य संग्राम में अपना योगदान दिया । सरोजिनी नायडू, ऐनीबीसेन्ट, मार्गरेट कजिंस, बेगम हसरत मोहानी, हीराबाई टाटा और हन्ना एजेले सन् १९२८ के समय की प्रमुख कार्यकर्त्ता थीं ।

महात्मा गाँधी ने स्त्रियों को सत्याग्रह आन्दोलन में विदेशी कपड़ों तथा शराब की दुकानों के आगे धरना देने का आदेश दिया था । वह नहीं चाहते थे कि स्त्रियाँ नमक सत्याग्रह में भी सक्रिय रूप से भाग लें । पर उनमें प्रवाहित होने वाली देश प्रेम की लहर ने न कोई सीमा स्वीकार की और न किसी प्रकार की बाधा । सरोजिनी नायडू को नमक सत्याग्रह में भाग लेते हुए गिरफ्तार किया गया । इनके बाद तिन्नेवल्ली की श्रीमती कमलाबाई लक्ष्मणराव तथा बम्बई की श्रीमती हंसा मेहता ने ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के पदों से और डॉक्टर मुथुलक्ष्मी रेड्डी ने मद्रास लेजिस्लेटिव काउन्सिल की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिये ।

मद्रास की श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति को इस सत्याग्रह आन्दोलन में सर्वप्रथम जेल जाने का गौरव मिला। इसके बाद जो क्रम शुरू हुआ तो एक के बाद दूसरी महिलाएँ जेल जाने के लिए सहर्ष तैयार होने लगीं।

जिनमें कमलादेवी चट्टोपाध्याय, दुर्गाबाई, लक्ष्मीबाई पण्डित तथा कृष्णा हठीसिंह का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। इन दिनों हजारों महिलाएँ सत्याग्रह में भाग लेने के लिए अपने परिवार का मोह त्याग कर घर से बाहर निकल पड़ीं।

दूसरी गोलमेज परिषद् से लौटने के पश्चात् जो आन्दोलन छिड़ा उसमें भी महिलाओं की संख्या काफी थी। उन दिनों ब्रिटिश सरकार द्वारा पन्द्रह-सोलह वर्ष की लड़कियों को नारे लगाने या सभा में उपस्थित होने के कारण ही दो वर्ष का दण्ड दिया जाता था। जेल में वृद्ध स्त्रियों तक के साथ बड़ा क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया जाता था। सरकार ने महिला आन्दोलनकारियों की बढ़ती हुई संख्या को नियन्त्रित करने के लिए जेल में कठोर यन्त्रणाएँ देना शुरू कर दिया था। कस्तूरबा और स्वरूप रानी तक इस दुर्व्यवहार से न बच सकीं। स्वरूप रानी पर तो इलाहाबाद में लाठी चार्ज भी हुआ था।

नवम्बर १९२९ में जो गोलमेज परिषद् हुई उसमें महिलाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली थीं–बेगमशाह नवाज तथा राधाबाई सुब्बारोमां। जिस गोलमेज़ परिषद् में गाँधीजी ने भाग लिया था उसमें महिलाओं का प्रतिनिधित्व सरोजनी नायडू ने किया। इसके पश्चात् जब समान वयस्क मताधिकार की बात आयी तो मद्रास से नरल्लामुथु राममूर्ति, इलाहाबाद से लक्ष्मीमेनन, बम्बई से मानकलाल प्रेमचन्द तथा लाहौर से राजकुमारी अमृतकौर ने सम्प्रदाय और जातियों की दृष्टि से मतदान का विरोध किया।

जून १९३७ में जब देश के छह प्रान्तों में काँग्रेस की सरकारें बनीं तभी अनेक महत्त्वपूर्ण पदों को सँभालने के लिए महिलाएँ आगे ही रहीं। सिंध असेम्बली की डिप्टी स्पीकर श्रीमती सिपाही मलानी तथा नागपुर में मध्य प्रदेश की डिप्टी स्पीकर श्रीमती अनसुयाबाई काले हुईं। विजयलक्ष्मी पण्डित को प्रान्तीय सरकारों में प्रथम महिला मन्त्री बनने का अवसर प्राप्त हुआ था। वे उत्तरप्रदेश की स्वास्थ्य मन्त्री बनीं। इसके बाद रुक्मिणी लक्ष्मीपती को मद्रास मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित होने का अवसर मिला।

सन् १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन में जो महिला सबसे अधिक चर्चा का विषय थी उनका नाम है, अरुणा आसफअली। यह भूमिगत हो गई थीं और पुलिस की लाख कोशिश करने पर भी बन्दी नहीं बनाई जा सकीं। इस तरह हम देखते हैं कि स्वतन्त्रता से पूर्व राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेने वाली महिलाओं की लम्बी सूची है। उनकी गतिविधिओं को भले ही घर की चारदीवारी तक सीमित करके रखा गया हो पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए लड़ी जाने वाली लम्बी लड़ाई ने यह सिद्ध कर दिखाया कि यदि महिलाओं को राजनीति क्षेत्र में काम करने की सुविधाएँ प्रदान की जाएँ तो वे वहाँ सफलता प्राप्त कर सकती हैं।

प्रायः देखने में आया है कि सभी व्यवसायों में उन्नति का अवसर आने पर स्त्री के बदले पुरुष को प्राथमिकता दी जाती है। यही कारण है कि स्त्रियाँ पुरुषों से स्पर्द्धा कर कम संख्या में आगे बढ़ पाती हैं। विवाह के बाद घर से बाहर के कार्य को पसन्द भी नहीं किया जाता। सन् १९६४ में अमेरिका की सरकार ने एक आदेश निकाला था कि काम-काज के लिए आवेदकों को चुनते समय उनकी योग्यता को ध्यान में रखा जाये उनके सेक्स पर विचार न किया जाये। फिर भी वहाँ पुरुषों के चुनाव में पक्षपात से काम लिया जा रहा है।

इन कठिनाइयों के होने पर भी जब कभी किसी महिला को राजदूत पद पर नियुक्त कर विदेश भेजा गया तो उन्होंने अपने राष्ट्र के विचार को दूसरे राष्ट्रों के सम्मुख स्पष्ट रूप से रखा है। फिनलैण्ड की श्रीमती पहनला का कथन है–"स्त्रियाँ जबकि भविष्य की पीढ़ी के बारे में सोचती हैं तो पुरुष केवल अगले चुनाव की योजना बनाते हैं।"

जब आइजेनहावर अमेरिका के राष्ट्रपति थे तो उन्होंने डॉक्टर फ्रांसिस विल्सि नाम की महिला को राजदूत बनाकर स्विट्जरलैण्ड भेजा। उन दिनों राजनीतिक दृष्टि से स्विट्जरलैण्ड की स्थिति बड़ी दयनीय थी। वहाँ स्त्री को चुनाव में मत देने का अधिकार न था और न ही स्त्रियाँ राजनीति में ही भाग ले सकती थीं। पर स्विटजरलैण्ड में राजदूत विल्सि के पहुँचने पर अभूतपूर्व स्वागत किया गया। वहाँ की महिलाओं को उनसे क्रान्ति की एक नई दिशा मिली।

संयुक्त राष्ट्र संघ के महाधिवेशन के लिए श्रीमती रूजवेल्ट को जब राष्ट्रपति ट्रूमैन ने अमेरिका का प्रतिनिधि बनाकर भेजा तो उन्होंने सांस्कृतिक विभाग में कार्य कर अपनी सफलता दिखायी। विजयलक्ष्मी पण्डित ने अपने को सदैव पुरुष के समकक्ष माना है। एक बार किसी पत्रकार ने उनसे पूछा–"आपकी साड़ी का रंग कैसा है?" तो उन्होंने उत्तर दिया था–"क्या आपने पिछले राजदूत से उनके जूते का रंग पूछा था।" इस कथन से हमें श्रीमती पंडित की समर्थता का पता चलता है। कभी किसी ने भूलकर भी उनकी ओर हेय दृष्टि से देखने का दुस्साहस किया तो उन्होंने इसका मुँहतोड़ उत्तर दिया है।

इजरायल की प्रधानमन्त्री श्रीमती गोल्डामेयर जब विदेशमन्त्री थीं तब उनके साथ के कर्मचारियों को कभी यह अनुभव नहीं हुआ कि वे एक स्त्री के आधीन कार्य कर रहे हैं। श्रीमती इन्दिरा गाँधी और श्रीमती भण्डारनायके ने राजनीतिक क्षेत्र में जो ख्याति प्राप्त की वह उनकी दूरदर्शिता, मनोबल और आत्मविश्वास का ही परिणाम है।

अब तक की प्राप्त सफलताओं को देखकर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भारत की नारी जाति जो अभी भी उपेक्षित है, की सेवाओं का उपयोग समाज हित और राष्ट्रहित में किया ही जाना चाहिए।

नारी नर से कनिष्ठ नहीं, वरिष्ठ ही है

मेरी वोलस्टोन क्रॉफ्ट अपनी पुस्तक 'ए विण्डीकेशन ऑफ दि राइट्स वीमेन' (नारी अधिकार संरक्षण १९८९) में लिखती हैं कि, ''महिलाएँ मनुष्य हैं, वे भोग की वस्तु नहीं हैं । उनमें विवेक बुद्धि है । वे अपना भला-बुरा स्वयं समझ सकती हैं । इसलिए यदि उन्हें मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया, तो सर्वप्रथम यह सिद्ध करना पड़ेगा कि उनमें समझदारी और विवेकशीलता नाम की कोई चीज नहीं है ।'' यह सही है कि स्त्रियों को भोग की वस्तु मानकर यदि सर्वत्र प्रतिबन्धित रखा गया होता तो कितने ही क्षेत्रों में हम उनकी महत्त्वपूर्ण सेवाओं से आज वंचित ही रह जाते । मैडम क्यूरी ने विज्ञान जगत की जो सेवा की, वह सर्वविदित है । वह न होती तो सम्भव है रेडियम के रूप में उसका महत्त्वपूर्ण आविष्कार विज्ञान जगत को न मिल पाता अथवा यदि मिलता तो हो सकता है, तब काफी देर हो चुकी होती । पुरातत्ववेत्ताओं के अनुसार खाद्यान्न उत्पादन की विधा महिलाओं की देन है । उनका कहना है कि इस कार्य का शुभारम्भ सर्वप्रथम स्त्रियों ने ही किया । इस प्रकार स्पष्ट है कि भोगवादी दृष्टिकोण अपनाकर नारियों को परतन्त्र बनाए रखना मनुष्य समाज के लिए किसी भी प्रकार लाभकारी नहीं हो सकता ।

जहाँ तक दहेज का प्रश्न है तो यहाँ भी पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों के वरिष्ठ होने की मान्यता ही मूल कारण के रूप में झलकती-झाँकती है, किन्तु इसके लिए नारी को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता । यह समाज व्यवस्था व उसकी मान्यता सम्बन्धी दोष है । जहाँ नारी को प्रधानता मिली है, वैसे समाज में वर पक्ष द्वारा दहेज के रूप में वधू पक्ष को धनादि दिए जाने का प्रचलन है । अरब देशों एवं अफ्रीका व भारत के कई आदिवासी कबीलों में यह प्रथा आज भी जीवित है ।

इस प्रकार इन सभी पर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ये सभी मान्यताएँ निराधार हैं । इनमें से कोई भी कारण ऐसा नहीं, जिसके लिए स्त्री जाति को हेय माना जाय और प्रताड़ित किया जाय । यदि भाव पक्ष की दृष्टि से देखें तो नारी नर से बालिका बालक से बीस ही साबित होती है । जननी, भगिनी, पत्नी और पुत्री से जो प्यार एवं स्नेह हमें मिलता है, वह शायद ही पिता-पुत्र और भाई से मिल पाए । अतः नारी को नर से श्रेष्ठ ही माना जाना चाहिए कनिष्ठ नहीं ।

मध्यकाल से चली आ रही इस कुप्रथा को रोकने के समय-समय पर कई प्रयास हुए हैं, पर तब से लेकर अब तक यह कुप्रचलन पूरी तरह कभी समाप्त हुआ हो नहीं। यद्यपि अब भी इसे प्रतिबन्धित करने वाले कानून विद्यमान हैं । पर सच्चाई यह है कि इस कुरीति को न तो सरकार हटा सकती है, न कानून । इसका समूल नाश तो तभी सम्भव है, जब नर-नारी, बालक-बालिका सम्बन्धी मान्यताओं में परिवर्तन आये ।

वस्तुतः नर-नारी, बालक-बालिका रात-दिन की तरह मानवी-समाज के दो महत्त्वपूर्ण घटक हैं । इनमें से न तो किसी को बड़ा माना जा सकता है, न छोटा । दोनों का अपने-अपने स्थान पर अपने-अपने प्रकार का महत्व है । इन्हें रथ के दो पहिए की भाँति समझा जाना चाहिए जिस में न तो कोई वरिष्ठ है, न कनिष्ठ, न एक महत्वपूर्ण है, न दूसरा गौण, वरन् दोनों की समान उपयोगिता है। दोनों के साथ देने से ही गाड़ी की गति सम्भव होती है। इनमें से कोई एक यदि साथ देना बन्द कर दे, टूट जाय, खराब हो जाय तो बाहर की प्रगति में वह अपनी महत्ता का स्पष्ट प्रमाण-परिचय देने लगता है । दूसरे पहिए के ठीक रहने के बावजूद भी गाड़ी की गति अवरुद्ध हो बनी रहती है । समाज में स्त्री-पुरुष, बालक-कन्या का भी यही स्थान है । एक की उपेक्षा से समय और समाज की प्रगति में बाधा उत्पन्न हो सकती है । अतः भ्रूण हत्या और कन्या उपेक्षा जैसी कुप्रथाओं को रोका ही जाना चाहिए । यदि यह प्रचलन अस्तित्व में रहा, तो आने वाले समय में अपने देश की स्थिति भी चीन एवं अरब देशों जैसी हो सकती है, जहाँ नारियों की घटती संख्या के कारण पुरुषों को अविवाहित जीवन जीने पर बाधित होना पड़ रहा है। भ्रूण हत्या और कन्या उपेक्षा इस दृष्टि से भी समाप्त होना जरूरी है क्योंकि इक्कीसवीं सदी नारी-प्रधान होने जा रही है, जिसमें वह अपनी विशिष्ट क्षमता, योग्यता का परिचय देने जा रही है । यद्यपि शरीरशास्त्रियों के अनुसार महिलाओं का मस्तिष्क पुरुषों की तुलना में आकार में छोटा होता है, पर हर छोटी वस्तु सर्वदा नगण्य क्षमता की होती है ऐसा नहीं कहा जा सकता । टेकियोन कण अत्यन्त छोटे होते हैं, पर उनकी गति प्रकाश से भी अधिक देखी गयी है । एक छोटी-सी चिन्गारी भयंकर अग्निकाण्ड उपस्थित करने में समर्थ होती है । परमाणु आकार में कितने छोटे होते हैं, मगर अपनी असाधारण शक्ति के कारण विज्ञान जगत में विख्यात हैं । आयुर्वेद में जड़ी-बूटियों को घोंट-पीसकर ज्यों-ज्यों बारीक बनाया जाता है, उसकी पोटेन्सी बढ़ती जाती है । क्वार्टज क्रिस्टल आकार-आयतन में बहुत ही छोटे होते हैं, पर अपनी असाधारण कम्पन क्षमता से बड़े यन्त्र उपकरण चलाने की सामर्थ्य रखते हैं । अगले दिनों महिलाएँ भी अपने छोटे मस्तिष्क के बावजूद ऐसे ही बड़े कौशल दिखाने जा रही हैं, अतः उपेक्षणीय नहीं, सम्माननीय हैं ।

बलिदान नहीं अनुदान देना सीखें

हमारे समाज में कुछ ऐसी परम्परा-सी बन गयी है कि महिलाओं को घर-परिवार के क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक अनुदान देना पड़ता है । बल्कि अनुदान के स्थान पर बलिदान शब्द का प्रयोग भी किया जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । पर जहाँ तक देश और समाज का सवाल है उस क्षेत्र को नारी जाति से सीधा अनुदान बहुत कम मिल पाता है । इसका परिणाम यह होता है कि घर-परिवार में ही अधिक से अधिक आबद्ध रहने से उसका सामाजिक क्षेत्र समाप्त प्रायः हो जाता है । जो कुछ वे देती हैं परिवार संस्था के सहारे ही दे पाती हैं, इस कारण समाज में उनका सीधा वर्चस्व व अधिकार भी घट जाता है ।

९० करोड़ की आबादी वाले इस देश में पिछले पाँच सौ वर्षों का लेखा-जोखा लिया जाय तो मुश्किल से कुछ ही हजार ऐसी महिलाओं के नाम आयेंगे, जिन्होंने देश व समाज को सीधे कुछ दिया हो ।

यह धारणा कि जब तक एक स्त्री-पत्नी, माँ और गृहिणी के रूप में घर-परिवार पति और बच्चों के प्रति अपने आपको पूरी तरह बलिदान न दे दे, तब तक उसके कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं होती, मात्र पुरुष वर्ग के ही नहीं, नारी जाति के मानस में भी बहुत गहरी बैठ चुकी है । आज भी बहुसंख्यक नारियाँ इसे ही अपना कर्तव्य मान बैठी हैं । नारी जीवन की चरम सार्थकता का मानदण्ड यह बलिदान रहे यह बात न्याय-संगत, धर्मसंगत और विवेकसंगत नहीं लगती ।

नारी भी समाज शरीर का अर्द्धांग है । उसकी प्रगति के साथ नारी का अपना दायित्व होना बहुत आवश्यक है । यह क्या बात हुई कि विवाह होते ही समाज के लिये उसकी सत्ता ही समाप्त हो जाय और उससे समाज को कोई अनुदान ही नहीं मिले । यह तो एक प्रकार का स्वार्थ ही हुआ, पुरुषों का भी और नारी का भी ।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि गृह संचालन, पति की सेवा, बच्चों की देखभाल और उनके पालन-पोषण के माध्यम से नारी समाज की बहुत बड़ी सेवा करती है, किन्तु सीधे रूप में नहीं । यदि निष्पक्ष भाव से देखा जाय तो सौ में से पिच्चानवें प्रतिशत गृहिणियों के मस्तिष्क में यह बात ही नहीं होती कि वे समाज को भी कुछ दे रही हैं । उन्हें तो बस अपने बच्चे, अपना कुटुम्ब और अपना घर ही सूझता है । इसमें उसका कसूर ही क्या, उनका समाज से सीधा सम्बन्ध भी तो नहीं रखा गया है और इसी कारण महिलाओं को प्रायः स्वार्थी होने का लांछन सहना पड़ता है ।

घर, घर और घर-इसके बाहर उन्हें कुछ दिखाई ही न दे तो उसमें उनका क्या दोष । उनके मानस को सदियों की कारा में बन्द करके ऐसा बनाया ही जो गया है । आरम्भ में ऐसा नहीं था । नारियाँ समाज के कामों में पूरा हाथ बँटाती थीं । उनकी उपस्थिति के बिना कोई सामाजिक कार्य पूरा नहीं होता था । हर गृहस्थ को दो दायित्व अवश्य पालने पड़ते थे एक–उपार्जन और दूसरा–यज्ञ । उपार्जन व्यक्ति की अपनी और पारिवारिक आवश्यकताओं का प्रतीक और यज्ञ समाज के प्रति अपने दायित्व निर्वाह का प्रतीक माना जाता था । उपार्जन स्वार्थ था तो यज्ञ परमार्थ ।

उपार्जन पुरुष अकेला भी कर सकता था और करता था क्योंकि उसके द्वारा उपार्जित अन्न, धन से नारी घर को सँवारती थी उसमें प्राण भरती थी । यहाँ तक तो दोनों का यह कर्म स्वार्थ के अन्तर्गत ही था जिसमें व्यक्तिगत स्वार्थ की भूमिका प्रमुख और परमार्थ की भूमिका गौण थी अवश्य । किन्तु जहाँ यज्ञ करने का प्रश्न था वहाँ दोनों को अपना दायित्व निभाना आवश्यक था । लोक कल्याणार्थ किये गये यज्ञों में जब तक पति के साथ पत्नी नहीं बैठती थी, यज्ञ कार्य सम्पादित नहीं होता था । इससे स्पष्ट हो जाता है कि नारी जहाँ घर का मोर्चा पुरुष के बराबर ही सम्हालती थी, साथ ही साथ सामाजिक दायित्व निर्वाह में भी उसका समानाधिकार प्रायः सुनिश्चित था ।

घर के दायित्वों को निभाते हुए नारी बाहर के सामाजिक दायित्व भी निभाती थी । तब नारी समाज पर पर्दा, घूँघट और बाहर आने-जाने की कोई पाबन्दी नहीं थी । आज तो कोई-कोई शक्की मिजाज पति ऐसे भी मिल जाते हैं कि पत्नी किसी अन्य पुरुष से हँसकर भी बात कर ले तो वे उसके चरित्र पर सन्देह करने लग जाते हैं । पहले ऐसा नहीं होता था ।

मध्य युग में तात्कालिक परिस्थितियों को देखते हुए कुछ ऐसी सामयिक परम्पराएँ बनीं कि नारी का क्षेत्र घर-परिवार तक ही सीमित होता चला गया । उन परिस्थितियों के न रहने पर भी वे परम्पराएँ और भी रूढ़ और दृढ़ होती गयी हैं । आज स्थिति यह है कि वे कहलाती तो गृह-स्वामिनी हैं, पर वे बन गयी हैं, गृह सेविकाएँ । सेविकाओं को भी परिश्रम के अनुपात में सुख-सुविधाएँ क्रय करने के लिए धन तो मिलता है, पर गृहिणी को तो वह भी कहाँ मिलता है । उसे तो बेगार के रूप में ही अपना काम भुगतना पड़ता है ।

घर-परिवार में ही अपना क्षेत्र हैं यह मानकर उसी में वे तेली के बैल की तरह जुटी रहती । इससे सबसे अधिक हानि तो उनकी अपनी ही होती है । काम का दबाव उनके ऊपर अधिक रहता है कि उसका बोझ न तो शरीर ही सह पाता है और न मन ही और वे असमय ही थक जाती हैं । फिर तो उससे घर की गाड़ी ही नहीं खींची जाती ।

बच्चों को समाज की सम्पत्ति न मानकर अपना ही मानने और उनसे अनावश्यक लाड़-प्यार जता कर, उनकी हर अच्छी-बुरी जिद को मानकर ही माँ परावलम्बी बना देती हैं । उनका सहज विकास

नहीं होता । यह घर-परिवार को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देने से ही होता है । बात-बात पर माता पर निर्भर रहने वाले बच्चे आगे चलकर अपने पाँवों पर खड़े नहीं हो पाते, तो वे माँ-बाप को ही दोष देते हैं ।

सच पूछा जाय तो परिवार के क्षेत्र में भी मध्यम मार्ग ही उपयुक्त रहता है । पति, बच्चों और घर में अपना अस्तित्व ही विसर्जित कर देना और अपने व्यक्तित्व का बलिदान करने की भावना से अपने आप पर काम का बोझ जरूरत से ज्यादा लाद लेने और अपने शरीर और मन पर अत्याचार करने का परिणाम असमय ही थक जाने के रूप में परिणित हो जाता है, जो घर-परिवार के लिए भी हितकारी नहीं होता ।

अधिकांश नारियाँ हर बात में पति और बच्चों की आवश्यकताओं को पहला स्थान देती हैं और अपनी आवश्यकताओं को टाल जाती हैं । उन्हें न स्वास्थ्यकर भोजन मिल पाता है, न उचित विश्राम । बस काम ही काम में लगी रहकर वे जल्दी ही अपनी मृत्यु को बुला लेती हैं । बीमार होने की अवस्था में भी वे आराम नहीं कर पातीं, न उनकी समुचित चिकित्सा की ओर ही ध्यान दिया जाता है ।

यह बात तो ठीक है कि गृहिणी परिवार का संचालन पूरी निष्ठा से करे, यह तो आवश्यक नहीं कि वह अपना व्यक्तित्व और अस्तित्व ही भुला दे जैसे वह तो कुछ है ही नहीं । साथ ही उससे समाज भी कुछ आशा रखता है यह तथ्य भी नकार दिया जाय, इसे तो बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती ।

सर्वप्रथम वह भी एक व्यक्ति है । व्यक्ति है तो उसका अपना व्यक्तित्व भी होना आवश्यक है, जिससे समाज को कुछ लाभ मिले । परिवार भी समाज की एक इकाई है, पर वही समाज तो नहीं होता । हमारे यहाँ नारी जाति के साथ यही विडम्बना जुड़ी हुई है कि उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं माना जाता । स्वार्थी पुरुषों ने मनमर्जी से उनके लिए ऐसी-ऐसी निराधार वर्जनाएँ रच दी हैं कि उनका दर्जा पुरुष से बहुत नीचा हो गया है । बचपन में पिता, जवानी में पति और बुढ़ापे में पुत्र के कहने में चलने वाली भ्रामक मान्यताओं को गले लगाये रखने के बाद नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की आवश्यकता ही क्या रह जाती है ?

ऐसी भ्रान्त मान्यताओं को आज दफन कर देना ही चाहिए । किन्तु देखा यह जाता है कि ये किसी न किसी रूप में चली ही आ रही हैं । आज विवाह योग्य वर के लिए कन्या का चयन करते समय कई लोगों का यह आग्रह तो होता है कि लड़की पढ़ी-लिखी होनी चाहिए । पर उसके पढ़ी-लिखी होने का लाभ वे अपने परिवार को कितना देते हैं और वह लड़की स्वयं अपनी शिक्षा का कितना लाभ उठा सकती है और कितना समाज को बाँट सकती है, इस सम्बन्ध में सोचने-विचारने वाले एक प्रतिशत भी नहीं होंगे । होता यह है कि पढ़ी-लिखी लड़की भी वही कुछ करती है जो अनपढ़ कर सकती । तो फिर उसके पढ़ने-लिखने का लाभ क्या मिला ।

विवाह के बाद वह अपनी योग्यताओं, क्षमताओं का लाभ न स्वयं उठा सकती है और न समाज को ही सकती है, क्योंकि उसे घर-परिवार के खूँटे से ही बाँध दिया जाता है ।

सौ व्यक्तियों में से ऐसे पचास उदाहरण मिल जाएँ कि विवाह करने के बाद भी पुरुष ने अपने व्यक्तित्व का विकास किया है—अपनी शैक्षणिक, बौद्धिक और कलात्मक योग्ताएँ बढ़ाई हैं, साथ ही समाज के उपयोगी घटक के रूप में उसने अपनी सार्थकता उजागर की है, किन्तु जहाँ नारियों के उदाहरण खोजने बैठें तो मुश्किल से पाँच-दस ही ऐसे उदाहरण मिलेंगे, नहीं तो विवाह के बाद व्यक्तित्व के विकास के आगे विराम-सा लग जाता है । बहुत से लोगों को कहते भी सुना जाता है कि पढ़ाकर हमें अपनी बहू को कोई नौकरी थोड़े ही करानी है । अब उन्हें कौन समझाये कि शैक्षणिक योग्यता बढ़ाने का उद्देश्य केवल नौकरी करना ही तो नहीं होता ।

पढ़ी-लिखी महिलाओं में से भी अधिकांश पढ़ाई का यही एक उपयोग समझती हैं । यदि विवाह के बाद उन्हें नौकरी करने का अवसर नहीं मिले या वे नौकरी नहीं करें तो उनकी यह पढ़ाई कभी-कभार अपने बच्चों को पढ़ा देने या अपने पति या नैहर वालों को पत्र लिखने के काम में ही प्रयुक्त होती है । उनका इसमें कुछ कसूर नहीं, कसूर तो इस गलत परम्परा का है कि नारी का अपना क्षेत्र घर-परिवार ही होता है या उसकी चरम सार्थकता घर-परिवार के लिए अपना सब कुछ सुरक्षित रखना या उसके लिये बलिदान कर देना होता है ।

ऐसे कई उदाहरण देखने में आते हैं कि किसी लड़की ने स्कूल कॉलेज में संगीत या अभिनय का अच्छा अभ्यास किया था । उसने कई इनाम भी जीते थे । पर विवाह करने के बाद उसके इस संगीत और कला का कोई उपयोग नहीं होता और न उसका विकास ही हो पाता है ।

पति घर का बाहरी मोर्चा उपार्जन का दायित्व सम्हालते हुए भी घर-परिवार से पृथक अपना एक व्यक्तित्व रखता है । उससे बाहर भी उसकी एक सत्ता होती है क्षेत्र होता है । किन्तु पत्नी के लिए घर और उसमें भी रसोई घर ही उसका अपना क्षेत्र होता है । इससे पुरुष का अस्तित्व निरन्तर विस्तृत और नारी का निरन्तर संकुचित होता चला जाता है ।

एक प्रायोगिक सर्वेक्षण के अनुसार एक औसत भारतीय महिला ४० प्रतिशत समय चूल्हा-चक्की के काम में, ३ प्रतिशत बच्चों की देखभाल में, एक प्रतिशत बात-चीत में, आधा प्रतिशत परिवार के लिए जीविकोपार्जन में और शेष समय निरर्थक कामों में और सोने में व्यतीत करती है । उसे बीमार रहने पर भी घरेलू काम देखने पड़ते हैं । उन्हें खुशी और मनोविनोद के लिए थोड़े से क्षण भी नसीब नहीं होते ।

इस सर्वेक्षण से स्पष्ट हो जाता है कि फोर्ब्स सूची में से भी औसत भारतीय नारी धंधे से कम भी अपने लिये और समाज के लिये खर्च नहीं करती । जो कुछ वह करती है पर परिवार के लिये या फिर निरर्थक । जबकि व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के निर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण का काम साथ ही साथ करते चलना चाहिए इसी से समर्थ व्यक्ति, सुसंस्कृत परिवार और स्वस्थ समाज की रचना का सुख स्वप्न पूरा हो सकेगा । समानता के ईश्वर कृत विधान का तकाजा है कि नारी अपने इस दायित्व को समझे और पुरुष उसे समाज शरीर का सक्रिय अर्द्धांग बनने में सहयोग प्रदान करे ।

परिवार संस्था की प्रगति नारी के सम्मान पर निर्भर

माता और बच्चे के बीच जो वात्सल्य होता है उसे मनुष्य-मनुष्य के बीच पाये जाने वाले प्यार में सर्वोत्तम स्तर का कहा जा सकता है । यह एकांगी होता है । बच्चे तो प्रेम का स्वरूप, महत्व तक नहीं जानते । प्रतिदान की तो सम्भावना ही कहाँ रहती है ? माता को अकेले ही अपना प्रेम पक्ष चरितार्थ करना पड़ता है । वही अपनी आत्मीयता का आरोपण बालक के ऊपर करती है और उसके सुख-दुःख में साझीदार रहती है । अपने अन्तराल से निकला प्रेम, बालक से टकराकर वापस लौट आता है । इसे अपनी आत्मा की प्रतिच्छाया भी कह सकते हैं । इसे मापदण्ड माना जा सकता है । किसका प्रेम कितना असली और कितना नकली है । इसकी जाँच-पड़ताल इसी आधार पर की जा सकती है । प्रतिदान की प्रतीक्षा किए बिना, आशा रखे बिना यह नितान्त सम्भव है कि एकपक्षीय प्रेम निभता रहे । जिसमें प्रतिदान की अपेक्षा है, समझना चाहिए कि यह व्यवसाय हुआ । व्यवसाय में आदान के साथ प्रदान की शर्त जुड़ी रहती थी । पैसे के बदले बाजार से वस्तुएँ खरीदी जाती हैं । वस्तु न हो तो कोई पैसा क्यों देगा ? वस्तु हो किन्तु पैसा चुकाने का प्रबन्ध न हो सके तो भी समझना चाहिए कि गाड़ी रुक गयी । प्रेम में जहाँ उभय-पक्षीय समानता की आशा की जाती है, उसे व्यवसाय स्तर का उपक्रम ही माना जाएगा ।

सर्वप्रथम प्रेम का आत्म-विस्तार काया की परिधि में होता है । शरीर जिस प्रकार नीरोग, परिपुष्ट और दीर्घजीवी बने उसके लिए मन को संयम बरतना चाहिए । प्राकृतिक अनुशासन पालना चाहिए । इन्द्रियों के बहलाने-फुसलाने में नहीं आना चाहिए । जिह्वा और जननेन्द्रिय की लिप्सा को काबू में रखा जाय । श्रम-विश्राम का सन्तुलन बिठाये रहा जाय । उद्विग्नताओं के आवेश में सन्तुलन न खोया जाय । हँसते-हँसाते रहा जाय और प्रसन्नता के वातावरण में हल्की-फुल्की नीति अपनाते हुए जीवनचर्या को सुव्यवस्थित रखा जाय, तो कहा जाएगा कि मन के माध्यम से चेतना ने काया के प्रति अपना कर्तव्य धर्मवीर की तरह निभाया । प्रेम में प्रिय को प्रसन्न करने की बात को जितना महत्व दिया जाता है, उतना ही इसका भी ध्यान रखा जाता है कि साथी को कुमार्ग पर चलने की ढील या छूट तो नहीं दी गयी । हित साधन के लिए सुविधाएँ उत्पन्न करना ही एक मात्र नहीं है, वरन् उसके साथ सुधार के द्वारा सुखद सम्भावनाओं का भी सुयोग बिठाया जाता है । संयम का अंकुश इसी निमित्त है । इससे हाथी भी सही मार्ग पर सुविधापूर्वक चलता है और चलाने वाले का भी अभीष्ट प्रयोजन पूर्ण होता है । जिह्वा और जननेन्द्रिय का संयम पालने से काया को रुग्णता नहीं घेरने पाती, जो स्वाद के फेर में पेट में अधिक मात्रा में अभक्ष्य खाते हैं, उनका पाचन तन्त्र बिगड़ जाता है । जो कामुक कल्पनाओं और चेष्टाओं में घिरे रहते हैं, वे अपना मनोबल गँवा बैठते हैं । कम श्रम करने वाले एवं अधिक दबाव में रहने वाले भी आरोग्य लाभ से वंचित रहते हैं । काया की स्वच्छता ही उसकी सुन्दरता एवं सुसज्जा है । निर्मल वातावरण में रहा जाय । निर्मल उपादानों का उपयोग किया जाय । यह काया के साथ मन की प्रीति निभाये जाने की प्रक्रिया है ।

प्रेमधारियों में एक सबल पक्ष होता है–दूसरा कुछ निर्बल । निर्बल पक्ष का दायित्व अधिक है । माता की जिम्मेदारियाँ अधिक हैं, बालक की कम । मन के आदेशों पर काया चलती है । विकृतियाँ मन में पैदा होती हैं । बाद में उस आदेश का अभ्यास मन शरीर को भी हो जाता है । आदतें इसी प्रकार बनती हैं । उनमें मन के आदेश को ही प्रमुख माना जाता है । शरीर तो अभ्यस्त होने पर ही उस आदत को पूरी तरह का अनुरोध करता है । मनचाहे तो उसे आग्रह को अस्वीकार भी कर सकता है । माता और बच्चे की तरने मन और शरीर का भी प्रेम सम्बन्ध है । इनकी सफलता तभी मानी जाती है, जब सबल पक्ष दुर्बल पक्ष को प्रसन्न ही नहीं रखे, वरन् प्रेम पात्र की प्रगति के लिए ऐसे विधान भी करे जो प्रत्यक्षतः अप्रिय भले ही लगें, पर अन्ततः उत्कर्ष, अभ्युदय में सहायक सिद्ध होते हैं । प्रेम में सुधार से लिए संयम बरतने, अंकुश लगाने की भी गुंजाइश है ।

प्रेम विस्तार का तीसरा चरण दाम्पत्य जीवन के साथ जुड़ता है । आम आदमी इसे यौनाचार की कानूनी परवानगी के रूप में देखते, सोचते एवं व्यवहार में लाते हैं, पर यह बहुत ही घटिया दृष्टिकोण है । इस उत्तेजना की पूर्ति तो वेश्याएँ और भडुए भी करते रहते हैं । उनके बीच शरीर ही खरीदे-बेचे जाते हैं । चापलूसी का निरर्थक शब्दाडम्बर चलता रहता है । कौन किसका कितना दोहन कर सकता है । इसी दाव पर बाजी लगी रहती है । लाभांश में जिसे जितनी कमी दीखती उसी अनुपात में वह उपेक्षा बरतने लगता है । खोखलापन दीख पड़ने पर मुँह मोड़ लिया जाता है । इस प्रसंग में प्रेम शब्द का उपयोग

वार-वार होता है, किन्तु उसका तात्पर्य स्वार्थ सिद्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता ।

यह अनाचार दाम्पत्य जीवन में भी चलता देखा गया है पत्नी के लिए तो लोक-लाज, धर्म भावना, भीरुता, अवसर का अभाव जैसे अनेक कारण आचरण की रक्षा के लिए मजबूत दीवार की तरह बने रहते हैं और वह अभ्यास के अभाव में सारा जीवन किसी न किसी प्रकार काट लेती है । किन्तु पति पर उतने बन्धन न होने पर वह परनारी गमन तक पर उतर आता है । बात यहाँ तक बढ़ती है कि पत्नी के साथ भी यह वैसी ही रुखाई बरतता है जैसी चिर-परिचित, जानी-पहचानी वेश्या के साथ उपेक्षा बरती जाती है । उठती उमंगों के दिनों में जितनी मनुहार होती थी, उसका दर्शन भी दुर्लभ हो जाता है । विवाह बन्धन में बँधे होने के कारण, बच्चों की देखभाल और गृह-व्यवस्था के कारण काम तो उसी में चलाना पड़ता है, पर सम्बन्धों में गहराई न होने के कारण वह व्यवहार लकीर पीटने जैसा थोथा बनकर रह जाता है । वह मिठास नहीं रहती, जिसका रसास्वादन करके अन्तःकरण पुलकित होता रहता है, जिसके कारण दो शरीर एक प्राण वाली उक्ति चरितार्थ होती है । उथले प्रेम में ही वह स्थिति बनती है, जिसमें मन फट जाते हैं और शरीर सम्पर्क बना रहने पर भी तलाक से भी बुरी स्थिति बन जाती है ।

विदेशों में यह प्रचलन है कि असन्तुष्ट पति-पत्नी तलाक ले लेते हैं और अलग रहने तथा नया घर बसा लेने की छूट प्राप्त कर लेते हैं, पर यहाँ की परिस्थितियाँ भिन्न हैं । विवाह के बाद कुछ ही दिनों में कई बच्चे हो जाते हैं । घोषित या अघोषित तलाक लेने पर इन बच्चों के भरण-पोषण तथा भविष्य का प्रश्न उत्पन्न होता है । विदेशों में सरकारी अनाथालय हैं, जिनमें कोई भी अपने बच्चों को भर्ती करके सर्वथा स्वतन्त्र हो सकता है । इन बालकों के निर्वाह का खर्च सम्पन्न लोग स्वयं जमा करते रहते हैं । न दे सकने की स्थिति में सरकार की ओर से यह व्यवस्था बन जाती है । अपने देश में तो वैसा कुछ भी नहीं है । परित्यक्ताओं या उपेक्षिताओं के बच्चे जहाँ-तहाँ दिन काटते हैं । माता-पिता के बीच खींच-तान रहने की स्थिति में बच्चों की मनोदशा पर भी बुरा असर पड़ता है । उनमें अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं ।

भी हैं । एक कक्ष में देवता का निवास है तो दूसरे कक्ष में शैतान का निवास भी रहता है । माँ बच्चे के प्रति वात्सल्य प्रकट करती है, तब वह देवता होती है, किन्तु जब कन्या-पुत्र का अन्तर करके एक को दुलार, दूसरे को तिरस्कार देने लगती है, तो उसका शैतान पक्ष उभर आता है । बालक ईश्वर की प्रतिमूर्ति है । छल-छिद्र से, दोष-दुर्गुण से रहित हृदय सन्त-सज्जनों का होता है । उन्हीं में भगवान की झाँकी मिलती है । ईसा के शिष्यों ने जब उनसे भगवान के दर्शन कराने का आग्रह किया तो उन्होंने एक छोटे बालक को गोदी में उठाया और कन्धे पर बिठाकर सबको दिखाया कि मनुष्य आकृति में यही भगवान है । उनका कथन सच था । निर्मल अन्तःकरण वाला शिशु भगवान ही हो सकता है । इस विशेषता में कन्या लड़के की अपेक्षा कहीं उत्कृष्ट होती है । ऐसे भी भगवान ने नर की तुलना में नारी को अपेक्षाकृत अधिक सहिष्णु, विनम्र, संयमी, सेवाभावी बनाया है । वे बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता की दृष्टि से भी कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी होती हैं । अपराधों की गणना में नारी को १० प्रतिशत और पुरुष को ९० प्रतिशत अनाचारों में लिप्त पाया गया है । छोटी कन्याओं में तो मृदुलता, सुषमा और भी बढ़ी-चढ़ी होती है । इसलिए दुलार, संरक्षण, उन्नयन, न्यायानुसार उन्हीं का अधिक होना चाहिए । पर होता इससे ठीक उलटा है । पिता के अतिरिक्त परिवार के अन्य पुरुष भी लड़की के जन्म को दुर्भाग्य मानते हैं । क्योंकि वह पालने-पोसने के बाद दूसरे घर की हो जाती है और साथ ही कुछ देन-दहेज भी साथ ले जाती है । इस अर्थ प्रधान दुनिया में लड़की के प्रति एक समय उपेक्षा भाव समझ मे आता है, पर दूसरी ओर जब दृष्टि दौड़ाई जाती है कि दूसरे की पाली-पोसी लड़की वधू के रूप में अपने घर में आती है और वह कितनी उपयोगी सिद्ध हो रही है, तब यह समझा जा सकता है कि किसी के घर कन्या न जन्मी होती तो अपने घर में वधू कहाँ से आती ? अपनी कन्या दूसरे के घर जाती है तो दूसरे की कन्या अपने घर आती भी तो है । यह तो आदान-प्रदान मात्र हुआ । इसमें घाटा कहाँ ? ला[illegible] ? अदूरदर्शिता ही ऐसी दृष्टि उत्पन्न करती है [illegible] । घटिया प्रतीत होती है और लड़क[illegible]

लड़कियाँ भी कर सकती हैं । यह रिवाज तो मनुष्य ने तब की दृष्टि से बनाया है जब वे ससुराल वाले होते हैं और चाहते हैं कि इनके घर से सदा मिलता ही रहे । ऐसी नौबत न आवे कि कन्या पक्ष के मुसीबत में फँस जाने पर उनकी कहीं सहायता करनी पड़े । वस्तुतः ऐसी कुछ बात नहीं है । बेटी और बेटे में कोई अन्तर नहीं । असमर्थ माता-पिता की लड़कियाँ भी उसी प्रकार सेवा-सहायता कर सकती हैं जैसे कि लड़के करते हैं । इसमें कुछ भी ऐसा नहीं है, जिसे अनुचित लाभ कहा जा सके ।

विपन्न परिस्थितियों में कितनी ही जगह ऐसा होता है कि पिता के न रहने पर कमाई का स्रोत बन्द हो जाता है । तब बड़ी आयु की लड़कियाँ नौकरी करके अपने छोटे भाई-बहिनों का निर्वाह तथा शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करती हैं । अपनी आयु ऐसी ही कुँवारी अवस्था में बिता देती हैं । इन आदर्शों को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि लौकिक दृष्टि से भी कन्या का महत्त्व लड़कों से किसी भी प्रकार कम नहीं है ।

पश्चिम जर्मनी के आँकड़ों के अनुसार वहाँ ९० लाख कामकाजी महिलाएँ हैं । उनमें से ७ लाख मैनेजर हैं । उनमें से २,१६०००० व्यापार व यातायात-व्यवसाय, १,०८,००० कृषि, १,६५,०० सेवा संचालन एवं ९०,००० के लगभग लघु उद्योगों अथवा औद्योगिक व्यवसायों की मैनेजरी सम्हाले हैं ।

इन महिलाओं के अधीनस्थ कर्मचारियों से पूछताछ करने पर वे सन्तुष्ट मिले । उनका कहना है कि महिला मैनेजर अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रति सहृदय हैं, काम में सुधार के लिए छोटे-बड़े काम समझने के साथ-साथ स्वतः भी करके दिखाती हैं, तथा पारिवारिक समस्याओं को आसानी से समझ लेती हैं ।

उल्लेखनीय है कि वे महिलाएँ अपने घर का काम भी करती हैं जिसमें भोजन बनाना, पति एवं बच्चों को खिलाना-पिलाना भी सम्मिलित होता है । पति-पत्नी का प्यार-दुलार मधुर बना रहे इसके लिए आवश्यक है कि घर के बड़े उनके दोष-गिनाकर भड़काएँ नहीं वरन् यदि गुणों के सम्बन्ध में नमक-मिर्च तक मिलानी पड़े तो उसमें संकोच न करें । पति को वधू की अच्छाइयाँ बतायी जाएँ और वधू को पति की ताकि वे एक-दूसरे की उपयोगिता समझें और समुचित सम्मान-सहयोग प्रदान करें । भूलों को दर-गुजर करने की आदत डाली जानी चाहिए । दोषों को अकेले में तो कहा जा सकता है, पर उन्हें बदनामी का रूप देकर लांछित करने में विद्वेष ही बढ़ता है और वह बढ़ते-बढ़ते कहीं से कहीं पहुँचता है । कोई-कोई सास ऐसी होती है, जो अपने बेटे से बहू की निन्दा करने में तिल का ताड़ बनाती है । दोनों के बीच खाई खड़ी करती है । इसका परिणाम तत्काल उनकी मर्जी का भले ही हो, पर पीछे जो परिणाम सामने आते हैं, उनसे उन्हें तथा समूचे परिवार को पश्चाताप करना पड़ता है । सास के झगड़ालू प्रसिद्ध होने पर उनके छोटे लड़के-लड़कियों की शादी में कठिनाई पड़ती है । सोचते हैं-ऐसी कलहकारिणी के घर में अपनी बेटी देना और उसके जैसे गुणों वाली लड़की बुलाना अपने लिए जान-बूझकर संकट मोल लेना है । घर में शान्ति और स्नेह का वातावरण बनाने में घर की बड़ी-बूढ़ी महिलाओं की अधिक भूमिका रहती है । इसलिए समझाया मात्र नई उम्र वालों को ही नहीं, बड़े-बूढ़ों को भी जाना चाहिए बिना उनके स्वाभिमान को चोट पहुँचाये । उन्हें घर के बुद्धिमान सदस्यों को समझाने-बुझाने का क्रम जारी रखना चाहिए ।

उपेक्षा करने या रूठकर बैठ जाने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि नव-वधू से लेकर देवरानी, जिठानी, सास, ननद सभी को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता रहे कि वे हिल-मिलकर रहें । सास-बहू का आभास न होने दें वरन् माता-पुत्री का बरताव करें । इसी प्रकार देवरानी, जिठानी, ननदों के बीच भी बहिनों, सहेलियों जैसा स्नेह-सहकार रहना चाहिए । वे सभी मिल-जुलकर रहें, एक-दूसरे को स्नेह-सहयोग प्रदान करें । इसी प्रकार बड़े परिवार छोटे परिवारों की अपेक्षा अधिक प्रसन्नता और सुविधा के केन्द्र बने रहते हैं ।

कई बार वधू की माता, बहिन, भावज चुपके-चुपके यह शिक्षा देती हैं कि पति को चतुरतापूर्वक परिवार से अलग रहने के लिए कहती रहे । सम्मिलित रहने में असुविधा तथा कठिनाई बताती रहे । इस प्रकार की शिक्षा यदि माँ के घर दी जाती रहती है जमाता को भी उसी प्रकार की सलाह दी जाती रहती है, तो इसका परिणाम अन्ततः यही होता है कि वे लोग उसी घर में या अन्य घर लेकर अलग रहने लगते हैं । इसमें कमाई को अपने ऊपर खर्चने से शौक-मजे के कुछ साधन तो अवश्य बढ़ जाते हैं, पर नई मुसीबत यह आ खड़ी होती है कि अकेली कोठरी में बन्द रहने वाले कैदी जैसी एकाकी जिन्दगी जीनी पड़ती है । हँसते-बोलते संयुक्त परिवार में जो दिन कटता था, वह सुविधा छिन जाती है । हारी-बीमारी के समय "अपनी जिन्दगी जीना अपनी मौत मरना" की कहावत चरितार्थ होती है । बच्चे होने पर उन्हें सम्हालने में जो सारा घर लगा रहता था, वह सहकार छिन जाता है और प्रसूति के दिनों में भी विश्राम का अवसर न मिलने पर उठकर कामकाज करना पड़ता है । उस स्थिति में पता चलता है कि एकाकी रहने की अपेक्षा सम्मिलित परिवार में मिल-जुलकर रहना कितना नैतिक, कितना सामाजिक, कितना हँसी-खुशी का है । उसमें परिवार के प्रत्येक सदस्य को दूसरे साथी सदस्यों से परामर्श मिलता रहता है । सद्गुणों को बढ़ाने के लिए काफी गुंजाइश रहती है । परिवार के सभी सदस्य फलते-फूलते हैं और प्रगति के मार्ग को आगे बढ़ाते चलते हैं । मियाँ-बीबी की छोटी इकाई इतनी सुविधा प्राप्त नहीं करती, जितनी की सज्जनों के समुदाय में साथ-साथ रहने पर उपलब्ध होती है ।

बार-बार होता है, किन्तु उसका तात्पर्य स्वार्थ सिद्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता ।

यह अनाचार दाम्पत्य जीवन में भी चलता देखा गया है पत्नी के लिए तो लोक-लाज, धर्म भावना, भीरुता, अवसर का अभाव जैसे अनेक कारण आचरण की रक्षा के लिए मजबूत दीवार की तरह बने रहते हैं और वह अभ्यास के अभाव में सारा जीवन किसी न किसी प्रकार काट लेती है । किन्तु पति पर उतने बन्धन न होने पर वह परनारी गमन तक पर उतर आता है । बात यहाँ तक बढ़ती है कि पत्नी के साथ भी वह वैसी ही रुखाई बरतता है जैसी चिर-परिचित, जानी-पहचानी वेश्या के साथ उपेक्षा बरती जाती है । उठती उमंगों के दिनों में जितनी मनुहार होती थी, उसका दर्शन भी दुर्लभ हो जाता है । विवाह बन्धन में बँधे होने के कारण, बच्चों की देखभाल और गृह-व्यवस्था के कारण काम तो उसी में चलाना पड़ता है, पर सम्बन्धों में गहराई न होने के कारण वह व्यवहार लकीर पीटने जैसा थोथा बनकर रह जाता है । वह मिठास नहीं रहती, जिसका रसास्वादन करके अन्तःकरण पुलकित होता रहता है, जिसके कारण दो शरीर एक प्राण वाली उक्ति चरितार्थ होती है । उथले प्रेम में ही वह स्थिति बनती है, जिसमें मन फट जाते हैं और शरीर सम्पर्क बना रहने पर भी तलाक से भी बुरी स्थिति बन जाती है ।

विदेशों में यह प्रचलन है कि असन्तुष्ट पति-पत्नी तलाक ले लेते हैं और अलग रहने तथा नया घर बसा लेने की छूट प्राप्त कर लेते हैं, पर यहाँ की परिस्थितियाँ भिन्न हैं । विवाह के बाद कुछ ही दिनों में कई बच्चे हो जाते हैं । घोषित या अघोषित तलाक लेने पर इन बच्चों के भरण-पोषण तथा भविष्य का प्रश्न उत्पन्न होता है । विदेशों में सरकारी अनाथालय हैं, जिनमें कोई भी अपने बच्चों को भर्ती करके सर्वथा स्वतन्त्र हो सकता है । इन बालकों के निर्वाह का खर्च सम्पन्न लोग स्वयं जमा करते रहते हैं । न दे सकने की स्थिति में सरकार की ओर से यह व्यवस्था बन जाती है । अपने देश में तो वैसा कुछ भी नहीं है । परित्यक्ताओं या उपेक्षिताओं के बच्चे जहाँ-तहाँ दिन काटते हैं । माता-पिता के बीच खींच-तान रहने की स्थिति में बच्चों की मनोदशा पर भी बुरा असर पड़ता है । उनमें अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं । घुटन के कारण ये दबे-सहमे रहते हैं । रोटी का प्रबन्ध भले ही पिता की ओर से हो या माता द्वारा अन्य किसी आधार पर किया जाय, पर इतना निश्चित है कि ऐसी परिस्थितियों में बालक का मनोबल टूट जाता है । वे दब्बू, दुर्गुणी या आवारा, उद्दण्ड हो जाते हैं । ऐसे बालक अपने लिए, अपने अभिभावकों के लिए एवं समाज के लिए अभिशाप बनकर ही रहते हैं । जिन विवाहों का आधार रूप-सौन्दर्य या यौनाचार होता है, उनका भविष्य ऐसे ही अन्धकार में घिरा रहता है ।

मनुष्य के एक सिरे पर दिव्य सम्भावनाओं से भरा-पूरा मस्तिष्क है तो दूसरे सिरे पर मल-मूत्र की दुर्गन्ध भरे छिद्र भी हैं । एक कक्ष में देवता का निवास है तो दूसरे कक्ष में शैतान का निवास भी रहता है । माँ बच्चे के प्रति वात्सल्य प्रकट करती है, तब वह देवता होती है, किन्तु जब कन्या-पुत्र का अन्तर करके एक को दुलार, दूसरे को तिरस्कार देने लगती है, तो उसका शैतान पक्ष उभर आता है । बालक ईश्वर की प्रतिमूर्ति है । छल-छिद्र से, दोष-दुर्गुण से रहित हृदय सन्त-सज्जनों का होता है । वहीं भगवान की झाँकी मिलती है । ईसा के शिष्यों ने जब उनसे भगवान के दर्शन कराने का आग्रह किया तो उन्होंने एक छोटे बालक को गोदी में उठाया और कन्धे पर बिठाकर सबको दिखाया कि मनुष्य आकृति में यही भगवान है । उनका कथन सच था । निर्मल अन्तःकरण वाला ही भगवान ही हो सकता है । इस विशेषता में कन्या लड़कों की अपेक्षा कहीं उत्कृष्ट होती है । ऐसे भी भगवान ने नर की तुलना में नारी को अपेक्षाकृत अधिक सहिष्णु, विनम्र, संयमी, सेवाभावी बनाया है । वे बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता की दृष्टि से भी कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी होती हैं । अपराधों की गणना में नारी को १० प्रतिशत और पुरुष ९० प्रतिशत अनाचारों में लिप्त पाया गया है । कन्याओं में तो मृदुलता, सुषमा और भी बढ़ी-चढ़ी है । इसलिए दुलार, संरक्षण, उन्नयन, न्यायानुसार उन्हीं को अधिक होना चाहिए । पर होता इससे ठीक उलटा है । पिता के अतिरिक्त परिवार के अन्य पुरुष भी लड़की के जन्म को दुर्भाग्य मानते हैं । क्योंकि वह पालने-पोसने के बाद दूसरे घर की हो जाती है और साथ ही कुछ दहेज भी साथ ले जाती है । इस अर्थ प्रधान दृष्टि से लड़की के प्रति एक समय उपेक्षा भाव समझ में आता है पर दूसरी ओर जब दृष्टि दौड़ाई जाती है कि दूसरे की पाली-पोसी लड़की वधू के रूप में अपने घर में आई और वह कितनी उपयोगी सिद्ध हो रही है, तब यह सोचा जा सकता है कि किसी के घर कन्या न जन्मी होती तो अपने घर में वधू कहाँ से आती ? अपनी कन्या दूसरे घर जाती है तो दूसरे की कन्या अपने घर आती तो है । यह तो आदान-प्रदान मात्र हुआ । इसमें घाटा कहाँ ? लाभ कहाँ ? अदूरदर्शिता ही ऐसी दृष्टि उत्पन्न करती है जिसमें लड़की घटिया प्रतीत होती है और लड़का बढ़कर ।

वस्तुतः हर दृष्टि से लड़की का दर्जा ही बड़ा है । लड़के शिक्षा, शादी और व्यवसाय उत्तराधिकार में खाली करा लेते हैं और जैसे ही कुछ कमाने योग्य होते हैं पत्नी को लेकर अलग रहने लगते हैं । छोटे भाई-बहनों की शिक्षा, शादी में कदाचित् ही परिवार को कुछ सहायता देते हैं । जवानी में ही बूढ़े बाप का कमाया हथिया लेते हैं और उन्हें एक-एक पैसे को मुँहताज बना देते हैं । अधिकांश परिवारों में यही उपक्रम चलता दिखायी देता है । सतयुगी श्रवणकुमार लड़के तो कभी ही किसी भाग्यवान के घर उत्पन्न होते दिखते हैं । तिरस्कृत, उपेक्षित, असमर्थ माता-पिताओं की देख-

लड़कियाँ भी कर सकती हैं। यह रिवाज तो मनुष्य ने तब की दृष्टि से बनाया है जब वे ससुराल वाले होते हैं और चाहते हैं कि इनके घर से सदा मिलता ही रहे। ऐसी नौबत न आवे कि कन्या पक्ष के मुसीबत में फँस जाने पर उनकी कहीं सहायता करनी पड़े। वस्तुतः ऐसी कुछ बात नहीं है। बेटी और बेटे में कोई अन्तर नहीं। असमर्थ माता-पिता की लड़कियाँ भी उसी प्रकार सेवा-सहायता कर सकती हैं जैसे कि लड़के करते हैं। इसमें कुछ भी ऐसा नहीं है, जिसे अनुचित लाभ कहा जा सके।

विपन्न परिस्थितियों में कितनी ही जगह ऐसा होता है कि पिता के न रहने पर कमाई का स्रोत बन्द हो जाता है। तब बड़ी आयु की लड़कियाँ नौकरी करके अपने छोटे भाई-बहिनों का निर्वाह तथा शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करती हैं। अपनी आयु ऐसी ही कुँवारी अवस्था में बिता देती हैं। इन आदर्शों को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि लौकिक दृष्टि से भी कन्या का महत्त्व लड़कों से किसी भी प्रकार कम नहीं है।

पश्चिम जर्मनी के आँकड़ों के अनुसार वहाँ ९० लाख कामकाजी महिलाएँ हैं। उनमें से ७ लाख मैनेजर हैं। उनमें से २,१६०००० व्यापार व यातायात-व्यवसाय, २,०८,००० कृषि, १,६५,०० सेवा संचालन एवं ९०,००० के लगभग लघु उद्योगों अथवा औद्योगिक व्यवसायों की मैनेजरी सम्हाले हैं।

इन महिलाओं के अधीनस्थ कर्मचारियों से पूछताछ करने पर वे सन्तुष्ट मिले। उनका कहना है कि महिला मैनेजर अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रति सहृदय हैं, काम में सुधार के लिए छोटे-बड़े काम समझने के साथ-साथ स्वतः भी करके दिखाती हैं, तथा पारिवारिक समस्याओं को आसानी से समझ लेती हैं।

उल्लेखनीय है कि वे महिलाएँ अपने घर का काम भी करती हैं जिसमें भोजन बनाना, पति एवं बच्चों को खिलाना-पिलाना भी सम्मिलित होता है। पति-पत्नी का प्यार-दुलार मधुर बना रहे इसके लिए आवश्यक है कि घर के बड़े उनके दोष-गिनाकर भड़काएँ नहीं वरन् यदि ...णों के सम्बन्ध में नमक-मिर्च तक मिलानी पड़े तो उसमें ...कोच न करें। पति को वधू की अच्छाइयाँ बतायी जाएँ ...ौर वधू को पति की ताकि वे एक-दूसरे की उपयोगिता ...मझें और समुचित सम्मान-सहयोग प्रदान करें। भूलों को ...र-गुजर करने की आदत डाली जानी चाहिए। दोषों को ...केले में तो कहा जा सकता है, पर उन्हें बदनामी का ...प देकर लांछित करने में विद्वेष ही बढ़ता है और वह ...ढ़ते-बढ़ते कहीं से कहीं पहुँचता है। कोई-कोई सास ...सी होती है, जो अपने बेटे से बहू की निन्दा करने में ...तल का ताड़ बनाती है। दोनों के बीच खाई खड़ी करती ...। इसका परिणाम तत्काल उनकी मर्जी का भले ही हो, पर पीछे जो परिणाम सामने आते हैं, उनसे उन्हें तथा समूचे परिवार को पश्चाताप करना पड़ता है। सास के झगड़ालू प्रसिद्ध होने पर उनके छोटे लड़के-लड़कियों की शादी में कठिनाई पड़ती है। सोचते हैं-ऐसी कलहकारिणी के घर में अपनी बेटी देना और उसके जैसे गुणों वाली लड़की बुलाना अपने लिए जान-बूझकर संकट मोल लेना है। घर में शान्ति और स्नेह का वातावरण बनाने में घर की बड़ी-बूढ़ी महिलाओं की अधिक भूमिका रहती है। इसलिए समझाया मात्र नई उम्र वालों को ही नहीं, बड़े-बूढ़ों को भी जाना चाहिए बिना उनके स्वाभिमान को चोट पहुँचाये। उन्हें घर के बुद्धिमान सदस्यों को समझाने-बुझाने का क्रम जारी रखना चाहिए।

उपेक्षा करने या रूठकर बैठ जाने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि नव-वधू से लेकर देवरानी, जिठानी, सास, ननद सभी को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता रहे कि वे हिल-मिलकर रहें। सास-बहू का आभास न होने दें वरन् माता-पुत्री का बरताव करें। इसी प्रकार देवरानी, जिठानी, ननदों के बीच भी बहिनों, सहेलियों जैसा स्नेह-सहकार रहना चाहिए। वे सभी मिल-जुलकर रहें, एक-दूसरे को स्नेह-सहयोग प्रदान करें। इसी प्रकार बड़े परिवार छोटे परिवारों की अपेक्षा अधिक प्रसन्नता और सुविधा के केन्द्र बने रहते हैं।

कई बार वधू की माता, बहिन, भावज चुपके-चुपके यह शिक्षा देती हैं कि पति को चतुरतापूर्वक परिवार से अलग रहने के लिए कहती रहे। सम्मिलित रहने में असुविधा तथा कठिनाई बताती रहे। इस प्रकार की शिक्षा यदि माँ के घर दी जाती रहती है जमाता को भी उसी प्रकार की सलाह दी जाती रहती है, तो इसका परिणाम अन्ततः यही होता है कि वे लोग उसी घर में या अन्य घर लेकर अलग रहने लगते हैं। इसमें कमाई को अपने ऊपर खर्चने से शौक-मजे के कुछ साधन तो अवश्य बढ़ जाते हैं, पर नई मुसीबत यह आ खड़ी होती है कि अकेली कोठरी में बन्द रहने वाले कैदी जैसी एकाकी जिन्दगी जीनी पड़ती है। हँसते-बोलते संयुक्त परिवार में जो दिन कटता था, वह सुविधा छिन जाती है। हारी-बीमारी के समय "अपनी जिन्दगी जीना अपनी मौत मरना" की कहावत चरितार्थ होती है। बच्चे होने पर उन्हें सम्हालने में जो सारा घर लगा रहता था, वह सहकार छिन जाता है और प्रसूति के दिनों में भी विश्राम का अवसर न मिलने पर उठकर कामकाज करना पड़ता है। उस स्थिति में पता चलता है कि एकाकी रहने की अपेक्षा सम्मिलित परिवार में मिल-जुलकर रहना कितना नैतिक, कितना सामाजिक, कितना हँसी-खुशी का है। उसमें परिवार के प्रत्येक सदस्य को दूसरे साथी सदस्यों से परामर्श मिलता रहता है। सद्गुणों को बढ़ाने के लिए काफी गुंजाइश रहती है। परिवार के सभी सदस्य फलते-फूलते हैं और प्रगति के मार्ग को आगे बढ़ाते चलते हैं। मियाँ-बीवी की छोटी इकाई इतनी सुविधा प्राप्त नहीं करती, जितनी की सज्जनों के समुदाय में साथ-साथ रहने पर उपलब्ध होती है।

बार-बार होता है, किन्तु उसका तात्पर्य स्वार्थ सिद्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता ।

यह अनाचार दाम्पत्य जीवन में भी चलता देखा गया है पत्नी के लिए तो लोक-लाज, धर्म भावना, भीरुता, अवसर का अभाव जैसे अनेक कारण आचरण की रक्षा के लिए मजबूत दीवार की तरह बने रहते हैं और वह अभ्यास के अभाव में सारा जीवन किसी न किसी प्रकार काट लेती है । किन्तु पति पर उतने बन्धन न होने पर वह परनारी गमन तक पर उतर आता है । बात यहाँ तक बढ़ती है कि पत्नी के साथ भी वह वैसी ही रुखाई बरतता है जैसी चिर-परिचित, जानी-पहचानी वेश्या के साथ उपेक्षा बरती जाती है । उठती उमंगों के दिनों में जितनी मनुहार होती थी, उसका दर्शन भी दुर्लभ हो जाता है । विवाह बन्धन में बँधे होने के कारण, बच्चों की देखभाल और गृह-व्यवस्था के कारण काम तो उसी में चलाना पड़ता है, पर सम्बन्धों में गहराई न होने के कारण वह व्यवहार लकीर पीटने जैसा थोथा बनकर रह जाता है । वह मिठास नहीं रहती, जिसका रसास्वादन करके अन्तःकरण पुलकित होता रहता है, जिसके कारण दो शरीर एक प्राण वाली उक्ति चरितार्थ होती है । उथले प्रेम में ही वह स्थिति बनती है, जिसमें मन फट जाते हैं और शरीर सम्पर्क बना रहने पर भी तलाक से भी बुरी स्थिति बन जाती है ।

विदेशों में यह प्रचलन है कि असन्तुष्ट पति-पत्नी तलाक ले लेते हैं और अलग रहने तथा नया घर बसा लेने की छूट प्राप्त कर लेते हैं, पर यहाँ की परिस्थितियाँ भिन्न हैं । विवाह के बाद कुछ ही दिनों में कई बच्चे हो जाते है । घोषित या अघोषित तलाक लेने पर इन बच्चों के भरण-पोषण तथा भविष्य का प्रश्न उत्पन्न होता है । विदेशों में सरकारी अनाथालय हैं, जिनमें कोई भी अपने बच्चों को भर्ती करके सर्वथा स्वतन्त्र हो सकता है । इन बालकों के निर्वाह का खर्च सम्पन्न लोग स्वयं जमा करते रहते हैं । न दे सकने की स्थिति में सरकार की ओर से वह व्यवस्था बन जाती है । अपने देश में तो वैसा कुछ भी नहीं है । परित्यक्ताओं या उपेक्षिताओं के बच्चे जहाँ-तहाँ दिन काटते हैं । माता-पिता के बीच खींच-तान रहने की स्थिति में बच्चों की मनोदशा पर भी बुरा असर पड़ता है । उनमें अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं । घुटन के कारण ये दबे-सहमे रहते हैं । रोटी का प्रबन्ध भले ही पिता की ओर से हो या माता द्वारा अन्य किसी आधार पर किया जाय, पर इतना निश्चित है कि ऐसी परिस्थितियों में बालक का मनोबल टूट जाता है । वे दब्बू, दुर्गुणी या आवारा, उद्दण्ड हो जाते हैं । ऐसे बालक अपने लिए, अपने अभिभावकों के लिए एवं समाज के लिए अभिशाप बनकर ही रहते हैं । जिन विवाहों का आधार रूप-सौन्दर्य या यौनाचार होता है, उनका भविष्य ऐसे ही अन्धकार में घिरा रहता है ।

मनुष्य के एक सिरे पर दिव्य सम्भावनाओं से भरा-पूरा दूसरे सिरे पर मल-मूत्र की दुर्गन्ध भरे छिद्र भी हैं । एक कक्ष में देवता का निवास है तो दूसरे कक्ष में शैतान का निवास भी रहता है । माँ बच्चे के प्रति वात्सल्य प्रकट करती है, तब वह देवता होती है, किन्तु जब कन्या-पुत्र का अन्तर करके एक को दुलार, दूसरे को तिरस्कार देने लगती है, तो उसका शैतान पक्ष उभर आता है । बालक ईश्वर की प्रतिमूर्ति है । छल-छिद्र से, दोष-दुर्गुण से रहित हृदय सन्त-सज्जनों का होता है । उन्हीं में भगवान की झाँकी मिलती है । ईसा के शिष्यों ने जब उनसे भगवान के दर्शन कराने का आग्रह किया तो उन्होंने एक छोटे बालक को गोदी में उठाया और कन्धे पर बिठाकर सबको दिखाया कि मनुष्य आकृति में यही भगवान है । उनका कथन सच था । निर्मल अन्तःकरण वाला शिशु भगवान ही हो सकता है । इस विशेषता में कन्या लड़के की अपेक्षा कहीं उत्कृष्ट होती है । ऐसे भी भगवान ने नर की तुलना में नारी को अपेक्षाकृत अधिक सहिष्णु, विनम्र, संयमी, सेवाभावी बनाया है । वे बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता की दृष्टि से भी कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी होती हैं । अपराधों की गणना में नारी को १० प्रतिशत और पुरुष को ९० प्रतिशत अनाचारों में लिप्त पाया गया है । छोटी कन्याओं मे तो मृदुलता, सुषमा और भी बढ़ी-चढ़ी होती है । इसलिए दुलार, संरक्षण, उन्नयन, न्यायानुसार उन्हीं का अधिक होना चाहिए । पर होता इससे ठीक उलटा है । पिता के अतिरिक्त परिवार के अन्य पुरुष भी लड़की के जन्म को दुर्भाग्य मानते हैं । क्योंकि वह पालने-पोसने के बाद दूसरे घर की हो जाती है और साथ ही कुछ देन-दहेज भी साथ ले जाती है । इस अर्थ प्रधान दुनिया में लड़की के प्रति एक समय उपेक्षा भाव समझ में आता है, पर दूसरी ओर जब दृष्टि दौड़ाई जाती है कि दूसरे की पाली-पोसी लड़की वधू के रूप में अपने घर में आयी है और वह कितनी उपयोगी सिद्ध हो रही है, तब यह समझा जा सकता है कि किसी के घर कन्या न जन्मी होती तो अपने घर में वधू कहाँ से आती ? अपनी कन्या दूसरे के घर जाती है तो दूसरे की कन्या अपने घर आती भी तो है । यह तो आदान-प्रदान मात्र हुआ । इसमें घाटा कहाँ ? लाभ कहाँ ? अदूरदर्शिता ही ऐसी दृष्टि उत्पन्न करती है जिसमें लड़की घटिया प्रतीत होती है और लड़का बढ़कर ।

वस्तुतः हर दृष्टि से लड़की का दर्जा ही बड़ा है । लड़के शिक्षा, शादी और व्यवसाय उत्तराधिकार में घर खाली करा लेते हैं और जैसे ही कुछ कमाने योग्य होते हैं पत्नी को लेकर अलग रहने लगते हैं । छोटे भाई-बहिनों की शिक्षा, शादी में कदाचित् ही परिवार को कुछ सहायता देते हैं । जवानी में ही बूढ़े बाप का कारोबार हथिया लेते हैं और उन्हें एक-एक पैसे को मुँहताज बना देते हैं । अधिकांश परिवारों में यही उपक्रम अपनाया गया दिखायी देता है । सतयुगी श्रवणकुमार लड़के तो कदाचित् ही किसी भाग्यवान के घर उत्पन्न होते दिखायी देते हैं । तिरस्कृत, उपेक्षित, असमर्थ माता-पिताओं की सेवा, समर्थ

लड़कियाँ भी कर सकती हैं । यह रिवाज तो मनुष्य ने तब की .दृष्टि से बनाया है जब वे ससुराल वाले होते हैं और चाहते हैं कि इनके घर से सदा मिलता ही रहे । ऐसी नौबत न आवे कि कन्या पक्ष के मुसीबत में फँस जाने पर उनकी कहीं सहायता करनी पड़े । वस्तुतः ऐसी कुछ बात नहीं है । बेटी और बेटे में कोई अन्तर नहीं । असमर्थ माता-पिता की लड़कियाँ भी उसी प्रकार सेवा-सहायता कर सकती हैं जैसे कि लड़के करते हैं । इसमें कुछ भी ऐसा नहीं है, जिसे अनुचित लाभ कहा जा सके ।

विपन्न परिस्थितियों में कितनी ही जगह ऐसा होता है कि पिता के न रहने पर कमाई का स्रोत बन्द हो जाता है । तब बड़ी आयु की लड़कियाँ नौकरी करके अपने छोटे भाई-बहिनों का निर्वाह तथा शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करती हैं । अपनी आयु ऐसी ही कुँवारी अवस्था में बिता देती हैं । इन आदर्शों को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि लौकिक दृष्टि से भी कन्या का महत्त्व लड़कों से किसी भी प्रकार कम नहीं है ।

पश्चिम जर्मनी के आँकड़ों के अनुसार वहाँ ९० लाख कामकाजी महिलाएँ हैं । उनमें से ७ लाख मैनेजर हैं । उनमें से २,१६०००० व्यापार व यातायात-व्यवसाय, २,०८,००० कृषि, १,६५,०० सेवा संचालन एवं ९०,००० के लगभग लघु उद्योगों अथवा औद्योगिक व्यवसायों की मैनेजरी सम्हाले हैं ।

इन महिलाओं के अधीनस्थ कर्मचारियों से पूछताछ करने पर वे सन्तुष्ट मिले । उनका कहना है कि महिला मैनेजर अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रति सहृदय हैं, काम में सुधार के लिए छोटे-बड़े काम समझने के साथ-साथ स्वतः भी करके दिखाती हैं, तथा पारिवारिक समस्याओं को आसानी से समझ लेती हैं ।

उल्लेखनीय है कि ये महिलाएँ अपने घर का काम भी करती हैं जिसमें भोजन बनाना, पति एवं बच्चों को खिलाना-पिलाना भी सम्मलित होता है । पति-पत्नी का प्यार-दुलार मधुर बना रहे इसके लिए आवश्यक है कि घर के बड़े उनके दोष-गिनाकर भड़काएँ नहीं वरन् यदि गुणों के सम्बन्ध में नमक-मिर्च तक मिलानी पड़े तो उसमें संकोच न करें । पति को वधू की अच्छाइयाँ बतायी जाएँ और वधू को पति की ताकि वे एक-दूसरे की उपयोगिता समझें और समुचित सम्मान-सहयोग प्रदान करें । भूलों को दर-गुजर करने की आदत डाली जानी चाहिए । दोषों को अकेले में तो कहा जा सकता है, पर उन्हें बदनामी का रूप देकर लांछित करने में विद्वेष ही बढ़ता है और वह बढ़ते-बढ़ते कहीं से कहीं पहुँचता है । कोई-कोई सास ऐसी होती है, जो अपने बेटे से बहू की निन्दा करने में तिल का ताड़ बनाती है । दोनों के बीच खाई खड़ी करती है । इसका परिणाम तत्काल उनकी मर्जी का भले ही हो, पर पीछे जो परिणाम सामने आते हैं, उनसे उन्हें तथा समूचे परिवार को पश्चाताप करना पड़ता है । सास.के झगड़ालू प्रसिद्ध होने पर उनके छोटे लड़के-लड़कियों की शादी में कठिनाई पड़ती है । सोचते हैं–ऐसी कलहकारिणी के घर में अपनी बेटी देना और उसके जैसे गुणों वाली लड़की बुलाना अपने लिए जान-बूझकर संकट मोल लेना है । घर में शान्ति और स्नेह का वातावरण बनाने में घर की बड़ी-बूढ़ी महिलाओं की अधिक भूमिका रहती है । इसलिए समझाया मात्र नई उम्र वालों को ही नहीं, बड़े-बूढ़ों को भी जाना चाहिए बिना उनके स्वाभिमान को चोट पहुँचाये । उन्हें घर के बुद्धिमान सदस्यों को समझाने-बुझाने का क्रम जारी रखना चाहिए ।

उपेक्षा करने या रूठकर बैठ जाने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि नव-वधू से लेकर देवरानी, जिठानी, सास, ननद सभी को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता रहे कि वे हिल-मिलकर रहें । सास-बहू का आभास न होने दें वरन् माता-पुत्री का बरताव करें । इसी प्रकार देवरानी, जिठानी, ननदों के बीच भी बहिनों, सहेलियों जैसा स्नेह-सहकार रहना चाहिए । वे सभी मिल-जुलकर रहें, एक-दूसरे को स्नेह-सहयोग प्रदान करें । इसी प्रकार बड़े परिवार छोटे परिवारों की अपेक्षा अधिक प्रसन्नता और सुविधा के केन्द्र बने रहते हैं ।

कई बार वधू की माता, बहिन, भावज चुपके-चुपके यह शिक्षा देती हैं कि पति को चतुरतापूर्वक परिवार से अलग रहने के लिए कहती रहे । सम्मिलित रहने में असुविधा तथा कठिनाई बताती रहे । इस प्रकार की शिक्षा यदि माँ के घर दी जाती रहती है जमाता को भी उसी प्रकार की सलाह दी जाती रहती है, तो इसका परिणाम अन्ततः यही होता है कि वे लोग उसी घर में या अन्य घर लेकर अलग रहने लगते हैं । इसमें कमाई को अपने ऊपर खर्चने से शौक-मजे के कुछ साधन तो अवश्य बढ़ जाते हैं, पर नई मुसीबत यह आ खड़ी होती है कि अकेली कोठरी में बन्द रहने वाले कैदी जैसी एकाकी जिन्दगी जीनी पड़ती है । हँसते-बोलते संयुक्त परिवार में जो दिन कटता था, वह सुविधा छिन जाती है । हारी-बीमारी के समय ''अपनी जिन्दगी जीना अपनी मौत मरना'' की कहावत चरितार्थ होती है । बच्चे होने पर उन्हें सम्हालने में जो सारा घर लगा रहता था, वह सहकार छिन जाता है और प्रसूति के दिनों में भी विश्राम का अवसर न मिलने पर उठकर कामकाज करना पड़ता है । उस स्थिति में पता चलता है कि एकाकी रहने की अपेक्षा सम्मिलित परिवार में मिल-जुलकर रहना कितना नैतिक, कितना सामाजिक, कितना हँसी-खुशी का है । उसमें परिवार के प्रत्येक सदस्य को दूसरे साथी सदस्यों से परामर्श मिलता रहता है । सद्गुणों को बढ़ाने के लिए काफी गुंजाइश रहती है । परिवार के सभी सदस्य फलते-फूलते हैं और प्रगति के मार्ग को आगे बढ़ाते चलते हैं । मियाँ-बीवी की छोटी इकाई इतनी सुविधा प्राप्त नहीं करती, जितनी की सज्जनों के समुदाय में साथ-साथ रहने पर उपलब्ध होती है ।

नारी के उत्तरदायित्व हल्के-फुल्के न समझें

पुरुष के कार्यक्षेत्रों की तुलना में यदि नारी के कार्यक्षेत्र का महत्त्व देखा जाय तो उसके कार्यक्षेत्र पुरुष की अपेक्षा अधिक गुरु-गम्भीर होंगे । पुरुष उपार्जन और व्यवस्था सम्पादन का ही कार्य सम्हालता है, परिवार के लिए उसकी इतनी ही उपयोगिता है कि वह बाहर से कमाकर लाता है और परिवार के लोगों के लिए निर्वाह की व्यवस्था करता है । लेकिन नारी के जिम्मे केवल परिवार में ही सन्तानोत्पादन से लेकर उनके निर्माण, निर्वाह, व्यवस्था का नियोजन, गृह-व्यवस्था और पारिवारिक सन्तुलन जैसे अधिक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व जुड़े हुए हैं ।

इन दायित्वों के लिए भी यदि नारी को अधिक महत्त्व न दिया जाय तो भी विवेक की दृष्टि से उसे कम से कम पुरुष की तुलना में मात्र माँस का लोथड़ा तो नहीं ही समझना चाहिए । परिवार पुरुष और स्त्री के साझे से चलने वाली एक व्यवस्था है, किसी भी बड़े कार्य में या उद्योग-धन्धे में दो साझीदार हों और उनमें से एक तो योग्य, बुद्धिमान तथा सूझ-बूझ रखने वाला हो और दूसरा कम योग्य अथवा एकदम अयोग्य और अविकसित हो तो उस कार्य की सफलता न केवल दुःसाध्य होगी, वरन् समझदार और योग्य साथी के लिए भी मुसीबत खड़ी हो जाएगी । ऐसी ही मुसीबत आज भारतीय परिवारों के लिए खड़ी हो गयी है । भारतीय गृहिणी के जिम्मे उत्तरदायित्व तो एक से एक गम्भीर सौंपे गये हैं; पर उसे योग्यता तथा सामर्थ्य की दृष्टि से जिस तरह पंगु बनाकर छोड़ दिया गया है, उस स्थिति को देखते हुए परिवार-विघटन और अव्यवस्था को अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता ।

सामान्यतः नारी के जिम्मे रहने वाले कार्यों को चार वर्गों में बाँटा जा सकता है । सन्तानोत्पादन, शिशुपालन, आहार-व्यवस्था और गृह-संचालन-ये चार काम मोटे रूप से उसके जिम्मे दिखायी देते हैं । यों उसके जिम्मे एक और गुरुतर कार्य है, वह यह कि वह परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का बालक से लेकर वृद्ध तक का मन उल्लास और आनन्द से परिपूर्ण रखती है तथा उनके अन्तःस्तर को छूकर उनमें मानवता के सभी आवश्यक गुणों का विकास भी उसी के सुपुर्द है, पर इस कार्य के लिए पुरुष को भी उत्तरदायी माना जा सकता है । इसलिए यदि इसको इतना महत्त्व न भी दें तो भी उपर्युक्त चारों कार्य इतने तुच्छ या उपेक्षणीय नहीं हैं कि उसके लिए भारतीय नारी के वर्तमान स्तर को पर्याप्त कहा जा सके ।

सन्तानोत्पादन में नारी का अत्यधिक महत्त्व है । वह अपने शरीर से, रक्त-माँस से बालक की देह का निर्माण करती है । यही नहीं अपने स्वभाव और अपनी आदतों से ही बालक के व्यक्तित्व को भी विनिर्मित करती है । यदि उसका शरीर रुग्ण हो तो बालक भी नीरोग न हो सकेगा । यदि उसका मस्तिष्क अविकसित हो तो बालक का मस्तिष्क भी अविकसित ही रहेगा और स्वभाव उसका सुसंस्कृत न हुआ तो बालक का स्वभाव भी कुसंस्कारी बनेगा । कहने का अर्थ यह कि कमजोर, दुर्बल, मूढ़मति और असंस्कृत माता अपनी जैसी ही सन्तान जन्मेगी । ऐसी सन्तान अपने जीवन को तो पंगु की तरह ढोती ही है; समाज पर भी भार ही बनी रहती है । अयोग्य और फूहड़ नारी कहने को बच्चे पर बच्चा भले ही पैदा करती रहे उस प्रजनन से न तो परिवार की शोभा बढ़ती है, न ही उसकी कीर्ति और समृद्धि में ही कोई वृद्धि होती है । असंस्कृत और अविवेकी सन्तान परिवार की पूर्वजों द्वारा संचित कीर्ति और सम्पत्ति से पलीता लगाने वाली ही सिद्ध होती है ।

बच्चों का पालन-पोषण करना वैसे भी कोई साधारण सहज कार्य नहीं है । वह माँ ही कर सकती है । कहा भी जाता है कि बिना पिता के बच्चे तो फिर भी पल और बढ़ जाते हैं पर बिना माँ के बच्चों का पालना अति कठिन है । ऐसा इसलिए कि मातृत्व नारी की गरिमा और पूर्णता है । उसी की छत्र-छाया में रहकर बच्चे का भली-भाँति विकास हो सकता है । सवाल यह उठता है, कि जब वह माँ ही अयोग्य होगी, तो बच्चों को किस प्रकार सही ढंग से पाला-पोसा जा सकेगा । माँ इस बात से अनभिज्ञ होगी तो बच्चे का समुचित पालन-पोषण कैसे होगा ? यदि में जीवनी-शक्ति प्रचुर मात्रा में रही और उचित देखरेख के अभाव में वह पलकर बड़ा भी हो गया तो भी भी उसका स्वस्थ, चुस्त और शक्तिशाली हो पाना कठिन है । नन्हें से बालक का शरीर रुई के रेशों की तरह कोमल होता है, जिस पर थोड़ी-सी असावधानी का बहुत बुरा असर होता है । बच्चों के ठीक ढंग से पालन-पोषण के लिए सन्तुलित दिनचर्या, संयमित आहार-विहार और नियमित जीवन क्रम आवश्यक है । यह क्रम किस प्रकार बनाया जाय-यह बात सुयोग्य और सुरक्षित नारी ही समझ सकती है ।

बच्चों की उचित देखभाल की तब आवश्यकता अनुभव की जाती है, जब उसका जन्म हो चुका होता है । लेकिन उससे पूर्व वह उन समस्त असावधानियों के दुष्प्रभाव ग्रहण कर चुका होता है जो उसके गर्भवास के दौरान हो चुकी होती हैं । गर्भिणी को किस तरह रहना चाहिए, अपने आचार-विचार किस तरह के रखने चाहिए, मनःस्थिति को किस प्रकार सन्तुलित बनाये रखना चाहिए आदि बातों का समुचित ज्ञान सुशिक्षित और सुसंस्कारी गृहिणी के पास ही उपलब्ध हो सकता है ।

जन्म लेने के बाद यह जानना और सावधानी बरतना बड़ा आवश्यक है कि बालक को क्या खिलाया जाय और किस तरह रखा जाय । इस तरह की आवश्यक सावधानियाँ फूहड़ स्त्रियाँ नहीं रख पातीं । फलस्वरूप बालक की शारीरिक और मानसिक प्रगति पिछड़ी हुई रह जाती है । बेचारी माता का क्या दोष, उसे इस सम्बन्ध में

कोई प्रशिक्षण तो मिला नहीं । माँ-बाप ने अपने गले का जंजाल छूटा मानकर उसका विवाह कर दिया और ससुराल में भी उसी स्तर की महिलाओं ने जैसी ठीक समझी वैसी औंधी-सीधी सलाह दे डाली । यह अज्ञानता बालक को रोगग्रस्त बनाने से लेकर मृत्यु के मुँह तक पहुँचाने का कारण बन जाती है । मिसाल के तौर पर हम पश्चिमी देशों के बच्चों को ले सकते हैं । सुशिक्षित माता की सूझ-बूझ भरी देखरेख के कारण वहाँ के लगभग सभी बच्चे हृष्ट-पुष्ट सुन्दर और प्रसन्न होते हैं । न वे रोना जानते हैं और न कभी बीमार पड़ते हैं । हमेशा गुलाब के फूल की तरह खिले रहते हैं । दूसरी ओर हमारे देश के बच्चे हैं, जो बात-बात पर रोते हैं और बीमार पड़ जाते हैं ।

शिशुपालन के बाद परिवार की भोजन व्यवस्था नारी के जिम्मे सौंपा हुआ एक गम्भीर दायित्व है । भोजन की उपयोगिता केवल भूख बुझाने और स्वाद लेने के रूप में ही समझी जाती है । इसलिए भिन्न-भिन्न खाद्य वस्तुएँ व जायके चुने जाते हैं; पर भोजन की उपयोगिता इतनी ही मात्र नहीं है । वस्तुतः वह मनुष्य के जीवन-मरण का प्रश्न है । उसके शरीर का विकास और उसकी सुदृढ़ता, रक्त, माँस, हृदय, मस्तिष्क आदि का आरोग्य सब कुछ भोजन पर ही निर्भर रहता है । इस अत्यन्त महत्त्व के कार्य को हाथ में लेने वाली गृहिणी के लिए आहार-विज्ञान की सम्पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है, वह इसलिए कि स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी खाद्य पदार्थों का चुनाव किया जा सके; पर कितनी गृहिणियों को इस बात की जानकारी होती है ? और वे इस जानकारी के अभाव में इतने महत्त्वपूर्ण प्रश्न का अण्ट-शण्ट हल करती हैं । रसोई में जब स्वाद की दृष्टि से ही खाद्य पदार्थों का चुनाव होता है तो स्वास्थ्य जैसे महत्त्वपूर्ण मसले की अपने आप उपेक्षा होने लगती है । क्योंकि तब स्वादिष्टता ही चुनाव का आधार बन जाती है । उस आधार पर चुनाव करने से कितनी ही हानिकारक वस्तुएँ आहार में सम्मिलित हो जाती हैं । इस ज्ञान का अभाव कारण है कि आवश्यक चीजें जो हानिकारक भी होती हैं हमारी रसोई में स्थान प्राप्त कर जाती हैं, उस कारण खर्च भी बढ़ता है, पेट भी खराब होता है और परिजनों का स्वास्थ्य भी नष्ट होता है ।

वस्तुतः भोजन का पकाना एक कला और एक विद्या है । यह कला उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी कि औषधियों के निर्माण की कला । भोजन को यों भी एक प्राकृतिक औषध कहा गया । औषधि निर्माण में यदि फूहड़ता और अज्ञान और असावधानियाँ बरती जायें तो वे अप्रभावी भी बन सकती हैं और विष भी बन जाते हैं । पाक कला की जानकारी के अभाव में यही स्थिति आती है । इसके बिना न जाने कितनी बहुमूल्य और पौष्टिक वस्तुएँ जल-भुनकर कोयला और राख मात्र रह जाती हैं । रबड़ी, खोया दूध का कोयला भर ही तो है । दूध में जो पोषक तत्व होते हैं, वे सभी खोया चलाते-चलाते जलकर नष्ट हो जाते हैं और कोयला मात्र बचा रहता है । लोग उसे ही स्वादिष्ट मानकर बड़े चाव से खाते हैं । तेल, घी में तली-भुनी चीजें अपनी स्वाभाविक पौष्टिकता खो देती हैं और उन जीवन-तत्वों से रहित हो जाती हैं, जो कि शरीर को पुष्ट और शक्तिशाली बना सकते हैं । पाक विद्या का ज्ञान न होने से पैसा भी खर्च होता है, उपयोगिता भी जाती रहती है-इस प्रकार दोहरी हानि होती है । परिवार की स्त्री, गृहिणी यदि पाक विद्या का वैज्ञानिक ज्ञान रख सकें तो स्वाभाविक है कि वह स्वाद की चिन्ता करने के स्थान पर आहार को पौष्टिक और जीवनदायी बनाने की ओर ज्यादा ध्यान देगी । लेकिन यह तभी सम्भव है, जब गृहिणी विकसित हो, शिक्षित हो और समझदार हो । अशिक्षा और अज्ञान के अन्धकार में ही वास करने वाली नारी जिसे दीन-दुनिया का ही कुछ पता नहीं, उससे इसी ढर्रे क्रम के अतिरिक्त और अच्छे की उम्मीद कहाँ से की जा सकती है ।

इसी प्रकार गृह-संचालन भी कोई हल्का-फुल्का उत्तरदायित्व नहीं है । परिवार के लिए उसका उतना ही महत्त्व है जितना कि राज्य या देश के लिए उसकी प्रबन्ध करती सरकार का । परिवार की विभिन्न प्रवृत्तियों के लिए उतने ही कार्य वर्ग हैं जितने कि किसी सरकार में विभिन्न विभाग होते हैं । प्रत्येक विभाग पर ध्यान देने के लिए जिनके पास मस्तिष्क होता है वे ही सम्बन्धित संस्थान को-भले वह सरकार हो या कारखाना, उद्योग धन्धा हो या व्यापार, व्यवसाय-चला सकते हैं । गृह-संचालन के लिए भी उसी स्तर की कुशलता चाहिए । काम छोटा हो या बड़ा उसके लिए साधन कम ज्यादा आवश्यक हो सकते हैं, पर मस्तिष्क तो उसी स्तर का विकसित होना आवश्यक है । अविकसित मस्तिष्क और दुर्बल सामर्थ्य जहाँ कहीं भी होगी, वहीं-अव्यवस्था और कुप्रबन्ध होगा । गृहिणी का मानसिक स्तर भी उन्नत और विकसित होना आवश्यक है यदि गृह-व्यवस्था के सुचारू संचालन की अपेक्षा की जाती है ।

अविकसित मस्तिष्क मेधा और अशिक्षा, अज्ञान के कारण परिवार की विभिन्न प्रवृत्तियों में भले ही थोड़ी-थोड़ी हानि होती हो, पर वह थोड़ी-थोड़ी हानि मिला कर भी बहुत बड़ी बन जाती है । एक-एक दिन होने वाली जरा-जरा सी हानि का यदि हिसाब लगाया जाय तो साल भर में कितनी हानि हो गयी, मालूम पड़ने पर आँखें फटी रह जाएँगीं ।

हम परिवार के मोर्चे पर इसीलिए असफल हो रहे हैं और उस असफलता के परिणामस्वरूप विभिन्न सामाजिक समस्याओं के इसी कारण शिकार बने हुए हैं कि हमारी प्रबन्धकर्त्री सती, नारी, गृहिणी दुरवस्था में पड़ी हुई है । पुरुष के जिम्मे उपार्जन कह लें, या संघर्ष कह लें एक ही काम है, जबकि नर को एक समर्थ मानव बनाने से लेकर, उसका स्वास्थ्य संरक्षण और प्रबन्ध नियोजन तक करना

पड़ता है तो उसकी दुरवस्था कितना विपर्यय उत्पन्न करती होगी–कहने की जरूरत नहीं है ।

यदि नारी की क्षमता को जगाया जाय, उसे योग्य बनाने की ओर ध्यान दिया जाय तो न केवल हमारे परिवारों में स्वर्गीय वातावरण की सृष्टि हो सकेगी, वरन् समाज के लिए भी कई दृष्टियों से लाभकर स्थिति बन सकती है । गृह-व्यवस्था को सम्हालने के बाद उसके पास जो समय बचता है; वह बाहरी प्रयोजनों में ही तो लगेगा और जाग्रत शक्ति क्षमतावान नारी अपनी योग्यता से समाज के लिए सुखद परिस्थितियाँ तथा प्रगतिशील वातावरण बना सकेंगी । हम इतनी दूर की न भी सोचें तो भी हमें केवल वह अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व ठीक से निभा सकें–इस लायक तो प्रयास करना ही चाहिए ।

मलय देश का मातृ-सत्तात्मक समाज

मलेशिया के कुछ इलाकों में अभी भी मातृ-सत्तात्मक समाज-व्यवस्था है । यद्यपि वह प्रायः सम्पूर्ण उच्छेद की स्थिति में पहुँच ही चुकी है । कुछ पत्रकार और समाजशास्त्री उस क्षेत्र का दौरा कर चुके हैं तथा उन्होंने वहाँ से जो विवरण एवं अनुभव लिखे हैं, वे देश-विदेश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छप चुके हैं । जिसका सारांश यह है–

मलेशिया के कुछ क्षेत्रों जैसे 'नेग्री सम्बीलन' आदि में अभी भी मातृ-मूलक समाज है । लगभग सात सौ वर्ष पहले सुमात्रा के मातृ-मूलक समाज की वीर महिलाओं ने इन जंगली इलाकों में आक्रमण कर, उन पर कब्जा कर लिया था । उन्होंने इन जंगलों की सफाई की, वहाँ केले और नारियल के उद्यान लगाए तथा खेती-बारी प्रारम्भ की । खेती मुख्यतः रबर की होती है । यह काम उन कबीलों में आज भी होता है । उनका समाज सुखी है । वे ताड़ के पत्तों से चटाई बुनने का घरेलू उद्योग भी चलाती हैं । शिक्षा का भी वहाँ प्रसार है ।

उनके घर अपने-अपने बगीचों के बीच होते हैं । ये घर लकड़ी के बने रहते हैं । जंगली जानवरों और बाढ़ के पानी से सुरक्षा की दृष्टि से ये घर लकड़ी के मजबूत खम्भों पर धरती से दस फुट ऊपर उठे बनाये जाते हैं । वहाँ के निवासियों के शरीर इकहरे, कद छोटा और चेहरे स्वर्णिम भूरा रंग लिये गोल-गोल होते हैं ।

जो पत्रकार वहाँ गए, उन्होंने देखा कि वहाँ स्त्रियाँ ही अधिक हैं । बच्चे हैं किन्तु पुरुष दिखाई नहीं पड़ते । पता चला कि पुरुष या तो अपने मायके गये हुए हैं या फिर शहर में काम करने । वे ससुराल तभी आते हैं । जब पत्नी की इच्छा व आग्रह हो । हाँ, बच्चे माँ ही पालती है ।

परिवारों का नाम-वंश माँ के ही नाम से चलता है, पिता के नाम से नहीं । यों समझें कि यदि माँ द्विवेदी है और पिता शुक्ला या त्रिवेदी तो सन्ताने द्विवेदी ही कहलायेंगी ।

विवाह का प्रस्ताव सदैव लड़की की ओर से आता है । पहल वही करती है । विवाह के बाद लड़का यानी वर, वधू के घर जाकर रहता है । अपने साथ वह दहेज भी ले जाता है–दहेज में दी जाने वाली मुख्य वस्तुएँ सिलाई मशीन , कपड़े, बिस्तर, ग्रामोफोन, रेडियो सेट आदि होते हैं ।

वहाँ प्रत्येक स्त्री पर उस समय चिन्ता का पहाड़ टूट पड़ता है जब उसके कोई बेटा होता है । समस्या यह रहती है कि यदि लड़का मेहनती नहीं निकला तो इससे कोई भी सम्पन्न-समर्थ लड़की शादी नहीं करेगी और तब कोई ऐसी लड़की ही उससे शादी करेगी, जो खेतों की स्वामिनी न हो ।

घर की भूमि, बगीचे तथा अन्य सम्पत्ति की स्वाभाविक स्वामिनी तो बेटियाँ होती हैं । इसलिए माताएँ बेटों के बारे में ही चिन्तित रहती हैं । जमीन-जायदाद पर बेटियाँ समर्थ होते ही अपना स्वामित्व जताने लगती हैं, अतः माताएँ बेटों की व्यवस्था अपने दाँत के सोने से करती हैं । प्रत्येक गृहस्वामिनी अपने सभी दाँतों में खूब सा सोना भरवाए रहती है । यह उसकी निजी सम्पत्ति होती है । इस खजाने पर बेटियों का कब्जा नहीं होता, शेष सम्पूर्ण घर-जायदाद पर होता है ।

बेटा भी काम सीख ले, ताकि कोई भूस्वामिनी लड़की उससे विवाह कर ले, ऐसा प्रयास हर माँ का होता है । जब काम सीखने के लिए विशेष खर्च की आवश्यकता होती है और समर्थ बेटी घर की कोई जायदाद इस काम के लिये खर्च किया जाना उसी प्रकार पसन्द नहीं करती, जैसे अपने देश में कई घरों में कमाऊ लड़के अपनी बहिन को आगे पढ़ने से इन्कार कर देते हैं, तब उस समय वत्सला माँ पास के बाजार जाती है, वहाँ अपने एक या दो दाँत का सोना निकलवाती है । उसे बेचती है और उस रकम से बच्चे के प्रशिक्षण की व्यवस्था करती है ताकि बेटा कमाऊ और कुशल बने तथा उसके विवाह में व्यवधान न आए । बेटियों का क्या है, वे तो सम्पत्ति की स्वामिनी हैं हीं ।

मलय देश के इन मातृ-मूलक कबीलों में ऐसे अनेक मुहावरे, कहावतें, किस्से प्रचलित एवं लोकप्रिय हैं, जिनका अर्थ यह होता है कि "बेचारे पुरुषों का जीवन भी कोई जीवन है ।" "कितना कठिन है–पुरुष-जीवन । हर ओर विपदा ही विपदा ।"

यदि कोई पति ठीक से काम नहीं करता, लकड़ी नहीं काटता, चावल नहीं पकाता, खेती में मेहनत नहीं करता तो उसे उसकी माँ के पास वापस भेज दिया जाता है । यदि पति इस बीच सुधर गया, अधिक मेहनत का वचन देकर पत्नी देवी को प्रसन्न कर लिया, तो उसे पुनः ससुराल बुला लिया जाता है । दहेज में आये सामान पर तब भी पत्नी का ही हक बना रहता है ।

यों, मलेशिया में ये मातृ-मूलक समाज हैं थोड़े ही । वहाँ राज्य उसी समाज का है, जो पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था से चलता है । चुनावों के समय मातृ-मूलक समाज की स्त्रियाँ मतदान का बहिष्कार करती हैं, क्योंकि वे सोचती हैं कि इस चुनाव के झमेले में पड़ने से सत्ता पुरुषों के हाथ आ जाएगी और तब उन्हें पुरुषों के समान झुकना पड़ेगा । इसीलिए ये चुनाव का बहिष्कार करती हैं । मलेशिया की लोकतंत्री सरकार इस प्रयास में है कि ये स्त्रियाँ अपनी इस भ्रांति से मुक्त हों, चुनावी प्रक्रिया में रुचि लें और नये सामाजिक ढाँचे में ढलें । यह तो हुई लोक कल्याणकारी सरकार के उचित प्रयास की बात । किन्तु उसे उनकी सामाजिक व्यवस्था से कोई शिकायत नहीं ।

इन तथा ऐसे अन्य मातृ-सत्तात्मक समाजों के अध्ययन-विश्लेषण से यह तथ्य सामने आता है कि नर और नारी के बीच जन्मजात रूप से कुछ निश्चित भिन्नताएँ होने की मान्यता आधारहीन है । सैकड़ों-हजारों वर्षों तक जब कोई सामाजिक ढाँचा एक-सा बना रहता है, तो उसके सदस्यों में जन्म से ही वे विशेषताएँ उभरी पायी-जा सकती हैं, जिनकी कि उस समाज में प्रतिष्ठा है । इसका कारण मात्र इतना ही होता है कि लोगों के मस्तिष्क में वे ही विचार, भावनाएँ और मान्यताएँ गहरी चौड़ी होती रहती हैं । इसे ही अल्पज्ञ लोग अटल प्राकृतिक या जैविक विशेषता मान बैठते हैं ।

पुरुष-प्रधान समाज में नारी को दुर्बल, भावातिरेक ग्रस्त, शासन-प्रशासन में अक्षम, कठोर परिश्रम में असमर्थ आदि इतनी अधिकता से माना-कहा जाता रहा है, कि लोग नारी की इन विशेषताओं को निसर्गजात ही मान बैठे हैं । किन्तु इतिहास और समाज का व्यापक अध्ययन कुछ और ही तथ्य सामने लाता है । वह बताता है कि नारी दृढ़ प्रशासिका, प्रचण्ड-प्रबल, व्यावहारिक भी होती है तथा वातावरण के अनुसार आक्रामक, शुष्क-कठोर भी हो सकती है । हाँ, एक अन्तर्निहित करुणा और भावनात्मक मृदुता उसमें अवश्य सदैव प्रवाहित रहती है और कभी नहीं मरती । जबकि कई पुरुषों में ये विशेषताएँ-विभूतियाँ मर ही जाती हैं । उदाहरण के लिए मलयदेश की ऊपर चर्चित मातृ-सत्तात्मक जाति की महिलाओं को ही लें, तो वहाँ बेटी की स्थिति भारत जैसे देशों की बेटियों के समान होने पर भी वत्सला माताएँ उन बेटों की चिन्ता करती हैं, उनके विकास के लिये स्वयं कष्ट उठाती हैं तथा संचित धन खर्च करने में हिचकती नहीं । जबकि अपने देश की पुरुष-प्रधान व्यवस्था के सदस्य पुरुष भी बेटों के प्रति पक्षपातपूर्ण भाव रखते हैं, बेटियों के प्रति नहीं । बेटी को वे भार ही मानते रहते हैं । माँ ही बेटी के प्रति संवेदनशील रहती है । निष्कर्ष यह निकला ही समाज पुरुष-प्रधान हो अथवा नारी-प्रधान, समाज-व्यवस्था के कारण उपेक्षित सन्तान-वर्ग के प्रति कोमल संवेदना दोनों समाजों में नारी के ही मन में उमड़ती है, औसत नर के नहीं । इससे यही स्पष्ट होता है कि करुणा और कोमल संवेदना-नारी की आंतरिक विशेषता है । शेष सभी वे विशेषताएँ, जो सामाजिक व्यवहार से सम्बन्धित हैं, वातावरण और सुदीर्घ परम्परा की निष्पत्ति हैं ।

अतः विज्ञान की दृष्टि से नर और नारी के बीच असमानता की खाई खड़ी करने के प्रयास असत्यपूर्ण हैं, निराधार हैं आवश्यकता है समता पर आधारित एक स्वस्थ समाज की नवरचना की, क्योंकि उसी में प्रत्येक सदस्य को सुख-शान्ति, आनन्द-सन्तोष की वास्तविक अनुभूति हो सकेगी ।

नारी का अवमूल्यन दुर्भाग्यपूर्ण है

उपेक्षा आमतौर से कम महत्त्व की वस्तुओं, कार्यों अथवा प्रसंगों की होती है । परन्तु कई बार देखा जाता है कि अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बात भी उपेक्षा के गर्त में लम्बे समय तक पड़ी रहती है । इसका कारण होता है–घटनाक्रम का स्वभाव में उतर जाना । आदतों में अपनी विशिष्ट क्षमता होती है । जब वे स्वभाव में बस जाती हैं तो मानस को अपने ढाँचे में ढाल लेती हैं । अनुपयुक्त भी अखरता नहीं, प्रिय लगने लगता है ।

जिन्हें गन्दगी में अधिक समय रहना पड़ता है, उनकी नाक इस प्रकृति की हो जाती है कि बदबू से उन्हें परेशानी नहीं होती । किसी जमाने में कैदियों को अँधेरी कोठरियों में रखा जाता था । लम्बी सजा काटने के बाद जब वे बाहर निकलते थे तो उनकी आँखें प्रकाश सहन नहीं कर पाती थीं । वे उजाले को छोड़कर अँधेरे की ओर ही भागते थे । इस प्रकार जिनमें गलत अभ्यास व आदतें बन जाती हैं, उन्हें अनुकूलता भी प्रतिकूलता जैसी लगती है ।

कुछ आम आदतें भी ऐसी होती हैं जो स्वभाव का अंग बन जाने पर उन्हें छोड़ने का विचार तक नहीं उठता वरन् अपनाये रहना आवश्यक लगता है । उदाहरण के लिए, नमक और शक्कर का उपयोग ही लें–जितनी मात्रा में हम दोनों का सेवन करते हैं, वह स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है । जितनी मात्रा में शरीर के लिए आवश्यक है, उतनी मात्रा शाक, फल, अन्न आदि से मिल जाती है । परन्तु स्वाद की दृष्टि से उन्हें अधिक मात्रा में लिया जाता है । यह अभ्यास इतना सहज रूप ले चुका है कि इसके विरुद्ध यदि कुछ कहा जाय तो मूर्ख समझा जाता है । न खाना कमजोरी की बात कही जाती है, जबकि सच्चाई यह है कि नमक, शक्कर की अनावश्यक मात्रा यदि बन्द कर दी जाय तो आर्थिक बचत के साथ स्वास्थ्य सुधरने का असाधारण लाभ भी मिलने लगे ।

कुरीतियों का भी कुछ ऐसा ही जाल-जंजाल है । उनमें लम्बे समय में फँसे चले आने के कारण उनका अखरना तो दूर उल्टे वे स्वाभाविक से भी आगे, उपयोगी, आवश्यक और धर्मसंगत लगने लगते हैं । नर और नारी के

बीच प्रचलित भेदभाव भी ऐसा ही है जो हर दृष्टि से अन्यायमूलक और अहितकर होते हुए भी अपना स्थान बनाये हुए है ।

प्राणी जगत में सर्वत्र नर और मादा दोनों पाये जाते हैं । दोनों समान स्तर पर रहते हैं, उनमें से कोई किसी का मालिक या गुलाम नहीं होता । आवश्यकतानुसार वे परस्पर सहयोग करते और मिल-जुलकर रहते हैं । परन्तु मनुष्यों में इस सन्दर्भ में प्रचलन सर्वथा भिन्न है । नारी को पशुओं की तरह, मालिकों की तरह मरते-खपते रहने के लिए अभ्यस्त कराया जाता है और नर ने ऐसी स्थिति बना ली है मानो वही दूसरे पक्ष का भाग्य विधाता हो । विकसित, अविकसित देशों में यही प्रचलन चल रहा है-केवल प्रयोगों में थोड़ा सा अन्तर है ।

पिछड़े देशों में नारी को नर की सम्पत्ति समझा जाता है और उसे अपने नियंत्रण में चलने, आदेशों का पालन करने के लिए मजबूर किया जाता है । प्रचलन इसी प्रकार का चल पड़ा है । रीति-रिवाज इसी प्रकार के बनाये गये हैं । धर्मशास्त्रों में भी जहाँ-तहाँ इसी अनीति के समर्थन में समर्थ पक्ष की तरफ़दारी की गयी है । नारी को बचपन में पिता, यौवन में पति और बुढ़ापे में पुत्र के अधीन रहने का उल्लेख किया गया है । इसका अर्थ यह हुआ कि उसे किसी भी अवस्था में मानवोचित स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त करने की सुविधा नहीं है । वह किसी भी स्थिति में मानवीय मौलिक अधिकारों का उपयोग नहीं कर सकती । इस प्रचलन में आधी जनसंख्या को प्रकारान्तर से सदा पराधीनता में जकड़े रहने के लिए बाधित किया गया है । इस अनीति में किसी को अवांछनीयता की गन्ध भी नहीं आती । जो चल रहा है, उसे ही स्वाभाविक समझा जाने लगा है । इस असमानता से होने वाली हानि की ओर किसी का ध्यान भी नहीं जाता ।

विकसित देशों में इस प्रतिबन्ध को आर्थिक और मनोवैज्ञानिक आधार पर लागू किया गया है । नारी को स्वेच्छापूर्वक नर की सेविका रहने के लिए लुभाया गया है, उसे सजधज की, शृंगारिकता की, शौक-मौज की ऐसी लत लगायी गई है कि वह सामान्य श्रमशीलों की तरह जीवन बिताने का साहस नहीं कर सकती । पुरुष को लुभाते रहने, उसकी वासना का उपकरण बने रहने में ही उसे सुविधा दिखायी देती है । इसलिए मानवोचित पुरुषार्थ करके और आत्म-निर्भरता प्राप्त करने में उसे भी असुविधा लगने लगी है । इसे स्वेच्छापूर्वक वरण की गयी पराधीनता कह सकते हैं, किन्तु है तो वह भी इसी स्तर की जिनमें स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास की, स्वावलम्बन और प्रगति पथ पर अग्रसर हो सकने की गुंजाइश यत्किंचित ही रह जाती है ।

स्रष्टा ने आधी संख्या नर और आधी नारी की बनायी है । दोनों में समान क्षमताओं का समावेश किया है । दोनों को मानवोचित गरिमा विकसित करने का अधिकार और अवसर प्रदान किया है । परन्तु एक के गुलाम, दूसरे के मालिक बन जाने पर तो स्थिति पूरी तरह उलट जाती है । इसे आधी जनसंख्या को अपंग कर देना कह सकते हैं । इस स्थिति से नर और नारी दोनों को समान रूप से हानि है । दो बैलों में से एक कमजोर हो तो हल या गाड़ी खींचने में एक बैल को ही अधिक भार उठाना पड़ता है । यदि अर्द्धाङ्ग पक्षपात से पीड़ित हो तो असमर्थ अंग के भार को ढोने का काम समर्थ अंगों पर आ जाता है । पराधीन और पिछड़ी नारी, नर के लिए गले में लटकने वाले पत्थर की तरह अतिरिक्त भार बनकर ही रह सकती है ।

गाड़ी तभी ठीक तरह चल सकती है जब दोनों पहिए एक जैसे हों । एक पहिया ऊँचा, एक पहिया नीचा हो तो फिर बात कैसे बने ? एक हाथ छोटा एक बड़ा, एक पैर छोटा एक लम्बा हो तो शरीर की स्थिति अपंगों एवं उपहासास्पद जैसी बन जाती है । आँखें छोटी-बड़ी हों, नाक के नथुने मोटे-पतले हों तो चेहरा कुरूप ही दीखेगा । एक फेफड़ा या एक गुर्दा ठीक से काम न करे तो बहुत दिन तक जीवित न रहा जा सकेगा । नर और नारी के सम्बन्ध में भी पूरी तरह यही बात कही जा सकती है । अंकों में एक ऊपर एक नीचे रहे तो उसका योग मात्र दो ही रहेगा, पर वे बराबर पर लिखे जायें तो उन्हें ग्यारह पढ़ा जाएगा । नर और नारी का समानता के आधार पर विनिर्मित सहयोग ही उन्हें एक और एक ग्यारह की उक्ति के अनुसार सब प्रकार समर्थ बनाता है । दोनों ही एक-दूसरे के लिए असाधारण रूप से उपयोगी सिद्ध होते हैं, किन्तु यदि एक कैदी, दूसरा संरक्षक सिपाही बनकर रहे तो साथ रहते हुए भारभूत बना रहेगा । गुलाम कभी सतत् सहयोगी नहीं बन सकता । वह प्रारम्भ से ही अनमने ढंग से काम करता है । पराधीनता की स्थिति में नारी से न उतने सहयोग की आशा की जा सकती है और न उसके समग्र विकास की ।

आधी जनसंख्या की पराधीनता वस्तुतः मानव समाज की सबसे बड़ी और सबसे विषम समस्या है । भारत सहित अनेक देशों ने राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है, पर अभी भी सामाजिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना शेष है, जो उससे अधिक महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक है । व्यक्तियों का विकास इससे कम में हो नहीं सकता । समता के आधार पर मिलने वाले स्वेच्छा-सहयोग की इससे कम में कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

पुरातन काल में नारी को अधिक वरिष्ठ माना जाता था । उसे देवी की उपमा दी जाती थी । पौराणिक परम्परा में लक्ष्मी-नारायण, उमा-महेश्वर, सीता-राम, राधे-श्याम, शची-पुरन्दर आदि युग्मों से नारी की वरिष्ठता-महत्ता प्रमाणित होती है । उस स्थिति में नारी वीर प्रसूता, नर-रत्नों की खदान थी । अपने पतियों के लिए अर्द्धाङ्गिनी अर्थात् आधा भार सम्हालने मे सहयोग करती थी । परिवारों में गृहलक्ष्मी की भूमिका निभाती और धरती पर स्वर्ग की रचना करती थी ।

मध्यकाल के सामन्तवादी अन्धकार युग में समर्थों ने असमर्थों को पराधीनता में रखने की नीति अपनायी थी। दास और दासी इसी आधार पर पकड़े, खरीदे और बेचे जाते थे। सामन्तों के घरों में अनेक पत्नियाँ–उप-पत्नियाँ रहती थीं। उनका असन्तोष भड़कने न पावे–इसलिए उन्हें कड़े प्रतिबन्धों में जकड़कर रखा जाता था। वे न घर से बाहर निकल सकती थीं और न घूँघट से बाहर मुँह खोल सकती थीं। ऐसी दशा में उनकी उपयोगिता रसोईदारिन, चौकीदारिन, आया जैसी बनकर रह गयी थी। रमणी, कामिनी, भोग्या के रूप में उन्हें आत्म-समर्पण करना पड़ा। नर के लिए अलग कानून बने, नारी के लिए अलग। नर के विशेष अधिकार, नारी के नगण्य। आदर्श के नाम पर पत्नियाँ पति के साथ सती हो जाती थीं, पर यह आदर्श किसी पति ने पत्नी के लिए नहीं निभाया। विधुर प्रसन्नतापूर्वक विवाह कर सकते हैं, पर विधवाओं को वैसा करने में अड़ंगा लगता रहा। परित्यक्ताओं और विधवाओं की जो दुर्दशा होती है वह किसी से छिपी नहीं। पति यदि बड़ी सम्पत्ति न छोड़कर मरा हो तो कई बच्चों की विधवा माता को न पिता के घर में उपयुक्त स्थान मिलता है और न ससुराल वालों से समुचित आर्थिक सहायता। ऐसी दशा मे उस अनाथ–अनाश्रित पर क्या बीतती है–उसकी करुण कथा कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है।

यह सब प्रचलन बतलाते हैं कि अपने समाज में नारी का कितना अवमूल्यन हुआ है। वह दिनभर कम महत्त्व के कामों में पिसती रहने के कारण न शिक्षा प्राप्त कर सकती है, न स्वावलम्बन के लिए योग्यता अर्जित कर सकती है। उपेक्षित–तिरस्कृत रहकर अपना शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य गँवाती रहती है। बच्चों के बोझ से निरन्तर लदती रहने के कारण वह प्रौढ़–परिपक्व होने से पहले ही बुढ़ापे की शिकार हो जाती है। ऐसी दशा में उसका गई-गुजरी, पिछड़ी-अनाथ स्थिति में पड़े रहना स्वाभाविक ही है। घर के मोटे दायरे में जिन्दगी गुजारने के कारण उसे सामाजिक सम्पर्क का, अनुभव-सम्पादन का अवसर ही कहाँ मिलता है ? स्वावलम्बन और प्रगति का द्वार भी नहीं खुल पाता।

जन-जातियों, अनुसूचित जातियों को पिछड़ी समझा जाता है। पर कुछ शिक्षित–सम्पन्न परिवारों की महिलाओं को अपवाद रूप में छोड़कर प्रायः समस्त नारी समाज को उस स्थिति में जीवन-यापन करना पड़ता है जिसे एक शब्द में दयनीय ही कह सकते हैं। इतने पर भी आश्चर्य यह है कि न तो पुरुष वर्ग अपने सहचर वर्ग को उठाने की आवश्यकता अनुभव करता है और न नारी ही मानवोचित जीवन-यापन का अधिकार माँगने के लिए साहस जुटा पाती है।

इसे प्रतिगामिता को सहन करने का अभ्यास ही कह सकते हैं। इसकी तुलना सड़ी कीचड़ के वातावरण में रहने वालों से की जा सकती है। नशेबाजों के अभ्यस्त लोगों से भी इस माहौल को आँका जा सकता है। अँधेरे में लम्बे समय तक रहने वाला प्रकाश की इच्छा नहीं करता। ऐसी ही है नर–नारी के बीच पायी जाने वाली भयावह विषमता– इसे निरस्त करने की भावना विचारशीलों–प्रगतिशीलों के मनों में उठनी चाहिए।

नारी को अविकसित न रहने दिया जाय

दक्ष प्रजापति के यज्ञ में गयी हुई सती जब अपने पति शंकर का अपमान सहन न कर सकीं तो वे यज्ञ में कूद पड़ीं। यह दर्द भरा समाचार जब शिव को मिला तो उनका अन्तःकरण हाहाकार कर उठा। वेदना से उनका हृदय फूट कर बाहर निकलने लगा। योगेश्वर, सदा समाधि में रहने वाले शिव का, कामदेव को तीसरे नेत्र से जलाकर भस्म कर देने वाले शिव का धैर्य और विवेक धर्म-पत्नी के वियोग की उस प्रचण्ड पीड़ा के सामने ठहर न सका। शंकर हतप्रभ हो गये। उनका आन्तरिक हाहाकार ऐसा उमड़ा कि मानो प्रलय ही फूट रही हो। उन्होंने मरी हुई सती की जली हुई लाश को कन्धे पर लादा और पागल उन्मत्तों की तरह अपनी वेदना की लहरों के साथ-साथ उछलने लगे। सती की लाश को कन्धे पर रखे शंकर का रोम-रोम जो हाहाकार कर रहा था, जैसी प्रचण्ड पीड़ा से आलोड़ित हो रहा था, उसे देखते हुए देवता काँपने लगे। उन्हें लगा शंकर के अन्तराल का चीत्कार अपने कलेवर को फाड़कर अब-तब में फट पड़ने वाला ही है। दसों-दिशाओं में हाहाकार मच गया। विष्णु ने उस विपत्ति की घड़ी को टालने के लिए शोक के प्रचण्ड वेग का शमन करने के लिए अपने चक्र से उस लाश के टुकड़-टुकड़े कर डाले। वे टुकड़े जहाँ–तहाँ गिरे वहाँ शक्तिपीठ बने।

नारी के अभाव की जो क्षति ज्ञान-विज्ञान के अधिपति शंकर के लिए असह्य थी वह कितनी महत्त्वपूर्ण हो सकती है ? इसका उपयोग हम वासना के कीड़े, उसके द्वारा उपलब्ध होने वाले लाभों के आधार पर सोचें। यदि हम वासना-दृष्टि से मूल्यांकन करते हैं तो यह हमारी हीन-दृष्टि ही है इससे नारी की महत्ता कम नहीं होती। देवता और भगवान कहने वालों ने अपने नाम का गौरव तभी सार्थक माना, जब उनकी पत्नियों के नाम उनके नाम से पहले जुड़े।

पौधा कोई भी क्यों न हो उसे उपयुक्त भूमि की एवं पानी की आवश्यकता होती है, उसके बिना उसका विकास सम्भव नहीं। इसी प्रकार व्यक्ति के मानस-संस्थान का उचित विकास होने के लिए माता तथा नारी का अभीष्ट सहयोग अपेक्षित है। इन पंक्तियों में अभीष्ट सहयोग से मतलब माता के लाड़-चाव, पालन-पोषण से और पत्नी के वासना तृप्ति करने से नहीं है। यह तो आमतौर से सर्वत्र

ही होता रहता है । माता अपने आन्तरिक संस्कारों को बालक के जन्म से पूर्व पर्याप्त मात्रा में उसके मन, मस्तिष्क, हृदय या नाड़ी संस्थान में भर देती है । बच्चे की प्रकृति का आधे से अधिक भाग उसके जन्म से पूर्व बन चुका होता है । शेष आधा ही सत्संग, स्वाध्याय, वातावरण, अनुकरण आदि के आधार पर बनता है । यदि माता ने बालक का निर्माण केवल शरीर तक ही सीमित नहीं रखा है, उसे अपने उच्च संस्कार भी प्रदान किये हैं तो यह माना जाएगा कि निर्माण में उसने अभीष्ट सहायता दी है । इसी प्रकार पत्नी ने वासना और व्यवस्था तक ही सीमित न रहकर यदि पति की अन्तरात्मा को छुआ है, उसकी प्रसुप्त मनोभूमि को सुविकसित करने में प्रसन्नता, उत्साह, आशा, स्फूर्ति, धैर्य, साहस आदि गुणों को प्रस्फुटित करने में योगदान दिया है तो इसे भी अभीष्ट सहयोग कहा जाएगा । जिस व्यक्ति को सहृदय और सुसंस्कृत माता एवं पत्नी प्राप्त हुई हैं उसे सब प्रकार सौभाग्यशालिनी ही कहा जा सकता है और इन दोनों के द्वारा उसका अन्तःस्थल इतना विकसित हो गया होता है कि वह जीवन को किसी भी दिशा में आशाजनक प्रगति कर सकता है और बड़ी से बड़ी कठिनाई के साथ हँसते-हँसते टक्कर ले सकता है ।

उपार्जन, उन्नति और प्रसन्नता के अनेक साधन जुटाने के लिए हम दिन-रात जी-जान से प्रयत्न करते हैं । फलस्वरूप बहुत कुछ उपकरण जुटा भी लेते हैं परन्तु उनका प्रभाव केवल बाहरी जीवन तथा इन्द्रियों की प्रसन्नता तक ही सीमित रहता है । अन्तःस्तल को छूने और विकसित करने वाली वस्तु उनमें से कोई नहीं होती । मनुष्य की महानता, उसकी साधन-सामग्री पर नहीं वरन् उसके आन्तरिक गुणों पर निर्भर करती है । अनेक निम्न व्यक्तित्व के–आन्तरिक दुर्बलता और हीनता की भावना से ग्रसित व्यक्ति कोई कहने लायक उन्नति नहीं कर सकते । ऐसे भाग्य से अनायास ही कोई लाभदायक अवसर प्राप्त हो जाय तो वह स्थिति देर तक कायम नहीं रह सकती । व्यक्तित्व के दोषों के कारण अन्ततः दुःख-दुर्भाग्य ही सामने आ खड़ा होगा । इसलिए बुद्धिमान लोग अपने में, अपने स्त्री-बच्चों और परिजनों में अच्छे स्वभाव, गुण और आचार की अभिवृद्धि का प्रयत्न करते हैं । क्योंकि स्थायी उन्नति केवल सुविकसित मनोभूमि पर ही अवलम्बित है । दुर्बुद्धि मनुष्य किसी प्रकार कुछ उपार्जन भी कर ले तो उसके अहंकार एवं दुर्गुणों की वृद्धि में ही सहायता मिलती है और पतन की घड़ी तेजी से समीप आने के कारण बनने लगते हैं ।

सुसंस्कारों के संग्रह होने में और भी अनेक कारण हैं । घर का सबसे बड़ा कारण माता द्वारा गर्भ-काल में ही बालक को अपनी अन्तःस्थिति का दान और बड़े होने पर पत्नी द्वारा उसके ब्रह्म का उद्‌बोधन, शोधन और अभिवर्द्धन ही है । इन दोनों के द्वारा जितनी वास्तविकता के साथ व्यक्ति के अन्तःनिर्माण कार्य हो सकते हैं उतना अनेकों विश्वविद्यालय मिलकर भी नहीं कर सकते । अपार सम्पत्ति का स्वामी होकर भी, विपुल कीर्ति और सत्ता का अधिकारी होकर भी मनुष्य इतनी शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त नहीं कर सकता, जितनी कि नारी अन्तरात्मा को निचोड़ कर नर को पिलाने की प्रकृया में प्रदान कर देती है । माता केवल दूध ही नहीं पिलाती स्नेह भरा वात्सल्य भी पिलाती है, साथ ही अगणित सुसंस्कार भी । इसी प्रकार पत्नी केवल वासना की तृप्ति ही नहीं करती वरन् अन्तर की अनेक उत्तेजनाओं, अशान्तियों और अव्यवस्थाओं का भी शमन कर देती है । वह माता की तरह भले ही दूध न पिलाती हो पर अदृश्य रूप से जो कुछ पिलाती है वह अन्तःतृप्ति के लिए अत्यधिक महत्त्व पूर्ण होता है ।

हमारे समाज की नारी आज जिस हीन दशा में पड़ी है उसमें तो पाक-विज्ञान, शिशु-पालन, गृह-व्यवस्था, परस्पर शिष्टाचार-सम्बन्ध, आरोग्य-ज्ञान, हिसाब-किताब, सामान्य ज्ञान जैसी गृहस्थोपयोगी मामूली बातों की भी आशा नहीं की जा सकती । उसके यह साधारण कार्य भी भौंड़े, त्रुटिपूर्ण और अस्त-व्यस्त पड़े रहते हैं, फिर उन सुसंस्कारों की आशा कैसे की जाय जो वे अपने तक ही सीमित न रखकर अपने पति और पुत्रों को प्रदान कर सकती है ।

नारी को अविकसित और पद्दलित रखकर पुरुष ने पिछली शताब्दियों में पाशविक अहंकार की पूर्ति की है । मैं समर्थ हूँ, मेरे पुरुषार्थ पर ही नारी जीवित रहे, इस अहंभाव से प्रेरित होकर उसने नारी को एक कोने में बिठा दिया, पर्दे में रखा, घरों की चहारदिवारी में कैद किया और घर में या घर से बाहर निकल कर कुछ भी न करने की व्यवस्था बना दी । उसका अहंकार फूला न समाया । मैं कितना समर्थ हूँ कि एक नारी की स्वाभाविक क्षमता की पूर्ति भी अपने ही द्वारा कर सकता हूँ । इसे उसने अपना बड़प्पन माना और गर्व भी अनुभव किया । इस व्यर्थ अहंकार में पुरुष का तो कुछ लाभ हुआ नहीं, नारी की सारी क्षमताएँ कुण्ठित हो गयीं, वह सभी दृष्टियों से लुंज-पुंज हो गयी । ऐसी दीन-स्थिति में पड़ी हुई गृहिणी जिसने अपने मानसिक संस्थान को शिक्षा और अनुभव से रहित परिस्थितियों में पड़े रहकर सब प्रकार दुर्बल बना लिया है–पुरुष के लिए, अपने परिवार के लिए, स्वयं अपने लिए उपयोगी भी क्या हो सकती है ?

क्या इतिहास से हम कुछ सीखेंगे

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ कार्लाइल ने कहा है–"मनुष्य की बुद्धिमत्ता इस बात में है कि वह अपनी पिछली गलतियों को न दुहराये । किसी जाति के विकास का भी यही आधार है । इतिहास का सबसे बड़ा लाभ यही है कि यह

किसी जाति की पिछली गलतियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है और उन आधारों को भी दर्शाता है जो उसके विकास में सहायक होते हैं । इसलिए प्रत्येक विकासशील जाति अपने इतिहास से सीख लेकर ही आगे बढ़ सकती है ।" कार्लाइल का यह प्रतिपादन पूर्णतः सटीक है और इसकी पुष्टि के लिए हम यदि इतिहास का अध्ययन करें, तो प्रतीत होगा कि जब-जब किसी समाज ने अपनी पिछली भूलें दुहराईं, तब-तब उन्हीं विफलताओं और दुःस्थितियों का सामना करना पड़ा है । भारतीय इतिहास में ही विदेशी आक्रमणकारियों ने जब-जब आक्रमण किये तब-तब एक ही कारण से हमें उनके सामने घुटने टेकने पड़ते । वह कारण था-आपसी फूट । लगातार डेढ़ हजार वर्ष तक विदेशी आक्रान्ताओं से हम पददलित होते रहे हैं इसका एकमात्र यही कारण है कि हम शौर्य, साहस, पराक्रम और वीरता में किसी से कम न होते हुए भी आपसी तालमेल और सामंजस्य स्थापित नहीं कर सके ।

बड़ी कीमत चुका कर हमने अपनी इस भूल को समझा और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उस त्रुटि को सुधारने के लिए यथासम्भव प्रयत्न करते रहे हैं । किन्तु इससे भी भयंकर एक और भूल हमसे होती रही है-जिसकी ओर हमने अभी तक गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया है । वह है नारी की-मातृशक्ति की उपेक्षा, अवहेलना । उपेक्षा ही नहीं, उसका पददलन, शोषण और उस पर दुर्भावनापूर्ण आक्षेपों, धारणाओं, मान्यताओं तथा प्रतिबन्धों का आरोपण । इस भूल ने भारतीय समाज को बड़ी बुरी तरह क्षति पहुँचायी है । दुनिया के कई देश जो भारत के साथ ही स्वतन्त्र हुए थे या उसके दो चार वर्ष आगे-पीछे उन्हें स्वतन्त्रता मिली थी आज भारत से कई क्षेत्रों में आगे हैं जबकि हम लोग अभी तक दिशा ही स्थिर नहीं कर पाये * कि हमें किस दिशा में और किस क्षेत्र में आगे बढ़ना है ।

अस्तित्व बोध-जो किसी भी व्यक्ति या समाज के लिए प्रगति यात्रा का पहला चरण है, उसके जन्म-उत्सव से ही आरम्भ होता है और मनुष्य तथा मनुष्यता के जन्म का उत्स है-नारी । उसे मनुष्य और मनुष्यता की जननी होने के कारण ही मनीषियों ने उसे मातृ-शक्ति कहकर सम्मानित सम्बोधित किया है । इतिहास इस बात का साक्षी है कि अतीतकाल में जब तक भारतीय समाज ने नारी को मातृ-शक्ति के पद पर प्रतिष्ठित रखा तब तक उसने ऐसे-ऐसे श्रेष्ठ मानव रत्न समाज को दिये जिन्होंने अपने समय को इतिहास के पन्नों पर स्वर्ण युग के रूप में अंकित किया । उसे गृह-लक्ष्मी, कुलमाता, परिवार की स्वामिनी और समाज की माता कहा जाता रहा, तब तक भारतीय समाज विश्व रंगमंच पर प्रमुख और मार्गदर्शक भूमिका निभाता रहा ।

उस घड़ी को दुर्भाग्य कहें या हमारी मूर्खता जब लोगों ने स्त्री को गृह-लक्ष्मी की गौरवगरिमा से वंचित कर उसे घर-आँगन की शोभा बनाकर चहारदीवारी में पटक दिया । पहले जहाँ स्त्रियाँ समाज और राष्ट्र तक को प्रभावित करने वाले कार्यक्रमों और गतिविधियों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं, उन्हें घरेलू कार्यों में परामर्श देने के अधिकार से भी वंचित कर दिया गया । इससे पूर्व प्राचीन काल में जहाँ ऋषिकाएँ लोकशिक्षण और समाज का मार्ग-दर्शन करने में भी आगे बढ़कर कन्धे से कन्धा मिलाकर हाथ बँटातीं, वहाँ उसकी स्वयं की शिक्षा अनावश्यक और अनर्थकारी समझी जाने लगी । अतीत साक्षी है, इस बात का कि स्त्रियाँ न केवल समाज निर्माण के मोर्चों पर काम करती थीं, बल्कि राष्ट्र रक्षा और संस्कृति व धर्म के गौरव की रक्षा के लिए वह युद्ध क्षेत्र तक में जाती थीं और कई अवसरों पर तो पुरुष से भी बढ़-चढ़कर साहस का प्रदर्शन करती थीं । रामायण में एक युद्ध के अवसर पर कैकयी द्वारा राजा दशरथ के एक मोर्चे पर साथ देने तथा संकट की घड़ी में उनके प्राण बचाने की महिमा सर्वविदित है । यह भी सभी जानते हैं कि दशरथ ने कैकयी के इसी शौर्य-साहस से प्रभावित होकर उसे दो वरदान माँगने के लिए कहा था और कैकयी ने वे दोनों वरदान अपने लिए सुरक्षित रखते हुए राम के राज्याभिषेक के समय माँगे थे ।

इस तरह की ढेरों घटनाएँ मिल जाएँगी । परन्तु दुर्भाग्य कि पराक्रम और शौर्य के क्षेत्र में भी पीछे न रहने वाली नारी कालान्तर में अपनी आत्म-रक्षा के लिए भी असमर्थ हो गयी । यह भी हो सकता है कि विदेशी आक्रमणकारियों के अत्याचारों से अपनी कुल मर्यादा की रक्षा और सतीत्व को बचाने के लिए उसे घर के अन्दर ही सुरक्षित रखने की बात सोची गयी हो, किन्तु इस रूप में हमें बड़ी महँगी कीमत चुकानी पड़ी । तत्काल ऐसा करना भले ही समझदारी की बात रही हो परन्तु उसके दूरगामी परिणाम समाज की जीवनीशक्ति को नष्ट करने के रूप में ही सामने आये । इस बात में भी कोई दम नहीं दीखता कि स्त्रियों को सतीत्व रक्षा के लिए उन्हें प्रतिबन्धित किया गया और उनके कार्यक्षेत्र को सीमित बना दिया गया । क्योंकि भारतीय नारियों में उस स्तर का पराक्रम और शौर्य पहले से ही रहा है । उसके साथ छल तो विदेशी आक्रमण से पूर्व ही किया जाने लगा था । प्राचीन और दासता के मध्यवर्ती युग में स्त्रियों को मनोरंजन का साधन मानने, उनका क्रय-विक्रय होने तथा सम्पत्ति के रूप में उसकी गणना करने की परिपाटी चल पड़ी थी । उस मध्यवर्ती काल के सम्बन्ध में इतिहासकार बताते हैं कि उन दिनों उस व्यक्ति को समाज में उतना ही बड़प्पन और मान मिलता था जिसके पास जितनी अधिक स्त्रियाँ थीं । स्त्रियों का अपहरण, उनकी लूट और उनके क्रय-विक्रय की परम्परा ही इस बात की द्योतक है कि तत्कालीन पुरुष समाज ने मातृ-शक्ति को सिंहासन से उतारकर किस बर्बरतापूर्वक गन्दी नाली में फेंक दिया था ।

प्रकृति कभी किसी को माफ नहीं करती और न ही किसी भूल या त्रुटि को क्षमा करती है । नारी के साथ

मातृ-शक्ति के साथ किये गये इस वर्बरतापूर्ण अत्याचार का दुष्परिणाम कालान्तर में ही निकलकर सामने आने लगा। जब स्त्री को सम्पत्ति ही मान लिया गया, उसे निर्जीव वस्तुओं की श्रेणी में रख दिया गया तो इस तथ्य की ओर किसका ध्यान गया होगा कि वह माँ भी है, जननी भी है। इस दृष्टि से उसे गुणवती और सक्षम बनाने की ओर ध्यान भी नहीं ही गया होगा। केवल उसे सजाने, गुड़िया बनाकर अधिकाधिक आकर्षक रूप देने की ओर ही पुरुष का ध्यान केन्द्रित रहा होगा। इस तरह विलासिता के उन्माद में कुचली और वासना के पंक में लथेड़ी गयी, नारी से श्रेष्ठ-सन्तान-तेजस्वी व्यक्तित्व प्राप्त करने की अपेक्षा कैसे की जा सकती।

माना कि उस काल में सभी स्त्रियों को इस तरह की स्थिति का शिकार नहीं होना पड़ा होगा। नारी को रमणी माना गया होगा किन्तु माँ, बहिन और पूज्य सम्बन्ध तब भी रहे होंगे। उनके लिए पुत्र और भाइयों का वैसा ही आदर भाव रहा होगा, परन्तु समाज का वातावरण ही तो इस प्रकार का हो गया था जिसमें प्रत्येक स्त्री अपने आपको असुरक्षित और दीन-दयनीय स्थिति में फँसी अनुभव करती होगी। सुरक्षा और मर्यादा के नाम पर घर से बाहर न जाने, विद्यालय में शिक्षा प्राप्त न करने, पुरुषों के बीच न जाने जैसे निषेध और पर्दा करने, पति और पुत्र से ही बात करने तथा घर के अन्दर सीमित रहने जैसे प्रतिबन्ध, नारी को-मातृ-शक्ति को कुण्ठित करने लगे। उसका विकास अवरुद्ध हुआ और वह जीवित यन्त्र की भाँति रहने लगी जिसे तेल और ईंधन दिया जाता रहे तो उपयोग किया जा सके। नर और मनुष्यता की जननी के साथ जड़ वस्तु या मूक पशु की भाँति व्यवहार उसके व्यक्तित्व को निर्जीव बनाने लगा और वह सन्तान को जन्म भर देने योग्य रह गयी। पुरुष को-मनु-सन्तानों के संस्कार कहाँ से मिलते, कैसे प्राप्त होता उन्हें वह वातावरण जिसमें इतना जीवट उत्पन्न हो सके कि वह संस्कृति का भाल पूर्ववत् उन्नत रख सके। कैसे मिलता समाज को वह बल जिसमें कि वह विदेशी और विधर्मी के प्रति झुकते जा रहे सिर को तानकर खड़ा रख सके।

उन्हीं घड़ियों में आरम्भ हुई वह काल-रात्रि जिसका अन्धकार डेढ़ हजार वर्ष तक छाया रहा और सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना से शून्य भारतीय केवल अपनी ही चिन्ता करते हुए, अपने स्वार्थ की पूर्ति ही पर्याप्त समझते हुए मृत प्रायः जीवन जीता रहा। कहा जाता है कि इतिहास एक बार गिरने के बाद फिर सम्हलने का अवसर देता है। ठोकर खाकर आदमी गिरता है तो उसे दुबारा उठने का मौका मिलता है। सम्हल कर न चलने के कारण ठोकर लगी हो अथवा कमजोरी के कारण, कोई गिर पड़ा हो यदि उठने के बाद सम्हल कर नहीं चलता अथवा कमजोरी को नहीं मिटाता तो दुबारा उससे भी पुनः भयंकर स्थिति सामने आती है, जिसकी परिणति पुनः गिरने से लेकर मरने तक के रूप में होती है।

इन दिनों हमारे समाज की स्थिति गिरने के बाद उठने वाले व्यक्ति की तरह है। डेढ़ हजार वर्ष पूर्व हमारे पतन का कारण यही रहा है कि हम संस्कृति की गौरव पताका को थामे रहने वाले समर्थ व्यक्तित्व उत्पन्न करने में असमर्थ हो गये। अपनी नादानियों के कारण हो या गलतियों की वजह से हमने उस आधार को ही तहस-नहस करना आरम्भ कर दिया था; जिस पर कि ऐसे समर्थ व्यक्तित्व उत्पन्न हो सकें। समर्थ और सशक्त व्यक्तित्वों का उदय-आविर्भाव ही हमारे यहाँ अवरुद्ध हो गया। केवल इसलिए कि हमने मातृ-शक्ति की अपवंचना आरम्भ कर दी उसे उसके गौरव से वंचित करना शुरू कर दिया।

इस अपराध का दण्ड लम्बे समय तक भुगतने के बाद हमें अवसर मिला है कि हम अपनी भूल को सुधारें और मातृ-शक्ति के पुनरुत्थान की आवश्यकता समझें। अब तक हमारी प्रवृत्ति जिस भी दिशा में रही है इस ओर, इससे निराश ही होना पड़ता है। अपनी भूल को सुधारने के स्थान पर हम उसका कलेवर बदलने की ओर ही अधिक उन्मुख हैं। पहले नारी को सम्पत्ति बनाकर कैद किया गया तो अब उसे विभिन्न आकर्षक रूपों में प्रदर्शित करने की भूल कर रहे हैं। उसे जननी, माता, गृह-लक्ष्मी और गृह-स्वामिनी के रूप में पुनर्प्रतिष्ठित करने के लिए जरा भी प्रयास नहीं किये हैं। उसके प्रति हमारा दृष्टिकोण अब भी नहीं बदला है। कहने को आज की नारी स्वतन्त्र है, परन्तु आधुनिकता, सभ्यता और प्रगतिशीलता के नाम पर उसे जिस दिशा में धकेला जा रहा है उससे लगता है कि अब नारी को आत्म-हत्या के लिए तैयार करने के प्रयत्न चल रहे हैं। पहले उसे जबरन बेड़ियों में जकड़ा गया, अब उसे बेड़ियों में गौरव का आभास करा कर उन्हें पहनने के लिए तैयार किया जा रहा है।

कहा जाता है कि न्यायालय किसी अपराधी को पहली बार अपराध करने पर उदारतापूर्वक विचार करता है और उसी के अनुसार दण्ड देता है। उस दण्ड का उद्देश्य यह रहता है कि व्यक्ति को अपने अपराध का बोध हो और उस दण्ड से सीख लेकर अपने सुधार के लिए प्रयत्न करता रहे। अपराधी इस पर भी अपना सुधार करने के लिए प्रयत्न नहीं करता और दुबारा अपराध कर्मों में प्रवृत्त होता है तो उसे अगली बार कड़ा दण्ड दिया जाता है। पहली बार नारी का अवमूल्यन कर-उसे उसकी गौरव-गरिमा से गिराकर हमने एक अपराध किया और इतिहास ने उसका दण्ड अंधेरी काल कोठरी की तरह अन्धकारपूर्ण परिस्थितियों में सैकड़ों वर्षों तक रहने का दण्ड दिया। कहा जा सकता है कि वह पहला अपराध था जिसका दण्ड देते समय इतिहास ने उदारतापूर्वक विचार किया। अब भी यदि हम अपने समाज को इस अवांछनीय कृत्य से विमुख न कर सके तो काल पुरुष हमे कौन-सा और कितना कड़ा दण्ड देगा-कुछ कहना सम्भव नहीं है।

भारतीय नारी की प्रगति अवरुद्ध न रहे

भारत को छोड़कर अन्य देशों में नारियाँ कितनी तीव्रगति से उन्नति तथा विकास कर रही हैं इसके उदाहरण के लिए एक छोटे से देश रूमानिया के कई वर्ष पहले के आँकड़े दिये जाते हैं जो भारतीय पुरुषों की आँखें खोल देने के लिये पर्याप्त ही नहीं, प्रेरक भी हैं।

वहाँ का जनवादी विधान महिलाओं को पुरुषों की बराबरी का अधिकार देता है। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि प्रत्येक क्षेत्र में वहाँ की महिलाओं ने देश की विभिन्न नौकरियों में महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त किये हैं। सभी क्षेत्रों में उनका महत्त्वपूर्ण सहयोग मिल रहा है। वहाँ राजनीतिक क्षेत्र में महिला सदस्य हैं, प्रदेश की छोटी सभाओं में उनतालीस हजार सात सौ पंचानवे महिलाएँ राजनीतिक कार्य करती हैं। पैंतालीस हजार से अधिक स्त्रियाँ उद्योग संस्थानों और समाजवादी कृषि यूनिटों में काम करती हैं। मजदूरी करके अपनी जीविका स्वयं कमाने वाली महिलाओं की संख्या का अनुपात अट्ठाइस प्रतिशत है। उद्योग-धन्धों में पुरुषों की तरह तीन लाख अस्सी हजार महिलाएँ काम करती हैं। साठ लाख से ऊपर व्यापारिक कामों में विशेष योग्यता प्राप्त हैं। महिलाओं में पुरुषों की तरह बुद्धि, समझ, योग्यता और सूझ-बूझ होती है, अतः रूमानिया की सत्तावन हजार महिलाओं उच्च प्रशिक्षण प्राप्त कर रही हैं। समस्त महिलाएँ में चार दशमलव एक प्रतिशत इन्जीनियर और तकनीशियन हैं और ग्यारह दशमलव सात प्रतिशत दफ्तरों में काम करने वाली हैं। शिक्षा का क्षेत्र स्त्रियों के लिए सबसे अधिक अनुकूल पड़ता है।

रूमानियां में सभी प्रकार की शिक्षा स्त्रियों के लिए सर्वसुलभ है। नब्बे हजार स्त्रियाँ पढ़ाने का काम करती हैं, जिनमें से तीन हजार चार सौ उच्च शिक्षण संस्थाओं में अध्यापन का कार्य करती हैं। पैंसठ प्रतिशत स्त्रियाँ स्वास्थ्य और सामाजिक सेवाओं में काम करती हैं और दस हजार डॉक्टरनियाँ, नर्सें या मिडवाइफ हैं। विज्ञान, कला और संस्कृति के क्षेत्र में बड़ी जाग्रति है। तीन सौ पचास स्त्रियाँ प्लास्टिक, कलाकारों, कवियों, लेखकों की यूनियनों की सक्रिय सदस्य हैं। इक्यानवें महिलाओं को हाल ही में थियेटरों में कुशलता प्राप्त करने के लिए विभिन्न उपाधियों से विभूषित किया गया है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि व्यापार से लेकर श्रम तक और विज्ञान से लेकर कला तक का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं बचा है जहाँ पर नारियों की प्रगति नहीं हो रही है। इस प्रगति का अभियान यहीं तक रुक नहीं जाता है। इन नारियों के जो बच्चियाँ होंगी क्या वे उन्हें अपने से आगे पढ़ाने का प्रयत्न न करेंगी। जगी हुई नारी भारत की मूढ़ माताओं की तरह कन्याओं की प्रगति की बाधक नहीं होतीं। यह दशा तो एक छोटे से देश रूमानियां की है। बड़े-बड़े देशों की नारियाँ तो कहीं अधिक उन्नति तथा प्रगति कर रही हैं। बल्कि यों कहना चाहिए कि वहाँ नारी विकास जैसी किसी समस्या अथवा प्रश्न का कोई अर्थ ही नहीं रहा गया है। विदेशों में नारी पूरी तरह पुरुष के समकक्ष समझी जाती है और उन्हीं के समान हर क्षेत्र में अधिकार तथा सेवा का उपभोग कर रही है। यह प्रगति उनके राष्ट्रीय जीवन का संस्कार बन गई है। कोई अपवाद विशेषता या बड़ाई की बात नहीं रह गई है। नारी विकास उनके यहाँ ठीक पुरुषों की तरह स्वाभाविक प्रक्रिया होकर साधारण गति से चलने लगा है।

कहने को तो कहा जा सकता है कि भारत में भी नारी को समान अधिकार तथा अवसर दिया जाता है, उनके साथ भेदभाव नहीं बरता जा रहा है। ये किसी भी क्षेत्र में मनमाना विकास कर सकने के लिये स्वतन्त्र हैं। दीखने को यह भी दीख रहा है कि नारियाँ राजनीतिक, शासनिक तथा प्रशासनिक क्षेत्र से लेकर कला-कौशल के क्षेत्र में काम कर रही हैं। स्कूल, कालेजों में शिक्षा प्राप्त कर रही हैं और कल-कारखानों में भी काम कर रही हैं। मजदूरी तथा कृषि में भी हाथ बँटा रही हैं। किन्तु यह सब भारत में माना अस्वाभाविक ही जाता है। उपार्जन करने वाली नारियों में अधिकांश ऐसी हैं जो आर्थिक दबाव के कारण ही कहीं काम करती हैं। बहुत ही कम नारियाँ ऐसी होंगी जो अपनी प्रतिभा तथा योग्यता का समुचित उपयोग करने के लिये सेवा कार्यों में जाती हैं। समाज में इस समय भी बहुमत ऐसे ही संकीर्ण तथा मूढ़ व्यक्तियों का है जो अपनी लगनशीलता और अपने बल पर चढ़ी हुई नारी की ओर अँगुली उठाता है। उनके चरित्र के सम्बन्ध में तरह-तरह की मनगढ़न्त बातें उड़ाता है। शिक्षित अथवा काम करने वाली नारी को नीची दृष्टि से देखता है। उन्हें गिराने, लज्जित तथा लांछित करने की चेष्टा करता है। उसे नारी की इस प्रगति में अनिष्ट तथा अवांछनीयता की ही छाया दिखलायी देती है। लांछन एवं कुत्सारोप के कारण निन्यानवें प्रतिशत नारियाँ प्रगति तथा उन्नति की इच्छा रखती हुई भी लोकापवाद के कारण घरों में पड़ी-पड़ी अपनी प्रतिभा तथा सम्भावनाएँ नष्ट करती रहती हैं। नारी सब कुछ सहन कर सकती है किन्तु अपने चरित्र पर लांछन नहीं सहन कर सकती। निस्सन्देह उस देश की सर्वतोमुखी उन्नति होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है जिस देश की नारी समाज पुरुष के साथ कन्धा से कन्धा मिलाकर हर क्षेत्र में उसका हाथ बँटा रही हो। राष्ट्र निर्माण के पुण्य कार्य में योगदान दे रही हो। जिस राष्ट्र की स्त्री-पुरुष दोनों भुजाएँ समान रूप से बलिष्ठ, दक्ष तथा बढ़ी हुई हों उस देश की शक्ति बढ़ती चली जाये तो इसमें विस्मय की कोई बात ही नहीं है। ऐसे प्रगतिशील देश की नारियाँ संकट काल में राष्ट्र की दुर्बलता न बनकर, सारी आन्तरिक व्यवस्था सँभाल लिया करती हैं।

पुरुष युद्ध जैसे किसी निर्णायक संयोग में लगा होता है । ऐसे देश की उन्नतशील नारी आधार टूट जाने पर अपनी योग्यता के आधार पर परिवार का स्तर नहीं गिरने देती । ऐसे भाग्यवान देश की नारियाँ ही अच्छी सन्तानों को जन्म तथा लालन-पालन देकर समाज की भावी पीढ़ी का निर्माण कर सकती हैं और वे देश-देश में कर रही हैं ।

किन्तु नारियों की यह उन्नति सम्भव कब हुई जब उसे पुरुष की दासता से मुक्त किया, उसके समानाधिकार को पूर्ण रूप से मान्यता दी और उसे राष्ट्र का सहज स्वभाव बना दिया । जब उसे दस-दस बारह-बारह बच्चों के प्रजनन तथा पालन के अनुचित दायित्व से राहत दी । जहाँ नारियों को हर साल दूसरे साल एक बच्चा जनना तथा उसका पालन-पोषण करने के काम में ही अपनी सारी जिन्दगी लगा देनी पड़े, वहाँ की नारी क्या प्रगति कर सकती है । जहाँ की नारी भोग की साधन और घर की दासी मानकर बरती जाती हो वहाँ का यह वर्ग किस बलबूते पर प्रगति कर सकता है । जहाँ की नारी अशिक्षा तथा अन्ध-विश्वास के तिमिर में भटक रही हो उस देश की सर्वांगीण उन्नति की आशा नहीं की जा सकती । जहाँ की नारी को कोई अधिकार देने में संकीर्णता की जाती हो और जहाँ नारी स्वयं अपना मूल्य व महत्त्व न समझती हो और जहाँ का नारी वर्ग स्वयं के उत्पात का शत्रु हो, वहाँ महिलाओं की प्रतिभा तथा उपयोगिता का लाभ उठाने का स्वप्न भी नहीं देखा जा सकता । जिस देश, राष्ट्र अथवा समाज की नारी इससे बुरी तरह अभिशप्त होगी वह राष्ट्र, देश अथवा समाज कोई वांछनीय प्रगति कर सकता है यह कह सकना बुद्धिमानी का परिचय नहीं होगा ।

भारत को यदि प्रतिष्ठा का उच्च सोपान प्राप्त करना है तो उसे अपनी जननी, नारी शक्ति को एक अध्यात्मिक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना पड़ेगा वही अन्त में इस देश का उद्धार करेगी ।

नारी को विकसित किया जाना आवश्यक है

सर्वांगीण प्रगति को ही प्रगति कहा जा सकता है । यदि शरीर के किसी एक अंग की उन्नति हो और शेष अंग अवनत पड़े रहें तो उससे कोई सन्तोषजनक परिणाम नहीं निकल सकता । पेट खूब मोटा हो जाय और हाथ-पैर पतले रहें तो इससे कुरूपता और असुविधा ही बढ़ेगी । फील पाँव रोग में एक पैर मोटा हो जाता है और शेष सब अंग स्वाभाविक रहते हैं तो वह एक पैर का मोटा होना किसी प्रकार की प्रसन्नता नहीं बढ़ा सकता । इसी प्रकार यदि हमारी आर्थिक स्थिति अच्छी रहे और जीवन की अन्य दिशाएँ अविकसित रहें तो वह आर्थिक उन्नति सुखदायक न होकर मोटे पैर वाले व्यक्ति की तरह कष्टकारक ही होगी ।

माना कि धन बहुत है । पर उसकी उपयोगिता तभी है जब उसका सदुपयोग होने की व्यवस्था हो, यदि उसका दुरुपयोग होने लगा तो वह अमीरी वस्तुत: गरीबी से भी अधिक कष्टदायक एवं विपत्ति उत्पन्न करने वाली होती है । उपार्जित धन को अकेला कमाने वाला ही खर्च नहीं करता, उसका लाभ वह अकेला ही नहीं उठाता वरन् परिवार के सब लोग मिल-जुलकर ही उसका उपयोग करते हैं । घर के अन्य सदस्य यदि कुबुद्धि वाले हों तो संग्रहीत धन ही उनके लिये आपस में लड़-मरने या तरह-तरह के दुरुपयोग करके अन्तत: रोग, अपकीर्ति, कलह, पाप एवं दण्ड के भोगने का कारण बनता है ।

आज धन उपार्जन की प्रवृत्ति बड़े प्रबल वेग से हर मनुष्य के मस्तिष्क में काम कर रही है । व्यक्ति का एक ही लक्ष्य मालूम पड़ता है, अधिकाधिक धन उपार्जन करना और उसकी होली जलाकर तमाशा देखना । आमतौर से यही प्रधान आकांक्षा है, यह दूसरी बात है कि सफलता किसे कितनी मात्रा में मिले । धन को महत्त्व देना उचित है और आवश्यक भी । पर उसे इतना महत्त्व मिलना नहीं चाहिए कि जीवन की अन्य महत्त्वपूर्ण दिशाएँ उपेक्षित ही पड़ी रहें ।

धन की आवश्यकता परिवार के लिये होती है । मनुष्य जितना कमाता है उसका अपने लिये तो एक बहुत स्वल्प भाग ही काम में लाता है, शेष तो परिवार के प्रयोजनों में ही खर्च होता है । मरने के बाद भी मनुष्य अपने उपार्जन को अपने परिवार के लिये ही छोड़ देता है । जिस परिवार के प्रति मनुष्य की ममता धन के ही समान नहीं, वरन् उससे भी अधिक है, उसकी सन्तुलित उन्नति के लिए समुचित ध्यान न दिया जाय तो वह दुर्भाग्यपूर्ण बात ही होगी । जेवर, कपड़ा, भोजन, सवारी, जायदाद आदि के साधन लोग अपने परिजनों के लिये जुटाते हैं । उनकी बीमारी, शादी आदि के अवसरों पर भी मनमाना खर्च करते हैं, पर यह ध्यान नहीं देते कि इनकी योग्यता, शक्ति, सामर्थ्य, प्रतिभा एवं व्यक्तित्व को विकसित करने के लिये भी कुछ किया जाना चाहिए । बहुत हुआ तो स्कूल-कालिजो की शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया । इससे नौकरी तो मिल सकती है पर वे सद्गुण नहीं आते जो जीवन के वास्तविक विकास के लिए आवश्यक हैं । इन्हीं सद्गुणों को विकसित करने का प्रयत्न परिवार के प्रति सच्ची सेवा एवं ममता कही जा सकती है ।

प्राचीनकाल में यह देश नर-रत्नों की खान था । घर-घर में महापुरुष पैदा होते थे । उनके विचार और कार्य इतने उच्चकोटि के थे कि संसार भर में वे देव श्रेणी में गिने जाते थे । यहाँ के तैंतीस करोड़ निवासी, तैंतीस कोटि के देवतों के नाम से विख्यात थे । भारतीय समाज के इतने सुविकसित और सुसंस्कृत होने की महत्ता को सारे संसार ने स्वीकार किया था और इसी आधार पर भारत को जगद्गुरु एवं चक्रवर्ती शासक का सम्मान प्रदान किया था । ऐसे सद्गुणी कभी गरीब रह ही नहीं सकते । लक्ष्मी

उनका पीछा छोड़ ही नहीं सकती । यह देश स्वर्ण सम्पदाओं का स्वामी था । यहाँ के लोग सोने को पहनते ही न थे वरन् उसके भवन तक बनाते थे । बल और पुरुषार्थ में, उनका कोई सानी न था ।

भारतीय समाज प्राचीनकाल में इसलिए समुन्नत था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवार की सर्वाङ्गीण उन्नति का ध्यान रखता था, आज की तरह केवल धन के पीछे पागल न था । सर्वाङ्गीण प्रगति के महत्त्व को जड़ से भुलाया जाने लगा तब से पारिवारिक प्रगति रुक गई । धन कमाने वाले, ऊँचे ओहदों पर नौकरी करने वाले लड़के-बच्चे अब भी घरों में पैदा होते हैं, पर उनके साथ कोई ऐसा कार्य नहीं होता जिस पर गर्व करने को जी चाहे ।

यह स्पष्ट है कि व्यक्ति का निर्माण उसकी माता करती है । माता का ज्ञान, अनुभव और अन्तःकरण जितना विकसित होगा, उतना ही बालकों का मन और मस्तिष्क भी विकसित होगा । अच्छे पेड़ हमेशा अच्छी भूमि में पनपते हैं । बीज कितना ही बढ़िया क्यों न हो यदि भूमि ऊसर है तो वहाँ न तो फसल पक सकती है और न अच्छा बगीचा लग सकता है । इसी प्रकार अच्छी माताओं के होने पर ही सुसन्तान की आशा की जा सकती है और जिन घरो में सुसन्तति है उन्हें ही घर कहना चाहिए अन्यथा दुर्बुद्धि और दुर्गुणी, रोगी और आलसी बालक के घर को तो नरक का नमूना ही कह सकते हैं । वहाँ निरन्तर कलह, ईर्ष्या, द्वेष, असन्तोष, चोरी, अवज्ञा, अपकीर्ति एवं उत्पात की आग जलती रहेगी । ऐसे घरों में उसी तरह गुजारा करना पड़ता है, जैसे-भूत-मरघट में अपनी जिन्दगी गुजारता है ।

माता के संस्कार बालक पर जाते हैं, यह एक निश्चित तथ्य है । इसलिये जिन्हें अपने घर को सुसन्तति से हरा-भरा, फला-फूला देखना हो तो उन्हें पहले माता का निर्माण करना चाहिए । लोग इतना ही करते हैं कि बालक स्वस्थ हो इसके लिए गर्भावस्था में स्त्री को घी, दूध, मेवा, लड्डू आदि खिलाते हैं । दूध अधिक निकले इसके लिये माता को जीरा, सोंठ, बबूल की गोंद आदि खिलाते हैं । इससे लोगों की बुद्धि में इतनी समझदारी तो जान पड़ती है कि वे माता को खिलाने से उसका लाभ बालक को मिलने की बात स्वीकार करते हैं । बच्चा बीमार हो तो माता को परहेज से रहने की अमुक चीज खाने, अमुक न खाने की हिदायत करते हैं । पर यह बुद्धिमानी यहीं समाप्त हो जाती है । कैसा अच्छा होता यदि लोग यह भी अनुभव करते कि माता के ज्ञान, अनुभव और अन्तःकरण के विकास का प्रभाव बालकों पर भी अवश्य पड़ेगा । इसलिये सन्तान को सुयोग्य बनाने के लिए पहले उसकी माता को सुयोग्य बनाना आवश्यक है । यदि इतनी जानकारी लोगों की रही होती तो आज हमारे समाज का स्तर ही दूसरा हुआ होता ।

राम हमारे घरों में आयें, इसके लिए कौशिल्या की जरूरत है । कृष्ण का अवतार देवकी की कोख ही कर सकती है । कर्ण, अर्जुन और भीम के पुनः दर्शन करने हों तो कुन्ती तैयार करनी पड़ेगी । हनुमान चाहिये तो अंजनी तलाश करनी होगी । अभिमन्यु का निर्माण कोई सुभद्रा ही कर सकती है । शिवाजी की आवश्यकता हो तो जीजाबाई का अस्तित्व पहले होना चाहिये । यदि इस ओर से आँखें बन्द कर ली गयीं और भारतीय नारी को जिस प्रकार अविद्या और अनुभवहीनता की स्थिति में रहने को विवश किया गया है, उसी तरह आगे भी रखा गया तो आगामी पीढ़ियाँ और भी अधिक मूर्खता एवं उद्दण्डता लिए आवेंगी और हमारे घरों की परिपाटी को नरक बना देंगी । परिवारों से ही समाज बनता है फिर सारा समाज और भी घटिया लोगों से भरा होने के कारण अब से भी अधिक पतनोन्मुख हो जायगा ।

आज हमारे बालकों की क्या स्थिति है, इसे बाहर ढूँढ़ने जाने या कोई रिपोर्ट तैयार कराने की जरूरत नहीं है । हममें से हर कोई अपने-अपने घरों को देख सकता है और छाती पर हाथ रखकर कह सकता है कि अपने बच्चों के गुण-कर्म-स्वभाव के सम्बन्ध में सन्तोष है या असन्तोष ? अब अंधे माता-पिता को कन्धे पर बिठा कर तीर्थयात्रा कराने वाले श्रवणकुमार ढूँढ़े न मिलेंगे । पिता का संकेत और विमाता की इच्छा मात्र प्रतीत होते ही वन गमन करने वाले राम आज किसी घर में तलाश तो किये जाएँ ? भाई के लिये जान देने वाले भरत और लक्ष्मण शायद ही किसी बिरले घर में मिलें ? पति के आदेश पर बिक जाने वाली शैव्या आज कितने पतियों को प्राप्त है यह जानना कठिन है । ऐसे उच्च मानसिक स्तर से भरे हुए परिवार आज ढूँढ़े नहीं मिल सकते । इसका एकमात्र कारण है-नारी की अधोगति । जब सोता ही सूख गया तो नाले में पानी कहाँ से बहेगा ? जब नारी ही दुर्दशाग्रस्त स्थिति में पड़ी है तो उससे उत्पन्न होने वाली सन्तान के समुन्नत होने की आशा दुराशा मात्र ही है ।

शरीर के सुख-साधन पैसे के बल पर खरीदे जा सकते हैं पर आत्मा को विकसित करने वाले सद्गुण धन के बदले में नहीं मिल सकते । परिजनों की भौतिक समृद्धि के, सुखोपभोग के, ऐश-आराम के साधन कोई धनी व्यक्ति आसानी से जुटा सकता है, पर बालकों पर संस्कार डालने का काम धन खर्च करने मात्र से नहीं हो सकता । यदि इतने में ही परिवार की उन्नति हमने मान रखी हो तो बात दूसरी है पर यदि हमने विकसित व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया हो और यह माना हो कि बात की बात में नष्ट हो जाने वाली दौलत की अपेक्षा व्यक्तित्व की प्रतिभा की महत्ता अधिक है तो निश्चय ही उसके लिए वे प्रयत्न करने होंगे जिनसे व्यक्तित्व विकसित होता है । ऐसे प्रयत्नों में सबसे प्रधान, सबसे आवश्यक यह है कि नारी के मानसिक संस्थान को प्रबुद्ध किया जाय । इसके लिये उसे एकदम घुटाने वाली पराधीनता से मुक्त कराना होगा । इन बन्धनों में रहते किताबी ज्ञान करा देना जैसे उपायों से न तो उसे बढ़ाया जा सकता है और न ऊँचा उठाया जा सकता है

भविष्य की चिन्ता प्रत्येक व्यक्ति को रहती है । आने वाले कल की निश्चिन्तता के लिये जो कुछ बन पड़ता है सुरक्षात्मक प्रयत्न करते हैं । बीमा-व्यवसाय इसी आधार पर टिका हुआ है । हमारा बुढ़ापा शान्तिमय बीते इसके लिये कुछ बचा लेना, जमा कर लेना ही पर्याप्त न होगा वरन् जिन लोगों के साथ जीवन के अन्तिम दिन काटने हैं उन्हें सज्जन और सौम्य बना लेना ही वह कार्य होगा जिससे भावी जीवन की शान्ति के सम्बन्ध में निश्चिन्तता हो सके । आज हमारे बच्चे उद्दण्डता, अवज्ञा, आलस्य एवं विलासिता की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं । यह स्थिति अभिभावकों से लेकर अध्यापकों तक को चिन्तित बनाये हुए है । राष्ट्र का भविष्य जिस भावी पीढ़ी के हाथ में है वह यदि सद्गुणी न हुई तो समाज में बुराइयाँ ही बढ़ेंगी । जिस भ्रष्टाचार का, अनैतिकता का, विलासिता का, स्वार्थपरता का आज चारों ओर बोलवाला है उसके कारण अवांछनीय कार्यों की संख्या दिन-दिन बढ़ती जा रही है । यदि यह अभिवृद्धि न रुकी तो उन्नति की अनेक योजनाओं के होते हुए भी भविष्य अन्धकारमय ही रहेगा ।

हमारा व्यक्तित्व और राष्ट्रीय भविष्य इस बात पर निर्भर है कि भावी पीढ़ियाँ सुसंस्कृत हों । स्कूली शिक्षा से आजीविका उपार्जन करने तथा विविध क्षेत्रों की साधारण जानकारी मिलने की बात पूरी हो सकती है, पर वे सद्गुण जो मानव की प्रधान सम्पत्ति है और जिनके ऊपर व्यक्ति तथा राष्ट्र की श्रेष्ठता निर्भर करती है, स्कूलों में नहीं सीखे जा सकते । उनके शिक्षण का सही स्थान है–घर का वातावरण और उसका निर्माण करती है–गृहिणी । व्यक्ति और राष्ट्र की उन्नति के लिए हो रहे अनेक प्रयत्नों में सुगृहिणी निर्माण का कार्य अत्यधिक आवश्यक है । उपेक्षा करने पर बड़ी से बड़ी प्रगति भी व्यर्थ सिद्ध होगी । क्योंकि जब आगामी पीढ़ियों का व्यक्तित्व ही विकसित न हो सका तो बढ़ी हुई समृद्धि का भी कुछ लाभ न उठाया जा सकेगा वरन् बन्दर के हाथ में पड़ी तलवार की तरह उसका दुरुपयोग एवं दुष्परिणाम ही हाथ लगेगा ।

६० लाख साधुओं एवं भिखमंगों का प्रश्न राष्ट्रीय प्रश्न है । इतने लोगों की उपार्जन क्षमता कुण्ठित पड़ी रहे और उनका निर्वाह भार जनता को वहन करना पड़े तो यह अर्थ सन्तुलन को बिगाड़ने वाली बात है । उससे भी बढ़कर चिन्ता की बात यह है कि हमारी आधी आबादी--नारी की भाँति घरों की चहारदीवारी में कलंकित की तरह मुँह पर पर्दा डाले, घर-वालों के लिए एक भार बनी बैठी रहे । इससे भी हमारा पारिवारिक एवं राष्ट्रीय अर्थ तन्त्र असन्तुलित ही होगा । यदि उनकी सामर्थ्य को विकसित किया जाय तो राष्ट्र के अर्थतन्त्र को समुन्नत बनाने में इतना योग मिल सकता है जितना कितनी ही विशालकाय योजनाएँ भी नहीं दे सकतीं । इस समस्या के सामने भिखारियों की समस्या तुच्छ है । यदि हम नारी के विकास की समस्या को हल कर लें तो भिखारियों से भी अनेक गुनी समस्या का हल हुआ समझना चाहिए ।

जिन नारियों को हम माता, पत्नी, बहिन या पुत्री के रूप में प्यार करते हैं, जिन्हें सुखी बनाने की कुछ चिन्ता करते हैं उनके लिये रूढ़िवादी मान्यताओं द्वारा हम अपकार भी पूरा-पूरा करते हैं । किसी स्त्री का जब सूर्य अस्त हो जाता है और घर की आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं होती तो उस बेचारी पर कैसी बीतती है इसे हममें से हर कोई जानता है । पर्दा प्रथा के कारण जो नारी बाजार से साग खरीदकर लाना भी नहीं सीख सकी, किसी से बात करना भी जिसे नहीं आता, वह मुसीबत के समय पति या बच्चों के लिये दवा खरीदने या चिकित्सक को बुलाकर लाने में भी समर्थ नहीं हो सकती । ऐसी स्त्रियों को जब अपने और अपने बच्चों के गुजारे की समस्या सामने आती है तब आगे केवल अन्धकार ही दीखता है । किसी के दरवाजे पर भिखारी की तरह अपमानपूर्वक टुकड़ों से पेट भरते हुए जिन्हें जिस व्यथा का सामना करना पड़ता है उसकी कल्पना यदि नारी को बन्धन में रखने वाले करें तो उनकी छाती पसीजे बिना न रहेगी । मानवता का दृष्टिकोण अपनाया जाय तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि नारी का भविष्य अँधेरे में लटकता हुआ छोड़ना अभीष्ट न हो तो उसे स्वावलम्बी, अपने पैरों पर खड़ी होने योग्य बनाना ही चाहिए ।

किसी भी दृष्टिकोण से विचार किया जाय यह नितान्त आवश्यक है कि नारी को वर्तमान दुरवस्था में न पड़ा रहने देकर उसे ऊपर उठाया जाय, आगे बढ़ाया जाय । उसकी शक्ति और सामर्थ्य बढ़ने से हानि किसी की नहीं, लाभ सभी का है । पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर प्रत्येक क्षेत्र में उसे सहयोग देने वाली नारी, इस वंचित, अशिक्षित, अनुभवहीन, अयोग्य एवं भार रूप नारी की अपेक्षा कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध होगी । विवेक की पुकार यही है कि स्वार्थ और परमार्थ की दृष्टि से, न्याय और कर्तव्य की दृष्टि से नारी के विकास में सहयोग दें–बाधक न बनें ।

क्या सामाजिक जीवन में महिलाएँ असफल रहीं ?

भारतवर्ष में महिलाओं को भी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हैं और स्त्रियाँ सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त करने की अधिकारिणी हैं । लेकिन व्यवहार क्षेत्र में स्थिति कुछ और है । अपने देश में आज भी स्थिति यह है कि महिलाएँ पुरुषों द्वारा पीछे धकेल दी जाती हैं और पुरुष स्वतः प्रदत्त वर्चस्व को बनाये रखने के लिए घृणित से घृणित और निंद्यतम तरीके अपनाते हैं । यह सच है कि स्त्रियों और पुरुषों में संरचना

सम्बन्धी कुछ अन्तर अवश्य रखा है । पर इसका अर्थ यह नहीं है कि इसी आधार पर उनकी क्षमताओं को कम आँका जाय ।

कुछ लोगों की मान्यता है कि सामाजिक और राजनैतिक जीवन में महिलाएँ पुरुषों के बराबर सफलता प्राप्त करने में अक्षम हैं । क्योंकि वे मानते हैं महिलाएँ अपने विवेक का उपयोग नहीं कर पातीं । जबकि मूल तथ्य तो यह है कि महिलाएँ पुरुषों के समान न केवल कार्यक्षम और समर्थ हैं वरन् अपने विवेक का उपयोग पुरुषों से भी अधिक सुथरे रूप में करती हैं । परन्तु विवशता यह है कि उन अवसरों को पुरुष पहले से ही हथिया लेता है अन्यथा इतिहास में कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं जबकि ज्ञान, विद्वता, शौर्य और सेवा के क्षेत्रों में से कई में जिन्हें केवल पुरुष के वश का ही समझा जाता रहा, उनमें महिलाओं ने पुरुषों से भी अधिक सफलता प्राप्त की । प्राचीनकाल में घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषद्, जुहू, अदिति, इन्द्राणी, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, यमी, शाश्वती, सूर्या, सावित्री, अनुसूया आदि कई विदुषियाँ थीं जो ज्ञान, तत्वविद्या के साथ-साथ बल और शौर्य में भी पुरुषों से सानी रखती थीं ।

मध्य युग में भी लक्ष्मीबाई, दुर्गावती, अहिल्याबाई आदि कई महिलाएँ हुई हैं जिन्होंने पुरुषों के कार्यक्षेत्र में घुसकर उन्हें पीछे छोड़ दिया था । कहा जा सकता है तब परिस्थितियाँ और थीं । अब मध्ययुग की अन्धकार वेला ने महिलाओं की शक्ति को कुण्ठित कर दिया है और उनकी क्षमता तथा शक्ति में जंग लगी गयी, तो यह भी निराधार ही सिद्ध होता है । स्वतन्त्रता संग्राम के समय जन-चेतना जाग्रत करने में कस्तूरबा, सरोजनी नायडू, कमला नेहरू, राजकुमारी अमृत कौर, विजय लक्ष्मी पण्डित, कमला देवी चट्टोपाध्याय, भीकाजी कामा, अवन्तिका बाई गोखले आदि प्रभृति महिलाओं ने जो कार्य किया उसे किसी भी रूप में पुरुषों द्वारा चलाये गये अभियानों से कम नहीं कहा जा सकता । ये तो हुई विशिष्ट महिलाओं की बात । साधारण स्त्रियों ने भी स्वतन्त्रता आन्दोलन के उन मोर्चों को फतह कर बता दिया जिन्हें पुरुषों ने अपने वश से बाहर का जानकर छोड़ दिया था । विदेशी वस्त्रों और वस्तुओं के बहिष्कार का जब आह्वान किया गया तो सत्याग्रह का एक बड़ा रूप सामने आया पिकेटिंग । पिकेटिंग में उन दुकानों पर जिस पर कि विदेशी वस्तुएँ बेची जाती थीं, धरना दिया जाता था । पुरुषों को प्रारम्भ में इस कार्य में सफलता नहीं मिली, तब आगे आयी महिलाएँ और उन्होंने तब तक धरना दिये रहने की दृढ़ता दिखायी जब तक कि दुकानें बन्द न हो गयीं ।

और जिन सफल महिलाओं को विशिष्टता का लेबल लगा अपवाद कहकर छोड़ दिया जाता है वे कोई आसमान से उतर कर नहीं आयी थीं । वे भी सामान्य स्त्रियों की तरह थीं, पर अन्तर्निहित शक्तियों के उफान और अनुकूल अवसरों ने उन्हें विशिष्ट बना दिया । भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में अपना अनूठा स्थान रखने वाली क्रान्तिकारिणी भीकाजी कामा बम्बई के एक मध्यवर्गीय पारसी परिवार में जन्मी थीं । उनका जन्म ऐसे समय में हुआ जबकि काँग्रेस बड़े लोगों और ऊँचे व्यक्तियों के लिए राजनैतिक मनोरंजन का रंगमंच मात्र थी । तब गाँधीजी एक साधारण वकील थे, जवाहर लाल नेहरू स्कूल में पढ़ रहे थे । सन् २१, ३० और ४२ के आन्दोलन में जिन नेताओं ने नेतृत्व किया था या तो उनका जन्म ही नहीं हुआ था और यदि जन्म हो भी गया तो अपने निजी कार्यों में लगे थे । ऐसी परिस्थितियों में भीकाजी कामा ने अपने परिवार के सदस्यों का विरोध करते हुए भी क्रान्तिकारी संगठन स्थापित किया और स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सशस्त्र क्रान्ति की गुहार मचायी । उनका संगठन केवल नाममात्र का ही संगठन नहीं था वरन् उन्होंने अपने दल के सदस्यों को बम बनाना सिखाया, घर से तिरस्कृत और बहिष्कृत हुई, जेलयात्रा की, पुलिस की यातनाएँ सहीं तथा अन्त में देश निर्वासन की सजा प्राप्त कर विदेशों में अपने जीवन का शेष समय उसी उत्साह और सक्रियता पूर्वक व्यतीत करती रहीं ।

जिन विदेशी महिलाओं ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम में रुचि ली उनमें एक थीं—इंग्लैण्ड की मैडलीन स्लैड, जो रोमांरोला का एक उपन्यास पढ़कर उनसे प्रभावित हुई और उनसे प्रेरणा प्राप्त कर भारत आयीं । यही उत्साही और सेवाभावी महिला मानवीय कर्तव्यों के लिए अपने देश से ही लड़ी । महात्मा गाँधी के पास रहकर मीरा बेन के नाम से विख्यात हुई । मैडलीन स्लैड आजीवन भारतीय स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करती रहीं और अन्ततः वह स्वतन्त्रता सेनानी का गौरव अर्जित कर अपने को धन्य बना गयी ।

आमतौर पर माना जाता है कि वैभव-विलास और ऐश्वर्य-सम्पदा व्यक्ति की प्रतिभा तथा शक्ति को कुन्द बना देता है और उनमें भी ऐसे वातावरण में रहने वाली स्त्रियों के सम्बन्ध में तो और भी निम्न स्तर पर सोचा जाता है । पर इस मान्यता को झुठलाया पंजाब की राजकुमारी अमृतकौर ने । अमृतकौर की शिक्षा-दीक्षा न केवल भारत में ही हुई थी वरन् वे इंग्लैण्ड में जाकर पढ़ी थीं । पश्चिम की भोगवादी सभ्यता और भौतिकता प्रधान वातावरण का प्रभाव तो और भी अनर्थकारी होना था परन्तु राजकुमारी अमृतकौर भारत लौटीं तो अपनी भारतीयता को और भी निखार कर । इंग्लैण्ड में रहकर पढ़ने का भी उनके भारतीय मन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ । साथ ही उनका रहन-सहन, व्यक्तित्व और स्वभाव इतना प्रभावशाली था कि उनके सम्पर्क में आने वाला कोई व्यक्ति उन्हें लजीली, शर्मीली और संकीर्ण होने का आरोप न लगा सके ।

भारत मे जब स्वतन्त्रता का सिंहनाद हुआ तो अपने परिवार और वंश की अवहेलना कर, राजकीय ऐश्वर्य का प्रलोभन ठुकराकर भी ये सार्वजनिक क्षेत्र में कूद पड़ीं ।

सन् १९३० में वे महात्मा गाँधी के आश्रम में आयीं और स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने लगीं । महात्मा गाँधी ने न केवल उनके कार्यों को प्रशंसा और सराहना की दृष्टि से देखा, वरन् उन्हें अपना निजी सचिव भी बना लिया । वर्षों तक अविश्रान्त अपने मार्ग-दर्शकों की सेवा करने के बाद वे सेवा के सक्रिय क्षेत्र में उतरीं और उन्होंने नारी सुधार, स्त्री शिक्षा, महिला उत्कर्ष के लिए कई सभा संस्थानों की स्थापना एवं समाज सुधार के कार्यक्रमों में प्रत्यक्ष भाग लिया । यही नहीं, उन्होंने पत्रकारिता और लेखन के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाया ।

सन् १८८० में जन्मी और १९४९ में दिवंगत हुई महान् भारतीय महिला सरोजिनी नायडू का नाम भी भारत की विभूतियों में अग्रगण्य है । पाश्चात्य देशों में शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद भी भारत, भारतीयता और भारतीय संस्कृति के प्रति उनके मन में अगाध निष्ठा थी और उस निष्ठा को उन्होंने अपने व्यक्तित्व के माध्यम से साकार भी किया । विदेशों में शिक्षा प्राप्त करने के बाद जब वे भारत लौटीं और दाम्पत्य जीवन में प्रविष्ट हुईं तभी उन्होंने अपना सार्वजनिक जीवन आरम्भ किया और यह सिद्ध कर दिखाया कि गृहस्थी के उत्तरदायित्व व्यक्ति के सेवा पथ पर कोई अवरोध उत्पन्न नहीं करते ।

न केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए वरन् मनुष्य को दास बनाने, उत्पीड़ित करने और उसे अपने नैसर्गिक अधिकारों से वंचित करने वाले प्रत्येक कारण के विरुद्ध लड़े गये धर्मयुद्ध में धर्मयोद्धा की भूमिका निबाही । अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के हितों की रक्षा, असहयोग, सत्याग्रह, हिन्दू-मुस्लिम एकता, नारी उत्कर्ष, स्त्री शिक्षा, समाज सुधार, बाल सुधार, साक्षरता और शिक्षा प्रचार आदि कई उनकी समाज सेवा-साधना के अंग रहे । और उन्होंने एक निष्ठावान साधक की तरह प्रत्येक अंग का भलीभाँति अनुष्ठान किया । श्रीमती शचीरानी गुर्टू के अनुसार उनका व्यक्तित्व बहुगुण समन्वित था । वे सफल कवयित्री, पटु राजनीतिज्ञ, कुशल वक्ता, सजग कार्यकर्त्री और साथ ही साथ सफल गृहिणी भी थीं । सन् १९२५ में काँग्रेस के कानपुर अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने यह सिंह गर्जना की थी कि "स्वतन्त्रता के युद्ध में कायरता सबसे अक्षम्य अपराध और निराशा सबसे भयानक पाप है ।"

कहा जाता है कि समय की हवा में तिनका भी तूफान बन जाता है । लेकिन स्वतन्त्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती । स्वतन्त्रता संघर्ष में स्त्रियाँ स्वयं की प्रेरणा और देशभक्ति की भावना से स्फूर्त होकर आयी थीं । पुरुष ने ही उसके सहयोग का स्वागत किया और योगदान की अभ्यर्थना की । दक्षिण अफ्रीका में जब महात्मा गाँधी ने रंगभेद की नीति के खिलाफ धर्मयुद्ध का आह्वान किया और स्वयंसेवकों को संगठित करने के लिए अहर्निश व्यस्त रहने लगे तो कस्तूरबा को सबसे बड़ी बात यह अखरी थी कि गाँधीजी उनसे सत्याग्रही स्वयं सेना में भरती होने के लिए नहीं कर रहे थे । अवसर पाकर वे बोल ही उठी थीं कि –"मुझमें क्या कमी है जो आप मुझे जेल जाने योग्य नहीं मान रहे हैं ।"

एक प्रख्यात लेखक ने जागरूक भारतीय महिलाओं के सम्बन्ध में लिखा है–भारतीय राष्ट्रीयता स्वीकार करने वाली एनीबेसेण्ट भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की अध्यक्षा बनीं । यही पद बाद में श्रीमति सरोजिनी नायडू ने भी सुशोभित किया । श्रीमति नायडू एवं श्रीमति हीरा टाटा ने महिलाओं के मताधिकार का प्रश्न लेकर आन्दोलन भी चलाया । कमलाबाई चट्टोपाध्याय प्रथम महिला थीं जो चुनाव में खड़ी हुईं । भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का संचालन करने वाली वीरांगनाओं में श्रीमती भीकाजी कामा, विजयलक्ष्मी पण्डित, मृदुला साराबाई, लक्ष्मी मेनन अरुणा आसफ अली, दुर्गाबाई देशमुख, सरोजिनी नायडू, कमला नेहरू, मणिबेन पटेल, सुशीला नैयर, सुचेता कृपलानी, पद्मजा नायडू, अनुसूया बाई काले आदि नामों की एक लम्बी सूची है जो भारतीय समाज में महिलाओं के गौरव को प्रकट करती हैं ।

यह आरोप स्वतः ही आधारहीन सिद्ध हो जाता है कि महिलाएँ पुरुषों की तुलना में उन्नीस ठहरती हैं । जबकि सच्चाई यह है कि वे कई मामलों में पुरुषों से पिछड़ी दशा में हैं तो इसका कारण यह नहीं है कि उनमें कोई न्यूनता है । सही कारण तो यह है कि पुरुष प्रधान समाज में नर ने अपने अहं को पुष्ट करने के लिए उसे उत्पीड़ित, शोषित एवं पददलित कर रखा है । इन कारणों से तन्द्रित और मूर्छाग्रस्त हुई उसकी क्षमताओं को वह यह कहकर अपने वर्चस् का आधार मजबूत करता है कि महिला सबला नहीं अबला है और पुरुष की आश्रिता है । आचार्य विनोबाभावे ने तो महिला की नयी और सटीक व्याख्या कर डाली है कि–अबला शब्द बहुत बाद का है । उससे पूर्व हमारे यहाँ महिला शब्द व्यवहृत होता रहा है जिसका अर्थ है महान् शक्तिशाली । वस्तुतः नारी अबला नहीं, महान शक्तिशाली और समाज के विकास में पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर चल सकती है ।

बात यह नहीं है कि पुरुष ने अपना वर्चस् कायम रखने की अन्धी दौड़ में कोई फायदा उठाया हो वरन् इससे हानि ही हानि हुई है । नारी का विकास जो कि पुरुष को ममतापूर्ण वात्सल्य की शीतल छाँह में विश्राम दे सकता है, को ही क्षति हुई और पुरुष को अपनी थकान मिटाने का न कोई ओर मिल पाया न छोर । विकसित नारी

समाज के विकास में जो योगदान दे सकती थी, उससे भी समाज को वंचित रह जाना पड़ा। अतः भूल सुधार की माँग है कि समय रहते ही इन विडम्बनाओं को बदला जाये।

नर और नारी में कोई छोटा बड़ा नहीं

नर और नारी एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों अधूरे पक्षों के मिलन से एक पूर्ण इकाई बनती है। इसलिए गाड़ी के दो पहियों की तरह उन्हें परस्पर मिलजुलकर ही चलना होता है। स्नेह-सौजन्य और सद्भाव सद्व्यवहार के आधार पर ही मैत्री की नींव मजबूत होती है। विवाह बन्धन और परिवार निर्माण की प्रक्रिया इसी धुरी पर घूमती है।

नर-नारी सहयोग के लिए ओछे हथकण्डों को काम में नहीं लिया जाना चाहिए। नारी को बार-बार सन्तानोत्पादन करना पड़ता है इसलिए वह बलिष्ठता की दृष्टि से स्वभावतः कुछ हलकी पड़ेगी। शिशु-पालन एवं गृह-व्यवस्था के दोनों उत्तरदायित्व इतने बड़े हैं कि उनका ठीक तरह भार सम्भालना उसी के लिए सम्भव हो सकता है जो अहर्निशि उस कार्य में दत्तचित्त होकर लगा रहे नियति ने यह कार्य नारी के जिम्मे किया है। ऐसी दशा में उसे स्वतन्त्र उपार्जन के लिए अतिरिक्त अवकाश कहाँ से मिलेगा। चूँकि पुरुष शारीरिक दृष्टि से अपेक्षाकृत परिपुष्ट होता है और धन उपार्जन करता है उसी से उसे अपने को ज्येष्ठ और नारी को कनिष्ठ नहीं मान लेना चाहिए। थोड़ी बारीकी से देखा जाय तो भावनात्मक-कोमलता, सरसता, गृह-व्यवस्था और शिशु-निर्माण का कार्य इतना महान है कि बलिष्ठता एवं उपार्जन क्षमता को उस पर निछावर किया जा सकता है।

सहयोग से रहें तो ठीक अन्यथा दोनों अपने आप में परस्पर पूर्ण भी हैं। दबाव और आतंक के आधार पर बँधे हुए बन्धनों की उपेक्षा तो उनका एकाकीपन भी बुरा नहीं है। उनका पारस्परिक सहयोग हर दृष्टि से उपयोगी है पर यह सोचना नहीं चाहिए कि किसी का काम किसी के बिना रुक जाएगा। यहाँ तक कि वे सन्तानोत्पादन की दृष्टि से भी किसी समय स्वावलम्बी थे और समय पड़ने पर सृष्टि उत्पादन का क्रम वे एकाकी भी चला सकते हैं।

प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने ईसा के जन्म से तीन सौ वर्ष पूर्व यह कहा था कि–"स्त्री और पुरुष आरम्भ में एक ही व्यक्तित्व में समाये हुए थे, किन्तु देवताओं की क्रोधाग्नि ने उनको अलग-अलग कर दिया। तब से वे दोनों एक-दूसरे के साथ पुनः सम्मिलित होने के लिए लालायित हैं।"

प्रसिद्ध जीवविज्ञानी क्रायू ने कहा है कि प्लेटो के इस कथन से बढ़कर सुन्दर यौन-आकर्षण की और कोई व्याख्या हो ही नहीं सकती।

मनुस्मृति के अध्याय में १ श्लोक ३२ में कहा गया है–"विधाता ने अपनी देह को विभक्त करके आधे अंग से पुरुष का और आधे से स्त्री का सृजन किया।"

महादेव शिव को अर्द्धनारीश्वर कहा गया है

सृष्टिगत पदार्थों को ही नहीं, जीवों को भी द्वन्द्वात्मक माना गया है। यहाँ प्रत्येक वस्तु में दोनों भाव पाये जाते हैं। विद्युत धारा तक ऋण और धन आवेशों के समन्वय से विनिर्मित है। हर पदार्थ या जीव का एक पक्ष नर है एक पक्ष नारी। परिस्थितिवश जब जो पक्ष उभर आता है तब उस प्रकार की संज्ञा मिल जाती है।

प्रजनन की समर्थता का विकास दो अति सूक्ष्म ग्रन्थियों के रूप में होता है जिन्हें सेक्स ग्लेण्डस अथवा गोन्डेस कहते हैं। भ्रूण में इन्हीं के कारण लिंग भेद उत्पन्न होता है। नर में यह अण्डकोष बनाती है और स्त्री में डिम्बाणु। इन ग्रन्थियों से होने वाले रस प्रवाह को 'सेक्स हारमोन' कहते हैं।

जीवधारी की देह में जो कोष हैं उनमें नर और नारी तत्व के विकसित होने की पूर्ण समानता और पूर्ण सम्भावना रहती है। उपर्युक्त ग्रन्थियाँ और उनके संग्रह द्रव ही लिंग भेद का आधार उत्पन्न करते हैं।

कुछ प्राणी ऐसे भी होते हैं जिनमें आधी देह स्त्री लक्षण युक्त होती है और आधी में पुरुष के लक्षण विकसित होते हैं। ऐसे प्राणियों को गाइनेन्ड्रामार्फ वर्ग में गिना जाता है।

प्राणि-जगत में ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं जिनमें नर और मादा अलग-अलग न रहकर एक ही व्यक्तित्व में समाये हुए रहते हैं। केंचुए आदि निम्न जीव इसी श्रेणी के हैं वे न नर हैं, न नारी। भोग के समय में वे स्त्री और पुरुष दोनों के रूप में व्यवहार करते हैं। इससे भी नीची श्रेणी के जीवों में अमैथुनी प्रजनन का क्रम प्रचलित है। अमीबा, बैक्टीरिया आदि इसी वर्ग में आते हैं, वे अपनी काया को विखंडित करके नई पीढ़ियाँ उत्पन्न करते रहते हैं।

ऐसी मुर्गियाँ होती हैं जो बिना नर संयोग के अण्डे देती हैं। यद्यपि उन अण्डों से बच्चे नहीं निकलते, पर ऐसे भी कई पक्षी हैं जो बिना सम्भोग के सन्तान उत्पन्न करते हैं। कई मछलियाँ तथा कीड़े भी इसी प्रकार के होते हैं।

तर्कशास्त्र की पुस्तक 'न्याय कुसमाञ्जलि' में भी सृष्टि का आरम्भ अमैथुनी प्रजनन के रूप में हुआ सिद्ध किया गया है।

आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थ सुश्रुत में उल्लेख है कि बिना पुरुष संस्पर्श के मातृ गर्भ द्वारा मनुष्य का जन्म सम्भव है।

जीवों के क्रियोन्नति के पथ पर बहुत आगे चल लेने के उपरान्त जीवों में लिंग भेद उत्पन्न हुआ है। रति कर्म के लिए उपयुक्त अवयव, आधार तथा आकर्षण–आनन्द का विकास तो अभी भी केवल उच्चस्तर के प्राणियों में ही है। निम्न वर्ग के जीव तो ऐसे ही उदर

क्षुधा के समय भोजन की तरह ही शरीर स्फुरणा को यत्किंचित पूर्ति करते हुए गर्भ धारण और प्रजनन कार्य करते रहते हैं । इसमें उन्हें किसी विशेष आकर्षण की अनुभूति नहीं होती ।

अमैथुनी प्रजनन प्रक्रिया को जीवविज्ञानी 'पारथीनो जेनेसिस' कहते हैं । यह स्वीकार किया जा चुका है कि वंश वृद्धि के लिए यौन सम्बन्ध अनिवार्य नहीं और प्राणि जगत में ऐसे भी दृष्टान्त हैं जहाँ दो जीवों के मिलने से एक नवीन जीव की उत्पत्ति होती है ।

एडिनवटा विश्वविद्यालय के प्राध्यापक क्रयू महोदय का कथन है–यौन आकर्षण का उद्देश्य–मात्र वंश वृद्धि ही नहीं है, उसके पीछे अनेक प्रकार के चुम्बकीय आधार भी काम करते हैं । प्राणी तत्ववेत्ता एलवार्डिस ने इसे और भी अधिक बलपूर्वक सिद्ध किया है कि नर–नारी के बीच जो असाधारण आकर्षण पाया जाता है वह मात्र सन्तानोत्पादन कर्म की प्रेरणा तक सीमित नहीं है ।

यह तथ्य यह बताते हैं कि प्रत्येक मनुष्य हर दृष्टि से स्वावलम्बी और परिपूर्ण है । यहाँ तक कि प्रजनन प्रक्रिया की आवश्यकता पूरी करने में दोनों पक्षों में एकाकी क्षमता मौजूद है और वे बिना एक–दूसरे की सहायता के भूतकाल मे ऐसे उत्पादन करते रहे हैं और करते रह सकते हैं । ऐसी दशा में किसी को किसी परावलम्बी मानने की बात आवश्यक नहीं है ।

अध्यात्म तत्व–दर्शन की दृष्टि से आत्मा एक समान ही उसे नर या नारी के कलेवर में लपेटती है यदि वह उस रुझान को बदल दें तो अगले ही जन्म में उसका लिंग परिवर्तन हो सकता है । अधूरे उत्साह और संकल्प बल से लिंग परिवर्तन की आकांक्षा करने वाले नपुंसक वर्ग के होते हैं । पर यदि वह आकांक्षा तीव्र हो तो यह परिवर्तन सुनिश्चित हो जाता है । लिंग परिवर्तन के चिह्न प्रकट होने पर ऑपरेशन द्वारा पूर्ण बदलाव होने के समाचार आये दिन समाचार पत्रों में छपते रहते हैं । वे यही बताते हैं कि नर और नारी जीवन की सामयिक अभिरुचि मात्र है जो आवश्यकतानुसार बदली जा सकती है । इस स्थिति में किसी को छोटा या बड़ा समझने की पराश्रित या परावलम्बी मानने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

कौन छोटा है और कौन बड़ा ?

वस्तु हो या व्यक्ति, विचार हो या आदर्श कहीं भी तुलना करते समय कौन छोटा और कौन बड़ा का प्रश्न उठता रहता है । उसका पहले से ही तैयार एक उत्तर भी रहता है कि स्त्री छोटी है, पुरुष बड़ा है । इस विचार के पीछे कितने ही तर्क और अनगिनत दलीलें दी जाती हैं । पुरुष को बड़ा सिद्ध करने के लिए कुछ इस प्रकार की पृष्ठभूमि बनायी जाती है कि पुरुष बाहरी जीवन के सभी संघर्षों का सामना करता है । उसमें स्त्री की अपेक्षा अधिक दृढ़ता, साहस और पराक्रम होता है । यहाँ तक कि उसी के संरक्षण में रहते हुए अपनी सुरक्षा के प्रति निश्चिंत रह सकती है । ताकत, दृढ़ता और वीरता के मामले में पुरुष से पीछे और इनके लिए उसी स्तर पर अवलम्बित रहती हैं । स्वतन्त्र रूप से वह अपना विकास करने में असमर्थ है और उसके निर्वाह की निर्भरता पुरुष के सहयोग तथा उदारता पर ही है । यदि पुरुष अपना सहयोग हटा ले तो तुरन्त असहाय अवस्था मे आ जाना पड़ता है और जिस के लिए वह इतनी महत्वपूर्ण बनी है, परिवार उसका भी सुख और भविष्य पुरुष के सहारे पर ही टिका हुआ है ।

यों इसी प्रकार स्त्री की श्रेष्ठता के भी कितने ही आधार खोजे जा सकते हैं परन्तु स्त्री ने कभी बड़प्पन की चाह नहीं की । उसकी समझ में यह सब बाल बुद्धि ही खेल रहे हैं अन्यथा यह पुरुष को जब वह बच्चा रहता और उसकी गोदी में खेलता है तथा उसी के अमृतोपम दूध से अपना पालन करता है तभी अपना बड़प्पन थोप सकती थी । यह तो पुरुष का अहंकार है जो अपने बड़प्पन की चाह को उचित–अनुचित ढंग से स्त्री पर थोपता रहा और खुश होता रहा है । मानते हैं कि पुरुष को बाहरी जीवन में अधिक संघर्ष करने पड़ते हैं । परन्तु संघर्ष की यह क्षमता उसे मिलती कहाँ से है ? आँधी हवा और पानी में कमजोर पेड़ ढहकर गिर पड़ते हैं । यदि उनकी जड़ों को उचित खाद पानी न मिला हो और वे निर्बल हो गयी हों तो इसका यही परिणाम होता है । बाहरी संघर्षों के थपेड़े सहने की क्षमता पुरुष में अपने आप नहीं है । उसे प्रेरणा और बल तो स्त्री से ही मिलता है । फिर भले ही वह स्त्री उसकी माँ हो, बहिन हो, पत्नी हो या पुत्री हो । परिश्रम की थकान और संघर्षों की चोटें वह स्त्री की छाया में ही उतारता है, सहलाता है ।

यही कारण है कि विवाहित पुरुष अविवाहित पुरुषों की अपेक्षा अधिक दृढ़ और सशक्त होता है । लन्दन की एक सामाजिक संस्था ने हाल ही में यह पता लगाया है कि कुँआरे और विधुर व्यक्तियों की अपेक्षा शादीशुदा व्यक्ति दीर्घायु होते हैं । इसका कारण स्पष्ट करते हुए यह भी कहा गया है कि पुरुष अपनी शक्ति को स्त्री के प्रेम और वात्सल्य से सींचता तथा हरा–भरा करता रहता है ।

संघर्षों के क्षेत्र में दृढ़ता का जहाँ तक प्रश्न है वहाँ भी स्त्री ही आगे रहती है । इसका एक छोटा–सा उदाहरण सामान्य घरों में भी देखा जा सकता है । अभावग्रस्त और तंगहाल परिस्थितियों में पुरुष अनेक बार यह सोचने तथा कहने लगता है कि घर–गृहस्थी का टंटा–बखेड़ा ही खड़ा न किया जाता तो अच्छा रहता, मजे से मौज की जिन्दगी गुजारते । पुरुष का स्वभाव अपेक्षाकृत संघर्षों से भागने का है, जबकि स्त्रियाँ कठिनाइयों में भी सन्तोषपूर्वक निर्वाह करने में अधिक माहिर होती हैं । कितनी ही प्रतिकूल परिस्थितियाँ हों स्वयं भूखी रहकर यदि अपने पति और बच्चों को पेट भर भोजन मिल जाय तो वह सन्तुष्ट हो जाती है । भारतीय स्त्रियों में यह गुण विशेष रूप विद्यमान है । जबकि पुरुष ने उसे अपने आधीन अधिकृत समझ

रखा है तथा मान रखा है कि स्त्री उसके प्रति चापलूस या खुशामदी वृत्ति की हो गयी है । परिस्थितियों के निर्वाह को छोड़ दिया जाय तो खुशामद वाली बात भी पुरुष पर ही ज्यादा लागू होती है । आसानी से यह देखा जा सकता है कि स्त्रियाँ अपनी आवश्यकताओं के प्रति उतनी सजग रहती जितना कि पुरुष स्त्री के प्रति सजग रहता है । अपनी स्थिति को अनदेखा कर बिगड़ी आदत की औरतों में तरह-तरह की कमी करती है । यह अपवादस्वरूप है । प्रायः ऐसा भी केवल पुरुष से प्रोत्साहन प्राप्त कर ही होता है । संघर्षों और दृढ़ता, साहस, विवेकशीलता में कौन आगे है–पुरुष या स्त्री अब यह निर्णय स्वतः ही किया जाता है । स्त्री को पुरुष के संरक्षण में रहने के लिए विवश मानने वालों की वस्तुस्थिति से आँखें नहीं मूँदनी चाहिए । स्त्री अपनी रक्षा करने में असमर्थ है बात ऐसी नहीं है । यह केवल पुरुष के साथ प्रकृति प्रेरित सघन सहयोग की प्रेरणाओं के अनुसार ही रहती है, न कि विवशता के कारण और पुरुष को उसके निर्वाह प्रबन्ध तथा आवश्यकताओं का ध्यान रखने के लिए कहा गया है तो वह भी इसलिए नहीं कि वह उसके प्रति कोई उपकार करता है । वह तो नारी के उन्नत उपकारों का प्रतिदान ही चुकाता है । उसका जन्म और जीवन केवल स्त्री के कारण ही है अन्यथा न तो पुरुष में अपना जीवन आप चलाने की सामर्थ्य है और न ही उसके सृजन की । जन्म के बाद से ही उल्टे पुरुष को अपनी क्षुधा, प्यास आर आवास तक के लिए नारी पर निर्भर करना पड़ता है, उसे आश्रय देने वाली होती माँ है पर सत्ता उसकी नारी से अलग कहाँ है ?

बचपन में माँ का आश्रय और बाद में पत्नी का । पति दिन-रात एक कर जो उपार्जन करता है, कमाता है, वह पत्नी के हाथों से ही उपयोग लायक बन पाता है । यों कई लोग कमाने और जोड़ने में रत रहने के बाद होटलों में खा लेते हैं । पर उनके जीवन में एक रिक्तता लगातार सालती रहती है कि काश हमारा भी परिवार होता । प्रथम तो परिवार के बिना व्यक्ति कुछ संचित करने की भी नहीं सोचता कि किसके लिए कमाये और किसके लिए जोड़े । जो कुछ कमाया जाये उसे रिक्तता की कष्टपूर्ण अनुभूति करते हुए यों ही क्यों न खर्च कर दिया जाय ?

कहना चाहिए कि नारी ही उस रिक्तता को भरती है और पुरुष को तब कहीं जाकर यह अहसास होता है । इस सम्बन्ध में विचारशीलों का यह मत भी है कि पुरुष स्त्री के सम्पर्क-सान्निध्य में नहीं आता तब तक उसे घर बसाने की भी कोई आवश्यकता नहीं होती । वैसे रहने के लिए तो साँप और चूहे भी अपना बिल खोज लेते हैं । घर बसाने से तात्पर्य है जीवन और गतिविधियों के सामान्य स्वरूप को एक निश्चितता देना । और यह निश्चित तथा स्थिरता का भाव विवाह के बाद पत्नी के सम्पर्क में आने पर ही आता है । यदि व्यक्ति आजीवन अविवाहित रहता तो उसे घर बसाने की तो क्या, अपनी परिधि से थोड़ा भी बाहर आने की प्रेरणा न मिले और वह यों ही अस्त-व्यस्त जीवन व्यतीत करता रहे ।

स्त्री-पुरुष पर उतनी निर्भर नहीं रहती जितना पुरुष स्त्री पर निर्भर रहता है । अपने और परिवार के सुखद वर्तमान तथा उज्ज्वल भविष्य के आयाम ढूँढ़ने के लिए पुरुष को स्त्री का ही मुँह ताकना पड़ता है । परामर्शदात्री कहें या गृह-स्वामिनी, घर की बागडोर उसी के हाथों में रहती है और पुरुष वह पति हो या अन्ततः है तो परिवार का सदस्य ही । उसके जिम्मे तो केवल बाहरी साधन भर जुटाने का काम है । जो वह स्वयं भी कर सकती है । परम्पराओं से स्त्री गृह-परिवार की अन्दरूनी व्यवस्था को सम्हालती आ रही है तो पुरुष यह समझने लगता है कि बाहर के काम निबटाना और आय का स्रोत ढूँढ़ना उसके बस की बात नहीं है । आधुनिक सुशिक्षिताएँ पुरुष की बराबरी से नौकरियाँ करती हैं और उसके बराबर ही कमाती हैं । मजदूर और निम्न वर्ग के परिवारों में स्त्रियाँ पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर मजदूरी के लिए निकलती हैं और सुबह से शाम तक कमाती हैं । उन परिवारों में तो स्त्रियाँ मेहनत-मजदूरी करने के बाद घर का चौका-बर्तन भी करती हैं । तो निर्वाह के क्षेत्र में कौन आगे है पुरुष या स्त्री ?

कदाचित् यह सोचा जाता है कि गृह-व्यवस्था का कार्यक्रम परिश्रम का या कम महत्त्व का है इसलिए प्रधानता उत्पादन श्रम की है यह भी निरी भ्रान्ति ही है । परिश्रम और समय की दृष्टि से दोनों कार्य समान ही हैं और दोनों में बराबर समय तथा श्रम लगता है । अन्तर हो भी तो उन्नीस-बीस का ही होगा और उसके बच्चों की देखभाल से लेकर पति की सुविधाओं का ध्यान रखना इतना अतिरिक्त श्रमपूर्ण होता है कि स्त्री को पुरुष की तुलना में आगे ही मानना पड़ेगा ।

बौद्धिक क्षमता के कमजोर होने का आरोप भी स्त्रियों पर लगाया जाता है । वस्तुतः स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक बौद्धिक प्रतिभा सम्पन्न होती हैं । स्कूल-कॉलेजों में छात्र-छात्राओं का औसत निकाला जाय तो पढ़ने-लिखने में लड़कियाँ ही लड़कों से आगे रहेंगी । समाचार पत्रों में परीक्षाओं के परिणामों पर दृष्टिपात किया जाय तो पता चल सकता है कि सर्वोच्च अंक प्रायः लड़कियों को ही मिलते हैं । यह बात जरूरी है कि पुरुष ने उसकी बौद्धिक प्रतिभा के विकास को अवरुद्ध कर रखा है और उसका कार्यक्रम केवल घर ही मान रखा है । भारतीय संस्कृति के प्राचीन और उज्ज्वल इतिहास में नारी की बौद्धिक क्षमता का पूरा-पूरा लाभ उठाया जाता था । उसकी इस क्षमता को सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखा जाता है । यहाँ तक भारतीयों ने तो बुद्धि और शिक्षा के प्रतीक रूप में भी गायत्री और सरस्वती के नारी रूप में ही उसके प्रतीक चुन रखे हैं । अब यह मिथ्या अहंकार ही है कि पुरुष नारी की तुलना में अधिक बुद्धिमान है ।

शौर्य और पराक्रम की दृष्टि से नारी को पिछड़ा और अविकसित भी कह दिया जाता है । पुरुष ने अपने लिए जितने क्षेत्र सर्वत्राधिकार सुरक्षित कर रखे हैं और उनमें नारी का प्रवेश भी वर्जित कर रखा है उनमें एक यह भी है । उसने अपनी सारी कुशलता, चतुरता और बुद्धि का प्रयोग केवल उसी बात में लगायी है कि स्त्री केवल घर-की चहार दीवारी तक ही सीमित रहे । उसको न जाने क्या इसमें अपना लाभ दिखायी दिया फिर भी जब कभी अवसर आया तो नारी शौर्य और पराक्रम के प्रदर्शन में पुरुष से पीछे नहीं रही । प्रकृति ने उसके लिए प्रजनन को जोड़ा है और उसकी शरीर रचना कुछ इस प्रकार की है कि यदि पुरुष के साथ भी ये रहीं होती तो वह सारी हेकड़ी भूल जाता लेकिन नारी तो भी अपने शौर्य और पराक्रम को अक्षुण्ण बनाये रही तथा अब भी समय आने पर उससे ज्यादा ही साहसी सिद्ध होती है ।

सभी क्षेत्रों में पुरुष के समान होने के बाद नारी के पास पुरुष से कई गुण बहुत अधिक हैं । कोमलता, सम्वेदना, स्नेह, माधुरी, प्रेम और सौन्दर्य नारी के ही हिस्से में आये हैं तो भी उसने कभी इसका अभिमान नहीं किया और पुरुष की विनम्र सहचरी बनी रहने में ही अपना सुख-सौभाग्य समझा । जीव का निर्माण करने वाले गुणसूत्र जब बराबर की संख्या में मिलते हैं तो देह बनती है और जब एकाध कम हो जाते हैं तो पुरुष का रिक्त, तृषित और अपूर्ण जीवन उत्पन्न होता है । धर्म-ग्रन्थों में भी नारी को पुरुष की अपेक्षा विशिष्ट गुण सम्पन्न माना है । तो क्या यह उचित है कि केवल बाहरी क्षेत्र में काम करने भर के कारण पुरुष अपने आपको बड़ा समझता रहे ।

समाज में प्रचलित इस विडम्बना और विकृत मान्यता को बदलने की आवश्यकता है कि नारी का दर्जा पुरुष के दर्जे से छोटा है । प्रकृति ने दोनों को पूरक बनाया है तथा दोनों का विकास परस्पर सहयोग पर निर्भर करता है । यदि छोटे-बड़े का निर्णय ही करना है तो पुरुष इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण ही रह जाएगा और उसे मुँह की खानी पड़ेगी, क्योंकि उसके सुखों तथा जीवन का आरम्भ ही उस सत्ता के आँचल में होता है जिसे वह अपने मिथ्या अहंकार के कारण छोटा सिद्ध करता है । कोई वृक्ष धरती से बड़ा किस प्रकार हो सकता है जिससे कि वह जन्मता है, कोई नहर नदी से विशाल कैसे हो सकती है जिसका कि उसमें पानी बहता है ।

इस भेदभाव का अन्त होना ही चाहिए

नारी को शक्तिरूपा कहा गया है । पुरुष अपने शौर्य, पराक्रम और साहस का ढिंढोरा चारों ओर पीटता रहता है । यह विशेषताएँ उसे कहाँ से प्राप्त हुईं ? गम्भीरता से विचार किया जाय तो मूलतः श्रेय नारी सत्ता को ही जाता है । काया से लेकर मन-मस्तिष्क का आरम्भिक ढाँचा तो मातृ-शक्ति ही अपने गर्भ में रखकर तैयार करती है । पयःपान द्वारा शरीर के पोषण के साथ-साथ स्नेह, प्यार वात्सल्य के अभिसिंचन द्वारा यह मनः एवं भाव संस्थान को तुष्ट एवं पुष्ट करती है । शरीर पोषण के अतिरिक्त यह अमूल्य, अनुदान बालक को सतत मिलता रहता है । विश्व के मूर्धन्य मनःशास्त्रियों का निष्कर्ष है कि पाँच वर्ष की आयु तक बच्चे का नब्बे प्रतिशत निर्माण हो जाता है । दस प्रतिशत का तो बाद में विकास होता है । उन गुणों का विकास जिसका बीजारोपण बालक में माँ कर चुकी होती है । दस प्रतिशत के ही अन्तर्गत बालक का स्वयं का पुरुषार्थ तथा वातावरण का योगदान आता है । अर्थात् पुरुष जैसा भी कुछ बनता है उसमें मातृ-शक्ति के सहयोग का हिस्सा नब्बे प्रतिशत होता है ।

होना यह चाहिए था कि नारी के अजस्र अनुदानों के प्रति पुरुष कृतज्ञता व्यक्त करता और उस प्राचीन परम्परा को कायम रखता, जिसमें नारी को शक्तिरूपा मानकर उसके प्रति असीम श्रद्धा व्यक्त की गयी है । उसकी श्रेष्ठतावरिष्ठता के प्रति हर व्यक्ति नतमस्तक होता है । पर दुर्भाग्य ! कि ऐसा न हो सका । पुरुष कृतघ्न निकला । उसकी कृतघ्नता बढ़ती ही गयी । नारी से मातृ-शक्ति के रूप में जिसे असंख्यों प्रकार की सुविधाएँ मिलीं, उसे ही पुरुष ने दूसरे श्रेणी का कनिष्ठ प्राणी मान लिया । मानवी प्रगति के इतिहास में वह दिन सबसे दुर्भाग्य का है जबसे नर-नारी के बीच एक को वरिष्ठ तथा दूसरे को कनिष्ठ मानने की भेद-भाव की परम्परा आरम्भ हुई । भारतीय संस्कृति के इतिहास में एक कलंक का ऐसा पृष्ठ जुड़ा जिसे पढ़ने पर सिर लज्जा से झुक जाता है ।

तब से नारी की स्थिति दिन-प्रतिदिन गिरती ही गयी । भोग्या, अबला, कामिनी, माया जैसी कितनी ही असम्मान सूचक उपाधियाँ उसे दी गयीं । कितनों ने तो नर को वरिष्ठ, नारी को कनिष्ठ सिद्ध करने के लिए धर्मतंत्र के मनोवैज्ञानिक हथियारों का प्रयोग किया । कहा यह जाने लगा कि पिण्डदान लड़के के बिना सम्भव नहीं है । यह अधिकार लड़की को नहीं है । धर्मपरायण देश होने के कारण इस भ्रान्ति ने अपनी जड़ें गहरी जमा लीं कि पुत्र के बिना-उसके द्वारा पिण्डदान कृत्य सम्पन्न किये बिना मृतक पिता को शान्ति नहीं मिल सकती । वह स्वर्ग-मोक्ष का अधिकारी नहीं बन सकता । रौरव नरक की यंत्रणा भुगतने जैसे कितने ही काल्पनिक भय दिखाये गये । समझ में नहीं आता कि जिस धर्म ने नारी सत्ता को इतना अधिक सम्मान दिया है-उसके विभिन्न रूपों की पूजा-अभ्यर्थना की है, वही कालान्तर में नारी के प्रति अनुदार और निष्ठुर कैसे बन गया । निस्सन्देह तथाकथित विद्वानों की यह एक खुली साजिश थी जो नारी शक्ति को गिराने के लिए धर्मतन्त्र का दुरुपयोग करने तक पर उतारू हो गये । शास्त्र के नाम पर कुछ ऐसे पृष्ठ तक बनाये गये तथा श्लोक जोड़ दिए गये जो नारी की छवि को धूमिल करते हैं ।

समाज में बहुतायत उन व्यक्तियों की होती है जिनका स्वयं का अपना कोई मौलिक चिन्तन नहीं होता । भीड़ जिस प्रवाह में बहती है उसी में वे डूबते-उतराते-बहते देखे जाते हैं । शास्त्र के नाम पर अथवा परम्परा के नाम पर जो भी चिन्तन थोपा गया, आँख मूँद कर पीढ़ी दर पीढ़ी यह वर्ग अपनाता चला गया । एक बार नारी को पुरुष की तुलना में हेय मानने की जो प्रथा आरम्भ हुई, वह क्रमशः पोषण पाकर सुदृढ़ होती रही । स्थिति आज यह है कि थोड़े से विचारशीलों को छोड़कर समाज के अधिकांश व्यक्ति नारी की अपेक्षा, पुरुष को वरिष्ठ और श्रेष्ठ मानते हैं । इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उस समय मिलता है जब लड़का जन्म लेने पर खुशियाँ मनायी जातीं और लड़की पैदा होने पर शोक व्यक्त किया जाता है । लड़का-लड़की को समान मानने वालों की अपेक्षा उनका अनुपात कई गुना अधिक है जो लड़के के लिए तो लालायित रहते हैं पर लड़की के जन्म को अभिशाप मानते हैं । नर-नारी की समानता का नारा देने वाले प्रबुद्धों में भी जब यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है तो यह सहज ही विश्वास करना पड़ता है कि भेदभाव की मान्यताएँ कितनी अधिक गहराई तक जड़ जमाये हुए हैं ।

भेदभाव की यह मनोवृत्ति कितनी घातक-कितनी निष्ठुर और नृशंस हो सकती है, इस तथ्य की ओर प्रायः ध्यान कम व्यक्तियों का जाता है । आये दिन समाचार-पत्रों में खबर छपती है कि पुत्र प्राप्ति के लिए बलि दी गयी । देवी-देवता से पुत्र की उपलब्धि के लिए मनुष्य इतना अधिक अन्धविश्वासी हो सकता है कि किसी दूसरे को बलि तक दे सकता है, ऐसे समाचार प्रायः पढ़ने को मिलते रहते हैं । राजस्थान के जैसलमेर और बाड़मेर जिलों के गाँवों में दीर्घकाल तक यह प्रथा विद्यमान थी कि पुत्री होने पर वहाँ के राजपूत उसे मार डालते थे । कुछ गाँवों तक में तो पिछले कुछ वर्षों तक एक भी बारात नहीं आयी; किसी लड़की का विवाह होते नहीं देखा गया । जन-जाग्रति आने पर यह अमानवीय प्रथा खुले तौर पर तो बन्द हो गयी पर विशेषज्ञों का अनुमान है कि बाड़मेर के कुछ गाँवों में लुके-छिपे तौर पर आज भी यह कुप्रथा मौजूद है । भाटी राजपूत नवजात लड़कियों को उनके जन्म लेते ही मार देते हैं ।

दहेज प्रथा को लेकर आजकल सर्वत्र आक्रोश भरे विरोध के स्वर प्रस्फुटित हो रहे हैं । पत्र-पत्रिकाओं में उत्तेजक लेख निकलते हैं । उन्मूलन के लिए वैचारिक गोष्ठियाँ आयोजित होती हैं । कितने ही स्थानों पर विरोधी संगठन तक बनाये गये हैं, ताकि समय पर वे दहेज प्रथा की समाप्ति के लिए संघर्ष कर सकें । पर अनेकानेक प्रयासों के बावजूद भी वह प्रथा सुरसा के मुँह की तरह बढ़ती ही जा रही है । दहेज के कारण मरने वाली नव-वधुओं की संख्या निरन्तर बढती जा रही है । प्रकाशित सरकारी आँकड़ों के अनुसार वर्ष १९८० में ४६० महिलाएँ जलकर मरीं तथा १९८१ में ६००, वर्ष १९८२ में अब तक जलकर मरने वाली विवाहित युवतियों की संख्या छः सौ से भी ऊपर पहुँच चुकी है । अनुमान है कि इन प्रकाशित आँकड़ों की तुलना में अप्रकाशित घटनाओं की संख्या कहीं अधिक है । जिनकी या तो सूचना नहीं मिल पाती अथवा पुलिस उन घटनाओं का सुराग नहीं प्राप्त कर पाती । अधिकृत आँकड़ों के अनुसार देश में महिलाओं की संख्या में निरन्तर ह्रास हो रहा है । कारण-दहेज के कारण मार डालना बताया जाता है । यह स्थूल समीक्षा है । पर कारणों की गहराई से खोज-बीन करें तो मालूम होगा कि दहेज प्रथा की जड़ें भी उस परम्परा में मौजूद हैं जिसमें कि लड़के-लड़की के बीच भेदभाव बरता जाता है ।

स्वेच्छापूर्वक कन्यादान के समय कुछ भौतिक वस्तुएँ पिता द्वारा दिया जाना एक बात है पर अधिकार के रूप में जो मोटी रकम दहेज के रूप में माँगी जाती है उसके पीछे वह अहमन्यता ही झाँकती दिखायी देती है जिसके कारण पुरुष अपने को वरिष्ठ मानता रहता है । उस वरिष्ठता की कीमत भी लड़की के पिता से वसूलने की कोशिश करता है । माँग पूरी न होने पर लडकी को मारने-पीटने, प्रताड़ित करने से लेकर जलाने तक के नृशंस उपाय काम में लाये जाते हैं । अस्तु, जब कभी भी दहेज प्रथा के उन्मूलन के लिए गम्भीरता से विचार किया जायेगा तो इस निष्कर्ष को समझे बिना उसमें सफलता नहीं मिल सकेगी कि दहेज प्रथा की जड़ें नर-नारी के बीच बरती जाने वाली भेदभाव की दुष्प्रवृत्ति में जमी हुई हैं । जिसे मिटाये बिना दहेज प्रथा की समाप्ति सम्भव नहीं है ।

विडम्बना तो यह है कि इस प्रवृत्ति को प्रश्रय देने के लिए विज्ञान के नवीनतम आविष्कारों तक का दुरुपयोग किया जाने लगा है । नयी वैज्ञानिक तकनीक के अनुसार गर्भ में पल रहे भ्रूण के लिंग की जानकारी जन्म के पूर्व ही प्राप्त की जा सकती है । 'एक्नियोसेन्टेसिस' की नयी पद्धति द्वारा गर्भ में स्थिति भ्रूण के चारों ओर भरे तरल-एक्नियाटिकफ्लूड की स्वल्प मात्रा सिरिंज से खींच ली जाती है, जिससे उसमें पाये जाने वाले भ्रूण कोषों का अध्ययन विशिष्ट तरीके से किया जा सके । अध्ययन के दौरान भ्रूण के सम्बन्ध में चिकित्सको को कितनी ही ऐसी बातें मालूम हो जाती हैं जो प्रायः शिशु जन्म के बाद ज्ञात हो पाती हैं । यह परीक्षण सोलह से लेकर बीस सप्ताह के गर्भकाल के दौरान होता है । इस तकनीक का विकास मूलतः यह जानने के लिए किया गया था कि गर्भस्थ भ्रूण कहीं विकलांग तो नहीं है ताकि गर्भपात द्वारा एक जन्म- जात विकलांग बच्चे के जन्म को रोका जा सके । इस तकनीक में भ्रूण के क्रोमोसोम का पूरा अध्ययन सम्भव है। इसलिए यह भी बताया जा सकता है कि होने वाली सन्तान लड़का होगा अथवा लड़की । इस खोज का कुछ अनैतिक व्यक्तियों ने दुरुपयोग करना आरम्भ कर दिया है ।

पैसे के लिए कितने ही लोभी चिकित्सकों ने भ्रूण के लिंग बताने का नया व्यवसाय आरम्भ किया है । राजस्थान,

गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तर-प्रदेश, पंजाब दिल्ली आदि प्रान्तों में ऐसे सैकड़ों केन्द्रों का सुराग मिलता है जहाँ कि इस तरह का अमानवीय व्यवसाय चलता है । इन केन्द्रों पर पुत्र लालसा से पहुँचने वाले व्यक्तियों की संख्या अत्यधिक पायी जाती है । यह मालुम होने पर गर्भस्थ शिशु कन्या है, अभिभावक गर्भ गिरवा देते हैं । एक मोटी रकम चिकित्सक को मिलती है तथा अभिभावकों को कन्या भार से छुट्टी मिलती है ।

पर मूर्धन्य चिकित्साशास्त्रियों का मत है कि यह अप्राकृतिक विधि अत्यन्त जोखिम से भरी हुई है । एम्नियोसेन्टेसिस करने की प्रक्रिया में गर्भ की परतों को छेदना पड़ता है, एम्नियॉटिक तरल पदार्थ तभी निकल सकता है । कई बार चोट से गर्भपात हो जाता है । चिकित्सक यह कहकर छुट्टी पा लेते हैं कि भ्रूण कन्या थी जबकि उनमें से कितने ही लड़के होते हैं जो जन्मने से पहले ही दम तोड़ देते हैं । बम्बई की एक घटना प्रकाश में आयी है कि एक महिला को इस परीक्षण के बाद एक चिकित्सक ने बताया कि उसे लड़का होने वाला है । किन्तु जब प्रसव हुआ तो देखा गया कि वह लड़का नहीं लड़की है । सम्भवत: प्रकृति को भी मनुष्य की यह भेदभाव की प्रवृत्ति उचित न लगी । कुपित होकर उसने लड़की के साथ विकलांगता का अतिरिक्त अभिशाप जोड़ दिया ।

इण्डियन मेडीकल एसोशिएशन के प्रेसीडेन्ट डॉ० एफ० एस० देसाई का कहना है कि लिंग निर्धारण के लिए गर्भाशय को छेदकर सुई से द्रव पदार्थ निकालना आवश्यक है, पर देखा यह गया है कि इसमें कितनी ही बार वह छोटा छेद विकराल रूप ले लेता तथा गर्भपात तक हो जाता है । यह प्रक्रिया निरापद नहीं है । किसी भी हालत में इसे प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिए ।

अब समय आ गया है कि नर-नारी के बीच भेदभाव की प्रवृत्ति को समाप्त किया जाय । नारी को न केवल समानता का दर्जा देना होगा वरन् वह श्रद्धा भी विकसित करनी होगी कि नारी अपनी खोयी गरिमा प्राप्त कर सके ।

न कोई छोटा है न बड़ा

एक पक्ष प्रबल है, दूसरा निर्बल; एक आश्रयदाता है दूसरा आश्रित एक स्वामी है दूसरा सेवक, एक प्रमुख है दूसरा गौण । जब तक हमारे दिलों में यह मान्यता घर किये रहेगी तब तक समस्या का समाधान सम्भव नहीं । नर-नारी जीवन सत्ता के दो समान तत्त्व हैं, दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । व्यवस्था, विवेक और नैसर्गिक गुणों की दृष्टि से कार्य-विभाजन तो हो सकता है, पर यह कोई सनातन नियम नहीं है कि पुरुष अधिकार प्रधान जीवन जिये और नारी उसकी क्रीतदासी बनकर जीवन का भार ढोये । पुरुष स्वभाव से संघर्षशील भूमिका निबाहता है इसके लिए प्रकृति ने उसे अधिक शक्ति दी है । नारी में भावनाओं की, मानवीय सम्वेदना की मात्रा अधिक होती है इसलिए व्यावहारिक जीवन में उसके छलावे की सम्भावनाएँ अधिक हैं । स्त्री स्वभाव से कोमल और पुरुष कठोर होता है । मनीषियों के इसी तत्व चिन्तन ने यह व्यवस्था दी कि पुरुष उपार्जन का, श्रम का, बाह्य व्यवस्था का कार्य सँभाले और नारी गृह-व्यवस्था, गृह-सुसज्जा तथा परिवार पालन का उत्तरदायित्व सम्भाले । बच्चों के विकास और कौटुम्बिक जीवन में जिस कोमलता तथा सरसता की आवश्यकता होती है वह कार्य जिस कुशलता से नारी सम्पन्न कर सकती है पुरुष नहीं, पर यह उत्तरदायित्व उपार्जन जैसे कठोर-कर्मों उत्तरदायित्वों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । अतएव उनके लिए भी वही योग्यताएँ आवश्यक और अनिवार्य हैं; जो बाह्य क्षेत्र की जिम्मेदारियाँ सम्भालने के लिये हैं । बाह्य क्षेत्रों में आवश्यक शिक्षा का उद्देश्य यह है कि अपनी जानकारियाँ बढ़ें, दृष्टिकोण चौड़ा हो सके ताकि उचित निष्कर्ष निकाले जा सकें । गृह-व्यवस्था में उससे कहीं अधिक सूझबूझ की आवश्यकता होती है । इसलिए नारी का शिक्षित और स्वाध्यायशील होना पुरुषों से कम आवश्यक नहीं; किन्तु इसे दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि अपने देश में नारी-शिक्षा का स्तर बहुत ही चिन्ताजनक है । शहरों से तो यह औसत बढ़ा भी है, पर आज भी सुदूर गाँवों में लड़कियों को पढ़ाना अच्छा नहीं समझा जाता । एक तो कन्या-विद्यालयों का इस देश में वैसे ही अभाव है, जहाँ हैं भी वहाँ अपने संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण लोग कन्याओं को पढ़ाना अच्छा नहीं समझते । यदि पढ़ाया भी तो प्राइमरी शिक्षा या अधिक से अधिक हाईस्कूल की शिक्षा से उन्हें आगे बढ़ने नहीं दिया जाता । लोगों को शंका रहती है कि इससे उनका चाल-चलन बिगड़ेगा, बच्ची के किशोरी होते ही उसके विवाह की बात शुरू हो जाती है । इस तरह अपरिपक्व बुद्धि और शारीरिक स्थिति में गृहस्थ में डाल दी गई लड़कियाँ जिन्दगी भर बच्चे पैदा करने की मशीन की तरह रह जाती हैं । इस स्थिति में उन्हें पारिवारिक प्रताड़नाओं का किस बुरी तरह शिकार होना पड़ता है यह सहज ही समझा जा सकता है । जिस बालक की बुद्धि का विकास न हुआ हो, जिसमें सांसारिक और भौगोलिक परिस्थितियों के अध्ययन तथा अपने विवेक से उनका निष्कर्ष निकालने की क्षमता ही न हो, वह गृहस्थ जैसे महान् सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्माण कैसे कर सकता है । मदालसा ने जब जिस तरह का बालक चाहा तब वैसा ही बालक उत्पन्न किया । इसके लिए उनका आत्मिक और बौद्धिक स्तर कितना ऊँचा रहा होगा, उनका चिन्तन और दृष्टिकोण कितना विशाल रहा होगा यह कोई कहने की बात नहीं । क्या यह किसी अशिक्षित नारी में गुण हो सकते हैं ? शकुन्तला अशिक्षित रहकर भरत बना सकती थी क्या ? गार्गी ने हजारों लोगों का आध्यात्मिक मार्गदर्शन किया, मैत्रेयी ने उस समय की सैकड़ों महिलाओं को आत्मोत्कर्ष का उद्बोधन किया, इतिहास काल और स्वाधीनता संग्राम मे जिन महिलाओ

सकती, वह विधवा होने पर भी पुनर्विवाह नहीं कर सकती। वह पुरुष के बराबरी से उठ-बैठ नहीं सकती। उसको कोई आर्थिक अधिकार नहीं है। किसी तरह के ऊँचे पद उसे दिए नहीं जा सकते, इत्यादि। विषमता जो कि बिल्कुल अन्यायपूर्ण है हर घर में घर किये बैठी हैं इन्हें हटाना मानव समाज की मानवता के लिए अधिक से अधिक मनुष्यों के सुख के लिए जरूरी है। आखिर नारियाँ आधी दुनिया तो है ही। अगर आधी दुनिया इस तरह दलित और पीड़ित रहे तो मनुष्य समाज को सुखी कैसे कह सकते हैं। इसलिए नर नारी समभाव की सख्त जरूरत है। मतलब यह नहीं है कि कोई भी नारी किसी भी नर के समान है। सैकड़ों नर लाखों नारियों से महान होते हैं, हो सकते हैं और सैकड़ों नारियाँ लाखों नरों से महान होती हैं, या हो सकती हैं। नर-नारी समभाव का अर्थ होता है कि नर हो या नारी उसके गुणों और सेवाओं का उचित मूल्यांकन किया जाए और सिर्फ नारियाँ या नर होने के कारण किसी पद या अधिकार से किसी को वंचित न किया जाए। नर-नारी समभाव के व्यावहारिक रूप के लिए निम्नलिखित सूचनाएँ उपयोगी हैं-

(१) नर और नारी के साथ व्यवहार, गुण, योग्यता और सेवा के अनुरूप होना चाहिए। नारी, नारी होने के कारण किसी अधिकार व गौरव से वंचित न रहे।

(२ सम्पत्ति के ऊपर नारी का भी अधिकार होना चाहिए। पति की आमदनी में उसका भी हिस्सा होना चाहिए। यह सिर्फ खाना, कपड़ा आदि पाने वाली नौकरानी ही न रहे।

(३) वर पक्ष बड़ा है और कन्या पक्ष छोटा है, यह दुर्भावना दिल से निकल जानी चाहिए। साला आदि शब्द गाली बन गए हैं। यह दुर्भाव जाना चाहिए।

(४) घूँघट, परदा आदि बुरे रिवाज बिलकुल दूर होने चाहिए। विनय की दृष्टि से तो उनका उपयोग होना ही न चाहिए।

(५) एक नौकर है। वह मालिक के कपड़े धोने को तैयार है पर मालकिन के कपड़े धोने को तैयार नहीं है। इसमें उसे पुरुषत्व का अपमान मालूम होता है। यह पुरुषत्व मर मिट जाना चाहिए।

(६) कोई पुरुष अगर किसी ऊँचे स्थान पर बैठा हो और नारियाँ जमीन पर हों तो इसमें नारियों का कोई अपमान न समझा जाएगा, अगर नारी किसी ऊँचे स्थान पर बैठी हो और पुरुष वर्ग जमीन पर बैठा हो तो इसमें पुरुष वर्ग का अपमान समझा जाएगा। यह लैंगिक विषमता है। यह न रहनी चाहिए। हाँ पुरुषों में कोई गुरुजन या विशेष आदरणीय व्यक्ति हो तो उसके सम्मान का विचार करना आवश्यक है पर यह पुरुषत्व का सम्मान नहीं है किन्तु गुरुत्व आदि का सम्मान है जो कि नारियों के विषय में भी किया जाना चाहिए।

(७) सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक पदों पर स्त्रियों का भी होना आवश्यक है। साधारण नारी का स्थान घर भले ही रहे पर नारी को सब जगह काम करने का अधिकार है। इस बात की निशानी के रूप में तो नारी को सभी तरह के पदों पर थोड़े बहुत रूप में रहना चाहिए। सभा, पंचायत आदि में भी नारी की सदस्यता अनिवार्य है।

इस प्रकार की और भी सूचनाएँ दी जा सकती हैं। सार इतना ही है नर और नारी मानव जीवन के समान अंग हैं। इनका काम एक-दूसरे को सहयोग देना है न कि एक-दूसरे का शोषण करना। यह नारी समभाव मनुष्य की सभ्यता की बड़ी भारी कसौटी है।

स्त्रियों को इस विषय में पीछे न रहना चाहिए। उन्हें अबला नहीं सबला बनना चाहिए। दौड़ने का, पत्थर फेंकने का, लाठी आदि चलाने का अभ्यास उन्हें भी करना चाहिए तथा निर्भयता, साहस आदि की प्रवृत्तियों को जगाना चाहिए। ताकत की दृष्टि से जो दीनता की भावना उनमें छोटी अवस्था से पैदा हो गयी है वह न पैदा होनी चाहिए। यदि पैदा हो गयी हो तो विवेक के जरिये दूर करनी चाहिए। पुरुष हो या नारी सभी को बलवान बनने की सख्त जरूरत है।

जिस राष्ट्र या समाज के स्त्री और पुरुष बलवान होते हैं वही अपना और जगत का कल्याण कर सकते हैं। आदमी धनी भी हो, पंडित भी हो फिर भी वह जगत की योग्य सेवा नहीं कर सकता, न अपने गौरव और न्याय की रक्षा कर सकता है। हर व्यक्ति को स्त्री या पुरुष को हर कुटुम्ब को, हर समाज को शरीर और मन से बहादुर बनना चाहिए।

नारी अकेले ही सृष्टिक्रम चला सकती है

नर शारीरिक दृष्टि से नारी की तुलना में बलिष्ठ भले ही हो पर इसके अतिरिक्त हर क्षेत्र में नारी की गरिमा बढ़ी-चढ़ी है। भावनात्मक उत्कृष्टता के क्षेत्र में तो वह निस्सन्देह पुरुष की तुलना में कहीं आगे है।

नारी गरिमा का एक तथ्य विज्ञान की कसौटी पर और भी स्पष्ट हुआ है। नारी एकाकी प्रजनन कर सकती है। पुरुष के संयोग के बिना भी उसके लिए सन्तानोत्पादन सम्भव है। पुरुष के लिए यह सर्वथा असम्भव है। इस दृष्टि से पुरुष अपूर्ण हुआ और नारी पूर्ण ठहरी। यदि सृष्टि संचालन की बात का ही भौतिक मूल्यांकन किया जाय तो एक एकड़ भूमि का मूल्य दस हजार और उसमें प्रयुक्त होने वाले पच्चीस किलो बीज का मूल्य पच्चीस रुपया होता है। सन्तानोत्पादन का श्रेय यदि दिया जाना हो तो वह नारी को ही मिल सकता है। नर तो उस महान प्रक्रिया में मात्र एक स्वल्प सहयोग भर प्रदान करता है। सो भी इतना कम कि उसके बिना भी काम चल सकता है।

यदि किसी कारणवश ऐसी स्थिति आ जाय कि नर और नारी में से इस सृष्टि में एक ही वर्ग शेष रह जाय,

दूसरा समाप्त हो जाय तो नारी में यह क्षमता है कि यह अकेले ही सृष्टि क्रम को संचालित रख सकती है किन्तु पुरुष के लिए ऐसा कर सकना सर्वथा असम्भव है उसके पास वे यन्त्र-उपकरण ही नहीं हैं जिनसे गर्भ धारण सम्भव होता है ।

अब तक यही माना जाता था कि नर संयोग के बिना अकेली नारी प्रजनन में असमर्थ है, पर विज्ञान ने सिद्ध किया है कि इस क्षेत्र में भी नारी अपूर्ण नहीं, सम्पूर्ण है । उसमें यह सम्भावना भी विद्यमान है कि यदि वह चाहे तो स्वावलम्बी रहकर सृष्टि संचालन कर सकती है । अभी विज्ञान इतना ही सिद्ध कर सकता है कि नारी केवल कन्याओं को ही जन्म दे सकती है । पुत्र जन्म के लिए पुरुष सहयोग अपेक्षित है । फिर अगले दिनों यह कमी जो आज अनुभव की जाती है उसका भी समाधान मिल सकता है ।

विज्ञान का हर विद्यार्थी जानता है कि प्रत्येक मनुष्य के भीतर उभय लिंगों का अस्तित्व विद्यमान रहता है । नारी के भीतर भी नर का अस्तित्व रहता है । इस अन्तर्नर को–ऐनिमस कहते हैं और हर नर के भीतर नारी की सूक्ष्म सत्ता विद्यमान रहती है । इस अन्तर्नारी को–ऐनिमा कहते हैं । कोई मनुष्य न पूर्णतया नर है और न नारी । स्तन नारी के विकसित होते हैं पर उनका अस्तित्व नर के भीतर भी रहता है । उसी प्रकार प्रजनन अंगों के गह्वर में विपरीत लिंग का अस्तित्व भली प्रकार देखा जा सकता है । शरीरशास्त्र का कोई भी छात्र इसे सहज ही समझ सकता है । इतना ही नहीं–स्वभाव और प्रवृत्तियों में भी बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं जिनसे नर में नारी का और नारी में नर का अस्तित्व देखा जा सकता है ।

अविकसित जीवों में नर मादा का संयोग बिना हुए भी सन्तानोत्पत्ति का क्रम चलता रहता है । बहुत से पौधे ऐसे हैं जिनकी टहनियाँ काटकर जमीन पर गाड़ दी जाएँ तो वे उगती हैं और एक स्वतन्त्र पेड़ बन जाता है । ईख इसी किस्म का पौधा है । गाजर की हर कोशिका से एक नया गाजर का पौधा उगाकर अमेरिका के वनस्पति विज्ञानी प्रो० स्टीवर्ड ने दिखाया है । हाइड्रा नामक एक सूक्ष्म प्राणी के शरीर का कोई टुकड़ा गिर पड़े तो वह एक स्वतन्त्र हाइड्रा बन जाता है । बैक्टीरिया भी इसी तरह दो खण्डों में बँटते और अपनी वंश वृद्धि करते हैं । हर वनस्पति की भिन्न लिंगी पराग या बीज में उभयपक्षी लिंग भेद हो ही यह आवश्यक नहीं है ।

पेड़-पौधों के प्रजनन में भी जीवधारियों की तरह परागण क्रिया ही मूल कारण होती है । रज-वीर्य की तरह इनमें भी परागकण और पुंकेशर तत्व होते हैं और इनके मिलन पर ही फल एवं बीज की उत्पत्ति होती है और यहीं से वंशवृद्धि का आधार बनता है ।

कुछ पौधों में दोनों तत्व पाये जाते हैं और हवा के साथ उड़ कर अथवा मधुमक्खियों, तितलियों अथवा अन्य छोटे कीड़ों द्वारा अपने पंख या पैरों के सहारे इधर-उधर किया जाता है और जब भिन्न लिंग पराग का परस्पर सम्मिश्रण होता है तो ये गर्भ धारण करते हैं । यह भ्रूण ही फल है । फल के अन्दर बीज उसकी अगली पीढ़ी की तैयारी समझी जानी चाहिए ।

बहुत से पेड़-पौधे एकलिंगी होते हैं । इस प्रकार के मादा पौधे यदि किसी अन्य पेड़ से परागकण प्राप्त कर सकें तो ये फलित नहीं होंगे । विज्ञान ने इन पौधों में भी कृत्रिम गर्भाधान की प्रक्रिया आरम्भ की है । समर्थ पुंकेशर का संयोग हल्की जाति के परागकण से कराने से पौधों के स्तर को अधिक विकसित करने का सफल प्रयोग इन दिनों बहुत चल रहा है ।

अच्छी जाति के बीज कठिनाई से मिलते हैं । फसल के समय जो बीज अच्छा होता है वह भी ऋतु प्रभाव या छूत के कीड़े चिपक जाने से अपना प्रभाव खो बैठता है और अच्छा दीखने वाला बीज भी घटिया सिद्ध होता है इसलिए एक नई विधि यह निकाली गयी है कि गन्ना आदि की तरह पेड़ के टुकड़े काट कर उन्हें बोने को ही ऐसा योग कर दिया जाय कि अन्य पौधे उसी प्रकार बिना बीज के उगने और बढ़ने लगें । टहनियाँ काटकर बोने और उसी से पौधा उत्पन्न हो जाने की विधि अब तक कुछ खास किस्म के पौधों तक ही सीमित थी, पर अब यह प्रयत्न किया जा रहा है कि अधिकांश पौधों में यह सुधार कर दिया जाय कि वे संयोग परागण की यह बाहरी बीज की प्रतीक्षा किये बिना अपने आप में ही वह प्रयोजन पूरा कर लिया करें और परागण की प्रतीक्षा किये बिना ही टहनियों के द्वारा भी अपनी वंश वृद्धि जारी रख सकें ।

पर प्राणि जगत में यह बात आश्चर्य की समझी जाती थी । निर्जीव अण्डा देने वाली मुर्गियाँ बिना नर के संयोग के अण्डे दे लेती हैं पर उनसे बच्चे नहीं हो सकते । मनुष्य जैसे विकसित प्राणी के लिए तो यह और भी कठिन है ।

पुराणों में ऐसी कथा मिलती हैं, जिनमें यह बताया गया है कि यौन सम्पर्क के बिना बच्चे हो सकते हैं । लंका दहन के पश्चात् हनुमान समुद्र में नहाये, उनका पसीना मछली पी गई और उससे मकरध्वज का जन्म हुआ । देवताओं और ऋषियों के बारे में भी ऐसा वर्णन मिलता है । पर उन्हें आलंकारिक माना जाता है । पीछे के इतिहास काल में भी जब इस प्रकार की घटनाएँ देखने को मिलती हैं तब यह सोचने को विवश होना पड़ता है कि क्या यह सम्भव है कि बिना संयोग के सन्तान उत्पन्न हो सके । वृद्ध दशरथ जी की तीन रानियों की सन्तानें यज्ञ चरू से हुई थीं । व्यास जी ने वंश नाश के संकट को बचाने के लिए राजा विचित्रवीर्य की रानियों को नग्न देखा भर था और उन्हें पाण्डु, धृतराष्ट्र तथा विदुर के रूप में तीन सन्तानें मिलीं । इस दिशा में खोज करने पर और भी उदाहरण मिलते हैं । कुन्ती ने कर्ण को कुमारी अवस्था में ही उत्पन्न किया था । कर्ण ही नहीं धर्मराज से युधिष्ठिर की, इन्द्र से अर्जुन की, पवन से भीम की उत्पत्ति मानी जाती है । क्या अशरीर देव शक्तियों का आवेश नर तन

धारियों में सन्तानोत्पन्न कर सकता है । इस शृंखला में तब एक कड़ी और जुड़ जाती है जब हम कुमारी मरियम के पेट से ईसामसीह के जन्म की बात पढ़ते हैं ।

पुराने उदाहरणों के सम्बन्ध में कई तरह की आशंकाएँ की जा सकती हैं और यह कहा जा सकता है कि नर संयोग को उन दिनों लोक-लाज वश देव आवेश कह कर छिपाया गया होगा, चूँकि वे घटनाएँ बहुत पुरानी हो गयीं और अब उनका परीक्षण-विवेचन करने का समय नहीं रहा, इसलिए इन उदाहरणों को लेकर इस निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है कि ईख गुलाब की तरह टहनियों से अथवा हाइड्रा और वैक्टीरिया जैसे जीवों की तरह क्या मनुष्य भी बिना संयोग के सन्तानोत्पन्न कर सकता है । केवल मादा अण्डाशय का ही परिष्कृत रूप है। प्रकृति में तो यह एक लिंगी प्रजनन–पार्थनोजेनेसिस चिरकाल से चला आ रहा है । प्रश्न केवल मनुष्य के सम्बन्ध में है ।

बात असम्भव-सी लगती है पर विज्ञान के बढ़ते हुए चरणों ने इस सम्भावना को एक सच्चाई के रूप में प्रस्तुत कर दिया है कि बिना नर की सहायता के नारी द्वारा अपने कौमार्य और ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुए सन्तानोत्पन्न कर सकना सम्भव है । नर ऐसा कर सके, यह कठिन दीखता है क्योंकि उसके पास भ्रूण धारण करने के वे अवयव नहीं होते जो नारी को उपलब्ध हैं ।

कुछ समय जीवविज्ञानी प्रो० हाल्डेन की सहयोगिनी, सहधर्मिणी डॉ० हेलेन पर्व ने यह दावा किया था कि– "किसी असंदिग्ध कुमारी के गर्भवती होने की उतनी ही सम्भावना है जितनी एक साथ कई बच्चे किसी स्त्री के पेट से पैदा होने की । दोनों ही बातें अपवाद हैं पर असम्भव नहीं । एक साथ कई बच्चे हर स्त्री के नहीं होते पर उनका होना असम्भव नहीं । इसी प्रकार यदि कोई कुमारी बिना नर की सहायता के गर्भ धारण करे तो इसे असाधारण भर कहा जाना चाहिए असम्भव नहीं ।"

इस दावे को लेकर पाश्चात्य देशों में एक बड़ा विवाद उठा खड़ा हुआ । दावे को सिद्ध करने की चुनौती दी गयी । अस्तु, डॉ० पर्व ने ब्रिटिश पत्रों में विज्ञापन छपाया कि जो महिलाएँ अपनी सन्तान की पिता भी स्वयं ही बनना चाहती हों वे वैज्ञानिक परीक्षा के लिए आगे आयें ।

इस विज्ञापन के आधार पर लगभग १०० महिलाओं ने इसके लिए अपने को प्रस्तुत किया । उनमें से प्राथमिक परीक्षा में ८९ उत्तीर्ण हुईं । इस प्रयोग की परीक्षा के लिए सुप्रसिद्ध जीवशास्त्रियों की डॉ० स्टेनली वाल्फेरलिन की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी । इसके दल में सम्मिलित सदस्य थे प्रख्यात डॉक्टर बर्नार्ड केम्बर, डॉ० सिडनी, डॉ० डेविड बिन विलियम्स ।

प्रयोग के लिए सबसे उपयुक्त शरीर पाया गया श्रीमती ऐमी-मोरी जोन्स का । प्रयोग सफल हुआ । श्रीमती जोन्स ने एक लड़की को जन्म दिया । इसमें कहीं किसी चालाकी की गुंजाइश न रहे, इस दृष्टि से प्रतिबन्धों की सारी व्यवस्था पूरी कर ली गयी और पूरे गर्भकाल में चिकित्सक मण्डली की निरन्तर देख-भाल रही । नियत समय पर कन्या जन्म देकर श्रीमती जोन्स ने उस असम्भव माने जाने वाली बात को सम्भव करके दिखा दिया, जिसमें सृष्टि संचालन के लिए नर-नारी सम्पर्क आवश्यक कहा जाता था ।

इस प्रजनन से यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि प्रत्येक पानी के पूँछदार कीड़ों की तरह शुक्र कीटकों के सिर में २३ गुणसूत्र और पूँछ में माइटोकोन्ड्रिया नामक पिण्ड होते हैं। यह पिण्ड ही शुक्राणुओं का गतिशील होने की शक्ति प्रदान करते हैं । नारी अण्डकों को उद्दीपन और विभाजन आमतौर से शुक्राणु करते हैं । पर यह अनिवार्य नहीं, यह उत्तेजना दूसरे प्रकार से भी उत्पन्न की जा सके तो नारी स्वयं ही प्रजनन करने में सफल हो सकती है क्योंकि उसके रज अण्ड में उत्पादन के सारे तत्व मौजूद हैं । नारी अण्ड में २३ गुण सूत्र होते हैं ये ४६ हो जायें तो भ्रूण धारण हो सकता है । यह कार्य नारी के दो अण्डों को मिला देने की वैज्ञानिक पद्धति से भी सम्भव हो गया और श्रीमती जोन्स ने कन्या को जन्म दिया । नर का शुक्राणु रहने से यह लाभ था कि सन्तान में पिता की वंश परम्परा माता की वंश परम्परा में मिलकर सन्तान को मिश्रित धर्मी बना सकती थी, पर यदि वैसा नहीं हुआ है तो केवल माता के स्वरूप पर स्वभाव की ही सन्तान उत्पन्न होगी । यह मिश्रण तो सम्भव नहीं पर अण्डाणु को उत्तेजित करना और उसके गुणसूत्रों को द्विगुणित कर देना विज्ञान की पकड़ में है । यदि नर का इस धरती पर से किसी कारणवश लोप हो जाय तो नारी अपने बलबूते पर सृष्टि उत्पन्न करती रह सकती है । हाँ वर्तमान उपलब्धियों के आधार पर वह केवल कन्याएँ ही उत्पन्न कर सकती है । प्रकृति तो कुछ भी कर सकती है । उसके लिए मरियम के पेट से ईसा और कुन्ती के गर्भ से कर्ण का जन्म उनकी कुमारी माताओं द्वारा पूर्णतया सम्भव है । पर विज्ञान अभी वहाँ तक नहीं पहुँचा । वह नारी के पेट से कन्या उत्पन्न कर सका है । अभी नारी केवल कन्या की पिता बन सकी है । आगे पुत्र की सम्भावना के लिए विज्ञान के अगले चरणों की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी ।

श्रीमती जोन्स के गर्भ से उत्पन्न 'मोनका' नाम की लड़की अब किशोरावस्था मे है । वह वैज्ञानिकों के लिए कौतूहलपूर्ण शोध का विषय बनी हुई है । इन माँ-बेटी के शरीर में इतना साम्य है कि किसी भी परीक्षण में उन दोनों की शरीर रचना में कोई अन्तर दिखायी नहीं पड़ता, रंग-रूप और अंगों की बनावट में इतनी समता है कि देखने वाले बड़ी उम्र की जोन्स को छोटी उम्र की जोन्स में बदली हुई ही कहने लगते हैं । बच्ची की टू कापी सत्य प्रतिलिपि के रूप में देखने के लिए लोग दूर-दूर से आते हैं ।

नारी पर किया गया उपर्युक्त प्रयोग अब वैज्ञानिकों के लिए एक उत्साह और आशा का विषय बन गया है । जो

पशु केवल दूध के काम आते हैं उनके नर बच्चे बेकार सिद्ध होते हैं और खाल-माँस के लिए उन्हें मौत के घाट उतारना पड़ता है । बकरे और भैंसे जितना खाते हैं, जगह घेरते हैं उसकी तुलना में लाभ कम देते हैं इसलिए उन्हें कसाई के हवाले ही किया जाता है । यदि ये दुधारू पशु केवल मादाएँ ही जनने लगें तो फिर दूध की भी कमी न रहे और मार-काट भी उतनी न मचानी पड़े । इसलिए पशुओं पर तथा दूसरे जन्तुओं पर यह प्रयोग किये जा रहे हैं कि मादा प्रजनन के सम्बन्ध में नर पर आश्रित न रहकर अपने पैरों पर आप खड़ी हो सके । इसके लिए केवल उस विधि को व्यापक भर बनाना है जिसके अनुसार मादा का अण्ड उत्तेजित और एकत्रित हो सकें । यह कार्य अब असम्भव नहीं रहा केवल कष्टसाध्य भर रह गया है, उसी को सरल बनाने के प्रयत्न बहुत जोरों से चल रहे हैं ।

फ्रान्स के जीवविज्ञानी विग्यूर ने 'सी अर्चिन' नामक समुद्री जन्तु पर संयोग रहित प्रजनन के सफल प्रयोग किए हैं । डॉ० ए० स्टाल्क भी ऐसी ही सफलता ट्रथ स्कार्प मछलियों पर प्राप्त कर चुके हैं । अब अन्य पक्षियों और पशुओं पर यह परीक्षण हो रहे हैं । संग्रहीत अनुभवों के आधार पर मनुष्य की काया को यह सिद्ध करने के लिये हाथ में लिया जाएगा कि नर-नारी सम्पर्क दूसरी दृष्टि से भले ही उपयुक्त हो पर सन्तानोत्पादन का क्रम तो उसके बिना भी चल सकता है । अब उन प्राचीन पौराणिक उपाख्यान की सत्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता जिनमें बिना नर संयोग के सन्तान जन्म का वर्णन है ।

स्त्री, पुरुष की परस्परावलम्बी हो, आश्रित नहीं

चरम अर्थों में कोई भी व्यक्ति स्वावलम्बी नहीं होता । सभी परस्परावलम्बी होते हैं । स्वस्थ समाज का एक स्वाभाविक लक्षण यह है कि उसमें स्त्री-पुरुष की परस्परावलम्बिता को स्वीकार किया जाय । किसी एक को विशेष या प्रधान न माना जाय ।

स्त्री-पुरुष के इस परस्परावलम्बन को सहज स्वीकृति मिलनी चाहिए । किन्तु इसके लिए मात्र विधान या सिद्धान्त पर्याप्त नहीं । आर्थिक उपार्जन-क्षमता भी पर्याप्त नहीं । आवश्यकता स्त्री द्वारा अपने व्यक्तित्व का कम से कम वैसा ही विकास करने की है, जैसे पुरुष का होता है । अभी स्त्री का वैसा स्वायत्त स्वतन्त्र-व्यक्तित्व बन नहीं पाया है ।

पुरुषों में शरीर के प्रति आकर्षण कुछ कम नहीं होता । स्त्री की तुलना में पुरुष निश्चय ही अधिक काम-प्रधान तथा काम विह्वल होते हैं । किन्तु तो भी वे अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य कामसेवन नहीं मानते । कोई भी पुरुष स्वयं को मूल भूमिका काम से इतर मानता है । भले ही, अपनी विवशताओं और विकृतियों के कारण काम-लालसा उसके जीवन में सर्वोपरि बन गयी हो । किन्तु प्रायः सभी पुरुष स्त्री की मुख्य एवं मूल भूमिका काम-केन्द्रित ही माने बैठा है । उसने स्त्रियों के लिए ऐसे मुहावरे और विशेषण गढ़ दिये हैं तथा ऐसी मान्यताएँ अति प्रचारित कर दी हैं, जो उसे काम केन्द्रित ही बनाये रखें । यह तथ्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देखने को मिलता है ।

जब किसी पुरुष को गौरवान्वित करना होता है तो कहा जाता है–ये हमारे यहाँ के लोकनायक हैं, प्रमुख सार्वजनिक पुरुष हैं । किन्तु किसी भी स्त्री को गौरव के साथ सार्वजनिक स्त्री कभी नहीं कहा जा सकता । जैसे ही किसी स्त्री को प्रमुख सार्वजनिक स्त्री कहा जाएगा, तत्काल सब लोगों के दिमाग में एक ही संकेत उभरेगा कि वह स्त्री मानो सार्वजनिक तौर पर गणिका है । मानो कि पति-गृह के बाहर स्त्री का जो भी कार्य-व्यापार होगा, वह अनिवार्यतः शरीर भोग से ही सम्बन्धित होगा ।

यह मान्यता कितनी गहराई से पुरुषों के संस्कार जगत में छा गयी है, यह आज भी स्पष्ट देखा जा सकता है । आजकल स्त्रियाँ युद्ध में सैनिक बनती हैं किन्तु चिकित्सा या परिचर्या जैसे कार्यों को छोड़ दें, तो सामान्यतः स्त्री का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपयोग युद्धों में यह माना जाता है कि वे गुप्तचरी करें और यह गुप्तचरी स्त्री के लिए अत्यन्त अपमानकारक होती है । उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे दुश्मन पक्ष की छावनी में जाकर वहाँ के प्रमुख पुरुषों पर रूप की मोहिनी डालें और उन्हें अपने वश में करके उनके रहस्य जान लें । मानो स्त्री का एक ही उपयोग है शरीर का विक्रय अथवा शरीर के विक्रय का लालच देना, शारीरिक सौन्दर्य की सौदेबाजी करना ।

एक युवक किसी भ्रष्ट अफसर के पास नौकरी माँगने जाता है, तो वह अफसर उससे धन की घूस माँगता है । किन्तु यदि कोई स्त्री उसके पास जाए, तो वह रुपया नहीं, उसका शरीर माँगेगा, पुरुष को परिश्रम का मूल्य मिलता है । किन्तु स्त्री को शरीर और शारीरिक सौन्दर्य का ही मूल्य अधिक मिलता है । उसके श्रम पर कम ही लोगों की दृष्टि जाती है, रूप पर अवश्य सभी की कुदृष्टि पड़ेगी ।

पुरुषों का यह चिन्तन विकार हर क्षेत्र में दीखता है । समस्त संचार तथा प्रचार माध्यम मानो नारी के निरन्तर अपमान के लिए कटिबद्ध हैं । विज्ञापनबाज तो पूरी तरह नारी को वासना की कठपुतली मानने पर उतारू हैं । विज्ञापनों में लिखा रहेगा बुद्धिजीवियों की पहली पसन्द अमुक वस्तु और सदा ही किसी सजे-धजे पुरुष को उस विज्ञापन में दिखाया जाएगा । यदि विज्ञापनों को नारी के बारे में अनुमान लगाया जाय तो सदा

निष्कर्ष उभरेगा कि नारियों के कुल तीन काम हैं-पहला सुन्दर-साड़ियों की तलाश और आकांक्षा के पीछे पागल रहना तथा शृंगार-प्रसाधनों से घिरे रहना, दूसरा अंग-प्रत्यंगों के प्रदर्शन द्वारा पुरुष को मोहित करना या प्रिय पुरुष के साथ भाव-विभोर मुद्रा में सैर-सपाटा करना तथा तीसरा बच्चों की चिन्ता करना । वीरता, बुद्धिमत्ता, श्रमशीलता, स्वाध्याय, तकनीकी, कौशल आदि से उनका रिश्ता हो सकता है, यह कभी कोई विज्ञापनबाज सोचता भी नहीं । अपने धन और आकर्षण के बल से सारे विज्ञापनबाज नारी के शील और अस्मिता से निर्लज्य खिलवाड़ करते ठीक उसी प्रकार नहीं थकते, जिस प्रकार कि अपने पद और प्रभाव के बल से अफसर या नेता यही सब करते नहीं अघाते । ये सब प्रवृत्ति नारी को परावलम्बी बनाने वाली साजिश का हिस्सा है, न कि उसे परास्परावलम्बी समान अधिकार-भाव प्रदर्शन करने वाली आधुनिक चेतना एवं भावना का । इस परावलम्बन से मुक्त नारी ही पुरुष के साथ परस्परावलम्बन की स्थिति में खड़ी हो सकती है ।

स्त्री की शक्ति का आधार यही हो सकता है कि वह शारीरिकता से ऊपर उठकर मानवता की दिशा में उन्नति करे । वह अपनी आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति का महत्त्व समझे और उसे विकसित करे । वह बुद्धिमती, वीर तथा तेजस्विनी बनने की कामना एवं साधना करे । स्नेह, उत्सर्ग, सहिष्णुता, सन्तुलन और धैर्य तो उसके स्वाभाविक गुण ही हैं, परन्तु इसके साथ ही वह साहस, शौर्य, स्वाध्यायशीलता, बुद्धिमत्ता, ब्रह्मचर्य, विद्याभ्यास आदि गुणों का भी पर्याप्त विकास करने की दिशा में आगे बढ़े । तभी तो वशिष्ठ स्मृति का यह कथन कि वह एक ही सत्ता का समान अर्द्धांश है, सही सिद्ध होगा, जैसा कि कहा गया है-

" स्वेच्छामयः स्वेच्छया द्विधा रूपो बभूव ह ।
स्त्री रूपो बामभागांशो, दक्षिणांश पुमान स्मृतः ॥

—वशिष्ठस्मृति

अर्थात्-"परमात्मा ने सृष्टिसृजन की इच्छा की, तब उसने स्वयं ही अपनी सत्ता को दो भागों में विभक्त कर दिया । एक भाग दक्षिण, दूसरा बाम । दक्षिण भाग का प्रतीक पुरुष को तथा बामाङ्ग का प्रतीक नारी को बना दिया ।

नर-नारी की समान सहभागिता एवं परस्परावलम्बिता का यह शास्त्रीय प्रतिपादन पुनः प्रतिष्ठित होना चाहिए । इस हेतु आवश्यक है कि पतन प्रिय पुरुषों द्वारा प्रचारित मानदण्डों को नारी खुद नामन्जूर करें, उनका विरोध वह आगे बढ़कर करे । यह काम नारी ही कर सकती है । वह स्वयं शृंगार, प्रिय नटी बनना छोड़ दे और अपने शरीर को इस तरह प्रदर्शनार्थ प्रस्तुत करना बन्द कर दे, जिससे वह लोभ और ईर्ष्या का कारण बने । उसे संयम और दृढ़ता की, शौर्य और बुद्धिमत्ता की चेतना अधिष्ठात्री भी बनना होगा । इसी में उसकी सार्थकता है वह तभी पुरुष से परस्परावलम्बी रिश्ता साध सकती है, जब वह शरीरनिष्ठा से जुड़ी प्रवृत्तियों का आमूल विरोध-बहिष्कार करे । अपनी अन्तर्निहित मानवता को वह ऊर्जस्वी बनाये । इसी में उसकी तथा सम्पूर्ण मानवता की श्री वृद्धि है, प्रतिष्ठा है ।

स्त्री और पुरुष चरम अर्थों में स्वावलम्बी नहीं हो सकते, न ही ऐसे चरम स्वावलम्बन से समाज का कुछ भला होने का । किन्तु उनमें से किसी एक का परावलम्बी बने रहना भी अशुभ तथा अस्वस्थ स्थिति है । दोनों को परस्परालम्बी होना चाहिए । आज आधुनिकता के शोर के बावजूद स्त्री पुरुषों द्वारा प्रचारित मूल्यमानों की अधिष्ठाता हैं । यह दुःस्थिति बदलनी होगी और नारी को अपने मूल्यमान, अपनी अन्तःप्रकृति के अनुरूप स्वयं ही विकसित करने होंगे । तभी दोनों की परस्परावलम्बिता *स्पष्ट होगी और एक स्वस्थ समाज का निर्माण सम्भव होगा ।*

क्या नर और नारी एक-दूसरे के बिना अपूर्ण हैं

यह कहा जाता है कि नर-नारी एक-दूसरे के पूरक हैं, एक के बिना दूसरे का काम नहीं चलता । दोनों के बीच का आकर्षण उन्हें घनिष्ठता के सूत्र में बाँधता है इसलिए उन्हें एक-दूसरे से पृथक न रहकर साथ-साथ रहना चाहिए ।

यह प्रतिपादन एक सीमा तक ही ठीक है । माता-पिता की सहायता के बिना पुत्र या पुत्री का काम नहीं चलता । बहिन-भाई के दुलार के बिना घर में उदासी रहती है । परिवार में चाची, ताई, बुआ, भाभी, बहिन, बेटी आदि का अपना पक्ष है और बेटे, पोते, भाई, चाचा, ताऊ, दादा-आदि का अपना । दोनों पक्ष साथ-साथ मिल-जुलकर एक घर में रहते हैं तो उससे नर-नारी के समन्वय से उत्पन्न एक पूरक स्थिति बनती है और उस द्विपक्षीय स्नेह, सहयोग से परिवार का वातावरण खिल पड़ता है । यह तथ्य ऐसा है जिससे इन्कार करने की कोई आवश्यकयता नहीं है । सहयोग हर क्षेत्र में सुखद होता है । नर-नारी का सहयोग भी इस दृष्टि से उचित भी है-आवश्यक भी और श्रेयस्कर भी ।

पर इस प्रतिपादन में कोई सार नहीं है कि यौनाचार के लिए नर-नारी का सम्मिश्रण हुए बिना-विवाह बन्धन में बँधे बिना कोई अपूर्णता रहती है । मनुष्य की क्या, सभी प्राणियों की रचना इस प्रकार हुई है कि वह अपने आप में पूर्ण है । उनके भीतर 'रयि' और 'प्राण' दोनों ही तत्व विद्यमान हैं और वे अपने भीतर ही नर-नारी मिलन से जो शक्ति उत्पन्न होने की बात कही जाती है उसे अनायास ही पूरा करते रहते हैं । नारी पक्ष और नर पक्ष दोनों ही उसके भीतर विद्यमान हैं । उसमें से जो अधिक विकसित

हो जाता है प्रधानता अवश्य उसी स्तर की होती है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि किसी तत्व की ऐसी कमी होती है जिसकी प्राप्ति के लिए नर को नारी से या नारी को नर से कामुक सम्बन्ध बनाये बिना काम ही न चले।

छोटी जातियों के प्राणी प्रत्यक्षतया उभयलिंगी होते हैं। ये अपने आप में ही नर और नारी की दोनों ही विशेषताओं से युक्त होते हैं। उन्हें किसी एक जाति का घोषित नहीं किया जा सकता। वनस्पतियों में यही बात होती है, पुष्पों के माध्यम से उनका रजोधर्म होता है। खिलने का अर्थ है गर्भधारण करने योग्य यौवन का उभार। हवा के साथ उड़कर या मक्खी, तितली आदि कीड़ों के सहारे पुष्पों का पराग एक-दूसरे तक पहुँचता है। उससे उसका निषेचन होता है और गर्भ धारण करके फल देने लगते हैं। फूलों में उभयपक्षीय पराग पाया जाता है। गर्भ धारण करने की और गर्भ धारण कराने की भी दोनों ही क्षमताएँ उनमें पायी जाती हैं। न्यूनाधिक मात्रा होने की बात दूसरी है, पर सभी पुष्प होते उभयलिंगी हैं, उनके परागों में दोनों लक्षण पाये जाते हैं। प्रयत्नपूर्वक उनके किसी भी पक्ष को उभारा जा सकता है। जिसे आज नारी जाति का पराग कहते हैं, उसमें थोड़ा-सा प्रयत्न करके उन्हें नर जाति का बना दिया जाता है। अधिकांश वनस्पतियों में तो दूसरे पौधों का पराग पाने की आवश्यकता ही नहीं होती, उनके भीतर अपने आप ही अन्तर्मिलन का उपक्रम बनता रहता है और फूल, फल, बीज उत्पन्न होते रहने की प्रक्रिया चलती रहती है। दूब जैसी घास अपने आप वंश वृद्धि की दृष्टि से पूर्ण है। उसे इसके लिए किसी बाहरी सहयोग की जरूरत नहीं पड़ती।

बहुत से पौधे ऐसे हैं जिनकी लकड़ी काटकर अन्यत्र गाड़ देने पर नया पौधा उग आता है। गन्ना इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। उसकी हर गाँठ में नर-नारी के उभयपक्षी चिह्न होते हैं और ये अपने पेड़ से अलग होने पर स्वतन्त्र वंश वृद्धि करने लगते हैं। गुलाब आदि कितने ही पुष्प जाति के पेड़-पौधे इसी प्रकार के हैं। बरगद, गूलर और वृक्षों की डाली काटकर अन्यत्र लगा देने से नया पेड़ उत्पन्न होने लगता है। वनस्पति जगत प्रायः पूरा ही इस प्रकार का है कि प्रजनन की उभयपक्षीय आवश्यकताएँ अपने भीतर से ही उत्पन्न कर लें।

एककोषीय 'अमीबा' जीवधारियों में सबसे पुरातन है। वह अपने शरीर के टुकड़े काट-काट कर पृथक करता रहता है और वे स्वयंमेव एक स्वतन्त्र जीव बनते रहते हैं।

यौन आकर्षण को प्रजनन प्रेरणा के नाम से वैज्ञानिक जगत में पुकारा जाता है। उनका कहना है कि स्त्री और पुरुष के बीच जो भावनात्मक आकर्षण पाया जाता है उसके पीछे प्रकृति की प्रजनन प्रेरणा ही काम करती है। उनकी बात इस सीमा तक ही ठीक है। इन दो वर्गों में एक में वामपक्षीय और दूसरे में दक्षिणपक्षीय विद्युत शक्ति काम करती है और वे परस्पर मिलकर वंश वृद्धि का सरंजाम जुटाते हैं। इससे आगे बढ़कर यह कहना गलत है कि एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। दोनों जब तक कामुक उद्देश्य से मिलेंगे नहीं तब तक उनमें अभाव बना रहेगा एवं अतृप्ति अनुभव होगी। यह कहना इसलिए गलत है कि तृप्ति, उल्लास एवं अपूर्णता को पूर्णता में विकसित करने वाले आवश्यक तत्व हर प्राणी में मौजूद हैं। उनमें विकास की समस्त आवश्यकताएँ पूरी की जाती हैं, की जा सकती हैं। मनुष्य भी इनका अपवाद नहीं है।

छोटी जाति के जीवधारियों में अधिकांश उभयलिंगी होते हैं और ये अपनी प्रजनन आवश्यकता आत्मरति से ही पूर्ण कर लेते हैं। इनमें डिम्ब कीट भी होते हैं और शुक्र कीट भी। एक स्थान से दूसरे तक रेंग कर वे भीतर ही भीतर निषेचन एवं गर्भधारण का कार्य पूरा कर लेते हैं और जीव बिना दूसरे साथी की सहायता के अपनी वंश वृद्धि एकाकी पुरुषार्थ से करते रहते हैं।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के शोध विभाग ने छोटे जलचरों की ऐसी ३०० से अधिक जातियाँ ढूँढ़ निकाली हैं जो प्रजनन के मामले से पूर्णतया आत्म-निर्भर हैं। जमीन पर रेंगने वाले और उड़ने वाले कीड़ों में भी हजारों ऐसे हैं जिनमें कामसेवन के योग्य अवयव नहीं होते, उनका अपना यौवन ही उन्हें जनक एवं जननी दोनों का श्रेय प्रदान करने लायक रासायनिक द्रव्य अपने भीतर से ही उत्पन्न कर लेता है और वे स्वतन्त्र रूप से एकाकी सन्तानोत्पादन करते रहते हैं।

'आर्कोपोडा' कीड़ा उस 'इनसेक्टा' वर्ग में आता है उसकी बिरादरी आये दिन अपना लिंग परिवर्तन करती रहती है। कभी नर, कभी नारी के अवयव विकसित होते और बदलते रहते हैं। कहा नहीं जा सकता कि वह कब तक नर रहेगा और कब नारी बन जाएगा। कब उसे पिता कहा जाएगा और कब उसे माता की श्रेणी में गिना जाएगा। उसके साथी ऐसे ही उलट-पुलट करते रहते हैं। पति कभी पत्नी बन जाता है और कभी पत्नी पति बनकर अकड़ती फिरती है। यह परिवर्तन कुछ अद्भुत नहीं है क्योंकि उनके भीतर दोनों ही तत्व रहते हैं। थोड़ी प्रतिशत का अन्तर रहता है, जिसे प्रकृति की छोटी-सी हलचल ज्वार-भाटे की तरह घटा-बढ़ा देती है और ये कभी इधर कभी उधर लुढ़कते-बदलते रहते हैं।

बड़ी जाति की मछलियों में यौन परिवर्तन तो नहीं, पर प्रजनन तत्व आसानी से घटाये बढ़ाये जा सकते हैं। बर्लिन के जल जीव शोध संस्थान ने मछलियों में कई प्रकार के विशिष्ट विद्युत प्रकाश देकर उनकी पिट्यूटरी ग्रन्थि में पाये जाने वाले स्टियुलिटिंग और लूटिनाइजिंग हारमोनों की मात्रा बढ़ाने में सफलता प्राप्त कर ली है। इस प्रयोग से उन मछलियों में चार गुनी प्रजनन क्षमता बढ़ी और उन्होंने उसी अनुपात में अण्डे दिये। कैटफिश आमतौर से जुलाई और सितम्बर के बीच केवल एक बार अण्डे देती है, उसे विशेष वातावरण में रखकर विशेष चारा देकर साल में चार बार अण्डे देने अभ्यस्त बना दिया गया।

प्रो० रिचार्ड गोल्ड स्मिथ ने जिप्सी मोथ पतंगे पर प्रयोग करके उसे नर से नारी और नारी से नर बना देने में सफलता प्राप्त की है । उनका कहना है कि इसमें कोई आमूल-चूल परिवर्तन नहीं करना पड़ा है । उसमें दोनों ही क्षमताएँ विद्यमान थीं, उनके अनुपात को थोड़ा-सा घटाने-बढ़ाने में ही जरा-सा श्रम करना पड़ा है । ऐसा ही प्रयोग फ्रान्स के प्रो० बर्नार्ड जेम्स ने ड्रोजोफिला कीड़े पर किया है, वे भी लिंग परिवर्तन के अपने प्रयोगों में पूर्ण सफल रहे हैं ।

मनुष्यों में इस प्रकार के प्रत्यक्ष परिवर्तन अब बहुत बड़ी संख्या में प्राय: हर देश में सामने आ रहे हैं । नर में नारी के और नारी में नर के यौन चिह्नों का प्रकट, विकसित और परिपुष्ट होना, अस्पतालों में शल्य चिकित्सा द्वारा उनका पूर्णरूपेण लिंग परिवर्तन होना, अब आश्चर्य कौतूहल का विषय नहीं रहा । ऐसी घटनाएँ आये दिन समाचार-पत्रों में छपती रहती हैं । अब यह मान लिया गया है कि ऐसा होना शरीर विकास का एक छोटा-सा दिशा परिवर्तन मात्र है कोई असम्भव या प्रकृति क्रम का व्यतिरेक या विपर्यय नहीं । अब ऐसी घटनाएँ जो अस्पतालों के रिकॉर्डों में दर्ज हैं हजारों की परिधि को लाँघ चली हैं ।

जोर्डन लेग्ले हाल तीस वर्ष की आयु के एक प्रसिद्ध अँग्रेज लेखक के रूप में विख्यात थे । उनकी अमेरिका में धाक थी । सम्मानित पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख छपते थे और इसी आधार पर वे अच्छी आजीविका उपार्जित करते थे । रहस्य प्रकट होने से पूर्व कई वर्ष से वे अनुभव कर रहे हैं कि उनका सैक्स बदल रहा है । वे नर से नारी के रूप में क्रमश: परिवर्तित हो रहे हैं । मूँछों पर पहले सामान्य लोगों की तरह बाल आते थे पीछे वे उगने बन्द हो गये । वक्षस्थल पर स्तर उभरने लगे और जननेन्द्रिय छोटी होते-होते मात्र मूत्र विसर्जन का माध्यम रह गयी । उन्हें लगने लगा कि भीतर ही भीतर एक नई जननेन्द्रिय उभर रही है जो नारी जैसी है ।

कुछ समय ऐसे ही छिपाये रहने के पश्चात् उन्होंने अपनी डॉक्टरी परीक्षा करायी तो विदित हुआ कि वे लगभग पूर्ण नारी की स्थिति में पहुँच चुके । इसके लिए वह छोटा ऑपरेशन कराना मात्र शेष है । वह कराया गया और वे सचमुच नारी बन गये । अमेरिका के चार्ल्सटन नगर के लोगों ने कौतूहलपूर्वक इस समाचार को सुना और समाचार-पत्रों में उनकी चर्चा हुई । बात इतने तक ही समाप्त नहीं हुई । उन्होने अपना नाम बदला और एक नीग्रो युवक जानपाल सिमोन्स से अपना विवाह कर लिया । यह विवाह भी बहुत चर्चा का विषय रहा और उसका भरपूर विरोध हुआ क्योंकि दक्षिणी अमेरिका अपेक्षाकृत रंग-भेद की नीति में अधिक कट्टर है और वहाँ गोरी लड़की का काले लोगों के साथ विवाह करने को सामाजिक अपराध माना जाता है । इतने पर भी यह विवाह हुआ और उन्होंने सफल दाम्पत्य जीवन निबाहा ।

इन लिंग परिवर्तित व्यक्तियों के स्वभाव में तो बहुत पहले से ही अन्तर आ गया था पर परिवर्तित यौन उभार पीछे दिखायी पड़े । शल्यक्रिया के पश्चात् उनकी स्थिति परिपक्व होती चली गयी और वे पिछली आदतों को भूल गये । उन्होंने अपने विवाह किये और सुखी गृहस्थ भोगा । पिछले दिनों एक कमी थी कि ऐसे परिवर्तित लिंग वाले विवाह जोड़े सन्तानोत्पादन नहीं कर पा रहे थे अब यह बाँध भी टूट गया । कुछ समय पूर्व चार्ल्सटन(दक्षिणी कैलीफोर्निया) में जान लेगलेपाल साइमन्स नामक महिला, नर-यौन परिवर्तन कराकर नारी बनी थी । उन्होंने विवाह किया-गर्भिणी बनी और सन्तान को जन्म दिया । इस प्रकार की संसार में यद्यपि यह पहली घटना है तो भी यह सिद्ध तो हो ही गया कि परिवर्तन उस सीमा तक भी सम्भव है ।

यह परिवर्तन क्रम यों रिकार्ड में पिछले पचास वर्ष से ही आया है । पर इसका अर्थ यह नहीं कि भूतकाल में ऐसा नहीं रहा होगा । चूँकि यह विषय गोपनीय एवं लज्जास्पद माना जाता है इसलिए जहाँ ऐसे परिवर्तन हुए होंगे, वहाँ छिपा कर रखा जाता रहा होगा । जनखे तो अभी भी हर देश में पाये जाते हैं । भारत में तो उनकी एक बिरादरी ही बन गयी है । अरब देशों में भी वे इसी तरह होते हैं । अन्य देशों में वे विन्यास तो नहीं बदलते पर मन:स्थिति एवं आदतें तो अक्सर विपरीत लिंग वालों की तरह होती हैं । नपुंसकों का वर्ग ऐसा ही है । स्त्रियों जैसे वस्त्र, आभूषण एवं श्रृंगार किये नाचने, गाने का पेशा करने वाले, उसी प्रकार के हाव-भाव व्यक्त करने वाले, जनखे कहीं भी पाये जा सकते हैं । इनमें अधिकांशत: ऐसे होते हैं जो पुरुष वर्ग के थे पर यौन व्यवधान ने उन्हें स्त्री बना दिया । मुगल काल में उनके बहुत बड़े हरम जिनमें सैकड़ों बीबियाँ रहती थीं, यह जनखे उनकी पहरेदारी करते थे ।

नारियों में भी हर क्षेत्र में ऐसी अनेक पायी जाती हैं जिनकी अधिकांश चेष्टाएँ पुरुषों जैसी होती हैं, उनमें से कितनी ही तो मर्दों जैसी पोशाक पहनती हैं और उसी ठसक से चलती, बोलती हैं । इनमें से कितनों के दाढ़ी, मूँछ भी निकलती हैं ।

समलिंगी मैथुन एवं विपरीत रीति का प्रकरण लज्जास्पद एवं अवांछनीय होने के कारण प्राय: पर्दे के पीछे ही छिपा रहता है पर यदि पर्दे को उघाड़ा जाय तो प्रतीत होगा कि ऐसे नर-नारी भी कम नहीं जिनकी यौन तृप्ति अपने वर्तमान लिंग से भिन्न प्रकार की चेष्टाओं से ही होती है । उनके कामुक चिन्तन की धुरी प्राय: भिन्न वर्ग के अनुरूप होती है । ऐसे व्यक्तियों के बारे में यह अनुमान लगाया जाता,रहा है कि वे पिछले जन्म में दूसरे लिंग के रहे होंगे अथवा जिस दिशा में उनकी मनोभूमि चल रही है, उसे देखते हुए वे अगले जन्म तक अपना लिंग बदल लेंगे । वैज्ञानिक विश्लेषण इस स्थिति का यह है कि हर मनुष्य में उभयलिंगी के तत्व रहते हैं । सामान्यतया स्वाभाविक रूप से जो जिस संज्ञा का है उसमें उसी प्रकार

की आकृति-प्रकृति पायी जाती है पर सम्भव यह भी है कि भिन्न स्थिति जो प्रायः सुप्त स्थिति में पड़ी होती है क्रमशः जागती और प्रबल होती चली जाय । दोनों तत्वों में से जो बढ़ेगा वह दूसरे को झीना करेगा । लिंग भेद की स्थिति में जो विपरीत कामुक विचारणाएँ एवं चेष्टाएँ पायी जाती हैं उनका यही कारण है । यह सब अनायास आन्तरिक परिवर्तनों एवं उभारों के कारण भी होता है किन्तु यदि चाहे तो संकल्पपूर्वक भी ऐसी विपरीत स्थिति में अपने को ढाल सकता है । क्योंकि मूलतः हर प्राणी में, हर मनुष्य में दोनों स्तर के तत्व मौजूद हैं । नारी तत्व को 'रयि' और नर तत्व को 'प्राण' कहते हैं । एक में ए० सी० करेन्ट को दूसरे में डी० सी० करेन्ट को प्रधानता है पर जिस प्रकार विद्युत यन्त्रों में परिवर्तन किया जा सकता है उसी प्रकार प्राणियों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति में भी हेर-फेर सम्भव है ।

उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रत्येक प्राणी विशेषतया मनुष्य अपने आप में न केवल अन्य सभी दृष्टियों से वरन् लिंग भेद की दृष्टि से भी पूर्ण है । आत्मा पूर्ण से पैदा होती है इसलिए पूर्ण है । "पूर्ण मदः पूर्णमदं पूर्णात् पूर्ण मुदच्यते" वाले श्रुति वचन में जिस तथ्य का प्रतिपादन किया गया है कि वह हर कसौटी पर खरा है । मनुष्य पूर्ण है उसकी दोनों इकाइयाँ नर और नारी के रूप में भिन्नतायुक्त तो हैं, एक-दूसरे के लिए आवश्यक उपयोगी एवं सहयोगी भी हैं पर यह कहना उचित नहीं कि एक के बिना दूसरा अपूर्ण है और दूसरे पक्ष की सहायता के बिना उसकी आत्मिक या भौतिक प्रगति रुकी पड़ी रहेगी । नारी कला-कोमलता का और नर शौर्य-साहस का प्रतिनिधित्व करते हैं । इनकी विशेषता-अधिकता जरूर रहती है पर इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों पक्षों में से कोई ऐसी विशेषताओं से रहित है जो उसकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक पूर्णता में बाधा पहुँचाती है । नर और नारी तथा नारी और नर परस्पर स्नेह-सहयोग से रहें यह सब प्रकार उचित सराहनीय और मानवी गरिमा के उपयुक्त है पर किसी को किसी की अनिवार्य रूप से ऐसी आवश्यकता है जिसके बिना गुजारा ही नहीं, यह सोचना व्यर्थ है । यह तर्क उन कामुक लोगों का है, जो यौनाचार को अत्यधिक महत्व देते हैं । वस्तुतः यह तर्क एक सीमा तक ही सही है, उसमें उतना लक्ष्य नहीं जैसा कि इन दिनों कहा बताया जा रहा है ।

नर-नारी के सघन सहयोग से ही विश्व शान्ति सम्भव होगी

नासमझ माने जाने वाले पशु-पक्षी भी झुण्ड बनाकर रहने की उपयोगिता समझते हैं तो मनुष्य जैसा समझदार प्राणी उसे क्यों न समझता ? सहकारिता की दिशा में बढ़ते हुए ही उसे बुद्धिमत्ताजन्य अनेकानेक वरदान मिलते चले आये हैं और आज इस स्थिति तक आ पहुँचा है । समाज की संरचना, शासन व्यवस्था, परिवार संस्था का विकास वर्ग संगठन, उद्योग संस्थान आदि अति महत्त्वपूर्ण संगठनाएँ इसी तथ्य की परिचायक हैं कि मनुष्य ने सहयोग का मूल्य समझा है और उसे अधिक सघन बनाने के लिए क्रमिक रूप से प्रयत्नशील रहा है ।

दैनिक जीवन को सुव्यवस्थित और सुचारू बनाये रखने के लिए-सन्तान की सुरक्षा और विकासक्रम ठीक रखने के लिए परिवार संस्था का विकास हुआ है । आदिम काल में ही उसका महत्व समझ लिया गया था और उसे नर-नारी के बीच पाये जाने वाले यौन-आकर्षण को बुद्धिसंगत एवं भावनासम्मत बनाने के लिए प्रयत्न आरम्भ कर दिया गया था । उन दिनों नैतिकता का विकास नहीं हुआ था । जिसकी लाठी उसकी भैंस का जंगली कानून ही विभिन्न प्रकार की विधि -व्यवस्थाएँ बनाता था । प्रचलनों का आधार भी वही था । नारी के कन्धों पर प्रकृति ने प्रजनन का-शिशु पोषण का उत्तरदायित्व सौंपा है । उसके लिए उसे एक हाथ से भावनात्मक कोमलता तो प्रचुर परिणाम में मिली, पर दूसरे हाथ से शारीरिक कठोरता छिन गई । पुरुष इस क्षेत्र में तगड़ा पड़ा । जंगली कानून में हर तगड़ा प्राणी अपने से दुर्बलों पर आधिपत्य जमाता है । तदनुसार नर और नारी ने सहकारिता की नीति तो अपनाई-परिवार तो बसाया पर वर्चस्व के लिए कशमकश ही होती रही ।

यों दावे तो बहुत करके पुरुष के पक्ष में ही पड़ते रहे और वर्चस्व उसी के हाथ रहा पर, उसे शत-प्रतिशत सफल नहीं कहा जा सकता । नारी ने अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिए भरसक प्रयत्न किया है और जब जहाँ वह मजबूती से खड़ी रह सकी है, वहाँ उसने अपना अस्तित्व आत्म-निर्भर भी रखा है ।

बहुलता से तो परिवार पर पिता की सत्ता ही स्थापित हो चली थी, पर ऐसा सर्वत्र नहीं हुआ और एकबारगी भी नहीं । अनेक क्षेत्रों में नारी प्रधान परिवार बने रहे हैं और कुल परम्परा में मातृ पक्ष को प्रधानता मिलती रही है । जिस प्रकार दुर्बल पड़ने पर नारी को नर के सामने सिर झुकाना पड़ता रहा है, उसी प्रकार नारी और उसी के उपार्जित बच्चों का समूह जब जहाँ एक पक्ष बनकर विकसित हुआ वहाँ नर से अपनी भलाई मातृ पक्ष की वरिष्ठता स्वीकार करने में ही समझी । इस प्रकार परिस्थितियों का पासा कहीं नर के और कहीं नारी के पक्ष में पड़ता रहा है । कभी मातृ-कुल और कभी पितृ-कुल की प्रधानता समझी जाती रही है । इतिहास के पृष्ठ इसी चढ़ा-उतरी की उलट-पुलट ने रंगे हुए हैं ।

विद्वान बर्ट्रेण्ड रसेल ने मातृ-कुल परिवार प्रथा का व्यापक प्रचलन हजारों वर्षों तक संसार में रहने की बात अनेक उदाहरणों सहित सिद्ध की है । राहुल सांस्कृत्यायन के ग्रन्थ मानव समाज में दिये उद्धरणों से यह भली-भाँति जाना जा सकता है कि सभ्यता विकास के बहुत

पश्चात् तक नारी परिवार पर अपना आधिपत्य बनाये रही है और नर को इसमें अपना लाभ देखकर उसे स्वीकार करते रहना पड़ा है । परिवार गठन की बात बन जाने पर भी बहुत समय तक अनिर्णीत ही रहा है कि प्रमुख किस पक्ष को माना जाय ।

इतिहास बताते रहे हैं कि परिवार बहुत समय तक मात्र स्वेच्छा-सहयोग पर बनते, बिगड़ते और चलते रहे हैं । नर और नारी एक-दूसरे को सहयोग तो बाँटते रहे हैं, पर कौन किस का स्वामी और कौन किसका सेवक बने, यह बात बहुत बाद में किसी ठिकाने पर आकर लगी है । उस अवधि में सहयोग के लाभ ही पर्याप्त समझे जाते थे, प्रतिबन्धों से जकड़कर उससे भी अधिक लाभ मिल सकता है, यह बात पुरुष को देर में सूझी है । जब उसने अपनी शारीरिक पुष्टता का अहंकार समुचित विकसित कर लिया और उपार्जन में तगड़ा पड़ने की विशेषता भली प्रकार समझ ली तभी से आधिपत्य के दावे पर जोर बढ़ता चला आया है । अति प्राचीनकाल में ऐसा हलके रूप में ही सोचा गया था, पीछे उस पर बहुत जोर दिया जाने लगा । नर-नारी सहयोग का विकास 'विवाह' स्तर तक पहुँचने में मनुष्य जाति को सहस्रों वर्षों की लम्बी अवधि पार करनी पड़ी है ।

राबर्ट ब्रिफाल्ट के ग्रन्थ 'सेक्स इन सिविलिजेशन' में मानवी सभ्यता के विकास की सुविस्तृत चर्चा करते हुए लिखा है—विवाह बन्धन अति प्राचीनकाल में सामयिक सान्निध्य सहमति मात्र थे, उनमें सघनता और उत्तरदायित्वों का बन्धन क्रमशः ही बढ़ता गया है । हेवलाक एलिस ने इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में लिखा है—माओरी राज्य में प्रत्येक बच्चे का पिता चन्द्रमा माना जाता था । मनुष्यों में से किस बालक का कौन पिता है इसे पूछने, बताने की किसी को कोई आवश्यकता नहीं पड़ती थी ।

हिस्ट्री आफ ह्यूमन मैरेज के लेखक वेस्टर मार्क ने उन ऐतिहासिक उदाहरणों की भरमार की है जिनसे सिद्ध होता है कि विवाह की आवश्यकता अनुभव करने में मनुष्य जाति को लाखों वर्षों का समय लगा है और इस प्रथा का क्रमिक विकास हुआ है । मार्गरेट मीड के ग्रन्थ 'कमिंग ऑफ एज इन समोआ' पुस्तक में समोआ क्षेत्र में प्रचलित इस प्रथा का वर्णन है कि—'परदेश जाने वाले पुरुष यह मानकर चलते थे कि उनके चले जाने के बाद स्त्रियाँ इन्द्रिय सुख का कोई आधार ढूँढ़ लेंगी । लौटने पर जब वे अपनी पत्नियों की गोद में अजनबी बच्चे देखते थे तो प्रसन्न होते थे कि परिवार की जन सम्पत्ति बढ़ाने में पत्नी ने उपेक्षा नहीं बरती है ।''

विवाह की उपयोगिता का सबसे बड़ा पक्ष है परिवार की सुव्यवस्था में एक-दूसरे के प्रति वफादारी निबाहने में नर-नारी को भौतिक ही नहीं आत्मिक सहयोग भी करना । आत्मिक से मतलब है—भावनात्मक-मैत्री परक-एक -दूसरे के प्रति आदर्शवादी कर्तव्य पालन करने के लिए समर्पित । विवाह इसी दूसरे उत्तरदायित्व का नाम है, जिसमें शरीर से उपार्जित साधनों से—तो एक-दूसरे की सहायता करते ही हैं, भावनात्मक दृष्टि से भी एकाकीपन अनुभव नहीं होने देते । इस एकता की प्रवृत्ति का अधिकाधिक विकास करते जाना ही विवाह की सफलता का लक्ष्य बनता आया है । प्रेम का भौतिक स्वरूप दाम्पत्य सम्बन्धों की सघनता—बच्चों के प्रति उदार वात्सल्य तथा अन्य छोटे-बड़ों और समान स्तर के सम्बन्धियों के साथ आदर्श व्यवहार नर-नारी को इस भौतिक और आत्मिक एकता का परिणाम व्यक्ति, परिवार और समाज तीनों के लिए बहुत श्रेयस्कर सिद्ध हुआ और उसे क्रमशः अधिकाधिक सघन मान्यता मिलती चली गयी । इससे यौन स्वेच्छाचार के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली अनेक विकृतियों पर नियंत्रण करने का अवसर मिला और नैतिकता के आदर्श परिपुष्ट होते गये ।

अलबर्ट लोडेंज ने अपनी पुस्तक 'दी रोड टुव्यूनस आयर्स' में लिखा है—''नैतिकता के अतिवाद ने वेश्यावृत्ति को जन्म दिया है । जैसे-जैसे नैतिक मूल्य उदार होते जायेंगे वेश्यावृत्ति अपने मौत मर जाएगी ।''

विवाह संस्था के विकास ने जहाँ नैतिकता की वृद्धि की, वहाँ यह हानि भी पहुँचायी कि नारी अपने को सुरक्षित समझकर आश्रित बनती चली गयी और इस निश्चिन्तता से सदा-सदा तक लाभान्वित बने रहने के लिए उसने अपने शिकन्जे कसना शुरू कर दिया । जकड़न सम्भवतः बाधित किये जाने वाले पक्ष को अखरी होगी, कशमकश उभरी होगी । उस संघर्ष में पुरुष ने युद्ध स्तर में पूरी कठोरता बरती है ।

'हिस्ट्री आफ दि इन्विवजीशन इन दि मिडिल एजेज' में मध्यकाल के उन प्रचलनों तथा कानूनों का उल्लेख है जिनमें विवाहित स्त्री को पति की चल सम्पत्ति माना जाता था । पति अपनी पत्नी के शरीर, धन तथा उत्पादित सन्तान का पूरी तरह स्वामी होता था और वह इन वस्तुओं का मनचाहा उपयोग कर सकता था । हूजिंगा की 'दि वेनिंग आफ दि मिडिल एजेज' पुस्तक में भी मध्यकालीन रीति-रिवाजों की चर्चा करते हुए स्त्री की पराधीनता पर प्रकाश डाला गया है और बताया गया है कि उसे किस तरह विवशतापूर्वक पति की उचित-अनुचित आज्ञाओं को शिरोधार्य करना पड़ता था ।

युद्धबन्दियों को जिस तरह पददलित किया जाता है यह लगभग उसी स्तर की प्रताड़ना है । इसे व्यक्ति विशेष पर प्रयुक्त नहीं किया गया वरन् एक प्रचलन ही बना दिया गया ।

डब्ल्यू ई० लेकी ने अपनी 'हिस्ट्री ऑफ यूरोपियन्स मोरेल्स' पुस्तक के खण्ड २ पृष्ठ ३५७ पर लिखा है—''ईसाई नैतिकता में स्त्री को समस्त मानवी दुःखों का कारण और नरक का द्वार माना जाता था और कहा जाता कि स्त्री को लज्जा करनी चाहिए और सदा प्रायश्चित्त करना चाहिए कि उसी के कारण संसार पर इतने अभिशाप आये हैं । उसे अपनी वेश-भूषा पर लज्जा आनी चाहिए, क्योंकि वह उसके पाप का द्योतक है । उसे अपने

सौन्दर्य पर लज्जित होना चाहिए कि वही शैतान का सब से प्रबल हथियार है ।"

हैलवाक एलिस के ग्रन्थ 'स्टडीज इन साइकोलाजी आफ सेक्स' में ईसाई समाज में किसी समय की उन धर्म मान्यताओं का सुविस्तृत उल्लेख है, जिनमें स्त्रियों को न केवल पापों की खदान माना जाता था वरन् उनकी प्राकृतिक सुन्दरता और आकर्षक बनकर रहने की आदतों को भी कोसा जाता था । सेन्टपाल ने स्वयं कहा था-"शरीर और वस्त्रों की स्वच्छता को अधिक महत्त्व देने का अर्थ है–आत्मा को अपवित्र मानना ।"

बहु विवाह प्रथा, दासियों का क्रय-विक्रय, परित्याग करने में मात्र पुरुष को स्वतन्त्रता, व्यभिचार में केवल स्त्री को दण्ड, सम्पत्ति के स्वामित्व से सर्वथा वंचित रखा जाना, स्त्री के शरीर पर पुरुष का नैतिक और कानूनी पूर्ण अधिकार जैसी प्रथाएँ बहुत समय तक अपनी प्रौढ़ावस्था में रही हैं । सामन्तों के मरने के समय परलोक में विलास की सुविधा के लिए उनकी कब्र में रनवास की तथा बाहर से लायी हुई अनेक सुन्दरियाँ लाश के साथ ही जीवित गाढ़ी जाती रही हैं । जहाँ मुर्दे जलाने की प्रथा थी वहाँ उन्हें सती होने के लिए विवश किया जाता रहा है ।

नवीं शताब्दी में जर्मनी के कानून में कम उम्र की लड़की को मार डालने पर मात्र २०० रु० जुर्माने की सजा थी, पर अगर किसी ने तरुणी स्त्री की हत्या की है तो उस पर सरकार ६०० रु० जुर्माना करती थी । कानून के निर्माताओं ने इसका कारण यह बताया कि तरुणी पुरुषों के तत्काल उपयोग की वस्तु है, जब कि छोटी लड़की का उस तरह उपयोग न हो सकने के कारण वह कम मूल्य की है ।

कारसाडर्स ने अपनी 'पापूलेशन' पुस्तक में लिखा है-"जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए एक समय शिशु हत्या को सामान्य प्रथा के रूप में स्वीकार कर लिया गया था । अनावश्यक समझे जाने वाले देवी-देवताओं पर चढ़ा कर बेरहमी से मार डाले जाते थे । यह तथ्य बताते हैं कि किसी समय स्त्रियों को ही नहीं वरन् उनके सन्तानोत्पादन को भी कितना उपेक्षणीय समझा जाता रहा है और उस उपेक्षा को कानूनी मान्यता प्राप्त रही है ।"

विचारशीलता, दूरदर्शिता और नैतिकता का जिस क्रम में विकास हुआ है–उसी अनुपात से यह समझा जाने लगा है कि नर द्वारा नारी को इस प्रकार प्रतिबन्धित किया जाना अन्याय है और इस अवांछनीय दबाव का अन्त होना चाहिए । शिक्षा, स्वास्थ्य और अधिकारों से वंचित नारी ने भी अपने बन्धन शिथिल करने का मानवी विवेक की अदालत में अपना अनुरोध अपने ढंग से प्रस्तुत किया है साथ ही जाग्रत विश्वात्मा ने भी उसकी हिमायत की है । इसके लिए पिछली दो तीन शताब्दियों में जो आवाज बुलन्द की गयी है उसे धीमी होते हुए भी आशाजनक कहा जा सकता है । अब तो उस आवाज के स्वर ही सुनने योग्य स्तर पर जा पहुँचे हैं और उसे मनुष्य माने-जाने तथा उसी तरह के अधिकार देने की बात भी विचारणीय बन गयी है ।

मेरी वोल्स्टन क्राफ्ट की पुस्तक 'विंडीकेशन आफ दि राइट्स आफ विमन' पुस्तक १७९२ ई० में छपी । उसमें महिला पर लगे प्रतिबन्धों में शिथिलता बरतने के पक्ष में अनेक तर्क प्रस्तुत किये गये थे । फ्रांस की राजक्रान्ति के साथ-साथ स्त्रियों के पक्ष में जो न्यायोचित समर्थन मिला इसमें इस पुस्तक द्वारा पैदा की गयी हलचल का बहुत हाथ था । जान स्टुअर्टमिल की पुस्तक 'सब्जेक्शन ऑफ विमन' ने न केवल इंग्लैण्ड की वरन् पूरे यूरोप की जनता के मन में यह विचार उत्पन्न किया कि स्त्रियों को भी मताधिकार मिलना चाहिए । कई वर्ष रद्द होते रहने के बाद इंग्लैण्ड की पार्लियामेन्ट में बड़ी ननुनच के बाद सन् १८८२ में 'मैरिड विमन्स प्रापर्टी एक्ट पास हुआ जिसमें यह स्वीकार किया गया था कि विवाहिता स्त्री की भी कोई निजी सम्पत्ति हो सकती है । इससे पूर्व स्त्री की राई-रत्ती सम्पत्ति पर उसके पति का ही पूर्ण अधिकार होता है ।

राजकीय कानून में स्त्रियों को समानता के अधिकार मिलते जा रहे हैं । संसार के विभिन्न देश अपने-अपने ढंग से धीमे-तेज कदम बढ़ा रहे हैं । इसका अर्थ यह है कि विश्व-चेतना ने मूर्धन्य लोगों को मानवी न्याय का पक्ष लेने के लिए प्रेरित किया है । यह शुभ चिह्न है । पर बात इतने से ही बनने वाली नहीं है । यह न्यायनिष्ठा सामाजिक और व्यावहारिक जीवन में प्रवेश पा सके तभी कुछ काम चलेगा और स्थिति में सुधार होगा ।

भारतीय संविधान में वयस्क मताधिकार व्यवस्था में स्त्री-पुरुषों को समानता दी गयी है और अनुच्छेद १५ द्वारा लिंग भेद के कारण असमानता बरतने की मनाई है ।

दहेज को गैरकानूनी ठहराने वाला अधिनियम १९६१ में पास हुआ था और वह अभी भी मौजूद है । विवाह अधिनियम के अनुसार लड़के को २१ वर्ष की आयु में और लड़की को १८ वर्ष की आयु में विवाह योग्य ठहराया गया है ।

देखा जाय कि क्या इन कानूनों का इसी रूप में पालन होता है ? क्या उसे सामाजिक मान्यता मिल गयी ? इस दिशा में उन मूढ़-मान्यताओं को बदलना पड़ेगा जिन्होंने जन-मान्यताओं का रूप धारण कर लिया है और अभी भी उसे रमणी, कामिनी, भोग्या, गृह-रक्षिका, भोजन निर्मात्री आदि से अधिक कुछ नहीं-माना समझा जा रहा है । विवाह आये दिन होते हैं और प्रायः सभी लड़की-लड़के उन्हें उत्साहपूर्वक करते हैं फिर भी उनका आधार घटिया का घटिया ही बना रहता है । कामाचार जैसी पशुप्रवृत्ति की तृप्ति ही विवाह का उद्देश्य हो तो उसे कानूनसम्मत व्यभिचार से अधिक और क्या कहा जा सकता है ।

जस्टिस लिंडसे की पुस्तक 'दि रिवोल्ट आफ मार्डन यूथ' ने नव-यौन के स्वेच्छानुसार से उत्पन्न उन विभीषिकाओं पर प्रकाश डाला है जिनमें फँसकर नई पीढ़ी अपनी सर्वतोन्मुखी बर्बादी करती चली जा रही है ।

'कम्पैनियनेट मैरेज के लेखक ने इस बात पर गहरा व्यंग्य किया है कि–'प्रचलित विवाहों को विवाह कहा भी जाय या नहीं।'

मॉलिनक्स की पुस्तक 'सेक्सुअल लाइफ ऑफ सेवेजेज' में कहा गया है कि–"विवाह की प्रथा नैतिकता को सुरक्षित रखने के लिए चली थी, पर अब तो उसी ने पारिवारिक व्यवस्था को नष्ट करने का बीड़ा उठाया है।"

वाल्टर लिपमैन ने अपनी पुस्तक 'प्रिफेस टु मोरल्स' में लिखा है–"काम विवाह का अभिशाप उनसे उत्पन्न सन्तानों को भुगतना पड़ता है। बाप पल्ला झाड़ कर दूर जा खड़ा होता है और माता उस नई उपलब्धि को अपने विलासी जीवन में सबसे बड़ी बाधा मानती है"

नर और नारी के बीच किसी समय बल का दबाव चल रहा था, अब छल की प्रथा चल पड़ी है। स्थिति में कुछ विशेष अन्तर नहीं पड़ा । मुहरे बदले हैं, शतरंज जहाँ की तहाँ बिछी है । आवश्यकता स्थिति के पुनरावलोकन की है। सहकारिता का महत्त्व समझा जाना चाहिए और यह माना जाना चाहिए कि मनुष्य के विकासक्रम का सारा ढाँचा ही सहयोग पर टिका हुआ है। नर-नारी का सहयोग तो व्यक्ति और समाज की स्थिरता में मेरुदंण्ड के समान है, पर उसमें परिवार संस्था को स्वर्गीय वातावरण में ओत-प्रोत कर सकने की स्थिति तभी बनेगी, जब नर और नारी के बीच छल और बल के आधार पर नहीं, स्नेह-सद्भाव के सहारे सघन मित्रता स्थापित हो सके । यह तभी सम्भव है जब विवाह जैसे गठबन्धन से पूर्व उपयोग की नहीं, सहयोग की दृष्टि रखी जाने लगे और समाज में दोनों पक्षों को एक ही मनुष्य समान कर्तव्य और समान अधिकारों से बँधा हुआ स्वीकारा जाय। सुख-शान्ति और प्रगति के पथ पर समूची मानव जाति को अग्रसर करने वाला सुदृढ़ संगठन नर और नारी के स्वेच्छा-सहयोग पर निर्भर है । इस लक्ष्य को जितनी जल्दी समझा जा सके उतना ही उत्तम है कि मैत्री बन्दी जैसी, अधिकारी जैसी उद्धत असमानता रहते नहीं निभ सकती है, उसे विकसित करने के लिए सघन आत्मीयता चाहिए । आत्मीयता अपना नहीं साथी की सुविधा देखती है वरन् उसमें न अहंकार की गुंजाइश है न स्वार्थ, भेद, शोषण उत्पीड़न की।

नारी को ब्राह्मण जैसा सम्मान मिले

नारी प्रकृति की बेटी है, सृष्टि की परम सौन्दर्यमयी सर्वश्रेष्ठ कृति है। उसकी आत्मा में प्रेम का प्रसून खिलता है और 'सेवा का सौरभ समग्र सृष्टि को सुरभित' करता है। महर्षि रमण ने उसके इसी औदार्य/एवं औदात्य का सभाकलन करते हुए कहा है कि–"पति के लिए चरित्र, सन्तान के लिए ममता, समाज के लिए शील, विश्व लिए दया, जीव मात्र के लिए करुणा सँजोने व महाप्रकृति का नाम ही नारी है।"

नर और नारी एक ही आत्मा के दो रूप हैं महाकवि जायसी के अनुसार तो "स्त्री और पुरुष वि रूपी अंकुर के दो पत्ते हैं।" नारी प्रत्येक दृष्टि से सं एवं सृष्टि की आराध्य देवी है। कुछ अत्यन्त अथवा पि अथवा असभ्य लोगों को छोड़कर संसार भर में मान विवेक ने एक मत से नर और नारी के दोनों पक्षों समान सहयोगी, समान कर्तव्य एवं समान अधिकार भागीदार स्वीकार किया है। दोनों की एक जैसी स्थि मानी है। सरकारी कानून और सामाजिक सम्मान पूर्णत दोनों के लिए समान हैं। भेदभाव का तो प्रश्न ही न उठता। यदि भेदभाव का औचित्य है भी तो नारी क अधिक सुविधा एवं अधिक आदर देने के पक्ष में है जहाँ तक प्रजनन का अति महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है इस कष्टसाध्य प्रक्रिया से पुरुष सहज ही बच जाता है अकेली नारी ही इसे धैर्य एवं निष्ठा के साथ वहन करती है। स्वाभाविक है कि सन्तुलन बनाये रखने के लिए नारी को अतिरिक्त सुविधाएँ इस सन्दर्भ में प्रदान की गयी हैं, जैसे नौकरियों में प्रसव काल का अतिरिक्त अवकाश, बच्चों की संख्या के अनुपात से अतिरिक्त बोनस आदि।

भारत नारी के प्रति समानता के अधिकार में बहुत आगे बढ़कर, उसके समक्ष श्रद्धावनत होकर उसे विशिष्ट सम्मान प्रदान करता रहा है। वहाँ मातृ-शक्ति को उपास्य, आराध्य माना जाता रहा है। उसके प्रति देवपूजन जैसा उदार व्यवहार बरता जाता रहा है। जननी, धर्मपत्नी, भगिनी एवं पुत्री के चारों रूपों में उसके प्रति भाव भरा सहज सम्मान अभिव्यक्त होता रहा है। अपने देश की महान एवं दिव्य परम्पराओं में अनादिकाल से लेकर पिछले हजार वर्षों के असुर युग अथवा अन्धकार युग से पहले तक नारी को वरिष्ठ और नर को कनिष्ठ गिने जाने की मान्यता रही है। बिहारी ने लिखा है कि "नारी सब कुछ कर सकती है। राधा ने ही श्रीकृष्ण को और सीता ने भगवान् रामचन्द्र को शक्ति दी थी। शिव भी शक्ति के अभाव में 'शव' हो जाते है। यह शक्ति क्या है? उत्तर मिलेगा 'नारी'।

मनुष्य की अन्तरात्मा जिस तत्व के लिए प्यासी फिरती है वह शरीर की संरचना अथवा उसकी हलचलों में सन्निहित नहीं है, वह तो विशुद्ध रूप से भावनात्मक है। आत्मा की एकमात्र प्यास भावना की है। उसी के लिए प्राणी प्यासा फिरता है। उसी की एक बूँद पाने के लिए प्राणी तरसता है। पग-पग पर मरने वाला मर्त्य उसी सुधासार को पीकर अमर होता है। माता के, पत्नी के, बहिन के, पुत्री के चार थनों से नारी रूपी कामधेनु अपने बछड़े, मनुष्य को, इसी प्रेमामृत का पयपान कराती है और उसकी अतृप्ति को तृप्ति में बदल देती है।

जिसकी मस्ती में आत्मा का अणु-अणु आनन्द विभोर होकर धरती पर स्वर्गीय सुख की अनुभूति कर सके वह सोमरस नारी के अतिरिक्त और कहीं नहीं है ।

उसे कहीं भी उगाया और कहीं भी पाया जा सकता है । यह अनायास ही कहीं नहीं मिलता । इसकी कृषि करनी पड़ती है । विश्वास और सम्मान का खाद-पानी पाकर ही यह स्नेहमयी, अमृत-लता बढ़ती, पल्लवित, पुष्पित और फलित होती है । अवज्ञा-उपेक्षा से यह लाजवन्ती कुम्हला जाती है । शील ही उसकी शोभा है ।

पद्दलित, प्रताड़ित करने पर तो उस सुकुमारता का अन्त ही हो जाता है । यह सदासर्वदा स्नेह एवं सौजन्य की साक्षात् देवी एवं संतप्त हृदय की शीतल छाया है । वाल्टेयर के अनुसार "पुरुष के सारे विचार नारी के एक भावुकता कण की समता नहीं रखते ।" क्योंकि पुरुषों में मात्र दृष्टि होती है और नारियों में अन्तर्दृष्टि । इसलिए जी० डबल्यू० कर्टिस का कथन अत्यन्त समीचीन है कि "स्त्री के सम्मान से सभ्यता का परिचय मिलता है ।" वस्तुतः हम परमेश्वर के पश्चात् सर्वाधिक ऋणी किसी के हैं तो नारी के । क्योंकि प्रथम परमात्मा तो मात्र जीवन देता है, किन्तु द्वितीय मातृ-शक्ति नारी हमें जीने योग्य बनाती है । इस दिव्य चेतन शक्ति को प्रतिबन्धित एवं शोषित कर कुछ पाने की कल्पना करना निरर्थक है । यह जब क्रुद्ध होती है तो उसकी आँखों में बरसता हुआ अभिशाप दमयन्ती के रूप में कोप से जल मरने वाले व्याध का मूर्तिमान उदाहरण घर-घर में प्रस्तुत करती है । रणचण्डी दुर्गा बनकर महिषासुर मर्दिनी की भूमिका का निर्वाह करती है, सीता के रूप में रावण वंश का समूल उन्मूलन तथा द्रौपदी के रूप में कौरवों के अवसान का कारण बनती है । उसका अपमान बर्बरता का प्रतीक है ।

पिछले हजार वर्षों से जो कुछ हुआ वह अत्यन्त लज्जाजनक है, नारी को उसके उच्च आसन से उठा कर विपत्ति के गर्त में धकेल दिया जाना दुर्भाग्यपूर्ण है, जिससे अपना समाज कलुषित ही नहीं, क्षतिग्रस्त ही हुआ । जहाँ की नारी भोग की साधन और घर की दासी मानकर व्यवहृत की जाती हो, वहाँ किस बलबूते पर प्रगति सम्भव है । जहाँ की नारी अशिक्षा तथा अन्धविश्वास के अन्धकार में भटक रही हो उस देश की सर्वांगीण उन्नति की आशा करना निरर्थक है । जो समाज, परिवार अथवा राष्ट्र नारी का जो कि उनकी आधारशक्ति स्रोत है, अधिकार छीन लेता है, वह पंगु होकर पददलित अथवा पतित अवस्था में पड़ा रहता है । नारी के इस दयनीय स्वरूप को देखकर महर्षि कर्वे ने कहा था कि–"नारी की उपेक्षा एवं दुर्गति असह्य है । नारी का पिछड़ापन मनुष्यता का अपराध है ।" क्योंकि राष्ट्र का निर्माण समाजों से-समाज का निर्माण परिवारों से होता है और परिवार निर्माण का उत्तरदायित्व नारी पर है । महान दार्शनिक अरस्तू ने नारी गरिमा का बोध कराने के लिए कहा था, ' 'नारी की उन्नति या अवनति पर ही राष्ट्र की उन्नति या अवनति निर्भर है । "

नारी जो युग-युगान्तरों से मूकसाधिका के रूप में संसार को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ बनाती आयी है, अनादिकाल से ही पुरुष समाज पर नारी का ऋण चला आ रहा है और चलता रहेगा । इस दृष्टि से पुरुष समाज नारी का कृतज्ञ है, वह उसके ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता । किन्तु नारी की दुर्दशा देखकर आज ऐसा लगता है–पुरुष आज उसके अनुदानों को भूल बैठा है; फलस्वरूप कृतघ्नता का परिचय दे रहा है । यही आज की सबसे बड़ी सभ्यता, सामाजिकता, नागरिकता एवं मानवता है कि पुरुष नारी के प्रति अपना संकीर्ण दृष्टिकोण बदले और उसके आध्यात्मिक तत्वों से साहस, नैतिकता, सहनशीलता, विवेक, चातुर्य, त्याग, बलिदान, समर्पण आदि से अपने आपको तथा राष्ट्र एवं समाज को सुखी एवं समुन्नत बनाये ।

युग परिवर्तन का भी महान प्रयोजन पूर्ण करने के लिए सर्वतोभावेन उसी मातृ-शक्ति को जाग्रत करना चाहिए । उसी को बढ़ाना चाहिए और विश्व-शान्ति के उपयुक्त वातावरण बनाने की उसी से याचना करनी चाहिए । इस दिव्य शक्ति को प्रतिष्ठित, पूजित किये बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता ।



इक्कीसवीं सदी—नारी सदी

नियति का निर्धारण रुकेगा नहीं

मानवी चिन्तन और पुरुषार्थ का अपना महत्व है। उसकी शानदार प्रतिकृतियों को नकारा नहीं जा सकता। इस पर अदृश्य वातावरण द्वारा प्रभावित होने वाले अचेतन मन की अतिरिक्त क्षमता के दिशा बदल लेने पर जो आश्चर्यजनक परिवर्तन होते देखे गये हैं, उन्हें किसी अदृश्य सूत्र-संचालक का निर्धारण या प्रेरणा संचार करने वाला प्रभात पर्व जैसा उदीयमान प्रकाश ही कह सकते हैं। उसमें मानवी कर्तृत्व का कहाँ कुछ योगदान रहता है। वह विशुद्ध नियति निर्धारण है, जो अपने समय पर अपने ढंग से प्रकट या फलित होता रहता है। ऋतुओं के परिवर्तन में मानवी प्रयास की कहाँ कुछ भागीदारी रहती है ?

नारी की अवगति पिछली शताब्दी में प्रायः पिछड़े देशों में विशेष रूप से देखने को मिलती रही है। उसके लिए सामन्तवाद से लेकर लम्बे समय से चली आ रही अवांछनीयताएँ भले ही जिम्मेदार रही हों, पर तत्काल किसी ने उन पर कोई बड़े प्रतिबंध लगाकर तानाशाही शासन जैसा कुछ विचित्र खड़ा किया हो, ऐसी बात नहीं। उत्थान और पतन के आधार पर कई बार धीमी गति से चिरकाल से चले आते हैं और प्रचुर परिमाण में जब प्रतिक्रिया परिपक्व हो जाती है तो विस्फोट जैसा कुछ आकस्मिक परिवर्तन हुआ दीख पड़ता है। वस्तुतः उसके आधार पहले से ही संचित होते रहते हैं और अवसर आने पर भयंकर फोड़े की तरह फूट पड़ते हैं।

यह सब इसलिए कहा जा रहा है कि अनर्थों के लिए किसी तात्कालिक घटनाक्रम को ही दोषी न ठहराकर यह भी देखा जाय कि पिछले प्रयास किस प्रकार धीमी गति से अपना प्रयास जारी रखे रहे हैं। घुना हुआ शहतीर, खोखला पेड़ गिर तो किसी सामान्य आघात से ही पड़ता है, पर पीछे गला या घुला देने वाली प्रक्रिया अदृश्य रूप से चिरकाल से चल रही होती है। यही बात उत्थान की बड़ी घटनाओं के साथ भी जुड़ी हुई होती है। जनता का चिर-संचित आक्रोश समय-समय पर महान् क्रान्तियों के रूप में फूटता रहा है, पर उसके निमित्त कारण चिरकाल से बनते और सघन होते चले आ रहे होते हैं। नियति यही है। अदृश्य का अद्‌भुत निर्धारण इसी विधा के अनुरूप सम्पन्न होता है।

इन दिनों नारी जागृति की लहर है। इक्कीसवीं सदी को योगी अरविन्द जैसे तत्वदर्शी 'मातृ शताब्दी' कह चुके हैं। यों राष्ट्रसंघ या समाज समुदाय का इस प्रकार का कोई प्रचण्ड आन्दोलन नहीं है, फिर भी नियति अपना काम कर रही है। प्रकृति में संभावित हलचलों का पूर्वाभास कई जीव-जन्तु अपनी अतीन्द्रिय क्षमता के आधार पर समय से पहले ही कर लेते और चित्र-विचित्र हलचलें प्रकट करने लगते हैं ठीक इसी प्रकार शान्तिकुंज द्वारा भी भावी सम्भावनाओं का सही अनुमान लगा कर यह घोषित किया है कि पूरी इक्कीसवीं सदी ऐसी सम्भावनाओं से भरी-पूरी है, जिसमें नारी अपनी वर्तमान दुर्गति से उबर ही नहीं रही है, वरन् ऐसी स्थिति अपनाने भी जा रही है जिसे उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचना भी कहा जा सके। नारी युग के रूप में एक अद्‌भुत और असाधारण समय यकायक सामने आ उपस्थित हुआ देखा जा सकेगा।

यह क्यों होने जा रहा है ? कौन कर रहा है ? जैसा विवेचन तर्कों के आधार पर सिद्ध कर सकना तो शायद सम्भव न हो सके, पर जिन्हें सूक्ष्म जगत की गतिविधियों का आकलन कर सकने की क्षमता है, वे इस पूर्वानुमान से सहमत हुए बिना नहीं रह सकते कि यथास्थिति बनाये रहने की अपेक्षा कोई अदृश्य शक्ति उपयोगी परिवर्तन करते रहने में भी अपने क्रीड़ा-कौतुक की सार्थकता अनुभव करती है। निकटवर्ती नारी युग के आगमन को इसी दृष्टि से देखा जा सके तो ठीक है।

प्रजातंत्र के प्रचलन के उपरान्त से ही यह माँग उठती आ रही है कि मानवी मौलिक अधिकारों को जब मान्यता मिल चुकी है, तो फिर नारी को भी मनुष्य मानने और उसे मताधिकार मिलने का कदम उठे। इस प्रयास में लम्बा समय लग गया। प्रगति धीमे-धीमे अवश्य हुई, पर उसमें क्रमशः एक देश के बाद दूसरे देश में वह लहर पनपती गई और आज स्थिति है जिसमें समझदारी ने विश्व के अधिकांश भाग को अपने अनुरूप सहमत कर लिया है। मात्र मुट्ठीभर प्रतिगामी इसमें हास्यास्पद अड़चनें उत्पन्न करने पर अड़े हुए हैं।

इस प्रसंग में इतिहास के पृष्ठों पर उन्नति अभ्युदय के, आन्दोलनों के, प्रतिभाओं के, अवसरों के खोजने का श्रम क्यों किया जाय ? इन्हीं दिनों इर्द-गिर्द जरा-सी गर्दन मोड़कर हम इस संदर्भ में इतनी तेजी से, इतना आश्चर्यजनक घटित होते, उभरते देख सकते हैं, जो चकित कर देने वाला ही कहा जा सकता है।

नारी प्रगति के संदर्भ में अपना देश प्रतिगामी स्तर का ही माना जाता रहा है। यहाँ सती प्रथा, कन्यादान, बालविवाह, कन्याविक्रय, देवदासी, बलात्कार जैसे प्रचलनों को सहज स्वाभाविक माना और बिना किसी विरोध-विग्रह के साथ सहन किया जाता रहा है। शिक्षा, व्यवसाय, शासन, नेतृत्व जैसे अवसरों से उसे प्रायः वंचित ही रखा जाता रहा है। पर्दा प्रथा अभी भी पूरी तरह मिटी

अगली शताब्दी : नारी शताब्दी

कभी जीवन निर्वाह की परिधि बहुत छोटी थी । आबादी कम और भूमि अधिक होने से गुजारे के साधन सरलतापूर्वक जुट जाते थे । कृषि और पशुपालन भर से इतना मिल जाता था कि शरीर यात्रा किसी प्रकार थोड़े ही प्रयत्न और श्रम से चलती रहे । तब काम भी कम था और इस प्रकार बँट जाता था कि नारी घर की परिधि में समय गुजार ले और पुरुष बाहर से निर्वाह के साधन जुटाकर अपनी जिम्मेदारी पूरी कर ले । तब उस कार्य-विभाजन से नर-नारी अपना काम बाँट लेने और दिन गुजार लेने में कोई असुविधा अनुभव नहीं करते थे ।

पर अब व्यक्ति, परिवार और समाज की आवश्यकताओं और समस्याओं का असाधारण रूप से विकास और विस्तार हो गया है । प्रगति क्रम ने जहाँ अनेकों बातें सिखाई हैं, वहाँ यह भी अनिवार्य कर दिया है कि मनुष्य बौद्धिक दृष्टि से सुशिक्षित और सुसंस्कृत हो । विकास प्रयासों के निमित्त जिस साधन-सामग्री की खर्चीली आवश्यकता पड़ती है उसे भी जुटाये । उपार्जन और प्रतिभा परिवर्धन के साथ जुड़ी आवश्यकताएँ, अब बहुत बढ़ गयी हैं और चाहती हैं कि नर और नारी दोनों ही समान रूप से समुन्नत हों । दोनों का ही व्यक्तित्व विकसित हो । दोनों ही स्वावलम्बी बनें और बढ़ती हुई आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को पूरा करने में समान समर्थता उपलब्ध करें । मानवी मौलिक अधिकारों में भी कोई किसी से पीछे न रहे । समय की बढ़ती हुई माँगें इसी प्रकार पूरी हो सकती हैं । अब इतने से ही काम नहीं चल सकता कि नारी के रूप में मनुष्य जाति की आधी जनसंख्या मात्र रसोईदारिन, चौकीदारिन और धाय का काम करती हुई एक प्रकार से गया-गुजरा जीवन जिये और पूरे परिवार का खर्च जुटाने के लिए मात्र पुरुषों को ही सारा भार वहन करना पड़े । नारी विकास जन्य सभी उपलब्ध साधनों से वंचित रहकर घर सम्भालने में ही वन्दिनी बनकर जीवन जिये । उसे मानवाधिकारों के स्वतंत्र वातावरण में साँस लेने का अवसर न मिले । पराधीनता अब मानव जाति के हर पक्ष को असह्य हो रही है और स्वतंत्र वातावरण में साँस लेने के लिए हर किसी का मन मचल रहा है । बाधित स्थिति में जेल के कैदी, पिंजड़े के पक्षी तक हैरान होते हैं, फिर नारी को ही दासी का जीवन जीने के लिए सहमत रखा जा सके, यह कैसे संभव हो सकता है समय की माँग से यह सर्वथा विपरीत है । समस्या शान्तिपूर्वक न सुलझी तो अगले ही दिनों विद्रोह उभर पड़ेगा और परिवार संस्था की धज्जियाँ उड़ जाएँगी । इसलिए उचित यही है कि जो न्यायोचित है, उसे समय रहते अपना लिया जाय ।

नारी मात्र दूसरे घर से अपहरण करके लाई हुई नारी के रूप में अर्द्ध पशु ही नहीं है, जिसका कर्त्तव्य साथी एवं अपने पालकों के हर उचित-अनुचित आदेश का पालन नहीं है । घरों की चारदीवारी से बाहर निकल कर कोई उपयोगी कार्य करने तक की छूट को पूरी तरह मान्यता नहीं मिली है ।

राजसत्ता ने घोषणा की है कि नारी को तीस प्रतिशत आरक्षण शासकीय क्षेत्र में दिया जायगा । उत्साही वर्ग इस माँग को पचास प्रतिशत तक ले जाने के लिए अड़ा हुआ है । नारी शिक्षा को निःशुल्क किये जाने की योजना बन रही है । उन्हें लोकसभा से लेकर नगरपालिकाओं तक में उपयुक्त स्थान मिलने की सम्भावना है ।

पड़ोसी पाकिस्तान में इस्लामी कानूनों को ताक में रखकर महिला प्रधानमंत्री नियुक्त की गई है और अनेक क्षेत्रों में उन पर लगे हुए प्रतिबंधों को अकस्मात ही उठा लिया है । अफगानिस्तान में महिलाओं का सशस्त्र सैन्यदल अपना कमाल दिखा रहा है । तुर्की के कमालपाशा ने इस संदर्भ में जो क्रान्तिकारी सुधार किये थे, उनको नये सिरे से कार्यान्वित किये जाने की तैयारी चल रही है । जापान की महिलाओं का तो दावा है कि पार्लियामेन्ट ही नहीं वे देश के अधिकांश महत्त्वपूर्ण दायित्वों को अगले दिनों अपने कन्धों पर उठायेंगी और यह सिद्ध करेंगी कि नारी की मौलिक क्षमता नर की तुलना में कम नहीं, वरन् कहीं अधिक है । उसे अबला तो अनीति भरे-प्रतिबन्धों ने बनाया है । कुहासा छँटने ही जा रहा है, तो वे घुटन भरे वातावरण में गई-गुजरी जिन्दगी क्यों व्यतीत करेंगी ?

भारतीय मूल की एक महिला ने ब्रिटेन व एक ने अमेरिका में सेना का उच्च पद प्राप्त किया है । दिल्ली ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन की तीन बसें महिलाएँ ही चलाती हैं तथा एयरइण्डिया का एक बोइंग जेट का संचालन दल समूचा महिलाओं का है । यातायात का संचालन भी महिला पुलिस ही करती है, वह भी सबसे व्यस्त चौराहे पर ।

अफगानिस्तान की तरह ईरान ने भी अपने यहाँ महिलाओं की एक पूरी बटालियन खड़ी की है जो महिला ब्रिगेडियर के तत्वाधान में ही काम करती है । लीबिया के कर्नल गद्दाफी की भी ऐसी ही योजना है । इन राष्ट्रपति महोदय का कहना है कि महिलाएँ बहादुरी, वफादारी और कुशलता में पुरुषों की अपेक्षा अधिक अग्रणी होती हैं । उनके अंगरक्षक दल में मात्र सशस्त्र पुरुष वेशधारी महिलाएँ होती हैं ।

महिलाओं का भविष्य उज्ज्वल है, उनके आगे बढ़ने की सम्भावना सुनिश्चित है । समय के साथ चलते हुए जो इस प्रतिस्पर्धा के युग में अपने परिवार या प्रभाव क्षेत्र में महिलाओं को अनुगमन के लिए प्रोत्साहन एवं सहयोग प्रदान करेंगे वे प्रगतिशील समझदारों की तरह ही नफे में रहेंगे । जो धीमे चलेंगे, उदासी अपनायेंगे, उपेक्षा करेंगे वे पिछड़ों की अग्रिम पंक्ति में खड़े होंगे । बनना तो उन्हें भी वही पड़ेगा जो सर्वत्र बनने जा रहा है । पश्चाताप इसी बात का रह जाएगा कि समय आगे बढ़ा और हम हठवादिता अपनाते हुए 'फिर कभी देखा जाएगा' की बहानेबाजी का आश्रय लेते रहें ।

करना मात्र ही बना रहे । समय चाहता है कि प्राचीनकाल की वही शाश्वत् परम्पराएँ प्रचलित हों जिसमें नर और नारी एक समान सिद्धान्त के अनुरूप जीवनयापन करते थे । स्नेह और सहयोग का रिश्ता ही एक-दूसरे को सघन बंधनों में बाँधे रहता था । इसके लिए उसे अमानुषी बंधनों में बँधने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी ।

नर और नारी परमेश्वर के दो हाथ, दो पैर, दो नेत्र, दो कान, दो फेफड़े, दो गुर्दे हैं । न इनमें से कोई छोटा है न बड़ा । गाड़ी के दो पहियों की तरह ये एक-दूसरे के पूरक हैं । वरिष्ठता की बात सोची जाय, तो वह नारी को ही अधिक गरिमामयी बनाती है, क्योंकि वंश को गतिशील बनाये रखने का भार वह विशेष रूप से वहन करती है । सेवा और भाव-संवेदना की दृष्टि से उसी का पलड़ा भारी पड़ता है । फिर कोई कारण नहीं कि उसे प्रगति पथ पर चलने से रोके रखा जाय । "अन्धेर नगरी बेबूझ राजा" की उक्ति अब तक चलती रही, पर अब महाकाल ने न्याय तुला की डण्डी सीधी कर ली है और फैसला किया है कि "नर-नारी एक समान" वाला शाश्वत् सिद्धान्त अब पूरी तरह चरितार्थ होकर रहेगा । दोनों में से न किसी को दास रहने दिया जाएगा और न स्वामी । दबाव और परम्परावाद के बहाने उस स्थिति को यथावत् नहीं रहने दिया जाएगा, जिसमें नारी को घर के पिंजड़े में बन्द चिड़िया की तरह कैदी जीवन बिताना पड़ता था और नर उसके शरीर मन और अधिकार पर पूरी तरह अपना नियंत्रण कसे रहता था । अगले दिनों एकता और समता का ही सिक्का चलेगा । यदि स्त्रियों के लिए घूँघट निकालना, सती होना उचित समझा जाय, तो वह दोनों को समान रूप से पालन करना पड़ेगा । प्रगति की बात सोची जाएगी, तो उसमें नारी को भी समान रूप से सम्मिलित रखा जाएगा । यह न तो कोरी कल्पना है और न अनिश्चित सम्भावना । इस परिवर्तन को महाकाल की सुनिश्चित निर्धारणा ही मानकर चलना होगा । लम्बे समय से नारी की अनेकानेक प्रताड़नाओं और प्रतिबन्धों के अन्तर्गत पराधीन जीवन जीना पड़ा है, पर अब वह स्थिति सदा-सर्वदा के लिए समाप्त होने जा रही है । दबाव समयानुसार उभार में परिवर्तित होता है । इसी को क्रांति एवं क्रिया की प्रतिक्रिया कहते हैं । अगली शताब्दी नारी प्रधान होगी, क्योंकि उसने पिछले दिनों जो घाटा उठाया है, नियति उसकी पूर्ति करके रहेगी । अच्छा हो, यह भवितव्यता बिना किसी विग्रह के निपट जाये ।·दोनों पक्ष मिल-जुलकर ऐसी समझदारी अपनाकर दूरदर्शिता का परिचय दें, जिसमें शान्ति के साथ प्रगति का दुहरा लाभ दोनों पक्षों को मिलता रहे ।

नारी उत्थान का कार्य इस श्रीगणेश के साथ आरम्भ होना चाहिए कि किसी पक्ष को दासी और स्वामी मानने की मूढ़ता समाप्त की जाय । कन्या और पुत्र को समान श्रेय, दुलार और अधिकार मिले । दोनों के हितों की समान रूप से रक्षा की जाय । इसके निमित्त यह आवश्यक है कि नारी को भी नर की तरह ही अपने व्यक्तित्व का विकास एवं मानवी अधिकारों का समान लाभ मिलने का अवसर दिया जाय ।

इस संदर्भ में शिक्षा प्रथम और स्वावलम्बन द्वितीय चरण के रूप में उपलब्ध करने के लिए सभी को समान अवसर दिया जाय । अशिक्षा यदि पुरुष के लिये लांछन है तो वही बात नारी के लिए भी मानी जानी चाहिए । गरीबी से लेकर गन्दगी और पिछड़ेपन आदि के लिए निरक्षरता को दोषी ठहराया जाता है । नारी पर भी यह अभिशाप लदा नहीं रहना चाहिए । उसे साक्षर तो बनाया ही जाय, साथ ही ऐसी शिक्षा भी उपलब्ध कराई जाय, जिससे वह अतिरिक्त रूप से लदे हुए अज्ञान से पिण्ड छुड़ा सके और जान सके कि खाई से निकलकर समतल तक पहुँचने और समतल से प्रगति के पर्वतारोहण की मंजिल उसे किस प्रकार तय करनी पड़ेगी । किन अवरोधों से जूझना पड़ेगा ? किन प्रयासों में उसे विशेष रूप से साहस भरा प्रयास अपनाना होगा ? ऐसा मार्ग-दर्शन जिसमें शिक्षा के लिए विशेष रूप से साधन जुटाने पड़ेंगे । अभी तो स्कूल पाठ्यक्रम में इतिहास, भूगोल, गणित जैसे विषयों के रूप में उस भार को ही वहन करना पड़ता है, जो दैनिक जीवन में नहीं के बराबर काम आता है और जिनके आधार पर सर्वतोमुखी दिशाज्ञान से प्रायः वंचित ही रहना पड़ता है ।

पर अगले दिनों स्कूल शिक्षा यहीं तक सीमित होकर न रहेगी, व्यवस्था कुछ ऐसी बनेगी, जिसमें विद्यालय सामान्य विषयों की जानकारी देने के अतिरिक्त संस्कारशाला स्तर की भूमिका भी निभायेंगे, जिसमें व्यक्तिगत जीवन को उन्नतिशील और प्रगतिशील कैसे बनाया जाय, इस विधा को भी बताया-सिखाया जाएगा । इसमें नर और नारी दोनों को समान रूप से सुसंस्कृत बनाया जाएगा और बताया जाएगा कि विद्या का अवलम्बन ही वह एकमात्र उपाय है, जिससे न सिर्फ उन दोनों की समस्याओं का समाधान होगा, वरन् समाज की सारी समस्याओं का भी इसी के साथ अन्त हो सकेगा ।

इक्कीसवीं सदी की नारी जाग चुकी है

पिछले दिनों जापान में भूचाल-सा आया व देखते-देखते महिलाओं ने पुरुषों के हाथ से राजनीति की बागडोर छीनकर अपने हाथों में ले ली । इक्कीसवीं सदी का शंखनाद हुए अभी समय छह मास से अधिक नहीं हुआ है । लेकिन परिवर्तन की प्रक्रिया उस राष्ट्र से ही आरम्भ हो गयी है, जहाँ सूर्य देवता सबसे पहले अपनी हाजिरी देते हैं । पूर्व के जापान देश से आरम्भ हुई नारी-जागृति की यह क्रान्ति क्रमशः पूरे विश्व को अपने चपेट में ले लेगी, इसमें किसी को सन्देह नहीं करना चाहिए ।

आइए पूरे घटनाक्रम को विस्तार से देखें । जापान विश्व का वह अग्रणी राष्ट्र है, जिसने द्वितीय विश्वयुद्ध में

पूरी तरह ध्वस्त होने के बाद भी अपनी सांस्कृतिक विरासत, श्रमशीलता, कर्त्तव्यपरायणता तथा नैतिकता के उच्च आदर्शों के बलबूते प्रगति के उच्चतम शिखर को छू लिया । आज सारे विश्व की आर्थिक मण्डियों पर उसका वर्चस्व है । औद्योगीकृत विकसित राष्ट्रों के साथ सदैव एक त्रासदी जुड़ी रहती है–धन लोलुपता, भोगवादी लिप्सा तथा क्रमशः राजनीति में घुसती अनैतिकता । ये बुराइयाँ घुन की तरह पूँजीवादी राष्ट्रों को खा जाती हैं, किन्तु जाग्रत नारी समुदाय ने जापान के साथ ऐसा नहीं होने दिया । जैसे ही उन्होंने ऐसे अंकुर फूटते देखे, तुरन्त जनशक्ति का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया व १९४५ के पुनर्जागरण के बाद अब पहली बार यह खतरा सामने आ गया है कि 'डायट' (जापानी पार्लियामेन्ट) में सम्भवतः एक या दो ही पुरुष हों शेष सभी महिलाएँ ।

जो ज्वालामुखी फूटा उसने श्री ऊनो की सरकार को हिलाकर रख दिया । उनकी लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी को पिछले दिनों 'टोक्यो मेट्रोपॉलीटिन असेम्बली' के चुनाव में मुँह की खानी पड़ी है व ५० में से ४९ महिलाओं ने चुनाव क्षेत्र में बाजी मारी है । हर तीन वर्ष में 'अपर हाउस' के चुनाव होते हैं । वे होने ही वाले व अब लगता है कि 'डायट' की सारी सीटें महिलाएँ ही ले जायेंगी । यदि ऐसा हो जाय तो किसी को आश्चर्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसके पीछे सशक्त कारण हैं ।

प्रथम तो स्वयं को भोग्या बना देने वाले पुरुष समाज से वहाँ की स्त्रियाँ रुष्ट हैं । दूसरे वैधानिक दृष्टि से वोटर की संज्ञा प्राप्त नागरिकों में महिलाओं की संख्या पुरुषों की तुलना में २७ लाख ज्यादा है एवं यह संख्या एक भारी उलट फेर कर सकने में पूरी तरह सक्षम है । यही कारण है कि श्रीमती मैनी क्यूबोटा एवं श्रीमती डोई के नेतृत्व में राष्ट्रीय चुनावों में सभी सीटों पर महिलाएँ लड़ रही हैं व वैसी ही जीत की वे अपेक्षा रखती हैं जो उन्होंने टोक्यो में हासिल की थी । अधिकांश महिलाएँ नौकरी शुदा हैं या उद्योग समूहों का नेतृत्व कर रही हैं ।

एक और मजेदार बात यह है कि बहुसंख्य महिलाएँ शादी नहीं करना चाहतीं, क्योंकि वे इसे एक प्रवंचना मात्र मानती हैं । जो शादीशुदा हैं, वे बच्चे पैदा करना नहीं चाहतीं । जापान में अब ६५००० से भी अधिक महिला इंजीनियर हैं । पत्रकारिता, चिकित्सा व भौतिकी के क्षेत्र में वे अग्रणी हैं । तीन चौथाई महिलाएँ पार्टटाइम या पूरे समय की नौकरी या व्यापार में निमग्न हैं । कई अमेरिका से प्रशिक्षित होकर आई हैं । सारांश यह है कि जापान में महिला क्रान्ति आ चुकी है व उसने सारे विश्व को एक दिशा भी दिखा दी है ।

मुर्गा बाँग देता है व सूरज के आगमन की सूचना देता है । घटनाक्रम भवितव्यता की पूर्व सूचना देता है । इक्कीसवीं सदी नारी प्रधान होगी, इसका उद्बोध जापान से हो चुका है, अब बारी विश्व के शेष नारियों के जागने की है ।

अदृश्य जगत में चल रहे रचनात्मक प्रयास

मानवी विकास में अन्तः स्फुरणा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । आदिम युग से लेकर अब तक की विकास-यात्रा उसी के कारण सम्पन्न हो सकी है । उल्लेखनीय उपलब्धियों का आधार वही है । आगे की प्रगति की पृष्ठभूमि भी उसके द्वारा ही विनिर्मित होनी है । वही ईश्वरीय परिवर्तन की आधारशिला है ।

भगवान् ने जब यह सृष्टि बनायी, तो इसे सज्जित, सुव्यवस्थित और प्रगतिशील बनाये रखने के लिए कुंजी मनुष्य के हाथों बुद्धि के रूप में सौंपी । मनुष्य ने आज तक उसी अद्भुत कुंजी के सहारे संसार को उन्नति के इस द्वार तक पहुँचाया । इस क्रम में बीच-बीच में जब कभी अवरोध उत्पन्न हुआ, प्रकरण बुद्धि से परे का सामने आया, तब-तब ईश्वरीय चेतना ने मानवी अन्तःकरण में अपनी प्रकाश-प्रेरणा पहुँचाकर इसका उपाय-उपचार सुझाया, पर पिछले दिनों ऐसे अवसर कम ही उपस्थित हुए । अधिकांश प्रगति मानवी चेतना ने सम्पन्न की । किन्तु बुद्धि जब प्रगति कम और अवगति की ओर अधिक धकेलने लगे, तो निरुपाय हस्तक्षेप ब्राह्मी चेतना को करना पड़ता है । इन दिनों यही हो रहा है । स्रष्टा ने जब यह अनुभव किया कि अब और अधिक मनुष्य पर निर्भर रहना सृष्टि को समाप्त करने के समान होगा, तो कमान सर्वथा अपने हाथ में ले ली और अन्तःस्फुरणा की विश्वव्यापी ऐसी मुहिम चलायी, जिसे अनिच्छापूर्वक भी मनुष्य को कर गुजरने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं । वर्तमान की उलट-पुलट इसी की परिणति समझी जानी चाहिए ।

पिछले दिनों बर्लिन की दीवार टूटी और दोनों जर्मनियों का एकीकरण हुआ । रूस में साम्यवाद का अन्त और लोकतांत्रिक प्रणाली की स्थापना हुई । इसके साथ ही विश्व के दूसरे समाजवादी देशों में भी साम्यवाद के विरुद्ध आवाज उठने लगी है । देर-सवेर उनका भी अन्त हो जाय, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । रूस के बाद चीन ही दूसरा सबसे बड़ा साम्यवादी राष्ट्र माना जाता है । अब उसके रवैये में भी लचीलापन स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा है । मध्य-पूर्व में अरब-इजराइल का पुराना-विवाद शान्ति समझौतों के माध्यम से समाप्त प्रायः के करीब है । यूरोप का एकीकरण एकता प्रयास का अभूतपूर्व उदाहरण है । अगले दिनों इन देशों की एक मुद्रा, एक अर्थ-व्यवस्था, एक विदेश नीति, एक संविधान का प्रावधान विश्व-राष्ट्र की स्थापना के सपने को ही साकार करता है । इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व पर एक विहंगम दृष्टि डालें, तो सर्वत्र शान्ति और एकता के प्रयास ही चलते दिखाई पड़ेंगे । युद्धों का लगभग अन्त हो चुका है । कुछ एक देशों में गृहयुद्धों का वातावरण अवश्य बना हुआ है, पर वे भी इस युगान्तकारी बेला में अधिक दिनों तक टिक सकेंगे, ऐसी आशा नहीं

है । सोवियत संघ के विघटन के उपरान्त संसार शक्ति के सन्दर्भ में एक ध्रुवीय बन गया है । ऐसी स्थिति में अमेरिका के 'सुपर पावर' होने का कोई अर्थ रह नहीं जाता, अस्तु आगामी समय में यदि वह भी अपने सम्पूर्ण अस्त्र भण्डार को समाप्त कर दे तो कोई बड़ी बात नहीं ।

इक्कीसवीं सदी को महाकाल ने 'नारी सदी' घोषित किया है । अब तक दुनिया में पुरुष प्रधान समाज था । उसकी व्यवस्था परमसत्ता ने देख ली । अब दायित्व नारियों को सौंपने का मन है । इसी कारण से पिछले कुछ वर्षों में नारी जाति उन क्षेत्रों में भी बड़ी तेजी से आगे बढ़ी है, जहाँ पुरुषों का एकाधिकार था । इस संदर्भ में पूर्वी जर्मनी में एक बड़ी ही अद्भुत घटना घटते देखी जा रही है । अब तक की शोषित, उत्पीड़ित और सर्वथा अयोग्य समझी जाने वाली नारी जाति के समर्थन में पुरुष अपना वर्चस्व त्यागने लगें तो इसे क्या कहा जाय ? अचम्भा ? ईश्वरेच्छा ? या अदृश्य का प्रवाह ? कुछ भी कह लें, पर यही दृश्य वहाँ इन दिनों दृष्टिगोचर हो रहा है । जो पद पहले पुरुष सम्बोधन से पुकारे जाते थे, उन्हें अब स्त्री सम्बोधन मिलने लगा है, भले ही उस पर कोई पुरुष ही सुशोभित क्यों न हो । बदले प्रचलन के आधार पर उसके ओहदे को स्त्रीलिंग में पुकारने का प्रावधान है । यथा 'मेयर' पद 'मेयरेस' नाम से अभिहित किया जाता है और चैयरमैन, न्यूजमैन, स्पोर्टमैन, क्रमशः चेयरवुमन, न्यूजवुमन, स्पोर्टवुमन बन गये हैं अर्थात्-पुरुष, महिला संबोधन में अधिक गर्व गौरव अनुभव करने लगे हैं । मजे की बात तो यह है कि इसके लिए महिलाओं की ओर से कोई आन्दोलन नहीं छेड़ा गया, वरन् यह सब पुरुष-आन्दोलन की ही परिणति है । महिलाओं की ओर से तो मुहिम को हतोत्साहित ही किया गया । उनका मानना था कि यह तो एक चरम से दूसरे चरम की दिशा में जाना हुआ और सम्भवतः इससे अनुदारवादी पुरुषों का उन्हें और त्रास झेलना पड़े, किन्तु उनके इन तर्क से आन्दोलन कमजोर नहीं पड़ा, वरन् आग की तरह विस्तार ही पकड़ता जा रहा है । भला इसमें पुरुषों की स्वयं की इच्छा काम कर रही हो तब न रुके । वह तो कठपुतले की भाँति मात्र अंग-संचालन कर रहे हैं । सूत्रधार की भूमिका निभाने वाला संचालक तो कोई और है । इच्छा उसी की काम कर रही है । परिवर्तनकारी सत्ता वही है ।

इन समस्त परिवर्तनों में कुछ क्षण के लिए मनुष्य यह सोच सकता है कि यह सब मानवी प्रयास का परिणाम है, पर दूसरे ही पल प्रश्न उठता है कि यदि इनका आधार मानवी है, तो फिर पहले क्यों नहीं बन पड़े ? जबकि इनकी आवश्यकता बहुत पूर्व से अनुभव की जा रही थी । तब कुछ एक प्रयास हुए भी तो सफल क्यों नहीं हो सके ? जबकि इन दिनों थोड़े ही प्रयास से अभूतपूर्व सफलता मिलती चली जा रही है । कदाचित् कुछ लोग इसका उत्तर यह कह कर दें कि तब इनकी गम्भीरता नहीं समझी जा रही थी,' तो पुनः सवाल पैदा होगा कि यह गम्भीरता अचानक उनके मन में कैसे पैदा हो गई और इसके प्रति एक साथ सभी एकमत कैसे हो गये ? तर्क चाहे कुछ भी दे लें, पर यथार्थता यही है कि इनमें परम सत्ता का ही परोक्ष हाथ है । यह सच है कि इसके निमित्त गतिशील हमारे अंग-अवयव ही रहे हैं, पर प्रेरणा अन्तः-स्फुरणा के रूप में ब्राह्मी चेतना की ही रही है । सब कुछ सम्पन्न करा लेने के लिए वही हमें बाध्य करती है । इन दिनों लोकमानस में सत्प्रवृत्तियों के प्रति रुझान बढ़ने का कारण यही है कि महाकाल ने अपनी गतिविधियाँ तेज कर दी हैं । यह सोतों को उठाने, उठों को चलाने और चलतों को उछालने के लिए कटिबद्ध है । बुद्धिमानी इसी में है कि हम इस तथ्य को समझें और अपनी रीति-नीति बदलने का मानस बनायें ।

नारी अभ्युदय का नवयुग

पतझड़ के बाद फल-फूलों से लदा बसंत भी आकर रहता है । तवे-सी जलती उष्णता ज्यादा दिन नहीं ठहरती, उसके बाद ही घटाटोप बरसाने वाली वर्षा आ धमकती है और जल-जंगल एक कर देती है । धूल भरे अंधड़ चलने बन्द हो जाते हैं और उनके स्थान पर हरितमा की सुविस्तृत मखमली चादर बिछ जाती है । इतने बड़े परिवर्तन कर सकना मानवी प्रयत्नों के लिए भले ही कठिन हो, पर उस नियंता के लिए तो सब कुछ सम्भव है, जिसने इतनी विचित्रताओं से भरा-पूरा ब्रह्माण्ड रच कर रख दिया । भगवान् मनुष्य नहीं है, जिसकी इच्छाएँ अपूर्ण बनी रहें । भगवान् तो रात को दिन में बदल देने जैसे बुद्धि द्वारा न सोचे जा सकने वाले चमत्कार भी आये दिन पल-पल प्रस्तुत कर सकता है । उसकी इच्छा और योजना जो भी करके रख दे, वही कम है ।

लम्बे समय से आधी जनसंख्या नारी के रूप में दुर्गति ग्रस्त स्थिति में पड़ी चली आ रही है । उसे क्रीतदासी की स्थिति में रहना पड़ा है । अधिकारों की दृष्टि से उसे मनुष्य और पशु का मध्यवर्ती प्राणी समझा जाता रहा है, जिसके ऊपर कर्त्तव्यों का तो पर्वत जितना भार लदा चला आ रहा है, पर अधिकारों की दृष्टि से उसे अपने मालिकों और पालकों के आश्रित पूरी तरह रहना पड़ता रहा है ।

अपना समय महान् परिवर्तनों का पर्व है । पिछले ही दिनों राजमुकुट धराशायी हो गये । सामन्तों का दबदबा उठ गया । दास-दासियों का क्रय-विक्रय अब कहीं दीख नहीं पड़ता । शासन सत्ता आश्चर्यजनक रूप से अब प्रजाजनों के हाथ में पहुँचती जा रही है । बढ़ते हुए ज्ञान और विज्ञान के चरण मनुष्य को नये सिरे से सोचने और नये क्रिया-कलाप अपनाने के लिए बाध्य कर रहे हैं । क्रान्तियाँ राजनीति के क्षेत्र में ही नहीं हुईं, वरन् और भी बहुत कुछ बदला है । इक्कीसवीं सदी में विनाश-विकास के रूप में अपनी दिशाधारा उलटने जा रहा है । इसे अन्धकार का समापन और अरुणोदय का अभ्युदय कहने

के लिए हर किसी को बाधित होना पड़े, तो इसमें आश्चर्य नहीं मानना चाहिए । परिवर्तन की परम्परा यों सृजन को विराम देने वाली है नहीं ।

यहाँ चर्चा आधी जनसंख्या से है, अर्थात् नारी की स्थिति बदलने से है । इस संदर्भ में सम्भावना सुनिश्चित है कि इन्हीं दिनों एकता और समता का वातावरण बनने की सुनिश्चित तैयारियाँ हो रही हैं । जाति और लिंग के नाम पर बरती जाने वाली असमानता को भी अब अवांछनीय और अनैतिक ठहराये जाने का समय आ गया । 'मुक्ति' का लक्ष्य मात्र आध्यात्मिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहने दिया जाएगा । वह अवांछनीय दमन और शोषण के लिए बाधित रहने करने वाले सामाजिक प्रचलनों और भावना क्षेत्र में घुसे हुए अनाचारों का भी अन्त करने जा रही है । सूत्र-संचालन तो पर्दे के पीछे बैठा बाजीगर ही करेगा, पर हिलना-डुलना तो कठपुतलियों को ही पड़ेगा । लकड़ी की बनी हुई होने पर भी श्रेय तो उन्हीं को मिलता है ।

नारी जागरण अपने युग का सुनिश्चित निर्धारण है । आधी जनसंख्या को परतंत्रताजन्य अनेकानेक बंधनों से छुटकारा तो मिलकर ही रहेगा । मुक्ति उनके भाग्य में लिख दी गई है । स्वतंत्रता का उपभोग उसे भी करने को मिलेगा । इसमें पुरुष की अहमन्यता बहुत अधिक बाधा न पहुँचा सकेगी । जो होने ही वाला है, उसका प्रसन्नतापूर्वक स्वागत करने में ही भलाई है । प्रवाह के प्रतिकूल चलने में झंझट मोल लेने और संकट खड़े करने के अतिरिक्त और कुछ हाथ आने वाला नहीं है ।

नर-नारी में कुछ अंग-अवयवों की संरचना में अन्तर तो है, पर दोनों के बीच किन्हीं मौलिक तथ्यों का अन्तर है नहीं । अवसर न मिलने पर तो कोई भी कितनी ही गई-गुजरी स्थिति में जेल के कैदियों की तरह बंधनों में जकड़कर दुर्गतिग्रस्त देखा जा सकता है, पर उसे यदि स्वतंत्र चलने और प्रतिभा को विकसित करने की छूट मिले, तो हर कोई आगे बढ़ने, ऊँचा उठने के लिए पूरी तरह समर्थ है । अपने युग की नारी भी यदि अपनी हिम्मत का समुचित परिचय दे तो उसे सुविधा भी अधिक भी मिलनी चाहिए ।

प्राचीनकाल से लेकर अब तक संसार के हर क्षेत्र में महिलाओं को जब भी अवसर मिला है, तभी उन्होंने अपने प्रभुप्रदत्त प्रतिभा का समुचित परिचय दिया है । इससे सिद्ध है कि उनकी मौलिक विशेषताओं में कभी कोई अन्तर नहीं रहा । बंधन तो किसी को भी बाधित, विनष्ट और प्रताड़ित कर सकता है ।

भगवान् की इच्छा इन दिनों स्पष्ट रूप से प्रभातकाल की अरुणिमा की तरह प्रकट हो रही है कि आधी मनुष्य जाति पद-दलित स्थिति में न रहे । उसे भी अपने पराक्रम और वर्चस् को प्रकट करने का अवसर मिले । इस दैवी प्रयोजन का परिचय इन्हीं दिनों दो रूपों में देखने को मिलेगा । एक तो दूरदर्शी विवेकवान् पुरुष बढ़-चढ़ कर यह प्रयत्न करेंगे कि नारी के उत्कर्ष के लिए जो-कुछ अधिक से अधिक कर सकना सम्भव हो, उसे कर गुजरने में किसी प्रकार की कमी-कोताही न रहने दी जाय ।

दूसरी अन्तःस्फुरणा नारी के अन्तराल में अदम्य उत्कण्ठा के रूप में उभरेगी और वे इस प्रयास में जुट पड़ेंगी कि अपने वर्ग के पिछड़ेपन को प्रगतिशीलता में बदलने के लिए कार्य-क्षेत्र में उतरें । निजी उलझनों को एक कोने में रखकर प्रधानता इस बात को दें कि नारी उत्कर्ष के लिए उनकी भूमिका असाधारण होनी चाहिए । पिछड़ों को उठाने और दलितों को उभारने के लिए आखिर कुछ असाधारण त्याग-बलिदान तो करना ही पड़ता है, करना भी पड़ेगा । नारी अभ्युदय इसी आधार पर सम्भव हो सकेगा ।

नारी जागरण का शंखनाद

नारी जागरण का शंखनाद आज चारों ओर गुञ्जायमान हो रहा है । चाहें पाश्चात्य हो या प्राच्य, एक ही स्वर सुनाई पड़ रहा है कि अब नारी को अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ जागना चाहिए, जिससे परिवार, समाज एवं राष्ट्र में सुख-शान्ति का वातावरण बन सके । क्योंकि नारी के अन्तराल में जो मौलिक गुण हैं, वह समाज एवं राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण आधार हैं । सुन्दरता, भाव-संवेदना, सेवा-साधना, परमार्थ परायणता, सहयोग एवं सहकारिता, परोपकारिता, पर-दुःखकातरता ही वे गुण हैं, जो नारी में हैं और सामाजिक एकता एवं समता के लिए महत्त्वपूर्ण हैं । सुप्रसिद्ध एकता एवं चिन्तक कार्लाइल के शब्दों में—"भगवान् ने नारी की प्रतिमा को हृदय में रखा है, ताकि वह प्रतिभा संवर्द्धन का प्रत्येक कार्य स्नेह एवं प्रेम से सम्पन्न करे । यह थाती उन्हीं के पास है, जिसके द्वारा वह अपने समाज एवं परिवार-परिकर में दिव्य भावना का संचार कर देती है ।"

किन्तु प्रश्न यह उठता है कि ऐसी दिव्य विभूतियों से विभूषित रहकर भी नारी जाति आज दलित एवं पतित अवस्था में क्यों है ? और उसे इतने प्रतिबन्धों-दबावों के बीच रहने के लिए क्यों बाधित रहना पड़ रहा है ? इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न को और अधिक विस्तृत किया है—रूसी उपन्यासकार, नीति दार्शनिक एवं समाज सुधारक काउन्ट लियो टाल्सटाय ने । उन्होंने न केवल इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया, अपितु समाधान भी प्रस्तुत किये । अपनी महत्त्वपूर्ण रचना 'ह्वाट शैल वी डू देन' 'फिर हम क्यों करें ?' की प्रत्येक पंक्ति में उन्होंने नारी जागरण के शंखनाद को ध्वनि विस्तारक यंत्र 'लाउडस्पीकर' की तरह और गति प्रदान की है ।

उक्त पुस्तक में वे कहते हैं कि नारी अपने आपको भूल चुकी है । अपने सच्चे स्वरूप की जानकारी उसे नहीं है, क्योंकि सदियों से मानसिक गुलामी की बेड़ियों में जकड़ी जो गयी थी । मास्को की महिलाओं के बारे में वे लिखते हैं कि अपने जीवन को सुधारने की उनमें कोई

च्छा न थी । यह उनकी समझ में ही नहीं आता था कि लित एवं पतित रहने में बुरा ही क्या है ? वह यह तो खती थी कि लोग उन्हें धिक्कारते और उनसे घृणा करते हैं । उन्हें मात्र एक वस्तु अथवा मनोरंजन का साधन मानते हैं, पर क्यों मानते हैं यह उनकी समझ में न आता । नारी के सुकोमल मन में यह बात घर कर गयी है कि उनके लिए पराधीन और परावलम्बी होकर रहना ही नियति है, क्योंकि यह पुरातन परम्परा को देखती आ रही है और समझती है कि उसके लिए गयी-गुजरी स्थिति में रहना समाज के लिए आवश्यक भी है । यह विचार मात्र कपोल कल्पित बात नहीं, वरन् एक कटु सत्य है । अपने यहाँ की ग्रामीण एवं शहरी नारियों की मनःस्थिति भी ठीक ऐसी ही है । वह अपने आपको विस्मृत कर चुकी है ।

शेर का बच्चा सियारों के झुण्ड में जब पलकर बड़ा हुआ तो वह सियार की ही बोली बोलता और सियार की ही भाँति उसका रहन-सहन बन गया था, क्योंकि बचपन से ही उसे सियार के संस्कार मिले थे, किन्तु शेर द्वारा आत्मबोध कराने पर पुनः दहाड़ने एवं शिकार करने में सक्षम हो गया । लखनऊ चिड़ियाघर में रहने वाले रामू भेड़िये को कौन नहीं जानता, जो कितने ही प्रयासों के बाद आत्म-विस्मृति न टूटने के कारण भेड़िये की तरह कुछ वर्ष जीकर मर गया । यही बात नारी जाति के सम्बन्ध में भी लागू होती है । वह भी आत्म-विस्मृति के जाल-जंजाल में फँसी पड़ी है । फलतः दीन-हीन पतित बनी घर की चारदीवारी में डर एवं भय की हथकड़ियों-बेड़ियों से जकड़ी हुई है । उसके चारों ओर पतन-पराभव की ओर ले जाने वाले पहरेदार खड़े हैं, जो उसे बाहर नहीं निकलने देते । बल्कि बार-बार उसे गहरे गर्त में धकेलते और गई-गुजरी स्थिति में जीने के लिए बाधित करते हैं । वह आज ऐसी परिस्थिति में पहुँच चुकी है कि उस स्थिति से उबरने के लिए प्रबल उत्कण्ठा जगती ही नहीं । प्रसुप्त इच्छाशक्ति जाग्रत होती ही नहीं । वह दूसरे पक्ष से कर्त्तव्य पालने के लिए न तो गुहार मचाती है और न ही अपने अधिकार पाने के लिए अपना मुँह खोलती, हाथ-पैर चलाती है ।

किन्तु यह गहन तमिस्रा अधिक दिनों तक टिकने वाली नहीं है । यह तो अवश्य हो सकता है कि दीपक की तरह यह लौ तेजी से भड़क उठे, किन्तु ग्रीष्म की तीव्र तपन के बाद शीतल वर्षा होने से चारों ओर हरी मखमली फर्श बिछने का समय आ गया है । ब्रह्ममुहूर्त में भी ऐसा ही होता है । उस समय गहन तमिस्रा अपनी चरम स्थिति में होती है, कहीं हाथ को हाथ नहीं सूझ पड़ता है, किन्तु यह स्थिति घड़ी दो घड़ी ही रहती है । उसके बाद हँसता-मुस्कराता सूर्योदय का समय आता है, जिसमें मनभावन दृश्य उभरने, चिड़ियों के फुदकने एवं चहचहाने, गायों के रंभाने के दृश्य सामने आते एवं जन-जीवन में जागृति का संचार हो जाता है । टालस्टाय आशावादी दृष्टिकोण अपनाते हुए कहते हैं कि—"हम लोग अर्थात् यही आदमी जो पुश्त दर पुश्त से स्त्रियों को इस दुर्दशा में लाते रहे हैं और अब भी ऐसा ही करने पर उतारू हैं, एक दिन शुभ-मुहूर्त में अचानक अपनी इस मोह निद्रा से जाग्रत होकर सारी स्थिति को सुधार डालेंगे । उस समय तक नारियाँ स्वयं आत्म-विस्मृति के गहन कुहासे को हटा लेंगी और पुरुषों को सहयोग करने के लिए बाध्य करेंगी ।

मंगल प्रभाती गाने का यह समय आ चुका है । स्थिति उथल-पुथल मचाने वाली हो, इससे पहले ही पुरुष का कर्त्तव्य होता है कि नारी को मानवोचित् समता-एकता के प्रकृति प्रदत्त अधिकार उसे वापिस कर दे । नारी के लिए भी यह उचित है कि कर्त्तव्य पालन के लिए दूसरे पक्ष से अधिकार माँगने के लिए गरम न सही, नरम उपाय तो करे ही, ताकि उपेक्षा बरतने वालों का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हो । इसके लिए साहस का उभार आना भी अनिवार्य है । साहस उभरे तो संकल्प सजीव बनता और उचित उपलब्धियों को प्राप्त करा देने वाली दिशा के बन्द द्वार खोल देता है । इससे प्रसुप्त इच्छाशक्ति भी जाग्रत होती है । स्वयं से भी प्रयास बन पड़ता है । हाथ पर हाथ रखे बैठने पर तो थाली में रखा हुआ भोजन तक स्वेच्छापूर्वक मुँह में प्रवेश नहीं करता । प्रयास के बिना उपलब्धियों से भरे वातावरण में भी अभावग्रस्तता के कुचक्र में ही पिसना पड़ता है ।

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते अपने आस-पास के वातावरण को देखता और सीखता है । नारी के सम्बन्ध में भी यह तथ्य लागू होता है कि वह अपने आपको क्यों भूली है ? क्योंकि उसके सामने अभी तक कोई उछाल और उभार की परिस्थितियाँ ही नहीं आयी हैं, जिसको देखकर वह उछले और उभरे । अच्छे उदाहरण आँखों के सामने तैरने से ही प्रगति पथ पर चलने और सफलता प्राप्त करने का सत्प्रयास चल पड़ता है । यदि भूतकाल की नारी प्रगति का चक्र सर्वसाधारण के सामने से गुजरे तो फिर उससे सुखदायी परिस्थिति को वापिस लाने की सम्भावना बढ़े । नारी प्रगति की दिशा में कहाँ क्या हुआ ? क्या हो रहा है ? उसकी सांगोपांग जानकारी मिल सके तो गिरों में उठने की उत्कण्ठा जगेगी और प्रेरणास्पद उदाहरणों का अनुकरण करने की बात भी सोचेंगे । यही वह प्रयास है जिससे नारी की आत्म-विस्मृति टूटेगी । निजी उत्साह यदि उभर सके या उभारा जा सके तो अपने निर्णय के अनुरूप वातावरण भी बनेगा और सहयोग भी मिलेगा ।

अच्छा हो, इसके लिए नारी की क्षमता और गरिमा को बोध कराने वाले सभी प्रचार साधन समूची मनुष्य जाति की विचारणा को झकझोरें । उत्साहवर्द्धक तथ्य, घटनाक्रम जहाँ-जहाँ से भी उपलब्ध हों, उन्हें खोजा, सृजा एवं सँजोया जाय । उस प्रतिपादन के सम्पर्क में अधिक से अधिक लोग आ सकें, इसके लिए आवश्यक तर्क, तथ्य, प्रमाण उदाहरणों का इतना बड़ा समुदाय संग्रहीत एवं प्रचारित किया जाय जिससे प्रचलित

प्रतिगामिताओं को निरस्त करने में करारा प्रहार लगे। इसके लिए लेखनी, वाणी, नाटक, अभिनय, फिल्म, वीडियो, स्लाइड, प्रोजेक्टर, चित्र-प्रदर्शनी आदि का भी सदुपयोग किया जा सकता है। व्यक्तिगत सम्पर्क से लेकर विवाह-शादियों और समारोहों, प्रदर्शनों, जुलूसों आदि के माध्यम से भी विचार परिवर्तन के निमित्त कारगर प्रयत्न हो सकता है। यही वह उपाय है जिससे नारी अपने आपको जानेगी और जागरण का शंखनाद करती हुई स्वयं आगे बढ़ेगी और दूसरों की भी आत्मविस्मृति को हटाकर कुछ कर सकने के लिए प्रेरणा-प्रोत्साहन देगी। यही वह मूलभूत सूत्र है जिससे समाज में सुख-शान्ति का चिरस्थायी वातावरण बनेगा और इक्कीसवीं सदी-नारी सदी वर्चस्व प्रधान बनेगी।

अगली सदी नारी प्रधान कैसे होगी? एक वैज्ञानिक दृष्टि

महर्षि अरविन्द ने आगामी शताब्दी को 'मदर सेन्चुरी' के नाम से पुकारा है, पर नारी की वर्तमान स्थिति, क्षमता और मनोबल को देखते हुए ऐसा लगता नहीं कि अगली सदी नारी प्रधान होने वाली है। इस सम्बन्ध में तर्कवादियों का कहना है कि नारी जाति आज जिस स्थिति से गुजर रही है, उसे देखते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि उनमें सहनशीलता, संघर्षशीलता और सामाजिक नेतृत्व की क्षमता है, विकट परिस्थितियों में तो उसका मनोबल चरमराने लगता है, फिर किस आधार पर यह कहा जाय कि आने वाली सदी में पुरुषों की तरह वह समाज के हर क्षेत्र में अपनी महती भूमिका निभा सकने में समर्थ होगी।

इसमें दो मत नहीं कि तर्कवादियों का यह कथन अपने स्थान पर सही है, पर दूरदृष्टा महामानवों, भविष्यवक्ताओं एवं ज्योतिर्विदों के उस कथन को भी कैसे झुठलाया जाय, जिसमें उन्होंने आगामी समय को महिला प्रधान युग कहा है। निश्चय ही तर्कवादियों ने कोई न कोई सूक्ष्म भूल की है, जिसे उनकी स्थूल दृष्टि पकड़ने में अक्षम रही है।

शरीर विज्ञान कहता है कि कठिन परिस्थितियों से जूझने, मनोबल को सदा ऊँचा बनाये रखने, आशावादी रहने और प्रतिकूलताओं में भी जीवट का परिचय देने में हमारे हारमोनों का बड़ा हाथ है। इस संदर्भ में शरीरशास्त्रियों का कहना है कि जैसे ही कोई व्यक्ति समस्याग्रस्त होकर तनाव की दशा में आता है, एपिनेफ्रीन का स्राव होने लगता है, किन्तु शरीर तंत्र तत्क्षण ही इसके प्रभाव को निष्क्रिय करने के लिए सक्रिय हो उठता है और एक अन्य नोरएपिनेफ्रीन रस का स्राव करने लगता है। इस प्रकार एपिनेफ्रीन की प्रतिक्रिया समाप्त हो जाती है। बस, यहीं सफलता-विफलता का रहस्य छिपा हुआ है। पिछले दो दशकों से भी अधिक समय से इस दिशा में शोधरत लंदन पॉजिटिव हेल्थ सेण्टर के जीव रसायनज्ञ मैल्कम कैरथर का इस सम्बन्ध में विचार है कि चूँकि महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होती हैं, अतः छोटी-मोटी बातों में भी वह तनाव में आ जाती हैं, जिससे अन्तःस्रावी ग्रन्थि एपिनेफ्रीन रस का स्राव अधिक करने लगती हैं, फलतः बेचैनी और उद्विग्नता बढ़ती जाती है और इस प्रकार वह अधिकांश मामलों में कठिन परिस्थितियों का सामना करने में विफल रहती हैं। दूसरी ओर विश्व राजनीति में हमें इन्दिरा गाँधी, भण्डारनायके, गोल्डामायर, एक्वीनो, मारग्रेट थैचर जैसी साहसी महिलाएँ भी देखने को मिलती हैं, जिन्होंने हर प्रकार की कठिन चुनौतियों का सामना करते हुए अपने-अपने देश का नेतृत्व सफलतापूर्वक सम्भाला था। महिला होते हुए भी उन्होंने वह काम कैसे कर दिखाया, जिसे नारी-जाति के लिए प्रायः असम्भव माना जाता है?

मैल्कम कैरथर का दावा है कि उसने इस रहस्य को भी ढूँढ़ निकाला है। वे कहते हैं कि महिलाओं में तनाव के दौरान जब एपिनेफ्रीन और नोरएपिनेफ्रीन का अनुपात बराबर होता है, तो यथास्थिति बनी रहती है, अर्थात् प्रतिकूल परिस्थितियों में भी तनाव की अनुभूति नहीं होती और वे सामान्य रहती हुई प्रतिकूलताओं को आसानी से झेल जाती है, किन्तु जब इस समीकरण में अन्तर आ जाता है, तो वही किसी के लिए सफलता, तो किसी के लिए असफलता का कारण बन जाता है। एपिनेफ्रीन की मात्रा जब बढ़ जाती है, तो व्यग्रता और बेचैनी की उसी अनुपात में बढ़ोतरी होती है, पर यदि नोरएपिनेफ्रीन का स्राव एपिनेफ्रीन से अधिक हुआ तो जटिलताएँ भी आनन्ददायक बन जाती हैं। स्पष्ट है, जब तनाव और जटिलताएँ आनन्ददायक लगने लगें, तो व्यक्ति उसी में जीना पसन्द करेगा एवं इस प्रकार नेतृत्व की सबसे बड़ी सामर्थ्य उसे स्वतः ही हस्तगत हो जाएगी। युग नेतृत्व करने वाली उपर्युक्त महिलाओं के साथ यही तो हुआ।

यहाँ तर्कवादी यह कह सकते हैं कि अपवाद हर क्षेत्र में पाया जाता है। इसे समस्त नारी-जाति पर लागू नहीं किया जा सकता, तो इसका जवाब भी मैल्कम कैरथर ने अपने लम्बे शोधकाल के दौरान खोज निकाला है। इस अन्तराल में उन्होंने सौ से भी ऊपर महिला सांसदों, राजनीतिज्ञों, सामाजिक कार्यकर्त्रियों से सम्पर्क साधा और साक्षात्कार लिया। इसका निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए वे अपने शोधपत्र में लिखते हैं कि पच्चीस वर्ष पूर्व इन महिला राजनीतिज्ञों के इण्टरव्यू से पता चलता था कि वे पत्रकारों के प्रश्नों की बौछार से परेशानी में पड़ जाती थीं, किसी गम्भीर समस्या में पड़कर मानसिक शान्ति गँवा बैठती थीं, रात की नींद और दिन का चैन समाप्त हो जाता था, पर इतने वर्षों बाद स्थिति सर्वथा विपरीत है। अब न तो उन्हें ऐसे कार्यों से परेशानी होती है, न मानसिक शान्ति भंग होती है, वरन् बिलकुल सामान्य रहती हुई गम्भीर

समस्याओं का भी वे शांतिपूर्वक सामना करती हैं, मानो वह अत्यन्त सामान्य-सी बात हो । मेल्कम कैरथर का मानना है कि इसे महज दीर्घकालीन अभ्यास से उत्पन्न प्रतिभा मात्र नहीं माना जा सकता । वे इसे नारी–जाति में समग्र फिजियोलॉजिकल परिवर्तन के पुनरोदय की संज्ञा देते हैं वे कहते हैं कि इसी की आरम्भिक कड़ी के रूप में विश्व-राजनीति पटल में इन्दिरा गाँधी, थ्रेचर जैसी प्रतिभाएँ उभरीं एवं अगले दिनों और भी उभरेंगी ।

इस बिन्दु पर मैल्कम का यह निष्कर्ष भविष्यवेत्ताओं के उस कथन की पुष्टि करता है, जिसमें कहा गया है कि आगामी सदी महिला प्रधान होने वाली है । यदि आने वाला समय महिला वर्चस्व का है, तो निश्चय ही नारी–जाति की फिजियोलॉजी में समग्र परिवर्तन होना ही चाहिए, क्योंकि इससे कम में उसमें वह प्रतिभाएँ विकसित हो ही नहीं सकतीं, जिसके लिए सामाजिक नेतृत्व से सम्बन्धित और आवश्यकताएँ यथा-साहस, पराक्रम, पुरुषार्थ व दबंगपन अभीष्ट और आवश्यक हैं, तो क्या दस वर्ष के भीतर आज की दब्बू, संकोची, अक्षम, अशक्त, भीरु कही जाने वाली नारी जाति पूर्णतः परिवर्तित हो जाएगी ? यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है, जिसका उत्तर महर्षि अरविंद देते हैं वे कहते हैं । कि–"नहीं परिवर्तन कोई दैवी–चमत्कार जैसा नहीं होगा । वह शनैः–शनैः और ऐसा होगा, जिसे सूक्ष्म दृष्टि से गंभीर अध्ययन करके ही जाना जा सकेगा ।" पृथ्वी और घड़ी के घण्टे एवं मिनिट की सुइयाँ सभी घूमती रहती हैं, पर उसका आभास कहाँ किसी को मिल पाता है । जब दिन के बाद रात घिर आती है और पुनः दिन आता है तथा पेण्डुलम का घण्टा बजता है, तभी ज्ञात होता है कि दोनों का एक-एक चक्र सम्पूर्ण हो गया । महर्षि अरविन्द के अनुसार नारी एवं विश्व की उत्क्रान्ति भी ऐसे ही होगी । अतएव किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि ३१ दिसम्बर, १९९९ को रात्रि सोकर १ जनवरी सन् २००० के प्रातः उठने पर सब कुछ बदला-बदला नजर आयेगा, नारी सर्वोत्कर्ष पर दृष्टिगत होगी, वरन् यह समयसाध्य प्रक्रिया है, जो निरन्तर गतिमान है और लगभग सौ वर्ष में ही समग्र परिवर्तन की आशा की जानी चाहिए ।

अब प्रश्न यह है कि जब वैदिक एवं पुराणकाल में नारी सर्वोच्च स्थिति पर थी, तो आज वह इस कदर अपकर्ष तक कैसे पहुँच गई ? इतिहासकार कहते हैं कि इसके लिए मध्यकाल का अन्धकार युग जिम्मेदार है, जिसमें उसे इस तरह दबाया-दबोचा गया कि वह स्वयं को सचमुच ही अबला-अशक्त समझने लगी । शेर शावक को जब गीदड़ों के झुण्ड में रख दिया जाता है, तो वह स्वयं को वैसा ही समझने व व्यवहार करने लगता है । नारी को आज इसी दुर्भाग्य का दुष्परिणाम भुगतना पड़ रहा है ।

विकासवादियों (जे. डी. लेमार्क) ने 'यूज एण्ड डिसयूज' का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त दिया है । इसके अनुसार जिस अंग का बराबर उपयोग होता रहता है, उसका विकासक्रम भी जारी रहता है और जो अंग-अवयव निष्क्रिय पड़े रहते हैं, उनका विकास रुक जाता है एवं धीरे-धीरे वे शरीर-क्रिया के संदर्भ में गौण बनने लगते हैं । महिला–जाति के साथ यही हुआ । मध्ययुग में जब उनके मस्तिष्क में यह कूट-कूट कर भर दिया गया कि वह हर प्रकार से निर्बल और सामाजिक कार्यों के अयोग्य है तथा उनकी उपयोगिता घर-आँगन तक ही सीमित है, तो उनके अंग-अवयव भी उसी चिन्तन के अनुरूप ढलने लगे । इसी क्रम में जुझारूपन के लिए जिम्मेदार नोरएपिनेफ्रीन हारमोन का स्राव घटता गया, जबकि एपिनेफ्रीन का बढ़ता गया, जिससे नारी घर से बाहर हर कार्य में भय एवं घबराहट अनुभव करने लगी ।

पर यह भी सर्वविदित तथ्य है कि जब मोर्चे के सैनिकों का हौसला पस्त हो जाता है और वे पीछे हटने लगते हैं, तो स्वयं सेनापति को मुहिम सम्भालनी पड़ती एवं सैनिकों के टूटे मनोबल और साहस को बढ़ाना पड़ता है, ताकि वे जुझारू योद्धाओं का सा परिचय दे सकें और विजयश्री प्राप्त कर सकें ।

आज जबकि नारियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई है और इस दुर्दशा से उबरने में वे स्वयं भी अपने को सर्वथा असमर्थ पा रही हैं तो कमान स्रष्टा ने, परमपिता ने सम्भाल ली है, जो पुनः उसे सर्वोच्च स्थान में प्रतिष्ठित करने के लिए कटिबद्ध है । कालचक्र सदा घूमता रहता है । वह कभी स्थिर नहीं रहता । भूगोलवेत्ता कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति एक जगह से एक ही दिशा में लगातार चलता चला जाय तो घूम-फिर कर वह पुनः उसी स्थान पर पहुँचेगा, जहाँ से यात्रा आरम्भ की थी । यह भी भविष्यवक्ताओं के उसी कथन को प्रमाणित करते हैं कि आज यदि नारी पददलित हुई है, तो अगले ही दिनों वह पुनः उत्कर्ष पर पहुँचेगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । विश्व पटल पर दृष्टिपात करने पर इसकी झलक-झाँकी भी मिलने लगी है । सऊदी अरब की धरती पर उतरी अमेरिकी सेना में कितनी ही महिला बटालियनें हैं । अफगानिस्तानी सेना का नेतृत्व अनेक महिला कमाण्डर सँभालती हैं । इजरायल में साहसी पायलट का काम नारियों के भी जिम्मे है । ऐसे ही परिवर्तन विश्व के अनेक देशों में हो रहे हैं और महिलाएँ वह सब कार्य सम्पन्न कर रही हैं, जो एक पुरुष कर सकता है । यह सब इस बात की साक्षी हैं कि समग्र फिजियोलॉजिकल परिवर्तन के प्रथम चरण के रूप में महिलाओं में वांछित एन्जाइम-हारमोन्स का स्राव बढ़ने लगा है, जो उनके कर्तृत्व के रूप में दिखाई दे रहा है । यह एक स्पष्ट संकेत है कि भोर का

अरुणोदय हो चुका है और नारी-अभ्युदय का अंशुमाली अपनी प्रखर किरणों समेत उगने ही वाला है ।

विश्व-कल्याण का मार्ग है– नारी उत्थान

परमात्मा की सृष्टि में सारा विश्व एक ही केन्द्रीय-शक्ति से गतिमान है । जिस प्रकार माला में फूल एक ही धागे से पिरोये जाते हैं, उसी प्रकार सारा विश्व उसी शक्तिरूपी धागे में पिरोया गया है । यहाँ माला के फूल की भाँति सभी समान हैं । ईश्वर की दृष्टि में हम सब समान हैं । जिस प्रकार कि पिता अपने लड़कों को समान मानता है, उसी प्रकार हम सब एक ही ईश्वर की सन्तान हैं । पिता की दृष्टि में लड़की-लड़का समान हैं, उसी तरह हम सब नर-नारी भी समान हैं ।

सर्वाङ्गीण प्रगति से ही हमारा शरीर समुन्नत हो सकता है । यदि शरीर के विभिन्न अंग एक साथ उन्नति न करें या कोई अंग बिलकुल अछूता ही रहे तो शरीर कुरूप बन जावेगा, उसकी कीमत गिर जावेगी और संतोष-जनक परिणाम सम्भव नहीं होगा । जैसे पैरों में एक पैर मोटा और एक पैर पतला हो जावे तो क्या वह आदमी अपने जीवन में उन्नति कर पावेगा, कदापि नहीं । उसी प्रकार धन का भी है, धन से भौतिक वस्तुओं का खरीदना सम्भव है, लेकिन व्यक्तित्व नहीं खरीदा जा सकता । परिवार में आर्थिक-उपार्जन कर लिया जाता है और सम्भव भी है, लेकिन उसके साथ-साथ शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो वह धन मात्र कलंक की जड़ बन जावेगा और परिवार को गर्त में गिरा देगा ।

धन की उपयोगिता है । यह हमारे जीवन में आवश्यक भी है । धनोपार्जन किए बिना हम उन्नति नहीं कर सकते । लेकिन धन केवल जीने के लिए है; न कि संचय के लिए । यदि धन इसके बावजूद भी कुछ बचा रहता है तो उसके सदुपयोग की बात सोचनी चाहिए । कहा गया है कि सौ हाथों से धनोपार्जन कर और हजार हाथों से दान कर । धन कमाना सरल है, लेकिन उसका सदुपयोग करना अति दुष्कर काम है । अमीर लोगों के पास धन है, लेकिन कष्टमय जीवन व्यतीत करते हैं–उनके वारिस उन्हें सुख-शान्ति से नहीं रहने देते । कारण स्पष्ट है, कि उन्होंने धन कमाना ही सीखा है, उसका सदुपयोग करना नहीं सीखा । उनको तथा हर अमीर-परिवार के मुख्य सदस्य को चाहिए कि धनोपार्जन के साथ-साथ पारिवारिक-समस्या की उन्नति पर भी खर्च करें । मात्र कालेज पढ़ाकर उनका कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता, भले ही उनके बाल-बच्चे पढ़कर नौकरी प्राप्त कर लें, लेकिन सच्चे नागरिक-कॉलेज की पढ़ाई से नहीं बन सकते । व्यक्ति-निर्माण के लिए नारी-उत्थान की आवश्यकता है, तभी परिवार-निर्माण व समाज-निर्माण सम्भव है । परिवार के सदस्य मूर्ख हैं तो धन की उपयोगिता न जानकर दुरुपयोग कर, रोग अपकीर्ति, कलह एवं पापाचारों को ही प्रोत्साहन देंगे और दण्ड पाने के उत्तराधिकारी रहेंगे ।

धन की उपयोगिता को हम समझें । धन कमाकर उसे परिवार की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में लगा देते हैं । हमने कभी भी ध्यान दिया कि धन का उपयोग परिवार के सदस्यों के नैतिक-स्तर को बढ़ाने में, बौद्धिक-विकास करने में, आत्मिक शक्ति का अभिवर्द्धन करने में लगावें । इन्हीं गुणों का अभिवर्द्धन हो तो हमारी सच्ची धन की सदुपयोगिता कही जा सकती है एवं परिवार के प्रति यही सच्ची सेवा एवं सहानुभूति कही जा सकती है ।

हम देखते हैं कि नारी के बिना परिवार उसी प्रकार का है, जिस प्रकार पंच-तत्व से विनिर्मित यह शरीर प्राण के बिना हो जाता है । अर्थात् नारी परिवार के लिए प्राण के समान है, लेकिन हमने आज उसे मात्र दासी की श्रेणी में रखा है, भोग्या मानकर उसकी उपयोगिता को सीमित कर दिया है, अछूत मानकर उसे समाज में स्थान नहीं दिया है । हमने नारी के प्रति क्या-क्या अत्याचार नहीं किया है ? नारी को अबला की श्रेणी में रखकर उसका अपमान किया है । हम अपने शरीर का आधा अंग बेकार कर चुके हैं और मूर्ख के समान सुख की कल्पना करते हैं । यदि हमें अपना हित करना है, परिवार एवं समाज तथा विश्व का कल्याण करने की कल्पना करते हैं तो नारी को हमारे समान स्तर पर पाकर ही कर सकते हैं । नारी-उत्थान करके ही हम विश्व के कल्याण की बात सोच सकते हैं । यही सोचना हमारी सच्ची कल्पना है, नहीं तो कल्पना मात्र हो जावेगी ।

प्राचीनकाल में नारियों को कितना अधिक गौरव प्राप्त था, नारी-वर्ग ने अपना योगदान समाज-कल्याण के लिए पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर दिया है । उन्होंने स्वयं ही वेद-मन्त्रों का प्रतिपादन किया है, लेकिन आज हम स्त्रियों को वेद-मन्त्रों से दूर रखने की चेष्टा करते हैं, यह कितनी विडम्बना है ? हमें भगवान् के नियम का उल्लंघन नहीं करना है और नारी वर्ग को समान अधिकार प्रदान कर साथ-साथ चलने को बाध्य करना है । पहिले हमारे देश में नर-रत्न पैदा हुआ करते थे । अभिमन्यु जिन्होंने अपने गर्भावस्था में ही 'चक्र-व्यूह' तोड़ने की विधि का ज्ञान कर लिया था । आज हम यह भी मानते हैं कि माता के ही कारण उसके पेट का नन्हा-सा बालक जीवित रहता है, अपना पोषक-तत्व माँ के शरीर से ही प्राप्त करता है और हम बच्चे की माँ के रहन-सहन एवं खान-पान पर विशेष ध्यान देते हैं ।

बच्चे का निर्माण माता ही कर सकती है । जिस तरह अन्न का प्रभाव मन पर पड़ता है, उसी प्रकार माँ का प्रभाव बच्चे के ऊपर पड़ता है । नारी यदि सुविकसित है तो बच्चा योग्य होता चला जाएगा । गर्भ से लेकर आगे

निर्भर होने की समयावधि तक बच्चा-माँ की प्रतिभा से प्रभावित होकर अपना संस्कार बनाते हुए देश-रत्न एवं विश्व-रत्न की श्रेणी में पहुँच सकता है । माता जितनी सुसंस्कृत होगी, बच्चा भी उससे ओतप्रोत हुए बिना नहीं रह सकता । कोई भी सच्चा एवं समुन्नत व्यक्तित्व का मनुष्य कभी भी अपने बच्चे को गलत दिशा में नहीं जाने देगा । उसी प्रकार नारी भी अपने ज्ञान के अनुसार सुयोग्य बनाने की कोशिश करेगी । नारी जहाँ कहीं भी अशिक्षित एवं संस्कार रहित होगी, वहाँ निरन्तर क्रोध, कलह, असन्तोष, अवज्ञा तथा अपकीर्ति का साम्राज्य होगा और वह घर-मरघट के समान हो जाएगा, जहाँ भूत ही भूतों का साम्राज्य दिखाई पड़ता है ।

आज हमें राम, कृष्ण, अभिमन्यु, हनुमान आदि की आवश्यकता है तो हमें कौशल्या, देवकी, सुभद्रा और अंजनी जैसी माताओं की भी तलाश करनी होगी और यह तभी सम्भव है, जब हम नारी वर्ग को विकसित करें । आज की नारी-श्रवणकुमार, भरत, लक्ष्मण जैसे पुत्र पैदा करने में असमर्थ है और इसका एकमात्र कारण है-नारी-वर्ग को विकसित न होने देना । जब नारी ही समुन्नत नहीं है तो सुसन्तान की प्राप्ति मात्र ख्वाब ही होगा, जो कभी पूरा होने वाला नहीं है ।

नारी-उत्थान को प्रथम स्थान देना अति आवश्यक है, क्योंकि नारी के विकास से सभी समस्याएँ स्वयं ही हल हो जाएँगी । भिक्षुक-समस्या को ही ले लीजिए । भिक्षुकों की पैदाइश जन्म-जात नहीं होती । माँ यदि अशिक्षित है, संस्कार रहित है तो उसका बच्चा भी कुसंस्कारी ही होगा और माँ को भी गर्त में गिरा डालने की भावना रख सकता है । हमें रूढ़िवादी प्रथाओं को मिटाना होगा, यदि हम सच्चे मायने में माता, बहिन को, पत्नी को सुख देने की चाह रखते हैं । क्या हमने कभी सोचा है कि हमारे मरने के बाद पत्नी-बेटी, जो कभी घर से बाहर नहीं निकलीं, उनकी क्या दशा होगी ? सम्पत्ति दो दिन की मेहमान है कल चली जाएगी । पुरुषार्थी का ही संसार में रहना योग्य है । अस्तु, नारी वर्ग को पर्दा प्रथा से दूर रखना चाहिए । प्राणीमात्र के लिए सारा विश्व एक परिवार के समान है, अतः पर्दा करने की तनिक भी जरूरत नहीं है । नारी वर्ग को इतनी तो कोशिश करनी ही चाहिए कि समयानुकूल प्रत्येक नारी अपने पैरों पर खड़ी हो सके और दूसरों के सामने हाथ न फैलाना पड़े ।

दहेज-प्रथा भी नारी वर्ग के लिए एक अत्याचार है । नारी अशिक्षित है, आत्म-निर्भर नहीं है तो शादी करने वाला वर-पक्ष दहेज माँगता है; यह कितनी शर्म की बात है ? हमें चाहिए कि नारी-उत्थान के कदम बढ़ायें । प्रत्येक मनुष्य अपने घर के नारी वर्ग को सुशिक्षा प्रदान करे, तभी दहेज-प्रथा को जड़ से नष्ट किया जा सकता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नारी-उत्थान का महत्त्व अथाह समुद्र के समान गहरा है । उसके विषय में जो भी कहेंगे-थोड़ा ही है, लेकिन मुख्य बात यह है कि हमें आज ही से नारी-जागरण का कार्य शुरू कर देना चाहिए, तभी विश्व-कल्याण कर सकना सम्भव हो सकता है ।

नारी जागरण की दिशा में बड़े कदम उठें

बनी वस्तु को बिगाड़ना सुगम है, पर बिगड़ी को बनाना कठिन । माचिस की एक तीली झोपड़ियों वाले किसी गाँव को पूरी तरह स्वाहा कर सकती है । यदि उसे फिर नये सिरे से बनाना हो तो ढेरों समय, श्रम, कौशल और साधन चाहिए । जबकि जलाने वाला उस विनाश कार्य को सेकेण्डों में ही कर डालता है । 'नारी-समस्या' के बारे में भी यही बात है । उसे वरिष्ठता के उच्च शिखर से दुर्गति के गर्त में जिसने धकेला, उसकी तुलना में प्रयास हजारों लाखों गुने अधिक समर्थ और विस्तृत करने होंगे । ताकि पुनरुत्थान का प्रयोजन पूरा किया जा सके ।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए असंख्यों ऐसे भावनाशील नर-नारियों की तत्परता नियोजित होनी चाहिए, जिन्हें प्रस्तुत अवांछनीयता को हटाने और उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण का महत्त्व विदित है । ऐसे लोगों के लिए दो कार्य प्रधान हैं-एक जन-सम्पर्क साधना, दूसरा उत्साह भरा वातावरण बनाना ।

नारी पुनरुत्थान के सन्दर्भ में प्रारम्भिक और अनिवार्य कदम क्या उठें ? किस प्रकार उठें ? इसकी चर्चा पिछले लेखों में की जाती रही है । वह आवश्यक तो है, पर पर्याप्त नहीं । इतिहास का सबसे बड़ा एवं समस्त जन-समाज को प्रभावित करने वाला आन्दोलन होने के नाते कितने ही और बड़े कदम उठाने भी आवश्यक हैं । बड़े काम के लिए बड़े स्तर पर आयोजन और बड़े साधनों की आवश्यकता होती है ।

आन्दोलन की पृष्ठभूमि और उसकी क्रिया-प्रक्रिया का अभ्यास कराने के लिए शान्तिकुंज में एक महीने के महिला प्रशिक्षण सत्र सतत् चलते हैं । उनमें शिक्षार्थियों के निवास, प्रशिक्षण एवं भोजन की निःशुल्क व्यवस्था रहती है, पर यह तो एक छोटा शुभारम्भ, मात्र मार्गदर्शन की एक छोटी इकाई कहा जा सकता है । ऐसे-ऐसे सत्रों की हर क्षेत्र में व्यवस्था होनी चाहिए, ताकि स्थानीय सेवाभावी उसका लाभ अपने घर का काम-काज निपटाते हुए उठा सकें ।

भारत की परिस्थितियों के साथ ताल-मेल खाता हुआ साहित्य अभी नाम मात्र का छपा है । इस अभाव की पूर्ति के लिए एक ऐसा समर्थ तन्त्र खड़ा होना चाहिए जो नारी समस्या के अनेकानेक पक्षों पर उपयोगी साहित्य लिखने, छपने और बेचने की सुनियोजित व्यवस्था को अग्रगामी बना सके । यह सृजन देश की सभी भाषाओं में होना चाहिए । इस प्रयोजन के लिए संगीत सृजन का कार्य भी हाथ में लिया

जाना चाहिए । हर भाषा में गीत लिखे जाएँ । लोक संगीत का अभ्यास कराने के लिए स्थान-स्थान पर संगीतशालाओं की स्थापना भी होनी चाहिए ,जिसमें शिक्षितों, अशिक्षितों को उनके स्तर का लाभ मिले ।

परित्यक्ताओं, निराश्रितों, असहायों, विधवाओं के लिए ऐसे आश्रयस्थल बनने चाहिए जिन्हें 'बाप का घर' कहा जा सके । उनमें निराश्रित महिलाओं के लिए निवास की शिक्षा की व्यवस्था तो हो ही, साथ ही ऐसे उद्योग तन्त्र भी उनके साथ जोड़े जाएँ जिनसे वे अपनी आजीविका की अधिकांश पूर्ति अपने पुरुषार्थ के आधार पर कर सकें । जो कमी पड़े उसका भार समाज वहन करे । उनके बच्चों को भी शिक्षित, स्वावलम्बी बनाने का प्रबन्ध किया जाय ।

अनेकों उद्योगों को खड़ा करने वाले आधार इन दिनों प्रचलन में है । स्थान-स्थान पर ऐसे उद्योग तन्त्र भी खड़े किए जायें जिनमें स्थानीय महिलाएँ अपने बचे हुए समय का सदुपयोग कुछ कमाने में कर सकें । साथ ही कुछ शिक्षा भी प्राप्त करती रह सकें । ऐसी उद्योगशालाएँ नारी जागृति की महती भूमिका सम्पादित करती रह सकती हैं । यह प्रयास सहकारी समितियों जैसे आधार पर खड़े किए जा सकते हैं । इनका विनिर्मित माल लोग उसी भावना से लेंगे जैसे असहयोग आन्दोलन के जमाने में खादी को प्रधानता दी गई थी ।

प्रचार के लिए इन दिनों पत्र-पत्रिकाओं और फिल्में असाधारण प्रभाव के साथ उभर रही हैं । महिला समस्याओं से जन-साधारण को अवगत कराने के लिए सभी भाषाओं में स्तर की पत्रिकाएँ निकल सकती हैं और फिल्में बन सकती हैं । जहाँ सम्भव हो रेडियो, टेलीविजन को भी इस ओर ध्यान देने के लिए सहमत किया जाय ।

प्रयाग महिला विद्यापीठ ने एक समय महिला शिक्षा के लिए उपयोगी पाठ्यक्रम बनाये थे और उनको पढ़ाने, परीक्षाएँ लेने का प्रबन्ध किया था । सरकारी मान्यता के फेर में वह तन्त्र लड़खड़ा गया । इसे फिर से विशुद्ध जनाधार पर खड़ा किया जा सकता है । भले ही सरकारी मान्यता उसे न मिले, पर इसे अपनाकर इस सन्दर्भ का समुचित ज्ञान शिक्षित समुदाय तक नये उत्साह के साथ पहुँचाया जा सकता है ।

लोकसेवी समुदाय यदि इस कार्य को भी हाथ में ले ले तो समानान्तर सिनेमा एवं वीडियो प्रदर्शन की प्रक्रिया भी देहाती कस्बों व शहरों में योजनाबद्ध रूप में खड़ी की जा सकती है । महाराष्ट्र सरकार ने ऐसा कुछ सोचा और किया भी है । अन्य सरकारें भी लोकशिक्षण के लिए यह कदम उठा सकती हैं । समाजसेवी संस्थाओं के लिए भी यह एक करने योग्य बड़ा काम है ।

नारी उत्पीड़न के विग्रहों से निपटने के लिए पुरातन काल जैसी पंचायतें फिर जीवित और सक्रिय हों । सामाजिक दबाव भी कम सशक्त नहीं है । उसे पुनर्जीवित किया जाय तो इस प्रकार के अनाचार से स्थानीय स्तर पर निपटा जा सकता है । आवश्यकतानुसार इसके लिए धरना देने वाला स्वयं सेवक दल भी गठित किया जाता है । जहाँ कानूनी सहायता की आवश्यकता है, वहाँ के लिए भी यह तन्त्र कारगर भूमिकाएँ निभा सकता है । इसके लिए उदार वकीलों से फीस कम करने के लिए भी अनुरोध किया जा सकता है, जिससे सरकारी या गैर सरकारी पंचायतें अनेक क्षेत्रों में नारी उत्पीड़न से निपटने के लिए समर्थता प्राप्त करें ।

यह कुछ सुझाव हैं जिन्हें सहयोग से खड़ा किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त भी बहुत-सी बातें और प्रयोग में लाई जा सकती हैं । यों सरकारी विभाग भी इन प्रसंगों में कुछ सुविधा जुटाने का प्रयत्न करते रहते हैं । अफसरों की ढिलाई से उनका समुचित लाभ तो जनता को नहीं मिल पाता । फिर भी जहाँ वैसे प्रयत्न चल पड़े हों उनसे यथा सम्भव सहायता लेनी चाहिए ।

विश्व की किन्हीं भी समस्याओं पर राजनीति, धर्म, विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि के माध्यम से प्रकाश डाला जाता रहा है । विवेचना होती रही है । इन दिनों यह होना चाहिए कि नारी को माध्यम मान कर व्यक्ति, परिवार और समाज से सम्बन्धित सभी समस्याओं पर प्रकाश डाला जाय और उनके समाधान में विकसित नारी का क्या योगदान हो सकता है ? इस पर पूरी तरह प्रकाश डाला जाय । तभी जन-साधारण को यह विदित हो सकेगा कि यह कितना बड़ा विषय है, जिस पर अभी तक उपेक्षा बरती गई । अब हर क्षेत्र के समाधान में नारी के विकास को प्रमुख माध्यम सिद्ध करना और उसके लिए कारगर प्रयत्न करने की बात सुझाई जानी चाहिए । इसी आधार पर उपेक्षित प्रसंग को सर्वोपरि महत्त्व मिल सकेगा । उसके समाधान के लिए जो बहुत कुछ किया जाना है वह सम्भव हो सकेगा ।

इतिहास के आरम्भिक काल से लेकर अब तक अनेक अवांछनीयताओं से संघर्ष के लिए अनेकों सृजन प्रयोजनों को गठित करने के लिए जीवन्त लोगों ने बहुत कुछ किया है । युग की सबसे महती समस्या के रूप में नारी पुनरुत्थान के कार्य सामने हैं । उसमें संघर्ष और सृजन दोनों जुड़े हुए हैं । इसलिए उसे सम्पन्न करने के लिए असाधारण जन-शक्ति साधनाशील और प्राणवान् साहस की आवश्यकता है । इन्हें जुटाने के लिए जिसमें जितना कुछ बन पड़े इसे पूरा करने में उठा न रखना चाहिए । नारी पुनरुत्थान के प्रयासों को हलके और उथले तौर पर नहीं लिया जाना चाहिए । नारी के उत्कर्ष में ही पुरुष की प्रगति का रहस्य छिपा है । नारी और पुरुष एक दूसरे के प्रति समर्पित होकर कुशलता एवं सौहार्द्रपूर्वक न केवल अपनी जीवन नौका खे सकते हैं, बल्कि अपनी

समान भागीदारी का निर्वाह करते हुए प्रगतिशील नागरिकों की पीढ़ी का निर्माण कर सकते हैं ।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष और उसकी पृष्ठभूमि

सन् १९७४ का वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में संसारभर में मनाया गया । उस वर्ष राष्ट्र संघ ने सभी देशों की सरकारों से तथा समाजसेवी संस्थाओं ने अनुरोध किया कि वे महिला जागरण के सम्बन्ध में कुछ अधिक सोचें और कुछ अधिक करें । इसका कुछ तो प्रभाव हुआ ही है और थोड़ी हलचलें भी जहाँ-तहाँ दिखाई पड़ रही हैं । यह अच्छा चिह्न है और यह समझने के लिए एक प्रमाण है कि हवा का रुख किधर बह रहा है ।

संसारभर के देशों की सरकारें उसके बाद से अपेक्षाकृत नारी समस्या पर अधिक ध्यान दे रही हैं । उनके मार्ग की अड़चनें हटाने और सुविधाएँ बढ़ाने के लिए न कुछ किया जा रहा है । सामाजिक संस्थाएँ भी इस दिशा में कुछ न कुछ सोचने और करने के लिए पहले की अपेक्षा अधिक उत्सुकता एवं सक्रियता प्रकट कर रही हैं । पत्र-पत्रिकाओं में नारी उत्कर्ष पर अपेक्षाकृत अधिक लेख छप रहे हैं । सभा-सम्मेलनों, प्रस्तावों, प्रदर्शनों की भी धूम है । यह अच्छे चिह्न हैं । ठोस हों या पोले प्रयास आखिर कुछ तो परिणाम प्रस्तुत करते ही हैं । जहाँ नारी संगठनों का अस्तित्व था, वहाँ भी मूर्छना जगी है और कागजी खोखा खड़ा न रखकर कुछ रचनात्मक कदम बढ़ाने का उत्साह जगा है । कई जगह नये संगठन, कई जगह नये रचनात्मक कार्य आरम्भ हुए हैं । विचारशील स्त्रियों की एक बड़ी संख्या यह सोचने लगी है कि उनके समाज का पिछड़ापन दूर करने के लिए अब कुछ बड़े प्रयास होने चाहिए और स्थिति में तेजी से सुधार होना चाहिए । पुरुषों में से अनेकों दूरदर्शी लोग यह सोचने लगे हैं कि नारी का पिछड़ापन मानव समाज को प्रभावित करने वाली सबसे बड़ी समस्या है, उसे ऐसे ही उपेक्षित अनसुलझी स्थिति में पड़े रहने देना चाहिए । पिछले समय में नारी समस्या पर चर्चाएँ तो होती थीं पर उसे घरेलू स्तर की मानकर ऐसे ही हलकी बात माना जाता था, पर अब लोकचिन्तन ने नई करवट ली है और उस उपेक्षित समस्या को प्राथमिकता देने के लिए एक नई स्फुरणा उत्पन्न हुई है । इस सबका समन्वय सन् ७५ के महिला वर्ष के रूप में मनाये जाने के रूप में पर्दे के पीछे से झाँकता हुआ देखा जा सकता है । उसने कितनी ही अभिनव हलचलों का सृजन किया है ।

आशा की जानी चाहिए कि यह उभरता हुआ, लोकमानस अपना दूरगामी प्रभाव उत्पन्न करेगा । यों समय-समय पर कई आन्दोलन खड़े होते हैं और अपने संयोजकों के प्रभाव तथा उत्साह के अनुरूप उठते-बढ़ते तथा समाप्त हो जाते हैं । उन्हीं में से एक नारी अभियान को नहीं माना जाना चाहिए । इसे राष्ट्र संघ को, सरकारों या संस्थाओं की सामयिक उमंग नहीं माना जाना चाहिए और यह नहीं सोचना चाहिए कि यह बरसाती बादल कुछ घड़ी गर्जन-तर्जन करके ठंडा पड़ जायेगा । यदि यह कुछ व्यक्तियों का, संगठनों का प्रयास भर होता तो भी वैसी आशंका की जा सकती थी, पर यथार्थता कुछ और ही है । कालचक्र गतिशील हो रहा है और उसने युग बदल देने जैसी करवट ली है । सूक्ष्म जगत में ये सम्भावना बन चली है जो अपने प्रचण्ड प्रवाह से कितने ही महत्त्वपूर्ण परिवर्तन प्रस्तुत करेगी । नारी का पुनरुत्थान उन्हीं में से एक सुनिश्चित तथ्य है ।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष का, जटिल महिला समस्या के समाधान में कितना योगदान मिला, इसका पर्यवेक्षण यदि, क्या-क्या छपा, क्या-क्या कहा सुना गया, इस आधार पर निकालना हो तो कुछ सन्तोष की साँसें ली जा सकती हैं, पर यदि यह देखना हो कि इनके पीछे समय को पलट देने और प्रवाह को बदल देने जितनी शक्ति है या नहीं, तो फिर निराश ही होना पड़ेगा ।

इतने पर भी प्रकाश की एक ऐसी किरण विद्यमान है, जिसकी क्षीण आलोक में उज्ज्वल भविष्य की झाँकी विश्वासपूर्वक की जा सकती है । जिनको सूक्ष्म जगत और उसकी सत्ता पर विश्वास है, वे जानते हैं कि क्रिया की प्रतिक्रिया का अकाट्य प्रकृति नियम अवांछनीयताओं को उलट देने का सरंजाम अनादि काल से जुटाता रहा है । विश्व का सन्तुलन बनाये रहने के लिए ऐसे अन्धड़ तूफान खड़े होते रहे हैं, जिन्होंने निराशा और आतंक की मेघ-माला को छिन्न-विछिन्न करके समय-समय पर घुटन को दूर किया है । मनुष्य की समष्टि अन्तरात्मा जिसे विश्वात्मा या परमात्मा कह सकते हैं, विकृतियों के निराकरण के लिए समर्थ प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करती रही हैं और अनन्त काल तक उसका, यह क्रम चलता ही रहेगा । शरीर में विषाणुओं का, विजातीय द्रव्य का जब अवांछनीय जमघट एकत्रित हो जाता है तो प्रकृति कोई तीव्र रोग संवेग खड़ा करती है । ज्वर, पीड़ा, सूजन आदि के रूप में कष्ट तो होता है, पर बीमारी को उखाड़ने की दृष्टि से यह आवश्यक होता है । इसलिए शरीर शोधन की यह प्रकृति प्रक्रिया स्वास्थ्य संरक्षण का प्रयोजन पूरा करती रहती है । चिकित्सा के मनुष्यकृत सारे उपचार एक ओर और प्रकृति की उपर्युक्त व्यवस्था एक ओर रख कर तराजू पर तौली जाय तो पलड़ा प्रकृति परम्परा का ही भारी बैठेगा ।

शरीर स्वास्थ्य के सन्तुलन की तरह समाज स्वास्थ्य में विकृत विषाणुओं की, भ्रष्ट मान्यताओं और गतिविधिओं की भरमार हो जाती है तो अनिवार्य रूप से उसकी सुधार प्रक्रिया सामने आती है । इस परिवर्तन प्रकरण को मोटे तौर से भगवान् का अवतरण कहा जाता है । अधर्म का उन्मूलन और धर्म की संस्थापना करने के लिए भगवान् प्रतिज्ञाबद्ध हैं । साधुता का परित्राण और दुष्कृतों का

विनाश करना, सृष्टि के असन्तुलन को सहन न करना उनका स्वभाव है । ठीक है मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, पर यह स्वतन्त्रता औचित्य के साथ जुड़ी रहनी चाहिए । अनौचित्य सर्वत्र असह्य माना गया है और सदा सर्वदा उसकी प्रतिक्रिया हुई है । यदि ऐसा न होता तो समय-समय पर प्रकट होने वाले दुर्दन्ति असुरों ने अब तक कबका इस संसार को अपने पेट में निगल लिया होता अथवा उसे कुचल-मसल कर नष्ट कर दिया होता । संसार के इतिहास पर आरम्भ से लेकर अद्यावधि परिस्थितियों का विहंगावलोकन करते हैं तो प्रतीत होता है कि सन्तुलन बनाने में दिव्य शक्तियों ने देर तो की है पर ढील भी बरती है, पर उसकी पूरी तरह उपेक्षा नहीं की है । लोग अपना काम अपने हाथों कर लें, इस हेतु महामानव हर काल में उगते, उपजते और अपने समय की सधाई करने में लगे रहते हैं, पर जब यह सामान्यक्रम गड़बड़ा जाता है और देवत्व को निरस्त करके असुरता सत्ता-सम्पन्न होती है, तो फिर प्रकृति प्रतिक्रिया का, भगवान के भावावतरण का, कोई न कोई विकराल रूप सामने आ ही जाता है । यह दिव्य अवतरण व्यक्ति के रूप में नहीं जन-आक्रोश के रूप में अवतरित होता है । उसके नेतृत्व का श्रेय भले ही किसी व्यक्ति विशेष को मिल जाय, पर तथ्य यही है कि वह जन-आक्रोश होता है और असंख्य भावनाशील लोगों को उसमें सम्मिलित होकर ईश्वरीय प्रयोजन पूरा करना पड़ता है । लंका दहन में सहायक रीछ-वानर, गोवर्धन उठाने में ग्वाल-बाल, महाभारत में पाण्डवी टुकड़ी, बुद्ध के भिक्षुकगण, गाँधी के सत्याग्रही, लेनिन के विद्रोही सर्वहारा यही बताते हैं कि संसार के महान् परिवर्तन जन सहयोग से ही सम्भव हुए हैं, उसके जुटाने में जन-आक्रोश का उद्भव हुआ है । सूक्ष्म जगत में दिव्य अवतरण की बात को यदि अधिक अच्छी तरह समझना हो तो उसे औचित्य का पक्षधर-जन आक्रोश ही कह सकते हैं । यह जब उदय होता है, तब उसका स्तर प्रभातकालीन सूर्य जैसा होता है । अन्धकार कितना ही घना और कितना ही व्यापक क्यों न हो, उस उदीयमान आलोक के सामने किसी भी प्रकार ठहर नहीं सकता ।

वस्तुत: इन दिनों सूक्ष्म जगत में एक ऐसी प्रतिक्रिया चल रही है, जिसमें अनेकों अवांछनीय परम्पराओं के उन्मूलन का आधार मौजूद है । यह हवा अनेक क्षेत्रों को झकझोर रही है और परिवर्तन के लिए विकट छटपटाहट उत्पन्न कर रही है । दुर्भाग्य इतना ही है कि इस विस्फोट को सही मार्ग-दर्शन नहीं मिल रहा है । युग परिवर्तन की मूल शक्ति समय की पुकार में सन्निहित रहती है । जन-आक्रोश ज्वालामुखी बनकर फूटता है । युग सृजेता उसे ध्वंसात्मक रूप धारण करने से रोक कर सृजनात्मक प्रयोजनों में लगाते हैं । जब-जब ऐसा बन पड़ा है, सत्परिणाम सामने आये हैं अन्यथा जन-मानस की आकांक्षा अभीष्ट परिवर्तन सम्भव न होना देख कर ऐसी तोड़-फोड़ अपनाती है, जिसमें उलटे और भी अधिक विनाश उत्पन्न करने वाली अराजकता के दुखदायी दृश्य उपस्थित होते हैं ।

मौसम विशेषज्ञ, अपने विशिष्ट उपकरणों से जान लेते हैं कि अब वर्षा, आँधी, तूफान जैसी क्या नई स्थिति आने वाली है । प्रभातकाल होने से पहले कुक्कुट तथा दूसरे पक्षी जान जाते हैं और उसकी सूचना दूसरों को दे देते हैं । किसान लोग कई शकुन देखकर उस वर्ष फसल कैसी होगी, इसका अनुमान लगाते हैं । परिस्थितियों को देखकर सम्भावनाओं का अनुमान दूरदर्शी लोग सहज ही लगा लेते हैं । सूक्ष्म जगत में क्या हलचलें चल रही हैं, इसे जो देख समझ सकते हैं, ऐसे अध्यात्मवेत्ता और भी कई तरह की महत्त्वपूर्ण भविष्यवाणियाँ करते हैं और वे प्रायः सही ही निकलती हैं । इन दिनों विश्व की सबसे बड़ी समस्या, आधी जनता की पराधीनता निरस्त करने की आवश्यकता, नारी जागरण के रूप में अपना समाधान माँगने के लिए सीना तानकर सामने आ खड़ी हुई है । अब ऐसी स्थिति नहीं है कि फिर कभी के लिए उसे टाला जा सके ।

प्रश्न मनुष्य जाति के जीवन-मरण का है । प्रभातकालीन जागरण अब सर्वत्र अपनी हलचलें सुविस्तृत कर रहा है । जाग्रत आत्मा अपना अधिकार माँगती है । नारी की अन्तःचेतना ने अब मूर्छना की स्थिति को पीछे छोड़ दिया है । वह मनुष्य से कम स्तर का जीवनयापन करने के लिए तैयार नहीं । समय का समर्थन उसके साथ है । ऐसी दशा में न तो अस्वीकृति से काम चलेगा और न दमन को सफलता मिलेगी । न्याय की पुकार जब प्रबल हुई है तब-तब उसे मान्यता मिलकर ही रही है । इन दिनों भी युग अपने समय की सबसे बड़ी समस्या का हल माँगने के लिए अड़ ही गया है । नारी को उसका मानवोचित् स्थान एवं अधिकार देना ही पड़ेगा । दूसरे शब्दों में उसे यों भी कह सकते हैं कि न्याय की पुकार को अब तक मान्यता मिलने ही वाली है । नारी के पराधीनता पाश कटने ही वाले हैं ।

राष्ट्र संघ के अनुरोध पर सन् १९७५ को महिला वर्ष के रूप में मनाया गया, यह एक शुभ चिह्न था, जिससे मानवीय परिवर्तनों और सम्भावनाओं का पूर्वाभास मिलता है । यों सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं के ढकोसलों से इतने बड़े महान् कार्य में आज की स्थिति में कुछ बड़े परिवर्तन की आशा नहीं है । लोकश्रद्धा वे खो चुके हैं, इसलिए लोकमानस में गहराई तक जमी प्रतिगामिता को उखाड़ फेंकना और उसके स्थान पर नये आदर्शवादी मूल्यों की स्थापना करना उनके बस की बात नहीं है । फिर भी उनका इस क्षेत्र में उत्साह प्रदर्शन करना, रुचि लेना भी कम महत्त्व का नहीं है । इससे पता चलता है कि जब इधर भी इतनी अभिरुचि है तो उधर कितनी प्रखर हलचल की भूमिका बन रही है ।

व्यापक क्षेत्र को प्रभावित करने वाली नारी पुनरुत्थान जैसी बड़ी समस्याएँ प्रबुद्ध और सशक्त लोकशक्ति द्वारा ही

समान भागीदारी का निर्वाह करते हुए प्रगतिशील नागरिकों की पीढ़ी का निर्माण कर सकते हैं ।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष और उसकी पृष्ठभूमि

सन् १९७४ का वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में संसारभर में मनाया गया । उस वर्ष राष्ट्र संघ ने सभी देशों की सरकारों से तथा समाजसेवी संस्थाओं ने अनुरोध किया कि वे महिला जागरण के सम्बन्ध में कुछ अधिक सोचें और कुछ अधिक करें । इसका कुछ तो प्रभाव हुआ ही है और थोड़ी हलचलें भी जहाँ-तहाँ दिखाई पड़ रही हैं । यह अच्छा चिह्न है और यह समझने के लिए एक प्रमाण है कि हवा का रुख किधर बह रहा है ।

संसारभर के देशों की सरकारें उसके बाद से अपेक्षाकृत नारी समस्या पर अधिक ध्यान दे रही हैं । उनके मार्ग की अड़चनें हटाने और सुविधाएँ बढ़ाने के लिए न कुछ किया जा रहा है । सामाजिक संस्थाएँ भी इस दिशा में कुछ न कुछ सोचने और करने के लिए पहले की अपेक्षा अधिक उत्सुकता एवं सक्रियता प्रकट कर रही हैं । पत्र-पत्रिकाओं में नारी उत्कर्ष पर अपेक्षाकृत अधिक लेख छप रहे हैं । सभा-सम्मेलनों, प्रस्तावों, प्रदर्शनों की भी धूम है । यह अच्छे चिह्न हैं । ठोस हों या पोले प्रयास आखिर कुछ तो परिणाम प्रस्तुत करते ही हैं । जहाँ नारी संगठनों का अस्तित्व था, वहाँ भी मूर्छना जगी है और कागजी खोखा खड़ा न रखकर कुछ रचनात्मक कदम बढ़ाने का उत्साह जगा है । कई जगह नये संगठन, कई जगह नये रचनात्मक कार्य आरम्भ हुए हैं । विचारशील स्त्रियों की एक बड़ी संख्या यह सोचने लगी है कि उनके समाज का पिछड़ापन दूर करने के लिए अब कुछ बड़े प्रयास होने चाहिए और स्थिति में तेजी से सुधार होना चाहिए । पुरुषों में से अनेकों दूरदर्शी लोग यह सोचने लगे हैं कि नारी का पिछड़ापन मानव समाज को प्रभावित करने वाली सबसे बड़ी समस्या है, उसे ऐसे ही उपेक्षित अनसुलझी स्थिति में पड़े रहने देना चाहिए । पिछले समय में नारी समस्या पर चर्चाएँ तो होती थीं पर उसे घरेलू स्तर की मानकर ऐसे ही हलकी बात माना जाता था, पर अब लोकचिन्तन ने नई करवट ली है और उस उपेक्षित समस्या को प्राथमिकता देने के लिए एक नई स्फुरणा उत्पन्न हुई है । इस सबका समन्वय सन् ७५ के महिला वर्ष के रूप में मनाये जाने के रूप में पर्दे के पीछे से झाँकता हुआ देखा जा सकता है । उसने कितनी ही अभिनव हलचलों का सृजन किया है ।

आशा की जानी चाहिए कि यह उभरता हुआ, लोकमानस अपना दूरगामी प्रभाव उत्पन्न करेगा । यों समय-समय पर कई आन्दोलन खड़े होते हैं और अपने संयोजकों के प्रभाव तथा उत्साह के अनुरूप उठते-बढ़ते तथा समाप्त हो जाते हैं । उन्हीं में से एक नारी अभियान को नहीं माना जाना चाहिए । इसे राष्ट्र संघ को, सरकारों या संस्थाओं की सामयिक उमंग नहीं माना जाना चाहिए और यह नहीं सोचना चाहिए कि यह बरसाती बादल कुछ घड़ी गर्जन-तर्जन करके ठंडा पड़ जायेगा । यदि यह कुछ व्यक्तियों का, संगठनों का प्रयास भर होता तो भी वैसी आशंका की जा सकती थी, पर यथार्थता कुछ और ही है । कालचक्र गतिशील हो रहा है और उसने युग बदल देने जैसी करवट ली है । सूक्ष्म जगत में ये सम्भावना बन चली है जो अपने प्रचण्ड प्रवाह से कितने ही महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रस्तुत करेगी । नारी का पुनरुत्थान उन्हीं में से एक सुनिश्चित तथ्य है ।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष का, जटिल महिला समस्या के समाधान में कितना योगदान मिला, इसका पर्यवेक्षण यदि, क्या-क्या छपा, क्या-क्या कहा सुना गया, इस आधार पर निकालना हो तो कुछ सन्तोष की साँसें ली जा सकती हैं, पर यदि यह देखना हो कि इनके पीछे समय को पलट देने और प्रवाह को बदल देने जितनी शक्ति है या नहीं, तो फिर निराश ही होना पड़ेगा ।

इतने पर भी प्रकाश की एक ऐसी किरण विद्यमान है, जिसकी क्षीण आलोक में उज्ज्वल भविष्य की झाँकी विश्वासपूर्वक की जा सकती है । जिनको सूक्ष्म जगत और उसकी सत्ता पर विश्वास है, वे जानते हैं कि क्रिया की प्रतिक्रिया का अकाट्य प्रकृति नियम अवांछनीयताओं को उलट देने का सरंजाम अनादि काल से जुटाता रहा है । विश्व का सन्तुलन बनाये रहने के लिए ऐसे अन्धड़ तूफान खड़े होते रहे हैं, जिन्होंने निराशा और आतंक की मेघ-माला को छिन्न-विछिन्न करके समय-समय पर घुटन को दूर किया है । मनुष्य की समष्टि अन्तरात्मा जिसे विश्वात्मा या परमात्मा कह सकते हैं, विकृतियों के निराकरण के लिए समर्थ प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करती रही हैं और अनन्त काल तक उसका, यह क्रम चलता ही रहेगा । शरीर में विषाणुओं का, विजातीय द्रव्य का जब अवांछनीय जमघट एकत्रित हो जाता है तो प्रकृति कोई तीव्र रोग संवेग खड़ा करती है । ज्वर, पीड़ा, सूजन आदि के रूप में कष्ट तो होता है, पर बीमारी को उखाड़ने की दृष्टि से यह आवश्यक होता है । इसलिए शरीर शोधन की यह प्रकृति प्रक्रिया स्वास्थ्य संरक्षण का प्रयोजन पूरा करती रहती है । चिकित्सा के मनुष्यकृत सारे उपचार एक ओर और प्रकृति की उपर्युक्त व्यवस्था एक ओर रख कर तराजू पर तौली जाय तो पलड़ा प्रकृति परम्परा का ही भारी बैठेगा ।

शरीर स्वास्थ्य के सन्तुलन की तरह समाज स्वास्थ्य में विकृत विषाणुओं की, भ्रष्ट मान्यताओं और गतिविधिओं की भरमार हो जाती है तो अनिवार्य रूप से उसकी सुधार प्रक्रिया सामने आती है । इस परिवर्तन प्रकरण को मोटे तौर से भगवान् का अवतरण कहा जाता है । अधर्म का उन्मूलन और धर्म की संस्थापना करने के लिए भगवान् प्रतिज्ञाबद्ध हैं । साधुता का परित्राण और दुष्कृतों का

विनाश करना, सृष्टि के असन्तुलन को सहन न करना उनका स्वभाव है । ठीक है मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, पर यह स्वतन्त्रता औचित्य के साथ जुड़ी रहनी चाहिए । अनौचित्य सर्वत्र असह्य माना गया है और सदा सर्वदा उसकी प्रतिक्रिया हुई है । यदि ऐसा न होता तो समय-समय पर प्रकट होने वाले दुर्दान्त असुरों ने अब तक कबका इस संसार को अपने पेट में निगल लिया होता अथवा उसे कुचल-मसल कर नष्ट कर दिया होता । संसार के इतिहास पर आरम्भ से लेकर अद्यावधि परिस्थितियों का विहंगावलोकन करते हैं तो प्रतीत होता है कि सन्तुलन बनाने में दिव्य शक्तियों ने देर तो की है पर ढील भी बरती है, पर उसकी पूरी तरह उपेक्षा नहीं की है । लोग अपना काम अपने हाथों कर लें, इस हेतु महामानव हर काल में उगते, उपजते और अपने समय की सधाई करने में लगे रहते हैं, पर जब यह सामान्यक्रम गड़बड़ा जाता है और देवत्व को निरस्त करके असुरता सत्ता-सम्पन्न होती है, तो फिर प्रकृति प्रतिक्रिया का, भगवान के भावावतरण का, कोई न कोई विकराल रूप सामने आ ही जाता है । यह दिव्य अवतरण व्यक्ति के रूप में नहीं जन-आक्रोश के रूप में अवतरित होता है । उसके नेतृत्व का श्रेय भले ही किसी व्यक्ति विशेष को मिल जाय, पर तथ्य यही है कि यह जन-आक्रोश होता है और असंख्य भावनाशील लोगों को उसमें सम्मिलित होकर ईश्वरीय प्रयोजन पूरा करना पड़ता है । लंका दहन में सहायक रीछ-वानर, गोवर्धन उठाने में ग्वाल-बाल, महाभारत में पाण्डवी टुकड़ी, बुद्ध के भिक्षुकगण, गाँधी के सत्याग्रही, लेनिन के विद्रोही सर्वहारा यही बताते हैं कि संसार के महान् परिवर्तन जन सहयोग से ही सम्भव हुए हैं, उसके जुटाने में जन-आक्रोश का उद्भव हुआ है । सूक्ष्म जगत में दिव्य अवतरण की बात को यदि अधिक अच्छी तरह समझना हो तो उसे औचित्य का पक्षधर-जन आक्रोश ही कह सकते हैं । यह जब उदय होता है, तब उसका स्तर प्रभातकालीन सूर्य जैसा होता है । अन्धकार कितना ही घना और कितना ही व्यापक क्यों न हो, उस उदीयमान आलोक के सामने किसी भी प्रकार ठहर नहीं सकता ।

वस्तुत: इन दिनों सूक्ष्म जगत में एक ऐसी प्रतिक्रिया चल रही है, जिसमें अनेकों अवांछनीय परम्पराओं के उन्मूलन का आधार मौजूद है । यह हवा अनेक क्षेत्रों को झकझोर रही है और परिवर्तन के लिए विकट छटपटाहट उत्पन्न कर रही है । दुर्भाग्य इतना ही है कि इस विस्फोट को सही मार्ग-दर्शन नहीं मिल रहा है । युग परिवर्तन की मूल शक्ति समय की पुकार में सन्निहित रहती है । जन-आक्रोश ज्वालामुखी बनकर फूटता है । युग सृजेता उसे ध्वंसात्मक रूप धारण करने से रोक कर सृजनात्मक प्रयोजनों में लगाते हैं । जब-जब ऐसा बन पड़ा है, सत्परिणाम सामने आये हैं अन्यथा जन-मानस की आकांक्षा अभीष्ट परिवर्तन सम्भव न होना देख कर ऐसी तोड़-फोड़ अपनाती है, जिसमें उलटे और भी अधिक विनाश उत्पन्न करने वाली अराजकता के दुखदायी दृश्य उपस्थित होते हैं ।

मौसम विशेषज्ञ, अपने विशिष्ट उपकरणों से जान लेते हैं कि अब वर्षा, आँधी, तूफान जैसी क्या नई स्थिति आने वाली है । प्रभातकाल होने से पहले कुक्कुट तथा दूसरे पक्षी जान जाते हैं और उसकी सूचना दूसरों को दे देते हैं । किसान लोग कई शकुन देखकर उस वर्ष फसल कैसी होगी, इसका अनुमान लगाते हैं । परिस्थितियों को देखकर सम्भावनाओं का अनुमान दूरदर्शी लोग सहज ही लगा लेते हैं । सूक्ष्म जगत में क्या हलचलें चल रही हैं, इसे जो देख समझ सकते हैं, ऐसे अध्यात्मवेत्ता और भी कई तरह की महत्त्वपूर्ण भविष्यवाणियाँ करते हैं और वे प्राय: सही ही निकलती हैं । इन दिनों विश्व की सबसे बड़ी समस्या, आधी जनता की पराधीनता निरस्त करने की आवश्यकता, नारी जागरण के रूप में अपना समाधान माँगने के लिए सीना तानकर सामने आ खड़ी हुई है । अब ऐसी स्थिति नहीं है कि फिर कभी के लिए उसे टाला जा सके ।

प्रश्न मनुष्य जाति के जीवन-मरण का है । प्रभातकालीन जागरण अब सर्वत्र अपनी हलचलें सुविस्तृत कर रहा है । जाग्रत आत्मा अपना अधिकार माँगती है । नारी की अन्त:चेतना ने अब मूर्छना की स्थिति को पीछे छोड़ दिया है । वह मनुष्य से कम स्तर का जीवनयापन करने के लिए तैयार नहीं । समय का समर्थन उसके साथ है । ऐसी दशा में न तो अस्वीकृति से काम चलेगा और न दमन को सफलता मिलेगा । न्याय की पुकार जब प्रबल हुई है तब-तब उसे मान्यता मिलकर ही रही है । इन दिनों भी युग अपने समय की सबसे बड़ी समस्या का हल माँगने के लिए अड़ ही गया है । नारी को उसका मानवोचित स्थान एवं अधिकार देना ही पड़ेगा । दूसरे शब्दों में उसे यों भी कह सकते हैं कि न्याय की पुकार को अब तक मान्यता मिलने ही वाली है । नारी के पराधीनता पाश कटने ही वाले हैं ।

राष्ट्र संघ के अनुरोध पर सन् १९७५ को महिला वर्ष के रूप में मनाया गया, यह एक शुभ चिह्न था, जिससे मानवीय परिवर्तनों और सम्भावनाओं का पूर्वाभास मिलता है । यों सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं के ढकोसलों से इतने बड़े महान् कार्य में आज की स्थिति में कुछ बड़े परिवर्तन की आशा नहीं है । लोकश्रद्धा वे खो चुके हैं, ईसलिए लोकमानस में गहराई तक जमीं प्रतिगामिता को उखाड़ फेंकना और उसके स्थान पर नये आदर्शवादी मूल्यों की स्थापना करना उनके बस की बात नहीं है । फिर भी उनका इस क्षेत्र में उत्साह प्रदर्शन करना, रुचि लेना भी कम महत्त्व का नहीं है । इससे पता चलता है कि जब इधर भी इतनी अभिरुचि है तो उधर कितनी प्रखर हलचल की भूमिका बन रही है ।

व्यापक क्षेत्र को प्रभावित करने वाली नारी पुनरुत्थान जैसी बड़ी समस्याएँ प्रबुद्ध और सशक्त लोकशक्ति द्वारा ही

हल होती हैं । उसके लिए प्रचण्ड लोकचेतना को सुगठित एवं सुनियोजित करना पड़ता है । वह भी हो ही रहा है । महाकाल उसकी पृष्ठभूमि भी बना रहा है । फोड़ा पक गया, अब वह फूटने ही वाला है । मनुष्य द्वारा मनुष्य के उत्पीड़न का एक और बड़ा दुर्ग अब विस्मार होने ही वाला है ।

अब महिलाओं की बारी है

यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा है कि अदृश्य जगत की दिव्य प्रेरणा युग सृजन के निमित्त प्रतिभावान् अग्रदूतों को प्रथम चरण में नारी रूप में प्रेरित प्रस्तुत, कार्यरत करेगी । प्रभात से पूर्व ब्रह्ममुहूर्त उषाकाल आता है । नवयुग के आगमन का प्रत्यक्ष प्रमाण इसी अरुणोदय को माना जा सकता है कि देव-मानवों में से अनेकों ने लिप्सा-लालसा से मुँह मोड़कर लोक-मानस के अभिनव परिष्कार में अपने आप को लगा दिया । सत्प्रवृत्तियों को अपने बलबूते आगे खींच ले जाने का निश्चय कर लिया । इसी प्रकार का प्रयत्न बीज रूप में गल कर नव सृजन करेगा, जिसकी छाया में स्वर्गोपम वातावरण का निर्माण हो सके ।

इक्कीसवीं सदी ऐसे ही पुरोहितों, लोक-सेवियों की गरिमा से भरी-पूरी होगी । राम के रीछ-वानर, कृष्ण के ग्वाल-बाल, गाँधी के सत्याग्रही, बुद्ध के परिव्राजक समय की माँग को सुनकर आत्म-समर्पण के लिए आगे आये थे । आज उसी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति होने जा रही है । पचास करोड़ मनुष्यतनुधारियों को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने के लिए पाँच लाख युग शिल्पियों की आवश्यकता पड़ेगी । एक हजार के पीछे एक सृजनकर्त्ता तो होना ही चाहिए । समझा जाना चाहिए कि महाकाल की चुनौती ऐसे भावनाशीलों को इसी जन-समुदाय में से ढूँढ निकालेगी जो इन दिनों कूड़े-कचरे के रूप में अस्त-व्यस्त बिखरा दिखता है । कीचड़ में कमल पैदा होते हैं और सीपों मे मोती । साधारण परिस्थितियों में जन्मे लोगों में से ही असाधारण मूल्य वाले महामानव उपज पड़ें तो इसे आश्चर्य नहीं समझा जाना चाहिए ।

सृष्टि में आधे नर हैं और आधी मादा । मनुष्य को भी दो भागों में विभक्त किया जाएगा । पिछले वर्षों में नारी की स्थिति अधिक दयनीय रही है । उसे ऊँचा उठाने के लिए पुरुष पुरोहितों की ही नहीं नारी साध्वियों की भी आवश्यकता पड़ेगी । सच तो यह है कि नारी वर्ग में अधिक पिछड़ापन होने के कारण उस वर्ग में से अपने क्षेत्र को सम्हालने के लिए और भी अधिक संख्या में लोक-सेविकाएँ चाहिए ।

नर की तुलना में नारी अपेक्षाकृत अधिक भावनाशील और सेवाभावी एवं उदारचेता भी होती हैं । उनमें परमार्थ और सेवा-साधना के लिए रुचि न हो ऐसी बात नहीं है । कठिनाई एक ही है कि सदियों से जिस वातावरण में उसे रहना पड़ा है, अभी भी उन पर जितना प्रतिबन्ध है, उसके देखते हुए वे सेवा क्षेत्र में उतरने में झिझकती हैं और संकोच से दबती हैं । उस भारी पत्थर को उनके मन पर से उठाया जा सके । आवश्यक प्रोत्साहन और सहयोग मिल सके तो इस माहौल के बनते देर न लगेगी कि नारी लोक-सेवियों का एक बड़ा दल कार्य-क्षेत्र में उतरा और उसने समय की पुकार को पूरा कर दिखाने के लिए कुछ ऐसा कर दिखाया जिसकी सामान्यतः आशा भी नहीं की जाती थी ।

नारी श्रद्धा की प्रत्यक्ष प्रतिमा है । करुणा, उदारता, सेवा, संवेदना, त्याग, संयम, सहिष्णुता, क्षमा जैसे उच्चस्तरीय सद्गुण उसमें स्रष्टा ने कूट-कूट कर भरे हैं । प्रस्तुत जनमानस में इन्हीं का अभाव है । पुरुष में बलिष्ठता और कुटिलता ही बढ़ी-चढ़ी पाई जाती है अन्यथा वह विशिष्ट सद्गुणों की दृष्टि से कहीं पीछे है । अभावग्रस्तों की सहायता वही कर सकता है जिनके पास कि देने को कुछ है । उन विभूतियों की दिव्य सम्पदा नारी को ही अधिक मात्रा में उपलब्ध होती है । जिसके अभाव में समूचा संसार त्राहि-त्राहि करता रहता है । शक्ति, भक्ति, शान्ति की देवी को यदि प्रतिभा, क्षमता एवं कुशलता से सुसज्जित किया जा सके तो वह सर्वजनीन उत्कर्ष की बहुमुखी आवश्यकता को पूरी कर सकती है । स्रष्टा की इच्छा है कि नारी आगे आये । उसकी वरिष्ठता उसे फिर से उपलब्ध हो । अपने पराक्रम का प्रमाण दे और प्रत्यक्ष कर दिखाये कि उसने संव्याप्त पिछड़ेपन को किस प्रकार उखाड़ा और उसके स्थान पर किस प्रकार प्रगति का उद्यान उगाया ।

नर और नारी के बीच प्रणय निवेदन चलता रहता है । एक-दूसरे को रिझाने और बन्धनों में जकड़ने का कुचक्र चलता रहता है, पर यह सद्बुद्धि नहीं उपजती कि जिसे सहचरी, प्रेमपात्री कहा जाता है उसकी प्रतिभा को उभारा जाय और वैसा कुछ करके दिखाया जाय, जिस की आवश्यकता समूचे मानव समाज को-समूचे संसार को इन दिनों अत्यधिक आवश्कयता समूचे मा… धरातल को है ।

नारी की प्रतिभाओं को कुण्ठित करके, कैदी की कोठरी में बन्द कर देने का एक ही खुला रास्ता है । उसके ऊपर बच्चों की जिम्मेदारी लाद दी जाय । इस से लदने के उपरान्त वह केवल धात्री बन जाती … रसोईदारिन, चौकीदारिन, सफाई वाली दासी के … उसे समूचा जीवन गुजारना पड़ता है । प्रजनन … यौनाचार में उसकी क्षमता निरन्तर क्षीण होती जाती … शरीर के साथ मन भी जीर्ण-शीर्ण हो जाता है । ऐ… में वह न प्रतिभा विकसित करने की स्थिति में र… और न लोकसेवा के लिए घर से बाहर निकलने … कोई गुंजाइश रहती है । जन्म कैदी से अधिक उस… कोई स्थिति नहीं रहती ।

यह स्थिति अगले दिनों निश्चित रूप से बद… है । लोकसेवियों की तरह लोकसेविकायें भी क… उतरेंगी । सुविधा की दृष्टि से यदि वे सहकारी जी… चाहें तो वैसी व्यवस्था भी बना सकते हैं । विवा… सामान्यजनों में यौनाचार की छूट और आये…

प्रजनन ही लिया जाता है । लोकसेवा के लिए समर्पित नर-नारियों को अपना आदर्श दूसरे ढंग का अपनाना पड़ेगा । वे अपना सहचरत्व आरम्भ करते हुए यह व्रत लें कि सन्तानोत्पादन जैसे व्यवधान अपने पारमार्थिक जीवन में आड़े न आने देंगे । इस जंजाल में फँस जाने पर नारी को घर सम्भालना पड़ता है और नर को उस के लिए सरंजाम जुटाना प्रधान लक्ष्य रह जाता है । फिर लोकसेवा एक मनोरंजन करने भर के लिए नगण्य मात्रा में बन पड़ती है, जबकि आवश्यकता इस बात की है कि पूरा मन, समय और श्रम उसी लक्ष्य की पूर्ति में लगे, जो पुरोहित के लिए आरम्भ से ही निर्धारित है । वंश वृद्धि में हजार पीछे ९९९ व्यक्ति जुटे हुए हैं । लोकसेवी वर्ग यदि उससे बचा रहे तो सृष्टिक्रम में कुछ व्यतिरेक नहीं पड़ता । फिर बच्चे ही पालने हों तो पिछड़े वर्ग के अगणित बालक सुयोग्य बनाने के लिए जा सकते हैं । वे हजारों की संख्या में मिल सकते हैं । पर सच्चाई यह है कि विश्व जनसंख्या की बेतहाशा वृद्धि को देखते हुए विचारशील वर्ग को सन्तानोत्पादन की कतई आवश्यकता नहीं ।

पुरुष साधु अभी भी बड़ी संख्या में मौजूद हैं, पर नारी ने इस क्षेत्र में प्रवेश अभी नहीं किया है । अब उनकी बारी है । एकाकी या सहचर के साथ नवसृजन में जुट सकती है । इस महान मिशन को समर्पित लोकसेवी महिलाएँ सन्तानोत्पादन के फेर में न पड़ें ।

समय का प्रभाव था जब नारी ने सजधज, सौन्दर्य, शृंगार के साथ अपने को जोड़ा । यह उसकी प्रकृति नहीं भड़काई गयी प्रवृत्ति थी । रूपसी, रमणी, कामिनी के रूप में उसे अपनाया और दुहा गया । एक समय ऐसा भी आया जब उसे पशुओं की तरह खरीदा-बेचा गया । दान, उपहार में हस्तांतरित किया गया । उसे अपनी इच्छा व्यक्त करने का अधिकार न था । इस हाथ से उस हाथ में घसीटा-समेटा जाता रहा ।

वह समय चला गया । नारी अपने मानवीय अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रही है और सफल हो रही है । अब समय आ गया कि उसे पुरुष की अर्धाङ्गिनी नहीं सृजन एवं उद्धारकर्त्री के रूप में आगे आना होगा । वह अपनी श्रेष्ठता, वरिष्ठता और गरिमा प्रकट करेगी । समय को बदलेगी और उत्कर्ष की महती भूमिका सम्पन्न करेगी । उसे अपनी वरिष्ठता, स्वतंत्रता और प्रतिभा को लोक-कल्याण के निमित्त लगाने से कोई रोक नहीं सकेगा ।

नारी अभ्युदय इक्कीसवीं सदी की अभूतपूर्व घटना

कभी नर और नारी दोनों एक रुपये के दो पहलू, एक गाड़ी के दो पहिए मिलकर रहते थे । उनका लक्ष्य एक-दूसरे को अधिक योग्य बनाते हुए सर्वतोमुखी प्रगति में परिपूर्ण उत्साह प्रदर्शित करना भर रहता था । उन दिनों सामाजिक प्रगति के सभी लक्षण सर्वत्र दृष्टिगोचर होते थे । सतयुगी वातावरण का यह एक बड़ा पहलू था । आदर्शवादी सद्भावनाओं से ओत-प्रोत अभिभावकों की संतानें भी सद्गुणों की धनी होती थीं । प्रगति क्रम आगे-आगे ही बढ़ता जाता था ।

आज कामुक दृष्टि की अतिवादिता ने नारी को पराधीन स्तर को बनाकर बाधित स्थिति में रहने के लिए विवश किया है । उसे कामिनी, रमणी, भोग्या की नियति स्वीकारनी पड़ी है । चौकीदारिन, रसोईदारिन, धोबिन और पालतू नौकरों जितनी ही उसकी सीमा मर्यादा है । बच्चे पैदा करने की मशीनभर उसे समझा जाता है । नर ही उसका सर्वाधिकारी स्वामी है । इस दबाव ने उसे शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलम्बन आदि सभी क्षेत्रों में पिछड़ेपन से लाद दिया है । सामाजिक प्रगति के कार्यों में उसका योगदान नगण्य के बराबर है । नारी के रूप में आधी जन-संख्या को पक्षाघात, पीड़ित, अंग-अपंग स्थिति में रहने के लिए बाधित होना पड़ रहा है । उस असमर्थता का भार पुरुष को वहन करना पड़ रहा है । अनगढ़ परिवार के परिपालन के अतिरिक्त पुरुष से और कोई महत्त्वपूर्ण कार्य बन ही नहीं पड़ता । इसे समय का, समाज का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए ।

नवयुग अनेकानेक अवांछनीयताओं को उलट देने की शक्ति लेकर तूफानी गति से दौड़ता आ रहा है । इसका समुचित प्रभाव नारी को हेय दशा से उबारकर मानवीय अधिकारों का लाभ ले सकने जैसी स्थिति में पहुँचाना है । संसार के अनेक अनौचित्य पिछली शताब्दी ने उखाड़ दिये । उसमें से एक महादैत्य नारी शोषण के रूप में अभी भी बचा है । समझना चाहिए कि अब उसका अंत आ पहुँचा ।

इक्कीसवीं शताब्दी में नारी, मनुष्य को उपलब्ध सभी मौलिक अधिकारों से सुसज्जित होकर रहेगी । उसे पुरुष की क्रीत दासी बनकर बाधित नहीं रहना पड़ेगा । उसका स्वतंत्र अस्तित्व होगा और स्वतंत्र व्यक्तित्व । उसे बंदिनी की विवशता से छुटकारा प्राप्त करके स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास का अवसर मिलेगा ।

कामुक दृष्टि नारी के रूप-लावण्य को ही महत्त्व देती है और उसी आकर्षण से प्रभावित होकर चापलूसी करती है । छेड़खानी, अश्लील हरकतें भी इसी कामुक प्रदूषण की देन है । अगले दिनों आकर्षण का आधार रंग-रूप नहीं, वरन् नारी का व्यक्तित्व ही सब कुछ होगा । भारत की, अफ्रीका की, आदिवासी इलाकों की कुरूप समझी जाने वाली नारियों को भी किसी रूपवती की तुलना में हेय नहीं माना जाएगा और न इस कारण किसी युवती को विवाह बंधन में अड़चन का सामना करना पड़ेगा । जब कुरूप पुरुष विवाह के अयोग्य नहीं समझे जाते, तो नारी के लिये ही क्यों नाक-भौं सिकोड़ेगा ।

इन दिनों विवाह नारी के लिये एक वैतरणी बना हुआ है । अगले दिनों यह स्थिति न रहेगी ।

विकास क्रम न पितृ-गृह में रुकेगा और न ससुराल में। शिक्षा, स्वास्थ्य और कौशल के अभिवर्द्धन का जो समय है, उसे उसी प्रयोजन में लगाया जाएगा जिसमें लड़कों का लगता है। योग्यता समय और प्रयास के साथ बढ़ती है। जब नर और नारी दोनों को ही योग्य बनना है, तो उठती आयु में दोनों के व्यक्तित्व के सर्वतोमुखी अभ्युदय में समान रूप से यह प्रयोजन प्रधान होगा और विवाह गौण। अगले दिनों विवाह में जल्द-बाजी करने की आवश्यकता नहीं समझी जायेगी। जो विवाह करेंगे वे साथी की सहायता से पारस्परिक प्रगति का पथ प्रशस्त करने में अधिक उत्साहपूर्वक जुटेंगे।

पितृ-गृह और ससुराल पर की सुविधा तथा जिम्मेदारी में अन्तर न होगा। लड़की और लड़के के बीच अन्तर न किया जाएगा। दोनों को समान सम्मान मिलेगा। दोनों समान रूप से उपयोगी समझे जायेंगे। विवाह का तात्पर्य कामुकता की कानूनी छूट मिलना नहीं माना जाएगा, वरन् दोनों एक दूसरे के लिए अधिक उपयोगी-अधिक सहायक बनने की प्रतिस्पर्द्धा करेंगे।

व्यक्तिगत जीवन में शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वावलम्बन इन तीन की अनिवार्य आवश्यकता है। उठती किशोरावस्था से लेकर यौवन की परिधि में प्रवेश करने तक की अवधि इन्हीं तीनों के सम्पादन के निमित्त योग्य अवसर है। लड़की हो या लड़का दोनों में से किसी को भी इन लाभों से वंचित नहीं होने देना चाहिए। इस अवधि में शक्ति को बेतरह बर्बाद करने वाली एक ही भूल है, वह है–'प्रजनन'। अपने देश में बाल-विवाह का प्रचलन इस उद्देश्य की पूर्ति में भारी बाधा उत्पन्न करता है। इस विपत्ति के कंधे पर लदते ही लड़की का स्वास्थ्य और समय इसमें बुरी तरह क्षरण होता रहता है। लड़के भी बाप बनने के लिए अपने नये घर-गृहस्थी की, कमाने-धमाने की चिन्ता में मुड़ते हैं, फिर व्यक्तित्व को, प्रतिभा सम्पन्न बनाने की सभी सम्भावनाएँ लगभग समाप्त हो जाती हैं।

इस अड़चन को ध्यान में रखते हुए, प्रतिभा परिवर्द्धन में ही प्रमुखता देनी चाहिए। जल्दी विवाह न किये जायें। सरकारी बंधन को तोड़कर तो कदापि नहीं। १८ वर्ष की लड़की और २१ वर्ष के लड़के को इस निमित्त कानूनी छूट मिलती है, पर यह न्यूनतम है, अधिकतम नहीं। विवाह समय पर हुआ हो, तो भी प्रजनन के लिए जल्दबाजी नहीं की जानी चाहिए। पुरुषों की तरह स्त्री का समुचित विकास भी पच्चीस वर्ष के लगभग आयु में ही हो पाता है। यदि विवाह हो भी जाय, तो भी काम-क्रीड़ा से अधिकतम बचाव रखना चाहिए और प्रजनन के लिए न्यूनतम आयु पच्चीस वर्ष मानते हुए तदनुरूप अपनी कार्य पद्धति निर्धारित करनी चाहिए।

बच्चे उत्पन्न करने की गति किशोरावस्था में तीव्र रहती है। यौवन पकने पर वह गति घट जाती है। पच्चीस के बाद बच्चे अपेक्षाकृत कम तेजी से उत्पन्न होते हैं। इसलिए भी उठती आयु की बर्बादी इस भूल के कारण न हो, यह ध्यान रखने की बात है। सर्व-विदित है कि संतान का बढ़ना माता का स्वास्थ्य नष्ट करता है, पिता पर आर्थिक बोझ लदता है, परिवार की सुविधाओं में कटौती करता है। बालकों को उपयुक्त विकास की सुविधा नहीं मिलती और देश पर जनसंख्या विस्फोट का इतना भयंकर प्रभाव पड़ता है कि प्रगति की समस्त योजनाएँ एक कोने में धरी ही रह जाती हैं। संसार पर छाये अनेकानेक संकटों में प्रमुख समझा जाने वाला संकट बहुप्रजनन है। उसी एक ने समाज के सामने हजार कठिनाइयाँ उत्पन्न कर दी हैं। इसलिए इस संदर्भ में जिससे जितनी रोकथाम करते बन पड़े, उसे इस रोकथाम के लिए अपने प्रभाव क्षेत्र में पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए। बीसवीं सदी के आरम्भ में प्रायः डेढ़ अरब जनसंख्या थी। अब एक सदी में बढ़कर वह पाँच गुनी अर्थात् सात अरब के करीब जा पहुँचेगी। धरती कारखाने की उत्पादन क्षमता सीमित है। यदि आबादी का वर्तमान अभिवृद्धि क्रम जारी रहा, तो एक शताब्दी में ऐसा भयंकर गतिरोध उत्पन्न हो जाएगा कि खाने, पढ़ने, रहने आदि की सुविधाएँ समाप्त हो जायेंगी और घिचपिच बढ़ने से लोग बेमौत मरेंगे और इस सुन्दर दुनिया को नरक बना देंगे। हमें यह रोकना होगा। विवाह होने पर भी जल्दी बच्चे न हों, ऐसा लोकमानस बनाना होगा।

संसार का अधिकांश काम इन दिनों नर शक्ति के सहारे चल रहा है। नारी शक्ति का कम महत्त्व के कार्यों में उपयोग होता है। नारी अभ्युदय का आन्दोलन दोनों को समान स्तर का बना देगा। ऐसी दशा में अर्थ-व्यवस्था से लेकर परिवार निर्माण समापन व्यवस्थापक के अनेकानेक कार्य नारी के द्वारा सम्पन्न होने लगेंगे और सर्वतोमुखी प्रगति का स्तर दूना ऊँचा उठ जाएगा। समझदारी यही है कि बहुप्रजनन के संकट से नारी को बचाया जाय। सुयोग्य नारी जो भावी पीढ़ी जन्मेगी, वह निश्चित ही प्रतिभावान्, सुसंस्कारी होगी। उज्ज्वल भविष्य की संरचना नारी अभ्युदय पर ही निर्भर है।

इक्कीसवीं सदी—नारी शताब्दी

मनुष्य समाज के दो विभाग हैं–एक नर, दूसरा नारी। दोनों के सहयोग से ही वे सब क्रिया-कलाप चलते हैं, मनुष्य के उत्तरदायित्वों की परिधि में आते हैं। दोनों के बीच असहयोग या व्यवधान खड़ा हो जाय तो समझना चाहिए कि प्रगति तो दूर निर्वाह का साधारण क्रम भी ठीक तरह न चल सकेगा।

वंश परम्परा चलने और पीढ़ी दर पीढ़ी मनुष्य का अस्तित्व बनाये रखने में नारी का ९९ प्रतिशत योगदान है। नर तो विलास का बुखार उतारने और गृहस्थ की अर्थ-व्यवस्था सम्भालने भर का एक सीमित दायित्व सम्भालता है। नारी ही परिवार का सृजन, विकास एवं नियन्त्रण

करती है । नर को तो इस क्षेत्र का प्रहरी भर कहा जा सकता है । वह बिना नारी का समुचित सहयोग पाये न तो परिवार का सृजन कर सकता है और न निजी जीवन को सुव्यवस्थित रख सकता है ।

इक्कीसवीं सदी को महिला शताब्दी का नाम दिया गया है । कारण कि प्रकृति उनके पक्ष में, विशेषताओं की दृष्टि से वह पुरुष की तुलना में कहीं अधिक श्रेष्ठ है । साथ ही समय की माँग ध्वंस से मुड़कर सृजन की दिशा पकड़ रही है । उसमें भी नारी ही फिट बैठती है ।

प्रकृति नर को निरीह मानती है । उनके अधिक संख्या में तथा जल्दी मरने के तथ्य को समझती है । इसलिए भ्रूण रूप में लड़के ही अधिक आते हैं, पर वे ऐसे छुईमुई होते हैं कि गर्भपातों के पर्यवेक्षण में लड़के ही अधिक संख्या में होते हैं । लड़कियाँ कम । शिशु रोगों में लड़के ही अधिक ग्रस्त होते हैं और जल्दी मरते हैं । औसतन प्रकृति १४० लड़के और १०० लड़कियाँ विनिर्मित करती है, पर बारह वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते दोनों बराबर हो जाते हैं ।

दीर्घजीवन की दृष्टि से नारी का जीवन पुरुष की तुलना में ४ वर्ष अधिक होता है । बीमारी की गणना में पुरुषों की तुलना में स्त्री बीमारों की संख्या आधी होती है । पगलाने और सनकीपन में भी पुरुष ही आगे रहते हैं । स्त्री की सन्तोषी प्रवृत्ति, सहज मुस्कान और रोकर मन की व्यथा हलकी कर लेती है, जबकि पुरुष अहंकार में इठा फिरता है । उच्छृंखलता अधिक बरतता है । महत्त्वाकांक्षाएँ भी लदी रहती हैं । शत्रुता, प्रतिशोध और अनाचार में अड़ी रहने के कारण उनकी जीवनी-शक्ति अधिक तेजी से क्षय होती है और मस्तिष्कीय असन्तुलन का आये दिन शिकार बनता रहता है । यही सब कारण हैं जो उसकी मानसिक और शारीरिक स्थिति को गड़बड़ा देते हैं । उपार्जन की तुलना में जिसका खर्च ज्यादा होगा वह दिवालिया बनेगा ही । वासनाओं में वही अधिक रस लेता है और अपने आप को गलाता-घुलाता जाता है ।

नारी यद्यपि प्रजनन की व्यथा सहती और मासिक धर्म में भी बहुत कुछ गँवाती है । फिर भी कामुक उत्तेजनाओं के क्षेत्र में संयत होने के कारण उसका जीवन सत्व सुरक्षित रहता है । हाड़-माँस और कद की दृष्टि से वह भले ही हलकी पड़ती हो, लड़ने-झगड़ने से भी वह कतराती है । इस पर भी उसकी कल्पना और मेधा कहीं अधिक विकसित रहती है । यही कारण है कि वे स्कूलों परीक्षाओं में लड़कों की तुलना में अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होती हैं । अनुत्तीर्ण होने में लड़कों का ही अनुपात अधिक पाया गया है ।

सृजन प्रक्रिया के शोधकर्त्ताओं ने पाया है कि भाषा, ज्ञान, कृषि, पशुपालन जैसे कार्यों का आरम्भ पुरुष नहीं कर सका, उसने नारी के प्रयासों में सहायता भर दी । वस्त्र-निर्माण का कौशल उसी का है, अन्यथा आदिम काल में पुरुष पशुओं का चमड़ा ही कमर से बाँधे फिरता था । शिकार भर मार लाता था, पर उसे पकाने के लिए जिस अग्नि की आवश्यकता पड़ती है, उसे घर्षण क्रिया द्वारा उत्पन्न करने में नारी ही सफलता का श्रेय प्राप्त कर सकी ।

प्रकृति अनुशासन को पग-पग पर तोड़ने, आपस में लड़ने-झगड़ने और आखेट में आहत होने का दण्ड दुष्परिणाम भी उसी को अधिक भुगतना पड़ा । नारी इस प्रकार के जंजाल से बची रही । इसलिए शारीरिक रोग और अकाल मृत्यु ने उसे उतना नहीं सताया, जितना पुरुषों को । यह ऐतिहासिक अन्वेषण है । नेतृत्व विशेषज्ञों ने अपनी शोधों में ऐसे ही निष्कर्ष निकाले हैं जिनसे सिद्ध होता है कि औचित्य को अपनाने की प्रवृत्ति ने नारी को घाटे में नहीं रहने दिया ।

विदित इतिहास में जितने भी छोटे-बड़े युद्ध हुए हैं उनमें पुरुषों को ही अधिक मरना और घायल होना पड़ा है । महिलाओं को अनिश्चित एवं विपत्तिग्रस्त भले ही रहना पड़ा हो, पर उन्हें मोर्चे की लड़ाई में न तो जूझना पड़ा और न रक्तपात की नृशंसता में उतना कोई विशेष भाग रहा ।

इतने पर भी नारी अपनी स्वाभाविक वरिष्ठता की अधिकारिणी नहीं बन सकी । इसका एकमात्र कारण पुरुषों द्वारा उसे अनेक प्रकार प्रतिबन्धित करना एवं सताया दबाया जाना ही है । उसे ऐसी परिस्थितियों में रहना पड़ा जिसमें वे न अपनी प्रतिभा का विकास कर सकती थीं और न कौशल का प्रदर्शन । उसे कभी सती होने के लिए विवश किया गया तो कभी दहेज कम लाने के कारण मौत के घाट उतार दिया गया । बहुपत्नी प्रथा में भी यौवन ढलते ही उसे निचोड़े हुए नीबू के छिलके की तरह अपनी मौत मरने के लिए छोड़ दिया गया । चोर जैसी चौकीदारी उस पर की गई । खरीदी हुई दासी या पैर की जूती की तरह किसी प्रकार वह अपना अस्तित्व बनाये या बचाये रहने में समर्थ हुई । पिंजड़े जैसे घर और उस पर पर्दे का प्रतिबन्ध इस स्थिति में डाले रहा कि वे अपने अस्तित्व तथा अधिकारों तक के सम्बन्ध में कुछ समझ न सकीं । पालतू पशुओं की तरह मालिक के बताये हुए कामों में जुटे रहकर अपना निर्वाह भर करती रही । ऐसी बंदी जैसी परिस्थितियों में कोई भी व्यक्ति हार या टूट जाता है । खीज और घुटन के शिकंजे में कसे जाते रहने पर वह जर्जर एवं अक्षम बन सकता है ।

समय अब तेजी से बदल रहा है । विषमता एवं विपन्नता के विरुद्ध आवाज उठाने की हिम्मत सब ओर उभर रही है । मात्र अधिकार जताना ही कर्त्तव्य पालन करना भी मानवी चेतना को झकझोर रहा है । परिस्थितियों ने समाज को विवश कर दिया है कि वह नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण बदले और मनुष्य वर्ग का ही उपयोगी अंग माने । फलतः उनकी शिक्षा पर ध्यान दिया जा रहा है । साथ ही स्वावलम्बी और सुसंस्कृति, सुयोग्य, समुन्नत बनाने पर भी । जहाँ कहीं भी अवसर

मिला है, वे वर्षा की बूँद की तरह विकासोन्मुख हुई हैं और बसन्त की तरह फूलों से लदी हैं । उनकी स्वाभाविक प्रतिभा को देखकर सर्वसाधारण को आश्चर्यचकित रह जाना पड़ा है । प्रगतिशील देशों में उन्होंने वे काम सम्भाले हैं, जिन्हें पुरुष की ही बपौती समझा जाता था और जिन्हें कर गुजरने की पिछले दिनों नारी परम्परा रही भी नहीं ।

विज्ञान, कला, साहित्य, प्रशासन, शिक्षा, चिकित्सा आदि के जो भी काम उन्हें सौंपे गये उनमें वे पुरुषों की तुलना में अधिक ही सफल-सक्षम रहीं । मात्र उनकी भावुकता, स्नेह-सद्भावना की प्रकृति ही बाधक बनी, जिसका लाभ उठाकर पुरुषों ने उन्हें प्रेम के नाम पर वासना के कोल्हू में पेल देने का प्रयत्न किया । जो इस कुचक्र में फँसकर अपना भविष्य बिगाड़ बैठी उनके अगणित उदाहरण शेष नारी जाति को सावधान करने और खतरे की पूर्व सूचना देने में समर्थ हुए । फलतः आज की विकसित नारी इतनी दृढ़ता अपना चुकी है कि कोई भी चिड़ीमार, मछलीमार उन्हें सहज शिकार न बना सके । ऐसी प्रबुद्ध नारी पुरुषों के लिए शिकार नहीं रही । मात्र सहयोगिनी बनने के लिए उचित परीक्षक के उपरान्त सहमत हो सकी ।

नारी का शोषण, उत्पीड़न, पिछड़ापन सब क्षेत्रों में से तो हटा नहीं है, पर उसे अनेक क्षेत्रों में विकसित स्थिति में देखा जा रहा है और समझा जा रहा है कि उसे दबोचकर पुरुष ने पाया कम और गँवाया बहुत । अब उनींदी आँखें खुली हैं और खुमारी की अकड़ घटी है । नये परिवर्तित माहौल में नारी को शिक्षित, स्वावलम्बी और समुन्नत बनने का अवसर मिल रहा है । यह प्रवाह ऐसा है जो प्रगति की दिशा में द्रुतगति से बढ़ेगा । फलतः वह नये उत्साह और नये कौशल के साथ समय की सृजन आवश्यकता को पूरा करने में लगेगा । अपने स्नेह, सहयोग और वात्सल्य से नर में ऐसा परिवर्तन करेगी कि वह अनाचार बरतने में आज जैसा स्वेच्छाचारी न रह सके ।

समय की विकृतियाँ पुरुष द्वारा बरती जाने वाली दुष्टता की देन हैं । उसके हाथ में धन है, साधन है, आयुध हैं और ऐसे धूर्त हथकण्डे जिनके सहारे वह दूसरों को फँसाने के फेर में अपनी भी दुर्गति कराने वाले दल-दल में फँस सके । इतने पर भी यह स्पष्टतया समझा जाना चाहिए कि वह माता के रूप में, बहिन के रूप में, पुत्री के रूप में, पत्नी के रूप में पुरुष को नियन्त्रण में रख सकने में समर्थ है । इतना ही नहीं वह चण्डी के रूप में अपनी विकरालता भी प्रकट कर सकती है ।

इक्कीसवीं सदी सृजन की शताब्दी है । विनाश का उपक्रम इस बीसवीं सदी का अन्त होते-होते दम तोड़ चुका है । पुरुष ने कठोरता बरती और नृशंसता सीखी है । उसकी उपयोगिता मात्र युद्ध अपहरण, शोषण उत्साह भर में काम आ सकती थी । सो अगले दिनों ऐसा प्रवाह बहेगा, माहौल बनेगा जिसमें इस प्रकार की उद्दण्डता सहज ही निरर्थक हो जाएगी । आवश्यकता सृजन की पड़ेगी । उसमें पुरुष का अद्यावधि प्रयास मात्र छद्म बनकर ही अपना चकाचौंध चमकाता रहा है । अगले दिनों यह प्रपंच न चलेंगे, तब सद्भावना और सहकारिता की ही आवश्यकता रह जाएगी । यह प्रयोजन पूरा कर सकने में नारी शक्ति ही समर्थ हो सकेगी । अतएव समय की आवश्यकता उसी के द्वारा पूरी हो सकेगी ।

जनसंख्या विशेषज्ञों और भावी सम्भावना के पर्यवेक्षकों का कथन है कि अगले शताब्दी में पुरुष अल्पमत में होंगे और नारी बहुमत में । नारी को वश में रखने की कठोरता छोड़कर नर उस शक्ति के सम्मुख समर्पण करेगा जो हर दृष्टि से उसकी तुलना में वरिष्ठ है । नेतृत्व नारी का होगा और अनुशासन नर का । यह परिवर्तन युग परिवर्तन की ठोस और चिरस्थायी भूमिका निभा सकेगा ।

हमें भविष्य का ध्यान रखते हुए, समय को पहचानते हुए, नारी उत्थान के लिए अग्रसर होना चाहिए । इसी में हम सबकी भलाई है । यह सुनिश्चित है कि इक्कीसवीं शताब्दी महिलाओं की होगी । हरेक का यह दायित्व है, कि वह नारी शक्ति को आगे बढ़ाने में कोई कसर न उठा रखे ।

देवी निवेदिता-उसकी शताब्दी-और हम

कुमारी निवेदिता की जयन्ती हर वर्ष २८ अक्टूबर को मनायी जाती है । सन् १९६८ में उनकी जन्मशती बड़ी धूमधाम से मनायी गई । इस अवसर पर भारत सरकार ने उनके सम्मान में एक डाक टिकट भी जारी किया था । इस प्रकार एक विस्मृत आत्मा का दिव्य दर्शन भले ही छोटे टिकटों के रूप में सही, लाखों व्यक्तियों को मिला । विभिन्न संस्थाओं और संगठनों ने भी उस जयन्ती को समारोहपूर्वक मनाया था ।

युग निर्माण योजना के अन्तर्गत भी इस जन्मशती समारोह को प्रमुखता दी गई थी और हर शाखा-संगठन से यह अपील की गई थी कि वे भी इसे भाव-श्रद्धापूर्वक मनायें और इस मौके पर भगवान् से प्रार्थना करें कि इस प्रकार के अवतरणों की शृंखला अवरुद्ध न होवे । ऐसी दिव्य आत्माएँ सतत् रूप से अवतरित होती रहें और अन्धकार में भटकते हुए समाज को नया प्रकाश प्रदान करें ।

यहाँ किसी को यह असमंजस नहीं करना चाहिए कि एक विदेशी नारी के प्रति इतनी श्रद्धा क्यों कर उँड़ेली गई । सवाल स्वदेशी अथवा विदेशी का नहीं है । मुख्य बात उनके अन्तःकरण में उमड़ती उस करुणा की है, जिसको उन्होंने समाज सेवा के निमित्त उँड़ेल कर रख दिया । यदि कोई पारखी उस दिव्य अन्तराल को पढ़ सका होगा, तो

उसका मस्तक निश्चित रूप से उस सेवा की प्रतिमूर्ति के आगे नत हुए बिना न रहा होगा । ऐसी हर देवी अभिनन्दनीय और अभिवन्दनीय है, भले ही वह किसी स्थान या किसी देश की निवासी क्यों न हो । फिर वह विदेशी होते हुए भी भारत माता की सेवा के प्रति समर्पित थीं, इसलिए भी अधिक आदरणीय हैं ।

हम स्पष्ट देखते हैं कि संसार का भावी नेतृत्व नारी के हाथ में जा रहा है । पुरुष ने लम्बी अवधि से सत्ता अपने हाथ में रखी और अपनी बुद्धि को आगे लेकर चला । उसकी प्रकृति में जो कठोरता एवं अहंमन्यता का अंश है, उसे दबाया नहीं बढ़ाया गया । फलतः वह समाज की रचना और उसके विकास में भावनात्मक योगदान न दे सका, भले ही उसने नैतिक सुविधा-साधनों के बढ़ाने में अधिक प्रयत्न किया हो । कहने की आवश्यकता नहीं कि सुख-शांति का आधार सुविधा सामिग्री नहीं, भावना का उच्च-स्तर ही है । यदि आनन्द और उल्लास से भरा जीवनयापन अभीष्ट हो तो करुणा, ममता, स्नेह, सौजन्य, सेवा और सहानुभूति का ही प्राधान्य एवं बाहुल्य होना चाहिए । इस दृष्टि से पुरुष की उपलब्धियाँ नगण्य हैं । इसमें थोड़ा दोष उसके विवेक का और थोड़ा उसकी प्रकृति का है । कठोरता और अहंकार पर कठोरतापूर्वक नियन्त्रण करता और अन्तरंग के गहन-स्तर में किसी करुणा को जगाता तो सहृदय सन्तों-पुरुषों की तरह अपनी सर्व-व्यापी परम्परा प्रचलित कर सकता था, पर कुछ अपवादों को छोड़कर पुरुष वर्ग दूसरे ही मार्ग पर चलता रहा । उसके प्रयत्नों ने वहाँ अनेक उपलब्धियाँ प्रस्तुत कीं, जहाँ और बातें बढ़ाईं वहाँ क्रूरता को भी कम बढ़ावा नहीं दिया । माँसाहार से लेकर युद्धों तक, दुर्व्यवहार से लेकर दुष्टता तक हर दिशा में उसका आचरण स्पष्ट है ।

प्रकृति लम्बे परीक्षण के बाद अब इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि सत्ता और नेतृत्व नर के हाथ से छीनकर नारी के हाथ जाना चाहिए । अगले दिनों उसी के कन्धों पर संगीत, साहित्य-कला, परिवार, समाज, अर्थ-धर्म से लेकर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों को नियंत्रित रखने और आगे बढ़ाने का उत्तरदायित्व उसी के कन्धे पर आने वाला है । नारी की अन्तरात्मा में जो स्वाभाविक स्नेह, सौजन्य, उदारता और आत्म-भाव है, उस अमृत को थोड़ा-सा उभार देने पर सचमुच 'देवी' शब्द को पूरी तरह सार्थक कर सकती है । उसके हाथ से जो कुछ होगा उसमें करुणा, ममता, सेवा और सहानुभूति ही भरी होगी । इस सम्मिश्रण से संसार के हर क्रिया-कलाप को एक नई दिशा मिलेगी और दुष्टता का स्थान सौजन्य ग्रहण कर लेगा ।

हम कुमारी निवेदिता को दूसरों की तरह सामान्य सामाजिक कार्यकर्त्री नहीं मानते, वरन् बहुत ऊँची एक युग-प्रेरणा मानते हैं । जन्मीं वे आयरलैण्ड में, भारत से बहुत दूर थीं, पर वे वहाँ रह नहीं सकीं । सुविधाएँ उन्हें बहुत थीं । वे उच्च-स्तर की शिक्षा-शास्त्री थीं । जो प्रयोग वे कर रही थीं, उसके कारण वहाँ उनकी बहुत प्रतिष्ठा थी और आजीविका भी इतनी थी कि सुख-सुविधा की दृष्टि से सब कुछ उन्हें उपलब्ध था । ऐसी परिस्थितियों को छोड़कर आमतौर से कोई तप-त्याग के झंझट में नहीं पड़ता । कष्ट, अभाव, अपमान और उपहास का जीवन जीने के लिए प्रसन्नता से कौन साधन-सम्पन्न तैयार होता है ? पर वह देवी किसी अलग ही धातु की बनी थी । ईश्वर ने किसी विशेष प्रयोजन के लिए ही भेजा था ।

स्वामी विवेकानन्द के एक ही प्रवचन और एक ही दृष्टिपात से उसकी धारा बदल गई । जिधर उसका जीवन प्रवाह बह रहा था, उससे बिल्कुल उल्टी दिशा में बहने लगा । उसकी अन्तरात्मा में ऐसा ज्वार आया कि सुविधाओं को लात मारकर तपस्वी जीवन के लिए दुस्साहसियों की तरह कटिबद्ध हो गई । स्वामी विवेकानन्द या दूसरों के प्रवचन अनेक लोग सुनते थे, पर ऐसी तीव्र हलचलें औरों में कहाँ हुई ? निश्चय ही वह असाधारण आत्मा थी । असाधारण प्रयोजन के लिए ही आत्म-जागरण की घड़ी आई, वह तिल-मिलाकर उठ खड़ी हुई । सारा विलास-वैभव छूटा और एक ही धुन चढ़ी कि विश्व का भावी नेतृत्व करने के लिए जिस नारी को महान् उत्तरदायित्व ग्रहण करने हैं, उसे जगाया जाय और कुछ कर गुजरने के लिये कटिबद्ध किया जाय ।

जाग्रत आत्माएँ जानती हैं कि आध्यात्मिक प्रकाश का केन्द्र-बिन्दु भारत है । सूर्य सदा पूरब से निकलता है । संसार में विज्ञान, राजनीति, शिल्प आदि का प्रकाश कहीं से भी- किसी भी अन्य भूखण्ड से भी मिल सकता है, पर अध्यात्म का सुस्थिर प्रकाश सदा भारत में ही मिलता रहा है । धरती की धुरी, उत्तरी ध्रुव में है, उसी प्रकार संसार के अध्यात्म प्रकाश का केन्द्र-बिन्दु भारत है । भगवान् के अवतार यहीं होते रहे हैं । ज्ञान, विवेक, नीति और सदाचार का सार्वभौम शिक्षण यहीं के ऋषियों ने किया है । ईसा यहीं तक्षशिला से शिक्षा लेकर गये और सत्य, अहिंसा के भारतीय तत्व ज्ञान को फैलाते रहे । ईसाई धर्म आज अलग दीखे इससे क्या ? अलग तो बौद्ध, सिख, द्रविण आदि भी कहते हैं । कहने भर से सच्चाई थोड़े ही बदल जाती है ।

निवेदिता जानती थी कि भगवान् एक नये संसार की रचना करने जा रहे हैं । अब का युग सड़ी-गली विकृतियों का अवशेष मात्र रह गया है । यह बदला जाने वाला है । इसके स्थान पर नया नेतृत्व नारी ग्रहण करेगी और इसका शुभारम्भ भारत से होगा । यह तथ्य यों हर किसी के गले नहीं उतरता, कोई बिरला ही इस बात को स्वीकार करेगा, पर सामान्य और असामान्य लोगों की दृष्टि में भारी अन्तर होता है । दूर को, अदृश्य को, भावना को, सम्भावनाओं को जो देख-समझ सकते हों उन्हें ही तत्त्वदर्शी कहते हैं । निवेदिता की आत्मा इसी स्तर की थी । जैसे ही उसे अपने स्वरूप का, अपने कार्य प्रयोजन

का भान हुआ, वैसे ही वह भारत चल पड़ने के लिए आतुर हो उठीं ।

स्वामी विवेकानन्द एक युग पुरुष थे । वे सोते हुए संसार को जगाने आये थे । आँखों से दिखने वाले काम यों उनके भी बहुत नहीं हैं, पर प्राची में उदय होने वाले शंखचूड़ की तरह उन्होंने विश्व-व्यापी प्रकाश उत्पन्न किया । यह उनके अवतरण का उद्देश्य भी था । भारतीय स्वतन्त्रता के हीरो कोई भी गिने जाते रहें । रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, अरविन्द और रमण को पर्दे के पीछे बैठे हुए सूत्रधार ही कहा जाएगा । इन आत्माओं ने भारत ही नहीं समस्त संसार को नव-जागरण के उपयुक्त प्रकाश और बल प्रदान किया है । उन्होंने सोती निवेदिता को जगाया था । जाग तो गई, पर आवश्यक यह भी था कि उसकी निष्ठा को परखा जाय । सो स्वामी जी उसे बार-बार यही कहते रहे–घर रहो, नौकरी करो और जो थोड़ा-बहुत बन पड़े दूसरों की तरह तुम भी कुछ करती-धरती रहा करो ।

बहुत बार तो कइयों को क्षणिक भावावेश आ जाता है । किसी प्रभाव से वे बह निकलते हैं । जब आवेश उतरा तो फिर चुप हो बैठते हैं और निराशाजनक बुरा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । स्वामी जी नहीं चाहते थे कि लोक-मंगल के मार्ग में आने वाले कठिन तप-त्याग, आत्मोत्सर्ग और भौतिक महत्त्वाकांक्षाओं को पूरी तरह पालन किये बिना कोई व्यक्ति पूरी तरह सार्वजनिक क्षेत्र में उतरे । थोड़ा काम तो कोई भी किसी भी परिस्थिति में रहकर करता है, कर सकता है, पर आत्म-समर्पण तो बहुत बड़ी बात है । परखे हुए व्यक्तियों को ही इस मार्ग पर चलना चाहिए । इस दृष्टि से निवेदिता को घर रहकर ही कुछ काम करते रहने की बात उचित भी थी । उन्होंने बार-बार मना किया और कहा–"आज के रुग्ण भारत की मनोदशा विचित्र है, यहाँ युवती-नारी पर चरित्र का अकारण सन्देह करने का रिवाज है । इस रिवाज को वे शीघ्र ही बदलने वाले नहीं हैं । जो कदम तुम उठाना चाहती हो उसमें पग-पग पर यह कठिनाइयाँ भरी पड़ी हैं । फिर एक बड़ा कष्ट भी है कि तुम्हें भारत के संकीर्णतावादी लोग लांछित और तिरस्कृत करेंगे ।"

स्वामीजी परखने के लिए ऐसा कहते थे । जरूरत तो उन्हें भी ऐसी आत्माओं की बहुत थी । जिस दिन इंग्लैण्ड में नोबुल (निवेदिता का पूर्व नाम) ने अपनी शिक्षा संस्था दिखाई, उसमें उसकी प्रतिभा को देख-देखकर स्वामी जी भावा-विभोर हो उठे । उन्हें जब स्मरण आया कि भारत में भी यदि इस तरह लोक-मंगल के लिए अपने को खपा देने वाली महिलाएँ होतीं तो स्थिति कुछ से कुछ हो जाती । इस अभाव का स्मरण करके विवेकानन्द की आँखें बरस पड़ीं, नोबुल विद्यालय का निरीक्षण करते समय स्वामी जी अपने आँसू चुपचाप रूमाल से पोंछते जाते–ताकि कोई देख न ले । आँखों से छिपाया जा सकता है । जीभ को बन्द रखा जा सकता है, पर आत्मा को आत्मा की स्थिति देखने से कौन बन्धन रोक सकता है । नोबुल ने कुछ पूछा नहीं–सब कुछ जान लिया और समझ लिया कि उनके जीवन की सार्थकता कहाँ है वही क्षण थे, जिसमें उसने अपना कठोर कर्तव्य निश्चय कर लिया ? और फिर उस फैसले पर अन्त तक चट्टान की तरह दृढ़ बनी रही । स्वामीजी उसकी दृढ़ता से अति संतुष्ट हुए और भारत आकर काम करने की स्वीकृति ही नहीं दी, वरन् उसे हिन्दू-धर्म की दीक्षा देकर 'निवेदिता' नाम दिया और एक संत-तपस्वी की तरह भारतीयों की अन्तरात्मा जगाने के लिए घर-घर, गली-कूचे घूमते फिरने के लिए स्वच्छन्द छोड़ दिया ।

चमड़े की आँख वालों में से कोई बिरले ही यह जानते हैं कि भारत आकर तपस्विनी निवेदिता ने क्या किया ? दीखने वाले कामों का लेखा-जोखा रखने वाले लोगों को लम्बी तीर्थ-यात्रा, लड़कियों का विद्यालय, प्लेग-पीड़ितों की सहायता, लेख, भाषण, स्वतन्त्रता संग्राम में भागीदारी जैसे छोटे-मोटे कार्यों की गणना करने का ही अवसर मिलता है । पर वस्तुतः उनका कार्य-क्षेत्र ऐसा था जिसे अप्रत्यक्ष ही कहना चाहिए । उनका मूल उद्देश्य था भारत की नारी-शक्ति को आत्म-गौरव की स्मृति दिखाना और उन्हें उस उत्तरदायित्व के लिए तैयार करना जो नये युग में उनके कन्धों पर ईश्वरीय अदृश्य सत्ता द्वारा सौंपा जाने वाला है । इसके लिए उनका व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व एक मूर्तिमान् प्रचार साधन था ।

इतना सुखी जीवन छोड़कर इतनी दूर देश से भारत की आत्मा को जगाने के लिए विदेशी नारियाँ तो आईं पर भारतीय नारी परम्परागत ढर्रे का जीवन जीने में ही संतोष करले, यह तथ्य एक तीखी चुनौती थी, जिसने इस देश की शिक्षित नारी को झकझोर कर रख दिया । इस प्रेरणा से प्रभावित होकर कितनी ही सुशिक्षित नारियों ने अविवाहित रहकर लोक-मंगल के लिए अपने को समर्पित किया, इसका विवरण तैयार किया जाय तो एक स्वर्णाक्षरों से लिखा हुआ ऐसा अविज्ञात इतिहास सामने आवेगा, जिसने देश को बहुत आगे बढ़ाया और बहुत बल दिया । इस जागरण में निवेदिता की अदृश्य भूमिका को देखते हुए उन्हें इस युग के नारी-जागरण का सूत्रधार कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी ।

निवेदिता ने इतना किया जिसका उल्लेख किया जा सकना सम्भव नहीं । यदि कुछ भी न किया होता तो भी उनका लक्ष्य, साहस, त्याग, बलिदान अपने आप में उतने महान् हैं कि उतने भर से भी कोई व्यक्ति परम श्रद्धास्पद, अभिवन्दनीय और प्रातःस्मरणीय माना जा सकता है । उसने अन्तिम साँस तक अपने लक्ष्य की पूर्ति में अथक् प्रयास किया और अनेकों कष्ट, अभाव, लांछन, उपहास एवं तिरस्कार सहे । महान् उद्देश्य की बलिवेदी पर इस प्रकार आत्म-समर्पण करने वाली इन मूर्तिमान् देवी के लिए भारत को कोटि-कोटि जनता अनन्तकाल तक अपनी कृतज्ञतापूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करती रहेगी ।

उस दिव्य आत्मा की जयन्ती मनाने में अधिक उत्साह प्रदर्शित करने में हमारा प्रयोजन भारतीय नारी को यह स्मरण दिलाने का है कि उसे उस उत्तरदायित्व को पुनः स्मरण करना है, जिसका पूर्व सन्देश देने के लिए निवेदिता आयरलैण्ड से भारत दौड़ी आई थीं । भगवान् परिस्थिति को बदलना चाहते हैं । वे नेतृत्व एवं संचालन का भार अब नारी जाति को सौंपेंगे । अगले दिनों हर क्षेत्र में यह आगे बढ़ेगी और संसार की समस्त गतिविधियों को प्रभावित करेगी । इस गंगा का अवतरण का केन्द्र-बिन्दु भारतीय नारी होगी । इस देश का ही नहीं समस्त विश्व की परिस्थितियों का सुधार एवं परिवर्तन करना है । उसमें करुणा, सेवा, स्नेह, सहानुभूति का जो प्रकृति प्रदत्त अमृत-तत्व भरा पड़ा है, उसके द्वारा सिंचित होने पर ही यह श्मशान की चिता जैसा जलता हुआ मानव-समाज संतोष नारी शांति पा सकने का अधिकारी बनेगा । युग परिवर्तन का यही प्रधान लक्ष्य है ।

निवेदिता एक अति उच्च-आत्मा थी । वे नवयुग की सन्देश-वाहिनी के रूप में अवतरित हुईं । भारतीय नारी को उन्होंने अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व से झकझोरा और अपना आदर्श उपस्थित करते हुए यह बताया कि उनकी महानता इसी मार्ग पर चलने में सार्थक हो सकती है, जिस पर चलकर वे एक आदर्श प्रस्तुत कर रही हैं ।

कहने को वे स्वर्ग सिधार गईं । उनका नश्वर शरीर समाप्त हो गया, पर सही बात यह है कि वे फिर इसी भूमि पर अनेक कलेवरों, अनेक अवरणों के साथ जन्मी हैं और फिर दूने-चौगुने साहस के साथ उसी प्रयोजन में लगी हैं । भगवती दुर्गा ने आवश्यकता पड़ने पर अपनी एक सत्ता नौ भागों में विभक्त करके नव-दुर्गा का रूप धारण किया था । पीछे वे शतचण्डी के रूप में आवश्यकतानुसार अपने सौ कलेवर धारण करके सक्रिय हुईं । वह नवयुग के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करेंगी ।

नारी तत्व का उत्कर्ष एक सुनिश्चित तथ्य है । आज उनकी स्थिति संसार में विशेषतया भारतवर्ष में खेदजनक है । संसार में वे एक मनोरंजन की सामिग्री और भारत में पद-दलित, पराधीन बनाकर रखी जा रही हैं, पर अगले दिन नया सन्देश और नया प्रकाश लेकर आ रहे हैं । उसमें नारी को उसकी स्वाभाविक महानता के अनुरूप स्थान, सम्मान और उत्तरदायित्व मिलने वाला है । नये युग में हर क्षेत्र का नेतृत्व नारी करेगी, इसलिए उसके जागरण की भी आज अतीव आवश्यकता है । निवेदिता इसी सन्देश और प्रकाश को लेकर अवतीर्ण हुई थीं । उनकी आत्मा आज अपनी शताब्दी के अवसर अति सुविस्तृत और व्यापक तैयारी के साथ नये निर्माण की महान् भूमिका सम्पादित करती हुई, हमें अत्यन्त स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ रही है ।

निवेदिता शताब्दी का पुण्य पर्व उसी शुभ-सन्देश का शंखनाद है । हम उसमें इसलिए भी अधिक उत्साह के साथ संलग्न रहे हैं कि यह पर्व उस चेतना को बल देगा, जिसके लिए वह दिव्यात्मा तब अवतरित हुई और अब फिर अपने अनेक कलेवरों के साथ कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हो रही है । युग प्रभात के इस मंगलमयी वेला में हमारा शताब्दी समारोह उत्साह और उल्लासपूर्वक मनाना उचित भी था और आवश्यक भी ।

नारी सदी एक भवितव्यता

स्वतंत्रता की आकांक्षा ईश्वर प्रदत्त है । इसके लिए बड़े से बड़े कष्ट सहे जा सकते हैं । जिस तर्क के आधार पर स्त्रियों को पराधीनता में सुखी रहने की बात कही जाती है, उसी तर्क का प्रयोग करने पर स्वतंत्रता आन्दोलन और उसके लिए किया गया त्याग-बलिदान भी निरर्थक ठहराया जा सकता है । स्त्रियों को पुरुषों की पराधीनता में ही रहना चाहिए, उन्हें अपने घर के पिंजड़े से बाहर नहीं झाँकना चाहिए, ऐसा निर्देश करने वाले कोई भी क्यों न हों, मानवी अन्तरात्मा की मूलभूत आकांक्षा एवं प्रकृति से अपरिचित ही ठहराये जाएँगे ।

जर्मनी के विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक मैक्समूलर ने 'द हिस्ट्री ऑफ ऐन्सिएन्ट संस्कृत लिट्रेचर' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि भारत वैदिक काल में नारी को परिवार और समाज में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था और जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष के समान ही प्रगति के समान अवसर उपलब्ध थे । स्त्री को पराधीन बनाने वाली मनोवृत्ति का आरम्भ तो मध्य एशिया की कुशाण जाति से होता है, जिसने पहली सदी में उत्तरी भारत, अफगानिस्तान, पाकिस्तान और मध्य एशिया पर शासन किया । इस जाति के ऊपर विकृत यूनानी सभ्यता का पूर्णतः प्रभाव था । तभी से अज्ञानता का ऐसा भयंकर तूफान आया कि पुरुषों की चिन्तन-धारा को ही उसने उलट-पुलट कर रख दिया व उन्होंने नारी को गुलाम बना दिया ।

पाश्चात्य तत्ववेत्ता जॉन स्टुअर्ट मिल ने अपनी पुस्तक 'सबजैक्शन ऑफ वुमैन' में स्पष्ट किया है कि स्त्रियों को पुरुषों से बढ़-चढ़कर बताये जाने के गीत तो सर्वत्र गाये जाते हैं, पर यह सब कुछ उन्हें प्रसन्न रखने के लिए ही होता है, जबकि व्यवहार में ठीक इसके विपरीत ही दृष्टिगोचर होता है ।

जिन जगहों पर नारी चेतना जगी है, वहाँ अपने स्वतंत्र अधिकारों को प्राप्त करने में हेतु संघर्ष समितियों का गठन करना आरम्भ कर दिया गया है, जिसके कारण समूचे विश्व में उथल-पुथल-सी मच गयी है । निकारागुआ की महिलाओं ने एक विशाल जन-समूह को अपने पक्ष में आवाज उठाने के लिए सहमत कर लिया है । फेमिली लॉ सेन्टर का मूलभूत उद्देश्य ही स्त्रियों को पराधीनता के जीवन से मुक्ति दिलाने का है । इसी के फलस्वरूप वहाँ की संवैधानिक प्रणाली में विशेष प्रकार का परिवर्तन करके स्त्रियों के हितों की रक्षा की जाने लगी है । पारिवारिक, सामाजिक एवं परम्परागत ढंग से

चली आ रही रूढ़िवादी मान्यताओं को हटाकर स्त्रियों को पूर्णत: स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार मिला है ।

केन्या में नवीन उत्तराधिकार अधिनियम के लागू करने का प्रयोजन लगभग वैसा ही है । इण्डोनेशिया में विवाह अधिनियम के पारित होने का एक ही लक्ष्य है कि पति-पत्नी समान रूप से स्वतंत्र जीवन जीयें । जिम्बाम्बे की स्त्रियों पर भी अब उतने कड़े बंधन नहीं रहे । पेरू में 'पेरू मुजर' भारत में 'महिला दक्षता समिति' वेनेजुएला में 'सी. ई. एस. ए. पी.' नाइजीरिया में फेमिली लॉ सेन्टर, नेपाल में 'लीगल सर्विसेज प्रोजेक्ट' और जिम्बाम्बे में लॉ प्रोजेक्ट का मूलभूत उद्देश्य महिलाओं के मौलिक अधिकारों को उपलब्ध कराने का ही है । 'अपने वैधानिक एवं स्वतंत्र अधिकारों को समझो' वाला अभियान अब तीसरी दुनिया में भी बड़ी तेजी के साथ चल पड़ा है, जिससे स्त्रियों के प्रति पुरुषों के दृष्टिकोण में काफी परिवर्तन और परिमार्जन प्रतीत होने लगा है ।

इक्कीसवीं सदी को नारी प्रधान कहा गया है । श्री अरविन्द ने इसे 'मदर्स सेंचुरी' के नाम से घोषित किया है । जैसे-जैसे बीसवीं सदी का समापन निकट आता जा रहा है, वैसे-वैसे समानता सम्बन्धी नारी आन्दोलन भी व्यापक व विश्वस्तरीय बनता जा रहा है । कई देशों में तो महिलाएँ महत्त्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित होने लगी हैं, जहाँ अब तक पुरुषों का वर्चस्व था । इससे ऐसा लगता है कि नारी सम्बन्धी प्रतिगामी मान्यताएँ अब उलटकर रहेंगी और रमणी, कामिनी एवं भोग्या की जगह आने वाले समय वह न सिर्फ पुरुषों जैसा समान अधिकार प्राप्त करेंगी, वरन् देवी जैसा सम्मान-श्रद्धायुक्त पद प्राप्त कर स्वयं को वरिष्ठ भी सिद्ध करेंगी ।

नारी नेतृत्व की सुनिश्चित सम्भावनाएँ

समय चक्र नारी को नेतृत्व की ओर अग्रसर कर रहा है । सहस्राब्दियों से दबी-कुचली गई, गई-गुजरी स्थिति में रहने के उपरान्त उसे मानवी अधिकारों को पहचानने और उपयोग कर सकने का अवसर मिला है । इसकी प्रतिक्रिया ऐसी ही हुई है जैसी भू-गर्भ में दबी गैस को कहीं छेद मिल जाने पर ऊपर उभरते हुए प्रचंड वेग धारण करते हुए देखा जाता है ।

समय चक्र के साथ परिवर्तन भी जुड़ा हुआ है । जलाशय में जितनी गहराई तक दबाव देकर लकड़ी या रबड़ की गेंद पहुँचाई जाय वह उतने ही वेग से ऊपर आती है । उत्पीड़न, दमन और शोषण का शिकार रहते-रहते उसकी मनोभूमि पहले तो दीन-हीन जैसी हो गई थी । अपना स्वाभिमान सम्मान, अधिकार सभी कुछ भूल बैठी थी, पर यह स्थिति चिरस्थायी नहीं बन सकी है । खदान की खुदाई चली तो दबे हुए मणि-मुक्तक भी प्रकट होने लगे । समय ने जमीन में दबे बहुमूल्य खनिजों को खोद निकाले जाने का अवसर दिया है । वे निरर्थक से सार्थक बन रहे हैं । लोहे से यंत्र-आयुध बन रहे हैं और सोने से आभूषण । कभी वे अविज्ञात स्थिति में किसी लम्बी गहराई में दबे पड़े थे । रात्रि होती तो लम्बी है, पर वह सदा नहीं रहती । प्रभात का उदय होते ही तमिस्रा का अन्त भी हो जाता है । नारी की स्थिति भी बदल रही है, इस परिवर्तन में प्रकृति परम्परा का बड़ा हाथ है ।

अब नारी को दासियों की तरह नहीं खरीदा-बेचा जाता । सारी आयु माता-पिता, पति के संरक्षण में बन्दी की तरह नहीं बितानी पड़ती, अब वे स्वेच्छापूर्वक प्रगति कर सकती हैं । स्वावलम्बी रह सकती है और अकेले भी लम्बी यात्राएँ कर सकती हैं । शासनाध्यक्षों की तरह महती भूमिका निभा सकती हैं । शिक्षा और चिकित्सा के क्षेत्र में उसने वर्चस्व स्थापित कर लिया है । अन्य कोई क्षेत्र ऐसा नहीं बचा जिसमें उसकी प्रतिभा ने अग्रगामी परिचय न दिया हो । जहाँ भी अवसर मिला है उसने प्रतिस्पर्द्धा में पुरुष से अपने को एक कदम आगे ही सिद्ध किया है ।

प्रश्न यह है कि नर को इस प्रगति को आश्चर्यचकित होकर देखते भर रहना चाहिए । कुढ़ना चाहिए । उभरने से रोकना चाहिए या उसे सहायता देकर प्रगति क्रम को और अधिक सरल एवं प्रभावी बनाना चाहिए ।

औचित्य इसी में है कि विगत की भूलों का परिमार्जन किया जाय । पाप का प्रायश्चित करना होता है और अनीति का परिमार्जन । इसी में सज्जनता है कि विगत में अनीति बन पड़ी उसका बिना समय गँवाये सुधार किया जाय और क्षति पूर्ति के लिए दूने उत्साह भरा साहस जुटाया जाय । शिक्षा और स्वावलम्बन उठती नारी की प्रमुख माँगें हैं । इन्हें स्वीकार किये बिना कोई चारा नहीं । बन्दी जीवन जीने वाली नारी पालतू पशु की तरह आज भी रखी जा सकती है और उससे मनमाना दुर्व्यवहार भी किया जा सकता है, पर इससे किसी का किसी प्रकार हित साधन नहीं हो सकेगा । उत्पीड़न से शोषण से नारी की क्षमता दिन-दिन दुर्बल होती जाएगी । शरीर से अस्वस्थ और मन-मस्तिष्क से अविकसित रहेगी । अनुत्पादक रहने से उसका भार पालने वाले को ही वहन करना पड़ेगा । आधी जनसंख्या को पक्षाघात पीड़ित की अपंग स्थिति में डाले रहने से प्रगति का रथ चक्र रुका ही पड़ा रहेगा । यह स्थिति न तो अब सहन हो सकती है और न उसे परम्परा के नाम पर दबाया जा सकता है । अच्छा हो सुनिश्चित परिवर्तन का स्वागत किया जाय । प्रवाह के मार्ग में आड़े आकर अपनी दुर्गति न कराई जाय ।

प्रगतिशीलता की आकांक्षा नारी में भी जगी है । उसने मुखर होकर या दबी जबान से चाहा है कि वह नर का, ससुराल का, पितृगृह का, भरपूर सहयोग करने को तो तैयार है, पर विवशता की स्थिति में यह सब करना पड़े इसके लिए उसकी सहमति नहीं है । सम्मान, स्वावलम्बन और शिक्षा यह उसकी माँगें हैं जिनमें अनौचित्य कहीं भी नहीं ढूँढा जा सकता । उस पर यह लांछन नहीं लग सकता

है कि नारी मर्यादा से आगे बढ़ रही है । पतिव्रत धर्म को शिथिल कर रही है । उसे मानवी मौलिक अधिकार चाहिए । इससे कम में उसका समाधान नहीं हो सकता और इससे अधिक उसे कुछ चाहिए नहीं । अन्तर इतना ही है कि उसे पैर की जूती रहना स्वीकार नहीं, परिवार की निर्मात्री-गृहलक्ष्मी का सम्मान उसके लिए पर्याप्त है, पर यह थोपा हुआ नहीं होना चाहिए । बाधित और विवश करके उसे रूढ़ियों के कोल्हू में पिछले दिनों की तरह पेला जाता रहे, अब वह न तो नारी को सहन हो सकता है और न नियति-यथास्थिति बनाये रहने के लिए स्वीकृति प्रदान कर रही है ।

अगले दिनों हर क्षेत्र में नारी का वर्चस्व ही नहीं नेतृत्व भी स्थापित होगा । कारण कि महाकाल जिस स्तर का परिवर्तन अगले दिनों प्रस्तुत करने जा रहे हैं, उसे भावना प्रधान ही कहना चाहिए । इन दिनों जितनी भी समस्याएँ उलझी हैं उनके पीछे पुरुष की वह निष्ठुरता ही प्रधान है जो बढ़ते-बढ़ते अपराधी प्रवृत्ति बनकर हर क्षेत्र में अनर्थ उत्पन्न कर रही है । चिन्तन की भ्रष्टता और आचरण की दुष्टता यही दो कारण हैं जिनके कारण अनेक क्षेत्रों में अनेकानेक विग्रह, अनर्थ, अनाचार और संकट उत्पन्न हुए हैं । दर्प और अहंकार का परिपोषण अपनी शालीनता और परमार्थ परायणता के आधार पर किया जा सकता है, पर उतना लम्बा और तप संयम से भरा-पूरा उत्कृष्ट, आदर्शवादिता का पक्षधर मार्ग कौन अपनाये ? अपने पर अंकुश कौन लगाये ? औसत नागरिक की स्थिति स्वीकार करने के लिए कौन अपनी सहमति व्यक्त करे ? यह सब न बन पड़ने पर दूसरा विकल्प अनाचार का ही शेष रह जाता है । छल-प्रपंच से लेकर आक्रमण-अपहरण के उपाय ही ऐसे रह जाते हैं जिनके आधार पर हथेली पर सरसों जमाने की तरह देखते-देखते प्रथम आक्रमण का पृथक् लाभ पाने जैसा चमत्कारी प्रतिफल पाया जा सकता है । इन दिनों यह आम प्रचलन दीख पड़ता है । नियति अब अधिक दिनों इस प्रवाह को यथावत् नहीं रहने दे सकती है, उसे परिस्थितियों में आमूल-चूल परिवर्तन जो करना है ।

भावी सतयुगी परिवर्तन का प्रमुख आधार यह होगा कि स्नेह-सहयोग से, करुणा और उदारता से भरी-पूरी नारी को समग्र नेतृत्व सुपुर्द किया जाय । उसकी मौलिक प्रकृति में न युद्ध है और न शोषण-अपहरण । उसे शान्ति चाहिए । प्रसन्न और प्रफुल्लता के वातावरण में ही वह चैन की साँस ले सकती है । दूसरों के लिए भी वह वैसे ही अवसर प्रस्तुत कर सकती है । जिनने पति के लिए, बच्चों के लिए, परिवार के लिए जीवन भर अजस्र आत्मीयता लुटाते रहने का प्रमाण परिचय पग-पग दिया है वह नेतृत्व सौंप जाने पर अपने समूचे प्रधान क्षेत्र में उसी प्रकार का वातावरण उत्पन्न करेगी ।

नर का भावनात्मक सुधार लगभग असम्भव हो गया है । उसे प्रजनन भार से बचे रहने के कारण शारीरगत बलिष्ठता मिल गई है, परिवार की साज-सम्भाल से बचा रहने के कारण व्यवसाय और उपार्जन भी कर सकता है । छुटपुट आक्रमणों से संतुष्ट न रहकर वह बड़े युद्धों का सरंजाम भी जुटा सकता है । पढ़ने-लिखने की अधिक सुविधा मिलने से वह विद्वान भी बन सकता है, पर साथ ही यह भी निश्चित है कि जिस स्वेच्छाचार का उसे लगातार अवसर मिलता रहा है वह उसके स्वभाव का अंग बन गया है । उसके अधिकाधिक व्यवहार अनीति पर अवलम्बित होते हैं । यह सब एक प्रकार से पुरुष प्रकृति में सम्मिलित हो गया है । फलतः अनेकानेक समस्याओं, कठिनाइयों, विपत्तियों का वातावरण भी बनता चला गया है ।

प्रकृति संतुलन बनाये रहना चाहती है । पुरुष का पराक्रम उसने देख लिया । उसकी करतूतें भी भाँप लीं । निराश होकर उसे वह स्थानान्तर एवं परिवर्तन करना पड़ रहा है । जो अगले ही दिनों नारी प्रधान युग के रूप में सामने आ रहा है । नेतृत्व नारी करेगी । पुरुष को इसमें अपनी हेटी मानने की आवश्यकता नहीं है, वह सहयोगी के रूप में अब की अपेक्षा अगले दिनों अधिक अच्छी भूमिका निभा सकेगा । 'जियो और जीने दो' का आनन्द ले सकेगा ।

परिवर्तन का समय आ पहुँचा

ठीक समय पर बीज बोया जाता है, तो उससे अच्छी बढ़िया फसल पैदा होने की सम्भावना रहती है । वर्षा के आरम्भिक दिनों में बोया हुआ ज्वार, बाजरा, मक्का आदि को सैकड़ों गुना होकर फलने का अवसर मिलता है । समय चूक जाने पर जाड़े की ऋतु में यदि उन्हीं बीजों को बोया जाय, तो प्रतिफल नगण्य ही हाथ लगेगा । नारी उत्कर्ष भी इसी प्रकार की फसल है । इक्कीसवीं सदी का सुयोग ऐसा समय है कि जिसमें नारी उत्थान के लिए नये सिरे से किए गए प्रयत्नों की असाधारण रूप से फलने-फूलने की सम्भावना है । प्रकृति इस प्रयोजन के लिए हर प्रकार की अनुकूलता धारण किए हुए है । पीछे की तेज हवा चलने पर अपने चलने या वाहन को दौड़ाने में सुविधा मिलती है । यदि हवा सामने की अवरोधक हो तो निश्चय ही प्रगति में अवरोध पैदा होगा और जिस तेजी से चला जा सकता था, उसमें व्यवधान पड़ेगा । बहते पानी में पड़े तिनके-पत्ते जल प्रवाह का सहारा पाकर गति पकड़ लेते हैं और जहाँ पहुँचना होता है, वहाँ अपेक्षाकृत जल्दी पहुँचते हैं । यदि यह अनुकूलता रुक जाय तो जिसकी आशा की गयी थी उसमें रुकावट पड़ेगी और देर लगेगी । इक्कीसवीं सदी का आरम्भ ऐसा है जिसमें नारी उत्कर्ष के लिए जो भी प्रयत्न किए जाएँगे वह अपेक्षाकृत कहीं अधिक फलित होंगे और सफलता में चार चाँद लग जाएँगे ।

यों छोटे-बड़े रूप में नारी प्रगति के लिए वैयक्तिक और सामूहिक प्रयत्न किसी न किसी प्रकार होते रहे हैं,

पर दैवी अनुकम्पा का प्रवाह अनुकूल न होने से उनमें यत्किंचित ही सहायता मिलती रही है । अब स्थिति बदल गयी है । प्रवाह ने पलटा खाया है और द्रुतगामी सफलता का मुहूर्त बनाया है । सम्भावना इस प्रकार की बन गयी है कि छोटे और छिटपुट प्रयत्न भी यदि इन दिनों प्रगति की दिशा में होंगे, तो उनसे कहने लायक सफलता अनायास ही मिलने लगेगी । जो सोचा और चाहा गया था, उसकी तुलना में उपलब्धियों का अनुपात कहीं अधिक रहेगा । कोई बाहरी सहायता न मिले, तो भी बरसात की हरियाली की तरह नारी प्रगति के अनेकों आधार अनायास ही खड़े होते चले जाएँगे । उत्कृष्टता की सम्भावना सहज ही बढ़ती और गति पकड़ती जाएगी । बसन्त ऋतु आने पर बिना किसी बाहरी प्रयत्न के भी बड़े पेड़ों से लेकर छोटे झाड़-झंखाड़ तक हरियाने और फलने-फूलने लगते हैं । फिर ऐसे ही अवसर पर सिंचाई जैसे अतिरिक्त प्रयत्न कर दिये जाएँ, तो अभीष्ट सम्भावना की गति और भी तेज हो जाएगी ।

जिसे बहुत दिन तक दबा कर रखा जाता है, उसे जब कभी उछलने-उभरने का अवसर मिलता है, तभी वह तेजी से उछलते देखा गया है । संसार में क्रान्तियाँ इसी आधार पर हुई हैं । पिछड़ी हुई, सताई हुई जातियों का, बहुत दिनों का दबा आक्रोश जब भी उपयुक्त समय मिला है, तब फूट निकला है, बदलाव का क्रम तब-तब तेजी से आरम्भ हुआ है और उसका प्रतिफल भी उतना ही चमत्कारी निकला है । संसार भर में विभिन्न वर्गों में असामान्य व्यक्तियों द्वारा जब भी कोई बड़े परिवर्तन हुए हैं, तब-तब उनके पीछे यही तथ्य काम करते देखा गया है । यही बात इन दिनों नारी उत्थान के संदर्भ में भी देखी जा सकती है ।

शताब्दियों, सहस्राब्दियों से नारी को दुर्बल समझकर उसे दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता रहा है । पुरुषों को जो सुविधाएँ प्राप्त रही हैं, उनकी नारी को हवा भी नहीं लगने दी गयी । स्त्रियों के लिए घूँघट काढ़ना आवश्यक, पर पुरुषों में से किसी को भी वैसा करते नहीं देखा गया है । नारी को मृतक पति के साथ सती होने के लिए बाधित किया जाता रहा, पर ऐसे उदाहरण नहीं मिलते, जिसमें किसी पति ने पत्नी के साथ आत्मदाह किया हो । पति के मरने के बाद स्त्री को दूसरा विवाह करने की मनाही थी, किन्तु पति पर ऐसा कोई अंकुश नहीं । स्त्रियाँ बिना किसी पुरुष संरक्षक के घर से बाहर नहीं जा सकतीं, पर पुरुष या पति के स्वतंत्र विचरण करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है । पुरुष कोई भी व्यवसाय कर सकता है, पर महिलाओं पर ऐसा किये जाने पर उँगलियाँ उठायी जाती हैं । लड़कों की पढ़ाई पर, फैशन पर, मनोरंजन पर खुले हाथ से पैसा खर्च किया जाता है, पर लड़कियों को इनमें से एक भी सुविधा प्राप्त नहीं है । इस प्रकार सगे भाई-बहिन होने पर भी दोनों के बीच असाधारण असमानता बरती जाती है । लड़कियाँ पिता के घर से आजीवन रहने के लिए ससुराल भेजी जाती हैं, इसके विपरीत मर्दों पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है । गौर से देखा जाय तो नर और नारी के बीच ऐसे-ऐसे अगणित असमानतासूचक प्रतिबन्ध देखे जाते हैं, जबकि पुरुषों पर वैसी कोई रोकथाम नहीं होती । स्त्रियों के नाक-कान छेद कर उन्हें पशुओं की तरह वशवर्ती और कुरूप बनाया जाता है, पर लड़कों को इस प्रकार के बन्धनों में बाँधने की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती । यह सरासर अन्याय है । एक ही जाति के दो समान पक्षों को इस प्रकार दुहरे मापदण्डों के अन्तर्गत रखा जाये । इसमें तो न्यायशीलता और समानता का कोई चिह्न कहीं कोई नहीं दीख पड़ता । स्त्रियों को अपनी वेश-भूषा, वस्त्र-आच्छादन इस प्रकार की रखनी पड़ती है, जिससे उनकी अलग पहचान बने । इस विषमता के बढ़ते-बढ़ते अन्तर वहाँ तक पहुँचता है, जहाँ उन्हें अलग प्राणी एक भिन्न प्रकार का मानव माना जाने लगता है । यह दुहरा मापदण्ड ही है, जिसके चलते स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है । चिरकाल से दबती-पिसती आ रही नारी अब इसे अधिक सहन न कर आक्रोश पर उतारू है वह क्रान्ति हेतु समुद्यत है ।

अब प्रतिक्रिया का समय आ ही गया है । अंधड़ आता है तो तमाम कूड़ा-करकट को एकबारगी उखाड़ता और उड़ा ले जाता है । इक्कीसवीं सदी ऐसा ही एक भयंकर बवण्डर तूफान लेकर आ रही है, जिसमें स्त्रियाँ पूरी तरह बदल जाएँगी व अपने साथ-साथ सारे समाज को बदल कर रख देंगी । सारे प्रचलन बदलेंगे व नेतृत्व की बागडोर नारी के हाथों में होगी ।

पतझड़ आते ही पुराने पत्ते अनायास ही टूट कर गिर जाते हैं और कुछ ही दिनों बाद उनमें नयी कोपलें निकलती हैं और रूपान्तरण की प्रक्रिया सम्पन्न होकर पूरा वृक्ष फूलों-फलों से लद जाता है । ठीक ऐसा ही परिवर्तन अगले दिनों होने जा रहा है । जिस पुरुष जाति ने महिलाओं के साथ अवांछनीयता बरतने में कोई कसर नहीं छोड़ी, उसे ही अब इन्हीं दिनों अपनी अनीतियों का परिमार्जन-प्रायश्चित करते देखा जाएगा ।

इस कार्य में नर न केवल नारी को भौतिक दृष्टि से आगे बढ़ाने हेतु सहयोग देंगे, वरन् पुरातन काल की देवियाँ सदृश बनाने में अपनी सामर्थ्य भर योगदान भी प्रस्तुत करेंगे । यह समय की माँग और न्याय की पुकार है । इसी को 'महा-क्रान्ति' कह सकते हैं । अगले ही दिनों न केवल हर दृष्टि से नर की तुलना में नारी कहीं अधिक सुयोग्य बनेगी, वरन् यह भी प्रदर्शित करेगी कि अवसर मिलते ही वह अपनी स्वाभाविक वरिष्ठता किस प्रकार सिद्ध कर दिखाती है ।

नारी जाग्रति के लिए चलता आ रहा संघर्ष

नारी जाग्रति एवं नारी स्वतंत्रता के लिए प्रयास सदा से होते रहे हैं । चूँकि यह मानवोचित अधिकारों को लेकर उठाया गया प्रश्न था, अतः विश्व के किसी भी देश में यह चिनगारी फूट पड़ी । माध्यम भले ही कोई एक महिला बनी हो, किन्तु वह दावानल समूचे विश्व को अपनी चपेट में लेकर ही रहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि आज कम से कम वह मुक्त वातावरण में निःशंक श्वास तो ले पा रही है । सदियों तक घृणा, तिरस्कार, अपमान का घूँट पीती नारी, लोहे एवं सोने की बेड़ियों से जकड़ी नारी पुरातन मान्यताओं, परम्पराओं रीति-रिवाजों के विरुद्ध आवाज तो उठा रही है । आज हमारे सामने नारी जाग्रति एवं नारी मुक्ति आन्दोलन का जो उज्ज्वल स्वरूप दिखता है इसके मूल में स्वयं के उत्थान के लिए संघर्ष करती महिलाओं की गौरवगाथा ही सन्निहित है ।

समानता के अधिकारों के लिए पहली बार रोम की महिलाओं ने सन् ४३ बी. सी. में शंखनाद किया था । उनका प्रतिनिधित्व कर रही थी सुप्रसिद्ध रोमन वकील की सुपुत्री होर्टैनेसिया । उन्होंने राष्ट्र के सर्वोच्च पदाधिकारी के सामने एक ही प्रश्न रखा कि नारी को पुरुष की अपेक्षा हीन एवं तिरस्कृत दृष्टि से क्यों देखा जाता है ? क्षमता एवं कार्यदक्षता में वह पुरुषों के साथ बराबरी कर सकती है, फिर क्यों उसे शिक्षा एवं प्रशासनिक कार्यों में आगे नहीं बढ़ाया जाता है ? उनके पिता स्वयं इस विषय के प्रतिपादक थे । यद्यपि उन्हें उस समय इसमें आंशिक सफलता मिली, किन्तु सम्पूर्ण विश्व में नारी जाग्रति लाने के लिए यह एक चिनगारी सिद्ध हुई ।

उसी काल में क्रिस्टिन डी. पी. सेन नाम की विदुषी महिला अपने लेखों एवं कविताओं के माध्यम से लोगों के मन में यह भाव जगा रही थी कि महिलाओं को ऊँचा उठाये बिना शिक्षित, सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाये बिना राष्ट्र का उत्थान असम्भव है । दैनिक पत्र-पत्रिकाओं में उसने नारियों का आह्वान किया कि वे परिस्थितिवश अनपढ़, अशिक्षित एवं अयोग्य न रहें, अपितु शिक्षा, विज्ञान, चिकित्सा के क्षेत्र में आगे जाने का प्रयास करें । जो महिलाएँ साथ देने के लिए तैयार हुईं उनको लेकर उन्होंने महिलाओं को शिक्षित करने का आन्दोलन छेड़ा, जिसमें हजारों की संख्या में महिलाओं ने भाग लिया ।

ब्रिटेन की प्रखर, तेजस्वी एवं स्पष्ट वक्तव्य देने वाली मेरी मान्टेग्यू के लेखों ने तो महिलाओं में नव जाग्रति का प्राण ही भर दिया । उनका विश्वास था कि धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि किसी भी दृष्टिकोण से नारी को हीन नहीं कहा जा सकता । नारी एवं पुरुष में बौद्धिक, शारीरिक एवं मानसिक सामर्थ्य एक समान है । उनका कहना था कि प्रकृति ने हमें पुरुषों से गया-गुजरा नहीं बनाया । ईश्वर के यहाँ हमें पक्षपात नहीं मिलता, पक्षपात तो किया है पुरुषों ने ताकि हम पर शासन कर सकें, इसीलिए उसने हमें दीन-हीन एवं पंगु बनाया है । अतः नारियों उठो ! जागो! एवं अपने अधिकारों के लिए लड़ो, जब तक तुम्हें समानता का हक न मिल जाय । मेरी मान्टेग्यू के प्रखर शब्दों ने फ्रांस की ओलम्प डी. गोज, रॉस लेकाम्ब, मेरी वुल्सटनक्राफ्ट, मेरी रेडक्लीफ जैसी नारियों को जगा दिया, फलस्वरूप 'ए विंडीकेशन ऑफ द राइट ऑफ वूमेन' एवं 'डिक्लेयरेशन ऑफ द राइट ऑफ वूमेन' जैसे महत्त्वपूर्ण विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना हुई ।

सन् १८५० तक न्यूजीलैण्ड में महिलाओं को वोट देने, उच्च शिक्षा ग्रहण करने एवं प्रशासनिक कार्यों में भाग लेने का अधिकार नहीं मिला था । फलतः इसके लिए ब्रिटेन में जन्मी महिला मेरी मूलर ने समानता के लिए संघर्ष किया । कानून बनाने वाले प्रशासनिक अधिकारियों के साथ व्यक्तिगत वार्त्तालाप किया । न्यायाधीश की सुपुत्री होने के कारण सभी ने इस विषय को ध्यान से सुना । आवश्यकता पड़ने पर सहमति दिखाने के लिए हर वर्ग की महिलाओं से मिलने के लिए घर-घर जाती एवं उन्हें भावी संघर्ष की भूमिका बताती । बड़े भावनापूर्ण शब्दों में उसने एक पर्चा प्रकाशित किया "एन अपील टू द मैन ऑफ न्यूजीलैण्ड" जिसे पढ़कर ऐसा कोई भी पुरुष न बचा होगा जिसने आँसू न बहाया हो । इस पर्चे में नारी की वर्तमान स्थिति एवं पुरुषों द्वारा उस पर किए जाने वाले अत्याचारों का भावपूर्ण विवेचन था । इस पर्चे ने उस विचार क्रान्ति को जन्म दिया, जिसके फलस्वरूप उच्च पदों पर आसीन पुरुष वर्ग स्वयं अधिकार दिलाने एवं नारी की दशा सुधारने, उन्हें सुसंस्कृत बनाने के लिए प्रयास करने लगे । अन्ततः १८८४ में एक कानून बनाया गया जिसमें नारी को पुरुष के समतुल्य अधिकार देने की घोषणा की गयी थी ।

नारी अधिकारों के लिए युद्ध स्तर पर संघर्ष करने वाली ब्रिटेन की ही एमिलेन पैकर्स्ट का नाम भी प्रसिद्ध है । एमिलेन पैकर्स्ट एवं एन्नी केन्नी ने मिलकर नारी की दशा सुधारने के लिए जब सरकार से निवेदन किया तो उत्तर नकारात्मक ही मिला । फलत; उनके नेतृत्व में ब्रिटेन की दस हजार महिलाओं ने मैनचेस्टर में प्रदर्शन किया । आन्दोलन को असफल करने के लिए उन्हें चोटें पहुँचायी गयीं । सीढ़ियों से धकेला गया एवं कुछ की मृत्यु भी हुई । इस घटना को १९०६ में समस्त विश्व की पत्रिकाओं ने "सरकार की अमानवीय नीति" की संज्ञा देते हुए प्रकाशित भी किया था एवं "वह कर्म जिसके लिए शब्द

नहीं है'' जैसे वाक्य भी प्रयोग किए गए थे । इस आन्दोलन में एमिली डेविडसन नामक महिला को तो राजा के घोड़े ने कुचल तक दिया था जिससे वह शहीद हो गयी । इसके विरोध में इंग्लैण्ड की युवा, प्रौढ़ एवं वृद्ध महिलाएँ भी सड़क पर निकल आयी थीं और भूख हड़ताल करने लगीं । अन्ततः सरकार को झुकना पड़ा और शाश्वत् अधिकारों को कानून का दर्जा देना पड़ा । यह नारी जाग्रति का पहला महत्वपूर्ण अध्याय था ।

प्रख्यात मनीषी जॉन स्टुअर्ट मिल की प्रसिद्ध रचना 'सब्जेक्शन ऑफ यूमेन' का अनुवाद जर्मनी भाषा में पहली बार करने वाली जेन्नी हिरक को जर्मन वासी सम्मान की दृष्टि से देखते हैं । उन्हीं की सहपाठी एलिक सेलमेन पहली महिला थी, जिन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय से महिलाओं की स्थिति पर लेख लिखकर पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त की । उन्होंने अपने लेख में विश्व के सभी देशों में नारी की स्थिति को स्पष्ट किया और बताया कि किस तरह उन्हें पुरुष से अधिक श्रम करने एवं उत्पादन बढ़ाने के बाद कम मूल्य एवं सम्मान मिलता है । कई राष्ट्रों ने इस लेख के आधार पर महिलाओं के सम्बन्ध में बनाये अपने नियमों को बदला । भारत की सती प्रथा, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा एवं छोटी बच्चियों का गर्भवती बनना जैसी कुप्रथाओं का मार्मिक चित्रण उनके लेख में है ।

उपर्युक्त महिलाओं के अतिरिक्त फ्रांस की जीन डेरोइन, मारिया डेरस्मस, आवर्टइन, आडर्ट, मारिया, वेराना, कैनाडा की एमिली स्टो, लिलीन थामस, मेरी क्राफर्ड, बेल्जियम की मेरी पोपलीन, भारत की सरोजनी नायडू, डा. मधुलक्ष्मी, कमला नेहरू, स्वरूप रानी, नेहरू, बा-कस्तूरबा, पाकिस्तान की बेगम जहाँआरा, शाहनवाज, तुर्की की हालिड एडिब, आडिनर एवं इण्डोनेशिया की मारिया उल्फाह सन्तोसो, श्रीमती हरहप, नारी सी. एबोन्डो प्रमुख महिलाएँ हैं जिन्होंने नारी जाग्रति, मुक्ति एवं नारी स्वतंत्रता की चिनगारी को प्रज्ज्वलित करने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष योगदान दिया और अपने देश में आन्दोलन भी चलाया ।

वस्तुतः अब नारी जागरण का शंखनाद हो चुका है । इस संदर्भ में इक्कीसवीं सदी को 'मातृशती' घोषित किया जा चुका है । युग परिवर्तन की इस पुण्य वेला में नारी जाग्रति के सम्बन्ध में रचनात्मक कार्य हाथ में लेकर हर कोई वह लाभ प्राप्त कर सकता है, जिससे न केवल हमारा नाम इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित हो जाएगा, वरन् स्रष्टा के उस अनुदान को भी प्राप्त कर सकेंगे, जिसके लिए उसने परिवर्तन का शंखनाद किया है । इसकी अवहेलना, उपेक्षा करने पर हम पीढ़ियों की नजर में तो गिरेंगे ही, महाकाल के अनुदान से भी वंचित रहेंगे । अतः विश्व-मानवता के हित में जहाँ भी नारी जाग्रति आन्दोलन गुञ्जायमान नहीं हुआ है, वहाँ तक संदेश पहुँचाया जाय । नारियों को शारीरिक रूप से स्वस्थ, मानसिक एवं बौद्धिक दृष्टि से प्रखर एवं भावनात्मक दृष्टि से परिपक्व बनाना ही युग धर्म है । यही महाकाल की इच्छा-आकांक्षा एवं सुनिश्चित निर्धारणा है ।

भावी सदी नारी प्रधान

इक्कीसवीं शताब्दी महिला प्रधान सदी के नाम से जानी जाय, ऐसी परिस्थितियाँ बन रही हैं और बनने जा रही हैं । इस तथ्य को स्वीकार करने में असमंजस भी हो सकता है और प्रश्न उठ सकता है कि प्रचलन से लगभग सर्वथा विपरीत इस प्रकार की परिस्थितियाँ भला किस प्रकार बन सकेंगी और जिन सुविधाओं को, सम्बन्धित व्यक्ति इन दिनों सहज ही उठाते रहते हैं, उनमें कटौती करने-कराने के लिए सहमत कर सकना किस प्रकार संभव होगा ? कोई सुविधाएँ छोड़ कष्ट-कठिनाइयों को वरण करने के लिए क्यों तैयार होगा ?

यहाँ कुछ बातें नये सिरे से समझने और समझाने की आवश्यकता पड़ेगी । नारी कुछ उत्कृष्टताओं और विशेषताओं का समुच्चय है । देखने में वह मानुषी प्रतीत होते हुए भी चेतना और भावना की दृष्टि से चेतना से उठी और जुड़ी प्रतीत होती है । जो विभूतियाँ नारी को सहज ही उपलब्ध हैं, उन्हें हस्तगत करने के लिए नर को एक प्रकार की विशिष्ट साधना-तपश्चर्या करने, पुण्य-परमार्थ का बढ़-चढ़कर परिचय देने के उपरान्त ही किसी सीमा तक प्राप्त कर सकना सम्भव होता है । इस अभाव को दूर करने में सफलता प्राप्त कर लेना ही नारी सदी का आगमन समझा जा सकता है । इसी के बिना संसार में अगणित प्रकार के त्रास एवं अनाचार बल पकड़ रहे हैं ।

धर्मधारणा और सेवा-साधना यह दो दैवी गुण ही मनुष्य को महानता उपलब्ध करा देते हैं । इनकी उपलब्धि जिस उच्चस्तरीय जीवन-साधना के सहारे बन पड़ती है, पुरुषों को प्रायः उससे वंचित देखा गया है, जबकि महिलाएँ किसी विशेष साधना का उपक्रम अपनाए बिना भी उन्हें सहज स्वाभाविक रूप से धारण किए रहती हैं और अवसर मिलने पर उनमें आशातीत अभिवृद्धि भी कर लेती हैं ।

क्रूरता, निष्ठुरता के दुर्गुणों को अपनाने वाले प्रायः अनाचाररत रहते ही देखे जाते हैं । हिंसक प्राणियों को प्रायः इसी स्तर का आतंकवादी जीवन जीते देखा गया है । स्वार्थपरता और निष्ठुरता की मर्यादाओं का जो भी उल्लंघन करे, वह स्वयं तो पतन-पराभव के गर्त में गिरेगा ही, साथ ही अपने सम्पर्क में आने वालों को भी गिराने, त्रास देने में लगा रहेगा । बिना करुणा-संवेदना के कोई न तो आत्म-संयम बरत सकता है, न दूसरों की सेवा-सहायता कर सकता है । उसके क्रिया-कलाप शोषण, दोहन, अपहरण और अनाचार से ही भरे रहते हैं । इसका जीवन्त उदाहरण पुरुषों में पाई जाने वाली प्रवृत्तियों का बाहुल्य देखते हुए सहज ही माना जा सकता है । साधारणजनों की

दिनचर्या एवं प्रवृत्ति को देखते हुए उनमें उन दुर्गुणों का बाहुल्य है, जो संसार में अनाचार का, अवांछनीयता का वातावरण विनिर्मित करते हैं ।

इतिहास के पन्ने उलटने से पता चलता है कि संसार में अब तक के युद्ध प्रयोजनों में धन-जन की असीम हानि हुई है । इनके पीछे न्यायोचित कारण तो कदाचित् ही कभी कुछ रहे हों, पर अहंकार, दर्प, शौर्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने ही युद्धों में प्रमुख भूमिका निबाही है । प्राणियों का जीभ-लोलुपता के कारण वध करते रहना प्रायः उन्हीं से बन पड़ता है । अपराधों और अपराधियों की एक लम्बी शृंखला है । उसमें कौन प्रमुख रूप से प्रवृत्त है, इसका पता लगाने पर ही प्रतीत होगा कि इन कुकर्मों में पुरुषों की ही प्रधान अभिरुचि होती है । पुलिस, कचहरी, जेल का विवरण तलाशने पर प्रतीत होगा कि इन कुकर्मों में पुरुषों ने ही प्रमुखता अपनाई है । नारी वर्ग के अपराधियों की संख्या तो तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर नगण्य जितनी ही दीख पड़ती है । छल, प्रपंच, अनीति, अन्याय के कृत्यों में भी नारी को प्रायः स्वल्प ही देखा जाता है । उनके लिए दुष्प्रवृत्तिरत पुरुष वर्ग ही अधिक पाया जाता है । विज्ञान और बुद्धिवाद पर उन्हीं की प्रभुता रही है फलतः इन दोनों में ही उनकी योजनाएँ ही अग्रगामी रही हैं । आर्थिक अपराधों पर दृष्टिपात करने से तो पुनः यही प्रतीत होता है कि यह पुरुष वर्ग के स्वभाव में ही सम्मिलित व्यभिचार, बलात्कार में उन्हीं की दुरभि-संधियाँ प्रधान रूप से काम करती दिखाई देती हैं । समग्र विश्लेषण करने पर संसार में अवांछनीयताएँ उत्पन्न करने वाले ये पुरुष वर्ग ही अपने कीर्तिमान स्थापित करते देखे गये हैं । इसके ठीक विपरीत नारी वर्ग के स्वाभाविक प्रयासों में सेवा-साधना और धर्म-धारणा के तत्व ही आदि से अन्त तक भरे पाये जाते हैं । अभिभावकों के परिवार से लेकर ससुराल वालों तक में आजीवन उसकी उदारता, करुणा, सेवा, सद्भावना ही पुण्य-परमार्थ के रूप में काम करती देखी जाती है । वह पाती न्यूनतम है और देती इतना है, जिसे उदारतम एवं पुण्य-परमार्थ का कीर्तिमान कहा जा सके । पति को, संतान को, परिवार को जो अनुदान उसके द्वारा प्रदान किये जाते हैं, उनका आकलन करने पर उन्हें दयालुता और सेवा-साधना की श्रेणी में ही गिना जा सकता है । पग-पग पर अपमानित और शोषित होते रहने पर भी उनके मन में कदाचित् ही कभी अपवाद रूप में प्रतिशोध की भावना उपजती देखी गयी है । सिर्फ नाम के आगे ही देवी शब्द नहीं जोड़ा जाता, वस्तुतः उनका मौलिक स्वभाव ही ऐसा होता है । इसीलिए धरती माता, भारत माता, श्रद्धा, उदारता, मर्यादा, संयमशीलता आदि के प्रतीक रूप में नारी को ही स्मरण किया जाता है ।

इक्कीसवीं सदी के साथ जुड़े हुए उज्ज्वल भविष्य को नारी सदी इसलिए कहा जा रहा है कि प्रचलन और क्रिया-कलापों में से निष्ठुर अहंमन्यताओं का परिशोधन होने जा रहा है और उसके स्थान पर सद्भावना, सहकारिता, उदारता की स्थापना होने जा रही है । इसे प्रचलनों से जुड़ा हुआ आमूल-चूल परिवर्तन कहा जा सकता है ।

आज समस्याएँ अगणित हैं । कोई क्षेत्र ऐसा बचा हुआ नहीं है, जिसमें औचित्य की, अवांछनीयता की भरमार न हो । उनके निराकरण हेतु मूर्धन्यों और विशेषज्ञों की अनेकानेक योजनाएँ बन रही हैं और क्रियाएँ चल रही हैं, पर समग्र निराकरण की कोई सूरत कहीं दीख नहीं पड़ती । अध्यात्म तत्वज्ञान् ही इस संदर्भ में किसी सुनिश्चित समाधान को खोज निकालने का दावा करता है । उसके अतिरिक्त निराकरण का कोई और उपाय खोज पाना कठिन है । वह उपाय है—"नर की अभ्यस्त दुष्प्रवृत्तियों को उलट कर उन्हें इतना सौम्य बना दिया जाय, जितनी कि नारी की सहज-स्वाभाविक रूप में उपलब्ध है ।" यही बन पड़े तो समझना चाहिए कि नारी प्रधान शताब्दी आ गयी है और उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाएँ साकार होने की स्थिति बन गयी । साथ ही सर्वनाशी दर्बुद्धि के कारण उत्पन्न होने वाली दुर्गति की विभीषिका भी टल गयी ।

नारी का वर्चस्व अब फिर से उभरेगा

नारी के अन्तराल में भावना एवं संवेदना जैसे मानवीय गुण स्नेह, सरसता के मधुर रसों से सरोवर रहते हैं । जब-जब भी बुद्धि को प्रधानता मिली और शाश्वत् सन्तुलन बिगड़ा तब-तब अपने इस अनुपम गुण से उसने पुरुष जाति का मार्ग-दर्शन किया, समाज में ऐसी प्रेरणा भरी, जिससे बिगड़ा हुआ संतुलन फिर से सम्भल जाय । आज भी ऐसा भी कुछ हो रहा है । मनुष्य की आँखों में स्वार्थपरता जनित लोभ, मोह और अहंकार का आवरण इतना गहराता जा रहा है, जिसके कारण कभी का विश्व-परिवार सिमटकर व्यक्तिगत परिवार के छोटे दायरे में केन्द्रित हो गया है, फलतः दुर्बुद्धिजनित जो परिणाम उभरकर सामने आ रहे हैं, उससे आशंका पैदा होती है कि मनुष्य जाति अपना अस्तित्व अक्षुण्ण रख पायेगी या नहीं । नारी ने ही आदिमकाल में उसे बर्बर से सभ्य बनाया था और उस सभ्यता से उत्पन्न समस्याओं के समाधान के लिए यह नारी जाति अब पुनः करवट बदल रही है, जिसके कारण पुरुष के अन्तःकरण में संवेदना का अंश यदि पुनः जाग्रत हो जाय और सुव्यवस्था एवं शान्ति दीर्घकाल तक बनी रहे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिए ।

जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त यदि नारी स्वरूप का अध्ययन करें तो ज्ञात होगा कि वह भिन्न-भिन्न रूपों में मनुष्य के अन्तराल में समय-समय पर स्नेह एवं सरसता का संचार करती रही है । अधिकांश क्षणों में उसके मातृ-

स्वरूप के दर्शन होते हैं, किन्तु यह मात्र आज ही नहीं हो रहा है, बल्कि सभ्यता के उच्च शिखर पर चढ़ने से पूर्व जब मानव असभ्य एवं जंगली था, उन दिनों भी नारी ने ही उसके अन्तराल में अपनी भावना, संवेदना, सरसता एवं कोमलता का प्रलेप देकर असंस्कृत मानव को सभ्यता के द्वितीय सोपान पर चढ़ाया था। विकासोन्मुख मानव सभ्यता की प्रथम अभिव्यक्ति जननी के स्नेह, सौजन्य से अभिसिंचित होने के माध्यम से ही होती है। इसके कई प्रमाण जीव-जगत का अवलोकन करने पर प्राप्त होते हैं।

शेर, चीते, बाघ, भालू जैसे हिंसक पशुओं में क्रूरता की भावना बलवती रहती है। निष्ठुरता का यह स्वरूप तब तक दृढ़ होता जाता है, जब तक नारी जाति के स्नेह का मृदुल स्पर्श उसे न मिले, किन्तु उनके जीवन में जब संवेदना का प्रवेश होता है, तो उसकी क्रूरता एवं वहशीपन धीरे-धीरे पारिवारिकता का विस्तार करने में जुट जाते हैं। यह पशुओं में ही नहीं, वरन् मनुष्य जाति में भी अक्षरशः लागू होता है। ऐतिहासिक प्रमाणों से पता चलता है कि बर्बरता के युग में मानव जाति भिन्न-भिन्न टोलियों में बँटी हुई थी। यदि एक टोली के किसी व्यक्ति से अन्य टोली के प्रति कोई अपराध हो जाता था, तो अन्य टोली के व्यक्ति उसके प्राण हरण का ही ताना-बाना बुना करते थे, जिसके कारण मनुष्य जाति का पशुवत् विकास तेजी से हो रहा था। समझ के अभाव में एक-दूसरे को मारना ही मुख्य उद्देश्य रह गया था। खून के बदले खून लेना ही बर्बर समाज का नियम था, किन्तु नियन्ता को ही इस बिगड़ी परिस्थिति को सम्भालकर मानव को सुसंस्कृत जो बनाना था।

यौन आकर्षण के कारण जब शारीरिक सम्बन्ध स्थापित होने लगे तो नारी जिस वर्ग से आयी थी, उस टोली के साथ दूसरी टोली का पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। ऐसे भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित होने के बाद यदि दूसरी टोली से कुछ अपराध हो जाता था, तो सोच-विचारकर ही दण्ड विधान का निर्णय किया जाता था। तब बर्बर मनुष्यों में भी नृशंस उन्माद, रक्त लोलुपता, क्रूरता जैसे पशुवत् गुण मातृ जाति के स्नेह रस के संस्पर्श में आने से पलायन करने लगे और रक्त के बदले रक्त लेने की प्रतिस्पर्द्धा शान्त हुई। मनुष्य बर्बरता के सोपान से शनैः-शनैः सभ्यता के सोपान पर आरूढ़ होता चला गया।

इसके बाद भी नारी के अनुदानों का क्रम बन्द नहीं हुआ, बल्कि पुरुष जाति को सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाने का दायित्व भी नारी ने अपने ऊपर लिया। आदिम अवस्था में वन्य पशुओं के शिकार से ही मनुष्यों का जीवन निर्वाह होता था। कहीं तो बर्बर जाति मछलियों का शिकार करती थी और कहीं जंगल के पशुओं का। उनका जीवन घुमन्तू बनजारों जैसा ही होता था। पुरुष जंगल में शिकार करने चले जाते थे, नारी उस समय पुरुषों की सेवा के लिए दूसरे प्रकार के कार्यों में लिप्त रहती थीं। इसी काल में उसके दिमाग में खेती करने का उपाय सूझा और मानव सभ्यता के इतिहास में नारी का यह खेती का प्रयास एक अभूतपूर्व घटनाक्रम साबित हुआ। नारी ने किस प्रकार अपने निर्वाह का अभिनव मार्ग खोज निकाला, इसका पूर्ण इतिहास विस्मृति के गर्भ में विलीन हो चुका है, किन्तु नृतत्व विज्ञान इस बात की पुष्टि करता है कि नारी ने ही सर्वप्रथम खेती का कार्य प्रारम्भ किया था। नारी के ही कारण मानव का अद्भुत विकास सम्भव हो सका। खेती से मानव समाज में एक अद्भुत क्रान्ति उत्पन्न हुई। इसके बाद ही परिवार व्यवस्था पनपी, संग्रह कि लिए घर बसाने की योजना बनी, सहकारी वृत्तियों को पोषण मिलने लगा, सदस्यों के साथ स्नेह-सम्पर्क की योजना बनी, स्वार्थपरता परमार्थ में परिणत हुई और मनुष्य सभ्यता, सुसंस्कारिता की ओर चरण बढ़ाने लगा।

अब समय आदिम युग से भी जटिल आया है, जिसमें दुर्बुद्धिजन्य दुष्प्रवृत्तियाँ अपनी गहरी जड़ें जमा रही हैं। व्यक्ति अनाचार और अत्याचार में गहरी रुचि ले रहा है, क्योंकि बौद्धिक पक्ष एकांगी चिन्तन को प्रश्रय दे रहा है। जिससे भावना, संवेदना पक्ष की ओर से मनुष्य पिछड़ता जा रहा है, फलतः पाषाणकालीन युग से भी अधिक विनाशकारी वातावरण की सम्भावना विनिर्मित होने की आशंका बढ़ती जा रही है। इन्हीं सब कारणों से स्रष्टा ने यह नया निर्धारण किया है कि नारी जाति को एक बार पुनः उभारा जाय और हर मनुष्य को इससे तरंगित किया जाय, ताकि मस्तिष्क और अन्तःकरण का बुद्धि और करुणा का संतुलन बैठे, ताकि विनाश के स्थान पर विकास की स्वर्णिम परिस्थितियाँ बन सकें। अगले दिनों ऐसा ही कुछ नया निर्धारण होने वाला है, जिसमें नारी जाति तो धन्य होने जा ही रही है, साथ ही पुरुष भी प्रगति के उच्च सोपानों पर आरूढ़ होने जा रहा है। प्रगति समाज का मात्र एकांगी विकास बनकर नहीं रह जाएगी, बल्कि इससे पुरुषों का भी हित सन्निहित होगा। जो नारी मातृ रूप में हमें निरन्तर स्नेह, सरसता, वात्सल्य से प्रेरणा, प्रकाश एवं पोषण देती रहती है, वह हमारा अहित कैसे चाहेगी ? परिस्थितियाँ यही माँग भी कर रही हैं। इसके लिए हमें भी कुछ उत्तरदायित्व निभाने, उन्हें बढ़ाने के लिए भी तैयार-तत्पर रहना पड़ेगा, ताकि इस श्रेय-सौभाग्य से हम वंचित न हो जाएँ।

नारी अभ्युदय एक सुनिश्चितता

विगत दिनों यूनेस्को द्वारा किए गए एक विश्वव्यापी सर्वेक्षण के अनुसार यह तथ्य उभरकर सामने आया है कि पुरुष वर्ग का नारी समुदाय के प्रति दृष्टिकोण तेजी से बदला है। महिलाओं की शैक्षणिक योग्यता बढ़ाने, प्रतिभा के क्षेत्र में आगे आने के अवसर प्रदान करने और उस अनुदान से समाज को, राष्ट्र को लाभान्वित होने के प्रति लोगों की

समझ में महत्त्वपूर्ण बदलाव आया है । पिछले तीन दशकों में उच्चस्तरीय शिक्षण के क्षेत्र में महिलाओं की संख्या में असाधारण अभिवृद्धि हुई । शिक्षा, चिकित्सा, व्यवसाय एवं तकनीकी आदि विभिन्न क्षेत्रों में जिन राष्ट्रों ने नारी का सहयोग लिया है, उनका आर्थिक सामाजिक ढाँचा ही बदल गया है ।

श्रम, बल के रूप में महिलाएँ विश्व विख्यात हैं । ब्रिटेन में इनकी संख्या सर्वाधिक है । ९५ प्रतिशत महिलाएँ श्रमिकों के रूप में विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं । जहाँ पहले कार्यालयों में क्लर्क जैसी छोटी-मोटी नौकरियों से उन्हें संतोष करना पड़ता था, वहाँ पिछले दो दशकों में उनमें भी जाग्रति आयी है और आज प्रत्येक क्षेत्र में वहाँ महिलाकर्मियों का वर्चस्व कायम है । चीन ने भी नारी की प्रतिभा बढ़ाने में कुछ कमी नहीं रहने दी है । इसलिए कृषि प्रधान होते हुए भी वह समुन्नत स्थिति में है ।

फ्रांस में नारियाँ सदियों से घर-गृहस्थी तक ही सीमित रही हैं । महिला श्रमिक परम्परा पारम्परिक होते हुए भी जब उनमें नवचेतना का संचार हुआ और अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी तो विवश होकर फ्रांस सरकार को सन् १९६४ में महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार प्रदान करने पड़े । अन्य पश्चिमी देशों की अपेक्षा फ्रांस में नारियों पर अब उतने प्रतिबन्ध नहीं हैं । सैद्धान्तिक रूप में प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति के द्वार महिलाओं के लिए खुले हैं । फ्रांसीसी महिलाएँ घरेलू अर्थव्यवस्था की ४० प्रतिशत आय स्वयं जुटाती हैं, शेष भाग पुरुषों के जिम्मे आता है । वहाँ ७५ लाख से अधिक महिलाएँ विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय रूप से श्रमरत हैं । विश्वविद्यालयीन शिक्षाओं में इनकी संख्या ४५ प्रतिशत है । २५ प्रतिशत नारियाँ फैक्टरियों एवं कृषि कार्यों में श्रमरत हैं ।

अमेरिका में महिलाओं की स्थिति पुरुषों से भिन्न है । वहाँ ४० प्रतिशत महिलाएँ श्रमिक बल-लेबर फोर्स के रूप में कार्यरत हैं । उन्हें पुरुष श्रमिकों की अपेक्षा पारिश्रमिक की आधी राशि मिलती है । यही कारण है कि आर्थिक क्षेत्र में महिलाएँ पिछड़ी हुई हैं । १९६० में महिलाओं की वार्षिक आय २००० डालर थी, जो पुरुषों की तुलना में बहुत कम थी । १९७५ में कुछ सुधार परिवर्तन हुआ और महिलाओं की आय बढ़कर ५००० हजार डालर प्रतिवर्ष हो गयी । ३००० से १५०० हजार डालर प्रतिवर्ष कमाने वाले श्रमिकों में से ६३ प्रतिशत महिलाएँ हैं । अधिसंख्य महिलाओं को क्लर्क जैसी छोटी-मोटी नौकरियों से ही संतोष करना पड़ता है ।

इण्डोनेशिया की महिलाएँ इस्लामिक जगत में अपने निरालेपन के लिए विख्यात हैं । सुमात्रा को छोड़कर समूचे राज्य की महिलाएँ पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर प्रत्येक क्षेत्र में उनका साथ देती हैं । उन्होंने बुर्के जैसी इस्लाम धर्म की कट्टर प्रथा को भी उतार फेंका है । दक्षिणी सुमात्रा में शताब्दियों से महिलाओं का ही वर्चस्व चला आ रहा है । बच्चे तक महिलाओं की सम्पत्ति माने जाते हैं और उन पर माताओं का पूरा अधिकार होता है । महिलाओं की देख-रेख में ही अधिकांश कार्य सम्पन्न होते हैं । सामाजिक, आर्थिक और तलाक के मामलों में भी महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार प्राप्त हैं ।

पिछड़े देशों में नारी की दशा अभी भी गयी-बीती है । पुरुषों का दबाव जहाँ कम नहीं हुआ है, वहाँ अब भी उनकी स्थिति दयनीय है, पर जिस तूफानी गति से परिवर्तन चक्र घूम रहा है और पिछले दिनों नारी समाज में जिस विलक्षणता से जाग्रति आयी है, उसे देखते हुए यही आशा बँधती है कि नारी वर्ग अब पीड़ित, दमित व पिछड़ी स्थिति में नहीं रहेगा और अपने प्राचीन गरिमामय इतिहास को पुनः दोहरायेगा । यह आशा तब और भी बलवती हो उठती है, जब अभी कुछ दिन पूर्व एक ज्वलन्त छोटे व अधिकांश देश-निकारागुआ की राष्ट्रपति एक महिला निर्वाचित हुई ।

सर्वेक्षण रिपोर्ट भी इसी बात का समर्थन करती है । विज्ञान के विषयों में प्रवेश लेने वाली छात्राओं का अनुपात विगत एक दशक में तेजी से बढ़ा है । यूनेस्को की एक रिपोर्ट के अनुसार १९८० में उच्च कक्षाओं में शिक्षार्जन कर रही छात्राओं का प्रतिशत विभिन्न देशों में इस प्रकार था–मिस्र ४० प्रतिशत, पूर्वी योरोप–बुल्गारिया, पोलैण्ड, रूमानिया, हंगरी, युगोस्लाविया तथा चेकोस्लाविया में ५० प्रतिशत और नीदरलैण्ड, नार्वे, पश्चिम जर्मनी, ग्रीस में ४० प्रतिशत, दक्षिण अमेरिका के राज्यों में ४५ प्रतिशत । एशियाई देशों में भी कुछ देश ऐसे हैं जिनमें विज्ञान विषयों में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही छात्राओं का प्रतिशत अधिक है । कोरिया, इण्डोनेशिया में छात्राओं की संख्या छात्रों से दुगुनी है ।

विज्ञान एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों की सेवाओं में भी महिलाएँ अब पिछड़ी नहीं हैं । फ्रांस के प्रख्यात रिसर्च इन्स्टीटयूट 'सेंस्तर नेशनल द लाँ रिसर्च साइन्टिफिक' संस्थान में वैज्ञानिक महिलाओं का प्रतिशत ३१ है । इसकी अनेकों सम्बद्ध प्रयोगशालाओं की निदेशक भी महिलाएँ हैं । वैज्ञानिक प्रगति की दृष्टि से अमेरिका विश्व के देशों में अग्रणी है । अमेरिकी आबादी में स्त्रियों का प्रतिशत ५१ है । यहाँ चिकित्सा विज्ञान ने विशेषज्ञ स्त्रियों का प्रतिशत १० तथा भौतिक विज्ञान में ११ है ।

कम्युनिस्ट देशों ने भी कानून पारित करके स्त्रियों को हर क्षेत्र में पुरुष के समकक्ष माना तथा सेवा का समान अवसर प्रदान किया है । सोवियत रूस में ४० प्रतिशत, पौलैण्ड में ३० प्रतिशत तथा हंगरी में १३ प्रतिशत वैज्ञानिक कर्मचारी महिलाएँ हैं । यूनेस्कों की रिपोर्ट में यह कहा गया है कि विभिन्न प्रगतिशील देशों की महत्त्वपूर्ण सेवाओं में तीव्र गति से स्त्रियों का अनुपात बढ़ने का सबसे बड़ा कारण यह है कि नारियाँ पुरुष की अपेक्षा अधिक कार्य-कुशल, प्रामाणिक, अनुशासनप्रिय और जिम्मेदार होती हैं । सर्वेक्षण रिपोर्ट का निष्कर्ष है कि उन्होंने विगत दशक में अधिक प्रामाणिकता और दक्षता का उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

कृषि जैसे श्रमसाध्य कार्य में विभिन्न देशों में नारियों की भागीदारी प्रशंसनीय है । अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कहा है कि विकासशील तथा अविकसित देशों के अन्न उत्पादन में ५० प्रतिशत योगदान महिलाओं का है । अफ्रीका में साठ प्रतिशत कृषि कार्य महिलाओं पर अवलम्बित है । पचास प्रतिशत पशुपालन तथा शत-प्रतिशत फूडप्रोसैसिंग में सहयोग स्त्रियों का है । तंजानिया में हुए हाल के एक सर्वेक्षण से पता चला है कि महिलाएँ औसतन २६ सौ घण्टे प्रतिवर्ष कृषि कार्य करती हैं, जबकि पुरुष १८ सौ घण्टे प्रतिवर्ष । एक अन्य रिपोर्ट में बताया गया है कि लगभग ६० करोड़ महिलाएँ प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक गतिविधियों में क्रियाशील हैं । डेनमार्क में पशुपालन तथा कृषि कार्य में नारियाँ पुरुषों से अधिक सक्रिय हैं ।

पश्चिम जर्मनी तथा पश्चिम बर्लिन में विगत दिनों यातायात दुर्घटनाओं में भारी वृद्धि हुई । वहाँ एक सर्वेक्षण किया गया तो मालूम हुआ कि मोटरकार आदि वाहनों को चलाने में पुरुष-स्त्रियों की अपेक्षा तीन गुनी अधिक दुर्घटनाएँ करते हैं । सरकार वहाँ यह विचार कर रही है कि दुर्घटनाओं की रोकथाम के लिए वाहन चलाने का कार्य भी स्त्रियों के जिम्मे सौंप दिया जाय । मनोवैज्ञानिकों ने पुरुषों द्वारा अधिक दुर्घटनाएँ किए जाने का कारण बढ़ते हुए मानसिक असंतुलन को बताया । अपने अध्ययन में उन्होंने पाया कि मन:सन्तुलन की दृष्टि से नारियाँ पुरुषों से कहीं आगे हैं ।

साहस, पराक्रम और शारीरिक बलिष्ठता की सबसे अधिक आवश्यकता सैन्य कार्यों में पड़ती है । कुछ समय तक परम्परागत मान्यता के अनुसार स्त्रियों का सेना में प्रवेश वर्जित रखा गया था । इस क्षेत्र में एकाधिकार पुरुष का रहा है । इसका कारण महिलाओं की असमर्थता नहीं उन्हें कमजोर समझने का दुराग्रह ही रहा है, पर धीरे-धीरे यह दुराग्रह भी समाप्त होता जा रहा है । सुरक्षा एवं सुव्यवस्था के दायित्व में महिलाओं का यों तो न्यून योगदान पहले से रहा है, पर अब सेना का क्षेत्र भी उनके लिए निषिद्ध नहीं रहा । अमेरिकी सैन्य प्रतिरक्षा विभाग में स्त्रियों का प्रवेश एक व्यापक अभियान के रूप में आरम्भ हुआ है । उन्हें सैन्य अकादमियों में ऊँचे ओहदे तक प्रदान किए जा रहे हैं । संयुक्त यूनिटों की कमान के नेतृत्व का दायित्व उनको सौंपा जा रहा है ।

अमेरिकी नौ सेना में महिलाओं का प्रवेश अब बिना किसी बाधा के होने लगा है, पर थल सेना में उनके प्रवेश पर अभी भी प्रतिबन्ध हैं । विशेषकर युद्ध के सीधे मोर्चे पर उन्हें भेजने में कितनी ही मनौवैज्ञानिक कठिनाइयाँ आ रही हैं, तो भी नौ सेना एवं वायु सेना के अन्य कार्यों का संचालन महिलाएँ पूरी तत्परता से कर रही हैं । एक आँकड़े के अनुसार सेना के इन तीनों विभागों में पन्द्रह लाख से भी अधिक स्त्रियाँ कार्यरत हैं ।

प्रगतिशील देशों में आई जन-जाग्रति से यहाँ सोचा जा रहा है कि स्त्रियों को समुचित अवसर दिए बिना उनका विकास सम्भव नहीं है । आधी जनसंख्या का यदि सहयोग न मिला तो समाज और देश की प्रगति अवरुद्ध रहेगी । परम्परागत मान्यताओं से अलग हटकर नारियों को हर क्षेत्र में अपनी कुशलता का परिचय देने के लिए अवसर एवं साधन दिए जा रहे हैं । इसका आशातीत परिणाम भौतिक समृद्धि के रूप में प्रस्तुत हुआ है । प्रगति के इस युग में अपने देश की आधी जनसंख्या यदि घर की चारदीवारी में, चूल्हे-चौके तक सीमित रही तो इससे बढ़कर दु:ख की बात अपने लिए दूसरी न होगी । अब समय आ गया है कि समाज के विचारशील वर्ग को स्त्रियों के विकास के लिए हर सम्भव उपाय करना चाहिए ताकि उनकी प्रसुप्त क्षमताओं को जाग्रत होने का अवसर मिल सके ।

कैसी होगी इक्कीसवीं सदी की नारी ?

यह अब स्थापित हो चुका है कि इक्कीसवीं शताब्दी महिला प्रधान शताब्दी होगी । पुरुष अपनी निष्ठुरता धूर्तता और बलिष्ठता के आधार पर ही वर्चस्व प्राप्त करता रहा है, पर यह आधार अगले दिनों काम आने वाला नहीं है ।

अर्थ-व्यवस्था न अब जैसी रहेगी और न शासन सत्ता इन आधारों पर खड़ी रहेगी जिन पर अभी खड़ी है । लोग अपना उचित रूप से निर्वाह प्राप्त करेंगे, पर धन का इतना संचय कहीं दृष्टिगोचर न होगा, जिसका शोषण, अपहरण करना पड़े, ठगने या आक्रमण करने की आवश्यकता पड़े । इस प्रकार शारीरिक बलिष्ठता की उपयोगिता भी समाप्त हो चलेगी । अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग इस प्रकार होने लगेगा कि किसी के लिए आत्मरक्षा का प्रबंध न करना पड़ेगा । धूर्तता आज के समाज में चल सकती है, क्योंकि उसके सहायक पोषक अनेक लोग हैं । पीछे जब समाज व्यवस्था का आधार ही नीतिनिष्ठा और समाजनिष्ठा होगी तो न धूर्तता के जाल फैलाये जा सकेंगे और न कोई उनमें फँसेगा ही । न्याय-निष्ठ ताने-बाने इस प्रकार बुने हुए होंगे जिसमें धूर्तता का प्रवेश किसी प्रकार सम्भव ही न हो सके । जो दुस्साहस करे, वह पकड़ा जाय और प्रताड़ित हो, ऐसी परिस्थितियाँ निकट भविष्य में विनिर्मित होकर रहेंगी । तब पुरुष प्रधानता के वर्तमान सभी आधार लड़खड़ा जाएँगे । जिन सद्गुणों की, जिस भाव संवेदना और उदारता की नए समाज को आवश्यकता पड़ेगी, उनका बाहुल्य नारी में ही पाया जाएगा और स्वभावत: उसे अपने अधिकार प्राप्त करने में कठिनाई न होगी । जो रूढ़िवादिता और प्रतिगामिता अभी नारी को मानवी अधिकार देने में चट्टान की तरह अड़ती है, उनका हठवादिता साथ नहीं देगी ।

स्टेट ऑफ वर्ल्ड पापुलेशन के अनुसार इस शताब्दी के अन्त तक महिलाएँ पुरुषों की तुलना में २० करोड़ अधिक होंगी । अभी संसार भर में ५०० करोड़ मनुष्य रहते हैं, इसमें प्रायः आधी महिलाएँ हैं पर अब समय की माँग के अनुपात से नारी की संख्या बढ़ेगी । प्रजनन उन्हीं का अधिक होगा । होता तो अभी भी है पर उपेक्षा के कारण १४ वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते वे लड़कों से पीछे ही रह जाती हैं । बढ़ी हुई बालिकाएँ अभावों और तिरस्कारों के बीच अपना दम तोड़ देती हैं । अब अगले दिनों वैसा न हो सकेगा और प्रकृति ने पेड़ पर जितने फूल लगाए हैं, वे सभी सुरक्षित रहेंगे । स्त्रियों की जन-गणना स्वभावतः बढ़ती जाएगी । यह क्रम भविष्य में भी जारी रहेगा और विचारकों का अनुमान है कि इक्कीसवीं सदी बीतते-बीतते संसार में दो तिहाई महिलाएँ होंगी और एक तिहाई पुरुष । प्रकृति अनुपयोगी को घटाती है । पुरुष का अधिकांश काम जब मशीनें ही करने लगेंगी तो उनकी आवश्यकता भी उतनी न रहेगी । चौकीदारी स्तर के काम ही उनके पल्ले पड़ेंगे ।

बौद्धिक क्षेत्र में नारी की वरिष्ठता सदा से अग्रणी रही है । उनकी मानसिक संरचना में सृजन, दुलार, संयम, नियमन और व्यवस्था क्रम स्वभावतः अधिक मात्रा में रहा है । अधिक छिन जाने और अवसर न मिलने पर यह हो सकता है कि वे अपंग, अविकसित स्थिति में पड़ी रहें और तिरस्कार सहते-सहते अपना मनोबल खो बैठें, पर जब कभी उन्हें प्रोत्साहन, मार्गदर्शन और काम मिला है तो उन्होंने उसे अपेक्षाकृत अधिक सफाई और चतुराई से पूरा कर दिखाया है । परीक्षा के सम्बन्ध में न केवल भारत का वरन् समस्त विश्व का रिकार्ड यह है कि महिलाएँ ही अधिक संख्या में अधिक ऊँचे नम्बरों से उत्तीर्ण होती हैं । उनका शारीरिक ढाँचा तगड़ा तो नहीं होता, पर उसमें कोमलता एवं सहनशीलता कहीं अधिक मात्रा में पाई जाती है ।

और भी कितने ही प्रसंग ऐसे हैं जिनमें नारी की दक्षता अपेक्षाकृत अधिक उभरी हुई रही है । ललित कलाओं की उन्हें अधिष्ठात्री ही कहा जा सकता है । संगीत, नृत्य, अभिनय तो मानो उन्हीं के लिए गढ़ा गया हो । पुरुष तो उसमें धक्का मार कर घुस पड़ते हैं ।

बुढ़ापा, संजीदगी के अर्थ में लिया जाता है । इस अर्थ में नारी पचास वर्ष के उपरान्त भी अपनी संजीदगी और जवानी बनाये रहती है । उनका प्रजनन पचास से पहले ही बन्द हो जाता है । तदनुसार कामेच्छा भी, किन्तु पुरुष इस क्षेत्र में अधिक आयु बीत जाने पर भी अपनी शक्तियों की बर्बादी के लिए प्रयास करता और मन चलाता रहता है । ऐसी दशा में नर की अपेक्षा नारी अधिक जीती है । विधुरों की तुलना में विधवाओं की संख्या अधिक पाई जाती है ।

परिवार के छोटे दायरे में उसे पूरी मेहनत करनी और जिम्मेदारी निभानी पड़ती है । उसका ठीक प्रकार से संचालन कम महत्त्व का नहीं माना जा सकता । उनमें प्रतिभा भी है और विशिष्टता भी । यदि इस सन्दर्भ में उनकी शिक्षा और योग्यता बढ़ाकर समाज के बड़े काम सौंपे जाएँ तो वे अपेक्षाकृत अधिक अच्छी तरह कर दिखा सकती हैं ।

प्रगति को प्राप्त देशों में कुछ विभाग विशेष रूप से नारी को सौंप दिए गये हैं । स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षा, समाज-कल्याण, शिशु-पोषण, कृषि, पशुपालन, दफ्तर जैसे कामों में महिलाओं को जुटा दिया गया है और आधी जन-शक्ति को निरर्थक पड़े रहने देने की अपेक्षा उसका श्रेष्ठतम सदुपयोग किया जाता है ।

नई पीढ़ी किस स्तर की हो उसके गुण, कर्म, स्वभाव में किन विशेषताओं का समावेश रहे ? यह दायित्व नारी ही निभा सकती है । बच्चा अपने व्यक्तित्व का बड़ा भाग दस वर्ष की आयु तक बीज रूप में पूरा कर चुका होता है । तब तक वह माता के नियन्त्रण में ही रहता है । परिवार के दायरे में ही बचपन का अधिकांश समय गुजरता है । उसमें माता तथा दूसरी बड़ी आयु की महिलाएँ रहती हैं । उन्हीं की छत्रछाया में बालकों का शारीरिक, मानसिक विकास होता है । इन सब को एक प्रकार से अध्यापिकाएँ ही समझना चाहिए । वे अपनी कथनी और करनी से बालकों को जिस ढाँचे में ढालती हैं, वह स्वरूप प्रायः आजीवन बना रहता है । बीच में कोई बड़ा परिवर्तन तो यदाकदा ही देखने को आता है ।

समय तेजी से बदल रहा है । जो पिछड़ापन मुद्दतों से नारी को अपने शिकंजे में कसे हुए था, वह पकड़ अब ढीली भी होती जा रही है और समाप्त भी होने वाली है । जहाँ सुविधाओं का माहौल-बना नारी को भी उपयोगी कार्यों में अपनी प्रतिभा प्रकट करने का अवसर मिला । वह अब अबला नहीं रहेगी, वरन् सबला होकर प्रकट होगी ।

कहने को तो संसार में दरिद्रता को सर्वाधिक कष्टकारक और अनेक समस्याओं की जननी कहा जाता है, पर सच्चाई दूसरी ही है । प्रतिगामिताजन्य पिछड़ापन ही मनुष्य को मन्दगति और पिछड़ा हुआ बनाता है । आधी जनसंख्या नारी के रूप में इसी दुर्दशा से ग्रसित है । समय के परिवर्तन में स्थिति का उन्मूलन होगा तो यह भी निश्चय है कि नारी की वरिष्ठता और प्रतिभा निखर कर ऊपर आवेगी । उस उपलब्धि का समूची मानव जाति अगले दिनों असाधारण लाभ उठायेगी ।

नारी सदी का आगमन सुनिश्चित

इक्कीसवीं शताब्दी महिला प्रधान नारी के नाम से जानी जाएगी, ऐसी परिस्थितियाँ बन रही हैं । यह इसलिए कहा जा रहा है कि प्रचलन और क्रियाकलापों में से निष्ठुरता, अनुदारता का परिशोधन होने जा रहा है और उसके स्थान पर सदाशयता, सहकारिता, उदारता की

स्थापना होने जा रही है । यह विभूतियाँ नारी को सहज ही उपलब्ध हैं ।

पिछले दिनों नारी के सम्बन्ध में यही समझा जाता रहा है कि यह अबला है, बल पराक्रम से रहित । यहाँ तक कि अपनी आजीविका तक स्वयं अर्जित नहीं कर सकती । आत्मरक्षा तक में असमर्थ है । उसे दूसरों के अनुग्रह के सहारे ही जीवित रहना पड़ता है । ऐसी दशा में आश्रयदाता वर्ग यदि उससे मनचाहे लाभ उठाने और हुक्म बजाने में आनाकानी करने पर प्रताड़ना दें, तो उसमें बुराई क्या है ? पुरुष वर्ग की मान्यता यही है । इसी कारण वे घटनाएँ आये दिन घटित होती रहती हैं, जिन्हें स्त्रियों के साथ बरता गया अनाचार कहा जा सकता है । जैसे–दहेज कम लाने पर जला देना, घर से निकाल देना, सुन्दरता में कमी होने पर पग-पग पर तिरस्कृत करना, तनिक से मतभेद होने पर कड़ी प्रताड़नाएँ देकर मर्माहत करना आदि नामों से जाना जाता है, जिन्हें सहन न कर सकने वाली कितनी महिलाएँ आत्महत्या तक करने के लिए विवश होती हैं । यह किसी से छिपा नहीं है ।

विचारणीय है कि क्या नारी सचमुच अबला है ? क्या उसे आश्रय देने वाले दानवीर, उदारचेता, पुण्यात्मा भर हैं या उनका कुछ स्वार्थ भी हल होता है ? इस प्रश्न का समाधान प्रचलित मान्यताओं से आगे बढ़ने और नये सिरे से नया निष्कर्ष निकालने पर ही निकलेगा, अन्यथा उलटी मान्यता उलटे दुष्परिणाम ही प्रस्तुत करती रहेगी ।

गम्भीर विवेचन से इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है कि नारी किसी भी अर्थ में अबला नहीं है । वह दृष्टि से सदा-सर्वदा समर्थ रही है । उसकी वरिष्ठता अक्षुण्ण है । नृतत्त्वशास्त्री कहते हैं कि नारी में जीवनी-शक्ति नर की अपेक्षा कहीं अधिक है । उसमें असाधारण सहन-शक्ति पायी जाती है । रोगों और कष्टों से जूझने का उसमें असाधारण पराक्रम है । शरीर संरचना की दृष्टि से वह अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर, अधिक मृदुल, अधिक मधुर है । स्वर उसे असाधारण मिला है । सूझबूझ की धनी है । उसकी साहसिकता और बुद्धिमत्ता को यदि चरितार्थ होने का अवसर मिले तो वह पुरुष की तुलना मे कहीं अधिक सशक्त और वरिष्ठ सिद्ध होती है । मूर्धन्य स्तर की गिनी गयी प्रतिभाओं में पुरुष की अपेक्षा नारी वर्ग की संख्या कहीं अधिक रही है । परीक्षाओं और प्रतियोगिताओं में उसने अपने को अधिक शक्तिशाली सिद्ध किया है । आक्रमण करने में भले ही उसे संकोच रहा हो, पर वैसे दुष्कर्म और दुस्साहस करते नारी को कदाचित् ही देखा जाता है जैसे कि पुरुष वर्ग के अधिकांश लोग आये दिन बरतते रहते हैं ।

प्रयोग का अवसर न मिलने पर तलवार को जंग खा जाती है और बंदूक की नली कूड़े-कचरे से भर जाती है । यही तथ्य नारी प्रतिभा के क्षेत्र में भी लागू होता है । प्रतिभाशाली होने पर भी उसे सदुपयोग करने का अवसर नहीं दिया गया । जहाँ कहीं भी जिस भी क्षेत्र में उसे अपने शौर्य-पराक्रम का परिचय देने का, साहसिक कदम उठाने का अवसर मिला है, उसने उस क्षेत्र को पिछड़ा हुआ सिद्ध नहीं होने दिया है ।

अनुसूया ने भगीरथ से भी कड़ा तप करके मंदाकिनी को धरती पर उतारा था । दुरभिसंधि रचने पर उसने ब्रह्मा, विष्णु, महेश तक को छोटे बालकों जैसा बनाकर आँगन में खेलने के लिए विवश कर दिया था । देवगण जब दैत्यों से पराजित होकर किसी प्रकार जान बचाते फिर रहे थे, तो नारी ने महाकाली बनकर दैत्यों का दमन किया था और देवताओं को प्राण बचाने का अवसर दिया था । मानुषी ने अपने को स्वर्गलोक निवासियों की तुलना में अधिक वरिष्ठ सिद्ध किया था । पार्वती शिव पत्नी बनी । कुन्ती ने देव वंशधर उत्पन्न किये । मदालसा, सीता, शकुन्तला ने देव मानव उत्पन्न करके अपनी वरिष्ठता सिद्ध की । रानी लक्ष्मीबाई ने मात्र स्त्रियों की एक इतनी बड़ी विशाल सेना खड़ी की थी, जिसने शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये । विद्योत्तमा के प्रयत्नों ने अनगढ़ कालिदास को असाधारण विद्वान बना दिया था । वैदिक काल में ऋषियों के समतुल्य ही गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, घोषा आदि अनेक ऋषिकाएँ हुई हैं । चाणक्य, शंकराचार्य, विनोबा जैसी विभूतियों की संरचना का श्रेय उनकी माताओं को ही जाता है । इला ने अपने पिता मनु के यज्ञ का पौरोहित्य किया था । सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा आदि के रूप में नौ देवियों की गरिमा ही साधकों द्वारा पूजी और सिद्धियों की अधिष्ठात्री मानी जाती है । परब्रह्म ने जिसकी आवश्यकता अनुभव की और जिसके सहारे इस सृष्टि को रचा वह परा-प्रकृति नारी ही है ।

नारी की समर्थता, बुद्धिमत्ता और संवेदना को नर की तुलना में अधिक ही आँका जाता रहा है । जीवधारियों की जीवनदात्री वही है । यदि उसके प्रजनन अनुदान एक सौ वर्ष के लिये बन्द हो जाएँ तो धरती पर एक भी जीवधारी दृष्टिगोचर न हो और इतने स्वल्पकाल में सर्वनाश के, महाप्रलय के अतिरिक्त और कुछ शेष न रहे ।

पुरुष प्रधान परिवार की तरह संसार के अनेकानेक क्षेत्रों में नारी प्रधान परिवार संरचना के आधार पर फलते-फूलते और सुव्यवस्थित रहते देखे गये हैं, जहाँ पुरुषों को पत्नी के परिवार के सेवक, कार्यकर्त्ता बनकर रहना पड़ता है । अनुशासन भी उन्हीं का मानना पड़ता है । ऐसी दशा में नारी को अबला मानने की मान्यता सार्वभौम नहीं रह जाती । लोकमान्यता पुरुष को समर्थ और नारी को असमर्थ मानने की है, यह नियति नहीं है, वरन् एक बहु प्रचलित प्रथा मात्र है । रूप, माधुर्य से लेकर उच्चतम क्षमताओं की बहुलता की दृष्टि से भी नारी को ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ माना जा सकता है । पुरुष के बिना स्त्री का निर्वाह बिना किसी

कठिनाई के हो सकता है, पर नारी के बिना घर-परिवार की कल्पना भी नहीं की जा सकती । फिर उसे अबला किस कारण ठहराया गया और यह प्रचलन किस कारण चल पड़ा कि नारी को नर की क्रीत-दासी की तरह रहने के लिए ही बाधित होना पड़े ? शोषण, दोहन और उत्पीड़न का अनैतिक त्रास पग-पग पर सहन करना पड़े, लम्बी अवधि से यह अनाचार किस प्रकार पुरुषों का अधिकार बन गया और उसे मानवाधिकारों से रहित अनीति के अन्तर्गत जीवनयापन करना पड़ा ?

बहुत सोचने और ढूँढ़ने के उपरान्त एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि नारी को प्रस्तुत प्रताड़नाएँ इसलिए सहनी पड़ीं कि उसने प्रजनन का गुरुतर उत्तरदायित्व अपने कंधे पर उठाया । भ्रूणपालन में अपना स्वास्थ्य और सौन्दर्य गँवाया, स्तनपान में खोखली हुई । प्रसवकाल में अनेक बार काल-कवलित होती रही । इन दायित्वों को वहन करते हुए वह अर्थ उपार्जन और पराक्रम प्रदर्शन में कुछ पीछे रह गयी और इतने भर से उसे दुर्बल, असहाय और शोषण का साधन मान लिया गया । यही है आज की नारी की दुर्दशा का कारण । इसी कारण उसे मनुष्य और पशु की मध्यवर्ती स्थिति में पालतू बनकर रहना पड़ रहा है । इसी स्थिति में अनेकों अनाचार और प्रतिबन्ध उसके कंधों पर लद पड़े ।

नारी को प्रतिबंधित स्थिति में रहना पड़े तो मात्र उसी को हानि नहीं है । पालने वालों के लिए भी वह अपनी दुर्गति के कारण गले का पत्थर बनकर रहती है । आधा संसार, आधा जन- समुदाय हेय स्थिति में रहने के लिए बाधित हो, तो इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इसका दुष्परिणाम समस्त विश्व पर छायी हुई अवगति के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ? मुद्दतों से हम इसी दुर्गति के बीच निर्वाह कर रहे हैं ? दुर्गति इससे उबरने का अवसर भी तो नहीं आने देती ।

अब जबकि इक्कीसवीं सदी के आगमन में कुछ ही वर्ष शेष हैं, जिसमें आमूल-चूल परिवर्तन होने जा रहा है और नारी वरिष्ठता की अपनी गरिमामय स्थिति में पहुँचने के कि कमर कसकर तैयार हो रही है, तो उदारचेता पुरुष वर्ग का उत्तरदायित्व बनता है कि वह उस पर लदे बंधनों को ढीला करे । उसे शिक्षित और स्वावलम्बी बनाकर सदाशयता का परिचय दे और अपने पिछले पापों का प्रायश्चित करे ।

महाकाल की इच्छा, जिसे पूरा होना ही है

हमें यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि इक्कीसवीं सदी-नारी युग का संदेश लेकर आ रही है । अंधकार युग के दिन अब अपनी अन्तिम साँसें भी तोड़ने लगे हैं । नारी की वर्तमान दुर्गति भरी स्थिति देर तक बनी नहीं रह सकती । विश्व का जाग्रत विवेक अनौचित्य का सार्वजनिक प्रचलन स्वीकार नहीं कर सकता । राजतन्त्र, साम्राज्यवाद, सामंतवाद आदि के आतंक और शोषण पर आधारित प्रचलनों का अन्त हो गया । दास प्रथा इसलिए नहीं चली कि गुलामों ने मालिकों को लड़कर हराया था । बल्कि विश्व के जाग्रत विवेक ने पीड़ित पक्ष की हिमाकत की और शोषकों के खूनी पंजे बेतरह तोड़कर रख दिए । उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में दास प्रथा विरोधी और समर्थक गोरों के बीच ही इस प्रश्न को लेकर गृहयुद्ध हुआ था और उस प्रचलन की कानूनी मान्यता समाप्त हुई थी ।

आवश्यक नहीं कि शोषित वर्ग स्वयं ही समर्थ शोषकों को परास्त करे । उनकी हिमायत और वकालत के लिए युग विवेक की क्षमता दिनों-दिन उभरती बढ़ती चली आ रही है । बिस्मार्क, क्रोपाटिकिन, नेहरू आदि शोषित वर्ग के नहीं थे तो भी उन्होंने शोषकों के पैर तोड़ने में डटकर मोर्चा लिया था । अपने देश में ही हरिजनों को आदिवासियों को, गई-गुजरी स्थिति से उबारने में उनका प्रतिरोध संघर्ष नहीं, जनमानस का न्याय समर्थन ही उभरा है । बाल-विवाह, कन्या विक्रय, वर विक्रय, बंधुआ मजदूरी, बेगार प्रथा आदि का अन्त पीड़ितों के पराक्रम ने नहीं, जाग्रत विवेक ने किया है । रंग भेद की कलुषित नीति बरतने वाले गोरे अब कालों के सामने उखड़ते चले जाते हैं । इसका कारण सामर्थ्यों की कमजोरी नहीं, वरन् न्याय समर्थक लोकमत का प्रबल दबाव ही प्रधान कारण बन रहा है ।

नारी के प्रति बरती गई अनीति में पुरुष का अहंकार और शोषक दृष्टिकोण ही निमित्त रहा है । समय आ गया है कि उस राह को छोड़ा जाय और पिछली भूलों का प्रायश्चित किया जाय । पिछले दिनों गिराने में जितना चातुर्य, कौशल और उद्धत पौरुष लगा है, अब उससे सदाशयता भरे उत्साह से क्षतिपूर्ति की बात सोची जानी चाहिए ।

क्षतिपूर्ति का दायित्व पुरुषों को ही उठाना पड़ेगा । सवाल विवाहित-अविवाहित का नहीं है, सम्बोधन पुरुष मात्र को है । इसी में उसकी सज्जनता, सद्भावना एवं समय को पहचानने वाली दूरदर्शी विवेकशीलता का परिचय मिल सकता है । पाप का प्रायश्चित और अनीति का परिमार्जन इसी में है । नारी को समुन्नत बनाने में पुरुषों को असामान्य उत्साह के साथ प्रयत्नरत होना चाहिए । इसी में उसका स्वार्थ और परमार्थ जुड़ा हुआ है ।

स्वार्थ इसलिए कि समुन्नत नारी के सहयोग से अभीष्ट में अधिकाधिक लाभ उठाने का अवसर उसी को मिलेगा । समर्थ-सहयोगी, गृह-व्यवस्थापक, पारिवारिक स्नेह-सौजन्य के संस्थापक, पीड़ितों के उन्नमुक्त साथी की उपलब्धि उसे ही होती है । गले में बँधे हुए पत्थर को देव-प्रतिमा के रूप में बदलने और सघन वरदानों से लदने का लाभ उसे ही मिलना है । अस्तु, उसका दूरगामी स्वार्थ

इसी में है कि पत्नी को ही नहीं, पूरे परिवार को, परिवार ही नहीं पूरे समाज की नारी को समुन्नत बनाने के लिए जो कुछ बन पड़े, उसे पूरे सद्भाव, मनोयोग, श्रम-समय, प्रतिभा के समस्त अनुदानों को उसमें नियोजित कर दिया जाय।

परमार्थ इसलिए कि दुर्भिक्ष पीड़ितों से भी अधिक दुःखी मानवी अधिकारों से वंचित रहने से प्रताड़ना सहते हुए सुविस्तृत जन-समूह को समुन्नत बनाने का प्रयास बड़े से बड़े धर्म, पुण्यदान-अनुदान से बढ़कर है। इसमें पीड़ा निवारण और सुविधा-सम्वर्द्धन के दोनों तत्व पूरी तरह जुड़े हुए हैं। रोटी-कपड़ा बाँटने की तरह दृश्यमान दान-पुण्य तो यह नहीं है और न पाने वाले द्वारा जय-जयकार सुनने को मिलेगा। फिर भी परिणाम की दृष्टि से इसकी तुलना संसार के श्रेष्ठतम परमार्थ से ही की जा सकती है।

प्रायश्चित के लिए अनिवार्य रूप से परमार्थ करना पड़ता है। पाप की निवृत्ति पुण्य के सम्वर्द्धन से ही सम्भव होती है। हजारों सालों से पुरुषों द्वारा स्त्रियों का जो शोषण-क्रम चला है, उन संचित पापों की निवृत्ति के लिए वर्तमान पीढ़ी को उसी प्रकार तप करना चाहिए जैसा कि भगीरथ ने अपने पुरखों के पाप-निवारण के लिए किया था। सगर के सौ बेटे महर्षि कपिल के शाप से नष्ट हुए थे और वे नरक की अग्नि मे तप रहे थे। भगीरथ ने तप करके उनका उद्धार कराया था।

पिछले दिनों नारी को पराधीन-पददलित करने के समर्थन में बौद्धिक जाल-जंजाल बुनने वाले लेखक प्रतिपादक, दार्शनिक भी कुंभीपाक नरक में पड़े जल रहे होंगे। इसी प्रकार जिन्होंने उस अनीति को कार्यान्वित करने के लिए अग्रिम कदम उठाए, दुष्ट मान्यताएँ प्रचलित करने मे आगे रहे थे, वे सबके सब निश्चित रूप से परलोक में दुर्गति के भागी बने हुए हैं। इनके उद्धार का प्रयत्न अपनी भगीरथ पीढ़ी को करना चाहिए। ऐसा तप करने का ठीक यही समय है। पतन परम्परा प्रचलित करने मे निमित्त जो भी बने हों, हमें तो उत्थान के प्रचलन की ही भूमिका निभानी है। महाकाल ने यह काम हम सबके कंधे पर डाला है, तो उसमें पीछे हटने, कायरता बरतने में शोभा नहीं है।

पुरुष हो या स्वयं स्त्रियाँ जिनमें तनिक-सी भी जाग्रति है, जिनके कान परमात्मा की वाणी को सुन समझ रहे हैं उनमें से प्रत्येक का यह उत्तरदायित्व है। अनीति करने वाले की तरह अनीति सहने वाले को भी दोषी ठहराया गया है। रिश्वत लेने की तरह रिश्वत देना भी अपराध है। अन्याय इसीलिए बढ़ता है, क्योंकि उसके विरोध में सिर उठाने वाला साहस, मूक, बधिर, पंगु बना पड़ा रहता है। असहयोग, विरोध, संघर्ष के छोटे-बड़े कदमों में से जिनसे जो बन पड़े उसका उपयोग करना चाहिए। सहन करने में तो अत्याचारी का साहस बढ़ता है। उसे और भी बढ़ी-चढ़ी अनीति करने का साहस मिलता है। संसार में अनीति इसीलिए नहीं बढ़ी कि दुरात्माओं की ताकत अधिक थी। बल्कि उसका विस्तार इसलिए हुआ, क्योंकि उत्पीड़कों में विरोध-प्रतिरोध का साहस नहीं रहा।

बकरियाँ पालतू बन गईं, पर हिरनों पर यह प्रयोग उतना सफल नहीं हुआ। दोनों की जाति और स्थिति में थोड़ा-सा ही अन्तर है। कुत्ते और सियार एक ही जाति के हैं। बिल्ली और वन-बिलाव में नाम मात्र का अन्तर है। एक ने मनुष्य की दासता स्वीकार कर ली, दूसरे ने नहीं की। समर्थ होने के कारण प्राण तो लिए जा सकते हैं, पर वशवर्ती नहीं बनाया जा सकता। अतएव दुष्टों की तरह दुर्बल भी दोषी माने गए हैं। यह बात दूसरी है कि किसी का पाप भारी, किसी का हलका माना जाय।

आज की स्थिति में अशिक्षा, व्यस्तता, आत्महीनता और प्रतिबंध की बेड़ियों से बँधी जकड़ी नारी को समर्थन सहयोग की सख्त जरूरत है। थोड़ा-सा सहयोग पाते ही वह स्वयं अग्रिम मोर्चा सम्भाल लेगी। फिलहाल तो इस काम में पुरुषों को स्वतः पहल करनी होगी। अच्छा हो शुरूआत अपने घर से हो और दायरा बढ़ता हुआ समाज को भी समेट ले।

अभियान के सभी कामों की पृष्ठभूमि बनाने से लेकर साधन खड़े करने तक के सारे-सरंजाम उसे ही जुटाने पड़ेंगे। अच्छा हो वे सरंजाम जुटाकर अपनी घनिष्ट आत्मीय महिलाओं को आगे कर दें। मोर्चे पर लड़ते तो सैनिक हैं, पर उनके लिए खाना, कपड़े, संचार, वाहन, उपकरण, दवादारू, प्रशिक्षण मार्ग-दर्शन आदि सारे साधन सरकार जुटाती रहती है। पुरुषों को भी पीछे रहकर अभियान का सूत्र-संचालन करना चाहिए और अपने प्रभाव क्षेत्र की नारियों को अग्रिम मोर्चा सम्भालने का प्रयत्न काम करने के लिए समाज के नव-निर्माण के क्षेत्र में उतारना चाहिए।

इससे उनमें दायित्व-बोध बढ़ेगा, आत्म-विकास के अंकुर फूटेंगे। धीरे-धीरे वे सारी क्षमताएँ जन्म लेंगी जिनके आधार पर वे नारी शताब्दी का मशाल नेतृत्व कर सकें। पुरुष भी युगनियन्ता द्वारा निर्देशित इस प्रायश्चित तप को करके, श्रेय के भागीदार तो बनेंगे अनुदानों-वरदानों का भरा-पूरा अखीरा उन्हें उपहार में मिलेगा।

चेतना के स्तर पर हो रही परिवर्तन प्रक्रिया

कैलिफोर्निया के जेम्स डब्ल्यू, न्यूमैने की गणना अमेरिका के मूर्धन्य मनोविज्ञानियों एवं दार्शनिकों में होती है। वे 'थामस जैफरसन रिसर्च सेण्टर' के संचालक हैं और 'साइको एण्डोक्राइन रिसर्च फाउण्डेशन' के संस्थापक भी। उन्होंने मनुष्य के चिन्तन, चरित्र और व्यवहार पर बड़ी गहनता से अध्ययन किया है और इस मध्य कई शोधपत्र भी प्रकाशित किये हैं। उनके अनुसंधान का मुख्य विषय रहा है-"मनुष्य का समग्र स्वास्थ्य और उसका

प्रभावशाली व्यक्तित्व" । इस क्षेत्र में कार्य कर उन्होंने महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हस्तगत कीं । उनके प्रशंसनीय कार्य एवं इस क्षेत्र में लम्बे अनुभव को ध्यान में रखते हुए लॉस एंजिल्स में पिछले दिनों 'दि बोर्ड ऑफ. जे. डब्ल्यू. न्यूमैन कारपोरेशन' की स्थापना की गई, जिसके वे इन दिनों अध्यक्ष हैं । इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य मनुष्य के भावी जीवन को सुखद सम्भावनाओं से परिपूरित कैसे किया जाय ? यह पता लगाना है ।

अनेक संस्थानों में कार्य करते हुए अपने दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर न्यूमैन ने 'रिलीज योर ब्रेक्स' नामक एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है, जिसका सार यदि एक वाक्य में कहना हो, तो यह कहा जा सकता है, कि हमारी वर्तमान की विचारणा भविष्य का निर्धारण करती है, अर्थात्–आज जो कुछ हम सोचते और करते हैं, हमारा कल का भविष्य इसी रूप में सामने आता है । इस प्रकार न्यूमैन ने अपनी उक्त पुस्तक में परोक्ष रूप से यही कहने का प्रयास किया है कि यदि हमें आगामी सदी को उज्ज्वल भविष्य के रूप में देखना है, तो हमारे क्रिया-कलापों और चिन्तन में तदनुरूप उत्कृष्टता आनी ही चाहिए । इससे कम में उसकी आशा नहीं की जा सकती, जिसकी सुखद सम्भावना हम इन दिनों सँजोये हुए हैं । उक्त पुस्तक के अन्तिम अध्याय 'यू आर चेंजिंग द वर्ल्ड' में उन्होंने लिखा है कि–"निकट भविष्य में संसार में एक विशिष्ट प्रकार का चिन्तन-परक परिवर्तन आयेगा । लोगों में भविष्य के प्रति जागरूकता की प्रवृत्तियों को विकसित होते देखकर उन्होंने इस तथ्य की पुष्टि की भी है । उनका कहना है कि मनुष्य में शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर चल रही है और उसें विराम आने वाला नहीं । इसलिए यह मान्यता बना लेना गलत साबित होगा कि मनुष्य के जीवनक्रम में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता । शारीरिक परिवर्तन की पुष्टि के लिए शरीर-शास्त्र का प्रमाण प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसके अनुसार हर छह माह बाद मनुष्य की कायिक संरचना में बहुत कुछ परिवर्तन देखने को मिलता है । शारीरिक संरचना में ही नहीं, वरन् क्रिया-कलापों में भी एक विशेष प्रकार का परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगता है । जो हम कल थे वह आज नहीं हैं, इसकी अनुभूति दिन और रात की तरह स्फुट होने लगती है । दिन-प्रतिदिन का चिन्तन, चरित्र और व्यवहार ही व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व की आधारशिला रखता है ।

वस्तुतः सृष्टि के आरम्भ से ही मानव हृदय की एक ही जिज्ञासा रही है कि वह वर्तमान की अपेक्षा भविष्य को अधिक उज्ज्वल देखना चाहता है । तदनुरूप प्रयत्नशीलता का परिचय भी देता चला आया है । मानवीय प्रयास क्रिया और विचारणा का मिला-जुला स्वरूप ही भविष्य की संरचना करता है । मनीषियों ने शारीरिक परिवर्तन की तुलना में मानवी चिन्तन एवं आचरण में परिवर्तन को अधिक महत्त्वपूर्ण बताया है, क्योंकि चिन्तन के अनुरूप ही क्रिया को बल मिलता है । इस संदर्भ में न्यूमैन का कहना है कि आज हम जिस विशिष्ट काल से गुजर रहे हैं उसमें मनुष्य के चिन्तन की दिशाधारा में विशेष परिवर्तन हो रहा है । स्वार्थपरता और संकीर्णता की प्रवृत्तियाँ घटती-मिटती जा रही हैं । परम्परावादी विचार-शैली की अपेक्षा विवेकसंगत मान्यता को अपनाने की उत्सुकता बढ़ी है । टाइम-पर्सपैक्टिव की महत्ता के लोगों के गले उतरने लगी है, जिसे समय-संदर्श के नाम से जाना जाता है । उदाहरण के लिए, मानवी दृष्टिकोण को लिया जा सकता है, समय के साथ उसमें भी परिवर्तन होता है । एक उदाहरण प्रस्तुत कर वे लिखते हैं कि एक छोटा बालक कटोरा भर अवलेह सेम (जैली बीन्स) को खा जाता है, पर दूसरे दिन उसे पेट दर्द की शिकायत होने लगती है । गरिष्ठ पदार्थ की इतनी भारी मात्रा खाते समय उसके मस्तिष्क में विचार नहीं आया कि कल क्या होगा? उसे अपरिपक्व मस्तिष्क की अपरिपक्व निर्णय क्षमता ही समझी जाएगी, लेकिन वही मस्तिष्क परिपक्व होने पर उसे भूल को कदापि नहीं दुहराता, कुछ ऐसा ही दृश्य इन दिनों दृष्टिगोचर होने लगा है । मद्यपान और नशीली दवाओं के दुष्परिणाम अब लोगों की समझ में आने लगे हैं और इसके विरोध में आवाजें उठने लगी हैं, जिसे देखकर यह कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं शताब्दी में लोग इन दुष्प्रवृत्तियों को मिटाने में पूरी तरह सफल होंगे ।

जेम्स डब्ल्यू न्यूमैन का कहना है कि व्यक्ति के परिपक्व व्यक्तित्व का मूल्यांकन लम्बे समय के अनुभव प्राप्त कर लेने के उपरान्त ही किया जा सकता है । उसके सत्परिणामों की प्रभावशीलता का अनुमान भी तभी लगाया जा सकता है । आज के चिन्तन और व्यवहार में जागरूकता और सजगता के माहौल को देखकर यही कहा जा सकता है कि शताब्दी के अन्त तक लोगों के दृष्टिकोण में विधेयात्मकता का समावेश होना सुनिश्चित है । समय-संदर्श (टाइम पर्सपैक्टिव) की तरह दूसरा अति प्रभावशाली घटक वातावरण के परिवर्तन का है । उन्होंने इसे 'होल परसन सिस्टम' के नाम से सम्बोधित किया है, अर्थात्–मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व का निर्धारण वातावरण के अनुरूप ही होता है । उनके अनुसार लोगों में भावी संतति को सुयोग्य एवं सुशिक्षित बनाने का जो वातावरण आज विनिर्मित हो रहा है, निकट भविष्य में इसकी सार्थकता और भी अधिक बढ़ी-चढ़ी होगी । संतानों में माता-पिता एवं अभिभावकों के प्रति सम्मानजनक भावनाओं का विकास होगा, जिसके फलस्वरूप वृद्धावस्था का सुख सरलता से प्राप्त किया जा सकेगा ।

लोगों में समूहगत भावनाओं का विकास होगा । लार्जर फेमिली यानी परिवारों में वृहत्तर परिवार के प्रति 'टी-स्प्रिट' की भावना का उदय होगा । परस्पर सहयोग-सहकार की प्रवृत्तियों को बल मिलेगा । यही नियम-व्यवस्था कम्पनी, क्लब, संघ-समुदाय, देवालयों, व्यापारिक सम्बन्धों, राजनैतिक पार्टियों तथा सैनिक क्षेत्र में भी लागू

होगी । व्यक्तिगत स्वार्थों की अपेक्षा सामूहिक हितों को ही वरीयता क्रम में आगे रखा जाएगा । उग्रवाद की प्रवृत्तियाँ रचनात्मक दिशा में आ मुड़ेंगी । 'इन्डीविजुअल पर्सनलिटी' की अपेक्षा 'ग्रुप पर्सनलिटी' की महत्ता को ही अंगीकार किया जायेगा ।

न्यूमैन ने नये युग की सम्भावना व्यक्त करते हुए बताया है कि तब लोगों की सूझबूझ इस स्तर तक बढ़ जाएगी कि अपने ज्ञान का सदुपयोग रचनात्मक दिशा में ही कर सकेंगे । मनुष्य की इस नयी बिरादरी को 'ऐपी-ऑर्गेनिज्म' के नाम से उन्होंने अभिहित किया है जिसका अभिप्राय समूहगत चेतना के विकास से होता है । संसार की एक चौथाई जन-शक्ति बीसवीं शताब्दी के अन्त तक आदर्शवादी विचारधारा के अनुरूप अपने क्रिया-कलापों का निर्धारण करने लगेगी । इक्कीसवीं शताब्दी में उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श व्यवहार की कल्पना हर व्यक्ति के गले उतरने लगेगी ।

इस प्रकार न्यूमैन ने अपनी उक्त पुस्तक में तर्क और तथ्य के आधार पर यही सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आगामी समय में परिवर्तन अवश्यम्भावी है । इसी बात को आज विश्व के जाने-माने भविष्यद्रष्टा, ज्योतिर्विद, भविष्यविज्ञानी अपने-अपने ढंग से कह रहे हैं और यह आशा व्यक्त कर रहे हैं कि आने वाली सदी हर प्रकार से उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाएँ अपने में सँजोये हुए है । अभी हमें उनकी भविष्यवाणियों की धुँधली छटा ही दृष्टिगोचर हो रही है । आगामी शताब्दी में कोहरे के छँट जाने से दृश्य यदि और अधिक सुस्पष्ट हो जाय, तो कोई आश्चर्य नहीं माना जाना चाहिए ।

भारतीय-नारी का उज्ज्वल अविष्य

इन दिनों विश्वभर में महिलाओं को समानता का दर्जा देने तथा उसे अपने विकास के समुचित अवसर उपलब्ध कराने की बातें बड़े जोरों से की जा रही हैं । इस दिशा में काफी कुछ हो रहा है और कई देशों की महिलाओं में अपने-आपको पहचानने की क्षमता भी जाग्रत हुई है तथा वे अपने अधिकारों के प्रति सजग भी होने लगी हैं, परन्तु भारतीय-नारी को अभी भी पाँच सौ वर्ष पूर्व की स्थिति में पिछड़ा कहा जाता है और उसकी स्थिति पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसका कोई व्यक्तित्व नहीं है, वह बच्चा पैदा करने की मशीन है, वह सिर्फ माँ बन सकती है, पुरुष की मित्र नहीं । इसलिए दुनिया की नारी को समानता की स्थिति में आने के लिए यदि सौ वर्ष लगेंगे तो उसे हजार । एक पश्चिमी महिला पत्रकार मिस इवार्बोर्न ने हाल ही में एक अँग्रेजी साप्ताहिक में भारतीय-नारी के लिए यह कहा है ।

पश्चिमी दृष्टिकोण से देखने पर स्थिति कैसे लगती है, यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि हम अपनी स्थिति को अपने ही आइने में देखें । भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही यदि स्थिति को सही दृष्टिकोण से परखने का प्रयत्न किया जाता तो तस्वीर शायद कुछ और ही बनती । भारतीय-नारी की स्थिति कोई अच्छी है, यह तो नहीं कहा जा सकता, पर उसकी समस्याओं, परिस्थितियों, पिछड़ेपन, अज्ञान और अन्धविश्वासों की तुलना अन्य देश की स्त्रियों में नहीं की जा सकती, क्योंकि हमारी संस्कृति विविधताएँ लिए हुए है और उसमें सभी प्रकार की विभिन्न विचारधारा, मान्यताएँ, आदर्श और परम्पराएँ हैं और इन विविधताओं को लेकर ही अनेक लोग उसकी स्थिति पर आक्षेप करते हैं ।

हमारे देश में ऐसा वर्ग भी है, जो लड़कियों को खूब पढ़ने-लिखने और स्वतन्त्र व्यवसाय करने की छूट देता है, तो ऐसा वर्ग भी है, जहाँ लड़कियों को बोझ माना जाता है । ऐसे लोग भी मिल जाएँगे, जो लड़कियों को अपना जीवन-साथी चुनने का अधिकार देते हैं और ऐसे लोग भी हैं, जो लड़की की इस मामले में राय जानना भी अपना अपमान महसूस करेंगे । यहाँ नारी को लेकर भिन्न-भिन्न मानदण्ड स्थापित किये गये हैं, लेकिन पश्चिमी देशों की तरह उसे केवल टाइपिस्ट, क्लर्क या सेक्रेटरी बनाकर ही प्रगतिशील नहीं मान लिया जाता । पश्चिम के कई देशों में जहाँ आज भी स्त्रियों को मताधिकार नहीं है, वहीं हमारे यहाँ स्त्रियों को अपने निर्माण की पूरी-पूरी छूट है । कितने ही जिम्मेदार पदों पर स्त्रियाँ काम कर रही हैं और उन्हें पुरुष के समान वेतन मिल रहा है, उनको समान अधिकार प्राप्त है और वे विशेष परिस्थितियों में विशिष्ट अधिकारों का भी लाभ उठाती हैं ।

सभी स्त्रियाँ कानून-प्रदत्त अधिकारों का लाभ नहीं उठा पातीं, यह बात और है और इसका प्रमुख कारण हमारे देश में शिक्षा-प्रसार का अभाव है, जो पुरुषों के लिए भी समस्या है । हमारे देश में अभी साक्षरता का औसत सन्तोषजनक भी नहीं है । जिन्हें खुली छूट मिली हुई है, वे पुरुष तक शिक्षा और साक्षरता का महत्त्व नहीं समझते । फिर स्त्रियों के साथ तो विशिष्ट परिस्थितियाँ जुड़ी हुई हैं, जो भले ही बाधक न हों, पर उन्हें ऊँचा उठने के लिए सहायक भी नहीं हैं ।

भारत में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति चाहे जो रही हो, पर उन्हें माना सदैव शक्ति-स्वरूप ही जाता है । पुरुष कदम-कदम पर उससे सहयोग की अपेक्षा करता है । उसे घर-परिवार की चारदीवारी तक ही सीमित रहने का जो अभिशाप मिला हुआ है, वह आज की नहीं, मध्ययुग की देन है, जबकि उसका नारीत्व ही खतरे में पड़ा हुआ था । लेकिन पिछले वर्षों में भारतीय-नारी को ऊँचा उठाने के लिए भारत में जो प्रयास चले हैं, दुनिया का कोई भी देश उनसे समानता नहीं रखता । राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द से लेकर महर्षि कर्वे तक नारी-उत्थान के प्रयासों का एक महत्त्वपूर्ण इतिहास है । स्थिति को इतनी जल्दी बदला नहीं जा सका, उसका कारण प्रयासों की

शिथिलता नहीं शताब्दियों की शृंखलाएँ हैं । दो हजार साल की विडम्बनाएँ इतनी जल्दी तो नहीं उलटी जा सकतीं । उन्हें पलटने में कुछ समय तो लगेगा ही ।

हमारे देश में नारी-उत्थान के प्रयास जिस रूप में उभरकर आते हैं और पश्चिमी देशों में उस तरह के प्रयासों का जो स्वरूप है, उनमें आकाश-पाताल का अन्तर है । नारी-उत्थान की पश्चिमी-विचारधारा का इतना ही अर्थ है कि वह स्वतन्त्र और स्वच्छन्द जीवन जी सके । न परिवार का बन्धन रहे और न उससे सामाजिक-मर्यादाओं को मानने के लिए कहा जाय । यही कारण है कि पश्चिम में परिवार संस्था तेजी से टूट रही है । वहाँ जितने विवाह होते हैं, उसमें आधे से ज्यादा तो सालभर भी नहीं चल पाते । कई मामलों में पति-पत्नी का शादी के एक माह बाद ही विवाह सम्बन्ध टूट जाता है और तलाक के कारण भी बड़े अजीबो-गरीब होते हैं । किसी को यह शिकायत है कि उसका पति सोते समय खर्राटे लेता है या बात करते समय छींक देता है । कोई स्त्री इस कारण तलाक की माँग करती है कि उसका पति उसके कुत्ते को प्यार नहीं करता तो कोई इस कारण कि वह जल्दी सो जाता है ।

नारी-उत्थान का अर्थ यह स्वच्छन्द उच्छृंखलता है तो बेशक भारती-नारी स्वप्न में भी ऐसी प्रगति की आकांक्षा नहीं है । यहाँ बचपन से ही सीता और सावित्री का आदर्श सामने रखा जाता है, उसका अतीत लक्ष्मीबाई की शौर्य-गाथा और शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में परास्त करने वाली भारती मिश्र के यशोगान से मण्डित हैं । उसके लिए पत्नी से भी अधिक मातृत्व का आदर्श वरेण्य है । यही उसका ध्येय है और प्राप्तव्य भी । हमारे यहाँ नारी को भले ही पर्दे में रहने, बाल-विवाह करने की कुरीति रही हो, पर उसे माँ के रूप में सदैव रखा जाता रहा है । कोई वयोवृद्ध सज्जन अपने से कम उम्र की लड़की को माँ कहकर सम्मान देता है और अनजान (अपरिचित) स्त्रियाँ नये लोगों से माँजी का सम्बोधन सुनकर स्वयं को सम्मानित किया गया अनुभव करती हैं, परन्तु पश्चिम में साठ साल की वृद्धा को भी यदि माँ कह दिया जाय तो सुनकर उस तरह भड़क उठेगी, जिस तरह लाल कपड़े को देखकर साँड़ । अब यह स्वयं ही सोचा जा सकता है कि पुरुष की भोग्या बनकर कौन रहना चाहती है—भारतीय या पश्चिमी नारी ?

यह भी आरोप लगाया जाता है कि भारतीय माता-पिता लड़कियों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं । एक सीमा तक यह सच भी है, परन्तु जिन स्वरों में यह आरोप लगाया गया है, वह मात्र तथ्य का अतिरञ्जित रूप ही है । यह सच है कि भारतीय माता-पिता लड़के के जन्म से जितने खुश होते हैं, उतने ही लड़की के जन्म की खबर सुनकर उदास भी हो जाते हैं । इसका कारण—समाज में प्रचलित दहेज-प्रथा, विवाह-समस्या और विकृत ढाँचा है, परन्तु इस कारण कोई अभिभावक अपने दायित्व से नहीं भागता । वह लड़की को गृह-कार्यों में दक्ष बनाने के साथ उसके पीले हाथ करने की पूरी-पूरी चिन्ता रखता है । उपयुक्त वर तलाश करने के लिए मीलों और महीनों तक भटकता है और शादी के बाद भी बेटी की ओर से एकदम मुँह नहीं मोड़ लेता । ससुराल में लड़की के साथ कैसा बर्ताव किया जा रहा है, वह सुखी है या दुःखी आदि बातों की चिन्ता भी भारतीय माता-पिता को रहती है ।

पश्चिम में अधिकांश माता-पिता पन्द्रह-सोलह साल की आयु में ही अपने बच्चों की ओर से स्वयं को बरी मान लेते हैं । लड़कियाँ किशोरावस्था में प्रवेश करते ही नयी-नयी समस्याओं से चिन्तित हो जाती हैं । होश-सम्भालते ही पढ़ने की फ्रिक, फिर काम ढूँढ़ने की फ्रिक और सबसे अहम् प्रश्न अपना वर स्वयं तलाश करना । इसके लिए उन्हें अपने अनगिनत मित्र-लड़कों में से उपयुक्त साथी का चुनाव करना पड़ता है । अपरिपक्व बुद्धि के कारण कई गलतियाँ और परिणामस्वरूप अनिश्चित, अस्थिर, क्षण-क्षण एक-दूसरे के प्रति संशकित विवाहित जीवन ।

भारतीय-स्त्रियों को एक संकीर्ण दायरे में रहने वाली 'भयभीत अबला' भी कहा जाता है । पश्चिमी देशों में 'मैत्री' शब्द को इन अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है कि कौन लड़की कितने बॉयफ्रेण्ड रखती है या किस लड़के की कितनी गर्लफ्रैण्ड हैं । माता-पिता का अपनी सन्तानों पर तो कोई ध्यान रहता नहीं और जहाँ ध्यान रखने की बात भी आती है, वहीं लड़के-लड़कियाँ निजी स्वतन्त्रता में अनधिकार हस्तक्षेप समझने लगते हैं । स्वच्छन्द और उन्मुक्त मैत्री गर्हित सम्बन्धों के रूप में परिणत होती है और उसका परिणाम चारित्रिक-पतन के रूप में सामने आता है। इसी कारण पश्चिम में कुँवारी माताओं की संख्या चिन्ताजनक रूप से बढ़ती जा रही है ।

अपने देश में इस स्तर की मित्रता को निन्दनीय दृष्टि से देखा जा सकता है । माता-पिता अपने बच्चों के चाल-चलन और आचरण पर बारीक दृष्टि रखते हैं तो सन्तान भी उनके संरक्षण को आदर की दृष्टि से देखती है और व्यवहार में जहाँ तक निकटता का प्रश्न है, वह बहिन या माँ के रूप तक ही सीमित रखा जाता है । लुक-छिप कर किसी से मित्रता, सामान्य दृष्टि से अपमान और भर्त्सना का शिकार होती है । परिवार संस्था के स्वास्थ्य और पवित्र आधार के लिए उसे अनुचित कहना परिवार की जड़ों पर चोट करने जैसा ही होगा ।

एक और आक्षेप भारतीय-स्त्रियों पर यह लगाया जाता है कि वह पुरुष की इतनी आश्रित रहती है कि बुरी से

बुरी परिस्थितियों और दोषों के बावजूद भी वह उसका आश्रय नहीं छोड़ सकती । आदमी और औरत के घनीभूत सम्बन्धों को निर्भरता या विवशता की संज्ञा नहीं दी जा सकती । इसके लिए भारतीय गृहस्थ-जीवन के आरम्भ से लेकर अन्त तक की प्रक्रिया का अध्ययन करना होगा । हमारे यहाँ शारीरिक-आकर्षण और यौन-जीवन विवाहित-जीवन का आधार कभी भी नहीं रहा है । जब कि पश्चिमी परिवार केवल इसी आकर्षण में बँधे बसते हैं और यह आकर्षण समाप्त होते ही टूट जाते हैं । जिसे प्रेम कहा जाता है, वह शारीरिक आकर्षण और विषय-वासना के अतिरिक्त कुछ नहीं है । यहाँ जबकि पश्चिम के युवक-युवतियाँ विवाह-बंधन में बँधने से पूर्व काफी समय तक साथ रहने और प्रयोग करने के आदी हैं, जिसे डैटिंग कहा जाता है । चंचल-कामुकता कभी तृप्त नहीं होती और उसे प्रेम कहना भी प्रेम जैसे दिव्य तत्व का अपमान करना होगा । तो पहले देर तक परखते रहने के बाद भी कुछ देर तक बने रहने के उपरान्त दाम्पत्य-सूत्र वहाँ टूट जाते हैं ।

इसके विपरीत भारतीय परिवार का ढाँचा इस प्रकार का है कि विषय-वासना को इसमें बहुत गौण स्थान दिया गया है और स्वच्छ, स्वस्थ, सघन स्त्री-पुरुष के सहयोग पर ही जोर दिया गया है । यही कारण है कि हमारे यहाँ विवाह और उसके बाद स्थायी प्रेम के आधार पर परिवार चलते हैं तथा पश्चिम में डैटिंग तथाकथित प्रेम और फिर विवाह तथा उसके बाद विग्रह का चक्र चलता रहता है ।

गरिमा, पवित्रता, स्थिरता, भ्रातृत्व, सन्तुष्ट विवाहित-जीवन और सहिष्णुता भारतीय नारी की अक्षुण्ण विशेषताएँ हैं और छिछलापन, उच्छृंखलता, चंचलता, यौन-जीवन प्रधान, अतृप्त दाम्पत्य-जीवन पाश्चात्य नारी की विडम्बना है, जिसे वे प्रगतिशील, स्मार्टनेस और पूर्ण स्वतन्त्रता की उपलब्धि मानते हैं । भारतीय-स्त्रियों को उन्नत और प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता, परन्तु प्रगति के जितने उच्च शिखर छूने की उसमें सम्भावना है, वह अन्यत्र कहीं भी दुर्लभ है ।

यह ठीक है कि अभी भारतीय-नारियों को दुर्दशाग्रस्त स्थिति में उबारने के लिए काफी कुछ करना है, पर उसकी दुःस्थिति को देखकर निराश होने की आवश्यकता नहीं है । सदियों के परिश्रम से उसका जो रूप निखरकर सामने आया है तथा उसने विरासत में जो गुण प्राप्त किए हैं, वे अद्वितीय हैं । यह बात ठीक है कि वह सन्तोषजनक स्थिति में भी नहीं है, कीचड़ में गिरी हुई है, परन्तु उसका व्यक्तित्व हीरे की भाँति है, जो कीचड़ में पड़कर भी मलीन नहीं होता । आवश्यकता उसे कीचड़ में से उठाने और साफ भर करने की है । फिर तो उसके प्रकाश से जो आभा होगी, जो चमक मिलेगी—वह सारी दुनिया को चकाचौंध कर देगी ।

स्त्रियों में आ रही है एक अनोखी जाग्रति

कुछ ही वर्ष पहले अमेरिका के ख्यातिनामा मनीषी लाइनस टायगर ने पुरुष प्रधान समाज के कर्णधारों को चेतावनी दी थी कि—पुरुषो ! सावधान स्त्रियों में एक अनोखी जाग्रति आने वाली है । शीघ्र ही साफ समझ में आ जाएगा कि उनकी स्वतंत्रता का अपहरण कर पाना, उन्हें गुलाम बनाना असम्भव है । इसके कुछ ही समय बाद सन् १९७४ में वीमेन लिब (वीमेन लिबरेशन मुवमेण्ट) के नाम से नारी शक्ति का उभार सामने आ गया । शक्ति तो उभरी पर नियोजन न हो सका । नियोजन के अभाव में उभरी शक्ति रचना के स्थान पर ध्वंस की टेढ़ी-मेढ़ी भूल-भूलैयों में भटक गयी ।

परिणाम समता का आधार एकसे वस्त्रों को मान लिया गया । नारी बच्चा पैदा करने की मशीन नहीं है, यहाँ तक तो ठीक है, पर परिवार की संरचना को ही तोड़-मरोड़कर फेंकने की कोशिश में जुट पड़ना-जोश में होश खो बैठने की नीति का परिणाम है ।

यही कारण है कि पाश्चात्य देशों में नारी मुक्ति आन्दोलन स्वतंत्र यौनवाद के घेरे में सिमटकर रह गया । १९१३ में शुरूआत वाशिंगटन की सड़कों पर राष्ट्रपति वुड्रो विलसन से स्त्री स्वतंत्रता की माँग से हुई । १९३० के आस-पास उन्हें मतदान के अधिकार मिले तथा उच्च शिक्षा के लिए दरवाजा खुला । ७० के लगभग नारी मुक्ति आन्दोलन ने जोर पकड़ा, लेकिन स्वतंत्रता ने जो कुछ कमाया उसका फल कुछ और ही हुआ । समता के नाम पर परिवार टूटे, समाज जर्जर हुआ ।

यद्यपि महिला आन्दोलन की सार्थकता है, पर दृष्टिकोण सृजनात्मक गतिविधियों का पोषक होना चाहिए । वर्तमान में इसी का समर्थन सभी देश अपनी-अपनी तरह से कर रहे हैं । भारतीय नारी समुदाय का कल्याण सिर्फ आन्दोलन को उग्र बनाने, पश्चिम की तरह नारेबाजी करने में अपनी सामर्थ्य को खपाने में नहीं है और न ही यहाँ का नारी समुदाय इसे औचित्यपूर्ण मानता है । यहाँ का सांस्कृतिक गौरव, समाज के अन्तस्थ मानवीय मूल्य अपने अनुरूप आन्दोलन की माँग करते हैं । पाश्चात्य देशों की यौन मूलस्थ नारी के सम्बन्ध में भी भारतीय नारियों में समानता नहीं हो सकती ।

नारी को सबसे पहले घर से मुकाबला करना होगा । आन्दोलन शुरू करने से पहले लक्ष्य स्पष्ट कर लेना चाहिए । विद्रोह पश्चिम की नकल मात्र न हो । आन्दोलन के लिए उचित वातावरण का निर्माण करना होगा । गहनों की बेड़ियों के साथ घर का रूढ़िवादी-वातावरण [illegible]लने का प्रयास करना होगा । वे भावी समूह के अनुरूप स्वयं

की जीवन प्रणाली गढ़ें और पुरुषों को गढ़ने के लिए प्रेरित करें।

एक अन्य वर्ग का मत है कि अपने देश में इस तरह के आन्दोलन की आवश्यकता समीचीन है। निम्न वर्ग की स्त्रियों के लिए तो यह और भी अधिक आवश्यक है। इस वर्ग की स्त्रियाँ पुरुषों के समकक्ष शारीरिक श्रम से धन अर्जित करके लाती हैं, पर उन्हें समाज और घर में कुछ भी महत्त्व नहीं मिल पाता है। उनका पति अपनी जरूरतों और हविश को पूरा करने के लिए उन्हें लूट ले जाता है। पहाड़ों में बहुधा यह देखने को मिलता है कि कार्य के लिए स्वतंत्र होते हुए भी आर्थिक रूप से वह परतंत्र है।

वस्तुत: यह आन्दोलन पूर्णतया सामाजिक है। नारी लोकमत जाग्रत करे और सभ्य-सुसंस्कृत तरीके अपनाये। प्रत्येक नारी को समझ लेना चाहिए कि वह समाज का एक स्वतंत्र एवं महत्त्वपूर्ण घटक है। उसका अपना व्यक्तित्व है। आज भी ऐसे अंचल हैं जहाँ महिलाओं को अपने अलग व्यक्तित्व की पहचान नहीं हो पायी है। नारी मुक्ति आन्दोलन पूर्णतया सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन का समर्थन करता है। फिर भी उसमें आर्थिक और नैतिक धारणाओं को बदलने की क्षमता होनी अनिवार्य आवश्यकता है। उसे समाज में चल रही सृजनात्मक गतिविधियों की मुख्य धारा से जुड़ना होगा।

भारत में नारी उत्थान के लिए कुछ कार्य ऐसे हैं जो हर जगह किए जा सकते हैं और किए जाने चाहिए। निरक्षरता हटाये बिना ज्ञान के कपाट खुलने का अवसर ही नहीं आता। अशिक्षित महिलाओं के लिए तीसरी पहर चलने वाली पाठशालाओं की स्थापना मुहल्ले-मुहल्ले और गाँव-गाँव में की जा सकती है। इस अभियान में न केवल अक्षर ज्ञान, वरन् छोटी-मोटी सभी स्थानीय व सामाजिक समस्याओं के स्वरूप पर प्रकाश डाला जाय और समाधान सुझाये जाएँ। जहाँ सम्भव हो सके, गृह-उद्योगों को भी सम्मिलित किया जाय। कन्याशाला, बाल-मन्दिर, शिल्प कला, आरोग्यशाला, प्रसूतिगृह आदि ऐसे रचनात्मक कार्य हैं, जिसमें नारी अपनी सृजनात्मक क्षमता का उपयोग कर सकती है।

कितने ही कार्यक्रम ऐसे हैं जो नारी आन्दोलन के अभिन्न अंग बन सकते हैं। जैसे घरों, दुकानों, कमरों से नारी को अपमानित करने वाले चित्रों को हटाना, उनके स्थान पर प्रेरक चित्रों, जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाने वाले सद्वाक्यों को लगाना। भौंड़ी फैशन, चुस्त कपड़े, भद्दे शृंगार, जेवर आदि लादने जैसी ओछी टीम-टाम को छोड़कर शालीन और शिष्ट जीवन व्यतीत करने का व्यापक स्तर पर अनुरोध किया जाय। उत्सवों में भद्दे गीतों का न गाया जाना, पर्दा प्रथा की समाप्ति, अन्धविश्वासों की मान्यता को अस्वीकृत करना, गृहों में शाक-वाटिका लगाने जैसे कार्यक्रमों को व्यापक स्तर पर प्रभावी ढंग से प्रसारित किया जा सकता है। इसी तरह अनेक रचनात्मक गतिविधियाँ नारी आन्दोलन का अभिन्न अंग बन सकती हैं, जिनको लागू करने से नारी की खोई शक्ति जगाने, उसे प्रतिभावान् बनाने में मदद मिल सकती है।

नारी शक्तिस्वरूपा है। जाग्रति आन्दोलन का स्वरूप भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश के अनुकूल हो। इसे प्रभावी ढंग से क्रियाशील करना समय की माँग है। इन दिनों जबकि बीसवीं सदी विदा हो रही है। इक्कीसवीं सदी का अरुणोदय नारी सदी के रूप में हो रहा है। सन्धिकाल का यह समय असाधारण है। इन्हीं अवसरों पर मेघ घहराते और पेड़-पौधे तक बसंती परिधान ओढ़कर सजते हैं। जन्म का आरम्भ और मरण का समापन भी कुछ विचित्र प्रकार का माहौल बनाते और नयी तरह के संवेदन उभारते हैं। इन दिनों भी ऐसा ही कुछ होना है। जाग्रत महिलाएँ भी कुछ ऐसे ही निर्णय करें। नारी आन्दोलन के ऐसे सृजनात्मक रूप को संचालित करें जो उनकी गरिमा के अनुरूप हो। इन्हीं सृजनात्मक गतिविधियों में अपनी शक्ति-सामर्थ्य के सुनियोजन के अनुरूप इन्हें इक्कीसवीं सदी के समाज में नेतृत्व के अवसर मिलेंगे।

नारी की प्रतिभा उभरेगी, क्षमता निखरेगी

नर और नारी का मध्यवर्ती अन्तर कृत्रिम है। दोनों ही मनुष्य वर्ग के अविच्छिन्न अंग हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक एवं सहयोगी हैं। दोनों की अपनी-अपनी विशिष्टता एवं उपयोगिता है। एक के बिना दूसरे का काम नहीं चल सकता। एकाकी रहने पर दोनों ही अपूर्णता एवं खीज-असंतुष्टि अनुभव करते हैं और नीरसता, निराशा के दो पाटों के बीच आकर अनाज में रहने वाले घुन की तरह पिस जाते हैं।

दोनों अपने आप में समर्थ एवं स्वावलम्बी हैं। एक दूसरे की सेवा-सहायता, श्रद्धा और सद्भावना के आधार पर करते हैं। किसी को किसी के हाथों अपना स्वाभिमान बेचने की आवश्यकता नहीं पड़ती। कोई किसी पर भौतिक क्षेत्र में आश्रित नहीं है, पर फिर भी पारस्परिक सद्भावना अर्जित करके अपनी श्रेष्ठता तथा प्रसन्नता को कई गुना बढ़ा लेते हैं। यह आदान-प्रदान विश्व-ब्रह्माण्ड की स्थिरता और गतिशीलता का आधार है। नर-नारी चेतना के पिण्ड और पुञ्ज होने के कारण शोभा, सुन्दरता और उपयोगिता बढ़ा लेते हैं।

मानवीय गरिमा की स्थिरता और अभिवृद्धि में नर-नारी का समान योगदान है। कोई किसी से न तो वरिष्ठ है, न कनिष्ठ। यह सदाशयता और सज्जनता ही है, जिसमें नम्रता और कृतज्ञता से प्रेरित होकर वे एक-दूसरे से छोटे बनने का प्रयत्न करते हैं और समर्पित रहने में अनुभव करते हैं–संतोष, गर्व और उल्लास। इस

पारस्परिक सद्भाव के उत्पादन से किसी के ऊपर किसी का दबाव नहीं है और न इसमें हीनता के लिए कहीं कोई गुंजाइश ।

दोनों मिल-जुलकर अपने-अपने हिस्से का काम करते हैं तो भिन्नता एकता में परिणत होती है । गाड़ी दो पहियों पर चलती है । ताली दो हाथ से बजती है । यात्रा के निमित्त दोनों पैर उठते हैं । दो आँखों को, दो कानों को, दो नथुनों को, दो फेफड़ों, गुर्दों को परस्पर पूरक ही कहा जा सकता है । इनमें से एक रहे दूसरा न हो तो कुरूपता तो बनेगी ही, दोनों का काम एक के करने पड़ने पर शक्ति का क्षरण भी अनावश्यक रूप से होगा ।

दोनों के काम अलग-अलग हैं, किन्तु यह कोई अन्तर की लकीर नहीं है । आवश्यकतानुसार कामों को अदल-बदल भी सकते हैं । काम सो काम । न उसमें कोई ऊँचा है न नीचा । न किसी का किसी क्षेत्र में छोटापन है, न बड़प्पन । सुविधा के लिए काम का विभाजन, वर्गीकरण किया जाता है । चलने में बायाँ पैर आगे उठता है और खाने में दाहिने ही हाथ की पहल होती है । इसमें न किसी की इज्जत घटती है न बढ़ती । जहाँ ऐसा भेदभाव पैदा हुआ, समझना चाहिए कि अनर्थ का बीजारोपण हो गया । इसका प्रतिफल बुरा ही होकर रहेगा ।

जनसंख्या का आधा भाग नर है तो आधा भाग नारी । प्रगति और अवगति के लिए समान रूप से जिम्मेदार है । यदि किसी की योग्यता को प्रतिबंधित किया जाता है तो समझना चाहिए कि मानवीय आचार संहिता का हनन हो रहा है । परस्पर प्रोत्साहन ही दिया जा सकता है । आगे बढ़ाने में सहयोग भी । यह कार्य प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा का उपहार देकर ही कराये जा सकते हैं । दोनों एक दूसरे के लिए उदार और सच्चाई भरे मन से एक-दूसरे के लिए यह अनुदान प्रस्तुत करें और व्यक्तित्व को बलिष्ठ, समर्थ, प्रखर बनाने में सहयोगी भी बनें । गलतियों को हँसी में उड़ाते रहने और सेवाओं को अविस्मरणीय रखने से ही घनिष्ठता बनती और कड़ी गाँठ की तरह बँधती है ।

इन सिद्धान्तों की पिछले दिनों उपेक्षा होती रही है । नर को स्वामी और नारी को पालतू पशु का स्थान मिलता रहा है । सामाजिक न्याय की दृष्टि से भारी पक्षपात बरता जाता रहा है । नारी घूँघट निकाले नर नहीं । नारी सती हो, पर नर नहीं । नारी को दहेज देना पड़े, नर को नहीं । नारी पिटे, नर नहीं । बिना संरक्षण के नारी घर से बाहर कदम न रख सके और नर स्वच्छन्द विचरे । नर एक साथ कई विवाह कर ले पर नारी विधवा होने पर भी नहीं । यह ऐसे प्रतिबंध हैं, जिन्हें न्याय और औचित्य की किसी कसौटी पर खरा नहीं माना जा सकता, किन्तु फिर भी वे रहे हैं और आज भी पिछड़े क्षेत्रों में विशेष रूप से रह रहे हैं । इसका सीधा-सा परिणाम यह हुआ कि केवल पुरुष को ही पूरी गाड़ी धकेलनी पड़ी है । नारी को सहयोग कर सकने का अवसर ही नहीं मिला । फलतः उसकी प्रतिभा छीजती, घटती और गिरती गई । परिणाम समूचे समाज को सहना पड़ा । वह अर्द्ध-विकसित बनकर रहा । अर्द्धांग पक्षाघात पीड़ित की तरह किसी प्रकार घिसटते हुए चला ।

नारी को रमणी, कामिनी, भोग्या और काम-कौतुक के लिए विनिर्मित समझा गया । रंग-बिरंगे वस्त्र-आभूषण, शृंगार-प्रसाधन इसलिए उस पर लादे गये ताकि वह अधिक आकर्षक, उत्तेजक प्रतीत हो । लाल सिन्दूर लगाकर अपने को सधवा, किसी की सम्पत्ति होने की घोषणा करे । नख-शिख की सुन्दरता और माँसलता के आधार पर उसका मूल्यांकन किया गया । रूपवती प्रिय लगी और सामान्य बनावट वाली तिरस्कृत होती रही । उनका अवमूल्यन और उपहास हुआ । इसका सीधा-सा तात्पर्य है कि जो कामुकता भड़का सकें, उस आदेश को अनिच्छा एवं अखरता रहने पर भी शिरोधार्य करती रहे, उसे ही पतिव्रता माना जाय ।

इस संदर्भ में शिक्षित-अशिक्षित भारतीय योरोपीय सभी क्षेत्रों की नारियों की अपनी-अपनी कठिनाइयाँ हैं । किन्हीं को दबाव सहना पड़ता है, तो किन्हीं को लुभावने आकर्षणों की सुनहरी जंजीर से बाँधा जाता है ।

विचारणीय है कि क्या भविष्य में नारी को रबड़ की गुड़िया और कठपुतली की तरह ही जीवन-यापन करना पड़ेगा ? क्या वह अपनी प्रतिभा का उपयोग, व्यक्तित्व को प्रखर और समाज को समुन्नत बनाने में कभी भी न कर सकेगी ? यदि ऐसा हुआ तो समझना चाहिए कि संसार पर लदा हुआ पिछड़ापन आधी मात्रा में तो अनिवार्य रूप से बना ही रहेगा ।

नारी की एक और बड़ी भूमिका है-प्रजनन । वह मात्र प्रसव ही नहीं करती, वरन् भावी पीढ़ी का स्तर भी विनिर्मित करती है । यह सच्चे अर्थों में भविष्य की निर्मात्री है, क्योंकि बालक माता के संस्कार लेकर ही जन्मते हैं और शैशव की सारी अवधि उसी के संरक्षण में गुजारते हैं । तदनुसार उनके गुण, कर्म, स्वभाव का ढाँचा अधिकतर इसी अवधि में ढल लेता है । बाद में तो उस पर खराद होती रहती है ।

इस संदर्भ में सबसे दुर्भाग्यपूर्ण वह मान्यता है जिसमें नारी का मूल्यांकन उसकी सुन्दरता, कामुकता के आधार पर किया जाता है । विवाह का अर्थ है-कामुकता की कानूनी छूट के रूप में नारी का प्रयुक्त होना । हेय मान्यता के कारण ही यह फुसलाई जाती है, बिकती है । व्यभिचार, बलात्कार की शिकार होती है । किसी विभाग में नौकर है तो अफसरों के इशारे पर चलने में ही खैर मनाती है । प्रतिरोध करने पर अभियोगों और लांछनों से लदती है । कॉलगर्ल्स बनने से लेकर कैबरेडान्सों तक में वेश्याओं के कोठों में उसकी दयनीय दुर्दशा देखी जा सकती है । भूली-भटकी जहाँ-तहाँ नारी निकेतनों में भर्ती होती है । तलाक और गर्भपात की विवशता उसके लिए कितनी कष्टकर और आघातपूर्ण होती है । उसे भुक्तभोगी स्थिति में ही जाना जा सकता है । बाल-विवाहों से उनका

शरीर किस प्रकार खोखला और रोगी हो जाता है, इसकी जानकारी सर्वेक्षणकर्त्ताओं ने अनेक अवसरों पर प्रकट की है।

नारी को इस स्थिति से उबारना होगा। इसके लिए आवश्यक है कि वर्तमान कुदृष्टि कामुक चिन्तन की शिकार होने से उन्हें बचाया जाय। समानता का वास्तविक तात्पर्य यह है कि मान्यता और भावना की दृष्टि से नर-नारी को, भाई-भाई को, बहिन-बहिन को, भाई-बहिन की दृष्टि से पारस्परिक सम्बन्धों को देखें। प्रेत-पिशाच की तरह कामुकता को सिर पर न चढ़ी रहने दें। आँखों में शैतान की कुदृष्टि न घुसी रहे। भोग्या और उपभोक्ता का रिश्ता न रहे। कामुकता को न आवश्यक समझा जाय और न महत्त्व दिया जाय। पशुओं में प्रजनन अवधि आने पर मादा ही प्रथम प्रस्ताव करती है। नर बिना अनुरोध के साथ-साथ जीवन भर रहने पर भी अपनी ओर से छेड़खानी का कभी कोई प्रसंग उपस्थित नहीं होने देता। यही प्रचलन मनुष्यों में भी रहे तो शरीरों का ऐसा सर्वनाश न हो, जैसा कि इन दिनों होता रहता है। उन मानसिक विकृतियों से छुटकारा मिले जो उत्कृष्ट चिन्तन के लिए गुंजाइश ही नहीं छोड़ती। बलात्कार, व्यभिचार, अपहरण आदि की जो दुर्घटनाएँ आये दिन होती रहती हैं, उनकी कोई सम्भावना या गुंजाइश ही न रहे।

सौन्दर्य देखने की, पुलकन की वस्तु है। उसे मरोड़ देने, गला घोंट देने के लिए नहीं सृजा गया है। देवियों की प्रतिमाएँ सुन्दर भी होती हैं और सुसज्जित भी। उन्हें मंदिरों में प्रतिष्ठित देखा जा सकता है। दृष्टि सदा मातृ-भाव से सनी पवित्रता से ही भरी रहती है। यही दृष्टि हाड़-माँस की नारी के लिए भी रखी जा सकती है। ऐसी स्थिति में सच्चे प्यार की भावनाएँ बनती हैं और गिराने की नहीं-अधिक विकसित करने की इच्छा होती है। इसी मनोभूमि में नर-नारी के बीच पारस्परिक स्नेह-सौजन्य पनपता है और उनके सच्चे मन से मिलने पर ही एक और एक ग्यारह होने की उक्ति चरितार्थ होती है।

आज की विषम वेला में तो दाम्पत्य जीवन में और अधिक तप संयम बरतने की ही आवश्यकता है। हँसने-मुस्कराने भर से काम क्रीड़ा की मानसिक पूर्ति हो जानी चाहिए। साथ-साथ रहने, काम करने, एक-दूसरे को अधिक सुयोग्य बनाने, सम्मान देने, प्रशंसा करने में जो प्रसन्नता होती है, उस पर घिनौनी कामुकता को निछावर किया जा सकता है।

अगले दिनों नारी को प्रतिबंधों, दबावों, तनावों, बंधनों से मुक्त करके सामान्य मनुष्य जीवनयापन करने की स्थिति में लाना होगा। उसे काम-कौतुक से उबारकर व्यक्तित्व निखारने, प्रतिभा उभारने एवं योग्यता बढ़ाने के लिए समुद्यत करना होगा। यह समय की अनिवार्य आवश्यकता है। उसे साहित्यकारों, चित्रकारों, विज्ञापन वालों, फिल्म व्यवसायियों के लिए मनोरंजन और कमाई का साधन नहीं बनने देना चाहिए। उसे इस रूप में सज्जित-प्रदर्शित नहीं किया जाना चाहिए जिससे वह विलास की पुतली दीख पड़े और इस कारण हर ओर से विपदाओं के बादल टूटें।

अगले दिनों नारी को हर क्षेत्र में नर की समता करनी होगी। सहायक की समर्थ भूमिका निभानी होगी, पर यह सम्भव तभी है, जब उसे कामुकता की नारकीय अग्नि में जलाने और जलाने से बचाया जाय। अगले दिनों नारी का देवी स्वरूप निखरना है, जिससे वह सर्वत्र सुख-शांति की स्वर्गीय वर्षा कर सके। अध्यात्म क्षेत्र की यह जिम्मेदारी है कि आने वाले वर्षों में नारी को जन-नेतृत्व हेतु आगे बढ़ाएँ।

महिला अध्यक्ष से पंचायत का नक्शा बदल गया

श्रीमती बासम्भा के कान में जब यह समाचार आया कि पंचायत चुनाव में खड़े होने के उनके इरादे का उपहास उड़ाते हुए क्षेत्र के मुखिया प्रत्याशी ने कहा कि-"यह सब राज-काज है, स्त्रियों के वश की बात नहीं है। बच्चे जनने और चूल्हा-चौका करने के सिवाय उन्होंने कभी कुछ किया भी है और अब तारे तोड़कर दिखलाएँगी। अच्छा है बासम्भा अपना इरादा छोड़ दें और मुझे निर्विरोध पंचायत के अध्यक्ष पद पर जाने दें।"

बात तीखी थी, लेकिन बासम्भा ने बुरा नहीं माना। उन्होंने चुनाव लड़ने के अपने ढीले इरादे को मजबूत कर लिया। उन्होंने मुखिया के व्यंग्य का कोई उत्तर नहीं दिया। उन्हें मालुम था कि यह मुखिया नहीं, बल्कि समाज का वह पिछड़ापन है जो सदियों से चला आ रहा है, लेकिन अब धीरे-धीरे दूर तो हो रहा है, किन्तु उस गति से नहीं जिसकी समाज सुधार के लिए आवश्यकता है।

मैसूर के चन्नम्मान, मत्स्यमुद्रा, चत्तेकम्बा और गुंजर गुंठे ग्रामों की गाँव पंचायत का चुनाव हुआ। अध्यक्ष पद के लिए क्षेत्र में मुखिया और श्रीमती बासम्भा दो ही प्रत्याशी थे। एक के प्रचार का आधार नारियों की हीनता, अयोग्यता तथा निरर्थकता था और दूसरे का आधार पुरुषों की व्यस्तता में नारियों द्वारा हाथ बँटाए जाने की आवश्यकता। एक ने ध्वंसात्मक और दूसरे ने सृजनात्मक भावों को व्यक्त किया। फल जो होना था हुआ। श्रीमती बासम्भा भारी बहुमत से जीतीं और मुखिया ने अपनी भूल समझकर आगे के लिए शिक्षा ली।

श्रीमती बासम्भा की दोनों सहायिकाएँ श्रीमती गुडम्मा तथा अरुन्धती आईं और बधाई देने के बाद बोलीं-"आपके विचार तो विजयी हो गये, लेकिन कार्यों के लिए क्या करोगी ? क्या कुछ कर भी पाओगी या मुखिया का कथन चरितार्थ कराओगी, क्योंकि बिना कार्यों के विचार उपहास का विषय बनते हैं।"

श्रीमती बासम्भा ने बड़े साहस, उत्साह और आत्म-विश्वास के साथ उत्तर दिया—"जिन विचारों के पीछे स्वार्थ छिपा रहता है, सन्देह उन्हीं के कार्यान्वित होने में रहता है । हम सब मिलकर ईमानदारी से सार्वजनिक कार्यों का श्रीगणेश करेंगी तो भगवान् हमारी सहायता करेगा । इन परिस्थितियों में यदि हम सब क्षेत्र को एक कदम भी आगे बढ़ा सकीं, तब भी उस सफलता में सन्तोष मिलेगा । वैसे अपने ग्रामों के लिए भावना न जाने क्या-क्या करने की है ।"

दोनों सहयोगिनियाँ बड़ी उत्साहित हुईं । फिर गम्भीर होकर बोलीं—"मुखिया विरोध करेगा । बड़ा प्रभावशाली है । नीचा दिखाने का हर सम्भव प्रयत्न करेगा, बड़ा सावधान रहना होगा ।"

"इसकी चिन्ता न करो पगलियो ।"श्रीमती बासम्भा ने कहा—"नीचा अहंकारी देखा करते । हम सब तो सेविकाएँ हैं । हमारा नीचा देखना क्या ? और विरोध के विषय में यथासम्भव प्रयत्न करेंगी कि सहयोग में बदल जाये ।"

अध्यक्ष पद का शपथ समारोह पूरा होने के बाद श्रीमती बासम्भा सीधे मुखिया के घर गईं और बोलीं—"दादा, कुछ माँगने आई हूँ ।" मुखिया उनकी इस शालीन विनम्रता एवं निरहंकारिता से बड़ा प्रभावित एवं प्रसन्न हुआ । शिष्टता की प्रतिक्रिया से हार से पड़ी उसके हृदय की गाँठ खुल गई । गद्‌गद् होकर बोला—"बेटी के लिए क्या अदेय हो सकता है, बताओ न मैं क्या कर सकता हूँ ?" मुखिया आखिर मनुष्य ही था कोई पशु या पाषाण तो था नहीं, जो भद्रता का मूल्यांकन न करता ।

बासम्भा ने हाथ जोड़ कर कहा—"और कुछ नहीं आप यह आशीर्वाद दें जिससे कि मैं कुछ सेवा करने की शक्ति पा सकूँ ।" मुखिया मुख से कुछ कहते भी क्या ? आदरपूर्वक विदा कर के विचारमग्न हो गये । बासम्भा जब चली तब ऐसा अनुभव हो रहा था, मानो मुखिया की सारी शक्ति, सारी भावना, सारे साधन और सारा प्रभाव उसके साथ है और यही सही भी था । जिसका प्रमाण उक्त क्षेत्र की वह उन्नत स्थिति दे रही है, जिसने बासम्भा को दूर-दूर तक चर्चा का विषय बना दिया है और उनकी पंचायत को आदर्श निदर्शन ।

श्रीमती बासम्भा की जन-सम्पर्क से जन्मी छोटी योजनाएँ चलीं जिनके आगे मुखिया के प्रयत्न और पीछे ग्रामवासियों का उत्साह सक्रिय हुआ, क्यों न होता ? उनके तो सौभाग्यपूर्ण भविष्य का निर्माण होना था, देखते-ही-देखते पंचायत क्षेत्र की काया-कल्प हो गई ।

जहाँ पहले धूल उड़ाती गलियाँ और अशिक्षित बच्चों के रोगों और रोने के सिवाय कोई विशेषता न थी, वहाँ अब इस समय की सिंचन और कृषि-विकास साधनों के अतिरिक्त दो नर्सरी स्कूल, युवक कृषि-क्लब, अनेक सहकारी गृह-उद्योग, चार प्राइमरी तथा दो मिडिल स्कूल, एक शिल्प-शिक्षा केन्द्र और विचार-गोष्ठी के साथ एक बड़ा स्वयंसेवक दल अपने-अपने कर्तव्य में इस उत्साह से जुटे हैं कि अब गाँव के अशिक्षा, गरीबी, गन्दगी, बीमारी, जीर्णता और मानसिक दीन-हीनता को सदा-सर्वदा के लिये, दूर करके ही दम लेंगे । निश्चय ही वे उद्योगी अपने उद्देश्य में सफल होंगे, परमात्मा उनकी सहायता करेगा ।

प्रत्युपकार की बात क्यों सोचते नहीं बन पड़ती ?

अँधेरी रात चाहे कितनी ही लम्बी क्यों न हो ? उसके बाद प्रभात का, प्रकाश का उदय होना निश्चित है । एक लम्बा समय इस अनीति के बीच निकल गया कि नर और नारी के दो समान पक्षों में से एक को दुर्गति और दुर्दशा के बीच रहना पड़ा । गाड़ी के दो पहियों की तरह दोनों के मध्य समता थी, पर एक ने ऐसा कुछ माना मानो नारी केवल पशु वर्ग की तरह पुरुष की इच्छानुसार चलने और उसी के स्वार्थ साधन के लिए पैदा हुई हो ।

स्वतंत्रता मनुष्य का अधिकार है; किन्तु उससे नारी को लम्बे समय से वंचित ही रखा जाता रहा है । बचपन में अभिभावकों के अधीन, किशोरावस्था में परिवार के अधीन, तरुणाई में पिता के अधीन और वृद्धावस्था में पति के अधीन रहने के लिए उसकी नियति चिरकाल से चली आ रही है, मानो उसके जीवन के किसी भाग में स्वतंत्रता का उपभोग करने के लिए कोई समय नियत-निर्धारित न रखा गया हो ।

इक्कीसवीं सदी नारी शताब्दी है । इन दिनों नारी का वर्चस्व इतनी तेजी से बढ़ेगा, जितनी तेजी से कि उसे हानि उठानी पड़ी है और दुर्बल एवं गई-गुजरी स्थिति में रहना पड़ा है । यह दैवी विधान है जो होकर के रहेगा । अच्छा हो इस प्रयास में नर की भागीदारी भी रहे । उपकार के बदले प्रत्युपकार आवश्यक होता है । सेवा-सहायता को मुफ्त में हजम कर जाना किसी के लिए भी सम्भव नहीं होता । प्रकृति के नियमानुसार वह ब्याज समेत कई गुनी मात्रा में चुकाना पड़ता है । अच्छा होता कि इस तथ्य को पुरुष ने आरम्भ से ही समझ लिया होता और समय रहते उऋण होता रहता । इसमें लाभ यह रहता कि ब्याज और अतिरिक्त जुर्माने के दुहरे भार से बच जाता, साथ ही जिस प्रकार गाय की अधिक सेवा-सुश्रूषा एवं सज्जनोचित व्यवस्था करने पर जो लाभ हाथों-हाथ मिलता है, उससे भी वंचित न रहना पड़ता ।

नारी प्रत्यक्ष शक्ति है । उसकी विशेषताओं का आकलन नहीं हो सकता, पर यह सुगम उन्हीं के लिए है, जो समय रहते उस दिव्य शक्ति की उपयुक्त आराधना करने में उपेक्षा नहीं बरतते और अपने कर्तव्य का तत्परतापूर्वक निर्णय करते हैं । प्राचीनकाल के बुद्धिमानों ने इस आदान-प्रदान का समुचित ध्यान रखा था और जो सर्वविदित प्रत्यक्ष लाभ हर किसी को दृष्टिगोचर होता

रहता है, उसके अतिरिक्त जिन अदृश्य दैवी वरदानों का लाभ सहज ही मिलता रहता है, उससे भी वंचित न रहना पड़ता। जिस काल की गणना सतयुग नाम से होती है, वह और कुछ नहीं नारी के अनुग्रह और दुलार का अलभ्य वरदान ही था। इसे पाकर कोई भी धन्य हो सकता है। कुन्ती का अनुग्रह ही था, जो पाण्डवों ने पाया था। हनुमान को बजरंगी बनाने में उनकी माता अंजनी का ही वरदान काम आया था। राम की शक्ति सीता थी। शकुन्तला का वरदान ही चक्रवर्ती भरत के रूप में फलित हुआ था। सप्तऋषियों को जो सप्त महासिद्धियाँ प्राप्त थीं, वह उनकी सहयोगिनी माता के द्वारा ही अनुकम्पा के रूप में प्रदान की गयी थीं। देवताओं का उल्लेख जब कभी होता है, तो उनके नाम से पहले उनकी उस दिव्य शक्ति का उल्लेख होता है, जिनके कारण उनका देवत्व सार्थक हुआ। शिव के बारे में कहा जाता है कि उनके नाम के साथ जुड़ी 'इ' की मात्रा को हटा दिया जाय तो ये मात्र 'शव' ही रह जाते हैं। शिव आदि से अन्त तक एक ही रहे, पर उनकी प्रथम अर्धांङ्गिनी सती का मृत शरीर ५१ खण्डों में विभाजित होकर संसार में बिखरी हुई ५१ शक्तिपीठों के रूप में अपने प्रभाव का असाधारण परिचय देने लगा।

उपनिषद् के अनुसार सृष्टि से पूर्व एकाकी परब्रह्म था। उसे यह एकाकीपन रास नहीं आया। उस नीरव, नीरस और निस्तब्ध स्थिति में उनका काम नहीं चला। खिन्न-उद्विग्न स्थिति में उसने आकांक्षा की कि मैं एक हूँ, एक से बहुत हो जाऊँ। इस विस्तार महत्त्वाकांक्षा ने ही परा प्रकृति का रूप धारण कर लिया और उसी के आधार पर यह सुरम्य सृष्टि बनकर विनिर्मित हो गयी, जिसके कण-कण में परब्रह्म का, उसके सत्-चित्-आनन्द स्वरूप का दर्शन होता है। माया ही सौन्दर्य है। उसी के कण-कण में चित्र-विचित्र हलचलें काम कर रही हैं और वह इतना सुन्दर बन पड़ा है कि इसे छोड़ने की कल्पना मात्र से ही प्राणी को असह्य दुःख होता है। माया ही काया है। प्रकृति भी वही है। आनन्द और उल्लास उसी से बरसता है। उसी के साथ जुड़ी हुई अष्ट सिद्धियों और नव सिद्धियों की प्राप्ति के लिए साधना का अवलम्बन लेना पड़ता है।

यह तो चेतना का दिव्य स्वरूप हुआ। सांसारिक रूप से देखा जाय, तो जिस घर-परिवार के साथ मनुष्य अधिकांश समय बिताता है और आनन्द की अनुभूति में निरत रहता है, वह नारी ही है। परिवार-परिकर में से नारी तत्त्व को हटा दिया जाय तो वह नितान्त शमशान से अधिक कुछ रह ही नहीं जाता। नारी हमारे जीवन के साथ घुली होने के कारण उसकी प्रथम सरसता और समर्थता का अनुभव नहीं होता। पता तब चलता है, जब उसका वियोग सहना पड़ता है। विछोहजन्य त्रास कितना कष्टकर होता है, इसे भुक्तभोगी ही जानता है।

यौनाचार तो कभी-कभी आकाश में चमकने वाली विद्युत लता मात्र है। उसका अनुभव तो जब-तब ही होता है। उसकी स्मृति ही इतनी सशक्त होती है कि अधिकांश समय व्यक्ति उसी की कल्पना में डूबा रहता है और उस कल्पना की सरसता को ही न जाने कितने दिव्य स्मरण के साथ तन्मय होकर काल्पनिक आनन्द की अनुभूति करता रहता है। उसका प्रत्यक्ष प्रयास तो ऐसा है कि उससे निवृत्त होते ही लगता है, मानो शरीर और मन सब कुछ छूँछ हो गया। जब कभी वह प्रसंग सार्थक होता है तो एक नया सर्वगुण सम्पन्न प्राणी बनकर प्रस्तुत हो जाता है। देखा गया है कि नारी पर कई बार मनुष्य क्रोध भी करता है, तो वस्तुस्थिति का पता तब चलता है, जब उसका वियोग-बिछोह सामने आता है, अन्यमनस्कता एवं उपेक्षा सामने आकर खड़ी हो जाती है।

यह आये दिन अनुभूति में आती रहने वाली नारी की विशेषताएँ हैं। अभी इन अभावों की चर्चा हुई जिनके कारण मनुष्य घटिया, अधाँग एवं दूरदृष्टि में कनिष्ठ ही रह जाता है। कल्पना जगत में पुरुष नारी के स्वरूप की, उसकी समीपता की जितनी मधुर कल्पना करता रहा है, यदि उसे हटा दिया जाय, तो मनुष्य जीवन की सारी मधुरता, मृदुलता, उल्लास भरी उत्कण्ठा ही समाप्त हो जाती है। नारी के अनुग्रह से ही मनुष्य जन्मा, समर्थ हुआ, इस प्रकार आज सशक्त बना है और परिपक्वता की मंजिल तक पहुँचा है। इन विशिष्टताओं को यदि पृथक कर दिया जाय तो मनुष्य काया रहित भूत-पलीतों की तरह डरावना और समस्त विशेषताओं से रहित बालू के उड़ते कणों की तरह रह जाता है। काया को नारी और प्राण को नर माना गया है। दोनों का वियोग हो जाने पर दृश्यमान जीवन का एक प्रकार से अन्त ही हो जाता है। अपना दृश्यमान अस्तित्व ही गँवा बैठता है। ऐसी शक्ति स्रोत, सौन्दर्य और आनन्द की अधिष्ठात्री नारी को मनुष्य जीवन से हटा दिया जाय तो उसकी सत्ता ही सब प्रकार से समाप्त हो जाती है।

आवश्यकता इस बात की थी कि पुरुष हर घड़ी नारी की गरिमा, विशिष्टता और अनुकम्पा का निरन्तर स्मरण करता रहता और एक ही बात सोचता कि उसका प्रत्युपकार कैसे चुकाये ? कृतज्ञता का प्रत्यक्ष रूप से किस प्रकार ज्ञापन करे ? उऋण बनने का प्रयास कर वह समस्त कर्ज कैसे चुकाये ? जो उस पर युगों से चढ़ा आ रहा है। इस संदर्भ में उससे जो कुछ बन पड़ता, उसमें कमी न रहने देता। जब वैसी मनःस्थिति थी, तो मनुष्य को अहर्निश गर्व से रहने की अनुभूति होती थी लगता था मानो वह स्वर्गलोक में रह रहा है सतयुगी महिमा और गरिमा का हर घड़ी रसास्वादन कर रहा है। इस आनन्द की तुलना में पदार्थजन्य सभी आनन्द राई-रत्ती ही माना जा सकता है। नारी पुत्री है, माता है और धर्म-धारणा का केन्द्र बनकर रहने वाली-धर्मपत्नी है। हर स्थिति में वह देवी है। जो यह अनुभव करेगा, उसके रोम-रोम में से, कण-कण में से कृतज्ञता उमगेगी और बतायेगी कि जितना

अधिक उसके प्रति प्रत्युपकार बन पड़े, उसमें राई-रत्ती भर कमी न रहने दें।

भारतीय नारियाँ और पश्चिमी सभ्यता

भारतीय नारी की मध्य-कालीन और वर्तमान दुर्दशा के सम्बन्ध में हम बहुत कुछ सुनते आये हैं। हम जानते हैं कि गत एक हजार वर्षों से, जब से मुसलमान इस देश में आये, भारतीय स्त्रियों की अवस्था दिन-पर-दिन गिरती चली गई है। पर्दा, बहु-विवाह, बाल-विवाह, शिक्षा का अभाव, सामाजिक विषयों में अनधिकार आदि बातें अधिकांश में मुसलमानों के अनुकरण या प्रभाव से ही बढ़ी हैं। प्राचीन भारतीय समाज में यद्यपि स्त्री को आधुनिक काल के समान प्रतिस्पर्धा अथवा स्वच्छन्दता की स्वाधीनता न थी, पर समाज में उसका स्थान आदरणीय माना जाता था और घर में उसे पर्याप्त अधिकार प्राप्त था, पर मुसलमानी काल में पर्दा, बाल-विवाह आदि प्रथाओं के कारण उसका विकास रुकने लगा, वे शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक पतन के मार्ग पर चलने लगीं। इसके फलस्वरूप उनमें अनेक त्रुटियाँ और हानिकारक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो गईं और नारी को उपेक्षित तथा पूर्णतः पुरुष की आश्रित मान लिया गया।

पर अब कालचक्र दूसरी तरफ घूमने लग गया है। योरोपीय सभ्यता और पश्चिमीय शिक्षा का जो प्रभाव ब्रिटिश शासन काल में पड़ा है उससे नारियों के आदर्श में भी बहुत उलट-फेर हो गया है। अन्ध-श्रद्धा और पति की दासता का स्थान अब समान अधिकारों का सिद्धान्त ले रहा है। अब स्त्रियाँ यह दावा करने लगी हैं कि वे पुरुषों की तरह प्रत्येक कार्य और व्यवसाय क्यों नहीं कर सकतीं ? स्त्रियाँ क्लर्क, वकील, डॉक्टर, मजिस्ट्रेट आदि पदों के लिए प्रयत्न करने लगी हैं और उन्होंने अनेक उदाहरण उपस्थित करके दिखा दिया है कि यदि अवसर मिले तो वे सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान ही काम करके दिखा सकती हैं। यद्यपि पुराना समाज इन सब बातों को कौतूहल की दृष्टि से देखता है, इनका विरोध करता है, मजाक उड़ाता है, पर ये समय की गति को रोक सकने में असमर्थ हैं। यद्यपि वे आज भी किसी स्त्री को बाइसिकल पर चढ़ते समय मुँह बनाते हैं, कवायद और ड्रिल करते देखकर आश्चर्य प्रकट करते हैं, पर स्त्रियाँ इन बातों से आगे बढ़कर हवाई जहाज चलाने और राइफिल लेकर युद्ध का अभ्यास करने का उपक्रम कर रही हैं। हम जानते हैं कि अभी ये सब बातें हमारे देश में आरम्भिक अवस्था में हैं, पर जब योरोपीय और अमरीकी महिलाएँ इन सब कामों में सफलता प्राप्त कर चुकी हैं, तो कोई कारण नहीं कि उनसे प्रेरणा लेने वाली भारतीय स्त्रियाँ भी कुछ समय में इन सब क्षेत्रों में पर्याप्त संख्या में प्रविष्ट न हो जाएँ।

इसका अर्थ यह नहीं कि हम स्त्रियों के इस प्रकार के परिवर्तन का समर्थन करते हैं या उसे शुभ समझते हैं। स्त्रियों का इस प्रकार का पुरुषोचित काम करना, पुरुषों और स्त्रियों में जीवन-निर्वाह सम्बन्धी प्रतियोगिता उत्पन्न होना, घर की देखभाल तथा भावी पीढ़ी के पालन-पोषण की तरफ से स्त्रियों का उदासीन होना समाजहित की दृष्टि से कल्याणकारी नहीं कहा जा सकता, पर समय अथवा काल-चक्र अपना काम करता ही है। भारतीय स्त्री पर भूतकाल में जो अन्याय, अत्याचार हुए हैं और आज भी उसे जिस प्रकार परमुखापेक्षी और उपेक्षित बना रखा गया है, उसकी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक ही है। कुछ सौ वर्ष पूर्व योरोप की स्त्रियों की अवस्था भी ऐसी ही थी। वे सत्वहीन और उपेक्षित थीं और उसका परिणाम आज यह दिखाई पड़ रहा है कि पश्चिमी नारी सब प्रकार से पुरुष के मुकाबले में खड़ी हो गई है। शिक्षा, स्वाधीनता, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार सब बातों में वह पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त कर चुकी है और उसके फल से वहाँ के समाज की एक प्रकार से कायापलट हो गई है। भारतीय नारी भी अपनी पश्चिमीय बहिनों का अनुकरण कर रही है और शिक्षित स्त्रियों की एक बड़ी काफी संख्या उसी आदर्श को अपनाने में संलग्न है। इस अनुकरण का श्रीगणेश तो उन्होंने वेश-भूषा से किया है। गत पचास वर्षों में नारियों के वस्त्रों में जितना अन्तर पड़ गया है और जैसी स्वल्प-वस्त्र-युक्त, युवतियाँ इस समय बाजारों में दिखाई दिया करती हैं, वह पश्चिमीय स्त्रियों के फैशन की ही देन है।

पाउडर, लिपस्टिक, नेल-पॉलिश आदि प्रसाधन सामग्रियों का उपयोग आज देहाती तथा निम्न वर्ग की स्त्रियों में भी पहुँच गया है, जो अनेक समय तो उपहासास्पद जान पड़ता है। भारतीय स्त्रियों को जो स्वतंत्रता प्राप्त हुई है उसे वह पश्चिमी स्त्रियों की तरह ही विलासप्रियता की वृद्धि में लगा रही हैं, यह शुभ लक्षण नहीं है। स्वतंत्रता का उद्देश्य आत्मसंयम, आत्मोन्नति, सद्गुणों की वृद्धि होना चाहिए। इसी से स्वतंत्रता का अधिकार कल्याणकारी हो सकता है। इससे विपरीत मार्ग पर चलकर विलास और वासना की वृद्धि करना भारतीय संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध है। इसे हम स्वतंत्रता नहीं उच्छृंखलता ही कह सकते हैं और इसका अंतिम परिणाम हानिकारक ही हो सकता है।

योरोप की सामाजिक परिस्थिति इस समय ऐसी हो गई है कि वहाँ की कुमारी लड़कियों को स्कूली शिक्षा समाप्त करते ही अपनी आजीविका की चिन्ता करनी पड़ती है। यद्यपि उनके माँ-बाप और भाई आदि होते हैं, पर स्वतंत्रता के फलस्वरूप वह किसी पर भरोसा नहीं कर सकतीं और स्वयं कोई न कोई नौकरी, उद्योग धन्धा करना आवश्यक समझती हैं। इस भावना के फल-स्वरूप अमरीका आदि देशों के कल-कारखानों तथा दफ्तरों में काम करने वाली लड़कियों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई है और कार्य-

क्षेत्र में पुरुष-स्त्री की प्रतिस्पर्द्धा के कारण समाज में एक प्रकार की हल-चल, अस्थिरता उत्पन्न हो गई है । इससे यहाँ के सामाजिक जीवन में स्वार्थपरता की भावना बढ़ रही है और कोई किसी के लिए किसी प्रकार का त्याग करने की आवश्यकता नहीं समझता । अभी तक परिवार और समाज में नारी ही त्याग और आत्म-समर्पण की भावना का प्रसार करने वाली मानी जाती थी और उसके उदाहरण को देखकर अन्य व्यक्ति भी थोड़े-बहुत अंशों में उसका अनुकरण करने की चेष्टा करते थे । अब पश्चिम की नारी आर्थिक दृष्टि से यद्यपि स्वावलम्बी हो गई है, पर इससे वहाँ की पारिवारिक सुख-शांति जाती रही है । यदि भारतीय नारी पश्चिमीय आदर्श की नकल करती चली गई और यहाँ के पुरुषों ने भी समय रहते इस विचारधारा का संशोधन न किया तो हमारा भविष्य भी उन्हीं देशों की तरह सामाजिक कायापलट दिखाई पड़ती है ।

योरोप की स्त्रियों में जो परिवर्तन हुआ है और उसके फल से वहाँ की गृह-संस्था और परिवार में जो खराबियाँ पैदा हो गई हैं, उनको देखकर वहाँ के समाजशास्त्रियों के मन में भी चिन्ता का उदय हो रहा है । वे देखते हैं कि इस नवीन परिवर्तन के कारण समाज संघर्ष और अशांति की वृद्धि हुई है और पुरुष तथा स्त्री दोनों के जीवन की मधुरता नष्ट हो रही है । इसके फल से उन लोगों का पारिवारिक जीवन अधिकांश में शून्य और आश्रयहीन हो गया है । अगर कोई आदमी विशेष बीमार पड़ जाता है अथवा वृद्धावस्था में मरणासन्न होता है तो उसे काफी लड़के-लड़की, नाती-पोते होने पर भी कोई ऐसा दिखाई नहीं पड़ता जो उसकी खबर ले और इस कारण उसे अस्पताल की ही शरण लेनी पड़ती है और बहुसंख्यक लोगों की जीवन-लीला वहीं पर समाप्त होती है । यह सामाजिक जीवन का एक ऐसा चित्र है जिसे कोई स्पृहणीय नहीं कह सकता । मनुष्य ने जो कुछ उन्नति की है और प्रकृति की दासता से निकल कर वह उसका स्वामी बना है, उसका आधार पारस्परिक सहयोग और प्रेम की भावना ही थी । इन सब में सबसे बड़ा और दृढ़ सहयोग स्त्री-पुरुष का समझा जाता था जो सदैव एक दूसरे के लिए प्राणोत्सर्ग करने को तैयार रहते थे, पर वर्तमान परिस्थिति में वह सहयोग जैसे संघर्ष और प्रतिस्पर्द्धा का रूप ग्रहण कर रहा है, वह व्यक्ति और समाज दोनों की दृष्टि से शोचनीय है ।

भारत की स्थिति और आदर्श योरोप से बहुत भिन्न हैं और हम कभी भी वहाँ वालों का पूर्ण रूप से अनुकरण कर सकेंगे इसकी सम्भावना बहुत कठिन जान पड़ती है । इसलिए समाज और देश के कल्याण की दृष्टि से यही आवश्यक जान पड़ता है कि पुरुष और स्त्री दोनों इस परिस्थिति के कुपरिणामों को समझें और अपने घरों, परिवारों तथा समाज में जो दोष-उत्पन्न हो गये हैं उनको स्वयं ही सुधार कर समयानुकूल सुधार कर लेने की बुद्धिमत्ता दरशावें । पश्चिमी प्रथा और प्रणालियाँ हमारे समाज के लिए कभी हितकर नहीं हो सकतीं और हम जितना अधिक उनकी ओर बढ़ते जाएँगे, उतनी ही विशृंखलता हमारे समाज में पैदा होती चली जाएगी और इसका उत्तरदायित्व उन्हीं कट्टरपंथी और अज्ञानी लोगों पर होगा जो प्रत्येक सामाजिक सुधार में अड़ंगा लगाते हैं, और समाज की गति को न देखकर लकीर के फकीर बने रहने में ही अपना गौरव मानते हैं । समय रहते ही वे सम्भल जाएँ इसी में सबका हित है ।

मानवी आचार-संहिता का तकाजा

प्रकृति के अनुदान निचोड़ने में मनुष्य ने पिछले दिनों असाधारण सफलता पाई है । इस आधार पर उसका बल-वैभव भी असाधारण रूप से बढ़ा है, पर दुर्भाग्य यही रहा है कि दर्प के साथ अहंकार इस सीमा तक मिल गया है कि सदुपयोग की मर्यादा का परिपालन ही विस्मृति हो गया है, जो हाथ लगा उसका सदुपयोग करके तत्काल अधिकाधिक लाभ उठाने का अदूरदर्शी प्रचलन चल पड़ा । सोने का एक अण्डा नित्य देने वाली मुर्गी का पेट चीरकर देखते-देखते धन कुबेर बनने वाला लालची उस कीमती मुर्गी से हाथ धो बैठा और उसी करतूत पर सर्वदा पछताता रहा था ।

तथाकथित प्रगतिशीलता की इन शताब्दियों में ऐसा ही हुआ है । गिलहरी का मुँह गूलर से भर जाता है और वह उपद्रवी उस संचित सम्पदा का प्रदर्शन करने के लिए इस डाल से उस डाल पर कूदती फिरती है । इस उद्धत प्रदर्शन में वह चोट खाती, गूलर गँवाती और साथियों के बीच उपहासास्पद बनती है ।

तत्काल अति लाभ बटोरने पर उतारू मनुष्य को यह दीख नहीं पड़ता कि अगले ही दिनों इसका क्या दुष्परिणाम सामने आने वाला है । वृक्षों के बेतहाशा कटाव ने कितनी समस्याएँ उत्पन्न की हैं, उसका अनुमान लगाने पर रोमांच हो उठता है । कामुकता के भस्मासुर को उत्तेजित करके बहुप्रजनन का ऐसा पैर फैला दिया गया है जिसके लिए अन्न, जल, निवास का प्रबंध कर सकना कठिन हो रहा है । शिक्षा, चिकित्सा, रोजगार, वाहन, परिवहन आदि का प्रबंध भी करते नहीं बन पड़ रहा है ।

विज्ञान की प्रगति ने जाते-जाते मनुष्यों को यंत्रवत् हरकतें करते रहने वाला भर बना दिया है । उसकी भाव संवेदनाएँ बुरी तरह सुखा दी हैं । नीति, मर्यादा, वर्जना, सेवा, सद्भावना जैसी मानवी गरिमा के साथ जुड़ी हुई उत्कृष्टता उपहास का विषय बनकर रह गयी है और अव्यावहारिक समझी जाती है । किसी भी कीमत पर मनुष्य तृष्णा और अहंता की पूर्ति पर उतारू है, भले ही इसके लिए दानवों जैसी पैशाचिकता ही क्यों न अपनानी पड़ती हो । पारस्परिक विश्वास की जड़ें खोखली होती

जाती हैं । हर किसी को अपनी छाया से डर लगने लगा है कि कहीं पीठ पीछे चलती रहने पर भी कोई भयंकर विश्वासघात कर बैठे । जिधर भी दृष्टि दौड़ाई जाय उधर ही प्रपंच और पाखण्ड का बोलबाला दिखता है । तनिक से स्वार्थ के लिए दूसरों का बड़े से बड़ा अहित करने में संकोच नहीं होता । संक्षेप में यही है आज की परिस्थितियों का सार संक्षेप ।

जघन्य प्राणियों में बड़े द्वारा छोटों का, समर्थों द्वारा निर्बलों का शोषण करने का प्रचलन है । बड़ी मछली छोटी को खाती देखी गयी है, तो हेय जनों में 'जिसकी लाठी तिसकी भैंस' का जंगली कानून व्यवहृत होते देखा गया है, पर मनुष्य का दर्जा उससे ऊँचा है । उनके लिए बड़ों द्वारा छोटों के प्रति सेवा, सहायता, सद्भावना, सहयोग करने का, गिरों को उठाने और उठों को उछालने की आचार-संहिता निर्धारित की गयी है । पुरुषों को यदि शारीरिक दृष्टि से कुछ अधिक सबलता प्राप्त है तो उनके लिए मानवी आचार-संहिता का यही निर्धारण है कि अपनी क्षमता का एक बड़ा अंश बचाकर सहयोगी पक्ष नारी को अपने समान अधिक सुयोग्य बनाने का अवसर प्रदान करें । प्रौढ़ जब छोटे-बच्चों को कंधे पर बिठाकर उन्हें अधिक ऊँचा दिखने का अवसर प्रदान करते हैं तब इसमें दोनों पक्षों को प्रसन्नता होती है ।

नारी को प्रजनन दायित्व सम्हालने के कारण शारीरिक दृष्टि से कुछ निर्बल स्थिति में रहना पड़ता है । शिशुपालन में उसकी अधिकांश जीवनी-शक्ति घट जाती है । घर के काम-काज की जिम्मेदारी में पूरे दिन की व्यस्तता रहने के कारण आर्थिक स्वावलम्बन की दृष्टि से भी वे अवकाश पाती रही हैं । यह दो प्रमुख कारण हैं कि प्रत्यक्ष प्रदर्शन के क्षेत्र में नारी दुर्बल पायी जाती है । इसकी क्षति-पूर्ति पुरुष को अपनी सहायता का हाथ बढ़ाकर पूरी करनी चाहिए और प्रयत्न यह करना चाहिए कि गाड़ी के दोनों पहिए बराबर रहें । एक आँख छोटी और एक आँख बड़ी होने पर प्रशंसा नहीं होती, वरन् चेहरे की कुरूपता ही दीख पड़ती है । एक हाथ छोटा होने से काम करने में अड़चन पड़ती है । एक पैर छोटा पड़ने पर लंगड़ाते हुए लम्बी मंजिल पार करना कठिन पड़ता है । हल में जुते दो बैलों में एक छोटा हो तो ऊँचे वाले साथी पर अधिक बोझ और दबाव पड़ता है । यह वस्तुस्थिति समझते हुए पुरुष के निजी स्वार्थ की दृष्टि से भी यही उचित था कि एकता का ही नहीं समता का सिद्धान्त भी कार्यान्वित करता, पर हुआ ठीक उल्टा । हेय प्राणियों वाला मत्स्य न्याय, जंगल का कानून अपनाया गया और सोचा गया कि शोषण में आनाकानी करने लगने की स्थिति न बनने देने के लिए दबाकर, दबोचकर रखना ही अच्छा रहेगा । उसी स्थिति में मनमर्जी चलती रह सकेगी और प्रतिबंध रखने में निश्चिन्तता रहेगी ।

यही कारण है कि मध्यकाल से लेकर आज तक नारी को पराधीन रखने में सुविधा मिलती रही है । पशुओं को भी इसी प्रकार प्रतिबंधित रखकर उनका मनमाना उपयोग किया जा सकता है । यह नीति अपनाकर बनी हुई मान्यताएँ और चली हुई प्रथाएँ नारी के लिए तो विवशता-जन्य दुर्बलता का कारण तो बनी हीं, नर भी कुछ अधिक लाभ में नहीं रहा । सुयोग्य साथी की सहायता से जो बढ़-चढ़कर लाभ उठाये जा सकते हैं, उसे उनसे वंचित रहना पड़ा और उसके अयोग्य रहने पर अपने कंधों पर भार भी अधिक पड़ा । अनीति युक्त तो यह प्रथा थी ही । उसकी प्रतिक्रिया व्यापक हुई है । जनविवेक ने उसे धिक्कारा है और प्रकृति की प्रतिक्रिया भी प्रतिकूल ही हुई है । भूमि की उर्वरता घट जाने पर अच्छी फसल उगने की आशा नहीं की जा सकती । इस प्रक्रिया के कारण पीढ़ी-दर-पीढ़ी दुर्बल और अपंग बनता मनुष्य क्रमशः पिछड़ी हुई स्थिति में ही गिरता चला गया । यह सिलसिला अभी भी रुका नहीं ।

कोढ़ में खाज की तरह मनुष्य की संचित कुसंस्कारिता इन दिनों के भौतिक विज्ञान की बढ़ोत्तरी के साथ मिलकर अधिक भयंकर ही सिद्ध हुई है । प्रत्यक्षवादी दर्शन ने तात्कालिक लाभ को ही सब कुछ ठहराया है । विज्ञान का उपयोग मात्र अधिक दोहन, शोषण एवं उत्तेजन में हुआ । कहना न होगा कि इन दिनों के अधिक व्यापक बने प्रचार साधनों ने नर को अधिक कामुक और नारी को सजधज के सहारे अधिक आकर्षक उत्तेजक बनाया है, फलतः उसे रमणी, कामिनी की स्थिति तक आ पहुँचने पर किसी प्रकार संतोष करना पड़ा । यह विपत्ति पूर्वकाल में ऐसी नहीं थी । पर प्रगतिशीलता को क्या कहा जाय जो पतन की बढ़ोत्तरी को भी अपना ही करतब मानती और गर्व करती है । नारी को इन दिनों ही प्रयोगों में अधिक घाटे में रहना पड़ा । जघन्य हाथों ने उसे अधिकाधिक प्रतिबंधित और अक्षम बनाया । धूर्तता ने प्रेम-प्रसंगों का मुलम्मा चढ़ा कर उसे जापानी गुड़िया की तरह आकर्षक बनाकर लगभग उसी स्थिति में धकेल दिया, जिसमें वह कुछ बड़े पुरुषार्थ कर सकने की मानसिकता और क्षमता दोनों ही गँवा बैठी । अब वह छूँछ मात्र रह गयी है । इसका परिणाम समूचे समुदाय को, संसार को उसी तरह भुगतना पड़ रहा है, जैसे कि पक्षाघात पीड़ित के किसी प्रकार अपना समय गुजारना पड़ता है ।

यों नारी वर्ग का एक छोटा भाग किसी जन्मजात प्रतिभा पर रोक लगाने की अपेक्षा अवसर मिलने के कारण आगे बढ़ा और ऊँचा भी उठा है । प्रतिस्पर्द्धा में उसने यही सिद्ध किया है कि मौलिक रूप में नारी किसी भी दृष्टि में, किसी भी क्षेत्र में पिछड़ी हुई नहीं है । यदि उसे अवसर मिले तो न केवल पुरुष की समता कर सकती है, कई बार तो वह उससे कहीं अधिक सफल और सुयोग्य भी सिद्ध हो सकती है । इसका एक छोटा प्रमाण यह है कि परीक्षाओं में लड़कों की तुलना में लड़कियाँ ही हर दृष्टि से आगे रहती हैं । उनकी तत्परता, तन्मयता और संयमशीलता, नियमितता हर क्षेत्र में उन्हें अधिक सफल

रहने के अवसर प्रदान करती है । यदि पिछड़े हुए दृष्टिकोण को बदला जा सके एवं नर की तरह नारी को भी प्रगति पथ पर चढ़ने का प्रोत्साहन, अवसर मिल सके तो वे मनुष्य समाज का श्रेष्ठ, मूर्धन्य होने का अवसर अभी भी प्राप्त कर सकती है, करेगी भी ।

यह मनुष्य जाति के लिए निर्धारित आचार-संहिता का तकाजा है कि वह नारी शक्ति को आगे बढ़कर अपनी मौलिकता उभारने का नेतृत्व करने का अवसर दे । यदि पुराना प्रचलन चलता रहा तो महाकाल स्वयं अपना चक्र चला कर मनुष्य को उसके किए का दण्ड देकर नारी शक्ति से यह काम करायेगा । अच्छा हो, पुरुष पहले ही सही कदम उठा लें । भवितव्यता तो हो कर रहनी ही है ।

नारी-शक्ति की अब तो उपेक्षा न हो

आर्थिक दृष्टि से सुविकसित एवं सुसम्पन्न राष्ट्रों की समृद्धि पर विचार करने पर जो प्रमुख बात समझ में आती है, वह यह है कि उन्होंने स्त्रियों को प्रेरित-प्रोत्साहित करके उनकी कार्यक्षमता और प्रतिभा का सदुपयोग किया है, इसी कारण आज उनकी गणना विश्व के मूर्धन्य देशों में की जाती है ।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका की २५ प्रतिशत, फ्रांस की २१ प्रतिशत, जर्मनी की २० प्रतिशत और कनाडा की ३३ प्रतिशत महिलाएँ व्यवसाय-व्यापार के कार्यभार को बड़ी जिम्मेदारी के साथ सम्भाल रही हैं । जबकि विकासशील एवं अविकसित देशों में (अफ्रीका, एशिया, लैटिन अमेरिका) की संख्या १९.६ १३ तथा १५ प्रतिशत तक ही देखने को मिलती है । बहुसंख्यक महिलाओं को व्यावसायिक क्षेत्रों में अभिरुचि उत्पन्न करने का प्रोत्साहन भरा प्रयोजन जिन देशों में पूरा हुआ है उसके पीछे 'पश एण्ड पुल' वाली मनोवृत्ति ही अधिक सफल-सार्थक होती देखी गई है । यानी पुरुषों द्वारा स्त्रियों को कन्धे से कन्धा मिलाकर साथ चलने और समान रूप से कठोर श्रमशीलता का परिचय दे सकने की क्षमता का सदुपयोग किया गया है । योग्यता के अनुरूप काम देने और सुविकसित क्षमताओं का सुनियोजन करके उपयोगी दिशा में लगाया गया है ।

चीनी महिलाओं की प्रगति का एकमात्र कारण उनकी कार्यकुशलता के सदुपयोग एवं सुनियोजन का ही रहा है । वर्ष १९४८ में वहाँ की कार्यरत महिलाओं का औसत ७.५ प्रतिशत था । पुरुष वर्ग का प्रोत्साहन और महिलाओं की जागरूकता के कारण ही यह औसत वर्ष १९८३ में बढ़कर ३६.५ प्रतिशत और अब १९९३ में ४३ प्रतिशत तक जा पहुँचा है । फलतः उन्हें समान कार्य के लिए समान वेतन मिलता है । पुरुषों के समान ही अधिकार उन्हें प्राप्त हैं ।

वियतनाम एक ऐसा राष्ट्र है जिसे सबसे अधिक युद्धों का सामना करना पड़ा है, जिसके फलस्वरूप वहाँ के अधिसंख्यक पुरुषों को अकाल मृत्यु का शिकार बनना पड़ा है । देश में पुरुष वर्ग की संख्या में विशेष कमी आ गई । राष्ट्रीय उत्पादन में गिरावट को वहाँ की महिलाएँ न देख सकीं, तो उन्होंने बड़ी सतर्कता और जागरूकता के साथ अपनी क्रियाशीलता का परिचय दिया । फलतः सन् १९८० में वियतनाम की ७० प्रतिशत महिलाओं ने उत्पादन अभिवृद्धि का दायित्व भली प्रकार सम्भाला और देश की आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया है । जापान की स्त्रियों ने किसी कार्य को छोटा-बड़ा न समझकर राष्ट्रीय भावनाओं के साथ बड़ी लगन-निष्ठा से पूरा कर दिखाया है । अर्थ-तंत्र को मजबूत बनाने में महिलाओं की भूमिका अत्यधिक सराहनीय रही है । यही कारण है सन् १९४४ में बने श्रम कानून के अन्तर्गत उनके हित साधन को ध्यान में रखते हुए कार्य-क्षमता के अनुरूप ही भुगतान की व्यवस्था बनाई गयी है । ब्रिटिश पत्रिका में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार प्रगति का यही क्रम यथावत् चलता रहा, तो बीसवीं सदी के अंत तक समूचे विश्व की अधिकतर महिलाएँ उद्यमियों और व्यवसाइयों के रूप में उभर आयेंगी ।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के महानिर्देशक फ्रांसिस बलकंड के अनुसार एशियाई देशों में भी अब महिलाओं में कार्य भार सम्भालने की प्रेरणा जगी है । कहीं-कहीं तो वे रोजगार की दौड़ में पुरुषों से भी आगे हैं । आँकड़े बताते हैं कि वर्ष १९९० में महिला कामगरों की संख्या ४६ करोड़ ४० लाख थी । यदि वृद्धि का यही क्रम आगे चलता रहा तो बीसवीं शताब्दी के आखिर तक कामकाजी महिलाओं की संख्या ५८ करोड़ ३० लाख तक जा पहुँचेगी ।

अपने देश में पिछले दिनों तक नारी-शक्ति उपेक्षित रही थी । अब धीरे-धीरे जब इस शक्ति की उपयोगिता समझ में आ रही है, तो उसे प्रेरित-प्रोत्साहित किया जा रहा है, पर अब भी सीमित क्षेत्रों में ही इसका प्रवेश हो पाया है । आवश्यकता है उन सभी क्षेत्रों में उसे भी स्वीकार किया जाय, जिन्हें अब तक पुरुषों के लिए सुरक्षित माना जाता रहा है । वस्तुतः तभी देश की समग्र प्रगति सम्भव हो सकती है ।

नारी की क्षमता और भूमिका

महिलाओं को पुरुष की तुलना में कमजोर समझा जाता है, पर वास्तविकता ऐसी है नहीं । कद और वजन में पुरुष से हल्की पड़ने पर भी उसमें जीवनीशक्ति कहीं अधिक होती है । संसार भर के पर्यवेक्षण में उसकी औसत आयु पुरुष की तुलना में दो वर्ष अधिक पायी गयी है । सन्तानोत्पादन में जितनी पीड़ा होती है, शरीर का जितना

अंश बाहर निकालना पड़ता है, उतना यदि पुरुष को जीवन में एक-दो बार भी सहन करना पड़े तो उसका स्वास्थ्य बुरी तरह लड़खड़ा जाएगा, पर नारी है जो अपनी मौलिक जीवनी-शक्ति के आधार पर सहज ही उसे क्षति की पूर्ति कर लेती है ।

दबाकर रखा जाय तो हाथी और शेर भी विवश हो सकता है । बंदीगृह में पड़ा हुआ नेपोलियन भी दयनीय दुर्दशा सहने को विवश हो गया था । नारी को पैर की जूती मानकर उसका मनोबल तोड़ दिया जाय तो वह रोने-कलपने और आत्महत्या जैसे अनर्थ ही सोच सकती है, किन्तु यदि अवसर मिले तो प्रतिस्पर्द्धा में वह किसी भी प्रकार भी पिछड़ती नहीं है । हर वर्ष परीक्षा में जितनी अच्छी तरह लड़कियाँ पास होती हैं, उतने लड़के नहीं ।

नारी को विकसित होने, आगे बढ़ने का जिन राष्ट्रों ने प्रोत्साहन दिया है, वहाँ वे सामाजिक एवं राष्ट्रीय समृद्धि में बढ़-चढ़कर योगदान प्रस्तुत कर रही है । आँकड़े बताते हैं कि चीन में १९५८ में केवल सात लाख महिलाएँ नौकरी करती थीं, जो वहाँ की जनसंख्या का केवल ९५ प्रतिशत थीं । परन्तु अब वहाँ पर ३४ प्रतिशत महिलाएँ विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत हैं । चीन में वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्र में इनकी संख्या एक-तिहाई है । वहाँ की नेशनल पीपुल्स काँग्रेस, जो हमारी लोकसभा के समकक्ष है, में महिला सदस्यों की संख्या २१.२ प्रतिशत है । कुछ महिलाएँ मंत्रिमण्डल में भी हैं । टैक्सटाइल एवं विदेश विभाग में भी महिलाएँ सर्वोच्च पदों पर आसीन हैं । पिछले दिनों ३० में से १९ चीनी प्रान्तों में महिलाएँ उप-राज्यपाल एवं मेयरों के पद पर आसीन थीं । ११५०० महिलाएँ कम्युनिस्टों की प्रधान हैं । जापान में तो अब महिलाओं का वर्चस्व स्थापित हो ही चुका है ।

खाद्य एवं कृषि संगठनकर्त्ताओं ने हाल में किए सर्वेक्षण से यह निष्कर्ष निकाला है कि खाद्य एवं कृषि उत्पादन में महिलाओं का योगदान जितना अभी तक माना जाता था, उससे कहीं अधिक है ।

गत दिनों प्रसिद्ध सोवियत पत्र 'सावना' ने वैज्ञानिकों का एक मनोरंजक सर्वेक्षण प्रकाशित किया था कि एक घरेलू महिला एक वर्ष में २००० किलोमीटर की यात्रा कर लेती है । यदि वह केवल अपने दो कमरों या फ्लैट में ही चले एवं आवश्यक क्रय-विक्रय के लिए ही जावे तो इस प्रकार वह प्रतिदिन १०,००० कदम चल लेती है । इसी प्रकार घर पर उसके द्वारा धोये गये बर्तनों को यदि तौला जाय तो वर्ष भर में धोये गये बर्तनों का भार ५ टन होगा । इस भार में १८००० चम्मच-चाकू, १३००० थालियाँ, ६०० प्याले और तश्तरी, ३००० भगौने एवं कड़ाही सम्मिलित है । इस विवरण में पुरुषों द्वारा किये गये कार्मों को उनकी तुलना में बहुत कम बताया गया है ।

नारी का महत्त्व यदि समझा जा सके और स्नेह-सहयोगपूर्वक उसकी क्षमता बढ़ाने में योगदान दिया जाय, तो निश्चय ही अब की अपेक्षा अगले दिनों वह हर क्षेत्र में महती भूमिका निभा सकती है ।

आधी जन-शक्ति को स्वयं आगे आना होगा

किसी भी देश की प्रगति में महिलाओं का योगदान महत्त्वपूर्ण होता है । यदि उन्हें आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित किया जाय और सही ढंग से प्रशिक्षित किया जाय, तो वह भी पुरुषों की तरह हर क्षेत्र के विकास में अपनी अहम् भूमिका निभा सकती है, यह सत्य भी है और एक तथ्य भी ।

संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट में कहा गया है कि समूचे दिन में कुल मिलाकर जितने घण्टे काम होता है उनमें से दो-तिहाई घण्टे यानि ६६ प्रतिशत काम महिलाओं द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है । ग्रामीण अंचल में निवासरत महिलाएँ कुल खाद्य का ५० प्रतिशत उत्पादन करती हैं, लेकिन भारतीय नारी की वर्तमान स्थिति बड़ी दयनीय भी है और दुर्भाग्यपूर्ण भी । आँकड़े बताते हैं कि वर्ष १९८१ में मात्र १६ प्रतिशत महिलाओं को ही उत्पादक कार्य में अपनी दक्षता का परिचय दे सकने का अवसर मिल पाया है शेष ८४ प्रतिशत महिलाओं को हाथ-पर-हाथ-रखकर किसी तरह समय काटने को विवश रहना पड़ता है ।

महिला विकास केन्द्र 'विकासिनी' के समाज-शास्त्रियों के कथनानुसार भारत में कार्यरत कृषि मजदूर महिलाओं को बच्चों से भी कम काम मिलता है, जिसके परिणामस्वरूप उनमें मौसमी पलायन की प्रवृत्ति दिनों-दिन बढ़ती जा रही है । पिछली जनगणना के अनुसार ऐसी कामकाजी महिलाओं की संख्या ३ करोड़ ४० लाख थी, जिनमें से २ करोड़ ९० लाख की संख्या ग्रामीण क्षेत्र की थी । भारतीय महिला राष्ट्रीय संघ की रिपोर्टानुसार रोजगार दफ्तरों की स्थिति को देखकर यही कहा जा सकता है कि कामकाजी महिलाओं की संख्या निरन्तर घटती जा रही है । सन् १९८१ में सरकारी सेवाओं में कार्यरत महिलाओं की संख्या में २.५ प्रतिशत की कमी आयी है । इस समय गाँव और शहर की अधिसंख्यक महिलाओं के पास कोई काम ऐसा नहीं है, जिससे राष्ट्रीय उत्पादन की अभिवृद्धि का उपक्रम बिठाया जा सके । इसे एक प्रकार से राष्ट्र का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है कि कार्यक्षमता सम्पन्न आधी आबादी को रोजगार के समान अवसर नहीं मिल पा रहे हैं । आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न एवं समुन्नत राष्ट्रों ने तो नारी की दक्षता को समझा और तदनुरूप मनुष्योचित् अधिकार भी प्रदान किये हैं । इसलिए औद्योगिक प्रगति का लाभ उन्हें सीधा मिलता है, किन्तु ब्राजील, मैक्सिको, नाइजीरिया और भारत ऐसे राष्ट्र हैं, जिनमें औद्योगिक प्रगति तो हो रही है, पर स्त्रियों की इसमें भागीदारी नाम मात्र की

ही है । समान काम के लिए समान पारिश्रमिक कहाँ मिल पा रहा है ? वर्ष १९७० के दशक में पुरुषकर्मियों की आय महिलाकर्मियों की आय से ५४ प्रतिशत अधिक थी जो वर्ष १९९० तब बढ़कर ६७ प्रतिशत तक हो गयी । इसका एक प्रमुख कारण स्त्रियों को काम करने के लिए उपयुक्त वातावरण की कमी का तो है ही, पर सबसे बड़ा कारण उनकी स्वयं की जागरूकता की कमी का है ।

प्राय: देखा गया है कि कल-कारखानों में पुरुषों को ही तकनीकी जानकारी कराई जाती रही है और स्त्रियों की इस क्षेत्र में उपेक्षा कर दी जाती है, जबकि इलैक्ट्रोनिक्स उद्योग के मालिकों का कहना है कि पुरुषों की अपेक्षा नारी तकनीकी कार्य को सँभालने-सुधारने में अधिक सक्षम होती हैं । इसी कारण उन्हें इस क्षेत्र में पुरुषों की तुलना में अधिक रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं । पंजाब के सरकारी आलू बीज कृषि केन्द्र मत्तेवाड़ा के विशेषज्ञों द्वारा किये गये सर्वेक्षण से भी यही तथ्य उजागर हुआ है कि स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा तीन-गुना अधिक कार्य-कुशलता का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं । अभी कुछ दिन पूर्व कर्नाटक की 'अस्त्र' नामक संस्था के विशेषज्ञों ने एक गाँव का सर्वेक्षण किया, जिससे ज्ञात हुआ कि वहाँ के कुल उत्पादन कार्य में औरतों-बच्चियों का योगदान ७७ प्रतिशत है और पुरुषों का मात्र २३ प्रतिशत । इस प्रकार जिस शक्ति की हम 'अबला' कहकर उपेक्षा कर देते हैं यदि उसका सही मूल्यांकन किया जाय और उसे आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने के लिए प्रयास किया जाय तो कोई कारण नहीं कि हर क्षेत्र में प्रगति के दूने-चौगुने परिणाम सामने न आयें ।

स्रजेता की गरिमा के अनुरूप सम्मान मिले

स्रष्टा ने मानव समुदाय में नर और नारी का युग्म बनाने की दूरदर्शिता इस सुनियोजन के निमित्त बनाई है कि वह अपनी-अपनी संरचना के अनुरूप पराक्रम करें और उपलब्धियों का श्रेष्ठतम सदुपयोग करें । यह तभी सम्भव है, जब दोनों के बीच न केवल भौतिक क्रिया-कलापों का ही सहयोग हो वरन् सघन भावनात्मक स्तर भी गुँथा हुआ हो । यदि इस प्रकार का तारतम्य न बन पड़ेगा तो तथाकथित प्रगति, शक्ति सम्पन्नता का दुरुपयोग ही होता रहेगा और उसका प्रतिफल ऐसा ही अनिष्टकारी बना रहेगा जैसा कि पिछले दिनों से लेकर अब तक बना रहा है । इस अवरोध का अन्त तभी हो सकेगा, जब नारी को सर्वतोमुखी अभ्युदय का अवसर मिले और वह उस तक पहुँचे जिसकी कि वरिष्ठ होने के नाते हर दृष्टि से वह अधिकारी है ।

मनुष्य भूत से प्रेरणा लेता, वर्तमान में जीता और भविष्य का ताना-बाना बुनता है । भविष्य पूरी तरह भावी पीढ़ियों के स्तर पर निर्भर है । समय बीतते-बीतते आज का समर्थ कल वृद्धावस्था के कारण जराजीर्ण हो जाता है और व्यवस्था और सम्भावना अगली पीढ़ी के कंधों पर चली जाती है । उसका निर्माण और विकास भी उतना ही आवश्यक है जितना कि अगली बदलती ऋतु के अनुरूप कुछ समय पहले से ही तैयारी करनी होती है । कहना न होगा कि संतान की काया ही नहीं चेतना भी माता के अनुरूप होती है । पिता तो उसका वाहक व्यवस्था का निमित्त बनता है । अन्तराल का स्पर्श और उत्कर्ष वह जननी ही कर पाती है जिसके गर्भ में वह बना और जिसकी गोदी में वह पला है ।

खिलौने ढालने से पूर्व उसका साँचा सही करना पड़ता है । भावी सन्तान को हमें जिस भी रूप में देखना हो उसके अनुरूप जन्मदात्री को ढलना और ढाला जाना चाहिए । नारी का कार्य-क्षेत्र मात्र संतति का प्रजनन और उसका चेतनात्क निर्माण ही नहीं, वह सारी परिवार परम्परा को प्रभावित करती है । एक कदम और बढ़ाने पर प्रतीत होता है कि परिवार से भी आगे बढ़कर नारी का व्यक्तित्व समूचे समाज को भी प्रभावित करता है और अपने स्तर का वातावरण बनाता है । उसे कोई घर की नौकरानी समझता भले ही रहे, पर वस्तुत: वह एक ऐसी भावभरी ऊर्जा है जिसका प्रभाव समूचे वातावरण पर पड़े बिना नहीं रहता । उसे अनगढ़, उपेक्षित स्तर की बनाये रहकर हम एक महत्त्वपूर्ण शक्ति को अपंग बनाने का खिलवाड़ भर करते हैं ।

समय आया है कि पुरुष आगे बढ़कर नारी उत्कर्ष का समर्थ एवं व्यापक अभियान खड़ा करे । उसका आरम्भ अपने घर-परिवार और सम्पर्क क्षेत्रों की प्रतिभावान् नारियों को आगे रखकर करें । पाँच का एक संगठन बनाकर उन्हें पचास की मण्डली बनाने के लिए विकसित किया जाय । उनका नियमित साप्ताहिक सत्संग चल पड़े । इसी एकत्रीकरण से अनेकों रचनात्मक प्रवृत्तियों का जन्म हो सकता है । शिक्षा संवर्द्धन, स्वावलम्बन, कुरीति उन्मूलन, प्रगति प्रक्रिया अपनाने के लिए परिस्थितियों के अनुरूप कार्य निर्धारण का क्रम चल पड़े तो उतने भर से कुछ ही समय में चमत्कारी परिणाम उत्पन्न हो सकता है ।

खोदी खाई को भरने और उस स्थान पर ऊँचा स्तम्भ खड़ा करने के लिए समर्थ प्रयास करने होंगे । नारी को पुरुष के समतुल्य लाने के लिए उसकी क्षमता में तेजी के साथ असाधारण सम्बर्द्धन करना होगा । जिस प्रकार विवाह से पूर्व पितृ-गृह में दुलार, पोषण और प्रशिक्षण मिलता है, वह रीति-नीति ससुराल में भी जारी रहे और उसकी प्रगति में पच्चीस-तीस वर्ष की आयु में परिपक्व होने तक व्यवधान न पड़ने दिया जाय । पतियों में से प्रत्येक का यह कर्त्तव्य बने कि घर में आते ही उसे हल में न जोत दिया जाय, पिंजड़े में कैद न कर दिया जाय । पिता के घर में जितनी योग्यता प्राप्त हुई है उसकी अभिवृद्धि का प्रयास

और भी अधिक उत्साह से आरम्भ कर दिया जाय और पेड़ से फल तोड़ने की लालसा तभी जगाई जाय, जब वह पूरी तरह विकसित, परिपक्व हो गयी हो । अपरिपक्व शरीर और मन को दबावों से पीस डालना उसके साथ अन्याय करना है । जिससे दुलार जताया जाता है, उसके साथ शोषण व अनाचार न बरता जाय ।

महिलाओं को प्रगति के लिए अवसर मिले इसके लिए आवश्यक है कि घर का काम-काज घर के सभी लोग मिल-जुल कर थोड़े समय में निबटा लिया करें । ऐसा करने पर एक ही कन्धे पर लदा बोझ सभी लोग मिल-जुलकर उठा लिया करेंगे और महिलाओं को इतना अवकाश मिल सकेगा कि वे अपनी योग्यता, क्षमता एवं दक्षता बढ़ाने का प्रयास कर सकें । इस प्रयास में पुरुषों का सहयोग और अनुदान प्रोत्साहन तो बढ़ा-चढ़ा रहना ही चाहिए ।

आधी जनसंख्या का पुनरुत्थान कैसे हो ?

शिक्षा, दक्षता, प्रतिभा के बलबूते ही मनुष्य का मूल्यांकन होता है । इन्हीं के सहारे अर्थ उपार्जन से लेकर महत्वपूर्ण दायित्व सम्भाल सकने का सुयोग मिलता है । यदि स्थिति अनगढ़ अयोग्य स्तर की बनी रहे, तो कोई उतना ही कुछ पा सकने में सफल होता है, जितना कि उसके शारीरिक श्रम का बाजार भाव होता है ।

नारी को इन दिनों ही परिस्थितियों में से होकर गुजरना पड़ रहा है । इस पुरुष प्रधान समाज में उसकी एक प्रकार से उपेक्षा ही कर दी गयी है । न उसकी शिक्षा की ओर समुचित ध्यान दिया जाता है, न प्रतिभा विकसित करने का अवसर मिल पाता है । उसे अपना अधिकांश समय घर की चारदीवारी के अन्दर ही चूल्हे-चौके तक सीमित रहकर गुजारना पड़ता है, फलतः आधी जनसंख्या अर्धांग पक्षाघात की तरह निर्बल-असमर्थ पड़ी हुई है, जबकि होना यह चाहिए कि नारी वर्ग को भी ऊँचा उठने, आगे बढ़ने का मौका मिले ।

इसके लिए परिवार का समय और श्रम का विभाजन ऐसा होना चाहिए कि सभी को काम-काज निपटाने में सम्मिलित भूमिका निभाने की प्रक्रिया अपनानी पड़े । हर समय कुछ न कुछ करते रहने के लिए ही किसी पर अनिवार्य बन्धन न रहे । सर्वतोमुखी अभ्युदय ही एक ऐसा कार्य है, जिसके लिए घर के अन्य सदस्यों की तरह वधुओं को भी अवकाश और अवसर मिलता रहे । जिन घरों में ऐसी व्यवस्था बन पड़े, समझना चाहिए उसमें प्रगतिशीलता की प्रकाश-किरणों का प्रवेश आरम्भ हुआ और सड़न-सीलन के अँधियारे वाले माहौल से राहत मिली ।

सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करना नर की तरह नारी के लिए भी आवश्यक है, अन्यथा वह सदा व्यवहार कुशलता से वंचित ही बनी रहेगी, धूर्तों द्वारा ठगी जाती रहेगी, कुरीतियों को बंदरिया के मरे बच्चे की तरह छाती से चिपकाये रहकर घिनौने दृश्यों की ही संरचना करती रहेगी । परिवार के हर सदस्य के, हर पक्ष में सुव्यवस्था जन्य सुन्दरता, स्वच्छता और कलाकारिता का दर्शन होना चाहिए । परिवार के सदस्यों के बीच गहरा स्नेह, सौजन्य पनपना चाहिए । यह कार्य गृहलक्ष्मी की भूमिका निभा सकने वाली दक्ष नारियाँ ही कर सकती हैं । आँगन में खेलने के लिए स्वर्ग को उतार सकना उन्हीं के कौशल पर निर्भर है, पर इस प्रकार की दक्षता सम्पादित करने के लिए समय भी तो मिलना चाहिए । गाय के दूध देने की अनुकम्पा प्रख्यात है, पर उसे भी तो दुहने से पहले घास-पानी का प्रबन्ध करना पड़ता है । यदि हेय स्तर की परम्पराओं के बीच ही किसी को दिन गुजारने पड़ें, तो फिर ऐसी आशा कैसे की जा सकेगी कि वे देवियों जैसी भूमिका सम्पन्न कर सकेंगी ?

शिक्षा तंत्र से एक कमी यह है कि उसमें भूगोल, इतिहास, रेखागणित आदि अनेक आवश्यक-अनावश्यक विषयों की भरमार रहती है, पर जीवन जीने की कला और सुखी-समुन्नत, प्रखर-प्रामाणिक बनने के लिए जो नितान्त आवश्यक है, उसे छोड़ दिया गया है । इस कमी की पूर्ति में हमें नारी प्रगति-विद्यालयों को मुहल्ले-मुहल्ले स्थापित करना होगा । इक्कीसवीं शताब्दी नारी प्रधान शताब्दी है । उसमें उसे बढ़-चढ़कर उत्तरदायित्व निभाने पड़ेंगे । राजनीति में, समाज व्यवस्था में, आर्थिक खुशहाली में, परिवार को नर-रत्नों की खदान बनाने जैसे अनेक कार्य करने होंगे । रूढ़ियों और कुरीतियों ने जिस कोंतर में अण्डे-बच्चे दे रखे हैं, वह नारी के कई क्षेत्रों के साथ ही गुँथा हुआ है । सफाई उसे ही इस गन्दगी की करनी होगी । इस निमित्त क्या छोड़ना-छुड़ाना और क्या अपनाना आवश्यक होगा ? इसके लिए आज के संदर्भ में समय की आवश्यकताओं को पूरा कर सकने वाला एक स्वतंत्र शिक्षा तंत्र खड़ा करना होगा । इसका ढाँचा खड़ा करने के लिये जहाँ दूरदर्शी मनीषियों की उदार-सेवा- भावना अपेक्षित है, वहाँ उतना ही आवश्यक यह भी है कि नारी समुदाय से कुछ प्रतिभाएँ उभरें और अपने समुदाय को उत्साहित-संगठित करके प्रगतिशील प्रशिक्षण में भागीदार बनाने के लिए अपने उत्साह का परिचय दें ।

इसके लिए महिलाएँ अपने क्षेत्रों में ऐसे विद्यालयों को स्थापित करें, जिनके द्वारा स्थानीय महिलाओं को प्रशिक्षित करने का कार्य अनवरत रूप से चलता रहे । नवयुग मे उदीयमान नारी को अपने चिन्तन और क्रिया-कलाप में ऐसा परिवर्तन करना पड़ेगा, जिसके सहारे वे न केवल अपनी दक्षता को विकसित कर सकें वरन् सम्पर्क क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकें । यह तंत्र उस कमी की पूर्ति करेगा, जिसका समावेश स्कूली शिक्षा में समाविष्ट होने से छूट गया है ।

मनुष्य की संरचना उन विशेषताओं के साथ हुई है, जिनके आधार पर वह न केवल स्वयं स्वावलम्बी जीवन जी सके, वरन् अन्यान्य अनेकों के लिए अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध हो सके । उन जन्मजात उपलब्धियों के उपेक्षित, तिरस्कृत होने पर ही मनुष्य अपने लिए और सहयोगियों के लिए भारभूत बनता है । अगले दिनों जिस सर्वतोमुखी प्रगति की आशा-अपेक्षा की जा रही है, उसमें पुरुष से भी अधिक नारी का योगदान होगा । इस दायित्व को वहन करने में उसे हर दृष्टि से समर्थ बनाने की महती आवश्यकता है । वह उठ और उभर सके, तो समझना चाहिए कि उसकी प्रसुप्त क्षमताओं के उभरने और उस उभार के सहारे सर्वतोमुखी प्रगति का सरंजाम जुट सकने का आधार खड़ा हो गया । इन दिनों प्रधानतया पुरुष को ही महत्त्वपूर्ण कार्यों का भार वहन करना पड़ता है । यदि नारी भी इसकी सच्चे अर्थों में सहायक बन सके, तो समझना चाहिए कि समस्त मानव समाज के लिए सौभाग्य के सूर्योदय का समय आ गया और अन्धकार के निशाकाल से छुटकारा पाने और प्रगति का प्रतीक दिनमान अपनी ऊर्जा एवं आभा का परिचय देने के लिए समूचे आकाश पर छा गया ।

पिछले दिनों नारी अपने पिछड़ेपन के कारण परावलम्बी एवं अनगढ़ स्थिति में अपना समय गुजारती रही है । अब वह दुःखदायी भूतकाल सदा-सर्वदा के लिए विदा हो गया समझा जाना चाहिए । नारी प्रगति का अर्थ है–आधी जनसंख्या का उदात्तीकरण, उसकी समुन्नत प्रतिभा के आधार पर सुविधा-साधनों का असाधारण रूप से अभिवर्द्धन । स्वतंत्रता के लिए पिछले दिनों हुई क्रान्तियाँ अभी भी अधूरी हैं, क्योंक उनके हो चुकने के उपरान्त भी नारी वर्ग का पिछड़ापन यही दर्शाता है कि समूचे मानव समाज के मानवाधिकारों का लाभ सर्वसाधारण को नहीं मिला । मात्र पुरुष ही उस उपलब्धि का लाभ उठा सके. । अगले दिनों जब नारी को मानवोचित् अधिकार पाने और प्रगति करने की सुविधा मिलेगी तभी यह माना जा सकेगा कि अर्द्धांग पक्षाघात जैसी स्थिति से छुटकारा मिला और स्वतंत्रता के वरदान से हर किसी को लाभान्वित होने का वह अवसर मिला, जिसके बिना सब कुछ अधूरा ही पड़ा था ।

मनुष्य उत्पादक सत्ता है । उसे शरीर यात्रा में जितनी शक्ति लगानी पड़ती है, उसके उपरान्त भी इतनी क्षमता बची रहती है कि सामूहिक उत्कर्ष के लिए वह बहुत कुछ कर सके इस लक्ष्य को जब नारी के लिए चरितार्थ होते देखा जाएगा, तो उस सम्पन्नता और प्रगतिशीलता में सहज ही दूनी अभिवृद्धि होने लगेगी, जिसके लिए अनेक योजनाएँ बनतीं और आधी-अधूरी रहकर निराशा की स्थिति उत्पन्न करती हैं । आधी जनसंख्या का पुनरुत्थान एक प्रकार से उस समग्र विकास का परिचायक है, जिसके अन्तर्गत किसी को भी अभावों और विपत्तियों के बीच गुजारा करने के लिये बाधित न होना पड़ेगा ।

नारी का खोया वर्चस्व उसे लौटाना ही होगा

वर्तमान में नारियों को पुरुषोचित् अधिकार देना मात्र सामयिक परिस्थिति नहीं है, बल्कि उसके गौरवपूर्ण इतिहास को दुहराना है, जो प्राचीनकाल में अपने पूर्ण रूप में थे । अधिकांश विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि समस्त विश्व में विद्यमान मानवतावादी प्राचीनतम धार्मिक मान्यताओं में नारियों को पवित्रतम् स्थान प्राप्त था । भारत से लेकर पश्चिम यूरोप के पुरातनवादियों ने अनेक महत्त्वपूर्ण प्रमाण खोज निकाले हैं, जो बताते हैं कि कभी नारियों को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी । उनकी विशेषता पुरुषों से भी बढ़-चढ़ कर रही है ।

१०,००० वर्ष तक फलने-फूलने वाले २५,००० से ३०,००० पुरा प्रस्तर युग के पूर्व उत्पन्न होने वाले और गेन्सियन संस्कृति एवं पूर्व नव्यप्रस्तर संस्कृति (९००० से ७०००) ईसा पूर्व में समान रूप से मातृ-देवी की ही पूजा-की जाती थी । उस काल में कोई भी पुरुष इष्ट नहीं था । यही मान्यता उसे काल की नारियों के प्रति भी थी । नव्य प्रस्तर क्षेत्र में विद्यमान ६५०० ईसा पूर्व शहर एनाटोलिया में कैटक हैयक देवी की भव्य प्रतिमा एवं पूजा सामिग्री उस काल के मातृ इष्ट की साक्षी देते हैं । चार सहस्त्राब्दि बी. सी. का वस्तुगत प्रमाण की तरह लिखित अस्तित्व यह साक्षी देता है कि पाश्चात्य सभ्यता के अन्तर्गत मेसापोटामिया, इजिप्ट एवं क्रेट के जीवित केन्द्रों के धार्मिक स्वरूप में नारी सुलभ गुणों का अस्तित्व था । इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल.में नारी के प्रति पवित्र मान्यता थी । उसे पुरुष से निचला दर्जा मानना तो दूर, उसकी उपासना पुरुष के द्वारा की जाती थी । विशेषज्ञ स्पष्ट करते हैं कि नारी के प्रति देवी मान्यता की तुलना किसी पुरुष देवता के करने पर उस काल के लोग कठिनाई अनुभव करते थे ।

आदिम धर्मों (ट्राइवल रिलीजन) में नारी को उचित स्थान प्राप्त था । वह नर के समान ही पूर्णतः स्वतंत्र थी और नर के कार्यों में योगदान देती थी । खोजकर्त्ताओं के अनुसार संसार में अभी भी विद्यमान प्रमाण इसकी पुष्टि करते हैं । उदाहरणस्वरूप प्राचीन आस्ट्रेलिया के अनेक समूहों में प्रचलित किम्बदन्तियाँ नारी के प्रति सम्मान भाव को प्रकट करती हैं । अफ्रीका के अधिकांश समूहों में नारी को देवी एवं पूर्वजों की धरोहर के रूप में पूजा जाता

है । अमेरिका मूल के निवासियों में धरती को पवित्र माता के रूप में मानने की प्रथा है । इस उपलक्ष्य में मनाये जाने वाले त्योहार में वहाँ भूमि पूजन की तरह नारियों के ऊँचे स्थान में बिठाकर पूजन करने की परम्परा है । वहाँ के गोत्र भी मातृ गोत्र कहलाते हैं । पितृ गोत्र की अपेक्षा इसे ही मान्यता भी मिली हुई है । एस्किमो जाति में जीव-जन्तुओं की रानी नवेजों एवं सेडना के रूप में नारी शक्ति की पूजा की जाती है ।

सुदूर पूर्व के धर्मों के अन्तर्गत चीनी धर्मों में देवताओं के प्रभावी स्वरूप हैं । ताओ के प्राचीनतम स्वरूप में शक्ति केन्द्र को नारी के रूप में मान्यता प्राप्त है, जैसे–'मदर ऑफ ऑल थिंग' । 'समस्त जड़ चेतन की माता' एवं रहस्यपूर्ण नारी । जो ताओ का अनुसरण करता है, उसे यह सलाह दी जाती है कि अपने अन्दर नारी सुलभ कोमल गुणों, स्नेह, ममता, वात्सल्य, करुणा, संवेदनशील को जगाये, तभी वह परम लक्ष्य तक पहुँच सकने में सफल होगा । ताओ को विच्छेदित कर 'यिन' और 'येन्ग' के रूप में मानते हैं । इसका अर्थ नर और नारी गुणों की एकात्मकता है । चीन के धार्मिक देवताओं में नारी के देवी स्वरूप को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । उनके प्रति श्रद्धा रखने वालों में यह मान्यता है कि अवतार स्वरूपा देवी उन्हें दोषों से दूर रखेगी एवं विशेष आशीष देगी । जापानी धर्मों में 'अमारेसू' प्रख्यात देवता है, जो सूर्य से सम्बंधित है एवं जापानी राष्ट्र का संस्थापक एवं संरक्षक है। इसके सम्बन्ध में जापानी किंवदन्तियों से स्पष्ट होता है कि यह भी नारी स्वरूपा है । यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सुदूर पूर्व के बौद्ध धर्म में बुहिस्थवा क्यान यिन दया की देवी के रूप में प्रख्यात थीं ।

प्राचीन विश्व के श्रेष्ठ समझे जाने वाले प्रायः सभी धर्मों में मुख्यतः देवी की मान्यता सर्वव्याप्त थी । हर स्थान में नारी शक्ति का प्रबल समर्थन विशेष रूप से पूर्वकाल में मिलता था । आइसिस, हेयर, इजिप्ट में 'नट', मेसीपोटामिया में 'इन्नन्न इश्तर', 'पैलेस्टाइन में 'एनट', क्रेट की देवी 'डीमेटर', ऐथेना, ग्रीस की 'आर्टिमस' पूर्वकाल की विशेष पूज्य समझी जाने वाली देवियाँ हैं । जब वहाँ के लोगों में देवी मान्यता इतनी घर कर गई, तो निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि वहाँ की नारियों की स्थिति भी अच्छी थी । पूर्व काल के धर्म में ग्रीको रोमन दुनिया में 'आमसिस' की मान्यता प्रारम्भ में अब तक बनी हुई है । उनका धर्म इसी मान्यता के कारण उनके मनों में श्रद्धा का संचार करता रहा है, क्योंकि पवित्र नारी से अभिपूरित धर्म का स्वरूप था । यही तीव्र प्रवाह धार्मिक क्रिया-कलापों के रूप में ईसाई धर्म के रूप में कालान्तर में दिखाई दिया । उक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीनकाल में भी प्रत्येक कोने में नारियों को समाज में वही गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था जो वैदिक कालीन भारतीय नारियों को था । तब समाज में नर-रत्नों की भरमार थी । मनुष्य की आधी जनसंख्या नारी वर्ग को आज की दुर्दशाग्रस्त स्थिति में उबारकर फिर से उसे महिमा-मण्डित करना होगा । यह समय का तकाजा है और नियति निर्धारण इक्कीसवीं सदी की सुनिश्चित सम्भावना भी ।

नारी जाग्रति की दिशा में बढ़ते कदम

ईश्वर की दृष्टि में नर और नारी एक समान हैं । इनमें न कोई वरिष्ठ है और न कोई कनिष्ठ, किन्तु ईसाई धर्म में स्त्रियों में आत्मा का न होना तक माना और उन्हें हर दृष्टि से अपवित्र ही कहा गया । क्रिश्चियन धर्म के नेताओं ने नारी को मोहिनी रूप में देखा और एडम के पतन हेतु उसे ही उत्तरदायी ठहराया । उनकी मान्यता में नारी को द्वितीय श्रेणी का मानव जाति स्वीकार किया गया । उस समय के, इंग्लैण्ड में मात्र सेंटपाल ही ऐसे पुरुष थे, जिन्होंने लिखा है कि–"पुरुष भगवान् का गौरव है, जबकि नारी पुरुष का, किन्तु फिर भी चर्च आदि धर्मस्थलों में नारी को बोलने तक के अधिकार से भी वंचित रखा गया है । इसी तरह अन्य धर्मों में भी कुछ ऐसे ही प्रचलन थे, जिनके अनुसार वे किसी महत्त्वपूर्ण काम में भाग नहीं ले सकती थीं । न राजनैतिक, न सामजिक, न धार्मिक, न आर्थिक क्षेत्रों में उसका स्थान था । दासियों का खरीदा-बेचा जाना या दान दिया जाना प्रसिद्ध था ।" यह स्थिति सन् १६०० के करीब सारे संसार में बद से बदतर होती चली गयी ।

किन्तु समय ने पलटा खाया । राजनैतिक परिवर्तनों के साथ-साथ सामाजिक सुधार का भी दौर चला । परिवर्तन की लहर तूफान की तरह चली और संसार का कोई कोना उससे अछूता न रहा । विचारशील लोगों ने नारी के साथ चल रहे अन्याय के प्रति आवाज उठायी । इस संदर्भ में आग उगलने वाले ग्रन्थ उस जमाने में अनेकों लिखे गये । इससे शिक्षित समुदाय में नारी को न्याय प्रदान करने की चेतना जगी । स्वयं स्त्रियों ने आवाज बुलन्द की और आन्दोलन चल पड़े ।

सन् १७८९ में फ्रांसीसी क्रान्ति ने नारी को भी अप्रभावित नहीं छोड़ा । समानता, स्वतंत्रता तथा मानवीय अधिकारों की रक्षा हेतु व्यापक जन-क्रान्ति ने नारी की दशा को सुधारने का भी अपना उद्देश्य बना लिया । इस सम्बन्ध में प्रख्यात फ्रेंच दार्शनिक एवं क्रान्तिकारी कौन्डोसर्ट ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । उन्होंने 'द एडमीशन ऑफ विमेन टू फूल सिटीजनशिप' नामक अपनी कृति के माध्यम से नारी मुक्ति आन्दोलन की शुरूआत की । वे पहले विचारक थे, जिन्होंने नारी की ज्वलंत समस्याओं का विस्तारपूर्वक पर्दाफाश किया और उन्हें अपनी दशा सुधारने के लिए स्वयं आगे बढ़ने को प्रेरित किया । दूसरे मनीषी थे–जान स्टुअर्ट मिल, जिन्होंने 'सब्जेक्शन ऑफ विमेन' के माध्यम से इंग्लैण्ड में नारी

मुक्ति आन्दोलन का सूत्रपात किया । यद्यपि वहाँ इस अभियान की आधारशिला सन् १७९२ में ही मैरीवोलस्टानक्राफ्ट नामक एक महिला द्वारा रखी जा चुकी थी । मैरी क्राफ्ट ने अपनी कृति 'ए विन्डीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ द विमेन' के माध्यम से शिक्षा व व्यवसाय के क्षेत्र में स्त्रियों के समान अधिकार की घोषणा की । उनकी मान्यता थी कि समाज के सभी वर्गों में समानता लाये बिना उसकी स्वस्थ संरचना एवं सर्वांगीण विकास की परिकल्पना नहीं की जा सकती ।

मेरी क्राफ्ट की मृत्यु के पश्चात् उन्नीसवीं सदी में नारी मुक्ति आन्दोलन को तत्कालीन दार्शनिक एवं अर्थशास्त्री स्टुअर्ट मिल ने गति प्रदान की । लिंग भेद के विरुद्ध उन्होंने एक जबरदस्त जेहाद खड़ा किया और नर-नारी के बीच बरती जाने वाली असमानता को समाज के सर्वांगीण विकास में अवरोधक बताया । उनके प्रतिपादनों को लोगों ने बाइबिल की तरह स्वीकार किया तथा उससे प्रेरणा पाकर सन् १९०३ में राष्ट्रीय स्तर पर जगह-जगह विद्रोह उठ खड़े हुए । इससे 'विमन्स सोशल एण्ड पॉलिटिकल यूनियन' की स्थापना हुई ।

सन् १९१३ में आन्दोलन अपनी पराकाष्ठा पर था, जब समूचा लन्दन शहर इसकी लहर में आ गया । इस आन्दोलन में ब्रिटेन में न केवल नारी को समानता का अधिकार दिलाया वरन् उन्हें मताधिकार भी प्रदान किया । इसी बीच विश्व स्तर पर अनेकों तकनीकी, आर्थिक, औद्योगिक एवं सामाजिक क्रान्तियाँ हुईं, उनका महिला समुदाय पर भी अच्छा प्रभाव पड़ा । उनकी मूर्च्छना जगी और वे विकास के पथ पर आगे बढ़ने लगीं ।

जून १९४६ में 'यूनाइटेड कमीशन ऑन दि स्टेटस ऑफ विमेन' की स्थापना हुई । इसका मुख्य उद्देश्य था-प्रत्येक देश में नारी को राजनैतिक अधिकार प्रदान करना । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह एक शुरूआत थी, जिसकी अंशतः पूर्ति सन् १९७१ में आठ राष्ट्रों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के मसविदे को स्वीकार करके की । इससे स्त्रियों को सभी चुनावों में भाग लेने, मतदान करने का मार्ग प्रशस्त हुआ । उन्नीसवीं सदी का योरोप जहाँ नारी को मात्र सुकोमल रमणी, कामिनी आदि मानता था, सर्वेक्षण बताते हैं कि अब वही वर्ग नारी समुदाय को समाज का सबसे अधिक सशक्त पक्ष मानने को बाध्य हुआ है । शिक्षा, चिकित्सा, व्यवसाय, कला आदि क्षेत्रों में उनकी महत्त्वपूर्ण भागीदारी शुरू हुई । सब देश एक साथ नारी को मताधिकार देने को भले ही बाध्य न हुए हों, किन्तु सन् १८९३ से लेकर १९८७ तक के ९४ वर्षों में धीरे-धीरे उन्हें राजनैतिक क्षेत्र में मान्यता मिलती गयी ।

विश्व की सर्वाधिक आबादी वाले देश चीन ने महिलाओं की दशा सुधारने की दिशा में गत तीन दशकों में महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं । उन्हें न केवल मताधिकार का अवसर मिला, वरन् आज वहाँ उच्च पदों पर महिलाओं का अनुपात २१.२ प्रतिशत से भी अधिक है । वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्र में एक तिहाई भाग महिलाओं का है । प्राथमिक शिक्षा में शिक्षिकाएँ ३७ प्रतिशत हैं, जबकि सेकेण्डरी स्कूलों में उसका अनुपात २४ प्रतिशत है । सब मिलाकर वहाँ ३० प्रतिशत स्थान महिलाओं ने उपलब्ध कर लिए हैं, जिन पर पहले पुरुषों का आधिपत्य था ।

इन दिनों केवल रूस ही एक ऐसा देश है, जिसमें ३० प्रतिशत का प्रतिनिधित्व वे राजनैतिक संगठनों में करती हैं । इसके बाद साम्यवादी गुट के दूसरे देशों का नम्बर है । फिर भी सामाजिक क्षेत्र में अभी भी महिलाएँ काफी पिछड़ी हुई हैं । भारत, अफ्रीका और मध्यपूर्व के देशों में अभी भी मध्यकालीन प्रथाएँ चल रही हैं । सुधार नाम मात्र को ही हुए हैं ।

अति उत्साही देशों में इन दिनों अमेरिका का नम्बर आता है, जिसके नारी मुक्ति आन्दोलन ने सारे संसार को प्रभावित किया है । यह लहर सर्वत्र चल पड़ी है । हवा में गरमी बढ़ती जा रही है और वह दिन दूर नहीं, जब नारी हर क्षेत्र में पुरुष की बराबरी ही नहीं, उसका मार्ग-दर्शन भी करेगी । इक्कीसवीं सदी नारी सदी है, जिसमें सर्वत्र नारी वर्चस्व की ही धूम रहेगी ।

प्रकृति ने नारी को दुलारपूर्वक सँजोया है

प्रकृति ने नारी को अधिक प्यार और सम्मान दिया है, साथ ही उसे इस योग्य भी बनाया है कि अपने बहुमुखी उत्तरदायित्वों का वहन भली प्रकार कर सके । कद और भार में नारी नर की तुलना में कुछ हलकी भले ही पड़ती हो, पर यह उसके लिए सुविधा की बात है । शरीरगत भार कम वहन करना पड़े तो हलकापन उन्हें अधिक स्फूर्तिवान या क्रियाकुशल बनने में काम आता है । उनकी कोमलता, भाव-संवेदना तथा सुन्दरता अपने परिकर को एक कोमल तथा मजबूत शृंखला में बाँधे रहती है और परिवार प्रसन्न तथा विकासवान् बनते हैं । प्रजनन क्षमता तो प्रकृति का अनुदान है, जिसके आधार पर वे भली-बुरी पीढ़ियों का निर्माण कर सकें । छाती में दूध भर कर प्रकृति ने उसे शिशुओं को जीवित रहने का भी अनुदान प्रदान किया है ।

पुरुष है जिसने सहचरी को दासी बनाया है । उसके मानवी अधिकारों का अपहरण किया है और दूसरे दर्जे का नागरिक बना दिया है । पग-पग पर उपेक्षित-तिरष्कृत होते रहने के कारण वे प्रतिभाएँ एवं क्षमताएँ कुंठित होती चली जा रही हैं, जिनके द्वारा वे अभ्युत्थान कर सकती थीं । परिवार तथा समाज को कहने योग्य अनुदान दे सकती थीं । नारी का पिछड़ापन मानवी प्रगति में सबसे अधिक बाधक है ।

जिन देशों में नारी को सम्मान की दृष्टि से देखा और उन्हें अपनी प्रतिभा निखारने और क्षमता बढ़ाने के

सुअवसर प्रदान किए हैं, वह सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से समुन्नत बने हैं । चीन की समाचार एजेन्सी 'सिनहुआ' के अनुसार उस देश में न्यायाधीश जैसे उच्चस्तरीय एवं सम्मानित पदों पर एक लाख से भी अधिक महिलाएँ कार्यरत हैं । शिक्षित महिलाएँ व्यावसायिक एवं औद्योगिक इकाइयों को तो सम्भालती ही हैं, शिक्षा, चिकित्सा, शिल्प जैसे महत्त्वपूर्ण विभाग भी प्रायः उन्हीं के जिम्मे हैं । अन्य विचारशील देशों ने भी नारी शक्ति को विकसित किया है और उसे चौके-चूल्हे के कोल्हू में पेलने की अपेक्षा अधिक उपयोगी बनाया है । विकसित देशों में शिक्षा, चिकित्सा, शिल्प, कला, बाल-विकास, कृषि पालन जैसे विभागों को उनके ऊपर छोड़ा और उसका सफल सत्परिणाम देखा है । जापान, कोरिया, इन्डोनेशिया आदि देशों ने विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं को अपनी अभूतपूर्व क्षमता का परिचय देने का अवसर प्रदान किया है और आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न बने हैं । ईरान, इराक एवं अफगानिस्तान जैसे छोटे राष्ट्रों की नारियाँ संकट के क्षणों में पुरुष सैनिकों के कंधे से कंधा मिलाकर युद्ध मोर्चे पर अपनी साहसिक प्रतिभा का प्रमाण प्रस्तुत कर चुकी हैं ।

नेतृत्व के क्षेत्र में भी वे पीछे नहीं रही हैं । प्रधानमंत्री से लेकर राष्ट्रपति तक के सर्वोच्च एवं उत्तरदायित्वपूर्ण पदों को उन्होंने गौरवान्वित किया है । इन्दिरा गाँधी से लेकर मार्गेट थैचर, श्रीमती भण्डारनायके, गोल्डामायर, फिलीपीन्स की कोराजोन एक्वीनो, इण्डोनेशिया की श्रीमती केमारो, जापान की टकोका डोई आदि प्रतिभाशाली महिलाओं की एक लम्बी शृंखला है । इसे दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए कि भारत जैसे विशाल देश में जहाँ कभी नारियों का वर्चस्व था, सदियों से उनकी प्रतिभा को कुंठित बना दिया गया । स्वतंत्रता एवं समानता का अधिकार मिलने के पश्चात् भी देश में अभी तक मात्र १२ लाख के लगभग महिलाएँ ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकी हैं । अधिसंख्य महिलाएँ अशिक्षित दशा में रहते हुए घर की चारदीवारी में बंद कैदियों जैसे जीवन जीने को विवश हैं । इतने पर भी उनकी अन्तरात्मा अभी मरी नहीं है । वह अपने विकास के लिए क्षमता-प्रतिभा प्रदर्शित करने के लिए आकुल-व्याकुल हैं । आवश्यकता मात्र अवसर प्रदान करने एवं उन्हें शिक्षित बनाने की है । इस दुर्गति से उबरने पर ही समग्र प्रगति सम्भव है ।।

नारी अपनी सुकोमल भाव-संवेदनाओं के लिए विख्यात है । सुप्रसिद्ध मानव विज्ञानी डॉ. ली. साल्क ने अपने अनुसंधान निष्कर्ष में बताया है कि मातृ हृदय की धड़कन के साथ-साथ भाव संवेदनाएँ भी तरंगित होती उभरती रहती हैं । यही कारण है कि जाने-अनजाने प्रत्येक माता अपने शिशु को हृदय का अधिक सामीप्य देना चाहती है और उसे अपने सीने से चिपकाये रखती है । हृदय की ध्वनि तरंगों को सुनकर शिशु एक अनिर्वचनीय आनन्द में डूबा रहता है । डॉ. साल्क ने इस सम्बन्ध में कुछ प्रयोग भी किए, जिसके आश्चर्य सत्परिणाम सामने आये । उन्होंने मातृ हृदय की धड़कन की ध्वनि को टेप कर जब रोते हुए नवजात शिशुओं को सुनाया, तो उनका रोना तत्काल बन्द हो गया । मुखमंडल पर शान्ति एवं प्रसन्नता के भाव उभर आये । उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि माताओं के धकड़ते हृदय के साथ उनकी मृदुल भावनाएँ भी जुड़ी रहती हैं, जिनसे पूर्व परिचित होने के कारण बच्चे सहज ही उनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं ।

ऐसा ही मन्तव्य प्रख्यात मानवशास्त्री डॉ० डिस्माण्ड मॉरिश का भी है । उन्होंने अपने ग्रन्थ-"द इन्टिमेट बिहेवियर एण्ड द नेकेड एप" में लिखा है कि-"हृदय की शाश्वत ध्वनि को शिशु गर्भावस्था से ही सुनता रहता है जन्म के बाद वह बाह्य संसार की विचित्र ध्वनियों से परेशान हो उठता है और रोने लगता है परन्तु जैसे ही माता का सामीप्य पाता है, चुप हो जाता है । यह जन्मदात्री माँ के संवेदनशील हृदय की ही प्रतिक्रिया है जिसकी सुखद तरंगों की अनुभूति करते ही वह रोना भूल जाता है, उनके अनुसार इस संदर्भ में जो महिलाएँ सतर्कता बरतती हैं, उनकी संतानें अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिशील एवं बलिष्ठ पाई जाती हैं ।

नारी का कद में छोटा होना कोई अकाट्य नियम नहीं है । इसका व्यतिरेक भी होता रहता है, संसार में कितनी ही महिलाएँ लम्बी, भारी तथा पुरुषों की तुलना में अधिक बलिष्ठ और बुद्धिमान पाई जाती हैं । जहाँ अवसर मिला है, वहाँ उनके विकास ने चमत्कार उत्पन्न किया है । खेल-कूदों में परीक्षा के उत्तीर्ण अंकों में, प्रतिस्पर्द्धाओं में अब वे अपेक्षाकृत अधिक अग्रणी रहने लगी हैं । सोवियत चिकित्साविज्ञानी डॉ० कोडाकायन के अनुसार-"महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक परिश्रमशील भी होती हैं । यही कारण है कि वे रक्तचाप, मधुमेह मस्तिष्कीय रोगों आदि से बहुत कम पीड़ित पाई जाती हैं । बीमार पड़ने पर वे अपेक्षाकृत जल्दी स्वस्थ हो जाती हैं । उनकी जीवनी-शक्ति एवं रोग प्रतिरोधी क्षमता के आगे नर कमजोर ही सिद्ध होता है ।"

फ्रांस के प्रसिद्ध प्राणिशास्त्री डॉ. ज्यों रेस्तां का कहना है कि "संसार में स्रष्टा की सर्वोत्तम कृति नारी है । पुरुष अपनी वरिष्ठता, बलिष्ठता एवं बुद्धिमत्ता पर व्यर्थ ही गर्व करता है । वस्तुतः वह जो कुछ भी आज तक बन पाया है, मातृ हृदय की देन है ।" इस तथ्य से अनभिज्ञ रहने के कारण वह नारी को मात्र भोग्या एवं दासी स्तर का समझ बैठा और उसे विविध प्रलोभनों एवं बंधनों से जकड़ कर अनुवर्ती बनने के लिए विवश करने की भूल कर बैठा है । यह तो नारी की ही विशेषता एवं उदारता रही है कि इतने अत्याचार सहने के उपरान्त भी वह उसे सन्तानवत् दुलार देती रही है । इतने पर भी यदि नर की विवेकशीलता न जगी तो वे वह दिन भी अब दूर नहीं जब नारी उसे एक अनावश्यक विलास साधन समझ कर उसका परित्याग भी कर सकती है और संतान का निर्माण बिना पुरुष के संयोग से भी करती रह सकती है । उनके अनुसार वस्तुतः हमारे

निर्माण में मातृत्व ही एकमात्र कारण है । पितृत्व को हम निरर्थक ही मूलतत्व मान बैठे हैं, क्योंकि विकास क्रम में पितृ प्रधान जीवाणु तो अपना अस्तित्व ही खो बैठता है और अंत में जिन तत्वों से हमारा निर्माण होता है, वे मातृ-प्रदत्त तत्त्व होते हैं । उसने इस तरह के प्रयोग-परीक्षण भी किये हैं और सफल रहे हैं ।

आत्मिकी की दृष्टि से नर-नारी दोनों में एक ही आत्मचेतना कार्यरत रहती है । कोमलता, मृदुता, उदारता, सहकारिता, स्नेह-सद्भाव आदि सद्गुण दोनों में ही होने चाहिए, क्योंकि वह चेतना के सहज स्वभाव में सम्मिलित है । नारी उन मौलिक विशेषताओं को उभरने देती है, जबकि अपने मिथ्याभिमान के कारण पुरुष उन्हें विकसित नहीं होने देता । यही कारण है कि सद्गुणों की दृष्टि से नारी सदैव वरिष्ठ मानी और मातृ-शक्ति के रूप में सम्मानित की जाती है । नर-नारी दोनों में गहरी मित्रता और आस्था हो तो दोनों पक्ष एक दूसरे के लिए पूरक, आनन्दमय और प्रगति में सहायक होते हैं । पारस्परिक सहयोग-सहकार से दोनों में से एक भी घाटे में नहीं रहता ।

पतझड़ को बसंत में बदलने का महाकाल का संकल्प

किसी कुप्रचलन को इसलिए मान्यता नहीं मिलनी चाहिए कि वह पुरातन काल से प्रयोग में आता रहा है । आदिम काल का मनुष्य जब कपड़े बनाना या पहनना नहीं जानता था, तब नंगे शरीर रहता था या पत्ते आदि से कुछ अंग ढक लेता था । अब विकसित सभ्यता के जमाने में जब वस्त्रों का प्रचलन हर स्थान में होने लगा है तो कोई भी समझदार मनुष्य नंगा रहना पसन्द नहीं करेगा । अब मनुष्य ने अपनी जरूरतें भी बदल ली हैं और भोजन की तरह वस्त्र भी दैनिक प्रयोग की वस्तु बन गये हैं । कोई समय ऐसा भी रहा है, जब मिट्टी के बर्तन ही उपलब्ध थे, पर अब तो उनके स्थान पर धातुएँ प्रयोग में आने लगी हैं । कभी बाल काटने का रिवाज नहीं था, पर अब तो अधिकांश लोग दाढ़ी-मूँछ काटने-छाँटने लगे हैं । इन सामयिक परिवर्तनों को कोई बुरा नहीं मानता ।

प्राचीनकाल में स्त्रियाँ भोजन पकाने और बच्चे पालने के काम भर में अभ्यासी थीं । तब उन्हें वही काम सौंप दिया गया था, उन्होंने उसे स्वेच्छापूर्वक अपना लिया । रिवाज बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक पहुँचा कि उन्हें उतनी ही सीमा में प्रतिबन्धित भी किया जाने लगा । जो काम पुरुषों की तरह स्त्रियाँ कर सकती थीं, उन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया । व्यवसाय जैसे कार्यों में एक तो वैसे ही वे अनुभवहीनता की पिछड़ी स्थिति में थीं, इस पर भी उस क्षेत्र में प्रवेश न करने के लिए प्रतिबन्ध लगा दिया गया, ऐसे ही और भी प्रतिबन्ध अन्य क्षेत्रों में लगे और उन्हें उन कामों को करने से रोक दिया गया । स्वभावतः नर और नारी एक ही सिक्के के दो पहलू, एक ही गाड़ी के दो पहिए, एक ही शरीर के साथ जुड़े हुए दो हाथ या दो पैर हैं । दोनों की क्षमता या दक्षता में कोई अन्तर नहीं । सच पूछा जाय तो नारी कितनी ही बातों में वरिष्ठ एवं सक्षम है, जबकि पुरुष उन्हें नहीं कर पाता । गर्भधारण, शिशु-पालन जैसे कार्यों में नारी अग्रणी है, जबकि पुरुष से उन कार्यों का बन पड़ना कठिन है । गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से भी नारी कोमल, दयाशील, सेवाभावी और क्षमाशील है, जबकि इन सब गुणों की पुरुष में बहुत कमी पायी जाती है ।

प्रयोग में न आने पर कई विशेषताएँ क्षीण हो जाती हैं । पुरुषों को श्रम परायण और साहसी रहना पड़ा, जबकि महिलाओं को उनका प्रयोग प्रायः नहीं करना पड़ा, अतएव वे इस दृष्टि से पिछड़ गयीं । यह संयोग की ही बात थी, जबकि उसे उनकी दुर्बलता मान लिया गया और वे इस दृष्टि से कनिष्ठ समझी जाने लगीं । उनके साथ व्यवहार भी वैसा ही चल पड़ा, मानो वे सचमुच अयोग्य या असमर्थ हों, जब कि बात वैसी है नहीं । जब भी अवसर आया है, सुयोग मिला है, तब-तब नारी ने अपनी गरिमा का वैसा ही परिचय दिया है जैसा कि आमतौर से मर्द दिया करते हैं । अनेक प्रसंग ऐसे भी हैं, जिनमें नारी ने नर की तुलना में कितनी ही प्रतिस्पर्द्धाएँ जीती हैं और अपनी समता का ही नहीं, वरिष्ठता का भी परिचय दिया है । शारीरिक न्यूनाधिकता का कोई बड़ा फर्क नहीं होता । पशु-पक्षियों में नर-मादा दोनों ही प्रायः एक जैसी क्षमता के होते हैं । थोड़ा-बहुत अंतर भी कभी किसी की बनावट में देखने को मिलता है । वह इतना बड़ा नहीं होता कि किसी को बहुत समर्थ और दूसरे को अत्यंत दुर्बल ठहराया जा सके । मनुष्यों में भी नर-नारी के सम्बन्ध में यही बात है । जिन देशों में नारी प्रधान कुटुम्बों की परम्परा चलती है, वहाँ नारी का दर्जा हर दृष्टि से बड़ा माना जाता है और पुरुषों को उनके आज्ञानुवर्ती बनना और चलना पड़ता है ।

अब भी शिक्षा में अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होना, प्रतिस्पर्द्धाओं में आगे रहना, संगीत, साहित्य, कला जैसे विषयों में अपनी वरिष्ठता वे ही सिद्ध करती देखी गयी हैं । शारीरिक सौन्दर्य और स्वभावगत सहिष्णुता की दृष्टि से उन्हें प्रायः अग्रणी ही पाया जाता है । चतुरता कठोरता, धूर्तता जैसी विशेषताओं को यदि सराहनीय माना जाता हो तो ही मर्द किसी कदर अपने को बढ़ा-चढ़ा मान सकता है ।

वास्तविकता यह है कि मनुष्य जाति में दो अविच्छिन्न पक्ष नर और नारी हैं । उनमें से न कोई छोटा है न बड़ा, न कोई वरिष्ठ है न कोई कनिष्ठ । यह बात दूसरी है कि यदि अवसर न मिले तो कार्यान्वयन के अभाव में किसी को पिछड़ी स्थिति में रहना पड़े । प्रजनन नारी का विशेष गुण है और वह इतना महत्त्वपूर्ण है कि यदि उसकी दुर्दशा

एक शताब्दी तक भी बनी रहे तो समझना चाहिए कि संसार में से मनुष्य जाति का अस्तित्व ही सदा-सर्वदा के लिए समाप्त हो गया । पिता के न रहने पर माता किसी प्रकार बालकों को पाल-पोष लेती है, पर माता का अभाव रहने पर बच्चे या तो जीवित ही नहीं रह पाते अथवा अनेक दृष्टियों से पिछड़े रह जाते हैं ।

शास्त्रकारों ने ईश्वर की प्रार्थना करते हुए प्रथम उसे माता के रूप में स्मरण किया है । इसके बाद पिता को स्थान दिया गया है । युग्मों का जहाँ भी उल्लेख है वहाँ प्रथम नारी और द्वितीय नर का स्थान है । लक्ष्मी नारायण, सीताराम-राधेश्याम, उमा-महेश, सावित्री-सत्यवान आदि की युग्म शृंखला में नारी की प्राथमिकता है । देवी पूजन में कन्या की पूजा का विधान है, जबकि देवताओं के स्थान पर लड़कों को विराजमान नहीं किया जाता है । देवी-देवताओं का जहाँ भी उल्लेख आता है, वहाँ नारी को ही प्राथमिकता दी जाती है । लक्ष्मी-गणेश की अभ्यर्थना में दीपावली के अवसर पर प्राथमिकता लक्ष्मी को ही मिलती है । पशुओं में भी इसी प्रकार का प्रचलन है । गाय और बैल में से प्राथमिकता गौ की ही ठहरती है । इस प्रकार के प्रमाणों से प्रकट है कि नारी को सांस्कृतिक और उपयोगिता दोनों ही दृष्टि से प्राथमिकता प्राप्त है । इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि अर्थ-उपार्जन के स्रोत पुरुष के हाथ में चले जाने के कारण उसी ने अपने को वरिष्ठ ठहराया, जबकि यदि नर को गृह-व्यवस्था सम्भालनी पड़े और नारी आर्थिक उपार्जन के क्षेत्र में बढ़ चले तो उसकी समर्थता ही अधिक सिद्ध हो सकती है । अब भी खेल, परीक्षाओं की प्रतिस्पर्द्धाओं में महिलाएँ अधिक अच्छे नम्बर लातीं और अधिक सफल घोषित होती हैं । कला क्षेत्र पर तो उनका एकाधिपत्य है ही ।

भूलों को सुधारा जाता रहा है । गलतियों का प्रायश्चित होता रहा है । लम्बे समय से चले आ रहे नर और नारी के बीच बढ़ते अनौचित्य का अन्त आने का समय अब आ गया । आधी जनसंख्या का मनोबल गिराने और उनके स्वाभाविक मानवाधिकारों से वंचित करके मात्र नारी ही घाटे में नहीं रही, नर को उससे अधिक घाटा सहना पड़ा है । गाड़ी का एक बैल दुर्बल हो जाने पर उसके बदले का भार दूसरे बैल को ही सहना पड़ता है । पक्षाघात से आधा अंग बेकार हो जाय तो दूसरे को उसके बदले का दबाव सहना पड़ता है । एक हाथ का एक पैर का आदमी प्रायः आधा ही काम कर सकता है । एक पहिए की गाड़ी किसी प्रकार आधा-अधूरा काम ही कर पाती है । युग्म जिनके भी जहाँ भी बने हैं, वे एक-दूसरे के पूरक रहे हैं । इसमें से एक दुबला रहे दूसरे को उसकी क्षति उठाये बिना न रहना पड़ेगा । नर और नारी यदि कंधे मिलाकर रहे होते तो दोनों नफे में रहते । जहाँ वैसा प्रचलन है, वहाँ प्रगति को विकसित रूप में देखा जाता है । जापान, अमेरिका, इसरायल, जर्मनी, चीन, रूस आदि विकसित देशों की जनता जितनी बलिष्ठ और समृद्ध है, उसका बड़ा श्रेय वहाँ के नारी समुदाय को ही जाता है । भारतीय महिलाओं का पुरातन इतिहास तो हर क्षेत्र में मूर्धन्य रहा है । वे अपने भाइयों, पतियों, पुत्रों के लिए शक्तिस्रोत बनकर रही हैं । वयोवृद्ध भी अपनी लड़कियों पर गर्व करते रहे हैं । एकाकी पुरुषों एवं एकाकी कार्यों में जितने भी पराक्रम-पुरुषार्थ देखते बन पड़ते हैं, वहाँ नारियों की गरिमा ही अधिक दिखती है । पुरुष तो इस अभाव के रहते अनेक कमियों के केन्द्र रहे हैं । यहाँ तक कि विधुर या अविवाहितों की मरण संख्या ही अधिक रही है । आज नारी अपने ऊपर थोपी गई असमर्थता के कारण दुर्बल होकर रह रही है, पर शुरू में वह वैसी नहीं थी । जब उसे अवांछनीय बन्धनों में न बाँधने का न्यायोचित समय था, तब नारियों ने हर दृष्टि से अपने को कनिष्ठ नहीं, वरिष्ठ ही सिद्ध किया है ।

समय चक्र सदा-सदा से घूमता रहा है । वह लौटकर अपनी जगह आ जाता है । सूर्य पहले दिन में पूर्व से निकलता है, शाम को वह पश्चिम में अस्त तो होता है, पर सदा नहीं डूबा रहता है और दूसरे दिन फिर नये उत्साह के साथ पुनः उसी पूर्व दिशा में उदय होता है । जिसमें कि वह पहले दिन उदय हुआ था । पतझड़ में वृक्ष के पत्ते गिर तो जाते हैं, पर बसन्त आते ही वे नये कोपलों से लद जाते हैं और फूल-फलों से लदे हुए पाये जाते हैं ।

समय चक्र ने नारी को भी दुर्गति से निकालने का निश्चय किया है । महाकाल के अभिनव बसंत ने पतझड़ को बसन्त में परिवर्तित करने का निश्चय कर लिया है, साथ ही नारी के वर्चस्व को लौटाने का भी । इक्कीसवीं सदी नारी शताब्दी घोषित की गयी है जिसमें नारी के पिछड़ेपन की अन्तता दिख रही है । देखने को यह भी दिखेगा कि वह अपने साथी से किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं रह गयी, लेकिन दस कदम आगे ही बढ़ गयी है ।

जाग्रत महिलाओं से ही उज्ज्वल भविष्य निर्मित होगा

महिला जागरण अभियान का आरम्भ छोटे रूप में किया जा रहा है, पर जिस कल्पना, जिस योजना और जिस तत्परता से उसका श्रीगणेश किया जा रहा है, उसे देखते हुए यह विश्वास किया जा सकता है कि यह छोटा-सा बीज अगले दिनों विशाल वट वृक्ष के रूप में विकसित होगा और उसका स्वरूप तथा क्षेत्र निरन्तर बढ़ता चला जाएगा । समय की पुकार को कोई रोक नहीं सकता ।

जाग्रत महिला अगले दिनों प्रगति के सभी क्षेत्रों में अपनी समुचित भूमिका प्रस्तुत करने में तत्पर दिखाई देगी । देश की आर्थिक उन्नति में उनका बढ़ा-चढ़ा योगदान होगा । कुटीर उद्योगों का संचालन प्रायः उसी के हाथ में होगा । पुरुष घर से बाहर सम्भव हो सकने वाले अपेक्षाकृत अधिक कड़े परिश्रम के काम अपने जिम्मे

रखेंगे और गृहव्यवस्था, शिशुपालन के साथ-साथ नारी कुटीर उद्योगों को सम्भाल लेगी । घर में रहते हुए ऐसा कर सकना उसके लिए सरल पड़ेगा । सहकारी समितियाँ उन्हें कच्चा माल देने और बने माल को खरीद कर बाजार में खपाने का उत्तरदायित्व अपने जिम्मे लेगी तो छोटे-बड़े असंख्य गृह उद्योग पनपते हुए दिखाई देंगे । नारी की बेकारी, बेवसी और गरीबी तो इसी उपाय से दूर हो सकती है । हर परिवार के लिए अतिरिक्त आय का स्रोत खुल सकता है । निर्माण की प्रसुप्त प्रतिभा जग पड़ने से उसके अगणित लाभ मिलते दिखाई देंगे । देश की सम्पन्नता में निश्चित रूप से अभिवृद्धि होगी ।

राजनैतिक क्षेत्र में इन दिनों जो आपाधापी चल रही है उसके समाधान का सहज उपाय यह है कि शासन संस्थाओं में नारी को चुनकर भेजा जाय । उनकी जन्मजात सहृदयता एवं उदारता का समावेश जब राजनीति में होगा, तो आज के छल-दम्भ उसमें से निकल कर ही रहेंगे और राजनीति भी धर्म नीति की तरह ही पवित्र बन कर रहेगी । पुरुष ने चिरकाल से शासन सूत्र सम्भाला है, अब उसका अनुभव नारी को देने के लिए उसे अपनी पकड़ कुछ ढीली करनी चाहिए । टाउन एरिया, म्यूनिसिपल बोर्ड, जिला परिषद्, विधान सभा, लोक सभा आदि में स्थान उसे देना चाहिए ताकि इस आशा का उदय हो सके कि सत्ता किसी वर्ग विशेष की बपौती नहीं है । उनके संचालन निर्वाह का उत्तरदायित्व दूसरों को भी उठाने देने वाली उदारता का आरम्भ हो गया ।

यों नारी का अपना ही बहुमत है । आबादी की दृष्टि से उसकी संख्या आधी से कुछ अधिक ही बढ़ चली है । आज तो ३० प्रतिशत से भी कम वोट पाकर काँग्रेस सत्तारूढ़ हो जाती है । फिर जो बिरादरीवाद हर क्षेत्र में घुसा हुआ है । वह नारी को भी प्रभावित करने लगे तो उसके अपने ठोस वोट ही ५० प्रतिशत हैं । दूसरे पक्ष के भी कुछ तो वोट कट ही सकते हैं । इस प्रकार यदि यह अपनी पर अड़ जाय तो प्रजातन्त्र विधान के अनुसार आदि से अन्त तक पूरी शासन सत्ता अपने हाथ में ले सकती है । वैसी तना-तनी उत्पन्न न होने पावे, इससे पूर्व यही उचित है कि सत्ता संचालन में उसकी स्वाभाविक उदारता और सज्जनता का समावेश होने दिया जाय और उसका पूरा लाभ समूचे जनसमाज को मिलने दिया जाय ।

साहित्य क्षेत्र में, कला क्षेत्र में, नारी का प्रवेश होगा तो निश्चित रूप से वह अपनी शालीनता सुरक्षित रखेगी । उसकी कलम से अश्लीलता और कामुकता भड़काने वाला, अपराधी प्रवृत्तियाँ उभारने वाला कुत्सित साहित्य नहीं लिखा जा सकता । मातृ-शक्ति को द्रौपदी की तरह निर्वसन करने की, सरस्वती को वेश्या स्तर पर घसीट लाने की उच्छृंखलता तो पुरुष ही बरतता है । नारी अपनी निज की गरिमा को इस प्रकार कलंकित न होने देगी । वह जो कुछ लिखेगी अपने पिता, पति, भाई और पुत्र में सद्भावनासम्पन्न बनाने वाला ही हो सकता है । प्रेस, प्रकाशन, पत्रकारिता, साहित्य विक्रय के क्षेत्र में नारी को वर्चस्व इसलिए सौंपा जाना चाहिए कि आज इन क्षेत्रों में घुसी हुई विकृतियों का निराकरण कर सकना उसी की शालीनता द्वारा सम्भव हो सकता है । कोई किसी की आत्मा को लोभ अथवा मद दिखाकर खरीद ले तो बात दूसरी है अन्यथा नारी की आत्मिक कलाकारिता यदि स्वेच्छापूर्वक कला मंच में उन्मुक्त वातावरण में, प्रवेश करेगी तो उसका संगीत, अभिनय पूरी तरह शालीनता से ही भरा-पूरा होगा । पवित्रता और प्रकाशवान् प्रखरता से भरा हुआ कला मंच किस प्रकार मानवीय अन्तरात्मा को परिष्कृत बना सकता है । इसकी कल्पना करने मात्र से पुलकन उत्पन्न होती है ।

सार्वजनिक सेवाओं और सरकारी विभागों में भले ही अन्य सारे विभाग पुरुष को दे दिये जाएँ, पर शिक्षा चिकित्सा और समाज कल्याण तो मात्र नारी के लिए ही सुरक्षित रखे जाने चाहिए । यों उसे हर क्षेत्र में प्रवेश करके अपनी विशेष प्रतिभा का परिचय देने का अवसर मिलना चाहिए, पर उपर्युक्त तीन विभाग ऐसे हैं जिनमें अधिक सहृदयता और स्नेहसिक्तता एवं अधिक सृजनात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता है । नारी अपने सहज स्नेह से बालकों के अन्तःकरण को गुदगुदाती हुई न केवल जानकारियाँ ही उनके मस्तिष्क में उतारेगी, वरन् आत्मा में सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों का सफल बीजारोपण भी करेगी । रोगी अपने चिकित्सक से मात्र औषधि ही नहीं चाहता वरन् उससे सहानुभूति की भी अपेक्षा करता है । कहना न होगा कि यह भण्डार नर के पास न्यून ही पाया जाता है । उसकी विपुलता तो भगवान् ने नारी में ही भरी है । जिसके पास कुछ है, वही तो दूसरे को कुछ दे सकेगा । समाज की विकृतियों का अधिक दुष्परिणाम नारी को ही भुगतना पड़ा है । अपने काँटे को आप निकालने और अपने घावों पर मरहम लगाने में उसकी सहज उत्कण्ठा रहेगी । समाजगत अविचारों, अनाचारों, दुष्प्रवृत्तियों से वह न केवल लड़ ही सकती है, वरन् उसके स्थान पर नई सृजनात्मक परम्पराओं को जन्म दे सकती है । समाज कल्याण के कार्यक्रम कुछ भी हों, पर पीछे भावना वही काम करती है । निराश, निढाल थके-हारे और रोते-खीजते जन-मानस में नवीन आशाओं, उमंगों का संचार करना नारी के द्वारा ही अधिक अच्छी तरह हो सकता है । समाज कल्याण की भावना से भरी-पूरी नारी प्रकृति ही उस स्तर के सरकारी या गैर सरकारी कामों को अधिक अच्छी तरह सम्भाल सकती है, इसमें दो राय नहीं हो सकती ।

सार्वजनिक सामाजिक संस्थाओं का गठन और संचालन यदि उनके हाथ में सौंपा जा सके तो आज की अखाड़ेबाजी और प्रतिद्वन्द्विता के कारण उस क्षेत्र को विषाक्त करते रहने वाली विभीषिका से छुटकारा मिल सकता है और लोकमंगल का पुनीत क्षेत्र अपने युग प्रयोजन की पूर्ति में बहुत हद तक सफल रह सकता है ।

धर्म और अध्यात्म क्षेत्र पर पुरुष का अधिकार बहुत समय से चला आ रहा है, फलतः वहाँ पाखण्ड और भ्रम जंजाल के अतिरिक्त और कुछ बच ही नहीं रहा है । मलीनता धोने वाले साबुन की बट्टी यदि कोयले की चूरे से बनने लगी तो स्वच्छता का लक्ष्य कभी भी पूरा न हो सकेगा । इस क्षेत्र में नारी को ही नेतृत्व करना चाहिए । ईश्वर ने उसकी आरम्भिक संरचना दिव्यता की अजस्र मात्रा का समावेश करते हुए ही की है । आज की गई बीती स्थिति में भी वह आदर्शवादिता एवं उत्कृष्टता का निर्वाह पुरुष की तुलना में असंख्य गुनी श्रेष्ठता के साथ निभा रही है । यह उसकी सहज प्रकृति और ईश्वर प्रदत्त विशिष्ट विभूति है । पुरुष बहुत श्रम करके जो आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त कर सकता है । वह नारी को अनायास ही उपलब्ध है । प्रेम से, भक्ति से, उसका अन्तःकरण हर घड़ी छलकता रहता है । आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता के जो लक्षण तत्वदर्शियों ने बताये हैं, उनमें से अधिकांश को नारी के सहज स्वभाव में समाया हुआ देखा जा सकता है ।

हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य के सपने देखते हैं, जिसमें अगले दिनों नारी संसार के भावना क्षेत्र का नेतृत्व कर रही होगी और भौतिक क्षेत्र में सुव्यवस्था की सुदृढ़ नींव रख रही होंगी । उन स्वप्नों को साकार करने में हम सबको प्राण-पण से कार्यबद्ध ही होना पड़ेगा । संकल्प भरे कदम उसी दिशा में उठ रहे हैं ।

लोक-मानस जगाये बिना और कोई राह नहीं

लोक-मानस एक अति विशालकाय और अति समर्थ महादैत्य है । इसकी तुलना पौराणिक कुम्भकरण से की जा सकती है । छह महीने सोने और एक दिन जागने का उसकी बुरी आदत का मनोरंजक वर्णन मिलता है । वह दैत्य जब सोता था तो इतनी गहरी नींद में सोता था कि छाती पर हाथियों का झुण्ड घुमाते रहने पर भी करवट नहीं बदलता था, पर जिस दिन जागता था उसे पर्वत जैसा आहार, उदरस्थ करने से लेकर अन्यान्य अनेकों आवश्यक कार्य चुटकी बजाते पूरे करके रख देता था । निश्चित रूप से ऐसी विशेषताओं से सम्पन्न महादैत्य केवल जन-मानस ही हो सकता है । वह जिधर भी करवट बदलता है, उधर ही कुछ से कुछ बना देने और कुछ भी बिगाड़ देने का चमत्कार प्रस्तुत करता है । संसार की महान् क्रान्तियों के इतिहास के पीछे लोकशक्ति ही काम करती दिखाई पड़ेगी । नारी जागरण की समस्या का हल व्यक्ति विशेष द्वारा सम्भव नहीं हो सकता । कोई व्यक्ति कितना ही धनी, विद्वान, सत्ताधारी अथवा प्रतिभा सम्पन्न क्यों न हो, निजी स्थानों से इतने सुविस्तृत क्षेत्र से नगण्य-सी ही हलचल उत्पन्न कर सकता है । कुछ बड़ा करना हो तो लोक-शक्ति को साथ लेना होगा ।

लोक-शक्ति कोई रबड़ की गुड़िया नहीं है जिसे जेब में रखकर कोई भी कहीं चल दे । वह वाष्प शक्ति से भरे हुए विशालकाय इंजन की तरह है । उसे उत्पन्न करने के लिए देर तक ईंधन जलाना पड़ता है और बॉयलर में आवश्यक गर्मी जुटाने का प्रबन्ध करना पड़ता है । आज की आवश्यकता बॉयलर को गरम करने के लिए ईंधन जुटाने की है । हमें लोक-मानस को इतना गरम करना चाहिए कि नारी की वर्तमान स्थिति पर विचार करने के लिए प्रत्येक बुद्धि सम्पन्न मनुष्य को नये सिरे से विचार करने के लिए बाध्य होना पड़े । पतन ने कितनी क्षति पहुँचाई और उत्थान से उसकी कितनी भरपाई हो सकती है, इसका विचार प्रत्येक मस्तिष्क में उठना चाहिए । अनादि काल से वरिष्ठता प्राप्त नारी को किन परिस्थितियों और किन मनःस्थितियों ने दयनीय दुर्दशा में ला ढकेला, इस दुःखदायी इतिहास को- घटना क्रम को, कलेजे पर पत्थर बाँध कर पढ़ना पड़ेगा । अवांछनीयताओं को मान्यता देने की सामाजिक मूढ़ता पर प्रचण्ड रोष जगाना पड़ेगा । इतना किये बिना नारी जागरण के लिए वे साधन बन ही नहीं पड़ेंगे, वे अभियान खड़े न हो सकेंगे, जो इतने बड़े प्रयोजन को पूरा करने के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं ।

नारी समस्या के विभिन्न पहलुओं पर जन-साधारण का पूरा-पूरा ध्यान केन्द्रित हो और हर व्यक्ति को प्रस्तुत अवांछनीयता की हानि समझने का अवसर मिले तभी वह आक्रोश जगाया जा सकेगा जो बड़े परिवर्तनों की भूमिका प्रस्तुत करता है । उसके लिए आवश्यक साधन जुटाना है । जब तक परिवर्तन के कारण उपलब्ध होने वाले लाभों को भली प्रकार न समझा जाएगा, तब तक उस दिशा में न तो उत्सुकता उत्पन्न होगी और न आतुरता । अन्यमनस्क मन बहुत दूर तक नहीं चल सकता है । बाल-बुद्धि से, खेल-खिलौने ही बन सकते हैं । वह क्षणिक उत्साह में एक क्षण घरोंदे बनाती है और दूसरे क्षण उसे बिगाड़कर ताली बजाकर नाचती है । पानी के बुलबुले उछलते कूदते तो हैं, पर वे न तो देर तक जीते हैं और न लम्बी यात्रा करते हैं । दृढ़ संकल्प करने वाला और आँधी-तूफानों से टकराते हुए लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अनवरत गति से यात्रा करते रहने वाला साहस गहरे चिन्तन में ही उत्पन्न होता है । गहरा चिन्तन करने के लिए मनुष्य ही भुलक्कड़ और उथली मनोवृत्ति सहज ही तैयार नहीं होती । उसे लुहार की भट्टी में तपाना पड़ता है और भारी घन की करारी चोटें देकर सीधा-उलटा करना पड़ता है, तभी उस अनगढ़ लौह खण्ड से कुछ उपयोगी उपकरण बन पाता है ।

नारी की वर्तमान स्थिति जितनी दयनीय है उतनी ही दुर्भाग्यपूर्ण भी । दयनीय इस अर्थ में कि उसके मानवीय अधिकार छिन गये और पशुओं से भी गये-बीते बन्दी वर्ग में अपना शरीर और मन जकड़े पड़े रहने की स्थिति में निर्वाह करना पड़ा । दुर्भाग्य इस अर्थ में कि जो कुछ हो रहा है उसे यथास्थिति समझौते के रूप में स्वीकार कर

लिया गया । उसे बदलने के लिए किसी वर्ग में खास उत्सुकता या आतुरता दिखाई नहीं पड़ती । पुरुष इसलिए सन्तुष्ट है कि उसे पशु पालन पर होने वाले खर्च और झंझट की अपेक्षा अधिक सस्ता और अधिक लाभदायक श्रम अनायास ही मिल रहा है । बदले में आक्रोश भी नहीं सहना पड़ता वरन् पति देवता को चरण दासी की सेवा-साधना का सम्मान मिलता है । नारी इसलिए सन्तुष्ट है कि उसे पिजड़े में पलने वाले सुग्गों की तरह निश्चित रहने का आश्रय मिल गया है । समाज इसलिए सन्तुष्ट है कि जब अनेक क्षेत्रों में ज्वालामुखी फूट रहे हैं और उन्हीं की रोकथाम कठिन हो रही है तो फिर एक नया सिर दर्द और क्यों बढ़ाया जाय । जाग्रत नारी नये काम और नये क्षेत्र माँगेगी । जब पुरुष के लिए ही गतिरोध खड़ा है तो सोते साँप को किसलिए जगाया जाय ? कलाकार इसलिए सन्तुष्ट है कि उसे नख-शिख का वर्णन करने के लिए रमणी प्रमदा, मुग्धा, तरुणी, भोग्या, कामिनी ही चाहिए । उसी पर वह अपनी कलम और तूलिका चला सकता है । उसी गुड़िया से गुदगुदी का लाभ ले सकता है । शृंगारिकता से भरे गीत उसी पर तो लिखे जा सकते हैं । नृत्य और अभिनय के लिए उन्हें इससे सस्ते और इतने सरसता माध्यम अन्यत्र कहाँ मिलेंगे ।

कला और कामुकता का सम्मिश्रण जितनी अच्छी तरह नारी की वर्तमान प्रतिमा निभा सकती है उसका विकल्प अन्यत्र कहाँ मिलेगा ? आखिर उन्हें भी तो पैसा और ख्याति 'कला-पारखी' लोगों की जेबों से ही झटकना है और वे कला पारखी अभी भोग्या से कामिनी से बढ़कर और कोई कला-केन्द्र ढूँढ़ने में समर्थ ही नहीं हो सके हैं । कलाकार की अपनी मजबूरियाँ हैं, यदि नारी मानवोचित् स्तर तक जा पहुँचती है तो आज की कला कल अपराध बन जाएगी और कलाकारों को समाजवादी अपराधियों की पंक्ति में खड़े होकर चूतड़ों पर हंटर की सजा का भाजन बनना पड़ेगा । आज का कलाकार उस झंझट में पड़ने को तैयार नहीं । साहित्यकार का, चित्रकार का, अभिनेता का धन्धा ही जैसा चौपट होता है, वह कदम उठाना उसे अस्वीकार है । भला पेट पर लात मरवाने के लिए कोई क्यों तैयार होगा ? सस्ती वाहवाही कैसे छोड़ी जा सकती है । प्राचीनकाल का कलाकार आदर्शवादिता के झंझट में पड़कर भूखा-नंगा फिरने की मूर्खता कर सकता है, आज के कलाकार को उस उपहासास्पद स्थिति में लौटना स्वीकार नहीं । वह अपने शाही व्यवसाय को अक्षुण्य बनाये रहना चाहता है । अस्तु, उसे नारी जागरण के सम्बन्ध में ऊपरी दिलचस्पी ही हो सकती है । गहरे में उतरने और डूब मरने की उसे कोई दिलचस्पी नहीं ।

व्यापारी को विज्ञापनबाजी के लिए, व्यवसाय के लिए नारी के यौवनान्मत्त रूप का प्रदर्शन करने से बढ़कर लाभ कमाने का, लोकरुचि आकर्षित करने का और कोई तरीका दिखाई नहीं पड़ता । वह अपना पैसा मुनाफे के लिए लगाता है । यह लोक आकर्षण के आधार पर ही सम्भव है । अस्तु, साहित्य प्रकाशन, फिल्म व्यवसाय से लेकर अपनी वस्तु के विज्ञापन तक में 'मुग्धा' का आश्रय लेना पड़ता है । यदि यह सोने की चिड़िया हाथ से निकल गई तो फिर उसे एक नये सिर दर्द का, अर्थ संकट का सामना करना पड़ सकता है । फिर सरसता को नीरसता में बदल जाने से उसके व्यापार पर असर पड़ेगा । व्यापारी उसे अच्छी तरह जताता है । इसलिए उसे भी इस सन्दर्भ में कोई खास दिलचस्पी नहीं है । मूर्धन्य बुद्धिजीवी कुछ कर सकते थे, पर उन्हें लोकमंगल की अपेक्षा लोकरंजन ही अभीष्ट हो गया है । उनकी लेखनी और वाणी युग की कुत्साओं से कुंठित कर दी है । द्रौपदी के चीर अपहरण पर द्रोणाचार्य और भीष्म जैसी मनीषी, कर्ण जैसे दया धर्म के प्रवक्ता भी तो मौन रहे थे, आज का 'द्रष्टा' यदि मौन हो गया है तो उसमें भी कौन कोई अनहोनी बात है ? वह भी बेचारा परम्पराओं के अंश की पुनरावृत्ति ही तो कर रहा है ।

धर्म क्षेत्र के अध्यात्म क्षेत्र के स्वप्नदर्शी नारी की गरिमा जानते तो हैं, उसे आदिशक्ति के, ब्रह्मविद्या के, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा आदि रूप में मानते भी हैं, पर यह श्रद्धा आकाशवासिनी अदृश्य देवियों तक ही सीमित है, उन्हें ऋद्धि-सिद्धि के चमत्कारी आकाश कुसुम चाहिए । न तो उनका विश्वास धरती पर है, न धरती पर निवास करने वाली देवियों पर । नारी की पूजा करके घरों में स्वर्ग के अवतरण का जो व्यावहारिक विधान भगवान् मनु ने बताया है वह उन्हें स्वीकार नहीं । कल्पना की उड़ानें उड़ने से ही यदि काम चल जाता है तो फिर झंझट भरे कर्मयोग में कौन भटके ? जो स्वयं उलझे हुए हैं, वे दूसरों को क्या सुलझा सकते हैं । वे कभी उसे ढोल, गँवार, शुद्र, पशु की तुलना में ला बिठालते हैं । कभी स्त्री एवं शुद्र को अध्ययन का अनधिकारी घोषित करते हैं । कभी यज्ञ में बिना पत्नी के न होने की बात कहते हैं, कभी मन्त्र पाठ का उसे अनधिकारी घोषित करते हैं । स्त्री को नरक की खान बताने और उसके स्पर्श तक में पाप बताने वाले भी यही हैं और बहुपत्नी के समर्थक भी । जिनकी मान्यताएँ इतनी उलझी हों, जिन्हें तप, ध्यान के अतिरिक्त व्यावहारिक जगत की गुत्थियों को समझाने, सुलझाने जैसे कठिन कार्यों में कोई रुचि न हों, उन धर्माचार्यों से भी क्या कुछ आशा की जा सकती है । वे तो संसार को माया, मिथ्या और स्वप्न बताकर जो हो रहा है भगवान की इच्छा से हो रहा है, अपना-अपना भाग्य कहकर, हर जटिल समस्या से अपना पीछा छुड़ा लेने के अभ्यस्त हैं । नारी की दयनीय स्थिति को देख कर पसीजने, पिघलने की उनसे आशा करना बालू में से तेल निकालने के समान है । चेली-चेला मूँडने और किसी-किसी बहाने दक्षिणा बटोरने के जाल बुनने से ही उन्हें फुरसत नहीं । उन्हें स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि, चमत्कार के आकर्षण क्या कम है जो लोकमंगल के लिए कुछ माथापच्ची करें ।

सभी दिशाओं में छाये हुए घनघोर अन्धकार के बीच प्रकाश की एक ही आशा किरण शेष रह गई है, वह है लोक-मानस का पुनर्जागरण और उसकी प्रखरता का अभिवर्धन। इस महाचण्डी का आश्रय लेकर समय-समय पर मन्दोमत्त दानवों का मान-मर्दन सम्भव होता रहा है। आधी जनसंख्या को अपंग बना देने वाले और शेष आधी को दुर्भाग्य भरे संकट झेलने के लिए विवश करने वाले प्रस्तुत अनाचार महिषासुर को, सिंह वाहिनी महाकाली ही निरस्त करेगी। लोक-शक्ति ही दुर्गा है जो अनीति प्रचलन को विदीर्ण कर सकती है।

लोकमत के सम्मुख समर्थ सत्ताओं को सिंहासन छोड़ने पड़े हैं। प्रथाओं और परम्पराओं को पलायन करना पड़ा है। विधान और प्रचलन उलटे हुए हैं। संसार के इतिहास में समय-समय पर अनेक स्तर की अनेकानेक महाक्रान्तियों के विवरणों का उल्लेख मिलता है। उन प्रचण्ड परिवर्तनों के पीछे लोकमत की शक्ति ही प्रधान रूप से काम करती हुई दृष्टिगोचर होगी, भले ही उसका नेतृत्व किसी ने भी किया हो और श्रेयाधिकारी कोई भी बना हो।

नारी अपकर्ष को अभिनव उत्कर्ष में बदलने के लिए लोक-शक्ति का आह्वान करना पड़ेगा। इसके लिए लोक-मानस को इस स्तर पर प्रशिक्षित करना पड़ेगा कि यह अपकर्ष की हानि और उत्कर्ष के लाभ को समझ सकें और पग-पग काँटे चुभने वाली झाड़ियों में भटकना छोड़कर उज्ज्वल भविष्य के राजमार्ग पर चलने को कटिबद्ध हो सकें।

नारी जागरण अभियान की दूरगामी परिणति

संसार के इतिहास में समय-समय पर अनेकानेक आन्दोलन उभरते रहे हैं। उनमें से कुछ सफल, कुछ असफल भी होते रहे हैं। इनमें से अनेक अनीति विरोधी और अधिकारों की माँग से सम्बन्धित रहे हैं। कुछ का सृजनात्मक पक्ष रहा है, पर ये सभी सामयिक या क्षेत्रीय ही रहे हैं। अपनी तात्कालिक आवश्यकता पूरी करने के उपरान्त उनका समापन भी होता है। ऐसा आन्दोलन कदाचित् ही कभी उभरा हो, जिसका समूची मानवता के साथ चिरन्तन सम्बन्ध रहा हो। इस संदर्भ में पहला और अन्तिम आन्दोलन नारी जागरण को माना जाय तो उसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी।

आन्दोलनों की दुनिया का निरीक्षण-परीक्षण किया जाय तो उनका प्रभाव किसी क्षेत्र विशेष, वर्ग, समाज के किसी एक पक्ष तक सीमित रहा जा सकता है, पर नारी जागरण अभियान ऐसा है जिसमें समस्याओं के सभी पक्षों का समावेश होता है। जन-जन से इसका प्रगाढ़ सम्बन्ध है। यह मनुष्य मात्र को प्रभावित करता है। इसलिए उसे सार्वजनीन-सार्वभौम भी कह सकते हैं। इतना ही नहीं इसके साथ अवांछनीयताओं का आत्यन्तिक समाधान भी जुड़ा हुआ है और उसे उज्ज्वल भविष्य की संरचना का महानतम आधार भी कहा जा सकता है।

नारी के पिछड़ेपन का कारण कुछ भी हो सकता है। नारी की उदारता, सेवा और क्षमाशीलता उसका एक कारण हो सकता है। समर्थों द्वारा समय-समय पर अपनाया जाने वाला मत्स्य न्याय भी नारी पर आधिपत्य जमाने के लिए प्रोत्साहित करता है। प्रजनन का एकाकी उत्तरदायित्व वहन करते रहने के कारण उसकी विवशता भी उसे अधिकार सम्पादन से वंचित करती रही हो? पुरुष ने उद्धत कामुकता के रसास्वादन में अधिक लाभ देखा हो? आततायियों के अपहरण से बचाने के लिए उसे सुरक्षा दी गई हो? आर्थिक दरिद्रता ने यह विषमता उत्पन्न की हो? सामाजिक कुप्रचलन उसके लिए उत्तरदायी रहे हों? जो भी हो, पर आज की स्थिति में उसके निवारण के ठोस प्रयास तत्काल होने चाहिए।

समता मानवी न्याय की मौलिक माँग है। मानवी मौलिक अधिकारों से न किसी को वंचित किया जाना चाहिए न उनका किसी को अतिक्रमण करना चाहिए। विषमता के कारण समय-समय पर अधिक विग्रह उभरे हैं, संघर्ष हुए हैं और सुधार-परिष्कार के आन्दोलन उभरे हैं। अपराधों के बढ़ने से लेकर ईर्ष्या उभरने तक यह विषमता ही प्रधान कारण रही है। जिसे अध्यात्मवाद कहते हैं, उसका प्रमुख प्रयोजन भी समता की उस स्थिति को उत्पन्न करना है जो सुव्यवस्था, एकता, प्रगति और शालीनता की जन्मदात्री है। 'जिओ और जीने दो' की बात सोचने वालों को इस तथ्य को इच्छा या अनिच्छा से हृदयंगम करना ही पड़ेगा।

नारी जागरण इस प्रयोजन को पूरा करने के लिए उभरा, मानवता का पक्षधर, न्याय की आकांक्षा से ओतप्रोत सार्वभौम आन्दोलन है। जिसका मन्तव्य एक ही है, उसे क्रियान्वित करने की क्षेत्रीय आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। उस दिशा में उठने वाले कदम धीमे और तेज हो सकते हैं। योजनाएँ भी अलग-अलग ढंग की बन सकती हैं, पर मानवी न्याय का सबसे बड़ा और सबसे व्यापक क्षेत्र यही है कि नर-नारी समता और एकता जन्य सहकारी आधार पर सद्भावपूर्वक सज्जनोचित् जीवन जिएँ।

अच्छा हो इसके लिए वर्ग संघर्ष न उभरे। पाश्चात्य जगत में उफन रहे नारी मुक्ति आन्दोलन की तरह शोषित वर्ग को यह न कहना पड़े कि हम मुर्गियों की तरह मालिकों के लिए जिएँगी। अनाचार अन्ततः विग्रह ही उभारता है और करने-स्वीकारने वाली दोषी को साथ लेकर स्वयं बेमौत मरता है। हर दिशा में इन दिनों औचित्य अपनाये जाने की माँग उठ रही है। इस समय की पुकार को दबाया न जा सकेगा। समय रहते इसका समाधान करना होगा।

शोषितों को अपनी आवाज बुलन्द करनी पड़ी है, साथ ही शोषकों को भी न्याय देने के लिए झुकना पड़ा है । यथास्थिति बने रहने में दोष दोनों के सिर पर मढ़ा जा सकता है । अनीति करने वाले की तरह उसे सहने वाला भी दोषी होता है । आधी जनसंख्या अपने दर्प और स्वार्थ की पूर्ति करने के लिए दूसरे पक्ष को दबाव सहने के लिए बाधित करती है । आधी जनसंख्या इसे किसी कारण सहती है—असहयोग, आग्रह, अनुरोध कुछ ही नहीं करती । इसलिए प्रकारान्तर से दोषी यह भी बनती है, भले ही शोषित होने के नाते न्याय की सहानुभूति उसके पक्ष में जाती हो । आधी जनसंख्या शोषक, आधी शोषित रहे यह बहुत बुरी बात है । इसका अन्त करने के लिए जो उफान अन्तरिक्ष के गर्भ में उभर रहा है, उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता । वह उफान आन्दोलन बनकर उभरे और समता की माँग करे, इसे समूची मानव जाति के सिर पर लगे कलंक का परिमार्जन ही कहना चाहिए ।

नारी जागरण, अनाचार के परिमार्जन का विश्वव्यापी आन्दोलन है । समता का पक्षधर सघन-सहयोग जब भी बन पड़ेगा तब परस्पर खींचतान में लगी हुई शक्तियाँ मिल-जुलकर उस सृजन में संलग्न होंगी, जिसके सत्परिणामों की कल्पना करने भर से पुलकन उत्पन्न होती है । समुन्नत नारी जब अपनी स्वाभाविक प्रतिभा से सम्पन्न होगी तो उसे पुरुष से किसी भी प्रकार कम नहीं वरन् हर क्षेत्र में अधिक सफल होते देखा जाएगा । अभी भी छात्राएँ छात्रों की तुलना में अधिक संख्या व अच्छे नम्बरों से परीक्षा में उत्तीर्ण होती हैं । जब उन्हें समान सुविधा मिलने लगेगी तो उनके विकास की प्रक्रिया तेज होगी और तब वही वर्ग अधिक लाभान्वित होगा जो आज नारी वर्ग को प्रगति करने और विकसित होने में अपना घाटा समझकर अवरोध उत्पन्न करता है ।

नारी का जागरण और नर का उदात्तीकरण यह दोनों ही पक्ष मिलकर एक समग्र इकाई बनाते हैं । इसलिए वस्तुतः इसे दोनों पक्षों का प्रायश्चित और साथ ही क्षति-पूर्ति के लिए किया गया सृजन प्रयास कहा जा सकता है । इसे महान् परिवर्तन भी कह सकते हैं । यह प्रक्रिया चल पड़ने पर उसके दूरगामी परिणाम होंगे । एक आदर्श उभरेगा तो उसका प्रभाव अन्य क्षेत्रों पर भी पड़े बिना न रहेगा । अनेक दुष्प्रवृत्तियों का परिमार्जन, कुरीतियों और कुप्रथाओं का उन्मूलन होगा और समानान्तर सत्प्रवृत्तियों का संस्थापन अनायास ही चल पड़ेगा । व्यक्ति और समाज में इसकी असाधारण प्रतिक्रिया दृष्टिगोचर होगी । नीतिनिष्ठा अपनाने के लिए सभी क्षेत्रों में उमंग उभरेगी । एक के साथ दूसरा गति चक्र घूमने लगेगा । युग परिवर्तन का सुनियोजित आधार खड़ा होगा ।

इक्कीसवीं सदी महान् परिवर्तनों की धुरी है । इसे राजनीतिक, अर्थशास्त्री, विज्ञानवेत्ता और अध्यात्मवादी सभी वर्ग स्वीकार करते हैं । इस महान् परिवर्तन का एक सबसे बड़ा पक्ष यह है कि अगली शताब्दी से आरम्भ होने वाला नवयुग नारी प्रधान रहेगा । समाज की सभी शिक्षा-धाराओं पर उनका वर्चस् होगा । इस नियति निर्धारण का कारण यह है कि नारी की श्रद्धा, सद्भावना, करुणा, उदारता, समूचे सत्ता तंत्र का मार्गदर्शन कर सकेगी । इन दिनों अनास्था, निष्ठुरता, उच्छृंखलता, संकीर्ण स्वार्थपरता, आक्रामकता जैसी दुष्प्रवृत्तियों ने ही संसार में अनेकानेक समस्याएँ, विपत्तियाँ उत्पन्न की हैं, उन्हें प्रायः पुरुष वर्ग ने पनपाया है । भूतकाल में भी यही होता रहा है । तब भी महिला वर्ग ने सर्वत्र सदैव शालीनता और सद्भावना जीवित रखी है । अगले दिनों शान्ति और समाधान के लिए समन्वित भूमिका निभानी होगी । इसी बात को प्रकारान्तर से यों भी कहा जा सकता है कि नारी का देवत्व ही नवसृजन के उपयोगी परिवर्तन की भूमिका सम्पन्न करेगा । अगली शताब्दी की प्रमुख घटना यह होगी कि नारी तत्व को अपने असली रूप में प्रगट होना ही होगा ।

इन दिनों नारी जागरण का महान् आन्दोलन उपर्युक्त सभी विसंगतियों को असंगतियों में बदलने के लिए हो रहा है, उसे उथला उफान अथवा बाजारू आन्दोलन न समझा जाय । इसके दूरगामी परिणाम को समझा जाय और माना जाय कि प्रस्तुत अभियान युग परिवर्तन की महती भूमिका सम्पन्न करने के लिए अवतरित हो रहा है ।

नारी जागरण—आज की अनिवार्य आवश्यकता

नारी-जागरण की बात कम महत्त्व की समझी गई है इसलिए उस ओर नहीं के बराबर ही ध्यान दिया जाता है । कम महत्त्व की बातों पर बड़े-बड़े आन्दोलन खड़े हो जाते हैं और उनके लिए अगणित लोगों का समय, मनोयोग और धन भी प्रचुर मात्रा में लगा रहता है, जबकि नारी जागरण जैसी संसार में आधी, आबादी से सम्बन्धित जीवन-मरण जैसी महत्त्वपूर्ण समस्या को सुलझाने के लिए हर किसी को कुछ करते नहीं बनता । इसमें मुख्य कारण एक ही है कि उसकी महत्ता समझी ही नहीं गई । लाभ-हानि पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया ही कहाँ गया ? यदि यह समझने का प्रयत्न किया गया होता कि नारी का पिछड़ापन मनुष्य जाति का सबसे बड़ा अभिशाप और उस संदर्भ में उपेक्षा बरतना सबसे बड़ा अनहित है तो निश्चय ही गुत्थी को सुलझाने के लिए कुछ न कुछ किया ही जा सकता था ।

व्यक्ति और समाज के सामने प्रस्तुत कठिनाइयों में यह कम विचारणीय नहीं है कि आधी जनसंख्या अनुत्पादक, पिछड़ी और भारभूत स्थिति में पड़ी हुई दिन गुजारे । प्रशिक्षित पशु-पक्षी भी महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं । सिंह, सर्प, बन्दर तक को प्रशिक्षित करके तमाशा दिखाने वाले अपनी आजीविका चला लेते हैं । पालतू पशुओं पर ध्यान देकर उनसे लाभ उठा लिया जाता है । नारी की ओर समुचित

ध्यान दिया गया होता तो यह पिछड़ी हुई आधी जनसंख्या भी पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही होती और इससे संसार की प्रगति अब की तुलना में सहज ही दूनी हो गई होती और हम सब अपेक्षाकृत दूनी सुविधा-साधनों का उपयोग कर रहे होते ।

यह तो भौतिक प्रगति की बात हुई । वस्तुतः नारी भावना क्षेत्र में नर से बहुत अधिक आगे है । उसे अपनी इस विशिष्टता को विकसित करने का, समूचे मनुष्य समाज को लाभान्वित करने का अवसर दिया गया होता तो हम सब उन भाव-संवेदनाओं का लाभ उठाकर उस आन्तरिक आनन्द का अनुभव करते जिसकी एक-एक बूँद के लिए तरसना पड़ रहा है । धन से सुविधाएँ बढ़ती हैं, पर भावनाएँ तो समूचे व्यक्तित्व को प्रभावित करतीं और उसका स्तर बनाती हैं । सम्पत्ति की तुलना में भावनात्मक विभूतियों का गौरव असंख्य गुना अधिक है । साधन विहीन व्यक्ति भी अनुकूल भाव-संवेदनाओं के सहारे उल्लास भरा जीवन जी लेता है, पर मनःस्थिति को विक्षुब्ध करने वाली परिस्थितियों में रहने वाला मनुष्य कुबेर जितनी सम्पत्ति रहने पर भी उद्विग्नता की आग से जलता रहता है । देवमानवों जैसी उच्च भूमिका में विकसित हो सकना भाव-सम्पदा के सहारे ही सम्भव होता है ।

ऐतिहासिक महामानवों के पास प्रधान वैभव उनका भावना स्तर ही होता है । उसी के सहारे वे अपना और समस्त संसार का कल्याण करते हैं । कहना न होगा कि नारी की विशेषता उसकी प्रकृति-प्रदत्त भाव गरिमा ही है। पुरुष की कठोरता का लाभ भौतिक सम्पदाओं के रूप में मिलता है, पर यदि नारी का भाव-वैभव परिष्कृत किया गया होता तो उससे समूची मानवता की सतयुगी देव-भूमिका में विकसित देखा जा सकता था और इसी धरती पर स्वर्ग जैसे आनन्द का रसास्वादन किया जा सकता था ।

नारी के प्रति उपेक्षा बरते जाने के कारण आधे अंग को पक्षाघात पीड़ित बनाये रखने जैसी आज की स्थिति न तो स्वीकार करने योग्य है और न सहन करने जैसी । उसे बदला जाना चाहिए, यदि नारी को नर के स्तर पर विकसित होने का अवसर मिल सके तो उसकी दैवी विशेषता से इस संसार में भाव सम्पदा का अमृत बिखरा हुआ दृष्टिगोचर हो सकता है । साधन-सम्पत्ति तो आधी जनसंख्या की मूर्छना दूर होते ही आशातीत मात्रा में सहज ही बढ़ चलेगी । उपार्जन पुरुष के हाथ में और उपयोग स्त्री के हाथ में सौंपा जा सके, तो आज की सम्पत्ति का भी अनेक गुना सदुपयोग हो सकता है । अपव्यय के विनाशकारी दुर्गुण तो पुरुष की कुदृष्टि में ही घुले हुए हैं । नारी तो स्वल्प साधनों से ही समूचे परिवार को सुसम्पन्ना लोगों से भी अधिक सुखी रख सकती है ।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपार्जन तथा दूसरे क्षेत्र में काम करने से जो मिलता है उससे अधिक अपने घर-परिवार के बीच रहते हुए मिलता है । पैसा, प्रतिष्ठा या बाजारू हास-विलास का जितना महत्त्व है, उससे कहीं अधिक गरिमा उस विश्वास उल्लास एवं आश्वासन की है जो छोटे से परिवार के बीच मिलता है । यह अनुदान उन्हीं के भाग्य में बदा है, जिन्हें सुसंस्कृत नारी के अंचल की छाया मिल सकी होती है ।

परिवार के लिए मरते-खपते रहने पर भी मात्र भोजन, वस्त्र, शिक्षा, शादी, दवा, मनोरंजन जैसे साधन ही जुट पाते हैं । इससे कुटुम्बियों के शरीर भर पलते हैं, उनमें सद्गुणों के, सत्प्रवृत्तियों के बीजारोपण करके उन्हें सुविकसित करना, कमाने-खाने में अत्यधिक व्यस्त रहने वाले पुरुष के लिए सम्भव भी नहीं है । उसे समय भी कहाँ मिलता है जो इस ओर ध्यान दे पावे । थका हुआ आता है और खाकर सो जाता है । छोटी-छोटी पूछताछ कर ले तो बहुत है । यह नारी के लिए ही सम्भव है कि वह न केवल अपनी छाती से चिपके रहने वाले बच्चों के लिए, वरन् समूचे परिवार के लिए ऐसा वातावरण बनाये जिसमें पलने वाला हर सदस्य मानवीय आदर्शों को अपनाये और उन्हें अपने स्वभाव का अंग बनाकर भावी जीवन की उच्चस्तरीय रूपरेखा बनाये ।

प्राचीनकाल के गुरुकुलों में मनीषी आचार्यों के निकट रहकर पढ़ने वाले छात्र नर रत्न कहलाते, योग्य संस्कार लेकर वापिस लौटते थे । उस परम्परा का निर्वाह आंशिक रूप से सुसंस्कृत नारी कर सकती है । अपनी विकसित प्रतिभा और भाव-सम्पदा के सहारे वह घर के समूचे वातावरण को छोटे गुरुकुलों जैसा विनिर्मित कर सकती है । अध्ययन भले ही स्कूलों में रहे, उपार्जन भले ही हाट-बाजार में हो, पर संस्कारों का समूचा अनुदान घर में जितनी देर जो है वह उतने समय तक निरन्तर प्राप्त करता रह सकता है । यह स्थिति यदि बनाई जा सके तो व्यक्ति और समाज का पूरा ढाँचा बदल सकता है और जिन गुत्थियों के सुलझाने में आज एड़ी-चोटी का पसीना बहाना पड़ रहा है, उनका जड़ से उन्मूलन हो सकता है ।

प्रश्न भारतीय नारी तक सीमित नहीं है । समस्या विश्वव्यापी है । सामाजिक दृष्टि से पिछड़े कहे जाने वाले लोग उसे पर्दे के पीछे प्रतिबन्धित करके रख रहे हैं, तो अपने को विकसित कहने वाले देशों में उन्हें दूसरे ढंग से अन्य शिकंजों में जकड़ा गया है । वहाँ प्रलोभन के आकर्षणों में नारी ने स्वेच्छापूर्वक भोग्या रूप में पुरुष की दासी बनना स्वीकार कर लिया है । यों प्रखर प्रतिभा की धनी महिलाएँ हर देश में हर क्षेत्र में मौजूद हैं, पर बहुसंख्यकों की स्थिति को देखते हुए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पिछड़े और प्रगतिशील कहलाने वाले दोनों ही क्षेत्रों में सुधार एवं परिवर्तन की आवश्यकता है । औचित्य की माँग यही है कि प्रस्तुत अवांछनीयता से नारी को मुक्ति मिले और उसे भी मानवी अधिकारों से सुसम्पन्नपूर्ण मनुष्य के समान स्तर उपलब्ध कराया जाय ।

अधिकांश चारित्रिक शिक्षण तो घर के वातावरण में ही होता है और घर रूपी राष्ट्र को राष्ट्रपति सुगृहिणी ही होती है । कुशल शिल्पी ही कलात्मक मूर्तियाँ गढ़ सकते हैं । पीढ़ी निर्माण का उत्तरदायित्व ६० प्रतिशत घर के वातावरण पर और ४० प्रतिशत शिक्षा आदि बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर रहता है । बाल विकास के समस्त प्रयत्न एक ओर और नारी की निर्माण क्षमता एक ओर रख कर तौली जा सकती है ।

उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाएँ मात्र भौतिक प्रगति पर निर्भर नहीं हैं । उसके लिए चरित्रवान् और कर्मनिष्ठ प्रखर व्यक्तित्व की अनिवार्य आवश्यकता है । इस महान् निर्माण को एकाकी पुरुष नहीं कर सकता । सुसंस्कृत नारी ही इस उद्देश्य की पूर्ति में प्रधान भूमिका निभा सकती है । अस्तु, इसके सुविकसित स्तर तक पहुँचने के लिए सर्वतोमुखी प्रयत्न किए जाने चाहिए ।

दो अतियों के छोर पर भारतीय नारी

अपने देश का वर्तमान नारी समाज इस समय दो भागों में विभाजित है । शिक्षा, संस्कार, प्रवृत्तियों और विचारों के मामले में उन्हें दो परस्पर विरोधी वर्गों में रखा जा सकता है । पहला वर्ग है जो पिछले समय से चला आ रहा है और घर-परिवार के बाहर की बात उसके लिए गौण ही नहीं अनावश्यक और वर्जनीय भी है । गाँवों और शहरों के अनपढ़, अशिक्षित परम्परावादी परिवार की स्त्रियों को आज भी उन स्थितियों में रहना पड़ता है जिनमें पहले से ही वह रहती चली आ रही है । उसे अपने पति, परिवार के अन्य सदस्यों तथा बच्चों की सेवा-सुश्रूषा और देख-रेख, पालन-पोषण तक ही अपने को सीमित रखना पड़ता है । घर की चौखट उसकी लक्ष्मण रेखा है और उसके बाहर कदम रखना उसके लिए अनुचित है ।

दूसरा वर्ग वह है जो शिक्षित और आधुनिक होने का दम्भ भरते हुए स्त्री को हर प्रकार की आजादी देने की वकालत करता है । हर प्रकार की आजादी से उसका मतलब यह बहुत कम है कि स्त्री अपने मामले में स्वयं ही निर्णय ले, वरन् अधिक यही है कि वह उन सब वर्जनाओं को तोड़े जो परम्परागत गृहिणी के लिए आवश्यक समझी जाती हैं । इस धारणा में कुछ अच्छाइयाँ भी हैं तो बुराइयाँ भी । अच्छाइयाँ इससे सम्बन्धित हैं कि नारियों को परम्परा से चली आ रही रूढ़ियों और वर्जनाओं का ही कायल नहीं रहना चाहिए । उसे स्वतंत्र बुद्धि से सोचना भी चाहिए । स्वतंत्र बुद्धि के रूप में जिस रीति-नीति को प्रधानता दी जाती है, वह एक ऐसी उन्मुक्त नारी का चित्र प्रस्तुत करती है जो रहन-सहन और व्यवहार में बहुत कुछ पश्चिमी जीवन की अनुगामी है । विवेक-बुद्धि से लिए गए निर्णय और उन्हें क्रियान्वित करने का साहस यदि रूढ़ियों से न बँधने वाली नारी की विशेषता बनता तो महिलाएँ सचमुच शक्तिस्वरूपा बनकर सामने आती, पर आधुनिक नारी पुराने परिवार की मात्र प्रतिद्वन्द्वी प्रतिक्रिया मात्र बनती जा रही है । जिसे किसी भी तरह उचित नहीं कहा जा सकता ।

परम्परा, व्यामोह से मुक्त नारी से बहुत कुछ आशाएँ की जाती हैं की जानी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार उसकी योग्यता और क्षमता परिवार की ही सेवा में लगे रहकर कुन्द हो जाने की स्थिति से बचा जा सकता था । महिलाओं की कार्य-क्षमता और योग्यताओं से इन्कार नहीं किया जा सकता । विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियाँ जो कर दिखा रही हैं उसने यह भ्रान्तिपूर्ण मान्यता झुठला दी है कि कार्य-क्षमता और दक्षता के मामले में वे पुरुषों से कम हैं । बल्कि कई मामलों में तो उनके कीर्तिमान पुरुषों से भी ऊँचे हैं । यदि उन्हें घर के चौके-चूल्हे तक ही प्रतिबन्धित कर दिया गया तो समाज उनसे मिलने वाले लाभ से वंचित हो जाता है । परम्परा व्यामोह के कारण अब भी ऐसी स्त्रियाँ अपनी प्रतिभा को घर की चारदीवारी में सड़ने दे रही हैं । *उन्हें आगे लाने की आवश्यकता है । यदि यही* स्थिति बनी रही तो बदलते युग के संदर्भों में, बढ़ती व्यस्तता और तीव्रगति से भागती सभ्यता की दौड़ में समाज की आधी शक्ति का भार ढोते-ढोते वह आधी शक्ति भी चुकने लगेगी और यह हानि पिछली हानियों की तुलना में कई गुना अधिक होगी । अतः उचित है कि अविवेकपूर्ण परम्परा का मोह टूटे और महिलाएँ अपने प्रतिभा का लाभ देश और समाज को दें, लेकिन प्रगतिशीलता का यह अर्थ भी नहीं है कि उन दायित्वों को भी फेंक दिया जाय जो स्त्रियाँ ही सम्हाल सकती हैं । जैसे दायित्वों को ही लें । गृहस्थ पुरुष और स्त्री की साझी व्यवस्था है । पुरुष का दायित्व बाहरी कार्यों को निबटाना है, तो स्त्री के जिम्मे परिवार की अन्दरूनी व्यवस्था है । पुरुष का अधिकांश समय गृहस्थ के दायित्वों को बाहर क्षेत्र से पूरा करने में बीतता है तो स्त्रियाँ परिवार की आन्तरिक व्यवस्था को सम्भालती हैं । खाली समय दोनों के पास बचता है अतः उसका उपयोग अपनी योग्यता बढ़ाने और समाज की सेवा करने में किया जा सकता है

लेकिन स्वयं को परम्परागत गृहिणी से अलग देखने वाली आधुनिका परिवार को अनपेक्षित भार समझ कर वहन करती है या उससे कतराने-सी लगती है ।

शिक्षित और पढ़े-लिखे समुदाय की स्त्रियाँ घर में अपने बच्चों की देख-रेख की अपेक्षा नौकरी करना अधिक अच्छा समझती हैं । परिवार की आर्थिक स्थिति इससे मजबूत बन सके, यही सामान्यतः नौकरी का ध्येय रहता है, लेकिन कई आधुनिक विचार वाली स्त्रियों का यह दृष्टिकोण प्रमुख रहता है । नौकरी के पीछे कि हम आर्थिक दृष्टि से पुरुष की बराबरी करें और अपनी आवश्यकताओं के लिए उस पर निर्भर न रहें । पुरुष से

प्रतिस्पर्द्धा तक ही बात होती तो भी कोई खास बात नहीं रहती लेकिन स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा की अपेक्षा प्रतिद्वन्द्विता का भाव जब आ जाता है तो पति-पत्नी के बीच स्नेह और प्रेम के मधुर सूत्र चटखने लगते हैं । परिवार की आर्थिक सहायता के लिए तो गाँव की स्त्रियाँ और मजदूर गृहिणियाँ भी काम करती हैं, पर उनमें प्रतिद्वन्द्विता जैसी कोई बात नहीं रहती । जबकि प्रतिद्वन्द्विता की भावना से प्रेरित होकर शिक्षित आधुनिका अपने पति का स्वस्थ सहयोग भी ठुकरा कर अपने बूते ही सब कुछ करने की होड़ लगाये रहती है । घर में चलने वाले इस प्रकार के संघर्ष और कलह का बच्चों के मन पर भी गलत प्रभाव पड़ता है । माँ की ममतामयी छत्रछाया और स्नेह वात्सल्य का अभाव उनकी हार्दिक अपेक्षाओं को तो पूरा नहीं ही करता है । पति-पत्नी के बीच चलने वाला टकराव और संघर्ष उनमें कई कुण्ठाओं को भी जन्म देता है ।

पुराने परिवारों में नारी के स्थान की हीन प्रतिक्रिया स्वरूप आधुनिका की मनोवृत्ति पुरुष के प्रतिशोध के आधार पर खड़ी होती है । पिछले समय में स्त्री को घर में रहने के लिए प्रतिबन्धित कर उसे परिवार तक ही सीमित रहने की परम्परा थी तो आज की नारी बाहर को ही अपना कार्य-क्षेत्र मानने के लिए उतारू है और इस प्रतिक्रिया का परिणाम तथाकथित आधुनिका के लिए घर के प्रति पूर्ण उपेक्षा का रवैया अपनाने के लिए प्रेरित करता है । पहले जहाँ शील-शुचिता को सर्वोपरि महत्त्व दिया जाता था, वहीं स्वतंत्र विचारधारा के रूप में प्रत्यक्षतः उन्मुक्त जीवन भले ही न जिया जा रहा हो, पर बहुत कुछ वैसा हो रहा है जिससे नारी स्वयं को आकर्षण का केन्द्र बनाने के लिए लालायित दिखती है । रहन-सहन, साज-शृंगार, वेशभूषा, फैशन और आचार-व्यवहार में तथाकथित प्रगतिशीला नारी सड़क चलते लोगों को अपनी ओर देखते पाना शान समझती है । फिल्म, विज्ञापन, पत्र-पत्रिकाएँ, साहित्य और आधुनिक नारी पर विचारमयी व्यक्ति गोष्ठियों में जो चित्र बनता है, प्रतिपादित किया जाता है, उसमें नारी के कमनीय रूप को ही अधिक मुखरता मिलती है । कहा भले ही कुछ भी जाता रहा हो पर स्त्री को एक दर्शनीय और भोग्य वस्तु बनाकर जो रूप आधुनिकता के नाम पर दिया जाता है, उससे यह जरा भी नहीं लगता कि नारी स्वतंत्र हो रही है । अन्तर कुछ जरूर है और वह अन्तर यह है कि पहले नारी को घर की वस्तु समझा जाता था तो अब उसे सार्वजनिक प्रतिष्ठा दी जा रही है ।

आधुनिका नारी, नारी सम्बन्धों, मान्यताओं और धारणाओं की दूसरी अति पर है । सीमित कार्य, सीमित जीवन और सीमित छूट के स्थान पर बाहरी कार्य, बाहरी जीवन और बाहरी छूट ही महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन का प्रतीक नहीं है, लेकिन ऐसा ही हो रहा है और यह इस कारण कि रहन-सहन तथा आचार-विचार के साथ हमारे सोच-विचार का ढंग भी पश्चिम की नकल बना हुआ है । पश्चिम की जो परिस्थितियाँ हैं और उन सन्दर्भों में वहाँ जो परिवर्तन होते हैं, उनकी आवश्यकता और व्यावहारिकता वहाँ भले ही कितनी भी हो, हमारे यहाँ उसकी हूबहू नकल कभी भी लाभदायक नहीं हो सकती । वहाँ के तथ्यों से कुछ सीखा तो जा सकता है पर उसी आधार पर परिवर्तन का चक्र यथावत् नहीं घुमाया जा सकता है ।

आधुनिकता के लिए हम यह सोचने और मानने को स्वयं से विवश हैं कि पश्चिम हमसे आगे है । इसलिए उनके समान हम भी सभी आगे हो सकते हैं, जबकि हम उनका अनुकरण करें । पश्चिम में विज्ञान ने प्रगति की और वहाँ अधिकांश खोजें हुईं, यह सही हो सकता है और यह भी सही हो सकता है कि वहाँ के लोगों ने इस कारण तरक्की की, परन्तु उन्हीं परिणामों को अनुकरण से प्राप्त नहीं किया जा सकता । प्रगतिशीलता या उन्नति के प्रयासों का अर्थ अनुकरण नहीं है, बल्कि अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के अनुसार उनका तालमेल बिठाकर किए गये प्रयास ही प्रगति का मूल हैं । भारतीय परिवेश में पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण न खपने की वजह से पुरानी स्त्रियाँ आधुनिका और उन्मुक्त महिलाओं को हास्यास्पद रूप में देखती हैं । सम्भवतः इसकी प्रतिक्रिया तथाकथित आधुनिका के मन में भी पुरानी स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखने के रूप में होती है ।

शिक्षा एक विभूति है और शिक्षित विभूतिवान । यदि शिक्षित स्त्रियाँ अपनी क्षमता का सही उपयोग करें तो उनके लिए यह एक कर्तव्य बन जाता है कि वे परम्परा और रूढ़ियों के बोझ तले दबी भारतीय नारी को उस दुःस्थिति से उभारने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न करें । पर अनुकरणवृत्ति का अभिशाप कहें या आधुनिकता का दम्भ तथाकथित प्रगतिशील स्त्रियाँ उनकी ओर देखना भी नहीं चाहतीं, उनसे बात करना या उन्हें सहयोग देना तो दूर रहा ।

अति के एक छोर पर जिस परम्परावादी नारी की बात कही गयी है उसे भी आज के संदर्भों में जरा भी उचित नहीं कहा जा सकता । घर को ही उसका कार्य-क्षेत्र मान लेने के कारण उसके पालन-पोषण पर भी समुचित ध्यान नहीं दिया जाता तो शिक्षा-दीक्षा पर भी नहीं । पुत्र की अपेक्षा कन्या पर कम ध्यान देने की बात निन्दनीय ओछी वृत्ति है, पर शिक्षा पर ध्यान न देने का मुख्य कारण यह है कि घर-परिवार में इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती । खाना पकाने और कपड़े धोने में शिक्षा का क्या उपयोग ? बच्चों को दूध पिलाने में और खाना खिलाने तथा पति के पाँव दबाने में शिक्षा क्या काम आयेगी ? आदि प्रश्न लड़कियों की पढ़ाई-लिखाई को अनावश्यक कर देते हैं । यदि उसे भी पुत्र की तरह परिवार की भावी जिम्मेदार सदस्या समझा जाय, लड़के की तरह उसके विकास की उपयोगिता देखी जाय तो लड़कियों को शिक्षा दिलाना जरूरी लगेगा, लेकिन अति के पहले छोर पर रहने वाले परिवार अपनी दृष्टि को इतनी उदार बनाने के लिए राजी नहीं होते ।

शिक्षित आधुनिका जहाँ परम्परा के अन्धविरोध और निरंकुश प्रतिक्रिया से ग्रस्त हो तो अशिक्षित परम्परा भक्त नारी चले आ रहे रीति-रिवाजों से चिपटे रहने में ही भलाई देखती है । इन दोनों भ्रान्तियों को तोड़ने की आवश्यकता है । आवश्यकता है यह उदार विवेक बरतने की, कि नारी प्रगतिशीलता के नाम पर न अन्धानुकरण किया जाय, न ही पुरुष से प्रतिद्वन्द्विता की जाय, वरन् दोनों के सघन सहयोग द्वारा समाज को आगे बढ़ाने की आस्था से उन महिलाओं को ऊँचा उठाने की कोशिश करें जो अंति के पहले छोर पर जी रही हैं या जीने को विवश हो रही हैं ।

पुरुष अपना कर्त्तव्य निबाहें

यह तथ्य भली प्रकार हृदयंगम कर लिया जाना चाहिए, कि हजार वर्ष के अज्ञानान्धकार युग की फैलाई गई विकृतियों को, अवांछनीयताओं को, साफ करने के लिए ऐसी मजबूत झाड़ू चाहिए जो कचरे के ढेर को कुरेदने, उखाड़ने, हटाने में समर्थ हो सके । यह झाड़ू एक-दो सीकों से नहीं बनेगी, उसमें सैकड़ों तीलियों का सम्मिलित सहयोग होना चाहिए । इतना महत्त्वपूर्ण, किन्तु इतना कठिन प्रयोजन संघ शक्ति का उदय किए बिना और किसी भी तरह सम्भव नहीं हो सकता । छुट-पुट वैयक्तिक प्रयत्नों की कुछ बूँदें इस जलते तवे को ठण्डा करने में कुछ कारगर सिद्ध न होंगी । इस दावानल को शांत करने के लिए घटाओं की अनवरत बूँद-वर्षा ही कारगर होगी । नारी को पद्दलित स्थिति से उबारकर उसको सहज स्वाभाविक उच्च स्थान पर पहुँचाने के युगान्तकारी प्रयत्न संघ शक्ति के सहारे ही सफल हो सकेंगे ।

राष्ट्र के स्वतन्त्रता आन्दोलन में लाखों ने बलिदान दिए, पर जो अग्रणी रहे, यश उन्हीं को दिया जाता रहा, श्रेय उन्हीं ने पाया । यह उचित भी था, वातावरण बनाने, आगे रहने और शुभारम्भ कराने में असाधारण आत्म-बल चाहिए । उपहास, व्यंग्य, असहयोग और विरोध रहते हुए भी जो बढ़े, वे मनस्वी इसी योग्य हैं कि उन्हें भरपूर सराहा जाय । चलती गाड़ी पर तो कोई भी सवार हो सकता है । बहती नदी में तो तिनका भी बहने लगता है ।

आरम्भ यहीं से होना है कि जाग्रत आत्मा स्वयं आगे बढ़े । अपने साहस का परिचय अपने निजी परिवार में उस तरह का वातावरण बनाकर दे, जिसकी माँग नवयुग ने प्रत्येक विवेकशील और न्यायनिष्ठ व्यक्ति से की है । घर-परिवार में नारी को उचित सम्मान और सहकार मिलना चाहिए । अपने पिछड़ेपन से पिण्ड छुड़ाने और आगे बढ़ने के लिए अवसर देना चाहिए और साधन जुटाने चाहिए, साथ ही उसे संघ शक्ति के साथ मिलकर नयी चेतना ग्रहण करने और नई प्रेरणा प्रस्तुत कर सकने की स्थिति में ही पहुँचना चाहिए । इसके लिए यह आवश्यक है कि वह अभियान में सम्मिलित होकर बहुत कुछ पाने और बहुत कुछ देने का दुहरा लाभ प्राप्त कर सकें । उन्हें महिला जागरण अभियान की सदस्या बनने से लेकर प्रत्येक साप्ताहिक सत्संग में सम्मिलित हो सकने की सुविधा दी जानी चाहिए । वस्तुस्थिति से परिचित न होने के और झिझक एवं आत्महीनता में ग्रसित होने के कारण यदि उनमें इसके लिए आवश्यक उत्साह एवं साहस न हो तो नारी को यह देना प्रत्येक विवेकशील पुरुष का काम है ।

इसके लिए पुरुष वर्ग को अपने दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन करना होगा । परिवर्तन हुआ-इसके कुछ महत्त्वपूर्ण चिन्ह प्रकट होने चाहिए । दृष्टिकोण बदला इसके कुछ प्रमाण प्रस्तुत होने चाहिए । हमारे घरों में पिछली रीति-नीति में प्रारम्भिक परिवर्तन यह होना चाहिए कि पुरुष वर्ग अपने घर की स्त्रियों को घूँघट की निरर्थकता समझायें । स्वयं आगे बढ़कर उसे छोड़ने की चर्चा चलायें और वधुओं को धीरे-धीरे करके उसे कम करते चलने और जैसे-जैसे बड़े-बूढ़ों को सह्य होता चले, वैसे-वैसे उसे समाप्त कर देने का प्रोत्साहन दें । पर्दे के प्रतिबन्ध से मुक्त हुए बिना नारी, संगठन की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति नहीं कर सकती ।

हर विचारशील व्यक्ति अपने-अपने घरों में महिलाओं को प्रेरित करे, यह आवश्यक तो है, किन्तु इतना मात्र पर्याप्त नहीं । कार्य बड़ा है इसलिए उसे बड़े पैमाने पर ही करना होगा । इसके लिए संगठित रूप से प्रयास किये जाने चाहिए । बड़े कार्य सदा संगठित रूप से ही होते रहे हैं । भगवान् राम ने लंका विजय के लिए रीछ-वानरों की सेना संगठित की थी । भगवान् कृष्ण ने गोवर्धन उठाने के लिए ग्वाल-बालों को लाठी का सहारा लगाने के लिए सहमत किया था । महाभारत लड़ने के लिए कृष्ण ने सुदूर देशों के शक्तिशाली लोगों की सेनाएँ पाण्डवों के पक्ष में खड़ी की थीं । समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी के लिए साधन जुटाने के लिए सैकड़ों महावीर स्थान बनाये और प्रयुक्त किये थे । गुरु गोविन्दसिंह ने एक बड़ी सेना संगठित की थी । जन-मानस का परिष्कार करने के लिए भगवान् बुद्ध ने लाखों भिक्षु-भिक्षुणी एकत्रित एवं प्रशिक्षित किए थे । महात्मा-गाँधी ने सत्याग्रह संग्राम लोक-शक्ति को साथ लेकर ही जीता था ।

नारी पुनरुत्थान जैसी आधी जनसंख्या को गहरे गर्त में से उठाकर प्रगति के उच्च शिखर तक पहुँचाने का कार्य संगठित शक्ति से ही हो सकता है । विशालकाय क्रेन से ही उतना बड़ा वजन उठेगा । यह क्रेन लोक-शक्ति का सामूहिक उपयोग संगठित करने से ही बनेगा ।

शक्ति का उद्‌भव किए बिना और कोई मार्ग नहीं । इस संघ शक्ति का सृजन कर सकना पूर्णतया पुरुष के ही

हाथ में है । नारी घरों में कैद है, उन्हें इतनी सुविधा नहीं कि घर-घर जाकर संगठन का शंख बजा सकें । फिर उनमें से उतनी योग्यता एवं कुशलता भी कहाँ रह गई है । अनुभव के अभाव में साधारण कार्य भी ठीक तरह पूरा नहीं हो सकता, फिर नारी संगठन तो बहुत ही कठिन कार्य है । घर के कामों से ही फुरसत नहीं, फिर संगठन के लिए समय कौन निकालेगी ? जहाँ बिना संरक्षक के घर की देहरी पार करना जुर्म समझा जाता है, वहाँ घर-घर जाकर संगठन का कार्य कैसे हो सकेगा ? फिर जिन घरों में ये जाएँगी वहीं आशंका की दृष्टि से देखा जाएगा, कोई हमारे घरों की औरतों को बहकाने तो नहीं आया है, यह सोच कर संगठनकर्त्ताओं की उपेक्षा और अवज्ञा ही होगी, नारी स्वयं भी दबी हुई और सभीत है । घर के लोगों की अप्रसन्नता का एक और कारण खड़ा करने का वे कैसे साहस कर सकेंगी ? पहले से ही आये दिन डाँट-डपट के अनेक आधार खड़े रहते हैं, फिर एक और नया कारण उसमें क्यों जोड़ा जाए ? ऐसे-ऐसे अनेक कारण हैं जिनकी वजह से न नारियाँ संगठन के लिए घर पर जा सकती हैं और न जिन घरों में वे जाएँगी वहां उन्हें स्वागत सहयोग मिल सकता है । यदि नारी के जिम्मे नारी संगठन का नव-जागरण अभियान के लिए अभीष्ट क्रिया-प्रक्रिया आरम्भ करने का काम छोड़ दिया गया तो समझना चाहिए कि यह सम्भावना ही समाप्त हो गई ।

नवयुग की सर्वोपरि माँग पूरी करने के लिए प्रत्येक पुरुष को अपने घरों की नारियों को ही महिला जागरण अभियान की संघ शक्ति में सम्मिलित होने के लिए, आगे धकेलना चाहिए । उन्हें उसकी उपयोगिता, आवश्यकता और प्रतिक्रिया से परिचित कराना चाहिए । संगठन के लिए उत्साह पैदा करने से पूर्व उन्हें कठिनाई से ही नव-जागरण का सन्देश समझाया जा सकेगा । जिस बात की उन्होंने कभी कल्पना तक नहीं की, जिस सम्बन्ध में कभी सुना-समझा देखा भी नहीं, उसके लिए एकाएक तत्पर कर लेना बहुत कठिन है । पहली कठिनाई यही है, जिसे हल करके संगठन के लिए दूसरा कदम उठेगा ।

पुरुष पर्दे के पीछे रहे और अपने घरों की स्त्रियों को नव-जागरण की भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहन दें, प्रशिक्षित करें और घसीट-पकड़ कर मोर्चे पर खड़ा कर दें । उनके लिए आवश्यक परिस्थितियाँ उत्पन्न करें और सुविधा जुटायें, तभी यह आशा की जा सकेगी कि अभीष्ट संघ शक्ति का उद्‌भव हो सकेगा । संघ शक्ति के सहारे ही यह सम्भव है कि सुविस्तृत क्षेत्र में फैली हुई सघन निशा जैसी अवांछनीयता को कम समय में निरस्त किया जा सकेगा । व्यक्तिगत, एकाकी और पृथक्-पृथक् प्रयत्न चलते रहेंगे तो उनका परिणाम नगण्य होगा । इतने बड़े कार्य के लिए जनशक्ति का साधन जुटाये बिना और कोई उपाय हो ही नहीं सकता, इसलिए इस दिशा में कारगर कदम उठाये जाने में तनिक भी विलम्ब नहीं किया जाना चाहिए ।

मनुष्य के विकास की मूल शर्त

इन दिनों मनुष्य को अधिक विकसित, अधिक समर्थ और अधिक सशक्त बनाने के प्रयास बड़ी तेजी से चल रहे हैं । विज्ञान के रूप में मनुष्य को एक ऐसा हथियार मिला है, जिसके बल पर दूरगामी लक्ष्य को भी आसानी से शीघ्रता के साथ निशाना बनाया जा सके । पहले उतने साधन नहीं थे जितने कि आज हैं । पढ़ने-लिखने की सुविधाएँ सीमित थीं, इसलिए सारा जीवन प्रयत्न करने पर भी व्यक्ति अपने प्रखर विचारों को एक सीमित क्षेत्र में ही पहुँचा पाता था । आज स्थिति उल्टी है । थोड़ी-सी सूझबूझ और थोड़ा-सा पैसा मिला कर व्यक्ति जरा से समय में ही चाहे तो अपने विचार और अपने निष्कर्ष हजारों-लाखों नहीं करोड़ों व्यक्तियों तक पहुँचा सकता है । शिक्षा, धन, चतुराई कला-कौशल एवं अन्य साधन-प्रसाधन इतनी तेजी से बढ़े हैं कि प्रयत्न किया जाय तो मनुष्य के अन्तःकरण को अधिक प्रभावशीलता के साथ छुआ और बदला जा सकता है ।

पिछले जमाने में वेद, उपनिषद्, रामायण, गीता, महाभारत और पुराण जैसे धर्मग्रन्थ पढ़ने की सुविधा गिने-चुने लोगों को ही उपलब्ध थी । पर आज लाखों की संख्या में ये धर्मग्रन्थ छपते हैं और हाथों-हाथ बिक जाते हैं । धर्मोपदेशक तथा व्याख्यानदाता भी पिछले समय की तुलना में अधिक ही हुए हैं, लेकिन देखा जाता है कि इतने साधन होते हुए भी मनुष्य की आन्तरिक चेतना में पहले की अपेक्षा गिरावट आयी है । पहले लोग जहाँ धर्मग्रन्थों की बात पढ़कर या सुनकर उन प्रेरणाओं को आचरण में लाने का प्रयास करते थे ,वहीं अब सत्संग-स्वाध्याय केवल मनोरंजन या वाग्‌विलास का साधन भर रह गये हैं । चिकने घड़े पर जिस तरह पानी की एक बूँद भी नहीं ठहरती, उसी प्रकार लोगों की मनोभूमि में इतनी हीनता और इतनी गिरावट आती जा रही है कि उस पर इन प्रेरणाओं का कोई असर नहीं होता ।

घड़ा बनता है मिट्टी और पानी से । मिट्टी जिस तरह की होगी घड़ा भी उसी जैसा बनेगा । इससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है वह तकलीफ जिसका कि उपयोग कर घड़ा बनाया जाता है । तकनीक में कोई त्रुटि रह जाय तो घड़ा भी कच्चा और अल्पायु बनता है । मनुष्य बनता है शरीर और जीवन द्वारा, पर उसके निर्माण का महत्त्वपूर्ण हिस्सा यह है जिसके द्वारा उसका व्यक्तित्व प्रभावित होता है । उस आधार के गलत या सही रहने पर ही मनुष्य का अच्छा या बुरा होना निर्भर है । मनुष्य के इस आधार को तैयार करने वाला तत्व है, उसकी निष्ठा और उसके संस्कार । यह आधार माँ के प्रयत्नों से ही बनते तथा पूरे और फलित होते हैं ।

ऊपर वर्तमान साधनों के विकास की जो चर्चा की गयी है उनसे मनुष्य की चेतना प्रभावित नहीं होती । वे तो

एक ईश्वरीय सत्ता के दो रूप हैं और एक के बिना दूसरा अपूर्ण है । यदि दोनों साथ मिल-जुलकर अग्रसर होंगे, तब ही पूर्णता को प्राप्त करेंगे । अलग-अलग रहकर दोनों अपूर्ण और व्यर्थ रहेंगे ।

कर्त्तव्य के उत्तरदायित्व की दृष्टि से नारी पुरुष से कहीं ऊँची उठती है । अपने कर्त्तव्य के लिए नारियों ने देह का बलिदान किया है । त्याग द्वारा उच्चतम आदर्श उपस्थित किए हैं ।

कवियत्री महादेवी वर्मा ने नारी की महानता का वर्णन न शब्दों में किया है, जिसका एक-एक शब्द उद्‌बोधक है—

"नारी केवल माँस पिण्ड की संज्ञा नहीं है, आदिमकाल से आज तक विकास पथ पर पुरुष का साथ देकर उसकी यात्रा को सफल बनाकर, उसके अभिशापों को स्वयं झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षय शक्ति भरकर मानवी ने जिस व्यक्तित्व, चेतना और हृदय का विकास किया है, उसी का पर्याय नारी है ।"

वास्तव में नारी को वह दिव्य गुण दिये गये हैं, जिनके द्वारा वह इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग की सृष्टि कर सकती है । उसके सहयोग में रहकर पुरुष कष्टदायक कार्यों के प्रति भी साहसपूर्वक अग्रसर होता है, संसार के कष्टों को हँसते-हँसते सहन करता है । नारी की मधुर, स्नेह-स्निग्धवाणी मानव जीवन के लिए अमृत का अजस्र स्रोत है । उसके नेत्रों में करुणा, सरलता और प्रेम के दर्शन होते हैं । उसके मृदु हास्य में संसार की समस्त निराशा और कड़ुवाहट मिटा देने की शक्ति है । उसका सम्पर्क दुःखी हृदय के लिए शीतल छाया है । वह स्नेह और सौजन्य की प्रतिमा है ।

आचार्य चतुरसेन ने इन शब्दों में नारी का महत्त्व स्पष्ट किया है—"नारी पुरुष की शक्ति के लिए जीवन सुधा है । त्याग उसका स्वभाव है । प्रदान उसका धर्म, सहनशीलता उसका व्रत और प्रेम उसका जीवन है ।"

कवीन्द्र रवीन्द्र ने नारी के हास में जीवन-निर्झर का संगीत सुना है ।

प्रेमचन्द्र जैसे उपन्यासकार ने लिखा है, "नारी पृथ्वी की भाँति धैर्यवान शान्त और सहिष्णु होती है ।"

परमेश्वर ने नारी की सृष्टि का बड़ा ही दिव्य विधान रखा है । संसार के महापुरुषों ने नारी में देवियों जैसे दिव्य स्वरूप के दर्शन किए हैं । देवत्व उनका गुण है, जो शिक्षा और सुरुचिपूर्ण विकास के द्वारा विकसित होता है ।

पिछले दिनों नारी को 'अबला' कहा जाने लगा था । इसका कारण शायद यह है कि उन्होंने नारी की कोमलता, सहिष्णुता और अति वात्सल्य भाव को उसकी निर्बलता का चिह्न मान लिया है । यह पुरुष की समझ का भेद है । इन गुणों के कारण ही वह सृष्टि के संचालन का कार्य करती है । यदि नारी में यह कोमलता न हो तो वह शिशु का प्यार से पालन-पोषण न कर सके, उसे दुलार देकर मानवोचित् गुणों का विकास न कर सके । चेतना साकार रूप से मुखरित हुई है, उसका एकमात्र श्रेय नारी को है । नारी समाज की निर्मात्री शक्ति है । वह इसलिए महान् है क्योंकि समाज का धारण, पोषण और सम्वर्द्धन करती है ।

जो गृहलक्ष्मी, निर्मात्री एवं धात्री है, नए समाज और परिवार को जन्म देने वाली है, यदि वह अपने तन-मन से प्रसन्न और प्रफुल्ल रहेगी, तो उसकी सन्तान भी उसी प्रकार की प्रसन्न, स्वस्थ और आशावादी होगी । यदि वह मलीन रहेगी, तो उसका सृजन भी उतना ही मलीन और अयोग्य होगा और समाज गिरता जाएगा । नारी का उत्थान नए आगे आने वाले समाज का उत्थान है । जैसी जमीन होगी, वैसी फसल होगी । इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति नारी का समुचित आदर करते हुए उसके विकास, अधिकार और आगे बढ़ाने के लिए सदा प्रयत्न करते रहते हैं ।

जब-जब जिन समाजों में नारी का समुचित आदर रहा है, उसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक विकास की व्यवस्था रखी गई है । तब-तब वे समाज संसार में समुन्नत होकर आगे बढ़ी हैं, जब-जब इसके प्रतिकूल आचरण किया गया है, तब-तब समाजों का पतन हुआ है ।

आज संसार विज्ञान और शिक्षा के फल से बहुत आगे बढ़ गया है । राष्ट्र और समाज अपनी सुरक्षा और स्वतन्त्रता के लिए जी-जान से जुटे हुए हैं । संसार के समस्त विकसित देशों की नारियाँ पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर आगे बढ़ रही हैं । सब प्रकार के कार्य, पेशे, कला, कौशल, युद्ध, चिकित्सा, व्यापार, वाणिज्य, सरकारी नौकरियाँ कर रही हैं । शासन-प्रबन्ध और राजनीति में पूरी जिम्मेदारी से कार्य कर रही हैं । ऐसी विकसित परिस्थितियों में यदि भारतीय समाज ने अपने नारी-वर्ग को समयानुकूल विकसित एवं जागरूक न किया, तो किसी समय राष्ट्रीय आपत्तिकाल में उनसे सहायता, सहयोग तो दूर, उनकी चेतना-शून्यता एक दूसरी विपत्ति बन जाएगी ।

यदि राष्ट्रीय उत्थान कार्य में योग्य बनाकर नारी को भी संलग्न किया जाय, तो राष्ट्र की प्रगति ही दोहरी हो हो जाएगी, साथ ही वर्तमान एवं भविष्य दोनों सुरक्षित एवं निरापद बन जाएँगे ।

डॉ० राधाकृष्णन के शब्दों में—"नारी पुरुष के विलास का माध्यम नहीं है । वह पुरुष की माँ है और मानव के विकास का साधन है ।"

महात्मा गाँधी ने नारी में छुपी हुई शक्तियों को पहचाना था और सोती हुई भारतीय नारी को जैसे थपकी

देकर उठा दिया था । उनके साथ अनेक पुरुषार्थिनी नारियों ने देश की क्रान्ति में भारी योगदान दिया था । बड़ी-बड़ी मुसीबतें सही थीं । आजादी की इस लड़ाई में महिलाओं के सक्रिय सहयोग से नारी समाज में आत्म-विश्वास और साहस की समुन्नत भावनाएँ विकसित हुई हैं । भारत की महिलाएँ अपने शौर्य, साहस और आत्म-बलिदान के कारण सफल नेतृत्व प्रदान कर सकती हैं और देश में सहज ही नई सामाजिक क्रान्ति आ सकती है ।

नारी का प्रगति-पथ अवरुद्ध न रहे

भारत का प्राचीन इतिहास गौरवपूर्ण रहा है । इसका श्रेय यहाँ के जीवन-दर्शन, सामाजिक एवं पारिवारिक पद्धति को ही है, जिसने ऐसी मान्यताएँ, भावनाएँ एवं प्रेरणाएँ दीं जिनके आधार पर इस देश का बच्चा-बच्चा नररत्न एवं महापुरुष बन सका । यहाँ के निवासियों का चरित्र, व्यक्तित्व आदर्श, लक्ष्य एवं कर्त्तव्य-कर्म इतना उत्कृष्ट रहा करता था कि वह अनायास ही अन्यों का अनुकरणीय बन जाता था । जन-जीवन में इन गुणों का समागम उन संस्कारों के माध्यम से हुआ करता था, जो उन्हें बाल्यकाल में ही अपने माता-पिता से बीज रूप में मिल जाया करते थे ।

जननी और जनक सन्तानों को न केवल जन्म देने वाले ही होते हैं अपितु उनके निर्माता भी हुआ करते हैं । सन्तान का भला-बुरा होना बहुत कुछ उनके माता-पिता के स्तर पर निर्भर है । सन्तान प्रायः उन्हीं गुणों-अवगुणों को गृहण कर लिया करती है जो उनके माता-पिता के जीवन में पाये जाते हैं । इनमे भी माता के संस्कार सन्तान पर पिता की अपेक्षा, अधिक गहरे और पहले पड़ते हैं । इसका कारण यह है कि गर्भ से लेकर उस सुकुमार आयु तक सन्तान एकमात्र माता के सम्पर्क में रहती है । जिस आयु में उसका मानसिक धरातल संस्कारों को जल्दी और गहराई तक ग्रहण कर लेने के सर्वथा उपयुक्त होता है । जिस समय सन्तान माँ से संस्कार ग्रहण करना प्रारम्भ करती है,उस समय उसका मन-मस्तिष्क कोरे कागज की तरह अनंकित होता है और जब वह औरों के सम्पर्क में आने और संस्कार ग्रहण करने योग्य होता है, तब तक वह अंकित हो चुका होता है । बच्चे माँ के बाद अन्यों के सम्पर्क में भी आते और संस्कार ग्रहण करते रहते हैं किन्तु आजीवन प्रधानता उन्हीं संस्कारों की रहती है जो वे अनजान में ही माता से ग्रहण किये होते हैं और जो एक प्रकार से उनके स्वभाव एवं व्यक्तित्व के अंग बन कर स्थिर हो जाया करते हैं । इसलिए संतति निर्माता में माता को ही प्रधानता मानी जाती है ।

माँ के स्तर की अनुरूपता ही बच्चों के चरित्र में प्रतिबिम्बित होती है, ऐसा कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है । माँ का अन्तरंग एवं अंग दोनों मनुष्यों के दोनों बाह्य एवं आंतरिक आकार-प्रकार के साँचे हैं । साँचा जितना सुन्दर एवं सुघड़ होगा खिलौना उतना ही सुन्दर बनेगा । यही कारण है कि जब-जब जिस देश-समाज की माताएँ जितनी सुशिक्षित, सुशील और सौम्य एवं गुणवती रही हैं उस देश के निवासी भी उसी अनुपात में विद्वान एवं सद्‌गुणी होते रहे हैं । माता के इस महत्त्व को प्रकट करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है–

"सूर्यवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्वितृणमघ्न्ये विश्वदानी पिब: शुद्धमुदकमाचरन्ती ।"

सन्तान विद्यावान् हो इसलिए माताएँ ज्ञानवती बनें । जो स्त्रियाँ सदाचारी पुरुषों से विवाह कर सन्तान उत्पन्न करती हैं और उन्हें संस्कार युक्त बनाती हैं, उनसे समाज का गौरव बढ़ता है । उनका अनुदान गायों के समान पवित्र होता है ।

"नूनं साते प्रतियरित्रेः दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे"

–ऋग्वेद ।।'

अर्थात्–हे विद्वानो ! विद्वान् धर्मात्मा स्त्रियाँ अध्यापन करें । उनसे कन्याएँ उत्तम शिक्षा प्राप्त करें जिससे पुनीत परम्परा का विनाश न हो ।

जब तक भारत में माता के इस महत्त्व को समझा और उसका मूल्यांकन होता रहा, तब तक इस देश में एक से एक बढ़कर विद्वान एवं शूरवीर पैदा होते रहे जो शास्त्र एवं शस्त्र बल से तम तथा तमस का दमन करते, संसार की सुख-शान्ति को बढ़ाते और राष्ट्रीय गौरव को ऊँचा चढ़ाते रहे हैं । जहाँ वैदिक काल में भारत के मातृ वर्ग ने भारद्वाज, गौतम, कपिल, कणाद, व्यास, वशिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि जैसे ऋषि मध्यकाल में राणा साँगा, प्रताप, पृथ्वीराज, गोरा बादल, जैसे शूरवीर वहाँ आधुनिक काल में भी शंकराचार्य, दयानन्द, विवेकानन्द, गाँधी, जैसे संत एवं त्यागी पुरुष भी दिये हैं । इन सबके जीवनों को गहराई से देखने पर पता चलता है कि इनके इस उत्थान उत्कर्षपूर्ण चरित्र विकास में माताओं का काफी हाथ रहा है । माता द्वारा आदि संस्कार पाये बिना कदाचित् ही कोई जीवन पथ पर आगे बढ़ सकता है ।

व्यक्ति ही नहीं, परिवार को सुख-शांति एवं समृद्धि भी बहुत अंशों में नारियों पर निर्भर है । जहाँ शिक्षित, उन्नतिशील एवं कर्त्तव्य-परायण स्त्रियाँ घर को स्वर्ग बना देती हैं, वहाँ अशिक्षित, जड़ तथा मूढ़ स्त्रियाँ उस नरक में बदल देती हैं । इसीलिए शास्त्रों में नारी को घर और परिवार का मूलाधार कहा गया है । गृहस्थों को सुख-शांति का हेतु बतलाते हुए कहा गया है–

"यूयंदेवी ऋतयुग्भिरश्वैः
परि प्रयाय भुवनानि सद्यः ।
प्रजोधयन्तीः रुषसः ससन्तं,
द्विपाच्चतुष्पाच्चः रथाय जीवम् ।।"

–ऋ० वे०

अर्थात्–उत्तम गुणों से युक्त, विदुषी और सुशील स्त्री प्राप्त करने वाले सदैव सुखी रहते हैं ।

इस प्रकार जब तक नारी की महत्ता बनाई रखी गई भारत, भारत बना रहा, किन्तु जबसे उसकी महत्ता की उपेक्षा की जाने लगी, देश का पतन प्रारम्भ हो गया । नारी की उपेक्षा का यह क्रम लगभग हजार-बारह-सौ साल से चला आ रहा है जिसमें अब तक कोई भी उल्लेखनीय अथवा आशाजनक सुधार नहीं किया गया । नारी के इस पतन अथवा उपेक्षा का कारण चाहे देश का अज्ञान रहा हो, चाहे विदेशी आक्रमण, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता । वास्तविकता यह है कि नारी की उपेक्षा हुई है जिसके फलस्वरूप समाज का पतन हुआ है ।

एक समय था जब भारत की नारियाँ विद्या-बुद्धि में पुरुषों के समकक्ष थीं । वे आध्यात्मिक चिन्तन, शास्त्रार्थ एवं पुरुषों के साथ धर्मानुष्ठान में बराबर भाग लिया करती थीं, जिसके फलस्वरूप उनके प्रभाव से उनकी गोद में पली हुई सन्तानों भी संसार में अपनी विद्या-बुद्धि तथा शूर-वीरता का प्रभाव दे सकीं । किन्तु एक ऐसा अन्धकार युग भी आया, जबकि राष्ट्र की निर्मात्री नारी को उसके अधिकारों से वंचित कर विविध बन्धनों से जकड़ दिया गया । उनके पढ़ने, समाज में आने-जाने और स्वतन्त्र रूप से अपना विकास करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया । उसे केवल चूल्हा-चक्की तक घर में सीमित कर सन्तानोत्पत्ति की मशीन भर माना जाने लगा, जिसके फलस्वरूप उनमें मूढ़ता तथा अन्धविश्वासों का बाहुल्य हो गया और अपने समान ही वे मूढ़ तथा अयोग्य को जन्म देने लगीं । आज समाज में विकृतियों की जो बहुतायत दिखाई दे रही है इन सबका हेतु बहुत अंशों में नारी की अयोग्यता ही है जो उस पर बहुत पहले थोप दी गई थी, किन्तु दुर्भाग्य है कि नारी की अधोगति का परिणाम देखते हुए और जगतगुरु की पदवी से अर्द्ध सभ्य कहे जाने पर भी भारतीय समाज नारी को उसकी गिरी दशा से उठाने के लिए पूर्ण रूप से उद्यत नहीं हो रहा है । वह उसे ज्यों का त्यों अशिक्षित, अनुभव शून्य तथा पुरुष की भोग सामग्री-भर ही बना रहने देना चाहता है । उन्हें पर्दे के बाहर निकालने, मानसिक एवं आत्मिक विकास करने का अवसर देने में कृपणता एवं हठ का व्यवहार कर रहा है ।

यद्यपि समाज में नारी शिक्षा का प्रोत्साहन दिया जा रहा है । बुद्धिमान लोग उसका समर्थन भी करने लगे हैं तथापि बहुमत अभी ऐसे लोगों का ही है जो स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र घर की चारदीवारी तक ही मानते हैं । उन्हें बौद्धिक, शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से विकसित करना अनावश्यक ही नहीं, हानिकारक भी मानते हैं । ऐसे मूढ़मति लोगों की कमी समाज में अभी भी नहीं है । जिनकी धारणा है कि पढ़-लिख कर पुरुषों के समकक्ष हो जाने पर और सामाजिक क्षेत्र में निकल कर कार्य करने से नारियाँ बिगड़ सकती हैं । ऐसी भ्रान्त धारणा वाले लोग ऐसी नारियों को ओछी दृष्टि से देखने का पाप करते हैं जो अपने अध्यवसाय, परिश्रम एवं लगन के बल पर पढ़-लिख कर स्वावलम्बिनी अथवा समाज-सेविका बन कर कुछ करने के लिए आगे बढ़ती हैं । निस्संदेह इस प्रकार का तुच्छ दृष्टिकोण रचना नारीत्व का तिरस्कार है जो किसी भी समाज, राष्ट्र तथा परिवार का हित चाहने वाले को शोभा नहीं देता । नारियों के प्रति इस प्रकार का संकीर्ण दृष्टिकोण, अराष्ट्रीय, असामाजिक तथा अमानवीय है । इसकी जितनी भी भर्त्सना एवं विरोध किया जाये उतना ही उचित है । नारी पर लगे प्रतिबन्ध निश्चय ही अपनी सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रगति में बाधक हैं, इन्हें हटाना ही होगा अन्यथा राष्ट्र जिस पतन के गर्त में गिरा हुआ है उसी में यों ही गिरा रहेगा और तब भारतीय संस्कृति के अनुरूप राष्ट्र का पूर्वकालीन गौरव प्राप्त कर सकना सम्भव न होगा ।

आज भारतीय समाज में नारी की जो दशा चल रही है, वह किसी से छिपी नहीं है । कन्याओं के मूल्य-महत्त्व का आदर न करने के कारण छोटी आयु में उनका विवाह कर जीवन नष्ट कर दिया जाता है । नारी को इतना सस्ता बना लिया गया है कि एक पत्नी के रहते हुए भी पति दूसरी और तीसरी पत्नी तक कर लेते हैं और मूढ़ अभिभावक ऐसों को अपनी कन्याएँ दे भी देते हैं । दहेज की दानवी प्रथा ने तो नारियों का जीवन और भी बरबाद कर रखा है । दहेज की रकम का प्रबन्ध कर सकने में असमर्थ न जाने कितने अभिभावकों को अपनी सुन्दर एवं सुकुमार कन्याएँ वृद्ध-विधुरों के साथ बाँध देनी पड़ती हैं । शिक्षा के अभाव में तो नारी इतनी दीन तथा परावलम्बिनी हो गई है कि वह निष्ठुर पति की पैर की जूती बनकर और नाना प्रकार के त्रास सहकर भी मुँह से आह तक करने का साहस नहीं कर सकती । अविद्या ने उन्हें न जाने कितने प्रकार के अन्धविश्वासों, मान्यताओं एवं भयों का आगार बना दिया है जिससे समाज की सैकड़ों भद्र नारियाँ तक वंचकों एवं प्रवञ्चकों के जाल में फँसकर अपना धन ही नहीं शील तक गँवा बैठती हैं । अज्ञान एवं गुलामी के कारण भारतीय नारी इतनी निर्बल एवं साहसहीन हो गई है कि आपत्ति, संकट अथवा आक्रमण के समय अथवा कोई अवांछनीय संयोग आ पड़ने पर आत्म-रक्षा में किंकर्त्तव्यमूढ़ होकर लुट जाती है । परदा प्रथा ने उसे न केवल सामाजिक अनुभव से ही शून्य बना दिया है, बल्कि उसका स्वास्थ्य भी समाप्त कर दिया है । आज घरों में बन्द अधिकांश नारियाँ न जाने कितने प्रकार के प्रकट गुप्त रोगों की शिकार बनी यातनापूर्ण जीवन काट रही हैं । विधवाओं की दशा देख सुन कर तो किसी सहृदय की आँखें आँसुओं से आर्द्र हुए बिना नहीं रहतीं । जिस समाज में सधवाओं की ऐसी दशा हो उसमें विधवाओं की क्या दशा होगी, इसका अनुमान कर लेना कठिन नहीं है । उन बेचारियों को दशा पशुओं से भी बुरी रहा करती है । उन्हें अभागिनी, कुलक्षिणी तथा कलमुँही कह कर दिन-रात सताया, सताया ही नहीं जाता, बल्कि उनसे हँसने, बोलने,

भी विचारवानों के काल में यथावत् बने हुए हैं और पराजितों के प्रति सहानुभूति होने की अपेक्षा तिरस्कार भरी प्रतिक्रिया ही व्यक्त की जाती रहती है । वैसे दुर्दिन हम सब को न देखने पड़ें इसी में समझदारी है । समता और एकता का अटल परिवर्तन किसी के रोके रुकने वाला तो है नहीं, अधिक से अधिक इतना हो सकता है कि भवितव्यता को चरितार्थ होने में समय लगे ।

नारी समस्या के पीछे अनीतिमूलक दुर्भावनाओं का अहंकारी मानस ही प्रमुख बाधा बना हुआ है । यदि औचित्य को अपना लिया जाय, लाभ-हानि का सही आँकलन कर लिया जाय, तो प्रतीत होगा कि संघर्ष में उलझने की अपेक्षा सहयोग की नीति अपनाना अधिक श्रेयस्कर है । उठने में सहायता देकर, एहसान जताने और कृतज्ञता भरी सद्भावना उपलब्ध करने का लाभ ही लाभ है । इस लाभ को इन दिनों के सुअवसर पर उठाया न जा सका, तो समय निकल जाने पर अपेक्षाकृत कहीं अधिक घाटा सहन करना पड़ेगा । समता और एकता के सिद्धान्त संसार भर के दुःखी समाज को अपना लिए जाने के लिए बाधित कर रहे हैं । यह हो ही नहीं सकता कि आधी जनसंख्या नारी को उस महान् परिवर्तन से विलग रखने के कोई प्रयत्न देर तक सफल होते रहें । सामन्तवाद चला गया । अब सामाजिक सामन्तवाद की विदाई की वेला भी आ ही पहुँची है । उसे वापिस नहीं लौटाया जा सकता ।

उपयुक्त यही होगा कि भारत के जिस अहिंसक सत्याग्रह का समर्थन देश की पूरी जनता ने किया और असम्भव दिखने वाले नागपाश से छूटने में सफलता प्राप्त कर ली; अब उसी का दूसरा उत्तरार्द्ध सामाजिक क्रान्ति के रूप में उभरना चाहिए । न्याय को मान्यता दिलाने में भी उसी रीति-नीति को अपनाया जाय, जो सत्याग्रह के दिनों समूचे देश में ही नहीं संसार भर में उभर आयी थी । नारी मुक्ति आन्दोलन पाश्चात्य देशों में कटुता भरे वातावरण में संघर्ष और प्रतिशोध के रूप में उभर रहा है । अच्छा हो कि वह टकराव से बचें और समझौतावादी उदारता अपनाने भर से, कठिन दिखने वाला मोर्चा सुलह-सफाई के वातावरण में ही निपट जाय ।

इसके लिए मात्र भ्रान्तियों का निराकरण ही वह कार्य है, जिससे काया-कल्प जैसा सुखद सुयोग सहज ही हस्तगत हो सकता है । यह स्वीकार कर ही लिया जाना चाहिए कि नर और नारी दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । एकता और सद्भावना के वातावरण में ही उनके बीच सहकारिता विकसित हो सकती है और अक्षुण्ण बनी रह सकती है । लड़के-लड़की के बीच, कन्या और वधू के बीच बरता जाने वाला पक्षपातपूर्ण भेदभाव अब पूरी तरह समाप्त होना ही चाहिए । दोनों को दो हाथ, दो पैर, दो आँख, दो कान की तरह परस्पर सहयोगी और समान महत्त्व पाने के अधिकारी मानकर चलने में ही समझदारी है ।

आने वाले समय में पुरुषों को नारी उत्थान सम्बन्धी उन सभी कार्यों में विवश होकर सहयोग करना ही पड़ेगा, जिनमें अभी वे अनख, आलस और उपेक्षा दिखाती प्रतीत होते हैं ।

समय की नब्ज पहचानी जाए

वस्तुतः महाकाल का यह प्रथम आश्वासन है, जिसके पीछे पिछड़ों को ऊँचा उठाकर समता का धरातल बनाने के लिए वचनबद्ध रहने का दैवी शक्तियों ने आश्वासन दिलाया है । लोक-मानस भी समय की प्रचण्ड धारा के विपरीत बने रहने का देर तक दुराग्रह नहीं करता रह सकता । तूफान मजबूत पेड़ों को भी उखाड़ फेंकता है । घटाटोप वर्षा में छप्परों से लेकर झोपड़ों तक को बहाते देखा जाता है । पानी का दबाव बड़े-बड़े बाँधों में भी दरार डालने और उन्हें बहा ले जाने का दृश्य प्रस्तुत करता है । यह महाकाल की हुँकार ही है, जिसने नारी को पिछड़े क्षेत्र से हाथ पकड़कर आगे बढ़ने के लिए धकेला और घसीटा है । अब यह भी निश्चित है कि नारी शिक्षा का द्रुतगति से विस्तार होगा । शिक्षा और व्यवस्था में पुरुष का ही एकाधिकार नहीं रहेगा । नारी शिक्षा की परिवार परिकरों से लेकर शासकीय शिक्षा विभाग तक में समुचित व्यवस्था बनानी होगी । नारी शिक्षा मात्र नौकरी दिलाने में काम आने भर का जादू, फुलझड़ी बनकर समाप्त नहीं हो जाएगी, वरन् उसके साथ-साथ समानता और एकता को हर क्षेत्र में समान अवसर पाने, दिलाने की विधि-व्यवस्था भी जुड़ी रहेगी । इस कार्य को अध्यापक-अध्यापिकाएँ करें, नहीं तो हर दिशा में उमड़ती हुई प्रगतिशीलता यह कराकर रहेगी कि नारी अपना महत्त्व, मूल्य, अधिकार और भविष्य समझे । अनीतिमूलक बंधनों को तोड़े और उस स्थिति में रहे, जिससे कि स्वतंत्र वातावरण में साँस लेने का अवसर मिले । कहना न होगा कि यही लक्ष्य युग चेतना ने भी अपनाया है तथा नर और नारी एक समान का उद्घोष निखिल आकाश में गुंजित किया है ।

असहाय रहने और अनुचित दबाव के नीचे विवश रहने की परिस्थितियाँ समाप्त समझनी चाहिए । वे अब बदल कर ही रहने वाली हैं । कन्या जन्म पर न किसी को विलाप करते देखा जाएगा और न पुत्र जन्म में कहीं कोई बधाई बजायेंगे । जो कुछ होगा वह दोनों के लिए समान होगा । अगर अपने घर की लड़की पराए घर का कूड़ा है, तो दूसरे घरों का कूड़ा अपने घर में भी तो बहू रूप में गृह-लक्ष्मी की भूमिका निभाने को, आने की तैयारी में

संलग्न है । फिर भेदभाव किस बात का ? लड़की और लड़के में अन्तर किसलिए ? दोनों के मूल्यांकन में न्याय तुला की डंडी मारने की मान्यता किसलिए ?

नारी की पराधीनता का एक रूप यह है कि उसे पर्दे में, पिंजड़े में बन्दी गृह की कोठरी में कैदी रहना चाहिए । इस मान्यता को अपनाकर नारी को असहाय अनुभवहीन और अनुगामी ही बताया जाता रहा है । अबला की स्थिति में पहुँचने में वह अब आक्रान्ताओं का साहसपूर्वक मुकाबला कर सकने की भी हिम्मत गँवा बैठी है । आड़े समय में अपना और अपने बच्चों का पेट पाल सकने की स्थिति में नहीं रही है । व्यवसाय चलाना, ऊँचे पद का दायित्व निभाना तो दूर, औसतन पारिवारिक व्यवस्था से सम्बन्धित अनेक कार्यों में हाट-बाजार, अस्पताल तथा अन्य किसी विभाग का सहयोग पाने के लिए जाने में झिझक-संकोच से डरी रहकर मूक-बधिर होने जैसा परिचय देती है । इस प्रकार की विवशता उत्पन्न करने के लिए जो भी तत्व जिम्मेदार होंगे, उन्हें पश्चातापपूर्वक अपने कदम पीछे हटाने पड़ेंगे । परिवार-परिकर के बीच नर और नारी बिना किसी भय संकोच के जीवनयापन करते रह सकते हैं, तो फिर बड़े परिवार-समाज में, आवश्यक कामों के लिए आने-जाने में किसी संरक्षक को ही साथ लेकर जाना क्यों अनिवार्य होना चाहिए ?

विवाह की बात तय करने में अभिभावकों की मर्जी ही क्यों चले ? यदि लड़की को भी लड़के के समान ही सुयोग्य बनाने के लिए अधिक समय तक शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने का औचित्य हो तो फिर उसे बाल-विवाह के बंधनों में बँधकर घसीटते हुए किसी भी दूसरे पिंजड़े में स्थानान्तरित किए जाने का क्या औचित्य हो सकता है ? विवाह के बाद योग्यता संवर्द्धन के अवसर पूरी तरह समाप्त क्यों हो जाने चाहिए । अभिभावकों के घर लड़की ने जितनी योग्यता और सम्मान अर्जित किया है, उससे आगे की प्रगति का क्रम जारी रखने का उत्तरदायित्व ससुराल वालों को क्यों नहीं निबाहना चाहिए ? विवाहित होने के बाद प्रगति के सभी अवसर छिन जाने और मात्र क्रीत दासी की भूमिका निभाते रहने तक ही उसे क्यों बाधित रखा जाना चाहिए ? यह प्रश्न ऐसे हैं, जिनका उचित उत्तर हर विचारशील को, हर न्यायनिष्ठ को, हर दूरदर्शी को छाती पर हाथ रखकर देना चाहिए और सोचना चाहिए कि यदि उन्हें इस प्रकार बाधित रहने के लिए विवश किया जाता, तो कितनी व्यथा-वेदना सहनी पड़ती । अधिकांश बालिकाओं द्वारा विवाह के बाद अपना शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य गँवा बैठना भी इसलिए देखा जाता है कि उन्हें आजन्म कैदी जीवन जीकर किसी प्रकार दिन गुजारते रहने के अतिरिक्त और कोई भविष्य दिखाई नहीं देता । इक्कीसवीं सदी में यह सब कुछ बदलकर रहेगा और नारी को अपमान-अत्याचार नहीं, सम्मान और गौरव प्राप्त होगा ।

युग परिवर्तन में नारी का सहयोग

आज नव-निर्माण का युग है और इस नव-निर्माण में नारी का सहयोग वांछनीय है अथवा यों कहें कि आने वाले युग का नेतृत्व नारी करेगी, तो भी अतिशयोक्ति न होगी । नव-निर्माण एवं युग परिवर्तन कहाँ से और कैसे आरम्भ होगा व उसमें क्या योग रहेगा ? इस विषय की चर्चा करने से पूर्व जरा प्रस्तुत विश्व स्थिति पर विचार किया जाय । संक्षेप में आज का मानव जीवन भीषण परिस्थितियों से गुजर रहा है, उसका अनुमान लगाना भी भयंकर है । आज का वैयक्तिक जीवन, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन इतना अशांतिमय एवं अभावग्रस्त हो गया है कि मनुष्य को पल भर को चैन नहीं । तृतीय विश्वयुद्ध के कगार पर खड़ी मानवता विज्ञान को कोस रही है और सुरक्षा एवं शान्ति के लिए त्राहि-त्राहि कर रही है । भौतिकवाद के नाद में एक देश दूसरे देश को एक जाति दूसरी जाति को, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पने की ताक में बैठा है । युद्धीय अस्त्र-शस्त्रों की होड़ ने तथा विषैले बमों ने विश्व-शान्ति को खतरे में डाल रखा है । जीवन में जो अनास्था आ गई है उसका कोई अन्त नहीं । जीवन के हर क्षेत्र में हम पिछड़ गये हैं और अधःपतन की ओर जा रहे हैं । सामाजिक विश्रृंखलता, नैतिक पतन, राजनैतिक विप्लव, धार्मिक अन्धानुकरण व अधार्मिकता, नैष्ठिक पतन आज के जीवन में घुन की भाँति लग गये हैं ।

ऐसी पृष्ठभूमि में आज विश्व की माँग है और वह माँग भारत पूरी कर सकता है । वह माँग है शान्ति की, प्रेम की, सुरक्षा की तथा संगठन की । आज के युग की सबसे बड़ी माँग है नव-निर्माण की, प्रस्तुत परिस्थितियों में आमूल परिवर्तन एवं क्रांति की । आज हम युग परिवर्तन के प्रहरी बनकर विश्व को शान्ति का दीप दिखायेंगे, फिर से हमें अपने भारतीय ऋषि, मुनियों की परम्परा को जीवित करना होगा, फिर से धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, नैतिक एवं नैष्ठिक पुनरोत्थान की भावना को जन-जन में भर देना होगा । आज हमें भारतीय होने के नाते प्रत्येक नर-नारी को देश के नव-निर्माण में प्राणपण से जुट जाना होगा । इस युग परिवर्तनकारी आन्दोलन में और जागरण की स्वर्णिम वेला में भारतीय नारी का प्रथम उत्तरदायित्व है कि वह इस दिशा में कदम उठाये । आज की नारी सजग है, वह स्वतंत्रता, धार्मिकता एवं मर्यादा की प्रहरी है । नारी के प्रति जो अत्याचार आज तक किया गया उसके लिए पुरुष समाज को प्रायश्चित करना होगा, अब कन्याओं को मूक पशु की भाँति बेचा न जा सकेगा । जरा कल्पना करिए उस वैदिक काल की जब घोषा, अपाला, गार्गी, मैत्रेयी जैसी महान् रमणियाँ हुईं, अनेक वेदमंत्रों का निर्माण करने वाली ऋषिकाएँ हुईं, जहाँ देश पर और आन

पर प्राण न्योछावर करने वाली रणदेवियाँ हुईं। आज उन्हीं की जन्मभूमि पर नारी पर किया जाने वाला अत्याचार क्यों ? आज के युग में भारतीय नारी की शिक्षा का औसत सोचते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं और आश्चर्य होता है क्या यही उन ब्रह्मवादिनी की भूमि है ? जो-जो अत्याचार आज तक नारी पर अबला समझ कर किये गये, चाहे उससे अन्तरिक्ष फट पड़ा हो, परन्तु पुरुष का हृदय न पसीजा।

किन्तु इस सबके कहने के साथ हमारा तात्पर्य है कि अब वह स्थिति नहीं है, आज भारतीय नारी हर क्षेत्र में कार्य कर रही है, वह युग का निर्माण करने के लिए सम्पन्न है। युग करवट ले रहा है। परिस्थितियों का घटना क्रम तीव्र गति से घूम रहा है। मानवता का अर्द्धभाग को छोड़कर कोई देश व समाज उन्नति नहीं कर सकता। अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों के पोषण के लिए भारतीय नारी कटिबद्ध होकर कार्यक्षेत्र में उतर रही है। नारी की शिक्षा का प्रतिशत बढ़ाने के साथ-साथ उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व को ढालना होगा, दासता की शृंखलाओं से मुक्त करना होगा और पुरुष समाज को समझना होगा कि नारी उपभोग एवं वासना की वस्तु नहीं, एक जीती जागती आत्मा है, उसमें भी प्राण है, मान है और स्वाभिमान की भावना। मनु ने नारा लगाया था 'यत्र नार्यस्तु, पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' और यही कारण था कि जब से नारी को प्रतारणा व अवहेलना आरम्भ हुई, भारत का भाग्य बोल उठा। नारी आज हर कदम पर नई प्रेरणा देगी, उसकी अगम शक्ति को फिर से प्रतिस्थापित करना होगा। वह ममतामयी माँ है, स्नेहमयी भगिनी है, पतिपरायण पत्नी है, किन्तु दूसरी ओर वह चंडी है, दुर्गा है, काली है। नारी ही वीर पुत्रों को जन्म देती है। ध्रुव, प्रह्लाद, अभिमन्यु, शिवाजी, राणाप्रताप को जन्म देने वाली माताएँ भारत में ही हुईं, रणचंडी दुर्गा की भाँति मर्यादा औ मान के लिए जूझने वाली क्षत्राणियाँ और वीर झाँसी की रानी यहीं हुई, किन्तु हम भूल गये उन सतियों के तेज को, उन वीर प्रसविनी जननियों को, उन कुल ललनाओं को और नारी का तेज आभूषणों की चमक व रेशमी परिधानों में धूमिल पड़ गया। इस चतुर्मुखी निर्माण की वेला में नारी की प्रेरणा लेनी होगी, उसमें फिर से आत्मबल लाना होगा। जो आज की शिथिल नारियाँ हैं, वे आर्थिक स्वतन्त्रता एवं पाश्चात्य सभ्यता को अपनाकर अपने भारतीय गौरव को कलुषित न करें, वरन् वे घर-घर जाकर नारी समाज को उसकी गुप्त शक्तियों का ज्ञान करायें। देश में कन्याओं की शिक्षा पर लड़कों की शिक्षा से अधिक बल दिया जाय। ये भावावेश की बात नहीं, यह एक स्वयंसिद्ध सत्य है, नारियाँ शिक्षित होंगी तो पुरुष समाज तो स्वतः सुधर जाएगा, माताओं और पत्नियों के संस्कार से पुरुष समाज अपने आप सुसंस्कृत होगा। देश की मानमर्यादा की रक्षा करने वाली नारी जब नव-विहान का स्वर गुँजा देगी तो कोई सन्देह नहीं हमारे देश में आज फिर हरिश्चन्द्र, प्रताप, राम, भीम और अर्जुन पैदा होंगे।

आइये, आज सम्पूर्ण नारी जाति से प्रार्थना है कि वह घिनौने वातावरण को छोड़कर, परवशता की ग्रंथियाँ काट कर आगे बढ़ें और समाज सुधार का, नैतिक उत्थान का, धार्मिक पुनर्जागरण संदेश मानवता को दें। पुरुषों से कंधा मिलाकर घर और बाहर दोनों क्षेत्रों में नारी को कार्य करना होगा। आज भारत की माँग है–अध्यात्म एवं वैदिक धर्म का पुनरुत्थान और भारतीय धर्म एवं संस्कृति का पुनर्स्थापन। जब घर-घर में पुनः वेदों की वाणी गूँज उठेगी, तब भारत फिर से अपने प्राचीन जगद्गुरु के गौरव को प्राप्त करेगा। हर क्षेत्र में, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, नैतिक, शैक्षणिक एवं नैष्ठिक पुनर्संगठन करते हुए आज की शिक्षित नारी जिस पथ का निर्माण करेगी, वह पथ बड़ा सुगम एवं आध्यात्मिक होगा। फिर से भारत में ऋषियों की परम्परा जाग्रत होगी फिर से नारी की मातृशक्ति रूप में पूजा होगी, और हम सम्पूर्ण विश्व को एक मौलिक प्रकाश एवं नवीन संदेश देंगे। नारी ही घर-घर में ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकती है जो भारतीय संस्कृति पर आधारित हो। वह आज सबला बनकर चेतना, प्रेरणा मुक्ति एवं आध्यात्मिकता की साकार मूर्ति के रूप में अवतरित हो रही है। नारी का सहयोग, परिवार में, समाज में आरम्भ होगा, एक ऐसा वातावरण बना देगा, जहाँ फिर से दधीचि, कर्ण और राम पैदा होंगे। नारी की सबल प्रेरणा पुरुष को नव-शक्ति से भर देगी, किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि उसे आत्म-बल, चरित्र-बल, तप-बल में महान् बनाना होगा।

नारी विश्व की चेतना है, माया है, ममता है, मोह और मुक्ति है, किन्तु समय-समय पर उसका अवतरण भिन्न-भिन्न रूपों में होता है। आज हमें उन क्षत्राणियों की आवश्यकता है जो समय पड़ने पर समरांगण में उतर पड़ें, साथ ही यह न भूलना चाहिए कि उसे पारिवारिक इकाई से विस्तृत क्षेत्र की ओर बढ़ना है। गहनों से लदी रहने वाली भोग-विलासिनियों की आवश्यकता नहीं, आज तो सभी कर्मठ महिलाओं की आवश्यकता है जो पुरुष समाज एवं जाति तथा सम्पूर्ण देश को भारत की संस्कृति का पावन संदेश देकर देश में, घर-घर में फिर से प्रेम, त्याग, बलिदान, पवित्रता एवं माधुर्य का सन्देश दें। अफलातून नामक यूनानी दार्शनिक ने कहा था, नारी स्वर्ग और नरक दोनों का द्वार है, बस आज फिर से नारी जाति कटिबद्ध हो जाये और अपने बल से पृथ्वी पर ही स्वर्ग का अवतरण करे। टामस एक्वीनास नामक योरोपीय दार्शनिक ने कहा था कि विधाता ने अपना सारा कोमलत्व

नारी हृदय को दे दिया, काश पुरुष उस माता के हृदय को समझ पाता । बार-बार नारी को यह बोध कराना होगा कि वह अमित शक्ति का भण्डार है, प्यार एवं प्रेरणा का स्रोत है-आवश्यकता है कि वह सद्प्रयत्न में अपनी शक्ति लगाये और उसकी प्यार भरी स्वर्गीय आत्मा का मूल्यांकन किया जाय । उद्‌बोधन का स्वर सुनाने वाली, कर्त्तव्य बोध कराने वाली नारी से आज माँग की जाती है कि वह युग परिवर्तन के इस संक्रान्ति काल में अपना उत्तरदायित्व निभावे और संगठित होकर पुनः भारत की सतियों का गौरव प्राप्त करे ।

भारत अग्रणी था—अग्रणी रहेगा

भारत को इस दिशा में अभी बहुत कुछ करना है । जिस देश की संघमित्रा, आम्रपाली अपने सुविधा-साधनों को लात मारकर विश्व के कल्याण के लिए निकल पड़ी थीं और संसार भर में बौद्ध मठों की स्थापना एवं संगठन में असाधारण रूप से सफल हुई थीं, उसी देश में इन दिनों नारी का पिछड़ापन अभी भी बुरी तरह छाया हुआ है । देहाती क्षेत्रों में तो उसकी शिक्षा और सामाजिक स्थिति दयनीय स्तर की देखी जा सकती है । फिर भी समय का परिवर्तन इस पिछड़े क्षेत्र में भी चमत्कार प्रस्तुत करने के लिए कटिबद्ध हो रहा है और प्रगतिशीलता की नयी उमंगें उभर रही हैं ।

भारत में पंचायती राज स्थापित होने की भूमिका बनायी गयी है । साथ ही चुने हुए पंचों में नारी को तीस प्रतिशत अनुपात से चुने जाने की घोषणा भी हुई है । आशा की गयी है कि यह अनुपात प्रान्तीय और राष्ट्रीय स्तर पर भी ऊँची मान्यता प्राप्त करेगा । जन-जातियों के आरक्षण की तरह अन्य महत्त्वपूर्ण भागों और पदों पर भी उनका समुचित ध्यान रखा जाएगा । समय की इस माँग को किसी के द्वारा भी झुठलाया नहीं जा सकता ।

बात भले ही शासकीय क्षेत्रों में प्रवेश पाने से आरम्भ हो, पर वह प्रगति क्रम उतने छोटे क्षेत्र तक ही सीमित होकर नहीं रह सकता । यह प्रतीक मात्र है कि उनकी उपयोगिता समझी जाने लगी और समुचित सम्मान मिलने की प्रथा चल पड़ी । सुधारने-सम्भालने के लिए अगणित क्षेत्र खाली पड़े हैं । उन्हें सुव्यवस्थित करने की जिम्मेदारी नारी के कंधों पर अनायास ही बढ़ती चली आ रही है । सहकार का महत्त्व समझ में आने लगा है और यह अनुभव किया जाने लगा है कि टाँग पकड़ कर पीछे घसीटने का भौंडा खेल हर किसी के लिए हर दृष्टि से हानिकारक और कष्टकारक ही हो सकता है ।

अगले दिनों नारी स्वाभाविक रूप से अधिक समर्थ, कुशल और सुसंस्कृत बनने जा रही है । यह उसके नवजीवन का स्वर्णिम काल है । वर्षा ऋतु आए और हरियाली का महत्त्व दीख न पड़े यह हो ही नहीं सकता । बसन्त का अवतरण हो और पेड़-पादपों पर रंग-बिरंगे फूल न खिलें, यह हो ही नहीं सकता । प्रभात उगे और अंधकार एवं निस्तब्धता का माहौल बना रहे, यह अनहोनी होती दीख पड़े, इसकी आशंका किसके मन में रहेगी ? नारी-युग की अधिष्ठात्री, धरती की देवी-अपनी गरिमा सकोड़े, समेटे, दबाए, दबोचे बैठी रहें यह विपन्नता क्यों ? कैसे और कब तक बनी रह सकती है ? समर्थता के साथ-साथ समझदारी भी बढ़ती है और वह अदृश्य के मार्ग-दर्शन के अभ्युदय की दिशा में चल पड़े तो उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले चमत्कारों से वंचित ही बने रहना किस कारण रुका सह सकेगा ?

नारी के अनुदान कभी भी हलके स्तर के नहीं रहे । उसने धरित्री के, ऊर्जा के, वर्षा के, प्राण वायु के सदृश अपनी विभूति वर्षा से संसार के कण-कण को सरस, सुन्दर, समुन्नत बनाया है । करुणा, दया, सेवा उसका समर्पण और उसकी अनुकम्पा ही है, जो इस संसार को सुरम्य और सुसंस्कृत रखे रह पा रही है । अगले दिनों तो उसे अपनी महत्ता का परिचय और भी बढ़-चढ़ कर देना है । प्रतिकूलता को अनुकूलता में, पतन को उत्थान में और समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना अगले दिनों का अग्रगम्य अनुदान होगा ।

यह सब कुछ अनायास ही नहीं हो जाएगा । नियति चाहे कुछ भी क्यों न हो, पर उसके लिए पुरुषार्थ तो करना ही पड़ता है । बुद्ध, गाँधी जैसी देवात्माएँ विश्व-कल्याण के लिए अवतरित हुई थीं, पर यह लक्ष्य अनायास ही पूरा नहीं हो गया । उन्हें स्वयं तथा उनके सहयोगियों को निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने के लिए त्याग और साहस भरे प्रयत्न करने पड़े थे । हनुमान और अर्जुन महाप्रतापी बनने के लिए जन्मे थे । उन्हें दैवी-अनुग्रह भी विपुल परिमाणों में प्राप्त था, पर यह भुलाया नहीं जा सकता कि उन्हें अपने साथियों सहित असाधारण पुरुषार्थ का परिचय देना पड़ा था । अनायास तो सामने थाली में रखे भोजन को अपने मुँह में प्रवेश करते और पेट में पड़कर क्षुधा निवारण करते नहीं देखा गया । फिर युग अवतरण के लिए संभावित नारी पुनरुत्थान भी अपना उचित मूल्य माँगे, तो उसमें आश्चर्य ही क्या है ?

प्रत्यक्षतः तो शिक्षा स्वावलम्बन, परिवार पोषण, कला-कौशल जैसे क्षेत्र में नारी का सहयोग करने भर से काम चल रहा है । इन कामों में विचारवानों से लेकर सरकार तक का सहयोग मिल रहा है । वह नौकरियों में भी प्रवेश कर रही हैं । इन लक्ष्यों को प्रगति का नाम भी मिल रहा है । इतने पर भी एक भारी कठिनाई अभी भी आ रही है, जो मान्यताओं और प्रथाओं के रूप में अदृश्य होते हुए भी इतना अनर्थ कर रही है कि उनकी तुलना में दृश्यमान विकास कार्यों से होने वाले लाभों को नगण्य ही कहा जा सकता है ।

पर प्राण न्योछावर करने वाली रणदेवियाँ हुईं । आज उन्हीं की जन्मभूमि पर नारी पर किया जाने वाला अत्याचार क्यों ? आज के युग में भारतीय नारी की शिक्षा का औसत सोचते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं और आश्चर्य होता है क्या यही उन ब्रह्मवादिनी की भूमि है ? जो-जो अत्याचार आज तक नारी पर अबला समझ कर किये गये, चाहे उससे अन्तरिक्ष फट पड़ा हो, परन्तु पुरुष का हृदय न पसीजा ।

किन्तु इस सबके कहने के साथ हमारा तात्पर्य है कि अब वह स्थिति नहीं है, आज भारतीय नारी हर क्षेत्र में कार्य कर रही है, वह युग का निर्माण करने के लिए सम्पन्न है । युग करवट ले रहा है । परिस्थितियों का घटना क्रम तीव्र गति से घूम रहा है । मानवता का अर्द्धभाग को छोड़कर कोई देश व समाज उन्नति नहीं कर सकता । अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों के पोषण के लिए भारतीय नारी कटिबद्ध होकर कार्यक्षेत्र में उतर रही है । नारी की शिक्षा का प्रतिशत बढ़ाने के साथ-साथ उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व को ढालना होगा, दासता की शृंखलाओं से मुक्त करना होगा और पुरुष समाज को समझना होगा कि नारी उपभोग एवं वासना की वस्तु नहीं, एक जीती जागती आत्मा है, उसमें भी प्राण है, मान है और स्वाभिमान की भावना । मनु ने नारा लगाया था 'यत्र नार्यस्तु, पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' और यही कारण था कि जब से नारी को प्रतारणा व अवहेलना आरम्भ हुई, भारत का भाग्य डोल उठा । नारी आज हर कदम पर नई प्रेरणा देगी, उसकी अगम शक्ति को फिर से प्रतिस्थापित करना होगा । वह ममतामयी माँ है, स्नेहमयी भगिनी है, पतिपरायण पत्नी है, किन्तु दूसरी ओर वह चंडी है, दुर्गा है, काली है । नारी ही वीर पुत्रों को जन्म देती है । ध्रुव, प्रहलाद, अभिमन्यु, शिवाजी, राणाप्रताप को जन्म देने वाली माताएँ भारत में ही हुईं, रणचंडी दुर्गा की भाँति मर्यादा औ मान के लिए जूझने वाली क्षत्राणियाँ और वीर झाँसी की रानी यहीं हुई, किन्तु हम भूल गये उन सतियों के तेज को, उन वीर प्रसविनी जननियों को, उन कुल ललनाओं को और नारी का तेज आभूषणों की चमक व रेशमी परिधानों में धूमिल पड़ गया । इस चतुर्मुखी निर्माण की वेला में नारी की प्रेरणा लेनी होगी, उसमें फिर से आत्मबल लाना होगा । जो आज की शिथिल नारियाँ हैं, वे आर्थिक स्वतन्त्रता एवं पाश्चात्य सभ्यता को अपनाकर अपने भारतीय गौरव को कलुषित न करें, वरन् वे घर-घर जाकर नारी समाज को उसकी गुप्त शक्तियों का ज्ञान करायें । देश में कन्याओं की शिक्षा पर लड़कों की शिक्षा से अधिक बल दिया जाय । ये भावावेश की बात नहीं, यह एक स्वयंसिद्ध सत्य है, नारियाँ शिक्षित होंगी तो पुरुष समाज तो स्वतः सुधर जाएगा, माताओं और पत्नियों के संस्कार से पुरुष समाज अपने आप सुसंस्कृत होगा । देश की मानमर्यादा की रक्षा करने वाली नारी जब नव-विहान का स्वर गुँजा देगी तो कोई सन्देह नहीं हमारे देश में आज फिर हरिश्चन्द्र, प्रताप, राम, भीम और अर्जुन पैदा होंगे ।

आइये, आज सम्पूर्ण नारी जाति से प्रार्थना है कि वह घिनौने वातावरण को छोड़कर, परवशता की ग्रंथियाँ काट कर आगे बढ़ें और समाज सुधार का, नैतिक उत्थान का, धार्मिक पुनर्जागरण संदेश मानवता को दें । पुरुषों से कंधा मिलाकर घर और बाहर दोनों क्षेत्रों में नारी को कार्य करना होगा । आज भारत की माँग है—अध्यात्म एवं वैदिक धर्म का पुनरुत्थान और भारतीय धर्म एवं संस्कृति का पुनर्स्थापन । जब घर-घर में पुनः वेदों की वाणी गूँज उठेगी, तब भारत फिर से अपने प्राचीन जगद्गुरु के गौरव को प्राप्त करेगा । हर क्षेत्र में, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, नैतिक, शैक्षणिक एवं नैष्ठिक पुनर्संगठन करते हुए आज की शिक्षित नारी जिस पथ का निर्माण करेगी, वह पथ बड़ा सुगम एवं आध्यात्मिक होगा । फिर से भारत में ऋषियों की परम्परा जाग्रत होगी फिर से नारी की मातृशक्ति रूप में पूजा होगी, और हम सम्पूर्ण विश्व को एक मौलिक प्रकाश एवं नवीन संदेश देंगे । नारी ही घर-घर में ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकती है जो भारतीय संस्कृति पर आधारित हो । वह आज सबला बनकर चेतना, प्रेरणा मुक्ति एवं आध्यात्मिकता की साकार मूर्ति के रूप में अवतरित हो रही है । नारी का सहयोग, परिवार में, समाज में आरम्भ होगा, एक ऐसा वातावरण बना देगा, जहाँ फिर से दधीचि, कर्ण और राम पैदा होंगे । नारी की सबल प्रेरणा पुरुष को नव-शक्ति से भर देगी, किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि उसे आत्म-बल, चरित्र-बल, तप-बल में महान् बनाना होगा ।

नारी विश्व की चेतना है, माया है, ममता है, मोह और मुक्ति है, किन्तु समय-समय पर उसका अवतरण भिन्न-भिन्न रूपों में होता है । आज हमें उन क्षत्राणियों की आवश्यकता है जो समय पड़ने पर समरांगण में उतर पड़ें, साथ ही यह न भूलना चाहिए कि उसे पारिवारिक इकाई से विस्तृत क्षेत्र की ओर बढ़ना है । गहनो से लदी रहने वाली भोग-विलासिनियों की आवश्यकता नहीं, आज तो सभी कर्मठ महिलाओं की आवश्यकता है जो पुरुष समाज एवं जाति तथा सम्पूर्ण देश को भारत की संस्कृति का पावन संदेश देकर देश में, घर-घर में फिर से प्रेम, त्याग, बलिदान, पवित्रता एवं माधुर्य का सन्देश दें । अफलातून नामक यूनानी दार्शनिक ने कहा था, नारी स्वर्ग और नरक दोनों का द्वार है, बस आज फिर से नारी जाति कटिबद्ध हो जाये और अपने बल से पृथ्वी पर ही स्वर्ग का अवतरण करे । टामस एक्वीनास नामक योरोपीय दार्शनिक ने कहा था कि विधाता ने अपना सारा कोमलत्व

नारी हृदय को दे दिया, काश पुरुष उस माता के हृदय को समझ पाता । बार-बार नारी को यह बोध कराना होगा कि वह अमित शक्ति का भण्डार है, प्यार एवं प्रेरणा का स्रोत है–आवश्यकता है कि यह सद्प्रयत्न में अपनी शक्ति लगाये और उसकी प्यार भरी स्वर्गीय आत्मा का मूल्यांकन किया जाय । उद्बोधन का स्वर सुनाने वाली, कर्तव्य बोध कराने वाली नारी से आज माँग की जाती है कि वह युग परिवर्तन के इस संक्रान्ति काल में अपना उत्तरदायित्व निभावे और संगठित होकर पुनः भारत की सतियों का गौरव प्राप्त करे ।

भारत अग्रणी था–अग्रणी रहेगा

भारत को इस दिशा में अभी बहुत कुछ करना है । जिस देश की संघमित्रा, आम्रपाली अपने सुविधा-साधनों को लात मारकर विश्व के कल्याण के लिए निकल पड़ी थीं और संसार भर में बौद्ध मठों की स्थापना एवं संगठन में असाधारण रूप से सफल हुई थीं, उसी देश में इन दिनों नारी का पिछड़ापन अभी भी बुरी तरह छाया हुआ है । देहाती क्षेत्रों में तो उसकी शिक्षा और सामाजिक स्थिति दयनीय स्तर की देखी जा सकती है । फिर भी समय का परिवर्तन इस पिछड़े क्षेत्र में भी चमत्कार प्रस्तुत करने के लिए कटिबद्ध हो रहा है और प्रगतिशीलता की नयी उमंगें उभर रही हैं ।

भारत में पंचायती राज स्थापित होने की भूमिका बनायी गयी है । साथ ही चुने हुए पंचों में नारी को तीस प्रतिशत अनुपात से चुने जाने की घोषणा भी हुई है । आशा की गयी है कि यह अनुपात प्रान्तीय और राष्ट्रीय स्तर पर भी ऊँची मान्यता प्राप्त करेगा । जन-जातियों के आरक्षण की तरह अन्य महत्त्वपूर्ण भागों और पदों पर भी उनका समुचित ध्यान रखा जाएगा । समय की इस माँग को किसी के द्वारा भी झुठलाया नहीं जा सकता ।

बात भले ही शासकीय क्षेत्रों में प्रवेश पाने से आरम्भ हो, पर वह प्रगति क्रम उतने छोटे क्षेत्र तक ही सीमित होकर नहीं रह सकता । यह प्रतीक मात्र है कि उनकी उपयोगिता समझी जाने लगी और समुचित सम्मान मिलने की प्रथा चल पड़ी । सुधारने-सम्भालने के लिए अगणित क्षेत्र खाली पड़े हैं । उन्हें सुव्यवस्थित करने की जिम्मेदारी नारी के कंधों पर अनायास ही बढ़ती चली आ रही है । सहकार का महत्त्व समझ में आने लगा है और यह अनुभव किया जाने लगा है कि टाँग पकड़ कर पीछे घसीटने का भौंडा खेल हर किसी के लिए हर दृष्टि से हानिकारक और कष्टकारक ही हो सकता है ।

अगले दिनों नारी स्वाभाविक रूप से अधिक समर्थ, कुशल और सुसंस्कृत बनने जा रही है । यह उसके नवजीवन का स्वर्णिम काल है । वर्षा ऋतु आए और हरियाली का महत्त्व दीख न पड़े यह हो ही नहीं सकता । बसन्त का अवतरण हो और पेड़-पादपों पर रंग-बिरंगे फूल न खिलें, यह हो ही नहीं सकता । प्रभात उगे और अंधकार एवं निस्तब्धता का माहौल बना रहे, यह अनहोनी होती दीख पड़े, इसकी आशंका किसके मन में रहेगी ? नारी-युग की अधिष्ठात्री, धरती की देवी–अपनी गरिमा सकोड़े, समेटे, दबाए, दबोचे बैठी रहें यह विपन्नता क्यों ? कैसे और कब तक बनी रह सकती है ? समर्थता के साथ-साथ समझदारी भी बढ़ती है और यह अदृश्य के मार्ग-दर्शन के अभ्युदय की दिशा में चल पड़े तो उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले चमत्कारों से वंचित ही बने रहना किस कारण रुका सह सकेगा ?

नारी के अनुदान कभी भी हलके स्तर के नहीं रहे । उसने धरित्री के, ऊर्जा के, वर्षा के, प्राण वायु के सदृश अपनी विभूति वर्षा से संसार के कण-कण को सरस, सुन्दर, समुन्नत बनाया है । करुणा, दया, सेवा उसका समर्पण और उसकी अनुकम्पा ही है, जो इस संसार को सुरम्य और सुसंस्कृत रखे रह पा रही है । अगले दिनों तो उसे अपनी महत्ता का परिचय और भी बढ़-चढ़ कर देना है । प्रतिकूलता को अनुकूलता में, पतन को उत्थान में और समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना अगले दिनों का अग्रगम्य अनुदान होगा ।

यह सब कुछ अनायास ही नहीं हो जाएगा । नियति चाहे कुछ भी क्यों न हो, पर उसके लिए पुरुषार्थ तो करना ही पड़ता है । बुद्ध, गाँधी जैसी देवात्माएँ विश्व-कल्याण के लिए अवतरित हुई थीं, पर यह लक्ष्य अनायास ही पूरा नहीं हो गया । उन्हें स्वयं तथा उनके सहयोगियों को निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने के लिए त्याग और साहस भरे प्रयत्न करने पड़े थे । हनुमान और अर्जुन महाप्रतापी बनने के लिए जन्मे थे । उन्हें दैवी-अनुग्रह भी विपुल परिमाणों में प्राप्त था, पर यह भुलाया नहीं जा सकता कि उन्हें अपने साथियों सहित असाधारण पुरुषार्थ का परिचय देना पड़ा था । अनायास तो सामने थाली में रखे भोजन को अपने मुँह में प्रवेश करते और पेट में पड़कर क्षुधा निवारण करते नहीं देखा गया । फिर युग अवतरण के लिए संभावित नारी पुनरुत्थान भी अपना उचित मूल्य माँगे, तो उसमें आश्चर्य ही क्या है ?

प्रत्यक्षतः तो शिक्षा स्वावलम्बन, परिवार पोषण, कला-कौशल जैसे क्षेत्र में नारी का सहयोग करने भर से काम चल रहा है । इन कामों में विचारवानों से लेकर सरकार तक का सहयोग मिल रहा है । वह नौकरियों में भी प्रवेश कर रही हैं । इन लक्ष्यों को प्रगति का नाम भी मिल रहा है । इतने पर भी एक नारी कठिनाई अभी भी आ रही है, जो मान्यताओं और प्रथाओं के रूप में अदृश्य होते हुए भी इतना अनर्थ कर रही है कि उनकी तुलना में दृश्यमान विकास कार्यों से होने वाले लाभों को नगण्य ही कहा जा सकता है ।

समग्र परिवर्तन के लिए नेतृत्व भी बदले

नर और नारी की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं । नर में पुरुषार्थ, पराक्रम, श्रम, साहस, शौर्य और कठोरता का अंश अधिक है । नारी में स्नेह, करुणा, सौजन्य, चरित्र दूरदर्शिता एवं सृजनात्मकता का बाहुल्य है, इसलिए नर को अग्नि और नारी को सोम कहा गया है । इन दोनों ही तत्वों की अपनी-अपनी महिमा और महत्ता है । दोनों का ही अपने-अपने समय पर अपने-अपने स्थान में इन विशेषताओं की उपयोगिता है । दोनों के समन्वय से ही एक समग्र पूर्णता विकसित होती है ।

आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन में चिरकाल में पुरुष का वर्चस्व रहा है । यह सब कार्य उसे ही सम्भालने पड़े हैं तो इन क्षेत्रों में जहाँ पुरुषार्थ लगा है, प्रगति हुई है वहाँ कठोरता भी जुड़ी रही है । यह कठोरता सत्ता के मद और प्रलोभनों के आकर्षण में बढ़ते-बढ़ते निष्ठुरता तक जा पहुँची । इतिहास बताता है कि एकाकी पुरुष की मदोन्मत्तता ने हर क्षेत्र में निष्ठुरता की मात्रा बढ़ा दी और कहीं-कहीं तो इतनी बढ़ गई है कि उसे दुष्टता तक कहने में अत्युक्ति नहीं समझी जानी चाहिए ।

सामाजिक क्षेत्र में जो प्रथा-परम्पराएँ प्रचलित हैं उनका आविर्भाव-आविष्कार पुरुष ने किया । बुद्धि कितनी ही दौड़ी हो, व्यवस्था कितनी भी बनी हो, पर उसमें सहृदयता, करुणा और सौजन्य का उतना अंश न रखा जा सका जितना कि अभीष्ट एवं आवश्यक था । जाति के नाम पर ऊँच-नीच की व्यवस्था में निष्ठुरता और दुष्टता का ही प्रत्यक्ष समन्वय है । समर्थ वर्ग द्वारा असमर्थ वर्ग को पैरों तले दबाये रहने, उनका शोषण करने के अतिरिक्त और इस प्रथा के पीछे क्या कारण हो सकता था । सभी मनुष्य ईश्वर ने बनाये हैं और सभी का रक्त-माँस एकसा है । गुण-कर्म स्वभाव में कोई ऊँचा-नीचा भी हो सकता है, पर अमुक वंश में पैदा होने के कारण कोई ऊँचा माना जाय और कोई नीचा । इस मान्यता और व्यवस्था में न न्याय है और न सद्भावना । यह विशुद्ध रूप से वर्ग शोषण है, जिसे धर्म के नाम पर मुद्दतों से चलाये रखा गया ।

ऐसी ही अनीति नारी के साथ बरती गई । मानव पीढ़ियों का सृजन करने की अतिरिक्त विशेषता के कारण उसे अतिरिक्त प्रतिष्ठा और सुविधा मिलनी चाहिए थी ,पर हुआ उल्टा-प्रजनन के, शिशु पोषण के उत्तरदायित्वों के कारण वह शारीरिक बलिष्ठता और अर्थोत्पादन में पिछड़ गई तो उसकी इस विवशता का अनुचित लाभ उठाया गया । नारी के लिए अलग कानून पुरुष के लिए अलग कानून यह तो खरीदने और बेचने के बाट-तराजू अलग-अलग रखने जैसी बेईमानी हुई । पतिव्रत धर्म की गरिमा गाई गई थी तो ठीक उतना ही महत्त्व पत्नीव्रत को मिलना चाहिए था । विधवा विवाह की तरह विधुर विवाह पर भी प्रतिबन्ध रहता । पर्दा घूँघट स्त्रियों की तरह पुरुषों को भी करना पड़ता । बहु पत्नी प्रथा की तरह बहु पति प्रथा को भी मान्यता मिलनी चाहिए थी, पर ऐसा हुआ नहीं । एक वर्ग को छूट, दूसरे पर प्रतिबन्ध यह सरासर अनीति है । जिसे नर ने अपने हाथ में समाज व्यवस्था होने के कारण अनुचित लाभ उठाने के लिए-नारी का शोषण करने के लिए बनाया ।

सामाजिक कुरीतियों का तो कहना ही क्या? अपने समाज में खर्चीले विवाह देश की नैतिक और आर्थिक कमर तोड़ दे रहे हैं और परिवारों को सुलगती आगों में भुनते रहने के लिए विवश कर रहे हैं । बाल-विवाह, वृद्ध विवाह, मृतक भोज, पशुबलि, माँसाहार, नशेबाजी, वेश्या वृत्ति आदि जाने कितनी कुरीतियाँ समाज को नरक बनाये हुए हैं ।

आर्थिक क्षेत्र में बेईमानी, भ्रष्टाचार, रिश्वत का बोल-बाला है । टैक्सों की चोरी, तस्करी, जुआ, सट्टा, लाटरी अब एक प्रकार से व्यवसाय ही बन गये हैं । राजनैतिक क्षेत्र की स्थिति और भी भयानक है । पिछले सामन्ती युग में आये दिन तुच्छ स्वार्थों के कारण चढ़ाई, लड़ाई होती रहती थी । खुली लूट, कत्लेआम का बोलबाला रहता था । निरीह प्रजा में से स्वस्थ नर-नारी भी पकड़ लिए जाते थे और उन्हें दास-दासी बनाकर पशुओं की तरह सरे बाजार खरीदा-बेचा जाता था । अब वैज्ञानिक प्रगति ने युद्धों को और भी भयावह बल दिया है । पिछले दिनों दो महायुद्ध हो चुके हैं । तीसरे सर्वनाशी प्रलयङ्कर युद्ध की और भी तैयारी है । इन युद्धों के मूल में एक समूह एक देश का दूसरे देश के हितों का अपहरण ही होता है । यदि अनीति और दुर्भावना न बरती जाय तो इस संसार में परस्पर स्नेह-सौहार्द्र का ही वातावरण दीखे । क्यों शोषण पनपे और क्यों युद्ध की आवश्यकता पड़े ?

वैयक्तिक क्षेत्र में अनाचार, अपराध, छल, विश्वास-घात, व्यसन और शोषण की निष्ठुरता और दुष्टता की मात्रा इतनी बढ़ गई है कि मनुष्य कलेवर में खूनी भेड़िये ही विचरण करते दिखते हैं । धर्म और अध्यात्म के नाम पर जाल-जंजाल ही रचकर खड़े कर दिये गए हैं । उनका मूल तत्व तो लगता है इस संसार से विदा ही हो गया है ।

ये विपन्न परिस्थितियाँ उत्पन्न करने का दोष पुरुष का है, क्योंकि उसका एकछत्र अधिकार इन क्षेत्रों पर रहता चला आया है । उसकी स्वाभाविक कठोरता का उपयोग उत्पादन के वृद्धि और न्याय की रक्षा में होना चाहिए था । उसकी विशेषताएँ इसी के उपयुक्त थीं । प्रत्येक क्षेत्र की नीति-निर्धारण करने की व्यवस्था बनाने का काम नारी को सौंपा जाना चाहिए था, क्योंकि सौजन्य और सद्भावना का, करुणा और मृदुलता की मात्रा उसी में अधिक है । नारी जो कुछ सोचेगी जो कुछ करेगी, निश्चित रूप से, उसमें स्नेह और सहृदयता का ही बाहुल्य रहेगा । यदि

पिछले दिनों नारी का वर्चस्व व नेतृत्व सामाजिक, राजनैतिक,. आर्थिक बौद्धिक क्षेत्रों पर रहा होता तो निस्सन्देह न्याय और नीति का ही बाहुल्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होता । जो भी रीति निर्धारित की जाती, जो भी व्यवस्था बनती उसमें सृजन और विकास की ही दृष्टि रहती । अनीति बरतना तो दुष्टता के लिए ही सम्भव है । नेतृत्व विज्ञान के ज्ञाता जानते हैं कि नारी में क्रूरता और निष्ठुरता की मात्रा अति स्वल्प होती है, उसमें स्वभावतः करुणा और ममता के तत्वों का ही बाहुल्य रहता है । यदि उसे नेतृत्व का अवसर मिला होता तो उसके द्वारा वही प्रक्रिया और परम्परा की जाती जिसमें सद्भाव और सौजन्य की कमी दिखाई न पड़ती ।

समय आ गया कि भूल को सुधारा जाय और नेतृत्व बदला जाय । सारा समाज घायलों से भरे अस्पताल जैसा बना पड़ा है । उसमें सहृदय नर्सों की आवश्यकता है जो चीत्कार करते बिल-बिलाते कष्ट पीड़ितों के सिर पर सहानुभूति और स्नेह भरा हाथ रखकर उसे सांत्वना दे सकें । पुरुष के नेतृत्व का लम्बा इतिहास-विकृतियों और व्यवस्था बना सकने में एक प्रकार से वह असफल सिद्ध हुआ है । स्थिति को बदलने के लिए नेतृत्व बदला जाना चाहिए । कमान दूसरे हाथों में सौंपी जानी चाहिए । शासन-व्यवस्था में असफल अफसरों को बदल दिया जाता है और उसके स्थान पर सुयोग्य अधिकारी भेजे जाते हैं । पुलिस को रिटायर होना चाहिए । उसका एक काल बहुत लम्बा हो गया, अब दूसरे पक्ष को अवसर देना चाहिए । नारी को आगे आने का अवसर देने के लिए उसे बहादुरी और भलमनसाहत के साथ पीछे हट जाना चाहिए । सत्ता और व्यवस्था नारी के हाथ सौंपनी चाहिए । वर्तमान विकृतियों, विपन्नताओं और अव्यवस्थाओं का अन्त इसके बिना हो नहीं सकेगा ।

युग परिवर्तन के लिए नेतृत्व का परिवर्तन भी आवश्यक है । नर का नेतृत्व परख लिया गया । उसे असफल ही घोषित किया जाएगा, क्योंकि हर क्षेत्र में आज जो अव्यवस्था फैली हुई है उसमें उसका नेतृत्व ही उत्तरदायी है । प्रजातन्त्री शासन की व्यवस्था यह है कि जिस विकास में कोई बड़ी अव्यवस्था दिखाई दे, उसके मन्त्री को इस्तीफा देकर अलग होना पड़ता है और उस विग्रह का दोष अपनी कमी के रूप में स्वीकार करना पड़ता है । आज की व्यापक अव्यवस्था के लिए नर का नेतृत्व जिम्मेदार है । उसे पीछे हटना चाहिए और नारी को सहृदयता और स्नेहसिक्तता के आधार पर नये सिरे से नीति-निर्धारण करने और व्यवस्था विधान बनाने का अवसर देना चाहिए । विश्व-शक्ति की दृष्टि से यह परिवर्तन नितान्त आवश्यक है ।



महिला जागरण—प्रयोजन एवं प्रयास

न्याय नारी को भी मिलना चाहिए

नारी के अधिकारों की चर्चा जब चलती है तो यह तर्क उठाया जाता है कि उसका अधिक उपयुक्त कार्यक्षेत्र तो घर ही है। नारी को घर-परिवार का उत्तरदायित्व विशेष रूप से सँभालना पड़ता है, यह सही है, पर यह गलत है कि उसे उतने ही क्षेत्र में सीमित रहना चाहिए और घर से बाहर के क्षेत्र में कोई रुचि नहीं लेनी चाहिए। घर से बाहर एक कदम भी नहीं रखना चाहिए। ऐसा प्रतिबन्ध तो ठीक उसी प्रकार का होगा, जिसके आधार पर पुरुष को घर में प्रवेश करने से रोका जाय। जब तक घर में स्त्री का और बाहर पुरुष का कार्य-क्षेत्र है और स्त्री को घर तक ही सीमित रहने के लिए कहा जा रहा है, तो न्याय की माँग यह भी है कि पुरुष को भी उसी प्रकार के बन्धन स्वीकार करने चाहिए। उसे घर में प्रवेश नहीं करना चाहिए, दुकान, दफ्तर या खेत में ही गुजारा करते हुए सन्तोष करना चाहिए। पुरुष यदि इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते तो अकेली स्त्री को ही उस सीमा बन्धन में बाँधना किस तर्क एवं न्याय के आधार पर उचित ठहराया जा सकता है?

विशेष कार्य तो हर किसी के जिम्मे होता है, पर वह उतने तक ही सीमित रहने के लिए विवश नहीं किया जाता। पण्डित, लेखक, धोबी, मेहतर, नाई, मोची, चित्रकार, सैनिक, अध्यापक, अफसर, किसान, माली मजदूर, व्यापारी आदि अपने-अपने अलग-अलग प्रकार के काम करते हैं, पर उन पर यह प्रतिबन्ध नहीं है कि वे उन निर्धारित कार्यों के अतिरिक्त और कुछ कर ही नहीं सकते। जो विशेष कार्य वे करते हैं, उन्हें सदा उतने तक ही सीमित रहने, अन्य कुछ भी न करने के लिए वे प्रतिबन्धित नहीं हैं। ड्यूटी पूरी करने के उपरान्त वे कुछ भी करते हैं। आवश्यकता एवं इच्छानुरूप अपना काम बदल भी लेते हैं।

इसी प्रकार स्त्रियों पर भी यह बन्धन नहीं होना चाहिए कि उन्हें घर के पिंजड़े में ही कैद रहना चाहिए। मुर्गी और कबूतर पालने वाले उनके लिए दरबा बनाते तो हैं, पर यह बन्धन नहीं लगाते कि निरन्तर उन्हें उसी में बन्द रहना पड़ेगा। खुली हवा में घूमने का भी उन्हें अवसर देते हैं और विश्वास करते हैं कि वे अपने दरबे को, घर को पहचानते हैं, इसलिए उसे छोड़कर सदा के लिए कहीं नहीं चले जाएँगे। अपने घर की स्त्रियों पर यदि मुर्गी या कबूतर जितना विश्वास किया जा सके तो न्याय की रक्षा हो सकती है। आखिर पालतू बिल्ली चौबीसों घन्टे कोठे में ही तो कैद नहीं रहती, वह भी मन बहलाने के लिए कहीं इधर-उधर जाती और लौट आती है। क्या इतनी सुविधा स्त्रियों को नहीं मिल सकती?

प्राणी को पिंजड़े में कैद करने पर उसकी प्रकृति-प्रदत्त स्फूर्ति क्रमशः नष्ट होती चली जाती है। इसका प्रत्यक्ष परिचय पालतू और वन्य पशुओं को सामने रख कर, उनका तुलनात्मक अध्ययन करके जाना जा सकता है। पिंजड़े में पलने वाले और उन्मुक्त आकाश में उड़ने वाले समान आयु और स्वास्थ्य के तोतों को, किन्हीं पक्षी विशेषज्ञों के सुपुर्द करके पूछा जाय कि उनके शारीरिक, मानसिक स्थिति में क्या कुछ अन्तर है। वे बतायेंगे कि पालतू का शरीर जीर्ण हो गया और मन टूट गया है। वह हारा, थका और निराश दिखाई पड़ता है। व्यापक क्षेत्र में पुरुषार्थ करने से जंगली तोते की नस-नाड़ियों में समर्थता बनी हुई है और आहार एवं सुरक्षा की समस्या पल-पल पर नये ढंग से हल करने के अभ्यास ने उसकी चित्त-चेतना को प्रखर रखा है। उत्तरदायित्व वहन करने में कुछ असुविधा तो होती है, पर उसके बदले समान चेतना की अभिवृद्धि का वरदान मिलता है।

बिना चिन्ता के गुजर कर लेना स्त्रियों का सौभाग्य बताया जाता है। उन्हें न तो उपार्जन का परिश्रम करना पड़ता है और न समस्याओं के समाधान में माथापच्ची। इस दृष्टि से वे पुरुष की तुलना में अधिक सुखी कही जाती हैं, पर वस्तुस्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। तथाकथित निश्चिन्तता मानव जीवधारी की मूल प्रकृति के सर्वथा विपरीत है। यदि ऐसा न होता तो कैदखाने में पूर्ण निश्चिन्तता का अवसर होने के कारण कोई कैदी वहाँ से छुटकारा पाने का इच्छुक न होता। पिंजड़े में बन्द रहने वाले तोते, मैना आदि पक्षी दरवाजा खोल देने पर उसी में बैठे रहते। चिड़ियाघरों में रहने वाले पशु-पक्षी, आहार और सुरक्षा की दृष्टि से पूर्ण निश्चिन्त होते हैं। उन्हें अपनी आवश्यकताएँ जुटाने के लिए कोई दौड़-धूप नहीं करनी पड़ती, फिर भी उन्हें मुक्त करने का अवसर देकर देखा जा सकता है कि वे वहाँ रहना पसन्द करते हैं या दरवाजा खुलते ही ताबड़-तोड़ भागते हैं। इस छुटकारे में उनके लिए खतरा ही खतरा है। असंख्य चिन्ताएँ और समस्याएँ उनके सामने खड़ी होंगी, फिर भी 'स्वतन्त्रता' अपने आप में इतनी बड़ी चीज है जिसके लिए कितना ही बड़ा खतरा उठाया जा सकता है। इस लक्ष्य को पशु-पक्षी ही जानते हों, मनुष्य की आत्मा इस तथ्य से अपरिचित हो, ऐसी बात नहीं है। सिखाया, सधाया और कैद करके रखा गया सिंह सरकस वालों के लिए लाभदायक हो सकता है, पर यदि उस प्राणी से पूछा जाय कि आपको इस निश्चिन्त और सुविधा सम्पन्न स्थिति में, वन प्रदेश में

रहकर हर घड़ी पेट पालने की झंझटों में उलझे जीवन की तुलना में अच्छा लगता है या बुरा? तो उसका उत्तर कठघरा खोलकर पूछा जा सकता है। वह मूक प्राणी अपनी आन्तरिक अभिलाषा का परिचय पिंजड़े से निकल कर कहीं भी भाग खड़ा होने के रूप में देगा।

स्वतन्त्रता की आकांक्षा ईश्वर प्रदत्त है। यह आत्मा की भूख है। इसके लिए बड़े से बड़े कष्ट सहे जा सकते हैं। दास-दासी, राजा-रहीसों के यहाँ पलते, अच्छा खाते और अच्छा पहनते थे, अच्छे मकान में रहते थे। विचारशील लोगों ने दास प्रथा के अन्त का आन्दोलन चलाया और तब चैन लिया जब वह समाप्त हो गई। स्वतन्त्र जीवन जीने वाले असंख्य दीन-दरिद्रों को जिस स्तर का जीवन-यापन करना पड़ता है उसकी तुलना में वे दास-दासी सुखी थे, फिर मोटी दृष्टि से तो यह स्वतन्त्रता उनके लिए हानिकारक ही हुई। इसी तर्क के अनुसार विदेशी पराधीनता को भी कई सुविधाओं की दृष्टि से उपलब्ध स्वाधीनता की तुलना में अच्छा ठहराया जा सकता है। उस जमाने में हमें बाह्य आक्रमणों से बचने के लिए सुरक्षा समस्या पर ध्यान नहीं देना पड़ता था, अँग्रेज स्वयं उसकी जिम्मेदारी सँभालते थे। ऐसी ही और बातें हो सकती हैं। स्वतन्त्रता आन्दोलन के नेता पराधीनता में रहने के लाभों और स्वाधीनता के कठिन उत्तरदायित्वों को भी जानते थे फिर भी उन्होंने प्राण हथेली पर रखकर स्वतन्त्रता संग्राम लड़ा और सारे देश को उसके लिए बड़े से बड़ा त्याग-बलिदान करने का आह्वान किया। जिस तर्क के अनुसार स्त्रियों को पराधीनता में सुखी रहने की बात कही जाती है, उसी तर्क का प्रयोग करने पर स्वतन्त्रता आन्दोलन और उसके लिए किया गया त्याग-बलिदान भी निरर्थक ठहराया जा सकता है। इतना ही नहीं छोटे देशों को बड़े देशों की पराधीनता स्वेच्छापूर्वक स्वीकार करने के लिए कहा जा सकता है। हर कोई जानता है कि इस प्रकार की वकालत चाहे कितनी ही तर्कों और तथ्यों सहित प्रस्तुत की जाय, सदा निन्दनीय ही ठहराई जाएगी और उस प्रतिपादनकर्ता को निहित स्वार्थों का एजेन्ट कहा जाएगा। स्त्रियों को पुरुषों की पराधीनता में ही रहना चाहिए। उन्हें अपने घर के पिंजड़े से बाहर नहीं झाँकना चाहिए, ऐसा निर्देश करने वाले कोई भी क्यों न हों, मानवीय अन्तरात्मा की मूलभूत आकांक्षा एवं प्रकृति से अपरिचित ही ठहराये जाएँगे। शास्त्रों की, सन्तों की परम्पराओं की दुहाई कितना ही गला फाड़-फाड़ कर क्यों न दी जाती रहे? तथ्य अपने स्थान पर अटल बने रहेंगे। दलीलें उन्हें झुठला नहीं सकतीं।

नारी दासी और पुरुष उसका स्वामी, यह बात उसी स्थिति में सही हो सकती थी, जब नारी मिट्टी या धातु जैसे जड़ पदार्थों की बनी इच्छा, आकांक्षा और चेतना से रहित रही होती। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि वह पशु स्तर की होती, जिसे मनुष्यों द्वारा बाँधा, बेचा और दुहा-जोता जाता है। जैसा कि भूतकाल में उसे भोग्या, रमणी, कामिनी आदि के रूप में माना जाता रहा है, यदि उतनी-सी ही बात हो तो योरोप की पुरानी मान्यता के अनुसार यह कहा जा सकता है कि "स्त्रियों में आत्मा नहीं होती। ये पुरुष के उपभोग के लिए बनी हैं, उन्हें स्वतन्त्र इच्छा रखने का अधिकार नहीं है।"

हम फल, शाक, चीनी, साबुन, कपड़े आदि का मन-चाहा उपभोग करते हैं, क्योंकि ये भोग्य हैं। स्त्री यदि भोग्या है, उसका जन्म रसोईदारिन, चौकीदारिन और वासना तृप्ति का साधन बनाने के लिए हुआ हो तो वह पुरुष की क्रीतदासी कहला सकती है। उसके स्वामियों को उसे खरीदने, बेचने, ताने देने और पीटते-पीटते मार डालने अथवा मनचाहा उपयोग करने की छूट मिल सकती है। उसके मालिक जिस भी स्थिति में रखना चाहें बिना उफ किए उसी को शिरोधार्य करने के लिए कहा जा सकता है, किन्तु स्थिति इससे भिन्न है, उसे भोग्या या दासी से ऊँचा माना जाय। प्राणधारी का, मनुष्य का दर्जा दिया जाय तो फिर यह सोचना पड़ेगा कि उसका भी अपना चेतनात्मक अस्तित्व है और उसके साथ जुड़ी हुई स्वतन्त्रता की आकांक्षा के लिए भी कोई स्थान है।

मनुष्य के भीतर बैठा हुआ असुर समाज में दुर्बलों का शोषण करने के लिए लालायित रहा है और उसने जब अवसर पाया है अपनी घात चलाई है। जो पशु उसकी पकड़ में आ गये अब उनके प्राण बचना कठिन दीखता है। समर्थों ने दुर्बलों को दास बनाया और उनसे लगभग पशुओं जैसा व्यवहार किया। नारी की प्रजनन विशेषता के कारण उसे शारीरिक दृष्टि से दुर्बल पाया और उसे भी शोषण का एक सामान बना लिया। यह प्रवृत्ति भाग्यवाद, पूँजीवाद, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, अधि-नायकवाद, सामन्तवाद, पोरोहितवाद आदि के रूप में अभी भी प्रकट और प्रच्छन्न रूप से ढंग और कलेवर बदलती सिर उठाती देखी जा सकती है। तर्कों के आधार पर इन सभी अवांछनीयताओं को उचित एवं आवश्यक सिद्ध करने का भी प्रयत्न होता रहता है। समर्थ दुर्बलों का शोषण करें, इसलिए 'उपयोगितावाद' का एक स्वतन्त्र दर्शन है। 'सरवाइल ऑफ दी फिटेस्ट' की उक्ति को समर्थ से लेकर दुर्बल तक अपने-अपने ढंग से चरितार्थ करते दिखाई पड़ते हैं। सत्ताधारी, दुर्बलों को चूसते हैं। दुर्बल व्यक्ति घर की नारियों को पददलित करने में नहीं चूकते। वे नारियाँ भी जब सास बनती हैं तो अपनी पुत्र-वधुओं के साथ उसी तरह का व्यवहार करती हैं। वे पुत्र भी अपने बच्चों को मारने-पीटने में कोताही नहीं करते। यह कुचक्र असुरता की प्रतिच्छाया में ही चलता है। मानवता को पैरों तले कुचलकर ही यह दुष्प्रवृत्तियाँ जीवित रहती और फलती-फूलती हैं। समूचे नारी समाज को आज इसी आसुरी शोषण का शिकार रहना पड़ रहा

है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण है नारी को घर के क्षेत्र में, पुरुष के अधिनायकत्व में मौत के दिन पूरे करना।

न्याय, औचित्य और स्वतन्त्रता का समर्थन करने वाले, मानवीय आदर्श को मान्यता देने वाले, उदात्त लोगों की पंक्ति में हमें खड़ा होना चाहिए और इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि नारी घर के उत्तरदायित्व तो सँभाले, पर उतने ही क्षेत्र में कैद न रहे। उसे अनुभव बढ़ाने का, समाज का स्वरूप समझने का अवसर मिलना चाहिए। शिक्षा प्राप्त करने के लिए, बाजार से सौदा खरीदने के लिए, अन्य आवश्यक काम निपटाने के लिए, घर के पुरुषों का हाथ बँटाने के लिए, लोकमंगल के प्रयोजनों के लिए घर से बाहर जाने का अवसर देना चाहिए। इससे नारी की मूर्छित आत्मा को जगाने का पथ प्रशस्त होगा और समूची मानव जाति को इस प्रगतिशील कदम का लाभ मिलेगा।

नारी उत्कर्ष के साथ समाज का भी उत्कर्ष जुड़ा है और उसकी माँग पूरी तरह न्यायसंगत है फिर भी उनकी पूर्ति हो नहीं पा रही है। इसका कारण है कि आज की बिगड़ी परिस्थितियों में न्याय पाना भी कठिन है। गरीब लोगों को सामाजिक न्याय पाने में प्रायः असफल रहना पड़ता है। वकील जुटाने, सबूत इकट्ठा करने, गवाहों का सहयोग पाने जितने साधन उसके पास नहीं होते। फलतः अर्जी सर्वथा सही होने पर भी प्रबल प्रतिपक्षी की तुलना में उन्हें बहुधा असफल ही रहना पड़ता है, ऐसी ही कुछ दुर्भाग्य भरी विडम्बना का मखौल नारी के साथ भी चलता रहा है। उसकी अर्जी सीधी-सादी है। उसे यदि भगवान् ने मनुष्य बनाया है तो मनुष्यों द्वारा उसके मूलभूत मानवीय अधिकारों का अपहरण नहीं किया जाना चाहिए। मनुष्य के भौतिक अधिकारों में उसे स्वतन्त्रतापूर्वक जीने, सोचने, कमाने, रहने, बोलने का हक दिया गया है। इससे अधिक उसे कुछ नहीं चाहिए। या तो स्पष्टतः यह कह दिया जाना चाहिए कि वह मनुष्य वर्ग में नहीं गिनी जा सकती, वह पशु है, इसलिए पशुओं की तरह ही उसे बाधित होकर पराश्रित जीवन-यापन करना पड़ेगा। इतना फैसला हो जाय तो भी एक बात तो साफ हो । एक ओर उसे मनुष्य ही नहीं उससे भी ऊपर उठाकर देवी तक कहा जाता है और दूसरी तरफ मानवीय अधिकारों से सर्वथा वंचित पुरुष की क्रीतदासी-कठपुतली की तरह रखने वाले प्रतिबंध जड़ दिये जाते हैं। असमंजस और असन्तोष इस दोमुँही तथा दोगली नीति से ही उत्पन्न होता है।

नारी न्याय के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहती। पर उसे वह उन छोटी अदालतों से मिल सका है, जो यदि चाहती तो अब तक कब का नारी उत्पीड़न जैसी कितनी ही समस्याओं का समाधान निकल आया होता। समाज के मूर्धन्य कर्णधारों का यह कर्त्तव्य था कि वे अपनी दूरदृष्टि से समय की विकृतियों को देखते और उनकी हानियों का ध्यान रखते हुए ऐसा वातावरण बनाते जिनमें इन अवांछनीयताओं का टिक सकना असम्भव हो जाता। साहित्यकार, कवि, चित्रकार, मूर्तिकार, गायक, अभिनेता, धर्मोपदेशक आदि जनमानस को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। यदि उन्होंने नारी उत्पीड़न की अवांछनीयता को समझा होता तो उसके स्तर और अधिकारों के हनन के विरुद्ध वातावरण तैयार करते पर हुआ कुछ इससे उल्टा ही है। उनमें से अधिकांश ने अपना लाभ उसी में समझा कि नारी को रमणी, कामिनी, भोग्या के रूप में निगल जाने के लिए आतुर निम्नस्तरीय कामुकता को भड़काने वाले साधन प्रस्तुत किये जाएँ और प्रस्तुतीकरण के उपलक्ष में सहज ही अधिकाधिक धन कमाया जा सके, सस्ती वाहवाही लूटी जा सके ऐसा करना वेश्याओं और दूसरों को शोभा दे सकता था, कला के उपासकों को नहीं। नारी को दबोचने के साथ-साथ कला की स्वर्गीय गरिमा को भी नरक की कीचड़ में गाड़ दिया गया। इससे हिंसकों के दाँत और पंजे तेज हुए और शिकार के त्राण की रही बची सम्भावना भी धूमिल हो गई।

कलाकार की अदालत ने नारी को हरा दिया। उस दरबार ने उसकी अर्जी खारिज कर दी और न्याय दिलाने से इन्कार कर दिया। दूसरी अदालत उन सामर्थ्यवानों की है जिन्हें धनवान, प्रतिभावान, राजनेता एवं समाज पर छाई हुई मूर्धन्य विभूतियाँ कह सकते हैं। यह वर्ग कलाकारों से भी ऊँचे स्तर का होता है। इसके पास वे साधन रहते हैं जिनके सहारे कुत्साओं को रोक सकना और लोकदृष्टि को उलटा जाना सम्भव हो सकता है। इस वर्ग ने भी यह कहकर अर्जी खारिज कर दी कि अधिक उत्तेजक और अधिक सस्ता मनोरंजन उन्हें भी तो नारी को अश्लील कलेवर से ही मिलता है। लोकमानस उलटे जाने पर तो उनका अपना विनोद ही छिन जाएगा, वे भी अपने पैरों में कुल्हाड़ी न मारने की बात सोचकर पीछे हट गये।

घड़ियाल के आँसू तो हर क्षेत्र में बहाये गए। सहानुभूति में लेखन, भाषण और प्रस्तावों के पुलन्दे आकाश कुसुम की तरह बरसाये जाते रहे, पर उनसे स्थिति के बदलने में कोई सहयोग न मिल सका। आत्मप्रवंचना की घटाएँ पूरब से उठती रहीं और पश्चिम में अस्त होती गईं। पल्ले कुछ नहीं पड़ा। अब अर्जी तीसरी बड़ी अदालत में प्रस्तुत है। भयभीत और कातर नारी ने लोकशक्ति के सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया है। युग चेतना द्वारा मानवीय संविधान की रक्षा का भार उसे सौंपा गया है, तो उस उत्तरदायित्व को निभाना भी उसी को चाहिए। न्याय पाने की अन्तिम आशा जीवन्त लोकशक्ति पर, जाग्रत लोकमानस पर केन्द्रित हुई है। यदि यहाँ से भी इन्कार कर दिया गया, तो फिर यही सोचना पड़ेगा कि न्याय, विवेक, औचित्य आदि आदर्शवादी मान्यताएँ भी दूसरे मनोरंजनों की ही तरह तथाकथित दार्शनिकों के लिए दिमागी विलासिता भर की वस्तुएँ हैं। उनका उपयोग कल्पनालोक तक सीमित है, व्यवहार में

तो मत्स्य न्याय ही चलता है। जंगल के कानून में जिसकी लाठी उसकी भैंस को मान्यता मिली हुई है। नर-पशुओं की दुनिया में भी वही चलेगा।

चूँकि अभी आत्मा और परमात्मा की चर्चा होती है और धर्म, अध्यात्म की भी दुहाई दी जाती है, इसलिए अपेक्षा यह की गई है कि अभी जीवन का, प्रकाश का, औचित्य का सर्वथा मरण नहीं हुआ है। लोक-शक्ति में कहीं-कहीं ऐसे तत्व हो सकते हैं जो अनीति को निरस्त करेंगे और नीति को समर्थन देने के लिए उभारेंगे और शोषितों का पक्ष समर्थन करके न्याय को मान्यता दिलाने के लिए कुछ कारगर योगदान देंगे। छोटी अदालतों से निराश होकर नारी ने सुप्रीम कोर्ट में- विवेकवान, भावनाशील, न्यायप्रिय और पौरुष का उत्तरदायित्व समझने वाले लोगों के दरबार में अपील की है । विश्व नारी का चीत्कार भावना के कानों से कोई भी सुन सकता है। जो सज्जन मातृसत्ता के प्रति आस्थावान हों, वे आवाज को सुनें और न्याय के समर्थन में मौखिक नहीं व्यावहारिक रूप से कुछ कर दिखाने के लिए कदम बढ़ायें । आशा का केन्द्र एकमात्र लोकशक्ति ही बच रही है। यदि यहाँ से भी उसे उपेक्षा मिली तो यही समझा जायगा कि नारी की आत्मा का मरण निकट है और उसके साथ ही समूची मानवता का अन्त भी सुनिश्चित है।

यह प्रश्न उठ सकता है कि जनसाधारण की सामर्थ्य कम होती है, उतने से क्या हो सकता है? किन्तु यह न भूलें कि लोक-मानस एक अति विशालकाय और अति समर्थ महादैत्य है। उसकी तुलना पौराणिक कुम्भकर्ण से की जा सकती है। छह महीने सोने और एक दिन जागने की उसकी बुरी आदत का मनोरंजक वर्णन मिलता है। वह दैत्य जब सोता था तो इतनी गहरी नींद में सोता था कि छाती पर हाथियों का झुण्ड घुमाते रहने पर भी करवट नहीं बदलता था पर जिस दिन जागता था तो पर्वत जैसा आहार उदरस्थ करने से लेकर अन्यान्य अनेकों आवश्यक कार्य चुटकी बजाते पूरे करके रख देता था। निश्चित रूप से ऐसी विशेषताओं से सम्पन्न महादैत्य केवल जन-मानस ही हो सकता है। वह जिधर भी करवट बदलता है, उधर ही कुछ से कुछ बना देने और कुछ भी बिगाड़ देने का चमत्कार प्रस्तुत करता है। संसार की महान क्रान्तियों के इतिहास के पीछे लोकशक्ति ही काम करती दिखाई पड़ेगी । नारी जागरण की समस्या का हल व्यक्ति विशेष द्वारा सम्भव नहीं हो सकता। कोई व्यक्ति कितना ही धनी, विद्वान, सत्ताधारी अथवा प्रतिभा सम्पन्न क्यों न हो, निजी साधनों से इतने सुविस्तृत क्षेत्र में नगण्य-सी ही हलचल उत्पन्न कर सकता है। कुछ बड़ा कार्य करना हो तो लोक-शक्ति का ही सहारा लेना होगा।

जन-मानस को जगाने के लिए पहला काम यह है कि उसे स्थिति की गम्भीरता और अभियान की महत्ता समझायी जाय। हमें लोकमानस को इतना गरम करना चाहिए कि नारी की वर्तमान स्थिति पर विचार करने के लिए, प्रत्येक मनुष्य को नये सिरे से विचार करने के लिए बाध्य होना पड़े। पतन ने कितनी क्षति पहुँचाई और उत्थान से उसकी कितनी भरपाई हो सकती है, उसका विचार प्रत्येक विवेकवान मस्तिष्क में उठना चाहिए। अनादिकाल से वरिष्ठता प्राप्त नारी को किन परिस्थितियों और किन मनःस्थितियों ने दयनीय दुर्दशा में ला ढकेला, इस दुःखदायी इतिहास को घटनाक्रम को कलेजे पर पत्थर बाँधकर पढ़ा जाना चाहिए। अवांछनीयताओं को मान्यता देने की सामाजिक मूढ़ता पर प्रचण्ड रोष जागना चाहिए। इतना किये बिना नारी जागरण के लिए वे साधन बन ही नहीं पड़ेंगे, वे अभियान खड़े ही न हो सकेंगे जो इतने बड़े प्रयोजन को पूरा करने के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं।

नारी समस्या के विभिन्न पहलुओं पर जन-साधारण का पूरा-पूरा ध्यान केन्द्रित हो और हर व्यक्ति को प्रस्तुत अवांछनीयता की हानि समझने का अवसर मिले, तभी वह आक्रोश जगाया जा सकेगा। जो बड़े परिवर्तनों की भूमिका प्रस्तुत करता है- उसके लिए आवश्यक साधन जुटाता है। जब तक परिवर्तन के कारण उपलब्ध होने वाले लाभों को भली प्रकार न समझा जाएगा, तब तक उस दिशा में न तो उत्सुकता उत्पन्न होगी और न आतुरता। अन्यमनस्क मन बहुत दूर तक नहीं चल सकता, लेकिन जैसे ही बात का औचित्य अन्तःकरण में बैठता है, वैसे ही अन्दर से एक प्रबल उत्साह का अनुभव होता है। यही जन-उत्साह बड़े कार्यों की आधारभूमि बनता है।

जनचेतना को जाग्रत करना यों बड़ा कठिन कार्य लगता है, किन्तु आज की स्थिति में वह नितान्त स्वाभाविक हो गया है। जिनको सूक्ष्म जगत और उसकी सत्ता पर विश्वास है, वे जानते हैं कि क्रिया की प्रतिक्रिया का अकाट्य प्राकृतिक नियम, अवांछनीयताओं को उलट देने का सरंजाम अनादि काल से जुटाता रहा है। विश्व का संतुलन बनाये रहने के लिए ऐसे अन्धड़, तूफान खड़े होते हैं। जिन्होंने निराशा और आतंक की मेघ-माला को छिन्न-विछिन्न करके समय-समय पर घुटन को दूर किया है। मनुष्य की समष्टि अन्तरात्मा जिसे विश्वात्मा या परमात्मा भी कह सकते हैं, विकृतियों के निराकरण के लिए समर्थ प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करती रही हैं और अनन्त काल तक उसका यह क्रम चलता ही रहेगा । शरीर में विषाणुओं का विजातीय द्रव्यों का जब अवांछनीय जमघट एकत्रित हो जाता है तो प्रकृति कोई तीव्र रोग-संवेग खड़ा करती है। ज्वर, पीड़ा, सूजन आदि के रूप में कष्ट तो होता है, पर बीमारी को उखाड़ने की दृष्टि से यह आवश्यक होता है, इसलिए शरीर शोधन की यह प्रकृति प्रक्रिया स्वास्थ्य संरक्षण का प्रयोजन पूरा करती रहती है। चिकित्सा के मनुष्यकृत सारे उपचार एक ओर और प्रकृति की उपर्युक्त व्यवस्था एक ओर रखकर तराजू पर तौली जाय, तो पलड़ा प्रकृति परम्परा का ही भारी बैठेगा।

५.५ इक्कीसवीं सदी–नारी सदी

शरीर स्वास्थ्य के सन्तुलन की तरह समाज स्वास्थ्य में जब भी विकृत विषाणुओं की, भ्रष्ट मान्यताओं और गतिविधियों की भरमार हो जाती है तो अनिवार्य रूप से उसकी सुधार प्रक्रिया सामने आती है। इस परिवर्तन प्रकरण को मौटेतौर से भगवान् का अवतरण कहा जाता है। अधर्म का उन्मूलन और धर्म की संस्थापना करने के लिए भगवान् प्रतिज्ञाबद्ध हैं। साधुता का परित्राण और दुष्कृतों का विनाश करना, सृष्टि के असुन्तलन को सहन न करना उनका स्वभाव है। ठीक है– मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, पर वह स्वतन्त्रता औचित्य के साथ जुड़ी रहनी चाहिए। अनौचित्य सर्वत्र असह्य माना गया है और सर्वदा उसकी प्रतिक्रिया हुई है। यदि ऐसा न होता तो समय-समय पर प्रकट होते रहने वाले दुर्दान्त असुरों ने अब तक कब का इस संसार को अपने पेट में निगल लिया होता अथवा उसे कुचल-मसल कर नष्ट कर दिया होता। संसार के इतिहास का, आरम्भ से लेकर अद्यावधि परिस्थितियों का सिंहावलोकन करते हैं तो प्रतीत होता है कि संतुलन बनाने में दिव्य शक्तियों ने देर तो की है और ढील भी बरती है, पर उसकी पूरी तरह उपेक्षा नहीं की है। लोक अपना काम अपने हाथों करले, इस हेतु महामानव हर काल में उगते, उपजते, अपने समय की सफाई करने में लगे रहते हैं। पर जब यह सामान्य-क्रम गड़बड़ा जाता है और देवत्व को निरस्त करके असुरता सत्ता-सम्पन्न होती है, तो फिर प्रकृति प्रतिक्रिया का, भावावतरण का कोई न कोई विराट् विकराल रूप सामने आ ही जाता है। यह दिव्य अवतरण व्यक्ति के रूप में नहीं जनआक्रोश के रूप में अवतरित होता है। उसके नेतृत्व का श्रेय भले ही किसी व्यक्ति विशेष को मिल जाय, पर तथ्य यही है कि वह जन-आक्रोश होता है और असंख्य भावनाशील लोगों को उसमें सम्मिलित होकर ईश्वरीय प्रयोजन पूरा करना पड़ता है। लंकादहन में सहायक रीछ-वानर, गोवर्द्धन उठाने में ग्वाल-बाल, महाभारत में पाण्डवी टुकड़ी, बुद्ध के भिक्षुकगण, गाँधी के सत्याग्रही, लेनिन के विद्रोही सर्वहारा यही बताते हैं, कि संसार के महान् परिवर्तन जन सहयोग से ही सम्भव हुए हैं, उनके जुटाने से जनआक्रोश का उद्भव हुआ है। सूक्ष्म जगत में दिव्य अवतरण की बात को यदि अधिक अच्छी तरह समझना हो तो उसे औचित्य का पक्षधर जनआक्रोश ही कह सकते हैं। यह जब उदय होता है, तब उसका स्तर प्रभातकालीन सूर्य जैसा होता है। अन्धकार कितना ही घना और कितना ही व्यापक क्यों न हो, उस उदयीमान आलोक के सामने किसी भी प्रकार ठहर नहीं सकता।

वस्तुतः इन दिनों सूक्ष्म जगत में एक ऐसी प्रतिक्रिया चल रही है, जिसमें अनेकों अवांछनीय परम्पराओं के उन्मूलन का आधार मौजूद है। यह हवा अनेक क्षेत्रों को झकझोर रही है और परिवर्तन के लिए विकट छटपटाहट उत्पन्न कर रही है। दुर्भाग्य इतना ही है कि इस विस्फोट को सही मार्ग-दर्शन नहीं मिल रहा है। युग परिवर्तन की मूल शक्ति समय की पुकार में सन्निहित रहती है। जन-आक्रोश ज्वालामुखी बनकर फूटता है। युगसृजेता उसे ध्वंसात्मक रूप धारण करने से रोककर सृजनात्मक प्रयोजनों में लगाते हैं। जब-जब ऐसा बन पड़ा है, सत्परिणाम सामने आये हैं अन्यथा जनमानस की आकांक्षा का अभीष्ट परिवर्तन सम्भव न होता देखकर ऐसी तोड़-फोड़ पनपती है, जिसमें उलटे और भी अधिक विनाश उत्पन्न करने वाली अराजकता के दुःखदायी दृश्य उपस्थित होते हैं।

मौसम विशेषज्ञ, अपने विशिष्ट उपकरणों से जान लेते हैं कि अब वर्षा, आँधी, तूफान जैसी क्या नई स्थिति आने वाली है? प्रभातकाल होने से पहले कुक्कुट तथा दूसरे पक्षी जान जाते हैं और उसकी सूचना दूसरों को दे देते हैं। किसान लोग कई शकुन देखकर उस वर्ष फसल कैसी होगी, इसका अनुमान लगाते हैं। परिस्थिति को देखकर सम्भावनाओं का अनुमान दूरदर्शी लोग सहज ही लगा लेते हैं। सूक्ष्म जगत में क्या हलचलें चल रही हैं, इसे जो देख-समझ सकते हैं, ऐसे अध्यात्मवेत्ता और भी कई तरह की महत्वपूर्ण भविष्यवाणियाँ करते हैं और वे प्रायः सही ही निकलती हैं। इन दिनों विश्व की सबसे बड़ी समस्या आधी जनता का पराधीनता निरस्त करने की आवश्यकता नारी जागरण के रूप में अपना समाधान माँगने के लिए सीना तानकर सामने आ खड़ी हुई है। अब ऐसी स्थिति नहीं है कि फिर कभी के लिए उसे टाला जा सके।

इस सबका तात्पर्य यह है कि नारी जागरण की उपेक्षित समस्याओं को सर्वोपरि प्रधानता दिलाने के लिए लोकमानस को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता जितनी जल्दी समझ ली जाय, उतना ही कल्याण है। इसके लिए विचारशील वर्ग को आगे आना होगा और प्रचार अभियान की मोर्चाबन्दी कुशलतापूर्वक करनी होगी। लेखनी, वाणी, दृश्य, श्रव्य तथा रचनात्मक कार्यक्रमों के पाँच आधार लेकर किसी भी सन्दर्भ में लोकमत जगाया जाना है। उन्हीं साधनों को नारी समस्या के सम्बन्ध में लोक-चेतना उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त करना पड़ेगा।

लेखनी का तात्पर्य इन दिनों प्रेस और प्रकाशन से है। इस संदर्भ में पहला स्थान पत्र-पत्रिकाओं का आता है। अपने देश में सभी भाषाओं में मिलाकर मासिक से दैनिक तक प्रायः सात हजार अखबार निकलते हैं। इनके पाठक अनुमानतः दो करोड़ हो सकते हैं। एक ही महीने के अन्दर इतने बड़े शिक्षित जनसमूह को नई चेतना देने के लिए इनका सहारा लिया जा सकता है। इन पत्रों के दृष्टिकोण से ताल-मेल बिठाते हुए यदि प्रौढ़ लेख लिखे जाएँ और प्रकाशनार्थ भेजे जाएँ तो उन्हें कदाचित ही कोई अस्वीकार करेगा। देश में १४ भाषाएँ राजकीय मान्यता प्राप्त हैं। इन सभी में लेख लिखने और छापने का प्रबन्ध सुनियोजित ढंग से किया जाना चाहिए। देश की सभी भाषाओं को मिलाकर लगभग सात हजार विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं। इन सात हजार पत्रों में अनेक

दैनिक, साप्ताहिक हैं और आधे मासिक। औसत हर महीने दो लेख छपने की बात सोची जा सकती है। इस प्रकार कुल १४००० लेखों की जरूरत पड़ा करेगी। कुशल लेखक अपने निजी कार्यों का निर्वाह करते हुए भी सप्ताह में एक दो लेख इस विषय के लिख सकते हैं।

लेखनी के क्षेत्र में अगला कदम है, प्रचार साहित्य और स्थायी साहित्य का प्रचुर परिमाण में निर्माण। प्रचार साहित्य से मतलब है– पुस्तिकाएँ, पर्चे, ट्रैक्ट, पोस्टर, फोल्डर आदि स्वल्प मूल्य में बेचे जाने योग्य अथवा वितरण किये जाने योग्य अत्यन्त सस्ती पाठ्य सामग्री का निर्माण। बड़ी पुस्तकों से मतलब है, नारी समस्या के विभिन्न पक्षों पर विवेचनात्मक प्रकाश डालने वाला खोजपूर्ण साहित्य । विज्ञ पाठकों द्वारा अपनाये जाने योग्य और पुस्तकालयों में रखे जाने योग्य स्तर का यह साहित्य होना चाहिए। प्रकाशित पुस्तकें उनमें खपती रह सकती हैं। छोटे-बड़े बुकसेलरों और हाट, बाजार, मेले, नुमाइशों में फेरी लगाने वाले पुस्तक विक्रेताओं को इस प्रकार का साहित्य बेचने में विशेष रुचि लेने के लिए कहा जा सकता है। इस प्रकार प्रकाशन सम्भवतः अधिक आर्थिक लाभ न दे सकेगा, क्योंकि यदि प्रचार का उद्देश्य ध्यान में रखना है तो आज जिस स्तर का बढ़ाचढ़ा मूल्य रखा जाता है, वैसा न रखा जा सकेगा और न उतना कमीशन विक्रेताओं को दिया जा सकेगा, जितना आजकल मिलने लगा है। इसलिए व्यापक विस्तार को दृष्टि में रखना हो तो अपना प्रकाशन तथा विक्रय तन्त्र स्वतन्त्र रूप से खड़ा करना होगा। इसके लिए सहकारी समितियाँ, प्राइवेट लिमिटेड, पब्लिक लिमिटेड, ट्रस्ट आदि स्तर के ढाँचे बनाकर पूँजी जमा करने और उसे उपर्युक्त व्यवसाय में लगाने के लिए कदम बढ़ाने का प्रयास करना होगा । कुछ विचारशील प्रकाशक एवं विक्रेता भी सहयोग दे सकते हैं। उनके थोड़े सहयोग से भी कुछ तो काम चल ही सकता है।

नारी की गरिमा गिराने वाले, कामुक कुत्सा भड़काने वाले चित्र, कलेण्डरों की पुस्तकों के मुख्य पृष्ठों की पत्रिकाओं में छपने वाली तस्वीरों की आज भरमार है। उसकी स्थान पूर्ति के लिए ऐसे चित्रों का प्रकाशन करना होगा जो जन-साधारण में नारी के प्रति पवित्र श्रद्धा भावना का सृजन करता हो और स्वयं नारी को अपनी गरिमा का उद्‌बोधन कराता हो।

शृंगारिकता और कामुकता के ही गीत आज सर्वत्र सुनाई पड़ते हैं। उनके स्थान पर नारी गौरव का उद्‌बोधन करने वाले गीत रचे, छापे और गाये जा सकते हैं। गीत काव्य से भारतीय जनता अधिक प्रकाश प्राप्त कर सकती है। उनका सृजन प्रान्तीय और क्षेत्रीय भाषाओं में भी होना चाहिए। छोटे-छोटे सीमित संगीत पाठ्यक्रम वाली संगीत पाठशालाएँ गाँव-गाँव, मुहल्ले-मुहल्ले स्थापित हों, जिनमें नारी जागरण से लेकर बौद्धिक क्रान्ति, नैतिक क्रान्ति एवं सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता पूरी करने वाले गीतों की ध्वनियाँ सिखाने की, सरल वाद्य यन्त्र बजाने की शिक्षा दी जाय। इस प्रयोजन में टेप रिकार्डर और ग्रामोफोन रिकार्डों का अच्छा-खासा उपयोग हो सकता है। उनमें भरे हुए गीत लाउडस्पीकर से सार्वजनिक आयोजनों में काम आ सकते हैं। वैसे भी हर जगह प्रातःकाल एक घण्टे प्रसारण कार्य चलता रह सकता है।

गीत, वाद्य का अगला कला चरण नाट्य अभिनय आता है। यों बड़े नगर-कस्बों में अब उस क्षेत्र पर सिनेमा का अधिकार हो गया है, पर अभी भी नाट्यकला पूरी तरह मरी नहीं है। जहाँ सिनेमा नहीं पहुँचा है, वहाँ तो वह किसी न किसी रूप में अभी भी जीवित है। रामलीला, रासलीला, नौटंकी, ढोलामारू आदि अनेक रूपों में अनेक क्षेत्रों में अपने-अपने ढंग के अभिनय जारी हैं। लोकरंजन की इन प्रक्रियाओं के साथ लोक-मंगल का लक्ष्य सहज ही मिलाया जा सकता है। सम्भव हो तो बड़े फिल्म बन सकते हैं और एक के बाद एक बनाने की उनकी शृंखला जारी रहे तो देश की बहुत बड़ी आबादी को नई चेतना मिल सकती है। फिल्म उद्योग आज का लाभकारी व्यवसाय है। उसमें लगे हुए लोग घटिया मनोरंजन के कुरुचिपूर्ण आधार लेकर, धन उपार्जन के लिए अपना ताना-बाना बुनते रहते हैं। यदि उस क्षेत्र में समुचित पूँजी लग सके और मूर्धन्य मस्तिष्क काम करने लग सकें, तो नारी पुनरुत्थान के लिए क्रान्तिकारी पृष्ठभूमि तैयार हो सकती है। बड़े पैमाने पर साहित्य निर्माण की बात जिस प्रकार सोची जा रही है, उसी पैमाने पर फिल्म निर्माण का ढाँचा भी खड़ा करना पड़ेगा। छोटे रूप में कम खर्च में और तुरन्त कार्यान्वित हो सकने वाला एक तरीका फिलहाल में यह काम में लाया जा सकता है कि आठ मिलीमीटर और सोलह मिलीमीटर के एक डेढ़ घण्टा चलने वाली फिल्म बनायें और उन्हें अपने प्रोजेक्टरों पर अपने प्रचारकों द्वारा निर्धारित केन्द्रों पर निर्धारित प्रोग्राम के अनुसार दिखाया जाय।

नर-नारी, बाल-वृद्ध सभी को संगीत प्रिय होता है। वर्तमान कला प्रभाव कामुकता और शृंगारिकता की ओर बह रहा है। उसे मोड़ कर अनीति के विरुद्ध संघर्ष की, उज्ज्वल भविष्य के अभिनव निर्माण की दिशा में अग्रसर किया जा सके, तो आश्चर्यजनक परिणाम सामने प्रस्तुत होगा। इसी प्रकार अभिनय के साथ रहने वाला आकर्षक घटनाक्रम देखने वालों के चेतन मर्मस्थलों तक प्रवेश करता है और अपना प्रभाव छोड़ता है। नारी के साथ बरती जा रही अनीति का निराकरण करने और उज्ज्वल भविष्य का श्रीगणेश करने के लिए संगीत और अभिनय दोनों ही माध्यमों को सुगठित किया जा सकता है।

बड़े परिवर्तनों के लिए लोकमानस को जगाना ही चाहिए और उसके लिए प्रबल प्रचारतन्त्र खड़ा किया जाना आवश्यक है। साहित्य, संगीत, चित्र, अभिनय आदि की चर्चा इसी संदर्भ में की गई है। यह प्रथम चरण है। उससे लोकमानस जागेगा और लोक-शक्ति उत्पन्न होगी।

इतना बन पड़ने पर रचनात्मक, सुधारात्मक और विकास के उन कार्यों को हाथ में लेना होगा, जो नारी के वर्तमान पिछड़ेपन के दूर करके उसे सुविकसित स्तर तक पहुँचाने में सहायता देने के लिए नितान्त आवश्यक हैं। वह दूसरा चरण होगा। आज तो हमारा ध्यान उस प्रचार तन्त्र को विनिर्मित करने पर ही केन्द्रित होना चाहिए। इसके बिना शिक्षा, स्वावलम्बन, स्वास्थ्य कौशल आदि के अभिवर्धन का विशालकाय ढाँचा खड़ा नहीं किया जा सकता है।

नारी जागरण अपने युग की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या समझी जानी चाहिए। उसके साथ अपने समय की अनेकानेक समस्याओं के समाधान जुड़े हुए हैं। यह महत्त्वपूर्ण कार्य जीवन्त लोकशक्ति के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। हमें उसी के जागरण में, बिना एक क्षण गँवाये जुट ही जाना चाहिए।

मानवता की पुकार है कि न्याय नारी को भी मिलना चाहिए। उसने ऐसा कोई अपराध नहीं किया है जिसके कारण उसके मानवोचित् नागरिक अधिकारों का अपहरण कर लिया जाय। न्याय, विवेक और औचित्य की अदालत में विश्व नारी की अन्तरात्मा ने अर्जी दी है कि उसे भी मनुष्योचित स्तर के जीवनयापन की सुविधा मिलनी चाहिए। नागरिकता के मानवीय मौलिक स्वतन्त्रता के अधिकारों से उसे वंचित नहीं किया जाना चाहिए। उचित फैसला देने में अब अधिक समय तक टाल-टूल नहीं की जा सकेगी। इसलिए जो हेर-फेर किया जाना है उसमें विलम्ब करके परिवर्तन के सौन्दर्य को नष्ट नहीं किया जाना चाहिए।

लड़ाई बीमारी से है— बीमार तो हमारा अपना है

महिला समाज में जाग्रति आते देखकर कहीं-कहीं पुरुष वर्ग को यह भय लगने लगता है कि नारी अब तक हुए अत्याचारों का प्रतिशोध न लेने लगे? ऐसा सोचना ठीक नहीं है, क्योंकि नारी का सृजन जिन तत्त्वों से हुआ है, उनमें क्षमा और करुणा का ही बाहुल्य है। यों वह धारण तो शरीर भी किये रहती है, पर तात्विक विश्लेषण करने पर उसके अन्तरंग और बहिरंग में आत्मा-ही आत्मा दीप्तिमान दीखती है। आत्मीयता का अजस्र निर्झर उसके अन्तःकरण से निःसृत होता है। उसमे बहिरंग जीवन का आये दिन गिरते रहने वाला कूड़ा-करकट अनायास ही बहता चला जाता है। स्नेह-सौजन्य की मूल सत्ता बिना तनिक भी विकृत हुए अपने स्थान पर यथावत् बनी रहती है। नारी की यह आध्यात्मिक विशेषता समस्त मनुष्य को गौरवान्वित करती है। नारी में अद्भुत सहनशीलता और उदारता है। जन्म से लेकर युवा होने तक बच्चे पग-पग पर उसे तरह-तरह से हैरान करते रहते हैं, उससे असीम अनुकम्पा पाते हुए भी निरन्तर लड़ते-झगड़ते, अपमान बरतते और कृतघ्नता व्यक्त करते उन्हें सदा देखा जा सकता है। कभी श्रद्धा-सिक्त कृतज्ञता की अभिव्यक्ति कदाचित् ही कोई सन्तान करती होगी। जब देखो तब दोष देना, दबाना और झल्लाना ही बदले में बरसता है। नादान बच्चे ही ऐसा नहीं करते, वरन् बराबर वाले और बड़े भी ही रीति अपनाते रहते हैं। भाई भतीजे से लेकर पति और देवर, जेठ सदा हुकूमत चलाते, रौब गाँठते और किसी न किसी बहाने सताते ही देखे जाते हैं। फिर भी रोषपूर्ण प्रतिक्रिया का कभी दर्शन तक नहीं होता। बहुत हुआ तो तनिक देर की उदासी और आँखों से आँसू की दो बूँदें इनके अतिरिक्त और किसी के लिए अन्य प्रकार की अभिव्यक्ति कदाचित् ही देखी जाती है।

नारी को रूठते, रोते, खीजते, झल्लाते तो देखा जा सकता है, पर अपनों के प्रति प्रतिशोध की, हानि पहुँचाने की भावना कभी भी उठती नहीं देखी जाती। लड़का बुरा-भला कहकर गया हो, कुछ भी बिगाड़ गया हो पर घर से रूठकर चले जाने पर माता का पेट कटता ही रहता है। जब तक वह खोज नहीं लिया जाता, तब तक उसे चैन नहीं मिलता। वापिस आने पर वह उसे दूने स्नेह के साथ छाती से लगा लेती है और यह भूल जाती है कि कुछ ही समय पहले यह कितनी उद्दण्डता का परिचय देकर गया था। पति लोग आये दिन अपमानित करते रहते हैं और लांछन लगाते रहते हैं। छोटे-छोटे कारण जो सामान्य रीति से परामर्श देकर सुधारे जा सकते थे, गाली-गलौज, मार-पीट जैसे उद्दण्ड अनाचार बरसाते हैं। इनकी प्रतिक्रिया बुरा लगने के रूप में तो होती है और दबा-खुला प्रतिरोध भी होता है। इतने पर भी पत्नी के मन में पति के प्रति घृणा द्वेष का एक भी बीज नहीं जम पाता। कुछ ऐसा नहीं सोचती करती जिससे पति का अहित होता हो, वरन् चढ़े हुए पारे को उतारने के लिए अपमानित, उत्पीड़ित होते हुए भी अपनी ओर से आगे बढ़कर हँसती-मुसकराती, खुशामद करती, मनाती दीखती है। यह विवशता की प्रतिक्रिया या प्रभुता के कारण भयभीत दीनता नहीं है, वरन् उसका अन्तःकरण खोलकर देखा जा सकता है कि यह मात्र उदार आत्मीयता भर है जो मूल प्रकृति में जुड़ी हुई है। इस प्रकृति की ज्योत्सना पर कभी-कभी ग्रहण तो लग जाता है पर अधिक समय तक वह टिकता नहीं है।

आत्मीयता के दैवी तत्व उसके क्षेत्र को बहुत दूर तक प्रभावित करते हैं। आमतौर से वह स्नेह-सौजन्य के छैनी हथौड़े से ही पाषाण खण्डों को देख प्रतिमा के रूप में गढ़ती है, पर जहाँ अनिवार्य हो जाता है, वहाँ उसका चण्डी रूप भी सामने आता है अन्यथा अपने पुत्रों का वध

कर डालने पर भी द्रौपदी द्वारा गुरुपुत्र अश्वत्थामा को क्षमा कर देने जैसी उदार घटनाएँ ही बहुधा देखने में आती रहती हैं। संयुक्त परिवार के निर्वाह में अनेक कठिनाइयाँ और विकृतियाँ होने पर भी वे माता, बहिन, पुत्री जैसे नारी घटकों की कोमल भावनाओं के कारण ही बिखराव से बचे रहते हैं। उनकी स्नेहसिक्तता के प्रभाव से कितनी ही अड़चनें और कइयों के आर्थिक तथा दूसरे स्वार्थों के आघात लगते रहने पर भी संयुक्त परिवार बड़े होने पर भी चिरकाल तक सुगठित बने रहते हैं।

महिला जागरण अभियान में पुरुष द्वारा बरती गई, उस अनीति की बहुधा चर्चा होती रहती है, जिसके कारण नारी को वर्तमान दुर्दशा के गर्त में गिरना और बहुत कुछ सहना पड़ा है। यह औचित्य-अनौचित्य की, न्याय-अन्याय की समीक्षा मात्र है। आधे समाज को अपंग बनाकर रख देने वाले, पक्षाघात या महामारी की तरह तोड़-मरोड़ कर रख देने वाले संकट का यह पर्यवेक्षण भर है, जिससे निदान कारण को समझ कर निवारण की संगति बिठाई जा सके। निदान को ध्यान में रखते हुए चिकित्सा का सरंजाम जुटाया जा सके। इसे भूल का प्रायश्चित करने की, गलती को सुधारने की तैयारी कह सकते हैं। यहाँ विद्वेष भड़काने जैसा प्रयत्न तनिक भी नहीं है। यदि कोई वैसा करेगा भी तो वह सम्भव न हो सकेगा। परिवार संस्था के अभिन्न घटक नर और नारी, भौतिक और आत्मिक बन्धनों से काटकर अलग करना, एक का दूसरे के प्रति शत्रुता रखकर असहयोग करना शक्य नहीं हो सकता।

माता को बच्चों के विरुद्ध भड़काकर उनसे घृणा बैर करके और अलग रहने के लिए कोई भी रजामन्द नहीं कर सकता। तर्क, कारण, प्रमाण कितने ही उपस्थित किये जाएँ और बच्चों के प्रति स्नेह के स्थान पर द्वेष रखने में कितने ही लाभ क्यों न बताये जाएँ पर उसे इस बात से सहमत न किया जा सकेगा। भाई का बहिन के प्रति जो भी व्यवहार रहा हो, उसका अन्तःकरण सहज ही उमड़ता, उमगता रहेगा। अभी भी पिता के उत्तराधिकार में पुत्री का कानूनी हिस्सा है । पर उसे अधिकार का लाभ कदाचित् ही कोई लड़की लेना चाहती होगी। वह भाई के पक्ष में अपना अधिकार सहज उदारता के साथ-साथ खुशी-खुशी त्याग देती है और दावा-बेदावा लिख देती है। आर्थिक दृष्टि से इस प्रत्यक्ष हानि के विरुद्ध अनेकों दलीलें हैं पर वे एक कोने पर रखी रह जाती हैं। भाई और बहिन के भाव भरे रिश्ते में उस धन-लाभ को कभी-कभी ही कोई बाधक बनने देता है।

यह नारी का सहज स्वभाव है, कम से कम इसे भारत में तो सहज ही हटाया-मिटाया नहीं जा सकता। यह उसके पूर्वजों की सांस्कृतिक थाती है, जिसके कारण इतने आँधी-तूफान आने पर भी विद्रोह जैसी कोई स्थिति उत्पन्न नहीं हुई है। स्नेह-बन्धनों की तरह उसने पराधीनता के बन्धन भी स्वीकार कर लिए और इतने लम्बे समय से वह अनीतिमूलक रीति-नीति चलती चली आई, परम्परा बनकर सहज ही व्यवहार स्तर तक आ गई।

नारी की इस आत्मिक विशेषता के रहते, किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि महिला जागरण मंच से नर और नारी के बीच कोई दरार डालने या विद्रोह उत्पन्न करने का प्रयास किया जा रहा है। अभियान के दूरदर्शी सूत्र-संचालक वैसी मूर्खता नहीं कर सकते । उनका उद्देश्य मात्र इन विकृतियों की हानियाँ समझाना है, जिसने नारी को अपंग और नर को भारवाही बनाकर प्रगति के समस्त द्वारों को अवरुद्ध करके रख दिया है। नर और नारी में द्वेष उत्पन्न करके किसी को क्या मिलेगा? फिर उतनी सुदृढ़ आत्मीयता को शिथिल एवम् नष्ट किन साधनों से किया जा सकेगा। पाश्चात्य देशों में नारी मुक्ति आन्दोलन के नाम पर एक नर विद्वेषी आन्दोलन चल रहा है। भारत में अपने कारण हैं और पाश्चात्य देशों में अपने।

अपने देश में किसी को महिला जागरण अभियान द्वारा स्थिति की कटु समीक्षा होते देखकर किसी अवांछनीय दुर्घटना की आशंका नहीं करनी चाहिए। नर और नारी की प्रकृति प्रदत्त अभिन्न एकता एवं सघन आत्मीयता इतने कच्चे धागों से नहीं बँधी है कि वह किसी समीक्षा मात्र से टूट-फूट कर बिखर जाय । एक विग्रह को हटाने के लिए दूसरा संकट उत्पन्न करना हममें से किसी के भी मस्तिष्क में नहीं। पैदा करना चाहें तो भी दोनों को घनिष्टता के सुदृढ़ सूत्र में बाँधे हुए प्रकृति की प्रबल शक्तियाँ वैसा होने न देंगी।

काँटा कहाँ लगा है, कितना गहरा है, यह कुरेदने भर का प्रयत्न किया जा रहा है, ताकि हर घड़ी सहनी पड़ रही कसक से पीछा छुड़ाया जा सके। विद्रोद उस अनीति के विरुद्ध है, जिसने दोनों पक्षों की घनिष्टता में भारी व्यवधान उत्पन्न कर दिया है। दोनों के भावभरे सहयोग से व्यक्ति, परिवार, समाज की सर्वतोमुखी प्रगति सम्भव है। उसके मार्ग में पड़े हुए रोड़े भर हम लोग बीन रहे हैं। किसी को भी यह आशंका नहीं करनी चाहिए कि अपने अभियान की प्रतिक्रिया नर और नारी के बीच किसी प्रकार की दरार उत्पन्न करेगी। उसका उद्देश्य सघन सहयोग की स्थापना है।

नारी के आक्रोश को समझा जाना चाहिए और गम्भीरतापूर्वक उस तथ्य पर विचार किया जाना चाहिए जिसके कारण उसे परिवर्तन की उतावली है। महिला जागरण के रूप में जो मुद्दतों की दबी, सुलगती, घुटती उद्विग्नता उभरकर आई है, उसके पीछे प्रतिशोध की गंध किसी को भी नहीं सूँघनी चाहिए। प्रतिपक्षी को गिरा कर उस पर अपना वर्चस्व स्थापित करने की उसकी महत्त्वाकांक्षा कभी उभर नहीं सकती। वह सामाजिक दृष्टि से छोटी भले ही बना दी गई हो, प्रकृति प्रदत्त गौरव के कारण वह सदा बड़ी है। पुत्र को वह असीम वात्सल्य देती है। पति को गहरा समर्पण और भाई को उत्कृष्टतम् ममत्वदाता स्वयं बड़ा होता है। उसकी अन्तरात्मा अपने

इस प्रकृति प्रदत्त बड़प्पन की तृप्ति हर घड़ी अनुभव करती है फिर वह पति, पिता, भाई और पुत्र से बड़ा बनने की, इन्हें गिरा कर अपना वर्चस्व बढ़ाने की आकांक्षा क्यों करेगी? जिन्हें यह आजीवन अनुदान ही देती है। उन्होंने यदि कुछ अनुचित भी बरता है तो उसका सुधार भर होने की अपेक्षा करेगी। प्रतिशोध और प्रतिहिंसा के लिए कुछ करना तो दूर-सोचना भी उससे न बन पड़ेगा।

आतुरता, उद्विग्नता और खीझ इस बात की है कि उसे अपने प्रिय क्षेत्र में समुचित कौशल दिखा सकने की क्षमता से वंचित न किया जाय। उसे वे प्रतिबंध बहुत ही अखरते हैं, जिनके कारण उसे गृहलक्ष्मी पद से वंचित कर दिया गया है। वह अपनी उस सहज कलाकारिता का परिचय नहीं दे पा रही है, जो उसके आत्म-सन्तोष एवं गर्व-गौरव का केन्द्र-बिन्दु अनादि काल से रहा है और अनन्त काल तक बना रहेगा। उसे सच्चे अर्थों में लक्ष्मी बनने भर की महत्वाकांक्षा है। वह समर्थ और सफल गृहस्वामिनी बनना चाहती है। परिवार रूपी एक छोटे राष्ट्र एवं समाज को उच्चस्तरीय विभूतियों से भरा-पूरा बनाना चाहती है। यदि उसे इतना करने दिया जाय, इस अधिकार क्षेत्र को न छीना जाय तो उतने भर से वह पूर्णतया संतुष्ट और प्रसन्न बनी रहेगी।

गृह लक्ष्मी की भूमिका निभा सकने के लिए उसे उपयुक्त शिक्षा, योग्यता, अनुभव, प्रतिभा एवं अवसर मिलना चाहिए । प्रस्तुत प्रतिबन्धों ने उसके हाथों से यह सब भी छीन लिया है। प्रतिबन्धों ने उसके नागरिक अधिकारों का ही अपहरण नहीं किया है, वरन् उस क्षमता को उपार्जित कर सकने से भी वंचित कर दिया है जो गृह-लक्ष्मी की भूमिका निभा सकने के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

स्वर्ग लोक की लक्ष्मी की तुलना में भू-लोक में निवास करने वाली लक्ष्मी की मूर्तिमान पुत्री गृह-लक्ष्मी कहीं अधिक वास्तविक है। गृह-लक्ष्मी का अर्थ है नारी। उसका प्रधान कार्य-क्षेत्र गृह है। अपने राज्य में वह स्वर्गीय परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में पूरी तरह समर्थ है। इसका प्रत्यक्ष परिचय कभी भी, कहीं भी प्राप्त किया जा सकता है।

घर एक प्रकार का शरीर है । शरीर के विभिन्न अंग-अवयव जब ठीक काम करते हैं तो रूप-यौवन, शोभा-सौन्दर्य, उत्साह-उल्लास, छलकता रहता है। प्रसन्नता और सफलता उसके इर्द-गिर्द मँडराती रहती है। बड़े शरीर– परिवार की स्थिति यदि स्वस्थ- संतुलित बनी रहे तो उसमें रहने, पलने वालों को हर घड़ी आनन्द मिलता है और उस उत्साह भरी सुखद परिस्थितियों में हर किसी को प्रफुल्ल रहने का, प्रगति की दिशा में अग्रसर होने का अवसर मिलता है।

यह सोचना सही नहीं है कि धन से हर वस्तु मिल सकती है, यदि प्रचुर धन होगा तो और अधिक सुविधा-साधन जुटाये जा सकेंगे और उनके आधार पर सुखी सुविकसित रहा जा सकेगा। यदि ऐसा होता तो धनवान लोगों को गृह-कलह की मनोमालिन्य की दुरभिसंधियों से ग्रसित क्यों रहना पड़ता है? ये पारिवारिक विकृतियों से विक्षुब्ध क्यों पाये जाते?

धन शरीर को थोड़ी-सी सुविधा भर दे पाता है। मनोरंजन के क्षणिक साधन जुटा सकना ही उसके लिए सम्भव होता है। वास्तविक सुख-शान्ति तो सद्गुणों से ही उत्पन्न होती है। सद्गुणी अपने परिष्कृत दृष्टिकोण के कारण परिस्थितियों के साथ ताल-मेल बिठा लेता है और व्यक्तित्व की दृष्टि से अविकसित लोगों को भी अपने साथ लेकर सुखद अनुभूतियों का रसास्वादन कराता रहता है। सद्गुणों की सम्पत्ति जहाँ रहती है, वहाँ धन का अभाव भी कुछ अधिक हानि नहीं पहुँचा पाता। निर्धन परिस्थितियों में रहते हुए भी सुसंस्कृत हर्षोल्लास का वातावरण बना रह सकता है। सुसंस्कारिता जहाँ भी होगी, वहाँ प्रगति का द्वार कभी भी अवरुद्ध न हो सकेगा, भले ही अभाव व अन्य परिस्थितियाँ कितनी ही जटिल क्यों न हों?

घर के सामान की सुव्यवस्था रखकर उस छोटे से घरौंदे को सुरुचि, रूप, शोभा-सौन्दर्य से भरापूरा बना देना सुगृहिणी के बायें हाथ का खेल है। नीरस और ओछे स्तर के लोगों को भी अपनी परिष्कृत प्रवृत्ति में जकड़कर शालीनता के ढाँचे में ढलने-बदलने के लिए विवश कर देना, भाव सम्पत्ति की धनी नारी के लिए अतीव सरल है। नारी अन्तःकरण कुछ विशेष तत्वों के बाहुल्य से भरापूरा बनाया गया है। उसमें आत्मीयता और उदारता की करुणा और कोमलता की मात्रा पुरुषों की तुलना में कहीं अधिक होती है। अपनी इस विशेषता के कारण वह रुखी और कर्कश प्रकृति के लोगों को भी नरम बना सकती है। उनमें सरस सहृदयता का संचार कर सकती है। यदि घर के लोगों में सामान्य शालीनता मौजूद हो, तब तो फिर कहना ही क्या? सुसंस्कृत नारी की भूमिका उस स्थिति में सोना और सुगन्ध की कहावत चरितार्थ करती है।

देखने से लगता है कि परिवार संस्था के स्वरूप का निर्धारण करने में पुरुष की बड़ी भूमिका है, पर वास्तविकता यह है कि उसका बाह्य कलेवर ही उसके द्वारा खड़ा किया जाता है। उसमे प्राण संचार तो नारी ही करती है। परिवार मात्र वस्तुओं का जमघट या चलती-फिरती मशीनों का गोदाम भर तो नहीं है? उस परिधि में रहने वाली हर वस्तु कलात्मक सुरुचि द्वारा अपने सदुपयोग की शोभा, सुसज्जा की अपेक्षा करती है। यह सब व्यवस्था बुद्धि से ही सम्पन्न होती है। परिवार मे रहने वाले लोगों का व्यक्तित्व चित्र-विचित्र क्रम का बना होता है, उनमें से प्रत्येक की आकृति ही नहीं प्रकृति भी भिन्न होती है। हर एक की अपनी आवश्यकता और अपेक्षा होती है। हर एक में कुछ दोष और दुर्गुण होते हैं। इस भानमती के पिटारे में भरी विलक्षणताओ को किस तरह शालीनता के सुनियोजित ढाँचे में जकड़-पकड़ कर रखा जाय, यह

किसी जादूगर का ही काम है। सुगृहिणी इस अर्थ में वस्तुतः जादूगरनी ही होती है।

सुगृहिणी को अपना परिवार-उद्यान केवल पानी देकर उगाना, सींचना, बढ़ाना पड़ता है, वरन् उसकी सुरक्षा के लिए चतुर माली की तरह जागरूक भी रहना पड़ता है। माली जानता है कि यदि पौधों की रखवाली न की गई तो उसे जंगली जानवर चर जाएँगे। पेड़ों पर फल लगते हैं तो उन्हें पक्षियों से बचाना पड़ता है अन्यथा एक भी फल हाथ न लगेगा। पेड़ों के नीचे उगने वाले खरपतवार को वह उखाड़ता-गिराता है ताकि उनका जमघट जमीन से पौधों की खुराक न झपट ले हो जाय। टेढ़ी-मेढ़ी डालियों को वह बराबर काटता-छाँटता रहता है, ताकि उसके फल वृक्ष जंगली झाड़ियों जैसे कुरूप न हो जाएँ। यदि ऐसी सतर्कता न बरती जाएगी तो माली अपना कर्त्तव्य पूरा न कर सकेगा, उसका बगीचा सुविकसित न हो सकेगा।

सुगृहिणी को कुशल माली की तरह अपने घर-परिवार के लिए न केवल सुकोमल अनुदान देने पड़ते हैं, वरन् दूरदर्शी प्रशासक की तरह नियन्त्रण एवं प्रतिरोध के कड़े कदम भी उठाने पड़ते हैं। बुद्धिमान माताएँ अपने बालकों पर केवल प्यार ही नहीं करती रहतीं, वे एक आँख से दुलार, दूसरे से वर्जन का हथियार भी थामे रहती हैं। इस सन्तुलन के अभाव में माता की एकपक्षीय प्रकृति बच्चों के व्यक्तित्व का नाश कर देगी। अविवेकपूर्ण दुलार से बच्चे बिगड़ते हैं, इसे हर कोई जानता है। नारी के ये दोनों ही शस्त्र ढाल, तलवार की तरह सुरक्षात्मक और आक्रमणात्मक दोनों ही प्रयोजन पूरे करते हैं।

हीरा खदान में भी बहुमूल्य ही होता है, पर बाजार में उसकी कीमत तब आँकी जाती है; जब उसकी सफाई, कटाई, छिलाई आदि की प्रक्रियाएँ पूरी कर दी जाती हैं। नारी की मूल प्रकृति कितनी ही उच्चस्तरीय क्यों न हो उसको परिष्कृत करने के लिए हीरे को आकर्षक बनाने जैसा प्रयास करना पड़ेगा। परिष्कार का अवसर न मिलने पर उसकी वह प्रतिभा निखर न सकेगी, जो अवसर के अभाव में मूर्छना-ग्रस्त मृत-प्रायः बनकर ज्यों-त्यों दबी पड़ी रहती है।

नारी स्वभावतः गृह-लक्ष्मी है। उसमें परिवार को स्वर्ग बनाने की प्रकृति प्रदत्त क्षमता विद्यमान है । फिर भी उसके फलने-फूलने और समर्थ-विकसित होने के लिए अवसर तो मिलना ही चाहिए। घोड़े और हाथी एक क्षेत्र में आश्चर्यचकित करने वाली सफलताएँ प्रदान कराते रहे हैं पर उनकी कुशलता को विकसित होने के लिए समुचित प्रशिक्षण एवं अभ्यास का अवसर मिला है। यदि उन्हें पैर कसकर पटक रखा जाय तो कैसे कोई घोड़ा या हाथी वैसा पराक्रम दिखा सकता है। नारी को ऐसे प्रशिक्षण, वातावरण एवं अवसर का लाभ मिलना चाहिए, जिसमें उसकी विशेषताओं को कार्यान्वित कर सकना सम्भव हो सके।

हर व्यक्ति अपने कार्यक्षेत्र में कुशल, प्रवीण और निष्णात बनने का प्रयत्न करता है । चिरकाल से नारी अपने को प्रस्तुत उत्तरदायित्वों का निर्वाह ठीक तरह कर सकने के योग्य बनाती रही है, पर यह उसका अपना प्रयास है। उसकी प्रवीणता बढ़ाने में समुचित योगदान देना पुरुष का काम है । साधन जुटाने तथा अवसर देने की जिम्मेदारी उसी की है। यदि दोनों पहिये तालमेल बिठाकर ठीक तरह लुढ़कने लगें तो गाड़ी अपने अभीष्ट लक्ष्य तक आसानी से पहुँच सकती है और हमारे घर-परिवारों का वातावरण स्वर्ग जैसा हो सकता है। उसमें रहने और पलने वाला प्रत्येक मनुष्य अपने वर्तमान को प्रफुल्ल और भविष्य को उज्ज्वल बनाने का आधार पा सकता है।

हमारा व्यक्तित्व प्रखर एवं प्रतिभाशाली होना चाहिए। हमारी सामाजिक परिस्थितियाँ सुविधा और सद्भावना भरी होनी चाहिए। यदि यह सचमुच ही अभीष्ट हो तो व्यक्ति और समाज के बीच की कड़ी, परिवार का वातावरण सुसंस्कृत बनाया जाना चाहिए। यह मात्र साधन जुटाने से पैसा खर्च करने से सम्भव नहीं। इसके लिए गृह संचालिका को, गृहिणी को समुन्नत बनाया जाना चाहिए। उसे उतना अवसर, साधन और सहयोग मिलना चाहिए, जिससे वह अपनी प्रकृतिप्रदत्त विशेषता को ठीक तरह कार्यान्वित कर सके और गृह-लक्ष्मी की भूमिका निभाते हुए घर-परिवार को स्वर्गीय वातावरण से भरापूरा बना सकने का श्रेय प्राप्त कर सके। इस दिशा में किये गये प्रयास वस्तुतः मानव-जाति के उज्ज्वल भविष्य निर्माण करने का ठोस आधार बन सकते हैं।

इस सबके लिए पहली आवश्यकता यह है कि नारी को अपने विकास के लिए समय मिले। यहाँ यह तो नहीं कहा जाता कि उसे घरेलू कार्यों से एकदम मुक्त कर दिया जाय, किन्तु उसमें कुछ सुधार और व्यवस्था जोड़ देना किसी के लिए भी कठिन नहीं है। गृहव्यवस्था में समय की नियमितता निर्धारित होनी चाहिए। भोजन ठंडा या गर्म मिलने की बात से कोई तथ्य नहीं। थोड़े समय का रखा भोजन स्वाद की दृष्टि से उन्नीस भले ही हो जाता हो गुण की दृष्टि से उसमें कोई अन्तर नहीं आता। चौका चलते जो लोग गर्म भोजन कर सकते हों वे वैसा ही करें, पर समय-कुसमय खाने वालों के लिए चूल्हा जलते रहता है। जब भी आवें, तभी गरम भोजन बनना अनुचित है। खाने वाले की तनिक सी सुविधा के लिए घर का सारा काम फैला रहता है और स्त्रियाँ पूरे समय तक उसी जंजाल में जुटी रहती हैं। उन्हें शिक्षा, शिल्प, स्वास्थ्य आदि के लिए अवकाश मिलना चाहिए। इसमें सबसे बड़ी अड़चन चौके का फैले पड़ा रहना है। प्रचलन यह होना चाहिए कि जो लोग समय पर भोजन न कर सकें उनकी थाली उठा कर रख दी जाय, यदि वे जब भी आवें उसे स्वीकार कर लें। बात जरा-सी है, पर उसके साथ घर की प्रगति का सारा आधार जुड़ा हुआ है। समय ही न मिलेगा तो यह सब पर

कल्याण करने के लिए कुछ करने की सुविधा ही कहाँ से पा सकेगी?

नवयुग में प्रत्येक महिला को अपनी तथा अपने समाज की प्रगति के लिए कुछ न कुछ करना ही होगा, उसके लिए उसे अवसर तभी मिल सकता है जब घर के कामों को निपटाने में सब लोग मिलजुलकर सहयोग दें और हाथ बटायें। गृहस्थी के काम दीखते ही छोटे और थोड़े हैं पर वे इतने चित्र-विचित्र ढंग के होते हैं कि उन्हें समेटने में एक स्त्री को दम लेने को भी फुरसत नहीं मिलती । बड़प्पन का अहंकार और छोटों का संकोच कुछ लोगों को पूरी तरह छुट्टल और कुछ को बेतरह व्यस्त बनाता है। अच्छा यह है कि गृह कार्यों को सम्मिलित हँसते-हँसते खेल-विनोद की तरह निपटा लिया जाय। इससे गृह व्यवस्था में सबका हस्तक्षेप रहने से वह सुन्दर बन पड़ेगी और हर सदस्य को इस अत्यन्त महत्वपूर्ण जानकारी का अनुभव ही रहेगा। साथ काम करना और साथ खाना कितना उत्साहवर्द्धक होता है, इसे प्रत्यक्ष अनुभव किया जाना चाहिए। इस छोटे से परिवर्तन से घर-परिवारों का ढाँचा ही बदल जाएगा और व्यस्त निठल्ले का भेद न रहने से प्रत्येक महिला को कुछ वैसा करने के लिए अवसर मिल जाएगा जिसकी नारी उत्कर्ष के लिए आज नितान्त आवश्यकता है।

परिवार की पाठशाला में श्रमशीलता, सादगी-मितव्ययता, स्वच्छता, शिष्टाचार, सहयोग जैसे सद्गुणों की सघन शिक्षण व्यवस्था रहनी चाहिए यह तभी संभव हो सकता है, जब सब लोग मिल-जुलकर घर का काम निपटाने और प्रत्येक गतिविधि में आवश्यक दिलचस्पी लें। स्कूलों में गणित, भूगोल, इतिहास जैसी जानकारियाँ मिल सकती हैं। पर सद्गुणों को अभ्यास में उतारने के लिए परिवार पाठशाला ही कारगर हो सकती है। पाठशाला वह जिसमें सभी छात्रों को पढ़ना-सीखना पड़े, जहाँ एक व्यक्ति ही अध्यापक और छात्र, दोनों की भूमिका अकेला ही निभाता रहे और छात्र मूकदर्शक बने बैठे रहें, वहाँ क्या कुछ बन पड़ेगा?

बात काम में हाथ बँटाने भर की नहीं, मुख्य उद्देश्य प्रत्येक सदस्य को वे गुण सिखाने का है जो भावी जीवन में महत्वपूर्ण सफलताओं के आधार बन सकते हैं। व्यावहारिक शिक्षा के उपकरणों का सहारा लेना पड़ता है। घर के कार्य को शिक्षा-उपकरण समझा जाय तो सद्गुणों की कुशलता प्राप्त करने के लाभ को ध्यान में रखने वाले गृहकार्यों को मिलजुल कर करने की बात में किसी प्रकार की 'हेटी' अनुभव न करेंगे। इससे परिवार के वातावरण में प्रगतिशीलता का समावेश, घर के प्रत्येक सदस्य को व्यावहारिक एवं भावनात्मक सद्गुणों के शिक्षण का लाभ तो प्रत्यक्ष ही है, परोक्ष लाभ यह है कि घर में नारियों को भी कुछ ऐसा करने का अवसर मिल जाएगा जिससे वे रसोईदारिन, चौकीदारिन तथा बच्चे जनने की मशीन से बढ़कर भी अपने को कुछ समझ सकें तथा दूसरे भी उन्हें अधिक उपयुक्त मान सकें। घर का वातावरण बनाने में हर परिवार में सहकारिता की प्रथा परस्पर चल पड़े, ऐसे प्रयास होने चाहिए।

भारतीय संस्कृति स्त्रियों के प्रति बहुत ही उदार रही है। यही कारण था कि वे किसी.समय ज्ञान-विज्ञान, विद्या, बुद्धि, कौशल, राजनीति, रणनीति, समाज और गृहस्थ के मामलों में महत्वपूर्ण योगदान देती थीं। पिछले दिनों राजनैतिक पराधीनता, अशिक्षा और निर्धनता के कारण भारतीय समाज में जिस कुण्ठा ने जन्म लिया, उसके फलस्वरूप नारी के प्रति पुरुष के दृष्टिकोण में भारी अन्तर आ गया। अनेक लोगों ने वर्तमान नारी की स्थिति को उसके नैसर्गिक दोषों की संज्ञा दे दी। वे भूलते हैं कि पुरुष के समान स्त्री भी कोई जैविक गुण लेकर जन्म नहीं लेती, अपितु समाज उसे जैसी परिस्थितियाँ प्रदान करता है, वह उसी के अनुरूप ढलती और विकसित होती है।

यही कारण है कि संसार के हर देश में, हर देश के असंख्य समुदायों में स्त्रियों की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न हैं, जो इस बात का प्रतीक है कि नारी परम्परागत मूल्यों और परम्पराओं के विधि-निषेध से प्रतिबन्धित नहीं। यदि उस पर कोई बन्धन है तो वह है, पुरुष का अपना स्वार्थी दृष्टिकोण। यदि लोग उसे छोड़ दें और नारी को सच्चे अर्थों में विकसित होने दें तो वही प्रगति का प्रधान स्तम्भ सिद्ध हो सकती है।

अमेरिका की सुप्रसिद्ध मानव विज्ञानवेत्ता मारग्रेट मीड ने महिलाओं के जीवन का विशद् अध्ययन किया है। चौबुली नामक कबीले की स्त्रियों का वर्णन करते हुए वे लिखती हैं– यहाँ की स्त्रियाँ शासक के रूप में काम करती हैं। अपनी सारी व्यवस्था वह आप ही करती है। साथ ही प्रबन्धक के भी कर्त्तव्य निबाहती हैं। पुरुष की जिम्मेदारियाँ और भावनात्मक निर्भरता ठीक उसी प्रकार की होती हैं, जिस प्रकार हमारे समाज में स्त्रियों की । इस प्रकार की व्यवस्था में चौबुली कबीलों का जीवन बहुत ही सुखी एवं समुन्नत पाया जाता है। जिन जनजातियों ने बौद्धिक और संस्कारजन्य वरिष्ठता प्राप्त की है, वहाँ की स्त्रियों को यदि अधिक प्रबन्ध के अधिकार दिए जाएँ तो निरर्थक अनियमितताओं का, बुराइयों का शीघ्रता से अन्त हो सकता है। ऐसे मामलों में कम से कम स्त्रियों से विचार-विमर्श को तो उन्होंने अनिवार्य बताया है जो सर्वथा उचित भी है। अर्जेंटीना, चिली, क्यूबा, उरुग्वे तथा लैटिन अमेरिकी देशों में स्त्रियों को रोजगार, राजनीति, उत्पादन आदि किसी भी क्षेत्र में काम करने और आजीविका, पद-प्रतिष्ठा प्राप्त करने की छूट है। तो भी वहाँ २२ से २५ प्रतिशत ही महिलाएँ इस ओर आकर्षित होती हैं। उनमें से अधिकांश वैयक्तिक कारणों से ऐसा करती हैं। अधिकांश अपनी प्रकृति प्रदत्त कोमलता, संवेदनशीलता का लाभ परिवारों की सुख, सन्तुष्टि और सुव्यवस्था को देती हैं, इनमें दोनों पक्ष आत्म-सन्तोष अनुभव करते हैं। वहाँ भी यह तथ्य स्वीकार किया जा रहा है कि समाज

भावनात्मक संतुलन स्थूल व्यवस्थाओं से कम महत्व नहीं रखता तथा उसमें नारी का योगदान अनिवार्य है । नारी स्थूल व्यवस्थाएँ पुरुष की ही तरह कर सकती है, किन्तु उसकी दिव्य क्षमताओं की उपयोगिता व्यक्ति, परिवार तथा समाज के भावनात्मक नेतृत्व में अधिक है। नारी को अपनी यह विशेषता ध्यान में रखनी चाहिए और पुरुष वर्ग को भी यह तथ्य स्वीकार करके उसका लाभ उठाने का प्रयास करना चाहिए।

बड़ी संख्या में पुरुष वर्ग की यह मान्यता है कि नारी को समान अधिकार, बराबरी का सम्मान देने तथा उसके साथ कार्यों में बराबरी से सहयोग करने से पुरुषत्व का अपमान है। ऐसे सोचना न तो तर्कसंगत है और न तथ्य सम्मत। यह तो हमारे पूर्वाभ्यास और वर्तमान स्थिति बनाये रखने के अपने दुराग्रहपूर्ण चिन्तन की विकृति ही है। नारी का सहयोगी बनने में न तो पुरुष का अपमान है और न ऐसा किया जाना अव्यावहारिक ही कहा जा सकता है।

बर्मा के पुरुषों ने इस दिशा में अपनी ओर से पूरी उदारता बरती है। वे घर के काम-काज में पूरी तरह हाथ बटाते हैं। खाना पकाना, बर्तन धोना, बच्चों को खिलाना, लोरी गा-गाकर सुनाना- ये ठीक उसी तरह करते हैं जिस तरह स्त्रियाँ। इसमें उन्हें अपने आपके पौरुष से अपमान का कोई कारण नहीं दिखता, उन्हें किसी प्रकार की लज्जा और हिचक नहीं होती । उससे उनका गृहस्थ सुदृढ़ और सुविकसित होता है। गृह-स्वामिनी, गृह-प्रबन्धक स्त्री होती है, तथापि पुरुष अपने आपको कतई कमजोर अनुभव नहीं करता।

बर्मा की लड़कियाँ छोटी-छोटी दुकानें भी चलाती हैं, फैक्टरियों में भी काम करती हैं। अध्यापक, इंजीनियर वकील, जज तथा सेना तक में काम करती हैं। 'सैन्य छतरी' के रूप में वे विश्वविख्यात हैं। इतने पर भी पुरुष व नारी के बीच वहाँ कोई स्पर्द्धा नहीं। वे एक ही जीवन के दो पूरक पहलुओं के रूप में काम करते हैं, इसी से बर्मी समाज सुखी और सन्तुष्ट है।

अफ्रीकी देशों के पिछड़ेपन का प्रधान कारण वहाँ की नारी का अविकसित होना है। विवाह और दाम्पत्य सम्बन्धी कोई कुशल नियम प्रतिपादित न होने के कारण वहाँ की स्त्रियों को कभी-कभी आजीवन बच्चों के एकाकी पालन का बोझ ढोना पड़ता है, क्योंकि पति के लिए गृहस्थ सम्बन्ध स्थापित करने के बावजूद पारिवारिक सम्बन्धों के कठोरतापूर्वक निर्वाह का कोई नियम नहीं है। विवाह हो जाने पर भी नारी को अधिकांश प्रजनन का ही जीवन जीना पड़ता है, जिससे वह स्वस्थ समाज के निर्माण में किसी प्रकार का योगदान नहीं दे पाती। हमारे समाज में यह नहीं है तो भी दहेज प्रथा ने उनकी स्थिति लगभग यही बना रखी है, इसी से हम भी अपेक्षित रूप से आगे नहीं बढ़ पाते।

नारी की सहज पवित्रता तथा भावनात्मक क्षमता का उपयोग परिवार तथा समाज की अर्थ-व्यवस्था को सुनियंत्रित तथा सुनियोजित बनाने में भी किया जा सकता है। नारी को अर्थ-व्यववस्था में बराबरी का सहयोगी बनाकर अथवा उसके ही हाथों में ही प्रधान रूप से अर्थ नियन्त्रण देकर यह लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

अण्डमान द्वीप में, आदिम जातियों की स्त्रियों को सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में समानता के अधिकार प्राप्त हैं। नीलगिरी की 'टोडा' जाति में भी ऐसी ही व्यवस्था है। फलस्वरूप यह समुदाय हर दृष्टि से सुखी, सम्पन्न और अच्छी स्थिति में है। खासियों की व्यवस्था इससे भी बढ़कर है। वहाँ सम्पत्ति का स्वामित्व पिता से पुत्र को नहीं, माता से पुत्री को हस्तान्तरित होता है। पुरुष का अर्जित भाग विवाह से पूर्व माता और विवाहोपरान्त पत्नी को मिलता है। इस तरह अर्थ-व्यवस्था स्त्रियों द्वारा संचालित होने के कारण पुरुष अनेक सामाजिक बुराइयों से बचा रहता है, क्योंकि उनमें किसी प्रकार न तो नशेबाजी की आदत होती है, न निरर्थक प्रदर्शन और अपव्यय की।

महिलाओं को समाज और राष्ट्र की रचना में सक्रिय भूमिका प्रदान करने के प्रयास अनेक राष्ट्रों ने किए हैं। किन्तु यहाँ ध्यान यह भी रखना आवश्यक है कि परिवार की संरचना भी राष्ट्र-निर्माण तथा समाज निर्माण का ही अंग है। अर्थव्यवस्था, राजनीति, संगठन, कृषि आदि प्रत्यक्ष रचनात्मक कार्य करने में महिलाओं पर कोई प्रतिबन्ध तो नहीं होना चाहिए, किन्तु परिवार संस्था में श्रेष्ठ और संवेदनशील व्यक्तित्व का निर्माण करना भी राष्ट्र निर्माण का एक बड़ा महत्त्वपूर्ण अंग है, यह भुलाया नहीं जाना चाहिए।

रूस में लेनिन की राय थी कि स्त्रियों को गृहस्थी के कार्य और बच्चों के पालन-पोषण से मुक्त कर देना चाहिए, जिससे वे देश की सेवा में समुचित स्थान बना सकें। इस विचार ने बहुत काम किया । वहाँ की स्त्री घुटन से ऊपर उठ आई और राष्ट्रीय प्रगति में बढ़-चढ़ कर योगदान देने लगी।

समय पड़ने पर स्त्रियों को वियतनाम और इजराइल क्षेत्र की महिलाओं जैसी तेजस्वी भूमिका निभाने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। युद्ध के दिनों में वहाँ के उद्योग-धन्धे, कृषि, स्कूल आदि कार्य महिलाओं ने ही चलाए और सेना को भी योगदान देती रहीं। उत्तरी वियतनाम की एक सेनाधिकारी तक महिला थी। इस प्रकार की सामयिक जिम्मेदारियाँ निभाते हुए भी नारी परिवार निर्माण की क्षमता को बनाये रख सकती हैं।

परम्पराएँ युग की सामाजिक देन होती हैं, उनमें परिवर्तन किया जाना न तो धर्म के विपरीत होता है और न सामाजिक आचार-विचार के विरुद्ध। टिम्बकटू में पुरुष स्त्रियों से घूँघट करते हैं, स्त्रियाँ किसी प्रकार का घूँघट नहीं

कल्याण करने के लिए कुछ करने की सुविधा ही कहाँ से पा सकेगी?

नवयुग में प्रत्येक महिला को अपनी तथा अपने समाज की प्रगति के लिए कुछ न कुछ करना ही होगा, उसके लिए उसे अवसर तभी मिल सकता है जब घर के कामों को निपटाने में सब लोग मिलजुलकर सहयोग दें और हाथ बटायें। गृहस्थी के काम दीखते ही छोटे और थोड़े हैं पर वे इतने चित्र-विचित्र ढंग के होते हैं कि उन्हें समेटने में एक स्त्री को दम लेने को भी फुरसत नहीं मिलती। बड़प्पन का अहंकार और छोटों का संकोच कुछ लोगों को पूरी तरह छुट्टल और कुछ को बेतरह व्यस्त बनाता है। अच्छा यह है कि गृह कार्यों को सम्मिलित हँसते-हँसते खेल-विनोद की तरह निपटा लिया जाय। इससे गृह व्यवस्था में सबका हस्तक्षेप रहने से वह सुन्दर बन पड़ेगी और हर सदस्य को इस अत्यन्त महत्वपूर्ण जानकारी का अनुभव ही रहेगा। साथ काम करना और साथ खाना कितना उत्साहवर्द्धक होता है, इसे प्रत्यक्ष अनुभव किया जाना चाहिए। इस छोटे से परिवर्तन से घर-परिवारों का ढाँचा ही बदल जाएगा और व्यस्त निठल्ले का भेद न रहने से प्रत्येक महिला को कुछ वैसा करने के लिए अवसर मिल जाएगा जिसकी नारी उत्कर्ष के लिए आज नितान्त आवश्यकता है।

परिवार की पाठशाला में श्रमशीलता, सादगी-मितव्ययता, स्वच्छता, शिष्टाचार, सहयोग जैसे सद्गुणों की सघन शिक्षण व्यवस्था रहनी चाहिए यह तभी संभव हो सकता है, जब सब लोग मिल-जुलकर घर का काम निपटाने और प्रत्येक गतिविधि में आवश्यक दिलचस्पी लें। स्कूलों में गणित, भूगोल, इतिहास जैसी जानकारियाँ मिल सकती हैं। पर सद्गुणों को अभ्यास में उतारने के लिए परिवार पाठशाला ही कारगर हो सकती है। पाठशाला वह जिसमें सभी छात्रों को पढ़ना-सीखना पड़े, जहाँ एक व्यक्ति ही अध्यापक और छात्र, दोनों की भूमिका अकेला ही निभाता रहे और छात्र मूकदर्शक बने बैठे रहें, वहाँ क्या कुछ बन पड़ेगा?

बात काम में हाथ बँटाने भर की नहीं, मुख्य उद्देश्य प्रत्येक सदस्य को वे गुण सिखाने का है जो भावी जीवन में महत्वपूर्ण सफलताओं के आधार बन सकते हैं। व्यावहारिक शिक्षा के उपकरणों का सहारा लेना पड़ता है। घर के कार्य को शिक्षा-उपकरण समझा जाय तो सद्गुणों की कुशलता प्राप्त करने के लाभ को ध्यान में रखने वाले गृहकार्यों को मिलजुल कर करने की बात में किसी प्रकार की 'हेटी' अनुभव न करेंगे। इससे परिवार के वातावरण में प्रगतिशीलता का समावेश, घर के प्रत्येक सदस्य को व्यावहारिक एवं भावनात्मक सद्गुणों के शिक्षण का लाभ तो प्रत्यक्ष ही है, परोक्ष लाभ यह है कि घर में नारियों को भी कुछ ऐसा करने का अवसर मिल जाएगा जिससे वे रसोईदारिन, चौकीदारिन तथा बच्चे जनने की मशीन से बढ़कर भी अपने को कुछ समझ सकें तथा

फिल्म-निर्माता सभी की हत्या करके ही लाभ कमाने पर तुले हुए हैं। इसी प्रकार मनुष्य की पशुता उभार कर वे उनकी जेब से मनमाने पैसे निकलवा पाते हैं । जाग्रत नारी के साथ ऐसा बेहूदा खिलवाड़ करना सम्भव न हो सकेगा। इसलिए यह अपना लाभ इसी में सोचते हैं कि नारी अविकसित ही बनी रहे। उसके प्रति हमदर्दी दिखाने के लिए झूठे आँसू बहाये जावें, किन्तु ऐसा कुछ न होने दिया जाय जिसके आधार पर नारी समाज में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन हो सके।

धर्म और अध्यात्म क्षेत्र के व्यक्तियों में भी इस संदर्भ में विशेष आशा नहीं की जाती। उँगलियों पर गिनने लायक थोड़े से व्यक्तियों को छोड़कर उनमें से लगभग सभी श्रेष्ठता-महानता के केवल स्वप्न ही देखा करते हैं। वे आदिशक्ति ब्रह्मविद्या, सरस्वती, गायत्री, लक्ष्मी, दुर्गा आदि के रूपों में नारी की पूजा तो करते हैं, किन्तु उनकी अन्धश्रद्धा केवल आकाश में रहने वाली अदृश्य देवियों तक ही सीमित है। धरती के यथार्थ जीवन पर उनका विश्वास ही नहीं होता, इसलिए धरती पर रहने वाली देवियों के प्रति उनके मनों में न संवेदना जागती है न श्रद्धा। नारियों की पूजा करके धरती को स्वर्ग बनाने के भगवान मनु की उक्ति वे दोहराते भले हों, परन्तु उनका व्यवहार तो उसके विपरीत ही होता है। नारी पर प्रतिबन्ध लगाना वे धर्म मानते और मनु के आदर्शों को क्रियान्वित होने में रोड़ा ही अटकाते रहते हैं।

ऐसे स्थिति में जबकि हर क्षेत्र के साधन और क्षमता-सम्पन्न व्यक्तियों की ओर से निराशा होती है, एक दिशा से आशा की चमक अभी भी दिखाई देती है, वह है जन-सामान्य की संयुक्त शक्ति। जन-साधारण के पास शक्ति और साधन सीमित होते हैं यह बात सही है, किन्तु यह भी सही है कि बूँद-बूँद से सागर बनता है। जन-शक्ति जब किसी दिशा में एक साथ लग पड़ती है तो वह दुर्गा बन जाती है। इसी चण्डी से इस अनाचार की असुरता के विनाश की आशा की जा सकती है। नारी के प्रति बरता जाने वाले अनाचार की तुलना महिषासुर से की जा सकती है। यह असुर संसार की आधी जनसंख्या को दुर्भाग्य और संकट सहने के लिए मजबूर किये हैं। लोक-शक्ति की सिंहवाहिनी ही इस प्रचलन की समाप्ति और इस असुरता का संहार करने में समर्थ है। अपने देश में और विश्व में अनेक बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं और हो रहे हैं। उनका श्रेय कोई भी ले ले, नेता कोई भी कहला ले, किन्तु पीछे प्रधान भूमिका इसी लोकशक्ति की होती है।

[illegible] के मूर्धन्य कहलाने वाले, अगुआओं, [illegible]ों ने यदि इस दिशा में उचित ध्यान दिया होता तो [illegible] समाधान अब तक हो भी चुका होता। [illegible] साहित्यकार, कलाकार, प्रतिभावान, धनवान् आदि वर्ग के लोग नारी उत्थान के लिए चाहकर भी कुछ न कर सकें ऐसी स्थिति नहीं है। जिनमें जीवन है, साहस है ऐसी आत्माएँ साधन रहित होने पर भी बहुत कुछ कर लेती हैं। आदर्श के प्रति लगन हो तो वह किसी भी क्षेत्र में चमत्कार पैदा कर सकती है। युग ने उसी को आज पुकारा है। समय की माँग है कि आदर्श के लिए कुछ कर गुजरने की सजीवता उभरे। न्याय के पक्ष में, औचित्य को जीवित रखने की जागरूकता बढ़े। सजगता और क्रियाशीलता केवल तुच्छ स्वार्थों में उलझकर ही न रह जाय, अपने युग की पीड़ाओं और अनीतियों को मिटाने, हटाने के लिए साहस भरा सहयोग दे।

इतिहास साक्षी है कि भारतीय परम्परा नारी को हीन मानने की, प्रतिबन्धित रखने की नहीं रही है। नारी का प्रधान कार्यक्षेत्र घर तथा पुरुष का कार्यक्षेत्र बाहर रहा है। यह सुविधा और व्यवस्था की बात है, कोई बन्धन नहीं। आवश्यकता के अनुसार पुरुष भी घरेलू काम कर सकते हैं और नारी भी आजीविका उपार्जन जैसे बाहर वाले कार्य कर सकती है। बहुत से पुरुष घरेलू नौकरों के रूप में भोजन बनाने, बर्तन साफ करने, बच्चों को खिलाने आदि का कार्य करते हैं। ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है कि यह काम तो केवल महिलाएँ ही कर सकती हैं, पुरुष नहीं। इसी प्रकार महिलाओं पर भी यह प्रतिबन्ध उचित नहीं है कि वे नौकरी-व्यवसाय जैसे कार्य न करें।

यहाँ यह नहीं कहा जा रहा है कि नारियों को प्रगतिशील बनने के लिए नौकरी और व्यवसाय जैसे कार्य करने ही चाहिए, किन्तु उन्हें हर दृष्टि से स्वावलम्बी बनने देने में कोई प्रतिबन्ध, कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए। परम्परा के नाम पर उन्हें घर के पिंजड़े में बंद कर देना, घर के बाहर पैर न रखने देने आदि प्रतिबन्धों को किसी भी तरह उचित नहीं ठहराया जा सकता, बीच के कुछ सौ वर्ष के अन्धकार युग को छोड़ कर भारतीय समाज में नारी कभी प्रतिबन्धित नहीं रही। वह पुरुष के साथ हर क्षेत्र में कंधों से कंधा मिलाकर, कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ती रही है। जो काम नर कर सकता है उसे नारी ने भी उसी उत्साह और कुशलता से पूरा कर दिखाया है । इसीलिए भारतीय संस्कृति के गौरव भरे आकाश में प्रतिभाशाली नारियों के चरित्र तेजस्वी नक्षत्रों की तरह चमकते दिखाई देते हैं। मध्य युग में हजार प्रतिबन्ध होने पर भी जब भी मौका मिला, नारी की तेजस्विता की अनोखी चमक बीच-बीच में देखने को मिलती रही है। उसने अपनी प्रतिभा और पुरुषार्थ के बल पर अपने क्रिया-कलापों में नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। व्यक्तिगत प्रखरता में वह पिछड़कर नहीं रही, अग्रिम पंक्ति में ही खड़ी हुई है। जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें यह कहा जा सके कि अवसर मिलने पर भी नारी फिसड्डी सिद्ध हुई है। हाथ-पैर

करतीं। कहते हैं टिम्बकटू के लोग भी योद्धा जाति के होते थे। वीरता प्रदर्शन के लिए ये अक्सर आपस में ही मारकाट और नोच-खसोट किया करते थे, जिससे उनके मुँह में घाव हो जाते थे। कुरूप हो जाने से स्त्रियाँ उनसे विवाह नहीं करती थीं। इस कारण अपनी कुरूपता छिपाने के लिए वहाँ पुरुषों में पर्दा प्रथा प्रचलित हुई जो अब परम्परा बन गई, यद्यपि आज उसका कोई औचित्य नहीं है। इसी प्रकार किसी जमाने में ऐसी ही राजनैतिक परवशता के कारण हमारे समाज में महिलाओं में पर्दा-प्रथा प्रचलित हुई थी पर आज उसका कोई औचित्य नहीं। उनके शील को आज कहीं से भी संकट नहीं, अतएव उस प्रथा को न तो छोड़ने में हिचक होनी चाहिए न तोड़ने में सामाजिक अप्रतिष्ठा का भय दीखना चाहिए।

यूगोस्लेविया की महिलाएँ कृषि एवं पशुपालन का, जापान की महिलाएँ गृहउद्योगों का, जर्मनी की महिलाएँ शोध संस्थानों का, स्विटजरलैण्ड में शिक्षा का, हंगरी में चिकित्सा का, अमेरिका में कला का– फ्रांस में साहित्य का उत्तरदायित्व विशेष रूप से कुशलता से सम्भालती हैं। वे घर को सम्भालने का काम छोड़ नहीं देती हैं, वरन उसे बन्दी बनाकर रखी गई स्त्रियों की तुलना में और भी अधिक अच्छी तरह–अधिक मनोयोग और सफलता के साथ हँसते-खेलते सम्पन्न करती हैं। साथ ही घर से बाहर के अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों में भी अपना कौशल प्रकट करके व्यक्तिगत एवं सामाजिक प्रगति के कार्यों को भी बिना अतिरिक्त भार अनुभव किए पूरे करती रहती हैं। इन देशों में अनुभव किया जाता है कि नारी को घर से बाहर काम करने का अवसर देकर उन्होंने कोई भूल नहीं की। इसके विपरीत रूढ़िवादी क्षेत्रों में यह अनुभव किया जा रहा है कि पराधीनता पेशा के बंधन कड़े करके वे देश, धर्म-समाज एवं न्याय की आत्मा का हनन ही कर रहे हैं और मूढ़-मान्यताओं से अपना ही भविष्य अन्धकारमय बना रहे हैं।

यह हजार बार समझा जाना चाहिए कि युग नारी की खीज भरी आतुरता महिला जागरण अभियान के रूप में इसलिए उभरी है कि उसे सुयोग्य गृहलक्ष्मी की भूमिका निभा सकने वाली योग्यता से भी वंचित कर दिया है, वह उन्हीं अवांछनीयताओं को निरस्त कराना चाहती है और इसी के लिए तनकर खड़ी हो रही हैं। इसमें किसी को विद्रोह या प्रतिशोध की गंध नहीं सूँघनी चाहिए। हमारा बैर बीमारी से है– उसी को मिटाना है। बीमार तो हमारा आत्मीय है उसकी रक्षा तो प्राण-प्रण से की जायेगी।

नारी की क्षमता का सदुपयोग हो

स्वस्थ, शिक्षित, सक्षम, सुयोग्य और कुशल नारी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि सभी क्षेत्रों में उपयोगी सिद्ध हो सकती है। उसकी गतिविधियाँ यदि चौके चूल्हे तक, बच्चे पैदा करने और घर की चौकीदारी भर करने तक ही सीमित न रहने दिया जाय, उसे विकसित होने दिया जाय, तो मानव जाति की सर्वतोमुखी प्रगति में भारी सहयोग मिल सकता है। जो भार आज अकेले पुरुष को उठाना पड़ रहा है उससे कंधा मिलाने वाला दूसरा साथी भी मिल जाय तो प्रगति का चक्र दूनी गति से घूमने लगेगा।

यह कल्पना तो हमें अच्छी लगती है, लेकिन उस स्थिति से हम बहुत दूर हैं। नारी की वर्तमान स्थिति दयनीय भी है और दुर्भाग्यपूर्ण भी। दयनीय इस अर्थ में कि उसके मनुष्यता के अधिकार छिन गये हैं, पशुओं के लिए भी अनुचित लगने वाले बन्धनों में उसका शरीर और मन जकड़ा हुआ है। दुर्भाग्य इस अर्थ में कि इस अनीति को बदलने की जगह उसे स्वाभाविक माना जा रहा है, उसे स्वीकार किया जा रहा है। इस स्थिति को बदल डालने के लिए किसी भी वर्ग में कोई खास उत्सुकता या आतुरता नहीं दिखाई देती, लगता है जैसे सबने अफीम की गोली खा रखी हो। स्थूल दृष्टि से न सही पर विवेक की दृष्टि से हर वर्ग किसी न किसी नशे में ही डूबा हुआ है। इसीलिए इस अति महत्त्वपूर्ण पक्ष को किसी न किसी स्वार्थ की आड़ में उपेक्षित किया जा रहा है।

पुरुष वर्ग सोचता है कि अपने बड़प्पन के झूठे अहंकार को बनाये रखने का यह अच्छा रास्ता है। नारी के अविकसित होने से अपनी उचित-अनुचित मनमानी चलाने का अवसर वह क्यों खोये ? नारी वर्ग इसलिए सन्तुष्ट है कि उसे पिंजड़े में पाले पक्षी की तरह निश्चिंत रहने का ठिकाना मिल जाता है। समाज इसीलिए चुप है कि वैसे ही हर क्षेत्र में असंतोष के विस्फोट हो रहे हैं, नारी समाज को उत्साहित करके एक और सिर दर्द क्यों मोल लिया जाय? राजनेता इसलिए सहमकर रह जाते हैं कि विकसित नारी अपने लिए नये कार्य और नये क्षेत्र माँगने लगेगी। कलाकारों को धन कमाने के लिए नारी के अश्लील भद्दे रूप उभारने की छूट चाहिए। लेखनी, चित्रकारी, मूर्तिकला, संगीत और अभिनय कला के सभी क्षेत्रों में नारी के शील की धज्जियाँ उड़ाने में ही अपनी सार्थकता समझी जा रही है। सस्ती प्रशंसा और थोड़े श्रम में अधिक कमाई उन्हें इसी रास्ते से मिलती दिखाई देती है। जाग्रत नारी अपनी ऐसी दुर्गति कभी सहन नहीं करेगी तो फिर इन कलाकारों को भी आजीविका के लिए श्रमिकों जैसा कठोर श्रम करना पड़ सकता है। यह उन्हें क्यों अच्छा लगने लगा? व्यापारी को विज्ञापनबाजी के लिए भी यही रास्ता पसंद है। नारी यौवनोन्मत्त रूप को हर वस्तु के साथ जोड़ने से ही उसे अपना अधिक लाभ होता दिखता है। पुस्तक-प्रकाशक, चित्र-प्रकाशक,

फिल्म-निर्माता सभी की हत्या करके ही लाभ कमाने पर तुले हुए हैं। इसी प्रकार मनुष्य की पशुता उभार कर वे उनकी जेब से मनमाने पैसे निकलवा पाते हैं । जाग्रत नारी के साथ ऐसा बेहूदा खिलवाड़ करना सम्भव न हो सकेगा। इसलिए यह अपना लाभ इसी में सोचते हैं कि नारी अविकसित ही बनी रहे। उसके प्रति हमदर्दी दिखाने के लिए झूठे आँसू बहाये जावें, किन्तु ऐसा कुछ न होने दिया जाय जिसके आधार पर नारी समाज में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन हो सके।

धर्म और अध्यात्म क्षेत्र के व्यक्तियों में भी इस संदर्भ में विशेष आशा नहीं की जाती। उँगलियों पर गिनने लायक थोड़े से व्यक्तियों को छोड़कर उनमें से लगभग सभी श्रेष्ठता-महानता के केवल स्वप्न ही देखा करते हैं। वे आदिशक्ति ब्रह्मविद्या, सरस्वती, गायत्री, लक्ष्मी, दुर्गा आदि के रूपों में नारी की पूजा तो करते हैं, किन्तु उनकी अन्धश्रद्धा केवल आकाश में रहने वाली अदृश्य देवियों तक ही सीमित है। धरती के यथार्थ जीवन पर उनका विश्वास ही नहीं होता, इसलिए धरती पर रहने वाली देवियों के प्रति उनके मनों में न संवेदना जागती है न श्रद्धा। नारियों की पूजा करके धरती को स्वर्ग बनाने के भगवान मनु की उक्ति वे दोहराते भले हों, परन्तु उनका व्यवहार तो उसके विपरीत ही होता है। नारी पर प्रतिबन्ध लगाना वे धर्म मानते और मनु के आदर्शों को क्रियान्वित होने में रोड़ा ही अटकाते रहते हैं।

ऐसे स्थिति में जबकि हर क्षेत्र के साधन और क्षमता-सम्पन्न व्यक्तियों की ओर से निराशा होती है, एक दिशा से आशा की चमक अभी भी दिखाई देती है, वह है जन-सामान्य की संयुक्त शक्ति। जन-साधारण के पास शक्ति और साधन सीमित होते हैं यह बात सही है, किन्तु यह भी सही है कि बूँद-बूँद से सागर बनता है। जन-शक्ति जब किसी दिशा में एक साथ लग पड़ती है तो वह दुर्गा बन जाती है। इसी चण्डी से इस अनाचार की असुरता के विनाश की आशा की जा सकती है। नारी के प्रति बरता जाने वाले अनाचार की तुलना महिषासुर से की जा सकती है। यह असुर संसार की आधी जनसंख्या को दुर्भाग्य और संकट सहने के लिए मजबूर किये हैं। लोक-शक्ति की सिंहवाहिनी ही इस प्रचलन की समाप्ति और इस असुरता का संहार करने में समर्थ है। अपने देश में और विश्व में अनेक बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं और हो रहे हैं। उनका श्रेय कोई भी ले ले, नेता कोई भी कहला ले, किन्तु पीछे प्रधान भूमिका इसी लोकशक्ति की होती है।

समाज के मूर्धन्य कहलाने वाले, अगुआओं, मुखियाओं ने यदि इस दिशा में उचित ध्यान दिया होता तो समस्या का समाधान अब तक हो भी चुका होता। सत्ताधारी, बुद्धिजीवी, साहित्यकार, कलाकार, प्रतिभावान्, धनवान् आदि वर्ग के लोग नारी उत्थान के लिए चाहकर भी कुछ न कर सकें ऐसी स्थिति नहीं है। जिनमें जीवन है, साहस है ऐसी आत्माएँ साधन रहित होने पर भी बहुत कुछ कर लेती हैं। आदर्श के प्रति लगन हो तो वह किसी भी क्षेत्र में चमत्कार पैदा कर सकती है। युग ने उसी को आज पुकारा है। समय की माँग है कि आदर्श के लिए कुछ कर गुजरने की सजीवता उभरे। न्याय के पक्ष में, औचित्य को जीवित रखने की जागरूकता बढ़े। सजगता और क्रियाशीलता केवल तुच्छ स्वार्थों में उलझकर ही न रह जाय, अपने युग की पीड़ाओं और अनीतियों को मिटाने, हटाने के लिए साहस भरा सहयोग दे।

इतिहास साक्षी है कि भारतीय परम्परा नारी को हीन मानने की, प्रतिबन्धित रखने की नहीं रही है। नारी का प्रधान कार्यक्षेत्र घर तथा पुरुष का कार्यक्षेत्र बाहर रहा है। यह सुविधा और व्यवस्था की बात है, कोई बन्धन नहीं। आवश्यकता के अनुसार पुरुष भी घरेलू काम कर सकते हैं और नारी भी आजीविका उपार्जन जैसे बाहर वाले कार्य कर सकती है। बहुत से पुरुष घरेलू नौकरों के रूप में भोजन बनाने, बर्तन साफ करने, बच्चों को खिलाने आदि का कार्य करते हैं। ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है कि यह काम तो केवल महिलाएँ ही कर सकती हैं, पुरुष नहीं। इसी प्रकार महिलाओं पर भी यह प्रतिबन्ध उचित नहीं है कि वे नौकरी-व्यवसाय जैसे कार्य न करें।

यहाँ यह नहीं कहा जा रहा है कि नारियों को प्रगतिशील बनने के लिए नौकरी और व्यवसाय जैसे कार्य करने ही चाहिए, किन्तु उन्हें हर दृष्टि से स्वावलम्बी बनने देने में कोई प्रतिबन्ध, कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए। परम्परा के नाम पर उन्हें घर के पिंजड़े में बंद कर देना, घर के बाहर पैर न रखने देने आदि प्रतिबन्धों को किसी भी तरह उचित नहीं ठहराया जा सकता, बीच के कुछ सौ वर्ष के अन्धकार युग को छोड़ कर भारतीय समाज में नारी कभी प्रतिबन्धित नहीं रही। वह पुरुष के साथ हर क्षेत्र में कंधों से कंधा मिलाकर, कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ती रही है। जो काम नर कर सकता है उसे नारी ने भी उसी उत्साह और कुशलता से पूरा कर दिखाया है । इसीलिए भारतीय संस्कृति के गौरव भरे आकाश में प्रतिभाशाली नारियों के चरित्र तेजस्वी नक्षत्रों की तरह चमकते दिखाई देते हैं। मध्य युग में हजार प्रतिबन्ध होने पर भी जब भी मौका मिला, नारी की तेजस्विता की अनोखी चमक बीच-बीच में देखने को मिलती रही है। उसने अपनी प्रतिभा और पुरुषार्थ के बल पर अपने क्रिया-कलापों में नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। व्यक्तिगत प्रखरता में वह पिघलकर नहीं रही, अग्रिम पंक्ति में ही खड़ी हुई है। जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें यह कहा जा सके कि अवसर मिलने पर भी नारी फिसड्डी सिद्ध हुई है। हाथ-पैर

जकड़ कर, मुँह और आँख पर पट्टी बाँधकर लोहे के पिंजड़े में बन्द कर देने पर तो किसी की भी दुर्गति हो सकती है। नारी का वर्तमान पिछड़ापन स्वाभाविक नहीं, बलपूर्वक थोपा गया अभिशाप है अन्यथा नारी की प्रतिभा कभी भी कुण्ठित होने जैसी नहीं है मध्य युग में भी उसकी प्रखरता समय-समय पर प्रकट होती ही रही है।

फ्रांसिसी यात्री वर्नियर ने अपनी पुस्तक 'भारत यात्रा' में जोधपुर नरेश यशवन्त सिंह की वीरपत्नी का बड़े भावनापूर्ण शब्दों में उल्लेख किया है। यशवन्त सिंह औरंगजेब की सेना से लड़ने जाते हैं, पर रूपवती पत्नी के मोह एवं युद्ध में लाभ-हानि का हिसाब लगाकर वापस लौट पड़ते हैं। रानी को जब यह समाचार मिलता है तो उनके किले में घुसने से पहले ही भीतर से फाटक बंद करा देती हैं और कहलवा देती हैं, कि लौटने वाला मेरा पति वीर यशवन्त नहीं हो सकता, वह कायरतावश वापस नहीं लौट सकता। जो लौटा है वह नकली यशवन्तसिंह होगा उसे किले में प्रवेश न करने दिया जाय। इस धिक्कार पर वे फिर लड़ने के लिए लौट गये। जब वे विजयी बनकर वापिस आये तो उन्हें किले में प्रवेश मिला।

बूँदी की हाड़ारानी ने अपने रूप-मोह में अपने पति सरदार चूड़ावत को युद्ध से कतराते देखा तो कहा मुझे भी सदा के लिए साथ ले जाइए, पर कायरता मत दिखाइए। रानी ने अपने हाथों अपना सिर काट कर उसके हाथ पर रखते हुए उसे मोह मुक्त कर दिया। वे तत्काल युद्धक्षेत्र को चले गये।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता को कौन नहीं जानता। सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने युद्ध संचालन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही। अँग्रेजी सेना से अद्भुत पराक्रम के साथ लड़कर वह वीर गति को प्राप्त हुई। अँग्रेज सेनापति ने उनके सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट में लिखा था ''शी वाज दि बैस्ट एण्ड ब्रेवैस्ट एमंगस्ट दैम' अर्थात उस समय के योद्धाओं एवं सेनानायकों में वह सबसे अधिक योग्य और सबसे अधिक बहादुर थी।

छत्रपति शिवाजी की माता जीजाबाई एक बार अनीति के विरुद्ध अपने पिता से ही तलवार लेकर लड़ने खड़ी हो गई और पिता को अपने कदम वापिस लेने पड़े। शाहजी तो नवाब की नौकरी में ही सारा समय लगाते थे। शिवाजी को हर पक्ष से अद्वितीय बनाने का सारा का सारा श्रेय माता जीजाबाई को ही मिलता है।

गढ़ मण्डला की विधवा रानी दुर्गावती ने कई बार मुगल आक्रमणकारियों से अपने किले की रक्षा करने के लिए असाधारण साहसिकता भरे युद्ध कौशल का परिचय दिया। अन्तिम आक्रमण से आत्म-रक्षा करते हुए वे वीरगति को प्राप्त हुईं पर उनका शौर्य-साहस सदा अमर रहेगा।

पन्ना धाय की स्वामिभक्ति को इतिहास सदा स्मरण रखेगा। अपनी सुरक्षा में सोये मालिक के बच्चे के प्राण बचाने के लिए उसने अपने सगे बेटे को उसकी जगह लिटा दिया।

वीरांगना ताराबाई, कर्मावती, कमला, कर्णवती जैसी अनेकों भारतीय महिलाओं की शौर्य गाथाओं से इतिहास के पृष्ठ सदैव जगमगाते रहे हैं।

इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई एक छोटे-से गाँव में जन्मी निर्धन किसान परिवार की कन्या थी। उनकी साधना निष्ठा तथा साहसिकता के अनेक वृत्तान्त राजभवन में चर्चा के विषय बने रहते थे। राजा ने उसके पिता से स्वयं अनुरोध करके उस लड़की को महारानी बनाया था। अहिल्याबाई के शासन काल को अन्य देशी रजवाड़ों की तुलना में आदर्श माना जाता है।

चाँदबीबी ने आक्रमणकारियों के छक्के छुड़ाने वाली लड़ाई किस सफलता के साथ लड़ी थी यह इतिहास के विद्यार्थियों को भली प्रकार मालूम है। शाहजहाँ के शासन की असली बागडोर उसकी पुत्री जहाँआरा के हाथ में रहती थी।

दिल्ली के अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाह ने अँग्रेजी शासन उखाड़ने के लिए आयोजित विद्रोह का सूत्र-संचालन किया। ऐसा स्वयं बादशाह ने नहीं, वरन् उनकी पत्नी बेगम जीनत महल ने किया था। बहादुरशाह के साथ ही बेगम जीनत महल को भी देश निकाला दिया गया था। उन्हीं दिनों एक घुड़सवार वृद्धा का नाम भी गदर के नेताओं में अँग्रेजी इतिहासकारों ने किया है। यह महिला हरे वस्त्र पहनती थी, इसीलिए उसे 'सब्जपरी' कहा जाता था। अँग्रेज सेनापति हडसन ने उसकी बहादुरी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वह अँग्रेजों से लड़ते हुए घायल हुई थी और बन्दी बना ली गई थी। अँग्रेज सेनापति रसल ने एक और क्रान्तिकारिणी बेगम हजरत महल की वीरता और युद्ध कला के सम्बन्ध में लिखा है। उसकी चतुराई और वीरता देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में महिलाओं की आहुतियाँ इतनी अधिक हैं कि उनका विवरण इकट्ठा करने पर हमारा मस्तक गर्व से ऊँचा उठ जाता है। ईश्वरभक्ति और धर्म प्रचार में पिछली शताब्दियों की अगणित महिलाओं के उज्ज्वल व्यक्तित्व सामने हैं। समाज सेवा के क्षेत्र में भी वे पीछे नहीं रही हैं। शासकीय उत्तरदायित्वों को उन्होंने भली प्रकार निबाहा है। वे कुशल प्रशासक सिद्ध होती रही हैं। शिक्षा एवं कला-कौशल में उनने अपने को पीछे नहीं रहने दिया।

भारत कोकिला श्रीमति सरोजनी नायडू राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रिम मोर्चे पर लड़ीं। उनकी साहित्यिक क्षमता भी अद्भुत थी। वे उत्तर प्रदेश की राज्यपाल भी रहीं। सामाजिक जीवन में उनकी अनेकानेक सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी।

पं० जवाहर लाल नेहरू की बहिन श्री विजय लक्ष्मी पण्डित की प्रतिभा विश्वविख्यात रही है। वे बहुत समय तक राष्ट्र संघ की अध्यक्षा भी रह चुकी हैं।

सार्वजनिक सेवा, ज्ञान, वैराग्य, लोकहित, आदर्शवादी जीवनयापन तथा लोक-मंगल के लिए बढ़-चढ़ कर अनुदान प्रस्तुत करने में अपने गये-गुजरे जमाने में भी कितनी ही महिलाएँ अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करती रही हैं। विषम परिस्थितियों में रहते हुए भी उनने जो कुछ कर दिखाया उसके लिए मनुष्य जाति चिरकाल तक कृतज्ञ बनी रहेगी।

मीरा के गीत आज न केवल भावनाओं को आलोकित करते हैं, अपितु वे राष्ट्र की महान् साहित्यिक सम्पदा बन गये हैं।

अपन साधना और संस्कारों के विकास के लिए उन्हें अपने कुटुम्बियों के अपमान का सामना करना पड़ा, पर वे उससे बिल्कुल विचलित न हुईं और प्रत्येक कसौटी पर खरी उतरीं।

बाल-विधवा लक्ष्मीबाई ने अपना जीवन रोने-कलपने में लगाने की अपेक्षा महिला सेवा के लिए समर्पित करना उत्तम समझा। उन्होंने हाथरस (उ० प्र०) में एक शानदार कन्या गुरुकुल खड़ा कर दिया, जहाँ से सुयोग्य स्नातिकाएँ और समाज सेविकाएँ मुद्दतों से निकल रही हैं।

नागपुर में किसी समय की नर्स कक्षा की छात्रा कमला हास्पेट ने अपने अँग्रेज अध्यापक के दुर्व्यवहार से खिन्न होकर स्कूल छोड़ दिया और एक समानान्तर अस्पताल बनाने की ठान कर उसी कार्य में जुट गई। उसकी लगन-योग्यता और प्रामाणिकता से प्रभावित जनता ने मुक्तहस्त से सहयोग दिया और अब उनका साधन-सम्पन्न अस्पताल जनता की भारी सेवा कर रहा है।

त्रिवेन्द्रम की डॉ० पूजम ने डाक्टरी की उच्च शिक्षा पूरी करने के बाद आजीविका उपार्जन की बात मस्तिष्क में प्रवेश ही नहीं करने दी और 'मातृ एवं शिशु कल्याण' आन्दोलन चलाने में लग गयीं। उन्होंने इस प्रयोजन की शिक्षा देने वाले कितने ही केन्द्र स्थापित किए और आजीवन सेवा कार्यों में जुटी रहीं।

लोकहित के सार्वजनिक कार्यों में अपना सारा जीवन होम देने वाली, आजीवन कुमारी रहकर देश-धर्म और समाज-संस्कृति को ऊँचा उठाने के लिए अपने सर्वस्व की बाजी लगा देने वाली महिलाओं के नाम गिनना और संख्या बताना कठिन है। ऐसे उदाहरण किसी भी क्षेत्र से बड़ी संख्या में मिल सकते हैं, जिनमें उन्होंने अपनी सारी की सारी धन-सम्पदा परमार्थ कार्यों के लिए समर्पित कर दी। पूजा-पाठ और दान-पुण्य के मामले में तो स्त्रियाँ सदा से ही भावुक रही हैं। उन्हीं के अनुदान धर्म-संस्थानों का प्रधान रूप से पोषण करते रहे हैं। थोड़ा-सा सहारा मिलते ही अब उनमें प्रगतिशीलता एवं विवेकशीलता भी जाग उठी है। वे अपनी सहज उदारता तथा सेवा-भावना का लाभ युग निर्माण आन्दोलन और महिला जागरण अभियान जैसे सच्चे धर्म कृत्यों में लगाने के लिए भी मुड़ रही हैं। इस दिशा में भी उनका उत्साह वैसा ही रहता है, जैसा पहले साधारण धार्मिक कर्मकाण्ड के लिए था।

केवल हमारे देश का ही नहीं, सारी दुनिया का इतिहास नारी वर्ग द्वारा दिए गए गौरवमय अनुदानों की कहानी कह रहा है। संसार के पिछड़े हुए या प्रगतिशील किसी भी देश पर दृष्टि डाली जाय, नारी को जहाँ भी जो भी मौका मिला है, वह अपनी विशेषताओं का परिचय देती रही है। उसके व्यक्तिगत जीवन में आदर्श-प्रेम, कार्यों में पुरुषार्थ की प्रखरता और लोक-सेवा के लिए उदारतापूर्वक समर्पण की चमक किसी न किसी रूप में देखने को मिल ही जाती है।

फ्रांस में कुमारी जोन ऑफ आर्क का नाम उसी श्रद्धा से लिया जाता है जैसा कि हमारे देश में झाँसी की रानी का। कुमारी जोन आर्क नामक गाँव के एक साधारण किसान परिवार की बेटी थी। उस समय फ्रांस पर अँग्रेजों का शासन था। जोन ने राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष सेना गठित की । उसके नेतृत्व में साधनहीन किसानों और साधारण नागरिकों ने सब प्रकार से प्रशिक्षित और सभी हथियारों से लैस शस्त्र सेना के नाकों चने चबवा दिए। बाद में धोखे से जोन को गिरफ्तार कर लिया गया। बड़े से बड़े लोभ और भयंकर से भयंकर भय उसे डिगा न सके। खीझकर क्रूर शासकों ने उसे चौराहे पर जिन्दा जला दिया, किन्तु उसके बलिदान ने जो आग जगा दी वह स्वतन्त्रता लेकर ही शान्त हुई। उसे आज भी फ्रांस के नागरिक देवी की तरह पूजते हैं और सारा संसार उससे प्रेरणाएँ प्राप्त करता है।

सम्राट् जार के आतंक से सारे रूस का घर-घर काँप रहा था। उसकी आततायी प्रवृत्ति रोकने के प्रयास में एक युवक को अपराधी ठहराया गया और उसे फाँसी की सजा दी गई। उसकी वीर माता ने अपने दूसरे बेटे से कहा-

"बेटे ! अब तुम्हारी बारी है। जब तक अन्याय का अन्त न हो तब तक बलिदान की परम्परा बंद नहीं होनी चाहिए।" अपने पुत्र को इस तरह प्रेरणा देकर महान लेनिन बनाने में उनकी माता इलिया को एकमात्र श्रेय दिया जाता है।

रूस से स्वतन्त्रता संग्राम में कैथराइन, जोया कोस्मोट जैसी हजारों महिलाओं ने फाँसी का तख्ता चूमा था और बढ़-चढ़ कर त्याग-बलिदान के आदर्श प्रस्तुत किये थे।

शासन का सूत्र-संचालन जब भी नारियों के हाथ आया है, तब उन्होंने उसे भली प्रकार सँभाल सकने में अपनी दक्षता का परिचय दिया है। इंग्लैण्ड की साम्राज्ञी विक्टोरिया, इसराइल की गोल्डा मेयर, लंका की भण्डार नायके और भारत की इन्दिरा गाँधी की सफलताओं को कौन नहीं जानता। संसारभर में नारियों के हाथ में समय-समय पर शासन की बागडोर पहुँचती रही है। इन क्षेत्र में भी उनकी क्षमता और कुशलता पुरुषों की तुलना में कमजोर सिद्ध नहीं हुई।

प्राणिमात्र के प्रति संवेदना, नारी का महत्वपूर्ण गुण है। उसका यह गुण उसके अन्दर से प्रचण्ड शक्ति पैदा कर देता है, जिसके सहारे वह अभूतपूर्व काम कर दिखाती है।

स्काटलैण्ड की एक महिला एलिजाबेथ फ्राई ने बन्दियों की दुर्दशा देखी तो वे रो पड़ीं। उनका रोना असहायों जैसा न था। बन्दियों की दशा सुधारने के लिए उन्होंने प्रचण्ड आन्दोलन चलाया। उनकी आवाज सुनी गई और न केवल स्काटलैण्ड में वरन् सारे संसार के जेलखानों की व्यवस्था को फ्राई के आन्दोलन ने प्रभावित किया। संसार भर के कैदी इस महिला के सदैव ऋणी बने रहेंगे।

एमिली ग्रीन ने पुरुषों की तुलना में नारी का दर्जा नीचा न रहने देने की दृष्टि से न केवल अमेरिका में ही, बल्कि सारे योरोप में भी शक्तिशाली आन्दोलन चलाया था। यहीं की जेन एडम्स नामक एक दूसरी समाज सेविका के सहयोग से सशक्त अन्तर्राष्ट्रीय महिला लीग बनी। उनकी समाज सेवा के सम्मान में उन्हें सन् १९४६ का नोबिल पुरस्कार दिया गया था। उन्होंने सुख-सुविधाओं को लात मारकर गिरे हुओं को ऊँचा उठाने में अपना जीवन समर्पित किया। जीवन भर कुमारी रहीं और पैतृक तथा स्वयं कमाये धन को दीन-दुखियों की सेवा में लगाती रहीं। उसके द्वारा संचालित अनेकों सेवा केन्द्र अभी भी फल-फूल रहे हैं। बच्चों के सुधार का एक कानून 'जेन एडम्स कानून' है। कानून का यह नामकरण उस देवी की सेवा-साधना के उपलक्ष में उस देश की सरकार ने किया।

अमेरिका में, काले लोगों को दासता से मुक्त करने के लिए गोरे लोगों को विवश कराने का आन्दोलन करने वाली महिला- हैरियट स्टो का नाम सदा से लिया जाता रहेगा। वे एक सामान्य गृहिणी थीं। लेकिन उनकी लिखी पुस्तक 'टाम काका की कुटिया' ने पूरे अमेरिका में ऐसे आग जला दी थी जो दास प्रथा का अन्त करके ही शान्त हुई।

जापान के गाँधी कहे जाने वाले 'कागाबा' कालेज से निकलने के बाद पीड़ितों और पतितों की सेवा में लग गये। उस निर्धन सेवासाधक का सहयोग करने के लिए एक सुयोग्य लड़की आई। यह उन्हीं के साथ विवाह बंधन में बँधकर अपने पति का हाथ जीवन भर बड़ी निष्ठा के साथ बँटाती रही। उसका नाम था 'स्प्रिंग' अर्थात् वसन्त ऋतु । वह देवी कागाबा के कठिनाइयों से भरे जीवन में अपने स्नेहभरे सहयोग से सचमुच ही बसन्ती बहार बिखेरे रही।

रूस के कीव नगर में एक बढ़ई के घर जन्मी लड़की इसराइल देश की प्रधान-मन्त्री बनी और गोल्डा मेयर के नाम से विश्वविख्यात है। उसने अपने प्रतिभा एवं चरित्र-निष्ठा से अपने देशवासियों में प्राण फूँक दिए। उस रेगिस्तान में बसे हुए छोटे से देश को अत्यन्त शक्तिशाली बना दिया। राजनेता की तुलना में समाज सेविका अधिक रही हैं। अपने देश को कहाँ से कहाँ पहुँचा देने का श्रेय उनकी अनन्य सेवा-साधना को ही दिया जाता है।

घायलों, बीमारों की सेवा करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्था 'रैड क्रास' को जन्म देने वाली फ्लोरेंस नाइटेंगिल- संसार में फैले हुए थियोसॉफी आन्दोलन की सफल संचालिका मैडम ब्लैवटस्की- की मूर्धन्य विज्ञान वेत्ता मेडम क्यूरी जैसी महिलाओं की गौरवगाथा कभी भी भुलाई नहीं जा सकेगी।

योरोप की कितनी ही सुयोग्य महिलाएँ अपना सुख-साधन छोड़कर भारत के पिछड़े वर्ग की सेवा करने इस देश में आईं और इसी देश की मिट्टी में समा गईं। ऐसी देवियों में मानवतावादी महिला टेरीसा, मिस्टर निवेदिता, मिस स्लेड, ऐनी बीसेन्ट, मेरी कीड आदि का नाम अत्यन्त आदरपूर्वक लिया जाता है। उन्होंने संन्यासियों जैसा जीवन बिताया और जीवनभर सेवासाधना में लगी रहकर अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया।

शिक्षा और साहित्य का क्षेत्र भी नारी से छूटा नहीं है। उसमें भी वह अपनी प्रतिभा दिखाती रही हैं।

'स्वतः लिखी आत्म-कथा' तथा 'मेरा अन्तर्जगत' इन दो अमूल्य पुस्तकों की लेखिका कुमारी हेलन केलर अन्धी, बहरी और गूँगी भी थी, किन्तु अपने मन की लगन और लगातार श्रम द्वारा उन्होंने अनेक परीक्षायें प्रथम श्रेणी में पास कीं। वे अँग्रेजी, जर्मन, लैटिन तथा फ्रेन्च भाषाओं की महान विद्वान हुईं। संसार के अनेक विश्वविद्यालयों ने उन्हें डाक्टर की उपाधि देकर सम्मानित किया था।

नार्वे की सिग्रिड अनसेट एक निर्धन परिवार में जन्मी। उसने प्रेरणाप्रद साहित्य सृजन को अपना लक्ष्य बनाया और तन्मयता के साथ उसी में जीवन भर लगी रहीं। नारी और बच्चों के सम्बन्ध में उन्होंने बहुत ही खोजपूर्ण साहित्य लिखा है। नोबेल पुरस्कार इन्हें भी मिला था।

संसारभर में एक मनोवैज्ञानिक बाल शिक्षा प्रणाली 'मान्टेसरी' पद्धति के नाम से प्रख्यात है। उस आधार को बहुत उपयोगी माना गया है और दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर तक इस पद्धति के लाखों बाल विद्यालय चल रहे हैं। इस विधि को जन्म देने वाली महिला मान्टेसरी इटली के एक गरीब परिवार में जन्मीं थी। किशारोवस्था से वे किसी भयंकर बीमारी से पीड़ित हुईं और मरने की स्थिति तक पहुँच गईं। रोग शैय्या पर पड़े-पड़े ही उनने निश्चय किया कि यदि बच गई तो सारा जीवन लोकहित में लगा देंगी। अच्छी होते ही उन्होंने बाल विकास को अपना कार्यक्षेत्र चुना और मरते दम तक उसी सिलसिले में तरह-तरह के प्रयोग करने और विद्यालय चलाने में लगीं रहीं। अन्त में उनकी बाल-शिक्षा पद्धति को संसार भर में मान्यता मिली।

नारी और नर दो वर्ग, दो पक्ष नहीं हैं; एक ही चेतना के, एक ही सत्ता के दो, एक से पहलू हैं। दोनों को समान रूप से विकसित होने देना ही उचित है। न मालिकी में सन्मान है और न गुलामी में आराम। यह सहकारिता का युग है। इसमें सहयोग की उपयोगिता एक स्वर से स्वीकार कर ली गई है और यह समझ लिया गया है कि सहयोग स्वेच्छा से ही हो सकता है।

समुन्नत देशों में जहाँ भी नारी को मनुष्योचित अधिकार मिले हैं, वहीं वह पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर काम कर रही है, किन्तु भारत में नारी समाज आज भी नितान्त पिछड़ी हुई स्थिति में पड़ा है। पिछड़ी हुई नारी, नर के लिए भी किसी भी क्षेत्र में सहायक न हो सकेगी। भारत में वह प्रयोग दीर्घकाल तक हो चुका और वह सर्वथा हानिकारक सिद्ध हुआ, अब उस प्रचलन को बनाये रखने में कोई बुद्धिमानी नहीं है।

यूगोस्लेविया की महिलाएँ उस देश की पूरी कृषि व्यवस्था सँभालती हैं। पुरुष फौज, पुलिस, दफ्तर, कारखाने सँभालते हैं। कृषि, पशुपालन में उन्हें कोई श्रम या हस्तक्षेप नहीं करना पड़ता। चीन, रूस आदि श्रम-निष्ठ देशों में जाकर देखा जाय तो पता चलेगा कि पारिवारिक और राष्ट्रीय सम्पदा सुरक्षा और सुख-सुविधा बढ़ाने में वे कितना बड़ा योगदान दे रही हैं। रूस की शिक्षा-व्यवस्था का अधिकांश उत्तरदायित्व महिलायें ही वहन करती हैं। शिक्षा संस्थाओं में पुरुषों की संख्या बहुत ही कम दिखाई पड़ेगी। अस्पतालों एवं स्वास्थ्य-संस्थाओं का उत्तरदायित्व भी उन्हीं का है। डाक्टर, कम्पाउण्डर, नर्स आदि का कार्य करती हुई महिलाएँ ही देखी जाएँगी, पुरुष तो जहाँ-तहाँ ही दृष्टिगोचर होंगे।

जापान की महिलाएँ उद्योग धन्धों के विकास में पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करती हैं । घर-घर में लगे, छोटे कुटीर उद्योगों में संलग्न रहकर वे अपने समय का उपयोग घर-परिवार को और समूचे राष्ट्र को सम्पन्न बनाने में करती हैं। जर्मनी मे कल-कारखानों को सँभालने में महिलाएँ पुरुष इन्जीनियरों, कारीगरों एवं व्यवस्थापकों से घटिया नहीं, बढ़िया ही सिद्ध होती हैं। इंग्लैंड, फ्रांस, कनाड़ा, अमेरिका में दुकानें चलाने में महिलाओं की प्रमुखता है, वे व्यापार कुशलता में पुरुषों से आगे हैं। शिशु-पालन, गृह-व्यवस्था तो उनके लिए खेल मनोरंजन है। ये सब तो हँसते-हँसाते निपटाती हैं। अन्य महत्वपूर्ण कार्यों को सँभालने में गृह-व्यवस्था उनके लिए तनिक भी बाधक सिद्ध नहीं होती।

अपने देश में जिन प्रान्तों और जातियों में नारी पर जितना कम बन्धन है, वहाँ वह अपने परिवार के लिए उतनी ही अधिक सहायक सिद्ध हो रही हैं। केरल प्रान्त में नारी शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया गया है, विवाह के लिए भी जल्दबाजी नहीं की जाती। इसका फल यह है कि वहाँ का पारिवारिक और आर्थिक स्तर अन्य प्रान्तों की तुलना में कहीं अच्छा है। पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, दक्षिण भारत आदि क्षेत्रों में पर्दा प्रथा जितना कम है कृषि व्यवसाय आदि क्षेत्रों में नारी का जितना प्रवेश है, उतना ही स्वास्थ्य, सम्पन्नता और व्यवस्था का स्तर वहाँ बढ़ रहा है। जिन जातियों और क्षेत्रों में स्त्रियों को जितने कठोर बंधन में रखा जाता है उतना ही उनका, उनके परिवार का स्तर गिरता हुआ चला जा रहा है। यदि अपने देश का भ्रमण करके देख लिया जाय तो पता चलेगा कि अभावग्रस्त स्थिति में भी पिंजड़े से बाहर निकल सकने वाली श्रमजीवी अशिक्षित स्त्रियाँ भी पर्दानशीनों की तुलना में कितनी सुखी हैं।

प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को यह अनुभव करना चाहिए कि कालचक्र तेजी से आगे बढ़ रहा है। उससे अनीति भरे प्रचलन देर तक सहन नहीं किये जा सकेंगे। कुछ समय पूर्व संसार के अनेक क्षेत्रों में असहाय लोग गुलामों की तरह पकड़े और बेचे जाते थे और उनसे मनचाहे काम लिये जाते थे। बेचारे गुलाम तो मालिकों से लड़कर मुक्ति न पा सके परन्तु विश्व के जाग्रत विवेक ने उनका पक्ष लिया। फलस्वरूप मालिकों को वह अपना दुष्टताभरा लाभदायक धंधा छोड़ना पड़ा। अमेरिका के समझदार-समझदार वर्ग ही दास-प्रथा के समर्थन और विरोध के लिए आपस में लड़ पड़े। उस भयंकर गृह-युद्ध का अन्त तभी हुआ जब गुलाम प्रथा का अन्त कानूनी रूप से हो गया।

राजतन्त्र दुनिया में से मिट गये या मिटने जा रहे हैं। उनमें कोई बहुत बड़ा खून-खराबा नहीं हुआ है। समय की प्रबलता ने उनकी कमर में लात मारकर उन्हें औंधे मुँह धकेल दिया। सरदार पटेल कहते थे कि मेहत्तर को झाड़ू अधिक कारगर साबित हुई। पूँजीवाद बुरी तरह बर्फ के समान गलता चला जा रहा है, उसके स्थान पर समता के प्रचलन किस तेजी से अपनाये जा रहे हैं। इस परिवर्तन के चक्र को तेजी से घूमते हुए कोई भी आँखों वाला देख सकता है। इन परिवर्तनों में शोषकों और शोषितों के बीच मल्लयुद्ध नहीं हुआ है। भीतरी विरोध ही उन्हें तोड़ डालने के लिए काफी रहे हैं। साम्यवाद के सैद्धान्तिक समर्थकों में निर्धन लोग ही आगे नहीं आये, उसके प्रतिपादकों, प्रचारकों और योद्धाओं में बड़ी संख्या उनकी थी जो दरिद्र नहीं सम्पन्न थे। टालस्टाय, बिस्मार्क, क्रोपाटिकन, बर्नाडशा, बर्ट्रेण्डरसेल, नेहरू आदि दरिद्र या शोषित वर्ग के नहीं थे, फिर भी उनने वकालत शोषितों की ही की।

यह आवश्यक नहीं कि नर के सामने नारी को विद्रोही बनकर ही खड़ा होना पड़े। यह कार्य उसकी वकालत पर उतारू विश्वात्मा ही कर देगी। उतनी लड़ाई तो उसके पक्ष में नवयुग का जाग्रत विवेक ही लड़ लेगा। विवेक का सूर्य उगेगा और अँधेरा अपना सा मुँह लेकर स्वयं भाग जाएगा। युग दृष्टाओं की भविष्य वाणी यह है कि नर नारी के बीच मोर्चाबन्दी नहीं होगी। सत्याग्रह, संघर्ष, फसाद, हड़ताल, अभियोग, विद्रोह आदि का

अवसर नहीं आयेगा। दोनों पक्षों की जाग्रत अन्तरात्माएँ अपना-अपना करवट बदलेंगी और न उस छोटे से परिवर्तन भर से आज की उलटी परिस्थितियाँ कल स्वयं ही उलट कर सीधी हो जाएँगी । न तो नर इन प्रतिबन्धों में कोई लाभ देखेगा और न नारी उन्हें सहन करने को तैयार होगी। इस अस्वीकृति मात्र से वह बात बन जाएगी जो आज की परिस्थिति में बहुत अधिक आवश्यक हो गयी है।

नर-नारी के बीच भेद-भाव और उसके कारण हृदय-हीनता की मनमानी अब देर तक चल नहीं सकेगी। अगले ही दिनों वे दोनों माता और पुत्र के सच्चे स्नेह, दुलार के आँचल से ढके हुए पुलकित हो रहे होंगे, भाई-बहिन की भावभरी ममता आँखमिचौनी खेल रही होगी, पिता के कंधे पर चढ़ी पुत्री अपने घोड़े को उल्लासपूर्वक हाँक रही होगी और पति-पत्नी एक-दूसरे के लिए अपना सच्चा समर्पण प्रस्तुत कर रहे होंगे। अपनी सुविधा छोड़कर दूसरे की असुविधा दूर करने में दोनों पक्षों के बीच होड़ ठनी होगी। कौन, किसके लिए कितना त्याग कर सकता है, इस होड़ में दोनों आगे निकलने के लिए पसीना बहा रहे होंगे।

नारी को साथ लिए बिना नर प्रगति के रास्ते पर दूर तक चल नहीं सकेगा । एक पैर से लम्बी मंजिल चल सकना और ऊँचे पहाड़ चढ़ सकना कठिन है । इसके लिए दोनों पैर समान रूप से समर्थ होने चाहिए । उज्ज्वल भविष्य का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए जो लड़ाई लड़नी पड़ेगी वह एक हाथ से नहीं लड़ी जा सकती । उसके लिए एक हाथ में ढाल और दूसरे में तलवार पकड़नी पड़ेगी । गाड़ी के दोनों पहियों का समान होना आवश्यक है।

गणित के विद्यार्थी जानते हैं कि १ का एक अंक ऊपर और एक अंक नीचे रखकर जोड़ किया जाय तो उनका योग २ होता है, पर यदि १ और १ के दो अंक बराबर रख दिये जाएँ तो वह संख्या २ न रहकर ११ बन जाएगी। नर और नारी में से एक ऊपर एक नीचे प्राणी तो वह असमानता अधिक से अधिक उन्हें केवल दो जीवित प्राणी भर बनाये रहेगी। पर जब वे समानता के आधार पर स्वेच्छा से सहयोग करने के लिए सच्चे मन से आगे बढ़ेंगे तो उसका प्रतिफल ५.५ गुनी शक्ति के रूप में सामने आवेगा। हर बुद्धि रखने वाला प्राणी इतना तो जानता ही है कि दूसरे पक्ष द्वारा उसके साथ क्या व्यवहार हो रहा है। यदि वह मानवोचित नहीं है तो उसकी सहज प्रतिक्रिया सच्चे सहयोग में बाधा ही उत्पन्न करेगी। चालू दृष्टिकोण में, उस स्नेह-सौजन्य की गंध नहीं है जो दो व्यक्तियों को परस्पर स्नेह-सहयोग के सूत्र में बाँधती रही है, बाँध सकती है।

पति और पत्नी का, बहिन और भाई का, पिता और पुत्री का, माता और संतान का स्नेह-सहयोग जितना गहरा, जितना वास्तविक, जितना आदर्श और जितना भावभरा होगा उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही सुखद होगी। विकसित नारी के द्वारा जो पाया जा सकता है उसकी कल्पना करने मात्र से एक उज्ज्वल भविष्य का उत्साह भरा चित्र आँखों के आगे नाचने लगता है। भारत का अतीत गौरव नारी के सहयोग का ही प्रतिफल था। तब देव-संतानें अपने महान कार्यों से संसार के कोने-कोने में सुख-शान्ति की स्थापना करती थीं। उनकी संगति पाकर विश्व के समस्त मनुष्य निरन्तर ऊँचा उठाने वाली प्रेरणा और सहायता प्राप्त करते थे। स्वर्गादपि गरीयसी भारत-माता कामधेनु की तरह इसी देश की जनता का ही नहीं सारी मानव जाति का भी हित-साधन करती थी। नर के माध्यम से दिया हुआ यह परोक्ष अनुदान नारी का ही था। उसके गढ़े खिलौने अपने तेज और व्यवहार से मनुष्यता को धन्य बना सकने में समर्थ होते थे।

यह प्रयोग अपने देश में लाखों वर्षों तक अपनाया गया और सही पाया गया। नारी को दी गई कामधेनु गौ जैसी श्रद्धा असंख्य गुनी होकर वापिस लौटी और उसका अमृत भरा पय-पान करके समस्त मानवता धन्य होती रही।

आवश्यकता इस बात की है कि उन्हीं परिस्थितियों की उन्हीं मान्यताओं को, उन्हीं प्रचलनों को फिर से स्थापित किया जाय, जिनमें रहकर नर और नारी एक दूसरे को सहयोग-सद्भाव प्रदान करने और मिलजुल कर प्रगति के उच्च शिखर तक पहुँचने में एक दूसरे की भरपूर सहायता करते रहें। हम सब का कल्याण इसी में है।

नारी उत्थान- सबसे बड़ी आवश्यकता

मनुष्य के स्वभाव में एक विचित्र बात यह है कि उसे अपनी हर आदत प्यारी लगने लगती है। अपने अभ्यास में आये हुए दोष-दुर्गुण, जो दूसरों को सहन भी नहीं होते, स्वयं को प्रिय लगते हैं। अगर कोई उन्हें छोड़ने, बदलने के लिए कहता है तो बुरा लगता है। अपने स्वभाव में सुधार की बात कहने वाले को लोग हितैषी नहीं, आलोचक और शत्रु के रूप में देखने लगते हैं।

नारी समस्या के बारे में भी कुछ ऐसी ही विचित्र घटना घट रही है। जो ढर्रा चल रहा है उसे बदलने की कोशिश क्यों की जाय? जो कुछ हो रहा है उसमें पुरुष को अपना लाभ दिखाई देता है और नारी उसकी अभ्यस्त हो गयी है। ऐसी हालत में बेकार छेड़छाड़ क्यों की जाय? इस प्रकार के प्रश्न कई परम्परावादी उठाया करते हैं।

स्थिति ज्यों की त्यों नहीं रहने देने से, उथल-पुथल के झंझट से बचा जा सकता है, लेकिन उस अनीति के बने

रहने से जो नुकसान हो रहा है उससे तो नहीं ही बचा जा सकता। आगे उज्ज्वल भविष्य जिस आधार पर बन सका है वह आधार तो उचित परिवर्तन लाये बिना नहीं बन सकते।

यह ओछी दृष्टि है, कि जब तक कोई प्रत्यक्ष हानि, उठापटक शुरू न हो तब तक किसी बात पर ध्यान ही न दिया जाय, उसे समस्या ही न माना जाय। बाँध बनाने के लिए मेहनत करने से, धन लगाने से इन्कार कर दिया जाय, क्योंकि हाल में सामने कोई परेशानी तो दिखाई ही नहीं पड़ती और बाढ़ आने पर ही भागदौड़ की जाय तो यह कोई समझदारी नहीं। भूकम्प और तूफान से प्रभावित क्षेत्र को तो समस्या माना जाय लेकिन, फालतू पड़ी, अनुपजाऊ, बंजर भूमि अथवा रेगिस्तानी इलाके को उपजाऊ बनाने को कोई काम ही न समझा जाय, क्योंकि वहाँ कोई अशान्ति तो है नहीं। यों मोटी दृष्टि से देखा जाय तो रक्त में मिले रोगाणु और लकड़ी में लगे घुन भी कोई प्रत्यक्ष अशान्ति नहीं फैलाते। नशा पीने और पिलाने वाले, रिश्वत लेने और देने वाले, एकदम शान्ति से चुपचाप अपना काम कर लेते हैं। सटोरिए, जुआरी और व्यभिचारी अपने-अपने ग्राहकों के साथ ऐसी पटरी बिठा कर रखते हैं कि न किसी के पास शिकायत पहुँचती है, न पंच फैसलों की जरूरत पड़ती है और न सरकारी सहायता लेनी पड़ती है। कोई झगड़ा-टंटा खड़ा नहीं हो रहा है, इसलिए इन गलत कार्यों को न रोका जाय, यह कोई तर्क नहीं है।

मिट्टी में पैदावार की ताकत न होना भी उतना ही कष्टकारक है जितना निरन्तर ओले बरसे पर या टिड्डी दल के आक्रमण से हरीभरी फसल का नष्ट हो जाना। महामारी फैलने के कारण कोई क्षेत्र खाली हो जाना अथवा पानी आदि जीवन-साधन समाप्त हो जाने के कारण वहाँ से लोगों का चले जाना परिणाम की दृष्टि से समान है। मोटी अकल अग्निकाण्ड जैसे उपद्रवों को ही विपत्ति मानती है। सूक्ष्म दृष्टि यह बतलाती है कि उत्पादन कम होना भी एक समस्या है। समझदारी की दृष्टि से नदी पर पुल बन जाने से यातायात में सुविधा हो जाना भी एक बड़ा काम है। नदी के किनारे कोई झंझट खड़ा नहीं होता है इससे यह नहीं मान लेना चाहिए कि रास्ता न होने के कारण कोई हानि ही नहीं हो रही है। विचारशील लोगों ने ऊबड़-खाबड़, अनुपजाऊ जमीनों को हरी-भरी बनाया है। गहरे समुद्र पर तैरने वाले जलयानों और आकाश में उड़ने वाले वायुयानों की रचना की है। दूरदर्शी लोगों की ही यह सूझ-बूझ थी कि जिनने समुद्र और आकाश में यातायात मार्ग बनाने में सफलता प्राप्त की । ऐसे ही विचारशीलों का कर्तव्य है कि वे नारी का स्तर गिरने के कारण हो रही भौतिक एवं आत्मिक हानि पर विचार करें, उसकी भयंकरता को समझें और उसे दूर करने की प्रभावशाली योजना बनायें।

यों नारी के ऊपर लगे हुए बन्धनों के कारण होने वाली कठिनाइयों का समाधान भी कम महत्त्व का काम नहीं है, परन्तु उससे भी अधिक महत्त्व की बात यह है कि अविकसित पिछड़ी हुई स्थिति में पड़ी हुई नारी को योग्य बनाया जाय। उसकी प्रतिभा से वह लाभ उठाया जाय जिसके बिना सारी मनुष्य जाति की उन्नति का मार्ग ही रुका हुआ है। सम्पन्नता और खुशहाली पैदा करने के कई आधार कहे जाते हैं। कल-कारखाने, कृषि-फार्म, व्यापार-संस्थान, यातायात के साधन आदि महत्त्वपूर्ण आधार माने जाते हैं। लेकिन यदि विकसित और योग्य नागरिकों को भी इसका आधार समझा जाय, तो यह मानना ही पड़ेगा कि अकेले नर के बूते ही सब कुछ नहीं हो सकता, उसमें नारी का भी सहयोग चाहिए और समुन्नत हुए बिना नारी ऐसा सहयोग दे नहीं सकती।

कोई उपद्रव नहीं हो रहा है, इसलिए नारी जागरण के कार्य को कोई समस्या न मानने वाले भी , अगर थोड़ी गहराई से सोचें तो उन्हें यह अवश्य लगेगा कि आधी जनसंख्या को निर्जीव से सजीव बना देने की, अनुपयोगी से उपयोगी बना देने की समस्या आज की सबसे बड़ी समस्या है। वह अपना समाधान आज ही, अभी ही किए जाने का आग्रह कर रही है। नारी के साथ बरता जाने वाला भेद-भाव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हमारे देश के असम्मान का कारण बना हुआ है। गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका में गोरे और काले रंग वालों के साथ बरते जाने वाले भेद-भाव के विरुद्ध जब आन्दोलन खड़ा किया था, तो उन्हें यह कहकर चिढ़ाया गया था कि, "आप भारतवासी भी तो अछूतों और स्त्रियों के साथ समान व्यवहार नहीं करते हैं? हमसे वैसा न्याय पाने की माँग करने से पहले आप अपने यहाँ तो सामाजिक न्याय लागू कीजिए।" हम जब भी, जहाँ भी, मनुष्य द्वारा मनुष्य के साथ बरती जाने वाली अनीति के विरुद्ध आवाज उठाते हैं तो विपक्षी लोग तत्काल इसी अनीति की याद दिलाकर हमें निरुत्तर कर देते हैं। सरकारी कानूनों में-संविधान में इस भेदभाव भरे अन्याय को अपराध ठहराया गया है, किन्तु इससे क्या? जब तक हमारा व्यवहार न बदले, तब तक उस कानूनी सुधार भर से समस्या का समाधान नहीं हो सकता।

समाज में एक वर्ग को पिछड़ा बनाये रखना फायदे का नहीं घाटे का सौदा है। पिछड़ा वर्ग समर्थ वर्ग के लिए हमेशा गले का पत्थर बना रहेगा। एक पिछड़ेपन से कराह रहा होगा और दूसरे की कमर दोहरा भार ढोने से टूट रही होगी। पिछड़ी न घर-परिवार के लिए उत्पादक होती है और न किसी दूसरे महत्त्वपूर्ण कार्य में हाथ बँटा पाती है। जल्दी-जल्दी बच्चे पैदा होने से एक ओर उसका

स्वास्थ्य चौपट होता है, तो दूसरी ओर परिवार की अर्थ-व्यवस्था लड़खड़ा जाती है। छोटे घरों के पिंजड़े में, पर्दे के अन्दर कैद रहने वाली स्त्री का स्वास्थ्य खुली हवा और रोशनी के अभाव में बिगड़ जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। शरीर जर्जर, मानसिक रूप से पिछड़ी हुई, अनुभवहीन, अन्धविश्वासों से जकड़ी हुई, बच्चों के भार से लदी हुई, सताई हुई और अपमानित आज की नारी अपने लिए और अपने समाज के लिए भार बनकर ही रहेंगी। जिन्होंने उसका पिछड़ापन दूर करने की कोशिश नहीं की, वे ही इसका नुकसान उठायेंगे।

पर्दा-प्रथा विवेकपूर्ण नहीं है, मगर उस समय तो अविवेक की हद ही हो जाती है, जब यह अपने ही माता, पिता के समान अभिभावकों से किया जाता है। ससुर-पति का पिता, वधू के लिए अपने निज के पिता से भी अधिक पूज्य है। उम्र और भावना की दृष्टि से ससुर और पुत्रवधू के बीच सगे, बाप बेटी से भी अधिक पवित्र सम्बन्ध होने चाहिए। पति के बड़े भाई, जेठ आदि के सम्बन्ध भी इसी प्रकार के होते हैं। सास से पर्दा तो और भी विचित्र है। नारी को नारी से पर्दा किसलिए करना चाहिए? माँ बेटी के बीच, पिता-पुत्री के बीच पर्दा कैसा? इससे तो उनके बीच विचारों का आदान-प्रदान ही रुक जाता है। कोई किसी से मन की बात कह भी नहीं पाती। पर्दा-प्रथा के कारण संकोच की ऊँची दीवार खड़ी रहने से तो अपने ही परिवार के व्यक्ति एक दूसरे के साथ-एक ही घर में रहते हुए भी, पड़ोसी-अनजान जैसी स्थिति में ही बने रहते हैं।

का पुरुष वर्ग इतना चरित्र भ्रष्ट है कि उसके आगे मुँह खोल कर रहना खतरे से खाली नहीं है। दूसरा यह कि नारी थोड़ी भी विश्वसनीय नहीं है। यह पर्दे की जंजीरों में जकड़े बिना चरित्रनिष्ठ नहीं रह सकती। यह दोनों ही आशंकाएँ हमारे आचरण पर कलंक की कालिख पोतती हैं।

एक सभ्य परिवार में माता, पिता, भाई, बहिन, छोटे बड़े, वयस्क, प्रौढ़, किशोर सभी आयु के नर नारी होते हैं। वे पूर्ण सुरक्षा और निश्चिन्ततापूर्वक रहते हैं। शालीनता के रहते किसी प्रकार के पर्दे की जरूरत नहीं पड़ती।

पर्दे का बंधन दुराचार रोक सकता है, यह सोचना बेकार है। मनुष्य का शरीर ही कपड़े से ढका जा सकता है। उसकी नियत नहीं ढकी जा सकती। मनुष्य की चतुरता का कोई ठिकाना नहीं है। कैदी जेल से सुरंगें खोदकर भाग निकलते हैं। पाकेटमार भरी भीड़ में अपना करतब दिखाते हैं। लोहे के पिंजड़े में हाथ-पैर बाँधकर और मुँह तथा आँखों पर पट्टी बाँधकर किसी को बंद कर दिया जाय तो बात दूसरी है, नहीं तो अपराध करने वाला व्यक्ति अपने साथी हर स्थिति में ढूंढ लेते हैं या पैदा कर लेते हैं। मन काबू में न हो तो बाहरी रोक-थाम एक बहुत छोटी सीमा तक ही काम कर पाती है। सच्चाई यह है कि जिन देशों और जातियों में पर्दे का रिवाज अधिक है उनमें दुराचार भी उतना ही बढ़ा-चढ़ा है।

पर्दा अनाचार की रोकथाम के लिए किया जाता है, यदि यह बात मान भी ली जाय तो फिर उसकी व्यवस्था

मनुष्य की संरचना उन विशेषताओं के साथ हुई है, जिनके आधार पर वह न केवल स्वयं स्वावलम्बी जीवन जी सके, वरन् अन्यान्य अनेकों के लिए अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध हो सके। उन जन्मजात उपलब्धियों के उपेक्षित, तिरस्कृत होने पर ही मनुष्य अपने लिए और सहयोगियों के लिए भारभूत बनता है। अगले दिनों जिस सर्वतोमुखी प्रगति की आशा-अपेक्षा की जा रही है, उसमें पुरुष से भी अधिक नारी का योगदान होगा। इस दायित्व को वहन करने में उसे हर दृष्टि से समर्थ बनाने की महती आवश्यकता है। वह उठ और उभर सके, तो समझना चाहिए कि उसकी प्रसुप्त क्षमताओं के उभरने और उस उभार के सहारे सर्वतोमुखी प्रगति का सरंजाम जुट सकने का आधार खड़ा हो गया। इन दिनों प्रधानतया पुरुष को ही महत्त्वपूर्ण कार्यों का भार वहन करना पड़ता है। यदि नारी भी इसकी सच्चे अर्थों में सहायक बन सके, तो समझना चाहिए कि समस्त मानव समाज के लिए सौभाग्य के सूर्योदय का समय आ गया और अन्धकार के निशाकाल से छुटकारा पाने और प्रगति का प्रतीक दिनमान अपनी ऊर्जा एवं आभा का परिचय देने के लिए समूचे आकाश पर छा गया।

पिछले दिनों नारी अपने पिछड़ेपन के कारण परावलम्बी एवं अनगढ़ स्थिति में अपना समय गुजारती रही है। अब यह दुःखदायी भूतकाल सदा-सर्वदा के लिए विदा हो गया समझा जाना चाहिए। नारी प्रगति का अर्थ है—आधी जनसंख्या का उदात्तीकरण, उसकी समुन्नत प्रतिभा के आधार पर सुविधा-साधनों का असाधारण रूप से अभिवर्द्धन। स्वतंत्रता के लिए पिछले दिनों हुई क्रान्तियाँ अभी भी अधूरी हैं, क्योंकि उनके हो चुकने के उपरान्त भी नारी वर्ग का पिछड़ापन यही दर्शाता है कि समूचे मानव समाज के मानवाधिकारों का लाभ सर्वसाधारण को नहीं मिला। मात्र पुरुष ही उस उपलब्धि का लाभ उठा सके। अगले दिनों जब नारी को मानवोचित् अधिकार पाने और प्रगति करने की सुविधा मिलेगी तभी यह माना जा सकेगा कि अर्द्धांग पक्षाघात जैसी स्थिति से छुटकारा मिला और स्वतंत्रता के वरदान से हर किसी को लाभान्वित होने का वह अवसर मिला, जिसके बिना सब कुछ अधूरा ही पड़ा था।

मनुष्य उत्पादक सत्ता है। उसे शरीर यात्रा में जितनी शक्ति लगानी पड़ती है, उसके उपरान्त भी इतनी क्षमता बची रहती है कि सामूहिक उत्कर्ष के लिए वह बहुत कुछ कर सके इस लक्ष्य को जब नारी के लिए चरितार्थ होते देखा जाएगा, तो उस सम्पन्नता और प्रगतिशीलता में सहज ही दूनी अभिवृद्धि होने लगेगी, जिसके लिए अनेक योजनाएँ बनतीं और आधी-अधूरी रहकर निराशा की स्थिति उत्पन्न करती हैं। आधी जनसंख्या का पुनरुत्थान एक प्रकार से उस समग्र विकास का परिचायक है, जिसके अन्तर्गत किसी को भी अभावों और विपत्तियों के बीच गुजारा करने के लिये बाधित न होना पड़ेगा।

नारी का खोया वर्चस्व उसे लौटाना ही होगा

वर्तमान में नारियों को पुरुषोचित् अधिकार देना मात्र सामयिक परिस्थिति नहीं है, बल्कि उसके गौरवपूर्ण इतिहास को दुहराना है, जो प्राचीनकाल में अपने पूर्ण रूप में थे। अधिकांश विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि समस्त विश्व में विद्यमान मानवतावादी प्राचीनतम धार्मिक मान्यताओं में नारियों को पवित्रतम् स्थान प्राप्त था। भारत से लेकर पश्चिम यूरोप के पुरातनवादियों ने अनेक महत्त्वपूर्ण प्रमाण खोज निकाले हैं, जो बताते हैं कि कभी नारियों को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी। उनकी विशेषता पुरुषों से भी बढ़-चढ़ कर रही है।

१०,००० वर्ष तक फलने-फूलने वाले २५,००० से ३०,००० पुरा प्रस्तर युग के पूर्व उत्पन्न होने वाले और गेन्सियन संस्कृति एवं पूर्व नव्यप्रस्तर संस्कृति (९००० से ७०००) ईसा पूर्व में समान रूप से मातृ-देवी की ही पूजा-की जाती थी। उस काल में कोई भी पुरुष इष्ट नहीं था। यही मान्यता उसे काल की नारियों के प्रति भी थी। नव्य प्रस्तर क्षेत्र में विद्यमान ६५०० ईसा पूर्व शहर एनाटोलिया में कैटक हैयक देवी की भव्य प्रतिमा एवं पूजा सामिग्री उस काल के मातृ इष्ट की साक्षी देते हैं। चार सहस्त्राब्दि बी. सी. का वस्तुगत प्रमाण की तरह लिखित अस्तित्व यह साक्षी देता है कि पाश्चात्य सभ्यता के अन्तर्गत मेसापोटामिया, इजिप्ट एवं क्रेट के जीवित केन्द्रों के धार्मिक स्वरूप में नारी सुलभ गुणों का अस्तित्व था। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में नारी के प्रति पवित्र मान्यता थी। उसे पुरुष से निचला दर्जा मानना तो दूर, उसकी उपासना पुरुष के द्वारा की जाती थी। विशेषज्ञ स्पष्ट करते हैं कि नारी के प्रति देवी मान्यता की तुलना किसी पुरुष देवता के करने पर उस काल के लोग कठिनाई अनुभव करते थे।

आदिम धर्मों (ट्राइवल रिलीजन) में नारी को उचित स्थान प्राप्त था। वह नर के समान ही पूर्णतः स्वतंत्र थी और नर के कार्यों में योगदान देती थी। खोजकर्त्ताओं के अनुसार संसार में अभी भी विद्यमान प्रमाण इसकी पुष्टि करते हैं। उदाहरणस्वरूप प्राचीन आस्ट्रेलिया के अनेक समूहों में प्रचलित किम्वदन्तियाँ नारी के प्रति सम्मान भाव को प्रकट करती हैं। अफ्रीका के अधिकांश समूहों में नारी को देवी एवं पूर्वजों की धरोहर के रूप में पूजा जाता

स्वास्थ्य चौपट होता है, तो दूसरी ओर परिवार की अर्थ-व्यवस्था लड़खड़ा जाती है। छोटे घरों के पिंजड़े में, पर्दे के अन्दर कैद रहने वाली स्त्री का स्वास्थ्य खुली हवा और रोशनी के अभाव में बिगड़ जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। शरीर जर्जर, मानसिक रूप से पिछड़ी हुई, अनुभवहीन, अन्धविश्वासों से जकड़ी हुई, बच्चों के भार से लदी हुई, सताई हुई और अपमानित आज की नारी अपने लिए और अपने समाज के लिए भार बनकर ही रहेंगी। जिन्होंने उसका पिछड़ापन दूर करने की कोशिश नहीं की, वे ही इसका नुकसान उठायेंगे।

पर्दा-प्रथा विवेकपूर्ण नहीं है, मगर उस समय तो अविवेक की हद ही हो जाती है, जब यह अपने ही माता, पिता के समान अभिभावकों से किया जाता है। ससुर-पति का पिता, वधू के लिए अपने निज के पिता से भी अधिक पूज्य है। उम्र और भावना की दृष्टि से ससुर और पुत्रवधू के बीच सगे, बाप बेटी से भी अधिक पवित्र सम्बन्ध होने चाहिए। पति के बड़े भाई, जेठ आदि के सम्बन्ध भी इसी प्रकार के होते हैं। सास से पर्दा तो और भी विचित्र है। नारी को नारी से पर्दा किसलिए करना चाहिए? माँ बेटी के बीच, पिता-पुत्री के बीच पर्दा कैसा? इससे तो उनके बीच विचारों का आदान-प्रदान ही रुक जाता है। कोई किसी से मन की बात कह भी नहीं पाती। पर्दा-प्रथा के कारण संकोच की ऊँची दीवार खड़ी रहने से तो अपने ही परिवार के व्यक्ति एक दूसरे के साथ-एक ही घर में रहते हुए भी, पड़ोसी-अनजान जैसी स्थिति में ही बने रहते हैं।

दुराव-छिपाव की जरूरत तब पड़ती है, जब कोई ऐसी स्थिति सामने हो, जिसे उचित नहीं समझा जाता। चोर-डाकुओं से, जो विश्वास के योग्य नहीं हैं, ऐसे लोगों से, असलियत छिपाकर रखी जाती है। जीवन की लज्जाजनक घटनाओं पर पर्दा डाल देते हैं ताकि उन्हें जानने पर लोगों की घृणा न उभरे। मल-मूत्र, कूड़ा-कचरा ढककर रखते हैं, ताकि उनकी दुर्गन्ध उड़कर लोगों का मन खराब न करें। अनैतिक काम, अपराध, अश्लील आचरण भी पर्दे के पीछे किए जाते हैं। मरे मुर्दे पर कफन डाल दिया जाता है, ताकि उसकी बिगड़ी हुई सूरत देखकर डर न लगे। फाँसी लगाते समय कैदी का मुँह ढक दिया जाता है। डाकू भी नकाब पहनकर हमला करते हैं ताकि वे पहचाने न जा सकें। नारी को, न जाने इनमें से किसके स्तर के बराबर समझा गया है और उसे पर्दे में मुँह छिपाकर रहने की आज्ञा दी है।

नारी पर ऐसे प्रतिबन्ध क्यों लगे हैं कोई व्यक्ति यदि इसका उचित कारण विवेक से सोचना चाहे, तो दो ही अन्दाज लगाये जा सकते हैं। एक तो यह कि अपने समाज का पुरुष वर्ग इतना चरित्र भ्रष्ट है कि उसके आगे मुँह खोल कर रहना खतरे से खाली नहीं है। दूसरा यह कि नारी थोड़ी भी विश्वसनीय नहीं है। वह पर्दे की जंजीरों में जकड़े बिना चरित्रनिष्ठ नहीं रह सकती। यह दोनों ही आशंकाएँ हमारे आचरण पर कलंक की कालिख पोतती हैं।

एक सभ्य परिवार में माता, पिता, भाई, बहिन, छोटे बड़े, वयस्क, प्रौढ़, किशोर सभी आयु के नर नारी होते हैं। वे पूर्ण सुरक्षा और निश्चिन्ततापूर्वक रहते हैं। शालीनता के रहते किसी प्रकार के पर्दे की जरूरत नहीं पड़ती।

पर्दे का बंधन दुराचार रोक सकता है, यह सोचना बेकार है। मनुष्य का शरीर ही कपड़े से ढका जा सकता है। उसकी नियत नहीं ढकी जा सकती। मनुष्य की चतुरता का कोई ठिकाना नहीं है। कैदी जेल से सुरंगें खोदकर भाग निकलते हैं। पाकेटमार भरी भीड़ में अपना करतब दिखाते हैं। लोहे के पिंजड़े में हाथ-पैर बाँधकर और मुँह तथा आँखों पर पट्टी बाँधकर किसी को बंद कर दिया जाय तो बात दूसरी है, नहीं तो अपराध करने वाला व्यक्ति अपने साथी हर स्थिति में ढूँढ़ लेते हैं या पैदा कर लेते हैं। मन काबू में न हो तो बाहरी रोक-थाम एक बहुत छोटी सीमा तक ही काम कर पाती है। सच्चाई यह है कि जिन देशों और जातियों में पर्दे का रिवाज अधिक है उनमें दुराचार भी उतना ही बढ़ा-चढ़ा है।

पर्दा अनाचार की रोकथाम के लिए किया जाता है, यदि यह बात मान भी ली जाय तो फिर उसकी व्यवस्था नारी से भी अधिक कड़ाई से नर के साथ होनी चाहिए, क्योंकि घर से बाहर स्वच्छन्द फिरने के कारण उसी के द्वारा गड़बड़ी होने का खतरा अधिक है। उच्छृंखलता में सदा पुरुष ही आगे रहता है।

स्पष्ट है कि पर्दे के पक्ष में कोई उचित तर्क या कारण नहीं है। उससे हानियाँ अनेक हैं। नारी के शारीरिक स्वास्थ्य, मस्तिष्क के विकास और व्यवहार में अनुभव बढ़ाने के लिए पर्दा जैसी निरर्थक बीमारी को जितनी जल्दी हो सके दूर कर दिया जाना चाहिए।

एक और बहुत ही दुःखदायी मान्यता यह है कि पुरुष नारी के साथ चाहे जैसा व्यवहार कर सकता है। आज भी छोटी-छोटीसी बातों पर हमारे घरों में स्त्रियों के साथ मार-पीट की जाती है। मनुष्य द्वारा मनुष्य के प्रति ऐसा व्यवहार पशुता का सूचक है। सभ्य देशों की तो अदालतों से भी कोड़े मारने का दंड उठा दिया गया है । स्कूली बच्चों को मारना अध्यापकों के लिए अपराध है । पशुओं को सताना भी अब दण्डनीय अपराध माना गया है । पशु का अपराध नहीं, लेकिन जीते-जी उसे सताना, उनके लिए क्रूरता का व्यवहार करना कानून के खिलाफ है। किसी जमाने में बड़े

मनुष्य की संरचना उन विशेषताओं के साथ हुई है, जिनके आधार पर वह न केवल स्वयं स्वावलम्बी जीवन जी सके, वरन् अन्यान्य अनेकों के लिए अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध हो सके । उन जन्मजात उपलब्धियों के उपेक्षित, तिरस्कृत होने पर ही मनुष्य अपने लिए और सहयोगियों के लिए भारभूत बनता है । अगले दिनों जिस सर्वतोमुखी प्रगति की आशा-अपेक्षा की जा रही है, उसमें पुरुष से भी अधिक नारी का योगदान होगा । इस दायित्व को वहन करने में उसे हर दृष्टि से समर्थ बनाने की महती आवश्यकता है । वह उठ और उभर सके, तो समझना चाहिए कि उसकी प्रसुप्त क्षमताओं के उभरने और उस उभार के सहारे सर्वतोमुखी प्रगति का सरंजाम जुट सकने का आधार खड़ा हो गया । इन दिनों प्रधानतया पुरुष को ही महत्त्वपूर्ण कार्यों का भार वहन करना पड़ता है । यदि नारी भी इसकी सच्चे अर्थों में सहायक बन सके, तो समझना चाहिए कि समस्त मानव समाज के लिए सौभाग्य के सूर्योदय का समय आ गया और अन्धकार के निशाकाल से छुटकारा पाने और प्रगति का प्रतीक दिनमान अपनी ऊर्जा एवं आभा का परिचय देने के लिए समूचे आकाश पर छा गया ।

पिछले दिनों नारी अपने पिछड़ेपन के कारण परावलम्बी एवं अनगढ़ स्थिति में अपना समय गुजारती रही है । अब वह दुःखदायी भूतकाल सदा-सर्वदा के लिए विदा हो गया समझा जाना चाहिए । नारी प्रगति का अर्थ है—आधी जनसंख्या का उदात्तीकरण, उसकी समुन्नत प्रतिभा के आधार पर सुविधा-साधनों का असाधारण रूप से अभिवर्द्धन । स्वतंत्रता के लिए पिछले दिनों हुई क्रान्तियाँ अभी भी अधूरी हैं, क्योंकि उनके हो चुकने के उपरान्त भी नारी वर्ग का पिछड़ापन यही दर्शाता है कि समूचे मानव समाज के मानवाधिकारों का लाभ सर्वसाधारण को नहीं मिला । मात्र पुरुष ही उस उपलब्धि का लाभ उठा सके । अगले दिनों जब नारी को मानवोचित् अधिकार पाने और प्रगति करने की सुविधा मिलेगी तभी यह माना जा सकेगा कि अर्द्धांग पक्षाघात जैसी स्थिति से छुटकारा मिला और स्वतंत्रता के वरदान से हर किसी को लाभान्वित होने का वह अवसर मिला, जिसके बिना सब कुछ अधूरा ही पड़ा था ।

मनुष्य उत्पादक सत्ता है । उसे शरीर यात्रा में जितनी शक्ति लगानी पड़ती है, उसके उपरान्त भी इतनी क्षमता बची रहती है कि सामूहिक उत्कर्ष के लिए वह बहुत कुछ कर सके इस लक्ष्य को जब नारी के लिए चरितार्थ होते देखा जाएगा, तो उस सम्पन्नता और प्रगतिशीलता में सहज ही दूनी अभिवृद्धि होने लगेगी, जिसके लिए अनेक योजनाएँ बनतीं और आधी-अधूरी रहकर निराशा की स्थिति उत्पन्न करती हैं । आधी जनसंख्या का पुनरुत्थान एक प्रकार से उस समग्र विकास का परिचायक है, जिसके अन्तर्गत किसी को भी अभावों और विपत्तियों के बीच गुजारा करने के लिये बाधित न होना पड़ेगा ।

नारी का खोया वर्चस्व उसे लौटाना ही होगा

वर्तमान में नारियों को पुरुषोचित् अधिकार देना मात्र सामयिक परिस्थिति नहीं है, बल्कि उसके गौरवपूर्ण इतिहास को दुहराना है, जो प्राचीनकाल में अपने पूर्ण रूप में थे । अधिकांश विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि समस्त विश्व में विद्यमान मानवतावादी प्राचीनतम धार्मिक मान्यताओं में नारियों को पवित्रतम् स्थान प्राप्त था । भारत से लेकर पश्चिम यूरोप के पुरातनवादियों ने अनेक महत्त्वपूर्ण प्रमाण खोज निकाले हैं, जो बताते हैं कि कभी नारियों को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी । उनकी विशेषता पुरुषों से भी बढ़-चढ़ कर रही है ।

१०,००० वर्ष तक फलने-फूलने वाले २५,००० से ३०,००० पुरा प्रस्तर युग के पूर्व उत्पन्न होने वाले और गेन्नियन संस्कृति एवं पूर्व नव्यप्रस्तर संस्कृति (९००० से ७०००) ईसा पूर्व में समान रूप से मातृ-देवी की ही पूजा-की जाती थी । उस काल में कोई भी पुरुष इष्ट नहीं था । यही मान्यता उसे काल की नारियों के प्रति भी थी । नव्य प्रस्तर क्षेत्र में विद्यमान ६५०० ईसा पूर्व शहर एनाटोलिया में कैटक हैयक देवी की भव्य प्रतिमा एवं पूजा सामिग्री उस काल के मातृ इष्ट की साक्षी देते हैं । चार सहस्राब्दि बी. सी. का वस्तुगत प्रमाण की तरह लिखित अस्तित्व यह साक्षी देता है कि पाश्चात्य सभ्यता के अन्तर्गत मेसापोटामिया, इजिप्ट एवं क्रेट के जीवित केन्द्रों के धार्मिक स्वरूप में नारी सुलभ गुणों का अस्तित्व था । इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में नारी के प्रति पवित्र मान्यता थी । उसे पुरुष से निचला दर्जा मानना तो दूर, उसकी उपासना पुरुष के द्वारा की जाती थी । विशेषज्ञ स्पष्ट करते हैं कि नारी के प्रति देवी मान्यता की तुलना किसी पुरुष देवता के करने पर उस काल के लोग कठिनाई अनुभव करते थे ।

आदिम धर्मों (ट्राइबल रिलीजन) में नारी को उचित स्थान प्राप्त था । वह नर के समान ही पूर्णतः स्वतंत्र थी और नर के कार्यों में योगदान देती थी । खोजकर्त्ताओं के अनुसार संसार में अभी भी विद्यमान प्रमाण इसकी पुष्टि करते हैं । उदाहरणस्वरूप प्राचीन आस्ट्रेलिया के अनेक समूहों में प्रचलित किम्बदन्तियाँ नारी के प्रति सम्मान भाव को प्रकट करती हैं । अफ्रीका के अधिकांश समूहों में नारी को देवी एवं पूर्वजों की धरोहर के रूप में पूजा जाता

है । अमेरिका मूल के निवासियों में धरती को पवित्र माता के रूप में मानने की प्रथा है । इस उपलक्ष्य में मनाये जाने वाले त्योहार में वहाँ भूमि पूजन की तरह नारियों के ऊँचे स्थान में बिठाकर पूजन करने की परम्परा है । वहाँ के गोत्र भी मातृ गोत्र कहलाते हैं । पितृ गोत्र की अपेक्षा इसे ही मान्यता भी मिली हुई है । एस्किमो जाति में जीव-जन्तुओं की रानी नवेजों एवं सेडना के रूप में नारी शक्ति की पूजा की जाती है ।

सुदूर पूर्व के धर्मों के अन्तर्गत चीनी धर्मों में देवताओं के प्रभावी स्वरूप हैं । ताओ के प्राचीनतम स्वरूप में शक्ति केन्द्र को नारी के रूप में मान्यता प्राप्त है, जैसे-'मदर ऑफ ऑल थिंग' । 'समस्त जड़ चेतन की माता' एवं रहस्यपूर्ण नारी । जो ताओ का अनुसरण करता है, उसे यह सलाह दी जाती है कि अपने अन्दर नारी सुलभ कोमल गुणों, स्नेह, ममता, वात्सल्य, करुणा, संवेदनशील को जगाये, तभी वह परम लक्ष्य तक पहुँच सकने में सफल होगा । ताओ को विच्छेदित कर 'यिन' और 'येन्ग' के रूप में मानते हैं । इसका अर्थ नर और नारी गुणों की एकात्मकता है । चीन के धार्मिक देवताओं में नारी के देवी स्वरूप को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । उनके प्रति श्रद्धा रखने वालों में यह मान्यता है कि अवतार स्वरूपा देवी उन्हें दोषों से दूर रखेगी एवं विशेष आशीष देगी । जापानी धर्मों में 'अमातेसू' प्रख्यात देवता है, जो सूर्य से सम्बंधित है एवं जापानी राष्ट्र का संस्थापक एवं संरक्षक है। इसके सम्बन्ध में जापानी किंवदन्तियों से स्पष्ट होता है कि वह भी नारी स्वरूपा है । यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सुदूर पूर्व के बौद्ध धर्म में बुद्दिस्थवा क्यान यिन दया की देवी के रूप में प्रख्यात थीं ।

प्राचीन विश्व के श्रेष्ठ समझे जाने वाले प्रायः सभी धर्मों में मुख्यतः देवी की मान्यता सर्वव्याप्त थी । हर स्थान में नारी शक्ति का प्रबल समर्थन विशेष रूप से पूर्वकाल में मिलता था । आइसिस, हेथर, इजिप्ट में 'नट', मेसीपोटामिया में 'इन्नन्न इश्तर', पैलेस्टाइन में 'एनट', क्रेट की देवी 'डीमेटर', ऐथेना, ग्रीस की 'आर्टिमस' पूर्वकाल की विशेष पूज्य समझी जाने वाली देवियाँ हैं । जब वहाँ के लोगों में देवी मान्यता इतनी घर कर गई, तो निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि वहाँ की नारियों की स्थिति भी अच्छी थी । पूर्व काल के धर्म में ग्रीको रोमन दुनिया में 'आमसिस' की मान्यता प्रारम्भ में अब तक बनी हुई है । उनका धर्म इसी मान्यता के कारण उनके मनों में श्रद्धा का संचार करता रहा है, क्योंकि पवित्र नारी से अभिपूरित धर्म का स्वरूप था । यही तीव्र प्रवाह धार्मिक क्रिया-कलापों के रूप में ईसाई धर्म के रूप में कालान्तर में दिखाई दिया । उक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीनकाल में भी प्रत्येक कोने में नारियों को समाज में वही गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था जो वैदिक कालीन भारतीय नारियों को था । तब समाज में नर-रत्नों की भरमार थी । मनुष्य की आधी जनसंख्या नारी वर्ग को आज की दुर्दशाग्रस्त स्थिति में उबारकर फिर से उसे महिमा-मण्डित करना होगा । यह समय का तकाजा है और नियति निर्धारण इक्कीसवीं सदी को सुनिश्चित सम्भावना भी ।

नारी जाग्रति की दिशा में बढ़ते कदम

ईश्वर की दृष्टि में नर और नारी एक समान हैं । इनमें न कोई वरिष्ठ है और न कोई कनिष्ठ, किन्तु ईसाई धर्म में स्त्रियों में आत्मा का न होना तक माना और उन्हें हर दृष्टि से अपवित्र ही कहा गया । क्रिश्चियन धर्म के नेताओं ने नारी को मोहिनी रूप में देखा और एडम के पतन हेतु उसे ही उत्तरदायी ठहराया । उनकी मान्यता में नारी को द्वितीय श्रेणी का मानव जाति स्वीकार किया गया । उस समय के, इंगलैण्ड में मात्र सेंटपाल ही ऐसे पुरुष थे, जिन्होंने लिखा है कि–"पुरुष भगवान् का गौरव है, जबकि नारी पुरुष का, किन्तु फिर भी चर्च आदि धर्मस्थलों में नारी को बोलने तक के अधिकार से भी वंचित रखा गया है । इसी तरह अन्य धर्मों में भी कुछ ऐसे ही प्रचलन थे, जिनके अनुसार वे किसी महत्त्वपूर्ण काम में भाग नहीं ले सकती थीं । न राजनैतिक, न सामजिक, न धार्मिक, न आर्थिक क्षेत्रों में उसका स्थान था । दासियों का खरीदा-बेचा जाना या दान दिया जाना प्रसिद्ध था ।" यह स्थिति सन् १६०० के करीब सारे संसार में बद से बदतर होती चली गयी ।

किन्तु समय ने पलटा खाया । राजनैतिक परिवर्तनों के साथ-साथ सामाजिक सुधार का भी दौर चला । परिवर्तन की लहर तूफान की तरह चली और संसार का कोई कोना उससे अछूता न रहा । विचारशील लोगों ने नारी के साथ चल रहे अन्याय के प्रति आवाज उठायी । इस संदर्भ में आग उगलने वाले ग्रन्थ उस जमाने में अनेकों लिखे गये । इससे शिक्षित समुदाय में नारी को न्याय प्रदान करने की चेतना जगी । स्वयं स्त्रियों ने आवाज बुलन्द की और आन्दोलन चल पड़े ।

सन् १७८९ में फ्रांसीसी क्रान्ति ने नारी को भी अप्रभावित नहीं छोड़ा । समानता, स्वतंत्रता तथा मानवीय अधिकारों की रक्षा हेतु व्यापक जन-क्रान्ति ने नारी की दशा को सुधारने का भी अपना उद्देश्य बना लिया । इस सम्बन्ध में प्रख्यात फ्रेंच दार्शनिक एवं क्रान्तिकारी कौन्डोसर्ट ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । उन्होंने 'द एडमीशन ऑफ विमेन टू फुल सिटीजनशिप' नामक अपनी कृति के माध्यम से नारी मुक्ति आन्दोलन की शुरूआत की । वे पहले विचारक थे, जिन्होंने नारी की ज्वलंत समस्याओं का विस्तारपूर्वक पर्दाफाश किया और उन्हें अपनी दशा सुधारने के लिए स्वयं आगे बढ़ने को प्रेरित किया । दूसरे मनीषी थे–जान स्टुअर्ट मिल, जिन्होंने 'सब्जेक्शन ऑफ विमेन' के माध्यम से इंगलैण्ड में नारी

मुक्ति आन्दोलन का सूत्रपात किया । यद्यपि वहाँ इस अभियान की आधारशिला सन् १७९२ में ही मैरीवोलस्टानक्राफ्ट नामक एक महिला द्वारा रखी जा चुकी थी । मैरी क्राफ्ट ने अपनी कृति 'ए विन्डीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ द विमेन' के माध्यम से शिक्षा व व्यवसाय के क्षेत्र में स्त्रियों के समान अधिकार की घोषणा की । उनकी मान्यता थी कि समाज के सभी वर्गों में समानता लाये बिना उसकी स्वस्थ संरचना एवं सर्वांगीण विकास की परिकल्पना नहीं की जा सकती ।

मेरी क्राफ्ट की मृत्यु के पश्चात् उन्नीसवीं सदी में नारी मुक्ति आन्दोलन को तत्कालीन दार्शनिक एवं अर्थशास्त्री स्टुअर्ट मिल ने गति प्रदान की । लिंग भेद के विरुद्ध उन्होंने एक जबरदस्त जेहाद खड़ा किया और नर-नारी के बीच बरती जाने वाली असमानता को समाज के सर्वांगीण विकास में अवरोधक बताया । उनके प्रतिपादनों को लोगों ने बाइबिल की तरह स्वीकार किया तथा उससे प्रेरणा पाकर सन् १९०३ में राष्ट्रीय स्तर पर जगह-जगह विद्रोह उठ खड़े हुए । इससे 'विमन्स सोशल एण्ड पॉलिटिकल यूनियन' की स्थापना हुई ।

सन् १९१२ में आन्दोलन अपनी पराकाष्ठा पर था, जब समूचा लन्दन शहर इसकी लहर में आ गया । इस आन्दोलन ने ब्रिटेन में न केवल नारी को समानता का अधिकार दिलाया वरन् उन्हें मताधिकार भी प्रदान किया । इसी बीच विश्व स्तर पर अनेकों तकनीकी, आर्थिक, औद्योगिक एवं सामाजिक क्रान्तियाँ हुई, उनका महिला समुदाय पर भी अच्छा प्रभाव पड़ा । उनकी मूर्छना जगी और वे विकास के पथ पर आगे बढ़ने लगीं ।

जून १९४६ में 'यूनाइटेड कमीशन ऑन दि स्टेटस ऑफ विमेन' की स्थापना हुई । इसका मुख्य उद्देश्य था-प्रत्येक देश में नारी को राजनैतिक अधिकार प्रदान करना । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह एक शुरूआत थी, जिसकी अंशतः पूर्ति सन् १९७१ में आठ राष्ट्रों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के मसविदे को स्वीकार करके की । इससे स्त्रियों को सभी चुनावों में भाग लेने, मतदान करने का मार्ग प्रशस्त हुआ । उन्नीसवीं सदी का योरोप जहाँ नारी को मात्र सुकोमल रमणी, कामिनी आदि मानता था, सर्वेक्षण बताते हैं कि अब वही वर्ग नारी समुदाय को समाज का सबसे अधिक सशक्त पक्ष मानने को बाध्य हुआ है । शिक्षा, चिकित्सा, व्यवसाय, कला आदि क्षेत्रों मे उनकी महत्त्वपूर्ण भागीदारी शुरू हुई । सब देश एक साथ नारी को मताधिकार देने को भले ही बाध्य न हुए हों, किन्तु सन् १८९३ से लेकर १९८७ तक के ९४ वर्षों में धीरे-धीरे उन्हें राजनैतिक क्षेत्र में मान्यता मिलती गयी ।

विश्व की सर्वाधिक आबादी वाले देश चीन ने महिलाओं की दशा सुधारने की दिशा में गत तीन दशकों में महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं । उन्हें न केवल मताधिकार का अवसर मिला, वरन् आज वहाँ उच्च पदों पर महिलाओं का अनुपात २१.२ प्रतिशत से भी अधिक है । वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्र में एक तिहाई भाग महिलाओं का है । प्राथमिक शिक्षा में शिक्षिकाएँ ३७ प्रतिशत हैं, जबकि सेकेण्डरी स्कूलों में उसका अनुपात २४ प्रतिशत है । सब मिलाकर वहाँ ३० प्रतिशत स्थान महिलाओं ने उपलब्ध कर लिए हैं, जिन पर पहले पुरुषों का आधिपत्य था ।

इन दिनों केवल रूस ही एक ऐसा देश है, जिसमें ३० प्रतिशत का प्रतिनिधित्व वे राजनैतिक संगठनों में करती हैं । इसके बाद साम्यवादी गुट के दूसरे देशों का नम्बर है । फिर भी सामाजिक क्षेत्र में अभी भी महिलाएँ काफी पिछड़ी हुई हैं । भारत, अफ्रीका और मध्यपूर्व के देशों में अभी भी मध्यकालीन प्रथाएँ चल रही हैं । सुधार नाम मात्र को ही हुए हैं ।

अति उत्साही देशों में इन दिनों अमेरिका का नम्बर आता है, जिसके नारी मुक्ति आन्दोलन ने सारे संसार को प्रभावित किया है । यह लहर सर्वत्र चल पड़ी है । हवा में गरमी बढ़ती जा रही है और वह दिन दूर नहीं, जब नारी हर क्षेत्र में पुरुष की बराबरी ही नहीं, उसका मार्ग-दर्शन भी करेगी । इक्कीसवीं सदी नारी सदी है, जिसमें सर्वत्र नारी वर्चस्व की ही धूम रहेगी ।

प्रकृति ने नारी को दुलारपूर्वक सँजोया है

प्रकृति ने नारी को अधिक प्यार और सम्मान दिया है, साथ ही उसे इस योग्य भी बनाया है कि अपने बहुमुखी उत्तरदायित्वों का वहन भली प्रकार कर सके । कद और भार में नारी नर की तुलना में कुछ हलकी भले ही पड़ती हो, पर यह उसके लिए सुविधा की बात है । शरीरगत भार कम वहन करना पड़े तो हलकापन उन्हें अधिक स्फूर्तिवान या क्रियाकुशल बनने में काम आता है । उनकी कोमलता, भाव-संवेदना तथा सुन्दरता अपने परिकर को एक कोमल तथा मजबूत शृंखला में बाँधे रहती है और परिवार प्रसन्न तथा विकासवान् बनते हैं । प्रजनन क्षमता तो प्रकृति का अनुदान है, जिसके आधार पर वे भली-बुरी पीढ़ियों का निर्माण कर सकें । छाती में दूध भर कर प्रकृति ने उसे शिशुओं को जीवित रहने का भी अनुदान प्रदान किया है ।

पुरुष है जिसने सहचरी को दासी बनाया है । उसके मानवी अधिकारों का अपहरण किया है और दूसरे दर्जे का नागरिक बना दिया है । पग-पग पर उपेक्षित-तिरष्कृत होते रहने के कारण वे प्रतिभाएँ एवं क्षमताएँ कुंठित होती चली जा रही हैं, जिनके द्वारा वे अपना उत्थान कर सकती थीं । परिवार तथा समाज को कहने योग्य अनुदान दे सकती थीं । नारी का पिछड़ापन मानवी प्रगति में सबसे अधिक बाधक है ।

जिन देशों में नारी को सम्मान की दृष्टि से देखा और उन्हें अपनी प्रतिभा निखारने और क्षमता बढ़ाने के

सुअवसर प्रदान किए हैं, यह सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से समुन्नत बने हैं । चीन की समाचार एजेन्सी 'सिनहुआ' के अनुसार उस देश में न्यायाधीश जैसे उच्चस्तरीय एवं सम्मानित पदों पर एक लाख से भी अधिक महिलाएँ कार्यरत हैं । शिक्षित महिलाएँ व्यावसायिक एवं औद्योगिक इकाइयों को तो सम्भालती ही हैं, शिक्षा, चिकित्सा, शिल्प जैसे महत्त्वपूर्ण विभाग भी प्रायः उन्हीं के जिम्मे हैं । अन्य विचारशील देशों ने भी नारी शक्ति को विकसित किया है और उसे चौके-चूल्हे के कोल्हू में पेलने की अपेक्षा अधिक उपयोगी बनाया है । विकसित देशों में शिक्षा, चिकित्सा, शिल्प, कला, बाल-विकास, कृषि पालन जैसे विभागों को उनके ऊपर छोड़ा और उसका सफल सत्परिणाम देखा है । जापान, कोरिया, इन्डोनेशिया आदि देशों ने विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं को अपनी अभूतपूर्व क्षमता का परिचय देने का अवसर प्रदान किया है और आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न बने हैं । ईरान, इराक एवं अफगानिस्तान जैसे छोटे राष्ट्रों की नारियाँ संकट के क्षणों में पुरुष सैनिकों के कंधे से कंधा मिलाकर युद्ध मोर्चे पर अपनी साहसिक प्रतिभा का प्रमाण प्रस्तुत कर चुकी हैं ।

नेतृत्व के क्षेत्र में भी वे पीछे नहीं रही हैं । प्रधानमंत्री से लेकर राष्ट्रपति तक के सर्वोच्च एवं उत्तरदायित्वपूर्ण पदों को उन्होंने गौरवान्वित किया है । इन्दिरा गाँधी से लेकर मार्गेट थैचर, श्रीमती भण्डारनायके, गोल्डामायर, फिलीपीन्स की कोराजोन एक्वीनो, इण्डोनेशिया की श्रीमती केमारो, जापान की टकोका डोई आदि प्रतिभाशाली महिलाओं की एक लम्बी शृंखला है । इसे दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए कि भारत जैसे विशाल देश में जहाँ कभी नारियों का वर्चस्व था, सदियों से उनकी प्रतिभा को कुंठित बना दिया गया । स्वतंत्रता एवं समानता का अधिकार मिलने के पश्चात् भी देश में अभी तक मात्र १२ लाख के लगभग महिलाएँ ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकी हैं । अधिसंख्य महिलाएँ अशिक्षित दशा में रहते हुए घर की चारदीवारी में बंद कैदियों जैसे जीवन जीने को विवश हैं । इतने पर भी उनकी अन्तरात्मा अभी मरी नहीं है । वह अपने विकास के लिए क्षमता-प्रतिभा प्रदर्शित करने के लिए आकुल-व्याकुल हैं । आवश्यकता मात्र अवसर प्रदान करने एवं उन्हें शिक्षित बनाने की है । इस दुर्गति से उबरने पर ही समग्र प्रगति सम्भव है ।।

नारी अपनी सुकोमल भाव-संवेदनाओं के लिए विख्यात है । सुप्रसिद्ध मानव विज्ञानी डॉ. ली. साल्क ने अपने अनुसंधान निष्कर्ष में बताया है कि मातृ हृदय की धड़कन के साथ-साथ भाव संवेदनाएँ भी तरंगित होती उभरती रहती हैं । यही कारण है कि जाने-अनजाने प्रत्येक माता अपने शिशु को हृदय का अधिक सामीप्य देना चाहती है और उसे अपने सीने से चिपकाये रखती है । हृदय की ध्वनि तरंगों को सुनकर शिशु एक अनिवर्चनीय आनन्द में डूबा रहता है । डॉ. साल्क ने इस सम्बन्ध में कुछ प्रयोग भी किए, जिसके आश्चर्य सत्परिणाम सामने आये । उन्होंने मातृ हृदय की धड़कन की ध्वनि को टेप कर जब रोते हुए नवजात शिशुओं को सुनाया, तो उनका रोना तत्काल बन्द हो गया । मुखमंडल पर शान्ति एवं प्रसन्नता के भाव उभर आये । उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि माताओं के धकड़ते हृदय के साथ उनकी मृदुल भावनाएँ भी जुड़ी रहती हैं, जिनसे पूर्व परिचित होने के कारण बच्चे सहज ही उनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं ।

ऐसा ही मन्तव्य प्रख्यात मानवशास्त्री डॉ० डिस्माण्ड मॉरिश का भी है । उन्होंने अपने ग्रन्थ-"द इन्टिमेट विहेवियर एण्ड द नेकेड एप" में लिखा है कि-"हृदय की शाश्वत ध्वनि को शिशु गर्भावस्था से ही सुनता रहता है जन्म के बाद यह बाह्य संसार की विचित्र ध्वनियों से परेशान हो उठता है और रोने लगता है परन्तु जैसे ही माता का सामीप्य पाता है, चुप हो जाता है । यह जन्मदात्री माँ के संवेदनशील हृदय की ही प्रतिक्रिया है जिसकी सुखद तरंगों की अनुभूति करते ही वह रोना भूल जाता है, उनके अनुसार इस संदर्भ में जो महिलाएँ सतर्कता बरतती हैं, उनकी संतानें अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिशील एवं बलिष्ठ पाई जाती हैं ।

नारी का कद में छोटा होना कोई अकाट्य नियम नहीं है । इसका व्यक्तिरेक भी होता रहता है, संसार में कितनी ही महिलाएँ लम्बी, भारी तथा पुरुषों की तुलना में अधिक बलिष्ठ और बुद्धिमान पाई जाती हैं । जहाँ अवसर मिला है, वहाँ उनके विकास ने चमत्कार उत्पन्न किया है । खेल-कूदों में परीक्षा के उत्तीर्ण अंकों में, प्रतिस्पर्द्धाओं में अब वे अपेक्षाकृत अधिक अग्रणी रहने लगी हैं । सोवियत चिकित्साविज्ञानी डॉ० कोडाकायन के अनुसार-"महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक परिश्रमशील भी होती हैं । यही कारण है कि वे रक्तचाप, मधुमेह मस्तिष्कीय रोगों आदि से बहुत कम पीड़ित पाई जाती हैं । बीमार पड़ने पर वे अपेक्षाकृत जल्दी स्वस्थ हो जाती हैं । उनकी जीवनी-शक्ति एवं रोग प्रतिरोधी क्षमता के आगे नर कमजोर ही सिद्ध होता है ।"

फ्रांस के प्रसिद्ध प्राणिशास्त्री डॉ. ज्यों रेस्तां का कहना है कि "संसार में स्रष्टा की सर्वोत्तम कृति नारी है । पुरुष अपनी वरिष्ठता, बलिष्ठता एवं बुद्धिमत्ता पर व्यर्थ ही गर्व करता है । वस्तुतः वह जो कुछ भी आज तक बन पाया है, मातृ हृदय की देन है ।" इस तथ्य से अनभिज्ञ रहने के कारण वह नारी को मात्र भोग्या एवं दासी स्तर का समझ बैठा और उसे विविध प्रलोभनों एवं बंधनों से जकड़ कर अनुवर्ती बनने के लिए विवश करने की भूल कर बैठा है । यह तो नारी की ही विशेषता एवं उदारता रही है कि इतने अत्याचार सहने के उपरान्त भी वह उसे सन्तानवत् दुलार देती रही है । इतने पर भी यदि नर की विवेकशीलता न जगी तो वे यह दिन भी अब दूर नहीं जब नारी उसे एक अनावश्यक विलास साधन समझ कर उसका परित्याग भी कर सकती है और संतान का निर्माण बिना पुरुष के संयोग से भी करती रह सकती है । उनके अनुसार वस्तुतः हमारे

निर्माण में मातृत्व ही एकमात्र कारण है । पितृत्व को हम निरर्थक ही मूलतत्व मान बैठे हैं, क्योंकि विकास क्रम में पितृ प्रधान जीवाणु तो अपना अस्तित्व ही खो बैठता है और अंत में जिन तत्वों से हमारा निर्माण होता है, वे मातृ-प्रदत्त तत्व होते हैं । उसने इस तरह के प्रयोग-परीक्षण भी किये हैं और सफल रहे हैं ।

आत्मिको की दृष्टि से नर-नारी दोनों में एक ही आत्मचेतना कार्यरत रहती है । कोमलता, मृदुता, उदारता, सहकारिता, स्नेह-सद्भाव आदि सद्गुण दोनों में ही होने चाहिए, क्योंकि यह चेतना के सहज स्वभाव में सम्मिलित है । नारी उन मौलिक विशेषताओं को उभरने देती है, जबकि अपने मिथ्याभिमान के कारण पुरुष उन्हें विकसित नहीं होने देता । यही कारण है कि सद्गुणों की दृष्टि से नारी सदैव वरिष्ठ मानी और मातृ-शक्ति के रूप में सम्मानित की जाती है । नर-नारी दोनों में गहरी मित्रता और आस्था हो तो दोनों पक्ष एक दूसरे के लिए पूरक, आनन्दमय और प्रगति में सहायक होते हैं । पारस्परिक सहयोग-सहकार से दोनों में से एक भी घाटे में नहीं रहता ।

पतझड़ को बसंत में बदलने का महाकाल का संकल्प

किसी कुप्रचलन को इसलिए मान्यता नहीं मिलनी चाहिए कि वह पुरातन काल से प्रयोग में आता रहा है । आदिम काल का मनुष्य जब कपड़े बनाना या पहनना नहीं जानता था, तब नंगे शरीर रहता था या पत्ते आदि से कुछ अंग ढक लेता था । अब विकसित सभ्यता के जमाने में जब वस्त्रों का प्रचलन हर स्थान में होने लगा है तो कोई भी समझदार मनुष्य नंगा रहना पसन्द नहीं करेगा । अब मनुष्य ने अपनी जरूरतें भी बदल ली हैं और भोजन की तरह वस्त्र भी दैनिक प्रयोग की वस्तु बन गये हैं । कोई समय ऐसा भी रहा है, जब मिट्टी के बर्तन ही उपलब्ध थे, पर अब तो उनके स्थान पर धातुएँ प्रयोग में आने लगी हैं । कभी बाल काटने का रिवाज नहीं था, पर अब तो अधिकांश लोग दाढ़ी-मूँछ काटने-छाँटने लगे हैं । इन सामयिक परिवर्तनों को कोई बुरा नहीं मानता ।

प्राचीनकाल में स्त्रियाँ भोजन पकाने और बच्चे पालने के काम भर में अभ्यासी थीं । तब उन्हें वही काम सौंप दिया गया था, उन्होंने उसे स्वेच्छापूर्वक अपना लिया । रिवाज बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक पहुँचा कि उन्हें उतनी ही सीमा में प्रतिबन्धित भी किया जाने लगा । जो काम पुरुषों की तरह स्त्रियाँ कर सकती थीं, उन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया । व्यवसाय जैसे कार्यों में एक तो वैसे ही वे अनुभवहीनता की पिछड़ी स्थिति में थीं, इस पर भी उस क्षेत्र में प्रवेश न करने के लिए प्रतिबन्ध लगा दिया गया, ऐसे ही और भी प्रतिबन्ध अन्य क्षेत्रों में लगे और उन्हें उन कामों को करने से रोक दिया गया । स्वभावतः नर और नारी एक ही सिक्के के दो पहलू, एक ही गाड़ी के दो पहिए, एक ही शरीर के साथ जुड़े हुए दो हाथ या दो पैर हैं । दोनों की क्षमता या दक्षता में कोई अन्तर नहीं । सच पूछा जाय तो नारी कितनी ही बातों में वरिष्ठ एवं सक्षम है, जबकि पुरुष उन्हें नहीं कर पाता । गर्भधारण, शिशु-पालन जैसे कार्यों में नारी अग्रणी है, जबकि पुरुष से उन कार्यों का बन पड़ना कठिन है । गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से भी नारी कोमल, दयाशील, सेवाभावी और क्षमाशील है, जबकि इन सब गुणों की पुरुष में बहुत कमी पायी जाती है ।

प्रयोग में न आने पर कई विशेषताएँ क्षीण हो जाती हैं । पुरुषों को श्रम परायण और साहसी रहना पड़ा, जबकि महिलाओं को उनका प्रयोग प्रायः नहीं करना पड़ा, अतएव वे इस दृष्टि से पिछड़ गयीं । यह संयोग की ही बात थी, जबकि उसे उनकी दुर्बलता मान लिया गया और वे इस दृष्टि से कनिष्ठ समझी जाने लगीं । उनके साथ व्यवहार भी वैसा ही चल पड़ा, मानो वे सचमुच अयोग्य या असमर्थ हों, जब कि बात वैसी है नहीं । जब भी अवसर आया है, सुयोग मिला है, तब-तब नारी ने अपनी गरिमा का वैसा ही परिचय दिया है जैसा कि आमतौर से मर्द दिया करते हैं । अनेक प्रसंग ऐसे भी हैं, जिनमें नारी ने नर की तुलना में कितनी ही प्रतिस्पर्द्धाएँ जीती हैं और अपनी समता का ही नहीं, वरिष्ठता का भी परिचय दिया है । शारीरिक न्यूनाधिकता का कोई बड़ा फर्क नहीं होता । पशु-पक्षियों में नर-मादा दोनों ही प्रायः एक जैसी क्षमता के होते हैं । थोड़ा-बहुत अंतर भी कभी किसी की बनावट में देखने को मिलता है । वह इतना बड़ा नहीं होता कि किसी को बहुत समर्थ और दूसरे को अत्यंत दुर्बल ठहराया जा सके । मनुष्यों में भी नर-नारी के सम्बन्ध में यही बात है । जिन देशों में नारी प्रधान कुटुम्बों की परम्परा चलती है, वहाँ नारी का दर्जा हर दृष्टि से बड़ा माना जाता है और पुरुषों को उनके आज्ञानुवर्ती बनना और चलना पड़ता है ।

अब भी शिक्षा में अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होना, प्रतिस्पर्द्धाओं में आगे रहना, संगीत, साहित्य, कला जैसे विषयों में अपनी वरिष्ठता वे ही सिद्ध करती देखी गयी हैं । शारीरिक सौन्दर्य और स्वभावगत सहिष्णुता की दृष्टि से उन्हें प्रायः अग्रणी ही पाया जाता है । चतुरता कठोरता, धूर्तता जैसी विशेषताओं को यदि सराहनीय माना जाता हो तो ही मर्द किसी कदर अपने को बढ़ा-चढ़ा मान सकता है ।

वास्तविकता यह है कि मनुष्य जाति में दो अविच्छिन्न पक्ष नर और नारी हैं । उनमें से न कोई छोटा है न बड़ा, न कोई वरिष्ठ है न कोई कनिष्ठ । यह बात दूसरी है कि यदि अवसर न मिले तो कार्यान्वयन के अभाव में किसी को पिछड़ी स्थिति में रहना पड़े । प्रजनन नारी का विशेष गुण है और वह इतना महत्त्वपूर्ण है कि यदि उसकी दुर्दशा

एक शताब्दी तक भी बनी रहे तो समझना चाहिए कि संसार में से मनुष्य जाति का अस्तित्व ही सदा-सर्वदा के लिए समाप्त हो गया । पिता के न रहने पर माता किसी प्रकार बालकों को पाल-पोष लेती है, पर माता का अभाव रहने पर बच्चे या तो जीवित ही नहीं रह पाते अथवा अनेक दृष्टियों से पिछड़े रह जाते हैं ।

शास्त्रकारों ने ईश्वर की प्रार्थना करते हुए प्रथम उसे माता के रूप में स्मरण किया है । इसके बाद पिता को स्थान दिया गया है । युग्मों का जहाँ भी उल्लेख है वहाँ प्रथम नारी और द्वितीय नर का स्थान है । लक्ष्मी नारायण, सीताराम-राधेश्याम, उमा-महेश, सावित्री-सत्यवान आदि की युग्म श्रृंखला में नारी की प्राथमिकता है । देवी पूजन में कन्या की पूजा का विधान है, जबकि देवताओं के स्थान पर लड़कों को विराजमान नहीं किया जाता है । देवी-देवताओं का जहाँ भी उल्लेख आता है, वहाँ नारी को ही प्राथमिकता दी जाती है । लक्ष्मी-गणेश की अभ्यर्थना में दीपावली के अवसर पर प्राथमिकता लक्ष्मी को ही मिलती है । पशुओं में भी इसी प्रकार का प्रचलन है । गाय और बैल में से प्राथमिकता गौ की ही ठहरती है । इस प्रकार के प्रमाणों से प्रकट है कि नारी को सांस्कृतिक और उपयोगिता दोनों ही दृष्टि से प्राथमिकता प्राप्त है । इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि अर्थ-उपार्जन के स्रोत पुरुष के हाथ में चले जाने के कारण उसी ने अपने को वरिष्ठ ठहराया, जबकि यदि नर को गृह-व्यवस्था सम्भालनी पड़े और नारी आर्थिक उपार्जन के क्षेत्र में बढ़ चले तो उसकी समर्थता ही अधिक सिद्ध हो सकती है । अब भी खेल, परीक्षाओं की प्रतिस्पर्द्धाओं में महिलाएँ अधिक अच्छे नम्बर लातीं और अधिक सफल घोषित होती हैं । कला क्षेत्र पर तो उनका एकाधिपत्य है ही ।

भूलों को सुधारा जाता रहा है । गलतियों का प्रायश्चित होता रहा है । लम्बे समय से चले आ रहे नर और नारी के बीच बढ़ते अनौचित्य का अन्त आने का समय अब आ गया । आधी जनसंख्या का मनोबल गिराने और उनके स्वाभाविक मानवाधिकारों से वंचित करके मात्र नारी ही घाटे में नहीं रही, नर को उससे अधिक घाटा सहना पड़ा है । गाड़ी का एक बैल दुर्बल हो जाने पर उसके बदले का भार दूसरे बैल को ही सहना पड़ता है । पक्षाघात से आधा अंग बेकार हो जाय तो दूसरे को उसके बदले का दबाव सहना पड़ता है । एक हाथ का एक पैर का आदमी प्रायः आधा ही काम कर सकता है । एक पहिए की गाड़ी किसी प्रकार आधा-अधूरा काम ही कर पाती है । युग्म जिनके भी जहाँ भी बने हैं, वे एक-दूसरे के पूरक रहे हैं । इसमें से एक दुबला रहे दूसरे को उसकी क्षति उठाये बिना न रहना पड़ेगा । नर और नारी यदि कंधे मिलाकर रहे होते तो दोनों नफे में रहते । जहाँ वैसा प्रचलन है, वहाँ प्रगति को विकसित रूप में देखा जाता है । जापान, अमेरिका, इस्रायल, जर्मनी, चीन, रूस आदि विकसित देशों की जनता जितनी बलिष्ठ और समृद्ध है, उसका बड़ा श्रेय वहाँ के नारी समुदाय को ही जाता है । भारतीय महिलाओं का पुरातन इतिहास तो हर क्षेत्र में मूर्धन्य रहा है । वे अपने भाइयों, पतियों, पुत्रों के लिए शक्तिस्रोत बनकर रही हैं । वयोवृद्ध भी अपनी लड़कियों पर गर्व करते रहे हैं । एकाकी पुरुषों एवं एकाकी कार्यों में जितने भी पराक्रम-पुरुषार्थ देखते बन पड़ते हैं, वहाँ नारियों की गरिमा ही अधिक दिखती है । पुरुष तो इस अभाव के रहते अनेक कमियों के केन्द्र रहे हैं । यहाँ तक कि विधुर या अविवाहितों की मरण संख्या ही अधिक रही है । आज नारी अपने ऊपर थोपी गई असमर्थता के कारण दुर्बल होकर रह रही है, पर शुरू में वह वैसी नहीं थी । जब उसे अवांछनीय बन्धनों में न बाँधने का न्यायोचित समय था, तब नारियों ने हर दृष्टि से अपने को कनिष्ठ नहीं, वरिष्ठ ही सिद्ध किया है ।

समय चक्र सदा-सदा से घूमता रहा है । वह लौटकर अपनी जगह आ जाता है । सूर्य पहले दिन में पूर्व से निकलता है, शाम को वह पश्चिम में अस्त तो होता है, पर सदा नहीं डूबा रहता है और दूसरे दिन फिर नये उत्साह के साथ पुनः उसी पूर्व दिशा में उदय होता है । जिसमें कि वह पहले दिन उदय हुआ था । पतझड़ में वृक्ष के पत्ते गिर तो जाते हैं, पर बसन्त आते ही वे नये कोपलों से लद जाते हैं और फूल-फलों से लदे हुए पाये जाते हैं ।

समय चक्र ने नारी को भी दुर्गति से निकालने का निश्चय किया है । महाकाल के अभिनव बसंत ने पतझड़ को बसन्त में परिवर्तित करने का निश्चय कर लिया है, साथ ही नारी के वर्चस्व को लौटाने का भी । इक्कीसवीं सदी नारी शताब्दी घोषित की गयी है जिसमें नारी के पिछड़ेपन की अन्तता दिख रही है । देखने को यह भी दिखेगा कि वह अपने साथी से किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं रह गयी, लेकिन दस कदम आगे ही बढ़ गयी है ।

जाग्रत महिलाओं से ही उज्ज्वल भविष्य निर्मित होगा

महिला जागरण अभियान का आरम्भ छोटे रूप में किया जा रहा है, पर जिस कल्पना, जिस योजना और जिस तत्परता से उसका श्रीगणेश किया जा रहा है, उसे देखते हुए यह विश्वास किया जा सकता है कि यह छोटा-सा बीज अगले दिनों विशाल वट वृक्ष के रूप में विकसित होगा और उसका स्वरूप तथा क्षेत्र निरन्तर बढ़ता चला जाएगा । समय की पुकार को कोई रोक नहीं सकता ।

जाग्रत महिला अगले दिनों प्रगति के सभी क्षेत्रों में अपनी समुचित भूमिका प्रस्तुत करने में तत्पर दिखाई देगी । देश की आर्थिक उन्नति में उनका बढ़ा-चढ़ा योगदान होगा । कुटीर उद्योगों का संचालन प्रायः उसी के हाथ में होगा । पुरुष घर से बाहर सम्भव हो सकने वाले अपेक्षाकृत अधिक कड़े परिश्रम के काम अपने जिम्मे

रखेंगे और गृहव्यवस्था, शिशुपालन के साथ-साथ नारी कुटीर उद्योगों को सम्भाल लेगी । घर में रहते हुए ऐसा कर सकना उसके लिए सरल पड़ेगा । सहकारी समितियाँ उन्हें कच्चा माल देने और बने माल को खरीद कर बाजार में खपाने का उत्तरदायित्व अपने जिम्मे लेगी तो छोटे-बड़े असंख्य गृह उद्योग पनपते हुए दिखाई देंगे । नारी की बेकारी, बेबसी और गरीबी तो इसी उपाय से दूर हो सकती है । हर परिवार के लिए अतिरिक्त आय का स्रोत खुल सकता है । निर्माण की प्रसुप्त प्रतिभा जग पड़ने से उसके अगणित लाभ मिलते दिखाई देंगे । देश की सम्पन्नता में निश्चित रूप से अभिवृद्धि होगी ।

राजनैतिक क्षेत्र में इन दिनों जो आपाधापी चल रही है उसके समाधान का सहज उपाय यह है कि शासन संस्थाओं में नारी को चुनकर भेजा जाय । उनकी जन्मजात सहृदयता एवं उदारता का समावेश जब राजनीति में होगा, तो आज के छल-दम्भ उसमें से निकल कर ही रहेंगे और राजनीति भी धर्म नीति की तरह ही पवित्र बन कर रहेगी । पुरुष ने चिरकाल से शासन सूत्र सम्भाला है, अब उसका अनुभव नारी को देने के लिए उसे अपनी पकड़ कुछ ढीली करनी चाहिए । टाउन एरिया, म्यूनिसिपल बोर्ड, जिला परिषद्, विधान सभा, लोक सभा आदि में स्थान उसे देना चाहिए ताकि इस आशा का उदय हो सके कि सत्ता किसी वर्ग विशेष की बपौती नहीं है । उनके संचालन निर्वाह का उत्तरदायित्व दूसरों को भी उठाने देने वाली उदारता का आरम्भ हो गया ।

यों नारी का अपना ही बहुमत है । आबादी की दृष्टि से उसकी संख्या आधी से कुछ अधिक ही बढ़ चली है । आज तो ३० प्रतिशत से भी कम वोट पाकर काँग्रेस सत्तारूढ़ हो जाती है । फिर जो बिरादरीवाद हर क्षेत्र में घुसा हुआ है । वह नारी को भी प्रभावित करने लगे तो उसके अपने ठोस वोट ही ५० प्रतिशत हैं । दूसरे पक्ष के भी कुछ तो वोट कट ही सकते हैं । इस प्रकार यदि यह अपनी पर अड़ जाय तो प्रजातन्त्र विधान के अनुसार आदि से अन्त तक पूरी शासन सत्ता अपने हाथ में ले सकती है । वैसी तना-तनी उत्पन्न न होने पावे, इससे पूर्व यही उचित है कि सत्ता संचालन में उसकी स्वाभाविक उदारता और सज्जनता का समावेश होने दिया जाय और उसका पूरा लाभ समूचे जनसमाज को मिलने दिया जाय ।

साहित्य क्षेत्र में, कला क्षेत्र में, नारी का प्रवेश होगा तो निश्चित रूप से वह अपनी शालीनता सुरक्षित रखेगी । उसकी कलम से अश्लीलता और कामुकता भड़काने वाला, अपराधी प्रवृत्तियाँ उभारने वाला कुत्सित साहित्य नहीं लिखा जा सकता । मातृ-शक्ति को द्रौपदी की तरह निर्वसन करने की, सरस्वती को वेश्या स्तर पर घसीट लाने की उच्छृंखलता तो पुरुष ही बरतता है । नारी अपनी निज की गरिमा को इस प्रकार कलंकित न होने देगी । वह जो कुछ लिखेगी अपने पिता, पति, भाई और पुत्र में सद्भावनासम्पन्न बनाने वाला ही हो सकता है । प्रेस, प्रकाशन, पत्रकारिता, साहित्य विक्रय के क्षेत्र में नारी को वर्चस्व इसलिए सौंपा जाना चाहिए कि आज इन क्षेत्रों में घुसी हुई विकृतियों का निराकरण कर सकना उसी की शालीनता द्वारा सम्भव हो सकता है । कोई किसी की आत्मा को लोभ अथवा मद दिखाकर खरीद ले तो बात दूसरी है अन्यथा नारी की आत्मिक कलाकारिता यदि स्वेच्छापूर्वक कला मंच में उन्मुक्त वातावरण में, प्रवेश करेगी तो उसका संगीत, अभिनय पूरी तरह शालीनता से ही भरा-पूरा होगा । पवित्रता और प्रकाशवान् प्रखरता से भरा हुआ कला मंच किस प्रकार मानवीय अन्तरात्मा को परिष्कृत बना सकता है । इसकी कल्पना करने मात्र से पुलकन उत्पन्न होती है ।

सार्वजनिक सेवाओं और सरकारी विभागों में भले ही अन्य सारे विभाग पुरुष को दे दिये जाएँ, पर शिक्षा चिकित्सा और समाज कल्याण तो मात्र नारी के लिए ही सुरक्षित रखे जाने चाहिए । यों उसे हर क्षेत्र में प्रवेश करके अपनी विशेष प्रतिभा का परिचय देने का अवसर मिलना चाहिए, पर उपर्युक्त तीन विभाग ऐसे हैं जिनमें अधिक सहृदयता और स्नेहसिक्तता एवं अधिक सृजनात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता है । नारी अपने सहज स्नेह से बालकों के अन्तःकरण को गुदगुदाती हुई न केवल जानकारियाँ ही उनके मस्तिष्क में उतारेगी, वरन् आत्मा में सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों का सफल बीजारोपण भी करेगी । रोगी अपने चिकित्सक से मात्र औषधि ही नहीं चाहता वरन् उससे सहानुभूति की भी अपेक्षा करता है । कहना न होगा कि यह भण्डार नर के पास न्यून ही पाया जाता है । उसकी विपुलता तो भगवान् ने नारी में ही भरी है । जिसके पास कुछ है, वही तो दूसरे को कुछ दे सकेगा । समाज की विकृतियों का अधिक दुष्परिणाम नारी को ही भुगतना पड़ा है । अपने काँटे को आप निकालने और अपने घावों पर मरहम लगाने में उसकी सहज उत्कण्ठा रहेगी । समाजगत अविचारों, अनाचारों, दुष्प्रवृत्तियों से वह न केवल लड़ ही सकती है, वरन् उसके स्थान पर नई सृजनात्मक परम्पराओं को जन्म दे सकती है । समाज कल्याण के कार्यक्रम कुछ भी हों, पर पीछे भावना वही काम करती है । निराश, निढाल थके-हारे और रोते-खीजते जन-मानस में नवीन आशाओं, उमंगों का संचार करना नारी के द्वारा ही अधिक अच्छी तरह हो सकता है । समाज कल्याण की भावना से भरी-पूरी नारी प्रकृति ही उस स्तर के सरकारी या गैर सरकारी कामों को अधिक अच्छी तरह सम्भाल सकती है, इसमें दो राय नहीं हो सकती ।

सार्वजनिक सामाजिक संस्थाओं का गठन और संचालन यदि उनके हाथ में सौंपा जा सके तो आज की अखाड़ेबाजी और प्रतिद्वन्द्विता के कारण उस क्षेत्र को विषाक्त करते रहने वाली विभीषिका से छुटकारा मिल सकता है और लोकमंगल का पुनीत क्षेत्र अपने युग प्रयोजन की पूर्ति में बहुत हद तक सफल रह सकता है ।

धर्म और अध्यात्म क्षेत्र पर पुरुष का अधिकार बहुत समय से चला आ रहा है, फलतः वहाँ पाखण्ड और भ्रम जंजाल के अतिरिक्त और कुछ बच ही नहीं रहा है । मलीनता धोने वाले साबुन की वट्टी यदि कोयले की चूरे से बनने लगी तो स्वच्छता का लक्ष्य कभी भी पूरा न हो सकेगा । इस क्षेत्र में नारी को ही नेतृत्व करना चाहिए । ईश्वर ने उसकी आरम्भिक संरचना दिव्यता की अजस्र मात्रा का समावेश करते हुए ही की है । आज की गई बीती स्थिति में भी वह आदर्शवादिता एवं उत्कृष्टता का निर्वाह पुरुष की तुलना में असंख्य गुनी श्रेष्ठता के साथ निभा रही है । यह उसकी सहज प्रकृति और ईश्वर प्रदीप्त विशिष्ट विभूति है । पुरुष बहुत श्रम करके जो आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त कर सकता है । वह नारी को अनायास ही उपलब्ध है । प्रेम से, भक्ति से, उसका अन्तःकरण हर घड़ी छलकता रहता है । आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता के जो लक्षण तत्वदर्शियों ने बताये हैं, उनमें से अधिकांश को नारी के सहज स्वभाव में समाया हुआ देखा जा सकता है ।

हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य के सपने देखते हैं, जिसमें अगले दिनों नारी संसार के भावना क्षेत्र का नेतृत्व कर रही होगी और भौतिक क्षेत्र में सुव्यवस्था की सुदृढ़ नींव रख रही होंगी । उन स्वप्नों को साकार करने में हम सबको प्राण-पण से कार्यबद्ध ही होना पड़ेगा । संकल्प भरे कदम उसी दिशा में उठ रहे हैं ।

लोक-मानस जगाये बिना और कोई राह नहीं

लोक-मानस एक अति विशालकाय और अति समर्थ महादैत्य है । इसकी तुलना पौराणिक कुम्भकरण से की जा सकती है । छह महीने सोने और एक दिन जागने का उसकी बुरी आदत का मनोरंजक वर्णन मिलता है । वह दैत्य जब सोता था तो इतनी गहरी नींद में सोता था कि छाती पर हाथियों का झुण्ड घुमाते रहने पर भी करवट नहीं बदलता था, पर जिस दिन जागता था उसे पर्वत जैसा आहार, उदरस्थ करने से लेकर अन्यान्य अनेकों आवश्यक कार्य चुटकी बजाते पूरे करके रख देता था । निश्चित रूप से ऐसी विशेषताओं से सम्पन्न महादैत्य केवल जन-मानस ही हो सकता है । वह जिधर भी करवट बदलता है, उधर ही कुछ से कुछ बना देने और कुछ भी बिगाड देने का चमत्कार प्रस्तुत करता है । संसार की महान् क्रान्तियों के इतिहास के पीछे लोकशक्ति ही काम करती दिखाई पड़ेगी । नारी जागरण की समस्या का हल व्यक्ति विशेष द्वारा सम्भव नहीं हो सकता । कोई व्यक्ति कितना ही धनी, विद्वान, सत्ताधारी अथवा प्रतिभा सम्पन्न क्यों न हो, निजी स्थानों से इतने सुविस्तृत क्षेत्र से नगण्य-सी ही हलचल उत्पन्न कर सकता है । कुछ बड़ा करना हो तो लोक-शक्ति को साथ लेना होगा ।

लोक-शक्ति कोई रबड़ की गुड़िया नहीं है जिसे जेब में रखकर कोई भी कहीं चल दे । वह वाष्प शक्ति से भरे हुए विशालकाय इंजन की तरह है । उसे उत्पन्न करने के लिए देर तक ईंधन जलाना पड़ता है और बॉयलर में आवश्यक गर्मी जुटाने का प्रबन्ध करना पड़ता है । आज की आवश्यकता बॉयलर को गरम करने के लिए ईंधन जुटाने की है । हमें लोक-मानस को इतना गरम करना चाहिए कि नारी की वर्तमान स्थिति पर विचार करने के लिए प्रत्येक बुद्धि सम्पन्न मनुष्य को नये सिरे से विचार करने के लिए बाध्य होना पड़े । पतन ने कितनी क्षति पहुँचाई और उत्थान से उसकी कितनी भरपाई हो सकती है, इसका विचार प्रत्येक मस्तिष्क में उठना चाहिए । अनादि काल से वरिष्ठता प्राप्त नारी को किन परिस्थितियों और किन मनःस्थितियों ने दयनीय दुर्दशा में ला ढकेला, इस दुःखदायी इतिहास को– घटना क्रम को, कलेजे पर पत्थर बाँध कर पढ़ना पड़ेगा । अवांछनीयताओं को मान्यता देने की सामाजिक मूढ़ता पर प्रचण्ड रोष जगाना पड़ेगा । इतना किये बिना नारी जागरण के लिए वे साधन बन ही नहीं पड़ेंगे, वे अभियान खड़े न हो सकेंगे, जो इतने बड़े प्रयोजन को पूरा करने के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं ।

नारी समस्या के विभिन्न पहलुओं पर जन-साधारण का पूरा-पूरा ध्यान केन्द्रित हो और हर व्यक्ति को प्रस्तुत अवांछनीयता की हानि समझने का अवसर मिले तभी वह आक्रोश जगाया जा सकेगा जो बड़े परिवर्तनों की भूमिका प्रस्तुत करता है । उसके लिए आवश्यक साधन जुटाना है । जब तक परिवर्तन के कारण उपलब्ध होने वाले लाभों को भली प्रकार न समझा जाएगा, तब तक उस दिशा में न तो उत्सुकता उत्पन्न होगी और न आतुरता । अन्यमनस्क मन बहुत दूर तक नहीं चल सकता है । बाल-बुद्धि से, खेल-खिलौने ही बन सकते है । वह क्षणिक उत्साह में एक क्षण घरोंदे बनाती है और दूसरे क्षण उसे बिगाड़कर ताली बजाकर नाचती है । पानी के बुलबुले उछलते कूदते तो हैं, पर वे न तो देर तक जीते हैं और न लम्बी यात्रा करते हैं । दृढ़ संकल्प करने वाला और आँधी-तूफानों से टकराते हुए लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अनवरत गति से यात्रा करते रहने वाला साहस गहरे चिन्तन में ही उत्पन्न होता है । गहरा चिन्तन करने के लिए मनुष्य ही भुलक्कड़ और उथली मनोवृत्ति सहज ही तैयार नहीं होती । उसे लुहार की भट्टी में तपाना पड़ता है और भारी घन की करारी चोटें देकर सीधा-उलटा करना पड़ता है, तभी उस अनगढ़ लौह खण्ड से कुछ उपयोगी उपकरण बन पाता है ।

नारी की वर्तमान स्थिति जितनी दयनीय है उतनी ही दुर्भाग्यपूर्ण भी । दयनीय इस अर्थ में कि उसके मानवीय अधिकार छिप गये और पशुओं से भी गये-बीते
में अपना शरीर और मन जकड़े पड़े रहने
निर्वाह करना पड़ा । दुर्भाग्य इस अर्थ में
रहा है उसे यथास्थिति समझौते के रूप

लिया गया । उसे बदलने के लिए किसी वर्ग में खास उत्सुकता या आतुरता दिखाई नहीं पड़ती । पुरुष इसलिए सन्तुष्ट है कि उसे पशु पालन पर होने वाले खर्च और झंझट की अपेक्षा अधिक सस्ता और अधिक लाभदायक श्रम अनायास ही मिल रहा है । बदले में आक्रोश भी नहीं सहना पड़ता वरन् पति देवता को चरण दासी की सेवा-साधना का सम्मान मिलता है । नारी इसलिए सन्तुष्ट है कि उसे पिंजड़े में पलने वाले सुग्गों की तरह निश्चित रहने का आश्रय मिल गया है । समाज इसलिए सन्तुष्ट है कि जब अनेक क्षेत्रों में ज्वालामुखी फूट रहे हैं और उन्हीं की रोकथाम कठिन हो रही है तो फिर एक नया सिर दर्द और क्यों बढ़ाया जाय । जाग्रत नारी नये काम और नये क्षेत्र माँगेगी । जब पुरुष के लिए ही गतिरोध खड़ा है तो सोते साँप को किसलिए जगाया जाय ? कलाकार इसलिए सन्तुष्ट है कि उसे नख-शिख का वर्णन करने के लिए रमणी प्रमदा, मुग्धा, तरुणी, भोग्या, कामिनी ही चाहिए । उसी पर वह अपनी कलम और तूलिका चला सकता है । उसी गुड़िया से गुदगुदी का लाभ ले सकता है । शृंगारिकता से भरे गीत उसी पर तो लिखे जा सकते हैं । नृत्य और अभिनय के लिए उन्हें इससे सस्ते और इतने सरसता माध्यम अन्यत्र कहाँ मिलेंगे ।

कला और कामुकता का सम्मिश्रण जितनी अच्छी तरह नारी की वर्तमान प्रतिमा निभा सकती है उसका विकल्प अन्यत्र कहाँ मिलेगा ? आखिर उन्हें भी तो पैसा और ख्याति 'कला-पारखी' लोगों की जेबों से ही झटकना है और वे कला पारखी अभी भोग्या से कामिनी से बढ़कर और कोई कला-केन्द्र ढूँढ़ने में समर्थ ही नहीं हो सके हैं । कलाकार की अपनी मजबूरियाँ हैं, यदि नारी मानवोचित् स्तर तक जा पहुँचती है तो आज की कला कल अपराध बन जाएगी और कलाकारों को समाजवादी अपराधियों की पंक्ति में खड़े होकर चूतड़ों पर हंटर की सजा का भाजन बनना पड़ेगा । आज का कलाकार उस झंझट में पड़ने को तैयार नहीं । साहित्यकार का, चित्रकार का, अभिनेता का धन्धा ही जैसा चौपट होता है, वह कदम उठाना उसे अस्वीकार है । भला पेट पर लात मरवाने के लिए कोई क्यों तैयार होगा ? सस्ती वाहवाही कैसे छोड़ी जा सकती है । प्राचीनकाल का कलाकार आदर्शवादिता के झंझट में पड़कर भूखा-नंगा फिरने की मूर्खता कर सकता है, आज के कलाकार को उस उपहासास्पद स्थिति में लौटना स्वीकार नहीं । वह अपने शाही व्यवसाय को अक्षुण्ण बनाये रहना चाहता है । अस्तु, उसे नारी जागरण के सम्बन्ध में ऊपरी दिलचस्पी ही हो सकती है । गहरे में उतरने और डूब मरने की उसे कोई दिलचस्पी नहीं ।

व्यापारी को विज्ञापनबाजी के लिए, व्यवसाय के लिए नारी के यौवनान्मत रूप का प्रदर्शन करने से बढ़कर लाभ कमाने का, लोकरुचि आकर्षित करने का और कोई तरीका दिखाई नहीं पड़ता । वह अपना पैसा मुनाफे के लिए लगाता है । यह लोक आकर्षण के आधार पर ही सम्भव है । अस्तु, साहित्य प्रकाशन, फिल्म व्यवसाय से लेकर अपनी वस्तु के विज्ञापन तक में 'मुग्धा' का आश्रय लेना पड़ता है । यदि यह सोने की चिड़िया हाथ से निकल गई तो फिर उसे एक नये सिर दर्द का, अर्थ संकट का सामना करना पड़ सकता है । फिर सरसता को नीरसता में बदल जाने से उसके व्यापार पर असर पड़ेगा । व्यापारी उसे अच्छी तरह जताता है । इसलिए उसे भी इस सन्दर्भ में कोई खास दिलचस्पी नहीं है । मूर्धन्य बुद्धिजीवी कुछ कर सकते थे, पर उन्हें लोकमंगल की अपेक्षा लोकरंजन ही अभीष्ट हो गया है । उनकी लेखनी और वाणी युग की कुत्साओं से कुंठित कर दी है । द्रौपदी के चीर अपहरण पर द्रोणाचार्य और भीष्म जैसी मनीषी, कर्ण जैसे दया धर्म के प्रवक्ता भी तो मौन रहे थे, आज का 'द्रष्टा' यदि मौन हो गया है तो उसमें भी कौन कोई अनहोनी बात है ? वह भी बेचारा परम्पराओं के अंश की पुनरावृत्ति ही तो कर रहा है ।

धर्म क्षेत्र के अध्यात्म क्षेत्र के स्वप्नदर्शी नारी की गरिमा जानते तो हैं, उसे आदिशक्ति के, ब्रह्मविद्या के, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा आदि रूप में मानते भी हैं, पर यह श्रद्धा आकाशवासिनी अदृश्य देवियों तक ही सीमित है, उन्हें ऋद्धि-सिद्धि के चमत्कारी आकाश कुसुम चाहिए । न तो उनका विश्वास धरती पर है, न धरती पर निवास करने वाली देवियों पर । नारी की पूजा करके घरों में स्वर्ग के अवतरण का जो व्यावहारिक विधान भगवान् मनु ने बताया है वह उन्हें स्वीकार नहीं । कल्पना की उड़ानें उड़ने से ही यदि काम चल जाता है तो फिर झंझट भरे कर्मयोग में कौन भटके ? जो स्वयं उलझे हुए हैं, वे दूसरों को क्या सुलझा सकते हैं । वे कभी उसे ढोल, गँवार, शूद्र, पशु की तुलना में ला बिठालते हैं । कभी स्त्री एवं शूद्र को अध्ययन का अनधिकारी घोषित करते हैं । कभी यज्ञ में बिना पत्नी के न होने की बात कहते हैं, कभी मन्त्र पाठ का उसे अनधिकारी घोषित करते हैं । स्त्री को नरक की खान बताने और उसके स्पर्श तक में पाप बताने वाले भी यही हैं और बहुपत्नी के समर्थक भी । जिनकी मान्यताएँ इतनी उलझी हों, जिन्हें तप, ध्यान के अतिरिक्त व्यावहारिक जगत की गुत्थियों को समझाने, सुलझाने जैसे कठिन कार्यों में कोई रुचि न हो, उन धर्माचार्यों से भी क्या कुछ आशा की जा सकती है । वे तो संसार को माया, मिथ्या और स्वप्न बताकर जो हो रहा है भगवान की इच्छा से हो रहा है, अपना-अपना भाग्य कहकर, हर जटिल समस्या से अपना पीछा छुड़ा लेने के अभ्यस्त हैं । नारी की दयनीय स्थिति को देख कर पसीजने, पिघलने की उनसे आशा करना बालू में से तेल निकालने के समान है । चेली-चेला मूँडने और किसी-किसी बहाने दक्षिणा बटोरने के जाल बुनने से ही उन्हें फुरसत नहीं । उन्हें स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि, चमत्कार के आकर्षण क्या कम है जो लोकमंगल के लिए कुछ माथापच्ची करें ।

शोषितों को अपनी आवाज बुलन्द करनी पड़ी है, साथ ही शोषकों को भी न्याय देने के लिए झुकना पड़ा है। यथास्थिति बने रहने में दोष दोनों के सिर पर मढ़ा जा सकता है। अनीति करने वाले की तरह उसे सहने वाला भी दोषी होता है। आधी जनसंख्या अपने दर्प और स्वार्थ की पूर्ति करने के लिए दूसरे पक्ष को दबाव सहने के लिए बाधित करती है। आधी जनसंख्या इसे किसी कारण सहती है-असहयोग, आग्रह, अनुरोध कुछ ही नहीं करती। इसलिए प्रकारान्तर से दोषी यह भी बनती है, भले ही शोषित होने के नाते न्याय की सहानुभूति उसके पक्ष में जाती हो। आधी जनसंख्या शोषक, आधी शोषित रहे यह बहुत बुरी बात है। इसका अन्त करने के लिए जो उफान अन्तरिक्ष के गर्भ में उभर रहा है, उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। यह उफान आन्दोलन बनकर उभरे और समता की माँग करे, इसे समूची मानव जाति के सिर पर लगे कलंक का परिमार्जन ही कहना चाहिए।

नारी जागरण, अनाचार के परिमार्जन का विश्वव्यापी आन्दोलन है। समता का पक्षधर सघन-सहयोग जब भी बन पड़ेगा तब परस्पर खींचतान में लगी हुई शक्तियाँ मिल-जुलकर उस सृजन में संलग्न होंगी, जिसके सत्परिणामों की कल्पना करने भर से पुलकन उत्पन्न होती है। समुन्नत नारी जब अपनी स्वाभाविक प्रतिभा से सम्पन्न होगी तो उसे पुरुष से किसी भी प्रकार कम नहीं वरन् हर क्षेत्र में अधिक सफल होते देखा जाएगा। अभी भी छात्राएँ छात्रों की तुलना में अधिक संख्या व अच्छे नम्बरों से परीक्षा में उत्तीर्ण होती हैं। जब उन्हें समान सुविधा मिलने लगेगी तो उनके विकास की प्रक्रिया तेज होगी और तब वही वर्ग अधिक लाभान्वित होगा जो आज नारी वर्ग को प्रगति करने और विकसित होने में अपना घाटा समझकर अवरोध उत्पन्न करता है।

नारी का जागरण और नर का उदात्तीकरण यह दोनों ही पक्ष मिलकर एक समग्र इकाई बनाते हैं। इसलिए वस्तुतः इसे दोनों पक्षों का प्रायश्चित और साथ ही क्षति-पूर्ति के लिए किया गया सृजन प्रयास कहा जा सकता है। इसे महान् परिवर्तन भी कह सकते हैं। यह प्रक्रिया चल पड़ने पर उसके दूरगामी परिणाम होंगे। एक आदर्श उभरेगा तो उसका प्रभाव अन्य क्षेत्रों पर भी पड़े बिना न रहेगा। अनेक दुष्प्रवृत्तियों का परिमार्जन, कुरीतियों और कुप्रथाओं का उन्मूलन होगा और समानान्तर सत्प्रवृत्तियों का संस्थापन अनायास ही चल पड़ेगा। व्यक्ति और समाज में इसकी असाधारण प्रतिक्रिया दृष्टिगोचर होगी। नीतिनिष्ठा अपनाने के लिए सभी क्षेत्रों में उमंग उभरेगी। एक के साथ दूसरा गति चक्र घूमने लगेगा। युग परिवर्तन का सुनियोजित आधार खड़ा होगा।

इक्कीसवीं सदी महान् परिवर्तनों की धुरी है। इसे राजनीतिक, अर्थशास्त्री, विज्ञानवेत्ता और अध्यात्मवादी सभी वर्ग स्वीकार करते हैं। इस महान् परिवर्तन का एक सबसे बड़ा पक्ष यह है कि अगली शताब्दी से आरम्भ होने वाला नवयुग नारी प्रधान रहेगा। समाज की सभी शिक्षा-धाराओं पर उनका वर्चस् होगा। इस नियति निर्धारण का कारण यह है कि नारी की श्रद्धा, सद्भावना, करुणा, उदारता, समूचे सत्ता तंत्र का मार्गदर्शन कर सकेगी। इन दिनों अनास्था, निष्ठुरता, उच्छृंखलता, संकीर्ण स्वार्थपरता, आक्रामकता जैसी दुष्प्रवृत्तियों ने ही संसार में अनेकानेक समस्याएँ, विपत्तियाँ उत्पन्न की हैं, उन्हें प्रायः पुरुष वर्ग ने पनपाया है। भूतकाल में भी यही होता रहा है। तब भी महिला वर्ग ने सर्वत्र सदैव शालीनता और सद्भावना जीवित रखी है। अगले दिनों शान्ति और समाधान के लिए समन्वित भूमिका निभानी होगी। इसी बात को प्रकारान्तर से यों भी कहा जा सकता है कि नारी का देवत्व ही नवसृजन के उपयोगी परिवर्तन की भूमिका सम्पन्न करेगा। अगली शताब्दी की प्रमुख घटना यह होगी कि नारी तत्व को अपने असली रूप में प्रगट होना ही होगा।

इन दिनों नारी जागरण का महान् आन्दोलन उपर्युक्त सभी विसंगतियों को असंगतियों में बदलने के लिए हो रहा है, उसे उथला उफान अथवा बाजारू आन्दोलन न समझा जाय। इसके दूरगामी परिणाम को समझा जाय और माना जाय कि प्रस्तुत अभियान युग परिवर्तन की महती भूमिका सम्पन्न करने के लिए अवतरित हो रहा है।

नारी जागरण-आज की अनिवार्य आवश्यकता

नारी-जागरण की बात कम महत्त्व की समझी गई है इसलिए उस ओर नहीं के बराबर ही ध्यान दिया जाता है। कम महत्त्व की बातों पर बड़े-बड़े आन्दोलन खड़े हो जाते हैं और उनके लिए अगणित लोगों का समय, मनोयोग और धन भी प्रचुर मात्रा में लगा रहता है, जबकि नारी जागरण जैसी संसार में आधी, आबादी से सम्बन्धित जीवन-मरण जैसी महत्त्वपूर्ण समस्या को सुलझाने के लिए हर किसी को कुछ करते नहीं बनता। इसमें मुख्य कारण एक ही है कि उसकी महत्ता समझी ही नहीं गई। लाभ-हानि पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया ही कहाँ गया ? यदि यह समझने का प्रयत्न किया गया होता कि नारी का पिछड़ापन मनुष्य जाति का सबसे बड़ा अभिशाप और उस संदर्भ में उपेक्षा बरतना सबसे बड़ा अनहित है तो निश्चय ही गुत्थी को सुलझाने के लिए कुछ न कुछ किया ही जा सकता था।

व्यक्ति और समाज के सामने प्रस्तुत कठिनाइयों में यह कम विचारणीय नहीं है कि आधी जनसंख्या अनुत्पादक, पिछड़ी और भारभूत स्थिति में पड़ी हुई दिन गुजारे। प्रशिक्षित पशु-पक्षी भी महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। सिंह, सर्प, बन्दर तक को प्रशिक्षित करके तमाशा दिखाने वाले अपनी आजीविका चला लेते हैं। पालतू पशुओं पर ध्यान देकर उनसे लाभ उठा लिया जाता है। नारी की ओर समुचित

सभी दिशाओं में छाये हुए घनघोर अन्धकार के बीच प्रकाश की एक ही आशा किरण शेष रह गई है, वह है लोक-मानस का पुनर्जागरण और उसकी प्रखरता का अभिवर्धन । इस महाचण्डी का आश्रय लेकर समय-समय पर मन्दोमत्त दानवों का मान-मर्दन सम्भव होता रहा है । आधी जनसंख्या को अपंग बना देने वाले और शेष आधी को दुर्भाग्य भरे संकट झेलने के लिए विवश करने वाले प्रस्तुत अनाचार महिषासुर को, सिंह वाहिनी महाकाली ही निरस्त करेगी । लोक-शक्ति ही दुर्गा है जो अनीति प्रचलन को विदीर्ण कर सकती है ।

लोकमत के सम्मुख समर्थ सत्ताओं को सिंहासन छोड़ने पड़े हैं । प्रथाओं और परम्पराओं को पलायन करना पड़ा है । विधान और प्रचलन उलटे हुए हैं । संसार के इतिहास में समय-समय पर अनेक स्तर की अनेकानेक महाक्रान्तियों के विवरणों का उल्लेख मिलता है । उन प्रचण्ड परिवर्तनों के पीछे लोकमत की शक्ति ही प्रधान रूप से काम करती हुई दृष्टिगोचर होगी, भले ही उसका नेतृत्व किसी ने भी किया हो और श्रेयाधिकारी कोई भी बना हो ।

नारी अपकर्ष को अभिनव उत्कर्ष में बदलने के लिए लोक-शक्ति का आह्वान करना पड़ेगा । इसके लिए लोक-मानस को इस स्तर पर प्रशिक्षित करना पड़ेगा कि वह अपकर्ष की हानि और उत्कर्ष के लाभ को समझ सकें और पग-पग काँटे चुभने वाली झाड़ियों में भटकना छोड़कर उज्ज्वल भविष्य के राजमार्ग पर चलने को कटिबद्ध हो सकें ।

नारी जागरण अभियान की दूरगामी परिणति

संसार के इतिहास में समय-समय पर अनेकानेक आन्दोलन उभरते रहे हैं । उनमें से कुछ सफल, कुछ असफल भी होते रहे हैं । इनमें से अनेक अनीति विरोधी और अधिकारों की माँग से सम्बन्धित रहे हैं । कुछ का सृजनात्मक पक्ष रहा है, पर वे सभी सामयिक या क्षेत्रीय ही रहे हैं । अपनी तात्कालिक आवश्यकता पूरी करने के उपरान्त उनका समापन भी होता है । ऐसा आन्दोलन कदाचित् ही कभी उभरा हो, जिसका समूची मानवता के साथ चिरन्तन सम्बन्ध रहा हो । इस संदर्भ में पहला और अन्तिम आन्दोलन नारी जागरण को माना जाय तो उसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी ।

आन्दोलनों की दुनिया का निरीक्षण-परीक्षण किया जाय तो उनका प्रभाव किसी क्षेत्र विशेष, वर्ग, समाज के किसी एक पक्ष तक सीमित रहा जा सकता है, पर नारी जागरण अभियान ऐसा है जिसमें समस्याओं के सभी पक्षों का समावेश होता है । जन-जन से इसका प्रगाढ़ सम्बन्ध है । वह मनुष्य मात्र को प्रभावित करता है । इसलिए उसे सार्वजनीन-सार्वभौम भी कह सकते हैं । इतना ही नहीं इसके साथ अवांछनीयताओं का आत्यन्तिक समाधान भी जुड़ा हुआ है और उसे उज्ज्वल भविष्य की संरचना का महानतम आधार भी कहा जा सकता है ।

नारी के पिछड़ेपन का कारण कुछ भी हो सकता है । नारी की उदारता, सेवा और क्षमाशीलता उसका एक कारण हो सकता है । समर्थों द्वारा समय-समय पर अपनाया जाने वाला मत्स्य न्याय भी नारी पर आधिपत्य जमाने के लिए प्रोत्साहित करता है । प्रजनन का एकाकी उत्तरदायित्व वहन करते रहने के कारण उसकी विवशता भी उसे अधिकार सम्पादन से वंचित करती रही हो ? पुरुष ने उद्धत कामुकता के रसास्वादन में अधिक लाभ देखा हो ? आततायियों के अपहरण से बचाने के लिए उसे सुरक्षा दी गई हो ? आर्थिक दरिद्रता ने यह विषमता उत्पन्न की हो ? सामाजिक कुप्रचलन उसके लिए उत्तरदायी रहे हों ? जो भी हो, पर आज की स्थिति में उसके निवारण के ठोस प्रयास तत्काल होने चाहिए ।

समता मानवी न्याय की मौलिक माँग है । मानवी मौलिक अधिकारों से न किसी को वंचित किया जाना चाहिए न उनका किसी को अतिक्रमण करना चाहिए । विषमता के कारण समय-समय पर अधिक विग्रह उभरे हैं, संघर्ष हुए हैं और सुधार-परिष्कार के आन्दोलन उभरे हैं । अपराधों के बढ़ने से लेकर ईर्ष्या उभरने तक यह विषमता ही प्रधान कारण रही है । जिसे अध्यात्मवाद कहते हैं, उसका प्रमुख प्रयोजन भी समता की उस स्थिति को उत्पन्न करना है जो सुव्यवस्था, एकता, प्रगति और शालीनता की जन्मदात्री है । 'जिओ और जीने दो' की बात सोचने वालों को इस तथ्य को इच्छा या अनिच्छा से हृदयंगम करना ही पड़ेगा ।

नारी जागरण इस प्रयोजन को पूरा करने के लिए उभरा, मानवता का पक्षधर, न्याय की आकांक्षा से ओतप्रोत सार्वभौम आन्दोलन है । जिसका मन्तव्य एक ही है, उसे क्रियान्वित करने की क्षेत्रीय आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं । उस दिशा में उठने वाले कदम धीमे और तेज हो सकते हैं । योजनाएँ भी अलग-अलग ढंग की बन सकती हैं, पर मानवी न्याय का सबसे बड़ा और सबसे व्यापक क्षेत्र वही है कि नर-नारी समता और एकता जन्य सहकारी आधार पर सद्‌भावपूर्वक सज्जनोचित् जीवन जिएँ ।

अच्छा हो इसके लिए वर्ग संघर्ष न उभरे । पाश्चात्य जगत में उफन रहे नारी मुक्ति आन्दोलन की तरह शोषित वर्ग को यह न कहना पड़े कि हम मुर्गियों की तरह मालिकों के लिए जिएँगी । अनाचार अन्ततः विग्रह ही उभारता है और करने-स्वीकारने वाले दोषी को साथ लेकर स्वयं बेमौत मरता है । हर दिशा में इन दिनों औचित्य अपनाये जाने की माँग उठ रही है । इस समय की पुकार को दबाया न जा सकेगा । समय रहते इसका समाधान करना होगा ।

शोषितों को अपनी आवाज बुलन्द करनी पड़ी है, साथ ही शोषकों को भी न्याय देने के लिए झुकना पड़ा है। यथास्थिति बने रहने में दोष दोनों के सिर पर मढ़ा जा सकता है। अनीति करने वाले की तरह उसे सहने वाला भी दोषी होता है। आधी जनसंख्या अपने दर्प और स्वार्थ की पूर्ति करने के लिए दूसरे पक्ष को दबाव सहने के लिए बाधित करती है। आधी जनसंख्या इसे किसी कारण सहती है–असहयोग, आग्रह, अनुरोध कुछ भी नहीं करती। इसलिए प्रकारान्तर से दोषी वह भी बनती है, भले ही शोषित होने के नाते न्याय की सहानुभूति उसके पक्ष में जाती हो। आधी जनसंख्या शोषक, आधी शोषित रहे यह बहुत बुरी बात है। इसका अन्त करने के लिए जो उफान अन्तरिक्ष के गर्भ में उभर रहा है, उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। वह उफान आन्दोलन बनकर उभरे और समता की माँग करे, इसे समूची मानव जाति के सिर पर लगे कलंक का परिमार्जन ही कहना चाहिए।

नारी जागरण, अनाचार के परिमार्जन का विश्वव्यापी आन्दोलन है। समता का पक्षधर सघन-सहयोग जब भी बन पड़ेगा तब परस्पर खींचतान में लगी हुई शक्तियाँ मिल-जुलकर उस सृजन में संलग्न होंगी, जिसके सत्परिणामों की कल्पना करने भर से पुलकन उत्पन्न होती है। समुन्नत नारी जब अपनी स्वाभाविक प्रतिभा से सम्पन्न होगी तो उसे पुरुष से किसी भी प्रकार कम नहीं वरन् हर क्षेत्र में अधिक सफल होते देखा जाएगा। अभी भी छात्राएँ छात्रों की तुलना में अधिक संख्या व अच्छे नम्बरों से परीक्षा में उत्तीर्ण होती हैं। जब उन्हें समान सुविधा मिलने लगेगी तो उनके विकास की प्रक्रिया तेज होगी और तब वही वर्ग अधिक लाभान्वित होगा जो आज नारी वर्ग को प्रगति करने और विकसित होने में अपना घाटा समझकर अवरोध उत्पन्न करता है।

नारी का जागरण और नर का उदातीकरण यह दोनों ही पक्ष मिलकर एक समग्र इकाई बनाते हैं। इसलिए वस्तुतः इसे दोनों पक्षों का प्रायश्चित और साथ ही क्षति-पूर्ति के लिए किया गया सृजन प्रयास कहा जा सकता है। इसे महान् परिवर्तन भी कह सकते हैं। यह प्रक्रिया चल पड़ने पर उसके दूरगामी परिणाम होंगे। एक आदर्श उभरेगा तो उसका प्रभाव अन्य क्षेत्रों पर भी पड़े बिना न रहेगा। अनेक दुष्प्रवृत्तियों का परिमार्जन, कुरीतियों और कुप्रथाओं का उन्मूलन होगा और समानान्तर सत्प्रवृत्तियों का संस्थापन अनायास ही चल पड़ेगा। व्यक्ति और समाज में इसकी असाधारण प्रतिक्रिया दृष्टिगोचर होगी। नीतिनिष्ठा अपनाने के लिए सभी क्षेत्रों में उमंग उभरेगी। एक के साथ दूसरा गति चक्र घूमने लगेगा। युग परिवर्तन का सुनियोजित आधार खड़ा होगा।

इक्कीसवीं सदी महान् परिवर्तनों की धुरी है। इसे राजनीतिक, अर्थशास्त्री, विज्ञानवेत्ता और अध्यात्मवादी सभी वर्ग स्वीकार करते हैं। इस महान् परिवर्तन का एक सबसे बड़ा पक्ष यह है कि अगली शताब्दी से आरम्भ होने वाला नवयुग नारी प्रधान रहेगा। समाज की सभी शिक्षा-धाराओं पर उनका वर्चस् होगा। इस नियति निर्धारण का कारण यह है कि नारी की श्रद्धा, सद्भावना, करुणा, उदारता, समूचे सत्ता तंत्र का मार्गदर्शन कर सकेगी। इन दिनों अनास्था, निष्ठुरता, उच्छृंखलता, संकीर्ण स्वार्थपरता, आक्रामकता जैसी दुष्प्रवृत्तियों ने ही संसार में अनेकानेक समस्याएँ, विपत्तियाँ उत्पन्न की हैं, उन्हें प्रायः पुरुष वर्ग ने पनपाया है। भूतकाल में भी यही होता रहा है। तब भी महिला वर्ग ने सर्वत्र सदैव शालीनता और सद्भावना जीवित रखी है। अगले दिनों शान्ति और समाधान के लिए समन्वित भूमिका निभानी होगी। इसी बात को प्रकारान्तर से यों भी कहा जा सकता है कि नारी का देवत्व ही नवसृजन के उपयोगी परिवर्तन की भूमिका सम्पन्न करेगा। अगली शताब्दी की प्रमुख घटना यह होगी कि नारी तत्व को अपने असली रूप में प्रगट होना ही होगा।

इन दिनों नारी जागरण का महान् आन्दोलन उपर्युक्त सभी विसंगतियों को असंगतियों में बदलने के लिए हो रहा है, उसे उथला उफान अथवा बाजारू आन्दोलन न समझा जाय। इसके दूरगामी परिणाम को समझा जाय और माना जाय कि प्रस्तुत अभियान युग परिवर्तन की महती भूमिका सम्पन्न करने के लिए अवतरित हो रहा है।

नारी जागरण–आज की अनिवार्य आवश्यकता

नारी-जागरण की बात कम महत्त्व की समझी गई है इसलिए उस ओर नहीं के बराबर ही ध्यान दिया जाता है। कम महत्त्व की बातों पर बड़े-बड़े आन्दोलन खड़े हो जाते हैं और उनके लिए अगणित लोगों का समय, मनोयोग और धन भी प्रचुर मात्रा में लगा रहता है, जबकि नारी जागरण जैसी संसार में आधी, आबादी से सम्बन्धित जीवन-मरण जैसी महत्त्वपूर्ण समस्या को सुलझाने के लिए हर किसी को कुछ करते नहीं बनता। इसमें मुख्य कारण एक ही है कि उसकी महत्ता समझी ही नहीं गई। लाभ-हानि पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया ही कहाँ गया? यदि यह समझने का प्रयत्न किया गया होता कि नारी का पिछड़ापन मनुष्य जाति का सबसे बड़ा अभिशाप और उस संदर्भ में उपेक्षा बरतना सबसे बड़ा अनहित है तो निश्चय ही गुत्थी को सुलझाने के लिए कुछ न कुछ किया ही जा सकता था।

व्यक्ति और समाज के सामने प्रस्तुत कठिनाइयों में यह कम विचारणीय नहीं है कि आधी जनसंख्या अनुत्पादक, पिछड़ी और भारभूत स्थिति में पड़ी हुई दिन गुजारे। प्रशिक्षित पशु-पक्षी भी महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। सिंह, सर्प, बन्दर तक को प्रशिक्षित करके तमाशा दिखाने वाले अपनी आजीविका चला लेते हैं। पालतू पशुओं पर ध्यान देकर उनसे लाभ उठा लिया जाता है। नारी की ओर समुचित

ध्यान दिया गया होता तो यह पिछड़ी हुई आधी जनसंख्या भी पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही होती और इससे संसार की प्रगति अब की तुलना में सहज ही दूनी हो गई होती और हम सब अपेक्षाकृत दूनी सुविधा-साधनों का उपयोग कर रहे होते ।

यह तो भौतिक प्रगति की बात हुई । वस्तुतः नारी भावना क्षेत्र में नर से बहुत अधिक आगे है । उसे अपनी इस विशिष्टता को विकसित करने का, समूचे मनुष्य समाज को लाभान्वित करने का अवसर दिया गया होता तो हम सब उन भाव-संवेदनाओं का लाभ उठाकर उस आन्तरिक आनन्द का अनुभव करते जिसकी एक-एक बूँद के लिए तरसना पड़ रहा है । धन से सुविधाएँ बढ़ती हैं, पर भावनाएँ तो समूचे व्यक्तित्व को प्रभावित करतीं और उसका स्तर बनाती हैं । सम्पत्ति की तुलना में भावनात्मक विभूतियों का गौरव असंख्य गुना अधिक है । साधन विहीन व्यक्ति भी अनुकूल भाव-संवेदनाओं के सहारे उल्लास भरा जीवन जी लेता है, पर मनःस्थिति को विक्षुब्ध करने वाली परिस्थितियों में रहने वाला मनुष्य कुबेर जितनी सम्पत्ति रहने पर भी उद्विग्नता की आग में जलता रहता है । देवमानवों जैसी उच्च भूमिका में विकसित हो सकना भाव-सम्पदा के सहारे ही सम्भव होता है ।

ऐतिहासिक महामानवों के पास प्रधान वैभव उनका भावना स्तर ही होता है । उसी के सहारे वे अपना और समस्त संसार का कल्याण करते हैं । कहना न होगा कि नारी की विशेषता उसकी प्रकृति-प्रदत्त भाव गरिमा ही है। पुरुष की कठोरता का लाभ भौतिक सम्पदाओं के रूप में मिलता है, पर यदि नारी का भाव-वैभव परिष्कृत किया गया होता तो उससे समूची मानवता को सतयुगी देव-भूमिका में विकसित देखा जा सकता था और इसी धरती पर स्वर्ग जैसे आनन्द का रसास्वादन किया जा सकता था ।

नारी के प्रति उपेक्षा बरते जाने के कारण आधे अंग को पक्षाघात पीड़ित बनाये रखने जैसी आज की स्थिति न तो स्वीकार करने योग्य है और न सहन करने जैसी । उसे बदला जाना चाहिए, यदि नारी को नर के स्तर पर विकसित होने का अवसर मिल सके तो उसकी दैवी विशेषता से इस संसार में भाव सम्पदा का अमृत बिखरा हुआ दृष्टिगोचर हो सकता है । साधन-सम्पत्ति तो आधी जनसंख्या की मूर्छना दूर होते ही आशातीत मात्रा में सहज ही बढ़ चलेगी । उपार्जन पुरुष के हाथ में और उपयोग स्त्री के हाथ में सौंपा जा सके, तो आज की सम्पत्ति का भी अनेक गुना सदुपयोग हो सकता है । अपव्यय के विनाशकारी दुर्गुण तो पुरुष की कुदृष्टि में ही घुले हुए हैं । नारी तो स्वल्प साधनों से ही समूचे परिवार को सुसम्पन्न लोगों से भी अधिक सुखी रख सकती है ।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपार्जन तथा दूसरे क्षेत्र में काम करने से जो मिलता है उससे अधिक अपने घर-परिवार के बीच रहते हुए मिलता है । पैसा, प्रतिष्ठा या बाजारू हास-विलास का जितना महत्त्व है, उससे कहीं अधिक गरिमा उस विश्वास उल्लास एवं आश्वासन की है जो छोटे से परिवार के बीच मिलता है । यह अनुदान उन्हीं के भाग्य में बदा है, जिन्हें सुसंस्कृत नारी के अंचल की छाया मिल सकी होती है ।

परिवार के लिए मरते-खपते रहने पर भी मात्र भोजन, वस्त्र, शिक्षा, शादी, दवा, मनोरंजन जैसे साधन ही जुट पाते हैं । इससे कुटुम्बियों के शरीर भर पलते हैं, उनमें सद्गुणों के, सत्प्रवृत्तियों के बीजारोपण करके उन्हें सुविकसित करना, कमाने-खाने में अत्यधिक व्यस्त रहने वाले पुरुष के लिए सम्भव भी नहीं है । उसे समय भी कहाँ मिलता है जो इस ओर ध्यान दे पावे । थका हुआ आता है और खाकर सो जाता है । छोटी-छोटी पूछताछ कर ले तो बहुत है । यह नारी के लिए ही सम्भव है कि वह न केवल अपनी छाती से चिपके रहने वाले बच्चों के लिए, वरन् समूचे परिवार के लिए ऐसा वातावरण बनाये जिसमें पलने वाला हर सदस्य मानवीय आदर्शों को अपनाये और उन्हें अपने स्वभाव का अंग बनाकर भावी जीवन की उच्चस्तरीय रूपरेखा बनाये ।

प्राचीनकाल के गुरुकुलों में मनीषी आचार्यों के निकट रहकर पढ़ने वाले छात्र नर रत्न कहलाते, योग्य संस्कार लेकर वापिस लौटते थे । उस परम्परा का निर्वाह आंशिक रूप से सुसंस्कृत नारी कर सकती है । अपनी विकसित प्रतिभा और भाव-सम्पदा के सहारे वह घर के समूचे वातावरण को छोटे गुरुकुलों जैसा विनिर्मित कर सकती है । अध्ययन भले ही स्कूलों में रहे, उपार्जन भले ही हाट-बाजार में हो, पर संस्कारों का समूचा अनुदान घर में जितनी देर जो है वह उतने समय तक निरन्तर प्राप्त करता रह सकता है । यह स्थिति यदि बनाई जा सके तो व्यक्ति और समाज का पूरा ढाँचा बदल सकता है और जिन गुत्थियों के सुलझाने में आज एड़ी-चोटी का पसीना बहाना पड़ रहा है, उनका जड़ से उन्मूलन हो सकता है ।

प्रश्न भारतीय नारी तक सीमित नहीं है । समस्या विश्वव्यापी है । सामाजिक दृष्टि से पिछड़े कहे जाने वाले लोग उसे पर्दे के पीछे प्रतिबन्धित करके रख रहे हैं, तो अपने को विकसित कहने वाले देशों में उन्हें दूसरे ढंग से अन्य शिकंजों में जकड़ा गया है । वहाँ प्रलोभन के आकर्षणों में नारी ने स्वेच्छापूर्वक भोग्या रूप में पुरुष की दासी बनना स्वीकार कर लिया है । यों प्रखर प्रतिभा की धनी महिलाएँ हर देश में हर क्षेत्र में मौजूद हैं, पर बहुसंख्यकों की स्थिति को देखते हुए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पिछड़े और प्रगतिशील कहलाने वाले दोनों ही क्षेत्रों में सुधार एवं परिवर्तन की आवश्यकता है । औचित्य की माँग यही है कि प्रस्तुत अवांछनीयता से नारी को मुक्ति मिले और उसे भी मानवी अधिकारों से सुसम्पन्नपूर्ण मनुष्य के समान स्तर उपलब्ध कराया जाय ।

अधिकांश चारित्रिक शिक्षण तो घर के वातावरण में ही होता है और घर रूपी राष्ट्र की राष्ट्रपति सुगृहिणी ही होती है। कुशल शिल्पी ही कलात्मक मूर्तियाँ गढ़ सकते हैं। पीढ़ी निर्माण का उत्तरदायित्व ६० प्रतिशत घर के वातावरण पर और ४० प्रतिशत शिक्षा आदि बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। बाल विकास के समस्त प्रयत्न एक ओर और नारी की निर्माण क्षमता एक ओर रख कर तौली जा सकती है।

उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाएँ मात्र भौतिक प्रगति पर निर्भर नहीं हैं। उसके लिए चरित्रवान् और कर्मनिष्ठ प्रखर व्यक्तित्व की अनिवार्य आवश्यकता है। इस महान् निर्माण को एकाकी पुरुष नहीं कर सकता। सुसंस्कृत नारी ही इस उद्देश्य की पूर्ति में प्रधान भूमिका निभा सकती है। अस्तु, इसके सुविकसित स्तर तक पहुँचने के लिए सर्वतोमुखी प्रयत्न किए जाने चाहिए।

दो अतियों के छोर पर भारतीय नारी

अपने देश का वर्तमान नारी समाज इस समय दो भागों में विभाजित है। शिक्षा, संस्कार, प्रवृत्तियों और विचारों के मामले में उन्हें दो परस्पर विरोधी वर्गों में रखा जा सकता है। पहला वर्ग है जो पिछले समय से चला आ रहा है और घर-परिवार के बाहर की बात उसके लिए गौण ही नहीं अनावश्यक और वर्जनीय भी है। गाँवों और शहरों के अनपढ़, अशिक्षित परम्परावादी परिवार की स्त्रियों को आज भी उन स्थितियों में रहना पड़ता है जिनमें पहले से ही वह रहती चली आ रही है। उसे अपने पति, परिवार के अन्य सदस्यों तथा बच्चों की सेवा-सुश्रूषा और देख-रेख, पालन-पोषण तक ही अपने को सीमित रखना पड़ता है। घर की चौखट उसकी लक्ष्मण रेखा है और उसके बाहर कदम रखना उसके लिए अनुचित है।

दूसरा वर्ग वह है जो शिक्षित और आधुनिक होने का दम्भ भरते हुए स्त्री को हर प्रकार की आजादी देने की वकालत करता है। हर प्रकार की आजादी से उसका मतलब यह बहुत कम है कि स्त्री अपने मामले में स्वयं ही निर्णय ले, वरन् अधिक यही है कि वह उन सब वर्जनाओं को तोड़े जो परम्परागत गृहिणी के लिए आवश्यक समझी जाती हैं। इस धारणा में कुछ अच्छाइयाँ भी हैं तो बुराइयाँ भी। अच्छाइयाँ इससे सम्बन्धित हैं कि नारियों को परम्परा से चली आ रही रूढ़ियों और वर्जनाओं का ही कायल नहीं रहना चाहिए। उसे स्वतंत्र बुद्धि से सोचना भी चाहिए। स्वतंत्र बुद्धि के रूप में जिस रीति-नीति को प्रधानता दी जाती है, वह एक ऐसी उन्मुक्त नारी का चित्र प्रस्तुत करती है जो रहन-सहन और व्यवहार में बहुत कुछ पश्चिमी जीवन की अनुगामी है। विवेक-बुद्धि से लिए गए निर्णय और उन्हें क्रियान्वित करने का साहस यदि रूढ़ियों से न बँधने वाली नारी की विशेषता बनता तो महिलाएँ सचमुच शक्तिस्वरूपा बनकर सामने आती, पर आधुनिक नारी पुराने परिवार की मात्र प्रतिद्वन्द्वी प्रतिक्रिया मात्र बनती जा रही है। जिसे किसी भी तरह उचित नहीं कहा जा सकता।

परम्परा, व्यामोह से मुक्त नारी से बहुत कुछ आशाएँ की जाती हैं की जानी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार उसकी योग्यता और क्षमता परिवार की ही सेवा में लगे रहकर कुन्द हो जाने की स्थिति से बचा जा सकता था। महिलाओं की कार्य-क्षमता और योग्यताओं से इन्कार नहीं किया जा सकता। विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियाँ जो कर दिखा रही हैं उसने यह भ्रान्तिपूर्ण मान्यता झुठला दी है कि कार्य-क्षमता और दक्षता के मामले में वे पुरुषों से कम हैं। बल्कि कई मामलों में तो उनके कीर्तिमान पुरुषों से भी ऊँचे हैं। यदि उन्हें घर के चौके-चूल्हे तक ही प्रतिबन्धित कर दिया गया तो समाज उनसे मिलने वाले लाभ से वंचित हो जाता है। परम्परा व्यामोह के कारण अब भी ऐसी स्त्रियाँ अपनी प्रतिभा को घर की चारदीवारी में सड़ने दे रही हैं। उन्हें आगे लाने की आवश्यकता है। यदि यही स्थिति बनी रही तो बदलते युग के संदर्भों में, बढ़ती व्यस्तता और तीव्रगति से भागती सभ्यता की दौड़ में समाज की आधी शक्ति का भार ढोते-ढोते यह आधी शक्ति भी चुकने लगेगी और यह हानि पिछली हानियों की तुलना में कई गुना अधिक होगी। अतः उचित है कि अविवेकपूर्ण परम्परा का मोह टूटे और महिलाएँ अपने प्रतिभा का लाभ देश और समाज को दें, लेकिन प्रगतिशीलता का यह अर्थ भी नहीं है कि उन दायित्वों को भी फेंक दिया जाय जो स्त्रियाँ ही सम्हाल सकती हैं। जैसे दायित्वों को ही लें। गृहस्थ पुरुष और स्त्री की साझी व्यवस्था है। पुरुष का दायित्व बाहरी कार्यों को निबटाना है, तो स्त्री के जिम्मे परिवार की अन्दरूनी व्यवस्था है। पुरुष का अधिकांश समय गृहस्थ के दायित्वों को बाहर क्षेत्र से पूरा करने में बीतता है तो स्त्रियाँ परिवार की आन्तरिक व्यवस्था को सम्भालती हैं। खाली समय दोनों के पास बचता है अतः उसका उपयोग अपनी योग्यता बढ़ाने और समाज की सेवा करने में किया जा सकता है

लेकिन स्वयं को परम्परागत गृहिणी से अलग देखने वाली आधुनिका परिवार को अनपेक्षित भार समझ कर वहन करती है या उससे कतराने-सी लगती है।

शिक्षित और पढ़े-लिखे समुदाय की स्त्रियाँ घर में अपने बच्चों की देख-रेख की अपेक्षा नौकरी करना अधिक अच्छा समझती हैं। परिवार की आर्थिक स्थिति इससे मजबूत बन सके, यही सामान्यतः नौकरों का ध्येय रहता है, लेकिन कई आधुनिक विचार वाली स्त्रियों का यह दृष्टिकोण प्रमुख रहता है। नौकरी के पीछे कि हम आर्थिक दृष्टि से पुरुष की बराबरी करें और अपनी आवश्यकताओं के लिए उस पर निर्भर न रहें। पुरुष से.

ध्यान दिया गया होता तो यह पिछड़ी हुई आधी जनसंख्या भी पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही होती और इससे संसार की प्रगति अब की तुलना में सहज ही दूनी हो गई होती और हम सब अपेक्षाकृत दूनी सुविधा-साधनों का उपयोग कर रहे होते ।

यह तो भौतिक प्रगति की बात हुई । वस्तुतः नारी भावना क्षेत्र में नर से बहुत अधिक आगे है । उसे अपनी इस विशिष्टता को विकसित करने का, समूचे मनुष्य समाज को लाभान्वित करने का अवसर दिया गया होता तो हम सब उन भाव-संवेदनाओं का लाभ उठाकर उस आन्तरिक आनन्द का अनुभव करते जिसकी एक-एक बूँद के लिए तरसना पड़ रहा है । धन से सुविधाएँ बढ़ती हैं, पर भावनाएँ तो समूचे व्यक्तित्व को प्रभावित करतीं और उसका स्तर बनाती हैं । सम्पत्ति की तुलना में भावनात्मक विभूतियों का गौरव असंख्य गुना अधिक है । साधन विहीन व्यक्ति भी अनुकूल भाव-संवेदनाओं के सहारे उल्लास भरा जीवन जी लेता है, पर मनःस्थिति को विक्षुब्ध करने वाली परिस्थितियों में रहने वाला मनुष्य कुबेर जितनी सम्पत्ति रहने पर भी उद्विग्नता की आग मे जलता रहता है । देवमानवों जैसी उच्च भूमिका में विकसित हो सकना भाव-सम्पदा के सहारे ही सम्भव होता है ।

ऐतिहासिक महामानवों के पास प्रधान वैभव उनका भावना स्तर ही होता है । उसी के सहारे वे अपना और समस्त संसार का कल्याण करते हैं । कहना न होगा कि नारी की विशेषता उसकी प्रकृति-प्रदत्त भाव गरिमा ही है। पुरुष की कठोरता का लाभ भौतिक सम्पदाओं के रूप में मिलता है, पर यदि नारी का भाव-वैभव परिष्कृत किया गया होता तो उससे समूची मानवता की सतयुगी देव-भूमिका में विकसित देखा जा सकता था और इसी धरती पर स्वर्ग जैसे आनन्द का रसास्वादन किया जा सकता था ।

नारी के प्रति उपेक्षा बरते जाने के कारण आधे अंग को पक्षाघात पीड़ित बनाये रखने जैसी आज की स्थिति न तो स्वीकार करने योग्य है और न सहन करने जैसी । उसे बदला जाना चाहिए, यदि नारी को नर के स्तर पर विकसित होने का अवसर मिल सके तो उसकी दैवी विशेषता से इस संसार में भाव सम्पदा का अमृत बिखरा हुआ दृष्टिगोचर हो सकता है । साधन-सम्पत्ति तो आधी जनसंख्या की मूर्छना दूर होते ही आशातीत मात्रा में सहज ही बढ़ चलेगी । उपार्जन पुरुष के हाथ में और उपयोग स्त्री के हाथ में सौंपा जा सके, तो आज की सम्पत्ति का भी अनेक गुना सदुपयोग हो सकता है । अपव्यय के विनाशकारी दुर्गुण तो पुरुष की कुदृष्टि में ही घुले हुए हैं । नारी तो स्वल्प साधनों से ही समूचे परिवार को सुसम्पन्न लोगों से भी अधिक सुखी रख सकती है ।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपार्जन तथा दूसरे क्षेत्र में काम करने से जो मिलता है उससे अधिक अपने घर-परिवार के बीच रहते हुए मिलता है । पैसा, प्रतिष्ठा या बाजारू हास-विलास का जितना महत्त्व है, उससे कहीं अधिक गरिमा उस विश्वास उल्लास एवं आश्वासन की है जो छोटे से परिवार के बीच मिलता है । यह अनुदान उन्हीं के भाग्य में बदा है, जिन्हें सुसंस्कृत नारी के अंचल की छाया मिल सकी होती है ।

परिवार के लिए मरते-खपते रहने पर भी मात्र भोजन, वस्त्र, शिक्षा, शादी, दवा, मनोरंजन जैसे साधन ही जुट पाते हैं । इससे कुटुम्बियों के शरीर भर पलते हैं, उनमें सद्गुणों के, सत्प्रवृत्तियों के बीजारोपण करके उन्हें सुविकसित करना, कमाने-खाने में अत्यधिक व्यस्त रहने वाले पुरुष के लिए सम्भव भी नहीं है । उसे समय भी कहाँ मिलता है जो इस ओर ध्यान दे पावे । थका हुआ आता है और खाकर सो जाता है । छोटी-छोटी पूछताछ कर ले तो बहुत है । यह नारी के लिए ही सम्भव है कि वह न केवल अपनी छाती से चिपके रहने वाले बच्चों के लिए, वरन् समूचे परिवार के लिए ऐसा वातावरण बनाये जिसमें पलने वाला हर सदस्य मानवीय आदर्शों को अपनाये और उन्हें अपने स्वभाव का अंग बनाकर भावी जीवन की उच्चस्तरीय रूपरेखा बनाये ।

प्राचीनकाल के गुरुकुलों में मनीषी आचार्यों के निकट रहकर पढ़ने वाले छात्र नर रत्न कहलाते, योग्य संस्कार लेकर वापिस लौटते थे । उस परम्परा का निर्वाह आंशिक रूप से सुसंस्कृत नारी कर सकती है । अपनी विकसित प्रतिभा और भाव-सम्पदा के सहारे वह घर के समूचे वातावरण को छोटे गुरुकुलों जैसा विनिर्मित कर सकती है । अध्ययन भले ही स्कूलों में रहे, उपार्जन भले ही हाट-बाजार में हो, पर संस्कारो का समूचा अनुदान घर में जितनी देर जो है वह उतने समय तक निरन्तर प्राप्त करता रह सकता है । वह स्थिति यदि बनाई जा सके तो व्यक्ति और समाज का पूरा ढाँचा बदल सकता है और जिन गुत्थियों के सुलझाने में आज एड़ी-चोटी का पसीना बहाना पड़ रहा है, उनका जड़ से उन्मूलन हो सकता है ।

प्रश्न भारतीय नारी तक सीमित नहीं है । समस्या विश्वव्यापी है । सामाजिक दृष्टि से पिछड़े कहे जाने वाले लोग उसे पर्दे के पीछे प्रतिबन्धित करके रख रहे हैं, तो अपने को विकसित कहने वाले देशों में उन्हें दूसरे ढंग से अन्य शिकंजों में जकड़ा गया है । वहाँ प्रलोभन के आकर्षणों में नारी ने स्वेच्छापूर्वक भोग्या रूप में पुरुष की दासी बनना स्वीकार कर लिया है । यों प्रखर प्रतिभा की धनी महिलाएँ हर देश में हर क्षेत्र में मौजूद हैं, पर बहुसंख्यकों की स्थिति को देखते हुए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पिछड़े और प्रगतिशील कहलाने वाले दोनों ही क्षेत्रों में सुधार एवं परिवर्तन की आवश्यकता है । औचित्य की माँग यही है कि प्रस्तुत अवांछनीयता से नारी को मुक्ति मिले और उसे भी मानवी अधिकारों से सुसम्पन्नपूर्ण मनुष्य के समान स्तर उपलब्ध कराया जाय ।

अधिकांश चारित्रिक शिक्षण तो घर के वातावरण में ही होता है और घर रूपी राष्ट्र की राष्ट्रपति सुगृहिणी ही होती है । कुशल शिल्पी ही कलात्मक मूर्तियाँ गढ़ सकते हैं । पीढ़ी निर्माण का उत्तरदायित्व ६० प्रतिशत घर के वातावरण पर और ४० प्रतिशत शिक्षा आदि बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर रहता है । बाल विकास के समस्त प्रयत्न एक ओर और नारी की निर्माण क्षमता एक ओर रख कर तौली जा सकती है ।

उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाएँ मात्र भौतिक प्रगति पर निर्भर नहीं हैं । उसके लिए चरित्रवान् और कर्मनिष्ठ प्रखर व्यक्तित्व की अनिवार्य आवश्यकता है । इस महान् निर्माण को एकाकी पुरुष नहीं कर सकता । सुसंस्कृत नारी ही इस उद्देश्य की पूर्ति में प्रधान भूमिका निभा सकती है । अस्तु, इसके सुविकसित स्तर तक पहुँचने के लिए सर्वतोमुखी प्रयत्न किए जाने चाहिए ।

दो अतियों के छोर पर भारतीय नारी

अपने देश का वर्तमान नारी समाज इस समय दो भागों में विभाजित है । शिक्षा, संस्कार, प्रवृत्तियों और विचारों के मामले में उन्हें दो परस्पर विरोधी वर्गों में रखा जा सकता है । पहला वर्ग है जो पिछले समय से चला आ रहा है और घर-परिवार के बाहर की बात उसके लिए गौण ही नहीं अनावश्यक और वर्जनीय भी है । गाँवों और शहरों के अनपढ़, अशिक्षित परम्परावादी परिवार की स्त्रियों को आज भी उन स्थितियों में रहना पड़ता है जिनमें पहले से ही वह रहती चली आ रही है । उसे अपने पति, परिवार के अन्य सदस्यों तथा बच्चों की सेवा-सुश्रूषा और देख-रेख, पालन-पोषण तक ही अपने को सीमित रखना पड़ता है । घर की चौखट उसकी लक्ष्मण रेखा है और उसके बाहर कदम रखना उसके लिए अनुचित है ।

दूसरा वर्ग वह है जो शिक्षित और आधुनिक होने का दम्भ भरते हुए स्त्री को हर प्रकार की आजादी देने की वकालत करता है । हर प्रकार की आजादी से उसका मतलब यह बहुत कम है कि स्त्री अपने मामले में स्वयं ही निर्णय ले, वरन् अधिक यही है कि वह उन सब वर्जनाओं को तोड़े जो परम्परागत गृहिणी के लिए आवश्यक समझी जाती हैं । इस धारणा मे कुछ अच्छाइयाँ भी हैं तो बुराइयाँ भी । अच्छाइयाँ इससे सम्बन्धित हैं कि नारियों को परम्परा से चली आ रही रूढ़ियों और वर्जनाओं का ही कायल नहीं रहना चाहिए । उसे स्वतंत्र बुद्धि से सोचना भी चाहिए । स्वतंत्र बुद्धि के रूप में जिस रीति-नीति को प्रधानता दी जाती है, वह एक ऐसी उन्मुक्त नारी का चित्र प्रस्तुत करती है जो रहन-सहन और व्यवहार में बहुत कुछ पश्चिमी जीवन की अनुगामी है । विवेक-बुद्धि से लिए गए निर्णय और उन्हें क्रियान्वित करने का साहस यदि रूढ़ियों से न बँधने वाली नारी की विशेषता बनता तो महिलाएँ सचमुच शक्तिस्वरूपा बनकर सामने आती. पर आधुनिक नारी पुराने परिवार की मात्र प्रतिद्वन्द्वी प्रतिक्रिया मात्र बनती जा रही है । जिसे किसी भी तरह उचित नहीं कहा जा सकता ।

परम्परा, व्यामोह से मुक्त नारी से बहुत कुछ आशाएँ की जाती हैं की जानी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार उसकी योग्यता और क्षमता परिवार की ही सेवा में लगे रहकर कुन्द हो जाने की स्थिति से बचा जा सकता था । महिलाओं की कार्य-क्षमता और योग्यताओं से इन्कार नहीं किया जा सकता । विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियाँ जो कर दिखा रही हैं उसने यह भ्रान्तिपूर्ण मान्यता झुठला दी है कि कार्य-क्षमता और दक्षता के मामले में वे पुरुषों से कम हैं । बल्कि कई मामलों में तो उनके कीर्तिमान पुरुषों से भी ऊँचे हैं । यदि उन्हें घर के चौके-चूल्हे तक ही प्रतिबन्धित कर दिया गया तो समाज उनसे मिलने वाले लाभ से वंचित हो जाता है । परम्परा व्यामोह के कारण अब भी ऐसी स्त्रियाँ अपनी प्रतिभा को घर की चारदीवारी में सड़ने दे रही हैं । उन्हें आगे लाने की आवश्यकता है । यदि यही स्थिति बनी रही तो बदलते युग के संदर्भों में, बढ़ती व्यस्तता और तीव्रगति से भागती सभ्यता की दौड़ में समाज की आधी शक्ति का भार ढोते-ढोते वह आधी शक्ति भी चुकने लगेगी और यह हानि पिछली हानियों की तुलना में कई गुना अधिक होगी । अतः उचित है कि अविवेकपूर्ण परम्परा का मोह टूटे और महिलाएँ अपने प्रतिभा का लाभ देश और समाज को दें, लेकिन प्रगतिशीलता का यह अर्थ भी नहीं है कि उन दायित्वों को भी फेंक दिया जाय जो स्त्रियाँ ही सम्हाल सकती हैं । जैसे दायित्वों को ही लें । गृहस्थ पुरुष और स्त्री की साझी व्यवस्था है । पुरुष का दायित्व बाहरी कार्यों को निबटाना है, तो स्त्री के जिम्मे परिवार की अन्दरूनी व्यवस्था है । पुरुष का अधिकांश समय गृहस्थ के दायित्वों को बाहर क्षेत्र से पूरा करने में बीतता है तो स्त्रियाँ परिवार की आन्तरिक व्यवस्था को सम्भालती हैं । खाली समय दोनों के पास बचता है अतः उसका उपयोग अपनी योग्यता बढ़ाने और समाज की सेवा करने में किया जा सकता है

लेकिन स्वयं को परम्परागत गृहिणी से अलग देखने वाली आधुनिका परिवार को अनपेक्षित भार समझ कर वहन करती है या उससे कतराने-सी लगती है ।

शिक्षित और पढ़े-लिखे समुदाय की स्त्रियाँ घर में अपने बच्चों की देख-रेख की अपेक्षा नौकरी करना अधिक अच्छा समझती हैं । परिवार की आर्थिक स्थिति इससे मजबूत बन सके, यही सामान्यतः नौकरों का ध्येय रहता है, लेकिन कई आधुनिक विचार वाली स्त्रियों का यह दृष्टिकोण प्रमुख रहता है । नौकरी के पीछे कि हम आर्थिक दृष्टि से पुरुष की बराबरी करें और अपनी आवश्यकताओं के लिए उस पर निर्भर न रहें । पुरुष से

प्रतिस्पर्द्धा तक ही बात होती तो भी कोई खास बात नहीं रहती लेकिन स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा की अपेक्षा प्रतिद्वन्द्विता का भाव जब आ जाता है तो पति-पत्नी के बीच स्नेह और प्रेम के मधुर सूत्र चटखने लगते हैं । परिवार की आर्थिक सहायता के लिए तो गाँव की स्त्रियाँ और मजदूर गृहिणियाँ भी काम करती हैं, पर उनमें प्रतिद्वन्द्विता जैसी कोई बात नहीं रहती । जबकि प्रतिद्वन्द्विता की भावना से प्रेरित होकर शिक्षित आधुनिका अपने पति का स्वस्थ सहयोग भी ठुकरा कर अपने बूते ही सब कुछ करने की होड़ लगाये रहती है । घर में चलने वाले इस प्रकार के संघर्ष और कलह का बच्चों के मन पर भी गलत प्रभाव पड़ता है । माँ की ममतामयी छत्रछाया और स्नेह वात्सल्य का अभाव उनकी हार्दिक अपेक्षाओं को तो पूरा नहीं ही करता है । पति-पत्नी के बीच चलने वाला टकराव और संघर्ष उनमें कई कुण्ठाओं को भी जन्म देता है ।

पुराने परिवारों में नारी के स्थान की हीन प्रतिक्रिया स्वरूप आधुनिका की मनोवृत्ति पुरुष के प्रतिशोध के आधार पर खड़ी होती है । पिछले समय में स्त्री को घर में रहने के लिए प्रतिबन्धित कर उसे परिवार तक ही सीमित रहने की परम्परा थी तो आज की नारी बाहर को ही अपना कार्य-क्षेत्र मानने के लिए उतारू है और इस प्रतिक्रिया का परिणाम तथाकथित आधुनिका के लिए घर के प्रति पूर्ण उपेक्षा का रवैया अपनाने के लिए प्रेरित करता है । पहले जहाँ शील-शुचिता को सर्वोपरि महत्त्व दिया जाता था, वहीं स्वतंत्र विचारधारा के रूप में प्रत्यक्षतः उन्मुक्त जीवन भले ही न जिया जा रहा हो, पर बहुत कुछ वैसा हो रहा है जिससे नारी स्वयं को आकर्षण का केन्द्र बनाने के लिए लालायित दिखती है । रहन-सहन, साज-श्रृंगार, वेशभूषा, फैशन और आचार-व्यवहार में तथाकथित प्रगतिशीला नारी सड़क चलते लोगों को अपनी ओर देखते पाना शान समझती है । फिल्म, विज्ञापन, पत्र-पत्रिकाएँ, साहित्य और आधुनिक नारी पर विचारमयी व्यक्ति गोष्ठियों में जो चित्र बनता है, प्रतिपादित किया जाता है, उसमें नारी के कमनीय रूप को ही अधिक मुखरता मिलती है । कहा भले ही कुछ भी जाता रहा हो पर स्त्री को एक दर्शनीय और भोग्य वस्तु बनाकर जो रूप आधुनिकता के नाम पर दिया जाता है, उससे यह जरा भी नहीं लगता कि नारी स्वतंत्र हो रही है । अन्तर कुछ जरूर है और वह अन्तर यह है कि पहले नारी को घर की वस्तु समझा जाता था तो अब उसे सार्वजनिक प्रतिष्ठा दी जा रही है ।

आधुनिका नारी, नारी सम्बन्धों, मान्यताओं और धारणाओं की दूसरी अति पर है । सीमित कार्य, सीमित जीवन और सीमित छूट के स्थान पर बाहरी कार्य, बाहरी जीवन और बाहरी छूट ही महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन का प्रतीक नहीं है, लेकिन ऐसा ही हो रहा है और यह इस कारण कि रहन-सहन तथा आचार-विचार के साथ हमारे सोच-विचार का ढंग भी पश्चिम की नकल बना हुआ है । पश्चिम की जो परिस्थितियाँ हैं और उन सन्दर्भों में वहाँ जो परिवर्तन होते हैं, उनकी आवश्यकता और व्यावहारिकता वहाँ भले ही कितनी भी हो, हमारे यहाँ उसकी हूबहू नकल कभी भी लाभदायक नहीं हो सकती । वहाँ के तथ्यों से कुछ सीखा तो जा सकता है पर उसी आधार पर परिवर्तन का चक्र यथावत् नहीं घुमाया जा सकता है ।

आधुनिकता के लिए हम यह सोचने और मानने को स्वयं से विवश हैं कि पश्चिम हमसे आगे है । इसलिए उनके समान हम भी सभी आगे हो सकते हैं, जबकि हम उनका अनुकरण करें । पश्चिम में विज्ञान ने प्रगति की और वहाँ अधिकांश खोजें हुईं, यह सही हो सकता है और यह भी सही हो सकता है कि वहाँ के लोगों ने इस कारण तरक्की की, परन्तु उन्हीं परिणामों को अनुकरण से प्राप्त नहीं किया जा सकता । प्रगतिशीलता या उन्नति के प्रयासों का अर्थ अनुकरण नहीं है, बल्कि अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के अनुसार उनका तालमेल बिठाकर किए गये प्रयास ही प्रगति का मूल हैं । भारतीय परिवेश में पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण न खपने की वजह से पुरानी स्त्रियाँ आधुनिका और उन्मुक्त महिलाओं को हास्यास्पद रूप में देखती हैं । सम्भवतः इसकी प्रतिक्रिया तथाकथित आधुनिका के मन में भी पुरानी स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखने के रूप में होती है ।

शिक्षा एक विभूति है और शिक्षित विभूतिवान । यदि शिक्षित स्त्रियाँ अपनी क्षमता का सही उपयोग करें तो उनके लिए यह एक कर्तव्य बन जाता है कि वे परम्परा और रूढ़ियों के बोझ तले दबी भारतीय नारी को उस दुःस्थिति से उभारने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न करें । पर अनुकरणवृत्ति का अभिशाप कहें या आधुनिकता का दम्भ तथाकथित प्रगतिशील स्त्रियाँ उनकी ओर देखना भी नहीं चाहतीं, उनसे बात करना या उन्हें सहयोग देना तो दूर रहा ।

अति के एक छोर पर जिस परम्परावादी नारी की बात कही गयी है उसे भी आज के संदर्भों में जरा भी उचित नहीं कहा जा सकता । घर को ही उसका कार्य-क्षेत्र मान लेने के कारण उसके पालन-पोषण पर भी समुचित ध्यान नहीं दिया जाता तो शिक्षा-दीक्षा पर भी नहीं । पुत्र की अपेक्षा कन्या पर कम ध्यान देने की बात निन्दनीय ओछी वृत्ति है, पर शिक्षा पर ध्यान न देने का मुख्य कारण यह है कि घर-परिवार में इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती । खाना पकाने और कपड़े धोने में शिक्षा का क्या उपयोग ? बच्चों को दूध पिलाने में और खाना खिलाने तथा पति के पाँव दबाने में शिक्षा क्या काम आयेगी ? आदि प्रश्न लड़कियों की पढ़ाई-लिखाई को अनावश्यक कर देते हैं । यदि उसे भी पुत्र की तरह परिवार की भावी जिम्मेदार सदस्या समझा जाय, लड़के की तरह उसके विकास की उपयोगिता देखी जाय तो लड़कियों को शिक्षा दिलाना जरूरी लगेगा, लेकिन अति के पहले छोर पर रहने वाले परिवार अपनी दृष्टि को इतनी उदार बनाने के लिए राजी नहीं होते ।

शिक्षित आधुनिका जहाँ परम्परा के अन्धविरोध और निरंकुश प्रतिक्रिया से ग्रस्त हो तो अशिक्षित परम्परा भक्त नारी चले आ रहे रीति-रिवाजों से चिपटे रहने में ही भलाई देखती है । इन दोनों भ्रान्तियों को तोड़ने की आवश्यकता है । आवश्यकता है यह उदार विवेक बरतने की, कि नारी प्रगतिशीलता के नाम पर न अन्धानुकरण किया जाय, न ही पुरुष से प्रतिद्वन्द्विता की जाय, वरन् दोनों के सघन सहयोग द्वारा समाज को आगे बढ़ाने की आस्था से उन महिलाओं को ऊँचा उठाने की कोशिश करें जो अति के पहले छोर पर जी रही हैं या जीने को विवश हो रही हैं ।

पुरुष अपना कर्त्तव्य निबाहें

यह तथ्य भली प्रकार हृदयंगम कर लिया जाना चाहिए, कि हजार वर्ष के अज्ञानान्धकार युग की फैलाई गई विकृतियों को, अवांछनीयताओं को, साफ करने के लिए ऐसी मजबूत झाडू चाहिए जो कचरे के ढेर को कुरेदने, उखाड़ने, हटाने में समर्थ हो सके । यह झाडू एक-दो सीकों से नहीं बनेगी, उसमें सैकड़ों तीलियों का सम्मिलित सहयोग होना चाहिए । इतना महत्त्वपूर्ण, किन्तु इतना कठिन प्रयोजन संघ शक्ति का उदय किए बिना और किसी भी तरह सम्भव नहीं हो सकता । छुट-पुट वैयक्तिक प्रयत्नों की कुछ बूँदें इस जलते तबे को ठण्डा करने में कुछ कारगर सिद्ध न होंगी । इस दावानल को शांत करने के लिए घटाओं की अनवरत बूँद-वर्षा ही कारगर होगी । नारी को पददलित स्थिति से उबारकर उसको सहज स्वाभाविक उच्च स्थान पर पहुँचाने के युगान्तकारी प्रयत्न संघ शक्ति के सहारे ही सफल हो सकेंगे ।

राष्ट्र के स्वतन्त्रता आन्दोलन में लाखों ने बलिदान दिए, पर जो अग्रणी रहे, यश उन्हीं को दिया जाता रहा, श्रेय उन्हीं ने पाया । यह उचित भी था, वातावरण बनाने, आगे रहने और शुभारम्भ कराने में असाधारण आत्म-बल चाहिए । उपहास, व्यंग्य, असहयोग और विरोध रहते हुए भी जो बढ़े, वे मनस्वी इसी योग्य हैं कि उन्हें भरपूर सराहा जाय । चलती गाड़ी पर तो कोई भी सवार हो सकता है । बहती नदी में तो तिनका भी बहने लगता है ।

आरम्भ यहीं से होना है कि जाग्रत आत्मा स्वयं आगे बढ़े । अपने साहस का परिचय अपने निजी परिवार में उस तरह का वातावरण बनाकर दे, जिसकी माँग नवयुग ने प्रत्येक विवेकशील और न्यायनिष्ठ व्यक्ति से की है । घर-परिवार में नारी को उचित सम्मान और सहकार मिलना चाहिए । अपने पिछड़ेपन से पिण्ड छुड़ाने और आगे बढ़ने के लिए अवसर देना चाहिए और साधन जुटाने चाहिए, साथ ही उस संघ शक्ति के साथ मिलकर नयी चेतना ग्रहण करने और नई प्रेरणा प्रस्तुत कर सकने की स्थिति में ही पहुँचना चाहिए । इसके लिए यह आवश्यक है कि वह अभियान में सम्मिलित होकर बहुत कुछ पाने और बहुत कुछ देने का दुहरा लाभ प्राप्त कर सकें । उन्हें महिला जागरण अभियान की सदस्या बनने से लेकर प्रत्येक साप्ताहिक सत्संग में सम्मिलित हो सकने की सुविधा दी जानी चाहिए । वस्तुस्थिति से परिचित न होने के और झिझक एवं आत्महीनता में ग्रसित होने के कारण यदि उनमें इसके लिए आवश्यक उत्साह एवं साहस न हो तो भारी को यह देना प्रत्येक विवेकशील पुरुष का काम है ।

इसके लिए पुरुष वर्ग को अपने दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन करना होगा । परिवर्तन हुआ-इसके कुछ महत्त्वपूर्ण चिन्ह प्रकट होने चाहिए । दृष्टिकोण बदला इसके कुछ प्रमाण प्रस्तुत होने चाहिए । हमारे घरों में पिछली रीति-नीति में प्रारम्भिक परिवर्तन यह होना चाहिए कि पुरुष वर्ग अपने घर की स्त्रियों को घूँघट की निरर्थकता समझायें । स्वयं आगे बढ़कर उसे छोड़ने की चर्चा चलायें और वधुओं को धीरे-धीरे करके उसे कम करते चलने और जैसे-जैसे बड़े-बूढ़ों को सह्य होता चले, वैसे-वैसे उसे समाप्त कर देने का प्रोत्साहन दें । पर्दे के प्रतिबन्ध से मुक्त हुए बिना नारी, संगठन की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति नहीं कर सकती ।

हर विचारशील व्यक्ति अपने-अपने घरों में महिलाओं को प्रेरित करे, यह आवश्यक तो है, किन्तु इतना मात्र पर्याप्त नहीं । कार्य बड़ा है इसलिए उसे बड़े पैमाने पर ही करना होगा । इसके लिए संगठित रूप से प्रयास किये जाने चाहिए । बड़े कार्य सदा संगठित रूप से ही होते रहे हैं । भगवान् राम ने लंका विजय के लिए रीछ-वानरों की सेना संगठित की थी । भगवान् कृष्ण ने गोवर्धन उठाने के लिए ग्वाल-बालों को लाठी का सहारा लगाने के लिए सहमत किया था । महाभारत लड़ने के लिए कृष्ण ने सुदूर देशों के शक्तिशाली लोगों की सेनाएँ पाण्डवों के पक्ष में खड़ी की थीं । समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी के लिए साधन जुटाने के लिए सैकड़ों महावीर स्थान बनाये और प्रयुक्त किये थे । गुरु गोविन्दसिंह ने एक बड़ी सेना संगठित की थी । जन-मानस का परिष्कार करने के लिए भगवान् बुद्ध ने लाखों भिक्षु-भिक्षुणी एकत्रित एवं प्रशिक्षित किए थे । महात्मा-गाँधी ने सत्याग्रह संग्राम लोक-शक्ति को साथ लेकर ही जीता था ।

नारी पुनरुत्थान जैसी आधी जनसंख्या को गहरे गर्त में से उठाकर प्रगति के उच्च शिखर तक पहुँचाने का कार्य संगठित शक्ति से ही हो सकता है । विशालकाय क्रेन से ही उतना बड़ा वजन उठेगा । यह क्रेन लोक-शक्ति का सामूहिक उपयोग संगठित करने से ही बनेगा ।

शक्ति का उद्भव किए बिना और कोई मार्ग नहीं । इस संघ शक्ति का सृजन कर सकना पूर्णतया पुरुष के ही

हरियाली उगाई जा सकती है। बेलें छाई हुई हों, फल खिले हुए हों, तो घर बिना किसी अन्य खर्च के ही बड़ा सुन्दर बनाया जा सकता है। इसके लिए बीज, पानी, देख-रेख की मामूली-सी जानकारी और थोड़े से साधनों को जुटा लेना पर्याप्त है। उत्साह हो तो यह उपयोगी शौक और खासा मनोरंजन भी है। सुरुचि, कला-प्रेम, सौन्दर्यनिष्ठा, प्रकृति-प्रेम आदि कितने ही सद्गुण इस प्रयास के साथ उभरकर आते हैं। इससे अपना और दूसरों का चित्त समान रूप में प्रसन्न होता है।

इसी संदर्भ में अगला कदम शाक-वाटिका है। जिन गमलों, टोकरियों या लकड़ी की टूटी पेटियों में फूल, बेल आदि लगाते हैं, उन्हीं की संख्या बढ़ाकर शाक-भाजियाँ भी उगाई जा सकती हैं। थोड़ी कच्ची जमीन भी घर के आस-पास खाली हो तब तो कहना ही क्या? बाड़ा बना कर उसकी घेराबन्दी कर ली जाय और उसमें लौकी, तोरई, सेम, परवल, अंगूर आदि की बेलें लगा दी जायें। उनको छतों, छप्परों पर चढ़ाने से शोभा के अतिरिक्त शाक-फल भी मिलते रहते हैं। बैंगन, टमाटर, गोभी, गाजर, मूली, पालक, मेंथी, मिर्च, धनियाँ, सौंफ, अदरक जैसी कितनी ही चीजें ऋतुओं के अनुसार अदल-बदल कर लगाई जाती रह सकती हैं। इन्हें बोने, उगाने, सँभालने की जानकारी कोई भी किसान या माली बता सकता है। यह शौक यदि चल पड़े तो इन पौधों के सींचने -सँभालने में बच्चे-बड़े सभी रुचि लेते दिखाई पड़ेंगे। अपनी वस्तु सभी को बड़ी प्यारी लगती है। घर पर शाक उगा लेने का आर्थिक लाभ तो स्पष्ट ही है, इसके माध्यम से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ बढ़ने का मानसिक लाभ और भी बड़ा है। इस प्रगति का सत्-परिणाम अनेकों सफलताओं के रूप में जीवन भर मिलता रहता है।

इस सिलसिले में तुलसी के पौधे घर-घर लगाये जाने का अभियान भी चलाना चाहिए। उसके पत्ते, फूल, बीज
...दि सभी उपयोगी औषधि का काम करते हैं। जुकाम,
...ी, खाँसी आदि कितने ही रोगों में उनका प्रयोग
... है। तुलसी के स्पर्श से वायु शुद्ध होती और
...भागते हैं। सबसे बड़ी बात है घर के
...कता का समावेश । गाय पालने को
...का महत्व है। फल, शाक आदि न
... के प्रतीक चिह्न के रूप में
...में सम्मानपूर्वक लगाया जाना
...न का यह भी एक अच्छा
... के साथ-साथ अनीति
...को सक्रिय होना पड़ेगा।
...ओं ने नारी जाति
...उन्हें एक-एक करके
...चाहिए। छोटी उम्र में
...दुर्भाग्यपूर्ण है। अठारह
...से कम उमर के
...क और मानसिक

स्वास्थ्य को चौपट कर देने वाली भूल अब बिल्कुल बन्... हो जानी चाहिए। विवाह-शादियों में पागलों की तरह क... जाने वाली धूम-धाम और पैसे की जलाई जाने वाल... होली की कोई उपयोगिता नहीं। दहेज का लेन-देन माँ... की खरीद- फरोख्त से भी अधिक घिनौना है। इस कुप्रथ... के कारण अपने समाज में गरीबी और बेईमानी का कुचक्र... चल रहा है, उससे चरित्रनिष्ठा की नींव डगमगाने लगी है... दो कुटुम्बों को एक सूत्र में बाँधने के स्थान पर दहेज... उन्हें भीतर ही भीतर शत्रुता जैसी स्थिति में ला पटकता है... सुयोग्य लड़कियों को उपयुक्त लड़के नहीं मिल पाते औ... न जाने कितने घिनौने अनर्थ इस पिशाचिनी दहेज प्रथा के... कारण होते हैं। समय आ गया कि इस प्रथा का अन्त क... दिया जाए और नितान्त सादगी के साथ कम खर्च की... शादियाँ चल पड़ें।

जाति-पाँति के कारण ऊँच-नीच की मान्यताओं ने भ... देश की तिहाई जनता को उसी प्रकार पिछड़ेपन के गर्त ... धकेला है, जिस प्रकार नारी समाज को। मनुष्य और मनुष्... के बीच जाति-वंश के आधार पर, किसी को अहंका... करने और किसी को दीनता अनुभव करने की स्थिति... आज सहन नहीं की जानी चाहिए।

वंश और वेश के नाम पर लाखों की संख्या में लो... दान-दक्षिणा बटोरने एवं भिक्षा माँगने का व्यवसाय कर... यह सचमुच ही अनर्थ है। इससे मनुष्यता का गौरव गिरत... है और कर्महीन लोगों के व्यय भार से निर्धन देश की... कमर टूटती है। दान तो केवल शरीर से अपंगों को अथव... समाज की प्रगति के लिए ही दिया जाना चाहिए। ह... माँगने वाले को बिना समझे दे देना पुण्य का नहीं पाप क... रास्ता है। मृतक भोज, भूत-पलीत, टोना-टोटका, ज्योतिष... मुहूर्त जैसे भ्रम जंजाल में समय, धन और संतुलन गँवाने... से लाभ रत्ती भर भी नहीं, हानि अपार है। देवी-देवताओं... के नाम पर पशु-बलि और नर-बलि के जो कुकर्म देखने... को मिलते हैं उन्हें लज्जाजनक मूढ़-मान्यता के अतिरिक्त... और कोई नाम नहीं दिया जा सकता।

इस प्रकार न चलने योग्य ढेरों अन्य परम्पराएँ बहुत... करके नारी समाज का सहारा पाकर ही जीवित हैं। इन्हें... समाप्त करने के लिए उसे ही अपना विवेक जाग्रत करना... होगा । साहसपूर्वक इन हानिकारक अवांछनीयताओं से... अपना पीछा छुड़ाना होगा।

एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की यह है कि... नारी उत्कर्ष जैसा महान् अभियान संगठित रूप में ही चल... सकता है। इतने बड़े परिवर्तन के लिए अकेले प्रयत्नों से... काम नहीं चलेगा। सौ दो सौ परिवार सुधर जायें इससे कुछ... बनता-बिगड़ता नहीं। परिवर्तन को व्यापक रूप से ही... होना चाहिए। एक क्षेत्र में एक प्रकार से तो दूसरे क्षेत्र में... दूसरे ढंग से नारी को पददलित स्थिति में रहना पड़ रहा... है। कहाँ किस प्रकार, क्या सुधार होने चाहिए- यह बात... दूसरी है। क्या विकसित, क्या अविकसित सभी क्षेत्रों की... समस्या भले ही भिन्न हो, पर परिस्थितियाँ घुमा-फिराकर

हाथ में है । नारी घरों में कैद है, उन्हें इतनी सुविधा नहीं कि घर-घर जाकर संगठन का शंख बजा सकें । फिर उनमें से उतनी योग्यता एवं कुशलता भी कहाँ रह गई है । अनुभव के अभाव में साधारण कार्य भी ठीक तरह पूरा नहीं हो सकता, फिर नारी संगठन तो बहुत ही कठिन कार्य है । घर के कामों से ही फुरसत नहीं, फिर संगठन के लिए समय कौन निकालेगी ? जहाँ बिना संरक्षक के घर की देहरी पार करना जुर्म समझा जाता है, वहाँ घर-घर जाकर संगठन का कार्य कैसे हो सकेगा ? फिर जिन घरों में वे जाएँगी वहाँ आशंका की दृष्टि से देखा जाएगा, कोई हमारे घरों की औरतों को बहकाने तो नहीं आया है, यह सोच कर संगठनकर्त्ताओं की उपेक्षा और अवज्ञा ही होगी, नारी स्वयं भी दबी हुई और सभीत है । घर के लोगों की अप्रसन्नता का एक और कारण खड़ा करने का वे कैसे साहस कर सकेंगी ? पहले से ही आये दिन डाँट-डपट के अनेक आधार खड़े रहते हैं, फिर एक और नया कारण उसमें क्यों जोड़ा जाए ? ऐसे-ऐसे अनेक कारण हैं जिनकी वजह से न नारियाँ संगठन के लिए घर पर जा सकती हैं और न जिन घरों में वे जाएँगी वहाँ उन्हें स्वागत सहयोग मिल सकता है । यदि नारी के जिम्मे नारी संगठन का नव-जागरण अभियान के लिए अभीष्ट क्रिया-प्रक्रिया आरम्भ करने का काम छोड़ दिया गया तो समझना चाहिए कि वह सम्भावना ही समाप्त हो गई ।

नवयुग की सर्वोपरि माँग पूरी करने के लिए प्रत्येक पुरुष को अपने घरों की नारियों को ही महिला जागरण अभियान की संघ शक्ति में सम्मिलित होने के लिए, आगे धकेलना चाहिए । उन्हें उसकी उपयोगिता, आवश्यकता और प्रतिक्रिया से परिचित कराना चाहिए । संगठन के लिए उत्साह पैदा करने से पूर्व उन्हें कठिनाई से ही नव-जागरण का सन्देश समझाया जा सकेगा । जिस बात की उन्होंने कभी कल्पना तक नहीं की, जिस सम्बन्ध में कभी सुना-समझा देखा भी नहीं, उसके लिए एकाएक तत्पर कर लेना बहुत कठिन है । पहली कठिनाई यही है, जिसे हल करके संगठन के लिए दूसरा कदम उठेगा ।

पुरुष पर्दे के पीछे रहे और अपने घरों की स्त्रियों को नव-जागरण की भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहन दें, प्रशिक्षित करें और घसीट-पकड़ कर मोर्चे पर खड़ा कर दें । उनके लिए आवश्यक परिस्थितियाँ उत्पन्न करें और सुविधा जुटायें, तभी यह आशा की जा सकेगी कि अभीष्ट संघ शक्ति का उद्‌भव हो सकेगा । संघ शक्ति के सहारे ही यह सम्भव है कि सुविस्तृत क्षेत्र में फैली हुई सघन निशा जैसी अवांछनीयता को कम समय में निरस्त किया जा सकेगा । व्यक्तिगत, एकाकी और पृथक्-पृथक् प्रयत्न चलते रहेंगे तो उनका परिणाम नगण्य होगा । इतने बड़े कार्य के लिए जनशक्ति का साधन जुटाये बिना और कोई उपाय हो ही नहीं सकता, इसलिए इस दिशा में कारगर कदम उठाये जाने में तनिक भी विलम्ब नहीं किया जाना चाहिए ।

मनुष्य के विकास की मूल शर्त

इन दिनों मनुष्य को अधिक विकसित, अधिक समर्थ और अधिक सशक्त बनाने के प्रयास बड़ी तेजी से चल रहे हैं । विज्ञान के रूप में मनुष्य को एक ऐसा हथियार मिला है, जिसके बल पर दूरगामी लक्ष्य को भी आसानी से शीघ्रता के साथ निशाना बनाया जा सके । पहले उतने साधन नहीं थे जितने कि आज हैं । पढ़ने-लिखने की सुविधाएँ सीमित थीं, इसलिए सारा जीवन प्रयत्न करने पर भी व्यक्ति अपने प्रखर विचारों को एक सीमित क्षेत्र में ही पहुँचा पाता था । आज स्थिति उल्टी है । थोड़ी-सी सूझबूझ और थोड़ा-सा पैसा मिला कर व्यक्ति जरा से समय में ही चाहे तो अपने विचार और अपने निष्कर्ष हजारों-लाखों नहीं करोड़ों व्यक्तियों तक पहुँचा सकता है । शिक्षा, धन, चतुराई कला-कौशल एवं अन्य साधन-प्रसाधन इतनी तेजी से बढ़े हैं कि प्रयत्न किया जाय तो मनुष्य के अन्तःकरण को अधिक प्रभावशीलता के साथ छुआ और बदला जा सकता है ।

पिछले जमाने में वेद, उपनिषद्, रामायण, गीता, महाभारत और पुराण जैसे धर्मग्रन्थ पढ़ने की सुविधा गिने-चुने लोगों को ही उपलब्ध थी । पर आज लाखों की संख्या में ये धर्मग्रन्थ छपते हैं और हाथों-हाथ बिक जाते हैं । धर्मोपदेशक तथा व्याख्यानदाता भी पिछले समय की तुलना में अधिक ही हुए हैं, लेकिन देखा जाता है कि इतने साधन होते हुए भी मनुष्य की आन्तरिक चेतना में पहले की अपेक्षा गिरावट आयी है । पहले लोग जहाँ धर्मग्रन्थों की बात पढ़कर या सुनकर उन प्रेरणाओं को आचरण में लाने का प्रयास करते थे ,वहीं अब सत्संग-स्वाध्याय केवल मनोरंजन या वाग्‌विलास का साधन भर रह गये हैं । चिकने घड़े पर जिस तरह पानी की एक बूँद भी नहीं ठहरती, उसी प्रकार लोगों की मनोभूमि में इतनी हीनता और इतनी गिरावट आती जा रही है कि उस पर इन प्रेरणाओं का कोई असर नहीं होता ।

घड़ा बनता है मिट्टी और पानी से । मिट्टी जिस तरह की होगी घड़ा भी उसी जैसा बनेगा । इससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है वह तकनीक जिसका कि उपयोग कर घड़ा बनाया जाता है । तकनीक में कोई त्रुटि रह जाय तो घड़ा भी कच्चा और अल्पायु बनता है । मनुष्य बनता है शरीर और जीवन द्वारा, पर उसके निर्माण का महत्त्वपूर्ण हिस्सा यह है जिसके द्वारा उसका व्यक्तित्व प्रभावित होता है । उस आधार के गलत या सही रहने पर ही मनुष्य का अच्छा या बुरा होना निर्भर है । मनुष्य के इस आधार को तैयार करने वाला तत्व है, उसकी शिक्षा और उसके संस्कार । यह आधार माँ के प्रयत्नों से ही बनते तथा पुष्ट और फलित होते हैं ।

ऊपर वर्तमान साधनों के विकास की जो चर्चा की गयी है उनसे मनुष्य की चेतना प्रभावित नहीं होती । वे तो

हरियाली उगाई जा सकती है। बेलें छाई हुई हों, फल खिले हुए हों, तो घर बिना किसी अन्य खर्च के ही बड़ा सुन्दर बनाया जा सकता है। इसके लिए बीज, पानी, देख-रेख की मामूली-सी जानकारी और थोड़े से साधनों को जुटा लेना पर्याप्त है। उत्साह हो तो यह उपयोगी शौक और खासा मनोरंजन भी है। सुरुचि, कला-प्रेम, सौन्दर्यनिष्ठा, प्रकृति-प्रेम आदि कितने ही सद्गुण इस प्रयास के साथ उभरकर आते हैं। इससे अपना और दूसरों का चित्त समान रूप में प्रसन्न होता है।

इसी संदर्भ में अगला कदम शाक-वाटिका है। जिन गमलों, टोकरियों या लकड़ी की टूटी पेटियों में फूल, बेल आदि लगाते हैं, उन्ही की संख्या बढ़ाकर शाक-भाजियाँ भी उगाई जा सकती हैं। थोड़ी कच्ची जमीन भी घर के आस-पास खाली हो तब तो कहना ही क्या? बाड़ा बना कर उसकी घेराबन्दी कर ली जाय और उसमें लौकी, तोरई, सेम, परवल, अंगूर आदि की बेलें लगा दी जायें। उनको छतों, छप्परों पर चढ़ाने से शोभा के अतिरिक्त शाक-फल भी मिलते रहते हैं। बैंगन, टमाटर, गोभी, गाजर, मूली, पालक, मेंथी, मिर्च, धनियाँ, सौंफ, अदरक जैसी कितनी ही चीजें ऋतुओं के अनुसार अदल-बदल कर लगाई जाती रह सकती हैं। इन्हें बोने, उगाने, सँभालने की जानकारी कोई भी किसान या माली बता सकता है। यह शौक यदि चल पड़े तो इन पौधों के सींचने -सँभालने में बच्चे-बड़े सभी रुचि लेते दिखाई पड़ेंगे। अपनी वस्तु सभी को बड़ी प्यारी लगती है। घर पर शाक उगा लेने का आर्थिक लाभ तो स्पष्ट ही है, इसके माध्यम से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ बढ़ने का मानसिक लाभ और भी बढ़ा है। इस प्रगति का सत्-परिणाम अनेकों सफलताओं के रूप में जीवन भर मिलता रहता है।

इस सिलसिले में तुलसी के पौधे घर-घर लगाये जाने का अभियान भी चलाना चाहिए। उसके पत्ते, फूल, बीज आदि सभी उपयोगी औषधि का काम करते हैं। जुकाम, बुखार, सर्दी, खाँसी आदि कितने ही रोगों में उनका प्रयोग हो सकता है। तुलसी के स्पर्श से वायु शुद्ध होती और मच्छर, मक्खी भागते हैं। सबसे बड़ी बात है घर के वातावरण में धार्मिकता का समावेश । गाय पालने की तरह ही तुलसी लगाने का महत्त्व है। फल, शाक आदि न लग सकें तो भी वृक्षारोपण के प्रतीक चिह्न के रूप में तुलसी का पौधा हर घर में सम्मानपूर्वक लगाया जाना चाहिए। रचनात्मक अभियान का यह भी एक अच्छा शुभारम्भ माना जाएगा। निर्माण के साथ-साथ अनीति उन्मूलन के मोर्चे पर भी नारी को सक्रिय होना पड़ेगा। कुरीतियों, मूढ़ मान्यताओं और अन्धविश्वासों ने नारी जाति को असीम क्षति पहुँचाई है। उन्हे एक-एक करके उखाड़ने की व्यवस्था बनाई जानी चाहिए। छोटी उम्र में बच्चों का विवाह कर देना बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण है। अठारह से कम आयु की लड़कियों एवं बीस से कम उमर के लड़कों का विवाह करके उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को चौपट कर देने वाली भूल अब बिल्कुल बन्द हो जानी चाहिए। विवाह-शादियों में पागलों की तरह की जाने वाली धूम-धाम और पैसे की जलाई जाने वाली होली की कोई उपयोगिता नहीं। दहेज का लेन-देन माँस की खरीद- फरोख्त से भी अधिक घिनौना है। इस कुप्रथा के कारण अपने समाज में गरीबी और बेईमानी का कुचक्र चल रहा है, उससे चरित्रनिष्ठा की नींव डगमगाने लगी है। दो कुटुम्बों को एक सूत्र में बाँधने के स्थान पर दहेज उन्हें भीतर ही भीतर शत्रुता जैसी स्थिति में ला पटकता है। सुयोग्य लड़कियों को उपयुक्त लड़के नहीं मिल पाते और न जाने कितने घिनौने अनर्थ इस पिशाचिनी दहेज प्रथा के कारण होते हैं। समय आ गया कि इस प्रथा का अन्त कर दिया जाए और नितान्त सादगी के साथ कम खर्च की शादियाँ चल पड़ें।

जाति-पाँति के कारण ऊँच-नीच की मान्यताओं ने भी देश की तिहाई जनता को उसी प्रकार पिछड़ेपन के गर्त में धकेला है, जिस प्रकार नारी समाज को। मनुष्य और मनुष्य के बीच जाति-वंश के आधार पर, किसी को अहंकार करने और किसी को दीनता अनुभव करने की स्थिति आज सहन नहीं की जानी चाहिए।

वंश और वेश के नाम पर लाखों की संख्या में लोग दान-दक्षिणा बटोरने एवं भिक्षा माँगने का व्यवसाय करें यह सचमुच ही अनर्थ है। इससे मनुष्यता का गौरव गिरता है और कर्महीन लोगों के व्यय भार से निर्धन देश की कमर टूटती है। दान तो केवल शरीर से अपंगों को अथवा समाज की प्रगति के लिए ही दिया जाना चाहिए। हर माँगने वाले को बिना समझे दे देना पुण्य का नहीं पाप का रास्ता है। मृतक भोज, भूत-पलीत, टोना-टोटका, ज्योतिष, मुहूर्त जैसे भ्रम जंजाल में समय, धन और संतुलन गँवाने से लाभ रत्ती भर भी नहीं, हानि अपार है। देवी-देवताओं के नाम पर पशु-बलि और नर-बलि के जो कुकर्म देखने को मिलते हैं उन्हें लज्जाजनक मूढ़-मान्यता के अतिरिक्त और कोई नाम नहीं दिया जा सकता।

इस प्रकार न चलने योग्य ढेरों अन्य परम्पराएँ बहुत करके नारी समाज का सहारा पाकर ही जीवित हैं। इन्हें समाप्त करने के लिए उसे ही अपना विवेक जाग्रत करना होगा । साहसपूर्वक इन हानिकारक अवांछनीयताओं से अपना पीछा छुड़ाना होगा।

एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की यह है कि नारी उत्कर्ष जैसा महान् अभियान संगठित रूप में ही चल सकता है। इतने बड़े परिवर्तन के लिए अकेले प्रयत्नों से काम नहीं चलेगा। सौ दो सौ परिवार सुधर जायें इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। परिवर्तन को व्यापक रूप से ही होना चाहिए। एक क्षेत्र में एक प्रकार से तो दूसरे क्षेत्र में दूसरे ढंग से नारी को पददलित स्थिति में रहना पड़ रहा है। कहाँ किस प्रकार, क्या सुधार होने चाहिए- यह बात दूसरी है। क्या विकसित, क्या अविकसित सभी क्षेत्रों की समस्या भले ही भिन्न हो, पर परिस्थितियाँ घुमा-फिराकर

एक ही जैसी हैं। उन्हें बदलने के लिए हवा गरम करनी पड़ेगी और वातावरण बदलना पड़ेगा। इसके लिए संगठित प्रयासों से कम में किसी भी प्रकार काम नहीं चल सकता। जनमानस की दिशा बदलने में सामूहिक चेतना उत्पन्न करने के अतिरिक्त और कोई उपाय है ही नहीं।

अपनी महिला शाखाओं के सुगठन, विस्तार और अभिवर्द्धन में प्रत्येक नारी को सहयोग देना ही चाहिए। सदस्यता की कोई फीस नहीं है। नारी पुनरुत्थान में विश्वास करने वाले और उसमें योगदान देने की इच्छुक महिला अपने संगठन की सदस्य बन सकती हैं। इसके लिए निर्धारित फार्म पर हस्ताक्षर करने होते हैं और सदस्यता का प्रमाण-पत्र मिल जाता है। सहयोगी सभ्य तो पुरुष भी बन सकते हैं। शाखा-संगठन की सदस्याओं को रविवार के तीसरे प्रहर होने वाले सत्संगों में उपस्थित होना चाहिए। यहाँ जप, हवन, कीर्तन, सहगान, प्रवचन आदि के कार्यक्रम रहते हैं। प्रधान उद्देश्य महिलाओं की संघ-शक्ति का विकास करना, एक दूसरे के बीच घनिष्ठता उत्पन्न करना और प्रगति के लिए योजनाबद्ध रीति से सोचना तथा कदम मिलाकर कुछ करने की दिशा में बढ़ चलने का उत्साह उत्पन्न करना है। इन सत्संगों में संख्या बढ़े यह प्रयास किया जाना चाहिए।

परिवार प्रशिक्षण के लिए अपनी एक विशिष्ट परिपाटी है- संस्कार आयोजनों का पुनर्जीवन। इसके लिए सदस्याओं के जन्मदिन, गर्भवतियों के पुंसवन तथा बच्चों के नामकरण, अन्नप्राशन, मुंडन और विद्यारम्भ संस्कारों के उत्सवों की प्रक्रिया अपनाई गई है। यह चिर-प्राचीन भी है और बिल्कुल नवीन भी। चिर-प्राचीन इसलिए कि भारतीय संस्कृति में साथ-साथ संस्कारों की पद्धति आवश्यक रूप से जुड़ी हुई है और इसे बहुत सूझ-बूझ के साथ प्रचलित किया गया है। चिर-नवीन इसलिए कि पारिवारिक कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों की जानकारी तथा उसे ठीक तरह निवाहने की व्यावहारिक रीति-नीति इस अवसर पर दिये जाने वाले प्रशिक्षण में बड़ी सुन्दरता से जुड़ी हुई है। संस्कार आयोजनों को बिना किसी खर्च का, किन्तु अत्यन्त उत्साहवर्द्धक बनाया गया है। अपने-अपने घरों पर सभी शाखा सदस्याएँ इन आयोजनों को करती रह सकती हैं। भरे-पूरे परिवार में जल्दी-जल्दी वैसे अवसर आते रह सकते हैं और उस उमंग भरे वातावरण में आदर्शवादी परिवर्तनों की जड जमाने का अवसर बार-बार मिलता रह सकता है।

अपने गली-मुहल्ले या गाँव-नगर के सभी नर-नारियों को इकट्ठा करके सामूहिक रूप से पर्व-त्योहार मनाने के कार्यक्रम बनाने चाहिए। दिवाली, बसन्त पंचमी, शिवरात्रि, होली, रामनवमी, गायत्री जयन्ती, गुरु पूर्णिमा, रक्षाबन्धन, विजयादशमी आदि त्योहारों को सार्वजनिक आयोजनों के रूप में मनाया जाना चाहिए और इन पर्वों के पीछे व्यक्ति-निर्माण के जो सूत्र भरे पड़े हैं, उनसे जन-साधारण को अवगत कराना चाहिए। समाज के नव-निर्माण में इन आयोजनों का क्रान्तिकारी प्रभाव देखा जा सकता है। अपने मिशन ने इन्हें मनाने के जो विधान बनाये हैं तथा प्रतिपादन के जो तथ्य प्रस्तुत किये हैं वे अभूतपूर्व हैं। उनमें आज की समस्याओं के प्रखर समाधानों को कूट-कूट कर भर दिया गया है।

अगले दिनों प्रौढ़ महिला पाठशाला भी हर जगह चलाई जानी है। उनमें शिक्षा के अतिरिक्त संगीत एवं गृह उद्योगों की कक्षाएँ भी रहनी हैं। आरम्भ में यह स्थापना माँगे के या किराये के मकान में भी चल सकती है, पर पीछे तो इसके लिए अपनी निज की इमारत होनी चाहिए। प्रौढ शिक्षा तथा शाखा की अन्य गतिविधियों को सुसंचालित रखने के लिए अर्थ-व्यवस्था का प्रबन्ध भी करना होगा। इसके लिए समय-समय पर लोगों से विशेष सहायता भी माँगी जानी चाहिए, किन्तु स्थिर प्रबन्ध के रूप में सदस्याओं को अपने-अपने घरों पर 'ज्ञान घट' स्थापित करने चाहिए। उनमें न्यूनतम दस पैसा या एक मुट्ठी अनाज नित्य डालना चाहिए। इस राशि को शाखा का मासिक चँदा माना जा सकता है और उससे मिशन की अनेकानेक प्रचारात्मक एवं सुधारात्मक गतिविधियों का संचालन हो सकता है।

नारी जागरण की इस पुण्य वेला में प्रत्येक भावनाशील महिला को सक्रिय होना चाहिए। अभीष्ट परिवर्तन का एक पक्ष है- संघर्ष, दूसरा है- सृजन । हमें इन दोनों ही मोर्चों पर अपने वर्चस्व का परिचय देना चाहिए। इस साहस के सहारे ही नारी को अपने तथा समूची मानवता के उज्ज्वल भविष्य का नव-निर्माण करना सम्भव हो सकेगा।

महिला जागरण- पाँच उद्देश्य

नारी का पिछड़ापन आधी जनसंख्या के प्रगति-पथ में भयंकर अवरोध उत्पन्न करने वाली समस्या है। संसार की आबादी का आधा भाग नारी-वर्ग का है। उस पर छाया हुआ पिछड़ापन संसार के विकासक्रम में कितनी बाधा उत्पन्न करता है, उसे थोड़ी-सी विचार बुद्धि का उपयोग करके सहज ही जाना जा सकता है। पिछड़ा मनुष्य अपनी मौलिक क्षमता को विकसित नहीं कर पाता। दुर्बलता के कारण उसके लिए उन सम्पदाओं और विभूतियों को उपलब्ध कर सकना सम्भव नहीं होता जो इस संसार में हर मनुष्य के लिए प्रचुर परिमाण में विद्यमान हैं।

भारतीय नारी का पिछडापन एक तरह का है। संसार के अन्यान्य भागों में दूसरी तरह का । नारी की सुकुमारता को लिप्सा के लिए उपयोग किया गया। प्रजनन विशेषता के कारण शारीरिक बलिष्ठता और उपार्जन क्षमता में न्यूनता आनी स्वाभाविक है। इसे उसकी दुर्बलता समझा गया और दुर्बलों के साथ बलवानों द्वारा जो मत्स्य न्याय अपनाया जाता है, वैसा ही व्यवहार नारी के साथ किया गया। यह आम शिकायत है। भारत में प्रतिबन्धित और पददलित

स्थिति में उसे रखा और दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता है। मानव मात्र के लिए जिन मौलिक अधिकारों की विश्व विवेक ने घोषणा की है, उससे भारतीय नारी प्रायः वंचित ही है। नर के लिए जो सुविधाएँ और परम्पराएँ हैं, वे नारी के लिए कहाँ हैं? उसे स्वेच्छा से नहीं विवशता से अपनी जिन्दगी जीनी पड़ती है। स्वेच्छा सहयोग से एक-दूसरे के लिए बड़े-से-बड़ा त्याग-बलिदान करें, एक-दूसरे के लिए समर्पित रहें, यह सराहनीय है, किन्तु बाधित बनाकर मनुष्य-मनुष्य का अपने स्वार्थ साधन के लिए उपयोग करे, यह मानवी अधिकार का अपहरण है। नैतिक एवं सामाजिक मर्यादाओं में क्या नर, क्या नारी सभी को प्रतिबन्धित रहना चाहिए ,किन्तु स्वार्थ साधन के लिए एक वर्ग दूसरे वर्ग का दमन एवं शोषण करे यह अनुचित है। भारतीय नारी को इसी अनीति की शिकायत है।

तथाकथित प्रगतिशील देशों में उसे बलपूर्वक तो नहीं दलपूर्वक परवशता के पाश में बाँधा गया है। प्रलोभनों की सुनहरी जंजीरों में जकड़कर उसे नर की विनोद लिप्सा पर स्वेच्छा समर्पण के लिए सहमत किया गया है। उसकी दृष्टि श्रृंगारिकता पर रुक गई है। पुरुषार्थ के अन्य क्षेत्रों में आगे बढ़ने की अपेक्षा उसे सुख-सुविधा का यह सस्ता तरीका रुचिकर लगा है कि नर के लिए चाबी वाली गुड़िया की तरह मनोरंजन का साधन बने। इस या उस तरीके से मानवी सत्ता की गरिमा बढ़ाने वाली विशेषता से यदि वंचित रहना पड़ा तो समझना चाहिए कि यह व्यक्तित्व अपने लिए पिछड़ेपन से ग्रसित ही बना रहा और उसके कारण समाज को कोई उपयुक्त लाभ नहीं ही मिल सका।

पिछड़ा वर्ग अपनी मौलिक विशेषताओं को समुन्नत न कर पाने के कारण अभावग्रस्त और आत्म-सम्मान से वंचित रहता है। निर्वाह से लेकर कठिनाइयों के समाधान तक में उसे दूसरे पर आश्रित रहना पड़ता है। योग्यता और सामर्थ्य के अभाव में उसकी कोई बड़ी उपलब्धियाँ तो हो ही कैसे सकती हैं? घाव जैसा दर्द और उत्पीड़न जैसा चीत्कार भले ही न हो, पर अपंगों, पक्षाघात पीड़ितों जैसी दयनीय स्थिति भी कम दयनीय और दुःखद नहीं है। विकास के अवसरों से वंचित रहना अपने आप में एक बड़ा अभिशाप और दुर्भाग्य है जो नारी को पग-पग पर सहन करना पड़ रहा है।

पीड़ित पक्ष स्वयं तो कष्ट उठाता ही है अपने साथियों के लिए भी भारभूत और कष्टकारक बनता है । बीमार स्वयं तो दुःख पाता ही है साथ ही घर के लोगों को भी परिचर्या, गन्दगी, चिकित्सा, व्यय, उपार्जन से वंचित रहना, चिन्ता जैसी अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। स्वस्थ व्यक्ति जहाँ परिवार की सेवा, सहायता कर सकता था, वहाँ उल्टे उन लोगों को अपनी सामर्थ्य उसके लिए खर्च करनी पड़ती है। ठीक यही स्थिति पिछड़ी नारी की भी होती है। वह अपने निर्वाह से लेकर सुरक्षा तक में पराश्रित रहती है। दुर्भाग्य से यदि वैधव्य या ऐसी ही विपत्ति सिर पर आ जाय तो उसे अपना, अपने बालकों का उदर पोषण तक अति कठिन हो जाता है। सामान्य स्थिति में भी वह घर की आर्थिक प्रगति तथा सुविधा संवर्द्धन में कोई महत्त्वपूर्ण सहयोग दे सकने की स्थिति में नहीं होती। कठिन प्रसंगों में वह घबराने और रोने-धोने की हैरानी में पड़कर अपने संरक्षकों के लिए उल्टी मुसीबत बनती है। विपत्ति से जूझने में सहयोग दे सकने की स्थिति तो उसकी होती ही कहाँ है? संक्षेप में पिछड़ी नारी अपने संरक्षकों के गले का पत्थर ही बनकर रहती है। रसोईदारिन, चौकीदारिन और प्रजनन के अतिरिक्त और कोई बड़ी भूमिका अपने लिए, परिवार के लिए, समाज के लिए प्रस्तुत कर सकना उसके लिए कहाँ सम्भव हो पाता है।

नारी का पिछड़ापन नर के लिए भी सुविधाजनक कहाँ है? वशवर्ती रखने और विवशता का लाभ उठाने में लगभग वैसा ही लाभ माना जाता है जैसा कि पशु-पालक अपने पालतू जानवरों में उपलब्ध करते हैं। मनुष्य की स्थिति भिन्न है। सुग्गे को पिंजड़े में और भेड़ को बाड़े में बन्द करके जिस प्रकार का लाभ उठाया जाता है, वैसा ही कुछ मनुष्य, मनुष्य के लिए सोचने लगे तो यह बड़ी ही घृणित बात होगी। व्यक्तित्व को विकसित करके उसके स्वेच्छा-सहयोग का जो लाभ लिया जा सकता है वह पिछड़ापन और विवशता लाद कर प्राप्त की गई कमाई से असंख्य गुना उच्चस्तरीय हो सकता है। ऐसे सोचा जा सके तो नारी को मानवोचित् स्तर पर ऊँचा उठाना और सम्मान देना ही बुद्धिमत्तापूर्ण लगेगा। पददलित और सुविकसित स्थिति के बीच का अन्तर कितना खाई और टीले जैसा होता है, उसे कल्पना या अनुभव, उदाहणों से सहज ही जाना जा सकता है। जिन देशों में नारी को व्यक्तित्व के विकास का, स्वेच्छा-सहयोग का अवसर मिला है, वहाँ की स्थिति कुछ और ही बन गई है। समुन्नत नारी अपने लिए, परिवार और समाज के लिए वरदान बनी हुई है। उसके अनुदानों से पूरा देश लाभान्वित हुआ है।

नारी का पिछड़ापन कहीं भी किसी भी स्तर का क्यों न हो? उसे निरस्त किया ही जाना चाहिए। दुर्गति में न पीड़ित को लाभ है और न उत्पीड़क को। दोनों की गौरव-गरिमा गिरती है और दोनों ही समान रूप से घटे में रहते हैं। इस अदूरदर्शिता पूर्ण स्थिति का अन्त किया ही जाना चाहिए। हमें समझना चाहिए कि न्याय और नीति का जहाँ भी हनन होगा, वहाँ उसकी प्रतिक्रिया अनेकानेक नैतिक संकटों को जन्म देगी। कीचड़ में सड़न, दुर्गन्ध, मक्खी-मच्छर, बीमारी, कुरूपता आदि अनेक अवांछनीयताएँ उत्पन्न होती हैं। नर द्वारा नारी का शोषण हर क्षेत्र में शोषण को प्रोत्साहन देगा और उस परम्परा के चलते रहने पर हर किसी के लिए संकट खड़ा होगा।

पिछड़े, अशक्त, दुर्बल, रुग्ण, पशु को भी पालने में मालिक को नफा नहीं रहता फिर नारी को वैसी दशा में रखकर उसके संरक्षक शुभचिन्तक होने का दावा करने वाले क्या कुछ पा सकेंगे? बलिष्ठ पशु जहाँ स्वयं सुखी रहते हैं, वहाँ मालिक को भी लाभ कमा कर देते हैं, यदि यह मोटी बुद्धि नारी के सम्बन्ध में भी काम कर सके तो इस दुर्दशा का दुःख न सहना पड़े जो सामने है। किसी उच्च पद पर अनाड़ी की नियुक्ति कर दी जाय तो उससे पद के उत्तरदायित्वों का निर्वाह हो नहीं सकेगा। परिवार संस्था विस्तार की दृष्टि से एक घर की सीमा में सीमित हो सकती है, पर उसका न केवल उसके सदस्यों से वरन् समाज के व्यापक क्षेत्र से अति महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। सुसंस्कृत परिवार में स्वर्ग का और विसंगत स्तर के कुटुम्ब में नरक के दर्शन होते हैं। स्वर्ग एवं नरक में से हम किसका सृजन करना चाहते हैं, यह निश्चय करना चाहिए। तदनुरूप गृह संचालिका की स्थिति और स्तर बनाने के लिए कटिबद्ध होना चाहिए । यह हजार बार ध्यान रखने योग्य बात है कि पुरुष अर्थ उपार्जन की, सुविधा-साधन जुटाने की व्यवस्था कर सकता है, पर घर में स्वर्गीय वातावरण उत्पन्न करने की उसकी स्थिति है नहीं। न समय, न अनुभव, न भावना, न कला, न उदारता। इन आधारों के बिना परिवार संस्था का भावनात्मक नवनिर्माण सम्भव नहीं हो सकता। सुसंस्कृत परम्पराएँ ही व्यक्ति, परिवार और समाज को समुन्नत बनाती हैं। नारी ही है जो इस छोटे किन्तु अत्यधिक महत्त्व के कार्य को ठीक तरह कर सकने की मौलिक योग्यता भगवान के घर में अपने साथ लेकर आई है। वस्तुस्थिति को समझा जाना चाहिए। यदि घर-परिवार से सचमुच ही किसी को लगाव हो तो उसका स्तर ऊँचा उठाने के एकमात्र माध्यम उस क्षेत्र की सूत्र-संचालिकाओं को नारियों को सुयोग्य, सक्षम और सुविकसित बनाने के लिए योजनाबद्ध रूप से आगे बढ़ना चाहिए।

नारी भोजनालय का धोबी का, घरेलू नौकर का, चौकीदार का काम सँभाल कर घर की अर्थ-व्यवस्था में परोक्ष सहयोग देती है। मात्र कहीं कमाना ही उपार्जन नहीं है। खर्च में कमी करने के लिए श्रम समय लगा देना भी प्रकारान्तर में कमाई है। बाजार में पका हुआ भोजन खरीदा जाय, हर कपड़ा धोबी से धुलवाया जाय, कपड़ों की सिलाई और मरम्मत के लिए घड़ी-घड़ी दर्जी के दरवाजे खड़ा रहा जाय, सफाई आदि छुटपुट कामों के लिए घरेलू नौकर रखा जाय, सामान को सुरक्षित रखने के लिए चौकीदार रखा जाय, तो पता चलेगा कि बिना गृहिणी के निर्वाह व्यय कितना अधिक बढ़ जाता है। बचत की बात, श्रम-सहयोग की बात भी धन उपार्जन है, मोटा अर्थशास्त्र समझ में न आने से ही नारी के उपार्जन को अस्वीकार-जाता है। वस्तुतः उसकी कमाई असाधारण है। परिवार की भावनात्मक संरचना में स्वर्गीय सुख और उस छोटे समुदाय का उज्ज्वल भविष्य पूरी तरह सन्निहित रहता है। उसका कितना मूल्य आँका जाय? फिर दाम्पत्य जीवन में नर को जो आह्लाद, उल्लास, आश्वासन, विश्वास मिलता है, उसे तो गहन अध्यात्म स्तर का ही माना जा सकता है और उसका मूल्यांकन संसार की किसी भी सम्पत्ति से नहीं किया जा सकता । बच्चों को जो भावनात्मक दुलार भरक अनुदान माता से परिवार की अन्य नारियों से मिलते हैं, उसे कितना भी मूल्य देकर नहीं खरीदा जा सकता। भला कौन-सी धाय, कितने मूल्य पर बच्चे की माता, दादी, बहिन आदि जैसी सघन आत्मीयता देकर उसके अन्तःकरण को हुलसित-पुलकित कर सकती हैं नारी के इन अनुदानों का आर्थिक दृष्टि से क्या कोई भी मूल्य-महत्त्व नहीं आँका जा सकता ?

इतने पर भी यह तथ्य है कि वह प्रत्यक्ष उपार्जन में सहयोग देकर घर की अर्थ-व्यवस्था सुधारने में कोई विशेष भूमिका प्रस्तुत नहीं कर पाती। इसका कारण भी परिस्थितियों का अभाव है। यदि उसे गृह शिल्प के कला-कौशल में प्रवीण किया जा सके और उत्पादन के सरंजाम जुटाये जा सकें तो वह घर-परिवार के उत्तरदायित्वों को निभाते हुए भी बचे हुए समय में कुछ उपार्जन कर सकती हैं। इसका लाभ उसे स्वावलम्बन के साथ जुड़े हुए आत्म-गौरव के रूप में मिलेगा और परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारने से उस संस्था के सभी सदस्यों को अधिक सुविधा पाने का अवसर मिलेगा। सम्पत्ति बढ़ती है तो उसका लाभ मात्र कमाने वाले को ही नहीं, प्रकारान्तर से उपयोगी सामिग्री बनाने वालों को श्रमजीवियों को, सरकार को, असंख्यों को मिलता है। संसार की आधी जनता यदि अर्थ उपार्जन की दिशा में कुछ कदम बढ़ा सकेगी तो उससे राष्ट्रीय सम्पदा में वृद्धि होगी और व्यक्ति परिवार के ही नहीं समूचे देश एवं विश्व के सुविधा साधन बढ़ेंगे। आँखों में आशा की ज्योति चमकाने वाली ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए नारी की योग्यता और उमंगों को समुन्नत बनाने के प्रयास अविलम्ब किये जाने चाहिए।

अपने मरने पर ही प्रलय होने की बात सोची जाती हो तो बात अलग है, अन्यथा यदि भावी पीढ़ियों का भी ध्यान हो और उनके उज्ज्वल भविष्य में भी रुचि हो तो वे साँचे ठीक तरह सँजोये जाने चाहिए। जिनके सहारे नये खिलौने ढलते हैं। भावी पीढ़ियों के शरीर अच्छी खुराक से, मस्तिष्क शिक्षा से विकसित किये जा सकते हैं, पर उनके चरित्र संस्कार-दृष्टिकोण और स्तर का निर्माण परिवार की पाठशाला में, नारी के शालीन अध्यापन के बिना अन्य किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता। भावी पीढ़ी का, नये युग का स्तर ऊँचा उठाना हो तो नोट करना चाहिए कि नारी को प्रगतिशील बनाये बिना अन्य कितने ही साधन जुटा लेने पर भी अभीष्ट प्रयोजन की सिद्धि न हो सकेगी।

न्याय को जीवित रहना ही है तो नारी पर लादे गये अनीतिपूर्ण प्रतिबन्धों के अन्त का श्रीगणेश होना चाहिए। समता यदि अभीष्ट है और मानवी मौलिक अधिकारों से

सहमति है तो उनसे नारी को वंचित रखने का प्रचलन समाप्त होना चाहिए। यदि सचमुच पुत्री, भगिनी, पत्नी और माता के प्रति भाव संवेदना की कोमलता जीवित हो तो उसका परिचय नारी के स्तर को ऊँचा उठाने के प्रयासों द्वारा किया जाना चाहिए। परिवार भेड़ों के बाड़े या सराय, मुसाफिर खाने जैसे बने रहना सन्तोषजनक हो तो बात दूसरी है अन्यथा उनमें प्राण संचार कर सकने की स्थिति गृहिणी को बनाने देनी चाहिए। सन्तानें यशस्वी और तेजस्वी भी इसी आधार पर बनेंगी अन्यथा प्रजनन तो चलता रहेगा, पर उससे धरती माता का भार ही बढ़ेगा। मानव जाति के उज्वल भविष्य की परिकल्पना नारी का पिछड़ापन बने रहने पर उपहासास्पद ही बनी रहेगी। नारी के सहयोग और नेतृत्व की उपेक्षा करके सुखद सम्भावनाओं से भरे-पूरे भविष्य का स्वप्न कभी भी साकार न हो सकेगा।

हमें तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा और (१) मानव समाज में न्याय को जीवन्त रखने (२) परिवारों में शालीनता उत्पन्न करने (३) भावी पीढ़ी को समुन्नत देखने (४) सर्वतोमुखी आर्थिक प्रगति का पथ प्रशस्त करने (५) सद्‌भावना और सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्द्धन का आधार खड़ा करने के लिए नारी पुनरुत्थान की ओर ध्यान दिया ही जाना चाहिए। यदि आज की तुलना में कल को अधिक सुन्दर बनाना हो तो नारी को पिछड़ेपन के चंगुल से छुड़ाकर उसे पंख फड़फड़ा सकने की सुविधा देने की बात सोचनी ही चाहिए।

नारी प्रगति की आवश्यकता के पक्ष में इन पाँच तथ्यों को जनचर्चा का विषय बनाया जाना चाहिए। महिला जागरण अभियान ने प्रत्येक विचारशील नर-नारी को इन पर अधिकाधिक गम्भीरता के साथ चिन्तन करने और निष्कर्ष तक पहुँचने का आमन्त्रण दिया है। इन्हें बार-बार समझा और समझाया जाना चाहिए। संक्षेप में नारी पुनरुत्थान अभियान का यह पंचसूत्री घोषणा पत्र कहा जा सकता है। तथ्य विस्मृत न होने पावे इस दृष्टि से प्रस्तुत आधारों को इस प्रकार समझा और समझाया जाना चाहिए।

(१) नारी न्याय चाहती है– इन्साफ जिन्दा रहना चाहिए। हम न्याय माँगते हैं, हमें न्याय मिलना चाहिए। हम किसी की दया कृपा को पात्र नहीं बनना चाहतीं। दया और कृपा भी अच्छी होती है, किन्तु न्याय पृथक् है। हम न्याय की माँग करती हैं। कोई दुर्बल है, कमजोर है, अशिक्षित है, या पिछड़ा हुआ है तो उसे न्याय न मिले यह असंगत है। महिलाएँ पिछड़ी हैं, कमजोर हैं, अशिक्षित हैं, इसलिए उन्हें कैसे भी रखा जाएगा, कैसा भी व्यवहार किया जाएगा, यह अन्याय है।

दुनिया में पहले बहुत-सी बेइन्साफियाँ थीं, वे चली गयीं, जो बनी हैं वे जा रहीं हैं, एक बेइन्साफी थी कि राजा जमीन के मालिक होते थे और किसान किरायेदार। वे राजा जिसको चाहें अपनी जमीन दे या न दें या देकर छीन लें। वे राजा समाप्त हो गए। जमींदारी प्रथा खत्म हो गई।

एक और बेइन्साफी थी– दास-दासी प्रथा। यह प्रथा सारे संसार में प्रचलित थी। इन दास-दासियों को बेचा जा सकता था, दान किया जा सकता था। मनचाहे ढंग से उनके शरीर का इस्तेमाल किया जा सकता था। भेड़-बकरी की तरह उन्हें मार डाल सकते थे, उनसे नाराज होने पर उनके शरीर से क्रूर से क्रूर व्यवहार किया जा सकता था। २०० वर्ष पले तक गुलामों का व्यापार होता था। अब यह प्रथा भी खत्म हो गई, अब कहीं नहीं है। सब से अन्त में अमेरिका में समाप्त हुई। वहाँ पर गुलाम बैलों की जगह जोते जाते थे, हल खींचते थे, गाड़ियाँ चलाते थे।

परोक्ष और प्रच्छन्न रूप से यह बेइन्साफी नारी पर लागू होती है। विवाहित नारी को उसका पति अभी भी यदि सुसराल नहीं जाती पुलिस की मदद से, दूसरों की मदद से, राजी से, बेराजी, जबरदस्ती, पकड़कर, घसीटकर ले जा सकता है। घर में डाँट सकता है, पीट सकता है, मार सकता और पड़ोसी दूसरे लोग उसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं कर सकते, जैसे कोई बकरी-भेड़ को खरीद कर लाता है– उसे मार सकता है, पीट सकता है, उसे मारते-मारते बेदम कर सकता है, किन्तु दूसरा व्यक्ति पड़ोसी उसमें दखलंदाजी नहीं कर सकता। इस स्थिति को खत्म किया जाना चाहिए।

इस अन्याय को सहने का कारण केवल नारी की एक कमजोरी हो सकती है। वह कमजोरी भी यह है कि वह बच्चे पैदा करती है। गर्भावस्था में ही वह बुरी तरह कमजोर हो जाती है, प्रसव में जीवन-मृत्यु का संकट झेलती है और शिशु को दूध पिलाने में अपने शरीर की सारी शक्ति गँवाकर छूँछ हो जाती है। कमाने योग्य नहीं रहती। इसके बाद भी बच्चों का पालन-पोषण और घर की रखवाली, रसोईदारी, सफाई आदि की व्यस्तता के कारण वह इस योग्य नहीं रहती कि कमाई कर सके और स्वावलम्बी रह सके। यही है उसका सबसे बड़ा कसूर, सबसे बड़ा पाप, कष्ट भोगने का कारण उसकी मजबूरी।

महिला जागरण अभियान चाहता है कि कोई किसी पर नाजायज दबाव न डाले, अमानुषिक व्यवहार न करे। किसी की कमजोरी का नाजायज फायदा न उठाये। एक दूसरे को अधिक प्यार करें, मिलकर रहें एक-दूसरे की सहायता करें, मिल-जुलकर काम करें, एक दूसरे के काम आयें। उनमें निकटता बढ़े, स्नेह बढ़े जिससे वे एक दूसरे की कमी को पूरा कर सकें, उसके दोषों को भुलाकर उसके त्याग और सहयोग की प्रशंसा और मूल्यांकन करें, प्रोत्साहन दें। घरों में अधिकारों की दौड़ समाप्त हो और कर्त्तव्य-उत्तरदायित्वों की प्रति समयदान शुरू हो । घरों में स्वर्ग आये, नारी को न्याय मिले।

संविधान के अनुसार पुरुष-स्त्री दोनों को बोलने, सोचने, व्यवसाय, काम करने की स्वाधीनता एक-सी होते

हुए भी व्यवहार में वैसी समता कहाँ है? औचित्य की माँग है कि नर और नारी दोनों को बराबर का न्याय मिलना चाहिए। मानवीय मौलिक अधिकार बिना वर्ग और लिंग भेद के सबको उपलब्ध रहे। समाज की संरचना ऐसी हो जिसमें सभी को सुव्यवस्था और समानता का अधिकार मिले। समाज की संरचना -समानता के आधार पर हो, सबको समान न्याय मिले।

हमारे समाज की व्यवस्था प्यार और सहकार के आधार पर हो। मर्द स्त्री की सहायता करे, स्त्री मर्द की सेवा करे। दोनों प्यार और स्नेह के माध्यम से एक-दूसरे के पूरक बनें। रथ के पहिए की तरह से समान, एक-दूसरे से कोई छोटा-बड़ा नहीं । एक-दूसरे के प्यार के बन्धन में इस कदर बँधे हों कि कोई किसी के विरुद्ध जाने की बात तो दूर, कल्पना भी मन में न ला सके। दोनों में अटूट स्नेह और प्यार रहे, प्यार का, सहयोग और सहकार का, शालीनता, सौभाग्य का कानून संसार में रहे और लोग स्वर्गीय आनन्द का सुख प्राप्त करें। कोई किसी पर दबाव का, जोर-जबर्दस्ती का प्रयोग न करें। पति-पत्नी, भाई-बहिन, माँ-बेटा, बाप-बेटे में भी ऐसे ही अटूट प्यार और स्नेह हो । सब एक-दूसरे से अपने प्यार के, सहकार और सहयोग के बन्धन में ऐसे जकड़ जाएँ कि हिल न सकें। एक-दूसरे को जीत लें, पर यह सब किसी परावलम्बन, दबाव और जोर-जबरदस्ती के कारण न हो। पर्दा प्रथा, पतिव्रत आदि के जो भी नियम बनें वह नर और नारी दोनों पर समान रूप से लागू हों। विधवा विवाह, विधुर विवाह के सम्बन्ध में एक जैसी ही परम्परा स्वीकार की जाय।

(२) कुटुम्ब संस्था का सन्तुलनः परिवार एक छोटा राष्ट्र है । राष्ट्र एक बड़ा परिवार है। व्यक्ति और समाज के बीच की कड़ी परिवार है। परिवार ही कुटुम्ब है। नर रत्नों का निर्माण परिवार की खदान में होता है। कोयला और हीरा एक ही खदान से निकलते हैं। कोयला और हीरा में बहुत थोड़ा अन्तर होता है। थोड़े से अन्तर से हीरा बहुमूल्य हो जाता है और कोयला काला-कलूटा घटिया रह जाता है। मनुष्य का भी यही हाल है। गुण-कर्म-स्वभाव की श्रेष्ठता से जो मनुष्य महान् बन जाता है, वही मानव दुर्गुणों, दुष्प्रवृत्तियों और दुर्व्यवहारों से असुर जैसी घृणित उपाधियों से सम्बोधित किया जाता है। एक समाज में सम्मान, प्रतिष्ठा और सद्भावना प्राप्त करता है, वहीं दूसरे से त्रस्त होकर लोग उसे शापित करते, डरते और बचने की चेष्टा करते हैं।

यह दोनों प्रकार के मानव परिवार में प्रयोगशाला में ढलते हैं। इनका अच्छा और बुरा ढलना इनके ठप्पों, साँचों पर आधारित होता है। ठप्पे अच्छे होते हैं, साँचे बढ़िया होते हैं, तो ढले हुए खिलौने और पात्र सुघड़ और सुन्दर होते हैं और साँचा खराब हुआ तो ऊबड़-खाबड़ और बेढंगे। ये ठप्पे और साँचे हैं- समाज की सुसंस्कृत और सुविकसित नारी माता।

शास्त्रों का कथन है कि 'माता निर्माता भवति' माँ निमात्री होती है। बच्चे के भीतर जो संस्कार होते हैं, वे माँ से आते हैं, अच्छे अथवा बुरे।

परिवार का सन्तुलन पुरुष की अपेक्षा नारी पर निर्भर करता है। पुरुष तो बेचारा कमाने-धमाने में अधिक व्यस्त रहता है और घर से बाहर ही उसका अधिकांश समय समाप्त हो जाता है। फिर उसको गृह-व्यवस्था का उतना अनुभव और ज्ञान भी नहीं होता है। यह तो स्वयं भी नारी पर ही अवलम्बित रहता है। चाय-पानी से लेकर भोजन तक और कपड़ों से लेकर बिस्तर तक सबके लिए नारी पर आश्रित रहता है। इतर स्वभाव के तो अपवाद ही मिलते हैं।

परिवार संस्था की ठीक-ठीक व्यवस्था अविकसित, असंस्कृत नारी से नहीं हो सकती। यह तो उलटे उसे बिगाड़ कर रख देगी । सारा घर अस्त-व्यस्त, ईर्ष्या-द्वेष, कलह और विरोध के वातावरण का निर्माण कर घर को नरक बना देगी। चौबीस घण्टे लड़ाई-झगड़ा, क्रोध-आक्रोश सारे परिवार में आग जैसी झुलसन पैदा होती रहेगी। ऐसे वातावरण में अच्छे नागरिकों का निर्माण नहीं हो सकता। उल्टे समाज की स्पष्ट हानि होती है।

आज हर परिवार में शारीरिक और मानसिक रोगियों का जमघट है, क्योंकि परिवार की संचालिका आहार-व्यवहार के नियमों से अपरिचित है। यदि उसे सुयोग्य बनाया जाय तो वह कम खर्च में परिवार को अधिक पौष्टिक और पोषक तत्वों से परिपूर्ण भोजन जुटा सकती है। मितव्ययता और सादगी का महत्व बेचारी पिछड़ी और दबी नारी में कैसे आ सकता है? सुधार के सृजनात्मक ढंग मानसिक दृष्टि से कुण्ठित नारी में कैसे उदय हो सकते हैं। चलते हुए ढर्रे की राह मोड़कर श्रेष्ठ जीवन जीने का संकल्प बल उदित करना, रूढ़ि और परम्परा के कीचड़ में फँसी नारी के बूते के बाहर की बात है। समय-पालन, प्राप्त का सदुपयोग, सबका सहकार और सहयोग आत्मीयता के माध्यम से प्राप्त कर, उसका उपयोग करना सुशिक्षित और सुयोग्य नारी की ही विशेषताएँ हो सकती हैं। स्वच्छता, शालीनता, सुव्यवस्था, क्रियाशीलता एवं प्रसन्नता का वातावरण सँजोकर घर को स्वर्ग बनाये रखने का सूत्र पराश्रित, दुर्बल बनाकर रखी गई नारी नहीं जान सकती। धैर्य, आत्म-संयम, संवेदनशीलता, आत्मीयता और परस्पर प्रेम के विकास के बिना पारिवारिक संतुलन नहीं बन पाता। सुसंस्कृत नारी, खानदानी लड़की स्वयं अपने अन्दर और परिवार के सदस्यों में इन गुणों का विकास कर सकती है।

अविकसित और कुसंस्कारी नारी स्वयं तो परेशान रहती है, परिवार में कुहराम मचाये रहती है, न स्वयं चैन से रहती है न घर मे चैन से रहने देती है। घर में नरक हो जाता है। यह हमें अक्सर ही देखने को मिलता है। समझदार नारी परिवार को टूटने से बचा लेती है।

राम कथा में राम वनवास प्रसंग में कौशिल्या और सुमित्रा जैसी सुगृहिणियाँ डूबती बाजी को उबार लेती हैं। माता कौशिल्या धैर्यपूर्वक कर्त्तव्य का निर्धारण करती हैं और अपनी पीड़ा को पीकर राम के सहर्ष वन जाने की आज्ञा दे देती हैं। माता सुमित्रा भी स्वार्थ की जगह पारिवारिक सद्भाव को प्राथमिकता देती हुई, लक्ष्मण को राम के सहकार, सहयोग और सेवा की शिक्षा देती हुई वन भेज देती हैं।

फलस्वरूप पारिवारिक सद्भाव और कर्तव्य परायणता के वातावरण में विपत्ति प्रभावहीन हो गई। समय के प्रभाव से परिवार में उतार-चढाव तो आना स्वाभाविक है। परिवार की संचालिका, गृह-लक्ष्मी उन्हें निरस्त करके परिवार में स्वर्गीय वातावरण को बनाये रख सकती हैं। परिवार संस्था को समुन्नत बनाने के लिए नारी को वर्तमान स्थिति से उभारा और समुन्नत बनाया जाना आवश्यक है।

(३) नयी पीढ़ी का निर्माण- आज नई पीढ़ी को दिशाहीन देखकर हर व्यक्ति चिन्तित है, किन्त जब इस समस्या के समाधान की बात सोचते हैं तो दृष्टि नारी पर ही जाती है। नारी माँ के रूप में शिशु की निर्मात्री और प्राथमिक शिक्षिका है । माँ के अनुरूप बच्चों के विकास के अनेकों उदाहरण मिल सकते हैं।

बालक-गर्भ से लेकर पाँच वर्ष तक अपने जीवन की आधी शिक्षा समाप्त कर चुकता है- मनोवैज्ञानिकों का मत है । इस पाँच साल की आयु तक बालक अधिकांश समय अपनी माँ के सम्पर्क में ही बिताता है और ज्ञान अज्ञान, सब अवस्थाओं में माँ से संस्कार प्राप्त करता रहता है। सुशिक्षित, सुसंस्कारित, सुविकसित महिला को इस बात का ज्ञान होता है, अतः यह सदैव ही इस बात की चेष्टा में रहती है कि उसका बालक उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव का अर्जन करे। वह अपनी भावनाओं द्वारा दया, प्रेम, न्याय, शील, संयम, सदाचार, आत्मीयता और सहृदयता के गुणों को दूध के साथ मिलाती रहती है।

शादी-ब्याह के समय हम अच्छे कुटुम्ब की, अच्छे खानदान की लड़की-लड़का ढूँढ़ते हैं। खानदान का अर्थ है- सुसंस्कारी अच्छे गुण, कर्म, स्वभाव के लोग। हमें श्रेष्ठ व्यक्ति चाहिए. श्रेष्ठ समाज के निर्माण के लिए और वे हमें ऐसे ही श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव के कुटुम्बों से प्राप्त हो सकेंगे।

महँगी चीजें महँगे दाम की मिलती हैं; योग्यताएँ कठोर श्रम और समय लगाने से प्राप्त होती हैं। अच्छे आदमी बड़ी से बड़ी कीमत पर भी नहीं मिलते। हर जगह मिलते हैं, बेकार, निकम्मे, साहसहीन व्यक्ति, पशुवत्। उनका कोई मूल्य नहीं होता। छोटे-से-छोटे व्यक्ति साहस, अध्यवसाय, परिश्रम और विवेकशीलता के माध्यम से महान् बन जाते हैं।

मजबूत स्टील टाटा कम्पनी में ढलती है और नेहरू, पटेल जैसे स्टीलमैन परिवारों की भट्टी में ढाले जाते हैं। कुटुम्बों में उनका निर्माण हुआ था। ये संस्कार-संस्कारवान विकसित नारी से प्राप्त होते हैं। माँ घर की पाठशाला में इन संस्कारों को ढालती है।

हमें सभ्य समाज का निर्माण करना है, अतः अच्छे व्यक्तियों का निर्माण करना होगा। बालकों की शक्ति का रचनात्मक उपयोग सुसंस्कृत नारी ही जानती है। बच्चे स्वच्छ रहें, फैशनेबिल बन जाएँ, साहसी बनें पर ढीठ, धृष्ट न हों, सावधानी बरतें पर डरपोक न बनें, शिष्टाचार भी सीखें और शालीनता भी। कुण्ठित न हों, न उद्दण्ड। मनोरंजन और फूहड़पन, उदारता और भौंडापन प्रतिस्पर्द्धा का भेद बच्चों को शनैः-शनैः जीवन व्यवहार से सिखाना यह शिक्षित-सुसंस्कृत माँ के व्यक्तित्व से ही सम्भव है।

(४) सम्पन्नता में योगदान-हम चाहते हैं कि हमारा राष्ट्र सम्पन्न, समृद्ध और धनवान बने, किन्तु देश की ५० प्रतिशत जनसंख्या पुरुषों के गले का पत्थर बनकर लटकी हुई है। हमारे देश की नारी आर्थिक उपार्जन में पुरुष की सहयोगी नहीं है, वह पर्दा प्रथा, रूढ़िवादिता और परम्पराओं के कारण उलटे पुरुष के लिए आर्थिक उन्नति में बाधक ही सिद्ध हुई है। वह मात्र परिवार वृद्धि और खर्च का माध्यम बनी हुई है। देश के रूढ़िवादी परिवारों में एक कमाता है और छह खाते हैं।

यह आर्थिक संकट का युग है। मध्यम-वर्गीय परिवारों की स्थिति तो सबसे अधिक शोचनीय होती है। उसकी अकेले की कमाई परिवार का खर्च पूरा करने में सर्वथा अपर्याप्त सिद्ध होती है । शिक्षित, समझदार नारी पति का बोझ हल्का कर सकती है। अविकसित नारी न तो समय का सही विभाजन ही कर सकती है और न काम करने का सही ढंग उसे आता है। इस प्रकार उसका समय और श्रम अनुत्पादक और श्रम अनुपयोगी ही कार्यों में बरबाद कर, पुरुष के भार को और बढ़ा देती है।

यदि उसे विकसित होने का अवसर दिया जाय तो पुरुष को उस भार से मुक्ति तो मिल ही जाय। अर्थ-व्यवस्था में भी उसका योगदान मिलने लगे । सुयोग्य गृहिणी अर्थ उपार्जन में सहयोग कर सकती है। साथ ही घर के निरर्थक अपव्यय और बर्बादी रोककर समझदारी से कम साधनों से ही अधिक काम निकालकर घर के अर्थ सन्तुलन को बना सकती है।

उद्योगों के द्वारा पर्याप्त आय सम्भव है। जापानी महिलाएँ इसका अनूठा उदाहरण हैं। घर-घर में लगे छोटे कुटीर उद्योगों में संलग्न रहकर वे अपने समय का उपयोग घर-परिवार को और सम्पूर्ण राष्ट्र को सम्पन्न बनाने में करती हैं।

हमारे देश में एक पुरुष के लिए एक नारी की श्रमशक्ति खप जाती है। सारे दिन रोटी-बच्चों में ही लगी रहती है। न तो वह अपनी योग्यता बढ़ा सकती है और न उसके श्रम का ही उपयोग हो पाता है। परिवार और समाज की आर्थिक प्रगति के लिए नारी का सुयोग्य और समुन्नत होना आवश्यक है। यदि इस सन्दर्भ में यही उपेक्षा

होता है, इसे अनुभव किया जा सके तो नारी के स्वास्थ्य की बर्बादी रुक सकती है। घूँघट, पर्दे में कैद रहने, खुली धूप, हवा का अवसर न मिलने, विनोद-मनोरंजन की गुंजायश न रहने से नारी का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य नष्ट होता है। हर व्यक्ति को यह विचार करना चाहिए कि इस दबाव से राहत देकर नारी के स्वास्थ्य की बर्बादी कैसे रोकी जा सकती है?

(२) शिक्षा मनुष्य की बहुमूल्य सम्पदा है। उसी के सहारे नर-पशु को विचारशील मनुष्य बनने का अवसर मिलता है। रोटी के बिना शरीर को और शिक्षा के बिना मस्तिष्क की दुर्गति होती है। नौकरी के लिए पढ़ाई की आवश्यकता है, यह सोचकर नारी-शिक्षा की उपेक्षा करना उसे मानसिक दृष्टि से अपंग बना देने जैसा अन्याय है। अशिक्षिताओं को घर में शिक्षा प्राप्त करते रहने की सुविधा मिलनी चाहिए। जो थोड़ी पढ़ी हैं, अधिक और पढ़ना चाहती हैं, उन्हें उसके लिए अवसर मिले। पुस्तकालयों की सुविधा उनके लिए हो। इसके अतिरिक्त अनुभव सम्पादन तथा मान-सम्वर्द्धन के लिए महिला जागरण जैसे अभियानों में सम्मिलित होने का उसे अवसर दिया जाय। इन प्रयोजनों के लिए यदि कहीं सत्र, शिविर, प्रशिक्षण चलते हों तो उनकी जानकारी तथा सम्मिलित होने की सुविधा मिलनी चाहिए। नारी जागरण अभियान एवं विवेक को विकसित करने वाले प्रयास सदा ही किये जाते रहने चाहिए।

मात्र स्कूली पढ़ाई ही शिक्षा की सीमा नहीं है, वह तो प्रारम्भिक प्रवेश-द्वार भर है। नारी को अपने व्यक्तित्व के विकास एवं कर्तव्य निर्वाह सम्बन्ध में अति महत्त्वपूर्ण जानकारियों का समुचित ज्ञान होना चाहिए। स्वास्थ्य किन कारणों से नष्ट होता है और उसे गरीबी में भी किस प्रकार बचाया जा सकता है, इसकी जानकारी हो तो बीमारियों से कराहने और डाक्टरों के दरवाजे खटखटाने का अवसर ही न आवे। सामाजिक कुरीतियाँ, मूढ़-मान्यताएँ, अवांछनीयताएँ किस प्रकार मनुष्य की आधी शक्ति नष्ट करती हैं, यह समझ में आ सके तो मस्तिष्क पर छाई रहने वाली विडम्बनाएँ रचनात्मक दिशा में लग सकती हैं। शिशुपालन, दाम्पत्य-जीवन में परिवार में, भावनात्मक स्नेह-सौजन्य का अभिवर्द्धन, उतार-चढ़ावों के बीच सन्तुलन स्थिति रखने जैसी अनेक महत्त्वपूर्ण शिक्षाएँ हैं, जिन्हें उपलब्ध करने का उपाय खोजे और सोचे जाने चाहिए।

(३) प्राचीनकाल में स्त्री-धन के रूप में जेवर आदि नारी को दिये जाते थे। विवाह मे दहेज का प्रचलन भी इसी निमित्त था कि पिता की ओर से और ससुराल की ओर से कुछ स्त्री-धन नव-वधू को मिले और वह समय कुसमय के लिए सुरक्षित रखे रहें। इस प्रचलन को जेवर के रूप में तो नहीं, पर बचत-धन के रूप में नारी के नाम से बैंक में रखा जाय। लम्बे समय के डिपाजिट में अब तो ब्याज भी अच्छा मिलता है। तीज-त्यौहार तथा मासिक जेब-खर्च के रूप में नारी के नाम से इस बचत का प्रचलन रखा जाय। इससे वह ब्याज के रूप में भी कुछ उपार्जन करती रह सकता है। आड़े वक्त में यह धन परिवार के भी काम आ सकता है।

(४) छोटे-मोटे कारणों पर गाली-गलौज, मारपीट का स्वाभिमान को चोट पहुँचाने वाला व्यवहार भी देखने को मिलता है। 'तू' और 'तुम' का अन्तर तो आमतौर से देखा जाता है। दुलार और आत्मीयता में तो कोई भी किसी से एकान्त में 'तू' कह सकता है, पर सामाजिक प्रचलन की दृष्टि से परम्परा एक जैसी होनी चाहिए। तू, तुम, आप, इनमें जैसा जो भी सम्बोधन उपयुक्त समझा जाय, नर और नारी समान रूप से वैसा ही व्यवहार करें। ऐसा शिष्टाचार तो बच्चों के साथ भी बरता जाना चाहिए, ताकि वे उसी प्रकार की आदत बनायें और बड़ों तथा बराबर वालों तथा छोटों से सम्मान-सूचक सम्बोधन का उपयोग करें। मार-पीट और गाली-गलौज तो असभ्य युग की जंगली प्रथा है। इस सभ्यता के युग में मनुष्य के साथ इस प्रकार का व्यवहार नहीं करना चाहिए। मतभेद, भूल, गलती आदि जो भी कारण हों, उनका सुधार, विरोध जो भी करना हो, उसमें भी सभ्यता के तरीके अपनाये जाएँ। अपमान से तो छोटे बच्चे तक रुष्ट होते हैं, फिर बड़ों के लिए तो वह जीवन-मरण का प्रश्न है। हमें बदलते हुए परिवेशों को समझना चाहिए और मनुष्य को मनुष्य के साथ शिष्टाचार की हर स्थिति में रक्षा की जानी है, यह समझना चाहिए।

इन सभी प्रकरणों में व्यक्तिगत स्तर पर घर-घर ध्यान दिया जाना तो आवश्यक है ही, महिला संगठनों को इसके लिए कुछ व्यक्तिगत एवं ठोस सामूहिक प्रयास भी करने चाहिए। नारी को अपने उत्तरदायित्व वहन करने की क्षमता प्रदान करने के लिए कुछ न कुछ निश्चित रूपरेखा एवं कार्य-पद्धति हर जगह बनाई जा सकती है।

नारी-उत्कर्ष की दिशा में कारगर कदम क्या हो सकता है? यह विचार करते समय शिक्षा को प्राथमिकता देनी चाहिए। अशिक्षित नारी को शिक्षित कैसे बनाया जाय? इस प्रश्न पर सरकारी और गैरसरकारी क्षेत्रों में अपने-अपने उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए साहसिक तैयारियाँ करनी चाहिए। शहरों में तो बहुत कुछ सुविधा है भी। हमें ८० प्रतिशत देहात में रहने वाले भारत पर ही अधिक ध्यान देना चाहिए और वहीं की समस्याओं को प्रमुख मानकर चलना चाहिए। देहातों में कन्या-शिक्षा के अधिकाधिक साधन खड़े करने के लिए सरकार से अनुरोध किया जाय। इसके लिए जन-सहयोग को भी एकत्रित किया जाय, ताकि सरकारी, गैरसरकारी मिले-जुले सहयोग से सरलतापूर्वक अधिक कार्य बन पड़ना सम्भव हो सके।

पिछड़े क्षेत्रों में शिक्षा के महत्त्व को अभी तक नहीं समझा गया। पढ़ाई का अर्थ नौकरी समझा जाता है। लोग कहते हैं, हमारी लड़की को नौकरी नहीं करनी है, घर-गृहस्थी चलानी है, फिर उसे पढ़ाने से क्या लाभ? छोटी उम्र में ही लड़कों को काम-धन्धे में लगा दिया जाता है,

बरती जाती रही तो गरीबी और बेकारी हमारे गले में बँधी ही रहेगी, उससे पीछा छूट न सकेगा।

(५) नव-निर्माण में भागीदारी-नए विश्व के निर्माण में नर-नारी दोनों की समान भूमिका होनी चाहिए। आज की पुरुष-प्रधान सभ्यता, व्यग्रता और असन्तुलन को दूर कर सकने में समर्थ है। नारी का भावनात्मक गठन इस असन्तुलन को दूर कर सकने में समर्थ है। नारी का सृजन जिन तत्वों से हुआ है, उनमें करुणा, स्नेह, सौजन्य, आत्मीयता, आध्यात्मिकता का बाहुल्य है। एक ओर सेवा और समर्पण जैसे उसके अनूठे गुण हैं, तो दूसरी ओर साहस और शौर्य जैसे आध्यात्मिक गुणों की भी कमी नहीं। शांति, सुकुमारता, सृजनात्मकता, भावनात्मक की विशेष विभूतियों से सम्पन्न नारी शक्ति का योगदान प्रत्येक क्षेत्र के लिए मंगलमय होगा।

शिक्षा के क्षेत्र के नारी का प्रवेश नया नहीं होगा। घर में और बाहर सभी जगह उसकी सृजनात्मक शक्ति काम करेगी और बालक-बालिकाओं को सही ढंग से शिक्षा मिलेगी। चिकित्सा और समाज कल्याण के क्षेत्र नारी के सहृदयता और स्नेह-सिक्तता के गुणों से लाभान्वित हों हम देश की सच्ची सेवा में तत्पर होंगे।

धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र का नेतृत्व तो नारी को करना ही चाहिए। उसकी आरम्भिक संरचना ही दिव्यता की विशेष मात्रा के साथ की गई है। प्रेम, भक्ति और विशालता से उसका अन्तःकरण अनवरत छलकता रहता है।

नारी का नेतृत्व प्रत्येक क्षेत्र में सहकार, सहयोग, सद्भाव, समर्पण और सेवा के उद्देश्यों का पूरक बनकर आगे आवेगा।

नारी को रचनात्मक दिशा दी जाय

उपेक्षा और पिछड़ेपन ने नारी की क्षमता और उमंग को कुंठित करके रख दिया है। अस्तु, जो कुछ वह वर्तमान स्थिति में वर्तमान साधनों से कर सकती है, वह भी नहीं कर पाती। आवश्यकता इस बात की है कि उसकी उमंगें जगाई जाएँ। विचार-पद्धति में प्रगतिशीलता जोड़ी जाय। साहस बढ़ाया जाय। इस बात का प्रशिक्षण दिया जाय कि वह आज की स्थिति में ही अपने और परिवार के विकास के लिए क्या कर सकती है? अयोग्यता की भर्त्सना तो होती है, पर यह नहीं बताया, दिखाया जाता कि उसे किस प्रकार, क्या करना चाहिए? अभ्यस्त ढर्रे को प्रगतिशील परिवर्तन में बदलने के लिए नये सिरे से सोचना, नया साहस समेटना और नया प्रयास करना पड़ता है। इसके लिए उपयुक्त परामर्श, मार्ग-दर्शन एवं सहयोग की आवश्यकता होती है। महिला जागरण अभियान के अन्तर्गत इसी स्तर का प्रशिक्षण चलता है, जिससे सामान्य स्तर की-सामान्य परिस्थितियों में रह रही नारी भी गृह-लक्ष्मी की भूमिका निभा सके। इतना ही नहीं, सम्पर्क-क्षेत्र में वह कुछ सेवा-कार्य भी कर सकती है और ऐसे प्रयत्नों में योगदान दे सकती है, जो नारी-समाज के उत्कर्ष में सहायक सिद्ध हो सकें।

संगठन और सत्संगों का वातावरण इसी प्रकार के प्रशिक्षण की पृष्ठभूमि बनाने में निरत रहेगा। आगे चलकर पारिवारिक-गोष्ठियों, शिविरों तथा दूसरे प्रकार के प्रचार-प्रशिक्षणों के जो कदम बढ़ेंगे, उनका उद्देश्य भी नारी-जीवन में घुसी हुई अनेकानेक विकृतियों का निराकरण करना और परिवार में स्वर्गीय-वातावरण बना सकने के लिए मार्ग-दर्शन करना ही होगा। धर्मतन्त्र से लोक-शिक्षण का अवलम्बन लेकर चलने वाले महिला जागरण अभियान का उद्देश्य नारी को मात्र पतिव्रता ही नहीं, वरन् सुगृहिणी बनाने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करना ही होगा।

नारी से परिवार-संस्था के विकास में, सामाजिक प्रगति में तथा व्यक्तिगत सहयोग में कुछ कहने लायक योगदान प्राप्त करना हो तो उसकी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए। महिला जागृति अभियान का प्रयत्न होगा कि नारी को वे सुविधाएँ मिलें, जिन्हें मानवी मौलिक अधिकार माना जा सकता है। (१) स्वास्थ्य (२) शिक्षा, (३) स्वावलम्बन, (४) सम्मान। यह चार आवश्यकताएँ ऐसी हैं, जिनके सहारे ही व्यक्तित्व उभरते और निखरते हैं। हमारा प्रयत्न होना चाहिए कि अगले दिनों ऐसे वातावरण बनें, जिसमें इन चारों सुविधाओं को नारी बिना किसी अड़चन और संघर्ष के विकसित विवेक के आधार पर ही प्राप्त कर सकने में सफल हो सकें। इस दिशा में निम्न परिवर्तन हो सकें, ऐसे प्रयत्न आरम्भ कर दिये जाने चाहिए-

(१)गरीबी-अमीरी में भोजन-वस्त्र जिस स्तर का भी मिले, उससे गुजारा हो सकता है, पर समय की व्यस्तता में इस तरह उलझकर न रहा जाय कि घर के ताने-बाने में से विश्राम, अध्ययन आदि के लिए अवसर ही न मिले। भोजन करने का समय निर्धारित नहीं होता तो गई रात तक चौका चलता रहता है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि नियत समय पर रसोई बन्द कर दी जाय और जिन्हें देर में खाना है, वे गरम रोटी का आग्रह न करके कुछ घण्टे पहले बना हुआ भोजन कर लिया करें। देर में सोने और सबेरे जल्दी उठने के फलस्वरूप महिला का स्वास्थ्य आमतौर से बिगड़ता है। परिवार की दिनचर्या ऐसी होनी चाहिए, जिसमें काम के घण्टे नियत हों और सोने-जागने के लिए उचित समय सन्तुलन बना रहे। इसी प्रकार प्रजनन का अनावश्यक भार नारी पर न लादा जाय। आहार-विहार की अस्त-व्यस्तता से एक तो वैसे ही स्वास्थ्य गया-गुजरा रहता है, इस पर भी प्रजनन का भार चलते जाने से वे दुर्बलता एवं रुग्णता में दिन-दिन ग्रसित होती जाती हैं। रोते-कराहते, जीने और बेमौत मरने के लिए प्रजनन का दबाव कितना घातक

होता है, इसे अनुभव किया जा सके तो नारी के स्वास्थ्य की बर्बादी रुक सकती है। घूँघट, पर्दे में कैद रहने, खुली धूप, हवा का अवसर न मिलने, विनोद-मनोरंजन की गुंजायश न रहने से नारी का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य नष्ट होता है। हर व्यक्ति को यह विचार करना चाहिए कि इस दबाव से राहत देकर नारी के स्वास्थ्य की बर्बादी कैसे रोकी जा सकती है?

(२) शिक्षा मनुष्य की बहुमूल्य सम्पदा है। उसी के सहारे नर-पशु को विचारशील मनुष्य बनने का अवसर मिलता है। रोटी के बिना शरीर की और शिक्षा के बिना मस्तिष्क की दुर्गति होती है। नौकरी के लिए पढ़ाई की आवश्यकता है, यह सोचकर नारी-शिक्षा की उपेक्षा करना उसे मानसिक दृष्टि से अपंग बना देने जैसा अन्याय है। अशिक्षिताओं को घर में शिक्षा प्राप्त करते रहने की सुविधा मिलनी चाहिए। जो थोड़ी पढ़ी हैं, अधिक और पढ़ना चाहती हैं, उन्हें उसके लिए अवसर मिले। पुस्तकालयों की सुविधा उनके लिए हो। इसके अतिरिक्त अनुभव सम्पादन तथा मान-सम्वर्द्धन के लिए महिला जागरण जैसे अभियानों में सम्मिलित होने का उसे अवसर दिया जाय। इन प्रयोजनों के लिए यदि कहीं सत्र, शिविर, प्रशिक्षण चलते हों तो उनकी जानकारी तथा सम्मिलित होने की सुविधा मिलनी चाहिए। नारी जागरण अभियान एवं विवेक को विकसित करने वाले प्रयास सदा ही किये जाते रहने चाहिए।

मात्र स्कूली पढ़ाई ही शिक्षा की सीमा नहीं है, वह तो प्रारम्भिक प्रवेश-द्वार भर है। नारी को अपने व्यक्तित्व के विकास एवं कर्तव्य निर्वाह सम्बन्ध में अति महत्त्वपूर्ण जानकारियो का समुचित ज्ञान होना चाहिए। स्वास्थ्य किन कारणों से नष्ट होता है और उसे गरीबी में भी किस प्रकार बचाया जा सकता है, इसकी जानकारी हो तो बीमारियों से कराहने और डाक्टरों के दरवाजे खटखटाने का अवसर ही न आवे। सामाजिक कुरीतियाँ, मूढ़-मान्यताएँ, अवांछनीयताएँ किस प्रकार मनुष्य की आधी शक्ति नष्ट करती हैं, यह समझ में आ सके तो मस्तिष्क पर छाई रहने वाली विडम्बनाएँ रचनात्मक दिशा में लग सकती हैं। शिशुपालन, दाम्पत्य-जीवन में परिवार में, भावनात्मक स्नेह-सौजन्य का अभिवर्द्धन, उतार-चढ़ावों के बीच सन्तुलन स्थिति रखने जैसी अनेक महत्त्वपूर्ण शिक्षाएँ हैं, जिन्हें उपलब्ध करने का उपाय खोजे और सोचे जाने चाहिए।

(३) प्राचीनकाल में स्त्री-धन के रूप में जेवर आदि नारी को दिये जाते थे। विवाह में दहेज का प्रचलन भी इसी निमित्त था कि पिता की ओर से और ससुराल की ओर से कुछ स्त्री-धन नव-वधू को मिले और वह समय कुसमय के लिए सुरक्षित रखे रहें। इस प्रचलन को जेवर के रूप में तो नहीं, पर बचत-धन के रूप में नारी के नाम से बैंक में रखा जाय। लम्बे समय के डिपाजिट में अब तो ब्याज भी अच्छा मिलता है। तीज-त्यौहार तथा मासिक जेब-खर्च के रूप में नारी के नाम से इस बचत का प्रचलन रखा जाय। इससे वह ब्याज के रूप में भी कुछ उपार्जन करती रह सकता है। आड़े वक्त में यह धन परिवार के भी काम आ सकता है।

(४) छोटे-मोटे कारणों पर गाली-गलौज, मारपीट का स्वाभिमान को चोट पहुँचाने वाला व्यवहार भी देखने को मिलता है । 'तू' और 'तुम' का अन्तर तो आमतौर से देखा जाता है। दुलार और आत्मीयता में तो कोई भी किसी से एकान्त में 'तू' कह सकता है, पर सामाजिक प्रचलन की दृष्टि से परम्परा एक जैसी होनी चाहिए। तू, तुम, आप, इनमें जैसा जो भी सम्बोधन उपयुक्त समझा जाय, नर और नारी समान रूप से वैसा ही व्यवहार करें। ऐसा शिष्टाचार तो बच्चों के साथ भी बरता जाना चाहिए, ताकि वे उसी प्रकार की आदत बनायें और बड़ों तथा बराबर वालों तथा छोटों से सम्मान-सूचक सम्बोधन का उपयोग करें। मार-पीट और गाली-गलौज तो असभ्य युग की जंगली प्रथा है। इस सभ्यता के युग में मनुष्य के साथ इस प्रकार का व्यवहार नहीं करना चाहिए। मतभेद, भूल, गलती आदि जो भी कारण हों, उनका सुधार, विरोध जो भी करना हो, उसमें भी सभ्यता के तरीके अपनाये जाएँ। अपमान से तो छोटे बच्चे तक रुष्ट होते हैं, फिर बड़ों के लिए तो वह जीवन-मरण का प्रश्न है। हमें बदलते हुए परिवेशों को समझना चाहिए और मनुष्य को मनुष्य के साथ शिष्टाचार की हर स्थिति में रक्षा की जानी है, यह समझना चाहिए।

इन सभी प्रकरणों में व्यक्तिगत स्तर पर घर-घर ध्यान दिया जाना तो आवश्यक है ही, महिला संगठनों को इसके लिए कुछ व्यक्तिगत एवं ठोस सामूहिक प्रयास भी करने चाहिए । नारी को अपने उत्तरदायित्व वहन करने की क्षमता प्रदान करने के लिए कुछ न कुछ निश्चित रूपरेखा एवं कार्य-पद्धति हर जगह बनाई जा सकती है।

नारी-उत्कर्ष की दिशा में कारगर कदम क्या हो सकता है? यह विचार करते समय शिक्षा को प्राथमिकता देनी चाहिए। अशिक्षित नारी को शिक्षित कैसे बनाया जाय? इस प्रश्न पर सरकारी और गैरसरकारी क्षेत्रों में अपने-अपने उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए साहसिक तैयारियाँ करनी चाहिए। शहरों में तो बहुत कुछ सुविधा है भी। हमें ८० प्रतिशत देहात में रहने वाले भारत पर ही अधिक ध्यान देना चाहिए और वहीं की समस्याओं को प्रमुख मानकर चलना चाहिए। देहातों में कन्या-शिक्षा के अधिकाधिक साधन खड़े करने के लिए सरकार से अनुरोध किया जाय। इसके लिए जन-सहयोग को भी एकत्रित किया जाय, ताकि सरकारी, गैरसरकारी मिले-जुले सहयोग से सरलतापूर्वक अधिक कार्य बन पड़ना सम्भव हो सके।

पिछड़े क्षेत्रों में शिक्षा के महत्त्व को अभी तक नहीं समझा गया। पढ़ाई का अर्थ नौकरी समझा जाता है। लोग कहते हैं, हमारी लड़की को नौकरी नहीं करनी है, घर-गृहस्थी चलानी है, फिर उसे पढ़ाने से क्या लाभ? छोटी उम्र में ही लड़कों को काम-धन्धे में लगा दिया जाता है,

लड़कियाँ माता के घरेलू कामों में हाथ बँटाने लगती हैं। इस सुविधा को अभिभावक छोड़ना नहीं चाहते और बच्चों को पढ़ाने में उत्साह नहीं दिखाते। विचारशील वर्ग का काम है कि शिक्षा के प्रति इस निरुत्साह को दूर करें और जो बच्चे पढ़ने योग्य हैं, उन्हें स्कूल भिजवाने के लिए अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित करें। कन्या-शिक्षा में रुचि उत्पन्न करने के लिए पुरुषों की टोलियाँ पुरुषों में और नारियों की टोलियाँ घरों में जाकर नारियों से मिलें। जो लड़कियाँ पढ़ने योग्य हैं, उन्हें स्कूल भिजवाने की परिस्थितियाँ उत्पन्न करें। छात्राओं की संख्या बढ़ने पर शिक्षा विभाग को उसके लिए प्रबन्ध करना ही होगा। जहाँ वैसी व्यवस्था न हो, वहाँ जन-स्तर पर निजी पाठशाला चलाई जानी चाहिए। लड़कियों को प्राइवेट पढ़कर सरकारी परीक्षा देने की सुविधा है । निजी पाठशालाओं में रात्रि को या सुविधा के समय थोड़ी देर पढ़कर भी लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त करतीं और परीक्षाएँ देती रह सकती हैं।

प्रौढ़-शिक्षा का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण है। अविवाहित या छोटी आयु की लड़कियाँ स्कूलों का लाभ उठा सकती हैं, पर जिनकी उम्र बड़ी हो चुकी हैं, जो विवाहित हैं, जिन्हें घर-गृहस्थी सँभालनी है, उनको भी अशिक्षित नहीं रहने दिया जा सकता। आज जिनको सामाजिक भूमिकाएँ निभानी पड़ रही हैं, जिनका प्रभाव है, जो समर्थ हैं, आज की समस्याएँ उन्हीं से उत्पन्न होती हैं और उन्हीं के द्वारा सुलझ सकती हैं। छोटी-कन्याएँ बड़ी होकर पन्द्रह-बीस साल बाद प्रभावशाली बनेंगी, तब तक वर्तमान पीढ़ी की अशिक्षित महिलाओं को उपेक्षित नहीं रहने दिया जा सकता। आज की समर्थ नारी को आज ही अशिक्षा के चंगुल से छुड़ाया जाना चाहिए।

इसके लिए प्रौढ़-नारी शिक्षा का प्रबन्ध व्यापक रूप से होना चाहिए। कोई गाँव, मुहल्ला ऐसा न रहे, जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था न हो। सेवाभावी संस्थाएँ यह कार्य बड़ी अच्छी तरह कर सकती है। महिला जागरण अभियान को तो इस प्रयास में पूरी तत्परता के साथ जुटना ही चाहिए। समय तो दो से पाँच यही तीन घण्टे का रह सकता है। काम-काजी महिलाओं के पास और कोई-समय बचता ही नहीं है। शिक्षित महिलाएँ अपना समय इस समय पढ़ाने के सेवा कार्य में दिया करें । अशिक्षित-नारियों के घरों पर जाकर उन्हें पढ़ने का महत्त्व समझाया जाय, रुचि जगाई जाय, संकोच छुड़ाया जाय और घर वालों को सहमत किया जाय कि वे उन्हें पढ़ने जाने देने में अड़चन उत्पन्न न करें। पाठशाला का स्थान अध्ययन के लिए सेवा-भावी महिलाओं का सहयोग-शिक्षण में प्रयुक्त होने वाले उपकरण, बिछावन आदि का प्रबन्ध करने के साथ ही घर-घर जाकर अशिक्षित या स्वल्प-शिक्षित महिलाओं को पढ़ने के लिए रजामन्द करना भी एक बड़ा काम है। इन सब प्रयोजनों में लगातार लगा रहा जाय, अनुत्साह एवं अन्य कठिनाइयों के कारण उत्पन्न होने वाली अड़चनों से आये दिन निपटते रहने का साहस सँजोये रहा जाय, तो कोई कारण नहीं कि नारी प्रौढ़-शिक्षा की गतिविधियाँ हर जगह न चल पड़ें। इसके लिए थोड़ी-सी अर्थ-व्यवस्था चाहिए। उसकी भी कमी न रहेगी। सेवा-सहयोग अब भी भारत की नस-नाड़ियों में मौजूद है। आवश्यकता उसे जगाने-उभारने भर की है। उसकी पूर्ति जागरण-अभियान को करनी है। साक्षरता समय की आवश्यकता है। उसकी पूर्ति हमें करनी ही चाहिए। जो शिक्षा प्राप्त करने योग्य हैं, उन्हें निरक्षरता का कलंक अपने सिर पर से धो ही डालना चाहिए। गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले में प्रौढ़ महिला पाठशालाएँ चलनी चाहिए।

स्वल्प-शिक्षित महिलाओं के, आगे के लिए भी इसी प्रकार के प्रयास होने चाहिए। निरक्षर-साक्षर बनें। साक्षर-आगे की पढ़ाई आरम्भ करें। जिनकी शिक्षा सन्तोषजनक है, वे दूसरों को पढ़ाने का सेवा-धर्म स्वीकार करें। जूनियर हाईस्कूल तक की पढ़ाई के लिए रिटायर अध्यापकों-अध्यापिकाओं की सेवाएँ आसानी से उपलब्ध हो सकती हैं। यदि पूर्ण अवैतनिक सेवा-भावी अध्यापक न मिलें तो जेब-खर्च जैसा उपहार देने की व्यवस्था भी जुटानी चाहिए। प्रभावशाली नर-नारियों को अपने प्रभाव, परामर्श का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि महिला शिक्षा-प्रसार का मार्ग प्रशस्त होता चला जाय। कठिनाइयों को हल करने के लिए ऐसे लोग थोड़ा भी उत्साह प्रदर्शित करने लगें, सहयोग का हाथ बढ़ाएँ, दिलचस्पी लें तो निराशाजनक स्थिति में आशा की किरणें उग सकती हैं।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि शिक्षा के साथ-साथ नारी की प्रस्तुत वर्तमान समस्याओं के समाधान प्राप्त कर सकने वाली जानकारियों का समावेश पूरी तरह रहे। परिवार एक छोटा राष्ट्र है । जिस प्रकार किसी देश की सुव्यवस्था बनाने के लिए उसके विभिन्न विभागों को सुदृढ़, सुव्यवस्थित और विकसित बनाना होता है, ठीक उसी प्रकार परिवार को स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, संस्कृति, अर्थ-व्यवस्था, विकृतियों का निराकरण, कला सुसज्जा, स्नेह, सहयोग, संगठन आदि से सम्बन्धित अनेकों विधाएँ जुड़ी रहती हैं। बच्चों का निर्माण, बड़ों का सन्तोष और बराबर वालों का सहयोग किस प्रकार संभव हो सकता है? इसके लिए नीति, शासन एवं मनोविज्ञान शास्त्र का समन्वय करने चाहिए। घर को गन्दी सराय न रहने देकर यदि हर्षोल्लास का केन्द्र बनाना है तो क्या करना और क्या सोचना होगा? दाम्पत्य-जीवन की मधुरिमा किस प्रकार बनी और बढ़ती रह सकती है, इसके कुछ विशेष सिद्धान्त हैं। छोटे-से घरौंदे को आनन्द-निकेतन बना देना उच्चस्तरीय कलाकारिता है। यह सारा ज्ञान इतना उपयोगी एवं आवश्यक है कि उसके सहारे किसी भी परिवार को, धरती को स्वर्ग रूप में परिणत किया जा सकता है। यही वह प्रशिक्षण है, जिसे नारी-जीवन का प्राण और परिवार-संस्था का हृदय कह सकते हैं। . ..

स्कूलों में अनेक उपयोगी विषय पढ़ाये जाते हैं, जिनमें एक गृह-विज्ञान भी है। ये भी अपने स्थान पर उपयोगी हैं, पर इनमें उन तथ्यों का समावेश नहीं है, जिनके आधार पर परिवार रूपी एक छोटे राष्ट्र की समस्त समस्याओं का स्वरूप और समाधान सिखाया जा सके। ऐसी पुस्तकें बाजार में भी नहीं मिलतीं। जो मिलती हैं, उनके पीछे गम्भीर चिन्तन का सर्वथा अभाव है। ऐसे ही छापने-बेचने के लिए कुछ रच लिया जाय तो उससे नारी को सुविकसित बनाने वाली शिक्षा की आवश्यक पूर्ति कहाँ हुई?

महिला जाग्रति अभियान के अन्तर्गत इस प्रकार का लेखन आरम्भ हो गया है। उसका प्रकाशन भी अगले ही दिनों होने जा रहा है। प्रयत्न आगे भी जारी रहेगा और उससे शाखा संगठन अपने यहाँ एक अति महत्त्वपूर्ण पुस्तकालय की आवश्यकता पूरी कर सकेंगे।

प्रत्येक शाखा अपने नगर की शिक्षित महिलाओं की लिस्ट बनाकर उनके घर पर यह साहित्य पहुँचाने और वापिस मँगाने का एक सुनिश्चित कार्यक्रम चलायेंगी। इसके लिए कोई वयोवृद्ध पुरुष भी कारगर हो सकते हैं। इस साहित्य का विक्रय केन्द्र भी शाखा में रहेगा, ताकि जिन्हें यह पुस्तक पसन्द आवें वे उन्हें ख़रीद भी सकें। कन्या-विद्यालयों की छात्राओं को इन्हें पढ़ाने के लिए उनकी अध्यापिकाओं अथवा जिम्मेदार लड़कियों की मारफत प्रबन्ध किया जा सकता है।

विचार यह भी है कि इन पुस्तकों के विधिवत् एवं गम्भीर अध्ययन को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से एक परीक्षा पद्धति आरम्भ की जाय। उत्तीर्ण होने पर सुन्दर-बड़े आकार का प्रमाण-पत्र दिया जाय। इसमें इन पुस्तकों के सहारे उपयोगी ज्ञान प्राप्त करने के लिए मार्ग-दर्शक कक्षाएँ भी चलाई जा सकती हैं, भले ही वे सप्ताह में एक दिन ही क्यों न काम करें।

नारी-उत्कर्ष और प्रेरणाप्रद मार्ग-दर्शन दोनों को एक ही वस्तु के दो पक्ष कहना चाहिए। महिला जागरण के लिए सर्वतोमुखी शिक्षण की तैयारी करने में हमें उत्साह पूर्वक संलग्न होना चाहिए।

नारी के पिछड़ेपन एवं शोषण का कारण मात्र सामाजिक प्रतिबन्ध ही नहीं, अर्थोपार्जन की क्षमता का अभाव भी है। इसी विवशता के कारण उसे दबाया जाता है और दबना पड़ता है। नैतिक दबाव ही पर्याप्त है, विवशता से लाभ उठाने का तथ्य अनुचित है। नारी को समर्थ बनाने के लिए उसके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले अनुचित दबाव को घटाया जाना चाहिए। शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए तथा आर्थिक स्वावलम्बन की परिस्थितियाँ उत्पन्न की जानी चाहिए। उससे उसका आत्मविश्वास उभरेगा, परिवार की सम्पन्नता बढ़ेगी और राष्ट्रीय समृद्धि में योगदान मिलेगा।

महिला जागरण अभियान को अपने क्षेत्र में बौद्धिक प्रशिक्षण, संगठन, वातावरण, निर्माण, शिक्षा-व्यवस्था के साथ ही नारी-स्वावलम्बन की दिशा में, रचनात्मक कार्य हाथ में लेने ही चाहिए। नारी पर प्रकृति ने प्रजनन भार लादा है, साथ ही बच्चों की, गृह-व्यवस्था की तथा चौकीदारी की जिम्मेदारी रहने के कारण उसे घर की सीमा में ही रहना पड़ता है। जिनके ऊपर यह भार न हो, वे ही बाहर जाकर नौकरी करने की स्थिति में होती हैं, अन्यथा घर-बाहर का दुहरा बोझ उनकी शारीरिक, मानसिक स्थिति को ही नष्ट नहीं करता, परिवार-व्यवस्था को भी लड़खड़ा देता है। अपवादों की बात दूसरी है। पर सामान्यतया नारी का कार्यक्षेत्र परिवार ही है और उसे उसी में रहते हुए अर्थोपार्जन के, स्वावलम्बन के स्रोत खोजने चाहिए। विदेशों में काम-काजी महिलाएँ बच्चों को शिशु-गृहों में छोड़कर काम पर जाती हैं और वापिस लौटने पर उन्हें साथ लेती आती हैं। सम्मिलित परिवार वहाँ बिखर चुके हैं। अपने देश में वे हैं तो; पर बच्चों को जिस-तिस पर छोड़ कर चले जाने से उनकी आदतें बिगड़ने का पूरा खतरा बना रहेगा। ऐसी दशा में उपयुक्त यही है कि व्यापक रूप से आर्थिक स्वावलम्बन की बात घर के दायरे में ही सोची जाय और उसकी गतिविधियाँ को एक आन्दोलन के रूप में संगठित किया जाय । घर-परिवार के लोगों से कहा जाय कि वे यदि सच्चे अर्थों में अपनी आश्रित महिलाओं के शुभ-चिन्तक हैं तो उन्हें स्वावलम्बन की सुविधा देने में सहयोग प्रदान करें।

उपार्जन को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-एक बचत, दूसरा कमाई। बचत का कार्य तुरन्त हाथ में लिया जा सकता है; थोड़े प्रयत्न और प्रशिक्षण से वह कार्यान्वित हो सकता है। उसमें नकदी सीधी हाथ में तो नहीं आती, पर परिणाम की दृष्टि से लाभ उतना ही हो जाता है। स्त्रियों को उपार्जन क्षमता से रहित माना जाता है, पर उनके द्वारा होने वाली बचत का मूल्यांकन किया जाय तो प्रतीत होगा कि उनके द्वारा परिवार की आर्थिक समृद्धि बढ़ने में बचत प्रक्रिया का कितना अधिक योगदान है? घर में स्त्री न हो, तो भोजन या तो बाजार में खाना पड़ेगा या पकाने के लिए नौकर रखना पड़ेगा। जितने लोगों का भोजन घर में बनता है, उतना बाजार से खरीदकर या नौकर से बनवाकर देखा जाय और फिर घर पर बनने में आने वाली लागत को तोला जाय तो पता चलेगा कि नारी के भोजन बनाने मात्र के श्रम से परिवार की कितनी आर्थिक बचत होती है? बर्तनों से लेकर कपड़ों तक को साफ करने के लिए उसके श्रम का मूल्यांकन तब ही हो सकता है, जब बर्तन साफ करने, सफाई करने, वस्तुओं को यथाक्रम रखते रहने के लिए नौकर रखा जाय और उसे नकद वेतन दिया जाय। घर में कपड़े न धोकर यदि रोज का गट्ठर धोबी के यहाँ भेजा जाय, तब पता लगेगा कि उसका बिल कितना बड़ा बनता है। चोर-उचक्कों की कमी नहीं। घर का ताला बन्द करके दुकान जाया जाय और वापिस आने पर उसे खोला जाय तो कुछ ही दिन में चोर पता पा लेंगे और किसी दिन सब कुछ साफ कर देंगे।

लड़कियाँ माता के घरेलू कामों में हाथ बँटाने लगती हैं। इस सुविधा को अभिभावक छोड़ना नहीं चाहते और बच्चों को पढ़ाने में उत्साह नहीं दिखाते। विचारशील वर्ग का काम है कि शिक्षा के प्रति इस निरुत्साह को दूर करें और जो बच्चे पढ़ने योग्य हैं, उन्हें स्कूल भिजवाने के लिए अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित करें। कन्या-शिक्षा में रुचि उत्पन्न करने के लिए पुरुषों की टोलियाँ पुरुषों में और नारियों की टोलियाँ घरों में जाकर नारियों से मिलें। जो लड़कियाँ पढ़ने योग्य हैं, उन्हें स्कूल भिजवाने की परिस्थितियाँ उत्पन्न करें। छात्राओं की संख्या बढ़ने पर शिक्षा विभाग को उसके लिए प्रबन्ध करना ही होगा। जहाँ वैसी व्यवस्था न हो, वहाँ जन-स्तर पर निजी पाठशाला चलाई जानी चाहिए। लड़कियों को प्राइवेट पढ़कर सरकारी परीक्षा देने की सुविधा है । निजी पाठशालाओं में रात्रि को या सुविधा के समय थोड़ी देर पढ़कर भी लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त करतीं और परीक्षाएँ देती रह सकती हैं।

प्रौढ़-शिक्षा का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण है। अविवाहित या छोटी आयु की लड़कियाँ स्कूलों का लाभ उठा सकती हैं, पर जिनकी उम्र बड़ी हो चुकी हैं, जो विवाहित हैं, जिन्हें घर-गृहस्थी सँभालनी है, उनको भी अशिक्षित नहीं रहने दिया जा सकता। आज जिनकी सामाजिक भूमिकाएँ निभानी पड़ रही हैं, जिनका प्रभाव है, जो समर्थ हैं, आज की समस्याएँ उन्हीं से उत्पन्न होती हैं और उन्हीं के द्वारा सुलझ सकती हैं। छोटी-कन्याएँ बड़ी होकर पन्द्रह-बीस साल बाद प्रभावशाली बनेंगी, तब तक वर्तमान पीढ़ी की अशिक्षित महिलाओं को उपेक्षित नहीं रहने दिया जा सकता। आज की समर्थ नारी को आज ही अशिक्षा के चंगुल से छुडाया जाना चाहिए।

इसके लिए प्रौढ़-नारी शिक्षा का प्रबन्ध व्यापक रूप से होना चाहिए। कोई गाँव, मुहल्ला ऐसा न रहे, जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था न हो। सेवाभावी संस्थाएँ यह कार्य बड़ी अच्छी तरह कर सकती हैं। महिला जागरण अभियान को तो इस प्रयास में पूरी तत्परता के साथ जुटना ही चाहिए। समय तो दो से पाँच यही तीन घण्टे का रह सकता है। काम-काजी महिलाओं के पास और कोई-समय बचता ही नहीं है। शिक्षित महिलाएँ अपना समय इस समय पढ़ाने के सेवा कार्य में दिया करें । अशिक्षित-नारियों के घरों पर जाकर उन्हें पढ़ने का महत्त्व समझाया जाय, रुचि जगाई जाय, संकोच छुड़ाया जाय और घर वालों को सहमत किया जाय कि वे उन्हें पढ़ने जाने देने में अड़चन उत्पन्न न करें। पाठशाला का स्थान अध्ययन के लिए सेवा-भावी महिलाओं का सहयोग-शिक्षण में प्रयुक्त होने वाले उपकरण, बिछावन आदि का प्रबन्ध करने के साथ ही घर-घर जाकर अशिक्षित या स्वल्प-शिक्षित महिलाओं को पढ़ने के लिए रजामन्द करना भी एक बड़ा काम है। इन सब प्रयोजनों में लगातार लगा रहा जाय, अनुत्साह एवं अन्य कठिनाइयों के कारण उत्पन्न होने वाली अड़चनों से आये दिन निपटते रहने का साहस सँजोये रहा जाय, तो कोई कारण नहीं कि नारी प्रौढ़-शिक्षा की गतिविधियाँ हर जगह न चल पड़ें। इसके लिए थोड़ी-सी अर्थ-व्यवस्था चाहिए। उसकी भी कमी न रहेगी। सेवा-सहयोग अब भी भारत की नस-नाड़ियों में मौजूद है। आवश्यकता उसे जगाने-उभारने भर की है। उसकी पूर्ति जागरण-अभियान को करनी है। साक्षरता समय की आवश्यकता है। उसकी पूर्ति हमें करनी ही चाहिए। जो शिक्षा प्राप्त करने योग्य हैं, उन्हें निरक्षरता का कलंक अपने सिर पर से धो ही डालना चाहिए। गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले में प्रौढ़ महिला पाठशालाएँ चलनी चाहिए।

स्वल्प-शिक्षित महिलाओं के, आगे के लिए भी इसी प्रकार के प्रयास होने चाहिए। निरक्षर-साक्षर बनें। साक्षर-आगे की पढ़ाई आरम्भ करें। जिनकी शिक्षा सन्तोषजनक है, वे दूसरों को पढ़ाने का सेवा-धर्म स्वीकार करें। जूनियर हाईस्कूल तक की पढ़ाई के लिए रिटायर अध्यापकों-अध्यापिकाओं की सेवाएँ आसानी से उपलब्ध हो सकती हैं। यदि पूर्ण अवैतनिक सेवा-भावी अध्यापक न मिलें तो जेब-खर्च जैसा उपहार देने की व्यवस्था भी जुटानी चाहिए। प्रभावशाली नर-नारियों को अपने प्रभाव, परामर्श का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि महिला शिक्षा-प्रसार का मार्ग प्रशस्त होता चला जाय। कठिनाइयों को हल करने के लिए ऐसे लोग थोड़ा भी उत्साह प्रदर्शित करने लगें, सहयोग का हाथ बढ़ाएँ, दिलचस्पी लें तो निराशाजनक स्थिति में आशा की किरणें उग सकती हैं।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि शिक्षा के साथ-साथ नारी की प्रस्तुत वर्तमान समस्याओं के समाधान प्राप्त कर सकने वाली जानकारियों का समावेश पूरी तरह रहे। परिवार एक छोटा राष्ट्र है । जिस प्रकार किसी देश की सुव्यवस्था बनाने के लिए उसके विभिन्न विभागों को सुदृढ़, सुव्यवस्थित और विकसित बनाना होता है, ठीक उसी प्रकार परिवार को स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, संस्कृति, अर्थ-व्यवस्था, विकृतियों का निराकरण, कला सुसज्जा, स्नेह, सहयोग, संगठन आदि से सम्बन्धित अनेकों विधाएँ जुड़ी रहती हैं। बच्चों का निर्माण, बड़ों का सन्तोष और बराबर वालों का सहयोग किस प्रकार संभव हो सकता है? इसके लिए नीति, शासन एवं मनोविज्ञान शास्त्र का समन्वय करने चाहिए। घर को गन्दी सराय न रहने देकर यदि हर्षोल्लास का केन्द्र बनाना है तो क्या करना और क्या सोचना होगा? दाम्पत्य-जीवन की मधुरिमा किस प्रकार बनी और बढ़ती रह सकती है, इसके कुछ विशेष सिद्धान्त हैं। छोटे-से घरौंदे को आनन्द-निकेतन बना देना उच्चस्तरीय कलाकारिता है। यह सारा ज्ञान इतना उपयोगी एवं आवश्यक है कि उसके सहारे किसी भी परिवार को, धरती को स्वर्ग रूप में परिणत किया जा सकता है। यही वह प्रशिक्षण है, जिसे नारी-जीवन का प्राण और परिवार-संस्था का हृदय कह सकते हैं।

स्कूलों में अनेक उपयोगी विषय पढ़ाये जाते हैं, जिनमें एक गृह-विज्ञान भी है। ये भी अपने स्थान पर उपयोगी हैं, पर इनमें उन तथ्यों का समावेश नहीं है, जिनके आधार पर परिवार रूपी एक छोटे राष्ट्र की समस्त समस्याओं का स्वरूप और समाधान सिखाया जा सके। ऐसी पुस्तकें बाजार में भी नहीं मिलतीं। जो मिलती हैं, उनके पीछे गम्भीर चिन्तन का सर्वथा अभाव है। ऐसे ही छापने-बेचने के लिए कुछ रच लिया जाय तो उससे नारी को सुविकसित बनाने वाली शिक्षा की आवश्यक पूर्ति कहाँ हुई?

महिला जाग्रति अभियान के अन्तर्गत इस प्रकार का लेखन आरम्भ हो गया है। उसका प्रकाशन भी अगले ही दिनों होने जा रहा है। प्रयत्न आगे भी जारी रहेगा और उससे शाखा संगठन अपने यहाँ एक अति महत्त्वपूर्ण पुस्तकालय की आवश्यकता पूरी कर सकेंगे।

प्रत्येक शाखा अपने नगर की शिक्षित महिलाओं की लिस्ट बनाकर उनके घर पर यह साहित्य पहुँचाने और वापिस मँगाने का एक सुनिश्चित कार्यक्रम चलायेंगी। इसके लिए कोई वयोवृद्ध पुरुष भी कारगर हो सकते हैं। इस साहित्य का विक्रय केन्द्र भी शाखा में रहेगा, ताकि जिन्हें यह पुस्तक पसन्द आवें वे उन्हें ख़रीद भी सकें। कन्या-विद्यालयों की छात्राओं को इन्हें पढ़ाने के लिए उनकी अध्यापिकाओं अथवा जिम्मेदार लड़कियों की मारफत प्रबन्ध किया जा सकता है।

विचार यह भी है कि इन पुस्तकों के विधिवत् एवं गम्भीर अध्ययन को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से एक परीक्षा पद्धति आरम्भ की जाय। उत्तीर्ण होने पर सुन्दर-बड़े आकार का प्रमाण-पत्र दिया जाय। इसमें इन पुस्तकों के सहारे उपयोगी ज्ञान प्राप्त करने के लिए मार्ग-दर्शक कक्षाएँ भी चलाई जा सकती हैं, भले ही वे सप्ताह में एक दिन ही क्यों न काम करें।

नारी-उत्कर्ष और प्रेरणाप्रद मार्ग-दर्शन दोनों को एक ही वस्तु के दो पक्ष कहना चाहिए। महिला जागरण के लिए सर्वतोमुखी शिक्षण की तैयारी करने में हमें उत्साह पूर्वक संलग्न होना चाहिए।

नारी के पिछड़ेपन एवं शोषण का कारण मात्र सामाजिक प्रतिबन्ध ही नहीं, अर्थोपार्जन की क्षमता का अभाव भी है। इसी विवशता के कारण उसे दबाया जाता है और दबना पड़ता है। नैतिक दबाव ही पर्याप्त है, विवशता से लाभ उठाने का तथ्य अनुचित है। नारी को समर्थ बनाने के लिए उसके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले अनुचित दबाव को घटाया जाना चाहिए। शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए तथा आर्थिक स्वावलम्बन की परिस्थितियाँ उत्पन्न की जानी चाहिए। उससे उसका आत्मविश्वास उभरेगा, परिवार की सम्पन्नता बढ़ेगी और राष्ट्रीय समृद्धि में योगदान मिलेगा।

महिला जागरण अभियान को अपने क्षेत्र में बौद्धिक प्रशिक्षण, संगठन, वातावरण, निर्माण, शिक्षा-व्यवस्था के साथ ही नारी-स्वावलम्बन की दिशा में, रचनात्मक कार्य हाथ में लेने ही चाहिए। नारी पर प्रकृति ने प्रजनन भार लादा है, साथ ही बच्चों की, गृह-व्यवस्था की तथा चौकीदारी की जिम्मेदारी रहने के कारण उसे घर की सीमा में ही रहना पड़ता है। जिनके ऊपर वह भार न हो, वे ही बाहर जाकर नौकरी करने की स्थिति में होती हैं, अन्यथा घर-बाहर का दुहरा बोझ उनकी शारीरिक, मानसिक स्थिति को ही नष्ट नहीं करता, परिवार-व्यवस्था को भी लड़खड़ा देता है। अपवादों की बात दूसरी है। पर सामान्यतया नारी का कार्यक्षेत्र परिवार ही है और उसे उसी में रहते हुए अर्थोपार्जन के, स्वावलम्बन के स्रोत खोजने चाहिए। विदेशों में काम-काजी महिलाएँ बच्चों को शिशु-गृहों में छोड़कर काम पर जाती हैं और वापिस लौटने पर उन्हें साथ लेती आती हैं। सम्मिलित परिवार वहाँ बिखर चुके हैं। अपने देश में ये हैं तो; पर बच्चों को जिस-तिस पर छोड़ कर चले जाने से उनकी आदतें बिगड़ने का पूरा खतरा बना रहेगा। ऐसी दशा में उपयुक्त यही है कि व्यापक रूप से आर्थिक स्वावलम्बन की बात घर के दायरे में ही सोची जाय और उसकी गतिविधियों को एक आन्दोलन के रूप में संगठित किया जाय । घर-परिवार के लोगों से कहा जाय कि वे यदि सच्चे अर्थों में अपनी आश्रित महिलाओं के शुभ-चिन्तक हैं तो उन्हें स्वावलम्बन की सुविधा देने में सहयोग प्रदान करें।

उपार्जन को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-एक बचत, दूसरा कमाई। बचत का कार्य तुरन्त हाथ में लिया जा सकता है; थोड़े प्रयत्न और प्रशिक्षण से वह कार्यान्वित हो सकता है। उसमें नकदी सीधी हाथ में तो नहीं आती, पर परिणाम की दृष्टि से लाभ उतना ही हो जाता है। स्त्रियों को उपार्जन क्षमता से रहित माना जाता है, पर उनके द्वारा होने वाली बचत का मूल्यांकन किया जाय तो प्रतीत होगा कि उनके द्वारा परिवार की आर्थिक समृद्धि बढ़ने में बचत प्रक्रिया का कितना अधिक योगदान है? घर में स्त्री न हो, तो भोजन या तो बाजार में खाना पड़ेगा या पकाने के लिए नौकर रखना पड़ेगा। जितने लोगों का भोजन घर में बनता है, उतना बाजार से खरीदकर या नौकर से बनवाकर देखा जाय और फिर घर पर बनने में आने वाली लागत को तोला जाय तो पता चलेगा कि नारी के भोजन बनाने मात्र के श्रम से परिवार की कितनी आर्थिक बचत होती है? बर्तनों से लेकर कपड़ों तक को साफ करने के लिए उसके श्रम का मूल्यांकन तब ही हो सकता है, जब बर्तन साफ करने, सफाई करने, वस्तुओं को यथाक्रम रखते रहने के लिए नौकर रखा जाय और उसे नकद वेतन दिया जाय। घर में कपड़े न धोकर यदि रोज का गट्ठर धोबी के यहाँ भेजा जाय, तब पता लगेगा कि उसका बिल कितना बड़ा बनता है। चोर-उचक्कों की कमी नहीं। घर का ताला बन्द करके दुकान जाया जाय और वापिस आने पर उसे खोला जाय तो कुछ ही दिन में चोर पता पा लेंगे और किसी दिन सब कुछ साफ कर देंगे।

लड़कियाँ माता के घरेलू कामों में हाथ बँटाने लगती हैं। इस सुविधा को अभिभावक छोड़ना नहीं चाहते और बच्चों को पढ़ाने में उत्साह नहीं दिखाते। विचारशील वर्ग का काम है कि शिक्षा के प्रति इस निरुत्साह को दूर करें और जो बच्चे पढ़ने योग्य हैं, उन्हें स्कूल भिजवाने के लिए अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित करें। कन्या-शिक्षा में रुचि उत्पन्न करने के लिए पुरुषों की टोलियाँ पुरुषों में और नारियों की टोलियाँ घरों में जाकर नारियों से मिलें। जो लड़कियाँ पढ़ने योग्य हैं, उन्हें स्कूल भिजवाने की परिस्थितियाँ उत्पन्न करें। छात्राओं की संख्या बढ़ने पर शिक्षा विभाग को उसके लिए प्रबन्ध करना ही होगा। जहाँ वैसी व्यवस्था न हो, वहाँ जन-स्तर पर निजी पाठशाला चलाई जानी चाहिए। लड़कियों को प्राइवेट पढ़कर सरकारी परीक्षा देने की सुविधा है । निजी पाठशालाओं में रात्रि को या सुविधा के समय थोड़ी देर पढ़कर भी लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त करतीं और परीक्षाएँ देती रह सकती हैं।

प्रौढ़-शिक्षा का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण है। अविवाहित या छोटी आयु की लड़कियाँ स्कूलों का लाभ उठा सकती हैं, पर जिनकी उम्र बड़ी हो चुकी हैं, जो विवाहित हैं, जिन्हें घर-गृहस्थी सँभालनी है, उनको भी अशिक्षित नहीं रहने दिया जा सकता। आज जिनको सामाजिक भूमिकाएँ निभानी पड़ रही हैं, जिनका प्रभाव है, जो समर्थ हैं, आज की समस्याएँ उन्हीं से उत्पन्न होती हैं और उन्हीं के द्वारा सुलझ सकती हैं। छोटी-कन्याएँ बड़ी होकर पन्द्रह-बीस साल बाद प्रभावशाली बनेंगी, तब तक वर्तमान पीढ़ी की अशिक्षित महिलाओं को उपेक्षित नहीं रहने दिया जा सकता। आज की समर्थ नारी को आज ही अशिक्षा के चंगुल से छुड़ाया जाना चाहिए।

इसके लिए प्रौढ़-नारी शिक्षा का प्रबन्ध व्यापक रूप से होना चाहिए। कोई गाँव, मुहल्ला ऐसा न रहे, जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था न हो। सेवाभावी संस्थाएँ यह कार्य बड़ी अच्छी तरह कर सकती हैं। महिला जागरण अभियान को तो इस प्रयास में पूरी तत्परता के साथ जुटना ही चाहिए। समय तो दो से पाँच यही तीन घण्टे का रह सकता है। काम-काजी महिलाओं के पास और कोई-समय बचता ही नहीं है। शिक्षित महिलाएँ अपना समय इस समय पढ़ाने के सेवा कार्य में दिया करें । अशिक्षित-नारियों के घरों पर जाकर उन्हें पढ़ने का महत्त्व समझाया जाय, रुचि जगाई जाय, संकोच छुड़ाया जाय और घर वालों को सहमत किया जाय कि वे उन्हें पढ़ने जाने देने में अड़चन उत्पन्न न करे। पाठशाला का स्थान अध्ययन के लिए सेवा-भावी महिलाओं का सहयोग-शिक्षण में प्रयुक्त होने वाले उपकरण, बिछावन आदि का प्रबन्ध करने के साथ ही घर-घर जाकर अशिक्षित या स्वल्प-शिक्षित महिलाओं को पढ़ने के लिए रजामन्द करना भी एक बड़ा काम है। इन सब प्रयोजनों में लगातार लगा रहा जाय, अनुत्साह एवं अन्य कठिनाइयों के कारण उत्पन्न होने वाली अड़चनों से आये दिन निपटते रहने का साहस सँजोये रहा जाय, तो कोई कारण नहीं कि नारी प्रौढ़-शिक्षा की गतिविधियाँ हर जगह न चल पड़ें। इसके लिए थोड़ी-सी अर्थ-व्यवस्था चाहिए। उसकी भी कमी न रहेगी। सेवा-सहयोग अब भी भारत की नस-नाड़ियों में मौजूद है। आवश्यकता उसे जगाने-उभारने भर की है। उसकी पूर्ति जागरण-अभियान को करनी है। साक्षरता समय की आवश्यकता है। उसकी पूर्ति हमें करनी ही चाहिए। जो शिक्षा प्राप्त करने योग्य हैं, उन्हें निरक्षरता का कलंक अपने सिर पर से धो ही डालना चाहिए। गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले में प्रौढ़ महिला पाठशालाएँ चलनी चाहिए।

स्वल्प-शिक्षित महिलाओं के, आगे के लिए भी इसी प्रकार के प्रयास होने चाहिए। निरक्षर-साक्षर बनें। साक्षर-आगे की पढ़ाई आरम्भ करें। जिनकी शिक्षा सन्तोषजनक है, वे दूसरों को पढ़ाने का सेवा-धर्म स्वीकार करें। जूनियर हाईस्कूल तक की पढ़ाई के लिए रिटायर अध्यापकों-अध्यापिकाओं की सेवाएँ आसानी से उपलब्ध हो सकती हैं। यदि पूर्ण अवैतनिक सेवा-भावी अध्यापक न मिलें तो जेब-खर्च जैसा उपहार देने की व्यवस्था भी जुटानी चाहिए। प्रभावशाली नर-नारियों को अपने प्रभाव, परामर्श का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि महिला शिक्षा-प्रसार का मार्ग प्रशस्त होता चला जाय। कठिनाइयों को हल करने के लिए ऐसे लोग थोड़ा भी उत्साह प्रदर्शित करने लगें, सहयोग का हाथ बढ़ाएँ, दिलचस्पी लें तो निराशाजनक स्थिति में आशा की किरणें उग सकती हैं।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि शिक्षा के साथ-साथ नारी की प्रस्तुत वर्तमान समस्याओं के समाधान प्राप्त कर सकने वाली जानकारियों का समावेश पूरी तरह रहे। परिवार एक छोटा राष्ट्र है । जिस प्रकार किसी देश की सुव्यवस्था बनाने के लिए उसके विभिन्न विभागों को सुदृढ़, सुव्यवस्थित और विकसित बनाना होता है, ठीक उसी प्रकार परिवार को स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, संस्कृति, अर्थ-व्यवस्था, विकृतियों का निराकरण, कला सुसज्जा, स्नेह, सहयोग, संगठन आदि से सम्बन्धित अनेकों विधाएँ जुड़ी रहती हैं। बच्चों का निर्माण, बड़ों का सन्तोष और बराबर वालों का सहयोग किस प्रकार संभव हो सकता है? इसके लिए नीति, शासन एवं मनोविज्ञान शास्त्र का समन्वय करने चाहिए। घर को गन्दी सराय न रहने देकर यदि हर्षोल्लास का केन्द्र बनाना है तो क्या करना और क्या सोचना होगा? दाम्पत्य-जीवन की मधुरिमा किस प्रकार बनी और बढ़ती रह सकती है, इसके कुछ विशेष सिद्धान्त हैं। छोटे-से घरौंदे को आनन्द-निकेतन बना देना उच्चस्तरीय कलाकारिता है। यह सारा ज्ञान इतना उपयोगी एवं आवश्यक है कि उसके सहारे किसी भी परिवार को, धरती को स्वर्ग रूप में परिणत किया जा सकता है। यही वह प्रशिक्षण है, जिसे नारी-जीवन का प्राण और परिवार-संस्था का हृदय कह सकते हैं।

स्कूलों में अनेक उपयोगी विषय पढ़ाये जाते हैं, जिनमें एक गृह-विज्ञान भी है। वे भी अपने स्थान पर उपयोगी हैं, पर इनमें उन तथ्यों का समावेश नहीं है, जिनके आधार पर परिवार रूपी एक छोटे राष्ट्र की समस्त समस्याओं का स्वरूप और समाधान सिखाया जा सके। ऐसी पुस्तकें बाजार में भी नहीं मिलतीं। जो मिलती हैं, उनके पीछे गम्भीर चिन्तन का सर्वथा अभाव है। ऐसे ही छापने-बेचने के लिए कुछ रच लिया जाय तो उससे नारी को सुविकसित बनाने वाली शिक्षा की आवश्यक पूर्ति कहाँ हुई?

महिला जाग्रति अभियान के अन्तर्गत इस प्रकार का लेखन आरम्भ हो गया है। उसका प्रकाशन भी अगले ही दिनों होने जा रहा है। प्रयत्न आगे भी जारी रहेगा और उससे शाखा संगठन अपने यहाँ एक अति महत्त्वपूर्ण पुस्तकालय की आवश्यकता पूरी कर सकेंगे।

प्रत्येक शाखा अपने नगर की शिक्षित महिलाओं की लिस्ट बनाकर उनके घर पर यह साहित्य पहुँचाने और वापिस मँगाने का एक सुनिश्चित कार्यक्रम चलायेगी। इसके लिए कोई वयोवृद्ध पुरुष भी कारगर हो सकते हैं। इस साहित्य का विक्रय केन्द्र भी शाखा में रहेगा, ताकि जिन्हें यह पुस्तक पसन्द आवें वे उन्हें ख़रीद भी सकें। कन्या-विद्यालयों की छात्राओं को इन्हें पढ़ाने के लिए उनकी अध्यापिकाओं अथवा जिम्मेदार लड़कियों की मारफत प्रबन्ध किया जा सकता है।

विचार यह भी है कि इन पुस्तकों के विधिवत् एवं गम्भीर अध्ययन को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से एक परीक्षा पद्धति आरम्भ की जाय। उत्तीर्ण होने पर सुन्दर-बड़े आकार का प्रमाण-पत्र दिया जाय। इसमें इन पुस्तकों के सहारे उपयोगी ज्ञान प्राप्त करने के लिए मार्ग-दर्शक कक्षाएँ भी चलाई जा सकती हैं, भले ही वे सप्ताह में एक दिन ही क्यों न काम करें।

नारी-उत्कर्ष और प्रेरणाप्रद मार्ग-दर्शन दोनों को एक ही वस्तु के दो पक्ष कहना चाहिए। महिला जागरण के लिए सर्वतोमुखी शिक्षण की तैयारी करने में हमें उत्साह पूर्वक संलग्न होना चाहिए।

नारी के पिछड़ेपन एवं शोषण का कारण मात्र सामाजिक प्रतिबन्ध ही नहीं, अर्थोपार्जन की क्षमता का अभाव भी है। इसी विवशता के कारण उसे दबाया जाता है और दबना पड़ता है। नैतिक दबाव ही पर्याप्त है, विवशता से लाभ उठाने का तथ्य अनुचित है। नारी को समर्थ बनाने के लिए उसके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले अनुचित दबाव को घटाया जाना चाहिए। शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए तथा आर्थिक स्वावलम्बन की परिस्थितियाँ उत्पन्न की जानी चाहिए। उससे उसका आत्मविश्वास उभरेगा, परिवार की सम्पन्नता बढ़ेगी और राष्ट्रीय समृद्धि में योगदान मिलेगा।

महिला जागरण अभियान को अपने क्षेत्र में बौद्धिक प्रशिक्षण, संगठन, वातावरण, निर्माण, शिक्षा-व्यवस्था के साथ ही नारी-स्वावलम्बन की दिशा में, रचनात्मक कार्य हाथ में लेने ही चाहिए। नारी पर प्रकृति ने प्रजनन भार लादा है, साथ ही बच्चों की, गृह-व्यवस्था की तथा चौकीदारी की जिम्मेदारी रहने के कारण उसे घर की सीमा में ही रहना पड़ता है। जिनके ऊपर यह भार न हो, वे ही बाहर जाकर नौकरी करने की स्थिति में होती हैं, अन्यथा घर-बाहर का दुहरा बोझ उनकी शारीरिक, मानसिक स्थिति को ही नष्ट नहीं करता, परिवार-व्यवस्था को भी लड़खड़ा देता है। अपवादों की बात दूसरी है। पर सामान्यतया नारी का कार्यक्षेत्र परिवार ही है और उसे उसी में रहते हुए अर्थोपार्जन के, स्वावलम्बन के स्रोत खोजने चाहिए। विदेशों में काम-काजी महिलाएँ बच्चों को शिशु-गृहों में छोड़कर काम पर जाती हैं और वापिस लौटने पर उन्हें साथ लेती आती हैं। सम्मिलित परिवार वहाँ बिखर चुके हैं। अपने देश में वे हैं तो; पर बच्चों को जिस-तिस पर छोड़ कर चले जाने से उनकी आदतें बिगड़ने का पूरा खतरा बना रहेगा। ऐसी दशा में उपयुक्त यही है कि व्यापक रूप से आर्थिक स्वावलम्बन की बात घर के दायरे में ही सोची जाय और उसकी गतिविधियों को एक आन्दोलन के रूप में संगठित किया जाय। घर-परिवार के लोगों से कहा जाय कि वे यदि सच्चे अर्थों में अपनी आश्रित महिलाओं के शुभ-चिन्तक हैं तो उन्हें स्वावलम्बन की सुविधा देने में सहयोग प्रदान करें।

उपार्जन को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-एक बचत, दूसरा कमाई। बचत का कार्य तुरन्त हाथ में लिया जा सकता है; थोड़े प्रयत्न और प्रशिक्षण से वह कार्यान्वित हो सकता है। उसमें नकदी सीधी हाथ में तो नहीं आती, पर परिणाम की दृष्टि से लाभ उतना ही हो जाता है। स्त्रियों को उपार्जन क्षमता से रहित माना जाता है, पर उनके द्वारा होने वाली बचत का मूल्यांकन किया जाय तो प्रतीत होगा कि उनके द्वारा परिवार की आर्थिक समृद्धि बढ़ने में बचत प्रक्रिया का कितना अधिक योगदान है? घर में स्त्री न हो, तो भोजन या तो बाजार में खाना पड़ेगा या पकाने के लिए नौकर रखना पड़ेगा। जितने लोगों का भोजन घर में बनता है, उतना बाजार से खरीदकर या नौकर से बनवाकर देखा जाय और फिर घर पर बनने में आने वाली लागत को तोला जाय तो पता चलेगा कि नारी के भोजन बनाने मात्र के श्रम से परिवार की कितनी आर्थिक बचत होती है? बर्तनों से लेकर कपड़ों तक को साफ करने के लिए उसके श्रम का मूल्यांकन तब ही हो सकता है, जब बर्तन साफ करने, सफाई करने, वस्तुओं को यथाक्रम रखते रहने के लिए नौकर रखा जाय और उसे नकद वेतन दिया जाय। घर में कपड़े न धोकर यदि रोज का गट्ठर धोबी के यहाँ भेजा जाय, तब पता लगेगा कि उसका बिल कितना बड़ा बनता है। चोर-उचक्कों की कमी नहीं। घर का ताला बन्द करके दुकान जाया जाय और वापिस आने पर उसे खोला जाय तो कुछ ही दिन मे चोर पता पा लेंगे और किसी दिन सब कुछ साफ कर देंगे।

यह तो सीधे शारीरिक श्रम की बात हुई। दाम्पत्य जीवन की मधुरिमा, पारस्परिक सौजन्य, विपत्ति में सहचर, पीढ़ियों का निर्माण, घर में स्वर्गीय सद्भावनाओं का अवतरण जैसे भावात्मक अनुदान भी तो नारी द्वारा ही बरसाये जाते हैं। इनको भी यदि खरीद-फरोख्त के रूप में तलाश किया जाय तो प्रतीत होगा कि नर की कमाई से नारी की कमाई भी किसी प्रकार कम नहीं है। नर नकदी कमा कर लाता है, इसलिए वह कमाऊ कहलाता है। बचत का महत्त्व ही नहीं समझा जाता, इसलिए नारी बिना कमाऊ समझी जाती है। यदि उपार्जन और बचत के परिणामों पर ध्यान दिया जा सके तो प्रतीत होगा कि दोनों का प्रतिफल समान स्तर का ही होता है।

अर्थ समृद्धि के लिए बचत कार्य में अधिक उत्साहवर्द्धक कदम तत्काल उठाये जा सकते हैं। ईंधन जलाने से लेकर-भोजन परोसने और बचे भोजन को फेंकना न पड़े, ऐसा उपयोग जानना भी एक बड़ा काम है। चूहों और कीड़ों से अन्न की बर्बादी, कपड़ों का जन्तुओं द्वारा नष्ट किया जाना यदि बच सके तो प्रतीत होगा कि इन मदों से होने वाला खर्च कितना घट गया। कपड़े धोने की कला में यदि थोड़ा और निखार हो सके तो पता चलेगा कि धोबी के यहाँ जाने पर कपड़े जितनी जल्दी फटते थे, उसमें कितनी कमी आ गई। पुराने बड़े कपड़ों में से काटकर नये छोटे बना लेना, फटे-टूटों की मरम्मत कर लेना, रफूगीरी, रँगाई तथा सिलाई की अच्छी जानकारी रहे तो भोजन के बाद खर्च की दूसरी सबसे बड़ी मद कपड़ों में काफी बचत हो सकती है। थोड़ी-सी टूट-फूट या खराबी होने पर वस्तुएँ बेकार समझ ली जाती हैं और फेंक दी जाती हैं। यदि टूट-फूट की मरम्मत करना आता हो तो इस मद में आश्चर्यजनक बचत हो सकती है। चारपाइयाँ थोड़ी-सी गड़बड़ी होने पर बेकार हो जाती हैं। उनका सुधार करने तथा बुनना आता हो तो वे दूने समय तक काम दे सकती हैं। बर्तन, फर्नीचर, स्टोव, लालटेन, जूते, चप्पल, पुस्तकें जैसी वस्तुएँ टूटती-फूटती और बेकार होती रहती हैं। यदि इनकी मरम्मत करना आता हो, तो इन वस्तुओं की जिन्दगी भी बहुत बढ़ सकती है और नई खरीदने में जो पैसा जाता है, वह बचाया जा सकता है। मकान की पुताई, किवाड़, खिड़कियों एवं फर्नीचर पर रंग, पालिस घर में हो हो सकती है। चूहों के छेद बन्द करने से लेकर, उखड़े फर्श और चूती हुई छतों को ठीक कर देना थोड़े से उत्साह और कौशल के सहारे ही सम्भव हो सकता है। इस प्रकार की बचत के अनेक मद महिलाओं को संगठित रूप में सिखाये जा सकें तो उन्हें अपने परिवार की समृद्धि में प्रत्यक्ष न सही, परोक्ष रूप में महत्त्वपूर्ण योगदान करते रहने का अवसर मिल सकता है।

यह तो बचत पक्ष की बात हुई। अब नकद कमाई वाले गृह-उद्योगों की बात आती है। इनमें सबसे सरल और सुगमता से चल सकने वाला उद्योग कपड़े का है। कातना, कपड़े बुनना, सिलाई करना, धुलाई, रँगाई की अनेक शाखा-प्रशाखाएँ हैं। जो कुछ सरलता से बन और खप सकता है, उसे स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सोचा जाना चाहिए।

गृह-उद्योग तो असंख्य हैं, पर देखना यह होगा कि उनके लिए सस्ते कच्चे माल की सुविधा है या नहीं और खपत के लिए मण्डी है या नहीं? मात्र उत्साह भर होने से अथवा कोई शिल्प सीख लेने तक से काम नहीं चलता। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हमें ऐसे उद्योग हाथ में लेने चाहिए, जिनके बड़े परिणाम में चल सकने की सम्भावना स्पष्ट हो। ऐसे प्रयोग कई जगह किये गये हैं। मारवाड़ी सोसाइटी ने शेखावाटी क्षेत्र के घरों में पापड़ बनवाने और कलकत्ता आदि के मारवाड़ी समाज में उसे खपाने का प्रबन्ध किया था। गीता प्रेस ने यज्ञोपवीत बनवाने का कार्य कुछ देहातों में कराया था। सौराष्ट्र के जामनगर, राजकोट में बिजली के स्विच बनने में काम आने वाले छोटे पुर्जे घर-घर में मशीनों से बनते हैं। मथुरा में कण्ठी, माला, जनेऊ आदि पूजा-पाठ की चीजें घरों में बनकर आती हैं। निवाड़, दरी बुनने का काम भी कितनी ही जगह गृह-उद्योगों की तरह ही होता है। ऐसे ही बड़े परिमाण में चल सकने वाले उद्योगों की खोज की जानी चाहिए और उन्हें अनुभवी लोगों के सहयोग परामर्श से आगे बढ़ाया जाना चाहिए।

थोड़े-से व्यक्तियों को काम दे सकने वाले उद्योग अनेक हैं। ऐसे धन्धे तो शान्ति-कुंज के कन्या विद्यालय में भी बहुत से सिखाये जाते हैं। ऐसे शिक्षण अन्यत्र भी उपलब्ध हो सकते हैं।

ध्यान रखने की बात इतनी ही है कि स्थानीय खपत के अनुरूप ही यह उद्योग सफल हो सकते हैं। अन्य मण्डियों में खपाना हो तो फिर ऐसे उद्योगों को बड़ी पूँजी से, कुशल जानकारी की देख-रेख में तथा बड़ी पूँजी से चलाना पड़ेगा। व्यक्तिगत प्रयास और कम पूँजी से तो यह छोटे रूप में ही चल सकते और प्रतिस्पर्द्धा खड़ी न होने तक ही वे जीवित रह सकते हैं। सीखने को-उत्पादन की कुशलता, मानसिक दक्षता बढ़ाने के लिए इस प्रकार का प्रशिक्षण कहीं भी आरम्भ किया जा सकता है। यह सोचते हुए शिक्षा विस्तार के साथ-साथ गृह-उद्योगों की कक्षाएँ भी चलनी चाहिए। प्रशिक्षण की दृष्टि से महिला जागरण अभियान के विद्यालयों में गृह-उद्योगों की संगीत की सुगम कक्षाएँ चलती रहनी चाहिए, किन्तु यदि आर्थिक प्रगति और स्वावलम्बन के प्रश्न को बड़े पैमाने पर हल करना हो तो ऐसे उद्योगों की खोज करनी पड़ेगी, जिनमें अधिक लोगों का श्रम नियोजित हो सके और उत्पादन आसानी से खप सके। ऐसे उद्योग संगठित प्रयत्नों और बड़ी पूँजी से ही हो सकते हैं। अस्तु, जब भी ऐसे आधार खड़े करने हों तो उसके लिए पूर्व सर्वेक्षण करने तथा अनुभवी लोगों की सहायता से किसी निष्कर्ष पर पहुँचने की आवश्यकता रहेगी। सरकारी उद्योग विभाग के अधिकारियों से भी

सम्बन्ध में उपयोगी परामर्श एवं सहयोग मिल सकता है। इसी प्रकार कोई अर्थ-संगठन खड़ा करना हो तो को-आपरेटिव सोसाइटी अधिकारियों से सम्पर्क किया जा सकता है।

बात उद्योग की चल पड़ी तो इसी से मिलते-जुलते उपयोगी वस्तु भंडार चलाने की आवश्यकता को भी ध्यान में रखा जा सकता है। घरेलू उपयोग की वस्तुएँ शुद्ध और उचित मूल्य पर मिलें, इसके लिए सहकारी स्टोर बहुत कारगर सिद्ध होते हैं। व्यक्तिगत लाभ के लिए अन्धे लोग खाने-पीने तक की वस्तुओं में विषैली मिलावटें करते हैं। तोल-नाप में गड़बड़ी करते हैं। किसी के बदले कुछ सड़ा-गला और नकली माल भेजते हैं। मुनाफे में भी उचित अनुपात नहीं रखते। यों इन गड़बड़ियों को अपराध संज्ञा में गिना गया है और इनके विरुद्ध कानूनी रोकथाम भी मौजूद है। फिर भी व्यक्तिगत स्वार्थपरता अपनी चालें चलती ही रहती हैं और कोई न कोई रास्ता निकाल ही लेती हैं। इसकी रोकथाम का अच्छा तरीका यह है कि 'सहकारी स्टोरों' का प्रचलन किया जाय। हाथ का पिसा आटा, घरों में पिसे हुए मसाले, साफ की हुई दूसरी वस्तुएँ इन दुकानों पर मिलें और वह कार्य करने के लिए घरों पर बेकार महिलाओं को काम मिले तो कितना अच्छा है। पापड़, दाल की बड़ियाँ, दालें, मसाले तथा दूसरी जरूरत की वस्तुएँ अपने ही सदस्यों से तैयार कराने की नीति अपनाकर यह स्टोर अनेकों महिलाओं को छोटे-बड़े पूरे अधूरे समय को काम दे सकते हैं। शाक-भाजी से लेकर अन्य दैनिक आवश्यकता की चीजें इच्छित आर्डर अनुसार घरों पर सही रूप से पहुँच जाया करें तो बाजार जाने में दुकान-दुकान पर भटकने में जो समय और किराया-भाड़ा खर्च होता है, वह सहज ही बच सकता है।

यहाँ कुछ संकेत मात्र प्रस्तुत किये गये हैं, जिनके आधार पर नारी को आर्थिक स्वावलम्बन की दिशा में अग्रसर किया जा सकता है। स्त्री-धन के रूप में हर घर में बचत परम्परा डाली जानी चाहिए। विवाह के समय मिलने वाला पितृ पक्ष तथा सुसराल का उपहार- धन नव-वधू की भविष्य-निधि होनी चाहिए और उसे लम्बी अवधि पत्रों के रूप में जमा करते रहना चाहिए, ताकि उसकी ब्याज आमदनी के रूप में बढ़ती रहे। कठिन अवसरों पर नारी अपने आपको असहाय अनुभव न करे, इसलिए स्त्री धन के रूप में उसके हाथ में कुछ रह सके, इसके लिए भी वातावरण तैयार करने की आवश्यकता है।

स्वयं को स्वावलम्बी अनुभव करने पर नारी में वह आत्म-विश्वास सहज ही पैदा होने लगेगा, जिसके आधार पर वह समाज-निर्माण की महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं में खुलकर हाथ बँटा सके। समाज-निर्माण में मात्र पुरुष ही भाग लें और नारी को अछूत बनाकर घर में पिजड़े में ही कैद रखा जाय, अह अनुचित है । इसमें नारी वर्ग की और समाज की तो हानि है ही, प्रतिबन्ध लगाने वाला पुरुष वर्ग भी उस हानि से बच नहीं सकता। परिवार संचालन का उत्तरदायित्व सँभालते हुए भी नारी समाज निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। पुरुष भी तो मुख्यतया उपार्जन कृत्यों में संलग्न रहता है। इतने पर भी समाज के प्रति वह बहुत कुछ करता रहता है। नारी के लिए यह और भी सरल है कि परिवार का सुसंचालन करते हुए समाज-निर्माण में योगदान दे और इस आधार पर अपने ज्ञान, अनुभव, उत्साह एवं व्यक्तित्व का अनवरत विकास करती चले। परिवारों को, अपने घरों की महिलाओं को समाज-सेवा क्षेत्र में भी कुछ काम करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। बाहर के सम्पर्क में आने से नारी पारिवारिक कर्त्तव्यों की उपेक्षा करेगी, चरित्रभ्रष्ट हो जाएगी जैसी कुकल्पनाएँ करना निरर्थक है। ऐसी सम्भावनाएँ तो प्रतिबन्धित स्थिति में ही अधिक रहती हैं। अज्ञान, अनुत्तरदायित्व और खीज-उद्वेग में जकड़ा हुआ मनुष्य ही उपद्रवी बनता और मर्यादाएँ तोड़ता है। प्रतिष्ठा और जिम्मेदारी अनुभव करने वाले भले समाज सेवी अपना निजी और पारिवारिक स्तर ऊँचा उठाये रहने में ही भलाई सोचते हैं, उनसे अपेक्षाकृत खतरे कम ही रहते हैं। ऐसी आशंकाओं और कुकल्पनाओं से बचना ही श्रेयस्कर है।

इसका आरम्भ महिला जागरण शाखाओं के कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहन देने से करना चाहिए। इस संगठन में नारी ही काम करती है, इसलिए कुकल्पनाओं की कोई गुंजायश भी नहीं है । इससे आगे अन्य सामाजिक संस्थाओं का क्षेत्र आता है। पुस्तकालय, पाठशालाएँ, समाज-सुधार एवं रचनात्मक कार्यों में संलग्न स्थानीय संस्थाएँ प्रायः सभी जगह होती हैं। जहाँ वैसा कुछ हो, वहाँ उनमें सम्मिलित होने के लिए भी अवसर देना चाहिए। नारी-शिक्षा के लिए काम करने वाली पुरानी संस्थाओ में नवजीवन भरने एवं नई संस्था स्थापित करने का काम हाथ में लेकर भी उत्साही महिलाएँ कुछ कर सकती हैं।

सरकारी, अर्द्ध-सरकारी संस्थाएँ भी हर जगह होती हैं। ग्राम-पंचायत, टाउन-एरिया, सहकारी समिति जैसे अन्य सरकारी छोटे-बड़े संगठन प्रायः सभी जगह पाये जाते हैं। उनमें महिलाएँ भाग लेने लगें तो निष्पक्षता, शालीनता एवं प्रगतिशीलता का नया वातावरण बनेगा। इस भागीदारी से नारी समाज में एक हवा बहेगी और वे अनुभव करेंगी कि उनका दायरा परिवार तक ही सीमित नहीं है, वे आगे बढ़कर समाज-निर्माण मे भी बहुत काम कर सकती हैं।

अस्तु, नारी को शिक्षित एवं स्वावलम्बी बनाकर उसे समाज की एक पुष्ट इकाई के रूप में विकसित करने के लिए उपर्युक्त अथवा उनसे मिलते-जुलते रचनात्मक चरण बढ़ाने का प्रयास हर जगह अविलम्ब किया जाना चाहिए।

सम्मिलित प्रगति-प्रयास

परिवार और समाज के विकास के लिए नर-नारी का संयुक्त प्रयास अनिवार्य होगा। अविकसित नारी छोटे-छोटे कामों में ही इतना उलझकर रह जाती है कि कुछ विशेष न सोच पाती और न कर पाती है। परिवार को सुसंस्कृत, सद्गुणी और सुविकसित बनाने की योजना एवं रूपरेखा उसके मस्तिष्क में नहीं रहती, फिर वह ऐसा कुछ कर पाये, वैसी आशा कैसे की जाय ? सन्तानों के शरीर, मन प्राय: माता के ही शरीर का एक भाग होते हैं। यदि जननी स्वयं अविकसित है, पिछड़ेपन के साथ जुड़े रहने वाले दुर्गुणों से ग्रसित है तो फिर यह कैसे आशा की जाय कि वह अपने प्रयास-पुरुषार्थ के सहारे नई पीढ़ियों को ऐसी बना सकेंगी? जो सुसंस्कृत नागरिक की भूमिका सम्पन्न कर सके और समाज को सुविकसित बनाने में कोई कारगर योगदान दे सकें। परिवारों का समूह ही समाज है। परिवार की मेरुदण्ड नारी होती है। यदि नारी का स्तर समुन्नत न रह सका तो फिर परिवारों में धरती के स्वर्ग के दर्शन कहाँ हो सकेंगे और पिछड़े परिवारों का समुदाय समर्थ, सुविकसित राष्ट्र के रूप में कैसे परिणत हो सकेंगे? तथ्य पर विचार करने से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है कि राष्ट्र-निर्माण का शुभारम्भ परिवारों की व्यवस्था के आधार पर होना चाहिए और सुनियोजित परिवारों की तारतम्य नारी को सुयोग्य, सुशिक्षित, समुन्नत बनाने से होना चाहिए। ऐसा न बन पड़ने पर यही समझा जाएगा कि जड़ सींचने की अपेक्षा पत्ते सींचकर पेड़ को हरा-भरा बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

विकसित देश अपनी समूची जनसंख्या को सुयोग्य नागरिक बनाने में जो परिपूर्ण प्रयास करते हैं, उसमें पिछड़े वर्गों को समान स्थिति में लाने की प्रधानता देते हैं। इस सन्दर्भ में नारी समस्या को प्राथमिकता देने की बात सामने आती है । उसी को प्रमुखता देने पर यह स्थिति उत्पन्न हुई है। विभिन्न क्षेत्रों का राष्ट्रीय विकास सर्वांगपूर्ण बन सका है। इस हेतु प्रधान रूप से जो कार्य किया है, नारी के अवमूल्यन का समापन। इसका अर्थ है नर की तरह नारी को भी कर्तव्यों और अधिकारों के निर्वाह में सुयोग्य स्तर तक पहुँचाया जाय- असमानता के व्यवधान को समाप्त करना । शिक्षा, स्वावलम्बन, कौशल और स्तर की दृष्टि से अन्य नागरिकों के समान सुविधा प्रदान करना। नर और नारी में से इस प्रकार से प्रगति में किसी को भी पीछे नहीं रहने दिया गया है।

जापान, इजराइल, जर्मनी, रूस, चीन, कनाड़ा जैसे देशों की महिलाएँ पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करती हैं। कृषि प्रधान देशों की समुन्नत महिलाएँ घर-परिवार संभालने की तरह कृषि, पशु-पालन, बागवानी जैसे उन उद्योगों को सम्भालती हैं जो घर की साज-सँभाल के साथ उत्पादन भी बढ़ातीं और स्वावलम्बन का पथ प्रशस्त करती हैं। घर के पुरुष अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों में लगते हैं और घर-परिवार की ओर से निश्चिन्त रहते हैं, घर में सम्पन्नता भी बढ़ती रहती है।

अनेक विकसित देशों की शिक्षित महिलाओं ने अपने देश का चिकित्सा, शिक्षा एवं कला क्षेत्र अपने कन्धों पर सँभाल लिया है। जापानी महिलाएँ परिवार में ही ऐसे कुटीर उद्योगों को चलाती रहती हैं जिसमें परिवार की सम्पन्नता और अर्थ-व्यवस्था सुनियोजित होती रहे। अन्यान्य देशों के सम्बन्ध में भी यही बात है। वहाँ की स्थानीय परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप महिलाएँ भी ठीक वैसी ही जिम्मेदारियाँ उठाती हैं, जैसी कि पुरुष । दोनों पंखों से पंछी उड़ते हैं। नर और नारी के समान सहयोग एवं कौशल के सहारे ही सर्वतोमुखी प्रगति का वातावरण बनता है।

जिन देशों पर अभी भी पिछड़ापन सवार है, वहाँ अन्यान्य कारण भी रहे हो सकते हैं, पर सबसे बड़ा कारण उन सभी में एक जैसा पाया जाएगा वह है- नारी का पिछड़ापन। यह अवरोध जहाँ भी अड़ा है वहाँ उस क्षेत्र के सभी प्रगति द्वार बन्द होकर रह गये हैं। स्पष्ट है कि जहाँ भी आधी जनसंख्या पिछड़ी स्थिति में रहेगी, वहाँ उसका भार दूसरे पक्ष को वहन करना पड़ेगा और दोनों की शक्ति एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते रहने में ही समाप्त हो जाएगी। वे मिल-जुलकर कुछ ऐसा कर सकने की स्थिति में न रहेंगे जिसे महत्त्वपूर्ण कहा जा सके।

नर के सुसंस्कृत होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उसने अपने प्रभाव क्षेत्र की महिलाओं का व्यक्तित्व कितना सुविकसित एवं परिष्कृत किया है। घनिष्टता के साथ भावनात्मक एवं बौद्धिक आदान-प्रदान का उपक्रम भी चलाया है। उत्कृष्टता भी निकृष्टता की भाँति अपने क्षेत्र को प्रभावित करती है। यह हो ही नहीं सकता कि कोई व्यक्ति नारी समुदाय से सर्वथा पृथक् रहे। अविवाहित या विधुर रहने पर भी माता, भगिनी, पुत्री के रूप में, साथी सहयोगी के रूप में उसका कहीं न कहीं, किसी न किसी महिला के साथ सम्पर्क होता ही है। इस आधार पर सुसंस्कृत पुरुष वरिष्ठ होने के नाते जहाँ तक उसका प्रभाव परिचय हो नारी को हर दृष्टि से ऊँचा उठाने का प्रयत्न करेगा। जहाँ इस दिशा में कुछ भी न किया गया हो समझना चाहिए वहाँ पशुता का साम्राज्य है। वहाँ पिछड़ापन व्याप्त होगा और प्रगति की वहाँ आशा नहीं की जा सकती।

पुरुष की सद्भावना का एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण परिचय यह है कि अन्य क्षेत्रों में भी नारी को समुन्नत बनाने का प्रयत्न करें। यह उच्च कोटि का परमार्थ भी है और सद्भाव भरा प्रायश्चित भी । परमार्थ यों कि उसने सृजन शक्ति को समर्थ बनाकर प्रकारान्तर से सारे समाज का सिंचन, पोषण, अभिवर्द्धन किया। प्रायश्चित इसलि कि नर की अहंमन्यता और संकीर्णता के कारण नारी व वर्तमान दुर्गति तक पहुँचाने के पाप का उसने आगे बढ़

परिमार्जन किया। क्षतिपूर्ति ही प्रायश्चित्त का तत्व-दर्शन है। पूर्ववर्ती पुरुषों की उपेक्षा, अवमानना ने नारी को गिराया है, उसे उठाने वाला प्रायश्चित्त द्वारा अपनी सद्भावना का प्रमाण परिचय देता है। यह व्यक्तिगत महानता भी है और समूची मानवता को समुन्नत बनाने वाला महानतम परमार्थ भी । इसमें देश-भक्ति, विश्व-भक्ति का सघन समावेश है।

पुरुषों से पुरुष सम्पर्क साधे और महिला महिलाओं से, व्यक्तिगत वार्तालाप, परामर्श, विचार-विनिमय इसी प्रकार सम्भव है । सामूहिक रूप से विचार-गोष्ठियों और सभा-सम्मेलनों में दोनों को ही मार्ग-दर्शन दिया जा सकता है, परस्पर उत्साहवर्द्धन भी कर सकते हैं, किन्तु जहाँ रचनात्मक प्रयासों में दोनों को अपनी-अपनी भूमिका निभानी है, वहाँ अपने-अपने ढंग से समझना और समझाना पड़ता है। आगे बढ़ने में प्रधान रूप से नारी का उत्साह और साहस ही काम कर सकता है। इसलिए महिला वर्ग के साथ सम्पर्क साधने में भी उन्हें आगे आना चाहिए।

यह काम पुरुषों का है कि अपने परिवार के प्रभाव क्षेत्र की महिलाओं को उसके लिए उत्साहित एवं प्रोत्साहित करें। उन्हें आगे रखें, स्वयं पीछे रहकर इस निमित्त वातावरण बनायें। जन-सम्पर्क का अधिक अनुभव होने से पुरुष ही इस क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए अपने प्रभाव क्षेत्र की महिलाओं को अधिक प्रोत्साहित कर सकते हैं। पति-पत्नी दोनों मिलकर भी इस काम को आसानी से कर सकते हैं। दोनों ही वर्गों को उत्साहित और सहमत करके अनेक उतार-चढ़ावों से भी निपट सकते हैं। घर की बड़ी-बूढ़ी महिलाएँ और पुराने विचार के पुरुष प्राय: इस प्रयास में बाधक बनते देखे गये हैं। उन्हें जो कुछ चल रहा है उसी को चलने देने में परम्पराओं का निर्वाह लगता है। इसके अतिरिक्त और कुछ सुधारवादी चिन्तन उनके गले नहीं उतरता। इसलिए वे आमतौर से इन प्रयत्नों को निरुत्साहित करते रहते हैं। बन पड़े तो बाधक बनते हैं। इसलिए सम्भव हो तो समझा-बुझाकर उन्हें किसी प्रकार नरम करना चाहिए। न मानें तो भी अपने बलबूते अपने प्रयास तो जारी रखने ही चाहिए। यह कार्य अवरोधों की उपेक्षा करते हुए भी जारी रखा जा सकता है। परिवर्तन की गति धीमी रखी जा सकती है और कलह-क्लेश होने की स्थिति से बचा जा सकता है।

अपने देश में नर और नारी का समीप आना, सम्पर्क बनाना सन्देह की दृष्टि से देखा जा सकता है। इस मानसिकता को बदलने में अभी समय लगेगा। इसलिए यदि पुनरुत्थान में सरलता और तीव्रता रखनी हो तो उचित यही होगा कि आन्दोलन में अग्रणी महिलाएँ ही रहें। प्रगति प्रयासों को गति देने में उन्हीं की भूमिका प्रधान रहे। श्रेय उन्हीं को मिले, नेतृत्व करने का अवसर उन्हीं को दिया जाय, किन्तु यह काम अकेली अपने बलबूते सम्भवत: वे नहीं कर सकेंगी। इसलिए आवश्यक यही है कि प्रगतिशील पुरुष इस प्रयास की समूची पृष्ठभूमि बनाने के लिए आवश्यक उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर उठाते रहें, हर दृष्टि से पथ प्रशस्त करते रहें और आन्दोलन का संचालन प्रगतिशील महिला वर्ग को करने दें।

इसके लिए उपयुक्त यह रहेगा कि पाँच-पाँच महिलाओं की 'नारी जागरण मण्डली' गठित कर दी जाय। बड़े संगठन इसलिए कारगर नहीं होते कि उनमें वर्चस् की महत्त्वाकांक्षा के लिए खींचातानी आरम्भ हो जाती है और विग्रह खड़े हो जाते हैं। अपने देश में पिछड़े समुदायों में जब कभी सामाजिक संगठन खड़े करना हो तो उन्हें पाँच-पाँच के घटकों में बाँटना चाहिए। इस प्रकार एक से पाँच और पाँच से पच्चीस होने की परम्परा चल पड़ेगी। जब कभी बड़े प्रयास करने हों तो इन छोटे घटकों को एकत्रित कर बड़ा संगठन बनाया जा सकता है। समिति सदस्यों वाले परिवार ही ठीक तरह चल पाते हैं। नारी संगठनों को यदि सशक्त और क्रियाशील बनाना है तो उन्हें पाँच से पच्चीस बनाने का ही लक्ष्य रखना उपयुक्त होगा। पुरुष इस संदर्भ में आवश्यक वातावरण बनाने, कार्य करने और साधन जुटाने की तिहरी भूमिका सम्पन्न करें। इसी मिले-जुले सहयोग से प्रयास अग्रणी हो सकेंगे।

क्रिया-कौशल का व्यावहारिक शिक्षण

बौद्धिक शिक्षण के अतिरिक्त महिलाओं को ऐसा व्यावहारिक क्रियात्मक शिक्षण मिलना चाहिए, जिसके आधार पर वे व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं प्रतिभावान् बना सकें- प्रगति पथ पर अग्रसर हो सकें।

इस संदर्भ में अधिक उपार्जन की क्षमता विकसित करने की प्रक्रिया को प्राथमिकता मिलनी चाहिए, जिससे हर नारी में स्वावलम्बन की क्षमता का विकास हो सके- इससे आत्म-विश्वास बढ़ता है। अतिरिक्त उपार्जन होने लगने से घर की समृद्धि बढ़ती है। आड़े समय में अपने पैरों पर खड़े हो सकने की क्षमता विकसित होती है। रचनात्मक काम करने का अभ्यास होता है और कुशलता में निरन्तर अभिवृद्धि होती है। यह सभी उपलब्धियाँ ऐसी हैं जिन पर गर्व किया और प्रसन्न रहा जा सकता है।

नारी को आर्थिक दृष्टि से अनुत्पादक माना जाता है, इसलिए भी उसकी उपेक्षा होती है। यों वह दिनभर गृह-कार्यों में संलग्न रहकर इतनी बचत करती है कि उसे कमाई से कम नहीं आँका जा सकता है। नरी श्रम से जो कार्य सम्पन्न होते हैं यदि उन्हें मजूरी पर कराया जाय- बाजार से खरीदा जाय तो प्रतीत होगा कि बचत के रूप में वह कितना अधिक उत्पादन करती है, फिर भी उसकी ओर ध्यान न देकर उसे अनुत्पादक माना और उपेक्षित रखा जाता है। समय आ गया है कि अब महिलाओं को उद्योगों के माध्यम से कुछ ऐसी अतिरिक्त कमाई भी

आरम्भ करनी चाहिए, जिनके आधार पर उन्हें कमाऊ होने का श्रेय भी मिल सके।

यदि गृह-कार्यों को परिवार के सभी लोग मिल-जुलकर निपटाएँ, नियत समय पर ही सब काम निपटा लेने का क्रम चलायें तो निश्चय ही हर महिला को इतना अवकाश मिल सकता है, जिसमें वह बौद्धिक शिक्षण की आवश्यकताएँ पूरी करने के अतिरिक्त कुटीर उद्योगों के लिए भी कुछ समय निकाल सके। आमतौर से मध्यान्ह का समय ऐसे बचता है जिसमें प्रगतिशीलता की दिशा में बढ़ाने वाले इन दोनों ही अतिरिक्त कार्यों को सम्पन्न करते रहा जा सकता है। पुरुषों के लिए रात्रि में और महिलाओं के लिए तीसरे प्रहर दिन में जो अवकाश रहता है उसमें उपर्युक्त दोनों कार्यों के लिए प्रयुक्त करते हुए लाभान्वित रहा जा सकता है।

स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप ऐसे अनेक कार्य हो सकते हैं जिन्हें अपनी योग्यता के अनुरूप अपनाया जा सके। घरेलू शाक-वाटिका, मधुमक्खी पालन, साबुन बनाना, सिलाई, कताई, धुनाई, अगरबत्ती बनाने जैसे अनेकों ऐसे काम किये जा सकते हैं जिनके लिए कच्चा माल आसानी से मिल जाता है और बनी चीजें इर्द-गिर्द ही खप जाती हैं। खादी ग्रामोद्योग जैसी संस्थाओं के माध्यम से इस दिशा में सहयोग लिया जा सकता है । जहाँ-तहाँ सहकारी समितियाँ अपने क्षेत्र में कुटीर उद्योगों के लिए प्रयत्न करती और साधन जुटाती हैं- इनसे सम्पर्क साधकर कोई आधार चुना जा सकता है। शांतिकुंज में भी ऐसे सर्वसुलभ प्राय: एक दर्जन उद्योगों के सिखाने की व्यवस्था है।

समूचे परिवार की स्वास्थ्य संरक्षिका नारी है। आहार और विहार का सुनियोजन करके वह सभी स्वजनों को स्वस्थ रख सकती है। आहार को स्वाद प्रधान बना देने से उसकी उपयोगिता में भारी व्यवधान पड़ता है। इसलिए प्रस्तुत पाक विद्या का एक प्रकार से कायाकल्प ही करना पड़ेगा। भाप से बने, बिना तले भुने, कम मसाले वाले, अंकुरित एवं हरित सन्तुलित स्थिति के खाद्य पदार्थों को अभ्यास में उतारना होगा, इसे आहार क्रान्ति कह सकते हैं। इसकी समूची रूपरेखा मस्तिष्क में रखकर अभ्यस्तों का नशा उतारने की समयसाध्य योजना अपनानी पडेगी । श्रम का असन्तुलन दूर करना होगा। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक को उनके अनुरूप श्रम साधना में लगना होगा ताकि अंग संचालन की प्रक्रिया ठीक चलती रहे। स्वास्थ्य को प्रमुखता देने वाली दिनचर्या को प्रकृति अनुशासन के साथ जोड़ देने पर बीमारियों, दवाओं और चिकित्सा से सहज छुटकारा पाया जा सकता है। घरेलू चिकित्सा कितनी निर्दोष और कितनी लाभदायक है, इसका अभ्यास यदि महिलाएँ कर लें तो बिना फीस वाले सुयोग्य डाक्टर का स्थान ग्रहण कर सकती हैं।

परिवार का आर्थिक पक्ष और भावना पक्ष भी कम महत्त्व का नहीं है। अधिक उपार्जन और अधिक मितव्ययता के आधार पर कोई भी खुशहाली सँजोये रह सकता है। फैशन, ठाट-बाट, शृंगार प्रदर्शन, दुर्व्यसन जैसे, फिजूलखर्ची वाले कार्य जब स्वभाव का अंग बन जाते हैं तो मनुष्य को दरिद्र और बेईमान बनाकर छोड़ते हैं। इसलिए गृह-लक्ष्मी होने के नाते उसे परिवार का बजट सन्तुलन रखने से लेकर आजीविका के स्रोतों तक अपनी पहुँच बनानी होगी। नशेबाजी जैसे दुर्व्यसनों से पूरी तरह छुट्टी दिलानी पड़ेगी। निर्धारित कार्य के अतिरिक्त बचे समय में समाज सेवा या अर्थोपार्जन में से किसी एक में या दोनों में अभिरुचि उत्पन्न करनी होगी- यह परिवार को समृद्ध बनाने वाला अर्थपक्ष है।

भावना पक्ष की अपनी विशेषता है। वह अनेक विग्रहों का सहज समाधान करती है। घर में अनेक प्रकृति के, अनेकों रुचि के, अनेकों दृष्टिकोण वाले एक साथ रहते हैं। उनके स्वभाव और स्वार्थ आपस में टकराते रहते हैं। इन विभिन्नताओं को एक सूत्र में बाँधे रहना प्रकारान्तर से राष्ट्रीय एकता और अखण्डता बनाये रहने का छोटा उपक्रम है । बच्चे, युवकों, बूढ़ों, लड़कियों, सम्बन्धियों को अपनी परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाने के लिए सहमत कर लेना एक मनोवैज्ञानिक कार्य है। इतने पर भी उसे हर कुशल महिला को अध्ययन या अनुभव के आधार पर जानना ही होगा। इस कुशलता के अभाव में परिवार विघटन के ऐसे संकट खड़े होते हैं जिनके कारण पारिवारिक शान्ति और प्रगति दोनों का अन्त हो जाता है। घृणा और द्वेष से, पीड़ा और पश्चाताप की आग से सभी को झुलसना पड़ता है। ऐसा न होने देने में गृह-लक्ष्मी की उदारता और दूरदर्शिता ही बहुत कुछ कर सकने में समर्थ हो सकती है। विवेकशील महिलाएँ अपनी उदार बुद्धिमता के आधार पर परिवार सेवा की इस उच्चतम आवश्यकता की पूर्ति किसी प्रकार कर लेती हैं। स्रष्टा ने इसके लिए उन्हें विशिष्ट भाव संवेदना से सम्पन्न किया, इसे और भी अधिक खरादा-निखारा जा सकता है।

घर-परिवार की स्वच्छ सज्जा सुव्यवस्था अपने आप में बड़ी चीज है, उसे एक छोटे राष्ट्र का सूत्र-संचालन कह सकते हैं। इसके अभाव में घर नरक बन जाते हैं। वस्तुएँ कचरा बनकर अपनी दुर्दशा पर रोना रोती रहती हैं । टूट-फूट यदि समय रहते न सँभाली जाय तो वह अच्छी-भली वस्तु को कुछ ही दिनों में कूड़े में बदल देती हैं। घर के मनुष्यों की तरह ही काम आने वाला हर पदार्थ बर्तन-उपकरण अपनी-अपनी उचित देखभाल और सुव्यवस्था चाहता है। कहावत है कि जो रूठे को मनाना और टूटे को बनाना जानता है वह लोकव्यवहार के क्षेत्र में बहुत कुछ जानता है। यह कौशल भी प्रत्येक महिला प्रतिभा के स्वभाव अभ्यास में आना चाहिए। मरम्मत और सफाई का हर पक्ष भी इसी प्रकार माना जाना चाहिए- जैसे भोजन बनाने, बच्चे पालने जैसे कार्यों को अनिवार्य रूप से जानना और करना पड़ता है।

परिवार की संरचना और सुव्यवस्था अपने आप मे एक समूचा विज्ञान है। उसे कब कहाँ किस रूप में प्रयुक्

किया जाय? यह हर गृहिणी की दिनचर्या का एक पक्ष है। जिससे उसे अवगत-अभ्यस्त होना ही चाहिए। अपने घर में इन सत्प्रवृत्तियों के बीजारोपण का अर्थ है, भविष्य में शाखा-प्रशाखाओं की तरह नये परिवारों की जो नई पीढ़ियाँ बनने वाली हैं उनके लिए उपयोगी परम्परा छोड़ जाना। पड़ोसी-सम्बन्धी किसी न किसी रूप में सम्पर्क में आते ही रहते हैं। यदि किसी सुगृहिणी ने अपने परिवार को सुनियोजित कर लिया है तो समझना चाहिए कि समूचे सम्पर्क क्षेत्र में इस विज्ञान की सही दिशाधारा का विस्तार करने की योजना क्रियान्वित करने की अति महत्त्वपूर्ण सेवा-साधना आरम्भ कर दी। संगीत-कहानी सुनाना, चित्रकल, खिलौना बनाना, स्वनिर्मित सज्जा उपकरण, टूटी वस्तुओं की मरम्मत जैसे अनेकों काम ऐसे हैं जिससे अपनी सुरुचि का प्रकटीकरण हो सकता है। साथ ही उस कौशल को सम्पर्क में आने वाले दूसरों को भी अभ्यास कराया जा सकता है।

कहा तो यह जाता है कि माता अपने बच्चे की न केवल शरीर की, वरन् उनके स्वभाव और भविष्य की भी निर्माता है। यदि इसी बात को और भी स्पष्ट किया जाय तो यों भी कहा जा सकता है कि वह परिवार की अधिष्ठात्री, घर की निमात्री है। इस छोटी भूमिका के सम्पादित करने के साथ-साथ परोक्ष रूप में सम्भावना भी विद्यमान है कि वह अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व से समूचे समाज की, सुविस्तृत विश्वमानव की सेवा, अपने आदर्श और उदाहरण के सहारे सम्पन्न कर सकती है।

महिला संगठन

जहाँ भी महिला जागरण का सन्देश पहुँचे, जहाँ भी उसकी उपयोगिता समझी जाय, वहाँ इस अभियान को बढ़ाने के लिए पहला कदम स्थानीय महिला संगठन बना देने के रूप में उठाया जाय। नारी समस्या, किसी व्यक्ति विशेष की कठिनाई नहीं है जिसे एकाकी प्रयत्न से हल किया जा सके।

नारी उत्कर्ष यों एक वर्ग विशेष की कुछ कठिनाइयाँ दूर करने वाला विरोधात्मक आन्दोलन दिखता है पर वस्तुतः वह है नहीं। फसल बोने के लिए खेत जोतना पड़ता है और भवन बनाने के लिए नींव खोदनी पड़ती है। जुताई और खुदाई का कार्य तोड़-फोड़ जैसा लगता है,पर वस्तुतः उसे उत्पादन का-निर्माण का अविच्छिन्न अंग ही कहना चाहिए । वस्तुतः अपना अभियान विशुद्ध रूप से सृजनात्मक है। घृणा और द्वेष को, विरोध और विद्रोह को भड़काने में हमें कोई रुचि नहीं है। ये विष बीज किसी भी क्षेत्र में बोये जाएँ, आगे चलकर सर्वनाशी प्रतिफल ही उत्पन्न करते हैं। इस लक्ष्य और सत्य का हमे पूरा-पूरा अनुभव है। अस्तु, सुधार प्रक्रिया को स्नेहसिक्त बनाये रहने का विलक्षण प्रयोग भी अपनी.गतिविधियों का अंग बनकर चलेगा।

इतना विस्तृत और इतना महत्त्वपूर्ण अभियान एकाकी प्रयत्नों से नहीं चल सकता। व्यापक प्रयोजन सदा जन-सहयोग से ही सम्भव होते हैं, उनके लिए जन-शक्ति जुटानी पड़ती है, जन-मानस का परिवर्तन, परिष्कार जिन गतिविधियों को अपनाने से सम्भव हो सकता है, वे जिन-सहयोग के बिना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हो सकतीं। नारी उत्कर्ष के सुदृढ़ आधार तभी बनेंगे, जब उनकी सुविस्तृत पृष्ठभूमि बने और उसे जन-समर्थन प्राप्त हो। इसके लिए संगठित प्रयत्न ही सफल हो सकते हैं। अस्तु जहाँ भी अपने मिशन को प्रकाश किरण पहुँचे, जहाँ इसका औचित्य अनुभव किया जाय और कुछ ठोस कदम उठाये जाने के लिए उत्साह हो, वहाँ महिला जागरण संगठन की शाखा स्थापित करने से श्रीगणेश किया जाय। यह शुभारम्भ जहाँ भी होगा, वहाँ पर अपेक्षा की जा सकेगी कि आरोपित कल्पवृक्ष निकट भविष्य में उत्साहवर्द्धक प्रतिफल उत्पन्न करने लगेगा।

अभियान की सफलता का सबसे बड़ा लाभ पुरुष जाति को मिलने वाला है । आज गले में लटका हुआ अनगढ़ पत्थर कल उसी के लिए पारस बनकर स्वर्गीय सम्पदाएँ उत्पन्न करने वाला है। पिछला दुर्भाग्यपूर्ण कलुषित इतिहास, उसी की अनीति द्वारा सृजा गया है। नारी के उत्पीड़ित और उसके कारण दुःखदायी अधःपतन में उसी का हाथ है। इस कलंक का प्रायश्चित भी उसी को आगे बढ़कर करना है। इसके लिए आज का समय ही सर्वोत्तम मुहूर्त है। प्रत्येक भावना उत्कर्ष के लिए आवश्यक विचार-विस्तार करने और उत्साह उत्पन्न करने के लिए तत्परतापूर्वक प्रयत्न करें।

ऐसे विवेकशील व्यक्ति अपने घरों की उत्साही महिलाओं को आगे करके एक छोटा महिला संगठन स्थापित कर दें। हर प्रभावशाली व्यक्ति का कुछ व्यक्तियों से सम्पर्क और कुछ घरों में प्रभाव होता है। मिशन का परिचय उस क्षेत्र में दिया जाय, उपयोगिता समझाई जाय और पुनरुत्थान के लिए कुछ करने के लिए अनिवार्यता बतायी जाय। इसके लिए एक दो सप्ताह भी दौड़-धूप कर ली जाय, तो आरम्भ में उपेक्षा करने वाले लोग भी धीरे-धीरे सहमत होते चले जाएँगे और प्रचार चालू करने के कुछ ही दिन बाद संगठन खड़ा करने की स्थिति बन जाएगी।

महिला जागरण अभियान का श्रीगणेश करने और उसे आगे बढ़ाने का कार्य यों प्रत्यक्षतः प्रबुद्ध नारी का ही है, उसी को अपनी गई-गुजरी स्थिति से उबरने के लिए आगे बढ़ना चाहिए । जो स्वयं ऊँचा उठता है, उसी को दूसरों की सहायता के हाथ सँभालने हैं। उठना नारी को अपने ही पैरों पड़ेगा। अतएव जिनमें तनिक भी आत्माभिमान जीवित हो, जिनके बन्धन तनिक भी ढीले हों, जिनमें व्यक्तिवाद से आगे बढ़कर समूहगत चिन्तन करने की प्रकाश चेतना विद्यमान हो, उन प्रतिभावान् महिलाओं को अपने युग के इस अभूतपूर्व एवं ऐतिहासिक अभियान का अंग बनना चाहिए। उसमें अपना योगदान देना चाहिए। वे शाखा संगठन की स्थापना एवं उसकी गतिविधि को अग्रगामी बनाने में अपने प्रभाव, साहस,

कौशल एवं वर्चस्व का उपयोग कर सकती हैं। इस दिशा में उठाया गया प्रत्येक कदम इतना सराहनीय होगा कि उसके लिए मानवता चिरकाल तक कृतज्ञ बनी रहेगी।

इन जाग्रत महिलाओं के पीछे प्रत्येक सद्भावना सम्पन्न पुरुष का प्रखर योगदान रहना चाहिए। असल में प्रायश्चित नर को ही करना है और इसीलिए उसके बढ़-चढ़कर त्याग, बलिदान का परिचय देना है। महिला जागरण के अग्रिम मोर्चे पर नारी ही रहेगी, उसे ही रहना भी चाहिए। पर युद्ध में अनेकानेक साधनों की जरूरत पड़ती है, उसे सैनिक नहीं कारीगर बनाते और श्रमिक जुटाते हैं। यह दूसरा मोर्चा भी लड़ने वाले सैनिकों का जीवन प्राण है। अस्तु, हर वर्ग के भावनाशील परिजनों को महिला जागरण का दूसरा मोर्चा सँभालना चाहिए। इससे उनके कन्धों पर सहज ही निम्नलिखित कर्त्तव्य आते हैं।

(१) अपने घर-परिवार में से जो महिलाएँ इस अभियान में कुछ योगदान कर सकती हों उन्हें वस्तुस्थिति समझाएँ, कुछ करने के लिए उत्साह उत्पन्न करें और इतना अवसर प्रदान करें कि आन्दोलन के कार्यों में कुछ समय लगा सकें।

(२) सम्पर्क क्षेत्र में ऐसी ही अन्य महिलाएँ ढूँढ़ें जो अभियान की सदस्य बन सकें और उसकी गतिविधियों में सम्मिलित हो सकें। जिनमें ऐसी प्रतिभा हो, जिन तक अपनी पहुँच हो, उन्हें प्रोत्साहित करके आन्दोलन में सम्मिलित किया जाय। इसके लिए अपने अन्य पुरुष साथियों से भी सहयोग लिया जाय।

(३) तब तक चैन लिया जाय, जब तक कि स्थानीय महिला जागरण अभियान शाखा की स्थापना न हो जाय। सदस्य बनाना, कार्य समिति का चुनाव, कार्यवाहक की नियुक्ति की सूचना हरिद्वार भेजकर शाखा को पंजीकृत करा लिया जाय तो समझना चाहिए प्रथम चरण पूरा हुआ । शाखा कार्यालय के स्थान तथा उसके लिए पुस्तिकाएँ आदि प्रचार-सामिग्री मँगा ली जानी चाहिए। ताकि प्रयत्न को मूर्त रूप मिला दिखाई देने लगे।

(४) साप्ताहिक सत्संगों का ढर्रा आरम्भ करने के लिए यदि प्रतिभाशाली महिलाएँ नहीं हैं, तो परोक्ष रूप से अपने में से किन्हीं वयोवृद्ध व्यक्ति को सहायक बनाकर महिलाओं द्वारा उस क्रम को आरम्भ कराया जा सकता है। दो-चार बार के अभ्यास अनुभव से तो वे स्वयं ही उस कार्य का संचालन करने लगेंगी।

(५) महिला जागरण पत्रिका की ग्राहिका स्थानीय प्रबुद्ध महिलाओं को बनाना चाहिए। शाखा में तो वह निश्चित रूप से आनी चाहिए। इन लेखों को पढ़ने वाले सहज ही इस अभियान में सम्मिलित हो सकेंगे ऐसी आशा की जा सकती है।

(६) एक महीने के महिला सत्रों में अपने यहाँ की सुयोग्य एवं प्रतिभावान् महिलाओं एवं लड़कियों को भिजवाना चाहिए ताकि वे शान्तिकुंज में शिक्षण प्राप्त करने के उपरान्त स्थानीय अभियान को अधिक अच्छी तरह ... सकें।

(७) सदस्यता का शुल्क तो नहीं रखा गया है, पर पैसा तो विभिन्न कार्यों के लिए चाहिए ही। इसके लिए आपस में ही चन्दा करके इतना धन शाखा की मुट्ठी में पहुँचा देना चाहिए कि अभाव के कारण सामान्य कार्य संचालन में बाधा न पड़े। यन्त्र आदि के आवश्यक उपकरण तो शाखा के पास रहने ही चाहिए।

(८) बिना श्रेय लिए किए गए सार्वजनिक सेवा कार्य ही सद्भाव सम्पन्न और सात्विक माने जाते रहे हैं। यह प्रयोग करने का स्वर्णिम अवसर प्रत्येक लोक-सेवी के सामने हैं। उसे महिला जागरण अभियान में पूरी तरह तत्परता और सक्रियता बनाये रहनी चाहिए, किन्तु नाम, यश, श्रेय की दृष्टि से महिलाओं को ही आगे रखना चाहिए। श्रीगणेश से लेकर एक वर्ष में जड़ जमाने योग्य बनने तक शाखा के समय-समय पर परामर्श करते रहकर उनका मार्ग-दर्शन करने, कठिनाइयों का हल बताने एवं आवश्यक साधन जुटाने में आगे रहना चाहिए। इस कार्य में अन्य पुरुषों का भी सहयोग उपलब्ध करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

महिला जागरण अभियान का ढाँचा जिन योजनाओं एवं सम्भावनाओं के साथ खड़ा किया गया है उन्हे ध्यान में रखकर विचार किया जाय तो यह चित्र स्पष्ट रूप से उभरकर आवेगा कि यह कोई सामान्य संस्था, संगठन, छुट-पुट आन्दोलन या अनेकों उठती-बुझती सार्वजनिक सम्भावनाएँ जुड़ी हुई हैं जो कल नहीं तो परसों मूर्तिमान बनकर सामने आवेंगी और आधी मानव जाति का भाग्य निर्माण करने वाले महान् परिवर्तन की भूमिका सम्पादित करेंगी। यह बड़ा काम है, बडा कदम है। इनकी सम्भावनाएँ इतनी बड़ी हैं जिनका शिलान्यास करते हुए हम सब अपना मस्तक सबसे ऊँचा कर सकें।

नव-निर्माण के सन्दर्भ में महिला जागरण के प्रयत्नों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। उसके महत्त्व को अधिकाधिक समझा जाना चाहिए और हममें से जिससे जो बन पड़े उसके लिए शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिए।

शान्तिकुन्ज से इस अरुणोदय का सूत्र-संचालन हो रहा है, पर उनमें हम लोग 'अकेला चना ही भाड़ फोड़े' वाली कहावत सार्थक नहीं कर सकते। लंकाकाण्ड में जो भूमिका रीछ-वानरों की, गोवर्धन में जो भूमिका ग्वाल-बालों द्वारा लाठी का सहारा लगाने की, धर्मचक्र प्रवर्तन में भिक्षु-भिक्षुणियों की, गाँधी के स्वतन्त्रता संग्राम में सत्याग्रहियों की रही है, वैसे ही पूरे परिवार का समर्थन ही नहीं बढ़ा-चढ़ा सहयोग भी अपेक्षित है। इन अभियान में जन-शक्ति भी चाहिए और धन-शक्ति भी। हमें अपन समय देना चाहिए। अपनी महिलाओं के लिए इसके लि प्रोत्साहन, प्रशिक्षण एवं अवसर देना चाहिए। जिनके ऊ परिवार के व्यक्ति नहीं हैं उन महिलाओं को पूरा स इस युग चेतना के लिए समर्पित करना चाहिए। पुरुषों अपने प्रभाव, अनुभव, समय एवं कौशल का प्रयास प्रयोजन के लिए पूरे उत्साह से करना चाहिए,

महिला जागरण अभियान के लिए जिस जन-शक्ति की आवश्यकता है उसे आवश्यक मात्रा में जुटाया जा सके।

अभियान का स्वरूप एवं रूपरेखा

अपने देश में सुशिक्षित और सुयोग्य महिलाओं की संख्या कम है। जो है वह अपनी नौकरी-चाकरी तथा घरेलू काम-काज में बेतरह व्यस्त हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश कर सकने और उस दिशा में निरन्तर श्रम करने की स्थिति में जो हैं उनमें से कदाचित् ही कुछ इस विषय में सोचती हैं। समय की पुकार नारी जागरण अभियान को आँधी-तूफान की तरह व्यापक बना देने की है। उसे दावानल की भाँति द्रुतगामी और गगन-चुम्बी बनना चाहिए। इसलिए इसका प्रथम उत्तरदायित्व प्रगतिशील पुरुष वर्ग पर डाला गया है और जोर देकर कहा गया है कि पश्चाताप-प्रायश्चित के रूप में भी और उज्ज्वल भविष्य की अनिवार्य आवश्यकता समझकर भी नारी पुनरुत्थान का संचालन उसी को करना चाहिए।

नारी अग्रिम मोर्चे पर खड़ी जरूर होगी, पर उसे इसकी सफल भूमिका निभा सकने की स्थिति तक पहुँचाने के लिए उसी को अपने घरों की नारियाँ आगे धकेलनी होंगी। प्रोत्साहन, प्रशिक्षण, मार्ग-दर्शन, अवकाश देने से लेकर साधन जुटाने के लिए उसे पर्दे के पीछे रहकर पूरा पूरा योगदान देना होगा।

प्रारम्भिक ढाँचा मजबूत पैरों पर खड़ा होते ही, चिन्तन और कार्यक्रम को सुविस्तृत बनाना होगा और तदनुरूप योजनाएँ बनानी होंगी। समस्या आधी जनसंख्या की है और उस पिछड़ेपन की है जो एक हजार वर्ष से क्रमशः सघन और भारी ही होता चला आया है। टूटी हुई नारी को उठाना और नर को उपलब्ध निरंकुशता की पकड़ ढीली करने के लिए मनाना यह दुहरी कठिनाई है। क्षेत्र की व्यापकता और कार्य की गुरुता को देखते हुए सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इसके लिए कितने अधिक प्रयत्न करने होंगे और कितने बड़े साधन जुटाने होंगे। नारी पुनरुत्थान का कार्य स्वतन्त्रता आन्दोलन जीतने से कहीं अधिक बड़ा काम है। जिनने भारतीय स्वाधीनता का इतिहास पढ़ा है। उसे निकट से देखा है वे जानते हैं कि उसमें कितनी जनशक्ति और साधन-शक्ति झोंकनी पड़ी थी। नारी पुनरुत्थान के लिए उससे बड़ा ही चक्रव्यूह रचना होगा और उससे अधिक ही साधन जुटाने का प्रयत्न करना होगा। इस सन्दर्भ में कुछ ध्यान रखने योग्य तथ्य इस प्रकार हैं-

(१) जन-साधारण के मस्तिष्क में नारी पुनरुत्थान की आवश्यकता, उपयोगिता बिठाने और उसे पद-दलित स्थिति में रखने की हानियाँ समझाने के लिए इतना बड़ा प्रचारतन्त्र खडा करना पड़ेगा जो शिक्षित और अशिक्षित नर और नारी-सभी को वस्तुस्थिति समझा सके। परिवर्तन के लिए आकुलता उत्पन्न कर सके। इसके लिए लेखनी, वाणी एवं अन्य कला स्रोतों से जितने प्रकार के साधन सम्भव हो सकते हैं वे सभी जुटाये जाएँ। निबन्ध, उपन्यास, कविताएँ, पत्रिकाएँ, पुस्तिकाएँ लिखने, छापने और घर-घर पहुँचाने का व्यापक प्रबन्ध किया जाय। भाषण गायन, अभिनय, नाटक, फिल्म आदि सभी श्रव्य और दृश्य उपायों को इस प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किया जाय। हजार वर्ष की रूढ़ि मान्यताएँ जो अब एक प्रकार से मान्यता प्राप्त परम्पराएँ बन चुकी हैं, उन्हें बदलने की इच्छा उत्पन्न करने के लिए उतने व्यापक साधन होने चाहिए, जो समूची मनुष्य जाति को झकझोर कर रख सकें।

(२) आज की अशिक्षित नारी को शिक्षित बनाने के लिए प्रौढ़ शिक्षा का इतना बड़ा संगठित प्रयास हो कि उसके प्रभाव क्षेत्र में समूचा राष्ट्र आ सके। इसे युग धर्म माना जाय और उसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ अनुदान प्रस्तुत करने के लिए कहा जाय। तीसरे प्रहर दो से पाँच बजे चलने वाली प्रौढ़ महिला पाठशालाओं का प्रबन्ध गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले में किया जाय। शिक्षित नारियाँ इनमें अध्यापन के लिए समय दें। प्रत्येक घर में मुट्ठी भर अनाज या दस पैसा प्रतिदिन संग्रह करने वाले ज्ञानघट स्थापित किए जाएँ। उनसे महिला पाठशाला तथा चलते-फिरते पुस्तकालय के आवश्यक साधन जुटाए जाएँ इन पाठशालाओं में मनुष्य जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति, परिवार और समाज का पुनर्निर्माण करने वाले पाठ्यक्रम रहें, साथ ही संगीत और गृह-उद्योगों की शिक्षा भी सम्मिलित रहे। जहाँ सम्भव हो पूरे समय के कन्याओं एवं महिलाओं के लिए नये विद्यालय खड़े किये जाएँ और पुरानों को विकसित किया जाय।

(३) आर्थिक स्वावलम्बन के लिए कुटीर उद्योग सिखाने की व्यवस्था हो। कच्चा माल पहुँचाने और तैयार माल लेकर बेचने वाली सहकारी समितियाँ हर जगह खड़ी की जाएँ। फालतू समय का सदुपयोग करने, कुछ कमा लेने और कुशलता विकसित करने की दृष्टि से यह व्यवस्था नितान्त आवश्यक है। विधवाएँ, परित्यक्ताओं तथा दूसरी अभावग्रस्त महिलाओं को नियमित काम देने और निवास की व्यवस्था करने वाली महिला शिल्प शालाएँ जगह-जगह स्थापित हों, ताकि निराश्रिताएँ तिनके की तरह उड़ते-फिरने की अपेक्षा कुछ निश्चित आधार प्राप्त कर सकें। ऐसी महिलाओं की संख्या इन दिनों निरन्तर बढ़ती ही जा रही है।

(४) सामान्य धातु विद्या सिखाने के लिए हर जगह प्रबन्ध हो। प्रसूतिशालाएँ चलें। शिक्षित दाइयाँ प्रसव में सहायता देने के लिए उपलब्ध रहें। पिछले क्षेत्र में इस जानकारी के अभाव से हर साल लाखों मृत्यु होती हैं और अगणित महिलाएँ इसी कुचक्र में जीवनभर के लिए भयंकर यौन रोगों से ग्रसित हो जाती हैं। इनका जीवन बचाने के लिए हर जगह प्रबन्ध हो। प्रजनन सीमित करने

को आवश्यक शिक्षा भी इन्हीं केन्द्रों में दी जाय और अनचाही एवं अनावश्यक सन्तान रोकने के लिए क्या सतर्कता रखी जानी चाहिए, इन जानकारियों के होने से अत्यधिक सन्तान के भार से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य गँवा बैठने वाली नारी को बहुत राहत मिल सकती है।

(५) शिक्षा, आजीविका, चिकित्सा आदि के आवश्यक कार्यों के लिए जाते समय बच्चों को सँभालने, खिलाने वाले ऐसे शिशु-गृह बनाये जाएँ जिनमें उतने समय तक बच्चों को सँभालने की व्यवस्था रहे और महिलाएँ उतने समय तक अन्य आवश्यक कार्य कर सकें। घर में खेलने और ज्ञानवर्द्धक का अभाव रहने से बच्चों की आदतें बिगड़ती हैं उसकी कमी भी इन शिशु गृहों में पूरी होती रहेगी। उनकी आयु के हिसाब से अच्छी आदतें डालने, ज्ञान बढ़ाने और स्वास्थ्य सँभालने का कार्य भी इन शिशु गृहों के माध्यम से होता रह सकेगा।

(६) घर-परिवार की आवश्यक वस्तुएँ शुद्ध और सस्ते मूल्य पर उपलब्ध करने वाली महिला सहयोग समितियाँ स्थापित की जाएँ। इनके माध्यम से उन्हें सुविधा भी रहेगी और खरीदने, बेचने का अनुभव भी बढ़ेगा। यह सहकारी समितियाँ अपने सदस्य परिवारों के लिए सामूहिक भोजन बनाने का उत्तरदायित्व भी सँभालें, इससे साथ बैठने, साथ खाने की सहयोग प्रवृत्ति पनपेगी और हर घर की स्त्रियों को छोटे से परिवार के लिए भोजन बनाने जैसे काम के लिए सारा समय नष्ट करना पड़ता है। उसकी बचत हो सकेगी। इस बचे समय का उपयोग अन्य महत्त्वपूर्ण कामों में हो सकता है। घर-घर में चौका, चूल्हा, धुँआ, लकड़ी, कचरा आदि के कारण जगह भी घिरती है और गन्दगी भी होती है। यह सामूहिक भोजनालय से सहज ही दूर हो सकती है। कुछ महिलाओं को पकाने, परोसने और बर्तन आदि माँजने की आजीविका मिल सकती है और शेष समय में अपने और परिवार के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य करने को अवसर मिल सकता है।

(७) नारी-समाज-सेविकाओं के प्रशिक्षण की विशेष व्यवस्था हो, जिसमें वे महिला वर्ग के लिए आवश्यक शिक्षा, स्वास्थ्य, संगठन, स्वावलम्बन, परिवार निर्माण आदि उपयोगी प्रवृत्तियों का घर-घर जाकर या एकत्रित करके प्रशिक्षण करती रह सकें। साथ ही इन कार्यों में उन्हें सहयोग देती रह सकें। प्रौढ़ पाठशाला का संचालन तथा अध्यापन कैसे किया जाना चाहिए आदि का ज्ञान भी उन्हीं पाठशालाओं में उपलब्ध हो। व्यायाम, मनोरंजन, व्यवस्था, समाज-सुधार जैसी अनेकों सत्प्रवृत्तियाँ नारी समाज में प्रचलित करने के लिए इन मार्ग-दर्शिका और स्वयं-सेविकाओं की बड़ी संख्या में आवश्यकता पड़ेगी। स्वेच्छा, सहयोग से सेवाभावी श्रमदान तो इतने बड़े ...का मूल आधार होगा ही पर इसी प्रयोजन में पूरा ...समाजसेविकाओं की बड़ी संख्या ऐसी

होगी, जिनका निर्वाह व्यय जुटाना पड़े। इसकी आर्थिक व्यवस्था भी जुटाई जाय।

(८) सार्वजनिक सेवा-संस्थाओं में नारी को प्रवेश दिलाने की भूमिका बनाई जाय। ग्राम पंचायतों, जिला पंचायतों, सहकारी समितियों, विधान-सभाओं, लोक सभाओं में प्रवेश पाने के लिए उन्हें चुनाव लड़ना चाहिए। इस दिशा में नारी को वोट का महत्त्व, उसका सदुपयोग समझाने और उचित व्यक्तियों को ही वोट देने का आधार समझा जा सकता है। जब छोटे-छोटे वर्ग अपनी संगठन शक्ति के सहारे अपने प्रतिनिधियों को सफल बना सकते हैं, तो कोई कारण नहीं कि नारी की आधी जनसंख्या संस्थाओं और सरकारों में अपना उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त न कर सकें। इन संस्थाओं के माध्यम से नारी उत्कर्ष के लिए बहुत बड़ा काम हो सकता है। इस क्षेत्र में नारी की अरुचि, उपेक्षा एवं अनभिज्ञता को दूर करने के लिए प्रबल प्रयत्न किया जाय।

(९) नारी को भोग्या के रूप में प्रस्तुत करके उसे अपमानित, पतित बनाने वाले कामुक प्रचार को रोका जाय। साहित्य, चित्र, फिल्म, गीत आदि माध्यमों से नारी को वासना की पुतली के रूप में प्रस्तुत करने में शालीनता की समस्त मर्यादाएँ तोड़ी जा रही हैं। इन प्रवृत्तियों का घोर विरोध खड़ा किया जाय। नारी को फूहड़, उत्तेजक एवं शृंगारी सजधज में सन्निहित आत्महीनता से विरत किया जाय। नर की तरह नारी को भी मात्र मनुष्य ही रहने देने का वातावरण बनाया जाय। उसे वासना की पुतली के रूप में प्रस्तुत करने वाले समस्त प्रयासों को प्रबल विरोध खड़ा करके निरस्त किया जाय। अश्लीलता तथा दूसरे प्रकार की नारी को दुःखद परिस्थितियों में धकेलने वाली दहेज, बाल-विवाह, अनमेल विवाह आदि कुरीतियों को रोकने के लिए स्वयं सेवक सेना खड़ी की जाय जो आवश्यकतानुसार विरोध के सभी उचित उपायों का सहारा लेकर अनीति को रोक सकें।

(१०) महिला जागरण अभियान को सुविस्तृत करके उसे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विशाल संगठन के रूप तक पहुँचा दिया जाय। जिस प्रकार राष्ट्रसंघ अनेकों राजनैति... वैज्ञानिक, आर्थिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों के लिए कुछ... कुछ सोचता, करता रहता है, उसी प्रकार नारी जाति... सम्बन्धित संसार भर की समस्याओं को समझाने के... यह संगठन बहुमुखी प्रयत्न करे। कानून में तथा सा... प्रचलनों में जहाँ नारी के साथ न्याय न हो रहा... बदलवाने का प्रयत्न करें। उसके स्थानीय, क्षेत्रीय,... राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन समय-समय पर... जिससे समस्त-विश्व में नारी की संगठित... विकास सम्भव हो सके। हिन्दू समाज के ही... के ही नहीं, समस्त विश्व में जहाँ-कहीं जिस... कठिनाइयाँ नारी के सामने हैं, उनका सर्व... तदनुरूप विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न स्तर के अ... करना और प्रगति के साधन जुटाना इस विश...

काम होगा। उसकी शाखा-प्रशाखाएँ समस्त संसार में फैली पड़ी होंगी और वे नारी और नर की समानता तथा साधन सहकारिता उत्पन्न करने के लिए सभी सम्भव उपाय कर रही होंगी।

इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न स्तरों पर अनगिनत प्रयास करने होंगे। इस दिशा में किया गया हर व्यक्ति का, हर जगह, हर स्तर पर किया गया यत्किंचित प्रयास भी अभिनन्दनीय है, किन्तु छुटपुट प्रयासों से इतना बड़ा कार्य हो नहीं सकता । कार्यक्रम सूत्रबद्धता न होने से प्रयास करने वालों की दिशाएँ बहक जाती हैं तथा पुरुषार्थ का अपेक्षाकृत बहुत कम लाभ ही प्राप्त हो पाता है।

अस्तु, महिला जाग्रति अभियान का व्यवस्थित एवं सूत्रबद्ध संचालन करने के लिए हरिद्वार स्थित शान्तिकुंज नामक आश्रम स्थापित किया गया है। उसकी रूपरेखा इस प्रकार है:-

अभियान के वर्तमान क्रिया-कलाप तीन भागों में विभक्त हैं (१) साहित्य प्रकाशन एवं नारी शिक्षण सत्र (२) संगठन द्वारा संघ शक्ति का उदय तथा (३) रचनात्मक कार्यक्रमों का व्यापक विस्तार।

इन चारों प्रयोजनों की पूर्ति के लिए शान्तिकुंज आश्रम में अग्रलिखित गतिविधियाँ चल रही हैं-

(१) प्रेस और प्रकाशन

गृह-व्यवस्था, परिवार में स्वर्गीय वातावरण, बालकों का सांस्कृतिक विकास, दाम्पत्य जीवन की सरसता, कुटुम्बी जनों के कर्तव्य और उत्तरदायित्व, घर में शालीन परम्पराओं का प्रचलन, नारी की समस्याओं और उनके समाधान जैसे विषयों पर कई पुस्तकें छप चुकी हैं और अनेकों प्रकाशित होने जा रही है। प्रौढ़ महिला शिक्षा आन्दोलन के लिए यही पाठ्य-पुस्तकों का काम देंगी।

पुस्तकों के प्रकाशन के लिए एक प्रेस भी शान्तिकुंज में ही लगाया गया है। इसमें जहाँ अपने प्रकाशन में सुविधा होगी, वहाँ साहित्यिक रुचि रखने वाली महिलाओं को प्रेस उद्योग की आवश्यकता शिक्षा प्राप्त करके स्वावलम्बी एवं सम्मानित जीवनयापन का एक नया मार्ग मिलेगा। सुशिक्षित महिलाएँ इस विभाग के सम्पर्क में रहकर, साहित्यकार एवं प्रेस संचालन का महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकने की योग्यता प्राप्त कर सकती हैं।

इसी विभाग के अन्तर्गत 'रबर की मुहरें' बनाने का एक ऐसा उद्योग भी जुड़ा है जो स्वतन्त्र भी कहा जा सकता है और सम्बद्ध भी। सम्बद्ध इसलिए कि उसमें प्रेस के टाइप, कम्पोज आदि के ही उपकरण काम आते हैं और स्वतन्त्र इसलिए कि बिना प्रेस खोले हुए भी कोई व्यक्ति केवल थोड़ा-सा टाइप और छोटी-सी मशीन खरीद कर आजीवन अच्छी आजीविका कमाते रहने योग्य बन सकता है

यह सीखी हुई महिलाएँ कहीं भी अपना निजी प्रेस खड़ा कर सकती हैं। दहेज देने की अपेक्षा यदि कन्याओं के पिता लगभग छह सदस्यों को उसी गृह-उद्योग में लगाकर सबकी आजीविका का एक नया साधन खड़ा कर सकते हैं। रबड़ की मुहरें तथा प्रेस उद्योग में उपर्युक्त विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता भी पूरी होती है। मिशन का अपना प्रकाशन कार्य तो उससे सुविधापूर्वक चलना ही है।

नारी जीवन अपने आप में एक अगणित विशेषताओं से भरा ईश्वरी वरदान है। उसका स्वरूप और उपयोग यदि जाना जा सके तो स्थिति ऐसी आनन्दयुक्त और उत्साहवर्द्धक हो सकती है जिसकी कल्पना मात्र से रोमांच उत्पन्न हो। पति, परिवार और पीढ़ी के निर्माण में सुसंस्कृत नारी का कितना बड़ा योगदान हो सकता है, यह आज सुखद कल्पना मात्र तक सीमित रहने वाला विषय बना हुआ है। उसे मूर्त रूप में प्रस्तुत कर सकने वाले साधन अभी बने ही कहाँ हैं?

महिला प्रशिक्षण:- इस अभाव की पूर्ति के लिए-एक-एक महीने के महिला प्रशिक्षण सत्रों की व्यवस्था की गई है। जो सिखाया जाना चाहिए, उसके लिए वह समय अत्यन्त स्वल्प है। पर बाल-बच्चे वाली, गृहस्थ सँभालने वाली विवाहित महिलाओं से इससे अधिक समय की आशा भी तो नहीं की जा सकती ।

स्वास्थ्य रक्षा, सन्तान पालन, पारिवारिक सौजन्य, मधुर दाम्पत्य सम्बन्ध, अर्थ संतुलन, सुखाद्य, चिन्तन में दूरदर्शिता का समन्वय, सौम्य शिष्ट व्यवहार, हँसी-खुशी का हलका-फुलका वातावरण, स्वच्छता एवं सुसज्जा, सद्गुणों का संवर्द्धन, कलह का समाधान, सफल संयुक्त परिवार के आधारभूत तथ्य, कुरीतियों के दुष्परिणाम, जीवनकला का सामान्य ज्ञान, पग-पग पर विवेकशीलता का उपयोग जैसी अनेकों महत्त्वपूर्ण जीवन क्रम में कायाकल्प प्रस्तुत कर सकने वाली शिक्षाओं का आवश्य समावेश करने का प्रयत्न किया गया है। एक माह के इन सत्रों में रहने वाली महिलाएँ अपनी रीति-नीति में उत्साह-वर्धक तत्त्वों का समावेश करके घर लौटती हैं।

अपने क्षेत्र में महिला जागरण के लिए संगठनात्मक, प्रचारात्मक कार्य करने के लिए प्रवचन देने की, संगीत के माध्यम से कथा-कीर्तन कर सकने की, हवन संस्कार कराने की, प्रौढ़ महिला विद्यालय चलाने की एवं यथा स्थिति अन्य रचनात्मक प्रवृत्तियों के सम्वर्द्धन की शिक्षा भी इसी प्रशिक्षण में सम्मिलित हैं ताकि शिक्षार्थी महिलाएँ अपने-अपने क्षेत्र में नारी जागरण अभियान को सफलतापूर्वक अग्रसर कर सकने में समर्थ हो सकें।

इसके अतिरिक्त (i) आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी जीवनयापन कर सकने योग्य गृह-शिल्पों का उपयुक्त अभ्यास। इस वर्ग में फिलहाल इन उद्योगों की व्यवस्था की गई है- (अ) प्रेस उद्योग- किसी प्रेस में नौकरी कर सकने या स्वयं प्रेस चला सकने की शिक्षा (आ) हर प्रकार की रबड़ की मुहरें बनाकर अच्छा गुजारा कर सकना (इ) कपड़ों की इस स्तर की सिलाई की, कि दर्जी की दुकान चलाई जा सके, (ई) डबलरोटी, बिस्कुट, के

नान खताई आदि बनाने की बेकरी शिक्षा। (ठ) साबुन, मोमबत्ती, अगरबत्ती आदि व्यवसाय करना। (ऊ) हाथ के बने यज्ञोपवीत उस स्तर पर बनाना, जिससे बिना पढी महिलाएँ रोजी-रोटी कमा सकें। उपर्युक्त शिल्प इस स्तर के हैं जिसमें से किसी को भी स्वावलम्बी आजीविका के रूप में चुना और अपनाया जा सकता है।

(II) संगीत अच्छे स्तर का रखा गया है। हारमोनियम, तबला, ढोलक, मजीरा, घुँघरू, बेंजो, वंशी जैसे वाद्य-सुगम संगीत की गायन प्रक्रिया-नाटक अभिनय, गीत नाटिकाएँ, प्रहसन भी इसी वर्ग में सम्मिलित हैं।

(III) खेलकूद, व्यायाम, फौजी कवायद, आसन, प्राणायाम, लाठी तलवार चलाने की शिक्षा।

(२) संगठन, प्रचार और प्रवृत्तियाँ

देशव्यापी, विश्वव्यापी महिला जागरण अभियान चलाने के लिए उसका संगठनात्मक ढाँचा खडा करना आवश्यक है । अखण्ड ज्योति और युग निर्माण योजना के सदस्यों और सदस्याओं के लाखो परिजनों के सहारे ही यहाँ आरम्भिक चरण पूरा किया गया है। पीछे तो और लोग भी इसमें सम्मिलित होते चले जाएँगे। स्थानीय संगठन पूरी तरह अपने पैरों पर खड़े होते हैं। उनका सूत्र-संचालन एवं मार्ग-दर्शन भर हरिद्वार से होता है। संगठन के लिए आरम्भिक प्रयासों में (१) साप्ताहिक सत्संगों की नियमितता। (२) सदस्याओं के घरों पर जाकर जन्म दिन-संस्कार, पर्व, कथा आदि के आयोजन करके परिवार निर्माण का प्रशिक्षण । (३) प्रौढ़ महिला पाठशाला का श्रीगणेश ये तीन कार्य प्रमुख रखे गये हैं। जेहाँ यह क्रम चल पड़ेगा वहाँ बौद्धिक क्रान्ति, नैतिक क्रान्ति एवं सामाजिक क्रान्ति की दिशा में अन्य महत्त्वपूर्ण प्रचारात्मक, रचनात्मक कदम बढ़ाए जाते हैं। सभी शाखाओं में स्थानीय महिला शिविर चलाकर कार्यकर्त्री एवं सदस्याओं को मिशन की अधिक अच्छी जानकारी कराने की व्यवस्था बनानी चाहिए। यह शिविर-शाखा के वार्पिकोत्सव के रूप में धूमधाम के साथ मनाये जाने चाहिए । उनसे नव-चेतना बनाये रखने में और बढाने में बहुत सहायता मिल सकती है।

(४) जहाँ शाखा संगठनों में जीवन्त महिलाओं की संख्या बढ़ जाती है, वहाँ अपनी योग्यता तथा परिस्थितियों के अनुरूप वे अनेक प्रकार के रचनात्मक कार्य-कलाप हाथ में लेने का प्रयास करती हैं। जैसे- महिला प्रौढ़ शिक्षा का संचालन, महिलाओं में व्याप्त भ्रान्त धारणाओं का निवारण, पर्दा, जेवर, छुआछूत, भूत-पलीत जैसी अवांछनीयताओं का निवारण । दहेज एवं विवाहों में होने वाले अपव्यय के विरुद्ध व्यापक प्रतिरोधक वातावरण का निर्माण । महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाने के लिए कुटीर उद्योगों के प्रशिक्षण तथा संचालन की व्यवस्था। घरों में महिलाओं में स्वच्छता, सभ्यता तथा पारिवारिक सन्तुलन बनाये रखने की योग्यता का विकास आदि।

इस अभियान की पृष्ठभूमि तो सन् ७१ से ही बनाई जा रही थी, उसी दृष्टि से शान्तिकुंज आश्रम का निर्माण भी किया गया था, किन्तु अभियान को सक्रिय रूप सन् ७५ से ही दिया गया। इस एक वर्ष में ही अभियान की प्रगति देखते ही बनती थी। महिला पत्रिका की ग्राहक संख्या इसी अल्पावधि में ही १४००० तक पहुँच गयी । देशभर में लगभग ४०० सक्रिय संगठन खड़े हो गये। शीघ्र ही उनकी संख्या १००० तक पहुँचने की सम्भावना है। देश भर में शान्तिकुंज की प्रचारिकाओं की उपस्थिति में २५० से अधिक विशाल महिला सम्मेलन हुए। इनमें लाखों व्यक्तियों तक अभियान का सन्देश पहुँचाया गया तथा प्रबल जन-समर्थन जाग्रत किया जा सकेगा। इसी अवधि में ३०० से अधिक कन्याएँ तथा महिलाएँ प्रशिक्षण पा चुकी हैं। यह सभी अपने-अपने क्षेत्रों में नारी जागरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभा रही हैं। अभियान की गति तथा दृढ़ पृष्ठभूमि देखकर प्रबुद्धजनों का सक्रिय समर्थन सहयोग हर जगह मिल रहा है। आंशा की जाती है कि शीघ्र ही यह प्रचण्ड रूप धारण करके युग की एक उल्लेखनीय भूमिका सम्पादित करने में समर्थ हो सकेगा।

स्वल्प साधनों को देखते हुए दुस्साहसभरी भावना से ओत-प्रोत इस टिटहरी द्वारा समुद्र पाटने जैसे प्रयास को अगस्त्य सहयोग की अपेक्षा, है, पर उसके लिए पात्रता न हो, तो भी परामर्श, मार्ग-दर्शन, सद्भाव और आशीर्वाद तो प्रत्येक विचारशील से इन पंक्तियों द्वारा आमन्त्रित किया ही जा रहा है।

हर घर में उपयुक्त प्रेरणाओं का प्रवेश किया जाय

महिला जागरण शाखाएँ अपना संगठन जीवन्त एवं प्रखर बनाये रखने के लिए अपने साप्ताहिक सत्संगों को पूरे उत्साह के साथ चलाती रहेंगी। साथ ही यह प्रयत्न भी करेंगी कि घर-घर वैसा ही प्रभावशाली वातावरण पैदा किया जाय, जैसा कि इस सत्संगों के अवसर पर होता है । इनके लिए संस्कारों और पर्वों को अभिनव पद्धति से सम्पन्न कराने की प्रक्रिया भी उन्हें हाथ में लेनी होगी।

साप्ताहिक सत्संग आमतौर से एक निर्धारित उपयुक्त स्थान पर होते रहते हैं। पर्व और त्योहार भी ऐसे सार्वजनिक स्थान पर होते हैं, जहाँ बड़ी उपस्थिति के लिए पर्याप्त स्थान हो। एक महत्त्वपूर्ण बात यह रह जाती है कि हर घर में विचार गोष्ठियाँ और छोटे आयोजन हों जिससे उस परिवार के सभी सदस्यों को नव-चेतना के अनुरूप संयुक्त परिवार के उत्तरदायित्वों के निर्वाह की प्रेरणा मिल सके। परिवारों को हमें किन्ही सिद्धान्तों आधारों और नियम-कायदों के अनुसार पुनर्निर्माण करन पड़ेगा।

प्राचीन आदर्शों के साथ नवीन परिस्थितियों का ताल-मेल बिठाकर ही संयुक्त परिवार प्रणाली की रक्षा हो सकती है। हमारे घर ऐसे होने चाहिए, जिनमें प्रत्येक को अपने अधिकारों के बारे में उपेक्षा एवं कर्तव्यों के बारे में सजग तत्परता बरतने का पूरा-पूरा ध्यान रहे । वस्तुतः परिवार की पाठशाला में ही गुण, कर्म, स्वभाव का प्रशिक्षण होता है और इसी फैक्टरी में शालीनता का वातावरण रहने से प्रखर व्यक्तित्वों का निर्माण होता है। महिलाओं का तो यह कार्यक्षेत्र ही है। गृह-लक्ष्मी होने के नाते वे पुरुषों से भी अधिक बढ़ा-चढ़ा उत्तरदायित्व इसी सीमित किन्तु अति महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में निर्वाह करती हैं। भले ही वे घर से बाहर कितना ही काम क्यों न करें पर परिवार की साज-सँभाल तो उन्हें ही करनी पड़ती है।

परिवार निर्माण के सम्बन्ध में प्रशिक्षण देने के लिए स्कूल खोले जाना कठिन है । घर-घर जाकर उत्सव आयोजन जैसे उल्लास भरे वातावरण में परिवार के सदस्यों को ऐसी प्रेरणा देने की आवश्यकता है, जिसमें घर के सभी लोग अपने-अपने कर्तव्यों का पारस्परिक सहयोग का प्रकाश प्राप्त कर सकें और उस पर तत्परतापूर्वक चल सकें। प्राचीनकाल में भी यह प्रयोग होता रहा है। सोलह संस्कारों के माध्यम से सुयोग्य उपदेशक जल्दी-जल्दी घरों में जा पहुँचते थे और घर के लोगों को इकट्ठे करके उनके वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का बोध कराते थे। जो भूलें देखते थे और स्तर को अधिक परिष्कृत करने के लिए आवश्यक प्रेरणा देते थे, उस भाव भरी मनःस्थिति में गरम लोहे पर चोट करने से उसे मोड़ने का प्रयोजन पूरा होता था। इस प्रकार परिमार्जन और परिष्कार की प्रक्रिया बराबर चलती रहती थी। उसी प्रयोजन की पूर्ति हमें करनी है। उसके लिए पुरानी शैली अपनाई जाय तो हर्ज कुछ नहीं, वरन् उचित परम्पराओं के प्रति निष्ठा बनाये रहने का विशिष्ट लाभ ही है।

महिला जागरण अभियान के अन्तर्गत परिवार पुनर्निर्माण को सर्वोपरि प्रधानता दी गई और उसका प्रशिक्षण करने के लिए पुरानी शैली अपनाई गई है । बच्चों के बड़ों के संस्कार किये जाएँ । जिनके संस्कार होते हैं, उन्हें 'महत्त्वपूर्ण' मानने का अवसर मिलता है। वे उस दिन के हीरो रहते हैं। इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव उनका आत्मसम्मान उभारने और सचमुच ही महत्त्वपूर्ण बनने की प्रेरणा देता है। ऐसे वातावरण में दी हुई शिक्षाएँ भी बहुत काम करती हैं। जिसका संस्कार है, उस पर घर के लोगों पर तथा पास-पड़ौस के आमन्त्रित लोगों पर इस प्रेरणा प्रवाह का बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। यह प्रयोग भूतकाल में भी सफल होता था और अब भी उसकी सफलता असंदिग्ध है।

भारतीय संस्कृति में षोडस संस्कारों की प्राचीन परम्परा विद्यमान है । पण्डितों ने उसे लूट-खसोट का जरिया बना लिया और शिक्षा प्रेरणा का मूल उद्देश्य नष्ट करके मात्र पूजा पत्रों तक उसे सीमित कर दिया, इसलिए जनविवेक ने उसकी अनुपयोगिता देखकर उसकी उपेक्षा आरम्भ कर दी। अब वे संस्कार विधिवत् कहीं-कहीं ही होते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि धर्म-परम्पराओं को पुनर्जीवित करने के उत्साहवर्द्धक अभियान के साथ-साथ परिवार निर्माण के लिए आवश्यक प्रशिक्षण करने और प्रगतिशील वातावरण बनाने की समन्वित प्रक्रिया को तत्काल आरम्भ कर दिया जाय । इसका परिवारों में विरोध नहीं स्वागत ही होगा। इसमें दुहरा लाभ है। लोग अपनी परम्पराओं के पीछे सन्निहित प्रगतिशीलता को समझेंगे और उनका सम्मान करेंगे साथ ही परिवार प्रशिक्षण के लिए उत्साहवर्द्धक परिस्थितियाँ मिलती रहेंगी। उन छोटे आयोजन समारोहों में सहज ही उत्साहवर्द्धक वातावरण रहेगा। घर-पड़ौस के लोग पारस्परिक व्यवहार के कारण तथा कौतूहलवश उनमें इकट्ठे होंगे और उतने लोगों तक अपनी बात पहुँचाने के लिए महिला जागरण अभियान के कार्यकर्त्ताओं को अच्छा अवसर मिल जाएगा।

घर-घर जाकर उत्साहपूर्ण वातावरण में नव-निर्माण से सम्बन्धित तथ्यों को समझाना पड़ेगा और उन्हें प्रचलन के स्तर तक पहुँचाना होगा । परिवार निर्माण के लिए प्रचलित ढर्रा बदलने और संस्कार आयोजनों की धर्म परम्परा प्रचलित करके यह प्रयोजन बहुत ही सुविधा तथा सफलता के साथ उत्साहवर्द्धक वातावरण में सम्पन्न होता रह सकता है।

षोडश संस्कारों में दस प्रधान हैं। उनमें से पाँच ऐसे हैं जिन्हें बिना पण्डित, पुरोहितों की सहायता के महिलाएँ बहुत ही अच्छी तरह घरेलू उत्सवों के स्वयंमेव सम्पन्न कर सकती हैं। (१) गर्भावस्था में तीसरे महीने होने वाले पुंसवन संस्कार को मनाते हुए परिवार के लोगों को यह समझाया जा सकता है कि नवजात शिशु को सुसंस्कारी बनाने के लिए गर्भिणी की शारीरिक, मानसिक स्थिति किस प्रकार सन्तोषजनक रखी जा सकती है और उसके लिए घर के वातावरण में पारस्परिक व्यवहार में क्या हेर-फेर होना चाहिए। (२) नामकरण संस्कार में बच्चे का नाम रखने के साथ-साथ उसके जीवन का उद्देश्य निर्धारित करने और उसके अनुरूप घर को एक संस्कृति पाठशाला के रूप में बदलने के लिए उस परिवार में किस प्रकार के परिवर्तन अभीष्ट हैं यह सुझाया जा सकता है। (३) अन्न-प्राशन संस्कार यों होता तो बच्चे का है और प्रधानतया बच्चे के आहार-विहार के सम्बन्ध में बरती जाने योग्य सतर्कताओं की जानकारी दी जाती है, पर वस्तुतः सारे घर के आहार-विहार की चर्चा की गुंजायश उसमें रहती है। हम प्रायः अखाद्य खाते और अपेय पीते हैं उससे पूरे परिवार का स्वास्थ्य नष्ट होता है। इस प्रसंग में अनीति उपार्जन से पेट भरने के क्या दुष्परिणाम होते हैं इस तथ्य को भी समझाया जा सकता है। (४) मुण्डन-संस्कार में बच्चे का मानसिक विकास करने की प्रेरणा मुख्य है।

नान खताई आदि बनाने की बेकरी शिक्षा। (उ) साबुन, मोमबत्ती, अगरबत्ती आदि व्यवसाय करना। (ऊ) हाथ के बने यज्ञोपवीत उस स्तर पर बनाना, जिससे बिना पढ़ी महिलाएँ रोजी-रोटी कमा सकें। उपर्युक्त शिल्प इस स्तर के हैं जिसमें से किसी को भी स्वावलम्बी आजीविका के रूप में चुना और अपनाया जा सकता है।

(ii) संगीत अच्छे स्तर का रखा गया है। हारमोनियम, तबला, ढोलक, मजीरा, घुँघरू, बेंजो, वंशी जैसे वाद्य-सुगम संगीत की गायन प्रक्रिया-नाटक अभिनय, गी.. नाटिकाएँ, प्रहसन भी इसी वर्ग में सम्मिलित हैं।

(iii) खेलकूद, व्यायाम, फौजी कवायद, आसन, प्राणायाम, लाठी तलवार चलाने की शिक्षा।

(२) संगठन, प्रचार और प्रवृत्तियाँ

देशव्यापी, विश्वव्यापी महिला जागरण अभियान चलाने के लिए उसका संगठनात्मक ढाँचा खड़ा करना आवश्यक है । अखण्ड ज्योति और युग निर्माण योजना के सदस्यों और सदस्याओं के लाखों परिजनों के सहारे ही यहाँ आरम्भिक चरण पूरा किया गया है। पीछे तो और लोग भी इसमें सम्मिलित होते चले जाएँगे। स्थानीय संगठन पूरी तरह अपने पैरों पर खड़े होते हैं। उनका सूत्र-संचालन एवं मार्ग-दर्शन भर हरिद्वार से होता है। संगठन के लिए आरम्भिक प्रयासों में (१) साप्ताहिक सत्संगों की नियमितता। (२) सदस्याओं के घरों पर जाकर जन्म दिन-संस्कार, पर्व, कथा आदि के आयोजन करके परिवार निर्माण का प्रशिक्षण । (३) प्रौढ़ महिला पाठशाला का श्रीगणेश ये तीन कार्य प्रमुख रखे गये हैं। जहाँ यह क्रम चल पड़ेगा वहाँ बौद्धिक क्रान्ति, नैतिक क्रान्ति एवं सामाजिक क्रान्ति की दिशा में अन्य महत्त्वपूर्ण प्रचारात्मक, रचनात्मक कदम बढ़ाए जाते हैं। सभी शाखाओं में स्थानीय महिला शिविर चलाकर कार्यकर्त्री एवं सदस्याओं को मिशन की अधिक अच्छी जानकारी कराने की व्यवस्था बनानी चाहिए। यह शिविर-शाखा के वार्षिकोत्सव के रूप में धूमधाम के साथ मनाये जाने चाहिए । उनसे नव-चेतना बनाये रखने में और बढ़ाने में बहुत सहायता मिल सकती है।

(४) जहाँ शाखा संगठनों में जीवन्त महिलाओं की संख्या बढ़ जाती है, वहाँ अपनी योग्यता तथा परिस्थितियों के अनुरूप वे अनेक प्रकार के रचनात्मक कार्य-कलाप हाथ में लेने का प्रयास करती हैं। जैसे- महिला प्रौढ़ शिक्षा का संचालन, महिलाओं में व्याप्त भ्रान्त धारणाओं का निवारण, पर्दा, जेवर, छुआछूत, भूत-पलीत जैसी अवांछनीयताओं का निवारण । दहेज एवं विवाहों में होने वाले अपव्यय के विरुद्ध व्यापक प्रतिरोधक वातावरण का निर्माण । महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाने के लिए कुटीर उद्योगों के प्रशिक्षण तथा संचालन की व्यवस्था। घरों में महिलाओं में स्वच्छता, सभ्यता तथा पारिवारिक सन्तुलन बनाये रखने की योग्यता का विकास आदि।

इसके अतिरिक्त रामायण कथा और सत्यनारायण कथा के आयोजन अपने-अपने घरों पर, शाखा में अथवा मुहल्ला स्तर पर होते रह सकते हैं। मिशन ने सत्यनारायण कथा का अभिनव स्वरूप बना दिया है, जिससे इस धर्म प्रयोजन का सहारा लेकर यह सब कुछ कहा जा सका है, जो आज की स्थिति में कहने योग्य है। इसी प्रकार रामायण सप्ताह अथवा न्यूनाधिक समय तक उस कथा के आयोजन रखे जाएँ। तो उससे व्यक्ति, परिवार समाज को अभिनव रचना के अति महत्त्वपूर्ण सूत्र जन-मानस में उतारे जा सकते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए रामायण कथा, सत्यनारायण कथा आदि पुस्तकों की रचना की जा चुकी है और उनका सर्वत्र प्रचलन हो रहा है।

लोक-शिक्षण में कथा-साहित्य का कितना महत्त्व है यदि इस तथ्य को समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि महिला शाखाओं को यह माध्यम अनिवार्य रूप में अपनाना ही चाहिए।

लेखकों, पुस्तक विक्रेताओं और प्रकाशकों का क्षेत्र प्रधान रूप से कथा-साहित्य होता है। आधी से अधिक पुस्तकें कथापरक छपती और बिकती हैं। यह लोक-रुचि सनातन है।वेद चार ही लिखे जा सके, पर पुराण अठारह और उपपुराण अठारह लिखे गये। चारों वेदों में मात्र २० हजार मन्त्र हैं, पर अकेला महाभारत ही एक लाख श्लोकों का अर्थात् चारों वेदों का पाँच गुना है। अन्य कई पुराण भी इतने ही बड़े हैं । संस्कृत में नाटक काव्य आदि कथा-साहित्य के अन्य ग्रन्थ भी कम नहीं हैं। व्रतों-पर्वों के साथ अगणित कथाएँ जुड़ी हुई हैं और वे चावपूर्वक कही-सुनी जाती हैं। यह प्राचीन अभिरुचि अभी भी ज्यों की त्यों बनी हुई। आज भी कथा-कहानियों का, पत्रिकाओं में प्रमुख स्थान रहता है। फिल्में आखिर कहानियों का दृश्य रूप ही तो हैं। नाटक अभिनय, गीत वाद्यों में प्रायः कथा प्रसंग ही जुड़े रहते हैं। लोकरुचि इसी क्षेत्र के इर्द-गिर्द उमड़ती-घुमड़ती रहती है।

महिला जागरण अभियान का क्षेत्र यों मुख्य रूप से परिवार निर्माण है, पर उसी के साथ व्यक्ति निर्माण और समाज निर्माण के घटक अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। इस प्रकार से यह समूची मानवता की पुनः प्राणप्रतिष्ठा का अभिनव प्रयोग है, इसके लिए अन्यान्य साधनों के अतिरिक्त कथा प्रसंगों को भी साथ लेकर चलना होगा।

सामान्यता बच्चों को प्रेरणाप्रद कहानियाँ सुनाने की छोटी-सी बात को लेकर आगे बढ़ना है, सभी सदस्याएँ बच्चों के लिए ज्ञानवर्द्धक एवं दिशा देने वाली कहानियाँ सीखेंगी और उन्हें किस आयु के लोगों के लिए किस प्रकार कहना चाहिए यह कला अपनायेंगी। हर घर में रात्रि को कहानियाँ कहने का प्रचलन होना चाहिए । नानी की [illegible] की उक्ति प्रसिद्ध है। वृद्धाएँ तथा जिनके पास [illegible] रहता है ये इस कार्य को बड़ी आसानी से कर [illegible] उनको उत्साह न होने पर काम-काजी महिलाएँ [illegible] लिए समय निकाल सकती हैं। यों आज ऐसी कहानियों की भारी कमी है जो मात्र मनोरंजन न होकर बच्चों को दिशा एवं प्रेरणा दे सकें, फिर भी उन्हें ढूँढ़ा और उपलब्ध कराया ही जाएगा।

बच्चों में कहानियाँ सुनने का सहज भाव होता है। जब यह सिलसिला चल पड़े तो घर के अन्य लोग भी खिसक कर वहीं आ इकट्ठे होते हैं। कथा सुनने में आनन्द तो सभी को आता ही है। इस प्रकार कहानियाँ कहने की प्रक्रिया यदि सुनियोजित और दूरदर्शितापूर्ण आधार लेकर चलाई जाए तो इस मखौल जैसे दिखने वाले कार्य से भी अगणित सत्परिणाम प्रस्तुत हो सकते हैं। व्यक्तियों के निर्माण में कथा प्रचलन की अनुपम भूमिका हो सकती है।

अपनी युग निर्माण योजना मासिक पत्रिका गत आठ वर्षों से इसी प्रयोजन के लिए निकल रही है। उसमें पौराणिक, ऐतिहासिक एवं आधुनिक महामानवीय तथा महान् घटनाक्रमों का वर्णन इस प्रकार रहता है कि कहानी पढ़ने-सुनने का आनन्द लेते हुए अन्तस्तल में आदर्शवादी परम्पराओं को प्राण-प्रतिष्ठा की जा सके।

प्राचीन कथाओं को नये संदर्भ में प्रस्तुत करने की अपनी अभिनव योजना है। सत्यनारायण कथा का प्रचलन बहुत पुराना है, उसके आधारों में ऐसे परिवर्तन किये गये हैं कि जन-मानस के नव-निर्माण में उसकी महती भूमिका हो सकती है। रामचरित्र कृष्ण चरित्र के लिए रामायण, महाभारत में अति उपयोगी प्रसंग मौजूद हैं । अवतारों, देवताओं, ऋषियों एवं महामानवों के ऐसे चरित्रों को भी जिन्हें धर्म कथा के प्राचीन श्रद्धा भरे वातावरण में प्रस्तुत किया जा सकता है। कथा आयोजकों को प्राचीन परम्परा को जीवित रखते हुए उसमें नवजीवन का संचार कर देना समय की अति महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। उसकी पूर्ति के लिए महिला जागरण अभियान अति कुशलता और दूरदर्शिता के साथ योजनाबद्ध रूप से प्रवेश करेगा।

महिला जागरण शाखाएँ स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप इन कथा आयोजनों की व्यवस्था बनाकर लोक-शिक्षण के अति महत्त्वपूर्ण कार्य को सुगमता और सफलतापूर्वक अग्रसर कर सकती हैं। उन्हीं में कुछ सुयोग्य महिलाएँ संस्कार, जन्म-दिवस, पर्व-त्योहार, कथा, प्रवचन आदि की अपनी क्षमता विकसित कर सकती हैं। इस प्रकार का प्रशिक्षण शान्तिकुंज में व्यवस्थित रूप से मिलता है।

संगठन, सत्संग और प्रचार व्यवस्था की जहाँ त्रिवेणी बह निकले कि वहाँ अभियान अपनी प्रौढ़ावस्था में पहुँच गया। प्रतिभाशाली महिलाएँ कुछ समय के अनुभव अभ्यास के उपरान्त यह क्रिया-कलाप बहुत ही अच्छी तरह चला सकती हैं और भविष्य में नारी उत्थान के लिए जो उच्चस्तरीय कदम बढ़ाये जाने हैं, उनकी नींव जमाने वाले सुदृढ़ आधार खड़े कर सकती हैं। पुरुष सूत्र संचालन करें और स्त्रियाँ उसे दिशा दें, आवश्यक उत्साह प्रकट करें तो कोई कारण नहीं कि नारी पुनरुत्थान की सुखद सम्भावनाओं को मूर्तिमान न बनाया जा सके।

जन्म-जात पशु संस्कारों के प्रतीक आरम्भिक बाल काटकर उनके स्थान पर संस्कृति की प्रतीक शिक्षा स्थापित की जाती है। मस्तिष्क पर आदर्शवादी मान्यताओं का अधिकार सिद्ध करने वाली धर्म-ध्वजा फहराई जाती है। मुण्डन के अवसर पर यह समझाया जा सकता है कि बच्चे का ही नहीं सारे परिवार का मानसिक विकास आवश्यक है और उस महान उपलब्धि के लिए किस प्रकार का चिन्तन और कर्तृत्व होना आवश्यक है।

(५) विद्यारम्भ संस्कार में विद्या की आवश्यकता, उपयोगिता एवं सही दिशा के सम्बन्ध में घर के हर सदस्य को जानकारी मिलती है और यह बताया जाता है कि ज्ञान सम्पदा के अभिवर्द्धन में परिवार के हर सदस्य का पूरा उत्साह और अनवरत प्रयत्न बना रहना चाहिए। नीरोगता और समृद्धि की तरह ही विद्या सम्पदा पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए और उसके लिए क्या-क्या किया जाना चाहिए।

यों यह पाँचों संस्कार छोटे बालकों के मनाये जाते हैं, पर वस्तुतः बच्चे तो निमित्त हैं। वे तो बेचारे कुछ समझते तक नहीं। आयोजन में वास्तविक शिक्षण पूरे परिवार का तथा उपस्थित सम्बन्धी-पड़ोसियों का होता है। घर-घर प्रशिक्षण प्रक्रिया चल पड़े, इसके लिए इन आयोजनों का प्रचलन महिला जागरण की सभी सदस्याओं के यहाँ होना चाहिए । छोटे बच्चों का सिलसिला प्रायः चलता ही रहता है। किसी महीने किसी का नामकरण तो कुछ महीने बाद किसी का अन्नप्राशन, किसी का मुण्डन इस प्रकार किसी न किसी बहाने बार-बार परिवार प्रशिक्षण के अवसर आते रहेंगे और उपयोगी प्रेरणाओं से उन लोगों को बारबार प्रभावित किया जाता रहेगा। यह परिवार निर्माण की दृष्टि से एक बहुत ही उत्तम विधि-व्यवस्था है, जिसे प्रचलित करने के लिए महिला जागरण अभियान शाखाओं को पूरा -पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

व्यक्ति निर्माण की दृष्टि से जन्मदिन मनाने का बहुत महत्व है। जिस सदस्या का जन्म-दिन जब हो उस दिन उसके घर छोटा उत्सव किया जाना चाहिए। मनुष्य जन्म कितना बहुमूल्य है? किस उद्देश्य के लिए मिला है और पुण्य-प्रयोजन की पूर्ति के लिए चिन्तन एवं कर्तृत्व की दिशा क्या होना चाहिए? इस तथ्य को अनेकों उदाहरण देकर बताया, सिखाया जा सकता है और जिसका जन्म दिन है उसे प्रेरणा दी जा सकती है कि वह अपना सुरदुर्लभ जन्म सार्थक करने के लिए अपनी वर्तमान गतिविधियों में क्या हेर-फेर कर सकता है? यह व्यक्ति निर्माण की शिक्षा है जिससे सभी उपस्थित लोग अपने अपने लिए प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं। यों महिलाएँ अपने-अपने बच्चों के जन्मदिन खुशी मनाने की दृष्टि से मनाती रहती हैं, अपना उद्देश्य उससे कहीं ऊँचा है। इसलिए शाखा की ओर से बच्चों का जन्म दिन नहीं सदस्याओं का ही मनाने की परम्परा रखी गई है ताकि उस दिन उसे आत्म-चिन्तन की नई प्रेरणा प्राप्त करने का अवसर मिले।

यह सभी संस्कार आयोजन ऐसे हैं जिन्हें महिलाएँ ही मिल-जुलकर मना सकती हैं। हवन, कर्मकाण्ड आदि के मन्त्र एवं विधान सभी ऐसे सरल हैं जिन्हें शिक्षित महिलाएँ कुछ ही दिन के प्रयत्न से बहुत अच्छी तरह सीख सकती हैं। आयोजनों में खर्च कुछ रुपये ही रखा गया है। अपनी पद्धति से कम खर्च में हवन आदि कृत्य हो जाते हैं। जन-पान, चाय-पान आदि से स्वागत की खर्चीली प्रथा इन आयोजनों में सर्वथा निषिद्ध ठहरा दी गई है ताकि गरीब से गरीब स्थित के लोग भी उन्हें पूरे उत्साह और पूरे सम्मान के साथ सम्पन्न कर सकें।

जिस प्रकार व्यक्ति-निर्माण के लिए जन्म-दिन, परिवार निर्माण के लिए संस्कार आयोजनों की अपनी धर्म परम्परा है, ठीक उसी प्रकार समाज निर्माण के लिए पर्व-त्योहार मनाये गये हैं। यह प्रचलन मुहल्ले-मुहल्ले की स्त्रियाँ भी मिल-जुलकर सामूहिक उत्सवों के रूपों में मनाना आरम्भ कर सकती हैं। यों संस्कारों और सत्संगों के माध्यम से भी छोटे आयोजन होते रहेंगे, पर उनमें नवीनता लाने के लिए पर्व-त्योहारों का मनाया जाना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इन्हें सामूहिक रूप से मनाने की पद्धति भी संस्कारों की तरह ही सरल और न्यूनतम खर्च की है। अन्तर इतना ही है कि संस्कारों में जहाँ पारिवारिक समस्याओं पर मार्ग-दर्शन किया जाता है, वहाँ पर्व, त्योहारों के आयोजनों में सामाजिक समस्याओं का स्वरूप और हल सुझाया जाता है। लोकशिक्षा की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता इस माध्यम से पूरी होती है।

कार्तिकी अमावस्या को दिवाली होती है और वह अर्थ-सन्तुलन के साथ जुड़े हुए अनेकानेक समाधान लेकर आती है । उस पर्व को मनाते हुए देश की व्यवस्था की विकृति के कारण और उन्हे सन्तुलित करने के उपाय सुझाये जा सकते हैं। इसी प्रकार माघ सुदी पंचमी को बसंत पंचमी शिक्षा की –फाल्गुन सुदी पूर्णिमा को होली स्वच्छता एवं श्रम सहयोग की, चैत्र सुदी नवमी रामनवमी मर्यादा पालन की–ज्येष्ठ सुदी दशमी गायत्री जयन्ती, आत्मिक पवित्रता की, आषाढ़ सुदी पूर्णिमा, गुरु पूर्णिमा-अनुशासन की, श्रावण सुदी पूर्णिमा श्रावणी–उपनयन परिवर्तन के साथ द्विजत्व की, पशु जीवन त्याग कर मनुष्य जीवन में प्रवेश करने की जिम्मेदारी निबाहने की, भाद्रपद वदी अष्टमी-जन्माष्टमी कृष्ण के कर्मयोग की, आश्विन सुदी दशमी विजय दशमी शक्ति संचय की प्रेरणा लेकर आती है। इन पर्वों को मनाने के उपर्युक्त समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए सामाजिक संगठन, संशोधन एवं विकास की अनेकानेक गुत्थियों के हल सुझाये जा सकते हैं। समाज निर्माण की शिक्षा इस माध्यम से उत्साहवर्द्धक वातावरण में ही अच्छी तरह हो सकती है। धर्म परम्पराओं के निर्वाह के साथ-साथ लोक-शक्ति को जाग्रत, परिष्कृत संगठित एवं विकसित करने का यह तरीका इतना उत्तम कि भारत की वर्तमान परिस्थितियों में लोक-शिक्षण का और कोई उपाय सोचा ही नहीं जा सकता है।

इसके अतिरिक्त रामायण कथा और सत्यनारायण कथा के आयोजन अपने-अपने घरों पर, शाखा में अथवा मुहल्ला स्तर पर होते रह सकते हैं। मिशन ने सत्यनारायण कथा का अभिनव स्वरूप बना दिया है, जिससे इस धर्म प्रयोजन का सहारा लेकर वह सब कुछ कहा जा सका है, जो आज की स्थिति में कहने योग्य है। इसी प्रकार रामायण सप्ताह अथवा न्यूनाधिक समय तक उस कथा के आयोजन रखे जाएँ। तो उससे व्यक्ति, परिवार समाज को अभिनव रचना के अति महत्त्वपूर्ण सूत्र जन-मानस में उतारे जा सकते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए रामायण कथा, सत्यनारायण कथा आदि पुस्तकों की रचना की जा चुकी है और उनका सर्वत्र प्रचलन हो रहा है।

लोक-शिक्षण में कथा-साहित्य का कितना महत्त्व है यदि इस तथ्य को समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि महिला शाखाओं को यह माध्यम अनिवार्य रूप में अपनाना ही चाहिए।

लेखकों, पुस्तक विक्रेताओं और प्रकाशकों का क्षेत्र प्रधान रूप से कथा-साहित्य होता है। आधी से अधिक पुस्तकें कथापरक छपती और बिकती हैं। यह लोक-रुचि सनातन है। वेद चार ही लिखे जा सके, पर पुराण अठारह और उपपुराण अठारह लिखे गये। चारों वेदों में मात्र २० हजार मन्त्र हैं, पर अकेला महाभारत ही एक लाख श्लोकों का अर्थात् चारों वेदों का पाँच गुना है। अन्य कई पुराण भी इतने ही बड़े हैं । संस्कृत में नाटक काव्य आदि कथा-साहित्य के अन्य ग्रन्थ भी कम नहीं हैं। व्रतों-पर्वों के साथ अगणित कथाएँ जुड़ी हुई हैं और वे चावपूर्वक कही-सुनी जाती हैं। वह प्राचीन अभिरुचि अभी भी ज्यों की त्यों बनी हुई। आज भी कथा-कहानियों का, पत्रिकाओं में प्रमुख स्थान रहता है। फिल्में आखिर कहानियों का दृश्य रूप ही तो हैं। नाटक अभिनय, गीत वाद्यों में प्रायः कथा प्रसंग ही जुड़े रहते हैं। लोकरुचि इसी क्षेत्र के इर्द-गिर्द उमड़ती-घुमड़ती रहती है।

महिला जागरण अभियान का क्षेत्र यों मुख्य रूप से परिवार निर्माण है, पर उसी के साथ व्यक्ति निर्माण और समाज निर्माण के घटक अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। इस प्रकार से यह समूची मानवता को पुनः प्राणप्रतिष्ठा का अभिनव प्रयोग है, इसके लिए अन्यान्य साधनों के अतिरिक्त कथा प्रसंगों को भी साथ लेकर चलना होगा।

सामान्यता बच्चों को प्रेरणाप्रद कहानियाँ सुनाने की छोटी-सी बात को लेकर आगे बढ़ना है, सभी सदस्याएँ बच्चों के लिए ज्ञानवर्द्धक एवं दिशा देने वाली कहानियाँ सीखेंगी और उन्हें किस आयु के लोगों के लिए किस प्रकार कहना चाहिए यह कला अपनायेंगी। हर घर में रात्रि को कहानियाँ कहने का प्रचलन होना चाहिए । नानी की कहानी की उक्ति प्रसिद्ध है। वृद्धाएँ तथा जिनके पास अवकाश रहता है वे इस कार्य को बड़ी आसानी से कर सकती हैं। उनको उत्साह न होने पर काम-काजी महिलाएँ भी किसी प्रकार उसके लिए समय निकाल सकती हैं। यो आज ऐसी कहानियों की भारी कमी है जो मात्र मनोरंजन न होकर बच्चों को दिशा एवं प्रेरणा दे सकें, फिर भी उन्हें ढूँढ़ा और उपलब्ध कराया ही जाएगा।

बच्चों में कहानियाँ सुनने का सहज भाव होता है। जब वह सिलसिला चल पड़े तो घर के अन्य लोग भी खिसक कर वहीं आ इकट्ठे होते हैं। कथा सुनने में आनन्द तो सभी को आता ही है। इस प्रकार कहानियाँ कहने की प्रक्रिया यदि सुनियोजित और दूरदर्शितापूर्ण आधार लेकर चलाई जाए तो इस मखौल जैसे दिखने वाले कार्य से भी अगणित सत्परिणाम प्रस्तुत हो सकते हैं। व्यक्तियों के निर्माण में कथा प्रचलन की अनुपम भूमिका हो सकती है।

अपनी युग निर्माण योजना मासिक पत्रिका गत आठ वर्षों से इसी प्रयोजन के लिए निकल रही है। उसमें पौराणिक, ऐतिहासिक एवं आधुनिक महामानवीय तथा महान् घटनाक्रमों का वर्णन इस प्रकार रहता है कि कहानी पढ़ने-सुनने का आनन्द लेते हुए अन्तस्तल में आदर्शवादी परम्पराओं को प्राण-प्रतिष्ठा की जा सके।

प्राचीन कथाओं को नये संदर्भ में प्रस्तुत करने की अपनी अभिनव योजना है। सत्यनारायण कथा का प्रचलन बहुत पुराना है, उसके आधारों में ऐसे परिवर्तन किये गये हैं कि जन-मानस के नव-निर्माण में उसकी महती भूमिका हो सकती है। रामचरित्र कृष्ण चरित्र के लिए रामायण, महाभारत में अति उपयोगी प्रसंग मौजूद हैं । अवतारी, देवताओं, ऋषियों एवं महामानवों के ऐसे चरित्रों को भी जिन्हें धर्म कथा के प्राचीन श्रद्धा भरे वातावरण में प्रस्तुत किया जा सकता है। कथा आयोजकों को प्राचीन परम्परा को जीवित रखते हुए उसमें नवजीवन का संचार कर देना समय की अति महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। उसकी पूर्ति के लिए महिला जागरण अभियान अति कुशलता और दूरदर्शिता के साथ योजनाबद्ध रूप से प्रवेश करेगा।

महिला जागरण शाखाएँ स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप इन कथा आयोजनों की व्यवस्था बनाकर लोक-शिक्षण के अति महत्त्वपूर्ण कार्य को सुगमता और सफलतापूर्वक अग्रसर कर सकती हैं। उन्हीं में कुछ सुयोग्य महिलाएँ संस्कार, जन्म-दिवस, पर्व-त्योहार, कथा, प्रवचन आदि की अपनी क्षमता विकसित कर सकती हैं। इस प्रकार का प्रशिक्षण शान्तिकुंज में व्यवस्थित रूप से मिलता है।

संगठन, सत्संग और प्रचार व्यवस्था की जहाँ त्रिवेणी बह निकले कि वहाँ अभियान अपनी प्रौढ़ावस्था में पहुँच गया। प्रतिभाशाली महिलाएँ कुछ समय के अनुभव अभ्यास के उपरान्त यह क्रिया-कलाप बहुत ही अच्छी तरह चला सकती हैं और भविष्य में नारी उत्थान के लिए जो उच्चस्तरीय कदम बढ़ाये जाने हैं, उनकी नींव जमाने वाले सुदृढ़ आधार खड़े कर सकती हैं। पुरुष सूत्र संचालन करें और स्त्रियाँ उसे दिशा दें, आवश्यक उत्साह प्रकट करें तो कोई कारण नहीं कि नारी पुनरुत्थान की सुखद सम्भावनाओं को मूर्तिमान न बनाया जा सके।

जन समर्थन एवं सहयोग प्राप्त करें

महिला जागरण अभियान के अन्तर्गत समाज के प्रत्येक पक्ष को नारी उत्कर्ष की आवश्यकता समझानी पड़ेगी। अभ्यास में आयी हुई अवांछनीयताएँ भी सहज स्वभाव बन जाती हैं। इतना ही नहीं रुचिकर और उन्नत भी प्रतीत होने लगती हैं। हजारों वर्ष से नारी को पददलित स्थिति और प्रतिबन्धित स्थिति में रहना पड़ा है। ऐसी दशा में जो कुछ ढर्रा चल रहा है, यह अभ्यस्त हो गया है और उन्नत भी लगने लगा है। लोकमान्यता इसी प्रकार की है कि नारी का जन्म ही नर के नीचे दबकर रहने और उसके उचित-अनुचित दबाव स्वीकार करते रहने के लिए ही हुआ है। तथाकथित धर्मशास्त्रों में भी ऐसे प्रतिबन्धों के समर्थन में बहुत कुछ लिखा गया है। उन्हीं मानवोचित स्वतन्त्रता का समर्थन न तो पुरातनपंथी लोकमान्यताएँ करती हैं और न आदर्शवाद की दुहाई देने वाले ही उसके लिए जोरदार आवाज उठाते हैं।

इतने पर भी यह तथ्य अपने स्थान पर अटल है कि आधी जनसंख्या यदि गयी-गुजरी स्थिति में पड़ी रही तो मनुष्य जाति का अस्तित्व क्रमशः अधिकाधिक अंधकारमय बनता जाएगा। नारी के रूप में आधा जन-समूह यदि परावलम्बी बना रहे तो नर को उनका कमर तोड़ने वाला भार वहन करना पड़ेगा। स्वावलम्बन के लिए सक्षम नारी अपने परिवार की आर्थिक स्थिति में निश्चित रूप से योगदान कर सकती है। राष्ट्रीय समृद्धि की अभिवृद्धि में नारी के श्रम एवं कौशल का योगदान रहना ही चाहिए। शिक्षित नारी परिवार संस्था में भावनात्मक सौजन्य का वातावरण बनाने एवं सुव्यवस्थित शालीनता की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। शिक्षा और स्वावलम्बन के अवसर निर्बाध रूप से नारी को मिलने लगें इसके लिए लोक-चेतना उत्पन्न करने के लिए नये सिरे से प्रबल प्रयत्न करने की आवश्यता पड़ेगी।

यह प्रचारात्मक प्रयत्न अविलम्ब प्रारम्भ करने चाहिए जो नारी जागरण की आवश्यकता समझते हैं और उस प्रयोजन में योगदान देना चाहते है। इनके लिए घर-घर जाना होगा और क्या नर क्या नारी, क्या शिक्षित क्या अशिक्षित, क्या प्रगतिशील क्या प्रतिगामी सभी को यह समझना पड़ेगा कि समय की पुकार और न्याय की गुहार को अनसुना न कर दिया जाय। नवयुग की इस पुण्य प्रभात वेला में हम नव-जागरण का अलख जगाने के लिए घर-घर पहुँचने का कार्यक्रम बनाना चाहिए। महिला जागरण अभियान की संगठन शाखाओं को यह कार्य अपने हाथ में अविलम्ब लेना चाहिए और उसमें अनवरत रूप से संलग्न रहना चाहिए।

समर्थन प्राप्त करना पहला काम है और सहयोग प्राप्त करना इससे अगला। प्रतिगामी मान्यताएँ अपनाये रहकर हम क्या कर चुके और प्रगतिशील विचारों का आश्रय कर प्रगति के पथ पर कितनी द्रुतगति से बढ़ा जा सकता है, इस सन्दर्भ में तर्क और तथ्य भरी प्रचार सामग्री जन-साधारण तक पहुँचानी पड़ेगी।

समर्थक उत्पन्न करने के लिए प्रचार ही एकमात्र उपाय है। उसके उपाय एवं माध्यम अनेकों हो सके हैं। लेखनी, वाणी, गीत, वाद्य, अभिनय आदि जो भी उपाय जहाँ जिस तरह अपनाये जा सकें वहाँ उनके लिये हर सम्भव उपाय करना चाहिए। पिछले दिनों तो हम हानि को लाभ और लाभ को हानि समझने की उल्टी राह पर चलते रहे हैं, फलस्वरूप आगे बढ़ने के स्थान पर पीछे हटने की दिशा में ही पैर पड़े हैं।

अब प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक नारी को वह बच्चों वाला पाठ नये सिरे से पढ़ाना पड़ेगा कि प्रगाढ़ मैत्री के लिए समान स्तर की भी अपेक्षा होती है । स्वेच्छा समर्पित सघन सहयोग और बाधित विवशता से कुछ करते रहने में बहुत अन्तर होता है। जेल में कैदी भी काम करते हैं और किसान परिवार के सदस्य भी। दोनों के श्रम और मनोयोग में कितना अन्तर होता है और उनके परिणामों में कितनी भिन्नता रहती है, इस तथ्य को कहीं भी किसी भी क्षेत्र में परखा जा सकता है। स्वामी बनकर नर-नारी के शरीर की क्रियाशक्ति का,ही लाभ उठा सकता है। मन की शक्ति एवं उपयोगिता समझी जाएँ और सहयोग मन का भी लेना हो, तो यह रीति नीति नहीं चलेगी जो आज चल रही है। पिछड़ी और पददलित नारी गले में बँधा पत्थर बनकर रहेगी, किन्तु यदि उसे सुयोग्य, सुविकसित, सुसंस्कृत बनने दिया जाये तो वह गृह-लक्ष्मी बनकर अपने इसी टूटे-फूटे घरौंदे को इन्हीं अभावग्रस्त परिस्थितियों मे भी स्वर्ग का छोटा संस्करण बनाकर रख सके। विचारशील नर को नये सिरे से सोचने के लिए कहा जाता है कि वह विवेक का सहारा ले, रूढ़ियों का गुलाम न बने। दूरदर्शी दृष्टि से देखे कि प्रतिगामी व्यवहार ही श्रेयष्कर है या नारी के प्रति प्रचलित दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन भी आवश्यक है? इन तथ्यों को आधार मानकर अपना, अपने साथी का परिवार का, समाज का, हित-चिन्तन कर सकना सम्भव है। अतः प्रत्येक विचारशील व्यक्ति की नारी पुनरुत्थान- एक अत्यधिक महत्वपूर्ण और तुरन्त अपनाया जाने वाला कदम मानना पड़ेगा और उस दिशा में बढ़ चलने के लिए साहस जुटाना होगा।

प्रत्येक नारी को यह समझाया जाना कि यह यथास्थिति बनाये रहने को थकी और टूटी हुई स्थिति में पड़ी रहने मे सन्तोष करे भी, तो अपना, अपने पति का-परिवार का और पूरे समाज का मात्र अहित ही करती रहेगी। उसके भीतर भी प्रगतिशील मनुष्यों जितनी ही प्रतिभा है। उस क्षमता का असीम लाभ उसके निकटवर्ती लोगों को मिल सकता है। तथाकथित शील-सकोच न तो नैतिक है न धार्मिक। यह आत्महीनता और बाधित विवशता की सम्मिलित प्रतिक्रिया मात्र है। वास्तविक शील

निर्वाह-आन्तरिक, सैद्धान्तिक और निष्ठागत होता है। उसका निर्वाह हेय स्थिति में पड़े बिना भी हो सकता है। नारी को अपनी प्रतिभा और साहसिकता विकसित करनी चाहिए और मनुष्योचित वर्चस्व प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए। इसी में व्यक्ति और समाज का कल्याण है।

पथरीली, जमीन को जोतने और उसके कंकड़-पत्थर बटोरने से लेकर नया खाद-पानी देकर बीज बोने तक में किसान को जो श्रम करना पड़ता है वही हमें करना होगा। कुरीतियों और मूढ़-मान्यताओं के लोक-मानस के सुविस्तृत क्षेत्र को रेगिस्तान बना दिया है। उसकी सफाई करने-उत्पादक बनाने के लिए, भागीरथ प्रयत्नों की आवश्यकता होगी। इसके बिना वह वातावरण नहीं बन सकता जिनमें नारी उत्कर्ष के मार्ग से अवरोध हट सकें और प्रगति के लिए अभीष्ट साधन जुट सकें। यह सब जन सहयोग से ही सम्भव है। उसे पाने से पूर्व तो समर्थन एकत्रित करना होगा। जब समर्थन ही नहीं तो सहयोग कैसा? समर्थकों में से ही सहयोगी निकलते हैं। अस्तु, हमारा प्रथम प्रयास अधिकाधिक समर्थन जुटाना ही होना चाहिए। इसके लिए 'प्रचार-प्रचार-प्रचार' की दिशा में उत्कृष्ट प्रयत्नशीलता अपनानी पड़ेगी। यह कार्य जाग्रत आत्माओं का है। ये भले ही आज थोड़े हों यदि जन सम्पर्क और जन-जागरण के लिए उठ खड़े होंगे और जहाँ कहीं तक अपना प्रभाव क्षेत्र है- परिचय क्षेत्र है, वहाँ तक नव-चेतना उत्पन्न करने में लगेंगे-तो मूढ़ मान्यताओं की जड़ें निश्चित रूप से हिल जाएँगी सत्य अपने साथ है- लक्ष्य अपने साथ है- न्याय और विवेक का समर्थन अपनी-पीठ पर है फिर कोई कारण नहीं कि यह ज्योति यदि लोक-मानस तक पहुँचायी जा सके तो व्यापक जन-समर्थन नारी उत्कर्ष के लिए न मिल सके । कौन-किस प्रकार किन लोगों से, प्रचार के लिए क्या सहयोग अपने काम में ले सकता है, यह सोचना हर जाग्रत आत्मा का अपना काम है। ऊपर कुछ उपाय सुझाये जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त अन्य उपाय अपनी समझ से स्थानीय परिस्थितियों को देखते हुए सोचे और अपनाये जा सकते हैं।

समर्थक होते हुए भी कई व्यक्ति आलस्य अथवा संकोचवश मन की बात मन में ही सँजोये रहते हैं, उसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए एकाकी साहस नहीं जुटा पाते। ऐसे लोगों को संगठित करना और छोटे-छोटे काम सौंपना-उनकी सक्रियता बढ़ाने का एकमात्र उपाय है। जो एकाकी नहीं बन पड़ता वह अन्य लोगों के साथ मिल जाने से सहज भी सम्भव हो जाता है। तीर्थयात्रा के लिए एक चलता है तो अन्य कई लोगों में भी उत्साह उत्पन्न होता है और पूर्व तैयारी न होते हुए भी देखा-देखी कई लोग तत्कल चल पड़ते हैं। साहस भरी सक्रियता अनेक में अनुकरण की इच्छा उत्पन्न करती है। हमें कुछ न कुछ प्रचारात्मक, रचनात्मक और सुधारात्मक कार्यक्रम बनाते ही रहने चाहिए और उनमें सम्मिलित होने के लिए, सहयोग देने के लिए समर्थकों को घसीटते रहना चाहिए।

सबसे पहले श्रम और समय का सहयोग माँगा जाना चाहिए, धन की माँग इससे कहीं पीछे करनी चाहिए। यों साधनों के बिना प्रगतिशील कार्यक्रम भी नहीं बन सकते और साधन जुटाना पैसे पर निर्भर है। उतना सब होते हुए भी यह ध्यान रखना चाहिए कि सामान्य स्तर का मनुष्य केवल अपने विलास और अपव्यय के क्षेत्र में ही उदार होता है। लोकहित के कार्यों से उनका वास्ता नहीं पड़ता रहा है इसलिए वे उतने आवश्यक नहीं समझे जाते हैं कि जिनके लिए पैसा खर्च किया जाय। अस्तु, आमतौर से लोग जबानी जमा-खर्च तो बहुत करते हैं-ठेल ठाल करने पर समय भी देने लगते हैं- पर जब पैसे का प्रश्न सामने रखा जाता है तो बगलें झाँकने लगते हैं। दबाव देकर कुछ ले भी लिया जाय तो फिर इस भय से सहयोग देना भी बन्द कर देते हैं कि पीछे भी इस तरह की माँग-जाँच हो सकती है और इस झंझट से अपना पैसा गँवाना पड़ सकता है।

यह कठिनाई आर्थिक नहीं मनोवैज्ञानिक है। लोग ढेरों पैसा अपने परिवार के लिए खर्च करते हैं-सम्पत्ति बढ़ाने और जमा करने के लिए भी प्रयत्न चलते रहते हैं। आमदनी बहुत कम होती है सो बात भी नहीं है। सार्वजनिक कार्यों में समय अथवा धन देने का प्रश्न लोकहित में अनुदान देने की आवश्यकता न समझ पाने और पैसा सहयोग देने का अभ्यास न होने की अड़चन के साथ उलझ जाता है। जिन कार्यों की उपयोगिता सुलझ जाती है और जिनके लिए भावन उठ पड़ती है, उनमें निर्धन मनुष्य भी अपना पेट काट कर उतना दे गुजरता है, जिसका अनुपात देखकर धनपति भी आश्चर्यचकित रह जाते हैं। इसके विपरीत सुसम्पन्न लोग थोड़ी-सी राशि देने में भी कष्ट अनुभव करते हैं। यह सब उपयोगिता न समझने और वैसे कार्यों में सहयोग देने का अभ्यास न होने के कारण ही होता है।

अस्तु, महिला जागरण अभियान के आरम्भिक वर्षों में संगठनात्मक और प्रचारात्मक जैसे छोटे-छोटे कार्यक्रम ही लिए गये हैं, जिनमें समय और श्रम भर देने से काम चल सकता है और पैसे की बहुत थोड़ी आवश्यकता की पूर्ति आरम्भ में संगठन-कर्त्ताओं को-जाग्रत आत्माओं को अपनी जेब से करने की बात सोचनी चाहिए। प्रारम्भ उन्हीं के कन्धों पर अधिक बोझ पड़ेगा, सो उन्हें सब कार्यों में नेतृत्व करने की साहसिकता के साथ-साथ अर्थ सहयोग देने में भी अपना अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करना चाहिए। आर्थिक कमी हो तो भोजन-वस्त्र जैसी आवश्यकताओं में कुछ स्तर गिरा कर थोड़ी बचत की जा सकती है। जमा पूँजी कुछ हो तो उनमें से कुछ खर्चा जा सकता है। कई फालतू चीजें बेकार पड़ी होती हैं, उन्हें बेच-बेच कर भी इस पुण्य-परमार्थ में लगाया जा सकता है। अपने साधनों पर विचार करने से कहीं न कहीं प्रकाश की ऐसी किरण जरूर दीख जाएगी, जहाँ से अभियान के कल्पवृक्ष को सींचने के लिए कुछ साधन बिन्दु की श्रद्धांजलि अर्पित की जा सके।

आगे चलकर तो समय और श्रम ही नहीं साधनों का सहयोग भी माँगना पड़ेगा और इसके लिए अनुरोध से लेकर आग्रह के स्तर तक जाना पड़ेगा। जिनके पास जो कुछ है, उसका सर्वोत्तम अंश युग देवता के चरणों में अर्पित करने को प्रेरणा देना वस्तुतः सबसे बड़ा उपकार है। उपर्युक्त प्रयोजनों के लिए जो जितना आत्मयोग देता है- वह उतने ही अंश में तृप्ति लाभ करता, शान्ति पाता और धन्य बनता है। इसमें लेने की अपेक्षा देने वाले का अधिक लाभ है। यह समझ सकने की स्थिति जब तक न आये तब तक प्रचार अभियान के माध्यम से जो समर्थक उत्पन्न किये गये हैं, उनसे हलका-फुलका सहयोग लेना चाहिए। आवश्यकता बताते हुए हल्का-सा अनुरोध भर देना चाहिए और स्वेच्छापूर्वक जो जितना दे सके उससे उतना लेकर सन्तुष्ट हो जाना चाहिए और उतने भर के लिए उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करनी चाहिए। पर समयदान के लिए तो आरम्भ से ही आग्रह किया जा सकता है।

आरम्भिक दिनों से ही चल पड़ने लायक कितने ही कार्यक्रम हैं, जिन सबकी सफलता समर्थकों के श्रम, सहयोग एवं समय दान पर निर्भर है। महिलाओं को साप्ताहिक सत्संगों में, घरों-घरों पर होने वाले संस्कार आयोजनों में सम्मिलित होते रहने के लिए न केवल उत्साहित किया जाना चाहिए वरन् समय-समय पर घर जाकर उन्हें बुलाकर भी लाना चाहिए। पर्व-त्योहार सामूहिक रूप से मनाये जाएँ और उनमें नर और नारी समान रूप से सम्मिलित हुआ करें। झोला पुस्तकालय चलाते रहने के लिए समय दान अनिवार्य है। प्रौढ़ पाठशाला के साथ जुड़ी हुई विविध शिक्षा पद्धति को सुसंचालित रखने के लिए शिक्षार्थी छात्रों के संस्कार बढ़ाना, अध्यापक के लिए शिक्षार्थियों का जुटाना, कार्यालय एवं विद्यालय के लिए स्थान तथा उपकरणों का जुगाड़ बिठाना- अभियान की अनेकानेक गतिविधियों को आरम्भ करने से लेकर उन्हें प्रगति के उच्चस्तर तक पहुँचाना अनायास ही नहीं हो सकता। इसके लिए समय और मनोयोग लगाना पड़ेगा। शाखा के संस्थापक एवं संचालक यह सारा बोझ स्वयं ही वहन नहीं कर सकते। प्रयत्न यह करते रहना चाहिए कि इन उत्तरदायित्वों को उठाने में जिससे जो सेवा-सहयोग लिया जा सकता है उसे जरूर लिया जाय। कोई कुछ विशेष काम न कर सके तो आयोजनों में सम्मिलित होने के लिए अमुक क्षेत्र के घरों में निमन्त्रण देने और यथा समय बुलाये जाने का काम तो कोई भी कर सकता है। जो इनसे बड़े काम कर सके उनसे वह लेना चाहिए।

नियमित रूप से अथवा यदा-कदा-सप्ताह में एक दिन पर्वों के दिन, जैसा भी बन पड़े, प्रभात-फेरियाँ निकाली जा सकती हैं। दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखने के लिए मुहल्लों का विभाजन करके उस कार्य में उपयुक्त लड़के-लड़कियों को लगाया जा सकता है। रविवार के दिन कविता सम्मेलन का आयोजन एक स्थान पर या जगह अदल-बदल कर किया जा सकता है। मीठे गले वाले छात्र-छात्राओं को अगले सप्ताह याद करके लाने और सम्मेलन में सुनाने के लिए छाँटी हुई कविताएँ एक सप्ताह पूर्व दी जा सकती हैं और कविता पाठ का तरीका महिला गोष्ठी में बुलाकर व्यावहारिक रूप से सिखाया जा सकता है। थोड़ी दौड़-धूप कर ली जाया करे तो हर सप्ताह या यथाअवसर ऐसे कविता सम्मेलन होते रह सकते हैं। संगीत का प्रबन्ध भी साथ में बन पड़े तो और भी अच्छा है। यह प्रक्रिया थोड़ी अधिक विकसित कर ली जाय तो एकांकी, नाटक, प्रहसन, अभिनव गान जैसे मनोरंजक तथा ज्ञानवर्द्धक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का रूप बन सकता है। यह सब उतना व्यय साध्य नहीं जितना समयसाध्य और श्रमसाध्य है।

वसन्त पर्व और गुरु पूर्णिमा वर्ष के दो बड़े आयोजन हैं। साल में एक बार वार्षिकोत्सव महिला सम्मेलन बड़े रूप में होना ही चाहिए। उसमें जितने अधिक लोगों का जितना अधिक सहयोग होना ही चाहिए। प्रचार, पण्डाल निर्माण, यज्ञ प्रबन्ध, प्रभात फेरी, जुलूस, सूचना, आमंत्रण एवं बुलावा, भोजन प्रबन्ध, सभा व्यवस्था, हिसाब-किताब, अर्थ-संग्रह, अतिथि सत्कार जैसे अनेक कार्य उस अवसर पर करने होते हैं। इनमें कई-कई व्यक्तियों को कई-कई तरह के काम सौंपे जा सकते हैं।

नारी पुनरुत्थान की दिशा में हर स्थिति में हर व्यक्ति कुछ न कुछ तो निश्चित रूप से कर ही सकता है। यदि आवश्यकता को भली प्रकार समझ लिया जाय और समस्या का समाधान महत्वपूर्ण प्रतीत होने लगे तो शिक्षित, अशिक्षित, नर-नारी, बाल-वृद्ध, धनी-दरिद्री, हर किसी के लिए यह सम्भव है कि वह अपनी वर्तमान स्थिति में रहते हुए भी किसी न किसी प्रकार सहयोग कर सकें।

अपने घरों की स्त्रियों का स्तर ऊँचा उठाने के लिए उन्हें कई प्रकार की सुविधा दी जा सकती है। जो शिक्षित हैं, वे ठान लें कि परिवार की स्त्रियों में जो निरक्षर हैं, उन्हें साक्षर बनाने के लिए नित्य ही कुछ समय नियमित रूप से दिया करेंगे। जो पढ़ी हैं उन्हें पथ प्रशस्त करेंगे। शिक्षित व्यक्ति यदि प्रतिज्ञा कर लें कि वे अपने घर की महिलाओं की शिक्षा बढ़ाने के लिए लगातार प्रयत्न करेंगे तो नारी अशिक्षा निवारण की दिशा में बहुत काम हो सकता है। आठवें दर्जे से ऊँची कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चों में भी यह योग्यता हो जाती है कि वे अपनी बहिनों, भतीजियों तथा माता, चाची, ताई, बुआ आदि को रुचिपूर्वक पढ़ा सकें और खेल-खेल में ही सीमा तक इस महा-अभियान के भागीदार बन सकें।

वृद्ध लोग अथवा गृहपति घर की महिलाओं में पढ़ने का उत्साह उत्पन्न करने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग कर सकते हैं। बड़े लोग आग्रहपूर्वक समझावें तो जिन महिलाओं में उत्साह न हो उनकी भी इच्छा जाग सकती

है। व्यस्त लोग स्वयं नहीं पढ़ सकते तो घर की स्त्रियों को तो उसका अवसर दे ही सकते हैं। सिलाई की मशीन मँगा दी जाय और पास-पड़ौस से ही सिखाने की कुछ व्यवस्था जुटा दी जाय तो महिलाओं में अपनी कला-कुशलता बढ़ाने और घर की आर्थिक बचत में योगदान करने की उत्कण्ठा जगेगी और वे उसमें अधिक प्रवीण बनने तथा ऐसे ही अन्य उपयोग सीखने का प्रबन्ध करेंगी। घरेलू शाक-वाटिका के लाभ प्रत्यक्ष हैं। इस महँगाई के जमाने में मुफ्त शाक-भाजी मिलते रहना बहुत बड़ी बात है। टूट-फूट की मरम्मत किसी कारीगरों को कुछ घण्टे या दिनों के लिए बुलाकर आसानी से सिखायी जा सकती है। यदि मर्द चाहें तो अपने परिवार में बाजा, ढोलक, तबला आदि का प्रबन्ध करके तथा कुछ दिनों के लिए शिक्षिका का प्रबन्ध करके संगीतपरक भावनात्मक वातावरण उत्पन्न कर सकते हैं। इन कामों में थोड़ा खर्च तो पड़ेगा पर उससे प्रगति की दिशा में जो उत्पन्न होगा, वह अन्ततः बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगा। यदि शाखा ने प्रौढ़-पाठशाला स्थापित कर दी हो, तब तो उसमें घर की महिलाओं को भेजने-धकेलने के लिए सभी विचारशील व व्यक्तियों को पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए। इसी प्रकार अपने क्षेत्र में जिन गृह उद्योगों की गुंजायश हो उन्हें घर में लगाने, महिलाओं को सिखाने एवं कच्चा माल लाने तथा बना माल बेचने में रुचिपूर्वक सहयोग देना चाहिए। प्रश्न यह नहीं कि कितना लाभ कमाया। मूल बात निर्माण के लिए, उपार्जन के लिए, उत्साह उत्पन्न करना है। इस छोटे आरम्भ का प्रगतिशील परिणाम कई दिशा में फूटता है और उससे समूचे परिवार को अनेक दृष्टियों से लाभान्वित होने का अवसर मिलता है।

अध्यापिकाओं को अपने स्कूली समय के उपरान्त काफी अवकाश रहता है। उस समय को वे प्रौढ़ महिला पाठशाला चलाने के लिए दे सकती हैं। उन्हें अनुभव भी होता है और छात्राओं के अभिभावकों से सम्पर्क भी। वे चाहें तो इस प्रकार की पाठशाला आसानी से चला सकती हैं। प्रौढ़ छात्राएँ ढूँढ़ निकालना और साथ देने के लिए दूसरी अन्य अध्यापिका को तैयार कर लेना उनके लिए कुछ कठिन नहीं होना चाहिए। वयोवृद्ध रिटायर अध्यापक भी इस प्रयोजन में सहयोग दे सकते हैं। संगीत तथा गृह उद्योगों के जानकार इन पाठशालाओं के लिए अपना थोड़ा-थोड़ा समय देकर इस प्रशिक्षण का पथ-प्रशस्त कर सकते हैं।

पुरुष चाहें तो अपने घर की उत्साही महिलाओं को नव-जागरण अभियान में सम्मिलित होने से रोक भी सकते हैं और वे चाहें तो अनिच्छाग्रस्त मनःस्थिति में भी आकांक्षा जगा सकते हैं, सुबोध दे सकते हैं। समय की माँग है कि पुरुष वर्ग रोके नहीं वरन् उन्हें प्रगतिशील कदम बढ़ाने के लिए आवश्यक उत्साह, मार्गदर्शन एवं सहयोग प्रदान करें। यह कदम ऐसे हैं जिन्हें कामकाजी, अशिक्षित एवं निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी उठा सकते हैं। व्यस्त पुरुषों को भी प्रायः आधा समय घर-परिवार के साथ रहने में बिताना पड़ता है। यदि इस समय में घर की नारियों को विकासोन्मुख होने के लिए प्रोत्साहन तथा साधन प्रदान करते रहे तो निश्चित रूप में हर समझदार व्यक्ति कम से कम अपने परिवार की महिलाओं को ऊँचा उठाने में बहुत हद तक सफल हो सकता है। हर घर में इस प्रकार किये जाने वाले प्रयासों का प्रभाव पाठशालाओं पर, उनके स्तर एवं सफलता पर भी पड़ेगा तथा परिवार की व्यवस्था एवं उसके सन्तुलन में भी उल्लेखनीय लाभ होगा।

अभियान की उपयोगिता और विशालता पर विचार करने वाले प्रत्येक सद्भाव सम्पन्न व्यक्ति का अन्तरात्मा यह स्वीकार करेगा कि मातृपक्ष को समर्थ बनाने के लिए उसका भी कुछ न कुछ योगदान होना ही चाहिए। यह आर्थिक सहायता के रूप में भी हो सकता है। शिक्षा, स्वावलम्बन जैसे प्रयोजनों के ढाँचे खड़े करने पग-पग पर पैसे की जरूरत पड़ेगी। प्रचारात्मक, रचनात्मक और संघर्षात्मक स्तर के कितने ही कदम उठाने पड़ेंगे और वे सभी ऐसे साधनों की अपेक्षा रखेंगे जो पैसे से ही सम्भव हो सकते हैं। इसके लिए अपनी आमदनी का एक अंश देने की बात सोची जानी चाहिए और उसे युग की माँग समझकर उदारतापूर्वक गाँठ खोलनी चाहिए। स्थानीय प्रौढ़ पाठशाला तथा अभियान की अन्यान्य गतिविधियों को अग्रसर करने के लिए अर्थ-व्यवस्था करना उदार मन वाले व्यक्तियों की सद्भावना पर ही निर्भर रहेगा। ऐसे सहयोगी कम न पड़ने चाहिए।

पत्रकार, प्रकाशक, साहित्यकार, कवि, गीतकार, चित्रकार, अभिनेता, वक्ता, नेता जैसा प्रभावशाली वर्ग के लोग अपने कृतित्व से लोकमानस की नारी के प्रति अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाने और स्वेच्छापूर्वक उसे मानवी अधिकार लौटाने के लिए भावभरी प्रेरणाएँ दे सकते हैं। उनका रुझान समूचे समाज के रुझान को प्रभावित कर सकता है। धनी वर्ग को अपनी दानशीलता की धारा कुछ दिन तो इस मरुस्थल को सींचने के लिए विशेष रूप से नियोजित रखनी ही चाहिए।

जन शक्ति, श्रम शक्ति, बुद्धि शक्ति, प्रभाव शक्ति, धन शक्ति इन पाँचों ही विभूतियों को नारी जागरण अभियान के लिए आमन्त्रित और नियोजित किया जाना चाहिए। आवश्यकताएँ असीम और बहुमुखी हैं, उन्हें पूरा करने के लिए जो साधन जुटाने पड़ेंगे, वे उदारमना विवेकशील लोगों के सहयोग से ही पूरे होंगे, युग चाहता है कि जाग्रत आत्माएँ कृपणता न बरतें, वरन् बढ़ा-चढ़ा उदार योगदान प्रस्तुत करें।

युग की पुकार सुनें—स्वयं आगे बढ़ें

महिला जागरण के सम्बन्ध में बहुत-सी योजनाएँ बनी हैं और बहुत से कार्यक्रम चालू किये गये हैं। उन सबको

आगे चलकर तो समय और श्रम ही नहीं साधनों का सहयोग भी माँगना पड़ेगा और इसके लिए अनुरोध से लेकर आग्रह के स्तर तक जाना पड़ेगा। जिनके पास जो कुछ है, उसका सर्वोत्तम अंश युग देवता के चरणों में अर्पित करने को प्रेरणा देना वस्तुतः सबसे बड़ा उपकार है। उपर्युक्त प्रयोजनों के लिए जो जितना आत्मयोग देता है- वह उतने ही अंश में तृप्ति लाभ करता, शान्ति पाता और धन्य बनता है। इसमें लेने की अपेक्षा देने वाले का अधिक लाभ है। यह समझ सकने की स्थिति जब तक न आये तब तक प्रचार अभियान के माध्यम से जो समर्थक उत्पन्न किये गये हैं, उनसे हलका-फुलका सहयोग लेना चाहिए। आवश्यकता बताते हुए हल्का-सा अनुरोध भर देना चाहिए और स्वेच्छापूर्वक जो जितना दे सके उससे उतना लेकर सन्तुष्ट हो जाना चाहिए और उतने भर के लिए उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करनी चाहिए। पर समयदान के लिए तो आरम्भ से ही आग्रह किया जा सकता है।

आरम्भिक दिनों से ही चल पड़ने लायक कितने ही कार्यक्रम हैं, जिन सबकी सफलता समर्थकों के श्रम, सहयोग एवं समय दान पर निर्भर है। महिलाओं को साप्ताहिक सत्संगों में, घरों-घरों पर होने वाले संस्कार आयोजनों में सम्मिलित होते रहने के लिए न केवल उत्साहित किया जाना चाहिए वरन् समय-समय पर घर जाकर उन्हें बुलाकर भी लाना चाहिए। पर्व-त्योहार सामूहिक रूप से मनाये जाएँ और उनमें नर और नारी समान रूप से सम्मिलित हुआ करें। झोला पुस्तकालय चलाते रहने के लिए समय दान अनिवार्य है। प्रौढ़ पाठशाला के साथ जुड़ी हुई विविध शिक्षा पद्धति को सुसंचालित रखने के लिए शिक्षार्थी छात्रों के संस्कार बढ़ाना, अध्यापक के लिए शिक्षार्थियों का जुटाना, कार्यालय एवं विद्यालय के लिए स्थान तथा उपकरणों का जुगाड़ बिठाना- अभियान की अनेकानेक गतिविधियों को आरम्भ करने से लेकर उन्हें प्रगति के उच्चस्तर तक पहुँचाना अनायास ही नहीं हो सकता। इसके लिए समय और मनोयोग लगाना पड़ेगा। शाखा के संस्थापक एवं संचालक यह सारा बोझ स्वयं ही वहन नहीं कर सकते। प्रयत्न यह करते रहना चाहिए कि इन उत्तरदायित्वों को उठाने में जिससे जो सेवा-सहयोग लिया जा सकता है उसे जरूर लिया जाय। कोई कुछ विशेष काम न कर सके तो आयोजनों में सम्मिलित होने के लिए अमुक क्षेत्र के घरों में निमन्त्रण देने और यथा समय बुलाये जाने का काम तो कोई भी कर सकता है। जो इनसे बड़े काम कर सके उनसे वह लेना चाहिए।

नियमित रूप से अथवा यदा-कदा-सप्ताह में एक दिन पर्वों के दिन, जैसा भी बन पड़े, प्रभात-फेरियाँ निकाली जा सकती हैं। दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखने के लिए मुहल्लों का विभाजन करके उस कार्य में उपयुक्त लड़के-लड़कियों को लगाया जा सकता है। रविवार के दिन कविता सम्मेलन का आयोजन एक स्थान पर या जगह अदल-बदल कर किया जा सकता है। मीठे गले वाले छात्र-छात्राओं को अगले सप्ताह याद करके लाने और सम्मेलन में सुनाने के लिए छाँटी हुई कविताएँ एक सप्ताह पूर्व दी जा सकती हैं और कविता पाठ का तरीका महिला गोष्ठी में बुलाकर व्यावहारिक रूप से सिखाया जा सकता है। थोड़ी दौड़-धूप कर ली जाया करे तो हर सप्ताह या यथाअवसर ऐसे कविता सम्मेलन होते रह सकते हैं। संगीत का प्रबन्ध भी साथ में बन पड़े तो और भी अच्छा है। यह प्रक्रिया थोड़ी अधिक विकसित कर ली जाय तो एकांकी, नाटक, प्रहसन, अभिनव गान जैसे मनोरंजक तथा ज्ञानवर्द्धक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का रूप बन सकता है। यह सब उतना व्यय साध्य नहीं जितना समयसाध्य और श्रमसाध्य है।

वसन्त पर्व और गुरु पूर्णिमा वर्ष के दो बड़े आयोजन हैं। साल में एक बार वार्षिकोत्सव महिला सम्मेलन बड़े रूप में होना ही चाहिए। उसमें जितने अधिक लोगों का जितना अधिक सहयोग होना ही चाहिए। प्रचार, पण्डाल निर्माण, यज्ञ प्रबन्ध, प्रभात फेरी, जुलूस, सूचना, आमंत्रण एवं बुलावा, भोजन प्रबन्ध, सभा व्यवस्था, हिसाब-किताब, अर्थ-संग्रह, अतिथि सत्कार जैसे अनेक कार्य उस अवसर पर करने होते हैं। इनमें कई-कई व्यक्तियों को कई-कई तरह के काम सौंपे जा सकते हैं।

नारी पुनरुत्थान की दिशा में हर स्थिति में हर व्यक्ति कुछ न कुछ तो निश्चित रूप से कर ही सकता है। यदि आवश्यकता को भली प्रकार समझ लिया जाय और समस्या का समाधान महत्वपूर्ण प्रतीत होने लगे तो शिक्षित, अशिक्षित, नर-नारी, बाल-वृद्ध, धनी-दरिद्री, हर किसी के लिए यह सम्भव है कि वह अपनी वर्तमान स्थिति में रहते हुए भी किसी न किसी प्रकार सहयोग कर सकें।

अपने घरों की स्त्रियों का स्तर ऊँचा उठाने के लिए उन्हें कई प्रकार की सुविधा दी जा सकती है। जो शिक्षित हैं, वे ठान लें कि परिवार की स्त्रियों में जो निरक्षर हैं, उन्हें साक्षर बनाने के लिए नित्य ही कुछ समय नियमित रूप से दिया करेंगे। जो पढ़ी हैं उन्हें पथ प्रशस्त करेंगे। शिक्षित व्यक्ति यदि प्रतिज्ञा कर लें कि वे अपने घर की महिलाओं की शिक्षा बढ़ाने के लिए लगातार प्रयत्न करेंगे तो नारी अशिक्षा निवारण की दिशा में बहुत काम हो सकता है। आठवें दर्जे से ऊँची कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चों में भी यह योग्यता हो जाती है कि वे अपनी बहिनों, भतीजियों तथा माता, चाची, ताई, बुआ आदि को रुचिपूर्वक पढ़ा सकें और खेल-खेल में ही सीमा तक इस महा-अभियान के भागीदार बन सकें।

वृद्ध लोग अथवा गृहपति घर की महिलाओं में पढ़ने का उत्साह उत्पन्न करने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग कर सकते हैं। बड़े लोग आग्रहपूर्वक समझावें तो जिन महिलाओं में उत्साह न हो उनकी भी इच्छा जाग सकती

है। व्यस्त लोग स्वयं नहीं पढ़ सकते तो घर की स्त्रियों को तो उसका अवसर दे ही सकते हैं। सिलाई की मशीन मँगा दी जाय और पास-पड़ौस से ही सिखाने की कुछ व्यवस्था जुटा दी जाय तो महिलाओं में अपनी कला-कुशलता बढ़ाने और घर की आर्थिक बचत में योगदान करने की उत्कण्ठा जगेगी और वे उसमें अधिक प्रवीण बनने तथा ऐसे ही अन्य उपयोग सीखने का प्रबन्ध करेंगी। घरेलू शाक-वाटिका के लाभ प्रत्यक्ष हैं। इस महँगाई के जमाने में मुफ्त शाक-भाजी मिलते रहना बहुत बड़ी बात है। टूट-फूट की मरम्मत किसी कारीगरों को कुछ घण्टे या दिनों के लिए बुलाकर आसानी से सिखायी जा सकती है। यदि मर्द चाहें तो अपने परिवार में बाजा, ढोलक, तबला आदि का प्रबन्ध करके तथा कुछ दिनों के लिए शिक्षिका का प्रबन्ध करके संगीतपरक भावनात्मक वातावरण उत्पन्न कर सकते हैं। इन कामों में थोड़ा खर्च तो पड़ेगा पर उससे प्रगति की दिशा में जो उत्पन्न होगा, वह अन्तत: बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगा। यदि शाखा ने प्रौढ़-पाठशाला स्थापित कर दी हो, तब तो उसमें घर की महिलाओं को भेजने-ढकेलने के लिए सभी विचारशील व व्यक्तियों को पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए। इसी प्रकार अपने क्षेत्र में जिन गृह उद्योगों की गुंजायश हो उन्हें घर में लगाने, महिलाओं को सिखाने एवं कच्चा माल लाने तथा बना माल बेचने में रुचिपूर्वक सहयोग देना चाहिए। प्रश्न यह नहीं कि कितना लाभ कमाया। मूल बात निर्माण के लिए, उपार्जन के लिए, उत्साह उत्पन्न करना है। इस छोटे आरम्भ का प्रगतिशील परिणाम कई दिशा में फूटता है और उससे समूचे परिवार को अनेक दृष्टियों से लाभान्वित होने का अवसर मिलता है।

अध्यापिकाओं को अपने स्कूली समय के उपरान्त काफी अवकाश रहता है। उस समय को वे प्रौढ़ महिला पाठशाला चलाने के लिए दे सकती हैं। उन्हें अनुभव भी होता है और छात्राओं के अभिभावकों से सम्पर्क भी। वे चाहें तो इस प्रकार की पाठशाला आसानी से चला सकती हैं। प्रौढ़ छात्राएँ ढूँढ निकालना और साथ देने के लिए दूसरी अन्य अध्यापिका को तैयार कर लेना उनके लिए कुछ कठिन नहीं होना चाहिए। वयोवृद्ध रिटायर अध्यापक भी इस प्रयोजन में सहयोग दे सकते हैं। संगीत तथा गृह उद्योगों के जानकार इन पाठशालाओं के लिए अपना थोडा-थोड़ा समय देकर इस प्रशिक्षण का पथ-प्रशस्त कर सकते हैं।

पुरुष चाहें तो अपने घर की उत्साही महिलाओं को नव-जागरण अभियान में सम्मिलित होने से रोक भी सकते हैं और वे चाहें तो अनिच्छाग्रस्त मन:स्थिति में भी आकांक्षा जगा सकते हैं, सुबोध दे सकते हैं। समय की माँग है कि पुरुष वर्ग रोके नहीं वरन् उन्हें प्रगतिशील कदम बढ़ाने के लिए आवश्यक उत्साह, मार्गदर्शन एवं सहयोग प्रदान करें। यह कदम ऐसे हैं जिन्हें कामकाजी, अशिक्षित एवं निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी उठा सकते हैं। व्यस्त पुरुषों को भी प्राय: आधा समय घर-परिवार के साथ रहने में बिताना पड़ता है। यदि इस समय में घर की नारियों की विकासोन्मुख होने के लिए प्रोत्साहन तथा साधन प्रदान करते रहे तो निश्चित रूप में हर समझदार व्यक्ति कम से कम अपने परिवार की महिलाओं को ऊँचा उठाने में बहुत हद तक सफल हो सकता है। हर घर में इस प्रकार किये जाने वाले प्रयासों का प्रभाव पाठशालाओं पर, उनके स्तर एवं सफलता पर भी पड़ेगा तथा परिवार की व्यवस्था एवं उसके सन्तुलन में भी उल्लेखनीय लाभ होगा।

अभियान की उपयोगिता और विशालता पर विचार करने वाले प्रत्येक सद्भाव सम्पन्न व्यक्ति का अन्तरात्मा यह स्वीकार करेगा कि मातृपक्ष को समर्थ बनाने के लिए उसका भी कुछ न कुछ योगदान होना ही चाहिए। यह आर्थिक सहायता के रूप में भी हो सकता है। शिक्षा, स्वावलम्बन जैसे प्रयोजनों के ढाँचे खड़े करने पग-पग पर पैसे की जरूरत पड़ेगी। प्रचारात्मक, रचनात्मक और संघर्षात्मक स्तर के कितने ही कदम उठाने पड़ेंगे और वे सभी ऐसे साधनों की अपेक्षा रखेंगे जो पैसे से ही सम्भव हो सकते हैं। इसके लिए अपनी आमदनी का एक अंश देने की बात सोची जानी चाहिए और उसे युग की माँग समझकर उदारतापूर्वक गाँठ खोलनी चाहिए। स्थानीय प्रौढ़ पाठशाला तथा अभियान की अन्यान्य गतिविधियों को अग्रसर करने के लिए अर्थ-व्यवस्था करना उदार मन वाले व्यक्तियों की सद्भावना पर ही निर्भर रहेगा। ऐसे सहयोगी कम न पड़ने चाहिए।

पत्रकार, प्रकाशक, साहित्यकार, कवि, गीतकार, चित्रकार, अभिनेता, वक्ता, नेता जैसा प्रभावशाली वर्ग के लोग अपने कृतित्व से लोकमानस की नारी के प्रति अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाने और स्वेच्छापूर्वक उसे मानवी अधिकार लौटाने के लिए भावभरी प्रेरणाएँ दे सकते हैं। उनका रुझान समूचे समाज के रुझान को प्रभावित कर सकता है। धनी वर्ग को अपनी दानशीलता की धारा कुछ दिन तो इस मरुस्थल को सींचने के लिए विशेष रूप से नियोजित रखनी ही चाहिए।

जन शक्ति, श्रम शक्ति, बुद्धि शक्ति, प्रभाव शक्ति, धन शक्ति इन पाँचों ही विभूतियों को नारी जागरण अभियान के लिए आमन्त्रित और नियोजित किया जाना चाहिए। आवश्यकताएँ असीम और बहुमुखी हैं, उन्हें पूरा करने के लिए जो साधन जुटाने पड़ेंगे, वे उदारमना विवेकशील लोगो के सहयोग से ही पूरे होंगे, युग चाहता है कि जाग्रत आत्माएँ कृपणता न बरतें, वरन् बढ़ा-चढ़ा उदार योगदान प्रस्तुत करें।

युग की पुकार सुनें— स्वयं आगे बढ़ें

महिला जागरण के सम्बन्ध में बहुत-सी योजनाएँ बनी हैं और बहुत से कार्यक्रम चालू किये गये हैं। उन सबको

पूरा करने में समाज के बहुत से अंगों को अपने-अपने हिस्से की भूमिका निभानी होगी। लेकिन उन सबमें सबसे प्रधान भूमिका स्वयं नारी की ही होगी। नारी के खोये हुए गौरव को और छीने हुए अधिकारों को वापिस किसी भी ढंग से, किसी के भी द्वारा लाया जाये, लेकिन उन्हें धारण तो नारी ही करेगी। अपने महान् गौरव के अनुकूल तथा अधिकारों के सदुपयोग के योग्य क्षमता नारी को अपने अन्दर विकसित करनी ही होगी। इसके लिए नारी समाज को सबसे अधिक प्रयास करना होगा।

इस दिशा में प्रयास करने से नारी को उसकी झिझक ही रोकती है। झिझक भी दो प्रकार की है। एक तो इतने दिनों तक जिस ढर्रे में नारी चली है, वह कितना ही दुःखदायी हो-नारी को आदत में शामिल हो गया है। उसे लगा है कि शायद वह इस ढर्रे से हटकर चल न सकेगी। यह झिझक अपनी स्थिति को देखकर उसमें उठती है। दूसरी झिझक समाज को देखकर पैदा होती है। लगता है जो विकृतियाँ समाज में इतने दिनों से घर बनाये हुए हैं- वे कैसे दूर होंगी? नारी के अधिकारों को कौन स्वीकार करेगा? उसे समानता का स्तर देना किसे अच्छा लगेगा?

यह दोनों ही प्रकार की झिझक बिल्कुल भ्रान्तिपूर्ण है। हर नारी को और उसका हित चाहने वालों को इन्हें अपने मन से निकाल फेंकना चाहिए। नारी चेतना रूप है। तीव्र से तीव्र परिवर्तन भी उसके लिए स्वाभाविक है। उसके लिए यह रोजमर्रा का क्रम है। बेटी आज अपना घर छोड़ती है-और कल बहू बनकर एकदम नये वातावरण में, पहले से बिल्कुल भिन्न जीवनक्रम अपना लेती है। दोनों जीवनों में जमीन-आसमान जैसा अन्तर होता है, पर वह उसे स्वाभाविक रूप से निभा लेती है। कर्तव्य की माँग के अनुसार अपने आपको ढाल लेने की अद्भुत क्षमता नारी को जन्म से ही प्राप्त है। नारी जागरण से सम्बन्धित कोई भी परिवर्तन उसके लिए कठिन या अस्वाभाविक नहीं है।

इसी प्रकार समाज में फैले हुए नारी के प्रति दृष्टिकोण और व्यवहार को देखकर भी शंका नहीं की जानी चाहिए। यह युग परिवर्तन का समय है, नये युग के चिह्न अब साफ दिखाई देने लगे हैं। पुराने समय की सड़ी-गली मान्यताएँ और अनैतिक परम्पराएँ अब टिक नहीं सकतीं, इसके प्रमाण सभी तरफ मिल रहे हैं। राजनैतिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, धार्मिक क्षेत्र, सभी में पिछले ही दिनों ऐसे परिवर्तन हुए हैं जिन्हें असाधारण ही कहा जा सकता है। जनता को अपना दास तथा धरती को अपनी जागीर समझने का पैदायशी हक समाप्त हो चुका है । राजा भगवान का रूप है और वह चाहे जैसी मनमानी कर सकता है, यह मान्यता अपनी जड़ छोड़ चुकी है। उसके स्थान पर जनतन्त्र स्थापित हो गया है। सामाजिक क्षेत्र में जिसके पास अधिक धन संचित है वह भाग्यशाली होता है, यह मान्यता पहले कभी रही होगी? अब तो उसे अनैतिकता का चिन्ह माना जाता है। समान वितरण की परिपाटी जोर पकड़ती चली जा रही है। उत्पादन के लिए समान श्रम और उपयोग के लिए बराबरी का हक सबको दिया जाने की स्थिति बनती जा रही है। धार्मिक जगत में वंश-वेष के नाम पर पूजा और श्रद्धा पाने वालों की उपेक्षा होने लगी है, उसके स्थान पर ज्ञान और कर्म की कसौटियों को मान्यता मिल रही है। भारत में,जन्म के कारण ही अछूत कहे जाने वाली लगभग एक तिहाई आबादी ने यह अनीति मानने से इन्कार कर दिया है और हर समझदार का समर्थन तथा सहयोग भी उन्हें प्राप्त है। मनुष्य द्वारा मनुष्य का गुलाम बनाकर, उससे पशुओं की तरह व्यवहार करना दुनिया के किसी भी भाग में अब सहन नहीं किया जाता। पीड़ित वर्ग तथा समाज का विचारशीलवर्ग इस दिशा में एकजुट हो गया है। उसके संयुक्त धक्के से यह पाशविक प्रथा चरमराकर टूट चुकी है।

यह सब परिवर्तन इस बात के प्रमाण हैं कि जमाना तेजी से बदल रहा है, समय की गति कोई रोक नहीं सकता । विश्व की आधी जनसंख्या महिला समाज की समस्या का समाधान भी समय की माँग है, उसे पूरा होना ही है। पुरुष समाज का झूठा अहंकार इसमें रुकावट नहीं डाल सकता। इसी प्रकार स्वयं नारी समाज भी आलस्य या आदत के कारण प्रगति की उपेक्षा नहीं कर सकता। जो भी समय के प्रवाह के साथ चलने में ढील दिखायेगा उसे ही जोरदार झटका खाना पड़ेगा।

नवयुग के अनुरूप सबसे पहले नारी समाज को अपनी मान्यताओं में हेर-फेर करना पड़ेगा। परिवर्तनों का आधार इसके बाद ही बन पड़ेगा । हर एक नारी को यह अनुभव करना होगा कि उसका जन्म कुछ व्यक्तियों की उचित-अनुचित इच्छापूर्ति करते रहने और बदले में पेट भर लेने भर के लिए नहीं, बल्कि किसी विशेष प्रयोजन के लिए हुआ है। अगले दिनों अपने कन्धों पर आने वाले महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों को पूरा करने में समर्थ सिद्ध होने के लिए नारी को अपनी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता का विकास करने के लिए पूरी-पूरी रुचि लेनी चाहिए। खान-पान, रहन-सहन सम्बन्धी नियमों का पालन करने में अधिक से अधिक सतर्कता बरतनी चाहिए। प्रकृति के कठोर नियम किसी के साथ भी ढिलाई नहीं बरतते। जो भी उनकी उपेक्षा या अवज्ञा करता है वही मार खाता है। अपने ऊपर भी कमजोरी और रोगों के तमाचे न पड़ें, इसलिए पहले से ही सतर्क रहना चाहिए। सभी जानते हैं कि जीभ का चटोरापन, वासनात्मक असंयम, अनियमितता तथा अस्तव्यस्त दिनचर्या और दिमागी तनाव जैसे कारण ही स्वास्थ्य की बर्बादी के प्रमुख कारण है। आलस्य, प्रमाद और अस्वच्छता से बचा जा सके तो सब कुछ उत्साहवर्द्धक बना रहेगा। स्वास्थ्य रक्षा के नियमों की जानकारी सभी को रहती है या थोड़ी-सी पूछताछ करने से ही मिल सकती है। नारी वर्ग उसके बारे में उपेक्षा भर न बरते। यदि आहार विहार, श्रम-विश्राम आदि में सतर्कता और व्यवस्था बरती जाय तो गरीबी में भी स्वास्थ्य ठीक

रखा जा सकता है। आमतौर से पुरुषों द्वारा खाने, सोने में अनियमितता बरतने के कारण स्त्रियों का अधिकतर समय ऐसे ही बर्बाद चला जाता है। वे न तो ठीक से विश्राम कर पाती हैं और न शिक्षा-मनोरंजन आदि के लिए ही समय निकाल पाती हैं। प्रयत्न करना चाहिए कि परिवार के हर सदस्य की दिनचर्या नपी-तुली हो और किसी के कारण किसी को बेकार की परेशानी न सहनी पड़े। इतना बन पड़े तो स्त्रियों को अपना स्वास्थ्य संरक्षण कर सकना भी संभव हो जाएगा और मानसिक विकास के लिए काफी समय मिल सकना भी सम्भव हो जाएगा।

मानसिक विकास के लिए शिक्षा की अनिवार्य रूप से आवश्यकता है। महिलाओं को और उनके हितैषियों को चाहिए कि वे वस्त्र, आभूषण, सौन्दर्य-शृंगार, सम्मान, विनोद आदि सबसे अधिक महत्व शिक्षा को दें। विद्या से बढ़कर कोई सम्पत्ति नहीं। अशिक्षितों की तुलना पशुओं और अन्धों से की जाती है यह बहुत हद तक सही भी है। बिना पढ़े लोगों का ज्ञान घर-गृहस्थी और पास-पड़ौस से मिलने वाली जानकारियाँ तक ही सीमित रहता है। शिक्षितों का साहित्य के सहारे दुनिया भर के विद्वानों द्वारा दिये गये अति महत्त्वपूर्ण ज्ञान का लाभ मिलता है उस ज्ञान की सम्पत्ति के आधार पर मनुष्य कितना ऊँचा उठ सकता है, इसकी असीम सम्भावना को केवल शब्दों से नहीं समझाया जा सकता। अशिक्षित व्यक्ति जीवन के किसी भी क्षेत्र में महत्वपूर्ण सफलता नहीं पा सके हैं। इसलिए जिन्हें अपना भविष्य अच्छा बनाने की इच्छा हो उन्हें सुशिक्षित बनने के लिए पूरा प्रयास करना ही चाहिए।

निरक्षर महिलाएँ साक्षर बनने का प्रयत्न करें और साक्षर अपनी ज्ञान-सम्पदा बढ़ाने के लिए उपयोगी साहित्य का नियमपूर्वक अध्ययन करें। एकमात्र स्कूली-परीक्षाएँ पास कर लेने से ही शिक्षा का उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता। व्यक्ति एवं समाज की जीवन से सम्बन्धित अनेकानेक समस्याओं का स्वरूप और सही समाधान जानना जरूरी है। इसके लिए अनुभवी युगदृष्टाओ के विचारों को समझना आवश्यक है। बेतुके उपन्यास को, ऐसे ही दूसरे बेहूदे साहित्य को पढ़ने से ज्ञान-संवर्द्धन का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता, इसके लिए ऐसी पुस्तकें चाहिए जो महिला जीवन से सम्बन्धित हर पक्ष की आदर्शवादी किन्तु व्यावहारिक शिक्षा दे सकने में समर्थ हों । जो ऊँची स्कूली शिक्षा पा चुके हैं वे भी जीवन के लिए उपयोगी ज्ञान की दृष्टि से प्राय: पिछड़े हुए ही रहते हैं। इस अभाव की पूर्ति के लिए मिल-जुल कर साधन जुटाने का प्रयत्न करना चाहिए। आवश्यक है कि हर जगह ऐसे पुस्तकालयों की स्थापना हो जिनमें महिला-समस्या के समाधान प्रस्तुत करने वाला उपयोगी साहित्य पर्याप्त मात्रा में हो । जिससे उस क्षेत्र की ज्ञान की भूख शान्त करने का साधन बनता रहे।

यह निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि जाग्रत और जीवन्त नारी को नवयुग में अतिमहत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व सँभालने हैं। जाग्रत महिला अगले दिनों प्रगति के सभी क्षेत्रों में अपनी समुचित भूमिका प्रस्तुत करने में तत्पर दिखाई देगी। देश की आर्थिक उन्नति में उनका बढ़ा-चढ़ा योगदान होगा। कुटीर उद्योगों का संचालन प्राय: उसी के हाथ में होगा। पुरुष घर से बाहर सम्भव हो सकने वाले अपेक्षाकृत अधिक कड़े परिश्रम के काम अपने जिम्मे रखेंगे और गृह-व्यवस्था, शिशु-पालन के साथ-साथ नारी कुटीर उद्योगों को सँभाल लेगी। घर में रहते हुए ऐसा कर सकना उसके लिए सरल पड़ेगा। सरकारी समितियाँ उन्हें कच्चा माल देने और बने माल को खरीद कर बाजार में खपाने का उत्तरदायित्व अपने जिम्मे लेंगी तो छोटे बड़े असंख्य गृह उद्योग पनपते हुए दिखाई देंगे। नारी की बेकारी, बेबसी और गरीबी तो इसी उपाय से दूर हो सकती है। हर परिवार के लिए अतिरिक्त आय का स्रोत खुल सकता है। निर्माण की प्रसुप्त प्रतिभा जंग पड़ने से उसके अगणित लाभ मिलते दिखाई देंगे। देश की सम्पन्नता में निश्चित रूप से अभिवृद्धि होगी।

राजनैतिक क्षेत्र में इन दिनों जो आपा-धापी चल रही है, उसके समाधान का सहज उपाय यह है कि शासन संस्थाओं में नारी को चुनकर भेजा जाय । उनकी जन्मजात हृदयता एवं उदारता का समावेश जब राजनीति में होगा, तो आज के छल-दम्भ उसमें से निकल कर ही रहेंगे और राजनीति भी धर्म नीति की तरह ही पवित्र बनकर रहेगी। पुरुष ने चिरकाल से शासन सूत्र सम्भाला है। अब उसके अनुभव नारी को देने के लिए उसे अपनी पकड़ कुछ ढीली करनी चाहिए। टाउन एरिया, म्यूनिसिपल बोर्ड, जिला परिषद, विधान सभा लोक, सभा, आदि में स्थान उसे देना चाहिए ताकि इस आशा का उदय हो सके कि सत्ता किसी वर्ग विशेष की बपौती नही है। उनके संचालन-निर्वाह का उत्तरदायित्व दूसरों को भी उठाने देने वाली उदारता का आरम्भ हो गया।

साहित्य क्षेत्र में, कला क्षेत्र में नारी का प्रवेश होगा तो निश्चित रूप से वह अपनी शालीनता सुरक्षित रखेगी। उसकी कलम से अश्लीलता और कामुकता भड़काने वाला, अपराधी प्रवृत्तियाँ उभारने वाला कुत्सित साहित्य नहीं लिखा जा सकता। मातृशक्ति को द्रौपदी की तरह निर्वसन करने की, सरस्वती को वेश्या स्तर पर घसीट लाने की उच्छृंखलता तो पुरुष ही बरतता रहा है। लेकिन नारी अपनी निज की गरिमा को इस प्रकार कलंकित न होने देगी। वह जो कुछ लिखेगी अपने पिता, पति, भाई और पुत्र में सद्भावना सम्पन्न बनाने वाली ही हो सकता है। प्रेस प्रकाशन, पत्रकारिता, साहित्य विक्रय के क्षेत्र में नारी को वर्चस्व इसलिए सौंपा जाना चाहिए कि आज इन क्षेत्रों में घुसी हुई विकृतियों का निराकरण कर सकना उसी की शालीनता द्वारा सम्भव हो सकता है।

कोई किसी की आत्मा को लोभ अथवा मद दिखा कर खरीद ले तो बात दूसरी है अन्यथा नारी की आत्मिक कलाकारिता यदि स्वेच्छापूर्वक कला मंच में, उन्मुक्त वातावरण में प्रवेश करेगी तो उसका संगीत अभिनय पूरी

तरह शालीनता से ही पूरा होगा। पवित्रता और प्रकाशवान् प्रखरता से भरा हुआ कला मंच किस प्रकार मानवी अन्तरात्मा को परिष्कृता बना सकता है। इसकी कल्पना करने मात्र से पुलकन उत्पन्न होती है।

सार्वजनिक सेवाओं और सरकारी विभागों में भले ही अन्य सारे विभाग पुरुष को दे दिये जाएँ, पर शिक्षा, चिकित्सा और समाज कल्याण तो मात्र नारी के लिए ही सुरक्षित रखे जाने चाहिए। यों उसे हर क्षेत्र में प्रवेश करके अपनी विशेष प्रतिभा का परिचय देने का अवसर मिलना चाहिए, पर उपर्युक्त तीन विभाग ऐसे हैं जिनमें अधिक सहृदयता और स्नेहसिक्तता एवं अधिक सृजनात्मकता की आवश्यकता है। नारी अपने सहज स्नेह से बालकों के अन्तःकरण को गुदगुदाती हुई न केवल जानकारियाँ ही उनके मस्तिष्क में उतारेंगी वरन् आत्मा में सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों का सफल बीजारोपण भी करेंगी। रोगी अपने चिकित्सक से मात्र औषधि ही नहीं चाहता वरन् उससे सहानुभूति की भी अपेक्षा करता है। कहना न होगा कि यह भण्डार के नर पास न्यून ही है। उसकी विपुलता तो भगवान् ने नारी में ही भरी है जिसके पास कुछ है वही तो दूसरे को कुछ दे सकेगा। समाज की विकृतियों का अधिक दुष्परिणाम नारी को ही भुगतना पड़ा है। अपने काँटे को आप निकालने और अपने घावों पर मरहम लगाने में उसकी सहज उत्कण्ठा रहेगी। समाजगत अविचारों, अनाचारों, दुष्प्रवृत्तियों से वह न केवल लड़ सकती है वरन् उसके स्थान पर नई सृजनात्मक परम्पराओं को जन्म दे सकती है। समाज कल्याण के कार्यक्रम कुछ भी हों पर, उनके पीछे भावना यही काम करती है। निराश, निढाल, थके-हारे और रोते-खीजते जन-मानस में नवीन आशाओं, उमंगों का संचार करना नारी के द्वारा ही अधिक अच्छी तरह हो सकता है। समाज कल्याण की भावना से भरी पूरी नारी-प्रकृति ही उस स्तर के सरकारी या गैर सरकारी कामों को अधिक अच्छी तरह सम्भाल सकती है, इसमें दो रायें नहीं हो सकतीं।

सार्वजनिक सामाजिक संस्थाओं का गठन और संचालन यदि उनके हाथ में सौंपा जा सके तो आज की अखाड़ेबाजी और प्रतिद्वन्द्विता के कारण उस क्षेत्र के विपाक करते रहने वाली विभीषिका से छुटकारा मिल सकता है और लोक-मंगल का पुनीत क्षेत्र अपने मूल प्रयोजन की पूर्ति में बहुत हद तक सफल रह सकता है।

वातावरण ऊर्ध्वगामी बनायें

कुटुम्ब बड़ा हो या छोटा उसकी शोभा-सफलता इस बात में है कि सुव्यवस्था एवं सुसंस्कारिता को उसमें कितना प्रश्रय मिल रहा है और गुण, कर्म, स्वभाव की विभूति सम्पदा वहाँ किस कदर बढ़ रही है। इस प्रयोजन में गरीबी या व्यस्तता बाधक नहीं है। कठिनाई एक ही रहती है कि घर के लोगों को शरीर सुख ही ध्यान में रहता है, उनके दृष्टिकोण एवं भावना-स्तर को ऊँचा उठाने की आवश्यकता अनुभव नहीं की जाती और न उसके लिए कुछ प्रयत्न ही किया जाता है।

दूरदर्शी गृहपति अपने परिवार के लिए आर्थिक साधन जुटाते रहने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं कर देते, वरन पूरी सतर्कता और गम्भीरता के साथ यह अनुभव करते हैं कि इन आत्मीयजनों को चिन्तन एवं स्वभाव की दृष्टि से भी सुसम्पन्न बनाया जाय। जहाँ यह मान्यता काम कर रही होगी और उसके लिए प्रयत्न चल रहे होंगे वहाँ सुसंस्कारिता बढ़ेगी और उसकी बहुमूल्य फसल से घर के लोग यथासमय लाभान्वित होंगे। परिवार के प्रति मोह, ममता तो सभी रखते हैं, जहाँ यह दूरदर्शी आकांक्षा जग रही हो, समझना चाहिए कि परिवार के प्रति उत्तरदायित्व निवाहने की बात यहीं बन रही है।

स्पष्ट है कि किसी को भी हर घड़ी आदर्शवादिता अपनाने की शिक्षा नहीं दी जा सकती। इस दिशा में अति करने से उल्टी प्रतिक्रिया होती है। समयानुसार परोक्ष रूप से ही इस प्रकार का प्रशिक्षण किया जा सकता है। किसी दिशा में अधिक सोचना, उसकी उपयोगिता समझना और जो उपर्युक्त जाँचे उसे अपनाना मनुष्य का अपना काम है। इस सन्दर्भ में सहायता भर की जा सकती है। आग्रह थोपा नहीं जा सकता। यदि थोपा जा सकता हो तो गाँधीजी जैसे महापुरुष के बड़े पुत्र हीरालाल गाँधी को जहाँ-तहाँ भर्त्सना क्यों सहनी पड़ती? तब हिरण्यकश्यपु जैसे प्रभावशाली का पुत्र क्यों न अपने पिता का अनुसरण करता। थोपने से मनुष्य की जीवन्त चेतना को किसी दिशा में ढाला नहीं जा सकता, बाध्य तो शरीर ही किया जा सकता है। अन्तःचेतना को दिशा देने वाले साधन ही जुटाये जा सकते हैं। उस प्रकार की रुझान उत्पन्न करने वाला वातावरण ही बनाया जा सकता है। उसी के लिए शक्ति भर प्रयत्न करना गृहस्वामी का कर्तव्य है। इस दिशा में सतर्क और प्रयत्नशील रहा जाय तो उतने भर से बहुत काम चल सकता है।

इस सन्दर्भ में जो साधन-सामग्री जुटाई जानी चाहिए उसमें प्राथमिकता घरेलू पुस्तकालय को-ज्ञान मन्दिर को दी जानी चाहिए। यह हर विचारशील परिवार की अनिवार्य आवश्यकता है। पेट की भूख बुझाने के लिए हर परिवार का एक रसोईघर, अन्न-भण्डार अनिवार्य रूप से आवश्यक होता है। ठीक उसी प्रकार मस्तिष्क की, अन्तःकरण की-भूख बुझाने के लिए ज्ञान-भण्डार भी होना ही चाहिए। पेट का महत्त्व समझा जाय और अन्तःकरण की उपेक्षा की जाय तो ही ज्ञान-भण्डार को निरर्थक कहा जा सकता है। जो चेतना का, चिन्तन का, दृष्टिकोण का अन्तःकरण का, भाव सम्वेदनाओं का कोई मूल्य नहीं समझते जिनके लिए धन और विलास ही सब कुछ है, उन्हें ज्ञान सम्पदा का महत्त्व बताया, समझाया जा सकना कठिन है। पर जिन्होंने यह समझ लिया है कि मानवी सत्ता, चिन्तन और चेतना के स्तर पर ही समुन्नत और पवित्र होती है-सम्पन्न और दरिद्र बनती है उन्हें यह

स्मरण भर दिलाना पर्याप्त होगा कि शरीर की तरह आत्मिक चेतना की भी कुछ भूख होती है और उसका साधन जुटाना पेट भरने की सामग्री जुटाने से कम नहीं वरन् कुछ अधिक ही आवश्यकता है। घरेलू पुस्तकालय की स्थापना इसी अभाव की पूर्ति करती है।

कूड़े-कचरे की तरह किस्सा, कहानियों की धर्म ढकोसलों की बेकार पुस्तकें हर घर में पायी जा सकती हैं पर ऐसे विचारशील परिवार विरले ही मिलेंगे, जिन्होंने घर के हर सदस्य को भावनात्मक परिष्कार कर सकने वाले साहित्य को प्रयत्न करके तलाश किया हो। अच्छी पुस्तकें खरीद ली जाएँ और उन्हें उपेक्षापूर्वक किसी मेज, अलमारी में पटक दिया जाय तो उतने भर से भी कुछ काम नहीं चलता । उन्हें आवश्यक महत्त्व देने के लिए सुसज्जित स्थान पर, सुसज्जित रूप में रखना-उनका महत्व समझाना और स्नेह- दुलार के साथ पढ़ने या सुनने के लिए सहमत करना भी एक बड़ा काम है।

निम्नगामी मानसिक हलचलें उत्पन्न करने वाले-ओछे, उछले साहित्य में तो हर किसी की सहज रुचि होती है। पानी नीचे की ओर तो अपने आप बहता है, पर यदि उसे ऊपर लाना हो तो कई तरह के साधन जुटाने और श्रम करने की आवश्यकता पड़ेगी। ठीक यही बात कुरुचि को सुरुचि की ओर मोड़ने के सम्बन्ध में भी है। विवेकशीलता उत्पन्न करने वाला साहित्य आमतौर से नीरस समझा जाता है और उसे पढने में अरुचि रहती है, इस ओर रुचि उत्पन्न करना, उपयोगी पुस्तकें खरीद कर घर में रख देने से भी अधिक कठिन है। पैसा तो किसी प्रकार खर्च किया भी जा सकता है, पर यदि खरीदी पुस्तकों को किसी ने पढ़ा ही नहीं तो घर में बेकार का कूड़ा-करकट बढ़ा और उद्देश्य कुछ भी पूरा न हुआ। अस्तु, जहाँ ज्ञान मन्दिर की उपयोगिता समझी जाय, वहाँ यह जिम्मेदारी भी मानी जाय कि सारी व्यवहार-कुशलता का प्रयोग करके उन्हें पढ़ने के लिए प्रोत्साहन भी दिया जाएगा और इसकी देखभाल भी रखी जाएगी कि वैसा हो भी रहा है या नहीं।

जो बिना पढ़े हैं, उन्हें पढकर सुनाया जाना चाहिए। एक तरीका यह भी है कि इस प्रकार का साहित्य पढ़े जाने और सुने जाने का क्रम बनाया जाय और उसके लिए नियत समय निर्धारित किया जाय। यदि गृहपति स्वयं पुस्तकें सुनाने लगें और जो पढ़ा या सुना गया है उसे गहराई से समझने न समझने की परीक्षा रूप में पूछताछ करने लगें तो उस पाठन का महत्त्व और भी बढ़ सकता है और पूछताछ करने लगें तो उस पाठन का महत्त्व और भी बढ़ सकता है और कुछ दिन में सारे परिवार की सहज रुचि उस ओर ढल सकती है।

अब गुरुकुल रहे नहीं- धर्मोपदेश के नाम पर निरर्थक विडम्बनाएँ चलतीं और भ्रम फैलाती रहती हैं। जीवनोपयोगी शिक्षा के लिए घर के लोगों को किसी विद्यालय में पढ़ने भेजा जाय यह भी सम्भव नहीं। ऐसे सुयोग्य शिक्षक अपने घर में आकर रहने लगें, यह भी नहीं ऐसे सुयोग्य शिक्षक घर में आकर रहने लगें, यह भी असम्भव है। फिर ऐसे सूक्ष्मदर्शी प्रभावशाली लोग हैं भी कहाँ जो व्यक्ति की, समाज की वर्तमान समस्याओं का सही और सामयिक समाधान प्रस्तुत कर सकें। इन सब कठिनाइयों का समाधान घरेलू पुस्तकालय की स्थापना से ही सम्भव हो सकता है। जीवित या स्वर्गीय महामानवों की अति महत्त्वपूर्ण शिक्षा किसी भी समय कितने ही देर प्राप्त करते रहने, उनके साथ सत्संग करते रहने का उपाय एक ही है कि उनके ग्रन्थों को ध्यानपूर्वक, श्रद्धापूर्वक पढ़ा जाय और यह मनन किया जाय कि उस कसौटी पर अपनी स्थिति कितनी खरी उतरती है। साथ ही यह भी मनन किया जाय कि उत्कृष्टता अपनाने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है?

बड़े-बड़े धर्म-ग्रंथों से घर की शोभा बढ़ती है। आध्यात्मिक और दार्शनिक ग्रन्थ विशिष्ट लोगों के लिए, विशिष्ट प्रयोजनों के लिए लिखे हैं। परिवार के लोगों को उनके स्तर के अनुरूप उनकी समस्याओं का समाधान करने वाली पुस्तकें ही उपयोगी हो सकती हैं। बछड़े की पीठ पर हाथी का हौदा नहीं लादा जा सकता। बच्चों, किशोरों, महिलाओं, छात्रों तथा काम-काजी तरुणों की उनकी वर्तमान स्थिति में जो समस्याएँ सामने हैं उनका व्यावहारिक हल बताने वाली पुस्तकें ही घरेलू पुस्तकालय के काम की हो सकती हैं। बड़े धर्मग्रन्थ के प्रति श्रद्धा तो रखी जाय, पर साथ ही यह भी समझा जाय कि वे परिवार के सदस्यों का सामयिक एवं व्यावहारिक मार्ग-दर्शन नहीं कर सकते। ऐसी दशा में उन्हे पढ़ने का आग्रह किया जाय और वह कार्यान्वित होने भी लगे तब भी अभीष्ट प्रयोजन सिद्ध होगा। अस्तु घरेलू पुस्तकालय की स्थापना, पढ़ने के लिए प्रोत्साहन का क्रम बनाने के साथ उपयोगी पुस्तकों के चुनाव का भी अति सतर्कतापूर्वक ध्यान रखा जाना चाहिए।

इस प्रयोजन के लिए कुछ तो पैसा खर्च होता ही है। उसे अन्न, शाक, दूध, दवा, कपड़ा, साबुन स्तर का अनिवार्य रूप से आवश्यक दैनिक खर्च मानकर ही चलना चाहिए। कभी उत्साह, कभी उपेक्षा का उतार-चढ़ाव उसमें नहीं चलना चाहिए। यह दैनिक और अनिवार्य खर्च है? इसके स्मरण रखने और आदत का अंग बनाने के लिए यह विधि अपनायी जानी चाहिए कि घर के किसी पवित्र स्थान पर, पूजास्थल पर ज्ञानघट स्थापित किया जाय और इस मद को जितना महत्व दिया गया हो उतना पैसा पेटी में नियमित रूप से डाला जाय। खुले पैसों की वैसे तो अब किल्लत नहीं रही, पर यदि उसमें झंझट लगती हो तो उतने पैसे की एक छोटी पर्ची उसमें डाली जा सकती है और उन्हें हर महीने नोटों में बदला जा सकता है। इस राशि से हर महीने या कई महीने का पैसा इकट्ठा करके एक साथ कई नई पुस्तकें खरीदी जा सकती हैं।

प्रारम्भिक स्थापना के अवसर पर कुछ अधिक खर्च हो सकता है। इसके लिए अलग से एक सुन्दर कपाट बन सकता हो और उस पर ज्ञान मन्दिर का छोटा बोर्ड लग सकता हो तो घर में आने वाले अन्य लोगों को भी इसकी उपयोगिता समझने का अवसर एवं प्रोत्साहन मिल सकता है। आरम्भ मे कुछ अधिक पुस्तकें खरीदने से ही तो यह स्थापना सम्भव होगी, इसलिए उसे रेडियो, टेलीविजन, जेवर, सिलाई की मशीन, बिजली का पंखा जैसी उपयोगी वस्तुएँ खरीदने की तरह ही आवश्यक कार्य मानकर साहसपूर्वक कुछ राशि खर्च कर देनी चाहिए। मुहल्ले का गाँव का पुस्तकालय स्थापित करना भी इस प्रयोजन की पूर्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, उसके लिए भी उतना ही उत्साह त्याग एव प्रयत्न करना आवश्यक है जितना कि घरेलू पुस्तकालय के लिए। इस सामूहिक पुस्तकालय से तो माँग कर भी अपने परिवार की आवश्यकता पूरी की जा सकती है।

जैसी भी स्थिति हो उसके अनुरूप परिवार में सद्ज्ञान की अभिवृद्धि की आवश्यकता पूरी की जानी चाहिए। परिजनों को कूप-मण्डूक नहीं रहने देना चाहिए। जीवन की, समाज की समस्याओं से अपरिचित रहना ऐसी भूल है, जिसके कारण कभी-कभी ऐसी ठोकरें खानी पड़ती हैं, जो आदमी को चित्त पट्ट करके रख दे। अवकाश के समय में समाचारों एवं कथा, संस्मरणों के माध्यम से उपयोगी जानकारी बढ़ाने का कार्य हर सद्ग्रहस्थ को हाथ में लेना चाहिए। रूखे, नीरस और निर्देशात्मक उपदेशों को प्राय: व्यंग्य, उपहास एवं अवज्ञा मे धकेल दिया जाता है। कथा-कहानी के माध्यम से घुमा-फिराकर शिक्षा दी जाय तो उसमें मनोरंजन-आकर्षण भी रहता है और परोक्ष रूप से दी गयी शिक्षा का चित्त पर प्रभाव भी पड़ता है। अखबारों में से ऐसे समाचार चुने जा सकते है, जो जीवन-विकास में लोकव्यवहार में उचित मार्ग दर्शन कर सके। पंचतन्त्र और हितोपदेश नामक संस्कृत के कथा-ग्रन्थों ने उद्दण्ड राजकुमारों को सुयोग्य बना दिया था। हम भी उसी रीति-नीति को अपनाकर परिवार के लोगों के लिए उपयोगी दिशा-निर्देश करते रह सकते हैं। जो पढ़े-लिखे हैं, उन्हें प्रेरक पुस्तके पढ़ते रहने के लिए भी कहा, समझाया और प्रोत्साहित किया जा सकता है। स्वाध्याय के लिए सामग्री और समय की व्यवस्था बनाकर हम घर के पढ़े-लिखे सदस्यों के लिए बौद्धिक एवं भावनात्मक उत्कर्ष का द्वार खोल सकते हैं। पढ़े सदस्य प्रतिदिन अवकाश वाले निर्धारित समय से निर्दिष्ट पुस्तक प्रसंग पढ़कर सुनाया करें तो आगे चलकर वही आदत परिवार प्रशिक्षण में अभिरुचि बनकर विकसित हो सकती है। सुनाते रहने वालों को सुयोग्य वक्ता बनने का, झेप-झिझक से पिण्ड छुड़ाने का- सुअवसर प्रदान कर सकती है।

परिजनों को बौद्धिक विकास के साथ-साथ आत्मिक विकास के लिए भी समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए। अपने परिवार के लोगों के शरीर और मन को विकसित करने के लिए जिस प्रकार भोजन और शिक्षण की व्यवस्था की जाती है उसी प्रकार आत्मिक दृष्टि से स्वस्थ बनाने के लिए घर में बाल-वृद्ध सभी की उपासना में निष्ठा एवं अभिरुचि बनी रहे। इसके लिए समझाने-बुझाने का तरीका सबसे अच्छा है। गृहिणी एवं गृहपति का अनुकरण भी परिवार के लोग करते हैं। इसलिए स्वयं नित्य नियमपूर्वक, नियत समय पर उपासना करने के कार्यक्रम को ठीक तरह निबाहते रहा जाय। घर के लोगों से जरा जोर देकर भी उनकी ढील-पोल को दूर किया जा सकता है। आमतौर से अच्छी बातें पसन्द नहीं की जातीं और उन्हें उपहास, उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। यही वातावरण अपने घर में घुसा हुआ हो सकता है। पर उसे हटाया तो जाना ही चाहिए। देर तक सोना, गन्दे रहना, पढ़ने में लापरवाही करना, ज्यादा खर्च करना, बुरे लोगों की संगति आदि बुराइयाँ घर के किसी सदस्य में हो तो उन्हें छुड़ाने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। क्योंकि यह बातें उनके भविष्य को अन्धकारमय बनाने वाली, अहितकर सिद्ध हो सकती हैं। उसी प्रकार नास्तिकता और उपासना की उपेक्षा जैसे आध्यात्मिक दुर्गुणों को भी हटाने के लिए घर के लोगों को जरा अधिक सावधानी और सफाई से कहा-सुना जाय तो भी उसे उचित ही माना जाएगा।

अपने कुटुम्ब की सबसे बड़ी सेवा यह हो सकती है कि प्रत्येक परिजन को आस्तिक एवं उपासक बनाया जाय। उस मार्ग को अपनाकर वे अपना भविष्य उज्ज्वल बना सकते हैं। आस्तिकता धर्म-विश्वासों को जन्म देती है और धर्म-विश्वासों पर सुदृढ़ रहने वाला अपने कर्तव्यों पर भी स्थिर रहता है। फलस्वरूप उसका शरीर, मन, परिवार, व्यवहार, लोक-परलोक सभी कुछ आनन्दमय बनता है। जो लड़कियाँ आस्तिकता के विश्वास को छोटेपन से ही मन में जमा लेंगी वे ससुराल जाने पर, पतिव्रतधर्म का भी पालन करेंगी और उस घर के प्रत्येक सदस्य के साथ सद्व्यवहार करना अपना धर्म कर्तव्य मानेंगी। ऐसी दशा में वहाँ वे आँखों का तारा ही बनकर रहेंगी सभी उन्हें दुलार करेंगे और दुःख-दर्द में पलकों की छाया किये रहेंगे। जो गौरव पिता के प्रचुर दहेज देने से भी लड़कियों को ससुराल में नहीं मिल सकता वह उनके सद्गुणों के द्वारा मिल जाता है। सद्गुण धर्म-विश्वासों के फलस्वरूप ही उत्पन्न होते हैं और धर्म विश्वासों को आस्तिकता की देन ही कहा जा सकता है। इस प्रकार जिस कन्या को उनके माता-पिता ने आस्तिकता की, उपासना की शिक्षा दी है, उन्होंने उसका भविष्य आनन्दमय बनाने के लिए सबसे बड़ी सम्पत्ति वसीयत कर दी है। इसके विपरीत जिन लड़कियों को उच्छृंखलता,

नास्तिकता, विलासिता और असहिष्णुता के वातावरण में पलने दिया है वे जहाँ कहीं भी रहेंगी नरक उत्पन्न करेंगी; उसमें स्वयं भी जलेंगी और सारे परिवार को भी जलाती रहेंगी। ऐसी आदतों की अभ्यस्त लड़कियों का अहित उन अभिभावकों ने ही किया होता है जिन्होंने बचपन से उन्हे धार्मिक मान्यताओं से, पूजा-उपासना से वंचित रखा है। सम्भव है ऐसा उन्होंने प्यारवश किया हो पर वस्तुतः वह परिणाम में शत्रुता के समान ही अहितकर सिद्ध होता है।

यही बात लड़कों के बारे में भी लागू होती है कि वे धर्म विश्वास तथा संस्कारों का प्रभाव बचपन से ही मन पर धारण कर सकें तो माता-पिता, बहिन-भाई, स्त्री-पुत्र, स्वजन-सम्बन्धी सभी के प्रति अपना कर्तव्य पालन करेंगे। ऐसी दशा में स्वभावतः उनका परिवार स्वर्ग बना रहेगा। स्वभाव और स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। यश एवं सम्मान की कमी न रहेगी। सज्जनता जहाँ रहती है वहाँ दीनता और दरिद्रता के रहने की भी कोई आशंका नहीं रहती। आस्तिकता के संस्कारों के साथ उनके अभिभावक वस्तुतः उनके भविष्य की आशाजनक प्रगति का बीमा भी कर देते हैं। ऐसे विचारशील अभिभावकों ने जिन्होंने अपने बच्चों को आस्तिक एवं सुसस्कारी बनाया है सचमुच ही अपना कर्तव्य आदर्श रूप से निवाहा है। उनकी जितनी सराहना की जाय उतनी ही कम है।

ध्यान रहे कि धार्मिकता को कुछ कर्मकाण्डों तक ही सीमित नही किया जाना चाहिए। जिन भावनात्मक आदर्शों और आस्थाओं पर पारिवारिक व्यवस्था का प्रचलन हुआ है उन्हें सजीव रखने के लिए परिवार की सम्पूर्ण व्यवस्था धार्मिक होनी चाहिए। बड़ों के प्रति छोटों की विनम्रता, छोटों के प्रति बड़ों का स्नेह और कर्तव्य भाव, समवयस्कों में आदर और सम्मान की भावना को स्थिर रखना धर्म का उद्देश्य होना चाहिए। इन सभी बातों को लेकर उसे रहन-सहन, आहार-विहार वेष-भूषा शिक्षा-दीक्षा, पारस्परिक व्यवहार, व्रत, पर्व और त्योहारों में प्रविष्ट हो जाना चाहिए। परिवार का छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा कृत्य भी धार्मिक व्यवस्था के अन्तर्गत होना चाहिए। सारांश में धर्म पारिवारिक जीवन में प्राण की भाँति घुला होना चाहिए।

घर के लोगों की बैठक का कमरा अलग होता है। रसोईघर, स्नानागार और शयनागार भी विभाजित होते हैं। हर स्थान पर वहाँ की स्थिति के अनुकूल सामान रखा हुआ होता है। किसी स्थान के सामान, क्रम-व्यवस्था को देखते ही उस स्थान में क्या होता है इसका पता चल जाता है। इसी क्रम में आपके घर में एक छोटा-सा 'साधना कक्ष' भी होना चाहिए। एक छोटी-सी देव प्रतिमा, नहीं तो किसी चित्र को जो भगवान का, गायत्री या किसी देवता का हो एक सुन्दर वेदी पर स्थापित कर लीजिये। सामने चौकी पर धूप- दान- दीपक और जप की मालाएँ रखी हुई होनी चाहिए। एक छोटा-सा हवन कुण्ड भी हो। सम्पूर्ण कक्ष स्वच्छ, सुन्दर लिपा-पुता हो। ऊपर महापुरुषों के चित्र, प्रेरणाप्रद वाक्य और देव स्थलों, प्राकृतिक दृश्यों वाले चित्र टँगे हों। कागज के फूलों और पताकाओं से कमरा सजा रहे। सम्भव हो तो वहाँ हर समय एक अगरबत्ती जलती रहे। यह स्थान इतना सुन्दर, इतना पवित्र बनाकर रखिये कि वहाँ पहुँचते ही दिव्य भावनाएँ उठने लगें। मन की मलिनता मिट जाय और विचारों में पवित्रता आ जाय। सुन्दर महकता हुआ साधन स्थान जिसे देखते ही आत्मा पुलकित, प्रफुल्लित हो जाया करे।

प्रातःकाल जल्दी सोकर उठने के लिए सारे सदस्य राजी होने चाहिए। स्नान, शौच आदि से निवृत होकर सामूहिक प्रार्थना को पति-पत्नी साथ-साथ या क्रम बनाकर घर का प्रत्येक सदस्य उस साधन स्थल में प्रवेश करे और परमात्मा की उपासना करे। आज का दिन एक परिपूर्ण जीवन है, यह मानकर परमात्मा से सच्चाई, ईमानदारी और नेकनिष्ठा की ओर प्रेरित रखने के लिए बल की माँग की जाय। भावना के अनुसार, धूप, दीप, अक्षत, रोली आदि से देव प्रतिमा का अभिषेक किया जाय। प्रातःकाल का नाश्ता सदस्य इसी स्थान के प्रसाद रूप में ग्रहण करें तो वह और भी मंगलदायक हो सकता है।

प्रातःकालीन उपासना समाप्त करके जिसे जिस कार्य में जाना हो उसमें चले जाना चाहिए। स्त्रियाँ गृह-कार्यों में लग जाएँ। विद्यार्थी पाठशाला की ओर चले जाएँ और पुरुष वर्ग जो जिस कार्य में नियत हो उसमें चला जाय।

परिवार में हर सदस्य को भगवान का स्मरण और नमन करने की आदत होनी चाहिए। चाहे उसके लिए दो मिनट का ही समय लगे पर लगना अवश्य चाहिए। आस्तिकता के साथ अनेक श्रेष्ठ मान्यताएँ जुड़ी रहती हैं, सुसंस्कृत व्यक्तित्व विकसित करने की दृष्टि से दैनिक जीवन में आस्तिकता को परिपुष्ट बनाने वाली उपासना के लिए कुछ-न-कुछ स्थान होना ही चाहिए। दैनिक कार्य आरम्भ करने से पूर्व पूजा-स्थल पर जाकर अभिवादन करके- कम से कम पाँच गायत्री मंत्र मन-ही-मन जप करके तब आगे बढ़ा जाय। इसमें स्नान आदि का बन्धन नहीं है। बच्चे स्कूल जाते समय, स्त्रियाँ चूल्हा जलाते समय, पुरुष दफ्तर, दुकान पर जाते समय यह नमन अभिनन्दन चित्र के सामने खड़े होकर कर सकते हैं। इसमें दो मिनट का समय लगता है। नियमित परम्परा को अनिवार्य बनाये रखने की दृष्टि से इतना थोड़ा समय भी

कम महत्वपूर्ण नहीं है। उससे आस्तिकता के संस्कार जमते और बढ़ते हैं। इसका परिणाम दृष्टिकोण में उच्चस्तरीय आदर्शों को समाविष्ट रहने का लाभ मिलता है। सायंकाल सामूहिक रूप से आरती करने की, संगीत सहगान की परम्परा डाली जाय तो एक सप्ताह एवं सद्भाव सम्वर्द्धक वातावरण बनता है। इस सद्भाव एवं सद्भावनाओं के जागरण के लिए जिस परिवार में सत् साहित्य के पठन-पाठन एवं उपासना आदि का जीवन क्रम चल पड़े समझना चाहिए उस परिवार में श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ सतत बढ़ती, फलती-फूलती रहेंगी।

अगले चरण अधिक सशक्त हों

महिला जागरण जैसा विशाल लक्ष्य एक ही उछाल में प्राप्त नहीं किया जा सकता। उसके लिए क्रमशः एक से एक बड़े सशक्त चरण बढ़ाने होंगे। अस्तु 'महिला जागरण अभियान' के संचालन केन्द्र 'शान्तिकुंज' से वर्तमान प्रारम्भिक प्रचारात्मक गतिविधियों का ही संचालन नहीं हो रहा है, भविष्य में जो चरण बढ़ाने होंगे उनकी पृष्ठभूमि बनाने का व्यवस्थित क्रम भी चल रहा है। प्रथम चरण में प्रचारात्मक गतिविधियाँ ही तीव्र से तीव्रतर की जाती रही हैं। उसके फलस्वरूप स्थान-स्थान पर इतना जन-समर्थन प्राप्त होने लगा है कि जगह-जगह रचनात्मक कार्य भी हाथ में लिए जाने लगे हैं। यही क्रम और आगे बढ़ने पर , तेजस्वी महिला नेतृियाँ उभरकर आने पर सुधारात्मक गतिविधियों का भी व्यवस्थित क्रम चालू किया जाएगा। अगले चरण बढ़ाने की यह उत्साहजनक स्थिति उत्पन्न होना इस बात पर निर्भर है कि प्रचारात्मक चरण अधिकाधिक सशक्त एवं सफल बनाया जाय। उपर्युक्त लक्ष्य से प्रेरित होकर महिला जागरण के नवयुग का सन्देश घर-घर, गाँव-गाँव पहुँचाने के लिए शान्ति-कुंज का प्रचारतन्त्र अपनी स्वल्प सामर्थ्य से कई गुने दुस्साहस के साथ कार्य-क्षेत्र में उतर पड़ा है। साहित्य प्रकाशन का कार्य क्रमशः बढ़ता जा रहा है। 'महिला जाग्रति' पत्रिका ने अपने लक्ष्य के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार किया है। जहाँ-जहाँ वह पहुँची है वहाँ-वहाँ नई हलचलें उत्पन्न हुई हैं। संगठन बढ़े हैं। साप्ताहिक सत्संगों का सिलसिला आरम्भ में कुछ शिथिल था पर अब वह प्रायः सभी शाखाओं में नियमित रूप से चल पड़ा है। संस्कार आयोजनों की परिवार निर्माण गोष्ठियाँ अभी गति नहीं पकड़ सकी हैं और न पर्व-त्योहारों को सामूहिक सार्वजनिक रूप से मनाने का कार्य जितनी सफलता के साथ चलना चाहिए था उतना चल पाया है तो भी यह आशा की जाती है कि महिला जागरण शाखाएँ प्रथम वर्ष में संगठन को सुदृढ़ बना सकीं और यह साप्ताहिक सत्संगों का सिलसिला ठीक प्रकार चला सकीं यह भी कम सन्तोष की बात नहीं है। बढ़ता हुआ उत्साह और अनुभव अगले वर्ष संस्कार आयोजनों के माध्यम से परिवार निर्माण की और पर्व-आयोजनों के माध्यम से समाज निर्माण की आवश्यकता पूरी करने के लिए महत्वपूर्ण कार्य कर सकेगा। इस प्रयोजन को पूरा करने में अपनी छोटी-सी पत्रिका अत्यन्त प्रेरणाप्रद वातावरण बनाने में समर्थ हुई है। उसका विस्तार और प्रभाव अगले वर्ष और भी अधिक बढ़ने की आशा है। तदनुरूप निश्चित रूप से अभियान की जड़ें मजबूत होंगी और लक्ष्य पूरा करने के उपयुक्त परिस्थितियाँ बनेंगी।

विचार विस्तार शिक्षितों की उर्वर मनोभूमि में होता है और पीछे वह अशिक्षितों में फैलता है। अशिक्षित नारी से मिशन का सीधा सम्पर्क नहीं बन सकता। शिक्षित महिलाएँ ही उन तक मौखिक रूप से प्रस्तुत विचारधारा को पहुँचा सकने में समर्थ हो सकेंगी। नवयुग की जाग्रत नारी को प्रचलित विकृतियों से जूझने और भविष्य की उज्ज्वल परिस्थितियों का सृजन करने की दुहरी भूमिका निभानी पड़ेगी। इसके लिए व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रस्तुत करने वाली अभिनव विचार सामिग्री की आवश्यकता पड़ेगी। 'अभिनव' इस माने में कि भारत की नारी समस्या अपने ढंग की अनोखी है। उसका समाधान पाश्चात्य लोगों के नारी स्वास्थ्य आन्दोलन से सर्वथा भिन्न है । आमतौर से हर बात में पाश्चात्य लोगों को जूठन चाटने की ही अपने लोगों को आदत है। नारी समस्या और शिशु-समस्या पर अपने देश में प्रकाशित बहुत-सा साहित्य अपनी आँखों से गुजरा है। उसमें तथाकथित प्रगतिशील लेखकों ने विदेशी रोगों की किताबों को उल्टा करके रख दिया है। प्रतिगामी लेखकों ने पतिव्रत धर्म की तोतारटंत रटी है और आज की नारी को सती-सावित्री बनने की झाड़ पिलायी है। स्थिति क्या है और उसे बदलने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है इस पर मौलिक चिन्तन-तलाश करने पर निराशा ही हाथ लगती है। प्रतीत होता है कि भारतीय मनःस्थिति और परिस्थिति को समझने और तदनुरूप रीति-नीति निर्धारित करने का कार्य अभी प्रारम्भिक स्थिति में सुबक रहा है। उसके परिपोषण की आवश्यकता है इसके लिए 'अभिनव' स्तर का कहा जाने योग्य साहित्य सृजा ही जाना चाहिए।

शान्तिकुंज में इन दिनों इसी प्रकार के साहित्य सृजन का कार्य हाथ में लिया गया है। प्रथम वर्ष में थोड़ी-सी ही प्रगति हो सकी है पर अगले वर्ष कुछ करने लायक कार्य हो सकेगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

छोटी और सस्ती ट्रैक्ट माला छापने की बात इसलिए सोची गई है कि औसत भारतीय नारी के पास अवकाश और पैसे का एक प्रकार से अभाव ही रहता है। उसके लिए मोटी पुस्तकें पढ़ना तथा खरीदना अति कठिन पड़ेगा। शिक्षित महिलाओं को अशिक्षिताओं तक मिशन का

सन्देश पहुँचाने का काम सौंपा गया है। वे बड़ी पुस्तक में से एक दिन में एक घण्टे के भीतर समझाये जा सकने वाला प्रसंग कठिनाई से ही छाँट सकेंगी। इसलिए अपनी दृष्टि यह है कि एक घण्टे में एक प्रसंग एक पुस्तक के रूप में पढ़ा-समझा दिया जा सके ऐसी पुस्तक माला प्रकाशित करना अधिक उपयुक्त रहेगा। इनकी संख्या बराबर बढ़ती रहेगी अस्तु उनका एक अच्छा पुस्तकालय बन जाएगा। अपने यहाँ ज्ञानघट स्थापित करने वाली हर शिक्षित महिला अपने घर में यह पुस्तकालय स्थापित कर सकेगी और अपने सम्पर्क की अन्य शिक्षित महिलाओं को पढ़ाने और अशिक्षितों को सुनाने का कार्य कर सकेगी। मिशन का प्रचार-विस्तार इससे कम में हो नहीं सकता था। पत्रिका में कार्यकर्त्ताओं के लिए मार्ग-दर्शन भर रहता है, उसमें छोटे-छोटे लेख ही दिए जा सकते हैं। इनमें कोई प्रसंग पूरी तरह नहीं रखा जा सकता। संकेत मात्र देने वाले छोटे लेख उत्साह भरने और दिशा देने भर का काम कर सकते हैं। उनमें कोई बात पूरी तरह नहीं समझायी जा सकती। यह कार्य ट्रैक्ट माला से ही संभव हो सकता है सो वही हाथ में लिया गया है।

इस अभियान से सम्बद्ध हर नारी की यह दृष्टि अत्यन्त स्पष्ट रहनी चाहिए कि जन-मानस को उलट कर महिला पुनरुत्थान जैसे महान प्रयोजन की पूर्ति संगठन प्रयत्नों के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार नहीं हो सकती है। व्यक्तिगत प्रयत्नों से इस दिशा में बहुत ही सीमित कार्य हो सकता है। एक व्यक्ति भाषण, लेखन, शिक्षण, समय-दान, धन-दान आदि कितने ही प्रयत्न करता रहे उसका प्रभाव अत्यन्त छोटे क्षेत्र में सीमित होकर रह जाएगा । कोई कार्य व्यापक क्षेत्र में करना हो तो इसके लिए संगठित प्रयत्नों के अतिरिक्त कोई चारा नहीं। एक दीपक से दूसरा दीपक जलाने वाली बात ही बड़े आन्दोलनों का रूप धारण करती है। अस्तु, अब तक जो भी नर-नारी, महिला जागरण अभियान के सम्पर्क में आये हों उन्हें यह कार्य अपने कन्धों पर व्यक्तिगत रूप में सौंपा हुआ समझना चाहिए कि वे स्थानीय महिला शाखा गठित करें। इस कार्य में पुरुषों को पहल करनी चाहिए और सूत्र संचालन एवम् शुभारम्भ अपने ही प्रयत्नों से करना चाहिए । वे अपने घरों की, सम्पर्क क्षेत्र की महिलाओं को समेट-बटोर कर संगठन कार्य आरम्भ करें। जब तक साप्ताहिक सत्संग ठीक तरह न चलने लगे तब तक उस अंकुर को खाद-पानी देने की, निराई गुड़ाई, रखवाली की प्रयत्नशीलता में तनिक भी शिथिलता न आने दें। नर हो या नारी, मिशन की उपयोगिता समझने वालों को उसमें सक्रिय योगदान देना चाहिए और उसके प्रथम चरण महिला शाखा संगठन की स्थापना के रूप में उठना चाहिए। अभी तक इस अभियान को विचारशील वर्ग का जो स्नेह-सहयोग एवं समर्थन मिला है वह उत्साहवर्द्धक है। एक वर्ष में ही महिला जाग्रति अभियान पत्रिका की सदस्य संख्या १०००० से ऊपर पहुँच जाना, दूसरे वर्ष के प्रारम्भ में ही १४००० तक जा पहुँचना इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। यदि प्रथम वर्ष में ही महिला शाखाएँ २५० हो जाना तथा दूसरे वर्ष में ही १००० शाखाओं की स्थिति बन जाना कम उत्साहवर्द्धक नहीं। शान्तिकुंज की कन्या प्रचारिकाओं के देशव्यापी आयोजन अपने आप में एक कीर्तिमान रहे हैं। लगभग सभी जगह उस क्षेत्र के राजनैतिक तथा सामाजिक नेता एवं विशिष्ट नागरिकों ने उनका स्वागत एवं उत्साहवर्द्धन किया। अनेक स्थानों पर तो उनकी उपस्थिति में हुए महिला-जागरण सम्मेलनों ने उस क्षेत्र में हुए पिछले सभी आयोजनों का कीर्तिमान भंग कर दिया। एक अति महत्त्वपूर्ण बात यह रही है कि सम्प्रदायवाद एवं वर्गभेद को भुलाकर सभी वर्ग की महिलाओं ने तथा पुरुषों ने इस आयोजनों को हार्दिक समर्थन एवं सहयोग प्रदान किया।

उपर्युक्त अनेक सफलताओं से हर क्षेत्र में जाग्रति आयी है, आ रही है। महिलाओं में कुछ करने का तथा पुरुषों में उन्हें प्रोत्साहन देने का नया जोश उभरा है। उसी के फलस्वरूप जगह-जगह अनेक रचनात्मक कार्य भी हाथ में ले लिए गये हैं। इनके माध्यम से नारी वर्ग में शिक्षा, ज्ञान एवं स्वावलम्बन की क्षमता की वृद्धि के साथ-साथ उनमें नये युग में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने योग्य प्रचण्ड मनोबल एवं उत्साह जाग्रत होता चलेगा। उनके सहयोग से लाभान्वित समाज महिला उत्साह जाग्रति के प्रति आभार व्यक्त करता हुआ उस दिशा में अपने अधिकाधिक साधन-सहयोग अर्पित करने में प्रसन्नता अनुभव करेगा।

यह स्थिति बनते ही नारी 'असुर निकन्दनि' की तेजस्वी मुद्रा में खड़ी हो सकेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि समाज में आसुरी प्रवृत्तियाँ आज महिषासुर की तरह उद्दण्ड एवं स्वच्छन्द होकर धमाचौकड़ी मचा रही हैं। किन्तु जब नारी अपने तेजस्वी-दुर्गारूप में खड़ी हो जाएगी तो इस असुरता का पराभव सुनिश्चित ही है। समाजव्यापी अनेक अवांछनीयताओं-अनीतियों एवं भ्रष्टताओं के विरुद्ध जब जाग्रत नारी तन कर खड़ी हो जाएगी तो उनका चलते रहना सम्भव नहीं होगा।

यह उक्ति मात्र भावुकता की कल्पना नहीं, तथ्यों की विवेकपूर्ण समीक्षा पर आधारित है। सभी जानते हैं कि अनैतिकता एवं स्पष्टता के दो ही आधार हो सकते हैं- मानवीय मूल्यों को भुलाकर अपनी तथा अपने परिवार की सुख-सुविधाओं को महत्व देना। दूसरा है उसकी सहज सुविधा का होना तथा प्रतिरोध का अभाव।

नारी जब जाग्रत होगी तो यह दोनों बातें न रह सकेंगी। सम्वेदनाशील नारी दूसरों के स्वत्व का हरण करके अपने लिए, अपने बच्चों के लिए सुख-सुविधाएँ प्राप्त करने से इन्कार कर सकती है। कोई व्यक्ति भौतिकता की चकाचौंध तथा विकृत महत्त्वाकांक्षाओं के नशे में अनीतिपूर्ण कमाई प्रारम्भ तो कर सकता है, किन्तु यदि

कम महत्वपूर्ण नहीं है। उससे आस्तिकता के संस्कार जमते और बढ़ते हैं। इसका परिणाम दृष्टिकोण में उच्चस्तरीय आदर्शों को समाविष्ट रहने का लाभ मिलता है। सायंकाल सामूहिक रूप से आरती करने की, संगीत सहगान की परम्परा डाली जाय तो एक सप्ताह एवं सद्भाव सम्वर्द्धक वातावरण बनता है। इस सद्भाव एवं सद्भावनाओं के जागरण के लिए जिस परिवार में सत् साहित्य के पठन-पाठन एवं उपासना आदि का जीवन क्रम चल पड़े समझना चाहिए उस परिवार में श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ सतत बढ़ती, फलती-फूलती रहेगी।

अगले चरण अधिक सशक्त हों

महिला जागरण जैसा विशाल लक्ष्य एक ही उछाल में प्राप्त नहीं किया जा सकता। उसके लिए क्रमशः एक से एक बड़े सशक्त चरण बढ़ाने होंगे। अस्तु 'महिला जागरण अभियान' के संचालन केन्द्र 'शान्तिकुंज' से वर्तमान प्रारम्भिक प्रचारात्मक गतिविधियों का ही संचालन नहीं हो रहा है, भविष्य में जो चरण बढ़ाने होंगे उनकी पृष्ठभूमि बनाने का व्यवस्थित क्रम भी चल रहा है। प्रथम चरण में प्रचारात्मक गतिविधियाँ ही तीव्र से तीव्रतर की जाती रही हैं। उसके फलस्वरूप स्थान-स्थान पर इतना जन-समर्थन प्राप्त होने लगा है कि जगह-जगह रचनात्मक कार्य भी हाथ में लिए जाने लगे हैं। यही क्रम और आगे बढ़ने पर , तेजस्वी महिला नेतृियाँ उभरकर आने पर सुधारात्मक गतिविधियों का भी व्यवस्थित क्रम चालू किया जाएगा। अगले चरण बढ़ाने की यह उत्साहजनक स्थिति उत्पन्न होना इस बात पर निर्भर है कि प्रचारात्मक चरण अधिकाधिक सशक्त एवं सफल बनाया जाय। उपर्युक्त लक्ष्य से प्रेरित होकर महिला जागरण के नवयुग का सन्देश घर-घर, गाँव-गाँव पहुँचाने के लिए शान्ति-कुंज का प्रचारतन्त्र अपनी स्वल्प सामर्थ्य से कई गुने दुस्साहस के साथ कार्य-क्षेत्र में उतर पड़ा है। साहित्य प्रकाशन का कार्य क्रमशः बढ़ता जा रहा है। 'महिला जाग्रति' पत्रिका ने अपने लक्ष्य के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार किया है। जहाँ-जहाँ वह पहुँची है वहाँ-वहाँ नई हलचलें उत्पन्न हुई हैं। संगठन बढ़े हैं। साप्ताहिक सत्संगों का सिलसिला आरम्भ में कुछ शिथिल था पर अब वह प्रायः सभी शाखाओं में नियमित रूप से चल पड़ा है। संस्कार आयोजनों की परिवार निर्माण गोष्ठियाँ अभी गति नहीं पकड़ सकी हैं और न पर्व-त्योहारों को सामूहिक सार्वजनिक रूप से मनाने का कार्य जितनी सफलता के साथ चलना चाहिए था उतना चल पाया है तो भी यह आशा की जाती है कि महिला जागरण शाखाएँ प्रथम वर्ष में संगठन को सुदृढ़ बना सकीं और यह साप्ताहिक सत्संगों का सिलसिला ठीक प्रकार चला सकीं यह भी कम सन्तोष की बात नहीं है। बढ़ता हुआ उत्साह और अनुभव अगले वर्ष संस्कार आयोजनों के माध्यम से परिवार निर्माण की और पर्व-आयोजनों के माध्यम से समाज निर्माण की आवश्यकता पूरी करने के लिए महत्वपूर्ण कार्य कर सकेगा। इस प्रयोजन को पूरा करने में अपनी छोटी-सी पत्रिका अत्यन्त प्रेरणाप्रद वातावरण बनाने में समर्थ हुई है। उसका विस्तार और प्रभाव अगले वर्ष और भी अधिक बढ़ने की आशा है। तदनुरूप निश्चित रूप से अभियान की जड़ें मजबूत होंगी और लक्ष्य पूरा करने के उपयुक्त परिस्थितियाँ बनेंगी।

विचार विस्तार शिक्षितों की उर्वर मनोभूमि में होता है और पीछे वह अशिक्षितों में फैलता है। अशिक्षित नारी से मिशन का सीधा सम्पर्क नहीं बन सकता। शिक्षित महिलाएँ ही उन तक मौखिक रूप से प्रस्तुत विचारधारा को पहुँचा सकने में समर्थ हो सकेंगी। नवयुग की जाग्रत नारी को प्रचलित विकृतियों से जूझने और भविष्य की उज्ज्वल परिस्थितियों का सृजन करने की दुहरी भूमिका निभानी पड़ेगी। इसके लिए व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रस्तुत करने वाली अभिनव विचार सामिग्री की आवश्यकता पड़ेगी। 'अभिनव' इस माने में कि भारत की नारी समस्या अपने ढंग की अनोखी है। उसका समाधान पाश्चात्य लोगों के नारी स्वास्थ्य आन्दोलन से सर्वथा भिन्न है । आमतौर से हर बात में पाश्चात्य लोगों को जूठन चाटने की ही अपने लोगों को आदत है। नारी समस्या और शिशु-समस्या पर अपने देश में प्रकाशित बहुत-सा साहित्य अपनी आँखों से गुजरा है। उसमें तथाकथित प्रगतिशील लेखकों ने विदेशी रोगों की किताबों को उल्टा करके रख दिया है। प्रतिगामी लेखकों ने पतिव्रत धर्म की तोतारटंत रटी है और आज की नारी को सती-सावित्री बनने की झाड़ पिलायी है। स्थिति क्या है और उसे बदलने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है इस पर मौलिक चिन्तन-तलाश करने पर निराशा ही हाथ लगती है। प्रतीत होता है कि भारतीय मनःस्थिति और परिस्थिति को समझने और तदनुरूप रीति-नीति निर्धारित करने का कार्य अभी प्रारम्भिक स्थिति मे सुबक रहा है। उसके परिपोषण की आवश्यकता है इसके लिए 'अभिनव' स्तर का कहा जाने योग्य साहित्य सृजा ही जाना चाहिए।

शान्तिकुंज में इन दिनों इसी प्रकार के साहित्य सृजन का कार्य हाथ में लिया गया है। प्रथम वर्ष में थोड़ी-सी ही प्रगति हो सकी है पर अगले वर्ष कुछ करने लायक कार्य हो सकेगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

छोटी और सस्ती ट्रैक्ट माला छापने की बात इसलिए सोची गई है कि औसत भारतीय नारी के पास अवकाश और पैसे का एक प्रकार से अभाव ही रहता है। उसके लिए मोटी पुस्तकें पढ़ना तथा खरीदना अति कठिन पड़ेगा। शिक्षित महिलाओं को अशिक्षिताओं तक मिशन का

सन्देश पहुँचाने का काम सौंपा गया है। वे बड़ी पुस्तक में से एक दिन में एक घण्टे के भीतर समझाये जा सकने वाला प्रसंग कठिनाई से ही छाँट सकेंगी। इसलिए अपनी दृष्टि यह है कि एक घण्टे में एक प्रसंग एक पुस्तक के रूप में पढ़ा-समझा दिया जा सके ऐसी पुस्तक माला प्रकाशित करना अधिक उपयुक्त रहेगा। इनकी संख्या बराबर बढ़ती रहेगी अस्तु उनका एक अच्छा पुस्तकालय बन जाएगा। अपने यहाँ ज्ञानघट स्थापित करने वाली हर शिक्षित महिला अपने घर में यह पुस्तकालय स्थापित कर सकेगी और अपने सम्पर्क की अन्य शिक्षित महिलाओं को पढ़ाने और अशिक्षितों को सुनाने का कार्य कर सकेगी। मिशन का प्रचार-विस्तार इससे कम में हो नहीं सकता था। पत्रिका में कार्यकर्त्ताओं के लिए मार्ग-दर्शन भर रहता है, उसमें छोटे-छोटे लेख ही दिए जा सकते हैं। इनमें कोई प्रसंग पूरी तरह नहीं रखा जा सकता। संकेत मात्र देने वाले छोटे लेख उत्साह भरने और दिशा देने भर का काम कर सकते हैं। उनमें कोई बात पूरी तरह नहीं समझायी जा सकती। यह कार्य ट्रैक्ट माला से ही संभव हो सकता है सो वही हाथ में लिया गया है।

इस अभियान से सम्बद्ध हर नारी की यह दृष्टि अत्यन्त स्पष्ट रहनी चाहिए कि जन-मानस को उलट कर महिला पुनरुत्थान जैसे महान प्रयोजन की पूर्ति संगठन प्रयत्नों के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार नहीं हो सकती है। व्यक्तिगत प्रयत्नों से इस दिशा में बहुत ही सीमित कार्य हो सकता है। एक व्यक्ति भाषण, लेखन, शिक्षण, समय-दान, धन-दान आदि कितने ही प्रयत्न करता रहे उसका प्रभाव अत्यन्त छोटे क्षेत्र में सीमित होकर रह जाएगा । कोई कार्य व्यापक क्षेत्र में करना हो तो इसके लिए संगठित प्रयत्नों के अतिरिक्त कोई चारा नहीं। एक दीपक से दूसरा दीपक जलाने वाली बात ही बड़े आन्दोलनों का रूप धारण करती है। अस्तु, अब तक जो भी नर-नारी, महिला जागरण अभियान के सम्पर्क में आये हों उन्हें यह कार्य अपने कन्धों पर व्यक्तिगत रूप में सौंपा हुआ समझना चाहिए कि वे स्थानीय महिला शाखा गठित करें। इस कार्य में पुरुषों को पहल करनी चाहिए और सूत्र संचालन एवम् शुभारम्भ अपने ही प्रयत्नों से करना चाहिए । वे अपने घरों की, सम्पर्क क्षेत्र की महिलाओं को समेट-बटोर कर संगठन कार्य आरम्भ करें। जब तक साप्ताहिक सत्संग ठीक तरह न चलने लगे तब तक उस अंकुर को खाद-पानी देने की, निराई गुड़ाई, रखवाली की प्रयत्नशीलता में तनिक भी शिथिलता न आने दें। नर हो या नारी, मिशन की उपयोगिता समझने वालों को उसमें सक्रिय योगदान देना चाहिए और उसके प्रथम चरण महिला शाखा संगठन की स्थापना के रूप में उठना चाहिए। अभी तक इस अभियान को विचारशील वर्ग का जो स्नेह-सहयोग एवं समर्थन मिला है वह उत्साहवर्द्धक है। एक वर्ष में ही महिला जाग्रति अभियान पत्रिका की सदस्य संख्या १०००० से ऊपर पहुँच जाना, दूसरे वर्ष के प्रारम्भ में ही १४००० तक जा पहुँचना इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। यदि प्रथम वर्ष में ही महिला शाखाएँ २५० हो जाना तथा दूसरे वर्ष में ही १००० शाखाओं की स्थिति बन जाना कम उत्साहवर्द्धक नहीं। शान्तिकुंज की कन्या प्रचारिकाओं के देशव्यापी आयोजन अपने आप में एक कीर्तिमान रहे हैं। लगभग सभी जगह उस क्षेत्र के राजनैतिक तथा सामाजिक नेता एवं विशिष्ट नागरिकों ने उनका स्वागत एवं उत्साहवर्द्धन किया। अनेक स्थानों पर तो उनकी उपस्थिति में हुए महिला-जागरण सम्मेलनों ने उस क्षेत्र में हुए पिछले सभी आयोजनों का कीर्तिमान भंग कर दिया। एक अति महत्त्वपूर्ण बात यह रही है कि सम्प्रदायवाद एवं वर्गभेद को भुलाकर सभी वर्ग की महिलाओं ने तथा पुरुषों ने इस आयोजनों को हार्दिक समर्थन एवं सहयोग प्रदान किया।

उपर्युक्त अनेक सफलताओं से हर क्षेत्र में जाग्रति आयी है, आ रही है। महिलाओं में कुछ करने का तथा पुरुषों में उन्हें प्रोत्साहन देने का नया जोश उभरा है। उसी के फलस्वरूप जगह-जगह अनेक रचनात्मक कार्य भी हाथ में ले लिए गये हैं। इनके माध्यम से नारी वर्ग में क्षिशा, ज्ञान एवं स्वावलम्बन की क्षमता की वृद्धि के साथ-साथ उनमें नये युग में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने योग्य प्रचण्ड मनोबल एवं उत्साह जाग्रत होता चलेगा। उनके सहयोग से लाभान्वित समाज महिला उत्साह जाग्रति के प्रति आभार व्यक्त करता हुआ उस दिशा में अपने अधिकाधिक साधन-सहयोग अर्पित करने में प्रसन्नता अनुभव करेगा।

यह स्थिति बनते ही नारी 'असुर निकन्दनि' की तेजस्वी मुद्रा में खडी हो सकेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि समाज में आसुरी प्रवृत्तियाँ आज महिषासुर की तरह उद्दण्ड एवं स्वच्छन्द होकर धमाचौकड़ी मचा रही है। किन्तु जब नारी अपने तेजस्वी-दुर्गारूप में खड़ी हो जाएगी तो इस असुरता का पराभव सुनिश्चित ही है। समाजव्यापी अनेक अवांछनीयताओं-अनीतियों एवं भ्रष्टताओं के विरुद्ध जब जाग्रत नारी तन कर खड़ी हो जाएगी तो उनका चलते रहना सम्भव नहीं होगा।

यह उक्ति मात्र भावुकता की कल्पना नहीं, तथ्यों की विवेकपूर्ण समीक्षा पर आधारित है। सभी जानते हैं कि अनैतिकता एवं स्पष्टता के दो ही आधार हो सकते हैं- मानवीय मूल्यों को भुलाकर अपनी तथा अपने परिवार की सुख-सुविधाओं को महत्व देना। दूसरा है उसकी सहज सुविधा का होना तथा प्रतिरोध का अभाव।

नारी जब जाग्रत होगी तो यह दोनों बातें न रह सकेंगी। सम्वेदनाशील नारी दूसरों के स्वत्व का हरण करके अपने लिए, अपने बच्चों के लिए सुख-सुविधाएँ प्राप्त करने से इन्कार कर सकती है। कोई व्यक्ति भौतिकता की चकाचौंध तथा विकृत महत्त्वाकांक्षाओं के नशे में अनीतिपूर्ण कमाई प्रारम्भ तो कर सकता है, किन्तु यदि

साधनों का उपयोग करने से
गृहिणी इस प्रकार प्राप्त साधनों का उपयोग करने से
इनकार कर देती है । नम्रता किन्तु दृढ़तापूर्वक उन
साधनों की उपेक्षा-तिरस्कार करके सादा जीवन-यापन
करने पर तुल जाय तो किसी व्यक्ति में अनीति की कमाई
लाते रहने का उत्साह टिक नहीं सकता। इसी प्रकार जब
घर में ही प्रतिरोध एवं अनीति करने के कारण भर्त्सना
का शिकार होना पड़े, तो कोई भी व्यक्ति समाज को गर्त
में धकेलने वाली दुष्ट प्रक्रिया को सहज मानकर अपनाये
नहीं रह सकता। इस प्रकार नारी दुष्ट प्रवृत्तियों, अनैतिक
प्रक्रियाओं के प्रति व्यक्तियों का आकर्षण तथा निर्भयता
का भाव समाप्त कर सकती है। इस आधार पर चोरी
घूसखोरी से लेकर तस्करी एवं व्यापारिक भ्रष्टाचारों तक
पर सहज ही रोक लग सकती है।

यह सब कार्य उचित एवं व्यवहार्य तो हैं, किन्तु
अनायास ही नहीं होने लगेंगे। इस सबके लिए नारी वर्ग
को न केवल उत्साहित करना पडेगा, वरन् विधिवत्
प्रशिक्षित एवं सक्षम-समर्थ भी बनाना होगा। महिला
जागरण अभियान के पास जैसे भी कुछ थोड़े बहुत साधन
हैं, उससे उसी की पूर्ति हेतु शान्तिकुंज में चलता रहा है।
कन्याओं के लिए एकवर्षीय पाठ्यक्रम तथा गृहिणियों के
लिए एक-एक माह के प्रशिक्षण सत्रों में उन्हें इन्हीं
महत्वपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सक्षम बनाने का
प्रयास किया जाता रहा है। उसके परिणाम कम
उत्साहवर्द्धक नहीं रहे हैं।

एक-एक छात्रा ने गृह-लक्ष्मी बन सकने की
व्यक्तिगत योग्यता उपार्जित की है । गुण, कर्म, स्वभाव से
दृष्टिकोण तथा व्यवहार में किस प्रकार उच्चस्तरीय
आदर्शों का समावेश होना चाहिए यह तथ्य अपने
प्राशिक्षण की आत्मा है। समस्त पाठ्यक्रम इसी धुरी के
इर्द-गिर्द घूमता रहा है। साथ ही उन्हें यह भी सिखाया
गया है कि अपने सम्पर्क क्षेत्र में वे महिला जागरण
अभियान की चेतना एवं प्रेरणा को किस प्रकार गतिशील
कर सकती हैं। पाया गया है कि जो भी छात्राएँ इन दोनों
में से किसी भी शिक्षण को पूरा करके गई हैं, उनने
अपने व्यक्तित्व और कृतित्व मे शिक्षा की गरिमा को
बढ़ाया ही है । साथ ही अपने-अपने क्षेत्रों में अभियान
की गतिविधियों को आगे आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण
योगदान दिया है।

अगले दिनों इस प्रशिक्षण को और भी अधिक प्रखर
बनाया जा रहा है। पाठ्यक्रम के आधार तो नये नहीं
रहेंगे, किन्तु आन्दोलन के बढ़ते हुए स्तर के अनुरूप
उनके स्तर में वृद्धि की जानी आवश्यक है। नारी जागरण
का महत्व तथा उसके प्रति अपने उत्तरदायित्व को
समझकर अपेक्षाकृत अधिक सुयोग्य छात्राओं-महिलाओं
का इस प्रशिक्षण की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक है।
अस्तु, महिला जागरण के लिए छुट-पुट कार्य करती
रहने वाली कार्यकर्त्रियों के साथ-साथ इस अभियान को
पूरा समय देकर अग्रगामी बनाने के लिए महिला
वानप्रस्थों की भी परम्परा चालू की जा रही है।

आमतौर से यह समझा जाता है कि
वानप्रस्थ-संन्यास आदि माध्यमों का अवलम्बन लेकर
परमार्थ जीवन में प्रवेश करने का अधिकार केवल पुरुषों
को ही है, महिलाओं को घर-गृहस्थी के काम ही
सँभालने चाहिए । परिवार के उत्तरदायित्वों से निवृत्त
मिलने की स्थिति होने पर भी उन्हें घर में ही रहना
चाहिए। अधिक से अधिक यह सोचा जा सकता है कि
यदि पति वानप्रस्थ ग्रहण करे तो उसकी सेवा-सहायता
के लिए वह भी साथ जा सकती है। इन्हीं मान्यताओं का
प्रचलन रहने के कारण अपने देश में परमार्थ परायण
महिलाओं की संख्या अत्यन्त स्वल्प ही दृष्टिगोचर होती
है। फिर कहीं कोई हैं भी तो उनका कार्यक्षेत्र किसी कुटी
आश्रम तक सीमित रह रहा होगा- परिव्राजक जीवन
बिताने की रीति-नीति अपनाने का साहस कोई बिरली
ही कर पा रही होंगी।

इस स्थिति को बदला जाना चाहिए और वातावरण
ऐसा उत्पन्न किया जाना चाहिए कि उत्तरदायित्वों से
निवृत्त महिलाओं को भी विश्व मानव के पुनरुत्थान
अभियान में उत्साहपूर्वक नियोजित किया जा सके।

यह कोई अनुचित अथवा अनअपेक्षित अतिवादी
चरण नहीं है। देश का हर विचारक इस दिशा में
चिन्तनशील रहा है । स्वामी विवेकानन्द ने इसी दृष्टि से
रामकृष्ण मिशन के अन्तर्गत महिला संन्यासियों का क्रम
प्रारम्भ किया था। बहिन निवेदिता उस पुण्य प्रक्रिया की
उद्घाटक कही जा सकती हैं। महर्षि अरविन्द ने भी श्री
माँ को इसी उद्देश्य से आगे बढ़ाया था। काका कालेलकर
जैसे मूर्धन्य विचारक भी यही कामना रखते रहे। उन्होंने
कई बार स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया था कि "मैं मानता
हूँ कि स्त्री जाति के लिए ऐसे आध्यात्मिक प्रोत्साहन की
विशेष आवश्यकता है। पुरुष के ऊपर तनिक भी आश्रित
हुए बिना और संसार चक्र में फँसे बिना निष्काम सेवामय
जीवन व्यतीत करने का मौका स्त्री जाति को मिलना
चाहिए। ऐसे जीवन को समाज की ओर से बाकायदा
मान्यता भी मिलनी चाहिए।"

यों देखा जाय तो जिन स्त्रियों ने आजन्म वैधव्य का
पालन करना स्वीकार किया है, वे अब एक तरह से
संन्यासिनियाँ ही हैं। हिन्दू समाज में ऐसी कई विधवाएँ हैं
जिन्होंने अपने तेजस्वी शीतल वैराग्य के द्वारा अपने
वैभव को उज्ज्वल करके दिखाया है। समाज में अनेक
स्त्री-पुरुषों को उनके द्वारा आश्वासन, प्रोत्साहन और
प्रेरणा मिली है। लेकिन अधिकाश विधवाएँ तो बेचारी
समाज की और कुटुम्ब की उपेक्षिता-आश्रिता ही हैं।

इनसे भिन्न अपने त्याग-वैराग्य की शीतल तेजस्विता
के द्वारा और समाज शुद्धि के लिए- समाज के लिए
समाज-सेवा के नियमित कार्यक्रम चलाने वाली

संन्यासिनियों की समाज को आज आवश्यकता है। स्त्री जाति जब अपना मानसिक परावलम्बन छोड़ देगी और स्वतन्त्रता के उत्तरदायित्व के अनुसार जीवन परिवर्तन करेगी तब मनुष्य जाति का नेतृत्व उसी के हाथ में आयेगा क्योंकि इतिहास काल में पुरुषों के कई दोषों से ये मुक्त रही हैं और गुणों का इनमें विशेष उत्कर्ष पाया जाता है। समन्वय वृत्ति और मैत्री-भावना उनके लिए सुलभ है।

तात्पर्य यह है कि महिला जागरण के लिए महिला वानप्रस्थ स्तर की महिलाओं की तैयारी एक औचित्यपूर्ण और महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। अगले चरण इसकी माँग सुस्पष्ट रूप से करते हैं। नारी को न्याय मिले-उसे अनीति उत्पीड़न से राहत मिले, मानवी अधिकारों का वह भी उपभोग कर सके इसके लिए सदियों पुरानी मूढ़ताओं और दुष्टताओं से लोहा लेना पड़ेगा। नरी को इस योग्य बनाना पड़ेगा कि वह अपनी दयनीय स्थिति को समझ सके और उसे त्राण पाने के लिए आकुलता जाग्रत कर सके। इसके लिए आरम्भिक कदम नारी शिक्षा ही हो सकती है। ऐसी शिक्षा जो न केवल अक्षर ज्ञान कराके उसे नौकरी-चाकरी कर सकने लायक ही बना भर दे वरन् उसे अपनी आत्मा और स्थिति का भी स्मरण दिला सके। कुछ कर गुजरने की हिम्मत और दिशा प्रदान कर सके। इसके लिए कितना कुछ करने के लिए आकाश जैसा विशालकाय कार्यक्षेत्र सामने पड़ा है पर उसे सँभाल सकें ऐसे देवमानवों का सब ओर घोर अभाव ही दीख रहा है।

नारी सेवा के नाम पर उन्हें कटाई-सिलाई सिखा देने की उद्योगशालाएँ जहाँ-तहाँ खुलती दिखाई पड़ती हैं। मानो नारी को दुःख एकमात्र रोटी न मिलने का ही हो। इसी प्रकार शिक्षाशालाएँ भी यहीं तक अपना कर्तव्य पूरा कर लेती हैं कि लड़कियाँ उपाधिधारी बनकर अच्छा घर-बार पा सकें या आवश्यकतानुसार नौकरी कर सकें। इस अधूरी शिक्षा से उनकी दयनीय सामाजिक दुर्दशा का अन्त कहाँ हुआ? पेट भरने को तो पहले भी विधवाएँ चक्की, चरखा आदि का आश्रय लेकर गुजारा कर लेती थीं अब भी वे रोटी बनाने, बर्तन माँजने का धन्धा अपनाकर अशिक्षित होने पर भी गुजारा कर सकती हैं। प्रश्न गुजारे का नहीं है उनकी आत्मा को जगाने का, सामाजिक अत्याचारों से मुक्ति दिलाने का है। इस युग की असली नारी शिक्षा का प्रयोजन यही होना चाहिए और उसके लिए प्रौढ़ पाठशालाएँ, नारी चल पुस्तकालय, विचारगोष्ठियाँ, सुधारवादी, महिला संगठन, महिला जागरण का साहित्य प्रकाशन, चित्र प्रदर्शनियाँ आदि की विशाल शृंखला चलनी चाहिए। कढाई, बुनाई सिखाने के स्कूल पर्याप्त नहीं।

ऐसे अर्थ-तन्त्र खडे होने चाहिए जो निराश्रित नारी द्वारा उत्पादन कराये और उनकी खरीद-विक्रय का सारा उत्तरदायित्व स्वयं वहन करें। कार्यकत्री महिलाओं के आवास-निवास एवं प्रशिक्षण का प्रबन्ध करे ताकि पीड़ित नारी को वहाँ आश्रय लेकर अपने बच्चों सहित राहत भरा जीवन जी सकने की सुविधा मिले। इस प्रयोजन के न जाने कितने प्रचार-कितने अधिक संस्थान खड़े करने पड़ेंगे। महिला जागरण के लिए, पुरुषों में न्याय बुद्धि उत्पन्न करने के लिए- समाजकर्णधारों-नर नारी के बीच प्रस्तुत समानता हटाने को सहमत करने के लिए न जाने कितने बड़े प्रयास करने पड़ेंगे। नारी पुनरुत्थान की योजनाएँ इतनी गहराई के साथ खड़ी की जा सकें तभी कुछ काम चलेगा। ऊपर की लीपा-पोती तो एक विनोद मात्र बनकर रह जाएगी।

यह कार्य कौन करे? इन प्रयासों का नेतृत्व जिसके हाथ में हो? इसका उत्तर सही उत्तर प्राप्त करने के लिए नारी का ही मुँह तकना पड़ेगा। उसे ही अग्रिम पंक्ति में खड़ा करना पड़ेगा। पुरुष का इसमें प्रबल समर्थन होना ही चाहिए। आवश्यक साधन उसे ही जुटाने चाहिए। पीढ़ियों से चले आ रहे पाप का प्रायश्चित वह उसी प्रकार कर सकेगा कि नारी जागरण के प्रचण्ड आन्दोलन खड़े करने के लिए वह अधिक-से-अधिक ध्यान केन्द्रित करे और अधिक-से-अधिक साधन जुटाये। इतने पर भी इस महाअभियान का प्रत्यक्ष नेतृत्व नारी के ही हाथ मे रहना चाहिए। अग्रिम पंक्ति में उसे ही खड़ा होना चाहिए। नारी से सीधा सम्पर्क स्थापित कर सकना, घरों में प्रवेश कर सकना, महिलाओं से जी खोलकर बात कर सकना- उन्हें साथ लेकर चल सकना केवल नारी के लिए ही सम्भव हो सकता है। वर्तमान स्थिति में -भारत जैसे पिछड़े देश में, पुरुष वर्ग के लिए इस क्षेत्र में अधिक गहरा प्रवेश कर सकना कठिन है।

वर्तमान परिस्थिति पुकारती है कि महिलाओं को नारी-जागरण का व्रत लेकर अधिकाधिक मात्रा में वानप्रस्थी बनना चाहिए और जिस प्रकार पुरुषों के लिए पुरुष वर्ग में कार्यक्षेत्र खुला पड़ा है, उसी प्रकार अछूते नारी क्षेत्र में प्रवेश करके उन्हें अपने विशिष्ट कर्तव्य पालन में जुट जाना चाहिए, पुरुषों को लैक्चर झाड़ने के लिए पहले से ही पुरुष उपदेशकों की भीड़ बहुत बडी संख्या में मौजूद है। उसी मे कुछ नारियाँ भी घुस पड़ें तो नारी के प्रति सहज आकर्षण होने का मनोविज्ञान उन्हें कुछ अधिक स्वागत प्रदान कर सकता है पर उससे काम कुछ न बनेगा। महिला प्रचारिकाओं को अपना अछूता क्षेत्र ही सँभालना चाहिए और उसी सन्दर्भ में सोचना, करना चाहिए। यों वे पुरुषों को भी आवश्यकतानुसार उद्बोधन करें, इसके लिए कोई बन्धन नहीं है पर स्मरण रहे उन्हें नारी जागरण का मोर्चा सँभालना चाहिए, उनके प्रवचन एवं कर्तृत्व का केन्द्र-बिन्दु नारी कल्याण की महती आवश्यकताओं की पूर्ति को ही निर्धारित किया जाना चाहिए। इस प्रयोजन को

पूर्ति के लिए महिला वानप्रस्थनियों की बहुत बड़ी संख्या में आवश्यकता पड़ेगी । सो उनकी पूर्ति के लिए प्रत्येक विचारशील को प्रबल प्रयत्न करना चाहिए।

पुरुषों की तरह महिला वानप्रस्थों की भी दो श्रेणियाँ हो सकती हैं। एक वे जिनके पारिवारिक उत्तरदायित्व अभी शेष हैं और जो घर-परिवार की देखभाल करते हुए अपने स्थानीय क्षेत्र में नारी जागरण के लिए थोड़ा बहुत समय निकालती रह सकती हैं। दूसरे वे जो देशव्यापी धर्म शिक्षण के लिए दूर-दूर तक जा सकने की सुविधा से सम्पन्न हैं। जिनके पारिवारिक उत्तरदायित्व दूसरों के कन्धों पर चले गये हैं और बिना कठिनाई के परिव्राजक स्थिति अपना सकती हैं। इसके अतिरिक्त महिला वानप्रस्थों का एक तीसरा वर्ग भी हो सकता है जो अपने पति वानप्रस्थों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करती रह सकें। कुछ साधन सम्पन्न महिलाएँ छात्रावासों को अथवा सुयोग्य सम्बन्धियों को बच्चों के उत्तरदायित्व सँभालकर भी सेवा क्षेत्र में उतर सकती हैं।

विधवाओं, परित्यक्ताओं और बड़ी आयु वाली कुमारियों का एक बड़ा वर्ग ऐसा है जिनके लिए अब विवाह के द्वार एक प्रकार से बन्द ही हो चुके हैं। बच्चों के उत्तरदायित्व जिन पर नहीं हैं, उनके लिए इस आत्म-कल्याण और सेवा-साधना का पवित्रतम कार्यक्षेत्र ईश्वरीय वरदान की तरह मंगलमय माना जा सकता है। मानो प्रस्तुत असुविधाजनक स्थिति ईश्वर ने उन्हें इसी विशेष प्रयोजन के लिए वरदान रूप में प्रदान की है। यदि भौतिक लालसाओं से विरत होकर वे इस प्रकार की भावनात्मक उत्कृष्टता अपनाने वाला साहस एकत्रित कर सकें तो समझना चाहिए उनका दुर्भाग्य सच्चे अर्थों में सौभाग्य बन गया। इससे वे अपना ही नहीं समस्त मानव समाज का, नारी समाज का हित साधन करती हुई धन्य बन सकेंगी।

महिला जागरण अभियान जिस तीव्र गति से अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहा है, वह जहाँ उत्साह एवं हर्षवर्द्धक है, वहाँ उपर्युक्त प्रकार की अपनी नयी-नयी आवश्यकताओं की पूर्ति का उत्तरदायित्व का स्मरण भी अपने संचालकों को कराता है। अभियान की केन्द्रीय व्यवस्था से लेकर क्षेत्रीय कार्यकर्त्रियों एवं सहयोगियों तक को इसका ध्यान रखना आवश्यक है। केन्द्र को जिस 'युगदृष्टा' समर्थ सत्ता का संरक्षण प्राप्त है, उसके प्रभाव से केन्द्रीय स्तर पर समुचित व्यवस्थाओं का अग्रिम क्रम चलता रहा है, चलता रहेगा। इसी के अनुरूप क्षेत्रीय कर्मनिष्ठ आस्थावान वर्ग से भी आशा की जाती है कि वह भी साहस एवं सूझ-बूझ के साथ आगे आकर अपने हिस्से के उत्तरदायित्वों का निर्वाह करेगा। दोनों पक्ष कदम-से-कदम मिलाकर, कंधे-से-कंधा भिड़ाकर उत्साहपूर्वक चल पड़ें तो इस युगान्तरीय प्रक्रिया को पुष्पित-फलित होते देरी न लगेगी।



परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पायें, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी गायत्री तपोभूमि, मथुरा जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंतःस्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं–

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है– वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं– जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया– वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन यहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रातःकाल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्राय: ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीला संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४०००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है। ❑❑❑

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७ प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२ (सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३ षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६.ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे--

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३ चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारो का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के सयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यको की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार सहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

□□□